॥ भविष्य महापुराणम् ॥

(तृतीय खण्ड)

अनुवादक

पण्डित बाबूराम उपाध्याय

भविष्य महापुराणम्

(तृतीय खण्ड)

उत्तर-पर्व

भविष्य महापुराणम्

(तृतीय खण्ड)

(हिन्दी अनुवाद सहित)

अनुवादक
पंडित बाबूराम उपाध्याय

शक : २०२५ सन् : २००३

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

प्रकाशकीय

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के 'प्राण' स्वनामधन्य स्व० राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन जी द्वारा प्रवर्तित 'पुराण प्रकाशन योजना' के अन्तर्गत सम्मेलन के पूर्व प्रधानमंत्री स्व० डॉ० प्रभात शास्त्री ने पुराणों के स्तरीय प्रकाशन का जो शिवसंकल्प लिया था, उसके परिणामस्वरूप अद्यावधि पर्यन्त ब्रह्मपुराण, ब्रह्मवैवर्त, अग्नि, मार्कण्डेय, बृहन्नारदीय, वायु, मत्स्य, कूर्म, स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड तथा भविष्यपुराण के दो खण्ड (ब्राह्मपर्व, मध्यम एवं प्रतिसर्गपर्व) का मूलपाठ सहित हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित किया जा चुका है। भविष्यमहापुराण की पाण्डुलिपि एवं परिष्कृत भूमिका गोरखपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के प्राध्यापक डॉ० रामजी तिवारी द्वारा उपलब्ध करायी गयी थी, जिनके प्रति हम हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

'भविष्यपुराण' प्रकाशन की दृष्टि से तीन भागों में विभक्त किया गया है। भविष्यपुराण के दो भागों के प्रकाशित हो जाने के बाद तीसरा खण्ड (उत्तर-पर्व) आपके समक्ष प्रस्तुत है।

ग्रन्थ के सुष्ठु एवं स्तरीय प्रकाशन हेतु आचार्य रुद्रप्रसाद मिश्र, डॉ० शेषनारायण शुक्ल एवं शेषमणि पाण्डेय जी के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझता हूँ।

आकर्षक आवरण एवं सुन्दर मुद्रण हेतु इलाहाबाद ब्लाक वर्क्स (प्रा०) लि० एवं मनोज ऑफसेट के व्यवस्थापकों श्री कृष्णकुमार मित्तल एवं श्री मनोज मित्तल के प्रति भी आभारी हूँ।

सम्प्रति भविष्यपुराण का 'उत्तर-पर्व' आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अतीव आह्लाद हो रहा है। विश्वास है, यह पुराण सुधीजनों द्वारा समादृत एवं जन-उपयोगी सिद्ध होगा।

राम नवमी
संवत् २०६०

विभूति मिश्र
प्रधानमंत्री

विषयानुक्रमणिका

उत्तर-पर्व

●●

भविष्यपुराणम् — उत्तरपर्व

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्रीसरस्वत्यै नमः ॥ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

भविष्यमहापुराणम्

उत्तरपर्व

अथ प्रथमोऽध्यायः

व्यासागमनवर्णनम्

कल्याणानि ददातु वो गणपतिर्यस्मिन्नतुष्टे सति क्षोदीयस्यपि कर्मणि प्रभवितुं ब्रह्मापि जिह्मायते ।
भेजे यच्चरणारविन्दमसकृत्सौभाग्यभाग्योदयैस्तेनैषः जगति प्रसिद्धिमगमद्देवेन्द्रलक्ष्मीरपि ॥१
शश्वत्पुण्यहिरण्यगर्भरसनासिंहासनाध्यासिनी सेयं वागधिदेवता वितरतु श्रेयांसि भूयांसि वः ।
यत्पादामलकोमलाङ्गुलिनखज्योत्स्नाभिरुद्वेल्लितः शब्दब्रह्मसुधाम्बुधिर्बुधमनस्युच्छृङ्खलं खेलति ॥२
नमस्तस्मै विश्वोदयविलयरक्षाप्रकृतये शिवाय क्लेशौघच्छिदुरपदपद्मप्रणतये ।
अमन्दस्वच्छन्दप्रथितपृथुलीलातनुभृते त्रिवेदीवाचामप्यपथनिजतत्त्वस्थितिकृते ॥३

अध्याय १

व्यास के आगमन का वर्णन

वह गणपति देव तुम्हें कल्याण प्रदान करें, जिनके असन्तुष्ट हो जाने पर शक्ति कुण्ठित होने के कारण ब्रह्मा छोटे कार्य की भी पूर्ति करने में असमर्थ ही रह जाते हैं और जिसके चरणकमल की सेवा का सौभाग्य भाग्यशाली प्राणी सदैव किया करते हैं । अतः मैं भी उनकी सेवा के लिए सचेष्ट हूँ, क्योंकि उसी चरण-सेवा के फल स्वरूप समस्त विश्व में देवराज इन्द्र की राजलक्ष्मी की अतुलनीय ख्याति हुई है। ब्रह्मा की उस जिह्वा रूप पवित्र सिंहासन पर सदैव सुशोभित होने वाली वागधिदेवता सरस्वती तुम्हें अत्यन्त कल्याण प्रदान करती रहे, जिसके चरण की कोमल अंगुलियों के नखों की स्वच्छ किरणों द्वारा अत्यन्त बढ़ा हुआ वह शब्द ब्रह्म रूप अमृत सागर विद्वानों के मन में स्वच्छन्द हिलोरें लेता रहता है। १-२। उस शिव (कल्याण) मूर्ति को मैं सदैव नमस्कार करता हूँ, जिसने समस्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, रक्षा एवं प्रलय करना अपना स्वभाव ही बना लिया है, जिसका चरणकमल सदैव विघ्न व्यूहों को नष्ट करता है, और निरन्तर तेजी से होने वाली उस स्वच्छन्द एवं अत्यन्त प्रख्यात विश्व लीला रूप (विराट्) शरीर धारण किये हैं तथा जिसकी तत्व स्थिति का वर्णन करने में वेदवाणी भी असमर्थ रहती है। ऐसे गणाधिदेव मेरी रक्षा करें। जिनके कपोल के ऊपर स्वच्छ

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्रीसरस्वत्यै नमः ॥ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

भविष्यमहापुराणम्

उत्तरपर्व

अथ प्रथमोऽध्यायः

व्यासागमनवर्णनम्

कल्याणानि ददातु वो गणपतिर्यस्मिन्नतुष्टे सति क्षोदीयस्यपि कर्मणि प्रभवितुं ब्रह्मापि जिह्मायते।
भेजे यच्चरणारविन्दमसकृत्सौभाग्यभाग्योदयैस्तेनैषा जगति प्रसिद्धिमगमद्देवेन्द्रलक्ष्मीरपि ॥१
शश्वत्पुण्यहिरण्यगर्भरसनासिंहासनाध्यासिनी सेयं वागधिदेवता वितरतु श्रेयांसि भूयांसि वः।
यत्पादामलकोमलाङ्गुलिनखज्योत्स्नाभिरुद्वेल्लितः शब्दब्रह्मसुधाम्बुधिर्बुधमनस्युच्छृङ्खलं खेलति ॥२
नमस्तस्मै विश्वोदयविलयरक्षाप्रकृतये शिवाय क्लेशौघच्छिदुरपदपद्मप्रणतये।
अमन्दस्वच्छन्दप्रथितपृथुलीलातनुभृते त्रिवेदीवाचामप्यपथनिजतत्त्वस्थितिकृते ॥३

अध्याय १

व्यास के आगमन का वर्णन

वह गणपति देव तुम्हें कल्याण प्रदान करें, जिनके असन्तुष्ट हो जाने पर शक्ति कुण्ठित होने के कारण ब्रह्मा छोटे कार्य की भी पूर्ति करने में असमर्थ ही रह जाते हैं और जिसके चरणकमल की सेवा का सौभाग्य भाग्यशाली प्राणी सदैव किया करते हैं। अतः मैं भी उनकी सेवा के लिए सचेष्ट हूँ, क्योंकि उसी चरण-सेवा के फल स्वरूप समस्त विश्व में देवराज इन्द्र की राजलक्ष्मी की अतुलनीय ख्याति हुई है। ब्रह्मा की उस जिह्वा रूप पवित्र सिंहासन पर सदैव सुशोभित होने वाली वागधिदेवता सरस्वती तुम्हें अत्यन्त कल्याण प्रदान करती रहे, जिसके चरण की कोमल अंगुलियों के नखों की स्वच्छ किरणों द्वारा अत्यन्त बढ़ा हुआ वह शब्द ब्रह्म रूप अमृत सागर विद्वानों के मन में स्वच्छन्द हिलोरें लेता रहता है।१-२। उस शिव (कल्याण) मूर्ति को मैं सदैव नमस्कार करता हूँ, जिसने समस्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, रक्षा एवं प्रलय करना अपना स्वभाव ही बना लिया है, जिसका चरणकमल सदैव विघ्न व्यूहों को नष्ट करता है, और निरन्तर तेजी से होने वाली उस स्वच्छन्द एवं अत्यन्त प्रख्यात विश्व लीला रूप (विराट्) शरीर धारण किये हैं तथा जिसकी तत्व स्थिति का वर्णन करने में वेदवाणी भी असमर्थ रहती है। ऐसे गणाधिदेव मेरी रक्षा करें। जिनके कपोल के ऊपर स्वच्छ

यस्य[1] गण्डतले भाति विमला षट्पदावली । अक्षमालेव विमला स नः पायाद्गणाधिपः ।।४
ॐ नमो वासुदेवाय सशार्ङ्गाय सकेतवे । सगदाय सचक्राय सशङ्खाय नमो नमः ।।५
नमः शिवाय सोमाय सगणाय ससूनवे । सवृषाय सशूलाय सकपालाय सेन्दवे ।।६
शिवं ध्यात्वा हरिं स्तुत्वा प्रणम्य परमेष्ठिनम् । चित्रभानुं च भानुं च नत्वा ग्रन्थमुदीरयेत् ।।७
छत्राभिषिक्तं धर्मज्ञं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् । द्रष्टुमभ्यागता हृष्टा व्यासाद्या परमर्षयः ।।८
मार्कण्डेयः समाण्डव्यः शाण्डिल्यः शाकटायनः । गौतमो गालवो गार्ग्यः शातातपपराशरौ ।।९
जामदग्न्यो भरद्वाजो भृगुर्भागुरिरेव च । उत्तङ्कः शङ्खलिखितौ शौनकः शाकटायनिः ।।१०
पुलस्त्यः पुलहो दाल्भ्यो बृहदश्वः सलोमशः । नारदः पर्वतो जह्नुरपावसुपरावसू ।।११
तानृषीनागतान्दृष्ट्वा वेदवेदाङ्गपारगान् । भक्तिमान्भ्रातृभिः सार्द्धं कृष्णधौम्यपुरःसरः ।।१२
युधिष्ठिरः संप्रहृष्टः समुत्थायाभिवाद्य च । अर्घ्यमाचमनं पाद्यमासनानि स्वयं ददौ ।।१३
उपविष्टेषु तेष्वेव तपस्विषु युधिष्ठिरः । विनयावनतो[2] भूत्वा व्यासं वचनमब्रवीत् ।।१४
भगवंस्त्वत्प्रसादेन प्राप्तं राज्यं महन्मया । विक्रम्य निहतः संख्ये सानुबन्धः सुयोधनः ।।१५
सरोगस्य यथा भोगः प्राप्तोऽपि न सुखावहः । हत्वा ज्ञातींस्तथा राज्यं न सुखं प्रतिभाति मे ।।१६

रुद्राक्ष की माला की भाँति भ्रमर पंक्तियाँ सुशोभित होती रहती हैं । ओंकार रूप वासुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ, जो धनुष, ध्वजा, गदा, चक्र, एवं शंख से सुसज्जित रहते है । उसी भाँति शिव जी को नमस्कार कर रहा हूँ ! जो अपने वृष (बैल), त्रिशूल, कपाल एवं चन्द्रमा से सदैव सुसज्जित रहते हैं । इस प्रकार मैं शिव जी का ध्यान, विष्णु की स्तुति, और चित्रभानु नामक सूर्य समेत लोक पितामह ब्रह्मा को प्रणाम करके इस ग्रन्थ का प्रारम्भ कर रहा हूँ ।३-७। (राजचिह्न) मंत्र एवं चामरों से विभूषित, धर्मज्ञाता, एवं धर्मपुत्र युधिष्ठिर को देखने के लिए व्यास आदि श्रेष्ठ ऋषियों का आगमन हुआ जिसमें मार्कण्डेय, माण्डव्य, शाण्डिल्य, शाकटायन, गौतम, गालव, गार्ग्य, शातातप, पराशर, परशुराम, भरद्वाज, भृगु, भागुरि, उत्तंक, शंख, लिखित, शौनक, शाकटायनि, पुलस्त्य, पुलह, दाल्भ्य, वृहदश्व, लोमश, नारद, पर्वत, जह्नु, अपावसु, और परावसु नामक ऋषिगण सम्मिलित थे । उस समय उन आये हुए ऋषियों को जो वेद एवं वेदाङ्गों के धर्मज्ञ विद्वान् थे, देखकर भक्तिमान् युधिष्ठिर ने सिंहासन से उतरकर अपने भाइयों समेत अत्यन्त हर्षित होते हुए कृष्ण और धौम्य को आगे कर उन ऋषियोंका शुभ समेत अभिवादन स्वागत किया। पश्चात् स्वयं प्रदत्त यथोचित आसन पर आसीन कराकर उन्हें अर्घ्य, आचमन एवं पाद्य (हाथ मुख चरण के प्रक्षालनार्थ जल) प्रदान किया। उन तपस्वियों के अपने आसनों पर श्रान्त होने पर युधिष्ठिर ने विनम्र होकर व्यास जी से कहा—भगवन् ! आपकी कृपा द्वारा ही मुझे इस महान् राज्य की प्राप्ति हुई है, जो युद्ध में पराक्रम द्वारा बन्धु समेत सुयोधन के निधन होने पर प्राप्त हुआ है।८-१५। किन्तु रोगी प्राणी को भोग की प्राप्ति सुख कर न होने की भाँति मुझे भी अपने कुल के नाश

---

१. 'यस्य' इत्यारम्य—'छत्राभिषिक्तम्' इत्यतः प्राक्तनः पाठ एकस्मिन्पुस्तकेऽधिकोऽस्ति ।
२. विनयप्रणतः—इ०पा० ।

यत्सुखं पावनं प्रीतिर्वनमूलफलाशिनाम् । प्राप्य गां च हतारातिं न तदस्ति पितामह ॥१७
यो नो बन्धुर्गुरुर्गोप्ता सदा शर्म च वर्म च । स मया राज्यलोभेन भीष्मः पापेन घातितः ॥१८
अविवेकमहं धास्ये मनो मे पापपङ्किलम्[1] । क्षालयित्वा तव गिरा बहुदर्शितवारिणा ॥१९
संश्रुतानि पुराणानि वेदास्सांगा मया विभो । ममाद्य धर्मसर्वस्वं प्रज्ञादीपेन[2] दर्शय ॥२०
एते सधर्मगोप्तारो मुनयः समुपागताः । पिबन्तो नेत्रभ्रमरैर्भवतो मुखपङ्कजम् ॥२१
अर्थशास्त्राणि यावन्ति धर्मशास्त्राणि यानि वै । श्रुतानि सर्वशास्त्राणि भीष्माद्भागीरथीसुतात् ॥२२
स्वर्गं गते शान्तनवे भवान्कृष्णोऽथ यादवः । सुहृत्त्वाद्बन्धुभावाच्च नान्यः शिक्षयिता मम ॥२३
सत्यं[3] सत्यवतीसूनुर्द्धर्मराजाय वक्ष्यति । विशेषधर्मानखिलान्मुनीनामविशेषतः ॥२४

व्यास उवाच

यदाख्येयं तदाख्यातम् मया भीष्मेण तेऽनघ । मार्कण्डेयेन धौम्येन लोमशेन महर्षिणा ॥२५
धर्मज्ञो ह्यसि मेधावी गुणवान्प्राज्ञसत्तमः । न तेऽस्त्यविदितं किञ्चिद्धर्माधर्मविनिश्चये ॥२६
पार्श्वस्थिते हृषीकेशे केशवे केशिसूदने । कस्यचित्कथने जिह्वा तत्र सम्परिवर्तते ॥२७

करने के नाते यह राज्य सुखकर नहीं दिखाई दे रहा है। पितामह ! वन में कन्द मूल खाकर जीवन व्यतीत करने वाले प्राणियों को जिस सुख एवं पावन प्रीति की प्राप्ति होती है, वह शत्रुओं के समूल नष्ट होने पर प्राप्त हुए राज्य से नहीं मिल सकता है। मैं ऐसा पापी था कि राज्य लोभ के कारण मैंने उन भीष्म की हत्या की जो मेरे बन्धु, गुरु, रक्षक, सदैव कल्याणेच्छुक एवं कवच की भाँति दुर्भेद्य आचरण के थे। मैं महान् अविवेकी हो गया हूँ, मेरा मन पाप कीचड़ में एकदम ओतप्रोत हो गया है। यद्यपि आपकी वाणी रूप जल से जिसमें अनके भाँति से तत्त्व को हृदयंगम करना बताया गया है, इस मन को शुद्ध कर पुराणों एवं अंगों समेत वेदों के श्रवण मैंने अनेक बार किये हैं, किन्तु विभो ! आज अपने ज्ञानद्वीप द्वारा धर्म सर्वस्व के दर्शन करायें। १६-२०। ये समस्त ऋषिगण भी जो धर्म के योद्धा हैं, अपने नेत्र रूपी भ्रमरों द्वारा आपके मुख कमल का रसास्वादन कर रहें हैं। समस्त अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, और इतर सभी शास्त्रों का मैंने भागीरथी (गङ्गा) के पुत्र भीष्म द्वारा श्रवण किया है। किन्तु शान्तनु पुत्र भीष्म के स्वर्गीय हो जाने पर मित्र एवं बन्धु होने के नाते यादव श्रेष्ठ कृष्ण ही मेरे शिक्षक हैं अन्य कोई नहीं। पश्चात् सत्यवती पुत्र व्यास धर्मराज के लिए समस्त धर्मों की विशेष व्याख्या करेगे, विशेष कर मुनियों के लिए भी। २१-२४

व्यास जी बोले—अनघ ! मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ, उसकी व्याख्या भीष्म द्वारा आप पहले सुन चुके है। तथा मार्कण्डेय, धौम्य, और लोमश ऋषि ने भी उसकी व्याख्या की है। आप धर्म-मर्मज्ञ बुद्धिमान् गुणवान्, एवं विशिष्ट विद्वान् हैं इसलिए धर्माधर्म का निश्चय आपसे अविदित नहीं है। तथापि धर्मप्रिय होने के नाते रहते समय जो केशव, और केशि (राक्षस) संहर्ता कहे जाते हैं, कहने के लिए

---

१. पापशंकितम्। २. ज्ञानदोषेन। ३. सेव्यः।

कर्ता पालयिता हर्ता जगतां यो जगन्मयः । प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य धर्मान्वक्ष्यत्यसौ तव[1] ।।२८
समादिश्येतिकर्तव्यं भगवान्बादरायणः । पूजितः पाण्डुतनयैर्जगाम स्वतपोवनम् ।।२९
स्वाभाष्य भारतविधातरि सम्प्रयाते ते कौतुकाकुलधियो मुनयः प्रशान्ताः ।
किम् पृच्छति क्षपितभारतलोकशोकः[2] किं वक्ष्यतीह भगवान्यदुवंशवीरः ।।३०
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि व्यासागमनवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।१

अथ द्वितीयोऽध्यायः

ब्रह्माण्डोत्पत्तिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

कस्य प्रतिष्ठा निर्दिष्टा को हेतुः किं परायणम् । कस्मिन्नैतल्लयं याति कस्मादुत्पद्यते जगत् ।।१
कति द्वीपाः समुद्राश्च[3] कियंतो हि कुलाचलाः । कियत्प्रमाणमवनेर्भुवनानि कियन्ति च ।।२

किसकी जिह्वा अग्रसर हो सकती है। वे जगत् के कर्ता, रक्षक, अपहर्ता हैं इसलिए वही प्रत्यक्षदर्शी समस्त धर्मों की व्याख्या पूर्वक दिग्दर्शन करायेंगे, अच्छा अब आज्ञा प्रदान कीजिये। इतना कहकर भगवान् वादरायण व्यास जी पाण्डुपुत्रों द्वारा पूजित होने के उपरांत तपोवन चले गये। इस प्रकार विवेचन पूर्वक कहकर उन भारत भाग्यविधाता व्यास के चले जाने के उपरांत शान्तचित्त कैसे हुए उन ऋषियों के बीच जिनके मन से सुनने के लिए लालायित हैं, भारत के शोकापहरण करने वाले युधिष्ठिर ने क्या प्रश्न किया ? और वीर यदुवंशीय भगवान् कृष्ण ने उसका किस प्रकार समाधान किया।२५-३०

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में व्यास का आगमन वर्णन नामक पहला अध्याय समाप्त ।१।

अध्याय २

ब्रह्माण्डोत्पत्ति का वर्णन

युधिष्ठिर जी बोले—इस विश्व में किसकी प्रतिष्ठा सदैव स्थित रहती है, संसार होने का कारण कौन है, उत्पन्न होकर वह अपनाता किसे है, और इस जगत् की उत्पत्ति एवं प्रलय किसमें होना है। उस प्रकार द्वीप, समुद्र, पर्वत कितने हैं, पृथ्वी का प्रमाण क्या है, और इसमें कितने भुवन हैं।१-२

---

१. धर्मतत्त्वार्थकोविदः। २. दुःखितलोकशोक। ३. च वार्ष्णेय।

श्रीकृष्ण उवाच

पौराणश्चैव विषयो यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ । श्रुतोऽनुभूतश्च मया संसारे सरता[1] चिरम् ।।३
अजाय विश्वरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने । नमस्तस्मै भगवते वासुदेवाय वेधसे ।।४
अत्र ते वर्णयिष्यामि शृणु पार्थ पुरातनम् । याज्ञवल्क्येन मुनिना भविष्यं भास्वतां पतिः ।।
पृष्टो यदुत्तरं प्रादादृषिभ्यस्तन्मया श्रुतम् ।।५
धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वाशुभविनाशनम् । भविष्योत्तरमेतत्ते कथयामि युधिष्ठिर ।।६
एकात्मकं[2] त्रिदैवत्यं चतुःपञ्चसुलक्षणम् । गुणकालादिभेदेन सदसत्सम्प्रदर्शितम् ।।७
एक एव जगद्योनिः प्रतियोनिषु संस्थितः । एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ।।८
ब्रह्मा विष्णुर्वृषाङ्कश्च त्रयो देवाः सतां[3] मताः । नामभेदैः क्रियाभेदैर्भिद्यन्ते नात्मना स्वयम् ।।९
प्रक्रिया चानुषङ्गश्च उपोद्घातस्तथैव च । उपसंहार इत्येतच्चतुष्पादं प्रकीर्तितम् ।।१०
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च । वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ।।११
एष वक्तव्यविषयः समुहान्प्रतिभाति मे । तथाप्युद्देशतो वच्मि सर्गं प्रति तवानघ ।।१२
महदादिविशेषान्तं सवैरूप्यं सलक्षणम् । पञ्चप्रमाणं षट्कक्षं पुरुषाधिष्ठितं जगत् ।।१३
अव्यक्ताज्जायते बुद्धिर्महानिति च सा स्मृता । अहङ्कारस्तु महतस्त्रिगुणः स च पठ्यते ।।१४

श्रीकृष्ण बोले—अनघ ! आप ने जो कुछ पूँछा है, वह सब पुराणों का विषय है जिसका अनुभव इस संसार में रहते हुए मैंने बहुत दिनों से किया है, और लोक शास्त्र से सुना भी है । उस भगवान् वासुदेव को, अजन्मा, विश्वरूप (विराट्), निर्गुण, एवं सगुण और ब्रह्मा रूप है। पार्थ ! इस विषय के उत्तर में एक पुरातन इतिहास का वर्णन, जिसे सूर्य के पूछने पर महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा था, मैं कर रहा हूँ, सुनो ! उसे मैंने और ऋषियों ने भी सुना है। युधिष्ठिर ! उस धन्य, यशस्वी, आयुवर्द्धक और शुभ-अशुभ के विनाशक इतिहास का भविष्योत्तर नाम है, जिसमें मैं कह रहा हूँ। वही एक (ब्रह्म) सदैव स्थित रहता है एक आत्मा है, जो तीनों प्रधान देव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर) के रूप में रहकर चार-पाँच लक्षणों से युक्त होता है, और गुण एवं कालादि भेद से वही सदा असत् प्रदर्शित किया गया है। वही एक विश्व का कारण है, जो उनके योनियों में स्थित रहकर जल में एक चन्द्र के उनकों चन्द्र दर्शन की भाँति दिखाई देता रहता है।३-८। ब्रह्मा, विष्णु, और महेश्वर यही तीनों सनातन प्रधान देव हैं, जो अपने नाम और क्रिया द्वारा स्वयं पृथक-पृथक् मालूम होते हैं। प्रक्रिया, अनुषङ्ग (आकस्मिकता), उपोद्घात, और उपसंहार नामक उसके चार चरण बताये गये हैं, तथा सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंश चरित्र यही उस (ब्रह्म) पुराण के पाँच लक्षण कहे गये हैं। अनघ ! यद्यपि मेरी दृष्टि में यह वक्तव्य विषय अत्यन्त महान् दिखाई दे रहा है, तथापि उद्देश्य के अनुसार सर्ग वर्णन मैं प्रारम्भ कर रहा हूँ, जिसमें महदादि से लेकर विशेष तक बताया गया है, और वही रूप एवं लक्षण भी है। पाँचों प्रमाण और छः कक्षा वाले इस ब्रह्माण्ड का वह अव्यक्त पुरुष अधिष्ठाता है, जिससे सर्वप्रथम बुद्धि उत्पन्न होती है, उसे महान् भी कहा गया है। उस

---

१. चरता मया । २. सर्वात्मकम् । ३. सनातनाः ।

तन्मात्राणि च पञ्चाहुरहङ्काराच्च सात्त्विकात्[1] । जातानि तेभ्यो भूतानि भूतेभ्यः सचराचरम् ॥१५
जलमूर्तिमये विष्णौ नष्टे स्थावरजङ्गमे । भूतात्मकमभूदण्ड महत्तदुदकेशयम् ॥१६
सृष्टया[2] शक्त्या च निर्भिन्नं तदण्डमभवद्द्विधा । भूकपालमथैकं तद्द्वितीयमभवन्नभः ॥१७
उल्बं तस्याभवन्मेरुर्जरायुः पर्वताः स्मृताः । नद्यो धमन्यःसञ्जाताः क्लेदः सर्वत्रगं[3] पयः ॥१८
योजनानां सहस्राणि षोडशाधः प्रतिष्ठितः । उत्सेधे [4]चतुराशीतिर्द्वात्रिंशदूर्ध्वविस्तृतः ॥
भूमिपङ्कजविस्तीर्णा कर्णिका मेरुरुच्यते ॥१९
आदित्यश्चादिदेवत्वात्तत्राभूत्त्रिगुणात्मकः । प्रातः प्रजापतिरसौ मध्याह्ने विष्णुरिष्यते ॥
रुद्रोऽपराह्णसमये स एवैकस्त्रिधामतः ॥२०
प्रातः प्रजापतेर्जाता मुनयो नव मानवाः[5] । मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥
भृगुर्वशिष्ठ इत्यष्टौ नारदो नवमः स्मृतः ॥२१
नव ब्रह्माण इत्येष पुराणे निश्चयः स्मृतः । अङ्गुष्ठाद्दक्षिणाद्दक्षः सञ्जज्ञे कमलोद्भवात् ॥२२
वामा प्रसूतिरुदगादङ्गुष्ठात्तौ च दम्पती । ताभ्यां जातास्तु तनया हर्यश्वास्ते विनाशिताः ॥
सृष्टिं प्रति समुद्युक्ता नारदेन महात्मना ॥२३
दक्षः क्षीणान्सुतान्वीक्ष्य जनयामास कन्यकाः । पञ्चाशद्दश विख्याताः सत्याद्या नामभिः स्मृताः ॥२४
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश । कालस्य नयने युक्ताः सप्तविंशतिमिन्दवे ॥२५

महान् द्वारा तीनों युक्त अहंकार और उस सात्त्विक अहंकार द्वारा पाँच तन्मात्रा की उत्पत्ति होती है जिससे पाँच (आकाशादि) भूतों एवं उन भूतों द्वारा इस चराचरमय जगत् की (उत्पत्ति) होती है। जल मूर्तिमय विष्णु में इस स्थावर जंगम रूप जगत् के विलीन होने पर वह भूतात्मक, महदण्डक् उदक में शयन किये एवं सृष्टि-शक्ति से निर्भिन्न है, दो भागों में विभक्त होकर एक भाग से भू कपाल और दूसरे से आकाश होता है।९-१७। इसका उल्व (गर्भावरण झिल्ली) मेरु और जरायु (गर्भाशय) पर्वत, धमनियाँ (नाड़ियाँ) नदी, एवं क्लेद जल है, वह सोलह सहस्र योजन नीचे चौरासी सहस्र योजन उन पर प्रतिष्ठित है, जो ऊपर बत्तीस सहस्र योजन विस्तृत हैं। इस पृथ्वी रूपी कमल के विकसित होने पर उसकी कर्णिका मेरु हुआ है। उस स्थल में आदि देव होने के नाते आदित्य भगवान् त्रिगुणात्मक रूप धारण करते हैं—प्रातः काल प्रजापति, मध्याह्न में विष्णु, और अपराह्ण समय में रुद्र रूप अवस्थित होता है। इस प्रकार वह एक (ब्रह्म) होते हुए तीन भागों में विभक्त होता है। उन प्रातःकालीन प्रजापति द्वारा नव महर्षियों के जन्म हुए, जिनके मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वशिष्ठ, और नारद नाम है इस प्रकार पुराणों में इन नव महर्षियों को ब्रह्मा रूप बताया गया है। ब्रह्मा के दाहिने अंगूठे से दक्ष और उनकी पत्नी प्रसूति का जन्म हुआ है। पुनः उस दम्पत्ति के द्वारा हर्यश्व आदि के अनेक पुत्र उत्पन्न हुए जो सृष्टि के लिए समुत्सुक महात्मा नारद द्वारा विनष्ट हो गये। उस समय अपने पुत्रों को क्षीण देखकर दक्ष ने सत्या आदि नामक पचास कन्याओं की उत्पत्ति की। अनन्तर उन्होंने उनमें से दश कन्याएँ धर्म के लिए तेरह कश्यप जी के लिए दो काल के लिए, सत्ताईस

---

१. साक्षिकात् । २. सृष्टशक्त्या । ३. सर्वगतम् । ४. मुखविस्तृतः । ५. मानसाः ।

द्वे प्रादाद्बाहुपुत्राय द्वे कृशाश्वाय चैव हि । रूपयौवनशालिन्यश्चतस्रोऽरिष्टनेमिने ।।२६
एकां भृगोर्भवायैकां प्रादात्तेभ्यश्चराचरः । अभवत्पुरुषव्याघ्र भूतग्रामश्चतुर्विधः ।।२७
वैराजमथ वैकुण्ठं कैलासमिति नामतः । मेरोः शृङ्गत्रयं मूर्ध्नि ब्रह्मविष्णुशिवालयम् ।।२८
प्राचीदिक्क्रमयोगेन तेषाम् पार्श्वे पुरः स्मृताः । इन्द्रादिलोकपालानां दिव्यैः स्वर्ल्लक्षणैर्युताः ।।२९
हिमवान्हेमकूटश्च निषधो मेरुरेव च । नीलः श्वेतस्तथा शृङ्गी जम्बूद्वीपे कुलाचलाः ।।
जम्बूद्वीपप्रमाणेन सहस्रगुणितं शतम् ।।३०
भिद्यते नवधा सोऽपि वर्षभेदेन भारत । जम्बूशाककुशक्रौञ्चशाल्मगोमेदपुष्कराः ।।
द्वीपाः सप्त समाख्याताः समुद्रैः सप्तभिर्वृताः ।।३१
क्षारक्षीरेक्षुसुरया दध्ना चैव घृतेन च । स्वादूदके न च भृतैर्द्विगुणैर्द्विगुणैस्तथा ।।३२
भूर्लोकोऽथ भुवर्ल्लोकः स्वर्महर्ज्जन इत्यपि । तपः सत्यश्च कथिताः पार्थ सप्त सुरालयाः ।।३३
महातलो भूमितलः सुतलो वितलस्ततः । रसातलश्च विज्ञेयः सप्तमश्च तलातलः ।।३४
हिरण्याक्षप्रभृतयो दानवेन्द्रा महोरगाः । वसंत्येतेषु कौन्तेय सिद्धाश्च ऋषयश्च ये ।।३५
स्वायंभुवो मनुः पूर्वं ततः स्वारोचिषोऽभवत् । उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषेति षट् ।।३६
वैवस्वतोऽयमधुना वर्तते मनुरुत्तमः । यस्य पुत्रैः प्रपौत्रैश्च विभक्तेयं वसुन्धरा ।।३७
आदित्या वसवो रुद्रा एकादश तथाश्विनौ । उषस्त्रयः समाख्याता देव वैवस्वतेऽन्तरे ।।३८

चन्द्रमा के लिए प्रदान किया । उसी प्रकार बहुपुत्र के लिए दो, कृशाश्व के लिए दो अरिष्टनेमि के लिए रूप यौवन सम्पन्न चार, भृगु और शिव के लिए एक-एक कन्याएँ प्रदान की जिससे चराचर मय इस जगत् का निर्माण हुआ । पुरुषव्याघ्र ! इस लोक में प्राणि समूहों की चार प्रकार से सृष्टि हुई है । प्रधान देव ब्रह्मा, विष्णु, एवं महेश्वर के वैराज, वैकुण्ठ, तथा कैलास नामक लोक मेरु के तीनों शिखर पर अवस्थित हैं, जो पूर्व आदि दिशाओं के क्रम से वे स्थान उन लोगों के सम्मुख ही है । इन्द्रादि लोकपालों के लिए स्वर्ग आदि दिव्य लक्षणों से युक्त हैं हिमवान्, हेमकूट, निषध, मेरु, नील, श्वेत, और भृङ्गी नाम कुलाचल पर्वतगण स्थानरूप में उस जम्बूद्वीप में नियुक्त हैं, जो द्वीप एक लक्ष के प्रमाण में स्थित हैं । उसी का वर्ष भेद से नव भाग किया है, जिसमें प्रथम भारत वर्ष है । इस प्रकार जम्बू, शाक, कुश, क्रौञ्च, शालमलि, गोमेद, और पुष्कर नामक सात द्वीपों का निर्माण किया गया है, जो अपने चारों ओर सातों समुद्रों से क्रमशः आवृत (घिरे हुए) हैं । उन समुद्रों के क्रमशः क्षार, क्षीर, इक्षु (ईख), सुरा, दधि, घृत और स्वादपूर्ण जल नाम हैं, जो उत्तरोत्तर एक दूसरे से दुगुने विस्तृत एवं गम्भीर हैं । पार्थ ! भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक देवों के आवास स्थान हैं, उसी प्रकार महातल, भूमितल, सुतल, वितल, रसातल, और तल एवं अतल लोक ।१८-३४। हिरण्याक्ष आदि दानवेन्द्रों एवं महासर्पों के आवास स्थान हैं । कौन्तेय ! इसी लोको में सिद्ध तथा ऋषिगण भी निवास करते हैं। मनुगणों में सर्वप्रथम स्वायम्भुव मनु, पश्चात् क्रमशः स्वारोचिषु, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, और सातवें वैवस्वत मनु हैं, जो इस समय वर्तमान अधिकारी हैं । इनके वंश के पुत्रों प्रपौत्रों द्वारा यह वसुन्धरा विभक्त की गयी है । इस वैवस्वत मनु के समय में आदित्य, वसु, एकादश और अश्विनी कुमार

विप्रचित्तिहिरण्याख्यौ दैत्यदानवसत्तमौ । तयोर्वंशे तु बहवो दैत्यदानवसत्तमाः ।।३९
पञ्चाशद्गुणितकोटियोजनानां महत्तया । सप्तद्वीपसमुद्रायाः प्रमाणमवनेः स्मृतम् ।।४०
पिण्डेन च सहस्राणि सप्ततिर्जलमध्यतः । गौरिवैषा सुमहती भ्राजते न च लीयते ।।४१
लोकालोकः परतरः पर्वतोऽग्रमहोच्छ्रयः । द्वैतमर्थं स नियतो योऽसौ रविरुचामपि ।।४२
नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवात्यन्तिको लयः । नित्यश्चतुर्थो विज्ञेयः कालो नित्यापहारकः ।।४३
उत्पद्यते स्वयं यस्मात्तत्तस्मिन्नेव लीयते । रक्षति च परे पुंसि भूतानामेष निश्चयः ।।४४
यथर्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये । दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु ।।४५
प्रतिलीनेषु भूतेषु विबुद्धः सकलं जगत् । वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः ।।४६
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मानृतानृते । ते तं विना प्रपद्यन्ते पुनस्तेष्वेव कर्मसु ।।४७
भूर्दशगुणेन पयसा संवृता तच्च तेजसा । तेजोऽनिलेन नभसा तद्गुणेनानिलो वृतः ।।४८
भूतादिना तथाकाशं भूतादिर्महतावृतः । महान्परिवृतस्तेन पुरुषेणाविनाशिना ।।४९
एवं विधानामण्डानां सहस्राणि शतानि च । उत्पन्नानि विनष्टानि भावितानि महात्मना ।।५०
वैकुण्ठकोष्ठगतमेतदशेषतायां ख्यातं[1] जगत्सुरनरोरगसिद्धनद्धम् ।
पश्यन्ति शुद्धमुनयो बहिरन्तरे च माया चराचरगुरोरपरैव काचित् ।।५१
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरे पर्वणि ब्रह्माण्डोत्पत्तिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।२

एवं तीनों उप प्रख्यात देव हैं । उसी भाँति विप्रचित्त और हिरण्याक्ष नामक दो दैत्य दानव हैं, जिनके बहु संख्यक दैत्य दानव राज हैं । सातों द्वीप और सातों समुद्र समेत इस पृथ्वी का प्रमाण पचास करोड़ योजन है, जो जल के मध्य भाग में गौ की ही भाँति पिंड रूप में, जो सत्तर सहस्र का है, सुशोभित है । अत्यन्त महान् होने पर भी वह उस जल में विलीन नहीं होती है । लोकालोक नामक पर्वत सबसे श्रेष्ठ एवं अत्यन्त ऊँचा है, वही द्वैत (देव विभाग) करने के लिए अवस्थित है । वही सूर्य की किरणों का नैमित्य निमित्तक, प्राकृतिक, एवं आत्यन्तिक लय स्थान है, इसलिए उसे नित्य अपहरण करने वाला काल भी कहा जाता है । प्राणियों का यह निश्चित नियम है कि जिससे उनकी उत्पत्ति होती है, उसी में विलीन भी होते हैं और उसी सर्वश्रेष्ठ पुरुष में प्रतिष्ठित रहकर सुरक्षित होते हैं जिस प्रकार ऋतुओं में विवर्दय के समय उनके लिङ्ग अनेक रूप धारण करते दिखायी देते हैं उसी भाँति युगादि काल में उनके भाव भी उस रूप में प्रत्यक्ष होते हैं । जीव समूहों के प्रलय होने के उपरांत पुनः समस्त जगत् चेतना प्राप्त करता है । आदि काल में सर्वप्रथम वेद शब्दों के द्वारा उसकी रचना करने वाले महेश्वर हैं । वे जीव पुनः हिंसक एवं अहिंसक मृदु एवं क्रूर धर्माधर्म सत्य और असत्य में लीन होकर उन्हीं कर्मों को अपनाते हैं । यह पृथ्वी अपने से दश गुने जल से घिरी है उसी भाँति तेज से जल, अनिल (वायु) से तेज, आकाश से वायु, (पंच) भूतादि से आकाश, महान् से भूतादि, और महान् उस अविनाशी पुरुष से आवृत (घिरा) है । इस प्रकार उस महापुरुष द्वारा यह ब्रह्माण्ड सैकडों सहस्रों बार उत्पन्न होकर नष्ट हुए हैं । इस ब्रह्माण्ड को जो देव, मनुष्य, उरग, सिद्ध आदि से पूर्ण आवद्ध हैं, प्रलयकाल में महर्षि गण जो समान रूप से बाहर भीतर विशुद्ध होते हैं, उसे देखते हैं और इस चराचर निर्माता की माया दूसरी ही है ।३५-५१

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में ब्रह्माण्डोत्पत्ति वर्णन नामक दूसरा अध्याय समाप्त ।२।

---

१. ध्यानम्, ध्यातम् ।

अथ तृतीयोऽध्यायः

मायादर्शनवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

कीदृशी कृष्ण सा माया विष्णोरमिततेजसः । यया व्यामोहितं यच्च जगदेतच्चराचरम् ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

येन द्वीपे पुरा विष्णुरास्त चक्रगदाधरः । वासुदेवः सगरुडः सचक्रश्च श्रिया सह ।।२
नीलोत्पलदलश्यामः कुण्डलाभ्यां विभूषितः । भ्राजते मुकुटोद्द्योतकेयूरवनमालया ।।३
तस्य द्रष्टुमथाभ्यागान्नारदो मुनिसत्तमः । प्रणम्य स्तुतिभिर्देवं प्राहेदं विस्मयान्वितः ।।४
संशयं परिपृच्छामि भगवन्वक्तुमर्हसि । का माया कीदृशी माया किंरूपा च कुतस्तथा ।।५
तस्या दर्शय मे रूपं मायायाः पुरुषोत्तम । या च मोहयते सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।।६
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सदेवासुरमानुषम् । वैकुण्ठं वासुदेवं च प्रसादं कर्तुमर्हसि ।।७
एवमुक्तस्तु मुनिना देवदेवो जनार्दनः । प्रहस्योवाच देवर्षे कार्यं मायया त्वया ।।८
भूयोऽपि मोहयामास सोमप्राहेण नारदम् । नारदोऽपि महाराज प्रोवाचेदं पुनःपुनः ।।९
मायां दर्शय मे देव नान्यदस्ति प्रयोजनम् । अथासौ विष्णुरुत्थाय श्वेतद्वीपं पुनर्ययौ ।।१०

अध्याय ३

मायादर्शन नामक वर्णन

युधिष्ठिर जी बोले—भगवन् ! अमित तेजवाले विष्णुदेव की वह माया जिससे यह चराचर समस्त जगत् मोहित होता है, किस प्रकार की है ।१

श्रीकृष्ण बोले—उस द्वीप में भगवान् विष्णु, चक्र गदा धारण किये गरुड़ और लक्ष्मी समेत आसनासीन थे । उन वासुदेव भगवान् के उस रूप को, जो नील कमल दल की भाँति श्यामल वर्ण, कुण्डलों से अलंकृत, सिर पर मुकुट, बाँह में केयूर और हृदय में वनमाला से सुशोभित था, देखने के लिये मुनि श्रेष्ठ नारद का एक बार वहाँ आगमन हुआ । स्तुति प्रणाम करने के उपरांत आश्चर्य चकित होकर नारद मुनि ने उनसे कहा—भगवन् ! मैं एक संशय प्रकट कर रहा हूँ, उसे बताने की कृपा करें । पुरुषोत्तम ! माया किसे कहा जाता है । वह किस प्रकार की होती है, उसका रूप क्या है, और कहाँ स्थित है तथा मुझे उस माया का रूप दिखाने की कृपा करें । जिससे चराचर मय यह तीनों लोक संमोहित है तथा ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यंत देव, मनुष्य, समेत वैकुण्ठ और वासुदेव भी मोहित हैं । मुनि के इस प्रकार कहने पर देवाधिदेव जनार्दन भगवान् ने हँसकर कहा—देवर्षे ! आप माया की बातें छोड़ दें । किन्तु सोमपान के द्वारा नारद को मुग्ध कर पुनः उसके लिए प्रेरित किया था । नारद ने पुनः कहा महाराज ! देव ! मुझे माया का दर्शन कराइये और कुछ नहीं चाहता । इस प्रकार नारद के बार-बार कहने पर भगवान् विष्णु ने वहाँ से उठकर पुनः श्वेतद्वीप को प्रस्थान किया ।२-१०। और अंगुली के अग्रभाग पकड़े

सोऽपि द्विजो मुनिश्रेष्ठ संसारादुत्तरिष्यति । इत्येवं संवदन्तौ च जग्मतुर्मार्गमुत्तमम् ।।३८
कान्यकुब्जस्य सामीप्ये सरः श्रेष्ठमपश्यताम् । हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ।।३९
पद्मिनीजलकह्लाररक्तोत्पलसितोत्पलैः । छादितं पद्मिनीपत्त्रैर्मत्स्यैः कूर्मैर्जलोद्भवैः ।।४०
तटै रम्यैर्घनैर्वृक्षैः केतकीखण्डमण्डितम् । केतकीकुसुमामोदैर्लकुचैस्तटमण्डितैः ।।४१
दात्यूहशिखिभारुण्डचकोराद्यैश्च संकुलम् । कुरवैश्चातकै रम्यं केकाकुलनिनादितम् ।।४२
जलकुक्कुटसङ्गीतं हंससारसशोभितम् । जीवंजीवकहारीतचकोरैरुपशोभितम् ।।४३
वशिष्ठस्य मुनेर्नाम्ना विख्यातं श्रीमहोदयम् । अस्मिन्नद्य प्रवेष्टव्यं महाजनविवेकिनाम् ।।४४
स्थातव्यं पुरतस्तेषां तस्मात्स्नानं समाचरेत् । इत्युक्त्वा केशवः पापं सस्नौ प्रागेव तज्जलैः[1] ।।४५
यत्तीर्थलोकं विख्यातं स्नात्वा तीरं समाश्रितः । प्रहरे वासुदेवस्य नारदोऽपि मुदा युतः ।।४६
आचम्य सस्नौ तीर्थेन क्षणात्तीर्थमवाप्य च । यावदुत्तिष्ठते तोयात्स्नात्वा ऋषिरुदारधीः ।।४७
तावत्स्त्रीत्वं समापन्नो नारदः केन वर्ण्यते । यस्यास्तु विस्तृते नेत्रे वक्त्रं चन्द्रोपमं शुभम् ।।४८
स्मरपाशोपमौ कर्णौ कपोलौ कनकोज्ज्वलौ । नासिका तिलसूनेन कामचापोपमे भ्रुवौ ।।४९
दशना हीरकैस्तुल्या विद्रुमाभः शुभाधरः । मयूरस्य कलापेन तुल्यं कचनिबन्धनम् ।।५०

भोजन किया और न विश्राम ही अपितु यहाँ ब्राह्मण के घर आकर विश्राम किया है। मुनिश्रेष्ठ ! इसलिए वह ब्राह्मण श्रेष्ठ इस संसार सागर को पार करेगा। इस प्रकार मार्ग में वार्तालाप करते हुए वे दोनों कान्यकुब्ज (कन्नौज) नगर के समीप सुन्दर एक सरोवर पर पहुँचे जो हंस, कारण्डव (वत्तक), से आच्छादित, और चकोर से सुशोभित था। वह सरोवर कमलिनी, रक्तकमल, नीलकमल, श्वेतकमल और कुमुदिनी के पत्तों से आच्छादित था।३१-४०। उसमें अनेक भाँति की मछलियाँ एवं कछुवे शोभा बढ़ा रहे थे। उस के तट केतकी वृक्षों से सुशोभित हो रहे थे। वहाँ लकुच (बड़हर) के वृक्ष भी उस केतकी के सुगंधों से सुवासित होकर उस स्थल को मनोरम बना रहा था। दात्यूह (कठफोडवा), मयूर, गारुण्ड, एवं चकोर आदि पक्षियों से संयुक्त होकर वह कुरब, चातक (पपीहा) तथा मयूर के मधुर कलरव से निनादित हो रहा था। जलमुर्गी के गान से भूषित एवं हंस सारस, जीवजीव (चकोर) हरिल आदि पक्षियों से वह अत्यन्त सुरम्य दिखाई दे रहा था। इस वशिष्ठ महर्षि के श्री महादेव नामक सरोवर में आज विवेकी एवं महात्माओं के साथ अवश्य स्नान करना चाहिए। इतना कह कर भगवान् केशव देव ने सर्वप्रथम उस सरोवर में स्नान किया। उस लोक प्रख्यात सरोवर के जल में भली भाँति स्नान करके उनके बाहर आने पर नारद ने भी सहर्ष उसमें स्नान करने के लिए इच्छा प्रकट की। उन्होंने उसमें प्रविष्ट पहले आचमन किया और पश्चात् डुबकी लगाई। उदार चेता महर्षि नारद ने उस जल में डुबकी लगाकर पानी के ऊपर हुए कि उसी समय अपने को इस प्रकार स्त्री वेष में देखा जिसके सौन्दर्य का वर्णन कोई नहीं कर सकता, जिसके विशाल नेत्र, चन्द्रमा की भाँति शुभ मुख, काम पाश के समान कान, सुवर्ण की भाँति समुज्जवल कपोल, तिलभूषित नासिका, कामबाण की भाँति भौंहे, हीरे के समान दाँत, विद्रुम (प्रवाल) की भाँति अधरोष्ठ, मयूर पुच्छ की भाँति चित्र विचित्र बँधे केश पाश, शंख के

---

१. तज्जले।

शंखरेखात्रयेणैव कंठदेशो विराजते । माधवीलतया तुल्यौ मञ्जू तस्या भुजौ शुभौ ॥५१
युतौ रक्तोत्पलाभासौ पाणीरक्तनखांगुली । पीनावतुङ्गतनुधृत्कठिनौ कलशोपमौ ॥५२
स्तनावविरलौ स्निग्धौ चक्रवाकयुगोपमौ । स्वल्पकं मध्यदेशं तु मुष्टिग्राह्यमसंशयम् ॥५३
नाभिमंडलगांभीर्यं लावण्यं केन वर्ण्यते । वलित्रयेण विकृता रोमराजिर्विराजिता ॥५४
नयने च पुनस्तस्या मृग्या इव सुशोभने । नितम्बो बिम्बफलको मन्मथायतनं शुभम् ॥५५
रम्भायुग्मोपमावूरू स्मरबाणनिबन्धनौ । विपरीतरताभ्यासखेदभारसहौ दृढौ ॥५६
नवकुन्दलतासारसरलं सनिबन्धनम् । जङ्घायुगं महाराज गूढगुल्फयुगं तथा ॥५७
रक्तांगुलीलतातल्पनखचन्द्रकयाचितम् । चरणारविंदयुगलं सरक्तं सुप्रतिष्ठितम् ॥५८
सैवंविधा तदा नारी सर्वलक्षणपूजिता । बभूव क्षणमात्रेण जगद्व्यामोहकारिणी ॥५९
क्षीरोदमथनोत्तीर्णां लक्ष्मीमन्यामिवोच्छ्रिताम् । दृष्ट्वाप्यदर्शनं प्राप्तो मायया मधुसूदनः ॥६०
सम्प्राप्यते च सा कालसंगराहारिणी[1] यथा । आस्त एकाकिनी मुग्धा कुर्याद्दिगवलोकनम् ॥६१
अथाजगाम तं देशं नाम्ना तालध्वजो नृपः । सह सैन्यैः परिवृतः पुरन्दर इवामरैः ॥६२
गजारूढैर्हयारूढै रथारूढैर्नरोत्तमैः । विमानयानयुग्मस्थैस्तथांतः पुरिकाजनैः ॥६३
ध्वजातपत्रकलिलैरनीकैः परिवारितः । तेन सा सहसा दृष्टा नारी कमललोचना ॥६४

समान तीन रेखाओं से सुशोभित कंठ, माधवीलता की भाँति अत्यन्त कोमल भुजाएँ रक्त कमल की भाँति हथेली एवं उसी भाँति रक्त वर्ण के नख समेत अंगुली, पीन (स्थूल), ऊँचे, कठोर, एवं कलश की भाँति स्तन थे, जो एक में मिले, मनोरम चिकनाहट लिए युगल चकोर की भाँति दिखाई देते थे । उसी भाँति मध्यभाग (कटि) मुट्ठी के अन्दर निःसन्देह आ जाता था ।४१-५३। उसकी नाभि मण्डल की गम्भीरता एवं सौन्दर्य का वर्णन कोई नहीं कर सकता था । उदर में तीन वलि से विभूषित रोम पंक्ति थी और मृगी के समान चञ्चल नेत्र विम्बफल की भाँति नितम्ब सुशोभित हो रहा था । उसी का अवर्णनीय काम मन्दिर, कदली की भाँति उरू थे, जो काम बाण से पूर्ण थे एवं विपरीत रति के भ्रम जनित खेद और उसके भार सहन करने में दृढ़ थे । महाराज ! नवीन कुन्द लतासार की भाँति सरल जंघा गूढ़ गुल्फ, जो रक्त वर्ण की अंगुली लता में विभूषित नख चन्दिका से चर्चित था और रक्त वर्ण के चरण युगल थे । इस प्रकार समस्त लक्षण सम्पन्न स्त्री का वेष क्षण मात्र में उन्हें प्राप्त हुआ, जो संसार को मोहित कर रहा था । उस रूप को देखकर यही मालूम होता था कि क्षीर सागर मंथन करने पर निकली हुई यह दूसरी लक्ष्मी है । देखकर के भी भगवान् अपनी माया द्वारा अन्तर्हित हो गये । पुरुष संगम के लिए निश्चित् स्थान पर आई हुई कामिनी की भाँति वह मुग्धा वहाँ अकेली रह कर चारों ओर देख रही थी । उसी बीच तालध्वज नामक राजा अपने सैनिकों समेत वहाँ आ गये, जो देवों समेत इन्द्र की भाँति सुसज्जित था । उनके साथ घोड़े एवं रथों पर स्थित श्रेष्ठ पुरुष, दो यानों पर अंतःपुर की रानियाँ और ध्वजा एवं आतपत्र युक्त सेनाएँ चल रही थी । राजा ने सहसा उस कमलनयना कामिनी को देखा और देखते ही काम की

---

१. सङ्गमाहारिणी ।

बभूव क्षणमात्रेण कन्दर्पशरपीडितः । केयं कस्य कुतः प्राप्ता किं देवी दाथ मानुषी ॥६५
अदृष्टरूपाप्सरसा काचिद्देवी समागता । अहोरूपं सुरूपाया गोचरे परितः पुमान् ॥६६
मुमूर्षुर्जायते मोहादनुदिग्धहतो यथा । इति संचिन्त्य हृदये राजा तालध्वजोऽन्तिके ॥६७
उवाच नारीं मुग्धां तां शृणु मद्वचनं शुभे । का त्वं कस्य कुतः प्राप्ता देशमेतं शुचिस्मिते ॥६८
इत्युक्ते साश्रु चार्वङ्गी प्राह मां विद्ध्ययोनिजाम् । पित्रा मात्रा विहीनां च तथाद्यापि कुमारिकाम् ॥६९
निराश्रयां विदित्वेनां ततो जातः स्मरार्दितः । आरोप्य हयपृष्ठे तां ततो राजा गतो गृहम् ॥७०
नीत्वा विवाहयामास शास्त्रोक्तविधिना ततः । रेमे प्रासादशृङ्गाग्रे पर्यङ्के सितया तया ॥७१
उद्यानभव्यभूमीषु नदीनां पुलिनेषु च । पर्वतानां नितम्बेषु निर्झरेषु गुहासु च ॥७२
पद्मखण्डेषु फुल्लेषु शोभितेषु सरस्सु च । प्रयागादिषु तीर्थेषु नदीनामाश्रमेषु च ॥७३
दिव्यावसथरम्येषु वेलाकूलेषु पार्थिवः । यावद्द्वादशवर्षाणि एकाहमपि भारत ॥७४
ततस्त्रयोदशे वर्षे तस्या गर्भोऽभवन्महान् । एतस्मिन्गर्भसम्पूर्णे जातं दीर्घमलाबुकम् ॥७५
तद्भेदाहतकुम्भेषु बीजप्रारोहणान्नराः । बभूवुर्धातुशून्या वै दिव्यदेहबलोत्कटाः ॥७६
पञ्चाशत्सङ्ख्यया जाता उपसर्गादिवर्जिताः । आरूढयौवनाः सर्वे सुताः[1] सङ्ग्रामकोविदाः ॥७७
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च बभूवुः सुरसत्तमाः । युयुधुः शरसङ्घातैश्चक्रशूलासिपट्टिशैः ॥७८

व्यथा से व्याकुल हो उठे, अपने मन में तर्क करने लगे कि यह कौन एवं किसकी वल्लभा है, कहाँ से आई है, देवी है या मानुषी ।५४-६५। मालूम होता है कोई अपूर्व रूप वाली अप्सरा आई है। अहो, इस सुन्दरी का स्वरूप कैसा मनमोहक है कि इसे देखते ही अनुदिग्धहत की भाँति मोहित होकर मृतक-सा हो जाता है। इस प्रकार तर्क-वितर्क करने के उपरान्त राजा तालध्वज ने उस के समीप जाकर उस मुग्धा स्त्री से कहा—कल्याणि ! मेरी बात सुनो ! मन्द मुसुकान करने वाली तुम कौन हो, किसकी कामिनी हो, यहाँ कैसे आई हो। इसे सुनकर उस सुन्दरी ने अश्रु पूर्ण नेत्रों से देखती हुई कहा—मैं अयोनिज हूँ, और माता पिता से वञ्चित रहने पर भी मैं अभी तक कुमारी ही हूँ। इसे सुनकर राजा ने उसे निराश्रित जानकर काम पीड़ित हुए उसे घोड़े पर बैठाया और अपने घर को प्रस्थान किया वहाँ पहुँच कर शास्त्र विधान पूर्वक उसका पाणिग्रहण किया। अनन्तर प्रासाद के शिखर पर धवल वस्त्र से विभूषित शय्या पर उसका उपभोग करना आरम्भ किया। वाटिका, सुन्दर स्थान नदियों के तट, पर्वतों की कन्दराओं, झरनों, गुफाओं में विकसित कमलों से विभूषित सरोवरों, प्रयागादि तीर्थों, नदियों या आश्रमों, दिव्य स्थलों एवं समुद्र के तट पर राजा ने उसके साथ पूरे बारह वर्ष तक रमण किया। पश्चात् तेरहवें वर्ष उसे गर्भ रहा। उस गर्भ के पूरे होने पर उसके गर्भ से कुम्हड़े की भाँति एक पिंड निकला, जिसके भीतर अनेक बीज के अंकुर की भाँति मनुष्य थे, जो धातु शून्य, दिव्य देह, एवं अत्यन्त बली थे। उनकी संख्या कुल पचास थी। युवा होने पर वे सभी रण कुशल हुए।६६-७७। और उन्हीं के समान उनके पुत्र पौत्र भी अत्यन्त बुद्धिमान् एवं

---

१. सुराः ।

हयैरन्यैर्गजैरन्यैः क्रोधान्धाः कौरवा इव । पाण्डवैः सह सङ्ग्रामे युयुधुः क्षणमञ्जसा ॥७९
सपदातिगजारोहाः सान्तःपुरधुगेच्छया । विनेशुरब्धिमासाद्य सिन्धूनां प्रवहा इव ॥८०
सासिसबलविस्ताराः सदर्पाः समहोच्छ्रयाः । इन्द्रलोकोपमं सर्वं कुलं नष्टं क्षणं तदा ॥८१
संदृश्य नारदीयैषा विनष्टं स्वकुलं रणे । रुरोद स्नेहसंयुक्तैः रसैः कलुषया गिरा ॥८२
हा दैव हा[1] विधे पाप हा कृतान्त नमस्कृत । दर्शयित्वा विधानं मे पुनर्नेत्रे हृते त्वया ॥८३
इत्युक्त्वा स्वमुरोहस्तैर्जघान भृशदुःखिता । भूमौ मूर्च्छातुरा भूत्वा पुनः प्राप्ता विचेतनम् ॥८४
सोऽपि राजा विषण्णोऽसौ निर्विण्णः शोकसागरे । भूमौ निपतितौ दुःखाद्रुरोद भृशदुःखितः ॥८५
विषण्णो मन्त्रिभिः सार्धं वृद्धशोकेन संयुतः । एतस्मिन्नन्तरे विष्णुराजगाम द्विजैः सह ॥८६
द्विजवेषपरिच्छन्न उपविष्टः सुखासने । ततः पुरस्सरो भूत्वा चक्रे धर्मार्थदर्शनम् ॥८७
किं रोदनेन बहुना युवयोः क्लेशकारिणा । श्रूयतां विष्णुमायैषा स्वप्नदृष्टधनोपमा ॥८८

सर्वश्रेष्ठ पुरुष हुए । पश्चात् कौरवों की भाँति वे सब मदान्ध होकर अपने बाण, चक्र, शूल, तलवार और पट्टिश अस्त्रों से सुसज्जित तथा वाहनों पर बैठकर पाण्डवों के साथ युद्ध करने के लिए रणस्थल में पहुँचे । वहाँ पहुँच कर अत्यन्त क्रुद्ध होकर पाण्डवों से घोर युद्ध करना आरम्भ किया । अनन्तर अपने घोड़े एवं हाथियों पर बैठकर सैनिकों समेत शत्रु दल का मर्दन करते हुए युद्ध के मध्य स्थल में पहुँचे उसी समय चारों ओर से शत्रुओं से घिर जाने पर बढ़े हुए नदी जल के सागर में पहुँच कर विलीन होने की भाँति सब के सब नष्ट हो गये । उस युद्ध में इन्द्र लोक की भाँति उनके अस्त्र बल, दर्प, वाहन सैनिक, आदि समस्त कुल का विनाश हो गया । उस समय उस नगरदीपा (स्त्री) को रण में अपने कुल नाश का समाचार मिल गया, जिससे वह अत्यन्त स्नेह कातर होकर अपनी क्रन्दन वाणी द्वारा विलाप करना आरम्भ किया—हा दैव, हा विधे, पाप हारिन् ! आप की वन्दना यमराज भी सदैव किया करते हैं । आप ने मुझे दोनों नेत्र देकर पुनः उसका अपहरण कर लिया । इतना कह कर अत्यन्त दुःखी होने के कारण अपना सिर पीट लिया, जिसके आघात से मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर जाती थी और चैतन्य होने पर उसी भाँति पुनः सिर पीटती थी । उसके पति देव राजा तालध्वज भी अत्यन्त शोक कातर होकर मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं और चेतना आने पर अपनी स्त्री की भाँति विलाप करते थे । उस समय उनके मंत्रिगण भी उनके शोक से दुःखी होकर राजा को शान्त करने में परिश्रम भ्रान्त हो रहे थे । उसी बीच भगवान् विष्णु ब्राह्मण वेष धारण कर ब्राह्मणों समेत वहाँ राजा के दरबार में पहुँचे मंत्रियों ने उन्हें नमस्कार पूर्वक राज सिंहासन पर बैठाया । तत्पश्चात् उन्होंने राजा और रानी की उस दीन अवस्था का कारण पूँछा । कारण जान लेने के उपरांत ब्राह्मण वेष धारी विष्णु ने उन्हें धर्मार्थ उपदेश प्रदान करना आरम्भ किया ।७८-८८। राजन् ! आप दोनों इतना अधीर होकर रोदन कर रहे हैं जिससे लाभ तो कुछ नहीं प्रत्युत दुःख की अत्यन्त वृद्धि होती है । आप लोग ! मेरी बातों पर ध्यान दें । यह संसार तथा इसके धन एवं परिवार सभी विष्णु की मायाजन्य होने के नाते स्वप्नतुल्य हैं । शोभने ! संसार सागर में

---

१. विषेयाथ ।

शोभने यादृशः शोकः कृतः संसारसागरे । सर्वेषामेव भूतानां परिणामोयमीदृशः ।।८९
पुरन्दरसहस्राणि चक्रवर्तिशतानि च । निर्वापितानि कालेन प्रदीप इव वायुना ।।९०
येऽपि शोषयितुं शक्ताः समुद्रं सग्राहसङ्कुलम् । कुर्युश्च करयुग्मेन चूर्णं मेरुं महीतले ।।९१
ऊद्धर्तुं धरणीसंज्ञां ग्रहीतुं चन्द्रभास्करौ । प्रविष्टास्ते तु कालेन कृतान्तवदनं तदा ।।९२

दुर्गस्त्रिकूटः परिखाःसमुद्रा रक्षांसि योधा धनदाच्च वित्तम् ।
मन्त्रश्च यस्योशनसा प्रणीतः स रावणो दैववशाद्विपन्नः ।।९३
सङ्ग्रामे गजतुरगसमाकुलेऽपि वादादग्नौ वा गतविवरे महोदधौ वा ।
सर्वैर्वा सह वसतामुदीर्णकोपैर्नाभाव्यो कदाचिदेव नाशः ।।९४
पातालमाविशतु यातु सुरेन्द्रलोकमारोहतु क्षितिधराधिपतिं सुमेरुम् ।
मन्त्रौषधिप्रहरणैश्च करोतु रक्षां यद्भावि तद्भवति नाथ विभावितोऽस्मि ।।९५

रोदिति कश्चिदथाश्रुधौताननगुरुतरशोकविह्वलः ।
प्रविकटचरणवानपि नृत्यति कश्चिद्धर्मादिविग्रहः ।।९६
गायति हृदयहारि सुखनिर्भरमायतविस्तृताऽधरोऽधिकाम् ।
सार एष रङ्गोदरगतनटपटहाकाम एवायम् ।।९७

इत्येवं धर्ममुद्दिश्य विष्णुः संसारचेष्टितम् । तूष्णीं बभूवानुपदम् ततस्ते द्विजपुङ्गवाः ।।९८

पड़कर इस भाँति का शोक करना केवल तुम्हारे ही लिए नहीं है किन्तु संसार में आये हुए सभी प्राणियों की एक दिन यही अवस्था होती है, यहाँ तक इस सबल काल ने अग्नि की भाँति सहस्रों इन्द्र और सैकड़ों चक्रवर्ती राजाओं को समूल नष्ट किया है । ग्राह आदि जीवों समेत इस समुद्र के शोषण करने में समर्थ अपने दोनों हाथों से इस भूपृष्ठ पर मेरु पर्वत को चूर्ण करनेवाले, पृथ्वी के उद्धार एवं चन्द्र सूर्य को पकड़ लेने वाले प्राणी भी कालकवलित होकर कृतान्त के मुख में पहुँच गये । दैववश वह रावण भी काल कवलित हुआ, जिसका नगर त्रिकूट पर्वत का दुर्ग, समुद्र खांई, राक्षस गण योद्धा थे, कुबेर का धन एवं जो शुक्राचार्य की भाँति मंत्र प्रणेता था । हाथी, घोड़ों के संकुल से पूर्ण संग्राम स्थल, अग्नि, (पाताल) शिखर, एवं समुद्र कहीं भी छिप जाये अथवा समस्त जनों के सामने ही सदैव रहे और चाहे कि (काल का) उस प्रचण्ड कोप में पड़कर नाश न हो, यह असम्भव है । स्वामिन् ! पाताल, देव लोक, अथवा पर्वत राज सुमेरु के शिखर पर आरोहण या मंत्रों औषधियों द्वारा रक्षा करता रहे किन्तु होनहार होकर ही रहता है, यह मुझे भली भाँति निश्चित है । इस संसार में महान् शोक से व्यथित होकर कोई इस प्रकार रोदन कर रहा है, जिससे उसका मुख अश्रु धाराओं से अत्यन्त प्रक्षालित की भाँति हो गया है, कोई धर्मादि मूर्ति विकट चरण होने पर भी नृत्य कर रहा है और कोई अत्यन्त प्रसन्न चित्त से सुखानुभव प्रकट करते हुए मुख द्वारा संगीत के रागों को प्रकट करते हुए गायन कर रहा है । इसलिए इसका सार यह है कि रंग भूमि में नट के वाद्यों द्वारा आकर्षित करके उसमे तन्मय रखने की भाँति इस संसार को जानना चाहिए। इस प्रकार सांसारिक धर्मोपदेश करके ब्राह्मण वेषधारी भगवान् विष्णु चुप हो गये।८९-९८।

उत्तिष्ठ स्नाहि पुत्राणां प्रकुरुष्वौर्ध्वदेहिकम् । मा शोकं विष्णुमायैषा विष्णुना निर्मिता स्वयम् ॥९९
इत्युक्ता चारुसर्वाङ्गी स बभूवाचलः पुमान् । स एष सदृशाकारो नारदस्तत्क्षणेऽभवत् ॥१००
सोऽपि राजा ददर्शाथ तं समन्त्रिपुरोहितः । सान्तः पुरमिदं सर्वमिन्द्रजालोपमं क्षणात् ॥१०१
नारदं मुनिशार्दूलं जटाभारभयानकम् । गौरवर्णं ज्वलन्तं च ब्राह्म्या लक्ष्म्या विराजितम् ॥१०२
शिखाकमण्डलुधरम् वीणदण्डकरं तथा । ब्रह्मसूत्रेण शुभ्रेण कौपीनाच्छादनेन च ॥
पादुकाभ्यां स्थितं तीरे सरसो ब्राह्मणासने ॥१०३
सम्प्रगृह्य कराग्रेण जगामादर्शनम् हरिः । अम्बरेण सुरैः सार्द्धं तस्माद्देशाद्युधिष्ठिर ॥१०४
श्वेतद्वीपमथासाद्य प्राह देवो मुनिं नृप । देवर्षे यत्त्वया पृष्टं पूर्वं मायाकथाम् प्रति ॥१०५
माया ययेदृशी माया यत्स्वरूपा यदात्मिका । सा ते माया मया ब्रह्मन्वैष्णवी सम्प्रदर्शिता ॥१०६
एवमुक्त्वा मुनिवरं देवदेवो जनार्दनः । बभूवान्तर्हितस्सद्यो देवर्षेस्तस्य पश्यतः ॥१०७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
मायादर्शनं नाम तृतीयोऽध्यायः।३

अथ चतुर्थोऽध्यायः

संसारदोषवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

देवत्वं मानुषत्वं च तिर्यक्त्वं केन कर्मणा । प्राप्नोति पुरुषः केन गर्भवासं सुदारुणम् ॥१

द्विजपुंगव ! पश्चात् उन सब के इस भाँति कहने पर कि उठो, स्नान पूर्वक पुत्रों की अन्त्येष्टि क्रिया करो, शोक करना व्यर्थ है, क्योंकि यह सब भगवान् विष्णु की माया है, जिसे विष्णु ने स्वयं उत्पन्न किया है। वह सर्वाङ्ग सुन्दरी उसी समय अचल पुरुष के रूप में परिणत होकर नारद के वेष में दिखाई देने लगी। अनन्तर मंत्रिगण, एवं पुरोहित समेत राजा और उनके अन्तः पुर की समस्त रानियों ने इन्द्रजाल की भाँति देखा कि—अपने भयानक जटाभार से भूषित प्रदीप्त गौरवर्ण, व्रह्म लक्ष्मी से सुशोभित तथा शिखा, कमण्डलु, वीणा, व्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत), कौपीन, एवं आच्छादन वस्त्र धारण किये मुनिश्रेष्ठ नारद उपस्थित हैं। उस सरोवर के तट पर अपने चरण पादुका रखे ब्राह्मण आसन पर उन नारद की अंगुली ग्रहण किये विष्णु भी स्थित हैं। युधिष्ठिर ! देवों समेत आकाश मार्ग से पुनः श्वेत द्वीप में पहुँच कर देवाधिदेव जनार्दन भगवान् ने नारद मुनि से कहा—देवर्षे ! आप ने पहले माया के विषय में जो प्रश्न किया था उसके उत्तर में मैंने आपको उस वैष्णवी माया के लक्षण, एवं स्वरूप दिखा दिया।९९-१०७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-सम्वाद में मायादर्शन
नामक तीसरा अध्याय समाप्त।३।

अध्याय ४

संसारदोष नामक वर्णन

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! देव, मनुष्य एवं पक्षियों आदि की योनि किस कर्म द्वारा पुरुष

गर्भस्थश्च किमश्नाति कथमुत्पद्यते पुनः । दत्तोत्थानादिकान्दोषान्कथं तरति दुस्तरान्[1] ॥२
बालभावे कथं पुष्टिः स्याद्युवा केन कर्मणा । कुलीनः केन भवति सुरूपः सुधनः कथम् ॥३
कथं दारानवाप्नोति गृहं सर्वगुणैर्युतम् । पण्डितः पुत्रवान्स्त्यागी स्यादामयविवर्जितः ॥४
कथं सुखेन म्रियते कथम् भुङ्क्ते शुभाशुभम् । सर्वमेवामलमते गहनं प्रतिभाति मे ॥५

श्रीकृष्ण उवाच

शुभैर्देवत्वमाप्नोति मिश्रैर्मानुषतां व्रजेत् । अशुभैः कर्मभिर्जन्तुस्तिर्यग्योनिषु जायते ॥६
प्रमाणं श्रुतिरेवात्र धर्माधर्मविनिश्चये । पापं पापेन भवति पुण्यं पुण्येन कर्मणा ॥७
ऋतुकाले तदा भुक्तं निर्दोषं येन संस्थितम् । तदा तद्वायुना स्पृष्टं स्त्रीरक्तेनैकतां व्रजेत् ॥८
विसर्गकाले शुक्रस्य जीवः करणसंयुतः । भृत्यः प्रविशते योनिं कर्मभिः स्वैर्नियोजितः ॥९
तच्छुक्ररक्तमेकस्थमेकाहात्कललं भवेत् । पञ्चरात्रेण कललं बुद्बुदाकारतां व्रजेत् ॥१०
बुद्बुदं सप्तरात्रेण मांसपेशी भवेत्ततः । द्विसप्ताहाद्भवेत्पेशी रक्तमांसदृढान्वितः ॥११
बीजस्येवाङ्कुराः पेश्याः पञ्चविंशतिरात्रतः । भवन्ति मासमात्रेण पञ्चधा जायते पुनः ॥१२
ग्रीवा शिरश्च स्कन्धश्च पृष्ठवंशस्तथोदरम्[2] । मासद्वयेन सर्वाणि क्रमशः सम्भवन्ति च ॥१३
त्रिभिर्मासैः प्रजायन्ते सद्वव्याङ्कुरसन्धयः । मासैश्चतुर्भिरङ्गुल्यः प्रजायन्ते यथाक्रमम् ॥१४

प्राप्त करता है, और अत्यन्त दारुण गर्भवास में क्या खाता है और पुनः गर्भस्थ रहकर कैसे उत्पन्न होता है, दाँत आदि निकलने के उस दुस्तर दुःखों को किस भाँति सहन करता है, बचपन में पुष्टि तथा किस कर्म द्वारा युवा की प्राप्ति, एवं किस कर्म से कुलीन, सौन्दर्य, अत्यन्त सुधन, समस्त गुणों एवं स्त्रियों की प्राप्ति होती है और कैसे वह पंडित, पुत्रवान्, त्यागी, रोगहीन, और सुख पूर्वक शरीर त्याग करता है एवं शुभाशुभ कर्मों के भोग करता है। हे स्वच्छमनवाले! मुझे यह सब अत्यन्त गहन मालूम हो रहा है। १-५

श्रीकृष्ण जी बोले—शुभ कर्म से देव, (शुभाशुभ के) सम्मिश्रण से मनुष्य, और अशुभ कर्मों द्वारा (जीव) पक्षी आदि योनि प्राप्त करता है और उस धर्माधर्म के निश्चय करने में केवल श्रुति ही एक मात्र प्रमाण है। जिसमें बताया गया है कि पाप कर्म द्वारा पाप और पुण्य कर्मों द्वारा पुण्य की प्राप्ति होती है। यह निर्दोष जीव कर्मवश (स्त्री के) ऋतु काल में वायु द्वारा स्त्री के उस रक्त के साथ मिलकर एक हो जाता है। वीर्य के पतन समय में साधन समेत यह जीव भृत्य की भाँति अपने किये कर्मों द्वारा निर्दिष्ट योनि में पहुँचता है। उस समय गर्भ में शुक्र शोणित (पुरुष स्त्री के वीर्य रज) एक में मिलकर एक दिन कलल (कल-कल) करता हुआ पकता है। पाँच रात्रों तक वहीं बुद्बुद् करता है, सात दिन के अनन्तर वही मांस पेशी बनना प्रारम्भ होता है। दो सप्ताह तक वह रक्त मांस की अत्यन्त दृढ़ मांस पेशी बन जाती है, जो बीज का ही अंकुर रूप रहती है। पच्चीसवीं रात्रि से उसमें पाँच भाग—ग्रीवा, शिर, कन्धा, पीठ वंश (रीढ़) और उदर रूप होना प्रारम्भ होता है। इस प्रकार क्रमशः दो मास में उपरोक्त पूर्ण होते हैं। तीसरे मास में संधियों के अंकुर चौथे मास में क्रमशः अंगुलियाँ, पाँचवें मास में मुख, नासिका, दोनों कान,

---

१. दन्तोत्थानादिकान्। २. अंसौ पृष्ठं तथोदरम्।

मुखं नासा च कर्णौ च जायन्ते पञ्चमासकैः । दन्तपंक्तिस्तथा गुह्यं जायन्ते च नखाः पुनः ॥१५
कर्णौ च रन्ध्रसहितौ षण्मासाभ्यन्तरेण तु । पायुर्मेढ्रमुपस्थश्च नाभिश्चाप्युपजायते ॥१६
सन्ध्यो ये च गात्रेषु मासैर्जायन्ति सप्तभिः । अङ्गप्रत्यङ्गसम्पूर्णः शिरः केशसमन्वितः ॥१७
विभक्तावयवः पुष्टः पुनर्मासाऽष्टकेन च । पञ्चात्मकसमायुक्तः परिपक्वः स तिष्ठति ॥१८
मातुराहारवीर्येण षड्विधेन स तिष्ठति । रसेन प्रत्यहं बालो वर्धते भरतर्षभ ॥१९
ततोऽहं सम्प्रवक्ष्यामि यथाश्रुतमरिन्दम । नाभिसूत्रनिबन्धेन वर्द्धते स दिनेदिने ॥२०
ततः स्मृतिं लभेज्जीवः सम्पूर्णेऽस्मिञ्छरीरके । सुखं दुःखं विजानाति निद्रास्वप्नं पुरा कृतम् ॥२१
मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः । नानायोनिसहस्राणि मया दृष्टानि तानि वै ॥२२
अधुना जातमात्रोऽहं प्राप्तसंस्कार एव च । एतच्छ्रेयः[1] करिष्यामि ये न गर्भे न संश्रयः ॥२३
गर्भस्थश्चिन्तये देवमहं गर्भाद्विनिःसृतः । अध्येष्ये चतुरो वेदान्संसारविनिवर्तकान् ॥२४
एवं स गर्भदुःखेन महतापरिपीडितः । जीवः कर्मवशादास्ते मोक्षोपायं विचिन्तयन् ॥२५
यथा गिरिवराक्रान्तः कश्चिद्दुःखेन तिष्ठति । तथा जरायुणा देही दुःखे तिष्ठति चेष्टितः ॥२६
पतितः सागरे यद्वद्दुःखैरास्ते समाकुलः । गर्भोदकेन सिक्तांगस्तथास्ते व्याकुलः पुमान् ॥२७
लोहकुम्भे यथा न्यस्तः पच्यते कश्चिदग्निना । तथा स पच्यते जन्तुर्गर्भस्थः पीडितोदरः ॥२८

छठें मास में दाँतों की पंक्तियाँ (मसूढ़ा) गुह्यभाग, नख, कान के छिद्र; सातवें मास में स्नायु, अण्ड, लिंग, नाभि और शरीर की संधियाँ (जोडवी की गाँठे) और आठवें मास में अंगप्रत्यंग की पूर्ति समेत शिर के केश एवं पृथक्-पृथक् अंगों की पुष्टि होती है । भरतर्षभ ! उस नवें मांस में वह पूर्ण इन्द्रियों समेत परिपक्व होकर माता के आहार वीर्य द्वारा जो छह रसों से बनता है, उसी गर्भ में बढ़ता रहता है । अरिन्दम ! जिस प्रकार मैंने सुना है, उसी भाँति इसकी व्याख्या कर रहा हूँ ! वह जीव अपनी शरीर के नाभि सूत्र द्वारा प्रतिदिन बढ़ता हुआ पूर्व जन्म की बातों का स्मरण करता है, क्योंकि उस समय उसकी देह सभी प्रकार से तैयार रहती है । वह पहले किये हुए सुख, दुख, स्वप्न को भली भाँति जानता है । उसे उसी गर्भ में इस प्रकार का ज्ञान होता है कि पहले मैं कहाँ उत्पन्न हुआ और कैसे मृतक हुआ तथा उत्पन्न होकर पुनः मृतक हूँगा ! इस भाँति मैंने सहस्रों योनियों में भ्रमण करते इस समय यहाँ इस गर्भ में अवस्थित हूँ । अब की बार उत्पन्न होते ही संस्कार करके उसभेद कर्म को करूँगा, जिससे पुनः इस गर्भ पिण्ड में न आना पड़े अभी गर्भस्थ होने के नाते मैं केवल इस प्रकार का विचार कर रहा हूँ किन्तु उत्पन्न होने पर चारों वेदों का अध्ययन करूँगा जिससे मोक्ष की प्राप्ति हो जाये ।६-२५। इस प्रकार वह जीव कर्मवश गर्भ दुःख से अत्यन्त पीड़ित होकर अपने मोक्ष होने के उपाय सदैव सोचता रहता है, क्योंकि जिस प्रकार महान् पर्वत के भार से दबकर कोई व्यथित होता है उसी भाँति गर्भ पीड़ा से यह जीव दुःखी होता है । सागर में गिर जाने से जिस प्रकार दुःखी एवं व्याकुल होता है, उसी भाँति जीव गर्भ के जल से सिक्त होने पर वह दुःखी होता है । लोहे के घड़े में रहकर अग्नि द्वारा पकने से पीड़ित होने की भाँति यह जीव उदर गर्भ में रहकर पकने की पीड़ा का

---

१. तत्तच्छ्रेयः ।

सूचीभिरग्निवर्णाभिर्विभिन्नस्य निरन्तरम् । यः दुःखमुपजायेत तद्गर्भेऽष्टगुणं भवेत् ।।२९
गर्भवासात्परो वासः कष्टो नैवास्ति कुत्रचित् । देहिनां दुःखवद्राजन्सुघोरो ह्यतिसङ्कटः ।।३०
इत्येतद्गर्भदुःखं हि प्राणिनां परिकीर्तितम् । चरस्थिराणां सर्वेषामात्मगर्भानुरूपतः ।।३१
गर्भात्कोटिगुणं दुःखं योनियन्त्रप्रपीडनात् । समूर्च्छितस्य जायेत जायमानस्य देहिनः ।।३२
शरवत्पीडयमानस्य यन्त्रेणैव समन्ततः । शिरसि ताडयमानस्य पापमुद्गरकेण च ।।३३
गर्भान्निष्क्रम्यमाणस्य प्रबलैःसूतिमारुतैः । जायते सुमहद्दुःखं परित्राणमविन्दतः ।।३४
यन्त्रेण पीडिता यद्वन्निःसाराः स्युस्तिलेक्षवः । तथा शरीरं निःसारं योनियन्त्रप्रपीडितम् ।।३५
अस्थिमज्जात्वचामांसस्नायुबन्धेन[1] यन्त्रितम् । रक्तमान्समृदः युक्तं विण्मूत्रद्रवलेपनम् ।।३६
केशलोमतृणाच्छन्नं रोगायतनमातुरम् । वदैनकमहद्द्वारं दन्तोष्ठकदिभूषितम्[2] ।।३७
ओष्ठद्वयकपाटं च दन्तजिह्वार्गलान्वितम् । नाडीस्वेदप्रवाहं च कफपित्तपरिप्लुतम् ।।३८
जराशोकसमाविष्टं कालचक्रानले स्थितम् । कामक्रोधसमाक्रान्तं व्यसनैश्चोपमर्दितम् ।।३९
भोगतृष्णातुरं मूढं रागद्वेषवशानुगम् । संवर्तिताङ्गप्रत्यङ्गं जरायुपरिवेष्टितम् ।।४०
सङ्कटेनाविविक्तन योनिद्वारेण निर्गतम् । विण्मूत्ररक्तसिक्ताङ्गं पत्केशाच्च समुद्भवम् ।।४१
इति देहगृहं प्रोक्तं नित्यस्यानित्यमात्मनः । अविशुद्धं विशुद्धस्य कर्मबन्धविनिर्मितम् ।।४२

अनुभव करता है । अग्नि के समान प्रज्वलित सूत्रियों (सुइयों) द्वारा अंग छेदन होने से उससे आठ गुना दुःख गर्भ में जीव को प्राप्त होता है । राजन् ! गर्भवास के समान घोरवास एवं उसके समान कष्ट इस जीव को कहीं नहीं होता है क्योंकि वह गर्भ घोर अत्यन्त संकटों से पूर्ण रहता है । इस प्रकार मैंने गर्भ दुःख का वर्णन तुम्हें सुना दिया । इसी भाँति अपने गर्भ दुःख के अनुरूप चर अचर के उत्पन्न होने को भी समझना चाहिए । और गर्भ दुःख से कोटि गुना दुःख योनि यंत्र से निकलते समय होता है । उत्पन्न होते समय यह जीव अत्यन्त दुःख के कारण मूर्च्छित रहता है। उस समय वाणों के आघात एवं मंत्रों द्वारा पीड़ित होने से सर्वाङ्ग की पीड़ा उसे होती है । उसी बीच पाप मुद् गर के आघात उसके शिर में होते हैं और गर्भ से निकलते समय वायु के अनेकों आघातों के सहन पूर्वक वह अत्यन्त दुख का अनुभव करता है, जहाँ कोई सहायक नहीं रहता है। जिस प्रकार यंत्र (कोल्हू) में तिल के पीड़ित होने पर उसकी खली निस्तत्व होकर निकलती है, उसी भाँति योनि यंत्र से अत्यन्त पीड़ित होकर सारहीन यह शरीर निकलता है। उस समय उस देह में अस्थि, मज्जा, त्वचा, मास, स्नायु से आबद्ध, रक्त मांस समेत विष्ठा और मूत्र से लिप्त रहता है तथा केश, लोम, से आच्छन्न रोग मंदिर उसमें विभूषित है । उसके दोनों ओष्ठ कपाट (किवाड) दाँत, जिह्वा, अर्गला (जंजीर), नाडियों में स्वेद का प्रवाह, कफ, पित्त, युक्त, जरा शोक समेत काल चक्ररूपी अनल में स्थित रहता है । काम, क्रोध, एवं व्यसनों से आक्रान्त, भोग, तृष्णा से व्याकुल, राग, द्वेष के वशीभूत और अंग प्रत्यंग जरायु से आवेष्टित एवं अनेक गुप्त संकटों से घिर कर योनि के द्वार से निकलता है, जो विष्ठा, मूत्र, रक्त श्वेत अंग चरण केश से युक्त होता है ।२६-४१। इस भाँति मैं इस नित्य जीवात्मा के उस अशुद्ध देह तथा उसकी प्राप्ति का वर्णन कर दिया जो उस विशुद्ध जीवात्मा का यह

१. तुलास्तम्भम् । २. गवाक्षाष्टकभूषितम् ।

शुक्रशोणितसंयोगाद्देहः सञ्जायते यतः । नित्यविण्मूत्रपूर्णश्च तेनायमशुचिः स्मृतः ।।४३
यथान्तर्विष्ठया पूर्णः शुचिः स्यान्न बहिर्घटः । यत्नतः शोध्यमानोऽपि देहोऽयमशुचिस्तथा ।।४४
सम्प्राप्यात्र पवित्राणि पञ्चगव्यहवींषि च । अशुचित्वं क्षणाच्चापि किमन्यद्वस्तुबिंदवः ।।४५
देहः संशोध्यमानोऽपि पञ्चगव्यकुशाम्बुभिः । घृष्यमाण इवाङ्गारो निर्मलत्वं न गच्छति ।।४६
स्रोतांसि यस्य सततं प्रवहन्ति गिरेरिव । कफमूत्रपुरीषाद्यैः स देहः शुद्ध्यते कथम् ।।४७
सर्वाशुचिनिधानस्य शरीरस्य न विद्यते । शुचिरेकः प्रदेशोऽपि विट्पूर्णः स्यन्दते किल ।।४८
कायः सुगन्धधूपाद्यैर्यत्नेनापि तु संस्कृतः । न जहाति स्वकं भावं श्वपुच्छमिव नामितम् ।।४९
यथा जात्यैव कृष्णो[1] हि न शुक्लः स्यादुपायतः । संशोध्यमानाऽपि तथा भवेन्मूर्तिर्न निर्मला ।।५०
जिघ्रन्नपि स्वदुर्गंधं पश्यन्नपि मलं स्वकम् । न विरज्जति लोकोऽयं पीडयन्नपि नासिकाम् ।।५१
अहो मोहस्य माहात्म्यं येन व्यामोहितं जगत् । जिघ्नन्पश्यन्स्वकं दोषं कायस्य न विरज्जते ।।५२
एवमेतच्छरीरं हि निसर्गादशुचि ध्रुवम्[2] । त्वङ्मात्रसारं निःसारं कदलीसारसन्निभम् ।।५३
गर्भस्थस्य स्मृतिर्यासीत्सा जातस्य प्रणश्यति । संमूर्च्छितस्य दुःखेन योनियन्त्रप्रपीडनात् ।।५४
बाह्येन वायुना चास्य मोहसंज्ञेन देहिनः। स्पृष्टमात्रेण घोरेण ज्वरः समुपजायते ।।५५

अत्यन्त अशुद्ध कर्म बंधन रूप है । शुक्र शोणित के संयोग द्वारा यह देह उत्पन्न होती है जो नित्य विष्ठा, मूत्र, से पूर्ण रहने के नाते नितान्त अशुद्ध है जिस प्रकार पट के भीतर विष्ठा पूर्ण करके अनेक बार उपायों द्वारा पवित्र करने पर भी वह पवित्र नहीं होता है उसी भाँति यह अशुद्ध शरीर फलतः संशोधन करने पर भी शुद्ध नहीं होती है । गाय के दूध, घी, दही, मूत्र और गोबर मिलकर पंचगव्य होता है, उस पंचगव्य द्वारा यह शरीर क्षण मात्र के लिए पवित्र होती है । क्योंकि उन पाँच वस्तुओं में कितना सामर्थ्य हो सकता है । कोयले घिसने पर निर्मल न होने की भाँति यह शरीर पंचगव्य कुशाओं द्वारा संशोधन करने पर भी निर्मल नहीं होती है । जिस शरीर के श्रोत्र (कान) इन्द्रिय पर्वत झरने की भाँति सदैव प्रवाहित रहती है, कफ, मूत्र एवं पुरीषादि युक्त वह देह शुद्ध कैसे हो सकती है । अपवित्रता के विधान रूप इस शरीर का कोई भी अंग विष्ठा पूर्ण होने के नाते पवित्र नहीं है । सुगन्धों एवं धूपों से धूपित करने पर यह शरीर श्वान के नैमित पूंछ की भाँति अपना स्वभाव नहीं छोड़ सकती है । जिस प्रकार काली कमरी अनेकों उपाय द्वारा शुक्ल वर्ण की नहीं हो सकती है, उसी भाँति संशोधन करने पर भी यह शरीर पवित्र नहीं हो सकती है। अहो आश्चर्य की बात है कि अपने दुर्गन्ध के आ घ्राण एवं अपने मल को देखते हुए भी यह जीवात्मा विरागी नहीं होता है । यह सारा संसार इस प्रकार मोहित हुआ है कि उपरोक्त विषयों के आ घ्राणादि दोष इस शरीर के देखते हुए भी इससे विरागी नहीं होता है । इस भाँति यह शरीर स्वभावतः अत्यन्त अपवित्र है, जो निस्तत्व कदली की भाँति केवल त्वचा मात्र सार से युक्त रहती है । गर्भ में स्थित रहने पर जिन पक्षों का भली भाँति स्मरण होता है उत्पन्न होने पर वे स्मरण नष्ट हो जाते हैं क्योंकि योनि यंत्र से पीड़ित होने के नाते वह अत्यन्त दुःख से मूर्च्छित रहता है।४२-५४। बाहर होने पर मोह संज्ञक वायु के स्पर्श होने

---

१. कृष्णोर्णा न शुक्ला स्यादुपायतः । २. विदुः ।

तेन ज्वरेण महता महामोहः प्रजायते । संमूढस्य स्मृतिभ्रंशः शीघ्रं सञ्जायते पुनः ।।
स्मृतिभ्रंशात्तु तस्येह पूर्वकर्मवशेन च । रतिः सञ्जायते तूर्णं जन्तोस्तत्रैव जन्मनि ।।
रक्तो मूढस्य लोकोऽयमकार्ये सम्प्रवर्तते । न चात्मानं विजानाति न परं विन्दते[1] च सः ।।
न श्रूयते परंश्रेयः सति चक्षुषि नेक्षते । समे पथि शनैर्गच्छन्स्खलतीव पदे पदे ।।
सत्यां बुद्धौ न जानाति बोध्यमानो बुधैरपि । संसारे क्लिश्यते तेन रागलोभवशानुगः ।।
गर्भस्मृतेरभावेन शास्त्रमुक्तं महर्षिभिः । तद्दुःखमथनार्थाय स्वर्गमोक्षप्रसादकम् ।।
ये सन्त्यस्मिन्परे ज्ञाने सर्वकामार्थसाधके । न कुर्वंत्यात्मनः श्रेयस्तदत्र महदद्भुतम् ।।
अव्यक्तेन्द्रियवृत्तित्वाद्बाल्ये दुःखं महत्पुनः । इच्छन्नपि न शक्नोति कर्तुं वक्तुं च सत्क्रियाम् ।।
दन्तोत्थाने महद्दुःखं मौलेन व्याधिना तथा । बालरोगैश्च विविधैः पीडा बालग्रहैरपि ।।
तृड्बुभुक्षापरीतांगः क्वश्चित्तिष्ठति[2] रारटन् । विण्मूत्रभक्षणमपि मोहाद्बालः समाचरेत् ।।
कौमारे कर्णवेधेन मातापित्रोश्च ताडनात् । अक्षराध्ययनात्पुंसां दुःखं स्याद्गुरुशासनात् ।।
प्रसन्नेन्द्रियवृत्तिश्च कामरागप्रपीडनात् । रोगोद्धतस्य सततं कुतः सौख्यं च यौवने ।।

पर उसे घोर ज्वर उत्पन्न हो जाता है जिसके कारण उसे महामोह उत्पन्न होता है और उस मूढ
समस्त स्मृतियाँ शीघ्र विनष्ट हो जाती हैं । पूर्व जन्म के कर्मों द्वारा उसकी स्मृति के नाश पूर्वक उस उ
की उसी योनि के जन्म में अत्यन्त अनुराग हो जाता है । पुनः कर्म करने लगता है । उस समय यह न
अपने की जानकारी रखता है और न उस पर ब्रह्म की ही । कहने पर भी अत्यन्त हित की बात न
सुनता है, आखें रहने पर देखता नहीं । उसी प्रकार समतल पर चलते हुए भी मार्ग में पग पग पर गि
करता है । बुद्धि रहते हुए भी विद्वानों की बातें नहीं जानता है । अनुराग एवं लोभ के अधीन होकर व
संसार में अत्यन्त दुःखों का अनुभव करता रहता है । गर्भ की बातों के स्मरण यद्यपि उस समय नहीं र
किन्तु उस दुःख के शमनार्थ महर्षियों ने शास्त्रों के निर्माण किये हैं, जो स्वर्ग एवं मोक्ष के साधक हैं ।
लोक में यह एक कितने आश्चर्य की बात है कि उत्तम ज्ञान एवं उसके साधक (शास्त्र) के रहने पर
मनुष्य आत्मकल्याण नहीं करता है । शिशु अवस्था में इन्द्रियों की वृत्तियाँ जागरुक न होने के का
अत्यन्त इच्छा करते हुए भी किसी सत्क्रिया को सुसम्पन्न करना एवं कुछ कहना उस समय उसके साम
की बात नहीं रहती है, इसलिए उस अवस्था में जीव को महान दुःख का अनुभव होता है । दाँतो
निकलते समय भी उसे मसूड़ों की पीड़ा से अत्यन्त दुखी रहना पड़ता है । अनेक भाँति के बाल रोग
बाल ग्रह जनित पीडाओं के अनुभवपूर्वक वह क्षुधा और प्यास से व्यथित होकर एक भाँति का रटन क
हुए रोदन करता है । बच्चे मोहवश विष्ठा मूत्र के भक्षण भी कर लेते हैं ।५५-६५। कुमारावस्था में कर्ण
(कनछेदन), (उद्दण्डता करने पर) माता पिता और अक्षरों के अध्ययन करते समय गुरु के शासन द्व
ताडना मिलती है । उसी प्रकार यौवन (युवा) अवस्था में इन्द्रियों के प्रसन्न होने के नाते उनकी वृ
परतन्त्र रहती हैं, जिससे काम में अत्यन्त अनुराग उत्पन्न होकर उसे व्याकुल किया करता है और अत्य

---

१. न च देवताम् । २. क्वचित् ।

ईर्ष्यया च महद्दुःखं मोहाद्रक्तस्य जायते । नेत्रस्य कुपितस्यैव रोगो दुःखाय केवलम् ॥६८
न रात्रौ विन्दते निद्रां कोपाग्निपरिपीडितः । दिवा वापि कुतः सौख्यमर्थोपार्जनचिन्तया ॥६९
स्त्रीष्वायासितदेहस्य ये पुंसः शुक्रबिंदवः । न ते सुखाय मन्तव्याः स्वेदजा इव बिंदवः ॥७०
कृमिभिस्तुद्यमानस्य कुष्ठिनः कामिनस्तथा । कण्डूयनाग्नितापेन यद्भवेत्स्त्रीषु तद्धि तत् ॥७१
यादृशं विन्दते सौख्यं गण्डान्वयविनिर्गमे । तादृशं स्त्रीषु मन्तव्यं नाधिकं तासु विद्यते ॥७२
गण्डस्य वेदना यद्वत्स्फुटितस्य निवर्तते । तद्वत्स्त्रीष्वपि मन्तव्यं न सौख्यं परमार्थतः ॥७३
विण्मूत्रस्य समुत्सर्गात्सुखं भवति यादृशम्। तादृशं तेषु विज्ञेयं मूढैः कल्पितमन्यथा ॥७४
नारीष्वशुचिभूतासु सर्वदोषाश्रयासु च । नाणुमात्रकमप्येवं सुखमस्ति विचारतः ॥७५
सन्मानमपमानेन वियोगेन सुसङ्गमः । यौवनं जरया ग्रस्तं किं सौख्यमनुपद्रवम् ॥७६
वलीपलितखालित्यैः शिथिलीकृतविग्रहम् । सर्वक्रियास्वशक्तं च जरया जर्जरीकृतम् ॥७७
स्त्रीपुंसयोर्नवं रूपं तदान्योन्यं प्रियं पुरा । तदेव जरया ग्रस्तमुभयोरपि न प्रियम् ॥७८
अपूर्ववत्स्वमात्मानं जरया परिवर्तितः । यः पश्यन्नपि रज्येत कोऽन्यस्तस्मादचेतनः ॥७९

भोगी होने से प्रचण्ड रोगग्रस्त होना पड़ता है, अतः युवावस्था में सुख का लेश भी मिलना कठिन हो जाता है। अनुरागी प्राणी को ईर्ष्या के कारण भी कठिन दुःखों का अनुभव करना पड़ता है। इसलिए क्रुद्ध प्राणी में अनुराग एक मात्र दुख का कारण होता है। क्योंकि क्रोधाग्नि से दग्ध होने पर उसे रात्रि में नींद नहीं आती है। अर्थोपार्जन की चिन्ताओं से व्याकुल होने पर दिन में भी वह सुख से वञ्चित रह जाता है। स्त्री में अत्यासक्त रहकर उसके साथ उपभोग करने में जो वीर्य के बिंदु गिरते हैं उन्हें भी स्वेद विन्दुओं की भाँति सुखकर नहीं जानना चाहिए। कुष्ठ के रोगी को कीडों के काटने पर कंडूपर (खुजलाने) अग्निताप द्वारा शांति मिलने की भाँति ही पुरुषों को भी (शुभ्र कीटाणुओं) कीड़ो के काटने पर स्त्रियों के उपभोग में शुक्र विन्दुओं के पतन होने पर वह कण्डूयन शांत हो जाता है। मुहासे आदि छोटी फुन्सियों के बह जाने पर जिस प्रकार के सुख की प्राप्ति होती है स्त्रियों में रमण करने पर भी उतने ही सुख की प्राप्ति होती है अधिक नहीं। फोड़े के फूट जाने पर जिस प्रकार उसकी वेदना नष्ट हो जाती है उसी प्रकार स्त्रियों में रमण द्वारा कामवेदना ही शांति होती है अन्य कोई परमार्थ सुख की प्राप्ति नहीं है। विष्ठा, मूत्र के परित्याग करने पर जिस प्रकार का सुख प्राप्त होता है वैसा ही सुख शुक्र बिंदु के पतन होते समय होता है किन्तु मूढ़ों ने उसे उसके विरुद्ध ही कल्पना किया है।६६-७७। इस प्रकार स्त्रियों के रमण में जो अत्यन्त अविमात्र तथा सभी दोषों की खानि होती है, विचार करने पर सुख का लेश भी नहीं मिलता है। युवा काल में प्राणी सम्मान पूर्वक मान एवं वियोग के पश्चात् स्त्री रमण में दृढालिङ्गन प्राप्त करता है किन्तु वह यौवन जरा (बुढ़ापा) से ग्रसा होने के नाते उसके पीछे उपद्रव लगा ही रहता है इसलिए उस अवस्था में कोई सुख नहीं वृद्धावस्था में बुढाई द्वारा देह के जर्जर होने पर उसकी खाल लटक जाती है और समस्त शरीर शिथिल होने के कारण वह सभी क्रियाओं के करने में असमर्थ रहता है। जो रूप सौन्दर्य पूर्ण होने के नाते युवावस्था में नित्य नूतन ही दिखाई देता है। इसलिए दम्पति को आपस में एक दूसरे की देह अत्यन्त प्रिय रहती है, वही देह जरा ग्रस्त होने पर पूर्व की भाँति प्रिय नहीं होती है। अपने को इस भाँति देखते हुए भी कि जो पहले कितना अपूर्व था और वही जरा ग्रस्त होने पर किस प्रकार परिवर्तित हो गया

जराभिभूतः पुरुषः पत्नीपुत्रादिबान्धवैः । अशक्तत्वाद्दुराचारैर्भृत्यैश्च परिभूयते ।।८०
धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं च न जरी यतः । शक्तः साधयितुं तस्माच्छरीरमिदमात्मनः ।।८१
वातपित्तकफादीनां वैषम्यं व्याधिरुच्यते । तस्माद्व्याधिमयं ज्ञेयं शरीरमिदमात्मनः ।।८२
वाताद्यव्यतिरिक्तत्वाद्व्याधीनां पञ्जरस्य च । रोगैर्नानाविधैर्यानि देहदुःखान्यनेकधा ।।
तानि च स्वात्मवेद्यादि किमन्यत्कथयाम्यहम् ।।८३
एकोत्तरं मृत्युशतमस्मिन्देहे प्रतिष्ठितम् । तत्रैकः कालसंयुक्तः शेषाश्चागन्तवः स्मृताः ।।८४
ये त्विहागन्तवः प्रोक्तास्ते प्रशाम्यन्ति भेषजैः । जपहोमप्रदानैश्च कालमृत्युर्न शाम्यति ।।८५
यदि चापि न मृत्युः स्याद्विषमद्यादशंकितः । न सन्ति पुरुषे तस्मादपमृत्युर्विभीतयः ।।८६
विविधा व्याधयः शस्त्रं सर्पाद्याः प्राणिनस्तथा । विषाणि जङ्गमाद्यानि[1] मृत्योर्द्वाराणि देहिनाम् ।।८७
पीडितं सर्वरोगाद्यैरपि धन्वन्तरिः स्वयम् । स्वस्थीकर्तुं न शक्नोति प्राप्तमृत्युं च देहिनम् ।।८८
नौषधं न तपो दानं न मंत्रा न च बांधवाः । शक्नुवन्ति परित्रान्तु नरं कालेन पीडितम् ।।८९
रसायनतपोजप्यैर्योगसिद्धैर्महात्मभिः । कालमृत्युरपि प्राज्ञैस्तीर्यते नालसैर्नरैः ।।९०
नास्ति मृत्युसमं दुःखं नास्ति मृत्युसमं भयम् । नास्ति मृत्युसमस्त्रासः सर्वेषामेव देहिनाम् ।।९१

है, उसमे आसक्त होता है, उससे बढ़कर अन्य कोई प्राणी नहीं है । बुढाई आने पर पुरुष के अशक्त होने पर पत्नी पुत्र एवं दुराचारी बन्धुओं और भृत्यों (सेवकों) द्वारा सदैव अपमानित होता रहता है । मनुष्य अपने शरीर द्वारा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की प्राप्ति करने में समर्थ रहता है अतः उसकी प्राप्ति उसे अवश्य करना चाहिए क्योंकि उसमें बुराई का भय कभी नहीं होता है । अन्यथा वात, पित्त एवं कफ की विषमता से व्याधि उत्पन्न होती है इसलिए इस शरीर को व्याधि मन्दिर जानना चाहिए । उसी प्रकार वातादि रोग के अतिरिक्त अनेक भाँति के रोग एवं पांजर आदि के द्वारा अनेक प्रकार की व्यथा उत्पन्न होते रहने के कारण यह देह दुःख की है । जिसका अनुभव सभी लोगों को होता रहता है । अन्य कोई बात न है और न कह रहा हूँ । इस शरीर में एक सौ एक मृत्यु दायक रोग सदैव रहते हैं उसमें एक काल है और अन्य आगन्तुक रोग । किन्तु जो आगन्तुक के नाम से प्रथित हैं वे औषधियों के सेवन से शान्त हो जाते हैं, अथवा जप हवन एवं दान द्वारा और काल मृत्यु का शमन किसी प्रकार नहीं होता है । यदि मृत्यु का किसी प्रकार शमन हो सकता है तो प्राणी पुनः निःशंक होकर विष भक्षण किया करते किन्तु पुरुषों में वैसा असम्भव है, उन्हें तो अनेक भाँति की व्याधि शस्त्र एवं सर्पादि रूप से ही प्राणियों की विष एवं जंगमादि द्वारा मृत्यु होती रहती है। उसे समस्त रोगों की व्यथा का अनुभव करना पड़ता है। प्राणी की मृत्यु के समय साक्षात् धन्वन्तरि आकर औषध आदि से उपचार करें, तो भी स्वस्थ नहीं हो सकता है।७८-८८। काल से पीडित होने पर औषध, तप, दान, मंत्र एवं बन्धु गण उसकी रक्षा नहीं कर सकते हैं। योगसिद्ध महात्मा लोग जो रसायन सेवन, तप और जप निरन्तर करते हैं, काल मृत्यु को भी पराजित करते हैं, किन्तु आलसी पुरुष कभी नहीं। इसलिए समस्त प्राणियों के लिए मृत्यु के समान दुःख, भय,

---

१. चातिवादाश्च ।

सद्भार्यापुत्रमित्राणि राज्यैश्वर्यधनानि च । अबद्धानि च वैराणि मृत्युः सर्वाणि कृन्तति ।।९२
हे जनाः किं न पश्यध्वं सहस्रस्यापि मध्यतः । जनाः शतायुषः पञ्च भवन्ति न भवन्ति च ।।९३
अशीतिका विपद्यन्ते केचित्सप्ततिका नराः । परमायुषं स्थितं षष्टिस्तच्चैवानिश्चितं पुनः ।।९४
यस्य यावद्भवेदायुर्देहिनां पूर्वकर्मभिः । तस्यार्द्धमायुषो रात्रिर्हरते मृत्युरूपिणी ।।९५
बालभावेन मोहेन वार्द्धक्ये जरया तथा । वर्षाणां विंशतिर्याति धर्मकामार्थवर्जिता ।।९६
आगन्तुकैर्भयैः पुंसां व्याधिशोकैरनेकधा । क्षयतेऽर्द्धं च तत्रापि यच्छेषं तच्च जीवति ।।९७
जीवितान्ते च मरणं महाघोरमवाप्नुयात् । जायते जन्मकोटीषु[1] मृतः कर्मवशात्पुनः ।।९८
देहभेदेन यः पुंसां वियोगः कर्मसंक्षयात् । मरणं तद्विनिर्दिष्टं नान्यथा परमार्थतः ।।९९
महातपप्रविष्टस्य च्छिद्यमानेषु मर्मसु । यद्दुःखं मरणे जन्तोर्न तस्येहोपमा क्वचित् ।।१००
हा तात मातः कान्तेति रुदन्नेवं[2] हि दुःखितः । मण्डूक इव सर्पेण ग्रस्यते मृत्युना जनः ।।१०१
बान्धवैः सम्परिष्वक्तः प्रियैः स परिवारितः । निःश्वसन्दीर्घमुष्णं च मुखेन परिशुष्यति ।।१०२
क्रन्दते चैव खट्वायां परिवर्तन्मुहुर्मुहुः । संमूढः क्षिपतेऽत्यर्थं हस्तपादावितस्ततः ।।१०३

तथा त्रास अन्य नहीं है । यह काल मृत्यु साध्वी स्त्री, पुत्र, मित्र, राज्य, ऐश्वर्य, और धन आदि सभी का नाश करता है । जनगण ! क्या तुम लोग यह भी नहीं देखते हो कि सहस्रों मनुष्यों के बीच में पाँच भी मनुष्य सौ वर्ष की आयु प्राप्त नहीं करते हैं । उनमें किसी की मृत्यु अस्सी तथा किसी की सत्तरवर्ष की अवस्था में हो जाती है । उनकी परमायु साठ वर्ष की होती है किन्तु वह भी उसके लिए अनिश्चित रहती है, क्योंकि जन्मान्तरी कर्मों के अनुसार उसकी निश्चित आयु के आधे भाग को मृत्यु रूपी रात्रि हर लेती है । और शिशु, अवस्था में मोहवश एवं वृद्धावस्था में बुढाई द्वारा उसकी बीस वर्ष की आयु यों ही नष्ट हो जाती है, जिसमें धर्म, अर्थ, एवं काम की कोई बात नहीं होती है । पश्चात् आगन्तुक अनेक भाँति की व्याधियों द्वारा उसकी आधी आयु नष्ट हो जाती है । इन सबसे शेष आयु में वह जीवित रहता है । जीवन के अंत में पुनः वही महाघोर मरण और तदनन्तर कर्म वश पुनः उसे जन्म ग्रहण की परम्परा में आना पड़ता है । प्राणी अपने कर्मों के अनुसार निर्दिष्ट योनि में पहुँच कर शरीर धारण करता है और उस भोग कर्म के समाप्त होने पर उस शरीर के त्याग पूर्वक पुनः अन्य योनि में जाकर उसकी शरीर धारण करता है, इस प्रकार शरीर प्राप्ति और उसका मरण रूप वियोग का क्रम होता रहता है । किन्तु इसमें कोई क्रम परमार्थ नहीं है। महातपस्वी मनुष्य कभी मृत्यु के समय उसके अंग प्रत्यंग में व्यथा द्वारा उसे जिस दुःख का अनुभव होता है, उसकी उपमा कहीं नहीं है। मरण समय में प्राणी हे तात, हा मातः हे कान्ते कहकर अत्यन्त दुःखी होने पर उस रोदन के समय परिवारों को बुलाता है किन्तु साँप द्वारा ग्रसित होने पर मेढ़क की भाँति यह प्राणी भी मृत्यु द्वारा ग्रस्त होकर विनष्ट हो जाता है।८९-१०१। उस समय उसके प्रिय बन्धु गण उसे चारों ओर से घेर कर उसकी बाधा दूर करने में सतत प्रयत्न करते रहते हैं तथापि वह उसी भाँति दीर्घ निश्वास लेता रहता है जिसके कारण उसका मुख सूख जाता है। और उसी शय्या पर पड़े बार बार दुखाक्रन्द किया करता है। चेतना आने पर हाथ चरण के इधर-उधर से चालन करते हुए

---

१. योनिकोटीषु। २. क्रन्दन्।

खट्वातो काङ्क्षते भूमिं भूमेः खट्वां पुनर्महीम् । विवशस्त्यक्तलज्जश्च मूत्रविष्ठानुलेपितः ।।१०४
याचमानश्च सलिलं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः । चिन्तयानश्च वित्तानि कस्यैतानि मृते मयि ।।१०५
पश्चावटान्खन्यमानः कालपाशेन कर्षितः । म्रियते पश्यतामेव जनानां घुर्घुरस्वनः ।।१०६
जीवस्तृणजलौकेव देहाद्देहं विशेत्क्रमात् । सम्प्राप्योत्तरकालं हि देहं त्यजति पौर्वकम् ।।१०७
[1]मरणात्प्रार्थनाद्दुःखमधिकं हि विवेकिनः । क्षणिकं मरणद्दुःखमनंतं प्रार्थनाकृतम् ।।१०८
जगतां पतिरर्थित्वाद्विष्णुर्वामनतां गतः । अधिकः कोऽपरस्तस्माद्यो न यास्यति लाघवम् ।।१०९
ज्ञातं मयेदमधुना मतं भवति यद्गुरु । न परं प्रार्थयेद्भूयस्तृष्णा लाघवकारणम् ।।११०
आदौ दुःखं तथा मध्ये दुःखमन्ते च दारुणम् । निसर्गात्सर्वभूतानामिति दुःखपरम्परा ।।१११
वर्तमानान्यतीतानि दुःखान्येतानि यानि तु । नरा न भावयंत्यज्ञा न विरज्यन्ति तेन ते ।।११२
अत्याहारान्महद्दुःखमनाहारान्महत्तमम् । तुलितं जीवितं कष्टं मन्येऽप्येवं कुतः सुखम् ।।११३
बुभुक्षा सर्वरोगाणां व्याधिः श्रेष्ठतमः स्मृतः । स चान्नौषधिलेपेन क्षणमात्रं प्रशाम्यति ।।११४
क्षुद्व्याधिवेदनातुल्या निःशेषबलकर्तनी । तयाभिभूतो म्रियते यथान्यैर्व्याधिभिर्न हि ।।११५
तद्रसोपि हि कामाद्वा जिह्वाग्रे परिवर्तते । तत्क्षणाद्वार्धकालेन कण्ठं प्राप्य निवर्तते ।।११६

शय्या से भूमि में और भूमि में आकर पुनः शय्या पर जाने की इच्छा प्रकट करता है। उस समय विवश होने पर निर्लज्ज हो जाता है, उसकी देह में विष्ठा मूत्र लगे रहते हैं कंठ, ओष्ठ एवं तालु के सूजने पर बार-बार पानी की याचना करता रहता है और अपने धन के लिए सोचता रहता है कि मेरे मर जाने के पश्चात् इसका अधिकारी कौन होगा। काल पाश से आबद्ध होकर अपने प्रिय परिवारों के सामने ही घुर-घुर की आवाज करते हुए यह प्राणी तृण की भाँति कर्मानुसार इस देह से अन्य देह में क्रमशः प्रवेश अवशेष करता है। इसी प्रकार काल द्वारा पूर्व शरीर का त्याग और भावी शरीर की प्राप्ति करता रहता है। किन्तु इस जीव को मरने से कहीं अधिक दुःख याचना करने पर होता है, क्योंकि मरण में क्षणिक दुःख का अनुभव करना पड़ता है और याचना में अनन्त बार, इसीलिए जगत पति भगवान् विष्णु को याचना के कारण वामन लघुरूप की प्राप्ति हुई है। अतः कभी भी याचना किसी से न करनी चाहिए, क्योंकि लाघव होने में मुख्य एक मात्र तृष्णा ही कारण कहा गया है। इसी प्रकार समस्त प्राणी को गर्भ मध्य (जन्म) और अंत (मरण) के समय कष्ट ही कष्ट रहता है, जो दुःख परम्परा उनके स्वाभाविक सी बन जाती है। अतीत एवं वर्तमान दुःखों के मूलकारण का विचार प्राणी नहीं करता है इसी अज्ञान वश उन दुःखों से उसे विराग उत्पन्न नहीं होता है। प्राणी जिस पुष्टाहार को परमोत्तम मानता है, उसके अधिक आहार करने पर महान् दुःख होता है तथा उसका परित्याग भी नहीं कर सकता। इस प्रकार तुलित (नपातुला) जीवन होने से उसे कष्टमय समझना चाहिए उसमें सुख कहाँ से हो सकता है। प्राणियों में वुभुक्षा (खाने की इच्छा) जो समस्त रोगों की व्याधि है, वह अन्य औषधि रूपी लेपन से क्षण मात्र में शान्त हो जाती है। क्षुधा रूपी व्याधि की वेदना, जो सम्पूर्ण बल का नाश कर देती है, अनुपम कहीं गई है। क्योंकि रोगी पुरुष की भाँति क्षुधा-पीडित होने पर प्राणी की मृत्यु हो जाती है। सुस्वाद पूर्ण अन्न मुख में रखने पर उसका रस जिह्वा पर व्याप्त रहता है किन्तु वह उसी समय कंठ पहुँचते हुए भीतर (उदर) में

१. मरणात्प्राक्—कर्णनासिकामुखानि हस्तेन चालयतीत्यवटखननापदेशः ।

इति क्षुद्व्याधितप्तानामन्नमौषधवत्स्मृतम् । न तत्सुखाय मन्तव्यं परमार्थेन पण्डितैः ।।११७
मृतोपमो यच्चेक्षेत सर्वकार्यविवर्जितः । तत्रापि च कुतः सौख्यं तमसाच्छादितात्मनः ।।११८
प्रबोधेऽपि कुतः सौख्यं कार्यैरुपहतात्मनः । कृषिगोरक्षवाणिज्यसेवाध्वादिपरिश्रमैः ।।११९
प्रातर्मूत्रपुरीषाभ्यां मध्याह्ने तु बुभुक्षया । तृप्ताः कामेन बाध्यन्ते जन्तवोऽपि विनिद्रया ।।१२०
अर्थस्योपार्जने दुःखमर्जितस्यापि रक्षणे । आये दुःखं व्यये दुःखमर्थेऽभ्यश्च कुतः सुखम् ।।१२१
चौरेभ्यः सलिलादग्नेः स्वजनात्पार्थिवादपि । भयमर्थवतां नित्यं मृत्योः प्राणभृतामिव ।।१२२
खे यातं पक्षिभिर्मांसं भक्ष्यते श्वापदैर्भुवि । जले च भक्ष्यते मत्स्यैस्तथा सर्वत्र वित्तवान् ।।१२३
विमोहयन्ति सम्पत्सु तापयन्ति विपत्तिषु । खेदयन्त्यर्जनाकाले कदा[1] ह्यर्थाः सुखावहाः ।।१२४
यथार्थपतिरुद्विग्नो यच्च सर्वार्थनिःस्पृहः । यतश्चार्थपतिर्दुःखी सुखी सर्वार्थनिःस्पृहः ।।१२५
शीतेन दुःखं हेमेन्ते ग्रीष्मे तापेन दारुणम् । वर्षासु वातवर्षाभ्यां कालेऽप्येवं कुतः सुखम् ।।१२६

चला जाता है ।१०२-११६। इस प्रकार क्षुधा रोग से संतप्त प्राणियों के लिए अन्न औषध रूप अवश्य है, किन्तु वह सुख पण्डितों के विचार से पारमार्थिक नहीं है । जो प्राणी समस्त कार्यों के त्याग पूर्वक केवल मृतक की भाँति देखा ही करता है, उस प्राणी को जीवन में सुख का लेश कहाँ से मिल सकता है क्योंकि उसका ज्ञान आत्मा सदैव, अज्ञानान्धकार से आवृत्त रहता है । बोध करने पर भी कृषि, गोरक्षा, व्यापार, सेवा रूपी कार्यों की अधिकता एवं उसे सुसम्पन्न करने के लिए मार्ग आदि गमन करने के परिश्रम से सदैव व्याकुल रहने के कारण उसके उस अबोधित जीवन में सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है । प्राणियों के यही जीवन क्रम है कि प्रातःकाल शौचादि नित्य क्रिया, मध्याह्न में भोजन द्वारा क्षुधा शान्ति और भोजनोपरांत तृप्त होने पर स्त्री के साथ रमण एवं निद्रा से विवश रहता है । प्राणी को अर्थोपार्जन करने में अनेक प्रकार के महान दुःखों के अनुभव करने पड़ते हैं और उसकी रक्षा करने में भी इस भाँति अर्थोपार्जन एवं उसके व्यय में नितान्त कष्ट ही रहने के नाते धन द्वारा उसे सुख कैसे मिल सकता है । मृत्यु द्वारा भयभीत प्राणियों की भाँति धनवान् पुरुष को भी चोर, जल की बाढ़, अग्नि, स्वजन एवं राजा से सदैव भय बना रहता है जिस प्रकार मांस लेकर आकाश में उड़ते हुए पक्षी गण तो उसका उपभोग करते ही हैं किन्तु उसके भूमि में गिरने पर कुत्ते और जल में गिरने पर मछलियाँ उसका उपभोग करती हैं उसी भाँति धनवान्, सर्वत्र सभी का भक्ष्य बना करता है । धनवान् होने पर प्राणी सदैव उसी में मुग्ध रहता है और उसी भाँति विपत्तियों के समय संतप्त होता है एवं उसके उपार्जन समय खिन्न रहता है। इसलिए धन किस समय सुख-दायक हो सकता है यह कहना कठिन है धनवान् जितना बुद्धिमान रहता है उससे कहीं अधिक शान्त उसके त्यागी देखे जाते हैं क्योंकि धनी सदैव दुःखी रहता है और सर्वार्थ निस्पृष्ट सुखी।११७-१२५। हेमन्त ऋतु में शीत, ग्रीष्म में ताप, एवं वर्षा में वायु तथा वर्षा द्वारा दारुण दुःख प्राप्त होने के नाते प्राणियों को काल (समय) द्वारा भी सुख की प्राप्ति नहीं होती है। इसी प्रकार कुटुम्ब जीवन में किस प्रकार सुख प्राप्त हो सकता है । क्योंकि सर्वप्रथम विवाह के आयोजन

---

१. कथम् ।

विवाहविस्तरे दुःखं तद्गर्भोद्वहने पुनः । प्रसवेऽपत्यदोषैश्च दुःखं दुःखादिकर्मभिः ।।१२७
दन्ताक्षिरोगैः पुत्रस्य हा कष्टं किं करोम्यहम् । गावो नष्टाः कृषिर्भग्ना वृषाः क्वापि पलायिताः ।।१२८
अमी प्राघूर्णकाः प्राप्ता भक्तच्छेदे च मे गृहे । बालापत्या च मे भार्या कः करिष्यति रन्धनम् ।।१२९
प्रदानकाले कन्यायाः कीदृशश्च वरो भवेत् । इति चिन्ताभिभूतानां कुतः सौख्यं कुटुम्बिनाम् ।।१३०

कुटुम्बचिन्ताकुलितस्य पुंसः श्रुतं च शीलं च गुणाश्च सर्वे ।
अपक्वकुम्भे निहिता इवापः प्रयान्ति देहेन समं विनाशनम्।।१३१

राज्येऽपि च महद्दुःखं सन्धिविग्रहचिन्तया । पुत्रादपि भयं यत्र तत्र सौख्यं हि कीदृशम् ।।१३२
सजातीयाद्वधः प्रायः सर्वेषामेव देहिनाम् । एकद्रव्याभिलाषित्वाच्छुनामिव परस्परम् ।।१३३
नाप्रधृष्यबलः कश्चिन्नृपः ख्यातोऽस्ति भूतले । निखिलं यस्तिरस्कृत्य सुखं तिष्ठति निर्भयः ।।१३४

आजन्मनः प्रभृति दुःखमयं शरीरं कर्मात्मकं तव मया कथितं नरेन्द्र ।
दानोपवासनियमैश्च कृतैस्तदेव सर्वोपभोगसुखभाग्भवतीह[1] पुंसाम् ।।१३५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
संसारदोषाख्यानं नाम चतुर्थोऽध्यायः ।४

पूर्वक उसके सुसम्पन्न करने में अनेक दुःख पश्चात् स्त्री को गर्भ वहन करने एवं पुरुष काल में दारुण दुःख शिशु के उत्पन्न होने पर उसके अनेक रोगों से पीड़ित होने पर दाँत निकलते समय, और उनके आ जाने पर उसके अतिरिक्त अन्य शिशुओं से आक्रान्त होने पर प्राणी उस अपने पुत्र की व्यथा से व्याकुल होकर अचेतन सा हो जाता है ।वह समय यही कहता है कि हा, महान् कष्ट उपस्थित है क्या करूँ, कहा जाऊँ । मेरी गाय न जाने कहाँ चली गई, जो सतत प्रयत्न करने पर भी नहीं मिली, अबकी साल खेती एकदम नष्ट हो गई है, बैल को न जाने कौन चुरा ले गया, ये अतिथिगण मेरे घर आ गये हैं इस समय बना हुआ भोजन कौन बनाये क्योंकि स्त्री की गोदी में छोटा बच्चा है कन्या के विवाह के अवसर पर चिन्ता होने लगती है इसके योग्य वर कहाँ से और कैसे प्राप्त हो सकेगा आदि चिन्ताओं से वह सदैव घिरा रहता है । इतनी ही नहीं कुटुम्व की चिन्ता से जर्जर होने पर प्राणी अपनी विद्या, शील, एवं गुण समेत जल पूर्ण घडे की भाँति नष्ट हो जाता है राज्य प्राप्त होने पर उसके लिए संधि, विग्रह की चिंता सदैव होती रहती है तथा जिसमें पुत्र से भी भय बना रहे उसमें किस प्रकार का सुख प्राप्त हो सकता है, नहीं कहा जा सकता । क्योंकि प्रायः देखा जाता है कि एक ही वस्तु अभिलाषा प्रकट कर आपस में लड़ने वाले कुत्तों की भाँति सभी प्राणियों का निधन अपनी जाति के लोगों के ही द्वारा होता है । इस भूतल में इस प्रकार का कोई शान्त राजा है भी नहीं जो अपने समस्त का त्याग कर सुख पूर्वक रह रहा हो । नरेन्द्र ! मैंने तुम्हें शरीर प्राप्ति एवं उसके दुःख-दायक कर्म समूह की जो जन्म से आरम्भ की मरण पर्यन्त दुःख प्रदान करता है, व्याख्या करके बता दिया किन्तु दान, उपवास एवं नियम पालन करने से वह समस्त के उपभोग पूर्वक सुख प्रदान करता है ।१२६-१३५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-सम्वाद में संसारदोषवर्णत्त
नामक चौथा अध्याया समाप्त ।४।

---

१. सर्वोपभोगसुभगम् ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

पापभेदाख्यानवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अधोधः पतनं पुंसामधः कर्म प्रकीर्तितम् । नरकार्णवघोरेषु यातना पापमुच्यते ।।१
अधर्मभेदा विज्ञेयाश्चित्तवृत्तिप्रभेदतः । स्थूलाः सूक्ष्माः सुसूक्ष्माश्च कोटिभेदैरनेकधा ।।२
तत्र ये पापनिचयाः स्थूला नरकहेतवः । ते समासेन कथ्यन्ते मनोवाक्कायसाधनाः ।।३
परस्त्रीष्वथ सङ्कल्पश्चेतसानिष्टचिन्तनम् । अकार्याभिनिवेशश्च चतुर्धा कर्म मानसम् ।।४
अनिबद्धप्रलापित्वमसत्यं चाप्रियं च यत् । परापवादिपैशुन्यं चतुर्धा कर्म वाचिकम् ।।५
अभक्ष्यभक्षणं हिंसा मिथ्या कामस्य सेवनम् । परस्वानामुपादानं चतुर्द्धा कर्म कायिकम् ।।६
इत्येतद्द्वादशविधं कर्म प्रोक्तं ससाधनम् । तेषां भेदं पुनर्वच्मि येषां फलमनन्तकम् ।।७
ये द्विषन्ति महादेवं[1] संसारार्णवतारणम् । समस्तपातकोपेतास्ते यान्ति नरकाग्निषु ।।८
ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः । महापातकिनश्चैते तत्संसर्गी च पञ्चमः ।।९
क्रोधाद्द्वेषाद्भयाल्लोभाद्ब्राह्मणं विशसन्ति ये । प्राणांतिको महादोषो ब्रह्मघ्नास्ते प्रकीर्तिताः ।।१०

अध्याय ५

पापभेद के आख्यान का वर्णन

श्रीकृष्ण जी बोले—पुरुषों के अधः पतन होने में उसके उसी प्रकार से नीच कर्म कारण होते हैं, जिसके द्वारा वह भीषण नरकों में पहुँच कर यातनाएँ भोगता है। उसमें चित्त वृत्ति के भेद से अधर्म के भी भेद होते हैं इसीलिए स्थूल, सूक्ष्म एवं सूक्ष्माति सूक्ष्म के भेद से उसमें कोटि भेद हैं किन्तु उसमें जो स्थूल पाप कर्म हैं जिसे नरक की घोर प्राप्ति होती है उन्हें मैं बता रहा हूँ। वे कर्म मन, वाणी एवं शरीर द्वारा किये जाते हैं—पर स्त्री की इच्छा, उसके साथ शयन करने का संकल्प निन्दित कार्यों के विचार रूप मानसिक कर्म चार प्रकार के होते हैं। क्रमहीन प्रलाप (असंगत प्रलाप) असत्य, अप्रिय एवं दूसरे की चुगुली करना रूप चार कर्म वाचिक और अभक्ष्य भक्षण, हिंसा, मिथ्या काम सेवन एवं दूसरे के धन ले लेना रूप चार कर्म कायिक (शरीर द्वारा) होते हैं। इस प्रकार मैंने बारह भाँति के कर्म तथा उसके साधन भी बता दिये थे किन्तु पुनः उनके भेदों को बता रहा हूँ, जिनका अनन्त फल कहे गये हैं। संसार सागर के उद्धारक महादेव जी से जो द्वेष करते हैं वे समस्त पापों से युक्त होकर नरक की अग्नि में गिरते हैं। ब्रह्म हत्या, सुरापान, चोरी, गुरुपत्नीगमन करने तथा इनके संसर्ग में रहने वाले पंचम महापातकी बताये गये हैं।१-९। क्रोध, द्वेष, भय एवं लोभ से वशीभूत होकर जो ब्राह्मण पर शासन कर उनकी हत्या करते

---

१. सदा विष्णुम् ।

ब्राह्मणं च समाहूय याचमानमकिञ्चनम् । पश्चान्नास्तीति तं ब्रूयात्स चैवं ब्रह्महा स्मृतः ।।११
यस्तु विद्याभिमानेन नित्यं जयति वै द्विजान् । समासीनः सभामध्ये ब्रह्महा सोऽपि कीर्तितः ।।१२
मिथ्यागुणैः स्वमात्मानं नयत्युत्कर्षणं बलात् । गुरूणां च विरुद्धो यः स चैव ब्रह्महा स्मृतः ।।१३
क्षुत्तृट्संतप्तदेहानां द्विजानां भोक्तुमिच्छताम् । समाचरति यो विघ्नं तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ।।१४
पिशुनः सर्वलोकानां छिद्रान्वेषणतत्परः । उद्वेगजननः क्रूरः स चैव ब्रह्महा स्मृतः ।।१५
गवां तृष्णाभिभूतानां जलार्थमुपसर्पताम् । समाचरति यो विघ्नं स चैव ब्रह्महा स्मृतः ।।१६
परदोषमभिज्ञाय नृपकर्णे करोति यः । पापीयान्पिशुनः क्षुद्रः स चैव ब्रह्महा स्मृतः ।।१७
देवद्विजगवां भूमिं पूर्वभुक्तां हरेत्तु यः । प्रनष्टामपि कालेन तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ।।१८
द्विजवित्तापहरणे न्यायतः समुपार्जिते । ब्रह्महत्या समं ज्ञेयं[1] पातकं नात्र संशयः ।।१९
अग्निहोत्रपरित्यागो यस्तु याज्ञिककर्मणाम् । मातापितृपरित्यागः कूटसाक्ष्यं सुहृद्वधः ।।२०
गवां मार्गे वने चाग्निं पुरे ग्रामे च दीपयेत् । इति पापानि घोराणि सुरापानसमानि तु ।।२१
हीनस्वहरणे चापि नरस्त्रीगजवाजिनाम् । गोभूरजतरत्नानामौषधीनां रजस्य च ।।२२
चन्दनागरुकर्पूरकस्तूरीखण्डवाससान्[2] । हस्ते न्यस्यापहरणं रुक्मस्तेयसमं स्मृतम् ।।२३
कन्यानां वरयोग्यानामदानं सदृशे वरे । पुत्रमित्रकलत्रेषु गमनं भगिनीषु च ।।२४
कुमारीसाहसं घोरमन्त्यजस्त्रीनिषेवणम् । अवर्णायाश्च गमनं गुरुतल्पसमं स्मृतम् ।।२५

हैं उनको ब्रह्मघ्न कहा गया है । ब्राह्मण को बुलाकर जो किसी छोटी सी वस्तु की याचना कर रहा हो, पीछे नहीं है, कह देने वाले को ब्रह्म हत्यारा कहा गया है । जो अपनी विद्या के अभिमान से सभा में उदासीन होकर ब्राह्मणों को अपमानित करता है, उसे भी ब्रह्महा ही कहा गया है । क्षुधा प्यास से व्याकुल ब्राह्मण को जो भोजन की इच्छा प्रकट कर रहा हो, मना करता है या अन्य कोई विघ्न उपस्थित करता है, वह भी ब्रह्मघाती है । सभी लोगों की चुगुली सब में दोष ही ढूंढना, उद्वेग दायक, क्रूर कर्मा, अत्यन्त प्यास से व्याकुल गाय से, जो पानी पीने के लिए जा रही हो, न जाने देने वाले दूसरे के दोषों (अपराधों) को जानकर राजा से कहने, पापकर्मा, नीच स्वभाव, निन्दा करने वाला। देव, ब्राह्मण और गायों के लिए दी हुई भूमि के अपहरण करने वाला जो थोड़े समय में नष्ट भी हो जाने के योग्य हो, ब्राह्मण धन के अपहरण करने वाला, जिसे उस ब्राह्मण ने न्याय पूर्वक उपर्जित किया है, ब्रह्मघाती है इसमें संशय नहीं। अग्निहोत्र, याज्ञिक कर्म, माता, पिता के त्याग, न्यायालय में कूटसाक्षी (गवाही), मित्रवध, गौओं के मार्ग वन, नगर या ग्राम में अग्निदाह करने आदि ये सभी पाप सुरापान के समान हैं। धन, मनुष्य, स्त्री, गज, घोड़े, गाय, पृथ्वी, चाँदी, रत्न, औषध, चंदन, अगुरु, कपूर, कस्तूरी, वस्त्र एवं धरोहर के अपहरण करना सुवर्ण चोरी के समान है। विवाह योग्य कन्या उसके अनुरूप वर को प्रदान न करने, पुत्रवधू, मित्रपत्नी, भगिनी के साथ गमन, कुमारियों के साथ घोर दुस्साहस, शूद्र स्त्री भोग, जातिच्युत स्त्री के साथ गमन करने आदि गुरुतुल्य (गुरुपत्नी गमन) के समान हैं।१०-२५। इस प्रकार मैंने महापातक तथा

१. पापं हरणे। २. चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीपट्टवाससाम्।

महापातकतुल्यानि पापान्युक्तानि यानि तु । तानि पातकसंज्ञानि तद्वदाम्युपपातकम् ।।२६
द्विजार्थं च प्रतिज्ञाय न प्रयच्छति यः पुनः । तस्मान्नरपते विघ्नतुल्यं तदुपपातकम् ।।२७
द्विजद्रव्यापहरणं मर्यादाया व्यतिक्रमः । अतिकोपश्च मानश्च दाम्भिकत्वं कृतघ्नता ।।२८
अत्यन्तविषयासक्तिः कार्पण्यं श्रेष्ठमत्सरः । परदारापहरणं साधुकन्याविदूषणम् ।।२९
परिवित्तिः परीवेत्ता यया च परिविद्यते । तयोर्दानं च कन्यायास्तयोरेव च याजनम् ।।३०
पुत्रमित्रकलत्राणामभावे स्वामिनस्तथा । शिष्टानां चैव संन्यासः सहजानां तपस्विनाम् ।।३१
भङ्गश्च धर्मकृत्यानां सहायानां विनाशनम् । पीडामाश्रमसंस्थानान्नाचरेत्स्वल्पिकामपि ।।३२
स्वभृत्यपरिवर्गस्य पशुधान्यधनस्य च । कुप्यधान्यपशुस्तेयमयाच्यानां च याचनम् ।।३३
गवां क्षत्रियवैश्यानां स्त्रीशूद्राणां विशेषतः । यज्ञारामतडागानां दारापत्यस्य विक्रयः ।।
तीर्थयात्रोपवासानां व्रतायतनकर्मणाम् ।।३४
स्त्रीधनान्युपजीवन्ति स्त्रीभिरत्यन्तनिर्जिताः । अरक्षणं च नारीणां मद्यपस्त्रीनिषेवणम् ।।३५
ऋणानामप्रदानं च धान्यवृद्धयुपजीविनाम् । निन्दिताच्च धनादानमपण्यानां च विक्रयः ।।३६
विषमारणमन्त्राणां प्रयोगे मूलकर्मणाम् । उच्चाटनाविचारश्च गरविद्वेषणक्रिया ।।३७
जिह्वासमुपभोगार्थं यस्यारम्भः स्वकर्मसु । मूल्येनाध्यापयेद्यश्च मूल्येनाधीयते च ये ।।३८
व्रात्यता व्रतसन्त्यागः सर्वाहारनिषेवणम् । असद्दाराभिगमनं शुष्कतर्कावलम्बनम् ।।३९
देवाग्निसाधुसाध्वीनां निन्दा गोब्राह्मणस्य च । प्रत्यक्षं वा परोक्षं वा राज्ञां मण्डलिकामपि ।।

उसके समान पातकों को बता कर अब उपपातक बता रहा हूँ, नरपते ! ब्राह्मण को वचन देकर उसकी पूर्ति न करना वह उपपातक कहा गया है । द्विज के धनापहरण मर्यादा का उल्लंघन अत्यन्त क्रोध, मान, दम्भ, कृतघ्नता, अत्यन्त स्त्री भोग, कृपणता, बड़ों से बैर परस्त्री का हरण, कन्या दूषित करना, परिवित्त[1] परिवेत्ता[2] को कन्यादान तथा उनके यज्ञ कराने, मित्र, पुत्र की स्त्रियों के पति के न रहने पर उनके धर्म भंग करने, सहज तपस्वी, शिष्यों के सन्यास में धार्मिक कार्य एवं उसके सहायक धर्मों के विनाश करने, आश्रम वासियों को स्वल्प भी पीड़ित करने, अपने सेवक या उनके परिवार के पशु, धन-धान्य के अपहरण, अयाच्य से याचन, गौ, क्षत्रिय, वेश्या, स्त्री, शूद्रों विशेषकर यज्ञ, बगीचे, सरोवर, स्त्री, पुत्र के विक्रय करने, तीर्थयात्री, जो व्रतों को सनियम पालन करता है तथा स्त्रीधन से जीविका चलाने वाले, स्त्री द्वारा पराजित, स्त्रियों की रक्षा न करने, सुरापान करने वाली स्त्री के गमन, ऋणों को न देने, धान्य वृद्धि से (विशार देकर) जीविका चलाने, निन्दित से धन ग्रहण करने, गृह की वस्तुओं के विक्रय, विष, मारण मंत्र, मूल कर्म के प्रयोग, उच्चाटन, निन्दित विचार करने, विष, एवं विद्वेष कराने, अपनी ही जिह्वा के सुख-साधनार्थ कर्म करने, मूल्य लेकर अध्ययन एवं अध्यापन करने । व्रात्यता, व्रतों के त्याग, समस्त के आहार करने, निन्दिता स्त्री गमन, शुष्क तर्क, देव, अग्नि, साधु, पतिव्रता स्त्री, गौ, ब्राह्मण तथा

---

१. बड़ी कन्या के रहते छोटी कन्या का विवाहित होना ।
२. ज्येष्ठ भ्राता के अविवाहित रहने पर छोटे का विवाहित होना ।

दुःशीला नास्तिकाः पापाः सर्वशून्यस्य वादिनः ॥४०
पर्वकाले दिवा चैव वियोनौ पशुयोनिषु । रजस्वलानां योनौ च मैथुनं च समाचरेत् ॥४१
स्त्रीपुत्रमित्रसम्प्रीते ग्रासान्नच्छेदकाश्च ये । जनस्याप्रियवक्तारो धूर्ता समयभेदिनः ॥४२
भेत्ता तडागचक्राणां संक्रमाणां रथस्य च । एकपंक्तिस्थितानां च पाकभेदं करोति यः ॥४३
इत्येतैस्ते नरा पापैरुपपातकिनः स्मृताः । युक्तास्तदूनकैः क्षुद्रैः पापै पापतराः स्मृताः ॥४४
ये गोब्राह्मणकन्यानां स्वामिमित्रतपस्विनाम् । अन्तरं यान्ति कार्येषु ते नरा नारकाः स्मृताः ॥४५
परश्रिया[1] ये तप्यन्ते ये परद्रव्यसूचकाः । परव्यापारनिरताः परस्त्रीनरदूषकाः ॥४६
द्विजाय दुःखं यः कुर्यात्प्रकारैर्बहुभिः[2] सदा । सेवते यो द्विजः शूद्रां सुरां जिघ्रति[3] कामतः ॥४७
ये पानाभिरताः क्रूरा ये हिंसाप्रिया[4] नराः । वित्तार्थं[5] ये च कुर्वंति दानयज्ञादिकां क्रियाम् ॥४८
गोष्ठाग्निजलरथ्यासु तरुच्छायामठेषु च । त्यजन्तनेध्यं पुरुषा आरामायतनेषु च ॥४९
मद्यपानरता नित्यं गानवाद्यरता नराः । केलीकलाभुजङ्गाश्च रन्ध्रान्वेषणतत्पराः ॥५०
वंशेषु काशकाष्ठैश्च शुभैः शङ्कुभिरेव वा । ये मार्गान्समुपघ्नन्ति परस्त्रीराहरन्ति च ॥५१
कूटशासनहर्तारः कूटकर्मक्रियारताः । कूटयुद्धाश्च शस्त्रेण कूटसंव्यवहारिणः ॥५२
धनुषां शल्यशस्त्राणां यः कर्ता यश्च विक्रयी । निर्दयोऽतीव भृत्येषु पशूनां दमकश्च यः ॥५३
मिथ्या प्रवदतो वाक्यमाकर्णयति यः शनैः । स्वामिमित्रगुरुद्रोही मायावी चपलः शठः ॥५४

मण्डलेश्वर राजा की प्रत्यक्ष या परोक्ष निन्दा करने, दुःशील, नास्तिक, पापी, सब स्थान शून्य ही कहने वाले पर्व के समय, दिन, में वियोनि या पशु योनि तथा रजस्वला की योनि में मैथुन करने, स्त्री, पुत्र, मित्र के अन्नग्रास के नष्ट करने या न देने, जनों में अप्रिय वक्ता, धूर्त, समय-समय पर भेद करने, तालाब, चलते हुए रथ के चक्के को तोड़ने, एक पंक्ति में स्थित वालों में पंक्ति भेद करने आदि ये सभी कर्म उपपातक कहे गये हैं और वे पुरुष उपपातकी। उससे कुछ न्यून छोटे-छोटे पाप करने वाले, गौ, ब्राह्मण, कन्या, स्वामी, मित्र और तपस्वियों के कार्यों में बाधक होने वाले प्राणी नारकी कहे गये हैं।२६-४५। दूसरे की लक्ष्मी देख कर जलने वाले, दूसरे के धन की (इधर-उधर) सूचना देने अन्य जाति के धर्म-कर्म अपनाने वाले, परस्त्री को दूषित करने वाले तथा जो अनेक प्रकार से ब्राह्मण को दुःखी करते है। मद्यपान करने वाले, शूद्र स्त्री के रमण, क्रूर, हिंसाप्रिय, धन के लोभ से दान एवं यज्ञादि क्रियाओं को सुसम्पन्न करने वाले, गोशाला अथवा गौओं के उठने बैठने के स्थान, अग्नि, जल, डालियों, वृक्ष की छाया, तथा मठ, उपवन, मन्दिरों को अपवित्र करने वाले नित्य मद्यपान करके गायन वाद्य करते रहने वाले। क्रीडा-कला के नाशक, छिद्रान्वेषी बाँस, काश, काष्ठ या खूंटा गाड़कर मार्ग को रोक देने वाले, परस्त्री के अपहरण करने वाले, कूटशासन के नाशक, कूर कर्म की क्रिया करते रहने वाले, कूट शुद्ध, शास्त्र द्वारा क्रूर व्यहार करने वाले, धनुष, शल्य, तथा शास्त्रों के बनाने एवं विक्रय करने वाले और सेवकों पर निर्दय व्यवहार पशुओं के दमन असत्य वादियों की बातें धीरे-धीरे सुनने वाले, स्वामी, मित्र एवं गुरु से द्रोह करने वाले, मायावी, चपल, शठ, स्त्री पुत्र मित्र, बाल वृद्ध, आतुर,

---

१. परिस्त्रिया ये हृष्यन्ते। २. दद्यात्। ३. चाघ्राति। ४. हिंसापराः। ५. पंक्त्यर्थम्।

ये भार्यापुत्रमित्राणि बालवृद्धकृशातुरान् । भृत्यानतिथिबन्धूंश्च प्रबाधन्ते बुभुक्षया ॥५५
यः स्वयं मिष्टमश्नाति विप्रायान्यत्प्रयच्छति । वृथापाकः स विज्ञेयो ब्रह्मवादिषु गर्हितः ॥५६
नियमान्स्वयमादाय[१] ये त्यजन्त्यजितेंद्रियः । प्रव्रज्यावासिनो ये च रहस्यानां च भेदकाः ॥५७
ताडयन्ति च वेगाद्ये शपन्ति च मुहुर्मुहुः । दुर्बलांश्च न पुष्णन्ति पुनस्तान्वाहयन्ति च ॥५८
पीडयन्त्यतिभारेण सक्षतान्वाहयन्ति च । सार्द्धयामादुपरितः संयुक्तेषु च भुञ्जते ॥५९
ये भग्नक्षतरोगार्तान्स्वगोरूपान्बुभुक्षया । न पालयन्ति यत्नेन ते गोघ्ना नारका नराः ॥६०
वृषाणां वृषणान्येव पापिष्ठा गालयन्ति ये । वाहयन्ति च गां वध्यां ते महानारकाः स्मृताः ॥६१
आश्रमं समनुप्राप्तं क्षुत्तृष्णाश्रमपीडितम् । येऽतिथिं नाभिमन्यन्ते ते वै निरयगामिनः ॥६२
अनाथं विकलं दीनं बालं वृद्धं कृशातुरम् । नानुकम्पन्ति ये मूढास्ते यान्ति निरयार्णवम् ॥६३
अजाविको माहिषिकः सामुद्रो[२] वृषलीपतिः । शूद्रविट्क्षत्रवृत्तिश्च नारकी स्याद्द्विजाधमः ॥६४
शिल्पिनः कारुका वैद्या हेमकारा नटा द्विजाः । कृतकौक्षेय संयुक्तास्तथान्ये नारकाः स्मृताः ॥६५
यश्चोदितमतिक्रम्य स्वेच्छया वा हरेत्करम् । नरके तु स पच्येत यश्च दण्डरुचिर्भवेत् ॥६६
उत्कोचकैरधिकृतैस्तस्करैश्च प्रपीडचते । यस्य राज्ञः प्रजा रुष्टा पच्यते नरकेषु सः ॥६७
ये द्विजाः प्रतिगृह्णन्ति नृपस्यान्यायवर्तिनः । प्रयान्ति[३] तेऽपि घोराणि नरकाणि न संशयः ॥६८

सेवक, अतिथि, एवं बन्धुओं को बुभुक्षित करने वाले, मधुर पदार्थ ब्राह्मण को न देकर स्वयं खाने वाले, नियमपालन पूर्वक पुनः अजितेन्द्रिय होने, संन्यासी होकर एक स्थान पर नियमित रूप से रहने वाले, रहस्यों के भेदक, वेगपूर्वक ताड़न करने बार-बार शाप देने, दुर्बलों (असहायों) के पालन न करने पुनः उन्हें अत्यन्त भार से पीड़ित तथा अंगदात होने पर काम से मुक्त न करने, डेढ़ प्रहर के उपरांत मिलकर भोजन करने वाले एवं भग्न, क्षत, रोगी, तथा गौओं को समय पर भोजन न देने वाले ये सभी प्राणी गो हत्यारे एवं नरकीय कहे गये हैं ।४६-६०। बैलों के अण्डकोष को निकालने या मदन द्वारा गलाने वाले और नाक छेदकर गायों पर भार लादने वाले प्राणी महा नारकीय कहे गये हैं । क्षुधा तृष्णा से पीड़ित किसी अतिथि के अपने आश्रम में आने पर उसकी सेवा सम्मान न करने वाले नरकगामी होते हैं । अनाथ, विकल, दीन, बाल, वृद्ध, कृश, आतुर के ऊपर कृपा नहीं करने वाले वे मूढ़ नरक गामी होते हैं । भेंड, बकरी, भैंसे रखने वाले, समुद्रयात्री, वृषली, (शूद्र स्त्री) के पति होने, शूद्र, वैश्य एवं क्षत्रियों की वृत्ति अपनाने वाले ब्राह्मण अधम एवं नारकी होते हैं । शिल्पी (कारीगरी), कारू (राजगीर) वैद्य एवं सोनार जाति तथा नट के कार्य करने वाले एवं उदर पूर्ति करने वाले ब्राह्मण नारकी कहे गये हैं । नियमानुसार रीति के त्याग पूर्वक यथेच्छ कर ग्रहण करने, तथा दंड की रुचि रखने वाले प्राणी नरक में पकते रहते हैं तथा जीवित समय में घूस खाके अधिकारियों और तस्कर (चोर) से सदैव पीड़ित रहते हैं । जिस राजा की प्रजा सदैव उससे रुष्ट रहती है वह राजा तथा अन्यायी राजा के दान ग्रहण करने वाले ब्राह्मण घोर नरक की यातनाओं के उपभोग करते हैं इसमें संदेह नहीं ।६१-६८। पर स्त्री के चुराने वाले प्राणी के समान पाप उस राजा का

---

१. व्रतम् । २. सामिद्धः । ३. व्रजन्तिः ।

पारदारिकचौराणां यत्पापं पार्थिवस्य तत् । भवेदरक्षतस्तस्माद्घोरस्तस्य प्रतिग्रहः ।।६९
अचौरं चौरवत्पश्येच्चोरं वाऽचौररूपवत् । अविचार्य नृपस्तस्माद्धातयन्नरकं व्रजेत् ।।७०
घृततैलान्नपानानि मधुमांससुरासवम् । गुडेक्षुक्षारशाकानि दधिमूलफलानि च ।।७१
तृणं काष्ठं पुष्पपत्रमौषधं कांस्यभाजनम् । उपानच्छत्रशकटमासनं शयनाम्बरम् ।।७२
ताम्रं सीसं त्रपुं काचं शंखाद्यं च जलोद्भवम् । वार्क्षं वा वैणवाद्यं वा गृहेषूपस्कराणि च ।।७३
ऊर्णाकार्पासकौशेयभङ्गपट्टोद्भवानि च । स्थूलसूक्ष्माणि वस्त्राणि ये च लोभाद्धरन्ति च ।।७४
एवमादीनि चान्यानि द्रव्याणि विविधानि च । नरकाणि ध्रुवं यान्ति नरा वा नात्र संशयः ।।७५
यद्वा तद्वा परद्रव्यमपि सर्षपमात्रकम् । अपहृत्य नरो यान्ति नरकं नात्र संशयः ।।७६
एवमाद्यैर्नरः पापैरुत्क्रान्तेः समनन्तरम् । शरीरं यातनार्थाय पूर्वाकारमवाप्नुयात् ।।७७
यमलोकं व्रजेत्तेन शरीरेण यमाज्ञया । यमदूतैर्महाघोरैर्नीयमानः सुदुःखितः ।।७८
तिर्यङ्मानुषदेहानामधर्मनिरतात्मनाम् । धर्मराजः स्मृतः शास्ता सुघोरैर्विविधैर्वधैः ।।७९
विनयाचारयुक्तानां प्रमादात्स्खलितात्मनाम् । प्रायश्चित्तैर्गुरुः शास्ता न च तैर्दृश्यते यमः ।।८०
पारदारिकचौराणामन्यायव्यवहारिणाम् । नृपतिः शासकस्तेषां प्रच्छन्नानां न धर्मराट् ।।८१
तस्मात्कृतयस्य पापस्य प्रायश्चित्तं समाचरेत् । नाभुक्तस्यान्यथा नाशः कल्पकोटिशतैरपि ।।८२
यः करोति स्वयं कर्म कारयेद्वापि मोदयेत् । कायेन मनसा वाचा तस्य चाधोगतिः फलम् ।।८३

होता है जो प्रजापालन नहीं करता है, इसीलिए उसका प्रतिग्रह (दान) ग्रहण करना अत्यन्त निषिद्ध है। जो राजा ईमानदार को चोर और चोर को ईमानदार अविचार पूर्वक बनाता तथा दण्डित करता है, वह नरकगामी होता है। घी तेल से बने अन्न के भोजन, मधुमांस मद्य और आसव के पान, गुड़, ईख, खार वस्तु, शाक, दही, मूलफल, तृण, काष्ठ, दुग्ध, पत्र, औषध, कांसपात्र, उपानह (जूते), छत्र, गाडी में शयन, ताँबा, शीशा, जस्ता, काँच, शंख आदि जलीय वस्तु, काष्ठ या बाँस के वाद्य, घर वस्तुओं, ऊनी, सूती, रेशमी वस्त्रों, जो मोटे या पतले हो, हरण करने वाले इसी प्रकार और अन्य वस्तुओं के अपहरण करने वाले प्राणी निश्चित नरक गमन करते हैं। नमक भी राई के समान दूसरे के पदार्थ चुराने वाले प्राणी निःसन्देह नरक गामी होते हैं। इसी प्रकार अन्य पाप करने वाले प्राणी इस देह के त्याग करने पर पूर्व शरीर की भाँति दूसरी शरीर (नरक यातनार्थ) प्राप्त करते हैं। उसी शरीर से यमलोक की यात्रा करने के उपरांत यमराज की आज्ञा से उनके दूतगण उस प्राणी को घोर दंड देते हैं। मनुष्य तथा पक्षी आदि शरीरधारी सभी प्राणियों के लिए जो अधर्म करने में ही सदैव लगे रहते हैं, धर्मराज अनेक भाँति के घोर दंड प्रदान द्वारा उनके शासक कहे गये हैं।६९-७९। विनय आचार पूर्वक नियम पालन करने वाले प्राणी के लिए जो प्रमाद वश कहीं अनीति व्यवहार किया है, उसके गुरु प्रायश्चित का रूप दंड प्रदान करने के नाते शासक कहे गये हैं, वैसा करने पर उन्हें यमराज का भय नहीं रहता है। परस्त्री के अपहरण एवं अन्याय से व्यवहार करने वाले प्राणियों के शासक राजा होता है, क्योंकि वही उसका प्रच्छन्न रूप से धर्मराज है। इसलिए किये हुए पापों के प्रायश्चित अवश्य करने चाहिए क्योंकि बिना उसके भोग किये सैकड़ों कोटि कल्प में भी मुक्त नहीं होता है। जो मनवाणी एवं शरीर से पापाचारण करता या अनुमोदन करता है उसकी

इति संक्षेपतः प्रोक्ताः पापभेदाः ससाधनाः । कथ्यन्ते गतयश्चित्रा नराणां पापकर्मणाम् ।।८४
वाक्कायचित्तजनितैर्बहुभेदभिन्नैः कृत्यैः शुभाशुभफलोदयहेतुभूतैः ।
भास्वत्सुरेशभुवनं नरकाननेकान्सम्प्राप्नुवन्ति मनुजा मनुजेन्द्रचन्द्र ।।८५
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि पापभेदाख्यानं नाम पञ्चमोऽध्यायः ।५

अथ षष्ठोऽध्यायः
शुभाशुभफलनिर्देशवर्णनम्
श्रीकृष्ण उवाच

अथैभिः पातकैर्याति यमलोकं चतुर्विधैः । सन्त्रासजननं घोरं विवशाः सर्वदेहिनः[1] ।।१
गर्भस्थैर्जायमानैश्च बालैस्तरुणमध्यमैः । पुंस्त्री नपुंसकैर्वृद्धैर्ज्ञातव्यं सर्वजन्तुभिः ।।२
शुभाशुभफलं तत्र देहिनां प्रविचार्यते । चित्रगुप्तादिभिः सभ्यैर्मध्यस्थैः सर्वदर्शिभिः ।।३
न तेऽत्र प्राणिनः सन्ति ये यान्ति यमक्षयम्[2] । अवश्यं हि कृतं कर्म भोक्तव्यं तद्विधारितम् ।।४
तत्र ये शुभकर्माणः सौम्यचित्ता दयान्विताः । ते नरा यांति सौम्येन पथा यमनिकेतनम् ।।५
यः प्रदद्याद्द्विजेन्द्राणामुपानत्काष्ठपादुकाम् । स वराश्वेन महता सुखं याति यमालयम् ।।६

अधोगति अवश्य होती है। इस प्रकार मैने तुम्हें पाप भेद और उसके साधन बता दिया। अब पापी प्राणियों की गति का वर्णन करूँगा। (पश्चात् युधिष्ठिर ने कहा) मनुजेन्द्रचन्द्र ! शुभाशुभ फल प्रदायक अपने मन वाणी एवं शरीर द्वारा किये गये जिन कर्मों द्वारा, जो अनेक भेदों से युक्त हैं, प्रदीप्त इन्द्र भवन और घोर नरकों की प्राप्ति मनुष्यों की होती है ।८०-८५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में पापभेद वर्णन नामक पाँचवा अध्याय समाप्त ।५।

अध्याय ६
शुभाशुभ फलों का निर्देश-वर्णन

श्रीकृष्ण जी बोले—सभी प्राणी चार प्रकार के पापाचरण द्वारा विवश होकर यमलोक के उन अत्यन्त दुःख दायक नरकों की प्राप्ति करता है। पुरुष, स्त्री, नपुंसक और वृद्ध प्राणी, गर्भ में उत्पन्न होने पर बाल और मध्य युवावस्था में किये गये कर्मों द्वारा उसके शुभाशुभ फलों के विचार वहाँ के मध्यस्थ चित्रगुप्तादि लोग किया करते हैं, जो सभ्य एवं सर्वदर्शी कहे गये हैं। यहाँ ऐसे प्राणी नहीं उत्पन्न हैं जो यमलोक की यात्रा नही करते हैं, क्योंकि किये हुए कर्मों के फलोपभोग अवश्य करने पड़ते हैं। जो प्राणी शुभ कर्म करते हुए सौम्यचित्त, दयालु हैं वे सौम्य मार्ग द्वारा यमलोक की यात्रा करते हैं।१-५। जो ब्राह्मणों को उपानह, खडाउँ अर्पित करते हैं वे सुन्दर घोड़े पर बैठकर सुखपूर्वक यमलोक की यात्रा करते हैं। छत्र

---

१. सर्वजन्तवः । २. यमक्षयं यमगृहमित्यर्थः ।

छत्रदानेन गच्छन्ति यथा छत्रेण देहिनः । दिव्यवस्त्रपरीधाना यान्ति वस्त्रप्रदायिनः ॥७
शिबिकाश्वप्रदानेन ततस्तेन सुखं व्रजेत् । शय्यासनप्रदानेन सुखं यान्ति यमाश्रयम् ॥८
आरामकर्ता छायासु शीतलासु सुखं व्रजेत् । यान्ति पुष्पकयानेन पुष्पारामप्रदायिनः ॥९
देवायतनकर्ता च यतीनामाश्रमस्य च । अनाथमण्डपानां च क्रीडन्याति गृहोत्तमैः ॥१०
देवाग्निगुरुविप्राणां मातापित्रोश्च पूजकाः । पूज्यमाना नरा यान्ति कामिकेन पथा सुखम् ॥११
द्योतयन्तो दिशः सर्वा यान्ति दीपप्रदायिनः । प्रतिश्रयप्रदानेन सुखं यान्ति गृहं स्वयम् ॥१२
सर्वकामसमृद्धेन पथा गच्छन्ति गोप्रदाः । ये न पापानि कुर्वन्ति ते तृप्ता यान्ति नान्यथा ॥१३
[1]आर्तौषधप्रदातारः सुखं यान्ति निराकुलाः । विश्राम्यमाणा गच्छन्ति गुरुशुश्रूषणे रताः ॥१४
पादशौचप्रदानेन शीतलेन पथा व्रजेत् । पादाभ्यङ्गं च यः कुर्यादश्वपृष्ठेन स व्रजेत् ॥१५
हेमरत्नप्रदानेन याति दुर्गाणि निस्तरन् । यानवाहनदानेन नरयानेन गच्छति ॥१६
सर्वकामसमृद्धात्मा भूमिदानेन गच्छति । अन्नपानप्रदानेन पिबन्खादंश्च गच्छति ॥१७
इत्येवमादिभिर्दानैः सुखं यान्ति यमक्षयम्[2] । स्वर्गेऽपि विपुलान्भोगान्प्राप्नुवन्ति[3] नरोत्तम ॥१८
सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम् । सद्यः प्रीतिकरं दिव्यं बलबुद्धिविवर्द्धनम् ॥१९
त्रयाणामपि लोकानां जीवितं ह्युदकं[4] स्मृतम् । पवित्रममृतं दिव्यं शुद्धं सर्वरसायनम् ॥२०
अन्नं पानं च गोवस्त्रभूशय्याच्छत्रमासनम् । परलोके प्रशस्तानि दानान्यष्टौ विशेषतः ॥२१

दान द्वारा छत्रधारी, वस्त्रदान द्वारा दिव्य वस्त्र की प्राप्ति पूर्वक तथा शिविका (पालकी) और अश्व के दान देने से वह सुखपूर्वक वहाँ पहुँचता है। शय्या , आसन के दान, बगीचे लगाने, शीतल छाया प्रदान करने एवं वाटिका प्रदान द्वारा पुष्पक यान से सम्मानपूर्वक वह वहाँ जाता है। देवालय, पतियों के आश्रम, अनाथाश्रम के रचयिता क्रीड़ापूर्वक और देव, अग्नि, विप्र, माता-पिता की पूजा करने वाले, पूज्य होकर यथेच्छ मार्ग से वहाँ जाते हैं। दीपदान, आश्रयदान प्रदान करने वाले प्राणी सभी दिशाओं को प्रकाशित करते हुए गृह की भाँति सुख पूर्वक जाते हैं। गोदान करने वाले प्राणी समस्त कामनाओं की वस्तुओं से परिपूर्ण मार्ग से जाता है, उसी भांति जो पापी पाप नहीं किये हैं वे सदैव तृप्त होकर वहाँ जाते हैं। गरीबों को औषध देने वाले निश्चित सुखपूर्वक गुरु की सेवा करने वाले विश्राम करते हुए, चरण प्रक्षालनार्थ जल देने वाले शीतल मार्ग से तथा विप्रचरण में तेल लगाने वाले सुन्दर घोड़े पर बैठकर वहाँ जाते हैं सुवर्ण जल के प्रदाता अत्यन्त सुखी मार्ग से तथा यान वाहन देने वाला मनुष्य यान पर बैठकर जाता है! भूमिदान करने वाला समस्त कामनाओं से तृप्त अन्न दान देने वाला खाते पीते वहाँ जाता है। नरोत्तम। इस प्रकार दान देने से वह सुखपूर्वक यमलोक की यात्रा के उपरांत स्वर्ग जाकर विपुल सुखों के उपभोग करता है। सभी दानों से श्रेष्ठ अन्नदान है, क्योंकि उससे उसी समय प्रेम और दिव्य बल बुद्धि की वृद्धि होती है। तीनों लोकों में जल ही जीवन कहा गया है, जो पवित्र, दिव्य, अमृत, शुद्ध एवं सम्पूर्ण रसों का गृह है। भोजन, पान, गौ, वस्त्र, भूमि, शय्या, छाता, और आसन यही आठ प्रकार के

---

१. अग्न्यौषधप्रदातारः। २. यमालयम्। ३. प्राप्नोति विविधान्नरः। ४. कथितं पयः।

अन्नदानं विशेषेण धर्मराजपुरे नराः । यस्माद्यान्ति सुखेनैव तस्माद्धर्मं समाचरेत्[१] ।।२२
ये पुनः क्रूरकर्माणः पापा दानविवर्जिताः । ते घोरेण पथा यान्ति दक्षिणेन यमालयम् ।।२३
षडशीतिसहस्राणि योजनानामतीत्य यत् । वैवस्वतपुरं ज्ञेयं नानारूपव्यवस्थितम् ।।२४
समीपस्थमिवाभाति नराणां शुभकर्मणाम्[२] । पापानामतिदूरस्थं पथा रौद्रेण गच्छताम् ।।२५
तीव्रकण्टकयुक्तेन शर्करानिचितेन च । क्षुरधाराभिभैस्तीव्रैः पाषाणैर्निचितेन च ।।२६
क्वचित्पङ्केन महता दुस्तारैश्च खातकैः । लोहसूचिनिभैर्दर्भैः सन्छन्नेन पथा क्वचित् ।।२७
तटप्रपातविष्टम्भैः पर्वतैर्वृक्षसङ्कुलैः । प्रतप्ताङ्गारयुक्तेन यान्ति मार्गेण दुःखिताः ।।२८
क्वचिद्विषमगर्तैश्च क्वचिल्लोष्टैः सुपिच्छिलैः । प्रतप्तवालुकाभिश्च तथा तीक्ष्णैश्च शङ्कुभिः ।।२९
अनेकतापैर्विततैर्व्याप्तं वंशवनं क्वचित् । क्वचिद्वालुकया व्याप्तं कष्टेनैव प्रवेशनम् ।।३०
क्वचिदुष्णांबुना[३] व्याप्तं क्वचित्कारीषवह्निना । क्वचित्सिंहैर्वृकैर्व्याप्तं दंशैः कीटैश्च दारुणैः ।।३१
क्वचिन्महाजलौकाभिः क्वचिच्चाजगरैः पुनः । मक्षिकाभिश्च रौद्राभिः क्वचित्सर्पैर्विषोल्वणैः ।।३२
मत्तमातङ्गयूथैश्च बलोन्मत्तैः प्रमाथिभिः । पन्थानमुल्लिखद्भिश्च तीक्ष्णशृङ्गैर्महावृषैः ।।३३
महाविषाणैर्महिषैरुष्ट्रैर्मत्तैश्च खादकैः । डाकिनीभिश्च[४] रौद्राभिर्विकरालैश्च राक्षसैः ।।३४
व्याधिभिश्च महाघोरैः पीडयमाना व्रजन्ति च । महाधूलीविमिश्रेण महाचण्डेन वायुना ।।३५
महापाषाणवर्षेण हन्यमाना निराश्रयाः । क्वचिद्विद्युत्प्रपातेन[५] दीर्यमाणा व्रजन्ति च ।।३६

दान लोक में अत्यन्त प्रशस्त हैं ।६-२१। विशेषकर अन्न दान द्वारा मनुष्य धर्मराज के नगर सुखपूर्वक जाता है, अतः उस धर्म को अवश्य करना चाहिए । इसी प्रकार जो लोग क्रूरकर्मा, तथा अनेक पाप करते हैं वे अत्यन्त दारुण दक्षिण मार्ग से यम लोक जाते हैं । यहाँ से छियासी योजन की दूरी पार करके प्राणी अनेक भाँति से व्यवस्थित उस यमलोक में जाता है, जो शुभकर्मा प्राणी के लिए अत्यन्त सन्निकट और भीषण मार्ग से जाने वाले पापी के लिए अत्यन्त दूर दिखाई देता है । पापियों के मार्ग में उनके यात्रा के समय कहीं तीखे काँटे, रेत (बालू) की भूमि, कहीं क्षुरा की भांति तीव्र पत्थरों के टुकड़ों की ढेरी, कहीं पंकपूर्ण वह दुस्तर खाईं और कहीं लोहे की सूची (सूई) की भाँति कुशाओं से आच्छन्न रहता है । कहीं पर्वत के गिर जाने से नदी तट के अवरुद्ध मार्ग, कहीं सघन वृक्षों से घिरे, कहीं तप्तांगार पूर्ण उस दुःखदायी मार्ग से चलना पड़ता है । वहीं विषम गढ्ढे, चिकनी भूमि, जलती बालुकायें, तीखे, शंकु (खूंटे), अनेक भाँति से संतप्त करने वाले उस व्याप्त बाँस के जंगलों, कहीं अत्यन्त जलती हुई बालुओं से जाया जाता है, जिसमें प्रवेश करना अत्यन्त कष्टदायक होता है । कहीं संतप्त जल में प्रवेश, कहीं करिष अग्नि द्वारा संताप, कहीं सिंह, भेडिया, उपदंश (दसा) और भीषण कीट व्याप्त रह मार्ग अवरुद्ध किये रहते हैं । कहीं भीषण जलौका, अजगर, रौद्र रूप भक्षिकायें, विषैले सर्प, और कहीं मतवाले उन बलशाली गजराजों और अपनी तीक्ष्ण सीगों द्वारा भूमि खोदते हुए बैलों से मार्ग रुके रहते हैं । उसी प्रकार कहीं कहीं भीषण सींग वाले भैंस ऊँट जो प्राणियों के भक्षक हैं, भयंकर डाकिनी, विकराल राक्षस, तथा घोर व्याधियों से पीडित होते हुए महाधूली से पूर्ण उस प्रचण्ड वायु द्वारा प्रचण्ड पाषाण वर्षा से उपहत निराश्रय, तथा कोई बिजली

---

१. सुखं चरेत् । २. गुरुकर्मणाम् । ३. लोहसूची[illegible] । ४. दुष्टांबुना । ५. शाकिनीभिः ।

महता बाणवर्षेण विध्यमानाश्च सर्वशः । पतद्भिर्वज्रसंघातैरुल्कापातैश्च दारुणैः ।।३७
प्रतप्ताङ्गारवर्षेण दह्यमाना व्रजन्ति च । तप्तेन[१] पांशुवर्षेण पूर्यमाणा रुदन्ति च ।।३८
महामेघरवैर्घोरैर्वित्रास्यन्ते मुहुर्मुहुः । निशितायुधवर्षेण चूर्यमाणा नरैर्वृताः ।।
महाक्षाराम्बुधाराभिः सिच्यमाना द्रवन्ति च ।।३९
महाशीतेन मरुता तीक्ष्णेन परुषेण च । [२]समन्तात्पीड्यमानास्ते शुष्यन्ते सङ्कुचन्ति च ।।४०
इत्थं मार्गेण रौद्रेण पान्थैर्विरहितेन च । निरालम्बेन दुर्गेण निर्जलेन समन्ततः ।।४१
अविश्रामेण महता निर्गतापाश्रयेण च । तमोरूपेण कष्टेन सर्वदुःखाश्रयेण च ।।४२
नीयन्ते देहिनः सर्वे ये मूढाः पापकर्मिणः[३] । यमदूतैर्महाघोरैस्तदाज्ञाकारिभिर्बलात् ।।४३
एकाकिनः पराधीना मित्रबन्धुविवर्जिताः । शोचन्तः स्वानि कर्माणि रुदन्तश्च मुहुर्मुहुः ।।४४
प्रेतभूता विवस्त्राश्च शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः । कृशाङ्गा भीतभीताश्च दह्यमानाः क्षुधाग्निना[४] ।।४५
बद्धा शृङ्खलया केचिदुत्तानाः पादयोर्नराः । आकृष्यन्ते घृष्यमाणा[५] यमदूतैर्बलोत्कटैः ।।४६
पुनश्चाधोमुखाश्चान्ये घृष्टमाणाः सुदुःखिताः । केशपाशनिबद्धाश्च कृष्यन्ते[६] रज्जुभिर्नराः ।।४७
ललाटे चाङ्कुशैस्तीक्ष्णैर्भिन्नाः कृष्यन्ति देहिनः । उत्ताना रटमानाश्च क्वचिदङ्गारवर्त्मना ।।४८

द्वारा अंग विदीर्ण होने के दुःख का अनुभव करते हुए जाता है । कहीं पर उस प्राणी के ऊपर महान् बाणों की वर्षा होती है, जिससे उसके अंग प्रत्यंग अनेक भाँति की पीड़ा होने लगती है । कहीं पर दारुण एवं उल्का और वज्रों के समुदाय से ताड़ित होता है । कहीं पर तप्तांगार के वर्षासे दग्ध होता है । संतप्त बालूकाओं की वर्षा से दग्ध होकर रुदन करते हुए चलते समय उन भीषण महामेघों की गर्जना से बार-बार त्रस्त होता और तीक्ष्ण अस्त्रों की वर्षा से चूर्ण की भाँति होकर आगे बढ़ता है । पश्चात् अत्यन्त खारे जल की धाराओं से सिंचित होकर चलने पर अत्यन्त शीतल, तीक्ष्ण एवं संगविदारक वायु से सम्पूर्ण देह पीडित होने पर उसके अंग प्रत्यंग सूख कर संकुचित हो जाते हैं ।२२-४०। इस प्रकार उस भयानक मार्ग द्वारा, जहाँ पर कुछ पाथेय भी नहीं मिलता है, निराश्रय दुर्ग को पार करते हुए जो विश्राम स्थानों से हीन एवं जलाशयों से वञ्चित है, उस अंधकारमय मार्ग से जो एकान्त दुःखमय है, उस मूढ एवं पाप कर्मा प्राणी को भीषण स्वरूप वाले यमदूत गण ले जाते हैं उस समय उन दूतों की आज्ञाएँ बलात् शिरोधार्य करनी पड़ती है, क्योंकि वह जीव उस स्थान एकाकी, विवश, मित्र बंधु से परित्यक्त, रहता है । वहाँ पहुँचकर वह अपने किये हुए कर्मों के शोक से दुःखी होकर बार-बार रुदन करता है । उस समय वह प्रेत रूप और वस्त्र हीन रहता है, उसके कण्ठ ओष्ठ, और तालु सूखते रहते हैं । कृशित होने के नाते अत्यन्त भयभीत एवं क्षुधा से पीडित होते हैं तथा कोई शृंखला से आबद्ध होकर दोनों चरण ऊपर उलटा लटकाये जाते हैं । वे सबल यमदूत किसी को संत्रस्त कर घसीटते हुए उन्हें नीचे मुख करके घसीटते हैं । जिससे उस प्राणी को कठोर दुःख के अनुभव होते हैं । किसी को उसके केश पाश में रस्सी बाँधकर घसीटते हैं। और किसी को उसके ललाट में तीक्ष्ण अंकुशों में प्रविष्ट कर किसी को उतान कर घसीटते है, जिससे वह करुण रोदन

---

१. महता । २. म्रियमाणास्ते । ३.पापकारिणः । ४. क्रुधाग्निना । ५. कृष्यमाणाः । ६. केशपाशनिबद्धांश्च तान्याम्याः कर्षयन्ति च ।

पाश्चाद्वाहुंसवद्धाश्च जठरे च प्रपीडिताः । पूरिताः शृङ्खलाभिश्च हस्तयोश्च प्रकीलिताः[१] ॥४९
ग्रीवायामर्द्धचन्द्रेण क्षिप्यमाणा इतस्ततः । शिश्ने च वृषणे बद्धा नीयन्ते चर्मरज्जुना ॥५०
विशिन्ना उदरे चान्ये तप्तशृङ्खलया नराः । कृष्टन्ते कर्णयोश्चान्ये भिन्नाश्च चिबुकोपरि ॥५१
छिन्नाग्रपादहस्ताश्च छिन्नकर्णौष्ठनासिकाः । सञ्छिन्नशिश्नवृषणाश्छिन्नभिन्नांगसन्धयः ॥५२
प्रतुद्यमानाः कुन्तैश्च सायकैश्च ततस्ततः । भिद्यमानाः प्रधावन्ति क्रन्दमाना निराश्रयाः ॥५३
मुद्गरैर्ल्लोहदण्डैश्च हन्यमाना मुहुर्मुहुः । कशैश्च विविधैघोरैर्ज्वलिताग्निसमप्रभैः ॥५४
भिन्दिपालैर्विभिद्यन्ते स्रवन्तः पूयशोणितम् । मांसे क्षताश्च क्रुमिभिर्नीयन्ते विवशा नराः ॥५५
याचमानाश्च सलिलमन्नं चापि बुभुक्षिताः । छायां प्रार्थयमानाश्च शीतार्ता बहुवायुना[२] ॥५६
दानहीनाः प्रयान्त्येवं यावन्तो विमुखा नराः । गृहीतदानपाथेयाः सुखं यान्ति यमालयम् ॥५७
एवं पन्थातिकष्टेन प्राप्ता यमपुरं तदा । प्रज्ञापितास्तदा दूतैर्निवेश्यन्ते यमाग्रतः ॥५८
तत्र ये शुभकर्माणस्तांश्च सम्मानयेद्यमः । स्वागतासनदानेन पाद्यार्घेण प्रियेण च ॥५९
धन्या यूयं महात्मान आत्मनो हितकारिणः । येन दिव्यसुखार्थाय भवद्भिः सुकृतं कृतम् ॥६०
इदं विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीभोगभूषितम् । स्वर्गं गच्छध्वमतुलं सर्वकामसमन्वितम् ॥६१

करता है, कहीं अंगार के ऊपर और किसी के हाथ बाँध कर उसके ऊपर तृप्ति करते हैं। किसी को शृंखला से बांधकर उसके हाथ में कील गाड़ देते हैं तथा उसके गले में हांथ डाल इधर ऊधर झोंक देते हैं। किसी के मूत्रेन्द्रिय और अण्डकोष चमड़े से बाँधकर उसे ले जाते है, किसी के उदर को तप्त शृंखला द्वारा विदीर्ण करते हैं, किसी को कान काटकर घसीटते हैं तथा किसी की चिबुक (ठुड्डी)। किसी को हाथ, चरण, कान, ओष्ठ तथा नासिका के विदीर्ण कर, किसी को शिश्न अण्डकोष काटकर किसी को उसके देह की संधियों को विदीर्ण कर पुनः भाले और बाणों द्वारा पीडित करते ले जाते है। अस्त्रों से उनके अंगविदीर्ण करने पर प्राणी करुण क्रन्दन करता हुआ जो निराश्रय रहता है, इधर ऊधर भागता है किन्तु उस समय वे दूत उसे मुद्गर लोढ़े, दंडा से बार-बार प्रताडित करते हैं।४१-५२। किसी को अग्नि के समान कोड़े और भिन्दिपाल अस्त्रों द्वारा आहत करते हैं, जिससे उसके शरीर से पीब और रक्त की धाराएँ निकलने लगती हैं। किसी के मांस को काट काट कर कीड़े खाते रहते हैं। तृष्णा से व्याकुल और क्षुधा से पीडित प्राणी वहाँ बार-बार जल तथा अन्न की याचना किया करता है। उसी भाँति शीत और प्रचण्ड वायु से पीड़ित होकर छाया की प्रार्थना करता है किन्तु दानहीन होने के नाते उसे उससे निराश होकर मार्ग समाप्त करना पड़ता है। दान करने वाले प्राणी उस दान रूप पाथेय समेत वहाँ सुख पूर्वक पहुँचते हैं। और दानहीन प्राणी उपरोक्त कष्ट सहनपूर्वक उस समय यमराज के दूतगण यमराज से निवेदन करते हैं, यमराज भी उसी समय सिंहासन से उठकर उस पुण्यात्मा प्राणी का सम्मान पूर्वक स्वागत करते हैं और आसन पर सुशोभित होने के उपरांत पाद्य तथा प्रिय अर्घ्य (जलपान) आतिथ्य सत्कार करके उससे इस भाँति कहते हैं कि—आप महात्मा लोग अत्यन्त धन्य हैं क्योंकि आत्मा के हितैषी होकर अपने दिव्य सुख की प्राप्ति के लिए सुकृत कर्म को सुसम्पन्न किया है, इसलिए इस सुन्दर विमान पर बैठकर जो दिव्य

---

१. प्रपीडिताः। २. च पुनः पुनः।

ततो भुक्त्वा महाभोगानन्ते पुण्यस्य संक्षयात् । यत्किञ्चिदल्पमशुभं पुनस्तदिह भोक्ष्यथ।। ६२
ते चापि धर्मराजानं पराः पुण्यानुभावतः । पश्यन्ति सौम्यवदनं पितृभूतमिवात्मनः ।।६३
ये पुनः पापकर्माणस्ते पश्यन्ति भयानकम् । पापाविशुद्धनयना विपरीतात्मबुद्धयः ।।६४
दंष्ट्राकरालवदनं भ्रुकुटीकुटिलेक्षणम् । ऊर्ध्वकेशं महाश्मश्रुप्रस्फुरदधरोत्तरम् ।।६५
अष्टादशभुजं क्रुद्धं नीलांजनचयोपमम् । सर्वायुधोद्यतकरं ब्रह्मदण्डेन तर्जकम् ।।६६
महामहिषनारूढं दीप्ताग्निसमलोचनम् । रक्तमाल्यांबरधरं महामेरुमिवोच्छ्रितम् ।।६७
प्रलयाम्बुदनिर्घोषं[1] पिबन्तमिव सागरम् । ग्रसन्तिमिव लोकानामुद्गिरन्तमिवानलम् ।।६८
मृत्युश्च तत्समीपस्थः कालानलसमप्रभः । कालश्चाञ्जनसङ्काशः कृतान्तश्च भयानकः ।।६९
मारी चोग्रा महामारी कालरात्रिः सुदारुणा । विविधा व्याधयः कष्टा नानारूपभयावहाः ।।७०
शक्तिशूलाङ्कुशधराः पाशचक्रासिधारिणः । वज्रदण्डधरा रौद्राः क्षुद्रतूर्णीधनुर्धराः ।।७१
असंख्याता महावीर्याः क्रूराश्चाञ्जनसम्प्रभाः । सर्वायुधोद्यतकरा यमदूता भयानकाः ।।७२
अनेन परिवारेण महाघोरेण सम्वृतम् । यमं पश्यन्ति पापिष्ठाश्चित्रगुप्तं च भीषणम् ।।
निर्भर्त्सयन्तं चात्यन्तं यमं सदुपकारिणम् ।।७३

वनिताओं के उपभोग से भूषित हैं, यथेच्छ कामनाओं की सफलता पूर्वक उस अनुपम स्वर्ग के हैं, यथेच्छ कामनाओं की सफलता पूर्वक उस अनुपम स्वर्ग के लिए प्रस्थान कीजिये। वहाँ महान् भोगों के अनुभव करके अंत में पुण्य के क्षीण होने पर जो कुछ थोड़ा अशुभ वर्ष हैं, उसका फो भोग यहाँ कर लीजियेगा। उस समय पुण्यात्मा प्राणी अपनी पुण्य के प्रभाव से धर्मराज को सुन्दर रूप में देखता है, जो उसे अपने पिता की भाँति मालूम पड़ते हैं।५३-६३। उसी प्रकार पापी प्राणी को उनका रूप भयानक दिखाई पड़ता है। पापी, अशुद्ध नेत्र और प्रतिकूल आत्मबुद्धि होने के नाते वह प्राणी धर्मराज के उस स्वरूप को देखता है, जो बड़े-बड़े भीषण दाँत, करालमुख, भौंहे टेढ़ीकर देखते, लम्बे केश, बड़ी-बड़ी दाढ़ी मोंछे क्रुद्ध होने के नाते कम्पित ओष्ठ, अठारह भुजाओं से युक्त काले पर्वत के समान शरीर तथा समस्त अस्त्रों को हाथों में लिए उस ब्रह्मदंड द्वारा उसे तर्जित करते रहते हैं। विशाल शरीर वाले माहिष पर बैठे, जलती हुई अग्नि की भाँति नेत्र, रक्त वस्त्र और माला पहने, मेरुशिखर के समान ऊँचे, प्रलय कालीन मेघों के समान गर्जन करते हुए सागर का पान करने के समान और लोकों के ग्रसित करने तथा अंगारों के वमन करते हुए दिखाई देते हैं। उनके समीप काले वर्ण एवं प्रज्वलित अग्नि की भाँति प्रभापूर्ण होकर मृत्यु भी स्थित रहती है। उनके उस दरबार में काले पर्वत के समान काल, भयानक कृतान्त, उग्र मारीच, महामारी और अत्यन्त दारुण काल रात्रि तथा अनेक व्याधि गण सदैव वर्तमान रहते हैं जो अत्यन्त भयंकर एवं अनेक भाँति के कष्ट देते हैं, शक्ति, शूल, अंकुश, पाश, चक्र, असि, वज्रदण्ड रौद्र धनुष तथा तूणीर आदि अस्त्रों से सुसज्जित होकर असंख्य रहते हैं। वहाँ के यमदूत भी असंख्य, महापराक्रमी, क्रूर और काले पर्वत की भाँति प्रभा से पूर्ण रहते हैं, अपने समस्त अस्त्रों से सुसज्जित होकर दिखाई देते हैं। इन समस्त घोर परिवार से युक्त उन भयंकर यमराज को वह पापी प्राणी देखता है।६४-७२। उसे वहाँ स्थित चित्रगुप्त भी

---

१. अश्नन्तमिव त्रैलोक्यम् ।

चित्रगुप्तश्च भगवान्धर्मवाक्यैः प्रबोधयन् । भोभो दुष्कृतकर्माणः परद्रव्यापहारिणः ।।
गर्विता रूपवीर्येण परदारविमर्दकाः ।।७४
यत्स्वयं क्रियते कर्म तत्स्वयं भुज्यते पुनः । तत्किमात्मोपघातार्थं भवद्भिर्दुष्कृतं कृतम् ।।७५
इदानीं किं प्रतप्यध्वं पीडयमानाःस्वकर्मभिः । भुञ्जध्वं स्वानि कर्माणि नात्र दोषोऽस्ति कस्यचित् ।।७६
एते च पृथिवीपालाः सम्प्राप्ता मत्समीपतः । स्वकीयैः कर्मभिर्घोरैर्दुष्प्राज्ञा बलगर्विताः ।।७७
भोभो नृपः दुराचाराः प्रजादिध्वंसकारिणः । अल्पकालस्य राज्यस्य कृते किं दुष्कृतं कृतम् ।।७८
राज्यलोभेन मोहाद्वा बलादन्यायतः प्रजाः । यत्पीडिताः फलं तस्य भुञ्जध्वमधुना नृपाः ।।७९
कृतं राज्यं कलत्रं च यदर्थमशुभं कृतम् । तत्सर्वं सम्परित्यज्य यूयमेकाकिनः स्थिताः ।।८०
पश्याम तद्बलं तुभ्यं[1] येन विध्वंसिताः प्रजाः । यमदूतैस्ताडयमाना अधुना कीदृशं भवेत् ।।८१
एवंबहुविधैर्वाक्यैरुपालब्धा यमेन ते । शोचन्तः स्वानि कर्माणि तूष्णीं तिष्ठन्ति पार्थिव ।।८२
इति धर्मं समादिश्य नृपाणां धर्मराट् पुनः । तत्पापपङ्कशुद्ध्यर्थमिदं वचनमब्रवीत् ।।८३
भोभोश्चण्ड महाचण्ड गृहीत्वा नृपतीनिमान्[2] । विशोधयध्वं पापेभ्यः[3] क्रमेण नरकाग्निषु ।।८४
ततः शीघ्रं समुत्थाय नृपान्संगृह्य पादयोः । भ्रामयित्वातिवेगेन विक्षिप्योर्ध्वं विगृह्य[4] च ।।८५

भीषण रूप में दिखाई देते हैं, जो सदुपकारी यम को सम्बोधित किया करते हैं । भगवान्, चित्रगुप्त अपने धार्मिक प्रवचनों द्वारा पापी प्राणियों को सम्बोधित करते हैं कि पाप कर्म करने वाले प्राणी वृन्द ! तुम लोगों ने दूसरे के धनों का अपहरण किया है, अपने रूप तथा पराक्रम से मदान्ध होकर पर स्त्री का उपभोग किया है, जैसा कर्म किया जाता है उसका फल अवश्य भोग किया जाता है, अतः तुम लोगों ने आत्महनन पूर्वक उन दुष्कृत कर्मों को क्यों अपनाया और इस समय अपने कर्मों से पीड़ित होने पर क्यों संतप्त हो रहे हो । जैसे कर्म किये हो वैसे ही फलों के भी उपभोग करो, इसमें किसी का दोष नहीं है । अनन्तर राजाओं को भी सम्बोधित करते हैं कि—महीपतिगण ! अपनी दुर्बुद्धि एवं बल से गर्वित होकर तुम लोगों ने अपने कर्मों द्वारा यहाँ प्रस्थान किया है तथा अपने दुराचारों द्वारा प्रजाओं को निर्मूल किया है राज के उस अल्प कालीन भोग करने के लोभ से इस प्रकार कर्म क्यों किया और राज्य लोभ, मोह, बल अथवा अन्याय से प्रजाओं को पीड़ित क्यों किया, अब उसके समुचित फलों के उपभोग करो । जिस राज्य एवं स्त्री के लिए इस पाप कर्म को किया है, उन्हें छोड़कर यहाँ तो तुम लोग अकेले ही इस यातना को भोग रहे हो ।७३-८०। तथा मैं तुम्हारे उस बल को भी देखता हूँ, जिससे मदान्ध होकर तुम लोगों ने प्रजाओं का नाश किया है अब दूतों द्वारा आहत होने पर कैसा अनुभव हो रहा है । राजन् ! इस प्रकार के अनेक वाक्यों के कहने पर वे प्राणी अपने किये पर पश्चाताप प्रकट करते हुए मौन स्थित रहते हैं। पश्चात् धर्मराज राजाओं के उपदेश करके उनके पाप शोधनार्थ अपने दूतों से कहते हैं कि—चण्ड महाचण्ड ! इन राजाओं के पाप शोधनार्थ क्रमशः नरक रूपी अग्नि में डाल दो। इसे सुनकर वे दूतगण शीघ्रता से शुरू कर राजाओं के चरण पकड़कर अत्यन्त वेग से घुमाकर ऊपर

---

१. तुभ्यं तवेत्यर्थः—[illegible] र्थे चतुर्थी । २. बलात् । ३. पापिष्ठान् । ४. प्रगृह्य ।

सर्दप्राणेन महता सुतप्ते तु शिलातले । आस्फालयन्ति[1] तरसा वज्रेणेव महाद्रुमम् ।।८६
ततः स रक्तस्रोतोभिः स्रवते जर्जरीकृतः । स निःसंज्ञस्तदा देही निश्चेष्टः सम्प्रजायते ।।८७
ततः स वायुना स्पृष्टः शनैरुज्जीवते पुनः । ततः पापविशुद्धयर्थं क्षिप्यते नरकार्णवे ।।८८
अष्टाविंशतिरेवाधः क्षितेर्नरककोटयः । सप्तमस्य तलस्यान्ते घोरे तमसि संस्थिताः ।।८९
रौरवप्रभृतीनां च नरकाणां शतं स्मृतम् । चत्वारिंशत्समधिकं महानरकमण्डलम् ।।९०
येषु[2] पापाः प्रपच्यन्ते नराः कर्मानुरूपतः । यातनाभिर्विचित्राभिराकर्मप्रक्षयाद् भृशम्[3] ।।९१
आ मलप्रक्षयाद्यद्वदग्नौ धास्यन्ति धातवः । तथा पापक्षयात्पापाश्शोध्यन्ते नरकाग्निषु ।।९२
सुगाढहस्तया बाढं तप्तशृङ्खलया नराः । महावृक्षाग्रशाखायां लम्ब्यन्ते यमकिङ्करैः ।।९३
ततस्ते सर्पयन्त्रेण क्षिप्ता दोल्यन्ति किङ्करैः । दोल्यन्तश्चातिवेगेन निःसंज्ञा यान्ति योजनम् ।।९४
अन्तरिक्षस्थितानां च लोहभारशतं ततः । पादयोर्बध्यते तेषां यमदूतैर्महाबलैः ।।९५
तेन भारेण महता भृशमातर्दिता नराः । ध्यायन्तः स्वानि कर्माणि तूष्णीं तिष्ठन्ति विह्वलाः ।।९६
ज्वालाभिरग्निवर्णाभिर्ल्लोहदंडैः सकंटकैः । हन्यन्ते किंकरैर्घोरैः समन्तात्पापकारिणः ।।९७
ततः क्षारेण दीप्तेन वह्नेरपि विशेषतः । समन्ततः प्रलिप्यन्ते क्षतांगा जर्ज्जरीकृताः ।।९८
पुनर्विदार्य चांगेषु शिरसः प्रभृति क्रमात् । वृन्ताकवत्प्रपच्यन्ते तप्ततैलकटाहके ।।९९

फेंक देते हैं, पुनः बीच में उन्हें पकड़ कर अत्यन्त संतप्त शिलातल पर महान् वृक्ष को वज्र की भाँति अत्यन्त वेग से पटक कर विदीर्ण करते हैं, जिससे उसके जर्जर अंगों से रक्त की धारा निकलती है । उस मर्म भेदी आघात से आहत होकर वह प्राणी एकदम मूर्च्छित हो कर निष्प्राण हो जाता है किन्तु वायु के स्पर्श करने पर पुनः जीवित होता है । पश्चात् उसके पाप शुद्धचर्थ उन अठ्ठाईस नरक कुण्डों में डाल देते हैं जो सागर की भाँति विशाल गम्भीर पृथ्वी के नीचे स्थित हैं । सातवें तल नामक लोक के अंत में रौरव आदि नामक वे भीषण नरक एक सौ चालीस की संख्या में स्थित हैं । उन्हीं में वह पापी प्राणी अपने दुष्कृत के अनुरूप फल का अनुभव करता है ।८१-९१। जितने समय तक मल रहता है उतने समय तक अग्नि में धातुओं के जलते रहने की भाँति जब तक कर्म का क्षय नहीं होता है, अनेक भाँति की यातनाओं से पीड़ित होते रहते हैं । पापों के क्षीण होने के लिए नरक रूपी अग्नि में किसी को डालते हैं, किसी को अत्यन्त संतप्त शृंखला से उसके हाथ बाँधकर कर विशाल वृक्ष की ऊँची शाखा में वे यमदूत लटका देते हैं । वहाँ पीड़ित करने के उपरांत सर्पयंत्र द्वारा उसे पीड़ित करते हैं उस समय वह प्राणी वेग से भागते हुए मूर्च्छित होता है । उसके अंतरिक्ष में भागने पर वली यमदूत गण अत्यन्त भार से युक्त लोहे को उसके पैर में बाँध देते हैं जिसके भार से अत्यन्त दुखी होकर वह प्राणी अपने किये कर्म के लिए शोक करता हुआ मौन होकर उन यातनाओं का सहन करता है । यमदूत अग्नि की भाँति प्रज्वलित लोह दंडों से जिसमें वड़े-बड़े काँटे लगे रहते हैं, उन पापियों को आहत करते हैं । पुनः प्रदीप्त अग्नि के अंगारों से उनके अंग जलाते हैं जिससे उनके अंग अत्यन्त जर्जर हो जाते है तथा पश्चात् उनके शिर आदि अंगों को विदीर्ण करते ही रहते

---

१. आस्फोटयन्ति । २. एषु । ३. बुध्यन्ते स्वानि कर्माणि कृष्यन्ते यमकिंकरैः ।

विष्टापूर्णे ततः कूपे कृमीणां निचये ततः । मेदस्त्वक्पूयपूर्णायां वाप्यां[1] क्षिप्यन्ति ते पुनः ।।१००
भक्ष्यन्ते कृमिभिस्तीक्ष्णैर्लोहतुण्डैश्च वायसैः । श्वभिर्दंशैर्वृकैर्घोरैर्व्याघ्रैरप्यथ[2] वानरैः ।।१०१
पच्यन्ते मांसवच्चापि प्रदीप्ताङ्गारराशिषु[3] । प्रोताः शूलेषु तीक्ष्णेषु नराः पापेन कर्मणा ।।१०२
तिलपिण्डैरिवाक्रम्य घोरैः कर्मभिरात्मनः । तिलवत्सम्प्रपीड्यन्ते चक्राख्ये नरके तथा ।।१०३
भिद्यन्ते चापि तल्पेषु लोहभ्राष्ट्रेष्वनेकधा । तैलपूर्णकटाहेषु सुतप्तेषु पुनः पुनः ।।१०४
बहुशः पीड्यते जिह्वा याऽसत्यप्रियवादिनी । सन्दंशेन सुतप्तेन प्रपीड्यन्ते च पादयोः ।।१०५
मिथ्यागमप्रवक्तुश्च द्विजिह्वस्य च निर्गता । जिह्वार्द्धक्रोशविस्तीर्णा हलैस्तीक्ष्णैश्च बाध्यते ।।१०६
निर्भर्त्सयन्ति ये क्रूरा मातरं पितरं गुरुम् । तेषां पक्ष उलूकाभिर्मुखमापूर्य सेव्यते ।।१०७
ततः क्षारेण दीप्तेन ताम्रेण तु पुनः पुनः । हतेनापूर्यतेऽत्यर्थं तप्ततैलैश्च तन्मुखम् ।।१०८
इतस्ततः पुनर्वक्त्रं भृशमापूर्य हन्यते । विष्ठाभिः कृमिभिश्चापि सुवर्णहरणैर्नरः ।।१०९
परिष्वजति चात्युग्रां प्रदीप्तां लोहशाल्मलीम् । हन्यते पृष्ठदेशे च पुनस्तीक्ष्णैर्महाघनैः ।।११०
दतुरेणातिकूटेन क्रकचेन बलीयसा । शिरः प्रभृति पादान्तं घोरैः कर्मभिरात्मजैः ।।
खाद्यते स्वानि[4] मांसानि पायते शोणितं स्वकम् ।।१११

हैं । अत्यन्त संतप्त तेल से पूर्ण उस कराह (कड़ाहे) में फल गुच्छे की भाँति पक जाने पर उस प्राणी को विष्ठा एवं कीटाणुओं से पूर्ण उस नरक कुण्ड में डालते हैं, जिसमें मेदा, त्वक, और पीब से भरा रहता है । पापियों के मांस कीड़ों के काटने के उपरांत लोहे के समान तीक्ष्ण अपनी उन चोंच द्वारा वहाँ के कौये काटते और खाते हैं और उसी भाँति किसी के मांस कुत्ता, हंसा, भेड़िया तथा वाघ भक्षण करते है । कहीं पर प्रदीप्त अंगारों में उनकी मांस मांस की भाँति पकाते हैं । कहीं पर प्राणी तीक्ष्ण शूलों द्वारा मर्माहत होता है प्राणी तिलपिंड की भाँति अपने घोर कर्मों से आक्रान्त हैं चक्र यंत्र में तिल की भाँति पूर्ण किया जाता है । किसी को ऊँची अट्टालिका से गिरा कर विदीर्ण लोहे की भट्टी में जलाकर अनेक टुकड़े संतप्त तेल से पूर्ण कराहें में डालकर बार-बार पीड़ित करते हैं । असत्य बोलने वाली जिह्वा को अनेक भाँति से पीड़ित करते हैं पश्चात् हिंसक जन्तुओं से संदंशन संतप्त तेल में दाह तथा उनके चरण में पीड़ा पहुँचाते हैं । शास्त्रों को असत्य कहने वाले प्राणी सर्पयंत्र में डाल दिये जाते हैं, पश्चात् उनकी जिह्वा, आधे कराहे के लम्बे एवं तीक्ष्ण दलों द्वारा पीड़ित होती है । जो अपनी माता, पिता, तथा गुरु की भर्त्सना करता है उसके वक्षःस्थल भाग को उलूक आदि पक्षीगण तीक्ष्ण चोंच से भक्षण करते हैं । पश्चात् खार, दीप्त एवं ताँबे के अस्त्रों से उसे मृतक बनाते हैं, जीवित होने पर उसके मुख में संतप्त तेल डालते हैं ।९२-१०८। इधर उधर करने पर उसके मुख में बार-बार तेल डाला करते हैं। सुवर्ण की चोरी करने वाले विष्ठा और कृमि पूर्ण कुण्डों में डालकर उसकी वेदना भोगने के उपरांत लोहे की उसी भाँति प्रतप्त शलाका से आलिङ्गन करते हैं। तदनन्तर उसके पीठ में महाधन द्वारा आधात भी। कोई प्राणी वहाँ लोहे के उस आरा द्वारा जिसमें तीक्ष्ण दाँत की भाँति बने रहते हैं, शिर से प्रारम्भ कर चरण तक विदीर्ण किये जाते हैं। (कोई अपने कर्मों के फलस्वरूप अपने मांस के भक्षण और शोणित पान करते हैं।) जिन मूढ़ों ने अन्नपान के दान नहीं किये हैं

---

१. द्रोण्यवाम् । २. व्याघ्रैश्च विरुताननैः । ३. दीप्ताङ्गारप्रदीप्तिषु । ४. ह्रस्वमांसानि ।

अन्नं पानं न दत्तं यैर्मूढैर्नाप्यनुमोदितम् । इक्षुवत्ते प्रपीड्यन्ते जर्जरीकृतमस्तकाः ।।११२
असितालवने घोरे च्छिद्यन्ते खण्डखण्डशः । सूचीभिर्भिन्नसर्वाङ्गास्तप्तशूलप्ररोपिताः ।।
सम्बाध्यमाना विवशाः क्लिश्यन्ते न म्रियन्ति वै ।।११३
देहादुत्साद्यमांसानि भिद्यन्तेऽस्थीनि[1] मुद्गरैः । दृष्टिराकृष्यते तूर्णं यमदूतैर्बलोत्कटैः ।।११४
निरस्तास्ते निरुच्छ्वासास्तिष्ठन्ति नरके ध्रुवम् । उच्छ्वसन्ति सदा श्वासैर्वालुकावदनावृताः ।।११५
रौरवे रोदमानाश्च पीड्यन्ते विविधैः शरैः । महारौरवपीडाभिर्महतीभिस्तदन्तिके ।।११६
पदोरास्ये गुदे चैव पार्श्वे चोरसि मस्तके । निखन्यन्ते घनैस्तीक्ष्णैः सुतप्तैर्लोहशङ्कुभिः ।।११७
सुतप्तवालुकायां च प्रलुठ्यन्ते[2] पुनः पुनः । जतुपङ्के भृशं तप्ते क्षिप्राः क्रन्दन्ति विस्तरम् ।।११८
तेनतेनैव रूपेण हसन्ते पारदारिकम् । गाढमालिङ्ग्यते नारीं ज्वलन्तीं लोहनिर्मिताम् ।।११९
पूर्वाकारं च पुरुषं प्रज्वलन्तं समन्ततः । दुश्चारिणीः स्त्रियो गाढमालिंगन्ति वदन्ति[3] च ।।१२०
किं प्रधावसि वेगेन ते न मोक्षोऽस्ति साम्प्रतम् । लङ्घितस्ते यथा भर्ता पापं भुंक्ष्व तथाधुना[4] ।।१२१
लोहकुम्भे तथा क्षिप्ताः सविधानैः शनैः शनैः । मृद्वग्निनाथ पच्यन्ते स्वपापैरेव मानवाः ।।१२२

और न उसके अनुमोदन ही । वे ऊख की भाँति लोह यंत्र (कोल्हू) में डालकर पेरे जाते हैं । उस घोर ताल वन में जिसके पत्र तलवार की भाँति तीक्ष्ण होते हैं, चलने पर उस प्राणी के अंग उन पत्रों द्वारा खण्ड-खण्ड हो जाते हैं, किसी के अंग सूची (सूई) द्वारा विदीर्ण किये जा रहे हैं, कोई शूल द्वारा आहत हो रहा है । विवश होकर प्राणी उन दण्डों के अनुभव करता है किन्तु उसके प्राण निकलते नहीं । यमराज के सबल दूतगण किसी के देह से मांस निकाल रहे हैं, मुद्गरों के आघात द्वारा किसी की अस्थियाँ (हड्डियाँ) तोड़ी जा रही हैं । किसी की आँख निकाल कर उसे घसीट रहे हैं, और वे प्राणी उसके सहन पूर्वक नरक में पड़े रहते हैं । वहाँ दीर्घ श्वास (लम्बी) श्वांस भी लेना कठिन होता है क्योंकि दीर्घ निःश्वास लेने के समय यमदूत उस प्राणी के मुख में बालुकाएँ झोंक देते हैं । कहीं रौरव नरक में प्राणी अनेक भाँति के दाणों से आहत होकर रोदन कर रहा है । कहीं कोई महारौरव नरक की उस घोर पीड़ा से व्यथित हो रहा है । उसी के समीप स्थित कर उस प्राणी के, जिसने पर स्त्री के उपभोग किया है, चरण, मुख, गुदा, वक्षःस्थल, हृदय, एवं मस्तक में संतप्त लोहे की कील गाड़ते हैं जो दृढ़ तथा तीक्ष्ण रहता है अनन्तर अत्यन्त बालुका में उसे घसीटते रहने के उपरांत संतप्त लोह के पंक में उसे डाल देते हैं, जिससे वह सदैव करुण क्रन्दन ही करता रहता है, किन्तु इन सभी यातनाओं के प्रदान पूर्वक वे यम दूत उसकी विकलता देखकर हँसते रहते हैं । तदुपरान्त उसकी प्रेमिका की एक लोहे की उसी भाँति की प्रतिमा से जो अग्नि से अत्यन्त प्रज्वलित रहती है, उसका दृढालिङ्गन करते हैं उसी प्रकार उस दुराचारिणी स्त्री को भी उसके प्रेमी पुरुष की लौह प्रतिमा से जो आनुपूर्व तत्समान बना एवं अग्नि द्वारा अत्यन्त प्रज्वलित रहता है, उसका दृढ़ालिङ्गन कराते हैं । उस समय यमदूत उससे कहते भी हैं कि क्यों इधर-उधर वेग से दौड़ रही है, अपने पति की मान मर्यादाओं का जिस प्रकार उल्लघंन किया है, इस समय उसके फल का अनुभव करो पश्चात् तुम्हें मुक्त कर दिया जायगा ।१०९-१२१। जिस प्रकार लोहे के घड़े में डालकर धीरे-धीरे मन्द अग्नि द्वारा

---

१. अशिवमुद्गरैः । २. जल्पन्ते । ३. तदा नरम् । ४. तथाविधम् ।

स्वणन्त्युदूखले साम्राः प्रक्षिप्यन्ते शिलासु च । क्षिप्यन्ते चान्धकूपेषु दश्यन्ते भ्रमरैर्भृशम् ॥१२३
कृमिभिर्भिन्नसर्वांगाः शतशो जर्जरीकृताः । सुतीक्ष्णक्षारकूपेषु क्षिप्यन्ते तदनन्तरम् ॥१२४
महाज्वाले च नरके पापाः फूत्कारयन्ति च । इतस्ततश्च धावन्ति दह्यमानास्तदर्च्चिषा ॥१२५
पृष्ठे चानीय जङ्घे द्वे विन्यस्ते स्कन्धयोः स्थिते । तयोर्मध्येन चाकृष्य बाहुपृष्ठेन गाढतः ॥
दद्धाः परस्परं सर्वं सुदृढं गाढरज्जुभिः ॥१२६
पीडयन्ति सुसंरब्धा भ्रमरास्तीक्ष्णलोहजाः । मानिनां क्रोधिनां चैव पुरा पापस्य संशयात् ॥१२७
पापानां नरके पुंसां घृष्यते चन्दनं यथा । शरीराभ्यन्तरगतं तरुणानां च दारुणम् ॥१२८
पिण्डबन्धः स्मृतो याम्यो महाज्वालेषु यातनाः । रज्जुभिर्वेष्टिताङ्गाश्च प्रलिप्ताः कर्दमेन च ॥
करीषरक्षवह्नौ च पच्यन्ते न म्रियन्ति च ॥१२९
सुतीक्ष्णक्षारतोयेन शर्करासु शिलासु च । आ पापसंक्षयात्पापा घृष्यन्ते चन्दनं यथा ॥१३०
शरीराभ्यन्तरगतैः प्रभूतैः कृमिभिर्नराः । भक्ष्यन्ते तीक्ष्णवदनैरादेहप्रक्षयाद् भृशम् ॥१३१
कृमीणां निचये क्षिप्ताः पूतिमांसस्य राशिषु । तिष्ठन्त्युद्विग्नहृदयाः पर्वताभ्यां च पीडिताः ॥१३२
सुतप्तवज्रलेपेन शरीरमनुलिप्यते । अधोमुखोर्ध्वपादाश्च[1] धृतास्तप्यन्ति वह्निषु ॥१३३
वदनान्ते प्रविन्यस्तं सुतप्तायोमयं गुडम् । ते खादन्ति पराधीना हन्यमानास्तु मुद्गरैः ॥१३४

पकाया जाता है उसी भाँति अपने पापों द्वारा मनुष्य वहाँ पकता रहता है । कोई ओखली में डालकर कूटा जा रहा है, कोई शिला पर पटका जा रहा है, किसी को अंध (जलहीन) कूप में डाल देते हैं, जहाँ भ्रमरगण उसके मांस नोचते रहते हैं । कीटाणुओं द्वारा समस्त अंगों के विदीर्ण होने पर जब वह भली भाँति जर्जर हो जाता है, अत्यन्त तीक्ष्ण एवं खार कूप में उसे डाल देते हैं । महा ज्वालाओं से पूर्ण नरक में पहुँच कर पापी प्राणी फूत्कार (फू-फू) करते हैं, उसकी किरणों से संतप्त होने पर इधर-उधर भागते हैं । किसी को उसकी पीठ की ओर दोनों जंघाओं को लाकर दोनों के मध्य में भुजाओं को भी खींच कर अत्यन्त दृढ रस्सी से बाँधकर लोहे की तीक्ष्ण भ्रमर द्वारा उसे पीड़ित करते हैं । मानी एवं क्रोधी प्राणी को उनके पाप शोधनार्थ नरक में डालकर चन्दन की भाँति घिसते हैं । कहीं तरुणों के शरीर में दारुण पीड़ा हो रही है । इस भाँति के दृश्य देखकर उस दक्षिण दिशा में स्थित यमपुरी का स्मृति अवश्य रखनी चाहिए, जो अत्यन्त ज्वाला रूप है वहाँ अनेक भाँति की यातनाएँ प्राणियों को मिलती रहती हैं । किसी को सम्पूर्ण अंग रस्सी से द्वारा बाँध कर जिस अंग में कीचड़ लिपटा रहता है, सूखे उपले की प्रदीप्त अग्नि में पकाते हैं, किन्तु वह मृतक नहीं होने पाता ।१२२-१२९। किसी को तीक्ष्ण, खार बालूका और पत्थर की शिलाओं पर उसके पाप के अनुसार चन्दन की भाँति घिसते हैं। किसी के शरीर में असंख्य कीडे प्रविष्ट होकर अपने तीक्ष्ण मुखों द्वारा उसके मांस काटकर खाया करते हैं। कीडों के समूहों तथा पीबमांस की ढेरी में प्राणी को डालने और पर्वतों द्वारा पीड़ित होने पर वह उद्विग्न होकर पलायन करना चाहता है, किन्तु अत्यन्त तप्त वज्र लेप से उसकी शरीर लिप्त करते हैं । किसी को नीचे मुख ऊपर पैर करके अग्नि कुण्ड में डाल देते हैं अनन्तर उसके मुख में गुड़ की भाँति सुदीप्त लोहे के गोले डालते हैं, जिससे विवश होकर

---

१. अधःशिरोर्ध्वपादाश्च ।

ये शिवायतनारामवापीकूपमठाङ्गणात् । अभिद्रवन्ति पापिष्ठा नरास्तत्र वसन्ति च ।।१३५
व्यायामोद्वर्तनाभ्यंगस्नानमापानभोजनम् । क्रीडनं मैथुनं द्यूतमाचरन्ति रमन्ति च ।।१३६
ते बाधैर्विविधैर्घोरैरिक्षुयन्त्रादिपीडनैः । निरयाग्निषु पच्यन्ते यावदाचन्द्रतारकम् ।।१३७
ये शृण्वन्ति गुरोर्निन्दां तेषां कर्णः प्रपूर्यते । अग्निवर्णैरयः कीलैस्तप्तताम्रादिभिर्द्रुतैः ।।१३८
त्रपुसीसारकूटाद्यैः क्षारेण जतुना पुनः । क्रमादापूर्यते कर्णो नरकेषु च यातनाः ।।
अनुक्रमेण सर्वेषु भवन्त्येताः समन्ततः ।।१३९
सर्वेन्द्रियाणामप्येवं क्रमात्पापेन यातनाः । भवन्ति घोराः प्रत्येकं शरीरे तत्कृतेन च ।।१४०
स्पर्शलोभेन ये मूढाः संस्पृशन्ति परस्त्रियम् । तेषां त्वगग्निवर्णाभिः सूचीभिः पूर्यते भृशम् ।।१४१
ततः क्षारादिभिः सर्वैः शरीरमनुलिप्यते । यातना च महाकष्टा सर्वेषु नरकेषु च ।।१४२
गुरोः कुर्वन्ति भ्रुकुटिं क्रूरं चक्षुश्च ये नराः । परदारांश्च पश्यन्ति लुब्धाः स्निग्धेन चक्षुषा ।।१४३
सूचीभिरग्निवर्णाभिस्तेषां नेत्रं प्रपूर्यते । क्षाराद्यैश्च क्रमात्सर्वैर्देहे सर्वाश्च यातनाः ।।१४४
देवाग्निगुरुविप्राणां येऽनिवेद्य प्रभुञ्जते । लोहकीलशतैस्तप्तैस्तज्जिह्वास्यं प्रपूर्यते ।।१४५
ततः क्षारेण दीप्तेन तैलताम्रादिभिः क्रमात् । शरीरे च महाघोराश्चित्रा नरकयातनाः ।।१४६
ये शिवारामपुष्पाणि[1] लोभात्संगृह्य पाणिना । जिघ्रन्ति मूढमनसः शिरसा धारयन्ति च ।।१४७

उस प्राणी को खाना पड़ता है न खाने पर मुद्गरों के आघात से पीड़ित करते हैं। जो पापी प्राणी शिवालय, बगीचे, बावली, कूप एवं मठ को नष्ट कर वहाँ घर बना कर निवास करता है अथवा उन स्थानों पर व्यायाम, उबटन लगाना अभ्यंग स्नान, पान, भोजन, क्रीडन, मैथुन एवं द्यूत क्रीडा करते कराते हैं वे अनेक भाँति की घोर यातना, और ऊँखयंत्र (कोल्हू) में पीड़ित होने के उपरांत नरक की अग्नि में चन्द्रमा तथा ताराओं के स्थित समय तक पकते रहते हैं। जो गुरु की निन्दा सुनते हैं, उनके दोनों कान अग्नि के समान प्रदीप्त लोहे की कील, संतप्त ताँबा, रांगा, सीसा के टुकड़े से भर कर ऊपर से तप्त लाह डालते हैं। इस प्रकार उसकी समस्त देह को क्रमशः पीड़ित करते रहते हैं। जिसमें समस्त इन्द्रियाँ क्रमशः यातनाओं द्वारा व्याकुल होती हैं। इसी भाँति प्रत्येक पापी प्राणी को यहाँ दुःख यातना अनुभव करना पड़ता है। जिस मूढ ने स्पर्श लोभ से परस्त्री का स्पर्श किया है, उसके देह की त्वक् इन्द्रिय (देह की ऊपरी खाल) अग्नि संतप्त सूची द्वारा विदीर्ण की जाती है।१३०-१४१। पश्चात् खार आदि समस्त उपरोक्त पदार्थों के लेपन उसके शरीर में करते हैं तथा क्रमशः समस्त नरकों की यातना के अनुभव भी। जो पुरुष अपने गुरु के ऊपर भौहें टेढ़ी करता है, दूसरे की पत्नी पर मुग्ध होकर स्नेह दृष्टि से देखता है, उसके नेत्र में अग्नि की भाँति प्रज्वलित सूची डाली जाती है और खार पदार्थों के लेपन पूर्वक क्रमशः सभी नरकों की यातनाओं के अनुभव कराते हैं। देव, अग्नि, गुरु और विप्रों को विना समर्पित किये वस्तु के भक्षण जो प्राणी करता है, उसकी जिह्वा लोहे की सैकड़ों संतप्त कीलों से छेदी जाती है। अनन्तर क्षार पदार्थों के लेपन पूर्वक तेल कुण्ड के अनुभव ताँबे आदि के दुःख सहन करके पुनः उसके शरीर नरकों की चित्र विचित्र यातनाओं से पीड़ित होती है। जो पुरुष देवता के बगीचे के पुष्पों को तोड़कर सूंघते या

---

१. ये देवांरामपुष्पाणि।

आपूर्यते शिरस्तेषां सुतप्तैर्लोहशंकुभिः । नासिका चातिबहुशस्ततः क्षारादिभिः पुनः ।।१४८
ये निन्दन्ति महात्मानमाचार्यं धर्मदेशिकम् । शिवभक्तांश्च ये मूढाः शिवधर्मं[1] च शाश्वतम् ।।१४९
तेषामुरसि कंठे च जिह्वायां दन्तसन्धिषु । तालुकोष्ठे च नासायां मूर्ध्नि सर्वाङ्गसन्धिषु ।।१५०
अग्निवर्णाः सुतप्ताश्च त्रिशिखा लोहशंकवः । आखन्यन्ते सुबहुशः स्थानेष्वेतेषु मुद्गरैः ।।१५१
ततः क्षारेण तप्तेन ताम्रेण त्रपुणा पुनः । तप्ततैलादिभिः सर्वैरापूर्यन्ते समंततः ।।१५२
क्षारताम्रादिभिर्दीप्तैर्दह्यन्ते बहुशः पुनः । नरकेषु च सर्वेषु विचित्रा देह्या तनाः ।।१५३
भवन्ति बहुशः कष्टाः पाणिपादसमुद्भवाः । शिवायतनपर्यंते[2] शिवारामे च कुत्रचित् ।।१५४
समुत्सृजंति ये पापाः पुरीषं मूत्रमेव वा । तेषां लिंगं सवृषणं चूर्ण्यते लोहमुद्गरैः ।।१५५
सूचीभिरग्निवर्णाभिस्ततश्चापूर्यते पुनः[3] । लोहदण्डश्च सुमहानग्निवर्णः सकण्टकः ।।
[4]आखन्यते गुदे तेषां यावन्मूर्ध्नि विनिर्गतः ।।१५६
ततः क्षारेण महता ताम्रेण त्रपुणा पुनः । द्रुतेनापूर्यते गाढं गुदं शिश्नं हि देहिनाम् ।।१५७
मनः सर्वेन्द्रियाणां च यस्मादुक्तं प्रवर्त्तकम् । तस्मादिन्द्रियदुःखेन जायते तत्सुदुःखितम् ।।१५८
धने सत्यपि ये दानं न प्रयच्छन्ति तृष्णया । अतिथिं चावमन्यन्ते कालप्राप्तं गृहाश्रमे ।।१५९
ते लोहतोरणे बद्धा हस्तपादावताडिताः । विदारितांगाः शुष्यन्ते तिष्ठन्त्यब्दशतं नराः ।।१६०
हस्तपादललाटेषु कीलिता लोहशंकुभिः । नित्यं च नौवृतं वक्त्रं कीलकद्वयनाडितम् ।।१६१

शिर, कान पर धारण करते हैं, उनके शिर में लोहे की अनेक संतप्त कीलें गाड़ दी जाती हैं । उसी भाँति नासिका को भी पीड़ित कर उसकी शरीर क्षार आदि पदार्थों से क्रमशः पीड़ित की जाती है । धर्म, देश के आचार्यों तथा महात्माओं शिवभक्त अथवा शैव धर्म की निन्दा करने वाले प्राणी के हृदय कंठ, जिह्वा, दाँतों की संधि, तालु, ओष्ठ, नासिका, शिर एवं समस्त अंगों की संधियों में अग्नि की भाँति लोहे के प्रज्वलित त्रिशूल से छेदन करके उनके शरीर मुद्गरों के आघातों से पीड़ित करते हैं । पश्चात् तप्त खार, ताँबा, रांगा के टुकड़े तथा तप्त तेल सभी इन्द्रियों में डालकर पुनः खार ताँबे आदि के तप्त वस्तुओं से उसे अनेक बार समस्त नरक यातनाओं के अनुभव कराते हैं जिससे उसके समस्त हाथ पैर आदि अंगों में अत्यन्त कष्ट होता रहता है । शिवालय के घेरा या उसके बगीचे में किसी स्थान पर जो पापी प्राणी मूत्रपुरीषोत्सर्ग करता है, उसके लिंग एवं अण्डकोष को लोहे के मुद्गरों से चूर्ण करते हैं प्रतप्त सूची से छेदन करने के उपरांत लोहे के संतप्त दण्ड को, जिसमें बड़े-बड़े कीले लगे रहते हैं, उसको गुदा मार्ग से डालकर मुख द्वार से निकालते हैं अनन्तर खार, ताँबें रांगा आदि के तप्त टुकड़े उसकी गुहा एवं लिंग में डालते हैं । उस समय उसका मन जो इन्द्रियों का प्रवर्तक रहता है, इन्द्रियों के दुःख से दुःखी होकर मुक्ति होने की याचना किया करता है ।१४२-१५८। धन के रहते हुए जो प्राणी लोभवश दान नहीं करता, समय से घर पर अतिथि के आने पर उसकी सेवा नहीं करता है, उसके हाथ पैर लोहे के तार द्वारा बांध ताडनपूर्वक समस्त देह विदीर्ण करते हैं, इस प्रकार उसे इसी भाँति की वेदना सैकड़ों वर्ष सहन करनी पड़ती है । अनन्तर हाथ, पैर और भाल में लोहे की कील गाड़कर उसके मुख में नित्य दो कीलें गाडते रहते हैं और

---

१. विष्णुधर्मं च । २. देवायतनपर्यन्ते देवारामे च कुत्रचित् । ३. भृशम् । ४. निरूप्य च गुदे तेषां यावन्मूर्ध्नि विनिर्गमः ।

कृमिभिः प्राणिभिश्चोग्रैर्लोहदण्डश्च वायसैः । उपद्रवैर्बहुविधैः सर्पैर्मुखरकैस्ततः ॥१६२
आपीड्यन्ते जिह्वामूले निबध्य शृङ्खलाः पुनः । तिष्ठन्ति लम्बमानाश्च लोहभारप्रपीडिताः ॥१६३
स्निग्धे च वृषणे नद्धे लोहभारद्वयं पुनः । तिष्ठते लम्बमानं च बहुभारचतुर्गुणम् ॥१६४
ततः स्वामांसमुत्कृत्य तिलमात्रप्रमाणतः । भोजनं दीयते तेषां सूच्यग्रेण सशोणितम् ॥१६५
यदा निर्मांसतां प्राप्ताः कालेन महता पुनः । ततः क्षारेण दीप्तेन वपुस्तेषां प्रलिप्यते ॥१६६
सिच्यन्ते वर्षधाराभिः शोष्यन्ते वायुना पुनः । सिच्यन्ते तप्ततैलेन प्रतप्तेन समन्ततः ॥१६७
पश्चात्ते वह्निना भूयो दूरस्थेन शनैः शनैः । निःशेषयातनाभिश्च पीड्यन्ते क्रमशः पुनः ॥१६८
भृशं बुभुक्षया पीडा मूर्च्छयातिपिपासया । अत्युष्णेनातिशीतेन पापानां समरेण च ॥१६९
एवमादिमहाघोरा यातनाः पापकारिणः[1] । एकैके नरके चैव शतशोऽथ सहस्रशः ॥१७०
प्रत्येकं यातनाश्चित्राः सर्वेषु नरकेषु च । कष्टं वर्षशतेनापि सोढुं सर्वैश्च नारके ॥१७१
एते च दिविधैर्घोरैर्यात्यमानाश्च कर्मभिः । म्रियन्ते नैव पापिष्ठा विविधाः पापकारिणः ॥१७२
महाघोराभिघोराख्याः कालाग्निसदृशोपमाः । श्रुतैरेतैर्महारौद्रैर्म्रियन्ते मृदुचेतसः ॥१७३
ततस्तेनात्र कथिताः पापा गच्छन्ति तान्स्वयम् । पुत्रमित्रकलत्रार्थं यदा पुण्यं त्वपाकृतम् ॥१७४
एकाकी दह्यते तेन न च पश्यति तानि सः । आत्मना च कृतं पापं भोक्तव्यं ध्रुवमात्मना ॥१७५
तत्किमन्योपघातार्थं मूढ पापं कृतं त्वया । एवं दूतैरुपालब्धास्ते पृच्छन्ति ततः पुनः ॥१७६

कीडों, तीक्ष्ण लोह दंड, कौवे, तथा सर्प आदि अनेक भाँति के जन्तुओं द्वारा उसे पीड़ित करने के उपरांत उसकी जिह्वा के मूलभाग में श्रृङ्खला से बाँधकर खड़ा करते और लोहे के भार से पीड़ित करते हैं। उसके अण्ड कोष को बांध कर दो लोहे के भार से पीड़ित करते हुए उसे खड़ा कर उसके ऊपर चौगुने भार रखते हैं और उसकी देह के मांस को सूची द्वारा तिल के समान टुकडे करके उसे भोजन देते हैं। इस प्रकार अधिक समय में उसके मांस हीन होने पर उसकी देह में वही खार आदि पदार्थों के लेपन करते हैं, वर्षा की धार से सिंचित करके वायु द्वारा शब्द करते हैं, सूख जाने पर तप्त तेल से सेवन करके मन्द अग्नि द्वारा धीरे-धीरे उसे पीड़ित करते हुए सभी यातनाओं के अनुभव कराते हैं। इसी प्रकार क्षुधा, तृष्णा, मूर्च्छा, अत्यन्त गर्मी, अत्यन्त शीत के द्वारा भी उसे पीड़ित करते रहते हैं।१५९-१६९। इस भाँति उन घोर यातनाओं के प्रत्येक नरकों में सैकड़ों सहस्रों बार अनुभव पूर्वक समस्त नरकों की चित्र विचित्र यातनाओं के सहन करते हैं, जिसके दुःख सहन करने में प्राणी को वहाँ सैकड़ों वर्ष रहना पड़ता है। अनेक भाँति की घोर यातनाओं को अपने कर्म के फल स्वरूप प्राप्त होती है, सहन करते हुए वे प्राणी मृतक नहीं होते हैं। प्रत्युत महाचोर, घोर, कालाग्नि के समान उन महाभीषण यातनाओं के उपभोगार्थ उसे अत्यन्त मृदु होना पड़ता है। इस प्रकार अपने कर्मानुसार उन यातनाओं को पापी प्राणी प्राप्त करते हैं, जो पुत्र, मित्र, एवं स्त्री के निमित्त मुग्ध होकर किये गये रहते हैं। पापी प्राणी वहाँ पहुँच कर अकेले ही उन यातनाओं को भोगता है, जिनके निमित्त पाप करता है उनके वहाँ दर्शन भी नहीं होते हैं। दूत लोग कहते हैं किये हुए पापों को अवश्य भोगना पड़ता है यह जान लेते हुए तुमने मूढ़ता वश पाप कर्म किया और इसी भाँति के वे

---

१. अस्मादग्रे—"तत्रान्यायतनानां च विविधाः पापकारिणः" इति पाठ एकस्मिन्पुस्तकेऽधिकः पृथक्तयोपलभ्यते।

क्रियन्तं केन पापेन कालमत्रायते नरः । देवद्रव्यविनाशेन गुरुद्रोहादिकर्मभिः ॥
पापात्सर्वेषु पच्यन्ते नरकेष्वामहाक्षयात् ॥१७७
महापातकिनश्चापि सर्वेषु नरकेष्विह । आचन्द्रतारकं यावत्पीड्यन्ते विविधैर्वधैः ॥१७८
महापातकिनश्चान्ये नरकार्णवकोटिषु । चतुर्दशसु पच्यन्ते कलार्धं विविधैर्वधैः ॥१७९
उपपातकिनश्चापि तदर्थं यान्ति मानवाः । शेषपापैस्तदर्धं तु कालं चापि तथाविधम् ॥१८०
तस्मात्पापं न कुर्वीत चञ्चले जीविते सति । पापेन हि ध्रुवं यान्ति नरकेषु नराः स्वयम् ॥१८१
यः करोति नरः पापं तस्यात्मा ध्रुवमप्रियः । पापस्येह फलं दुःखं तद्भोक्तव्यमिहात्मना ॥१८२
कथं ते पापनिरता नरा रात्रिषु[1] शेरते । मरणांतरिता[2] येषां नारकी तीव्रयातना ॥१८३
एवं क्लिष्टविशुद्धाश्च सावशेषेण कर्मणा । ततः क्षितिं समासाद्य जायन्ते देहिनः पुनः ॥
स्थावरा विविधाकारास्तृणगुल्मादिभेदतः ॥१८४
तत्रानुभूय दुःखानि जायन्ते कीटयोनिषु । निष्क्रान्ताः कीटयोनिभ्यो जायन्ते पक्षिणस्ततः ॥१८५
संश्लिष्टाः पक्षिभावेन भवन्ति मृगजादिषु । मार्गं दुःखमतिक्रम्य जायन्ते पशुयोनिषु ॥१८६
क्रमाद्गोयोनिमासाद्य जायन्ते मानवाः पुनः । एवं योनिषु सर्वासु परिक्रम्य क्रमेण तु ॥
कालान्तरवशाद्यान्ति मानुष्यमतिदुर्लभम् ॥१८७

सभी पापियों के पास पहुँच कर पूँछा करते हैं और यह भी कहते हैं कि मनुष्य वृन्द तुम लोगों ने किस पाप को और कितने समय तक किया है । इसी भाँति देवों के द्रव्य विनाश करने और गुरु से द्रोह आदि कर्मों के करने से प्राणी अपने किये हुए पाप कर्मों के फल स्वरूप नरकों में महाप्रलय काल तक यातनाएँ भोगता रहता है । महापातकी प्राणी चन्द्र और ताराओं के स्थित समय तक समस्त नरकों में रहकर अनेक भाँति की यातनाओं से पीड़ित होते हैं । कुछ लोग उन कोटि नरक सागरों में ही सदैव पड़े रहते हैं । उपपातकी प्राणी को चौदह नरकों में विविध भाँति की यातनाएँ उसके (महापातकी के) आधे समय तक मिलती रहती हैं और शेष पापों के शोधनार्थ उसके आधे समय तक । इसलिए मनुष्य के इस चल जीवन को प्राप्त कर प्राणी को कभी भी पाप न करना चाहिए । क्योंकि पाप करने पर नरक गमन करना मनुष्यों के लिए निश्चित है । जो पुरुष पाप करता है, निश्चय है उसकी आत्मा उसे प्रिय नहीं है, क्योंकि पाप का फल भोगने के लिए उसे नरक जाना होगा । इन घोर यातनाओं को देखते हुए मनुष्य पाप की ओर विशेष ध्यान न देकर रात्रि में कैसे नारी विलास ही करता रहता है। (आत्मोद्धार के उपाय नहीं करता) नरक की तीव्र यातनाओं के, जिसमें निधन होने के समान अनेक पीडाएँ अन्तर्निहित है, भोग करने के उपरांत उस विशुद्ध कठिनाई के उपभोगार्थ कुछ कर्म के शेष रहने पर वह प्राणी इस पृथ्वी तल पर पुनः आकर शरीर धारण करता है। उसमें उसे तृण गुल्म आदि के भेद से स्थावर (वृक्षादि) योनि की प्राप्ति पूर्वक उसके उग्र दुःखों के अनुभव करने पड़ते हैं। पश्चात् वह कीट योनि में पहुँचता है, वहाँ की घोर व्यथाओं को सहन करके पक्षी शरीर प्राप्त करता है । इसी क्रम के अनुसार वह पक्षी योनि की प्राप्ति के अनन्तर मृग आदि की योनि उससे पशु और पशुओं की योनि में भक्षण करके गो योनि तथा अनन्तर मनुष्य योनि में पहुंचता है इस प्रकार क्रमशः समस्त योनियों में भ्रमण करते हुए उसे कालान्तर में अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य योनि की प्राप्ति होती है।१७०-१८७। अत्यन्त पुण्य कर्मों के प्रभाव

---

१. नारीषु । २. मरणं त्वरितं येषाम् ।

व्युत्क्रमेणापि मानुष्यं प्राप्यते पुण्यगोचरात् । विचित्रा गतयः प्रोक्ताः कर्मणां गुरुलाघवात् ।।१८८
मानुष्यं यः समासाद्य स्वर्गमोक्षप्रसाधकम् । द्वयोर्न साधयत्येकं स मृतस्तप्यते चिरम् ।।१८९
देवासुराणां सर्वेषां मानुष्यमतिदुर्लभम् । तत्सम्प्राप्य कथाः कुर्यान्न गच्छेन्नरकं यथा ।।१९०
स्वर्गापवर्गलाभाय यदि नास्ति समुद्यतः । स्वर्गस्य मूलं मानुष्यं तद्यत्नादनुपालयेत् ।।१९१
धर्ममूलेन मानुष्यं लब्ध्वा सर्वार्थसाधकम् । यदि लाभे न यत्नस्ते मूलं रक्षस्व यत्नतः ।।१९२
मनुष्यत्वे च विप्रत्वं यः सम्प्राप्यातिदुर्लभम् । न करोत्यात्मनः श्रेयः कोऽन्यस्तस्मादचेतनः ।।१९३
सर्वेषामेव देशानां मध्यदेशः[1] परः स्मृतः । अतः स्वर्गश्च मोक्षश्च यशः सम्प्राप्यते नरैः ।।१९४
एतस्मिन्भारते पुण्ये प्राप्य मानुष्यमध्रुवम् । यः कुर्यादात्मनः श्रेयस्तेनात्मा रक्षितः स्वयम् ।।
यः कुर्यान्नात्मनः श्रेयस्तेनात्मा वंचितः स्वयम्　　।।१९५
भोगभूमिः स्मृतः स्वर्गः कर्मभूमिरियं मता । इह यत्क्रियते कर्म स्वर्गे तदुपभुज्यते ।।१९६
यावत्स्वास्थ्यं शरीरस्य तावद्धर्मं समाचर । अस्वस्थश्चातियत्नेन न किञ्चित्कर्तुमुत्सहेत् ।।१९७

से प्राणी को व्युत्क्रम से (सभी योनियों में न जाकर) भी मनुष्य योनि की प्राप्ति हो जाती है। क्योंकि छोटे बड़े कर्मों के अनुसार उसके फल भी वैसे ही होते हैं इसीलिए कर्मों की गति विचित्र बतायी गयी है। अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य योनि की प्राप्ति करके जो स्वर्ग एवं मोक्ष का साधक है, प्राणी इन दोनों में से किसी एक की भी प्राप्ति न कर सके, वह मृतक की भाँति है और निधन होने पर चिरकाल तक (नरक यातनाओं आदि द्वारा) संतप्त होता है। देवों और असुरों आदि सभी योनियों से मनुष्य योनि अत्यन्त दुर्लभ एवं परमोत्तम कहीं गई है। इसलिए इसे प्राप्त कर मनुष्य को वह कर्म करना चाहिए, जिससे नरक यातनाओं का अनुभव पुनः न करने पड़े। यदि मनुष्य योनि प्राप्त कर प्राणी स्वर्ग और मोक्ष के प्राप्त्यर्थ समुचित उद्योग नही कर सकता है, तो अपने मनुष्यत्व के स्थिर रखने में उसे सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए क्योंकि मनुष्यत्व ही स्वर्ग प्राप्ति का मूल कारण है और मनुष्य योनि की प्राप्ति का मूल कारण धर्म है। इसलिए उस धर्म मूलक मनुष्य योनि के प्राप्त होने पर जो समस्त का साधक हैं, यदि उससे अन्य (स्वर्ग मोक्ष की प्राप्ति रूप) लाभ नहीं कर सकता है, तो उसे अपने मूल की ही रक्षा में निरन्तर प्रयत्न पूर्वक सचेष्ट रहना चाहिए। क्योंकि मनुष्य योनि अति दुर्लभ है और मनुष्यों में ब्राह्मण होना परम दुर्लभ है। ब्राह्मण होने पर जो अपने आत्मा के (मोक्ष रूप) कल्याणार्थ सतत प्रयत्नशील नहीं रहता है, उससे बढ़कर अज्ञानी अन्य कौन हो सकता है। इसी प्रकार पृथ्वी मण्डल के सभी देशों से यह मध्य देश परम श्रेष्ठ है क्योकि जिसमें रहकर मनुष्य स्वर्ग, मोक्ष, एवं अनुपम यश की प्राप्ति करता रहता है। इस पुण्य भारत वर्ष में इस अनिश्चित मनुष्य जीवन की प्राप्ति करके जिस प्राणी ने अपनी आत्मा का कल्याण सुसम्पन्न किया उसी ने अपनी आत्म रक्षा स्वयं की है और जो आत्मा कल्याण न कर सका उसने स्वयं अपनी आत्मा को वञ्चित किया। १८८-१९५। स्वर्ग को भोग भूमि कहा गया है और इसे कर्म भूमि यहाँ तो कर्म किया जाता है, स्वर्ग में उसी का उपभोग प्राप्त होता है। इसलिए शरीर का स्वास्थ्य जब तक वर्तमान है तब तक धर्मोपार्जन के लिए सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए क्योंकि अस्वस्थ होने पर कुछ भी करने में

---

१. अयं देशः।

अध्रुवेण शरीरेण ह्यध्रुवं यः प्रसाधयेत् । ध्रुवं तस्य परिभ्रष्टमध्रुवं नष्टमेव च ।।१९८
आयुषः खण्डखण्डानि निपतन्ति तवाग्रतः । अहोरात्रापदेशेन किमर्थं नावबुध्यसे ।।१९९
यदा न ज्ञायते मृत्युः कदा कस्य भविष्यति । आकस्मिके हि मरणे धृतिं विन्देत कस्तदा ।।२००
परित्यज्य यदा सर्वमेकाकी यास्यसि ध्रुवम् । न ददासि तदा कस्मात्पाथेयार्थमिदं धनम् ।।२०१
गृहीतदानपाथेया सुखं यान्ति महाध्वनिः । अन्यथा क्लिश्यते जन्तुः पाथेयरहितः पथि ।।२०२
येषां द्विजेन्द्रवाहिन्नी पूर्णभाण्डा तु गच्छति । स्वर्गदेशस्य पुरतस्तेषां लाभः पदेपदे ।।२०३
इति ज्ञात्वा नरः पुण्यं कुर्यात्पापं विवर्जयेत् । पुण्येन याति देवत्वमपुण्यान्नरकं व्रजेत् ।।२०४
ये मनागपि देवेशं प्रपन्नाः शरणं शिवम् । तेऽपि घोरं न पश्यन्ति यमस्य वदनं नराः ।।२०५
किं तु पापैर्महाघोरैः किञ्चित्कालं शिवाज्ञया । भवन्ति प्रेतराजानस्ततो यान्ति शिवालयम् ।।२०६
ये पुनः सर्वभावेन प्रतिपन्ना महेश्वरम् । न ते लिप्यन्ति पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ।।२०७
तस्माद्विवर्धयेद्भक्तिमीश्वरे सततं बुधः । तन्माहात्म्यविचारेण भवदोषविरागतः ।।२०८

असमर्थ रहना पड़ेगा । इस अनिश्चित शरीर की प्राप्ति करके जो प्राणी इसी द्वारा अनिश्चित पदार्थ की ही प्राप्ति करता है, उसका निश्चित पदार्थ (स्वर्ग मोक्ष) नष्ट (दुष्प्राप्य) हो जाता है, और अनिश्चित पदार्थ तो नष्ट ही है । तुम्हारे ही सम्मुख तुम्हारी आयु दिन रात्रि के व्याज से खण्ड-खण्ड होकर नष्ट हो रही है, फिर किसलिए अब भी तुम नहीं जाग रहे हो जब यह नहीं मालूम हो रहाहै कि किसी की मृत्यु कब होगी, तो इस आकस्मिक निधन के अवसर पर धैर्य धारण करायेगा ।१९६-२००। यह तो ध्रुव है कि अपनी यहाँ की सभी वस्तुओं के त्याग पूर्वक यहाँ से अकेले ही यात्रा करोगे तो मार्ग में पाथेय के रूप में प्राप्त होने के निमित्त इस धन का दान क्यों नहीं करते । क्योंकि दान रूपी पाथेय लेकर जो प्राणी उस महामार्ग की यात्रा करता है उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता है । इसके विपरीत पाथेय रहित प्राणी को अत्यन्त घोर यातना का अनुभव करना पड़ता है । जिस प्राणी की स्वर्ग की यात्रा के समय मार्ग में उसके आगे आगे पाथेय पूर्ण भांड चलता है उसी को प्रत्येक पग पर लाभ होता रहता है । ऐसा जान कर मनुष्य को पाप के त्याग पूर्वक पुण्य का ही उपार्जन प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए, क्योंकि पुण्य द्वारा देवत्व की प्राप्ति होती है और पाप द्वारा नरक की । जिस प्राणी ने देवाधिदेव भगवान् शंकर की शरण एकबार भी प्राप्त कर लिया है, उसे भी यमराज के उस घोर मुख का दर्शन नही करना पडेगा । किंतु उस समय महाघोर पाप कर्म करने के नाते शिव जी की आज्ञा वश थोड़े समय तक उसे प्रेत राज अवश्य होना पड़ता है । तथा पश्चात् शिवपुरी की प्राप्ति हो जाती है ।२०१-२०६। और जो सर्व भाव से भगवान् महेश्वर की शरण प्राप्त करता है जल से कमल पत्र की भाँति पाप से उसका स्पर्श कभी नहीं होता है । इसलिए विद्वान् को उनके महत्त्व के विचार पूर्वक संसार दोष से विरक्त होकर भगवान् शिव की आराधना सदैव करनी चाहिए । पार्थ ! यमराज के लोक में प्राणी पाँच

---

१. हरिम् । २. परां गतिम् ।

पापानि पञ्च परमार्थतयैव पार्थ दुःखप्रदानि सुचिरं पितृराजलोके।
अन्यानि यानि चिरकालभयानकानि वक्तुं न यान्ति किल तानि परिस्फुटानि ॥२०९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
शुभाशुभफलनिर्देशो नाम षष्ठोऽध्यायः।६

अथ सप्तमोऽध्यायः

शकटव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

यदेतत्ते समाख्यातं गम्भीरं नरकार्णवम्। व्रतोपवासनियमप्लवेनोत्तीर्यते सुखम् ॥१
दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं विद्युत्पतनचञ्चलम्। तथात्मानं समादध्याद्भ्रश्यते न पुनर्यथा ॥२
दानव्रतमयी कीर्तिर्यस्य स्यादिह देहिनः। परलोकेऽपि स तया ज्ञायते[1] ज्ञातिवर्द्धनः ॥३
ज्ञायते नेह नामुत्र व्रतस्वाध्यायवर्जितः। पुरुषः पुरुषव्याघ्र तस्माद्व्रतपरो भवेत् ॥४
अत्र ते कथयिष्यामि इतिहासं पुरातनम्। सिद्धेन[2] सह संवादमवन्त्यां ब्राह्मणस्य हि ॥५
योगर्द्धिसिद्ध्या संसिद्धः कश्चित्सिद्धो महीतलम्। चचार विकृतं कृत्वा वपुः परमभीषणम् ॥६

प्रकार के दारुण पापों द्वारा चिरकाल तक दुःखों के अनुभव करता रहता है। और अन्य पाप को जिसके कारण चिरकाल तक नरकों के दुःखानुभव करने पड़ते हैं एवं भयानक भी है, कहने भी आवश्यकता नहीं है वे अति प्रसिद्ध है।२०७-२०९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-सम्वाद विषयक शुभाशुभ फल वर्णन नामक छठाँ अध्याय समाप्त।६।

अध्याय ७

शकटव्रतमाहात्म्य का वर्णन

श्रीकृष्ण जी बोले—जिस गम्भीर नरक सागर का वर्णन मैंने तुम्हें सुनाया है, व्रत, उपवास एवं नियम के पालन रूप नौका द्वारा प्राणी उसे पारकर सुखपूर्वक रहता है, प्राप्त करके प्राणी को चाहिए कि अपनी आत्मा को गर्त में न गिरा सके। जिस प्राणी की दान-व्रत मयी कीर्ति दिग्दिगन्त में फैली हुई है, उस कीर्ति द्वारा परलोक में भी वह जातिवर्धक ही कहलाता है। पुरुषव्याघ्र! व्रत एवं स्वाध्याय हीन प्राणी की ख्याति लोक परलोक में कहीं नहीं होती है, इसलिए व्रत नियम का पालन अवश्य करो। इस विषय में तुम्हें एक इतिहास मैं सुना रहा हूँ, जो अवंती पुरी के निवासी उस ब्राह्मण से सिद्ध (योगी) रूप शिव जी ने कहा था। योग की ऋद्धि सिद्धि से सम्पन्न होकर एक सिद्ध (योगी) अपने अंगों को अत्यन्त (कोढ़ी का रूप) बनाकर जो देखने में अत्यन्त भयानक भी था, भूमण्डल

---

१. जनो यज्ञविवर्जितः। २. शिवेन।

निर्गीर्णदन्तो लम्बोष्ठः पिङ्गाक्षस्तनुमूर्द्धजः । त्रुटितैककर्णो दुर्वणः शीर्णवस्त्रो महोदरः ॥७
चिपिटाक्षः[1] स्फुटितपाज्जङ्घाढ्यः कृशकूर्परः । दिशः पश्यति संहृष्टो बभ्रामोद्भ्रान्तचित्तवत् ॥८
मूलजालिकविप्रेण दृष्टः पृष्टश्च को भवान् । कदा स्वर्गात्समायातः केन कार्येण मे वद ॥९
कच्चिद्दृष्टा त्वया रम्भा भाभासितदिगंतरा । चित्तसंमोहनकरी देवानामेकसुन्दरी ॥१०
गत्वा मद्वचनाद्वाच्या निर्वाच्या दोषदर्शिभिः । आवंत्यस्त्वां कुशलिनीं पृच्छति स्म द्विजोत्तमः ॥११
सिद्धः प्रसिद्धं तं विप्रं प्राहेदं विस्मयान्वितः । कथं त्वयाहं विज्ञातः स्वर्गादभ्यागतः स्फुटम् ॥१२
ब्राह्मणस्तमथोवाच विज्ञातोऽसि मया यथा । तथा तेऽहं प्रवक्ष्यामि क्षीणाधौघावधारय ॥१३
गात्रत्रयं विरूपं स्याद्द्वितीयं वा स्वरूपतः । दृष्ट्वा सर्वाङ्गवैरूप्यं विज्ञातोऽसि ततो मया ॥१४
दुर्लंघ्या प्रकृतिः साक्षादनुभूतकरी भवेत् । प्रकृतेरन्यथाभावः सर्वथा[2] लक्ष्यते जनैः ॥१५
विप्रस्यैवं वचः श्रुत्वा जगामादर्शनं शनैः । पुनः कैश्चिदहोरात्रैराजगाम स तां पुरीम् ॥१६
मूलजालकविप्रेण पृष्टः प्राहामरावतीम् । गतोऽहं पृष्टवांस्तत्र रम्भां विभ्रमकारिणीम् ॥१७
शक्रस्यावसरे वृत्ते व्रजन्त्याः स्वगृहं मया । त्वत्संदेशः समाख्यातः सावदत्को न वेद्मि तम् ॥१८

पर विचर रहा था ।१-६। उसके निकले हुए बड़े-बड़े दाँत लम्बा ओष्ठ, पिंग वर्ण की आँखें और शरीर तथा शिर के केश, टूटा हुआ एक कान, दूषित वर्ण, जीर्ण शीर्ण वस्त्र लम्बा उदर, चिपटे नेत्र, रोग के नाते विदीर्ण चरण, स्थूल जंघा, अत्यन्त पतली भुजाओं के मध्य की गाँठे थी । इस प्रकार का रूप धारण किये वह भ्रान्त पुरुष की भाँति प्रसन्न चित्त से चारों ओर देख रहा था । उस समय मूल जाल नामक अवन्ती पुरी का निवासी एवं ब्राह्मण ने उन्हें देखकर पूछा—आप का स्वर्ग से यहाँ के लिए कब प्रस्थान हुआ है और किस उद्देश्य से क्या आप ने उस रम्भा अप्सरा को देखा है, जिसके चलने पर उसकी मनोरम दीप्ति द्वारा दिग्दिगन्त भासित होता चलता है । तथा देवों के चित्र को मुग्ध करने वाली वही एक सुन्दरी है । यदि हाँ तो आप वहाँ पहुँचने पर उस सुन्दरी से जो दोष द्रष्टा के सम्मुख भी सर्वथा दोष हीन है मेरी ओर से कहना—अवन्ति पुरी का रहने वाला वह ब्राह्मण तुम्हारा कुशल समाचार पूँछ रहा था ।७-११। इसे सुनकर वह सिद्ध आश्चर्य चकित होकर उस प्रख्यात ब्राह्मण से कहा—आपने यह कैसे जान लिया कि मैं निश्चित स्वर्ग से ही आया हूँ । इसे सुनकर ब्राह्मण ने कहा—पाप समूह के नाशक ! मैं उस (लक्षण) को बता रहा हूँ, जिसे देखकर मैंने निश्चित किया है कि आप स्वर्ग से ही आये हैं । शरीर के तीन अंग विरूप हैं और दूसरा स्वरूपतः विरूप है । इस प्रकार सम्पूर्ण शरीर को विकृत देखकर मैंने निश्चय कर लिया है । क्योंकि यद्यपि प्रकृति अत्यन्त दुर्लभ है, जिसका साक्षात् अनुभव हो रहा है, तथापि प्रकृति जन्य अंग विकार को देखते ही लोग पहचान जाते हैं । ब्राह्मण की ऐसी बात सुनकर वह योगी (शिव) धीरे से अन्तर्हित हो गया । पुनः कुछ दिन के अनन्तर अवन्ती पुरी में आकर इस योगी ने ब्राह्मण को दर्शन दिया । मूलजाल नामक ब्राह्मण के पूछने पर उसने कहा—मैंने देवलोक जाकर उस विलासिनी रंभा से उस समय जब वह देवेन्द्र के यहाँ से होकर अपने घर जाती थी, पूछा—अवन्ती पुरी का निवासी मूलजाल नामक ब्राह्मण

---

१. चिपिटाक्षः स्फुटितखण्डजाकृशकटित्याः—इत्यशुद्धः पाठः कस्मिंश्चित्पुस्तके दृश्यते ।
२. सर्वैर्व्यालक्ष्यते जनैः ।

विद्यया कलया चापि पौरुषेण व्रतेन च । तपसा वा पुमान्मर्त्यो दिवि विज्ञायते चिरम् ।।१९
ब्राह्मणस्तमथोवाच मुग्धा दग्धाग्निसंभवा । न भक्षयामि शकटं व्रतेनैतेन वेत्ति माम् ।।२०
तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा स सिद्धः सुविशुद्धधीः । प्रहस्यामंत्र्य[1] तं विप्रं जगामादर्शनं पुनः ।।२१
कदाचिच्च रता तेन स्वर्गमार्गं यदृच्छया । दृष्ट्वा रम्भां द्विजप्रोक्तं सर्वमेव निवेदितम् ।।२२

रम्भोवाच

को न जानामि तं विप्रं शकटव्रतचारिणम् । मूलजालैर्वर्तयन्तं महाकालवनाश्रयम् ।।२३
दर्शनादथ सम्भाषादुपकारात्सहासनात् । चतुर्धा स्नेहनिर्बन्धो नृणां सञ्जायतेऽधिकः ।।२४
न दर्शनं न सम्भाषा कदाचित्सह तेन मे । नामश्रवणमात्रेण स्नेहः सन्दर्शितो[2] महान् ।।२५
इत्येवमुक्त्वा रम्भोरू रम्भा जम्भारिणोन्तिकम् । विस्मयोत्फुल्लनयना जगाम गजगामिनी ।।२६
गत्वा निवेदयामास स्नेहव्रतविचेष्टितम् । पुरतो रुद्धहृदया ब्राह्मणस्य च धीमतः ।।२७
शक्रः प्रोवाच चार्वंगीं गीर्वाणहृदयङ्गनाम् । किमानयामि तं विप्रं समीपं तव सुव्रतम् ।।२८

तुम्हारा कुशल समाचार जानना चाहता है। इसे सुनकर उसने उत्तर दिया कि वह कौन है, मैं उसके विषय में कुछ भी नहीं जानती हूँ। तथा यह भी कहा कि—विद्या, कला, पौरुष, व्रत, और तप द्वारा ही पुरुष इस (स्वर्ग) लोक में प्रख्यात होता है और उसका यश चिरकाल तक स्थायी भी रहता है। अनन्तर उस ब्राह्मण ने कहा कि—मैं शकट व्रत का पालन कर रहा हूँ, उसका भक्षण नहीं करता, क्या वह मुग्धा, जो दग्ध अग्नि द्वारा उत्पन्न हुई है, यह भी जानने में संकोच कर रही है। ब्राह्मण की ऐसी बात सुनकर वह विशुद्ध बुद्धि वाला योगी हँस कर उससे बात करने के उपरांत पुनः अलक्षित हो गया। स्वर्ग मार्ग में यथेच्छ भ्रमण करते हुए उस योगी ने किसी समय वहाँ रम्भा को देखा और उससे ब्राह्मण की कही हुई सम्पूर्ण बातें निवेदित किया। उसे सुनकर रम्भा ने कहा।१२-२२

रम्भा बोली—महाकाल नामक वन में निवास करते हुए उस मूल जाल नामक ब्राह्मण को जो शकट व्रत का पालन कर रहा है, मैं सर्वथा नहीं जानती। क्योंकि दर्शन, सम्भाषण, उपकार और साथ-साथ आसनासीन होने इन्हीं चार प्रकार से मनुष्यों के स्नेह सूत्र अधिक दृढ होते हैं, किन्तु उस ब्राह्मण के साथ मेरे न कभी दर्शन हुआ न किसी प्रकार से कोई बात-चीत ही हुई, केवल नाम ही सुनने से उसने महान् स्नेह प्रकट किया है। जम्भासुर के विनाशक उन शिव जी से कदली स्तम्भ के समान ऊरू वाली उस रम्भा ने उसके नेत्र आश्चर्य चकित होने के नाते कमल की भाँति खिल उठे थे, इतना कहकर गज की भाँति मन्दगति से वहाँ से धीरे-धीरे प्रस्थान किया। उसने वहाँ (देवलोक) में जाकर उस बुद्धिमान् ब्राह्मण के स्नेह समेत व्रत को जिस ब्राह्मण के लिए उसका हृदय इन्द्र के सामने ही आसक्त होने के नाते अवरुद्ध सा हो गया था, तथा उसकी चेष्टाओं को विस्तार पूर्वक निवेदन किया। उसे सुनकर देवेन्द्र ने उस सुन्दरी से जो देवों के हृदय को सर्वथा अपने अधीन किये रहती है, कहा—क्या, उस सविधान व्रत नियम पालन करने वाले ब्राह्मण को तुम्हारे समीप ही मँगवा दूँ। इतना कहकर उन्होंने उस ब्राह्मण

---

१. संभाष्यापूज्य। २. संवर्द्धितः।

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यस्रगनुलेपनम् । विमानवरमारोप्य दर्शयामास तं पुनः ॥२९
तत्रस्थः स द्विजो भोगान्भुनक्ति सह रम्भया । शकटव्रतमाहात्म्यमित्येतत्ते मयोदितम् ॥३०
राज्यश्रियं जगति सर्वजनोपभोग्यमाप्नोति शक्रशिवकेशवयोर्निवासम्[1] ।
नाप्राप्यमस्ति भुवने सुदृढव्रतानां तस्मात्सदा व्रतपरेण नरेण भाव्यम् ॥३१
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
शकटव्रतमाहात्म्यकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ।७

अथाष्टमोऽध्यायः

तिलकव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

ब्रह्मेश केशवादीनां गौर्या गणपतेस्तथा । दुर्गासूर्याग्निसोमानां व्रतानि मधुसूदन ॥१
शास्त्रान्तरेषु दृष्टानि तव बुद्धिगतानि च । तानि सर्वाणि मे देव वद देवकिनन्दन ॥२
प्रतिपत्क्रमयोगेन विहिता यस्य या तिथिः । देवस्य तस्यां यत्कार्यं तदशेषेण कीर्तय ॥३

को, जो दिव्य वस्त्र, माला, एवं दिव्य चन्दनादि से विभूषित किया गया था, सुसज्जित विमान द्वारा मँगा कर उसे दिखाया । अनन्तर वह ब्राह्मण वहाँ रहकर उस रम्भा के साथ अनेक भाँति के भोगों के उपभोग करने लगा । इस प्रकार मैंने शकट व्रत का माहात्म्य तुम्हें सुना दिया । क्योंकि व्रतों के नियमों को दृढ़ता से पालन करने वाले मनुष्य को संसार में इस प्रकार की राज्य लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, जिसके उपभोग सभी लोग कर सकते हैं, और शिव, तथा भगवान् विष्णु के भवन का निवास भी उसे प्राप्त होता है । अर्थात् उसे लोक में कोई वस्तु अप्राप्य नहीं हो जाती है । इसलिए मनुष्यों को सदैव व्रती होना परमावश्यक है ।२३-३१

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-सम्वाद विषयक शकट-व्रत-
माहात्म्य वर्णन नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ।७।

अध्याय ८

तिलकव्रत माहात्म्य का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—मधुसूदन ! ब्रह्मा, शिव और केशवादि देव तथा गौरी, गणपति, दुर्गा, सूर्य, अग्नि, एवं चन्द्र आदि के व्रतों को बताने की कृपा करें । देवकीनन्दन ! शास्त्रों पुराणों में जितने व्रत कहे गये हों और उसके अतिरिक्त जो आप के हृदय में निहित हैं, उन सब की व्याख्या करने की कृपा करें । उसी प्रकार प्रतिपदा आदि के क्रम से जिस देव की जो तिथि हो, तथा उसमें जो कार्य सुसम्पन्न किया जाता हो, सभी कुछ की व्याख्या समेत वर्णन कीजिये ।१-३

---

१. शिववासवयोः ।

श्रीकृष्ण उवाच

वसन्ते किंशुकाशोकशोभने प्रतिपत्तिथिः । शुक्ला तस्यां प्रकुर्वीत स्नानं नियमतत्परः ।।४
नारी नरो वा राजेन्द्र सन्तर्प्य पितृदेवताः । नद्यास्तीरे तडागे वा गृहे वा नियतात्मवान् ।।५
पिष्टातकेन[1] विलिखेद्वत्सरं पुरुषाकृतिम् । ततश्चन्दनचूर्णेन पुष्पधूपादिनार्चयेत् ।।६
दीपैश्चापि सनैवेद्यैः पूजयेद्वत्सरं तदा । मासर्तुनामभिः पश्चान्नमस्कारान्तयोजितैः ।।
पूजयेद्ब्राह्मणान्विद्वान्मन्त्रैर्वेदोदितैः शुभैः ।।७
सम्वत्सरोऽसिपरिवत्सरोसीडावत्सरोऽभित्सरोऽसि उषसस्ते कल्पन्तामहोरात्रस्ते कल्पन्तामर्ध-मासस्ते कल्पतां सम्वत्सरस्ते कल्पताम् ।।८
एवमभ्यर्च्य वासोभिः पश्चात्तमभिवेष्टयेत् । कालोद्भवैर्मूलफलैर्नैवेद्यैर्मोदकादिभिः ।।९
ततस्तं प्रार्थयेत्पश्चात्पुरः स्थित्वा कृताञ्जलिः । भगवन्तस्त्वत्प्रसादेन वर्षं शुभदमस्तु मे ।।१०
एवमुक्त्वा यथाशक्ति दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् । ललाटपट्टे तिलकं कुर्याच्चांदनपङ्कजम् ।।११
ततः प्रभृत्यनुदिनं तिलकालंकृतं मुखम् । धार्यं सम्वत्सरं यावच्छशिनेव नभस्तलम् ।।१२
एवं नरो वा नारी वा व्रतमेतत्समाचरेत् । सदैव पुरुषव्याघ्र भोगान्भुवि भुनक्त्यसौ ।।१३
भूताः प्रेताः पिशाचाश्च दुर्वारा वैरिणो ग्रहाः । निरर्थका भवंत्येते तिलकं वीक्ष्य तत्क्षणात् ।।१४
पूर्वमासीन्महीपालो नाम्ना शत्रुञ्जयो[2] जयी । चित्रलेखेति तस्याभूद्भार्या चारित्रभूषणा ।।१५

श्रीकृष्ण जी बोले—राजेन्द्र ! वसंत ऋतु में मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि किंशुक (पलाश) और अशोक को सुशोभित करती है । उसमें स्त्री पुरुष सभी प्राणियों को चाहिए कि नदी, सरोवर, अथवा घर में कूप जल से नियम पूर्वक स्नान करके पितर एवं देवों के तर्पण आदि कर्म के उपरान्त उसी स्थान पर पीठी द्वारा पुरुष के समान वत्सर (वर्ष) की प्रतिमा बनायें और चन्दन चूर्ण, पुष्प, धूप, दीप एवं नैवेद्य पूर्वक उसकी पूजा करके मास और ऋतु के नाम में नमस्कार पद लगाकर (वसंताय नमः वसंतमावाहयामि, स्थापयामि पूजयामि) उन शुभ वैदिक मंत्रों द्वारा विद्वान् ब्राह्मणों की अर्चना करें । तदुपरांत आप संवत्सर, परिवत्सर, ईजवत्सर, अभिवत्सर रूप हैं, अतः मेरे उषाकाल, दिन रात, पक्ष, मास, ऋतु, और संवत्सर के शुभोदय करते हैं । इस प्रकार उनकी सविनय पूजा करने के उपरांत वस्त्र से उन्हें आवेष्टित करना चाहिए और सामयिक फल, फूल, नैवेद्य, मोदक आदि मधुर पदार्थों द्वारा उन्हें तृप्त कर उनके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़ा हो जाये तथा इस भाँति की प्रार्थना करे कि भगवन् आप की कृपा से वर्ष शुभदायक हो । इतना कहकर ब्राह्मण को यथाशक्ति दक्षिणा अर्पित करे । उसी समय अपने भाल में सुगन्ध मिश्रित चन्दन का तिलक करके पश्चात् तभी से प्रारम्भ कर प्रतिदिन तिलक से अपने मुख को चन्द्रमा द्वारा आकाश मण्डल की भाँति प्रतिदिन सुशोभित करता रहे । पुरुषश्रेष्ठ ! जो पुरुष या स्त्री इस प्रकार इस व्रत को सुसम्पन्न करते हैं वे इस पृथिवी तल पर सदैव भोगों के उपभोग करते रहते हैं । भूत, प्रेत, पिशाच और अनिष्ट ग्रहमण्डल जो अनिवार्य होते हैं, उस तिलक को देखकर उसी समय शक्ति हीन हो जाते हैं ।४-१४। पहले समय में शत्रुञ्जय नामक एक राजा था, जो रणस्थल में सदैव विजयी रहता था चित्रलेखा

---

१. सुपिष्टकेन । २. सत्त्वजयो जयी ।

तया व्रतमिदं चैत्रे गृहीतं द्विजसन्निधौ । सम्वत्सरं पूजयित्वा धृत्वा[१] हृदि जनार्दनम् ।।१६
असूयुः क्षेप्तुकामो वा समागच्छति यः पुरः । प्रयाति प्रियकृत्तस्या दृष्ट्वा मुखमधोमुखः ।।१७
सपत्नीदर्पापहरा वशीकृतमहीतला । भर्तुरिष्टा प्रहृष्टा च सुखमास्ते निराकुला ।।१८
तावत्करेणाभिभूतो भर्ता पुत्रः सवेदनः । शिरोऽर्त्या नाशं प्रयातः सुहृदां दुःखदायकः ।।१९
धर्मराजपुरं प्राप्तुं सर्वभूतापहारकः । तस्मिन्क्षणे महाराजः धर्मराजस्य किङ्कराः ।।२०
तस्य द्वारमनुप्राप्ताः प्रवेष्टुं गृहमञ्जसा । शत्रुञ्जयं समानेतुं कालमृत्युपुरःसराः ।।२१
पार्श्वस्थितां चित्रलेखां तिलकालङ्कृताननाम् । दृष्ट्वा प्रनष्टसङ्कल्पाः परावृत्य गताः पुनः ।।२२
गतेषु तेषु स नृपः पुत्रेण सह भारत । नीरुजो बुभुजे भोगान्पूर्वकर्मार्जिताञ्छुभान् ।।२३
एतद्व्रतं महाभाग कीर्तितं ते महोदयम् । शङ्करेण[२] समाख्यातं मम पूर्वं युधिष्ठिर ।।२४

एतत्त्रिलोकतिलकालकभूषणं ते ख्यातं व्रतं सकलदुःखहरं परं च ।
इत्थं समाचरति यः स सुखं विहृत्य मर्त्यः प्रयाति पदमापदि पद्मयोनेः ।।२५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे तिलकव्रतकथनं नामाष्टमोऽध्यायः ।८

नामक उसकी पत्नी थी, जिसका चरित्र भूषण की भाँति आदर्श था । उसने चैत्र मास में किसी विद्वान् ब्राह्मण को सादर बुलवाकर उनके सम्मुख इस व्रत नियम को सविधान सुसम्पन्न किया । उसने संवत्सर की अर्चना करते समय भगवान् जनार्दन को ध्यान द्वारा अपने हृदय में धारण किया था, जिसके फलस्वरूप जो कोई प्राणी निन्दा के व्याज से उसके सम्मुख उपस्थित होता था, वह वहाँ पहुँचते ही अत्यन्त प्रिय एवं हितैषी होकर उसके मुख दर्शन करते ही अपना नीचे मुख कर लेता था । उसने अपनी सपत्नियों के गर्व को चूर्ण कर इस पृथ्वी मण्डल को अपने अधीन कर लिया था और उसके समान उसके पति को कोई स्त्री प्रिय नहीं थी । इस प्रकार वह सदैव हर्षित रहकर अत्यन्त सुखी जीवन व्यतीत कर रही थी । उसी बीच कर द्वारा तिरस्कृत होने पर उसके पति पुत्र, शिर की वेदना से अत्यन्त पीड़ित हुए और कुछ समय के अनन्तर उनका निधन हो गया वे दोनों सहृदय सुहृदगण को भी अपमानित करते थे । उन्हें धर्मराज की पुरी ले जाने के लिए उनके दूत गण राजमहल के द्वार पर आकर खड़े हुए क्योंकि काल मृत्यु होने पर शत्रुञ्जय को वहाँ ले जाना परमावश्यक था । किन्तु अपने पार्श्वभाग में स्थित उस चित्रलेखा को महाराज धर्मराज के दूतों ने देखा, उसका मुख मण्डल तिलक द्वारा अत्यन्त सौन्दर्य पूर्ण दिखायी देता था । पश्चात् उनका संकल्प नष्ट हो गया, जिसके लिए वे वहाँ आये थे, और लौटकर अपने लोक चले गये । भारत ! उन दूतों के चले जाने पर पुत्र समेत वह राजा जीवित होकर आरोग्य रहते हुए अनेक भाँति के भोगों का उपभोग किया, जो जन्मान्तरीय कर्मों द्वारा अर्जित होकर संचित थे । युधिष्ठिर ! महाभाग ! इस अनुपम और महोदय व्रत का वर्णन मुझसे शङ्कर ने पहले ही किया था । इस प्रकार मैंने इस तिलक व्रत को तुम्हें बता दिया, जो तीनों लोकों के भूषण, समस्त दुःखों के अपहर्ता और सर्वश्रेष्ठ हैं । इसके सविधान सुसम्पन्न करने वाला प्राणी इस मर्त्यलोक की सभी कठिनाईयों को सरलता से पार कर सब भाँति के सुखी जीवन व्यतीत करने के उपरांत ब्रह्म पद की प्राप्ति करता है ।१५-२५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्वाद विषयक
तिलकव्रतवर्णन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ।८।

---

१. ध्यात्वा । २. अक्रूरेण ।

अथ नवमोऽध्याय:

अशोकव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

आश्वयुच्छुक्लपक्षस्य प्रथमेऽह्नि दिनोदये । अशोकं पूजयेद्वृक्षं प्ररूढशुभपल्लवम् ।।१
विरूढैः सप्तधान्यैश्च गुणकैर्मोदकैः शुभैः । फलैः कालोद्भवैर्दिव्यैर्नालिकेरैः सदाडिमैः ।।२
पुष्पधूपादिना तद्वत्पूजयेत्तद्दिनेऽनघ । अशोकं पांडवश्रेष्ठ शोकं नाप्नोति कुत्रचित् ।।३
पितृभ्रातृपतिश्वश्रूश्वशुराणां[1] तथैव च । अशोकशोकशमनो भव सर्वत्र नः कुले ।।४
इत्युच्चार्य ततो दद्यादर्घ्यं श्रद्धासमन्वितम् । पताकाभिरलङ्कृत्य प्रच्छाद्य शुभवाससा ।।५
दमयन्ती यथा स्वाहा यथा वेदवती सती । तथाशोकव्रतादस्माज्जायते पतिवल्लभा ।।६
वने व्रजंत्या सद्धर्मः सीतया सम्प्रदर्शितः । दृष्ट्वाऽशोकं वने पार्थ पल्लवालङ्कृताम्बरम् ।।७
कृत्वा समीपे भर्तारं देवरं च तिलाक्षतैः । दीपालङ्कृतनैवेद्यधूपसूत्रफलार्च्चनैः ।।८
अर्चयित्वा ह्यर्थितोऽसौ रक्ताशोको युधिष्ठिर । मैथिल्या प्राञ्जलिर्भूत्वा शृण्वता राघवस्य च ।।९
चिरं जीवतु मे वृद्धः श्वशुरः कोशलेश्वरः । भर्ता मे देवराश्चैव जीवन्तु भरतादयः ।।

अध्याय ९

अशोकव्रत माहात्म्य का वर्णन

श्रीकृष्ण जी बोले—आश्विन मास के शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन में सूर्यदेव के समय उस अशोक वृक्ष की पूजा करनी चाहिए, जो शुभ पल्लवों द्वारा विभूषित हों। अनघ पाण्डवश्रेष्ठ ! सप्त धान्य, गुण मोदक, सामयिक दिव्य फल, नारियल, अनार, पुष्प, धूप, दीप द्वारा अशोक वृक्ष का प्रेम पूर्वक पूजन करने वाले प्राणी कभी भी शोक नहीं करता है। हे पाण्डवश्रेष्ठ ! पितर, भ्राता, पति, श्वसुर सास आदि परिवार के सभी प्राणियों के शोक का नाश करो।१-४। इतना कहकर श्रद्धा समेत अर्घ्य, प्रदान करे, अनन्तर पताका तथा शुभ वस्त्रों से उस वृक्ष को सुशोभित करके प्रार्थना करे कि देव ! दमयन्ती, स्वाहा, और सती वेदवती के समान मैं भी इस अशोक व्रत द्वारा पति वल्लभा हो जाऊँ। पार्थ ! वनगमन के समय जानकी जी ने पल्लवों से विभूषित उस सर्वश्रेष्ठ अशोक के दर्शन द्वारा ही उस महान् सद्धर्म को सुसम्पन्न किया था। युधिष्ठिर ! उस अशोक वृक्ष के समीप पहुँच कर जानकी जी ने अपने समीप पति और देवर को बैठाकर तिल, अक्षत, दीप, नैवेद्य, धूप, सूत्र एवं फल द्वारा उसकी सप्रेम अर्चना के उपरांत उस रक्ताशोक की उन्होंने प्रार्थना की भगवान् रामचन्द्र जी के सामने बैठी हुई जानकी जी ने अञ्जलि बाँधकर इस भाँति कहना प्रारम्भ किया।५-९। कि—मेरे वृद्ध श्वसुर कोशलेश्वर चिरजीवन प्राप्त करें। उसी प्रकार मेरे पति, भरत आदि देवर और माता कौशल्या जी चिरजीवन प्राप्त करे जिससे मैं पुनः उनके

---

१. पितृभ्रातृपतिश्वश्रूसुतानां च तथैव च।

कौशल्यामपि जीवन्तीं पश्येयमिति मैथिली ॥१०
ययाचे तं महाभागा द्रुमं सत्योपयाचनम् । प्रदक्षिणमुपादृत्य ततस्ते प्रययुः पुनः ॥११
एवमन्यापि या नारी पूजयेद्भुवि तं नगम् । तिलतण्डुलसम्मिश्रैर्यवगोधूमसर्षपैः ॥१२
क्षमाप्य वन्दयेन्मूलं पादपं रक्तपल्लवम् । मन्त्रेणानेन कौंतेय प्रणम्य स्त्री पतिव्रता ॥१३
महावृक्ष महाशाख मकरध्वजमन्दिर । प्रार्थये त्वां महाभाग वनोपवनभूषण ॥१४
एवमाभाष्य तं वृक्षं दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् । सखीभिः सहिता भवती ततः स्वभवनं व्रजेत् ॥१५
याः शोकनाशनमशोकतरुं तरुण्यः सम्पूजयन्ति कुसुमाक्षतधूपदीपैः ।
ताः प्राप्य सौख्यमतुलं भुवि भर्तृजातं नारीपदं प्रमुदिताः पुनराप्नुवन्ति ॥१६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
अशोकव्रतवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ।९

अथ दशमोऽध्यायः

करवीरव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे प्रथमेऽह्नि दिनोदये । देवोद्यानभवं हृद्य करवीरं समर्चयेत् ॥१

दर्शन कर सकूँ । इस प्रकार उस महापराक्रमी जानकी ने उस सत्यनिष्ठ वृक्ष से याचना करके प्रदक्षिणा के उपरांत सबके साथ वहाँ से प्रस्थान किया । इसी भाँति इस पृथ्वी मण्डल के अन्य नारी को भी तिल, अक्षत, मिश्रित, जवा, गेहूँ, और राई द्वारा उस रक्त पल्लव शोभित वृक्ष के मूल भाग में सप्रेम पूजन करना चाहिए । कौन्तेय ! इस मंत्र द्वारा पतिव्रता स्त्री उनकी प्रार्थना करे—महावृक्ष ! आप महाशाखा वाले एवं काम गृह हैं वन, उपवन के भूषण ! मैं आप की प्रार्थना कर रही हूँ । इस प्रकार प्रार्थना करके ब्राह्मण को दक्षिणा देने के उपरांत अपनी सखियों समेत व अपने गृह को प्रस्थान करे । इस प्रकार जो स्त्री उस शोक नाशक अशोक वृक्ष की पुष्प, अक्षत, धूप, एवं दीप द्वारा अर्चना करती है उसे इस भूतल में अपने पति द्वारा अतुल सुख की प्राप्ति पूर्वक पुनः गौरीपद की प्राप्ति होती है ।१०-१६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व के श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
अशोकव्रतवर्णन नामक नवाँ अध्याय समाप्त ।९।

अध्याय १०

करवीरव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण जी बोले—ज्येष्ठ मास के शुक्ल प्रतिपदा के दिन सूर्योदय समय में किसी देवालय की वाटिका में स्थित करवीर वृक्ष की अर्चना करनी चाहिए । रक्तवस्त्र में उसे आवेष्टित करके गन्ध, धूप,

रक्ततन्तुपरीधानं[1] गन्धधूपविलेपनैः । दिरूढैः[2] सप्तधान्यैश्च नारङ्गैर्बीजपूरकैः ॥२
गणकैर्घटकैर्दिव्यैर्नालिकेरैः[3] सुशोभनैः । सुजलाक्षततोयेनानेनेवं क्षमापयेत् ॥३
करवीर विषावास नमस्ते भानुवल्लभ । मौलिमण्डनसद्रत्न नमस्ते केशवेशयोः ॥४

आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥५

एवं भक्त्या समभ्यर्च्य दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् । प्रदक्षिणामथो कृत्वा ततः स्वभवनं व्रजेत् ॥६
एतद्व्रतं महाभाग[4] सूर्याराधनाकम्यया । अनसूयया च क्षमया साविञ्या सत्यभामया ॥७
दमयन्त्या सरस्वत्या गायत्र्या गंगया तथा । अन्याभिरपि नारीभिर्मर्त्यलोकेऽप्यनुष्ठितम् ॥
करवीरव्रतं पार्थ सर्वसौख्यफलप्रदम् ॥८

सम्पूज्य रत्नकुसुमाञ्चितसर्वशाखं नीलैर्दलैस्तततनुं करवीरवृक्षम् ।
भुक्त्वा मनोऽभिलषितान्भुवि भव्यभोगानन्ते प्रयाति भवनं भरताग्र्य भानो ॥९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
करवीरव्रतवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः। १०

चन्दन, सप्त धान्य, नारङ्गी, नेबू, गुणक, और दिव्य नारियल को समर्पित करके अक्षत जल से सेचन करने के उपरांत इस मंत्र द्वारा क्षमा प्रार्थना करे—विषवास, करवीर ! आप सूर्य के अत्यन्त प्रिय पात्र हैं एवं भगवान् विष्णु और महादेव जी के मौलि मंडल के लिए उत्तम रत्न रूप हैं अतः आप को नमस्कार है। पश्चात् 'आकृष्णेन रजसेति' मंत्र के उच्चारण पूर्वक भक्ति भाव से उनकी अर्चना करने के उपरांत ब्राह्मण को दक्षिणा प्रदान करे और अनन्तर प्रदक्षिणा करके अपने घर को प्रस्थान करे। महाभाग ! सूर्य की आराधना करने की इच्छा से इस मर्त्यलोक में इस व्रत को अनसूया, क्षमा, सावित्री, सत्यभामा, दमयन्ती, सरस्वती, गायत्री गङ्गा आदि स्त्रियों ने सुसम्पन्न किया है। इस प्रकार पार्थ ! यह करवीरव्रत सभी प्रकार का सुख प्रदान करता है। भरताग्रज ! इस प्रकार करवीर वृक्ष के सविधान पूजन करने पर, जिसमें उसकी प्रत्येक शाखाएँ पुष्पों से भूषित और वह स्वयं तीन दलों से आच्छादित किया गया हो, उस मनुष्य को इस लोक में यथेच्छ समस्त भागों के उपभोग करने के उपरांत भगवान् सूर्य के लोक की प्राप्ति होती है। १-९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर सम्वाद में
करवीर व्रतवर्णन नामक दशवाँ अध्याय समाप्त। १०।

---

१. रक्तवस्त्रपरीधानम्। २. विकृतैः। ३. वटकैः। ४. पुरा पार्थ।

अथैकादशोऽध्यायः

कोकिलाव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

स्वभर्त्रा सह सम्बद्धमहास्नेहो यथा भवेत् । कुलस्त्रीणां तदाचक्ष्व व्रतं मम सुरोत्तम् ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

यमुनायास्तटे पूर्वं मथुरास्ते पुरी शुभा । तस्यां शत्रुघ्ननाम्नाभूद्राजा रामप्रतिष्ठितः ।।२
तस्य भार्या कीर्तिमाला नाम्नासीत्प्रथिता भुवि । तया प्रणम्य भगवान्वशिष्ठो मुनिपुङ्गवः ।।३
पृष्टः सुखं मुनिश्रेष्ठं कथं समुपजायते । ब्रूहि मे तिलसम्बन्धकारणं व्रतमुत्तमम् ।।४
एवमुक्तस्तया ज्ञानी वशिष्ठः कीर्तिमालया । ध्यात्वा मुहूर्तमाचख्यौ कोकिलाव्रतमुत्तमम् ।।५

श्रीवशिष्ठ उवाच

आषाढपूर्णिमायां तु सन्ध्याकाले ह्युपस्थिते । सङ्कल्पयेन्मासनेकं श्रावणे श्वःप्रभृत्यहम् ।।६
स्नानं करिष्ये नियता ब्रह्मचर्यस्थिता सती । भोक्ष्यामि नक्तं भूशय्यां करिष्ये प्राणिनां दयाम् ।।७
इति सङ्कल्प्य पुरुषो नारी वा ब्राह्मणांतिके । प्राप्यानुज्ञां ततः प्रातः सर्वसामग्रिसंयुतः ।।८
पुरुषः प्रतिपत्कालाद्दन्तधावनपूर्वकम् । नद्यां गत्वा तथा वाप्यां तडागे गिरिनिर्झरे ।।९

अध्याय ११

कोकिलाव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर जी बोले—सुरोत्तम ! मुझे वह व्रत बताने की कृपा कीजिये, जिसके सुसम्पन्न करने पर कुल स्त्रियाँ अपने पति का अगाध स्नेह प्राप्त करती हैं ।१

श्रीकृष्ण जी बोले—यमुना के पूर्वी तट पर मथुरा नामक एक यम पुरी थी, जिसमें राजा रामचन्द्र द्वारा प्रतिष्ठित शत्रुघ्न नामक राजा रहता था । उसकी पत्नी का नाम कीर्तिमाला था, जो इस भूमण्डल में प्रख्यात पतिव्रता थी । उसने एक बार मुनिश्रेष्ठ भगवान् वशिष्ठ से सादर प्रणाम पूर्वक पूछा कि—मुनीश्वर ! मुझे वह उत्तम व्रत बताने की कृपा करें, जिससे अत्यन्त सुख की प्राप्ति होती है और वह व्रत तिलाक्षत द्वारा सुसम्पन्न किया जाता हो । इस भाँति कीर्तिमाला के पूँछने पर ज्ञानी वशिष्ठ जी ने मुहूर्त मात्र ध्यान करके उस सर्वश्रेष्ठ, कौकिला नामक व्रत का विधान कहना प्रारम्भ किया—२-५

श्रीवशिष्ठ जी बोले—आषाढ़ की पूर्णिमा के दिन सायंकाल में संकल्प करे कि कल से आरम्भ कर पूरे श्रावण मास में ब्रह्मचर्य के नियम पालन पूर्वक प्रतिदिन नियत स्नान करूँगी और रात्रि में भोजन, भूमि शयन एवं प्राणियों पर दया करती रहूँगी । इस प्रकार स्त्री या पुरुष किसी ब्राह्मण विद्वान के समक्ष संकल्प करके प्रातः काल प्रतिपदा के समय सम्पूर्ण सामग्री समेत किसी नदी, बावली, सरोवर, अथवा

स्नानं कुर्याद्व्रती पार्थ सुगन्धामलकैस्तिलैः । दिनाष्टकं तथा पश्चात्सर्वौषध्या पुनः पृथक् ॥१०
वचयाष्टौ पुनः पिष्ट्वा शिरोरुहविमर्दनम् । स्नात्वा ध्यात्वा रविं चैव वन्दित्वा च पितॄनथ ॥११
तर्पयित्वा[1] तिलापिष्टैः कोकिलां पक्षिरूपिणीम् । कलकण्ठीं शुभैः पुष्पैः पूजयेच्चम्पकोद्भवैः ॥१२
पत्रैर्वा धूपनैवेद्यदीपालक्तकचन्दनैः । तिलतन्दुलदूर्वाग्रैः पूजयित्वा क्षमापयेत् ॥
नित्यं तिलव्रती भक्त्या मन्त्रेणानेन पाण्डव ॥१३
तिलसहे तिलसौख्ये तिलवर्णे तिलप्रिये । सौभाग्यं द्रव्यपुत्रांश्च देहि मे कोकिले नमः ॥१४
इत्युच्चार्य ततः पश्चाद्गृहमभ्येत्य संयतः । कृत्वाहारं स्वपेत्पार्थ यावन्मासः समाप्नुते ॥१५
मासान्ते ताम्रपात्र्यां तु कोकिलां तिलपिष्टजाम् । रत्ननेत्रां स्वर्णपक्षां ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥१६
वस्त्रैर्धान्यैर्गुडैर्युक्तां श्वावण्यां कुण्डलेऽथ वा । श्वश्रूश्वशुरवर्गे वा दैवज्ञे वा पुरोहिते ॥
व्यासे वा सम्प्रदातव्या व्रतिभिः शुभकाम्यया ॥१७
एवं या कुरुते नारी कोकिलाव्रतमादरात् । सप्त जन्मनि सौभाग्यं सा प्राप्नोति सुविस्तरम् ॥१८
निःसापत्न्यं पतिं भव्यं सस्नेहं प्राप्य भूतले । मृता गौरीपुरं याति विमानेनार्कवर्चसा ॥१९
एतद्व्रतं वशिष्ठेन मुनिना कथितं पुरा । तथा चानुष्ठितं पार्थ समस्तं कीर्तिमालया ॥२०

पर्वत के झरने में स्नान करे। पार्थ ! उस व्रती को चाहिए कि सुगन्धित आँवले, तिल तथा समस्त औषधियों को पृथक्-पृथक देह में लगाकर पुनः वच आदि के चूर्ण द्वारा शिर के केशों को भली भाँति शुद्ध करे। पश्चात् स्नान, सूर्य के ध्यान पूजन और पितरों की वन्दना के अनन्तर उस पक्षी रूपी कोकिला की, जो कलकंठ से विभूषित है, तिलभूषणों द्वारा सर्वाङ्ग सुन्दर आठ प्रतिमा बनाकर चम्पा के पुष्पों अथवा उसके पत्रों, धूप, दीप, नैवेद्य, अलक्तक (महावर) चन्दन, तिलाक्षत और दूर्वा के अंकुरों द्वारा उसकी पूजा सुसम्पन्न करके क्षमा प्रार्थना करे। पाण्डव ! भक्तिपूर्वक उस तिलव्रती को उसी भाँति प्रतिदिन इसी मंत्र द्वारा प्रार्थना करनी चाहिए तिल सहे, तिल सौख्ये, तिल के समान वर्ण वाली एवं तिल प्रिये ! कोकिले ! मैं तुम्हें नमस्कार कर रही हूँ, मुझे आप सौभाग्य, पुत्र, द्रव्य आदि प्रदान करने की कृपा करती रहें।६-१४। इस प्रकार प्रार्थना करके घर जाकर संयम पूर्वक आहार करके शयन करे। पार्थ ! मास की समाप्ति तक उसे इसी भाँति सुसम्पन्न करते हुए मास के अन्त में उस कोकिला पक्षी को जो ताम्रपात्र में प्रतिष्ठित और तिल की पीठी से उसकी देह, रत्न से नेत्र और सुवर्ण के पक्ष से विभूषित हों, एवं वस्त्र, धान्य, गुड़ों से संयुक्त हो, सादर ब्राह्मण को समर्पित कर दे। अपनी शुभकामनाओं की पूर्ति के लिए सास ससुर वर्ग के किसी को अथवा, ज्योतिषी, पुरोहित या व्यास को उसे समर्पित कर देना चाहिए। इस भाँति जो स्त्री इस कोकिला व्रत को सादर सुसम्पन्न करती है, उसे इस भूतल में वह सपत्नी हीन रहकर अपने पति के उस भव्य एवं अगाध स्नेह का प्रिय पात्र बनती है अनन्तर निधन होने पर सूर्य के समान तेज पूर्ण विमान पर सुशोभित होकर गौरी पद की प्राप्ति करती है। पार्थ ! इस प्रकार वशिष्ठ मुनि ने पहले समय में उसकी कीर्तिमाला से इस व्रत का वर्णन किया था, जिसने भली भाँति उसे सुसम्पन्न किया है।

---

१. तर्पयित्वा लिखेदष्टौ कोकिलाः पक्षिरूपिणीः। कलकण्ठीः।

तस्याश्च सर्वं सम्पन्नं वशिष्ठवचनादिह । पुत्रसौभाग्यसम्मानं शत्रुघ्नस्य प्रसादजम् ।।२१
एवं यान्यापि कौंतेय कोकिलाव्रतमादरात् । करिष्यति ध्रुवं तस्याः सौभाग्यं च भविष्यति ।।२२
ये कोकिलां कलरवां कलकण्ठपीठां यच्छन्ति साज्यतिलपिष्टमयीं द्विजेभ्यः ।
ते नन्दनादिषु वनेषु विहृत्य कामं मर्त्ये समेत्य मधुरध्वनयो भवन्ति ।।२३
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
कोकिलाव्रतं नामैकादशोऽध्यायः ।११

अथ द्वादशोऽध्यायः

बृहत्तपोव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथ पापापहं वक्ष्ये बृहद्व्रतमनुत्तमम् । सुरासुरमुनीनां च दुर्लभं विधिना शृणु ।।१
पर्वण्याश्वयुजस्यान्ते पायसं घृतसंयुतम् । नक्तं भुञ्जीत शुद्धात्मा ओदनं नैक्षवान्वितम् ।।२
आचम्याथ शुचिर्भूत्वा बिल्वजं दन्तधावनम् । भक्षयित्वा महादेवं प्रणम्येदमुदीरयेत् ।।३
अहं देवव्रतमिदं कर्तुमिच्छामि शाश्वतम् । तवाज्ञया महादेव यथा निर्वहते कुरु ।।४

वशिष्ठ मुनि के कथनानुसार इस व्रत के सुसम्पन्न करने पर वह समस्त सुखों से सुसम्पन्न हुई उसके पति शत्रुघ्न की कृपा से पुत्र, सौभाग्य, सम्मान आदि की अतुल प्राप्ति उसे सदैव होती रही । कौंतेय ! इस प्रकार जो अन्य स्त्री इस कोकिला व्रत को सविधान सुसम्पन्न करेंगी, उसे अतुल मुख सौभाग्य की निश्चित प्राप्ति होती रहेगी जो नारियाँ कलरव करने वाली उस कोकिला पक्षी की सुन्दर प्रतिमा को घी समेत तिल के चूर्ण द्वारा जिसके पीठ आदि सभी अंग प्रत्यङ्ग अत्यन्त सुन्दर बने हो, ब्राह्मणों को अर्पित करती है, वे नन्दन वन के उस रमणीक बिहारों के यथेच्छ, अनुभव करके यहाँ मर्त्य लोक में जल ग्रहण करने पर कोकिल कण्ठा (कोकिल के समान मधुर ध्वनि वाली) होती है ।१५-२३

अध्याय १२

बृहत्तप व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण जी बोले—अब मैं तुम्हें उसके श्रेष्ठ वृहद्व्रत नामक व्रत का, जो पापहारी, सुर, असुर एवं मुनियों को भी परम दुर्लभ है, सविधान वर्णन कर रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! कार्तिक मास की पूर्णिमा के अंत समय (सांयकाल में) शुद्धात्मा होकर घी समेत पायस का मधुर भोजन रात्रि में एक बार कर, जो उस मधुर चावल की मधुर खीर बनी हो । पश्चात् प्रातःकाल आचमन पूर्वक पवित्र होकर वेल की दातून करके भी महादेव जी से नमस्कार पूर्वक **प्रार्थना करे कि**—देव ! आप की आज्ञा से मैं इस व्रत को निरन्तर सुसम्पन्न करना चाहता हूँ, श्रीमहादेव ! इसका समुचित निर्वाह जिस भाँति हो सके, करने

इत्येवं नियमं कृत्वा यावद्वर्षाणि षोडश । तिथयः प्रतिपत्पूर्वा भजिष्यामीत्यनुक्रमात् ।।५
ततो मार्गशिरे मासि प्रतिपद्यपरेऽहनि । पृष्ट्वा गुरुं चोपवासं महादेवं स्मरन्मुहुः ।।६
स्नात्वा देवं समभ्यर्च्य रात्रौ प्रज्वाल्य दीपकान् । यमुनां च महादेवं नत्वा पश्चान्निमन्त्रयेत् ।।७
महादेवरतान्विप्रान्सपत्नीकान्यतव्रतान् । षोडशाष्टौ तदर्धं वा एकं वा शक्त्यपेक्षया ।।८
आमंत्र्य स्वगृहं गत्वा महादेवं स्मरन्क्षितौ । शुचिवस्त्रास्तृतायां तु निराहारो निशि स्वपेत् ।।९
भास्करोदयमासाद्य स्नात्वा चादाय दीपकान् । नैवेद्यं स्नपनं पुष्पं धूपं गच्छेच्छिवालये ।।१०
अभ्यङ्गयित्वा देवेशं कषायैश्च विरूक्षयेत् । स्नपयेत्पञ्चगव्येन पयसा तदनन्तरम् ।।११
घृतेन मधुना दध्ना रसेन पयसा पुनः । तिलाम्बुना ततः स्नाप्य स्नापयेदुष्णवारिणा ।।१२
लेपयेत्सुघनं पश्चात्कर्पूरागरुचन्दनैः । पुष्पैः सम्पूज्य दातव्यं हैमं शिरसि पङ्कजम् ।।१३
वस्त्रयुग्मं पताकां च पञ्चवर्णं वितानकम् । धूपं दीपं च घण्टाञ्च दद्याद्देवस्य शक्तितः ।।१४
पश्चान्निवेद्य नैवेद्यं स्तुत्वा स्वभवनं व्रजेत् । सुसमिद्धं ततः कृत्वा पूजयेज्जातवेदसम् ।।१५
व्रतिनश्च तथाचार्य्यं भोजयेन्मिथुनानि च । हेमवस्त्रादिदानेन यथाशक्ति क्षमापयेत् ।।१६
एवं विसृज्य तान्सर्वान्सार्द्धं बन्धुजनैः स्वयम् । आशयित्वा पञ्चगव्यं हृष्टो भुञ्जीत वाग्यतः ।।१७
एवमेव विधिं कृत्वा प्रारभेताधनो धनी । वित्तसामर्थ्यतश्चैव प्रतिमासं च कृत्स्नशः ।।१८
वित्तहीनो यथा कश्चिच्छ्रद्धया च पुनः पुनः । पुष्पार्चनविधानेन सर्वमेतत्समाचरेत् ।।१९

की कृपा करें ।१-४। मैं भी सोलह वर्ष तक इन्हीं नियम पालन पूर्वक प्रतिपदा आदि तिथि से प्रारम्भ कर इसे सुसम्पन्न करता रहूँगा इस प्रकार संकल्प करने के अनन्तर मार्गशीर्ष (अगहन) की प्रतिपदा तिथि में प्रातः काल गुरु की आज्ञा पूर्वक महादेव जी के स्मरण करते हुए उपवास विधान प्रारम्भ करें । स्नान एवं देव पूजन करके रात्रि में दीपक प्रज्वलित कर यमुना और महादेव जी के नमस्कार पूर्वक सोलह, आठ, चार अथवा शक्त्यानुसार एक ही सपत्नीक ब्राह्मण को निमंत्रित करे, जो महादेव जी का प्रिय भाजन, सयंमी एवं व्रतशील हो । अनन्तर अपने घर आकर महादेव जी के स्मरण पूर्वक उपवास रहकर रात्रि में ऐसे स्थान पर भूमि शयन करे जहाँ शुद्ध वस्त्र बिछाया गया हो । पुनः सूर्योदय होने पर स्नान पूर्वक दीप नैवेद्य, स्नान में जल, पुष्प एवं धूप आदि वस्तु समेत शिवालय में जाकर देवाधिदेव शिव जी अभ्यंग कराकर कषाय द्वारा सुखाकर सर्वप्रथम पञ्चगव्य द्वारा स्नान कराये । अनन्तर पय, घी, मधु, दही, रस, पुनः पय, और तिल-जल से क्रमशः स्नान कराने के उपरांत उष्ण (गर्म) जल से स्नान कराये । पश्चात् कपूर, अगरु, और चन्दनों के मिश्रित से घन लेपन तथा पुष्पों द्वारा अर्चना करके उनके शिर को सुवर्ण कमल से विभूषित करे और दो वस्त्र, पताका, पाँच रंग का वितान (चाँदनी), धूप, दीप, घण्टा, आदि वस्तु अपनी शक्ति के अनुसार उन्हें अर्पित करें ।५-१४। तदुपरांत नैवेद्य के निवेदन पूर्वक आराधना करके अपने गृह को प्रस्थान करे । वहाँ पहुँच कर प्रज्वलित अग्नि पूजा करके पत्नी समेत व्रती और आचार्य ब्राह्मण को सप्रेम भोजन कराकर यथाशक्ति सुवर्ण और वस्त्रादि के दानों से तृप्त करते हुए उनकी क्षमा प्रार्थना करे । इस प्रकार उनके पूजन-विसर्जन के उपरांत बंधुओं के साथ पञ्चगव्य के प्राशनपूर्वक प्रसन्नचित्त एवं वाक्संयमी होकर भोजन करे । इसी विधान द्वारा धनवान और निर्धनप्राणी को अपने वित्तसामर्थ्य के अनुसार प्रतिमास इसे सुसम्पन्न करना चाहिए ।१५-१८। निर्धन प्राणी अत्यन्त श्रद्धालु होकर पुष्पार्चन द्वारा

प्रतिमासमुपोष्यैवं प्रतिपत्कार्तिकावधौ । पारयेत्तं हुतं पार्थ प्रारम्भविधिना स्फुटम् ॥२०
द्वितीये द्वे पञ्चदश्यां कृत्वा नक्तं नराधिपः । प्रतिपत्सद्वितीया चेत्तस्यामुपवसेत्सुधीः ॥२१
द्वितीयोपवसेच्छुक्ला ततः प्रभृति वत्सरम् । प्रारम्भविधिना चैवं द्वितीयामपि पारयेत् ॥२२
उपवासद्वयं कृत्वा तृतीयां प्रारभेत्ततः । अनेन क्रमयोगेन यावद्वर्षं समाप्यते ॥२३
कृत्वैवं षोडशे वर्षे पूर्णमास्यां समुद्यतः । पूर्ववद्देवमभ्यर्च्य कृशानुं वाभितर्प्य च ॥२४
हेमशृंगीं रौप्यखुरां सघण्टां कांस्यदोहनाम् । महादेवाय गां दद्याद्दीक्षिताय द्विजाय वै ॥२५
शिवभक्तिरतान्विप्रान्विशुद्धांश्चैव षोडश । वस्त्राभरणदानैश्च शक्त्या सम्पूजयेद्व्रती ॥२६
ब्राह्मणांश्च यथाशक्त्या भोजयेदपरानपि । अन्येषां च क्षुधार्तानां दद्याद्दानं यथेच्छया ॥२७
बृहत्तपोव्रतं चैव ब्रह्मघ्नाद्यघशोषणम् । भूर्भुवादिषु लोकेषु भूरिभोगप्रदं नृणाम् ॥२८
चतुर्णामपि वर्णानां स्वर्गसोपानवत्स्थितम् । न कुर्याद्यो धनं प्राप्य स मुष्टो नष्टचेतनः ॥२९
धन्यमायुःप्रदं पुण्यं रूपसौभाग्यवर्द्धनम् । स्त्रीपुंसयोश्च निर्दिष्टं व्रतमेतत्पुरातनम् ॥३०
विधवयापि कर्तव्यं भूयोऽवैधव्यहेतवे । सधवयापि कर्तव्यमवियोगाय सद्व्रतम् ॥३१
उपोष्य प्रतिमासं तु भुञ्जीत ब्राह्मणैःसह । एकद्वित्रिचतुर्भिर्वा स्वशक्त्या पाण्डुनन्दन ॥३२

ही इसकी पुनः पुनः पूर्ति करते हुए भली भाँति सुसम्पन्न कर सकता है । पार्थ ! इस प्रकार इस प्रतिपदा से प्रारम्भ होकर कार्तिक तक की अवधि तक सुसम्पन्न होने वाले व्रत को प्रतिमास में उपवास पूर्वक इस सरल निर्दिष्ट विधान द्वारा प्रारम्भ कर हवन पर्यंत कर्मों के अनुष्ठान करके निभाने की चेष्टा करता रहे । दोनों द्वितीया और पूर्णिमा के दिन नक्त (रात्रि में एक बार) भोजन करते हुए इसकी पूर्ति करनी चाहिए । यदि प्रतिपदा के दिन उपरांत द्वितीया भी आ जाये तो विद्वानों को उपवास करना उसी दिन परमावश्यक होगा । उस दिन से प्रारम्भ कर पूरे वर्ष भर शुक्ल द्वितीया के उपवास पूर्वक उस विधान को सुसम्पन्न करता रहे अथवा प्रतिपदा और द्वितीया के दिन दो उपवास रहकर तृतीया से व्रतानुष्ठान प्रारम्भ करके इसी क्रम से वर्ष की समाप्ति करे । इस प्रकार सोलह वर्ष की समाप्ति में पूर्णिमा के दिन पूर्व की भाँति देव तथा अग्नि के पूजन एवं तर्पणोंपरांत महादेव जी के निमित्त दीक्षित ब्राह्मण को इस भाँति की गौ अर्पित करे, जिसके सींगों में सुवर्ण, खुरों में चाँदी, एवं गले में घंटा विभूषित हो और कांसे की कोहनी हो । पश्चात् उस व्रती को आवश्यक है कि सोलह ब्राह्मण विद्वानों का, जो शिव के परम उपासक एवं विशुद्ध हों, यथाशक्ति वस्त्राभूषणों द्वारा सादर सम्मान्नित करते हुए भोजन कराये । शक्त्यनुसार अन्य ब्राह्मणों को भी भोजनादि द्वारा संतुष्ट करना चाहिए । उसी प्रकार अन्य पीड़ितों को यथेच्छ दान से सुशोभित करे । इस प्रकार यह वृहत्तपोव्रत नामक व्रत मनुष्यों को ब्रह्महत्या आदि पापों के शमन पूर्वक भूर्भुवादि लोकों में अत्यन्त भोगों के उपभोग प्रदान करता रहे । यह व्रत चारों वर्णों के लिए स्वर्ग सोपान (सीढ़ी) है, इसलिए धनवान् होकर जो प्राणी इस व्रत को सुसम्पन्न नहीं करता है, उस मूढ़ के समान आत्महन्ता अन्य कौन हो सकता है । यह पुरातन व्रत स्त्री पुरुषों के सौभाग्य जीवन, पुण्य और सौभाग्य को सदैव वृद्धि करता रहता है । जन्मान्तर में विधवा न होने के लिए विधवा स्त्रियों और पति से कभी वियोग न हो इसके लिए सधवा स्त्रियों को इस व्रतानुष्ठान की पूर्ति के हेतु प्रतिमास के उपवास पूर्वक शक्त्यनुसार एक, दो, तीन या चार के साथ भोजन करना चाहिए। १९-३२। पाण्डुनन्दन ! इसके अनुष्ठान

अन्ते चान्ते सुवर्णानां प्रारम्भविधिनाचरेत् । पुण्यसम्भारमन्विच्छन्नामयित्वा शिवालयम् ।।३३
व्रतविघ्ने महाराज जाते दैवात्कथञ्चन । तावत्यस्तिथयश्चान्याः समुपोष्याः समाप्तये ।।३४
अथ शीघ्रतरं कश्चिद्व्रतं कर्तुं समुद्यतः । विधिनानेन राजेन्द्र तेन ग्राह्यं तिथिद्वयम् ।।३५
अन्ते चान्ते च वर्षाणां प्रारम्भविधिनाचरेत् । अथारब्धे व्रते कश्चिदसमाप्ते म्रियेत चेत् ।।३६
सोऽपि तत्फलमाप्नोति सत्यारम्भप्रभावतः । वाचकाः श्रावकाश्चैव व्रतस्यास्य युधिष्ठिर ।।
भवन्ति पुत्रसंश्लिष्टाः शिवध्यानानुभावतः ।।३७

पुण्यं बृहत्तप इदं व्रतमादराद्ये कुर्वंति षोडशसमा निरताः स्वधर्मे ।
ते भानुमण्डलमभेद्यमचिंत्यमाद्यं भित्त्वा प्रयान्ति शशिशेखरपादमूलम् ।।३८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
बृहत्तपोव्रतवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ।१२

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

भद्रोपवासव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

जातिस्मरत्वं देवेश दुष्प्राप्यमिति मे मतिः । तदहं ज्ञातुमिच्छामि प्राप्यते केन कर्मणा ।।१

के अंत में सुवर्ण आदि वस्तुओं से संयुक्त होकर पुण्य भार की अधिकता का अभिलाषी होकर शिवालय की यात्रा करे। महाराज ! दैव योग से किसी कारण वश व्रत में विघ्न उपस्थित होने पर उस व्रत के समाप्ति के लिए उतनी अन्य तिथियों के उपवास करना चाहिए। राजेन्द्र ! यदि कोई मनुष्य इस व्रत को शीघ्र सुसम्पन्न करना चाहे तो इसी विधान द्वारा दो तिथियों के ग्रहण करना चाहिए। प्रत्येक वर्षो के अन्त समय प्रारम्भ किये गये विधान द्वारा उसकी पूर्ति करे। व्रतानुष्ठान को प्रारम्भ कर व्रती की मृत्यु हो जाने पर उस सत्य प्रारम्भ के प्रभाव से उसे समस्त फलों की प्राप्ति होती है। युधिष्ठिर ! इस व्रत के अनुष्ठान करने वाले और उसके श्रवण करने वाले दोनों, भगवान् शंकर के ध्यान प्रसाद द्वारा पुत्रादि परिवार समेत अत्यन्त सुखी जीवन व्यतीत करते हैं। वृहत्तपोव्रत नामक इस अनुष्ठान को सुसम्पन्न करने वाले प्राणी जो अत्यन्त श्रद्धालु एवं सोलह वर्ष तक इस अपने अनुपम धर्म में तन्मय रहकर सादर उसे सुसम्पन्न करते रहते हैं, उस अभेद्य भानु मण्डल के भेदन पूर्वक भगवान् शशिशेखर (शिव) जी के चरण कमल की प्राप्ति करते हैं।३३-३८

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
बृहत्तपोव्रत वर्णन नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त।१२।

अध्याय १३

भद्र नामक उपवास व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर जी बोले—देवेश ! पूर्व जन्म के वे दुष्प्राप्य स्मरण किस कर्म द्वारा होते हैं मैं उसे जानना

वरप्रदानाद्देवानामृषीणां सेवनेन वा । तीर्थस्नानेन वा देव तपोहोमव्रतेन वा ।।२

श्रीकृष्ण उवाच

चत्वारि राजन्भद्राणि समुपोष्याणि यत्नतः । तत्प्रभावाद्भवेन्नूनं राजञ्जातिस्मरो नरः ।।३
शुभोदयः पुरा वैश्यो बभूव यमुनातटे । तेन व्रतमिदं चीर्णमृतः कालक्रमादसौ ।।४
संजयस्य सुतो जातः स्वर्णष्ठीवीति विश्रुतः । व्रतप्रभावाज्जातिज्ञः स च चौरैर्निपातितः ।।५
नारदस्य प्रभावेण पुनरुज्जीव्यतेऽप्यसौ । सस्मार पूर्ववृत्तांतं सकलं व्रतधर्मतः ।।६

युधिष्ठिर उवाच

संजयस्य कथं पुत्रः स्वर्णष्ठीवीति वा कथम् । दस्युभिश्च कथं नीतो मृत्युं वै जीवितः कथम् ।।७

श्रीकृष्ण उवाच

संजयो नाम राजासीत्कुशावत्यां नराधिप । देवर्षी तस्य मित्रे च सदा नारदपर्वतौ ।।८
एकदा संजयगृहं सम्प्राप्तौ तौ यदृच्छया । स्वागतासनदानाद्यैरुपचारैरपूजयत् ।।९
तेषामथोपविष्टानां पूर्ववृत्तान्तभाषिणौ । सञ्जयस्य सुता प्राप्ता तरुणी पितुरन्तिकम् ।।१०
पर्वतः प्राह राजानं कन्येयं वरवर्णिनी । गुप्तगुल्फा संहतोरूः पीनश्रोणिपयोधरा ।।११

चाहता हूँ, व्रत बताने की कृपा कीजिये। देव ! उसकी प्राप्ति किसी वरदान, देवों या ऋषियों की सेवा, तीर्थ स्नान, तप, हवन अथवा किस व्रतानुष्ठान द्वारा होती है।१-२

श्रीकृष्ण जी बोले—राजन् ! भद्र नामक व्रत के चार उपवास करने पर उसके प्रभाव से उस व्रती पुरुष को निश्चित जन्मान्तरीय स्मरण हो जाता है। पहले समय में यमुना जी के तट पर एक शुभोदय नामक वैश्य रहता था, जिसने इस व्रतानुष्ठान को सविधान सुसम्पन्न किया था अंत में (वही) मृतक होने पर संजय के यहाँ पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ, जिसकी स्वर्णष्ठीवी नाम से प्रख्याति थी। इस व्रत के प्रभाव से उसे जाति स्मरण हुआ था। यद्यपि चोरों ने उसे प्राणहीन कर दिया था तथापि नारद जी के प्रभाव से उसे पुनः जीवन प्राप्त हुआ और इस व्रत के प्रभाव से उसे इन समस्त वृत्तान्तों का स्मरण हुआ था।३-६

युधिष्ठिर जी बोले—संजय के स्वर्णष्ठीवी नामक पुत्र की उत्पत्ति किस प्रकार हुई, चोरों ने उसका निधन कैसे किया और पुनः वह जीवित कैसे हुआ आदि बातें बताने की कृपा कीजिये।७

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! कुशावती नगरी के अधीश्वर संजय के देवर्षि नारद और ऋषीश्वर पर्वत नामक दो मित्र थे, जो सदैव उनके यहाँ आया जाया करते थे। एक बार राजा संजय के यहाँ वे दोनों मित्र इधर-उधर भ्रमण करते हुए अकस्मात् आ गये। राजा ने उन्हें देखकर स्वागत करते हुए आसनादि उपचारों द्वारा उनकी पूजा की। अनन्तर वे सब राजा से अपने-अपने वृत्तान्तों को कह रहे थे कि उसी बीच राजा संजय की एक युवती कन्या वहाँ अपने पिता के पास आ गई। उसे देखकर पर्वत ऋषि ने राजा से कहना आरम्भ किया कि यह तो बड़ी अनुपम कन्या है, क्योंकि इसके गुल्फ (एड़ी) मांसल होने के नाते अत्यन्त गुप्त हैं, और उसी भाँति घने ऊरु, अत्यन्त पीन श्रोणि एवं घने पयोधर हैं। विकसित कमल की

पद्मपत्रेक्षणनखा पद्मकिञ्जल्कसप्रभा । आकुञ्चितमृदुस्निग्धैः केशैरविततैर्घनैः ॥१२
सविलासा गजगतिः सुनासा कोकिलस्वरा । अहोरूपमहो धैर्यमहो लावण्यमुत्तमम् ॥१३
तिलपुष्पस्फुटा नासा रूपं सम्परिलक्ष्यते । कस्येयं भद्रिका भद्रा ममातिहृदयङ्गमा ॥१४
एवं ब्रुवाणं तं विप्रं विस्मयोत्फुल्ललोचनम् । स राजा प्राह कन्येयं दुहिता मम पर्वत ॥१५
अथोवाच नृपं धीमान्नारदः क्षुभितेन्द्रियः । राजन्निवेष्टुकामोऽहं कन्येयं मम दीयताम् ॥१६
ईप्सितं तव दास्यामि वरं मर्त्येषु दुर्लभम् । एवमुक्तो नारदेन प्रीतात्मा सञ्जयस्तथा ॥१७
कृताञ्जलिरुवाचेदं प्रहर्षोत्फुल्ललोचनः । पुत्रो मे दीयताम् क्षिप्रमक्षीणकनकाकरः ॥१८
यस्य मूत्रं पुरीषं वा श्लेष्माणं क्षिपति क्षितौ । जातरूपं हि तत्सर्वं सुवर्णं भवतु स्थिरम् ॥१९
एवमस्त्विति तं राजन्नारदः प्रत्यभाषत । सुवर्णष्ठीविनं पुत्रं ददामि तव सुव्रत ॥२०
एवमुक्त्वा स तां कन्यां सालङ्कारां सुमध्यमाम् । विवाहयामास तया नारदो हृष्टमानसः ॥२१
ततस्य चेष्टितं दृष्ट्वा पर्वतः क्रोधमूर्च्छितः । उवाच नारदं रोषाद्दीप्ताक्षः स्फुरिताधरः ॥२२
मयेयं प्रार्थिता पूर्वं त्वया यस्माद्विवाहिता । तस्मान्मया समं स्वर्गं न गन्तासि कथञ्चन ॥२३
दत्तस्त्वयास्य यः पुत्रो वरदानेन नारद । सोऽपि चौरैरभिहतः पञ्चत्वमुपयास्यति ॥२४

भाँति दोनों नेत्र, कमल पत्र की भाँति कोमल, नख, पद्मपराग, के समान शरीर का वर्ण, कोमल, स्निग्ध, छोटे, घने और आकुञ्चित (टेढ़े मेढ़े) शिर के केश और विलास पूर्वक गज की भाँति गमन (चाल) और सुन्दर नासा, एवं कोकिल की भाँति मधुर भाषिणी है। उसका रूप और रूप लावण्य तो अपनी उत्तमता के नाते आश्चर्य उत्पन्न कर रहा है, उसी प्रकार धीरता भी इसमें कितनी गम्भीर हैं। तिलपुष्प की भाँति इसकी नासिका मन को निरन्तर मुग्ध कर रही है ! यह कल्याणमयी भव्य मूर्ति जिसने मेरे हृदय को सहसा अपने अधीन कर लिया है, किसकी प्रेयसी है। इस प्रकार कहने वाले उस ब्राह्मण से जिनके नेत्र आश्चर्य चकित होने के नाते विकसित हो उठे थे, राजा ने कहा—पर्वत ! यह मेरी कन्या है। इसे सुनकर धीमान् नारद ने काम व्यथित होते हुए कहा—राजन् ! इसमें निविष्ट होने (गर्भाधान करने) की मेरी प्रबल इच्छा हो रही है। अतः इसका पाणिग्रहण मेरे साथ सुसम्पन्न कर दें। मैं भी तुम्हें वह अभिलषित वर प्रदान करूँगा, जो इस मर्त्यलोक में अत्यन्त दुर्लभ है। नारद के इस प्रकार कहने पर अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा संजय ने कमल की भाँति जिनके नेत्र उस समय खिल उठे थे, करबद्ध प्रार्थना की। मुझे एक ऐसे पुत्र को, जो अक्षय सुवर्ण का स्वपिता हो, शीघ्र देने की कृपा कीजिये। और जिसका मूत्र, पुरीष (मल) तथा श्लेष्मा पृथिवी पर गिरते ही उसी समय वह सब सुवर्ण का स्थिर रूप प्राप्त करे।८-२०। नारद ने कहा—राजन् ! जैसा आप चाहते हैं, वह सब वैसा ही होगा। सुव्रत ! मैं तुम्हें सुवर्ण पृथ्वी पुत्र प्रदान कर रहा हूँ। इतना कहकर नारद ने हर्षमान होकर उस कन्या के साथ, जो अलङ्कारों से सुसज्जित और जिसका मध्य भाग विशेष कमनीय था, सविधान पाणिग्रहण सुसम्पन्न किया। पश्चात् उसे देखकर पर्वत ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर जिनकी आखें रोष से रक्तवर्ण की और अधरोष्ठ फड़क रहाथा, उसके साथ यदि तुम्हीं ने पाणिग्रहण कर लिया है, तो इसी दोष के नाते तुम मेरे साथ स्वर्ग की यात्रा किसी प्रकार नहीं कर सकते, तथा नारद ! इन राजा को तुमने जो पुत्र प्रदान किया है, वह भी चोरों द्वारा निहत होकर स्वर्गीय

एवमुक्तः पर्वतेन नारदः प्राह दुर्मनाः । न त्वं धर्मं विजानासि किञ्चिन्मूढोऽसि दुर्मते ।।२५
सामान्यं सर्वभूतानां कन्या भवति सुव्रत । न तस्या वरणे दुःखं[1] पश्यन्तीह बहुश्रुताः ।।२६
न सेवितास्त्वया वृद्धास्तेन मां शपसे रुषा । पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात्सप्तमे पदे ।।२७
यस्मादेतदविज्ञाय शपसे मामनागसम् । तस्मात्त्वमप्यहो स्वर्गं न गन्तासि मया विना ।।२८
सञ्जयस्य सुतः शापाद्यदि पञ्चत्वमेष्यति । आनयिष्ये तथाप्येनं यमलोकान्न संशयः ।।२९
एवं शप्त्वा तदाऽन्योन्यं देवर्षी तावुभौ पुनः । पूजितौ सञ्जयेनाथ जग्मतुः स्वाश्रमं प्रति ।।३०
अथास्य सप्तमे मासि जातः पुत्रो नृपस्य सः । स्वर्णष्ठीवीति नामास्य यथार्थमकरोत्पिता ।।३१
जातिस्मरः स्मरवपुः सुवर्णोत्पत्तिकारणम् । सर्वभूतरुतज्ञोऽभूद्भद्रव्रतफलादिह ।।३२
मूत्रश्लेष्मपुरीषादि यत्किञ्चित्क्षिपति क्षितौ । जायते कनकं सर्वं प्रसादान्नारदस्य च ।।३३
तेनासौ यजते राजा विधिवद्भूरिदक्षिणैः । राजसूयादिभिर्यज्ञैर्विविधैर्ब्राह्मणैर्वृतः ।।३४
बभार भृत्याननिशं पुपोष स्वजनातिथीन् । चकार देवतागारं सरश्चारामवाटिकाः ।।३५
जातस्नेहं तथा पुत्रं ररक्ष रक्षिभिर्वृतः । राशयः कनकस्यास्य बभूवुर्नृपतेः सुतात् ।।३६

हो जायगा । इस प्रकार पर्वत ऋषि के कहने पर दुःख प्रकट करते हुए नारद ने कहा—दुर्मते ! तुम महामूर्ख हो, तुम्हें कुछ भी धर्म का ज्ञान नहीं है, क्योंकि सुव्रत ! सामान्यतः कन्या सभी प्राणियों की होती है, किन्तु उसके वरण करने में विद्वान लोग इस प्रकार दुःख नहीं प्रकट करते । तुमने वृद्ध समाज की सेवा नहीं की है, इसीलिए रुष्ट होकर मुझे शाप दे रहे हो । और यह जानते हुए कि पाणिग्रहण मंत्रों की सप्तपदी के सातवें पद के उच्चारण करने पर दृढ़तर स्थिरता हो जाती है अर्थात् पाणिग्रहण दृढ़ हो जाता है । इस पर ध्यान न देकर निरपराध मुझे शाप दिया है, इसलिए मेरे बिना तुम भी स्वर्ग की यात्रा नहीं कर सकोगे और शाप के कारण राजा संजय का पुत्र यदि मृतक हो जायगा, तो यह निःसन्देह है कि यमलोक से भी उसे ला दूँगा । इस प्रकार आपस में एक दूसरे को शाप देकर वे दोनों देवर्षि संजय से पूजित होने के उपरांत अपने आश्रम चले गये । इसके अनन्तर सातवें मास में राजा के वह स्वर्णष्ठीवी नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । पिता ने उसका यथोचित संस्कार सम्पन्न किया । इस भद्र व्रत के फलस्वरूप उस काल को अपने जन्मान्तर के स्मरण, काम के समान सुन्दर शरीर जो सुवर्णोत्पत्ति का कारण थी, तथा समस्त प्राणियों की भाषा का अर्थ भली भाँति स्पष्ट था। उसके मूल आदि शरीर के सभी प्रकार के मल, पृथ्वी पर गिरते ही नारद के प्रसाद से कनक मय हो जाते थे। उसी सुवर्णों द्वारा राजा संजय विद्वान् ब्राह्मणों को निमंत्रित करके उन्हें अधिक दक्षिणादि प्रदान द्वारा सुसम्मानित करते हुए राजसूय आदि अनेक यज्ञों के अनुष्ठान सुसम्पन्न करते थे। उसी प्रकार सेवक वर्गों के सुभरण पोषण, अपने स्वजनों और अतिथियों के पोषण पूर्वक देवमन्दिरों, सरोवरों, बाग, बगीचे आदि के अनेक प्रकार से रचना करवाया। उस स्नेह भाजन प्रिय पुत्र की रक्षा रक्षकों समेत राजा स्वयं करते थे जिसके द्वारा उनके यहाँ असंख्य सुवर्णों की राशियाँ उत्पन्न होती थी।२१-३६। कुछ समय के उपरांत दक्षिण देश के रहने वाले चोर

---

१. दोषम् ।

अथास्य दस्यवः केचिच्छ्रुत्वा तं कनकाकरम् । धनलोलुपया जघ्नुर्दाक्षिणात्या मदोद्धताः ।।३७
तस्मिन्विनष्टे तन्नष्टं वरदानं समुद्भवम् । कनकं तदपश्यन्तो जग्मुरन्योन्यतः क्षयम् ।।३८
पातितं दस्युभिः पुत्रं दृष्ट्वा राजा सुदुःखितः । विललापाकुलमतिः स मुमोह पपात च ।।३९
विलपन्तं तु तं दृष्ट्वा नारदः प्राह सञ्जयम् । राजन्विषादं मा कार्षीः शृण्विमां भारतीं मम ।।४०
इत्युक्त्वा स समाचख्यौ चरितानि महौजसाम् । विशिष्टानां नरेन्द्राणां यतीनां दक्षिणावताम् ।।४१
श्रुत्वा राजा नरेन्द्राणां चरितानि महात्मनाम् । विनष्टशोकः सहसा प्रकृतिस्थो बभूव सः ।।४२
नारदोऽपि नरेन्द्रस्य मृतं पुत्रं यमालयात् । आनयामास तरसा तथारूपं यथा हतम् ।।४३
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा स पुत्रं तं परितुष्टेन चेतसा । व्रीडितो विस्मितश्चैव कृताञ्जलिरथाब्रवीत् ।।४४
किमाश्चर्यं प्रसन्नेन भवता मम नारद । दत्तः पुत्रस्तथाभूतो दस्युभिर्घातितो यथा ।।४५
षण्मासान्ते पुनरसौ जीवितं सर्वमेव तत् । सस्मार पूर्वं वृत्तान्तं भद्राणां पारणात्किल ।।४६
एतत्ते सर्वमाख्यातं जातिस्मरणकारकम् । व्रतं व्रताधिकं श्रेष्ठं किमन्यत्कथयामि ते ।।४७

श्रीकृष्ण उवाच

ब्राह्मणाश्चैव शूद्राश्च कुले महति जन्म च । दाता क्षमी धनी वाग्मी रूपी स्वैर्भद्रकैर्भवेत् ।।४८

डाकुओं ने उसकी 'सुवर्ण की खानि' होने की प्रख्याति को सुनकर धन के लिए लालायित होकर उस बालक का हनन कर दिया । वरदान द्वारा उत्पन्न उस बालक के निधन होने पर राजा की कनक राशि भी इधर-उधर विनष्ट हो गई । चोरों द्वारा आहत हुए अपने पुत्र को देखकर राजा ने अत्यन्त दुःखी होकर विलाप करते हुए मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर गये । इस प्रकार उन्हें दुःखी देखकर नारद ने कहा—राजन्! आप इस प्रकार अधीर न हों, मैं कुछ कह रहा हूँ, उस पर ध्यान देने की कृपा करें । इतना कहकर उन्होंने अत्यन्त ओजपूर्ण राजाओं और महात्माओं के पवित्र चरित्रों और उनके काल-कवलित होने की कथा सुनायी जिसके सुनने से राजा का शोक नष्ट हो गया और वे पूर्व की भाँति सुस्थिर हुए । नारद ने भी राजा के उस मृतक पुत्र को, यमराज के यहाँ से शीघ्र लाने का प्रयत्न किया । राजा ने अत्यन्त हर्ष में विभोर होकर उस अपने पुत्र का दर्शन-स्पर्शन किया और पश्चात् लज्जित एवं विस्मित होते हुए हाथ जोड़कर नारद जी से कहा—ऋषीश्वर ! आपने उस मेरे पुत्र को, जिसे चोरों ने मृतक कर दिया था, मुझे लाकर सौंप दिया । इससे मुझे भलीभाँति निश्चित हो गया कि आप के प्रसन्न होने पर किसी कार्य के सम्भव होने में कुछ भी आश्चर्य नहीं है । इस भद्र व्रत के अनुष्ठान सुसम्पन्न करने के नाते उस बालक को छठें मास के ही अनन्तर अपने जन्मान्तरी वृत्तान्तों के स्मरण होने लगे । इस प्रकार मैंने जन्मान्तरीय वृत्तान्तों के स्मरण होने के कारण को विस्तार पूर्वक तुम्हें सुना दिया और इस श्रेष्ठ व्रत के अतिरिक्त इसके विषय में मैं तुम्हें अन्य क्या कह सकता हूँ ।३७-४७

श्रीकृष्ण बोले—ब्राह्मण, शूद्र, उत्तर कुल में जन्म, दाता, क्षमाशील, धनवान्, निपुणवाग्मी विद्वान्, और सौन्दर्यपूर्ण रूपवान्, उस भद्रव्रत को सुसम्पन्न करने वाला प्राणी ही होता है । राजन् ! इस भद्रव्रत के

चत्वारि राजन्भद्राणि चतुष्पादानि तानि वै । तान्येव बहुविघ्नानि दुष्प्राप्यान्यकृतात्मभिः ।।४९
मार्गशीर्षे तु प्रथमं द्वितीयं फाल्गुने तथा । ज्येष्ठे तृतीयं राजेन्द्र ख्यातं भाद्रपदेपरम् ।।५०
फाल्गुनामलपक्षादौ त्रीन्मासांस्तु नराधिप । तन्त्रिपुष्पमिति ख्यातं तपस्याकरणं परम् ।।५१
ज्येष्ठस्य शुक्लपक्षादौ त्रीन्वै मासान्युधिष्ठिर । तत्त्रिराममिति ख्यातं सत्यशौर्यप्रदायकम् ।।५२
शुक्ले भाद्रपदस्यादौ त्रीन्मासान्पाण्डुनन्दन । तन्त्रिरङ्गमिति ख्यातं बहुविद्याप्रदायकम् ।।५३
शुक्लमार्गशिरस्यादौ त्रीन्मासांस्तु नराधिप । तद्विष्णुपदमित्युक्तं सर्वधर्मप्रदायकम् ।।५४
समासेनैव चोक्तानि भद्राण्येतानि भारत । कर्तव्यानि नरैः स्त्रीभिर्ब्राह्मणानुमतेन वा ।।५५

युधिष्ठिर उवाच

विस्तरेणैव मे ब्रूहि देवदेव जगत्पते । भद्राणां नियमाधानं प्रधाननियमांस्तथा ।।५६

श्रीभगवानुवाच

शृणु राजन्नवहितो भद्राणां विस्तरं परम् । कथयिष्ये न कथितं कस्यचिद्यन्मया पुरा ।।५७
शुक्ले मार्गशिरस्यादौ चत्वारस्तिथयो वराः । द्वितीया च तृतीया च चतुर्थी पञ्चमी तथा ।।५८
एकभुक्तासनस्तिष्ठेत्प्रतिपद्यां जितेन्द्रियः । प्रभाते तु द्वितीयायां कृत्वा यत्करणीयकम् ।।५९
प्रहरत्रये समधिके गते स्नानं समाचरेत् । मृद्गोमयं च संगृह्य मन्त्रैरेभिर्विचक्षणः ।।६०
अहं ते तु प्रदिश्यामि मन्त्राणां विधिमुत्तमम् । येषां देयो न देयो वा ताञ्छृणुष्व वदामि ते ।।६१

चार चरण हैं, जिनकी प्राप्ति में अनेक विघ्न आते हैं और अन्य कर्मानुष्ठान वालों को दुष्प्राप्य भी है राजन् ! मार्गशीर्ष में पहला, फाल्गुन में दूसरा, ज्येष्ठ में तीसरा और भाद्रपद में चौथा पाद बताया गया है । नराधिप ! फाल्गुन मास के शुक्लपक्ष से प्रारम्भ कर तीन मास तक के समय को 'त्रिपुष्प' कहा गया है, जो तपश्चर्या के लिए परम उपयोगी है । युधिष्ठिर ! ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष से तीन मास तक के समय को जो सत्य एवं शौर्यप्रद है 'त्रिराम' और पाण्डुनन्दन ! भाद्रपद के शुक्लपक्ष से तीन मास तक के समय को 'त्रिरंग' कहा जाता है, इसे अनेक विद्या का प्रदायक बताया गया है । नराधिप ! उसी प्रकार मार्गशीर्ष (अगहन) मास के शुक्ल पक्ष से तीन मास तक के समय को 'विष्णुपद' कहा गया है, जो समस्त धर्मों का प्रदाता है । भारत ! इस प्रकार मैंने इस भद्र व्रत की व्याख्या बता दी है, जो पुरुषों और स्त्रियों को ब्राह्मण विद्वानों की अनुमति पूर्वक सुसम्पन्न करना परमावश्यक होता है ।४८-५५

युधिष्ठिर ने कहा—देवाधिदेव, जगत्पते ! इस भाद्रव्रत के नियम विधान और प्रधान नियम मुझे बताने की कृपा करें ।५६

श्रीभगवान् बोले—राजन् ! मैं इस भद्र व्रत के नियमादि विस्तार पूर्वक बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! जिसकी व्याख्या कभी किसी से कहा ही नहीं । मार्गशीर्ष (अगहन) मास के शुक्ल पक्ष की द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी तिथि इस व्रत के लिए सर्वश्रेष्ठ बतायी गयी है संयमशील पुरुष को उन्हीं तिथियों में इस व्रत का अनुष्ठान प्रारम्भ करना चाहिए । द्वितीया के दिन प्रातः काल नित्य कर्म करने के उपरांत उस बुद्धिमान व्रती को तीसरे प्रहर में मृत्तिका और गोमय द्वारा मंत्रों के उच्चारण पूर्वक स्नान करना चाहिए उन मंत्रों के विधान समेत मैं तुम्हें यह भी बता रहा हूँ कि वे किसके लिए देने योग्य है

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा ये शुचयोऽमलाः । तेषां मन्त्राः प्रदेया वै न तु सङ्कीर्णधर्मिणाम् ॥६२
या स्त्री भर्त्रा वियुक्तापि स्वाचारैः संयुता शुभा । सा च मन्त्रान्प्रगृह्णातु सभर्त्री तदनुज्ञया ॥६३
स्नानं नद्यां तडागे वा वाप्यां कूपे गृहेऽपि वा । दशोत्तरं फलं ज्ञेयमधिकं हि समन्त्रकम् ॥६४
मृदं मन्त्रेण संगृह्य सर्वाङ्गेषु प्रलेपयेत् । त्वं मृत्स्ने वन्दिता देवैः समलैर्दैत्यघातिभिः ॥६५
मयापि वन्दिता भक्त्या मामतो विमलं कुरु ॥६६

। इति मृण्मन्त्रः ।

एवं जपन्मृदं दत्वा स्वहस्ताग्रे समन्त्रकम् । जलावगाहनं कुर्यात्कुण्डमालिख्य धर्मवित् ॥
सिद्धार्थकैः कृष्णतिलैर्वचासर्वौषधीः क्रमात् ॥६७
त्वमादिः सर्वदेवानां जगतां च जगन्मये । भूतानां वीरुधां चैव रसानां पतये नमः ॥६८
गंगासागरजं तोयं पौष्करं नार्मदं तथा । यामुनं सांनिहत्यं च सन्निधानमिहास्तु मे ॥६९

। इति स्नानमन्त्रः ।

शरीरालम्भनं पूर्वं कृत्वा मृद्गोमयाम्बुभिः । एवं स्नात्वा समाप्लुत्य आचन्य तटमास्थितः ॥७०
निवस्य वाससी शुभ्रे शुचिः प्रयतमानसः । देवान्पितॄन्मनुष्यांश्च तर्पयेत्सुसमाधिना ॥७१
एवं गृहीतनियमो गृहं गच्छेच्छुचिव्रतः । उपविश्य न संजल्पेद्यावच्चन्द्रस्य दर्शनम् ॥७२

और किसके लिए नहीं । सदाचारी एवं निर्मल अन्तःकरण वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र को यह मंत्र बताया जाना चाहिए, किन्तु संकीर्ण धर्म वाले को कभी नहीं । पति वियोग होने पर स्त्री अपने सदाचारों के पालन पूर्वक संयमशील हो, पति की आज्ञा प्राप्त कर पति समेत उस शुभमूर्ति स्त्री को भी इस मंत्रों को प्रदान करना चाहिए । किसी नदी, सरोवर, वावली अथवा गृहकूप में मंत्रोच्चारणपूर्वक स्नान करे । नदी आदि में स्नान करने से क्रमशः दश फल अधिक की प्राप्ति होती है । मंत्रोच्चारण पूर्वक मृत्तिका को ग्रहण कर सर्वांग में लेपन की भाँति लगा लेना चाहिए । प्रथम उससे इस भाँति प्रार्थना करे कि—'मृत्तिके ! देवों ने तुम्हारी वन्दना की है, जो मल समेत और दैत्यों के हन्ता हैं । उसी भाँति मैं भी भक्तिपूर्वक तुम्हारी वंदना कर रहा हूँ, इसलिए मुझे निर्मल करने की कृपा करें । इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उस धर्मशील व्रती को मृत्तिका अपने हाथ में लेकर पूर्व बनाये हुए कुण्ड के जल का आवाहन करना चाहिए। तदनन्तर राई, काले तिल तथा वच आदि समस्त औषधियों को क्रमशः मंत्रपूर्वक ग्रहण करके इस भाँति प्रार्थना करनी चाहिए कि—जगन्मये ! समस्त संसार और देवों के आदि हो, और समस्त प्राणी, दृक्ष और इस के अधीश्वर हो, अतः तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ। पश्चात् इस मंत्र के उच्चारण करते हुए स्नान करे, कि—'गंगासागर, पुष्कर, नर्मदा और यमुना जी के जल इस जल में मिलकर मेरे सान्निधि में रहने की कृपा करे।'५७-६९। स्नान करने के समय सर्वप्रथम मृत्तिका और गोमय मिश्रित जल का शरीर में लेपन करके भली भाँति स्नान करें तथा तट पर आकर आचमन पूर्वक दो स्वच्छ वस्त्रों को धारण करे। पवित्र होने पर उस संयमशील को देव, पितर एवं मनुष्यों के तर्पण करके घर जाना चहिए, उस नियम धारण करने वाले को पवित्रतापूर्वक व्रतानुष्ठान के आरम्भ करने पर आसन पर बैठने के उपरांत जब तक चन्द्रोदय का दर्शन न हो, किसी से कोई बातचीत न करनी चाहिए। स्नान करने के अनन्तर

स्नात्वा चैव ततो नाम तृतीयादिचतुर्दिने । नमः कृष्णाच्युतानन्त हृषीकेशेति च क्रमात् ।।७३
चतुर्दिने द्वितीयादौ देवमभ्यर्चयेऽच्युतम् । प्रथमेह्नि स्मृता पूजा पादयोश्चक्रपाणिनः ।।७४
नाभिपूजा द्वितीयेह्नि कर्तव्या विधिवन्नरैः । मुरद्विषस्तृतीयेह्नि पूजां वक्षसि विन्यसेत् ।।७५
चतुर्थेह्नि जगद्धातुः पूजां शिरसि कल्पयेत् । पुष्पैर्विलेपनैधूपैरर्घ्यं दद्युर्विभूषणैः ।।७६
घीवरैर्हरिनैवेद्यैर्दीपदानैश्च भक्तितः । पूजयित्वा विधानेन विष्णुं विश्वेश्वरं व्रती ।।७७
ततो दिनावसाने तु मुहूर्ते निर्गते सति । अर्घ्यं प्रदद्यात्सोमाय भक्त्या तद्भावभावितः ।।७८
शशिचन्द्रशशाङ्केन्दुनामानि क्रमशो नरः । तृतीयादिषु चन्द्रस्य सङ्कीर्त्यार्घ्यं निवेदयेत् ।।७९
स चार्घ्यो यादृशो देय ऋद्धिमाद्भिरथेतरैः । तत्ते सम्यक्प्रवक्ष्यामि युधिष्ठर निबोध मे ।।८०
चन्दनागुरुकर्पूरदधिदूर्वाक्षतादिभिः । रत्नैः समुद्रजैश्चान्यैर्वज्रवैडूर्यमौक्तिकैः ।।८१
पुष्पैः फलैः स्वकालोत्थैः खर्जूरैर्नालिकेरकैः । वस्त्राच्छादनगोवाजिभूमिहेमगजान्वितैः ।।८२
सत्त्वयुक्तस्य ऋद्धस्य राजन्नेष विधिः स्मृतः। इतरस्य यथाशक्ति फलपुष्पाक्षतोदकैः ।।८३
लवणं गुडं घृतं तैलं पयः कुम्भास्तिलैः सह । अर्घेष्वेतानि शस्तानि शशिवृद्ध्या विवर्द्धयेत् ।।८४
प्रत्यहं वर्द्धयेदर्घ्यं शशि वृद्ध्या नरोत्तम । एवमर्घः प्रतादव्यः शृणु मन्त्रविधिक्रमम् ।।८५
नवोनवोसि मासान्ते जायमानः पुनः पुनः । त्रिरग्निसमवेतो वै देवानाप्यायसे हविः ।।८६
गगनाङ्गणसद्दीप दुग्धाब्धिमथनोद्भव । भाभासितदिगाभोग रमानुज नमोऽस्तु ते ।।८७

द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के दिनों में क्रमशः कृष्ण, अच्युत, अनंत तथा हृषीकेश आदि भगवान् के नामों के 'कृष्णाय नमः' की रीति से उच्चारण करते रहना चाहिए क्योंकि द्वितीया से आरम्भ कर उन चारों दिनों में अच्युत देव का ही पूजन होता है—प्रथमदिन भगवान् चक्रपाणि के चरण की पूजा, दूसरे दिन नाभि की पूजा, तीसरे दिन उन मुरारि भगवान् के वक्षःस्थल की पूजा और चौथे दिन उन जगद्धाता के शिर की पूजा सविधान सुसम्पन्न करने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। पुष्प, चन्दन, धूप, भूषण समेत अर्घ्य, घीवर, नैवेद्य, और दीपदान द्वारा भक्तिपूर्वक विश्वेश्वर भगवान की पूजा करने के उपरांत दिन की समाप्ति में मुहूर्त व्यतीत हो जाने पर सोम को उनकी भक्ति-भाव मास में निमग्न होकर अर्घ्य प्रदान करना चाहिए। शशि, चन्द्र, शशांक और इन्दु नामों के क्रमशः उच्चारण पूर्वक तृतीयादि तिथियों में उन्हें जिस प्रकार अर्घ्य प्रदान करना चाहिए।७०-७९। युधिष्ठिर ! मैं विस्तार पूर्वक बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! चन्दन, अगरु, कपूर, दही, दूर्वा, अक्षत आदि रत्नाकर के रत्न अथवा वज्र या वैदूर्य मणि मोती, पुष्प, सामयिक फल खजूर, नारियल समेत उसे वस्त्र से आच्छादित करके गौ, अश्व, भूमि, सुर्वण गज से पूर्ण कर इस प्रकार के अर्घ्य सात्त्विक धनवानों को प्रदान करना चाहिए। राजन् ! अन्य लोगों को यथाशक्ति फल, पुष्प, अक्षत, जल, लवण, गुड, घी, तेल, और तिल समेत जलपूर्ण कलश के इस प्रशस्त अर्घ्य चन्द्रमा की वृद्धि के अनुसार प्रतिदिन वृद्धि पूर्ण देना चाहिए। नरोत्तम ! इस प्रकार के अर्घ्य प्रदान करने में मंत्रविधि के क्रम बता रहा हूँ, सुनो ! 'आप प्रत्येक मास में उत्पन्न होकर नूतन ही बने रहते है, उसी प्रकार तीनों अग्नि से युक्त होकर हवि द्वारा देवों के पालन पोषण करते हैं। आप इस गगन प्राङ्गण के उत्तम दीप एवं क्षीरसागर के मंथन करने से जन्म ग्रहण किया है और आपके प्रकाश से

दत्त्वार्घ्यं द्विजराजाय तद्विप्राय निवेदयेत् । निर्वर्त्यार्घ्यक्रममिमं ततो भुञ्जीत वाग्यतः ॥८८
भूमिं तु भाजनं कृत्वा पद्मपत्रसमास्तृताम् । पालाशैर्मधुपत्रैर्वा सुरूपैर्वा शिलातले ॥८९
समालभ्य धरां देवीं मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् । त्वत्तले भोक्तुकामोऽहं देवि सर्वरसोद्भवे ॥९०
मदनुग्रहाय सुस्वादं कुर्वन्नममृतोपमम् । एवं जप्त्वा च भुक्त्वा च शाकं पाकं गुणोत्तरम् ॥९१
आचम्य खान्दुपालभ्य स्मृत्वा सोमं स्वपेद्भुवि । भोक्तव्यं तु द्वितीयायामक्षारलवणं हविः ॥९२
मुन्यन्नं तु तृतीयायां चतुर्थ्यां गोरसोत्तरम् । घृताक्ताः सगुणाः शस्ताः पञ्चम्यां कृशरास्सदा ॥९३
शस्ता[१] भद्रेषु सर्वेषु सदा श्यामाकतण्डुलाः । प्रसाधिका घृतं गव्यं वन्यं फलमयाचितम् ॥९४
प्रातः स्नानं ततः कृत्वा सन्तर्प्य पितृदेवताः । भोजयेद्ब्राह्मणान्भक्त्या दत्तदानान्विसर्जयेत् ॥९५
भृत्यबन्धुजनैः सार्द्धं पश्चाद्भुञ्जीत कामतः । एवं भद्रेषु सर्वेषु त्रिमासेषु[२] गतेषु यः ॥९६
करोत्येतन्नरो भक्त्या वर्षमेकममत्सरी । तस्य श्रीर्विजयश्चैव नित्यं सोमः प्रसीदति ॥९७
एतत्करोति या कन्या शुभं प्राप्नोति सा पतिम् । दुर्भगा सुभगा साध्वी भवत्यविधवा सदा ॥९८
राज्यार्थी लभते राज्यं धनार्थी लभते धनम् । पुत्रार्थी[३] लभते पुत्रानितिप्राह प्रभाकरः ॥९९

समस्त दिशाएँ पूर्ण प्रकाशित होती हैं अतः आपको नमस्कार है।' इस भाँति द्विजराज चन्द्र को अर्घ्य अर्पित करके उसे ब्राह्मण को समर्पित करे। पश्चात् इसी प्रकार प्रतिदिन अर्घ्य क्रम की समाप्ति होने पर मौन होकर भूमि प्रार्थना पूर्वक भोजन करे पवित्र भूमि में कमल पत्र, पलाश, महुवे के पत्र अथवा शिलातल पर पृथ्वी देवी की समस्त रसों समेत उत्पन्न होने वाली देवि ! मैं आपके तल पर भोजन की इच्छा से उपस्थित हो रहा हूँ, इसलिए मेरे अनुग्रहार्थ आप इस भोजन को अमृत की भाँति सुस्वाद पूर्ण करें।८०-९०। इस भाँति आराधना पूर्वक बने हुए शाक के भोजन करने के उपरात उस मंत्रवेत्ता को आचमन करके उस जल कुण्ड के समीप में सोम के स्मरण पूर्वक भूमि शयन करना चाहिए। इसी प्रकार अक्षार लवण समेत तिनी के चावल की हवि चतुर्थी को गोरस (मट्ठा), और पञ्चमी के दिन घी गुड़ समेत कृशरान्न (खिचड़ी) के भोजन सदैव करना चाहिए। सभी भद्र व्रत में सावाँ के चावल को गाय के घी में तल कर अयाचित वन्य फल का भोजन प्रशस्त बताया गया है। प्रातः काल स्नान, और देव-पितृ तर्पण आदि नित्य नियम के उपरांत ब्राह्मणों को भक्तिपूर्वक दान और भोजन से तृप्त कर विसर्जन करना चाहिए। पश्चात् बन्धु वर्ग और सेवकों समेत स्वयं यथेच्छ भोजन करे। इसी भाँति तीन मास वाले सभी भद्र व्रतों में जो प्राणी पूर्ण वर्ष का समय व्यतीत करता है, उस मत्सरहीन पुरुष की भी वृद्धि एवं विजय नित्य होती रहती है और सोम सदैव उसके ऊपर प्रसन्न रहते हैं। दुर्भगा-सुभगा जो कोई कन्या इस व्रतानुष्ठान को सुसम्पन्न करती है, उसे शुभ पति की प्राप्ति पूर्वक वह सदैव पतिपरायणा पतिव्रता और सधवा होती रहती है। उसी प्रकार राज्यार्थी को राज्य, धनार्थी को धन, एवं पुत्र की कामना वाले को पुत्र की प्राप्ति होती है। भारत ! भद्रव्रत के अनुष्ठानों को सुसम्पन्न करने पर उस

---

१. भोज्याः। २. प्रकाशेषु। ३. अपुत्रः।

योषित्कुलाकुलविवाहमनोरमाणि शय्यान्नयानशयनासनशोभितानि ।
भद्राण्यवाप्य धनपुत्रकलत्रजानि जातिस्मरो भवति भारत भद्रकर्ता ।।१००

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तर पर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
भद्रोपवासव्रतनिरूपणं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।१३

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

द्वितीयाव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

संत्यन्यास्तिथयः पार्थ द्वितीयाद्याः परिश्रुताः । मासैश्चतुर्भिश्चत्वारः प्रावृट्छुक्लाः क्लमापहाः ।।१
गोपिताश्च सदा लोके न प्रोक्ताश्च मया क्वचित् । प्रकाशयामि ताः पार्थ शृणु सर्वा मया हिताः ।।२
एका तु श्रावणे मासि अन्या भाद्रपदे तथा । अपराश्वयुजे मासि चतुर्थी कार्तिके भवेत् ।।३
श्रावणे कलुषा नाम प्रोष्ठपादे च गीर्मला । आश्विने प्रेतसञ्चारा कार्तिके च यमा स्मृता ।।४

युधिष्ठिर उवाच

कस्मात्सा कलुषा प्रोक्ता कस्मात्सा गीर्मला मता । कस्मात्सा प्रेतसंचारा कस्माद्याम्या प्रकीर्तिता ।।५

भद्रवती प्राणी को सुन्दरी स्त्री, धन, पुत्र, मनोरम शय्या, स्वादपूर्ण भोजन, पान आदि के समस्त सुखों की प्राप्तिपूर्वक जन्मान्तरीय स्मरण होता है ।९१-१००

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर के सम्वाद में
भद्रोपवास व्रत निरूपण नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।१३।

अध्याय १४

द्वितीया व्रतमाहात्म्य का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! श्रावण मास के शुक्ल पक्ष से आरम्भ कर चार मास की द्वितीया आदि अन्य भी तिथियाँ इस प्रकार की हैं, जिनके अनुष्ठान सुसम्पन्न करने से प्राणी के समस्त दुःख नष्ट हो जाते हैं । पार्थ ! मैंने उन्हें इस लोक में सदैव गुप्त रखा था, किसी से कभी भी प्रकाशित नहीं किया था । किन्तु वह तुम्हें आज बता रहा हूँ । सावधान होकर सुनो ! श्रावण मास के शुक्ल की पहली, भाद्रपद (भादों) की दूसरी, आश्विन मास की तीसरी और कार्तिक मास की चौथी द्वितीया तिथि के क्रमशः कलुषा, गीर्मला, प्रेत संचार और यम नाम बताये गये हैं ।१-४

युधिष्ठिर ने कहा—श्रावण, भाद्रपद, (भादों), आश्विन और कार्तिक मास की शुक्ल द्वितीया तिथि के उपरोक्त कलुषा आदि नाम क्रमशः जो रखे गये हैं, उनके उस नामकरण में कौन कारण है, बताने की कृपा करें ।५

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा वृत्रवधे वृत्ते प्राप्तराज्ये पुरन्दरे । ब्रह्महत्यापनोदार्थमश्वमेधे प्रवर्तिते ॥६
क्रोधादिन्द्रेण वज्रेण ब्रह्महत्या निषूदिता । षट्खण्डा[1] च कृता क्षिप्ता वृक्षे तोये महीतले ॥७
नार्यां ब्रह्महने वह्नौ संविभज्य यथाक्रमम् । तत्पापं श्रावणे व्यूढं द्वितीयायां दिनोदये ॥८
नारीवृक्षनदीभूमिवह्निब्रह्महनेष्वथ । निर्मलीकरणं जातमतोर्थं कलुषा स्मृता ॥९
मधुकैटभयो रक्ते पुरा मग्नेति मेदिनी । अष्टांगुला पवित्रा सा नारीणां तु रजो मलम् ॥१०
नद्यः पूरमलाः सर्वा वह्नेर्धूमशिखा मलः । कलुषाणि चरंत्यस्यां तेनैषा कलुषा मता ॥११
गीर्गिरा भारती वाणी वाचा मेधा सरस्वती । गीर्मलं वहते यस्माद्द्वितीया गीर्मला मता ॥१२
देवर्षिपितृधर्माणां निन्दका नास्तिकाः शठाः । तेषां सा वाग्मलव्यूढा द्वितीया तेन गीर्मला ॥१३
अनध्यायेषु शास्त्राणि पाठयन्ति पठन्ति च । शाब्दिकास्तार्किकाः श्रौतास्तेषां शब्दापशब्दजाः ।।
मला व्यूढा द्वितीयायामतोर्थं गीर्मला च सा ॥१४
प्रेतास्तु पितरः प्रोक्तास्तेषां तस्यां तु संचरः । द्वितीयायां च लोकेषु तेन सा प्रेतसञ्चरा ॥१५
अग्निष्वात्ता बर्हिषद आज्यपाः सोमपास्तथा । पितृपितामहप्रेतसंचरात्प्रेतसंचरा ॥१६

श्रीकृष्ण बोले—पहले समय में वृकासुर के वध द्वारा राज्य की प्राप्ति होने पर इन्द्र को ब्रह्महत्या का दोषभागी होना पड़ा था । उस ब्रह्महत्या से मुक्त होने के लिए उन्होने अश्वमेघ यज्ञ का अनुष्ठान आरम्भ किया, किन्तु यज्ञ के सुसम्पन्न होने पर भी अपने को उससे मुक्त होते न देखकर अत्यन्त क्रुद्ध होकर उन्होंने अपने वज्र द्वारा ब्रह्महत्या का नाश करना चाहा, जिससे ब्रह्महत्या के छः खण्ड हो गये, किन्तु उन खण्डों को क्रमशः वृक्ष, जल, पृथ्वी, स्त्री, वृषलीपति और अग्नि के समभाग करके बाँट देने पर ही उससे मुक्त हो सके । पश्चात् ब्रह्महत्या के उन भागों के ग्रहण करने वाले नारी वृक्ष, आदि ने श्रावण शुक्ल की द्वितीया के दिन सूर्योदय के समय सविधान स्नान पूर्वक अपने पापों के शमन किये जिससे वे सब पूर्व की भाँति निर्मल हो गये । इसीलिए उस द्वितीया का कलुषा नामकरण हुआ । यद्यपि पहले समय में मधुकैटभ दैत्यों के रक्त से यह पृथिवी अत्यन्त ओत-प्रोत हो गयी थी, तथापि उस समय भी आठ अंगुल पृथिवी अवशिष्ट रहने के नाते पवित्र थी । स्त्रियों के रज, नदियाँ के दोनों तट का जलपूर्ण रहना, और अग्नि में धूमशिखा रूप मल बताया गया है । उस द्वितीया के समय इन कलुषों के यथापूर्व स्थित रहने के और नष्ट होने के नाते भी इसका कलुषा नाम हुआ है । गीर शब्द गिरा, भारती, वाणी, वाचा, मेघा और सरस्वती के अर्थ में प्रयुक्त होता है, इसीलिए इसके मल के भाद्रपद (भादों) की शुक्ल द्वितीया में नष्ट होने के नाते गीर्मला नामकरण उस द्वितीया का हुआ है । तथा देव, ऋषि, एवं पितृधर्मों के निन्दक, नास्तिक, एवं शठ प्राणी के वाग्मल को विनष्ट करने के कारण भी उसका गीर्मला नाम हुआ है ।६-१३। अनध्याय के दिनों में शाब्दिक (वैयाकरण), तार्किक, एवं वैदिक विद्वान् शास्त्रों को पढ़ते पढ़ाते हैं, जिससे उनके मुख से निकले हुए शुद्ध और अशुद्ध शब्द मलरूप बताये जाते हैं उनके शमन करने के नाते भी उसका उपरोक्त नाम सार्थक हुआ है । आश्विन द्वितीया के दिन प्रेत (पितर) लोग अपना संचार करते रहते हैं, अग्निष्वात्ता, वर्हिषद, आज्यपा, तथा सोमपा आदि पितृ पितामह भी उस समय संचार

---

१. षड्भागा ।

पुत्रैः पौत्रैश्च दौहित्रैः स्वधामन्त्रैः सुपूजिताः । श्राद्धदानमखैस्तृप्ता यान्यतः प्रेतसंचराः ।।१७
कार्तिके शुक्लपक्षस्य द्वितीयायां युधिष्ठिर । यमो यमुनया पूर्वं भोजितः स्वगृहे तदा ।।१८
द्वितीयायां महोत्सर्गे नारकीयाश्च तर्पिताः । पापेभ्यो विप्रमुक्तास्ते मुक्ताः सर्वे विबंधनाः ।।
भ्रामिता नर्तितास्तुष्टाः स्थिताः सर्वे यदृच्छया ।।१९
तेषां महोत्सवो वृत्तो यमराष्ट्रे सुखावहः । ततो यमद्वितीया सा प्रोक्ता लोके युधिष्ठिर ।।२०
अस्यां निजगृहे पार्थ न भोक्तव्यमतो बुधैः । स्नेहेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं पुष्टिवर्द्धनम् ।।२१
दानानि च प्रदेयानि भगिनीभ्यो विधानतः । स्वर्णालंकारवस्त्राद्यैः पूजासत्कारभोजनैः ।।२२
सर्वा भगिन्यः संपूज्या अभावे प्रतिपत्तिगाः । पितृव्यभगिनी हस्तात्प्रथमायां युधिष्ठिर ।।२३
मातुलस्य सुताहस्ताद्द्वितीयायां पुनर्नृप । पितृमातृस्वसारौ ये तृतीयायां तयो करात् ।।२४
भोक्तव्यं सहजायाश्च भगिन्या हस्ततः परम् । सर्वासु भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं बलवर्द्धनम् ।।२५
धन्यं यशस्यमायुष्यं धर्मकामार्थवर्द्धनम् । व्याख्यातं सकलं स्नेहात्सरहस्यं मया तव ।।२६
यस्यां तिथौ यमुनया यमराजदेवः सम्भोजितो जगति सत्त्वरसौहृदेन ।
तस्यां स्वसुः करतलादिह यो भुनक्ति[1] प्राप्नोति वित्तमथ[2] भोज्यमनुत्तमं सः ।।२७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
यमद्वितीयाव्रतमाहात्म्यं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।१४

(गमन) करते रहते हैं और उसी दिन पुत्र पौत्र, एवं दौहित्रों द्वारा स्वधा मंत्रों के उच्चारण पूर्वक श्राद्ध-दान रूपी यज्ञों से तृप्त होते हैं इसलिए भी उसका प्रेत संचरा नाम हुआ है । युधिष्ठिर ! उसी प्रकार कार्तिक शुक्ल द्वितीया के दिन यमुना ने यम को अपने घर भोजन कराया था, जिससे नारकीयों को अत्यन्त तृप्ति हुई थी । पापों से मुक्त होकर सभी लोग बन्धन हीन होकर यथेच्छ भ्रमण करते, नृत्य करते हुए अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं । क्योंकि उस महोत्सव के सुसम्पन्न होने पर यमपुरी में अत्यन्त सुख की प्राप्ति होती है । युधिष्ठिर ! इसीलिए इसका यमद्वितीया नाम हुआ है । पार्थ ! इस द्वितीया के दिन विद्वानों को चाहिए कि अपने घर भोजन न करके भगिनी के यहाँ उसके बनाये हुए उस सुस्वादु और पुष्टिवर्धक भोजन से आत्मतुष्टि करें। उस अवसर पर स्वर्णाभरण एवं उत्तम वस्त्रादि के दान पूर्वक सत्कार भोजनादि द्वारा समस्त भगिनियों की पूजा करनी चाहिए। युधिष्ठिर ! सर्वप्रथम पितृव्य-भगिनी, इसकी मामा की पुत्री तथा तीसरी माता-पिता की भगिनी के हाथ के भोजन करने के उपरांत अपनी सहोदरा भगिनी के यहाँ भोजन करना चाहिए। इस प्रकार सभी भगिनियों के हाथ का सुस्वादु भोजन करना आवश्यक होता है, जो पुष्टिकारक, धन्य और यश, आयु, धर्म, काम एवं अर्थ की वृद्धि करता रहता है। इस प्रकार स्नेह वश मैंने तुम्हें रहस्य समेत इसकी सम्पूर्ण व्याख्या सुना दी। जिस तिथि में यमुना ने यम को अपने घर भोजन कराया था, उस तिथि के दिन जो मनुष्य अपनी भगिनी के हाथ का सुस्वादुपूर्ण भोजन करता है, उसे उत्तम भोजन समेत धन की प्राप्ति सदैव होती रहती है।१४-२७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में द्वितीया व्रत माहात्म्य नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।१४।

१. प्रयत्नात् । २. अथ सौख्यम् ।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

अशून्यशयनमाहात्म्यवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

भगवन्भवता प्रोक्तं धर्मार्थदिः सुसाधनम् । गार्हस्थ्यं तच्च भवति दम्पत्योः प्रीयमाणयोः ।।१
पत्नीहीनः पुमान्पत्नी भर्त्रा विरहिता तथा । धर्मकामार्थसंसिद्धी न स्यातां मधुसूदन ।।२
तद्ब्रूहि देवदेवेश विधवा स्त्री न जायते । व्रतेन येन गोविन्द पत्न्याऽविरहितो नरः ।।३

श्रीकृष्ण उवाच

अशून्यशयनीं नाम द्वितीयां शृणु तां मम । यामुपोष्य न वैधव्यं प्राप्नोति स्त्री युधिष्ठिर ।।४
पत्नीविमुक्तश्च नरो न कदाचित्प्रजायते । शेते जगत्पतिर्विष्णुः स्त्रिया सार्द्धं यदा किल ।।५
अशून्यशयनंनाम तदा ग्राह्या च सा तिथिः । उपवासेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ।।६
कृष्णपक्षे द्वितीयायां श्रावणे नृपसत्तम । स्नानं नद्यां तडागे वा गृहे वा नियतात्मवान् ।।७
कृत्वा पितृन्मनुष्यांश्च देवान्संतर्प्य भक्तिमान् । स्थण्डिलं चतुरस्रं तु मृण्मयं कारयेत्ततः ।।८
तत्रस्थं श्रीधरं श्रीशं भक्त्याभ्यर्च्य श्रिया सह । नैवेद्यपुष्पधूपाद्यैः फलैः कालोद्भवैः शुभैः ।।९

अध्याय १५

अशून्यशयन माहात्म्य का वर्णन

युधिष्ठिर जी बोले—भगवान् ! गार्हस्थ्य धर्म को धर्म, काम एवं अर्थ का साधक बताया है, जो दम्पत्ति (स्त्री-पुरुष) के अत्यन्त प्रसन्नता पूर्ण रहने पर सुसम्पन्न किया जा सकता है । किन्तु मधुसूदन ! पत्नी हीन पुरुष और पति हीना स्त्री के धर्म कामार्थ की सिद्धि कभी नहीं हो सकती है, अतः देवाधिदेव गोविन्द ! उस व्रत के विधान बताने की कृपा कीजिये, जिसके अनुष्ठान द्वारा स्त्री कभी भी विधवा न हो सके और पुरुष को पत्नी वियोग न हो ।१-३

श्रीकृष्ण जी बोले—युधिष्ठिर ! द्वितीया के दिन सुसम्पन्न होने वाले अशून्य शयन नामक व्रत की व्याख्या तुम से कह रहा हूँ, उसके अनुष्ठित होने पर स्त्री कभी विधवा नहीं हो सकती और पुरुष को पत्नी वियोग नहीं होता । जिस समय जगत्पति भगवान् विष्णु अपनी प्रिया समेत शयन करते हैं, उन्हीं दिनों से वह अशून्य शयन नामक व्रत आरम्भ होता है, जिसमें उपवास एवं अयाचित अन्न का नक्त भोजन करना बताया गया है । नृपसत्तम ! इसके व्रती को चाहिए कि श्रावण मास की कृष्ण द्वितीया के दिन नदी, सरोवर अथवा गृह कूप पर ही स्नान करके देव ऋषि एवं पितरों के तर्पण करें । पश्चात् श्रद्धा भक्ति समेत उसे चौकोर मिट्टी की वेदी के ऊपर भगवान् श्रीधर को प्रतिष्ठित करके नैवेद्य, पुष्प, धूप एवं सामयिक फल आदि द्वारा लक्ष्मी समेत उन श्रीश की पूजा करे और अनन्तर इन मंत्रों के उच्चारण पूर्वक

इममुच्चारयेन्मन्त्रं प्रणम्य जगतः पतिम् । श्रीवत्सधारिञ्छ्रीकान्त श्रीधामञ्छ्रीपतेऽव्यय[1] ॥१०
गार्हस्थ्यं मा प्रणाशं मे यातु धर्मार्थकामदम् । अग्नयो मा प्रणश्यन्तु मा प्रणश्यन्तु देवताः ॥
पितरो मा प्रणश्यन्तु मत्तो दाम्पत्यभेदतः ॥११
लक्ष्म्या वियुज्यते कृष्ण न कदाचिद्यथा भवान् । तथा कलत्रसम्बन्धो देव मा मे प्रणश्यतु ॥१२
लक्ष्म्या न शून्यं वरद यथा ते शयनं सदा । शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनि जन्मनि ॥१३
एवं प्रसाद्य पूजां च कृत्वा लक्ष्म्या हरेस्तथा । चन्द्रोदये स्नानपूर्वं पञ्चगव्येन संयुतम् ॥
विप्राय दक्षिणां दद्यात्स्वशक्त्या फलसंयुताम् ॥१४
अनेन विधिना राजन्यावन्मासचतुष्टयम् । कृष्णपक्षे द्वितीयायां प्रागुक्तविधिमाचरेत् ॥१५
कार्त्तिके चाथ सम्प्राप्ते शय्यां श्रीकान्तसंयुताम् । सोपस्करां सोदकुम्भां सान्नां दद्याद्द्विजातये ॥१६
प्रतिमासं च सोमाय अर्घ्यं दद्यात्समन्त्रकम् । दध्यक्षतैर्मूलफलै रत्नैः सौवर्णभाजनैः ॥१७
गगनांगणसद्दीप दुग्धाब्धिमथनोद्भव । आभासितदिगाभोग रमानुज नमोऽस्तु ते ॥१८
एवं करोति यः सम्यङ्नरो मासचतुष्टयम् । तस्य जन्मत्रयं यावद्गृहभङ्गो न जायते ॥१९
अशून्यशयनश्चैव धर्मकामार्थसाधकः । भवत्यव्याहतैश्वर्यः पुरुषो नात्र संशयः ॥२०

उन जगत्पति की आराधना करे—भृगुलता को धारण करने वाले श्रीकान्त , श्रीधाम, श्रीपते एवं अव्यय मेरा यह गार्हस्थ्य धर्म का जिसके द्वारा धर्म अर्थ तथा काम की सफलता होती है, कभी विघटन न हो, उसी प्रकार मेरे अग्नि और देवता का भी न नाश हो तथा दम्पती (स्त्री-पुरुष) के भेद से मेरे पितरों का भी कृष्ण ! जिस प्रकार आप को लक्ष्मी वियोग कभी नहीं होता है, देव ! उसी भाँति मेरा स्त्री संबंध कभी नष्ट न हो । नारद ! जिस भाँति आप का शयन गृह लक्ष्मी से शून्य कभी नहीं होता है, उसी प्रकार मेरी भी शय्या प्रत्येक जन्म में सदैव स्त्री संयुक्त ही बनी रहे । इस प्रकार लक्ष्मी समेत भगवान् की प्रार्थना करने के उपरांत चन्द्रोदय होने पर पंचगव्य का प्राशन पूर्वक स्नान करके ब्राह्मण को फल समेत यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करना चाहिए ।४-१४। राजन् ! इसी विधान द्वारा चारों मास की कृष्ण द्वितीया के दिन इस व्रतानुष्ठान को सुसम्पन्न करते हुए कार्तिक मास की कृष्ण द्वितीया के दिन पूजनोपरांत ब्राह्मण को इस भाँति की शय्या का दान करना चाहिए, जिस पर लक्ष्मी समेत भगवान विष्णु प्रतिष्ठित हो और उपस्कर (छत्र, कमण्डलु, खडाऊँ, जूता, भोजन पात्र आदि) उदक पूर्ण घट एवं पुत्र आदि अपने सभी अंगों से पूर्ण हो । प्रत्येक मास में सोमदेव को मंत्रोच्चारण पूर्वक दही, अक्षत, मूल फल, रत्न और सुवर्ण पात्र के अर्घ्य प्रदान करना चाहिए । पश्चात् उनकी इस प्रकार प्रार्थना करे कि—गगन प्राङ्गण के उत्तमदीप, क्षीर सागर के मन्थन द्वारा उत्पन्न होने वाले एवं दिशाओं को पूर्ण प्रकाशित करने वाले आप लक्ष्मी जी के अनुज को बार-बार नमस्कार है ।१५-१८। इस विधान द्वारा जो पुरुष चारों मास के व्रत की समाप्ति करता है, उसका तीन जन्म तक गार्हस्थ्य धर्म अत्यन्त दृढ़ रहता है और इस अशून्य शयन नामक व्रतानुष्ठान द्वारा उस पुरुष को अतुल ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है, जिससे धर्म, अर्थ एवं कामनाओं की सफलता सदैव होती

---

१. अच्युत ।

नारी च पार्थ धर्मज्ञा व्रतमेतद्यथाविधि । या करोति न सा शोच्या बन्धुवर्गस्य जायते ॥२१
वैधव्यं दुर्भगत्वं च भर्तृत्यागं च सत्तम । प्राप्नोति जन्मत्रितयं न सा पाण्डुकुलोद्वह ॥२२
एषा ह्यशून्यशयना नृपते द्वितीया ख्याता समस्तकलुषापहराऽद्वितीया ।
एतां समाचरति यः पुरुषोऽथ योषित्प्राप्नोत्यसौ शयनमग्र्यमहार्हभोग्यम् ॥२३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
अशून्यशयनव्रतमाहात्म्यं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।१५

अथ षोडशोऽध्यायः

मधूकतृतीयाव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

फाल्गुनेऽप्यसिते पक्षे तृतीयायामुपोषिता । प्रातः स्थित्वा ब्रह्मचर्ये जटामुकुटशोभिता ॥१
गोधारथगतां देवीं रुद्रध्यानपरायणाम् । पूजयेद्गन्धकुसुमैर्दीपालक्तकचन्दनैः ॥
केसरैर्मधुरैर्द्रव्यैः स्वर्णमाणिक्यपूजया ॥२
ॐ भूषिका देवभूषा च भूषिका ललिता उमा । तपोवनरता गौरी सौभाग्यं मे प्रयच्छतु ॥३
दौर्भाग्यं मे शमयतु सुप्रसन्नमनाः सदा । अवैधव्यं कुले जन्म ददात्वपरजन्मनि ॥४

रहती है—इसमें संशय नहीं । पार्थ ! इसी प्रकार जो स्त्री भी इसी व्रत को सविधान सुसम्पन्न करती है, उसके विषय में उसके बन्धु वर्ग को किसी प्रकार का शोक कभी नहीं करना पड़ता है तथा पाण्डव सत्तम ! तीन जन्म तक उसे विधवा, दुर्भगा, एवं पति त्याग दुःखों से दुःखी नहीं होना पड़ता है । नृपते ! इस भाँति इस अशून्य शयन नामक व्रत को सुसम्पन्न करने पर, जो कृष्ण द्वितीया के दिन सुसम्पन्न होता है और इसीलिए वह द्वितीया समस्त पापों के अपहरण करने में प्रख्यात हो गयी है, स्त्री पुरुष सभी व्रती को उत्तम शयन समेत अनुपम भागों की प्राप्ति होती है ।१९-२३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर के सम्वाद में
अशून्य शयन व्रत माहात्म्य वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।१५।

अध्याय १६

मधूकतृतीयाव्रत नामक वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—फाल्गुन कृष्ण तृतीया के दिन उपवास करने के लिए उसके पूर्व दिन से ही ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए । उस दिन प्रातः काल स्नान-नित्यकर्म के उपरांत गोधा के रथ पर सुखासीन एवं रुद्र के ध्यान में तन्मय देवी जी की गंध, पुष्प, चन्दन, दीप, अलक्तक (महोवर), केसर, नैवेद्य, तथा सुवर्ण मणि समेत अत्यन्त भक्ति श्रद्धा से पूजा करके इस प्रकार की प्रार्थना करे कि—आप अलङ्कार रूप हैं, क्योंकि देवाधिदेव भगवान् शंकर आप के द्वारा ही सुशोभित होते हैं और समलंकृत देवियो में आप अत्यन्त सौन्दर्य पूर्ण हैं अतः तपोवन में विहार करने वाली गौरी देवी मुझे सौभाग्य प्रदान करें, अत्यन्त प्रसन्न होकर मेरे दुर्भाग्य के शमन पूर्वक उत्तम कुल में जन्म और अवैधव्य अगले जन्म के लिए भी प्रदान

अङ्गेऽङ्गे च ममोपाङ्गे पर्वेपर्वे स्थितामृतम् । सुखदृष्टिस्पर्शरसं गौरी सौभाग्यं यच्छतु ॥५
एवमुच्चार्य मन्त्रांश्च नारीज्ञानवती सती । पूजयेद्ब्राह्मणोक्तैस्तु मन्त्रैर्मुखसुवासिनी ॥६
जीरकैः कटुहुण्डैश्च लवणैर्गुडसर्पिषा । हृद्यैरार्द्रैः फलैः स्वर्णैर्मनोज्ञैः पुष्पबन्धनैः ॥७
कुसुमैः कुंकुमैर्गन्धैः कालेयागुरुचन्दनैः । सिन्दूरेणातिरक्तेन वस्त्रैर्नानाविधैः शुभैः ॥८
नेत्रैरनेकदेशोत्थैः पूपकैस्तिलतण्डुलैः । अशोकैश्च विगुणकैर्घृतपूर्णैस्तु मोदकैः ॥९
इत्येवमादिनैवेद्यैः पूजयित्वा महाद्रुमम् । प्रदक्षिणं ततः कृत्वा दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् ॥१०
एतत्करोति या पुत्री तृतीयाव्रतमुत्तमम् । ततः प्राप्स्यति दुष्प्राप्यं त्रैलोक्ये श्रीधरं प्रति ॥११
एतद्व्रतं मयाख्यातं यास्यन्ति शाश्वतीः समाः । व्याख्यातं कश्यपेनादौ रुक्मिण्या व्रतमुत्तमम् ॥१२
याश्चरिष्यन्ति ताः सर्वा भविष्यन्ति निरामयाः । अङ्गप्रत्यङ्गसुभगा लोकदृष्टिमनोहराः ॥१३
स्थित्वा वर्षशतं चान्ते ततो रुद्रपुरं शुभम् । यास्यन्ति हंसयानेन किङ्किणीशब्दनादिना ॥१४
तत्र त्वारमयिष्यन्ति स्वभर्तॄन्वत्सरान्बहून् । दिव्यभोगभुजो हृष्टाः सिद्ध्यष्टकसमन्विताः ॥१५

अर्घं महार्घमणिकुंकुमकेसराढ्यं स्रग्गन्धमुग्धमुखरालि कुलोपगीतम् ।
दत्त्वा फलाक्षतयुतं मधुपादपस्य गौरीव लोकमहिता भवतीह नारी ॥१६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्ण-युधिष्ठिरसम्वादे
मधूकतृतीयाव्रतवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ।१६

करें। मेरे शरीर के प्रत्येक अंगों, उपाङ्गों और अस्थि ग्रन्थियों में भी अमृत भरा रहे तथा गौरी देवी मुझे इस भाँति का सौभाग्य प्रदान करें, जो दृष्टि, सुख, और स्पर्श आदि सुखों का अगाध सागर हो। इस प्रकार ज्ञानवती एवं सती स्त्री को ब्राह्मणोक्त मंत्रों द्वारा पूजन प्रार्थना के उपरांत जीर, कटु, लवण, गुड़, घी, सुस्वादु मनोहर फल, स्वर्ण की भाँति मनोज्ञ पुष्प-बन्धन, कुसुम, कुंकुम, गंध, कालेय, अगरु, चन्दन, सिन्दूर से अतिरञ्जित, अनेक भाँति के वस्त्र, अनेक देश के नेत्र पूआ, तिल, तण्डुल, अशोक-पुष्प और मोदक आदि नैवेद्यों द्वारा महावृक्ष मधूक (महुवे) की पूजा करनी चाहिए। पश्चात् प्रदक्षिणा करके ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा प्रदान करे।१-१०। इस प्रकार इस दुहिता व्रत को जो कन्या सविधान सुसम्पन्न करेगी उसे भगवान् श्रीधर की कृपा से इस त्रैलोक्य के सुन्दर एवं दुष्प्राप्य वस्तुओं की प्राप्ति अनेक वर्ष तक होती रहेगी। सर्वप्रथम कश्यप जी ने इस व्रत विधान की व्याख्या रुक्मिणी जी को बताया था। इस व्रतानुष्ठान को सुसम्पन्न करने वाली स्त्रियों के अंग प्रत्यग आरोग्य पूर्वक अत्यन्त सुभग और लोक दृष्टि के लिए अत्यन्त सुखावह होंगे। सौ वर्ष तक इस अनुपम सुखानुभव करने के उपरान्त उन्हें हंसयान पर बैठकर, जो कि किंकिणी शब्दों से अत्यन्त मुखरित रहता है, रुद्रलोक की प्राप्ति होगी। वहाँ पहुँच कर दिव्य भोगों के उपभोग पूर्वक अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट रहकर आठों सिद्धियों समेत वह अपने पति के साथ अनेक वर्षों तक रमण करती रहेगी। इस प्रकार बहुमूल्य मणि, कुंकुम, केसर पूर्ण माला जिसकी गन्ध से मुग्ध होकर भ्रमरकुल गुंजते हो, तथा फल समेत अक्षत उस मधु के वृक्ष को समर्पित करने से वह स्त्री गौरी देवी की भाँति लोक में पूजनीय होती है।११-१६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर सम्वाद में
मधूकतृतीयाव्रत वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त।१६।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

मेघपालीतृतीयाव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

मेघपालीव्रतं कृष्ण कदाचित्क्रियते नृभिः । किं पुण्यं किमनुष्ठानं कीदृग्वल्ली स्मृता तु सा ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

आश्वयुक्कृष्णपक्षे तु तृतीयायां युधिष्ठिर । मेघपाल्यै प्रदातव्यो भक्त्या स्त्रीभिर्नृभिस्तथा ॥२
अर्घो विरूढैर्गोधूमैः सप्तधान्यसमन्वितैः । तिलतण्डुलपिण्डैर्वा दातव्यो धर्मलिप्सुभिः ॥३
ताम्बूलसदृशैः पर्वै रक्ता वल्ली समञ्जरी । वाटीषु ग्रामनार्गेषु प्रोत्थिता पर्वतेऽपि च ॥४
मेघपाल्यां धान्यतैलगुडकुंकुमहैमनान् पदानपि च कुर्वन्ति जना वाणिज्यजीवनाः ॥५
पापं सत्यानृतं कृत्वा द्रव्यलुब्धाः फलान्विताः । अर्घ्यं दत्त्वा मेघपाल्यै नाशयन्ति क्षणादिह ॥६
मानोन्मानैर्जन्म मध्ये यत्पापं कुत्रचित्कृतम् । तत्सर्वं नाशमायाति व्रतेनानेन पाण्डव ॥७
मेघपाली शुभे स्थाने शुभे देशे समुत्थिता । पूजनीया वरस्त्रीभिः फलैः पुष्पैस्तथाक्षतैः ॥८
खर्जूरैर्नालिकेरैश्च दाडिमैः करवीरकैः । गन्धधूपैर्दधिदीपैर्विरूढैर्धान्यसञ्चयैः ॥९

अध्याय १७

मेघपालीतृतीयाव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण ! कदाचित् मनुष्यों को मेघपाली नामक व्रत का अनुष्ठान करते देखा गया है, इसलिए मुझे जानने की इच्छा है कि उसके सुसम्पन्न करने से किस पुण्य की प्राप्ति होती है, और उसके अनुष्ठान के विधान तथा वह वल्ली किस भाँति की होती है बताने की कृपा करें ।१

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर ! आश्विन मास की कृष्ण तृतीया के दिन श्रद्धा भक्ति समेत स्त्री पुरुष को मेघपाली व्रत सुसम्पन्न करना चाहिए । उसमें अर्घ्य प्रदान पूर्वक गेहूँ, सप्त धान्य समेत तिल तण्डुल के पिंड प्रदान करना उन धर्मार्थियों को बताया गया है । ताम्बूल के समान उसके पर्व (पारे) और मंजरी (गुच्छे) विभूषित रक्त वर्ण की वल्ली होती है । गाँवों, मार्ग के छोटे-छोटे पुरवे और पर्वतों में वह ऊपर खड़ी की जाती है । मेघपाली तृतीया के दिन धान्य, तैल, गुड़, कुंकुम एवं सुवर्ण खण्डों समेत उसे व्यापारी लोग प्रत्येक स्थानों में रखते है अर्थात् उसी व्यापार द्वारा अपना जीवन निर्वाह करते हैं । द्रव्य के लोभ वश वे सदैव सत्य, असैत्य के व्यवहार करते रहते हैं जिससे उन्हें पाप भागी होना पड़ता है । उस पाप से मुक्त होने के लिए मेघपाली के दिन अर्घ्य प्रदान उन्हें अवश्य करना चाहिए जिससे उनके समस्त पाप क्षण मात्र में नष्ट हो जाँय।२-६। पाण्डव ! जीवन में मानापमान द्वारा जहाँ कहीं जो कुछ पाप होता है, वह समस्त पाप इस व्रतानुष्ठान द्वारा विनष्ट हो जाता है । शुभ देश और शुभ स्थान में समुत्थित मेघपाली की पूजा सुन्दरी स्त्रियों को फल, पुष्प, अक्षत, खजूर, नारियल, अनार, करवीर कनेर के पुष्प, गंध, धूप, दीप तथा बढ़े हुए धान्यों के संचय समेत अर्घ्य प्रदान उन्हें रक्त वस्त्र से

रक्तवस्त्रैः समाच्छाद्य पिष्टातकविभूषिताम् । कृत्वार्घ्यः सम्प्रदातव्यो मन्त्रेणानेन भारत ।।१०
वेदोक्तेन द्विजो विद्वान्स्तच्च तस्यै निवेदयेत् । इत्येवं पूजयित्वा तां मेघपालीं पुमान्स्ततः ।।११
नारी वा पुरुषव्याघ्र प्राप्नोति परमां श्रियम् । स्थित्वा वर्षशतं मर्त्ये सुखसौभाग्यगर्विते ।।१२
विष्णुलोकमवाप्नोति देहान्ते यानसंस्थितः । कुलानि सप्त नयति स्वर्गं स्वानि रसातलात् ।।
उद्धृत्य नात्र सन्देहस्त्वया कार्यो युधिष्ठिर ।।१३

नरकभीरुतया ददाति योऽर्घ्यं फलाद्यनुयुतं ननु मेघपालेः ।
उन्मानकूटकपटानि कृतानि यानि पापानि हन्ति सवितेव तमः प्ररोहान् ।।१४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
मेघपालीतृतीयाव्रतवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ।१७

अथाष्टादशोऽध्यायः

रूपरम्भाव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

स्त्रीणां सम्पद्यते येन मर्त्यलोकं गृहं शुभम् । पतिप्रेम तथात्यन्तं तन्मे ब्रूहि व्रतं शुभम् ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

एकदा पार्वतीशम्भू स्थितौ मुनिसुरावृतौ । कैलासशिखरे रम्ये नानाधातुविचित्रिते ।।२

आच्छादित और पीठी से विभूषित करके अर्घ्य प्रदान करना चाहिए । भारत ! वैदिक ब्राह्मण द्वारा मंत्रोच्चारण करते हुए मेघपाली की पूजा पूर्वक उन्हें इस प्रकार के अर्घ्य प्रदान करने पर उस स्त्री या पुरुष को उत्तम लक्ष्मी की प्राप्ति होती है तथा पुरुष व्याघ्र ! इस मर्त्य लोक में सौ वर्ष के गर्वपूर्ण सुख सौभाग्य के अनुभव करने के उपरांत उसे उत्तम यान द्वारा विष्णु लोक की प्राप्ति होती है । युधिष्ठिर ! वह अपने सात पीढ़ियों को रसातल से स्वर्ग पहुँचाता है, इसमें सन्देह नहीं । अतः तुम इस व्रतानुष्ठान द्वारा अपने कुलों का उद्धार अवश्य करो । जो पुरुष नरक भीरु होकर फल समेत अर्घ्य प्रदान मेघपाली के लिए करता है, उसके कूट-कपट तुला मान आदि समस्त पाप सूर्य द्वारा अंधकार की भाँति विनष्ट हो जाते हैं।७-१४

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
मेघपाली तृतीया व्रत वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।१७।

अध्याय १८

रूपरम्भा नामक व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—इस मर्त्य लोक में स्त्रियों को शुभगृह और अत्यन्त पति-प्रेम किस व्रतानुष्ठान द्वारा प्राप्त होता है, बताने की कृपा कीजिये ।१

श्रीकृष्ण बोले—एक समय पार्वती और शिव जी कैलास शिखर के उत्तम स्थान पर बैठे हुए थे, जो

नानाद्रुमलताकीर्णे नानापुष्पोपशोभिते । मुनिकिन्नर संघुष्टे गेयनृत्यसमाकुले ।।३
शङ्करः पार्वतीं प्राह किं त्वया सद्व्रतं कृतम् । वामारूपेण मेऽत्यन्तं प्रियासि वरवर्णिनी ।।४
आगच्छ जानुदेशं तु सुप्रसन्ना तथा प्रिये ! ब्रूहि चावितथं सर्वं त्वया पार्वति यत्कृतम् ।।५
इत्युक्त्वा प्रणता भूत्वा गौरी प्राह शिवं शुभा । तृतीयायां मया चीर्णं पुरा रम्भाव्रतं शुभम् ।।६
तेन मे त्वं मनोहारी भर्ता लब्धोऽसि शङ्कर । ईश्वरी चाप्यहं स्त्रीणां तव देहार्द्धहारिणी ।।७

ईश्वर उवाच

कीदृशं तद्व्रतं भद्रे सर्वसौख्यप्रदायकम् । ब्रूहि पार्वति यत्नेन यच्चीर्णं पितुरन्तिके ।।८

गौर्युवाच

पुराहं देव तिष्ठामि कुमारी भवने पितुः । हिमवद्गह्वरे रम्ये सखीगणसमावृता ।।९
ततोऽहं मेनया प्रोक्ता स्वपित्रा च हिमाद्रिणा । पुत्रि रम्भाव्रतं कार्यं वरसौभाग्यवर्धनम् ।।१०
येन प्रारब्धमात्रेण सर्वं सम्पत्स्यते तव । सौभाग्यं स्त्रीगणैश्वर्यं महादेवीपदं तथा ।।११
एवं करोमि वै मातर्मन चोक्तं पुरस्त्वया ! मनोभिलषितं येन येन प्राप्नोमि शङ्करम् ।।१२

मेनोवाच

अद्य शुक्लतृतीयायां स्नात्वा नियमतत्परा । कुरु पार्श्वेषु पञ्चाग्नीञ्ज्वालमानान्हुताशनान् ।।१३

अनेक भाँति के धातुओं द्वारा चित्र विचित्र, अनेक भाँति के वृक्ष और लताओं से आच्छन्न तथा भाँति-भाँति के पुष्पों से सुशोभित था। महर्षियों और देवों का समाज भी वहाँ उपस्थित था। सभासदों के मनोविनोदार्थ किन्नरगण मिलकर वहाँ सुन्दर कलापूर्ण नृत्य कर रहे थे। उसी बीच भगवान् शंकर ने पार्वती जी से कहा—वर्णिनि ! तुमने कौन सा उत्तम व्रत सुसम्पन्न किया है, जिसके द्वारा तुम मेरी पत्नी होकर मुझे अत्यन्त प्रिय हो गई हो। प्रिये, आओ, मेरे इस जानु प्रदेश पर सुशोभित होकर इस हर्ष विभोर जन समाज में बताओ। पार्वति ! इसके लिए तुमने जो कुछ किया है, उसे सत्यतः कहना आरम्भ करो। उनके इस प्रकार कहने पर विनय विनम्र होकर पार्वती जी ने शिव जी से कहा—शंकर ! मैंने पहले समय (बाल्यावस्था) में तृतीया के दिन रम्भाव्रत के अनुष्ठान सुसम्पन्न किया था, जिसके द्वारा तुम मेरे मनोहारी भर्ता प्राप्त हुए हो और तुम्हारे देह की अर्धांगिनी होती हुई समस्त स्त्रियों की ईश्वरी भी हुई हूँ।२-७

ईश्वर बोले—भद्रे, पार्वति ! समस्त सौख्य प्रदान करने वाला यह व्रत किस भाँति किया जाता है, जिसे तुमने अपने पिता के यहाँ रहकर सुसम्पन्न किया था।८

गौरी बोली—देव ! पहले जिस समय मैं कुवांरी थी और अपने सखियों के साथ पिता के उस सुन्दर भवन में क्रीड़ा करती थी, उन्हीं दिनों मेरे माता मेना और पिता हिमालय ने कहा—पुत्रि ! सौभाग्य वर्द्धनार्थ इस रम्भा व्रत का अनुष्ठान करना आरम्भ करो, जिससे तुम्हें सौभाग्य, स्त्रीगणों के ऐश्वर्य और महादेवी पद की प्राप्ति पूर्वक सभी कुछ की प्राप्ति होती रहे। मैंने कहा—मातः जो कुछ आपने कहा है, मैं उसे अवश्य करूँगी, जिससे मुझे समस्त अभिलषित की प्राप्ति पूर्वक शंकर की प्राप्ति होगी।९-१२

मेना बोली—आज शुक्ल पक्ष की तृतीया है, नियम पालन में तत्पर होकर स्नान करके पञ्चाग्नि

गार्हपत्यं दक्षिणाग्निमन्यं चाहवनीयकम् । पञ्चमं भास्करं तेज इत्येते पञ्च वह्नयः ।।१४
एतेषां मध्यतो भूत्वा तिष्ठ पूर्वमुखा चिरम् । चतुर्भुजां ध्यानपरां पद्द्वयोपरि संस्थिताम् ।।१५
मृगाजिनच्छन्नकुचां जटावल्कलधारिणीम् । सर्वाभरणसंयुक्तां देवीमभिमुखीं कुरु ।।१६
महालक्ष्मीर्महाकाली महामाया महानतिः । गङ्गा च यमुना सिन्धुः शतद्रुर्नर्मदा मही ।।१७
सरस्वती वैतरिणी सैव प्रोक्ता महासती । तस्याश्च प्रेक्षणपरा भव तद्भावभासिता ।।१८
होमं कुर्युर्यतात्मानो ब्राह्मणाः सर्वतोदिशम् । देव्याः पूजा प्रकर्तव्या पुष्पधूपादिना ततः ।।१९
बहुप्रकारनैवेद्यं नैवेद्यं घृतपाचितम् । स्थापयेत्पुरतो देव्याः पृथक्सौभाग्यमेव च ।।२०
जीरकं कडुहुण्डश्चाप्यपूपान्कुसुमं तथा । निपाचां पावनतरां लवणं शर्करां गुडम् ।।२१
पुष्पमण्डपिका कार्या गन्धपुष्पाधिवासिता । पद्मासनेन संतिष्ठेद्यावत्परिणतो रविः ।।
ततः प्रणम्य रुद्राणीं मन्त्रमेतमुदीरयेत् ।।२२
वेदेषु सर्वशास्त्रेषु दिवि भूमौ धरातले । दृष्टः श्रुतश्च बहुशः शङ्काविरहितः स्तवः ।।२३
त्वं शक्तिस्त्वं स्वधा स्वाहा त्वं सावित्री सरस्वती । पतिं देहि गृहं देहि वसु देहि नमोस्तु ते ।।२४
एवं संक्षमयेद्देवीं प्रणिपत्य पुनः पुनः । देहि भक्त्या गृहं रम्यं विचित्रं बहुभूमिकम् ।।
आच्छाद्यद्वारकेदारकपोतादिविभूषितम् ।।२५

तापने के लिए अपने चारों ओर प्रज्वलित अग्नि की स्थापना करो । गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय और अन्य अग्नि की स्थापना अपने चारों ओर करके पाँचवा भास्कर का तेज उसमें सम्मिलित किया गया है । इसे ही पंचाग्नि कहा जाता है । इन अग्नियों के मध्य पूर्वाभिमुख बैठकर देवी को प्रसन्न करो, जो चार भुजाओं को धारण किये दोनों चरण पर स्थित होकर (शिव) के ध्यान में निमग्न हैं और जटा वल्कल धारण पूर्वक मृगचर्म से कुच को आवृत किये समस्त आभूषणों से विभूषित हैं । महालक्ष्मी, महाकाली, महामाया महासरस्वती, गंगा, यमुना, सिंधु, शतद्रु नर्मदा, मही, सरस्वती तथा वैतरणी आदि नाम उन्हीं महासती के है । इसलिए उनके सम्मुख अपलक नेत्रों से उन्हें देखती हुई तद्भाव में निमग्न हो जाओ ।१३-१८। यतात्मा ब्राह्मणों द्वारा उनके चारों ओर हवन करना चाहिए । पुष्प, धूप, दीपादि द्वारा देवी जी की पूजा करके अनेक भाँति के नैवेद्य, जो घृतयुक्त हों, अपने सौभाग्यार्थ देवी जी को अर्पित करें । जीरे, कढ़ुवे मसाले मिश्रित पूआ, कुसुम, अत्यन्त पावन निपाचा, लक्षण, शक्कर, गुड़ के अर्पण पूर्वक गंध पुष्प से अधिवासित पुष्प का मंडप उनके लिए बनाना चाहिए । उसमें देवी के सम्मुख पद्मासन द्वारा जब तक सूर्यास्त न हो, आसन बाँधकर बैठना चाहिए । पश्चात् भगवती रुद्राणी को करबद्ध प्रणाम करते हुए मंत्रोच्चारण पूर्वक क्षमा प्रार्थना करे—समस्त वेदों और शास्त्रों में यह लिखी हुई बात स्वर्ग तथा इस धरातल में अत्यन्त प्रख्यात है कि आप की स्तुति में किसी प्रकार की शंका सम्भव नहीं है—शक्ति, स्वधा, स्वाहा, सावित्री और सरस्वती तुम्हीं हो, अतः देवी ! गृह समेत पति प्रदान करने की कृपा करें, मैं आपको बार-बार नमस्कार करती हूँ ।१९-२४। इस प्रकार क्षमा प्रार्थना करके बार-बार अनुनय विनय करते हुए कि मुझे रम्य, विचित्र एवं अत्यन्त भूमिवाले गृह को प्रदान कीजिये, जो अनेक भाँति के दरवाजे एवं कमरे से पूर्ण हो, तथा सुन्दर भित्ति (दीवाल), स्तम्भ, खिड़कियों, मणि माण्डित तोरण से आवृत

कुडचस्तम्भगवाक्षाढचं मणिमण्डिततारणन् । पद्मरागमहानीलवज्रवैडूर्यभूषितम् ।।२६
गृहदानविधानेन ब्राह्मणाय यशस्विने । सपत्नीकाय सम्पूज्य सर्वोपस्करसंयुतम् ।।२७
सुवासिनीभ्यस्तद्देयं नैवेद्यं सूर्यसंस्थितम् । निर्वर्त्य विधिनानेन तत्पश्चात्क्षमयेदघम् ।।२८
दाम्पत्यानि च भोज्यानि चतुर्थ्यां मधुरै रसैः । इत्युक्तमुमया चीर्णं हर रम्भाव्रतं परम् ।।२९
व्रतान्तेऽगस्त्यमुनये दत्तं गृहवरं शुभम् । लोपामुद्रा प्रिया पत्नी तस्य वेश्मनि पूजिता ।।३०
तेन धर्मेण देव त्वं भर्ता लब्धोऽसि शङ्करः । अर्द्धांकेऽपि स्थिता तेन याश्चरिष्यन्ति योषितः ।।३१
कौंतेय पुरुषो वापि ख्यातं रम्भाव्रतं भुवि । तासां पुत्रा गृहं भोगाः कुलवृद्धिर्भविष्यति ।।३२
स्त्रीणां चातुर्यसौभाग्यं गार्हस्थ्यं सर्वकामिकम् । बालावृद्धासुमध्यानां रूपलावण्यबृंहणम् ।।
सपत्नीदर्पदलनं वशीकरणमुत्तमम् ।।३३
हिमवद्विंध्ययोर्मध्ये आर्यावर्ते मनोहरे । उत्पत्य शोभने वासे पूर्वोत्पन्नधने कुले ।।३४
मृतः शक्रपुरं याति ततो विष्णुपुरं व्रजेत् । ततः शिवपुरं याति व्यासस्य वचनं यथा ।।३५

यद्रम्भया किल भयापहरं ततश्च गौर्या हिमाद्रिभवनस्थितयापि चीर्णम् ।
तस्या व्रतं सुविकरोति रता च धर्मे ब्रह्मेशकेशवपतिं सुखदं लभेत ।।३६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
पञ्चाग्निसाधनाख्यं रम्भातृतीयाव्रतं नामाष्टादशोऽध्यायः ।१८

और पद्मराग, महानील, वज्र, वैदूर्य मणि से विभूषित हो, पश्चात् गृहदान विधान द्वारा उस समस्त साधन सम्पन्न गृह को किसी संयमी प्रतिष्ठित ब्राह्मण विद्वान् की सपत्नीक पूजन करके उन दम्पत्ति के लिए अर्पित कर रहे और सूर्यास्त के पूर्व ही सुवासिनी (सधवा) स्त्रियों को नैवेद्य द्वारा तृप्त करके पुनः क्षमा प्रार्थी रहे। अनन्तर चौथ के दिन मधुर रसों के भोजन द्वारा उन दम्पत्ति को संतृप्त करके विसर्जित करे। भगवती उमा ने कहा—हर! इस भाँति मैंने इस रम्भाव्रत को सविधान सुसंपन्न करके अनन्तर उस शुभ गृह को अगस्त्य मुनि के लिए अर्पित कर दिया था, जिसमें उनकी प्रेयसी पत्नी लोपामुद्रा पूजनीय होकर निवास करती है। देव, शंकर! उसी व्रत द्वारा मुझे आप भर्तारूप में प्राप्त हुए हैं और उसी के प्रभाव से आपकी अर्धदेहा एवं ईश्वरी हुई हूँ। कौंतेय! भूतल में अत्यन्त प्रख्यात इस रम्भाव्रत के अनुष्ठान को जो स्त्री अथवा पुरुष सुसम्पन्न करेगा उनके पुत्र, गृह, एवं भोगों की प्राप्ति पूर्वक कुल वृद्धि होती रहेगी। स्त्रियों को चातुर्य, सौभाग्य, गृहस्थ धर्म की समस्त कामनाओं की सफलता, तथा बाला, वृद्धा एवं मध्या स्त्रियों से अधिक रूप लावण्य की प्राप्ति होती है और सपत्नियों के दर्प दलने के लिए यह उत्तम वशीकरण है। इस व्रत के प्रभाव से हिमालय और विन्ध्य पर्वत के मध्य में स्थित इस मनोहर आर्यावर्त प्रदेश में किसी धनवान कुल में उसका जन्म होता है और देहावसान के समय उसे इन्द्रलोक की प्राप्ति होती है तथा इन्द्रलोक से विष्णु लोक और विष्णु लोक से शिव लोक की प्राप्ति व्यास जी के वचनानुसार होती है। हिमालय के यहाँ रहती हुई गौरी जी ने इस व्रतानुष्ठान की सविधि समाप्ति की है अतः जो धार्मिक स्त्री इस व्रत को सुसम्पन्न करती है, उसे क्रमशः ब्रह्मा, शिव, और विष्णु की प्राप्ति पतिरूप में होती है।२५-३६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-सम्वाद विषयक पञ्चाग्नि साधन रूपरम्भातृतीयाव्रत के वर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त।१८।

अथैकोनविंशोऽध्यायः

गोपदतृतीयाव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पार्थ भाद्रपदे मासि शुक्लपक्षे दिनोदये । तृतीयायां चतुर्थ्यां च शुद्धायां प्रतिवत्सरम् ।।१
उपवासेन गृह्णीयाद्व्रतं नाम्ना तु गोपदम् । स्नात्वा नरो वा नारी वा पुष्पधूपविलेपनैः ।।२
दध्यक्षतैश्च मालाभिः पिष्टकैर्वनमालया । अभ्यंजयेद्गवां शृङ्गं खुरं पुच्छान्तमेव च ।।३
दद्याद्गवाह्निकं भक्त्या तासां पूर्वापराह्णयोः । अनग्निपाकं भुञ्जीत तैलक्षारविवर्जितम् ।।४
व्रजंतीनां गवां नित्यमायांतीनां च भारत । पुरद्वारेऽथवा गोष्ठे मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ।।५

अर्घ्यं प्रदद्याद्गृष्टयां वा गवां पादेषु पाण्डव ।
माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः ।।
प्रनुवोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट ।।६

।।इति गवां मंत्रः।।

गावो मे अग्रतःसन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः । गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ।।७
इत्थं सम्पूज्य दत्त्वार्घं[1] ततो गच्छेद्गृहाश्रमम् । पञ्चम्यां क्रोधरहितो भुञ्जीत गोरसं दधि ।।८

अध्याय १९

गोपदतृतीयाव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण जी बोले—पार्थ ! प्रतिवर्ष भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष में शुद्ध तृतीया और चतुर्थी के दिन उपवास पूर्वक गोपद व्रत को सुसम्पन्न किया जाता है । उस दिन सूर्योदय के समय स्त्री या पुरुष को स्नान के उपरांत पुष्प, धूप, लेपन, दही, अक्षत, माला, पीठी, और वनमाला से गाय की सींग, खुर और अच्छ को विभूषित करना चाहिए । पूर्वाह्ण और अपराह्ण दोनों समय भक्तिपूर्वक गवादिक प्रदान के उपरांत अग्नि पाक और तेल क्षार को त्याग कर अन्य पदार्थ करना चाहिए । भारत ! घर से गौओं के जाते समय और आते समय नगर के दरवाजे अथवा गोष्ठ स्थान में उस सकृत प्रसूता गौ के चरण में अर्घ्य प्रदान करना बताया गया है । पाण्डव ! मन्त्रवेत्ता को इसी निम्नलिखित मंत्र द्वारा अर्घ्य प्रदान करना चाहिए—माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसा दित्यानाममृतस्य नाभिः प्रनुवोचं चिकितुषे जनाय गाम मनागामादिति बधिष्ट ।१-६। पश्चात् हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना करे कि—मेरे सामने, पीछे, और हृदय स्थान में गौएं स्थित हैं इस प्रकार मैं गौओं के मध्य में सदैव निवास करता हूँ । इस प्रकार पूजन पूर्वक उन्हें अर्घ्य-प्रदान के उपरांत घर जाकर पञ्चमी में शान्त चित्त होकर गोरस (मट्ठा) और दही के

---

१. अर्थम् ।

शालिपिष्टं फलं शाकं तिलमन्नं च शोभनम् । भुक्तावसाने राजेन्द्र संयतस्तां निशां स्वपेत् ।।९
प्रभाते गोपदं दत्त्वा ब्राह्मणाय हिरण्मयम् । क्षमयेच्च गवां नाथं गोविन्दं गरुडध्वजम् ।।१०
अर्च्यंतेऽत्र यथा गावस्तथा गोवर्धनो गिरिः । प्रणम्याच्युतमुद्दिश्य शृणु यत्फलमाप्नुयात् ।।११
गोभक्तो गोव्रतं कृत्वा भक्त्या शक्त्या च गोष्पदम् । सौभाग्यं रूपलावण्यं प्राप्नोति पृथिवीतले ।।१२
गोतर्णकाकुलं गेहं गोकुलं च समासतः । धनधान्यसमोपेतशालीक्षुरसमृद्धिमान् ।।१३
सन्तानं पूजितं लब्ध्वा ततः स्वर्गेऽमरो भवेत् । दिव्यरूपधरः स्रग्वी दिव्यालङ्कारभूषितः ।।१४
गन्धर्वैर्गीतवाद्येन सेव्यमानोऽप्सरोगणैः । दिव्यं युगशतं छित्त्वा ततो विष्णुपुरं व्रजेत् ।।१५

यो गोपदव्रतमिदं कुरुते त्रिरात्रं गा वै प्रपूजयति गोरसपूजनाच्च ।
गोविंदमादिपुरुषं प्रणतः सवित्रामालोकमुत्तममुपैति गवां पवित्रम् ।।१६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
तृतीयाव्रते गोष्पदतृतीयाव्रतं नामैकोनविंशोऽध्यायः ।१९

अथ विंशोऽध्यायः

हरिकालीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

शुक्ले भाद्रपदस्यैव तृतीयायां समर्चयेत् । सर्वधान्यैस्तां विरूढां भूतां हरितशङ्कुलाम् ।।

साथ चावल चूर्ण, फल, शाक, तिल और उत्तम अन्न का भोजन करना चाहिए । पश्चात् राजेन्द्र ! संयम पूर्वक उस रात्रि में शयन करे । प्रातः काल होने पर स्नान नित्य कर्म को सुसम्पन्न करके सुवर्ण के गोपद ब्राह्मण को अर्पित करने के उपरांत उन गोस्वामी गरुडध्वज गोविन्द की प्रार्थना करे । जिस प्रकार गौओं की पूजा की जाती है, उसी प्रकार गोवर्धन पर्वत की भी अर्चना करके उन अच्युत भगवान् को प्रणाम करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! जो भक्त पुरुष भक्तिपूर्वक गोव्रत को सुसम्पन्न कर अपनी शक्ति के अनुसार गोपद ब्राह्मण को अर्पित कर सौभाग्य, और रूप लावण्य की प्राप्ति करता है तथा इस भूतल में उसे गाय, बछड़े, गृह, गोकुल धन-धान्य, शाली, क्षुर एवं समृद्धि की प्राप्तिपूर्वक पूजित संतान और अन्त में स्वर्ग की प्राप्ति होती है । वहाँ देवरूप होकर सुन्दर मालाओं और अलंकारों से विभूषित होने पर गन्धर्व गण और अप्सरायें गीत वाद्य से उसकी सेवा करती हैं । इस प्रकार वहाँ दिव्य सौ युग तक सुख के समय व्यतीत कर पश्चात् विष्णु लोक चला जाता है । इस भाँति जो पुरुष तीन रात्रि में इस गोपद व्रत को सुसम्पन्न करते हुए गौ पूजन, गोरस पूजन और आदिपुरुष गोविन्द का अनुनय विनय पूर्वक सूर्य देव को नमन करता है, उसे उत्तम एवं पवित्र गोलोक की प्राप्ति होती है ।७-१६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
गोपद तृतीया वर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।१९।

अध्याय २०

हरिकालीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—भाद्रपद मास की शुक्ल तृतीया के दिन भगवान् शंकर की वल्लभा हरि काली जी

हरकालीं देवदेवीं गौरीं शङ्करवल्लभाम् ॥१
गन्धैः पुष्पैः फलैर्धूपैर्नैवेद्यैर्मोदकादिभिः । प्रीणयित्वा समाच्छाद्य पद्मरागेन भास्वता ॥२
घण्टावाद्यादिभिर्गीतैः शुभैर्दिव्यकथानुगैः । कृत्वा जागरणं रात्रौ प्रभाते ह्युद् गते रवौ ॥३
सुवासिनीभिः सा नेया मध्ये पुण्यजलाशये । तस्मिन्विसर्जयेत्पार्थ हरकालीं हरिप्रियाम् ॥४

युधिष्ठिर उवाच

भगवन्हरकालीति का देवी प्रोच्यते भुवि । आर्द्रधान्यैः स्थिता कस्मात्पूज्यते स्त्रीजनेन सा ॥
पूजिता किं ददातीह सर्वं मे ब्रूहि केशव ॥५

श्रीकृष्ण उवाच

सर्वपापहरां दिव्यां मत्तः शृणु कथामिमाम् । आसीद्दक्षस्य दुहिता कालीनाम्नी तु कन्यका ॥६
वर्णेनापि च सा कृष्णा नवनीलोत्पलप्रभा । सा च दत्ता त्र्यम्बकाय महादेवाय शूलिने ॥७
विवाहिता विधानेन शङ्खतूर्यानुनादिना । यत्कुर्यादागतैर्देवैर्ब्राह्मणानां च निस्वनैः ॥८
निर्वर्तिते विवाहे तु तया सार्धं त्रिलोचनः । क्रीडते विविधैर्भोगैर्मनसः प्रीतिवर्धनैः ॥९
अथ देवसमानस्तु कदाचित्स वृषध्वजः । आस्थानमण्डपे रम्ये आस्ते विष्णुसहायवान् ॥१०
तत्रस्थश्चाह्वयामास नर्मणा त्रिपुरान्तकः । कालीं नीलोत्पलश्यामां गणमातृगणावृताम् ॥११

की अर्चना करनी चाहिए जो समस्त धान्यों की हरियाली द्वारा विवर्द्धित एवं देव देवी गौरी के नाम से प्रख्यात है । उस दिन गंध, पुष्प, फल, धूप, दीप, नैवेद्य तथा मोदक आदि वस्तुओं से उन्हें प्रसन्न कर पद्मराग से आच्छादित करने के उपरांत घंटा वाद्य, गीत, और शुभ दिव्य कथाओं के प्रवचन द्वारा रात्रि जागरण करना चाहिए । पश्चात् प्रातःकाल होने पर सूर्योदय के समय सुवासिनी स्त्रियों द्वारा उन्हें किसी पवित्र जलाशय के मध्य में ले जाकर विसर्जित करे । १-४

युधिष्ठिर बोले—भगवान् ! भूतल में हरिकाली देवी की अत्यन्त प्रसिद्धि है, उन्हें हरे धान्यों में क्यों स्थापित किया जाता है, तथा सभी वर्ग उनकी पूजा किसलिए करता है और केशव ! पूजित होने पर वे कौन फल प्रदान करती हैं आदि सभी बातें बताने की कृपा कीजिये ।५

श्रीकृष्ण बोले—समस्त पापों के हरण करने वाली इस दिव्य कथा को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! दक्ष प्रजापति के काली नाम की एक कन्या थी, जो वर्ण से भी काली एवं नवीन नीलोत्पल के समान प्रभावपूर्ण थी । दक्ष ने त्रयम्बक महादेव को, जो सदैव त्रिशूल धारण किये रहते है, बुलाकर उनके द्वारा अपनी उस पुत्री का पाणिग्रहण संस्कार सविधान सुसम्पन्न कराया । उस विवाह में शंख तुरूही आदि वाद्य सभी देव वाद्य एवं सभी देवगण सम्मिलित थे । देवों तथा ब्राह्मणों के वेदध्वनि द्वारा उस मांगलिक संस्कार के समाप्त होने पर भगवान् त्रिलोचन ने उस कन्या को साथ लिये कैलास को प्रस्थान किया । वहाँ रहकर आत्मसंतुष्टि कारक एवं प्रीतिवर्द्धक अनेक भाँति के भोगों द्वारा उसके साथ क्रीडा करना प्रारम्भ किया । उन्हीं दिनों एक दिन वृषध्वज रमणीक मण्डप में सिंहासनासीन होकर जिसमें विष्णु भी उपस्थित थे, हास्य करते हुए अपनी हरिकाली प्रिया को बुलाया जो काली, नील कमल की भाँति श्यामल एवं गण और

एह्येहि त्वमितः कासि कृष्णांजनसमन्विते । कालसुन्दरि मत्पार्श्वे धवले त्वमुपाविश ।।१२
एवमुत्क्षिप्तमनसा देवी संक्रुद्धमानसा । श्वासयामास ताम्राक्षी बाष्पगद्गदया गिरा ।।१३
रुरोद सस्वरं बाला तत्रस्था स्फुरिताधरा । किं दैव योगात्ताम्रा गौर्गौरी चेत्यभिधीयते ।।१४
यस्मान्ममोपमा दत्ता कृष्णवर्णेन शङ्कर । हरकालीति चाहूता देवर्षिगणसेविता ।।१५
तस्माद्देहमिमं कृष्णं जुहोमि ज्वलितेऽनले । इत्युक्त्वा वार्यमाणा तु हरकाली रुषान्विता ।।१६
मुमोच हरितच्छायाकान्तिं हरितशाद्वले । चिक्षेप दोषं रागेण ज्वलिते हव्यवाहने ।।१७
पुनः पर्वतराजस्य गृहे गौरी बभूव सा । महादेवस्य देहार्द्धे स्थिता सम्पूज्यते सुरैः ।।१८
एवं सा हरकालीति गौरीशस्य व्यवस्थिता । पूजनीया महादेवी मन्त्रेणानेन पाण्डव ।।१९
हरकर्मसमुत्पन्ने हरकाये हरप्रिये । मां त्राहीशस्य मूर्तिस्थे प्रणतास्तु नमोनमः ।।२०
इत्थं सम्पूज्य नैवेद्यं दद्याद्विप्राय पाण्डव । तां च प्रातर्जले रम्ये मन्त्रेणैव विसर्जयेत् ।।२१
अर्चितासि मया भक्त्या गच्छ देवि सुरालयम् । हरकाले शिवे गौरि पुनरागमनाय च ।।२२
एवं यः पाण्डवश्रेष्ठ हरकालीव्रतं चरेत् । वर्षेवर्षे विधानेन नारी नरपते शुभा ।।२३
सा यत्फलमवाप्नोति तच्छृणुष्व नराधिप । मर्त्यलोके चिरं तिष्ठेत्सर्वरोगविवर्जिता ।।२४
सर्वभोगसमायुक्ता सौभाग्यबलगर्विता । पुत्रपौत्रसुहृन्मित्रनप्तृदौहित्रसङ्कुला ।।२५

मातृगणों से संयुक्त थी—कालि, काले अंजन की भाँति वर्ण वाली काल सुन्दरि आओ, इसी धवल आसन पर मेरे पार्श्व में आकर तुम भी बैठो । इस प्रकार की उपेक्षा दृष्टि से अपमानित होने पर हरिकाली देवी अत्यन्त क्रुद्ध होकर दीर्घ निःश्वास लेने लगी और पश्चात् वह ताम्राक्षी होकर आंसुओं से कण्ठ के अवरुद्ध होने पर गदगदवाणी द्वारा रुदन करने लगी । उस समय उस देवी का अधरोष्ठ क्रोध से फड़क रहा था । उन्होंने कहा—शंकर ! क्या आप के साथ बैठने से गौरवर्ण हो जाऊँगी ; जो आप कृष्ण वर्ण से मेरी उपमा दे रहे हैं । इस देव ऋषि गणों के सामने आप ने हरिकाली नाम से बुलाकर कृष्ण वर्ण की उपमा दी है, इसलिए मैं इस कृष्ण वर्ण की देह को इसी प्रज्वलित अग्नि में आहुति रूप में डाल दूँगी । इतना कहकर हरि काली ने देवों के मना करने पर भी अत्यन्त रोषपूर्ण होने के नाते अपनी श्यामल कान्ति हरी घासों में डालकर देह को प्रज्वलित अग्नि में डाल दिया । पश्चात् वही गिरिराज के यहाँ गौरी के नाम से उत्पन्न होकर पुनः श्री महादेव जी की अर्धांगिनी हुई, जो देवों से पूजित हैं । पाण्डव ! इस प्रकार गौरी शंकर भगवान् की हरिकाली की कथा जानकर उन महादेव की इस मंत्र द्वारा पूजा करनी चाहिए ।६-१९। हर कर्म के लिए उत्पन्न हर की देहार्द्धिनी, और हरप्रिये, मेरी रक्षा करो, शिवमूर्तिस्थ आप को विनय पूर्वक नमस्कार कर रहा हूँ । पाण्डव इस भाँति उनकी पूजा करके उन्हें नैवेद्य अर्पित करे, और इसी दिन प्रातः काल मंत्र पूर्वक जल में विसर्जन करे—देवि ! भक्ति पूर्वक मैंने आपकी अर्चना की है, हर कालि, शिवे एवं गौरि अब आप देव लोक चली जांय और पुनः आवाहित होने पर आने की कृपा करती रहे ।२०-२२। पाण्डव राजन् ! प्रति वर्ष जो स्त्री इस हरिकाली व्रत को सविधान सुसम्पन्न करती है, उसे जिस फल की प्राप्ति होती है मैं बता रहा हूँ सुनो ! नराधिप ! वह इस मर्त्यलोक में समस्त रोग से मुक्त होकर चिरकाल तक समस्त भोगों का उपभोग करती है उसका सौभाग्य फल अत्यन्त महत्वपूर्ण रहता है, तथा पुत्र, पौत्र, मित्र, नप्ता (नाती) और दोहित्र आदि परिवार से संयुक्त रहकर सौ वर्ष तक इस भूमण्डल पर सम्पूर्ण भोगों के उपभोग करने

साग्रं वर्षशतं यावद्भोगान्भुक्त्वा महीतले । ततोऽवसाने देहस्य शिवज्ञाना महामुने ।।२६
चिरभद्रा महाकालनन्दीश्वरविनायकाः । तदाज्ञाकिंकराः सर्वे महादेवप्रसादतः ।।२७
सम्पूर्णसूर्यगणसप्तविरूढशस्यां तां वै हिमाद्रितनयां हरकालिकाख्याम् ।
सम्पूज्य जागरमनुद्धतगीतवाद्यैर्यच्छन्ति या इह भवन्ति पतिप्रियास्ताः ।।२८
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
हरकालीतृतीयाव्रतं नाम विंशोऽध्यायः ।२०

अथैकविंशोऽध्यायः

ललिताव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

अथ पृच्छामि भगवन्व्रतं द्वादशमासिकम् । ललिताराधनं नाम मासमासक्रमेण वा ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु पाण्डव यत्नेन यथा वृत्तं पुरातनम् । शङ्करस्य महादेव्याः सम्वादं कुरुसत्तम ।।२
कैलासशिखरे रम्ये बहुपुष्पफलोपगे । सहकारद्रुमच्छन्ने चम्पकाशोकभूषिते ।।३
कदम्बबकुलामोदवशीकृतमधुव्रते । मयूररवसंघुष्टे राजहंसोपशोभिते ।।४
मृगर्क्षगजसिंहैश्च शाखामृगगणावृते । गन्धर्वयक्षदेवर्षिसिद्धकिन्नरपन्नगैः ।।५

के उपरांत देहावसान के समय शिव जी द्वारा ज्ञान प्राप्त कर कैलासवास करती है और महादेव जी की आज्ञा से चिरभद्रा, महाकाली, नंदीश्वर एवं विनायक आदि उसकी सेवा करते हैं। इस प्रकार हिमाद्रितनया हरिकाली देवी की पूजा एवं व्रत को सुसम्पन्न करके गीत वाद्य द्वारा रात्रि जागरण करने वाली स्त्री समस्त सौभाग्य समेत अपने पति की अत्यन्त प्रेयसी होती है।२३-२८

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
हरिकाली तृतीया व्रत नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त।२०।

अध्याय २१

ललिताव्रतमाहात्म्य-वर्णन

युधिष्ठिर बोले—भगवान्! ललिताराधना नामक व्रत के विधान, जो क्रमशः प्रत्येक मास में सुसम्पन्न होते हुए चार मास में समाप्त किया जाता है, मैं पूँछ रहा हूँ, बताने की कृपा करें।१

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डव! इस विषय का शंकर और महादेवी का सम्वाद मैं तुम्हें सुना रहा हूँ, सावधान होकर सुनो! कुरुश्रेष्ट! एक बार कैलास पर्वत के उस रमणीक शिखर पर शंकर और महादेवी सुशोभित हो रहे थे, जो अत्यन्त पुष्प, फल वाले आम के वृक्षों से आच्छन्न, चम्पक अशोक से विभूषित, कदम्ब तथा वकुल की गन्ध से मत्त होकर भ्रमरवृन्दों से गुंजित मयूरवाणी से प्रशान्त, एवं राजहंस से अलंकृत था। वहाँ मृग, रीछ, गज, सिंह, और वानर गण स्वतन्त्र विचरण करते थे। उस स्थान पर

तपस्विभिर्महाभागैः सेवमानं समन्ततः । सुखासीनं महादेवं भूतसङ्घैः समावृतम् ॥६
अप्सरोभिः परिवृतमुमा नत्वाब्रवीदिदम् ॥

उमोवाच

भगवन्देवदेवेश शूलपाणे वृषध्वज ॥७
कथयस्व महेशान तृतीयाव्रतमुत्तमम् । सौभाग्यं लभते येन धनं पुत्रान्पशून्सुखम् ॥८
नारी स्वर्गं शुभं रूपमारोग्यं श्रियमुत्तमाम् । एवमुक्तो दयितया भार्यया प्रीतिपूर्वकम् ॥
विहस्य शङ्करः प्राह किं व्रतेन तव प्रिये ॥९
ये कामास्त्रिषु लोकेषु दिव्या भूम्यन्तरिक्षजाः । सर्वेऽपि तेन चायत्ता वश्यस्तेऽहं यतः पतिः ॥१०

उमोवाच

सत्यमेतत्सुरेशान त्वयि दृष्टे न दुर्लभम् । किंचित्त्रिभुवनाभोगभूषणे शशिभूषणे ॥११
भक्त्या स्त्रियो हि मां देव प्रजपन्ति शुभाशुभम् । विरूपाः सुलभाः काश्चिदपुत्रा बहुपुत्रकाः ॥१२
सुशीलास्तपसा काश्चिच्छ्वश्रुभिः पीडिता भृशम् । शौचाचारसमायुक्ता न रोचन्तेऽथ कस्यचित् ॥१३
एवं बहुविधैर्दुःखैः पीड्यमानास्तु दारुणैः । शरणं मां प्रपन्नास्ताः कृपाविष्टा ततो ह्यहम् ॥१४
येन ताः सुखसम्भोगरूपलावण्यसम्पदा । पुत्रैः सौभाग्यवित्तौघैर्युक्ताः स्युः सुरसत्तम ॥
तन्मे कथय तत्त्वेन व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥१५

भूतगण समेत महादेव अपनी प्रिया (पार्वती) के साथ सुख पूर्वक बैठे हुए थे और गन्धर्व, यक्ष, देव, ऋषि, सिद्ध, किन्नर, पन्नग तथा महाभाग तपस्विगण उनकी सेवा में उपस्थित थे। अप्सराएँ अपने नृत्य गान से उन्हें मुग्ध कर रही थी। उसी समय नमस्कार पूर्वक उमादेवी ने भगवान् शंकर जी से कहा—२-६

उमा बोली—भगवन्! देवाधिदेव, शूलपाणि एवं वृषध्वज! महेशान! तृतीया व्रत के उस विधान को बताने की कृपा कीजिये जिसके अनुष्ठान सुसम्पन्न करने पर सौभाग्य, धन, पुत्र और पशुओं की प्राप्ति पूर्वक अत्यन्त सुख नारी, स्वर्ग, प्रेम रूप, आरोग्य एवं उत्तम श्री की प्राप्ति होती है। प्रीतिपूर्वक अपनी दयिता के इस भाँति कहने पर शंकर जी ने हँसकर कहा—प्रिये! तुम्हें व्रत विधान की क्या आवश्यकता है, क्योंकि तीनोंलोकों में, स्वर्ग, पृथिवी और आकाश विषयक तुम्हारे सभी मनोरथ इसीलिए सफल हैं, कि पति रूप मैं तुम्हारे वशीभूत हूँ।७-१०

उमा बोली—सुरेशान! आप का कहना सर्वथा सत्य है, क्योंकि नाग और चन्द्र से विभूषित आप ऐसे अनुपम पति के दर्शन से मुझे इस त्रिभुवन में कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है, किन्तु भक्तिपूर्वक स्त्रियाँ अपने शुभाशुभ के निमित्त मेरी आराधना करती हैं—कुरूप, सुलभ, पुत्रहीना, एवं बहुपुत्रा होने के नाते और तपस्विनी सुशीला होती हुई भी सास से अत्यन्त पीड़ित तथा पवित्र, आचार पूर्ण होने पर भी गृहकुटुम्ब से व्यथित और इसी भाँति के अन्य अनेक दारुण दुःखों से दुःखी होकर स्त्रियाँ जब मेरी शरण में आती हैं, तो मुझे उनके ऊपर करुणा करना ही पड़ता है। सुरसत्तम! इसीलिए मेरी इच्छा है कि जिसके द्वारा उन्हें सुख संभोग, रूप लावण्य, पुत्र, सौभाग्य और अधिक वित्त की प्राप्ति हो सके, उस उत्तम व्रत को मुझे बताने की कृपा करें।११-१५

ईश्वर उवाच

माघे मासि सिते पक्षे तृतीयायां यतव्रताः । मुखं प्रक्षाल्य हस्तौ च पादौ चैव समाहिताः ॥१६
उपवासस्य नियमं दन्तधावनपूर्वकम् । मध्याह्ने तु ततः स्नानं बिल्वैरामलकैः शुभैः ॥१७
स्नात्वा तीर्थजले शुभ्रे वाससी परिधाय च । सुगन्धैः सुमनोभिश्च प्रभूतैः कुंकुमादिभिः ॥१८
अर्चयन्ति सदा देवि त्वां भक्त्या भक्तवत्सले । कर्पूराद्यैस्तथा धूपैर्नैवेद्यैः शर्करादिभिः ॥१९
यदृच्छालाभसम्पन्नैर्धूपदीपार्चनादिभिः । नाम्नेशानीं[1] गृहीत्वा तु प्रतीक्षेद्धटिकां ततः ॥२०
पात्रे ताम्रमये शुद्धे जलाक्षतविमिश्रिते । सहिरण्यं द्विजं कृत्वा मन्त्रपूर्वं समाधिना ॥२१
शिरसि प्रक्षिपेत्तोयं ध्यायन्ति मनसेप्सितम् । ब्रह्मावर्तात्समायाता ब्रह्मयोनेर्विनिर्गता ॥२२
भद्रेश्वरा ततो देवी ललिता शङ्करप्रिया । गङ्गाद्वाराद्धरं प्राप्ता गङ्गाजलपवित्रिता ॥२३
सौभाग्यारोग्यपुत्रार्थमर्थार्थं हरवल्लभे[2] । आयाता घटिकां भद्रे प्रतीक्षस्व नमोनमः ॥२४
दत्त्वा हिरण्यं तत्तस्मै प्राश्नीयाच्चकुशोदकम् । आचम्य प्रयतो भूत्वा भूमिस्था क्षपयेत्क्षपाम् ॥२५
ध्यायमाना उमां देवीं हरिते यवसंस्तरे । द्वितीयेह्नि ततः स्नात्वा तथैवाभ्यर्च्य पार्वतीम् ॥२६
यथाशक्ति द्विजान्पूज्य ततो भुञ्जीत वाग्यता । एवं तु प्रथमे मासि पूजनीयासि कालिके ॥२७
द्वितीये पार्वती नाम तृतीये शङ्करप्रिया । भवान्यथ चतुर्थे त्वं स्कन्दमाताऽथ पञ्चमे ॥२८
दक्षस्य दुहिता षष्ठे मैनाकी सप्तमे स्मृता । कात्यायन्यष्टमे[3] मासि नवमे तु हिमाद्रिजा ॥२९

ईश्वर बोले—माघ मास की शुक्ल तृतीया के दिन संयम पूर्वक मुख, हाथ, चरण प्रक्षालन के उपरांत उपवास के लिए दंतधावन से ही नियम करना चाहिए । मध्याह्न के समय बेल और आँवले मिश्रित किसी तीर्थ जल से स्नान करके शुभ एवं शुद्ध दो वस्त्र धारण पूर्वक सुगंध, सुगन्धित पुष्प, तथा कुंकुमादि वस्तुओं द्वारा भक्ति समेत तुम्हारी भक्तवत्सला की अर्चना करते हुए जिसमें कपूर, धूप, नैवेद्य, शक्कर एवं यथाशक्ति धूपादि वस्तुएँ सम्मिलित हो, ईशानी देवी के नामोच्चारण करके घटिका का दर्शन करे । पश्चात् ताम्रपात्र में जल, अक्षत रखकर उसे ब्राह्मण को सुवर्ण दक्षिणा देने के उपरांत देवी के ध्यान पूर्वक शिर पर छोड दें और इस प्रकार प्रार्थना करें कि—ब्रह्मयोनि से निकलने और ब्रह्मावर्त से आगमन करने के नाते भद्रेश्वर और पश्चात् ललिता शंकर प्रिया आप का नाम हुआ है । हर वल्लभ ! गङ्गाद्वार (हरिद्वार) में हर से मिलकर गंगाजल से पवित्र हुई हो अतः सौभाग्य, आरोग्य, पुत्र एवं धन की प्राप्ति के लिए मैं आप की आराधना कर रहा हूँ, आप यहाँ आकर इस घटिका का निरीक्षण करें आपको बार-बार नमस्कार है ।१६-२४। अनन्तर उस कुशोदक के आचमन पूर्वक भूमिशयन करते हुए हरे यव के आसन पर उमा देवी के ध्यान करके रात्रि व्यतीत करे । दूसरे दिन पुनः उसी प्रकार समान नित्य कर्म के उपरांत पार्वती पूजन और यथाशक्ति ब्राह्मण को दान देकर वाक् संयम पूर्वक भोजन करे । कालिके ! इसी नाम से आपकी प्रथम मास की अर्चना होनी चाहिए । इसी भाँति दूसरे मास में पार्वती, तीसरे में शंकर प्रिया, चौथे में भवानी, पाँचवें में स्कन्दमाता, छठें में दक्ष-दुहिता, सातवें में मैनाकी (मैना की पुत्री), आठवें में

---

१. च तत्त्वतः । २. ततः सायं गृहीत्वा तु । ३. जनवल्लभे ।

दशमे मासि विख्याता देवि सौभाग्यदायिनी । उमा त्वेकादशे मासि गौरी तु द्वादशे परा ।।३०
कुशोदकं पयः सर्प्पिर्गोमूत्रं गोमयं फलम् । निम्बपत्रं कण्टकारी गवां शृङ्गोदकं दधि ।।३१
पञ्चगव्यं तथा शाकः प्राशनानि क्रमादमी । मासिमासि स्थिता ह्येवमुपवासपरायणा ।।३२
ददाति श्रद्धयैतानि वाचके ब्राह्मणोत्तमे । कुसुम्भमाज्यं लवणं जीरकं गुडमेव च ।।३३
दत्तैरेभिः सूर्यस्था त्वं सूर्यस्था तुष्यसि प्रिये । मासिमासि भवेन्मन्त्रो गकारो द्वादशाक्षरः ।।३४
ओङ्कारपूर्वको देवि नमस्कारान्त ईरितः । एभिस्त्वं पूजिता मन्त्रैस्तुष्यसि व्रततः प्रिये ।।३५
तुष्टा त्वमभीप्सितान्कामान्ददासि प्रीतिपूर्वकम् । समाप्ते तु व्रते तस्मिन्ब्राह्मणं वेदपारगम् ।।३६
सहितं भार्ययाभ्यर्च्य गन्धपुष्पादिभिः शुभैः । द्विजं महेश्वरं कृत्वा उमां भार्यां तथैव च ।।३७
अन्नं सदक्षिणं दद्यात्तथा शुक्ले च वाससी । रक्तं वासोयुगं दद्यात्त्वामुद्दिश्य हरप्रिये ।।३८
ब्राह्मणे श्रद्धया युक्तस्तस्यां फलमिदं शृणु । दशवर्षसहस्राणि लोकान्प्राप्य परापरान् ।।३९
मोदते भर्तृसहिता यथेंद्रेण शची तथा । मानुषत्वं पुनः प्राप्य स्वेन भर्त्रा सहैव सा ।।४०
पुण्ये कुले श्रिया युक्ता नीरोगा सुखमश्नुते । सप्त जन्मानि यावच्च न वैधव्यमवाप्नुयात् ।।४१
पुत्रान्भोगान्स्तथा रूपं सौभाग्यारोग्यमेव च । एकपत्नी तथा भर्तुः प्राणेभ्योऽप्यधिका भवेत् ।।४२
शृणुयाद्वाच्यमानं तु भक्त्या या ललिताव्रतम् । मया स्नेहेन कथितं सापि तत्फलभागिनी ।।४३

कात्यायनी, नवें में हिमाद्रिजा (गिरिजा) दशवें में सौभाग्यदायिनी, ग्यारहवें में उमा और बारहवें मास में परमोत्तम गौरी नाम से तुम्हारा पूजन होना चाहिए । उन मासों में क्रमशः कुशोदक, पय, घी, गोमूत्र, गोमय, फल, निम्बपत्र, कंटकारी, गौका शृंगोदक, दही, पञ्चगव्य तथा शाक का प्राशन करना चाहिए । श्रद्धा भक्ति समेत प्रत्येक मास में उपवास रहकर वाचक ब्राह्मण को कुसुंभ, घी, लवण, जीरा और गुड का दान जो स्त्री प्रदान करती है ओर प्रतिमास में पूजनोपरांत ओंकार सहित द्वादशाक्षर गकार के उच्चारण पूर्वक नमस्कार करती है, प्रिये ! सूर्यस्थ होकर तू उसके ऊपर अत्यन्त प्रसन्न होती हो और इस मंत्र द्वारा पूजित होने पर तुष्ट होकर तुम उसके मनोरथ सफल करती हो । प्रीतिपूर्वक व्रत के समाप्त होने पर वेद के निष्णात विद्वान् को भार्या समेत बुलाकर उत्तम गंध पुष्पादि द्वारा ब्राह्मण को महेश्वर और ब्राह्मणी को उमा की भावना से पूजन करके अन्न, दो शुक्ल वस्त्र, तथा दो रक्त वस्त्र उन्हें प्रदान करे । हरिप्रिये ! श्रद्धा समेत इस कर्म को सुसम्पन्न करने पर जिस उत्तम फल की प्राप्ति होती है, उसे मैं बता रहा हूँ सुनो ! दश सहस्र वर्ष तक उत्तम लोक में पहुँच कर वह स्त्री पति समेत इन्द्र युक्त इन्द्राणी की भाँति समस्त भोगों के उपभोग करती है और पश्चात् उत्तम मानुष कुल में जन्म ग्रहण कर पुनः उसी पति के साथ लक्ष्मी और आरोग्य की प्राप्तिपूर्वक सभी सुखों का अनुभव करती है, सात जन्म तक विधवा नहीं होती है ।२५-४१। पुत्र, उत्तमभोग, रूप, सौभाग्य, तथा आरोग्य की प्राप्ति समेत वह अपने पति की अत्यन्त प्राण प्रिय एवं एक पत्नी होती है । भक्ति पूर्वक जो स्त्री इस ललिता व्रत को कथा वाचक द्वारा श्रवण करती है, वह भी इसी के समान फलों की प्राप्ति करती है। मैंने स्नेहवश इस व्रत विधान को तुम्हें सुना दिया। इस प्रकार लक्ष ललिता देवी के पूजन पूर्वक सलितांग यष्टि और गंधोदक मिश्रित उस अमृत घटी को अपने शिर पर जो

---

१. मुदा । २. मृडानी चाष्टमे मासि ।

सम्पूज्य लक्षललितां ललिताङ्गयष्टिं गन्धोदकामृतघटीं शिरसि क्षिपेद्यः।
सा स्वर्गमेत्य ललितासु ललानभूता भूपाधिपं पतिमवाप्य भुवं भुनक्ति ॥४४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
ललितातृतीयाव्रतमहात्म्यं नामैकविंशोऽध्यायः।२१

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

अवियोगतृतीयाव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

इहापियोगमासाद्य भर्तृबन्धुजनैःसह । वद नारी नरश्रेष्ठ व्रजेद्येन शिवालयम् ॥१
विधवा च परे लोके भूयोऽपि न वियुज्यते । सुखसन्दोहसौभाग्ययुक्ता भवति भामिनी ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

उभयान्तरितं यत्नाद्भववाग्ललितामृतम् । लब्ध्वा हि भवतो जन्म दक्षकोपाद्वियुक्तया ॥३
महासौभाग्यसन्दोहं दृष्ट्वा देव्या महात्मना । अरुन्धत्या वशिष्ठेन पृष्टेन कथितं शृणु ॥४
मासि मार्गशिरे प्राप्ते चन्द्रवृद्धौ शुचि स्मिता । द्वितीयायां समासाद्य नक्तं भुञ्जीत पायसम् ॥५
आचम्य च शुचिर्भूत्वा दण्डवच्छङ्करं नमेत् । मुदान्विता नमस्कृत्य विज्ञाप्य परमेश्वरम् ॥६

स्त्री छोड़ती है वह सर्वाङ्ग सुन्दरी वनिता होकर स्वर्ग सुख भोगने के उपरांत राजाधिराजपति की प्राप्ति कर भूतल के समस्त सुखों के अनुभव करती है ।४२-४४

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-सम्वाद में
ललिता तृतीया व्रत माहात्म्य वर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ।२१।

अध्याय २२

अवियोगतृतीया व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—नरश्रेष्ठ ! इस लोक में उत्तम कुल में जन्मग्रहण पूर्वक उत्तम पति और बान्धवों के साथ रहकर गृहसुख के अनुभव करते हुए देहावसान के समय शिवलोक की प्राप्ति और समस्त सुख सौभाग्य की उपलब्धि भामिनियों को किस के अनुष्ठान द्वारा होती है, बताने की कृपा कीजिये ।१-२

श्रीकृष्ण बोले—दक्ष के ऊपर रुष्ट होकर शरीर त्याग करने के उपरांत पुनः जन्मग्रहण करके पार्वती ने ललिता व्रत को प्रयत्नपूर्वक सुसम्पन्न कर महासौभाग्य संदोह की प्राप्ति की । उसे देखकर देवी अरुन्धती ने महात्मा वशिष्ठ जी से पूछा, उन्होंने जो कुछ कहा है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! मार्गशीर्ष (अगहन) मास की शुक्ल द्वितीया के दिन पवित्रता पूर्वक उपवास रहकर रात में पायस का नक्त भोजन करने के उपरांत आचमन पूर्वक पवित्र होकर शंकर जी को दण्डवत् नमस्कार कर, पश्चात् प्रातः काल

औदुम्बरमृजुं गृह्य भक्षयेद्दंतधावनम् । उत्तराशागतं साग्रं सत्वचं निर्व्रणं शुभम् ॥७
द्वितीयायां परे वाह्नि गौरीं शम्भुं च पूजयेत् । शालिपिष्टमये कृत्वा रूपे स्त्रीपुंसयोः शुभे ॥
पात्रे संस्थाप्य सम्पूज्य जागरं निशि कल्पयेत् ॥८
विधिवत्पूजयित्वा तु शङ्करं कीर्तयन्स्वपेत् । प्रभाते ते गृहीत्वा तु आचार्याय निवेदयेत् ॥९
भोजयेन्मृष्टमन्नाद्यं शिवभक्त्या द्विजोत्तमान् । दाम्पत्यानि च तत्रैव शक्त्या तान्यपि भोजयेत् ॥१०
प्रतिमासं प्रकुर्वीत विधिना तेन संयता । कार्तिकान्ते ततो मासि मार्गशीर्षे समुद्यमेत् ॥११
नामानि च प्रवक्ष्यामि प्रतिमासं क्रमाच्छृणु । पूजाजाप्यनिमित्तं च सिद्ध्यर्थं चेति तस्य च ॥१२
एवं पौषे तु सम्प्राप्ते गिरिशं पार्वतीं तथा । समभ्यर्च्य चतुर्थ्यां तु पञ्चगव्यं पिबेत्सुधीः ॥१३
एतत्पारणमुद्दिष्टं मार्गादौ मार्गगोचरम् । न चान्यत्पञ्चगव्यादि पावनं परमं स्मृतम् ॥१४
भवं चैव भवानीं च मासि माघे प्रपूजयेत् । फाल्गुने तु महादेवमुमया सहितं मतम् ॥१५
ललितां शङ्करं देवं चैत्रे सम्पूजयेत्ततः । स्थाणुं वैशाखमासे तु लोलनेत्रायुतं यजेत् ॥१६
ज्येष्ठे वीरेश्वरं देवमेकवीरासमन्वितम् । आषाढ़े पशुनाथं च शक्त्या सार्द्धं त्रिलोचनम् ॥१७
श्रीकण्ठं श्रावणे देवं सुतान्वितमथार्चयेत् । भीमं भाद्रपदे मासि दुर्गया सहितं यजेत् ॥
ईशानं कार्त्तिके मासि शिवादेवीयुतं यजेत् ॥१८
जप्यध्यानार्चनायैव नामान्येतानि सुव्रत । स्मृतानि विधिना राजन्व्रतसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥१९
प्रतिमासं तु पुष्पाणि यानि पूजासु योजयेत् । तानि क्रमात्प्रवक्ष्यामि सद्यः प्रीतिकराणि वै ॥२०

प्रसन्न रहकर शंकर जी को नमस्कार और उनसे इस व्रत का विज्ञापन करके गूलर की सीधी लकड़ी का दंत धावन करे, जो अत्यन्त शुद्ध, लम्बी, तथा (छिलका) समेत व्रण रहित और मनोहर दिखाई दे। अनन्तर अग्नि एवं गौरी शिव जी की उस प्रतिमा की अर्चना करो, जो साठी चावल के चूर्ण से अत्यन्त सुन्दर बनायी गयी हो। किसी पात्र में रखकर पूजन करने के उपरांत आधीरात तक जागरण करके अनन्तर सविधान पूजन करके शंकर नाम का कीर्तन करते हुए शयन करे। प्रातःकाल प्रतिमा समेत वह सब आचार्य को अर्पित कर शिवभक्त ब्राह्मणों को उत्तम भोजन कराते हुए आचार्य दम्पत्ती को भी यथा शक्ति दान समेत भोजन कराकर इसी विधान द्वारा संयम पूर्वक प्रतिमास यह अनुष्ठान करते हुए कार्तिक के अंत में समाप्त करे।३-११। प्रत्येक मास में पूजा, जप, एवं व्रतसिद्धि के निमित्त उपयोग करने के लिए उनके नाम भी बता रहा हूँ, सुनो ! पौष मास में इसी भाँति गिरीश और पार्वती जी के पूजन करके चतुर्थी के दिन पंचगव्य का प्राशन पारण रूप में करे, क्योंकि मार्गशीर्ष और पौष मास के पारण विधान में इसी का पारण बताया गया है और पंचगव्य से उत्तम पारण के लिए अन्य कोई वस्तु नहीं है। इसी प्रकार माघ मास में भव-भवानी, फाल्गुन में महादेव उमा, चैत्र में शंकर ललिता, वैशाख में स्थाणु लोलनेत्रा, ज्येष्ठ में वीरेश्वर एकवीरा, आषाढ़ में शक्ति सहित त्रिलोचन पशुनाथ, श्रावण में सुता समेत श्रीकण्ठ, भाद्रपद में भीम दुर्गा और कार्तिक में ईशान और शिवा जी की पूजा करनी चाहिए।१२-१८। सुव्रत ! उनके जप ध्यान एवं अर्चना में नामों का उपयोग करना चाहिए, क्योंकि इस प्रकार सविधान इसे सुसम्पन्न करने पर निश्चय व्रत की सिद्धि हो जाती है। राजन् ! प्रत्येक मास के पूजन में सद्यः प्रीतिदायक पुष्पों को भी बता रहा हूँ,

आदौ नीलोत्पलं योज्यं तदभावेऽपराण्यपि । पवित्राणि सुगन्धीनि योजयेद्भक्तितोऽर्चने ॥२१
करवीरं बिल्वपत्रं किंशुकं कुब्जमल्लिका । पाटलाब्जकदम्बं च तगरं द्रोणमालती ॥२२
एतान्युक्तक्रमेणैव मासेषु द्वादशस्वपि । भक्त्या योज्यानि राजेन्द्र शिवयोस्तुष्टिहेतवे ॥२३
वत्सरान्ते वितानं च धूपोत्क्षेपं सघण्टिकम् । ध्वजं दीपं वस्त्रयुगं शङ्कराय निवेदयेत् ॥२४
स्नापयित्वा च लिप्त्वा च सौवर्णं मूर्ध्नि पङ्कजम् । पूपयुग्मं च पुरतः शालिपिष्टमयं न्यसेत् ॥२५
नैवेद्यं शक्तितो दत्वा नत्वा च विधिवच्छिवम् । कुर्यान्नीराजनं शम्भोस्ततो गच्छेत्स्वकं गृहम् ॥२६
तत्र गत्वा त्रिकोणञ्च चतुरस्रं च कारयेत् । त्रिकोणे ब्राह्मणी भोज्या चतुरस्रे द्विजोत्तमाः ॥२७
व्रतिनो भोजयेत्पश्चाद्द्वादशैव द्विजोत्तमान् । मिथुनानि च तावन्ति शक्त्या भक्त्या च पाण्डव ॥२८
उमामहेश्वरं हैमं कारयित्वा सुशोभनम् । मौक्तिकानि चतुःषष्टिस्तावन्तोऽपि प्रवालकाः ॥
तावन्ति पुष्परागाणि ताम्रपत्रोपरि न्यसेत् ॥२९
वस्त्रेण वेष्टयित्वा च गन्धैर्धूपैस्तथार्चयेत् । एतत्सम्भारसंयुक्तमाचार्याय निवेदयेत् ॥३०
व्रतिनां ब्राह्मणानां च दम्पतीनां च भारत । दत्त्वा हिरण्यवासांसि क्षमयेत्प्रणिपत्य च ॥३१
चत्वारिंशत्तथाष्टौ च कुम्भांश्छत्रमुपानहौ । सहिरण्याक्षतान्सर्वान्दद्यात्पुष्पोदकान्वितान् ॥३२
दीनान्धदुःखितानां च तद्दिने दा निवारितम् । कल्पयेदन्नदानं चालोचयञ्छक्तिमात्मनः ॥३३
न्यूनाधिकं च कर्तव्यं स्ववित्तपरिमाणतः । सम्पूरेत्कल्पनया वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥३४

सुनो ! मार्गशीर्ष मास के पूजन में नील कमल होना चाहिए, उसके प्रभाव में अन्य पुष्प भी अर्पित किया जा सकता है, किन्तु उसे अत्यन्त सुगन्धित एवं पवित्रता पूर्ण होना चाहिए। उसी प्रकार करवीर (कनेर) बिल्वपत्र, किंशुक, कुब्जामल्लिका (मालती), रक्त-कमल, कदम्ब, तगर, द्रोणमालती पुष्पों को शिव शिवा के बारह मास के पूजन में अर्पित करना चाहिए। राजेन्द्र ! इस प्रकार भक्ति पूर्वक शिव शिवा को संतुष्ट करते हुए वर्ष की समाप्ति में शंकर को वितान, धूप, घटिका, ध्वज, दीप, चार वस्त्र अर्पित करे। उन्हें स्नान कराकर अंग में लेप और शिर में सुवर्ण के कमल से विभूषित करके चावल पूर्ण का पूआ, नैवेद्य सविधान समर्पित करते हुए नमस्कार पूर्वक उनका नीराजन करे। अनन्तर घर जाकर त्रिकोण और चतुष्कोण की रचना करके त्रिकोण पर ब्राह्मणी एवं चतुष्कोण में उत्तम ब्राह्मण बैठाकर उन्हें तथा अन्य बारह व्रती ब्राह्मणों को भोजन कराने के उपरांत व्रती को स्वयं भोजन करना चाहिए। पाण्डव ! भक्तिपूर्वक अपनी शक्ति के अनुसार दम्पती ब्राह्मण (जोड़े) को भोजन कराकर उमा महेश्वर की सुवर्ण प्रतिमा को, जो चौंसठ मोती, चौंसठ प्रवाल (मूँगे) और उतने ही पुष्पों से विभूषित की गई हो, वस्त्र से आवेष्ठित करके ताम्रपात्र में स्थापित करे और गन्ध, धूपादि से उनकी अर्चना करने के उपरांत वह प्रतिमा आचार्य को अर्पित करे। १९-३१। भारत ! व्रती दम्पत्ति ब्राह्मणों को सादर निमन्त्रित कर सुवर्ण और वस्त्र के समर्पण पूर्वक उनकी क्षमा प्रार्थना करे। उस समय अड़तालीस घट, छत्र, उपानह, (जूते) सुवर्ण, अक्षत और पुष्पोदक ब्राह्मण को अर्पित कर अपनी शक्ति के अनुसार दीन, अन्धे, एवं दुःखी जनों को भी पुत्र वस्त्र के दान से सन्तुष्ट करना चाहिए। ३२-३४। अपने धन के अनुसार न्यूनाधिक भी कर सकता है। किन्तु धन रहते हुए वित्त शठता कभी न करनी चाहिए। इस प्रकार इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर रूप

अवियोगकरं चैतद्रूपसौभाग्यवित्तदम् । आयुः पुत्रप्रदं स्वर्ग्यं शिवलोकप्रदायकम् ।।३५
सम्यक्पुराणपतितं व्रतचर्यमेतत्तत्त्वं चराचरगुरोर्हृदयङ्गमायाः ।
पूजां विधाय विधिवन्न वियोगमेति साध्वीस्वभर्तुसुतबन्धुजनैर्धनैश्च ।।३६
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि अवियोगतृतीयाव्रतं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ।२२

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

उमामहेश्वरव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

केन धर्मेण नारीणां व्रतेन नियमेन च । सौभाग्यं जायतेऽतीव पुत्राश्च बहवः शुभाः ।।१
धनं धान्यं सुवर्णं च वस्त्राणि विविधानि च ! अवियोगं च सततं लभते पुत्रपौत्रयोः ।।२

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु पार्थ प्रवक्ष्यामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् । यत्कृत्वा सुभगा नारी बह्वपत्या च जायते ।।३
धनं धान्यं हिरण्यं च दासीदासादिकं बहु । उत्पद्यते गृहे येन तद्व्रतं कथयामि ते ।।४
उमामहेश्वरं नाम अप्सरोभिः पुरा कृतम् । विद्याधरैः किन्नरैश्च ऋषिकन्याभिरेव च ।।५
रूपिण्या रम्भया चैव सीतयाऽहल्यया तथा । रोहिण्या दमयन्त्या च तारया चानसूयया ।।६
एताभिश्चरितं पार्थ व्रतं सर्वव्रतोत्तमम् । सौभाग्यारोग्यफलदं दारिद्र्यव्याधिनाशनम् ।।७

सौभाग्य, वित्त, आयु, पुत्र, स्वर्ग भोग और शिव लोक की प्राप्ति होती है । इस व्रत के अनुष्ठान में चर-अचर एवं समस्त ब्रह्माण्ड के गुरु शिव जी और उनकी हृदयाधिष्ठित पार्वती जी की पूजा सविधान सुसम्पन्न करने पर पति-भक्ता स्त्री को अपने पति, पुत्र, बान्धव और धन का वियोग कभी नहीं होता है ।३५-३६
श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में अवियोग तृतीया व्रत वर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त।२२।

अध्याय २३

उमामहेश्वर व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—किस धर्म अथवा व्रत नियम द्वारा स्त्रियों को अत्यन्त सौभाग्य, अनेक पुत्र, धन धान्य, सुवर्ण अनेक भाँति के वस्त्र, और पुत्र पौत्र का सतत अवियोग प्राप्त होता है ।१

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! मैं उस सर्वोत्तम व्रत के विधान बता रहा हूँ, जिसके द्वारा स्त्री को अनेक सन्तानों की प्राप्ति होती है और उसके घर में धन धान्य, सुवर्ण एवं उनके दास दासीगण सदैव वर्तमान रहते हैं । पार्थ ! उमामहेश्वर नामक व्रत सभी व्रतों से उत्तम बताया गया है । इसी व्रत को सर्व प्रथम अप्सराओं ने सुसम्पन्न किया था पश्चात् विद्याधर, किन्नर ऋषियों की कन्यायें, रूपिणी, रंभा, सीता, अहिल्या, रोहिणी दमयन्ती तथा तारा ने भी इसे सुसम्पन्न किया है जो सौभाग्य, आरोग्य के प्रदान पूर्वक

मर्त्यलोके स्त्रियो याश्च दुर्भगा रूपवर्जिताः । अपुत्रा निर्धनाश्चैव सर्वभोगविवर्जिताः ॥८
तासां हितार्थं पार्वत्या उमामहेश्वरं व्रतम् । अवतारितं पुरा पार्थ न जानन्त्यधमाः स्त्रियः ॥९
पूर्वं मार्गशिरे मासि नारी धर्मपरायणा । शुक्लपक्षे तृतीयायां सोपवासा जितेन्द्रिया ॥१०
स्नात्वा सम्पूज्य ललितां हरकायार्धवासिनीम् ! पुनः प्रभातसमये स्नानं चाकृत्रिमे जले ॥
कृत्वा देवीस्तर्पयित्वा इदं वाक्यमुदीरयेत् ॥११
नमो नमस्ते देवेश उमादेहार्द्धधारक । महादेवि नमस्तेऽस्तु हरकायार्द्धवासिनि ॥१२
हृदि कृत्वा शिवं देवीं जपेद्यावद्गृहं गता । पूजयेद्देवमीशानं पुष्पैः कालोद्भवैस्ततः ॥१३
वामपार्श्वे उमां देवीं दक्षिणे तु महेश्वरम् । धूपं वा गुग्गुलं वापि दहेत्पश्चात्सुभाविता ॥
नैवेद्यं तु यथाशक्ति घृतपक्वं निवेदयेत् ॥१४
कारयेद्वैश्वदेवं तु तिलाज्येन सुसंस्कृतम् । पञ्चगव्यं ततः प्राश्य आत्मकायविशोधनम् ॥१५
एवं द्वादशमासांस्तु पूजयित्वा महेश्वरम् । उद्यापनं ततः कुर्यात्प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥१६
शिवं रूप्यमयं कृत्वा उमां हैममयीं तथा । आरूढौ वृषभे रौप्ये सर्वालङ्कारभूषितौ ॥१७
चन्दनेन शिवं चर्च्य कुङ्कुमेन च पार्वतीम् । अर्चयेत्कुसुमैः पश्चात्सुगन्धैः सुमनोहरैः ॥१८
वेष्टयेच्छुक्लवस्त्रेण शिवं रक्तेन पार्वतीम् । पश्चाद्धूपं दहेन्नारी भक्तिभावेन भाविता ॥१९
भोजयेच्छिवभक्तांश्च ब्राह्मणान्वेदपारगान् । भक्तेभ्यो दक्षिणा देया भक्त्या शाठ्यविवर्जिता ॥२०

दरिद्र रूपी व्याधि को शमन करता है । इस मर्त्यलोक में जितनी स्त्रियाँ दुर्भगा, रूपहीन, अपुत्रा, निर्धन और स्त्री भोगों से वञ्चित हैं, उन्हीं के हित के लिए पार्वती जी ने इस उमामहेश्वर नामक व्रत को अवतरित किया है किन्तु अधम स्त्रियाँ इसे नहीं जानती हैं । पहले मार्गशीर्ष (अगहन) मास की शुक्ल तृतीया के दिन धर्मपरायण रहकर स्त्री संयमपूर्वक उपवास रहने का दृढ़ निश्चय (संकल्प) करके स्नान करने के उपरांत भगवान् ही की अर्धांगिनी ललिता देवी की अर्चना करे और पश्चात् प्रातः समय किसी जलाशय में स्नान करके देवी की पूजनोपरांत इस प्रकार प्रार्थना करके कि—उमादेहार्ध को धारण करने वाले देवेश ! आप को बार-बार नमस्कार है और हर की शरीर की अर्धांगिनी महादेवी को नमस्कार कर रहा हूँ । अनन्तर घर पहुँचने तक अपने हृदय में शिव और देवी का स्मरण करता रहे । वहाँ पहुँचने पर शिव देव की इस भाँति पूजा करे कि दाहिनी ओर शिव और उनके बायें भाग में उमा देवी स्थित रहें । गुग्गुल का धूप देते हुए नैवेद्य तथा घृत-पक्व भोजन उन्हें अर्पित करें ।२-१४। तिल और घी से भली भाँति सुसंस्कृतपदार्थ से बलि वैश्व करके पञ्चगव्य के प्राशन द्वारा अपनी देह का संशोधन करे । इस प्रकार बारह मास महेश्वर जी की पूजा करके अन्त में प्रसन्न चित्त होकर व्रतोद्यापन सुसम्पन्न करे । शिव की चाँदी की प्रतिमा उमा की सुवर्ण की प्रतिमा बनवा कर उन्हें उनके उस वृषभ वाहन पर स्थापित कराये, जो चाँदी द्वारा सौन्दर्य पूर्ण बनाया गया हो और उन्हें सभी आभूषणों से सुसज्जित कर चन्दन से शिव की और कुंकुम द्वारा उमा जी की अर्चना करे । पूजन के समय शुक्ल वस्त्र से शिव और रक्त वस्त्र से उमा देवी को विभूषित करके अत्यन्त श्रद्धा भक्ति समेत स्त्री को उन्हें धूप देना चाहिए ।१५-१९। अनन्तर शिवभक्त एवं वैदिक विद्वान ब्राह्मणों को भोजन कराकर यथाशक्ति दक्षिणा उन्हें प्रदान करके प्रदक्षिणा के उपरांत इस

ततः प्रदक्षिणीकृत्य इदमुच्चारयेद्बुधः । उमामहेश्वरौ देवौ सर्वलोकपितामहौ ॥
व्रतेनानेन सुप्रीतौ भवेतां मम सर्वदा ॥२१
एवमुक्त्वा जितक्रोधे ब्राह्मणे वेदपारगे । व्रतं निवेदयेद्भक्त्या वाचके वा गुणान्विते ॥२२
इदं कृत्वा व्रतं नारी महेशार्पितमानसा । प्रयाति परमं स्थानं यत्र देवो महेश्वरः ॥२३
शिवलोके वसेत्तावद्यावदिन्द्राश्चतुर्दश । अप्सरोभिः परिवृता किन्नरीभिस्तथैव च ॥२४
यदा मानुष्यमायाति जायते विमले कुले । रूपयौवनसम्पन्ना बहुपुत्रा पतिव्रता ॥२५
धनधान्यसमायुक्ते सुवर्णमणिमण्डिते । यावज्जीवं गृहे रम्ये तिष्ठत्यव्याहतेन्द्रिया ॥२६
वियोगं नैव सा पश्येद्भर्तृमित्रसुतादिकैः । मृता शिवपुरं याति शिवगौरीप्रसादतः ॥२७

हैमीमुमां रजतपिण्डमयं महेशं रौप्ये सुरूपवृषभे च समास्थितौ तौ ।
सम्पूज्य रक्तसितवस्त्रयुगावगूढौ नारी भवत्यविधवा सुतसौख्ययुक्ता ॥२८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरे पर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
उमामहेश्वरव्रतं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ।२३।

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

रम्भातृतीयाव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

रम्भातृतीयां वक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम् पुत्रसौभाग्यफलदां सर्वामयनिवारिणीम् ॥१

प्रकार क्षमा प्रार्थना करे कि उमा और महेश्वर देव, जो समस्त लोक के पितामह हैं, मेरे इस व्रतानुष्ठान से सदैव प्रसन्न रहें। इतना कहकर किसी विद्वान् ब्राह्मण अथवा गुणीवाचक के लिए भक्तिपूर्वक व्रतनिवेदन करे। इस प्रकार महेश के ध्यानपूर्वक इस व्रत के सुसम्पन्न करने पर वह स्त्री महेश लोक को प्रस्थान करती है। वहाँ चौदह इन्द्रों के समान काल तक अप्सराओं और किन्नरियों से सुसेवित रहकर कभी मनुष्य कुल में आने की इच्छा होने पर उत्तम कुल में उसका जन्म होता है। रूप यौवन से सम्पन्न होकर वह पतिव्रता अनेक पुत्रों की प्राप्ति पूर्वक धन-धान्य एवं सुवर्ण मण्डित गृह में आजीवन इन्द्रियों के अवाध सुख का अनुभव करती है। उसे भर्ता, मित्र, एवं पुत्रों के वियोग कभी नहीं होते शिव गौरी के प्रसाद से पुनः देहावसान होने पर शिव लोक को प्रस्थान करती है। उमा की सुवर्ण प्रतिमा, शिव की चाँदी की प्रतिमा और चाँदी की ही वृषभ की प्रतिमा बनाकर जो स्त्री रक्त और श्वेत वस्त्र से क्रमशः उन्हें आवृत कर सविधान उनके पूजन सुसम्पन्न करती है, वह स्त्री सदैव सधवा रहकर सुत और सौख्य से सदैव परिपूर्ण रहती है।२०-२८

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वाद में
उमामहेश्वर व्रत नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त।२३।

अध्याय २४

रम्भातृतीया व्रत-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं इस रम्भा तृतीया व्रत का वर्णन कर रहा हूँ, जो समस्त पापों के उन्मूलन करने

सर्वदुष्टहरां पुण्यां सर्वसौख्यप्रदां तथा । सपत्नीदर्पदलनां तथैश्वर्यकरीं शिवाम् ।।२
शङ्करेण पुरा प्रोक्ता पार्वत्याः प्रियकाम्यया । तामिमां शृणु भूपाल सर्वभूतहिताय वै ।।३
मार्गशीर्षे शुभे मासि तृतीयायां नराधिप । शुक्लायां प्रातरुत्थाय दन्तधावनपूर्वकम् ।।
उपवासस्य नियमं गृह्णीयाद्भक्तिभाविता ।।४
देवि सम्वत्सरं यावत्तृतीयायामुपोषिता । प्रतिमासं करिष्यामि पारणं चापरेऽहनि ।।
तदविघ्नेन मे यातु प्रसादात्तव पार्वति ।।५
एवं सङ्कल्प्य विधिवत्कौंतेय कृतनिश्चयः । भक्त्या नरो वा नारी वा स्नानं कुर्यादतन्द्रितः ।।६
नद्यां तडागे वाप्यां गृहे वा नियतात्मवान् । पूजयेत्पार्वतीं नाम रात्रौ प्राश्य कुशोदकम् ।।७
प्रभाते भोजयेद्विद्वाञ्छिवभक्तान्यशेषतः । हिरण्यं लवणं चैव तेषां दद्यात्तु दक्षिणाम् ।।
गौरीश्वरं यथाशक्ति भोजयेत्प्रयता सती ।।८
अनेन विधिना राजन् यः कुर्यान्मासि पौषके । गोमूत्रं प्राशयेद्रात्रौ प्रभाते भोजयेद्द्विजान् ।।९
हिरण्यं जीरकं चैव स्वशक्त्या दापयेत्ततः । कडुहुण्डं च कनकं तेभ्यो दत्त्वा विसर्जयेत् ।।१०
वाजपेयातिरात्राभ्यां फलं प्राप्नोत्यसंशयः । शक्रलोके वसेत्कल्पं ततः शिवपुरं व्रजेत् ।।११
माघे मासि तृतीयायां सुदेवीं नाम पूजयेत् । गोमयं प्राशयेद्रात्रौ ततश्चैकाकिनी स्वपेत् ।।१२

वाली एवं पुत्र और सौभाग्य के प्रदान पूर्वक सम्पूर्ण व्याधियों को विनष्ट करती हैं तथा समस्त दुष्टों के अपहरण करती हुई, समस्त सौख्य प्रदायक, सपत्नी के दर्प को दलने वाली एवं ऐश्वर्यकारिणी और कल्याणरूप है । भूपाल ! पार्वती जी की प्रिय कामनावश शंकर जी ने पहले ही समय में इसकी व्याख्या उनसे की थी, जिसमें समस्त प्राणियों का हित निहित है, मैं उसे बता रहा रहा हूँ, सुनो ! नराधिप मार्गशीर्ष (अगहन) मास की शुक्ल तृतीया के दिन प्रातःकाल उठकर श्रद्धा भक्ति समेत दंत धावन पूर्वक उपवास के लिए दृढ़ संकल्प करते हुए प्रार्थना करे कि देवि ! संवत्सर की समाप्ति पर्यन्त प्रत्येक मास की तृतीया में उपवास के नियम पालन पूर्वक दूसरे दिन पारण करूँगा, अतः गिरिजे ! मेरी प्रार्थना है कि यह मेरा व्रत आप के प्रसाद से निर्विघ्न समाप्त हो ।१-५। कौंतेय ! इस प्रकार सविधान संकल्प करके स्त्री अथवा पुरूष को भक्ति पूर्वक आलस्यरहित होकर किसी नदी, सरोवर, बावली अथवा गृह में संयमपूर्वक स्नान करके पार्वती जी की पूजा करे और रात्रि में कुशोदक के प्राशन करके पुनः प्रातः काल होने पर विशेषकर शिव भक्त ब्राह्मणों को भोजन कराये तथा सुवर्ण एवं लवण की दक्षिणा प्रदान करके यथाशक्ति प्रयत्न पूर्वक उस साध्वी स्त्री को गौरी और महेश जी को भोजन करना चाहिए ।६-८। राजन् ! इस विधान द्वारा जो स्त्री पौष मास की तृतीया के व्रत को सुसम्पन्न कर रात्रि में गोमूत्र प्राशन करके प्रातः काल ब्राह्मणों के भोजन, और यथाशक्ति सुवर्ण एवं जीरा के दान अर्पित करते हुए कडु हुण्ड समेत कनक समर्पित कर विसर्जन करती है उस वाजपेय और अतिरात्र यज्ञ के फल निश्चय प्राप्त होते हैं । देहावसान होने पर इन्द्र लोक में सभी सुखों के उपभोग करने के उपरांत वह शिवलोक प्राप्त करती है ।९-११। माघ मास की तृतीया के दिन सुदेवी नामक देवी की पूजा करके रात्रि में गोमय प्राशन पूर्वक एकाकिनी शयन करे

प्रातः कुसुम्भं कनकं दद्याच्छक्त्या द्विजातिषु। विष्णुलोके चिरं स्थित्वा प्राप्नोति शिवसाम्यताम्॥१३
गौरीति फाल्गुने नाम गोक्षीरं प्राशयेन्निशि। प्रभाते भोजयेद्विद्वाञ्छिवभक्तान्सुवासिनीः॥१४
कुडुहुंडं सकनकं तेभ्यो दत्त्वा विसर्जयेत्। वाजपेयातिरात्राभ्यां फलं प्राप्नोत्यसंशयः॥१५
चैत्रे मासि विशालाक्षीं पूजयेद्भक्तितत्परा। दधि प्राश्य स्वपेत्प्रातर्दद्याद्धेम सकुंकुमम्॥
सौभाग्यं महदाप्नोति विशालाक्ष्याः प्रसादतः ॥१६
वैशाखस्य तृतीयायां श्रीमुखीं नाम पूजयेत्। घृतं च प्राशयेद्रात्रौ ततश्चैकाकिनी स्वपेत्॥१७
शिवभक्तान्द्विजान्प्रातर्भोजयित्वा यथेप्सितम्। ताम्बूलं लवणं दत्त्वा प्रणिपत्य विसर्जयेत्॥
अनेन विधिना दत्त्वा पुत्रानाप्नोति शोभनान् ॥१८
आषाढ़े माधवीं नत्वा प्राश्नीयाच्च तिलोदकम्। प्रभाते भोजयेद्विप्रान्दक्षिणायां गुडः स्मृतः॥
सकाञ्चनः शुभाँल्लोकान्प्राप्नोति हि न संशयः ॥१९
श्रावणे तु श्रियं पूज्य पिबेदगोश्रृङ्गजं जलम्। शिवभक्तांश्च सम्पूज्य दद्याद्धेमफलैः सह॥
स च लोकेश्वरो भूत्वा सर्वकामानवाप्नुयात् ॥२०
भाद्रे चैव तृतीयायां हरतालीति पूजयेत्। माहिषं च पिबेद्दुग्धं सौभाग्यमतुलं लभेत्॥
इह लोके सुखं भुक्त्वा चान्ते शिवपुरं व्रजेत् ॥२१

पश्चात् प्रातः काल होने पर ब्राह्मणों को भोजनोपरांत पुष्प समेत सुवर्ण के दान अर्पित करने वाली स्त्री विष्णु लोक में चिरकाल तक निवास करती है और अनन्तर शिव लोक में पहुँच कर शिव का सारूप्य मोक्ष प्राप्त करती है। फाल्गुन मास में गौरी नामक देवी की पूजा करके रात्रि में गो दुग्ध का प्राशन और प्रातः काल होने पर शिवभक्त एवं विद्वान् ब्राह्मणों को भोजनोपरांत कडु हुंड समेत सुवर्ण के दान पूर्वक विसर्जन करने वाली स्त्री को वाजपेय और अतिरात्र यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं इसमें संशय नहीं। चैत्र मास में विशालाक्षी नामक देवी की पूजा करके रात्रि में दही के प्राशन पूर्वक शयन करके पश्चात् प्रातः काल सुवर्ण और कुंकुम के दान जो स्त्री करती है उसे विशालाक्षी के प्रसाद से महान् सौभाग्य की प्राप्ति होती है।१२-१६। उसी प्रकार वैशाख मास की तृतीया के दिन श्रीमुखी नामक देवी की पूजा करके रात्रि में घृत के प्राशन पूर्वक एकाकिनी शयन करे। प्रातः काल होने पर शिव भक्त ब्राह्मणों को यथेच्छ भोजन कराकर ताम्बूल समेत लवण दान करके विनय पूर्वक विसर्जन करने पर उस साध्वी को अनेक सौन्दर्यपूर्ण पुत्रों की प्राप्ति होती है। आषाढ़ मास में तृतीया के दिन माधवी देवी की पूजा करके तिलोदक के प्राशन पूर्वक रात्रि में शयन करने के उपरांत प्रातः काल के समय ब्राह्मणों को भोजनोपरांत गुड़ समेत सुवर्ण के दान अपित करने पर उसे उत्तम लोक की प्राप्ति होती है। श्रावण मास में श्री जी की पूजा करके रात्रि में श्रृङ्गोदक के प्राशन पूर्वक शयन कर पुनः प्रातः काल शिवभक्त ब्राह्मणों को भोजन कराकर फल समेत सुवर्ण की दक्षिणा अर्पित करने पर समस्त लोकों के ऐश्वर्य समेत प्रभुत्व की प्राप्ति पूर्वक निखिल कामनाओं की सिद्धि होती है। भाद्रपद मास की तृतीया के दिन हरिताली देवी की पूजा करके रात्रि में महिषी (भैस) के दुग्ध प्राशन करने से उसे अतुल सौभाग्य की प्राप्ति होती है और इस लोक में समस्त सुखों के अनुभव पूर्वक अन्त में देहावसान के समय शिव लोक की प्राप्ति होती है।१७-२१। आश्विन मास की तृतीया के दिन

आश्विने तु तृतीयायां गिरीपुत्रीति पूजयेत् । सम्प्राश्य तण्डुलजलं प्रातर्विप्रान्श्च पूजयेत् ।।२२
दक्षिणा चापि निर्दिष्टा कनकं च सचन्दनम् । सर्वयज्ञफलं प्राप्य गौरीलोके महीयते ।।२३
पद्मोद्भवा कार्तिके च पञ्चगव्यं पिबेत्ततः । रात्रौ प्रजागरं कुर्यात्प्रभाते भोजयेद्द्विजान् ।।२४
सपत्नीकाञ्छुभाचारान्माल्यवस्त्रविभूषणैः । पूजयेच्छिवभक्तांश्च कुमारीश्चैव भोजयेत् ।।२५
उमामहेश्वरं हैमं समाप्ते कारयेन्नृप । यथादिभवसारेण वितानं पञ्चवर्णकम् ।।२६
अशनं च शुभं दद्याच्छ्वेतच्छत्रं कमण्डलुम् । पादुकोपानहौ दिव्यैर्वस्त्रयुग्मैश्च पाण्डव ।।२७
पीतयज्ञोपवीतैश्च दीपनेत्रैः समुज्ज्वलैः । शङ्खशुक्तिसमोपेतैर्दर्पणैश्च सुशोभितैः ।।२८
उमामहेश्वरं स्थाप्य पूजयित्वा यथाविधि । नानाविधैः सुगन्धैश्च पत्रैः पुष्पैः फलैस्तथा ।।२९
घृतपक्वैश्च नैवेद्यैर्दीपमालाभिरेव च । शर्करानालिकेरैश्च दाडिमैर्बीजपूरकैः ।।३०
जीरकैर्लवणैश्चैव कुसुम्भैः कुंकुमैस्तथा । सताम्रभाजनैर्दिव्यैर्योदकै रससंयुतैः ।।
पूजयेद्देवदेवेशं क्षमयेत्तदनन्तरम् ।।३१
शङ्खवादित्रनिर्घोषैर्वेदध्वनिसमन्वितैः । एवं कृते फलं यत्स्यात्तन्न शक्यं मयोदितुम् ।।३२
पूर्वोक्तफलभागीस्यात्सर्वदेवैश्च पूज्यते । कल्पकोटिशतं यावत्सर्वकामानवाप्नुयात् ।।३३
तदन्ते शिवसायुज्यं प्राप्नोतीह न संशयः । पुरैतद्रंभया चीर्णं तेन रम्भाव्रतं स्मृतम् ।।३४
योऽहं सा च स्मृता गौरी या गौरी स महेश्वरः । इति मत्वा महाराज शरणं व्रज पार्वतीम् ।।३५

गिरी पुत्री की पूजा करके तण्डुल जल के प्राशन पूर्वक रात्रि व्यतीत करने के उपरांत प्रातः काल ब्राह्मणों को भोजनोपरांत चन्दन समेत सुवर्ण की दक्षिणा प्रदान करने पर उसे समस्त यज्ञों के फल प्राप्ति पूर्वक गौरी लोक में अत्यन्त प्रतिष्ठा प्राप्त होतीहै । उसी भाँति कार्तिक मास की तृतीया के दिन पद्मोद्भवा देवी की पूजा करके पञ्चगव्य के प्राशन पूर्वक रात्रि में जागरण करने के उपरांत प्रातः काल ब्राह्मणों को पत्नी समेत भोजन कराकर माला और वस्त्रों एवं आभूषणों से विभूषित करे अनन्तर कुमारियों को भोजन कराये । नृप ! इस प्रकार व्रत के समाप्त होने पर अपनी शक्ति के अनुसार उमा और महेश्वर की सुवर्ण की प्रतिमा बनवाकर पांच रंग के वितान, शुभ भोजन, श्वेतचन्दन, कमण्डलु, पादुका, उपानह, दिव्ययुग्म वस्त्र, पीत यज्ञोपवीत, दीप, शंख, शुक्ति आँख सौन्दर्य पूर्ण दर्पणों से सज्जित कर उन्हें स्थापन और सविधान पूजन कर अनेक भाँति के सुगन्ध पत्र, पुष्प, फल, घृतपक्व नैवेद्य, दीप माला, शक्कर, नारियल, अनार, बीजौरा नीबू, जीरा, लवण, कुसुम पुष्प, कुंकुम, ताम्र पात्र एवं दिव्यमोदक समेत देवाधिदेव की अर्चना के उपरांत उनकी क्षमा प्रार्थना करे ।२२-३१। उस समय शंख तथा अन्य वादित्र की ध्वनि और वेद ध्वनि होनी चाहिए । पाण्डव ! इस प्रकार उनकी अर्चना करने पर जिन फलों की प्राप्ति होती है मैं उसे बताने में असमर्थ हूँ, पूर्वोक्त फलों की प्राप्ति पूर्वक सम्पूर्ण देवों से पूजित होकर सौ कोटि कल्प तक सभी कामानाओं की सफलता पूर्वक सुखानुभव करने के उपरांत अन्त समय में शिवसायुज्य मोक्ष की प्राप्ति होती है इसमें संशय नहीं । महाराज ! सर्वप्रथम रम्भा ने ही इस व्रत को सुसम्पन्न किया था, इसीलिए इसका रम्भा व्रत नामकरण हुआ है । मैं गौरी हूँ और गौरी ही महेश्वर है, ऐसा जानकर पार्वती जी की शरण में शीघ्र पहुँच जाना चाहिए ।३२-३५। हिमालय की पुत्री पार्वती की प्रिय कामनाओं के

एषा हिमाद्रिदुहितुर्दयिता तृतीया रम्भाविधानमलभद्भुवि तत्कृतेति ।
सत्प्राशितैरुदितनामयुतामुपोष्य प्राप्नोति वांछितफलान्य बलाबहूनि ।।३६
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
रम्भातृतीयाव्रतं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।२४

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

सौभाग्याष्टकवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

**तथैवान्यत्प्रवक्ष्यामि सर्वकामफलप्रदम् । सौभाग्यशयनं नाम यत्पुराणविदो विदुः ।।१
पुरा दग्धेषु लोकेषु भूर्भुवः स्वर्महादिषु । सौभाग्यं सर्वलोकानामेकस्थमभवत्तदा ।।२
तच्च वैकुण्ठमासाद्य विष्णोर्वक्षस्थले स्थितम् । ततः कालेन महता पुनः सर्गविधौ नृप ।।३
अहङ्कारावृते लोके प्रधानपुरुषान्विते : स्पर्द्धायां च प्रवृत्तायां कमलासनकृष्णयोः ।।४
पिङ्गाकारा समुद्भूता ज्वाला वक्षस्थली तदा । तयाभितप्तस्य हरेर्वक्षसस्तद्विनिःसृतम् ।।५
यद्वक्षस्थलमाश्रित्य विष्णोः सौभाग्यमास्थितम् । रसरूपतया तावत्प्राप्नोति वसुधातलम् ।।६
उत्क्षिप्तमन्तरिक्षस्थं ब्रह्मपुत्रेण धीमता । दक्षेण पीतमात्रं तु रूपलावण्यकारणम् ।।७**

कारण उत्पन्न इस रम्भा व्रत को सविधान सुसम्पन्न करके क्रमशः प्रत्येक मास के प्राशन और देवी की अर्चना उपवास रहकर समाप्त करने पर इस भूतल में स्त्री को समस्त यथेच्छ फलों की प्राप्ति होती है।३६

श्री भविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
रम्भा तृतीया व्रत वर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ।२४।

अध्याय २५

सौभाग्याष्टक-वर्णन

कृष्ण जी बोले—मैं उसी भाँति का एक अन्य व्रत का विधान बता रहा हूँ, जो सम्पूर्ण कामप्रदायक है, तथा पौराणिक विद्वानों ने जिसका नाम सौभाग्य शयन बताया है ।१। पहले समय में भूर्भुवः, स्वर और महरादि लोकों के प्रलाप विलीन हो जाने पर समस्त लोकों का सौभाग्य एकरूपी हो जाता है, जो वैकुण्ठाधिपति भगवान् विष्णु के वक्षःस्थल में परम सुरक्षित रहता है । नृप ! पुनः महान कालों के व्यतीत होने के उपरांत सृष्टि विधान के अवसर पर जब कि समस्त लोक प्रधान पुरुष अहंकार द्वारा सर्वथा आवृत सा रहता है और ब्रह्मा तथा कृष्ण का आपस में भयानक स्पर्द्धा उत्पन्न रहती है, विष्णु के वक्षःस्थल से पिङ्गवर्ण की एक भीषण ज्वाला उत्पन्न हुई । उससे संतप्त होने पर विष्णु के वक्षस्थल से वह सौभाग्य निकल कर रस और रूप के आकार में पृथ्वी तल में पहुँच रहा था कि मध्य मार्ग में दक्ष ने उसके रूप लावण्य पर मुग्ध होकर उसे और ऊपर अन्तरिक्ष में फेंक कर पान कर लिया, जिससे दक्ष को

ब्रलं[१] तेजो महज्जातं दक्षस्य परमेष्ठिनः । शेषं यदपतद्भूमावष्टधा तदजायत ॥८
इक्षवस्तवराजं च निष्पावाजाजिधान्यकम् । विकारवच्च गोक्षीरं कुसुम्भं कुङ्कुमं तथा ॥
लवणं चाष्टमं तत्र सौभाग्याष्टकमुच्यते ॥९
पीतं यद्ब्रह्मपुत्रेण योगज्ञानविदा तथा । दुहितास्याभवत्तस्माद्या सतीत्यभिधीयते ॥
लोकानतीत्य लालित्याल्ललिता तेन चोच्यते ॥१०
त्रैलोक्यसुन्दरीमेनामुपयेमे पिनाकधृक् । त्रिविष्वसौभाग्यमयी भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥११
आराध्य तामुनां भक्त्या स्त्री राजन्किन्न विन्दति ॥१२

युधिष्ठिर उवाच

कथमाराधनं तस्या जगद्धात्र्या जनार्दन । यद्विधानं च तत्सर्वं जगन्नाथ वदस्व मे ॥१३

श्रीकृष्ण उवाच

वसन्तमासमासाद्य तृतीयायां युधिष्ठिर । शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे तिलैः स्नानं समाचरेत् ॥१४
तस्मिन्नहनि सा देवी किल विश्वात्मना सती । पाणिग्रहणकैर्मन्त्रैरुद्वाह्या वरवर्णिनी ॥१५
तथा सदैव देवेशं तृतीयायामथार्चयेत् । फलैर्नानाविधैर्धूपदीपनैवेद्यसंयुतैः ॥१६
पञ्चगव्येनानुमासं[२] तथा गन्धोदकेन च । स्नपयित्वार्चयेद्गौरीमिन्दुशेखरसंयुताम् ॥१७
पाटलां शम्भुसहितां पादयोस्तु प्रपूजयेत् । त्रियुगां शिवसंयुक्तां गुल्फयोरुभयोरपि ॥१८

अत्यन्त तेज की प्राप्ति हुई तथा शेष भाग आठ भागों में विभक्त होकर पृथ्वी पर प्राप्त हुआ, जो इक्षु, स्वराज, निष्पाप, जाजिधान्य, दही, कुसुम्भप्राप, कुंकुम और लवण के नाम से लोक में प्रख्यात है और इसे ही सौभाग्यष्टक भी कहा जाता है। योग ज्ञान के प्रखरविद्वान् दक्ष ने इसी का शयन किया था, इसीलिए उनके यहाँ पुत्री रूप में उत्पन्न होकर सती जी ने विश्व विख्याति प्राप्ति की। समस्त लोकों से अत्यन्त ललित होने के नाते उनकी ललिता नाम से ख्याति हुई और उस त्रैलोक्य सुन्दर का पाणिग्रहण भगवान् शंकर ने सुसम्पन्न किया,जो तीनों लोकों में अत्यन्त सौभाग्यमयी एवं मुक्ति और भुक्ति प्रदान करती हैं अतः राजन्! भक्ति पूर्वक जो स्त्री उनकी आराधना करती है उसे किस फल की प्राप्ति नहीं होती है। अर्थात् वह समस्त फलों के उपभोग करती है।२-१२

युधिष्ठिर ने कहा—जनार्दन! जगन्नाथ! उस जगद्धात्री की आराधना किस भाँति की जाती है, उसके समस्त विधान की व्याख्या बताने की कृपा कीजिये।१३

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर! वसंत (चैत्र) मास की शुक्ल तृतीया के दिन पूर्वाह्ण काल में तिल से स्नान करके उत्तमाङ्गी सती देवी का पाणिग्रहण विश्वात्मा शंकर जी के साथ उसी दिन सुसम्पन्न करके। देवेश शिव जी के साथ अनेक भाँति के फल, धूप, दीप, पंचगव्य और गंधोदक द्वारा सती देवी की अर्चना करे। इन्दुशेखर समेत गौरी की पूजा करते हुए दोनों चरणों में शम्भु सहित पाटला (रक्तवस्त्र) देवी, दोनों गुल्फों (एड़ियों) में शिव संयुक्त त्रियुगा देवी की पूजा करनी चाहिए। उसी भाँति दोनों

---

१. तुल्यतेज। २. घृतगव्येन।

भद्रेश्वरेण सहितां विजयां जानुनोर्युगे । ईशानीं हरिकेशं च कटचां सम्पूजयेद्बुधः ।।१९
कोटनीं शूलिनं कुक्षौ मङ्गलां शर्वसंयुताम् । उदरे पूजयेद्राजन्नुमां रुद्रं कुचद्वये ।।२०
अनन्तां त्रिपुरघ्नं च पूजयेत्करसम्पुटे । कण्ठे भवं भवानीं च मुखे गौरीं हरं तथा ।।२१
सर्वात्मना च सहितां ललितां मस्तकोपरि । ओङ्कारपूर्वकैरेतैर्नमस्कारान्तयोजितैः ।।
पूजयेद्भक्तिसहितो गन्धमाल्यानुलेपनैः ।।२२
एवमभ्यर्च्य विधिवत्सौभाग्याष्टकमग्रतः । स्थापयेत्स्विन्ननिष्पावान्कुसुम्भं क्षीरजीरकम् ।।२३
तवराजेक्षुलवणं कुङ्कुमं च तथाष्टमम् । दत्तं सौभाग्यकं यस्मात्सौभाग्याष्टकमुच्यते ।।२४
एवं निवेद्य तत्सर्वं शिवयोः प्रीयतामिति । चैत्रे शृङ्गोदकं प्राश्य[1] स्वप्याद्भूमावरिन्दम ।।२५
ततः प्रातः समुत्थाय कृतप्राण जयः शुचिः । सम्पूज्य द्विजदाम्पत्यं माल्यवस्त्रविभूषणैः ।।
सौभाग्याष्टकसंयुक्तं सौवर्णं चरणद्वयम् ।।२६
प्रीयतामत्र[2] ललिता ब्राह्मणाय निवेदयेत् । एवं संवत्सरं यावत्तृतीयायां सदा नृप ।।२७
प्राशने नामनन्त्रे च विशेषोऽयं निबोध मे । गोशृङ्गोदकमाद्ये स्याद्वैशाखे गोमयं पुनः ।।२८
ज्येष्ठे मन्दारपुष्पं च बिल्वपत्रं शुचौ स्मृतम् । श्रावणे दधि सम्प्राश्यं नभस्ये च कुशोदकम् ।।२९
क्षीरमाश्वयुजे तद्वत्कार्तिके पृषदाज्यकम् । मृगोत्तमाङ्गे गोमूत्रं पौषे सम्प्राशयेद् घृतम् ।।३०

जानुओं में भद्रेश्वर समेत विजय देवी, कटि प्रदेश में हरि केश समेत ईशानी देवी, कुक्षि में शूली समेत कोटिनी देवी, उदर में शर्व समेत सर्वमंगला देवी, दोनों कुचों में रुद्रसहित उमा देवी, करसंपुट में त्रिपुरघ्नद समेत अनन्ता देवी, कंठ में भव समेत भवानी, मुख में हर और गौरी और मस्तक के ऊपर सर्वात्मा समेत ललिता देवी की सविधान तथा ओंकार पूर्वक नमस्कारांत पद के उच्चारण करते हुए (ओं इन्द्र शेरवासहितायै गौर्य्यै नमः) इस रीति से पूजन करे। भक्ति श्रद्धा पूर्वक गन्ध, माला एवं अनुलेपन द्वारा उनकी अर्चना करके उनके आगे सौभाग्याष्टक स्थापित कर, जो निष्पाप, कुसुंभ, क्षीर, जीरा, तवराज, इक्षु, लवण और कुंकुम नाम से विख्यात है। ये सौभाग्य रूप हैं, इनके अर्पण करने से सौभाग्य की प्राप्ति होती है, अतः ये सौभाग्यष्टक कहे जाते हैं।१४-२४। अरिन्दम ! उस चैत्र मास की तृतीया के दिन सविधान उनकी अर्चना समेत अर्पण करके शिवयो प्रीयताम् (शिव समेत शिवा) प्रसन्न हों। इस प्रकार क्षमा प्रार्थी होने के उपरांत श्रृंगोंदक के प्राशन पूर्वक रात्रि में शयन करके पुनः प्रातःकाल उठकर शौचादि नित्य नियम धर्म से निवृत्त होने पर माला, वस्त्र, और आभूषण द्वारा द्विज दम्पत्ति की पूजा करके उनके चरण पर सुवर्ण सहित सौभाग्यष्टक अर्पित करते हुए ललिता देवी प्रीयतमाम् (ललिता देवी प्रसन्न हों) कहकर उसे ब्राह्मण को समर्पित करके। नृप ! इस प्रकार सम्पूर्ण वर्ष भर प्रत्येक मास की तृतीया के दिन उनकी पूजा करें। उसमें प्राशन और नाम मंत्र की विशेषता को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! चैत्र में गोश्रृंगोदक वैशाख में गोमय, ज्येष्ठ में मंदारपुष्प, आषाढ में बिल्वपत्र, श्रावण में दही, भाद्रपद में कुशोदक, आश्विन में दुग्ध, कार्तिक में वृषदाज्य, मार्गशीर्ष में गोमूत्र, पौष में घी।२५-३०। माघ में काले तिल, और फाल्गुन

---

१. प्राप्य। २. प्रीयतां ललिता देवी।

माघे कृष्णतिलान्स्तद्वत्पञ्चगव्यं च फाल्गुने । ललिता विजया भद्रा भवानी कुमुदाश्रिता ।।३१
वासुदेवी तथा गौरी मङ्गला कमलासती । उमा च दानकाले तु प्रीयतामिति कीर्तयेत् ।।३२
मल्लिकाशोककमलकदम्बोत्पलमालति । कुड्मलं करवीरं च बाणमम्लानकुंकुमम् ।।
सिन्दुवारं च मासेषु सर्वेषु क्रमशः स्मृतम् ।।३३
जपा कुसुम्भकुसुमं मालती शतपत्रिका । यथालाभं प्रदेयानि करवीरं च सर्वदा ।।३४
एवं संवत्सरं यावदुपोष्य विधिवन्नरः । स्त्री नक्ते तु कुमारी वा शिवामभ्यर्च्य शक्तितः ।।
व्रतान्ते शयनं दद्यात्सर्वोपस्करसंयुतम् ।।३५
उमामहेश्वरं हैमं वृषभं च गवा सह । स्थापयित्वा तु शयने ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।।३६
अन्यान्यपि यथाशक्ति मिथुनान्यम्बरादिभिः । धान्यालङ्करणैर्दानैरन्यैश्च धनसञ्चयैः ।।
वित्तशाठ्येन रहितः पूजयेद्गतविस्मयः ।।३७
एवं करोति यः सम्यक्सौभाग्यशयनव्रतम् । सर्वान्कामानवाप्नोति पदं चानन्त्यमश्नुते ।।३८
सौभाग्यारोग्यरूपायुर्वस्त्रालङ्कारभूषणैः । न वियुक्तो भवेद्राजन्वर्षायुतशतत्रयम् ।।३९
यस्तु द्वादश वर्षाणि सौभाग्यशयनं व्रतम् । करोति सप्त चाष्टौ वा श्रीकण्ठभुवनेश्वरैः ।।
पूज्यमानो [१]भवेत्सम्यग्यावत्कल्पायुतत्रयम् ।।४०
नारी वा कुरुते या तु कुमारी वा नरेश्वर । सापि तत्फलमाप्नोति देव्यनुग्रहलालिता ।।४१
शृणुयादपि यश्चैतत्प्रदद्यादथ वा मतिम् । सोऽपि विद्याधरो भूत्वा स्वर्गलोके चिरं वसेत् ।।४२

गौरी, मंगला, कमला, सती, तथा उमा नामक देवियों के नामोच्चारण करते हुए दान के समय देवी प्रीयताम् कहे । उसी प्रकार प्रतिमास में क्रमशः मलिका (मालती), अशोक, कमल, कदम्ब, उत्पन्न, मालती, कुण्डल, करवीर, वाण, कुंकुम एवं सिंदुवार पुष्प से सुसज्जित करते हुए करवीर (कनेर) सर्वदा अर्पित करना चाहिए । इस भाँति पूर्ण वर्ष तक उपवास रहकर उनकी सविधान अर्चना करके स्त्री अथवा कुमारी शिवा देवी को व्रत के अंत समय समस्त सामग्री समेत शयन कराये ।३१-३५। उमा, महेश्वर और वृषभ (वाहन) की सुवर्ण आदि की प्रतिमा बनवाकर सम्पूर्ण वस्तु सुसज्जित शय्या पर स्थापित करके ब्राह्मण को समर्पित करना चाहिए । यथा शक्ति अन्य युगल वस्त्र, धान्य, अलंकार, एवं सुर्वणादि के प्रदान द्वारा उन्हें प्रसन्न करते हुए अर्चना करनी चाहिए। पूजा के प्रत्येक समय में वित्त शाठ्य दोष पर विशेष ध्यान रखना आवश्यक है।३६-३७। इस प्रकार जो भली भाँति इस सौभाग्य शयन व्रत को सविधान सुसम्पन्न करता है, उसे समस्त कामनाओं की सफलता पूर्वक अनन्त पद की प्राप्ति होती है। राजन्! सौभाग्य, आरोग्य, रूपलावण्य, आयु, वस्त्र, अलंकार, आदि सुख के साधन उसे तीन सौ वर्ष तक निरन्तर प्राप्त होता रहता है । जिसने बारह वर्ष या सात आठ वर्ष निरन्तर इस सौभाग्य शयन व्रत को सुसम्पन्न किया है अथवा जो करते हैं, वह तीस सहस्र कल्प तक विष्णु तथा महेश्वर द्वारा सम्मानित होता है। नरेश्वर! स्त्री अथवा कुमारी को इस व्रत के सुसम्पन्न करने पर देवी की अनुकम्पा द्वारा उपरोक्त सभी फल की प्राप्ति होती है ।३८-४१। जो इसका श्रवण करते या इसके लिए अनुमति प्रदान करते हैं, वे भी विद्याधर होकर चिरकाल तक

---

१. वसेत्स्वर्गे ।

इदमिह मदनेन पूर्वमिष्टं चरितनिदं शशबिन्दुना व्रतं वै।
सुरपतिधनदेशवायुसोमैश्चरितानिदं करुणेन[1] बन्दिना च॥४३
यानीह दत्तानि पुरा नरेन्द्रैर्दानानि धर्मार्थयशस्कराणि।
निर्माल्यवन्ति प्रतिमानि तानि स नाम साधुः पुनराददानः॥४४
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि सौभाग्यष्टकतृतीयायाव्रतं
नाम पञ्चविंशोऽध्यायः।२५

अथ षड्विंशोऽध्यायः
रसकल्याणिनीव्रतवर्णनम्
युधिष्ठिर उवाच

सौभाग्यारोग्यफलदं विपक्षक्षयकारकम्। भुक्तिमुक्तिप्रदं किञ्चिद्व्रतं ब्रूहि जनार्दन॥१

श्रीकृष्ण उवाच

यदुमायै पुरा दैव उवाचासुरसूदनः। कथासु सम्प्रवृत्तासु ललिताराधनं प्रति॥२
तदिदानीं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्। नराणामथ नारीणामाराधनमनुत्तमम्॥३
शृणुष्वावहितो भूत्वा सर्वपापप्रणाशनम्। नभस्ये वाथ वैशाखे पुनर्मार्गशिरेऽथ वा॥४

स्वर्ग निवास करते हैं। इस व्रत को सर्वप्रथम मदन, इन्द्र, कुबेर, ईश, वायु, सोम, और वरुण ने सुसम्पन्न निया है। जिन नरेन्द्रों ने इस व्रतानुष्ठान को सुसम्पन्न करते हुए धर्म अर्थ एवं यश के प्राप्यर्थ उत्तम दान समेत प्रतिमा को पूजित कर ब्राह्मण के लिए अर्पित किया है, उन्ही के नाम प्रशंसनीय होने के नाते सभी लोगों के द्वारा ग्रहण हो रहे हैं।४२-४४

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में सौभाग्याष्टक तृतीया व्रत वर्णन
नामक पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त।२५।

अध्याय २६
रसकल्याणीव्रत-वर्णन

युधिष्ठिर बोले—जनार्दन! कोई इस भाँति के व्रत बताने की कृपा करें, जिसके अनुष्ठान द्वारा सौभाग्य, आरोग्य, शत्रुशमन एवं मुक्ति-भुक्ति की प्राप्ति हो।१

श्रीकृष्ण बोले—पहले समय में ललिता देवी की आराधना की चर्चा करते हुए असुर सूदन शिव ने उमादेवी से जो कुछ कहा था, उसे मैं बता रहा हूँ, उसके सुसम्पन्न करने पर भुक्ति मुक्ति की निश्चित प्राप्ति होती है, इसलिए स्त्री पुरुषों के लिए वह परमोत्तम आराधना है और समस्त पापों का विनाश होता है, अतः सावधान होकर सुनो! श्रावण, वैशाख अथवा मार्गशीर्ष मास की शुक्ल तृतीया के दिन

---

१. वरुणेन।

शुक्लपक्षतृतीयायां स्नातः सद्गौरसर्षपैः । गोरोचनसुगोमूत्रमुस्तागोशकृतं तथा ॥
दधिचन्दनसम्मिश्रं ललाटे तिलकं न्यसेत् ॥५
सौभाग्यारोग्यकृद्यत्स्यात्सदा च ललिताप्रियम् । प्रतिपक्षं तृतीयायां बद्ध्वा वा पीतवाससी ॥६
धारयेदथ या रक्तपीतानि कुसुमानि च । विधवाप्यनुरक्तानि कुमारी शुक्लवाससी ॥७
देव्यर्चां पञ्चगव्येन ततः क्षीरेण केवलम् । स्नपयेन्मधुना तद्वत्पुष्पगन्धोदकेन च ॥८
पूजयेच्छुक्लपुष्पैश्च फलैर्नानाविधैरपि । धान्यकाजाजिलवणगुडक्षीरघृतादिभिः ॥९
शुक्लाक्षतैस्तिलैरर्च्यां ललितां यः सदार्चयेत् । आपादाद्यर्चनं कुर्याद्गौर्याः सम्यक्यसमासतः ॥१०
वरदायै नमः पादौ तथा गुल्फौ श्रियै नमः । अशोकायै नमो जंघे भवान्यै जानुनी तथा ॥११
ऊरू माङ्गल्यकारिण्यै कामदेव्यै तथा कटिम् । पद्मोद्भवायै जठरमुरः कामप्रिये नमः ॥१२
करौ सौभाग्यवासिन्यै बाहू शशिमुखश्रियै । मुखं कन्दर्पवासिन्यै पार्वत्यै तु स्मितं तथा ॥१३
गौर्य्यै नमस्तथा नासां सुनेत्रायै च लोचने । तुष्ट्यै ललाटफलकं कात्यायन्यै शिरस्तथा ॥१४
नमो गौर्यै नमः सृष्ट्यै नमः कान्त्यै नमः श्रियै । रम्भायै ललितायै च वासुदेव्यै नमोनमः ॥१५
एवं सम्पूज्य विधिवदग्रतः पद्ममालिखेत् । पत्रैर्द्वादशभिर्युक्तं[1] कुंकुमेन सकर्णिकम् ॥१६
पूर्वेण विन्यसेद्गौरीमपर्णां च ततः परम् । भवानीं दक्षिणे तद्वद्रुद्राणीं च ततः परम् ॥१७
विन्यसेत्पश्चिमे सौम्यां ततो मदनवासिनीम् । वायव्यां पाटलावासामुत्तरेण ततो ह्युमाम् ॥१८
लक्ष्मीं स्वाहां स्वधां तुष्टिं मङ्गलां कुमुदां सतीम् । रुद्राणीं मध्यतःस्थाप्य ललितां कर्णिकोपरि ॥

स्नान करने के अनन्तर गौर वर्ण की राई, गोरोचन, गोमूत्र, मुस्ता, गोशकृत, दधि और चन्दन मिश्रित का भाल में तिलक लगायें।२-५। क्योंकि उससे सौभाग्य और आरोग्य की प्राप्ति होती है तथा वह ललिता देवी को अत्यन्त प्रिय भी है। प्रत्येक पक्ष की तृतीया के दिन पीत वस्त्र से विभूपित करके रक्त, पीत वस्तुओं से सुसज्जित करे। विधवा स्त्री को रक्त वस्त्रों द्वारा और कुमारियों को शुक्ल वस्त्रों द्वारा उन्हें विभूपित करके सर्वप्रथम पञ्चगव्य, क्षीर, मधु, और पुष्प गंधोदक द्वारा क्रमशः स्नान कराकर शुक्ल पुष्प, अनेक भाँति के फल, धान्यक, जजि, लवण, गुड़, क्षीर, घी, आदि समेत शुक्ल अक्षत और तिल द्वारा ललिता देवी की सदैव विधिवत् अर्चना करे। उस समय गौरी देवी की प्रत्येक अंग के पूजन में पृथक्-पृथक नामोच्चारण करना चाहिए। वरदायैनमः से चरण, श्रियै नमः से गुल्फ, अशोकायै नमः से गंध, भवान्यै नमः से जानु, मांगल्यकारिण्यै से ऊरू, कामदैव्यै से कटि, पद्मोद्भवायै से जठर, कामप्रियायै नमः से हृदय, सौभाग्यवासिन्यै नमः से कर, शशिमुखाश्रियै नमः से बाहू, कन्दर्पनासिन्यै से मुख, पार्वत्यैनमः से मन्दहास, गौर्यैनमः से नासिका, सुनेत्रायै नमः से नेत्र, तुष्यैनमः से माल, कात्यायन्यै नमः से शिर की पूजा करके।६-१४। गौरी, सृष्टि, कांति, कहकर क्षमा प्रार्थना करने के अनन्तर उनके आगे सविधान कमल निर्माण करे। उसमें बारहपत्तों से उसे युक्त कर कुंकुम द्वारा उसकी कर्णिका के निर्माण पूर्वक पूर्व की ओर गौरी, अपर्णा और भवानी, दक्षिण की ओर रुद्राणी, पश्चिम की ओर सौम्या, मदनवासिनी, वाव्यय में रक्त वस्त्रा तथा उत्तर की ओर उमा, लक्ष्मी, स्वाहा, स्वधा, तुष्टि, मंगला,

---

१. व्यक्तम्।

कुसुमैरक्षतैः शुभ्रैर्नमस्कारेण विन्यसेत् ॥१९
गीतमङ्गलघोषं च कारयित्वा सुवासिनीः । पूजयेद्रक्तवासोभी रक्तमाल्यानुलेपनैः ॥२०
सिन्दुरं स्नानचूर्णं च तासां शिरसि पातयेत् । सिन्दूरं कुंकुमं स्नानमिष्टं सत्याः सदा यतः ॥२१
नभस्ये पूजयेद्गौरीमुत्पलैरसितैस्तथा । बन्धुजीवैराश्वयुजे कार्तिके शतपत्रकैः ॥२२
कुन्दपुष्पैर्मार्गशिरे पौषे वै कुंकुमेन च । माघे तु पूजयेद्देवीं सिन्दुवारेण भक्तितः ॥२३
जात्या तु फाल्गुने पूज्या पार्वतीं पाण्डुनन्दन । चैत्रे च मल्लिकाशोकैर्वैशाखे गंन्ध पाटलैः ॥२४
ज्येष्ठे कमलमन्दारैराषाढे चम्पकाम्बुजैः । कदम्बैरथ मालत्या श्रावणे पूजयेदुमाम् ॥२५
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् । बिल्वपत्रार्कपुष्पं च गवां शृङ्गोदकं तथा ॥
पञ्चगव्यं तथा बिल्वं प्राशयेत्क्रमशः सदा ॥२६
एतद्भाद्रपदाद्यं तु प्राशनं समुदाहृतम् । प्रतिपक्षं द्वितीयायां मया प्रोक्तं वरानने ॥२७
ब्राह्मणं ब्राह्मणीं चैव शिवं गौरीं प्रकल्प्य च । भोजयित्वार्चयेद्भक्त्या वस्त्रमाल्यानुलेपनैः ॥
पुंसे पीताम्बरे दत्त्वा श्रियै कौसुम्भवाससी ॥२८
निष्पावाजाजिलवणमिक्षुदण्डं गुणान्वितम् । स्त्रियै दद्यात्फलं पुंसे सुवर्णोत्पलसंयुतम् ॥२९
यथा न देवदेवेशस्त्वां परित्यज्य गच्छति । तथा मां सम्परित्यज्य पतिर्नान्यत्र गच्छतु ॥३०
कुमुदा विमलानन्ता भवानी वसुधा शिवा । ललिता कमला गौरी सती रम्भाथ पार्वती ॥३१
नभस्यादिषु मासेषु प्रीयतामित्युदीरयेत् । व्रतान्ते शयनं दद्यात्सुवर्णं कमलान्वितम् ॥३२

कुमुदा, सती और रुद्राणी को मध्य भाग में स्थापित कर ललिता को कर्णिका के ऊपर अक्षत कुसुमों द्वारा नमस्कार पूर्वक स्थापित करे। गीत, मंगल घोष समेत रक्त वस्त्र, रक्तमाला और अनुलेपन द्वारा उस सुरवासिनी देवी की अर्चना करके सिन्दूर तथा कुंकुम चूर्ण द्वारा उन देवियों के शिर विभूषित करे। क्योंकि सिन्दूर और कुंकुम के स्नान सती देवी कोसदैव प्रिय है। श्रावण मास में गौरी की पूजा नील कमल द्वारा और आश्विन में बन्धूक (उपहरिया), कार्तिक में कमल, मार्गशीर्ष में कुन्द पुष्प, पौष में कुंकुम, माघ में सिन्दुवार, फाल्गुन में जाती (चमेली) द्वारा पार्वती की पूजा चैत्र में मल्लिका अशोक वैशाख में गंध पाटल, ज्येष्ठ में कमल, मन्दार, आषाढ में कमल, श्रावण में कदम्ब, मालती, द्वारा उमा की पूजा करते हुए प्रत्येक मास में क्रमशः गोमूत्र, गोमय, क्षीर, दधि, घी, कुशोदक, बिल्वपत्र, अर्कपुष्प गोशृंगोदक, पञ्चगव्य, तथा बिल्व का भाद्रपदमास से प्रारम्भ कर प्राशन करना चाहिए। प्रत्येक पक्ष की द्वितीया के दिन ब्राह्मण ब्राह्मणी को शिव गौरी की कल्पना करके भक्ति पूर्वक वस्त्र, माला, और अनुलेपन द्वारा उन दम्पत्ति की अर्चना करते हुए पुरुष को पीताम्बर और स्त्री की कुसुमी वस्त्र से विभूषित करने का विशेष ध्यान रखे। पश्चात् स्त्री को निष्पाप (धान्य राशि), सफेद जीरा, लवण, ऊख के दान करके फल समेत सुवर्ण पुरुष को अर्पित करे और इस प्रकार क्षमा प्रार्थी हो कि जिस प्रकार देवाधिदेव (महेश) तुम्हें वियोग कष्ट कभी नहीं देते हैं, उसी भाँति मेरा पति मुझे छोड़कर कहीं न जाये।१५-३०। अनन्तर कुमुदा, विमला, अनन्ता, भवानी, वसुधा, शिवा, ललिता, कमला, गौरी, सती, रम्भा, एवं पार्वती जी की श्रावण आदि प्रत्येक मास में क्रमशः पूजनोपरांत प्रीयताम् (प्रसन्न हो) कहकर व्रत की समाप्ति के समय सुवर्ण कमल से सुसज्जित कर शय्या दान उस दम्पत्ति को अर्पित करे। चौबीस, बारह

मिथुनानि चतुर्विंशत्तदर्द्धं सकृदर्च्चयेत् । अष्टावष्टावथ पुनश्चातुर्मास्ये समर्चयेत् ।।३३
तथोपदेष्टारमपि पूजयेद्यत्नतो गुरुम् । न पूज्येत गुरुर्यत्र सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ।।३४
उक्तानन्ततृतीयैषा सदानन्तफलप्रदा । सर्वपापहरा देवी सौभाग्यारोग्यवर्धिनी ।।३५
न चैनां वित्तशाठ्येन कदाचिदपि लङ्घयेत् । नरो वा यदि वा नारी वित्तशाठ्यात्पतत्यधः ।।३६
गर्भिणी सूतिकानक्तं कुमारी चाथ रोगयुक् । श्रद्धा तदान्येन क्रियमाणं तु कारयेत् ।।३७
इमामनन्तफलदां तृतीयां यः समाचरेत् । कल्पकोटिशतं साग्रं शिवलोके स पूज्यते ।।३८
वित्तहीनोऽपि कुर्वीत वर्षत्रयमुपोषणैः । पुष्पपत्रविधानेन[1] सोऽपि तत्फलमाप्नुयात् ।।३९
नारी वा कुरुते या तु कुमारी विधवा तथा । साऽपि तत्फलमाप्नोति गौर्यनुग्रहभाविता ।।४०
इति पठति शृणोति वा य इत्थं गिरितनयाव्रतमिन्दु लोकसंस्थः ।
मतिमपि च ददाति सोऽपि देवैरमरवधूजनकिंनरैश्च पूज्यः ।।४१

।।(इति अनन्ततृतीयाव्रतम्)।।

रसकल्याणीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अन्यामपि प्रवक्ष्यामि तृतीयां पापनाशिनीम् । रसकल्याणिनीं नाम पुरा कल्पविदो विदुः ।।४२
माघमासे तु सम्प्राप्य तृतीयां शुक्लपाक्षिकीम् । प्रातर्गव्येन पयसा तिलैः स्नानं समाचरेत् ।।४३

अथवा एक ही बार या आठ आठ बार चौमासे में अर्चना करते हुए उपदेव का भी पूजन करे और गुरु की अर्चना में विशेष प्रयत्नशील रहे क्योंकि जिस व्रत के आरम्भ में गुरु की पूजा नहीं होती है, उसकी क्रिया निष्फल हो जाती है । सदा आनन्द फलप्रद होने के नाते वह अनन्त तृतीया के नाम से प्रख्यात है । उस दिन देवी की आराधना अवश्य करनी चाहिए, क्योंकि समस्त पापों के अपहरण पूर्वक देवी उसके सौभाग्य और आरोग्य को सदैव वृद्धि करती रहती है । वित्त की शठतावश कभी इस तृतीया का उल्लंघन न करे क्योंकि वित्तशाठ्य दोष के द्वारा स्त्री पुरुष सभी का अधः पतन निश्चित हो जाता है । इस प्रकार गर्भिणी, प्रसूता, कुमारी, रोगिणी को जिस समय विशेष श्रद्धा भक्ति उत्पन्न हो उसी समय स्वयं उस व्रत को सुसम्पन्न करे, इसलिए कि इस अनन्त फल दायिनी तृतीया के दिन जो व्रतानुष्ठान सुसम्पन्न करता है, उसे सौ कोटि कल्प तक शिवलोक में निवास प्राप्त होता है । निर्धन को भी पत्र पुष्प द्वारा तीन वर्ष तक उपवास पूर्वक इस व्रत के सुसम्पन्न करने से उपरोक्त सभी फल प्राप्त होते हैं । स्त्री, कुमारी, विधवा को भी इसे सुसम्पन्न करने पर गौरी की अनुकम्पा द्वारा उसी फल की प्राप्ति होती है । इस प्रकार इस अनन्त तृतीया व्रत के अध्ययन, श्रवण, करने से जो हिमालय पुत्री (ललिता) के नाम से प्रख्यात है, वह तथा उपदेष्टा भी देवों तथा उनकी स्त्रियों और परिजनों द्वारा सदैव सुसेवित होता है ।३१-४१

रसकल्याणी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—अन्य एक और पापनाशिनी तृतीया को बता रहा हूँ, कल्प के विद्वानों ने जिसका रसकल्याणिनी नाम बताया गया है । माघमास की शुक्ल तृतीया के दिन प्रातः काल गो दुग्ध और तिल

---

१. पुष्पमंत्रविधानेन ।

स्नापयेन्मधुना देवीं तथैवेक्षुरसेन च । पुनः पूजा प्रकर्तव्या जात्या वा कुंकुमेन वा ।।४४
दक्षिणाङ्गानि सम्पूज्य ततो वामानि पूजयेत् । ललितायै नमः पादौ गुल्फं तद्वदथार्चयेत् ।।४५
जम्बे जानू तथा सत्यै तथोरश्च श्रियै नमः । मदनालसायै तु कटिं मदनायै तथोदरम् ।।४६
स्तनौ मदनवासिन्यै कुमुदायै च कन्धरम् । भुजान्भुजाग्रं माधव्यै कमलायै ह्युपस्थकम् ।।४७
भ्रूललाटे च रुद्राण्यै शङ्करायै तथालकान् । मुकुटं विश्ववासिन्यै पुनः कान्त्यै तथालकान् ।।४८
नेत्रं चक्रावधारिण्यै पुष्टयै च वदनं पुनः । उत्कण्ठिन्यै नमः कण्ठमनन्तायै तु कन्धराम् ।।४९
रम्भायै वामबाहुं च विशोकायै नमः परम् । हृदयं मन्मथादित्यै पाटलायै नमोनमः ।।५०
एवं सम्पूज्य विधिवद्द्विजदाम्पत्यमर्चयेत् । भोजयित्वान्नदानेन मधुरेण विमत्सरः ।।५१
सलड्डुकं वारिकुम्भं शुक्लाम्बरयुगं ततम् । दत्त्वा सुवर्णकलशं गन्धमाल्यैरथार्चयेत् ।।५२
प्रीयतामत्र कुमुदा गृह्णीयाल्लवणव्रतम् । अनेन विधिना देवीं मासिमासि समर्चयेत् ।।५३
लवणं वर्जयेन्माघे फाल्गुने च गुडं पुनः । तवराजं तथा चैत्रे वर्ज्यं च मधु माधवे ।।५४
पारकं ज्येष्ठमासे तु आषाढे जीरकं तथा । श्रावणे वर्जयेत्क्षीरं दधि भाद्रपदे तथा ।।५५
घृतमश्वयुजे तद्वद्वर्जयेद्या च मज्जिका । धान्यकं मार्गशीर्षे तु पौषे वर्ज्या तु शर्करा ।।५६
व्रतान्ते करका पूर्णा एतेषां मासिमासि च । दद्याद्विकालवेलायां भक्षपात्रेण संयुतान् ।।५७
तण्डुलाञ्छ्वेतवर्णांश्च संयावमधुपूरिकाः । घारिका घृतपूरांश्च मण्डकान्क्षीरशाककम् ।।५८
दध्यन्नं षड्विधं चैव भिण्डयः शाकवर्तिकाः । माघादौ क्रमशो दद्यादेतानि करकोपरि ।।५९
कुमुदा माधवी गौरी रम्भा भद्रा जया शिवा । उमा शची सती तद्वन्मङ्गला रतिलालसा ।।६०

द्वारा स्नान करके मधु और ऊख रस द्वारा देवी को स्नान कराने के उपरांत चमेली, और कुंकुम द्वारा उनकी अर्चना करे। उसमें प्रथम दक्षिणांग की पूजा करके पश्चात् वामाङ्ग के पूजन करना चाहिए। ललितायै नमः से चरण, गुल्फ, जंघा और जानु, श्रियै नमः से उरु, मदनालसायै नमः से कटि, मदनायै नमः से उदर, मदनवासिन्यैनमः से कुच, कुमुदायै नमः से कंधा, माधव्यै नमः से भुजा, कमलायै नमः से कर रुद्राण्यै नमः से भौंहे और भाल, शंकरायै नमः से शिर के दक्षिण केश, विश्ववासिन्यै नमःसे मुकुट, कान्त्यैनमः से शिर के वामकेश, चक्रावधारिण्यै नमः से नेत्र, पुष्ट्यै नमः से मुख, उत्कण्ठिन्यै नमः से कण्ठ, अनंतायै नमः से कंधा, रम्भायैनमः से वामभुजा, विशोकायै नमः से दक्षिण भुजा, मन्मथादित्यै से हृदय की अर्चना करके पाटलायै नमोनमः से प्रार्थना करे। इस प्रकार देवी की विधिवत् पूजा करके द्विजदम्पत्ति की अर्चना करे, पश्चात् अन्न दान द्वारा निर्मत्सर होकर मधुर पदार्थ का भोजन कराये। तदुपरांत लड्डू समेत जलपूर्ण घट, चार शुक्ल वस्त्र, सुवर्ण कलश, गंध और माला आदि से सविधान अर्चना करके 'कुमुदा देवी प्रीयताम् प्रसन्न हों, और इस लवण व्रत को ग्रहण करने पर। इस प्रकार क्षमा प्रार्थी होकर पुनः प्रत्येक मास में देवी की पूजा सुसम्पन्न करता रहे। उस समय माघ में लवण, फाल्गुन में गुड़ चैत्र में तावराज, वैशाख में मधु (शहद), ज्येष्ठ में पारक, आषाढ़ में जीरा, श्रावण में क्षीर, भाद्रपद में दधि।४२-५५। आश्विन में घृत, कार्तिक में मज्जिका, मार्गशीर्ष में धनियाँ और पौष में शक्कर के त्याग पूर्वक, व्रतानुष्ठान के समाप्त होने पर प्रत्येक मास में करवापूर्ण समेत श्वेत तण्डुल पूर्ण भोजन पात्र दान देने चाहिए। उस समय करवा के ऊपर लप्सी, शहद, पूरी, घारिका, घृतपूरी, मठ्ठा, क्षीर शाक, दधि में पक्क अन्न जो छे भाँति का बनाया जाता है, तथा भिण्डी के शाक भी रखकर माघ मास आदि सभी मासों में दान करते हुए 'कुमुदा' माधवी, गौरी,

क्रमान्माघादि सर्वत्र प्रीयतामिति कीर्तयेत् । चर्वन्तं पञ्चगव्यं च प्राशनं समुदाहृतम् ।।६१
उपवासी भवेन्नित्यमशक्तो दक्षिणे करे । पुनर्माघे तु सम्प्राप्य शर्करां करकोपरि ।।६२
कृत्वा तु काञ्चनीं गोधां पञ्चरत्नसमन्विताम् । उमामङ्गुष्ठमात्रां च सुधासूत्रे कमण्डलुम् ।।६३
तद्वद्गोमिथुनं सर्वं सुवर्णास्यं सितं परम् । सवस्त्रभाजनं दत्त्वा भवानी प्रीयतामिति ।।६४
अनेन विधिना यश्च रसकल्याणिनीव्रतम् कुर्यात्स सर्वपापेभ्यस्तत्क्षणादेव मुच्यते ।।६५
भवार्बुदसहस्रं तु न दुःखी जायते क्वचित् अग्निष्टोमसहस्रेण यत्फलं तदवाप्नुयात् ।।६६
नारी वा कुरुते या तु कुमारी वा युधिष्ठिर । विधवा या वराकी वा सापि तत्फलभागिनी ।।
सौभाग्यारोग्यसम्पन्ना गौरी लोके महीयते ।।६७

इति पठति य इत्थं यः शृणोति प्रसङ्गात्सकलकलुषमुक्तः पार्वतीलोकमेति ।
मतिमपि च नराणां यो ददाति प्रियार्थं विपुलमतिजनानां नायकः स्यादमोघः ।।६८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसंवादे
रसकल्याणिनीव्रतवर्णनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ।२६

रम्भा, भद्रा, जया, शिवा, उमा, शची, सती, मंगला, और रतिलालसा देवी प्रीयताम् (प्रसन्न हों) क्रमशः प्रत्येक मासों में विनयविनम्र होकर कहता रहे । चरु एवं पंचगव्य के प्राशन और उपवास उसे सदैव करना चाहिए, किन्तु असमर्थ होने पर दाहिने हांथ में परिमाण मात्र का भक्षण करे । इस प्रकार व्रत विधान को सुसम्पन्न करते हुए,पुनः माघ मास में उस दिन शक्कर पर करवा रख कर उसके ऊपर पंच रत्न समेत सुवर्ण की उमा की अंगुष्ठ समान प्रतिमा रखकर सुधा सूत्र, कमण्डलु और गो मिथुन जिसके मुख सुवर्ण रचित हों एवं काय श्वेतवर्ण, वस्त्र और भोजनादि पात्र अर्पित करते हुए 'भवानी प्रीयताम् कहकर क्षमाप्रार्थी होना चाहिए । इस विधान द्वारा जो इस कल्याणिनी व्रत को सुसम्पन्न करता है, उसे तत्काल समस्त पापों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है । तथा सहस्रअर्वुद वर्षपर्यन्त उसे संसार का कष्ट नहीं होता है, अपितु सहस्र अग्निष्टोम यज्ञ के फलों की प्राप्ति होती है । युधिष्ठिर ! इसी प्रकार स्त्री, कुमारी, विधवा, अथवा बारकी (दीनहीना) के भी उसके सुसम्पन्न करने पर वे ही फल प्राप्त होते हैं—सौभाग्य और आरोग्य सम्पन्न होकर इस लोक में समस्त सुखानुभव करने के उपरांत देहावसान के समय गौरी लोक में पहुँच कर सुसम्मानित होता है । इस भाँति इस कथा प्रसङ्ग को अध्ययन अथवा श्रवण करने वाला समस्त पापों से मुक्त होकर पार्वती लोक की प्राप्ति करता है और इस व्रतानुष्ठान के लिए अपनी सम्मति प्रदान करने वाली सभी अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धि वाले जनसमूहों का सफल नायक होता है ।५६-६८

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर सम्वाद में
रस कल्याणिनी व्रत-वर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ।२६।

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

आर्द्रानन्दकरीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

तथा चान्यां प्रवक्ष्यामि तृतीयां पापनाशिनीम् । लोकेषु नाम्ना विख्यातामार्द्रानन्दकरीमिमाम् ॥१
यदा शुक्लतृतीयायामाषाढर्क्षं भवेत्क्वचित् । ब्रह्मर्क्षं चाथ मार्गं वा व्रतं ग्राह्यं तदा शुभम् ॥२
दर्भगन्धोदकैः स्नानं तदा सम्यक्समाचरेत् । शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः ॥३
भवानीमर्चयेद्भक्त्या शुक्लपुष्पैः[1] सुगन्धिभिः । महादेवेन सहितामुपविष्टां वरासने ॥४
वासुदेव्यै नमः पादौ शङ्कराय नमो हरेः । जङ्घे शोकविनाशिन्यायानन्दाय नमः प्रभो ॥५
रम्भायै पूजयेदूरू शिवाय च पिनाकिनः । आदित्यै च कटिं पूज्या शूलिनः शूलपाणये ॥६
माधव्यै च तथा नाभिमथ शम्भोर्भवाय वै । स्तनावानन्दकारिण्यै शङ्करायेन्दुधारिणे ॥७
उत्कण्ठिन्यै नमः कण्ठं नीलकण्ठाय वै हरेः । करावुत्पलधारिण्यै रुद्राय जगतीपतेः ॥८
बाहुं च परिरम्भिण्यै नृत्यशीलाय वै हरेः ॥९
देव्या मुखं विलासिन्यै वृषेशाय पुनर्विभोः । स्मितं सस्मरशीलायै विश्ववक्त्राय[2] वै विभोः ॥१०
नेत्रं मदनवासिन्यै विश्वधाम्ने त्रिशूलिने । भ्रुवौ रतिप्रियायै च ताण्डवेशाय वै विभोः ॥११
देव्यै ललाटमिन्द्राण्यै हव्यवाहाय वै विभोः । स्वाहायै मुकुटं देव्या विभोः पञ्चशराय वै ॥१२

अध्याय २७

आर्द्रानन्दकरीव्रत-वर्णन

कृष्ण जी बोले—अन्य एक पाप प्रणाशिनी तृतीया बता रहा हूँ, जिसे लोक में आर्द्रानन्दकरी कहा जाता है। जिस शुक्ल तृतीया के दिन आषाढ़ नक्षत्र (उत्तराषाढ़ा, पूर्वाषाढ़ा), ब्रह्म नक्षत्र अथवा मृगशिरा की प्राप्ति हो, उसी समय इस व्रत का अनुष्ठान प्रारम्भ करना चाहिए। उस समय व्रती को गंध समेत कुशोदक स्नान करके शुक्लाम्बर धारण और शुक्ल गन्ध के लेपन करने के उपरांत भक्ति पूर्वक सुगंध, रक्त, पुष्प, द्वारा महादेव समेत उत्तमासनासीन भवानी की अर्चना करनी चाहिए।१-४। वासुदेव्यै नमः शंकराय नमः से शिव और भवानी के चरण शोकविनाशिन्यै आनन्दायनमः से जंघा, रम्भायै शिवाय नमः से ऊरु, आदित्यैकशूलपाणये नमः से कटि, माधव्यै भवाय नमः से नाभि, आनन्दकारिण्यै शंकराय इन्दुधारिणे नमः से स्तन, उत्कंठिन्यै नील कंठाय नमः से कण्ठ, उत्पलधारिण्यै रुद्राय नमः से कर, परिरम्भिण्यै नृत्यशीलाय नमः से बाहु, विलासिन्यै वृषेशाय नमः से मुख, सस्मरशीलायै विश्ववक्त्राय नमः मन्दस्मित, मदनवासिन्यै, विश्वधाम्नेत्रिशूलिने नमः से नेत्र, रतिप्रियायै ताण्डवेशाय नमः से भ्रू, इन्द्राण्यै देव्यै हव्य वाहाय नमः से भाल और स्वाहायै पञ्चशरायनमः से मुकुट, की पूजा करके क्षमा

---

१. रक्तपुष्पैः । २. विश्वचक्राय ।

विश्वकायै विश्वमुख्यै विश्वपादकरौ शिवौ । प्रसन्नवदनौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥१३
एवं सम्पूज्य विधिवदग्रतः शिवयोः पुनः । पद्मोत्पलानि च तथा नानावर्णानि कारयेत् ॥१४
शङ्खचक्रे सकटके स्वस्तिकं वर्द्धमानकम् । गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥१५
शृङ्गोदकं बिल्वपत्रं वारि कुम्भान्वितं तथा । उशीरनीरं तद्वच्च यवचूर्णोदकं ततः ॥१६
तिलोदकं च सम्प्राप्य स्वप्यान्मार्गशिरादिषु । प्रतिपक्षद्वितीयायां प्राशनं समुदाहृतम् ॥१७
सर्वत्र शुक्लपुष्पाणि प्रशस्तानि शिवार्चने । दानकालेषु सर्वेषु मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥१८
गौरी मे प्रीयतां नित्यमघनाशाय मङ्गला । सौभाग्यायास्तु ललिता भवानी[1] सर्वसिद्धये ॥१९
संवत्सरान्ते लवणं गुडकुम्भं समर्जितम् । चन्दनं नेत्रपट्टं च सितवस्त्रयुगान्वितम् ॥
उमामहेश्वरं हैमं तद्वदिक्षुफलैर्युतम् ॥२०
प्रस्तरावरणं शय्यां सविश्रामां निवेदयेत् । सपत्नीकाय विप्राय गौरी मे प्रीयतामिति ॥२१
आर्द्रानन्दकरी नाम तृतीयैषा सनातनी । यामुपोष्य नरो याति शम्भोस्तत्परमं पदम् ॥२२
इह लोके सदानन्दं प्राप्नोति धनसञ्चयात् । आयुरारोग्यसम्पन्नो न किञ्चिच्छोकमाप्नुयात् ॥२३
नारी वा कुरुते या तु कुमारी विधवा तथा । सापि तत्फलमाप्नोति देव्यनुग्रहलालिता ॥२४
प्रतिपक्षमुपोष्यैवं मन्त्रार्चनविधानतः । रुद्राणीलोकमाप्नोति पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥२५

प्रार्थना करे कि विश्वरूप शरीर धारण करने वाले विश्व में सर्वप्रधान, तथा विश्व के चरण एवं कर शिव शिवारूप और प्रसन्न मुख वाले आप पार्वती परमेश्वर की मैं वंदना कर रहा हूँ।५-१३। इस प्रकार सविधान पूजन समाप्त करके। उसके सम्मुख अनेक भाँति के रक्त कमल और नीलकमल की रचनापूर्वक शंख-चक्र, वलय, कङ्कण, स्वस्तिक (टीका) एवं वर्द्धमानक से उन्हें सुसज्जित करे। गोमूत्र, गोमय, दुग्ध, दधि, घी, कुशोदक, श्रृंगोदक, बिल्वपत्र, जलपूर्ण घट, उशीर नीर (खस) जय चूर्ण समेत जल, तिलोदक आदि मार्गशीर्ष आदि प्रत्येक मासों के क्रमशः प्रतिपक्ष की द्वितीया के प्राशन बताये गये हैं। शिवार्चन में सर्वथा शुक्ल पुष्प ही प्रशस्त बताया गया है। और सभी दान के समय इसी मंत्र का उच्चारण करना चाहिए—गौरी मेरे ऊपर सदैव प्रसन्न रहे, उसी भाँति पापनाश के लिए मंगलादेवी, सौभाग्य के लिए ललिता, और सर्व सिद्ध भवानी प्रसन्न हों। अनन्तर वर्ष की समाप्ति में लवण, गुड़, घट, चन्दन, सूक्ष्मवस्त्र और चार श्वेत वस्त्र समेत उस शुभा और महेश्वर की सुवर्ण प्रतिमा को इक्षुफल के साथ साधन सम्पन्न उत्तम शय्या पर स्थापित कर पूजन विश्राम कराने के उपरांत उसे सपत्नीक ब्राह्मण को अर्पित करते हुए 'गौरी मुझ पर प्रसन्न हों' कहे।१४-२१। इस सनातनी तृतीया को आनन्दकरी बताया गया है, जिसमें उपवास रहकर मनुष्य शम्भु के परम पद की प्राप्ति करता है, और धन संचय समेत समस्त आनन्द, आयु एवं आरोग्य से सुसम्पन्न होकर उसके सुखमय जीवन में किसी प्रकार का शोक नहीं होता है।२२-२३। नारी, विधवा, एवं कुमारी को भी इसके सुसम्पन्न करने पर देवी के अनुग्रह वश सभी फल प्राप्त होते हैं। इसी भाँति प्रत्येक पक्ष में उपवास रहकर सविधान एवं मंत्रोच्चारण पूर्वक इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर उसे उस रुद्राणी लोक की प्राप्ति होती है, जहाँ पहुँचने पर पुनः जलग्रहण नहीं करना पड़ता है। जो मनुष्य इस कथा को सुनते या सुनाते हैं वे

---

१. शर्वाणा ।

य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वापि मानवः । शक्रलोके सगन्धर्वैः पूज्यतेऽब्दशतत्रयम्[1] ॥२६
आनन्ददां सकलदुःखहरां तृतीयां या स्त्री करोति विधिवत्सधवाधवा च ।
सा स्वे गृहे सुखशतान्यनुभूय भूयो गौरीपुरं सदयिता मुदिता प्रयाति ॥२७
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
आर्द्रानन्दकरीतृतीयाव्रतं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।२७

अथाष्टविंशोऽध्यायः

चैत्रभाद्रपदमाघवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

चैत्रे भाद्रपदे माघे रूपसौभाग्यपुत्रदम् । तृतीयाव्रतमेतन्मे कृष्ण कस्मान्न कीर्तितम् ॥१
किमहं भक्तिरहितस्त्रयीमार्गातिगो नरः । सुप्रसिद्धं जगत्येतद्गोपितं केन हेतुना ॥२
भवान्सर्वार्थानुकूलः सर्वज्ञ इति मे मतिः

श्रीकृष्ण उवाच

व्रतं चैतज्जगत्ख्यातं नाख्यातं तेन ते मया ॥३
यद्यस्ति श्रवणे बुद्धिः श्रूयतां पाण्डुनन्दन । कोऽन्यः श्रोता जगत्यस्मिन्भवता सदृशो भुवि ॥४

इन्द्र लोक में तीन सौ वर्ष तक गन्धर्वों एवं अप्सराओं आदि द्वारा पूजित होते रहते हैं । आनन्द प्रदायिनी और समस्त दुःख के अपहरण करने वाली इस तृतीया व्रत को जो भी विधिवत् सुसम्पन्न करती है, उसे अपने घर में समस्त सुखों की अनुभूति होने के उपरांत देहावसान के समय प्रसन्नतापूर्ण गौरी लोक की प्राप्ति होती है ।२४-२७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर सम्वाद में
आर्द्रानन्दकरी तृतीया व्रत वर्णन नामक सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ।२७।

अध्याय २८

चैत्र, भाद्रपद तथा माघ का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—कृष्ण ! चैत्र, भाद्रपद और माघमास की इन तीनों तृतीया का, जो सौभाग्य और पुत्रप्रद बतायी गयी है, आप ने वर्णन क्यों नहीं किया । क्या मुझे भक्तिहीन एवं वेदमार्ग के प्रतिकूल चलने वाला पुरुष आपने समझ लिया है । यदि ऐसा नहीं है, तो आप मेरी सम्मति से सर्वथानुकूल एवं सर्वज्ञ है, अतः यह बताने की कृपा कीजिये कि—यह तृतीया विश्व में इतनी प्रख्यात कैसे हुई ।१-२

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डुनन्दन ! यह व्रत अत्यन्त विश्वविख्यात है, इसीलिए इसकी व्याख्या मैंने तो नहीं की । यदि आप की इच्छा यही सुनने की है, तो मैं वह कह रहा हूँ, सुनो ! क्योंकि इस संसार मे

---

१. अब्दशतद्वयम् ।

जया च विजया चैव उमायाः परिचारिके । आगत्य मुनिकन्याभिः पृष्टेऽभीष्टफलेच्छया ।।५
भवत्यौ सर्वदा देव्याश्चित्तवृत्तिविदौ किल । केन व्रतोपचारेण कस्मिन्नहनि पार्वती ।।
पूजिता तुष्टिमभ्येति मन्त्रैः कैश्च वरानने ।।६
तासां तद्वचनं श्रुत्वा जया प्रोवाच सादरम् । श्रूयतामभिधास्यामि सर्वकामफलप्रदम् ।।
व्रतमुत्सवसंयुक्तं नरनारी मनोरमम् ।।७
चैत्रे सिततृतीयायां दन्तधावनपूर्वकम् । उपवासस्य नियमं गृह्णीयाद्भक्तिभावितम् ।।८
सकुंकुमं सताम्बूलं सिन्दूरं रक्तवाससी । विधवा[१] सोपवासाप्यवैधव्यकरणं परम् ।।९
विधवा यान्ति मार्गेण कुमारी तु यदृच्छया । कुर्यादभ्यर्चनविधिं श्रूयतां मन्त्रविक्रमः ।।१०
नेत्रपट्टपटीवस्त्रैर्वस्त्रमण्डपिकां शुभाम् । कारयेत्कुसुमानोदिव्याभरणभूषिताम् ।।११
प्रवाललम्बितन्त्रतामन्तर्दिव्यवितानिकाम् । विन्यस्तपूर्णकलशां सत्पीठस्थापिताद्विजाम् ।।१२
पुरतः कारयेत्कुण्डं हस्तमात्रं समेखलम् । ततः स्नातानुलिप्ता च परिधाय सुवाससी ।।१३
देवान्पितॄन्समभ्यर्च्य ततो देवीगृहं व्रजेत् । नामाष्टकेन सम्पूज्या गौरी गोपतिवल्लभा ।।१४
तत्कालप्रभवैः पुष्पैर्गन्धालिबकुलाकुलैः । कुंकुमेन समालभ्य[२] कर्पूरागुरुचन्दनैः ।।१५

आपके समान अन्य कोई श्रोता भी नहीं है। एक बार उमादेवी की जय-विजया नामक दोनों परिचारिकाओं से मुनि कन्याओं ने वहाँ आकर पूछा कि—वरानने ! हमें कुछ अपना अभीष्ट सिद्ध करना है, और आप दोनों देवी की चित्तवृत्ति जानती हैं इसलिए आप यह बताने की कृपा करें कि किस व्रत के अनुष्ठान एवं किस दिन में पूजा करने पर पार्वती जी प्रसन्न होकर अभीष्ट प्रदान करती है और उसमे किस मंत्र का उच्चारण किया जाता है। उन लोगों की बाते सुनकर जया ने सादर कहा—मैं उस व्रत को बता रही हूँ, जो उत्सव संयुक्त होने पर समस्त कामनाओं को सफल करते हुए स्त्री पुरुष सभी के लिए अत्यन्त मनोरम है। चैत्रमास की शुक्ल तृतीया के दिन अत्यन्त भक्तिपूर्वक दातून करने से ही आरम्भ कर उपवास के नियम को ग्रहण करे।३-८। अनन्तर स्नानादि नित्यनियम के उपरांत कुंकुम, ताम्बूल, सिन्दूर, दो रक्त वस्त्र से देवी जी की सविधि अभ्यर्चना करनी चाहिए। विधवा को भी इसी भाँति अपने अवैधव्य के निमित्त पूजन करना चाहिए और कुमारियों के लिए यथेच्छ पूजन करना बताया गया है। सुनो, आगे मंत्र विधान भी बताऊँगा। सर्वप्रथम सूक्ष्म वस्त्र और चार अन्य वस्त्र पूजन के लिए रखकर सौन्दर्य पूर्ण मंडप के भीतर सुसम्पन्न वेदी पर, जो चारों ओर प्रवाल समूह, भीतर दिव्य वितान और पूर्ण कलश से सुसज्जित किया गया हों, सिंहासन पर शिवा शिव की प्रतिमा स्थापित कर पुष्प, गन्ध एवं दिव्य आभूषणों से सुशोभित करके उनके सामने हस्त मात्र के एक कुण्ड की रचना करे, जो मेखला आदि से विभूषित हो, उपरांत स्नान अनुलेपन नित्य नियम देव-पितृ पूजन पूर्वक पवित्र स्वच्छ वस्त्र धारण कर देवी जी की सेवा में उपस्थित हो और वहाँ सुस्थिर चित्त से गोपति (भगवान शंकर) की प्राण वल्लभा गौरी जी की नामाष्टक का उच्चारण करते हुए सामयिक पुष्प—गन्ध, बकुलपुष्प वृन्द, कुंकुम, कपूर, अगर, चन्दन द्वारा सविधि

---

१. विभृयात्सोपवासापि । २. समालक्ष्य ।

एवं सम्पूज्य विधिवत्सद्धूपेनाधिवासयेत् । पार्वती ललिता गौरी गान्धारी शाङ्करी शिवा ॥
उमा सती समुद्दिष्टं नामाष्टकमिदं मया ॥१६
लड्डुकैः खण्डवेष्टैश्च गुडकैः सिंहकेसरैः सोमालकैः कोकसरैः खण्डखाद्यकरम्बकैः ॥१७
घृतपक्वैर्बहुविधैः सुपक्वफलकल्पितैः । दृष्टिप्राणहरैर्हृद्यैर्नैवेद्यैः प्रीणयेदुमाम् ॥१८
कटुखण्डं जीरकं च कुङ्कुमं लवणार्द्रकम् । इक्षुदण्डानैक्षवं च हरिद्रार्द्रान्पुरो न्यसेत् ॥१९
नारिकेलानामलकान्मातुलुङ्गान्सदाडिमान् । कूष्माण्डकर्कटीवृन्तनारङ्गपनसादिकान् ॥२०
कालोद्भवानि चान्यानि फलानि विनिवेदयेत् । गृहाद्युलूखलशिलाशूर्पान्प्रणतिभिः सह ॥२१
नेत्राञ्जनशलाकाश्च नखरे चनकानि च । दर्पणं वंशपात्राणि भवान्यै विनिवेदयेत् ॥२२
शङ्खतूर्यनिनादेन गीतमङ्गलनिस्वनैः । भक्त्या सम्पूजयेद्देवीं स्वशक्त्या शिववल्लभाम् ॥२३
ततोऽस्तसमये भानो कुमार्यः करकैर्नवैः । स्नानं कुर्युर्मुदा युक्ताः सौभाग्यारोग्यवृद्धये ॥२४
यामेयामे गते स्नानं देवीपूजनमेव च । तैरेव नामभिर्होमस्तिलाज्येन प्रशस्यते ॥२५
पद्मासनस्थिता साध्वी तेनैवार्द्रेण वाससा । गौरीमुखेक्षणपरा तां रात्रिमतिवाहयेत् ॥२६
काश्चिद्वाद्यन्ति संहृष्टाः काश्चिन्नृत्यन्ति हर्षिताः । कथयन्ति कथाः काश्चिद्देव्यास्तत्र महोत्सवे ॥२७
गीततालानुसम्बद्धमनुद्धतमनाकुलम् । नृत्यन्ति स्म पुरे देव्याः काश्चिदुल्लसितभ्रुवः ॥२८

पूजन करे । अनन्तर उत्तम धूप द्वारा उनका अधिवासन भी । पूजन के समय पार्वती, ललिता, गौरी गांधारी, शांकरी, शिवा, उमा और सती के इसी नामाष्टक का सप्रेम उच्चारण करना बताया गया है ।९-१६। लड्डू, खांड के पदार्थ, सिंह केसर, सोमाल, काकेसर, खण्ड खाद्य करम्बक और पके फल समेत घृत पक्व अनेक प्रकार के नैवेद्य, जो इतने प्रिय हों कि उसके देखने से ही अपनी सुधि-बुधि भूल जाये, भी उमा देवी को सप्रेम समर्पित करके कटु खंड, जीरा, कुंकुम, एवं लवण से आर्द्र किया हुआ तथा ईख दंड, गुड और हरिद्रा से आर्द्र किया हुआ पदार्थ तथा नारियल, आँवला, बिजौरा नीबू, अनार, कूष्माण्ड, ककंडी वच, नारङ्गी, कटहल एवं सामयिक अन्य फलों को भी उन्हें सादर अर्पित करें । गृह के ओखली मूसल, तिल, नेत्र में अंजन लगाने की शलाका (सलाई) और नख रंजित करने का पदार्थ, दर्पण, वांस के पात्र (पुष्प संचयार्थ) सूर्य के प्रणाम पूर्वक उनकी सेवा में अर्पित करना चाहिए । भक्तिपूर्वक अपनी शक्ति के अनुसार शिववल्लभा भगवती पार्वती जी की पूजा के समय शंख, तुरुही, की ध्वनि समेत गीत के तथा, अन्य मांगलिक ध्वनि होना चाहिए । अनन्तर सूर्य के अस्त हो जाने पर कुमारियों को नवे करवें के जलों से सौभाग्य एवं आरोग्य के वृद्धचर्थ स्नान पूर्वक प्रत्येक प्रहर में देवी की पूजा सुसम्पन्न करनी चाहिए और पूजनोपरांत तिल घी के हवन उन्हीं नामों के उच्चारण करते हुए सुसम्पन्न करे । उस साध्वी स्त्री को उसी आर्द्र (भीगे) वस्त्र को पहने पद्मासन से बैठकर गौरी जी के मुखारविन्द को देखते वह रात्रि व्यतीत करना परमोत्तम बताया गया है ।१७-२६। उस रात्रि देवी जी के उस महोत्सव के उपलक्ष में किसी स्त्री को प्रसन्नता पूर्ण होकर वाद्य ध्वनि, किसी को हर्षातिरेक के कारण नृत्य, और किसी को उनकी पवित्र कथाओं के उद्गार प्रकट करने चाहिए । गीत के ताल-स्वर शान्त एवं स्थिर चित्त से आरम्भ होना चाहिए । कुछ स्त्रियों को देवी के समक्ष हाव-भाव के विलास पूर्वक नृत्य करना चाहिए क्योंकि नृत्य करने

नृत्येन हृष्यति हरो गौरी गीतेन तुष्यति । सद्भावेनाथ वा सर्वे गच्छन्ति परमां मुदम् ॥२९
सुवासिनीयस्ताम्बूलं कुंकुमं कुसुमानि च । प्रदेयं जागरकृत्या चान्येषामपि किञ्चन ॥३०
नटैर्विटैर्भटैश्चैव तथा प्रेक्षणकोत्सवैः । सखिभिः सहिता रात्रिं गायन्नृत्यन्हितां नयेत् ॥३१
एवं प्रभातसमये स्नात्वा सम्पूज्य पार्वतीम् । ततो वै सा समारोहेद्वस्त्रालङ्कृततोरणम् ॥३२
तोलयेत्सा तथासीनं गुडेन लवणेन च । कुङ्कुमेनाथ वा शक्त्या कर्पूरागरुचन्दनैः ॥३३
पर्वतानामपिच्छेदैः केचिदिच्छन्ति सूरयः । कुण्डमण्डपसम्भारैर्मंत्रैस्तत्रैव शोभयेत् ॥३४
लवणेन सहात्मा हि तोल्यते च गुडेन वा । कयापि भक्तिपरया सौभाग्यमतुलीकृतम् ॥३५
एवं देवीं प्रणम्यार्यां क्षमाप्य गृहमाविशेत् । आमंत्र्य शास्त्रकुशलानाचारविधिपारगान् ॥३६
अन्नं च मधुरप्रायं भोजयित्वा सुवासिनीः । स्वयं भुंजीत सहसा ज्ञातीजनबुधैः स्वकैः ॥३७
यच्च देव्याः पुरो दत्तं नैवेद्यादि तदिच्छया । गृहं प्रतिनयेत्सर्वं विभज्याभ्रान्तिमानसा ॥३८
ततो दद्याद्गृहस्थेभ्यः कृतकृत्या भवेत्तदा । विधिर्भाद्रपदेऽप्येष सुसौन्दर्यप्रदायकः ॥३९
सप्तधान्यस्वरूपां च शूर्पे सम्पूजयेदुमाम् । गोमूत्रप्राशनं ह्यत्र तेन गोमूत्रसंज्ञिता ॥४०
माघमासतृतीयायां विशेषः श्रूयतामिति । पूर्वोक्तं सकलं कृत्वा प्रभाते यवसंस्तरम् ॥
तोलयित्वा कुन्दपुष्पैः पूजयेत्तत्सुतामिति ॥४१
एतेन कारणेनोक्ता चतुर्थी कुन्दसंज्ञया । तृतीयाख्यं मयैतत्ते कथितं सर्वकारणम् ॥

से शिव और गीत द्वारा गौरी अत्यन्त प्रसन्न होती है। उसी समय अत्यन्त सद्भावना समेत जागरण कराने वाले को उचित होता है कि वह ताम्बूल, कुंकुम, और उत्तम पुष्प से सुवासिनी (सौभाग्यवती) स्त्रियों तथा अन्य कुमारियों आदि को सुसम्मानित करे। नट, विट, भट, तथा अन्य उस महोत्सव के दर्शनगण एवं सखियों के साथ नृत्य-गीत करते हुए वह रात्रि व्यतीत करनी चाहिए। पश्चात् प्रातः काल होने पर स्नान नित्य नियमोपरांत पार्वती जी की पूजा करके वस्त्र-विभूषित एवं तोरण सम्पन्न उस आसन पर बैठकर गुड़ लवण, कुंकुम, अथवा शक्ति हो तो, कपूर, अगरु चन्दन के साथ तौल करे। कुछ विद्वानों ने पर्वतों के टुकड़ों से भी तौलने को बताया है। सुसज्जित कुण्ड और मण्डप को उसके संभार एवं मंत्रोच्चारण द्वारा सुशोभित करते हुए लवण अथवा गुड द्वारा अपने को तौलना चाहिए। भक्त शिरोमणि कुछ स्त्रियाँ उपरोक्त सभी वस्तुओं अथवा सौभाग्याष्टक से अपने को तौलती है। इस भाँति आर्या देवी को प्रणाम पूर्वक क्षमा प्रार्थना करने के उपरांत अपने घर पहुँचकर शास्त्र कुशल एवं उत्तम सदाचारी और सौभाग्यवती स्त्रियों को अन्न तथा मधुर पदार्थों द्वारा पूर्ण तृप्त करके वान्धवगण और परिजन समेत स्वयं भी भोजन करे। देवी जी के निमित्त अर्पित उनके सामने की मधुरादि वस्तुओं को घर ले जाकर विभाजन करके शुद्ध चित्त से सभी गृहस्थों के यहाँ भिजवा देने से वह स्त्री कृतकृत्य होती है। भाद्रपद मास के व्रतानुष्ठान में यह सौन्दर्य प्रदायक विधान बताया गया है, जिसमें शूर्प (सूप) में उमा की सप्त धान्य रचित प्रतिमा को स्थापित कर पूजन करने के लिए कहा गया है और इसमें गोमूत्र का प्राशन किया जाता है अतः इस तृतीया की गोमूत्र संज्ञा हुई है।२७-४०। अब माघ मास की विशेषता को मैं बता रहा हूँ। पूर्वोक्त समस्त कर्म समाप्त कर प्रातः काल जवा के संस्तरण पूर्वक तौलकर कुन्द-पुष्पों द्वारा गौरी की पूजा करनी चाहिए, क्योंकि इसीलिए चतुर्थी की कुन्द संज्ञा हुई है। इस प्रकार मुनि कन्याओं के लिए

जयया मुनिकन्यानां यत्पुरा समुदाहृतम् ॥४२

श्रीकृष्ण उवाच

आसीद्विदर्भनगरे वेश्या सर्वाङ्गसुन्दरी । तया ब्राह्मणवाक्येन सर्वमेतत्कृतं पुरा ॥४३
भुक्त्वा भोगान्महीपृष्ठे दत्त्वा दान यथेप्सया ॥४४
कालेन समनुप्राप्ता मरणं मनुजेश्वर ! अचिन्त्या राजदुहिता सा बभूवातिशोभना ॥
अवन्तिसुन्दरी नाम देवानामपि सुन्दरी ॥४५
यदि वक्त्रसहस्राणां सहस्रं स्यात्कथञ्चन ! तथापि निर्वर्णयितुमशक्या सा सुलोचना ॥४६
चैत्रतृतीयामाहात्म्यात्सा बभूव प्रभावती । मातापित्रोरतिप्रेष्ठा शिष्टान्यजनवल्लभा ॥४७
लब्धाब्धितनभवा यद्वत्कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा । तत. सा बुभुजे भोगान्भर्त्रा सार्द्धं मुदा सती ॥४८
यददाद्ब्राह्मणेभ्यः सा भूषणं कटकादिकम् । तत्प्रभावेण सा लेभे सौभाग्यं किं ततः परम् ॥४९
पुत्रांश्च जनयामास विष्णुशक्रपराक्रमान् । सर्वास्त्रशस्त्रकुशलान्वेदोक्तविधिपारगान् ॥५०
एवं रूपं महत्प्राप्य सौभाग्यं पुत्रसम्पदम् । भर्त्रा सह वै मरणमन्ते प्राप्य पतिव्रता ॥५१
शक्रादिलोकपालानां भवनेषु यथाक्रमम् । आक्रम्य ब्रह्मलोकं च जगाम शिवसात्मताम् ॥५२
एवं यान्यापि कुरुते नारी व्रतमिदं शुभम् । सा रूपसौभाग्यसुतान्प्राप्य स्वर्गे महीयते ॥५३

जया द्वारा बताये गये तृतीया विषयक सभी कारणों को मैंने तुम्हें बता दिया ।४१-४२

श्रीकृष्ण बोले—विदर्भ नगर में एक सर्वाङ्ग सुन्दरी वेश्या रहती थी, जिसने किसी विद्वान् ब्राह्मण की आज्ञा शिरोधार्य कर इस व्रत को सविधान सुसम्पन्न किया था । मनुजेश्वर ! इस पृथ्वीतल में उसने यथेच्छ दान करके समस्त भोगों का उपभोग किया और समयानुसार देहावसान होने पर उसने परम सुन्दरी राजपुत्री के रूप में जन्म ग्रहण किया, जो देवों से भी अधिक सुन्दरी थी । उसका नाम अवन्ति सुन्दरी था । उसके रूप लावण्य का वर्णन करना सभी के लिए अशक्य था, यहाँ तक कि सहस्र मुख वाले शेष के यदि सहस्र मुख और हो जायें, तो भी उस सुलोचना के सौन्दर्य वर्णन करने में वे अममर्थ ही रहेंगे । चैत्र तृतीया के अनुष्ठान को सुसम्पन्न करने से तो उसके प्रभाव द्वारा वह अत्यन्त प्रभा पूर्ण थी । अपने पिता माता के लिए जिस प्रकार वह प्रेम की एक सजीव मूर्ति थी, उसी प्रकार शिष्ट एवं अन्य लोगों के लिए भी उतनी ही मनमोहक थी । जिस भाँति भगवान् कृष्ण को प्राप्त कर समुद्र पुत्री लक्ष्मी ने समस्त भोगों के उपभोग को प्राप्त किया है, उसी भाँति उसने भी आजीवन अपने भर्ता के साथ निखिल भोगों का उपभोग किया है ।४३-४८। उसने ब्राह्मणों को दान रूप में अपने कटक (कंकड़) आदि आभूषण प्रदान किये थे, जिसके प्रभाव से परमोत्तम सौभाग्य और विष्णु इन्द्र के समान पराक्रमी पुत्रों को जन्म दिया जो सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्र में परम कुशल एवं वेदोक्त विधानों के निष्णात विद्वान थे । इस प्रकार पराकाष्ठा का रूप लावण्य, परम सौभाग्य , अनेक पुत्र, और समस्त निधि के उपभोग करने के उपरांत अपने भर्ता के साथ सामयिक देहावसान प्राप्त कर उस पतिव्रता ने क्रमशः इन्द्र आदि लोकपालों के भवनों में देव दुर्लभ प्रतिष्ठा सुख का अनुभव करती हुए ब्रह्मलोक की प्राप्ति की और पश्चात् शिव का सायुज्य मोक्ष । इसी भाँति जो अन्य स्त्री इस शुभव्रत का अनुष्ठान सुसम्पन्न करती है, उसे भी रूप सौन्दर्य, सौभाग्य, और पुत्रों

न दुर्भगा कुले तस्याः काचिद्भवति कन्यका । न दुर्विनीतश्च सुतो न भृत्योऽप्रियकृद्भवेत् ।।५४
न दारिद्र्यं गृहे तस्मिन्न व्याधिरुपजायते । यत्र सा रमते साध्वी ध्मातचामीकरप्रभा ।।५५
अन्याश्च याश्चरिष्यन्ति ब्राह्मणानुमते व्रतम् । सम्पूज्य वाचकं भक्त्या भूषणाच्छादनादिभिः ।।५६
ताः सर्वसुखसम्पन्ना अविपन्नमनोरथाः । भविष्यन्ति कुरुश्रेष्ठ तस्यै देवि नमोस्तु ते ।।५७
माघे महार्घ्यमणिमण्डितपादपीठां चैत्रे विचित्रकुसुमोत्करचर्चिताङ्गीम् ।
शूर्पप्ररूढनवसस्यमयीं नभस्ये सम्पूज्य शम्भुदयितां प्रभवन्ति नार्यः ।।५८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
चैत्रभाद्रपदमाघतृतीयाव्रतवर्णनं नामाष्टविंशतितमोऽध्यायः ।२८

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

अनन्तरतृतीयाव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

शुक्लपक्षतृतीयास्तु बहवः समुदाहृताः । आनन्तर्यव्रतं ब्रूहि तृतीयोभयसंयुतम् ।।१
हिताय सर्वभूतानां ललनानां विशेषतः । नाम प्रशननैवेद्यैर्मासिमासि पृथक्पृथक् ।।२

की प्राप्ति पूर्वक स्वर्ग की प्रतिष्ठा प्राप्त होती है । उसके कुल में कोई दुर्भगा कन्या उत्पन्न नहीं होती है, न उद्दण्ड पुत्र, और न अप्रिय भाषी कोई सेवक होता है । उसके गृह में दरिद्रता का निवास कभी नहीं होता और न कभी वह रुग्णा होती है । जिस महल में वह साध्वी निवास करती है, वह अग्नि में संतप्त किये गये सुवर्णों की प्रखर प्रभा से विभूषित रहता है । गुरुश्रेष्ठ ! ब्राह्मणों की अनुमति शिरोधार्य कर जो अन्य स्त्रियाँ भी इस व्रत को सुसम्पन्न करती है और भक्ति पूर्वक वाचक को भूषण वस्त्रादि समर्पित करती है, वे समस्त सुखों की प्राप्ति पूर्वक सदैव सफल मनोरथ होती रहती है, इसलिए उस देवी को बार-बार नमस्कार है । इस प्रकार स्त्रियाँ माघ मास में बहुमूल्य मणियों से अलंकृत सिंहासन पर सुशोभित चैत्र मास में विचित्र कुसुमों के इत्र आदि से चर्चित और भाद्रपद में सूर्य द्वारा परिवर्द्धित नवे सस्यों के स्वरूप धारण करने वाली शिव दयिता पार्वती की पूजा करके उपरोक्त समस्त फल समेत अत्यन्त प्रभाव शालिनी होती है ।४९-५८

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर सम्वाद में
चैत्र भाद्रपद और माघ तृतीया व्रत वर्णन नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ।२८।

अध्याय २९

अनन्तरतृतीया व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—आप ने शुक्ल पक्ष की तृतीया के अनेक व्रत सुनाये हैं, किन्तु अब मुझे आनन्तर्य व्रत बताने की कृपा कीजिये, जो द्वितीया तृतीया उभय संयुत में सुसम्पन्न किया जाता है और समस्त प्राणियों एवं विशेष कर ललनाओं के लिए अत्यन्त हितैषी है तथा प्रत्येक मास में उसके नाम, प्राशन और नैवेद्य भी । १-२।

श्रीकृष्ण उवाच

ब्रह्मादिविष्णुमहेशाद्यैर्यथोक्तं सुरसत्तमैः । अपूर्वं सर्वमन्त्राणामानंतर्यव्रतंशृणु ।।३
आदौ मार्गशिरे मासि व्रतमेतत्समाचरेत् । नक्तं कुर्याद् द्वितीयायां तृतीयायामुपोषिता ।।४
उमां देवीं समभ्यर्च्य पुष्पगन्धादिभिः क्रमात् । शर्करापुत्रिकां शक्त्या प्रणिपत्य निवेदयेत् ।।५
सम्प्राश्य दधि रात्रौ च स्वप्याद्विगतमत्सरा । प्रभाते विधिवद्भक्त्या मिथुनं भोजयेत्सुधीः ।।६
अश्वमेधमवाप्नोति समग्रं नात्र संशयः । तथा कृष्णतृतीयायां सोपवासा जितेन्द्रिया ।।७
जपेत्कात्यायनीं नाम नालिकेरं निवेदयेत् । स्वप्यात्प्राश्य पयो रात्रौ कामक्रोधविवर्जिता ।।
दाम्पत्यं सुभगं भोज्यं गोमेधफलमाप्नुयात् ।।८
पौषस्यादितृतीयायां सोपवासा जितेन्द्रिया । गौरीं नाम तु सम्पूज्य लड्डुकान्विनिवेदयेत् ।।९
स्वप्यात्प्राश्य घृतं रात्रौ त्यक्त्वा कामं तदग्रतः । प्रभाते मिथुनं भोज्यं नरमेधफलं भवेत् ।।१०
एवं कृष्णतृतीयायां पार्वतीमिति पूजयेत् । निवेद्यान्नं शष्कुल्यो गोमयं प्राशयेन्निशि ।।
दाम्पत्यं विविधं भोज्यमश्वमेधफलं लभेत् ।।११
माघस्य शुक्लपक्षे तु तृतीयायामुपोषितः । सुरनायिकां च सम्पूज्य खण्डबिल्वं निवेदयेत् ।।१२
ततः कुशोदकं प्राश्य स्वप्याद् भूमौ जितेन्द्रिया । प्रभाते मधुरान्ने तं मिथुनं भोज्य भक्तितः ।।

श्रीकृष्ण जी बोले—ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर आदि श्रेष्ठ देवों ने जिस प्रकार इसका वर्णन किया है और जो सभी मंत्रों से अपूर्व है, मैं उसी आनन्तर्य व्रत का उसी प्रकार वर्णन कर रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! मार्गशीर्ष मास के प्रारम्भ में इस व्रत का अनुष्ठान आरम्भ करना चाहिए। द्वितीया के दिन नक्त व्रत रहकर तृतीया के दिन उपवास पूर्वक पुष्प गंधादि द्वारा उमा देवी की समभ्यर्चना करके शर्करा पुत्रिका (प्रतिमा) को नमस्कार पूर्वक उस व्रत के निवेदन कर रात्रि में दही प्राशन के उपरांत शान्ति पूर्वक पवित्र भावना से शयन करे। प्रातः काल होने पर सविधान द्विज दम्पति को भोजन कराये तो उसे अश्वमेध यज्ञ के सम्पूर्ण फल प्राप्त होते हैं इसमें संदेह नहीं। उसी भाँति कृष्ण तृतीया के दिन संयम पूर्वक उपवास रहकर कात्यायनी देवी के पूजन जप कर नारियल अर्पित करते हुए रात्रि में क्षीर के प्राशन पूर्वक काम-क्रोध रहित होकर शयन करे। पश्चात् प्रातः काल परम सौभाग्य एवं सौभाग्यवान् दम्पती को सप्रेम रुचिकर भोजन कराने से गोमेध के फल की प्राप्ति होती है। पौष मास के आरम्भ में तृतीया के दिन इन्द्रिय संयम पूर्वक उपवास रहकर गौरी नामक देवी की पूजा करके लड्डू निवेदन करे अनन्तर रात्रि में घृत के प्राशन पूर्वक काम के त्याग समेत उनके आगे शयन करे और पश्चात् प्रातः काल होने पर सौभाग्यवान पुरुष स्त्री के जोड़े को भोजन से संतृप्त करने पर नरमेध के फल की प्राप्ति होती है।३-११। इसी भाँति पौष कृष्ण तृतीया के दिन पार्वती जी की पूजा करके अन्न की शष्कुली (पूरी) उन्हें समर्पित करे गोमय प्राशन द्वारा रात्रि व्यतीत करे। पुनः प्रातःकाल होने पर उत्तम दम्पत्ति के सुरुचि भोजन कराने से अश्वमेध फल की प्राप्ति होती है। माघ मास की शुक्ल तृतीया के दिन उपवास रहकर सुरनायिका नामक देवी की पूजा करके बिल्व का मधुर खण्ड निवेदित करते हुए कुशोदक के प्राशन पूर्वक संयम पूर्वक भूमि शयन कर रात्रि व्यतीत करे। प्रभात समय भक्तिपूर्वक सुभग ब्राह्मण-ब्राह्मणी को मधुर अन्नों

क्षमाप्यान्ते नमस्कृत्य इति स्वर्णफलं लभेत् ।।१३
पुनरेतत्ततो माघे कृष्णपक्षे शुचिव्रता । आर्यां नाम्ना प्रपूज्याथ खाद्यकानि निवेदयेत् ।।१४
मधु प्राश्य स्वपेद्रात्रौ कामक्रोधविवर्जिता । मिथुनं भोजयित्वा तु वाजपेयफलं भवेत् ।।१५
एवं वै फाल्गुने मासि सोपवासा शुचिव्रता । भद्रीं नाम प्रपूज्याथ कासारं विनिवेदयेत् ।।१६
सुप्राश्य शर्करां चाथ स्वप्याद्रात्रौ विमत्सरा । प्रभाते मिथुनं भोज्यं सौत्रामणिफलं लभेत् ।।१७
पुनः कृष्णतृतीयायां फाल्गुनस्यैव भारत । विशालाक्षीं समभ्यर्च्य पूरिका विनिवेदयेत् ।।१८
सोदकान्स्तण्डुलान्दत्त्वा स्वप्याद्भूमौ मनस्विनी । भोजयेन्मिथुनं प्रातरग्निष्टोमफलं लभेत् ।।१९
चैत्रस्यादितृतीयायां शुचिर्भूता जितेन्द्रिया । श्रियं देवीं यजेद्भक्त्या वटकान्विनिवेदयेत् ।।२०
बिल्वपत्रं ततः प्राश्य स्वप्याद्ध्यानपरायणा । प्रातरुत्थाय मद्भक्त्या मिथुनं पूजयेत्सुधीः ।।
प्रणिपत्य क्षमाप्यैवं राजसूयफलं लभेत् ।।२१
पुनः कृष्णतृतीयायां चैत्रे सम्यगुपोषिता । कालीं नाम समभ्यर्च्य पिष्टं प्राश्य स्वपेन्निशि ।।२२
पूपकानि निवेद्याथ कुर्याद्रात्रौ प्रजागरम् । मिथुनानि च सम्भोज्य अतिरात्रफलं भवेत् ।।२३
एवं वैशाखमासे तु सोपवासा जितेन्द्रिया । पूजयेच्चण्डिकां देवीं मधुकानि निवेदयेत् ।।२४
श्रीखण्ड चन्दनं लिप्त्वा स्वप्याद्देव्यग्रतो भुवि । भोजयित्वा च दाम्पत्यं चान्द्रायणफलं लभेत् ।।२५
तथा कृष्णतृतीयायां सोपवासा विमत्सरा । पूजयेत्कालरात्रिं तु गन्धपुष्पैः सदीपकैः ।।२६

द्वारा संतुष्ट कर क्षमा प्रार्थना के उपरांत नमस्कार करने से स्वर्ण फल की प्राप्ति होती है। पुनः माघकृष्ण तृतीया के दिन उसी भाँति पवित्रता पूर्ण व्रत-नियमों के ग्रहणपूर्वक आर्या नामक देवी की अर्चना के उपरांत उन्हें अत्यन्त रुचिकर भक्ष्य पदार्थ अर्पित करके मधुप्राशन कर रात्रि में काम-क्रोध के त्यागपूर्वक शयन करे। अनन्तर प्रातः काल स्त्री-पुरुष ब्राह्मण को भोजनों द्वारा प्रसन्न करने से वाजपेय फल की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार फाल्गुन मास में पवित्रता पूर्ण उपवास रहकर भद्री नामक देवी का भी अर्चना करके उन्हें कासार अर्पित कर शक्कर के प्राशनपूर्वक रात्रि में शुद्ध भाव से शयन करे। पुनः प्रातः काल ब्राह्मण दम्पत्ति को भोजन कराने से सौत्रामणि यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है। भारत ! फाल्गुन कृष्ण तृतीया के दिन विशालाक्षी नामक देवी की पूजा करके पूरी सर्मपित करे। और उदक समेत तण्डुल के दान एवं प्राशन करके उस मनस्विनी स्त्री को शयन कर रात्रि व्यतीत करनी चाहिए। प्रातः काल होने पर ब्राह्मण के जोड़े को भोजन कराने से अग्निष्टोम के फल की प्राप्ति होती है। चैत्र मास की आदि तृतीया के दिन पवित्रता पूर्ण एवं संयम पूर्वक श्री नामक देवी की भक्ति समेत पूजा करके वटका (वरिआ) सर्मपित करे। रात्रि में बिल्वपत्र के प्राशनपूर्वक उनके ध्यान परायण होकर शयन करके रात्रि व्यतीत करे। प्रातःकाल होने पर मेरी भक्ति समेत ब्राह्मण मिथुन की अर्चना करते हुए भोजनोपरांत नमस्कार पूर्वक क्षमाप्रार्थना करने से राजसूय फल की प्राप्ति होती है।१२-२१। उसी प्रकार चैत्र कृष्ण तृतीया के दिन भली भाँति उपवास रहकर काली नामक देवी की अर्चना करके पीठी के प्राशन पूर्वक जागरण कर रात्रि व्यतीत करे। उस रात्रि पूआ उन्हें अर्पित करना चाहिए। प्रातः काल होने पर ब्राह्मण ब्राह्मणी को भोजन कराने से अतिरात्र यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं। वैशाख मास में उपवास रह कर जितेन्द्रिय होकर चण्डिका देवी की पूजा कर उन्हें मधुपूर्ण मधुर पदार्थ अर्पित करके श्रीखण्ड चन्दन से अपने शरीर को

सुराज्यं यावकं दत्त्वा तिलान्भुञ्जन्स्वपेन्निशि । प्रभाते मिथुनं भोज्यमतिकृच्छ्रफलं लभेत् ॥२७
ज्येष्ठे सिततृतीयायां ह्युपवासकृता दरा । शुभां देवीं समभ्यर्च्य आम्राणि विनिवेदयेत् ॥
सम्प्राश्यामलकं रात्रौ गौरीं ध्यात्वा सुखं स्वपेत् ॥२८
ततःप्रातः समुत्थाय दम्पती रूपशालिनौ । भोजयित्वा विधानेन तीर्थयात्राफलं लभेत् ॥२९
पुनः कृष्णतृतीयायां सोपवासा सुवासिनी । स्कन्दमातेति सम्पूज्य इडायै विनिवेदयेत् ॥३०
प्राशयेत्पञ्चगव्यञ्च स्वप्याद्देव्यग्रतस्ततः । प्रभाते मिथुनं भोज्यं कन्यादानफलं लभेत् ॥३१
आषाढमासे सम्प्राप्ते पूजयेच्च यशोधनम् । करंजकं च नैवेद्यं गोशृङ्गाम्भः पिबेन्निशि ॥
प्रभाते मिथुनं भोज्यं कन्यादानफलं लभेत् ॥३२
तथा कृष्णतृतीयायां कूष्माण्डीं शक्तितो यजेत् । सक्तून्गुडाज्यसम्मुक्तान्पुरतो विनिवेदयेत् ॥३३
कुशोदकं च सम्प्राश्य स्वप्याद्रात्रौ जितेन्द्रिया । प्रभाते मिथुनं भोज्यं गोसहस्रफलं लभेत् ॥३४
श्रावणे सोपवासा च चण्डां घण्टां प्रपूजयेत् । कुल्माषास्तत्र नैवेद्यं पिबेत्पुष्पोदकं पुनः ॥३५
प्रभाते शक्तितो दद्याद्भोजनं मिथनस्य तु । प्राप्नोत्यभयदानस्य फलं नैवात्र संशयः ॥३६
तद्वत्कृष्णतृतीयायां रुद्राणीं नामभिर्यजेत्[1] । सिद्धपिण्डानि दिव्यानि नैवेद्यं दापयेत्तथा ॥३७

विभूषित करते हुए उनके सम्मुख भूमि शयन कर रात्रि व्यतीत करे । प्रातः काल होने पर ब्राह्मण दम्पत्ति को भोजन-तृप्त करने से चान्द्रायण के फल की प्राप्ति होती है ।२२-२५। वैशाख की कृष्ण तृतीया के दिन उपवास रहकर शुद्ध हृदय से गंध, पुष्प, धूप दीप द्वारा कालरात्रि की पूजा करके सुरा, घी, अर्पित कर रात्रि में तिल के प्राशन पूर्वक शयन करना चाहिए । पुनः प्रातःकाल के समय ब्राह्मण जोड़े को भोजन कराने से अति कृच्छ्र के फल की प्राप्ति होती है ।२६-२७। ज्येष्ठ की शुक्ल तृतीया के दिन उपवास रहकर शुभा नामक देवी की अर्चना करके आमों को अर्पित करे अनन्तर रात्रि में आँवले के प्राशन पूर्वक गौरी के ध्यान करते हुए सुख, शयन द्वारा रात्रि व्यतीत करे । पश्चात् प्रातः काल होने पर रूप लावण्य युक्त ब्राह्मण दम्पत्ति के पूजन और भोजन सविधान कराने से तीर्थयात्रा के फलों की प्राप्ति होती है । पुनः कृष्ण तृतीया के दिन उपवास रहकर स्कन्द माता इडा की पूजा करके नैवेद्य अर्पित करें । और पञ्चगव्य के प्राशन पूर्वक देवी के समक्ष शयन करके पुनः प्रातः काल होने पर ब्राह्मण मिथुन को भोजन कराने से कन्यादान के फल प्राप्त होते हैं । आषाढ मास की तृतीया के दिन यशोधन नामक देवी की अर्चना करके करंजक फल समेत नैवेद्य अर्पित कर शृंगोदक के प्राशन पूर्वक रात्रि व्यतीत करे । अनन्तर प्रातः काल होने पर ब्राह्मण दम्पत्ति को भोजन कराने से कन्यादान का फल प्राप्त होता है ।२८-३२। उसी भाँति कृष्ण तृतीया के दिन शक्त्यनुसार कूष्माण्डी देवी की आराधना करके सतुआ, गुड़ और घी उन्हें अर्पित करे और कुशोदक के प्राशन करके संयम पूर्वक शयन कर रात्रि व्यतीत करे । उपरांत प्रातः काल होने पर सुभगा ब्राह्मण जोड़े को भोजन कराने से गो सहस्र दान के फल प्राप्त होते हैं । श्रावण मास की तृतीया के दिन घंटा समेत चंडा देवी की पूजा करके उरद के भोजन समेत नैवेद्य अर्पित कर रात्रि में पुष्पोदक के प्राशन पूर्वक शयन करे। अनन्तर यथाशक्ति ब्राह्मण दम्पत्ति को भोजनादि से प्रसन्न करने से अभय दान के फल प्राप्त होते हैं इसमें सन्देह नहीं। उसी भाँति कृष्ण तृतीया के दिन रुद्राणी देवी की पूजा करके सिद्ध पिंड के नैवेद्य अर्पित कर

---

१. सम्प्रपूजयेत् ।

पिण्याकं प्राशयित्वा तु स्वप्याद्रात्रौ विमत्सरा। सम्पूज्य द्विजदाम्पत्यमिष्टापूर्तफलं लभेत् ॥३८
भाद्रे[1] शुक्लतृतीयायां पूजयेत् हिमाद्रिजाम्। गोधूमान्नं निवेद्यैव प्राशयेच्चन्दनं सितम् ॥३९
गन्धोदकं ततः प्राश्य सखीभिः सहिता स्वपेत्। प्रभाते मिथुनं भोज्यं मार्गपालीशतं लभेत् ॥४०
तद्वत्कृष्णतृतीयायां दुर्गां देवीं समार्चयेत्। दद्यात्पिष्टफलान्दिव्यान्गुडाज्यपरिपूरितान् ॥४१
प्राशयित्वा तु गोमूत्रं स्वप्याच्छान्तेन चेतसा। प्रातस्तु मिथुनं भोज्यं सदासत्रफलं लभेत् ॥४२
मासि चाश्वयुजे भक्त्या देवीं नारायणीं यजेत्। सोपवासा खण्डपूपान्नैवेद्यं परिकल्पयेत् ॥४३
प्राशयेच्चन्दनं रक्तं स्वप्याच्च गतमत्सरा। प्रभाते भोज्यं दाम्पत्यमग्निहोत्रफलं लभेत् ॥४४
तथा कृष्णतृतीयायां स्वस्ति नाम्नं प्रपूजयेत्। शाल्योदनं गुडोपेतं नैवेद्यं निर्वपेत्ततः ॥४५
कुसुंभबीजान्सम्प्राश्य त्यक्त्वा कामं स्वपेन्निशि। सम्भोज्य मिथुनं प्रातर्गवाह्निकफलं लभेत् ॥४६
कार्तिकस्य तृतीयायां स्वाहानाम्नीं प्रपूजयेत्। क्षीरं खण्डघृतोपेतं नैवेद्यं दापयेच्च ताम् ॥४७
स्वप्याद्रात्रौ जितक्रोधा प्राश्यं कुंकुमकेशरान्। प्रभाते मिथुनं भोज्यमेकभक्तफलं लभेत् ॥४८
तथा कृष्णतृतीयां स्वधानाम्नीं प्रपूजयेत्। मुद्गौदनं निवेद्याथ घृतं प्राश्य स्वपेन्निशि ॥४९
प्रातः सम्भोज्य मिथुनं नक्तव्रतफलं लभेत्। एवं सम्वत्सरं कृत्वा मुक्तपापा शुचिर्भवेत् ॥५०

अनन्तर तिल की खली के प्राशन पूर्वक शुद्ध भावना से रात्रि व्यतीत करे। पुनः प्रातः काल द्विज दम्पत्ति को प्रसन्न करने से इष्टापूर्त फल की प्राप्ति होती है।३३-३८। भाद्र शुक्लतृतीया के दिन हिमालय पुत्री पार्वती की अर्चना करके गोधूमान्न के भक्ष्य पदार्थ उन्हें अर्पित कर श्वेत चन्दन और गंधोदक के प्राशन पूर्वक सखियों समेत शयन करे। प्रातः काल होने पर ब्राह्मण के जोड़े को भोजन से तृप्त करने पर सौ मार्ग-पाली फल की प्राप्ति होती है। उसी प्रकार कृष्ण तृतीया के दिन उमा देवी की पूजा करके पीठी के दिव्य फल जो गुड घी से बनाये गये हों, अर्पित करके गोमूत्र प्राशन पूर्वक शान्त चित्त से शयन कर रात्रि व्यतीत करे। प्रातः काल होने पर मिथुन (स्त्री-पुरुष) ब्राह्मण को भोजन कराने से सत्र यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं। आश्विन मास की शुक्ल तृतीया के दिन भक्ति पूर्वक नारायणी देवी की उपवास रहकर पूजा करने के उपरांत खांड समेत पूआ अर्पित करे। अनन्तर रात्रि में शुद्ध मन से रक्त चन्दन के प्राशन पूर्वक शयन करके पुनः प्रातः काल के समय द्विज दम्पत्ति को भली भाँति तृप्त करने से अग्निहोत्र के फल प्राप्त होते हैं। कृष्ण तृतीया के दिन स्वाति नामक देवी की पूजा करके गुड मिश्रित साठी चावल के मधुर पदार्थ उन्हें अर्पित करे। अनन्तर कुसुंम बीज के प्राशन कर रात्रि में काम के त्याग पूर्वक शयन करके पुनः प्रातः काल दम्पत्ति ब्राह्मण को भोजन कराने से गवाह्निक फल की प्राप्ति होती है।३९-४६। कार्तिक तृतीया के दिन स्वाहा नामक देव की पूजा करके क्षीर, खांड, और घी से बने भक्ष्य पदार्थ उन्हें अर्पित कर कुंकुम केशर के प्राशन पूर्वक क्रोध त्याग कर शयन करे। अनन्तर प्रातः काल होने पर ब्राह्मण दम्पत्ति के भोजन कराने से एक भक्त का फल प्राप्त होता है। उसी प्रकार कृष्ण तृतीया के दिन स्वधा नामक देवी की आराधना करके मूँग के लड्डू अर्पित कर घी के प्राशन पूर्वक शयन कर रात्रि व्यतीत करे। अनन्तर प्रातः काल होने पर शुभ ब्राह्मण दम्पत्ति को तृप्त भोजन कराने से नक्त व्रत के फल प्राप्त होते हैं। इस प्रकार पूर्ण वर्ष तक

---

१. एवं भाद्रपदस्यादौ पूजयेत्कमलालयाम्।

शुक्लपक्षे तृतीयायां सोपवासा निरामया । विज्ञाय च द्रुतं भक्त्या उमां शास्त्रार्थबोधकैः ॥५१
मण्डलं च ततो लिख्य नवनाभं वरप्रदम् । सौवर्णं कारयेद्देवमुमया सहितं प्रभुम् ॥५२
ताभ्यां नेत्रेषु दातव्यं मौक्तिकं नीलमेव च । प्रवालमोष्ठयोर्दद्यात्कर्णयो रत्नकुण्डले ॥५३
उपवीतं तु देवस्य देव्या हारं तथोरसि । रक्तवस्त्रधरां देवीं सितवस्त्रं महेश्वरम् ॥५४
चतुःसमेन वालस्य पुष्पैर्धूपैरथार्च्चयेत् । मण्डले पूजयित्वा च होमं कुर्यात्ततोऽगुरोः[1] ॥५५
ततोऽपराजितां नाम देवीं तत्रैव पूजयेत् । मृत्स्नां सम्प्राशयित्वा च रात्रौ कुर्यात्प्रजागरम् ॥५६
गीतवाद्योत्सवैर्हृद्यैर्वीणामङ्गलपाठकैः । रात्रिमेवं जपेद्भक्त्या यावदुद्गच्छते रविः ॥५७
तूलीगण्डकसंयुक्ते पर्यङ्केत्यन्तशोभिते । उद्धृत्य मण्डलाद्देवं पर्यङ्कोपरि विन्यसेत् ॥५८
वितानध्वजमालालिकिंकिणीदर्प्पणान्वितम् । पुष्पमण्डपिकाच्छन्नं धूपगुग्गुलवासितम् ॥५९
तस्याग्रे भोजयेद्भक्त्या स्वशक्त्या मिथुनानि च । प्रीणयेद्भक्ष्यभोज्यैश्च पक्कान्नैर्मधुरैः शुभैः ॥६०
ततो दत्त्वाऽक्षतान्हस्ते ताम्बूलं विनिवेदयेत् । प्रीयतां मे उमाकान्तः पार्वत्या सहितःशिवः ॥६१
उच्छिष्टं शोधयित्वा तु पुनः प्रोक्ष्य समन्ततः । रक्तवर्णां सुशीलां च सुरूपां सुपयस्विनीम् ॥६२
शृङ्गाभ्यां दत्तकनकां राजतखुरसंयुताम् । कांस्यदोहनकोपेतां रक्तवस्त्रावगुण्ठिताम् ॥६३
घण्टाभरणशोभाढ्यां देवदेव्यग्रसंस्थिताम् । पादुकोपानहच्छत्रभोज्यभाजनसंयुताम् ॥

इस व्रतानुष्ठान को सुसम्पन्न करने से वह पापों से मुक्त हो जाती है। शुक्ल पक्ष में तृतीया के दिन तन्द्रा रहित उपवास के नियम ग्रहण कर भक्ति श्रद्धासमेत उमा के स्मरण पूर्वक नव कोष्ठ के मण्डल की रचना कर उसके भीतर उमा और महेश्वर की सुवर्ण की प्रतिमा की प्रतिष्ठा कर—दोनों देवों के नेत्र स्थान में मोती और नील, ओष्ठ में प्रवाल (मूंगा), एवं कान में रत्न के कुण्डल सुशोभित करके शिव जी का वक्षःस्थल यज्ञोपवीत द्वारा और उमादेवी का उरस्थल हार से विभूषित करते हुए देवी को रक्तवस्त्र और महेश्वर को श्वेतवस्त्र से सुसज्जित करके चारो ओर से उस मण्डल की पुष्प, धूप द्वारा अर्चना करके मध्य में उन देवों की पूजा के उपरांत हवन प्रारम्भ करना चाहिए। अनन्तर अपराजिता देवी की उसी स्थान पर अर्चना करके प्रशस्त मृत्तिका के प्राशन पूर्वक गीत, वाद्य, वीणा आदि वाद्य मङ्गल पाठ अथवा अन्य उत्सव द्वारा जागरण कर रात्रि व्यतीत करे। पुनः सूर्योदय होने पर तोशक तकिया एवं ऊँचे गद्दे आदि से सुसज्जित ऊस शय्या पर देव को मण्डल से उठाकर स्थापित करे, जो वितान, ध्वजा, मालाओं के समूह, किंकड़ी दर्पण से सुशोभित, पुष्प मण्डप से आच्छन्न, धूप एवं गुग्गुल से सुवासित हो। तथा उन्ही के समक्ष ब्राह्मण दम्पत्ति को यथाशक्ति भोजनादि मधुर पक्वान द्वारा भली भाँति तृप्त करके अक्षत समेत ताम्बूल हाथ में देकर क्षमा प्रार्थना करे कि—पार्वती समेत उमाकांत शिव मुझ पर प्रसन्न हों। ४७-६०। तदुपरांत वहाँ के उच्छिष्ठ (जूठे) स्थानों को चारों ओर से शुद्ध कर उमा समेत महादेव जी के समक्ष एक रक्तवर्ण की गौ को जो सुशील, सुरूप, एवं अधिक दूध देती हो, और सुवर्ण से उसकी सींग चाँदी से चारों खुर विभूषित करके रक्त वस्त्र से उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग आच्छन्न हों तथा गले में घंटा रूपी आभूषण से सुशोभित कर उसके समीप कांसे की दोहनी रखी हो, स्थित कर चरण पादुका, उपानह, छत्र, पाक करने के समस्त

---

१. ततः ।

त्रिधा प्रदक्षिणीकृत्या गुरोः सर्वं निवेदयेत् ॥६४
उमामहेश्वरं देवमवियोगं सुरार्चितम् । अव्यवच्छेदभूतं च सुप्रीतं तदिहास्तु मे ॥६५
प्रणम्य शिरसा भूमौ क्षमस्वेति गुरुं वदेत् । एवं समाप्यते देव्या[1] आनन्तर्यव्रतोद्यमन् ॥
यः प्रकुर्यात्पुमान्स्त्री वा तस्य पुण्यफलं शृणु ॥६६
गन्धर्वयक्षलोकांश्च विद्याधरमहोरगान् । ऋषिसिद्धामरं ब्राह्मं विष्णुलोकं सनातनम् ॥६७
भुक्त्वा भोगानशेषांश्च एकविंशत्कुलान्वितः । रत्नयाने समारूढो गुह्याप्सरसंवृतः ॥६८
देवविद्याधरैर्यक्षैर्वृतो याति शिवालयम् । तत्र भुक्त्वा महाभोगान्स भुंक्ते शिववद्वहून् ॥६९
भुक्त्वा भोगान्यदा भूतः कदाचित्तपसः क्षयात् । पृथिव्यां तु समागम्य भवेत्सकलभूमिपः ॥७०
स्त्री वा समाचरेद्या तु महादेवी तु जायते । आनन्तर्यव्यवच्छिन्नान्भोगान्देवी उमा यथा ॥
त्रैलोक्यपतिरुद्रेण सा भुंक्ते सहिता तथा ॥७१
मनुर्देव्या यथामह्या शच्या शक्रो यथासुखम् । नैरंतर्यं यथा सौख्यं सा भुंक्ते पतिना सह ॥७२
मुनेररुधन्ती यद्वद्विष्णोर्लक्ष्मीर्हृदि स्थिता । तया तयोर्महत्सौख्यं नैरन्तर्यं हि जायते ॥७३
सावित्री ब्रह्मणो यद्वद्गङ्गा तोयनिधेर्यथा । अव्यवच्छिन्नयोः प्रीतिस्तथा जन्मनिजन्मनि ॥७४
अथ जन्मन्यहोन्यस्मिन्व्रतमेतत्कृतं भवेत् । तेनैव पतिना सार्द्धं न वियोगमुपैति सा ॥

पात्र भी वहाँ रखकर तीन प्रदक्षिणा करने के उपरांत उन सभी वस्तुओं को गुरु के लिए अर्पित करे।६१-६४। उस समय साञ्जलि उनके सामने यह कहे कि जिस प्रकार देव पूजित उमा और महेश्वर का अवियोग और सुखद अव्यवहित सदैव रहा करता है, उसी भाँति मेरा भी अविच्छिन्न एवं सुखद साथ रहे—इतना कह कर पृथ्वी में शिर से प्रणामपूर्वक गुरु से 'क्षमस्व' कहे। इस प्रकार इस आनन्तर्य व्रत विधान को सुसम्पन्न करने वाले पुरुष अथवा स्त्री को जिस फल की प्राप्ति होती है, बता रहा हूँ, सुनो! गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर, महोरग, ऋषि, सिद्ध, देव, ब्रह्मा, विष्णु के उस सनातन लोकों के अशेष उपभोग करने के उपरांत इक्कीस पीढ़ी समेत रत्न भूषित विमान पर बैठकर गुह्य, अप्सरागण, देव, विद्याधर, एवं यक्षों से सुसेवित होते हुए शिवलोक की प्राप्ति करता है, वहाँ पहुँच कर शिव जी की भाँति समस्त सुखों के उपभोग के उपरांत कदाचित् तप के क्षीण होने पर पुनः इस भूमण्डल में जन्म ग्रहण कर महाराजीय होता है। और जो स्त्री इस व्रत को सुसम्पन्न करती है, वह उमादेवी की भाँति महादेवी होकर समस्त सुखों के अविच्छिन्न उपभोग त्रैलोक्यपति रुद्र के साथ करती है। पुनः पृथ्वी पर उत्पन्न होकर जिस प्रकार मही देवी के साथ मनु और इन्द्राणी के साथ इन्द्र महान् सौख्य का निरन्तर उपभोग करते हैं उसी भाँति वह अपने पति के साथ सदैव सुखोपभोग करती है। वशिष्ठ अरुन्धती और विष्णु के हृदय में सुखासीन लक्ष्मी विष्णु की भाँति उन दोनों (पति-पत्नी) में निरन्तर महान सौख्य होता है।६५-७३। तथा जिस प्रकार सावित्री और ब्रह्मा का गंगा जल की भाँति पवित्र एवं अगाध प्रेम सदैव प्रख्यात है। उसी भाँति उन दोनों के प्रत्येक जन्म में गाढ़ प्रेम सदैव बना रहता है। इस व्रत के प्रभाव से वह अगले जन्म में उसी पति के साथ निरन्तर

---

१. सम्यक्।

योजनायुतसाहस्रे सुरूपा मण्डले भवेत् । अर्घाढ्या सुभगा साध्वी पुत्रपौत्रैरलङ्कृता ।।७५
एतत्तेनिखिलं प्रोक्तमानन्तर्यव्रतं मया । भक्त्या सुविनीताय कथितव्यं न चान्यथा ।।७६
एषा विशेषविहिताभिहिता तृतीया यानन्तरीत्यविधवाभिरुदीरितोच्चैः ।
ऐतामुपोष्य विधिवत्प्रतिपक्षयोगान्नैवांन्तरं सुतसुहृत्स्वजनैरुपैति ।७७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवादे
अनन्तरतृतीयाव्रतवर्णनं नामैकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।२९

अथ त्रिंशोऽध्यायः

अक्षयतृतीयव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

बहुनात्र किमुक्तेन किं बह्वक्षरमालया । वैशाखस्य सितामेकां तृतीयां शृणु पाण्डव ।।१
स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् । यदस्यां क्रियते किञ्चित्सर्वं स्यात्तदिहाक्षयम् ।।२
आदौ कृतयुगस्येयं युगादिस्तेन कथ्यते । सर्वपापप्रशमनी सर्वसौख्यप्रदायिनी ।।३
शाकले नगरे कश्चिद्धर्मनामाभवद्वणिक् । प्रियंवदः सत्यरतो देवब्राह्मणपूजकः ।।४
तेन श्रुतं वाच्यमानं तृतीया रोहिणी पुरा । यदा स्याद्बुधसंयुक्ता तदा सा च महाफला ।।५

आनन्दोपभोग करती है तथा दश सहस्र योजन के मण्डल में वह असाधारण सौन्दर्य की प्राप्ति पूर्वक बहुमूल्य आभूषणों से भूषित होकर वह पतिव्रता पुत्र-पौत्र समेत अत्यन्त सुभगा होती है । इस प्रकार मैंने इस आनन्तर्य व्रत का समस्त विधान बता दिया, जो विनम्र भक्त को ही बताया जा सकता है अन्य को नहीं इस आनन्तर्य तृतीया को उपवास रहकर सविधान प्रत्येक पक्ष में सुसम्पन्न करने वाली स्त्री सुत, मित्र आदि अपने स्वजनों के साथ चिरकाल तक निरन्तर सुखोपभोग करती है ।७४-७७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर सम्वाद में
अनन्तर तृतीया व्रतवर्णन नामक उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।२९।

अध्याय ३०

अक्षयतृतीया व्रत का वर्णन

कृष्णजी बोले—पाण्डव ! अन्यतृतीया की बहुत व्याख्या एवं वाक्योजना करने की अपेक्षा वैशाखशुक्ल तृतीया की व्याख्या, जिसमें स्नान, दान, जप, हवन, स्वाध्याय और पितृतर्पण आदि जो कुछ किया जाये वह सब अक्षय होता है सुनो मैं बता रहा हूँ, सुनो ! यह व्रत कृतयुग के आदि का है इसीलिए इसे युगादि कहा गया है, जिसके अनुष्ठान से समस्त पापों के शमन पूर्वक अखिलसौख्य की प्राप्ति होती है । १-३। शाकल नामक नगर में धर्म नामक एक वैश्य रहता था, जो प्रिय एवं सत्यवक्ता और देव ब्राह्मण-पूजक था उसने किसी कथावाचक विद्वान् से यह सुनकर—कि रोहिणी नक्षत्र समेत बुधवार के दिन तृतीया होने से

तस्यां यद्दीयते किञ्चित्तत्सर्वं चाक्षयं भवेत् । इति श्रुत्वा स गङ्गायां सन्तर्प्य पितृदेवताः ॥६
गृहमागत्य करकान्सान्नानुदकसंयुतान् । अम्बुपूर्णान्गृहे कुम्भान्क्रमान्निःशेषतस्तदा ॥७
यवगोधूमचणकसक्तुदध्यौदनं तथा । इक्षुक्षीरविकारांश्च सहिरण्यांश्च शक्तितः ॥८
शुचिः शुद्धेन मनसा ब्राह्मणेभ्यो ददौ वणिक् । भार्यया वार्यमाणोऽपि कुटुम्बासक्तचिन्तया ॥९
तावत्स च स्थितः सत्त्वे मत्वा सर्वं विनश्वरम् । धर्मार्थकाम शक्तस्तु कालेन बहुना ततः ॥१०
जगाम पञ्चत्वमसौ वासुदेवं स्मरन्मुहुः । ततः स क्षत्रियो जातः कुशावत्यां नरेश्वरः ॥११
बभूव चाक्षया तस्य समृद्धिर्धर्मनिर्जिता । इयाज स महायज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥१२
ददौ गोभूहिरण्यादि दानान्यस्यामहर्निशम् । बुभुजे कामतो भोगान्दीनार्तांस्तर्पयञ्जनान् ॥१३
तथाप्यक्षयमेवास्य क्षयं याति न तद्धनम् । श्रद्धापूर्वं तृतीयायां यद्दत्तं विभवं विना ॥१४
एतद्व्रतं मयाख्यातं श्रूयतामत्र यो विधिः । उदकुम्भान्सकरकान्स्नानसर्वरसैर्युतान् ॥१५
ग्रैष्मिकं सर्वमेवात्र सस्यदानं प्रशस्यते । छत्रोपानत्प्रदानं च गोभूकाञ्चनवाससाम् ॥१६
यद्यदिष्टतमं चान्यत्तद्देयमविशंकया । एतत्ते सर्वमाख्यातं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥१७
अनाख्येयं न मे किञ्चिदस्ति स्वस्त्यस्तु तेऽनघ ॥१८

अस्यां तिथौ क्षयमुपैति हुतं न दत्तं तेनाक्षया च मुनिभिः कथिता तृतीया ।
उद्दिश्य यत्सुरपितॄन्क्रियते मनुष्यैस्तच्चाक्षयं भवति भारत सर्वमेव ॥१९

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे-
ऽक्षय्यतृतीयाव्रतवर्णनं नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।३०

वह महान् फल प्रदान करती है, उस दिन जो कुछ थोड़ा बहुत दान दिया जाये, वह सब अक्षय होता है—गंगा में स्नान पितृ-तर्पण आदि करके पुनः घर आकर जलपूर्ण कलश, जवा, गेहूँ, चना के सत्तु, दही, चावल, गुड़ घी और अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्ण की दक्षिणा ब्राह्मणों को अर्पित करना आरम्भ किया । उस समय कुटुम्ब के भरण-पोषण में व्यस्त रहने वाली उस अपनी स्त्री के वरण करने पर भी वह निखिल वस्तुओं को नश्वर मानकर उसी भाँति दान करता रहा । इस भाँति धर्म, अर्थ और काम में आसक्त रहने वाले उस वैश्य का बहुत समय के उपरांत वासुदेव के स्मरण पूर्वक निधन हो गया । पश्चात् कुशावती नगर का वह नरेश्वर होकर उत्पन्न हुआ । पिछले जन्म के उस व्रत के प्रभाव से उसके अगाध सम्पत्ति हुई जिसके द्वारा उसने अनेक महान् यज्ञों को सुसम्पन्न किया और उनके प्रारम्भ में उसने गौ, भूमि, सुवर्ण आदि के दान रात-दिन किये तथा दीन-हीनों को यथोचित तृप्त करते हुए अनेक भाँति के समस्त सुखों के उपभोग किये, किन्तु उसका वह धन श्रद्धा समेत तृतीया में दान करने के नाते वैसे ही अक्षय बना रहा । इस प्रकार इस व्रत को मैंने तुम्हें बता दिया । अब इसके विधान को बता रहा हूँ, सुनो ! जलपूर्ण कलश और करवा के जो स्नान एवं समस्त रसों से पूर्ण हो, दान ग्रीष्मऋतु में अत्यन्त प्रशस्त बताया गया है तथा यथाशक्ति छत्र, उपानह, गौ, भूमि और सुवर्ण एवं अन्य अभीष्ट वस्तु के दान भी उसे निःसंकोच करना चाहिए । अनघ ! यह तो मैंने सुना दिया अब और क्या सुनना चाहते हो, क्योंकि तुमसे कुछ भी गुप्त मैं नहीं रखना चाहता हूँ । तुम्हारा कल्याण हो । भारत ! इस तिथि में हवन अथवा दान करने से वह क्षीण नहीं होता है, इसीलिए मुनियों ने इसे अक्षय तृतीया कहा है क्योंकि देव पितृ के उद्देश्य से किये गये सभी कर्म इसमें अक्षय होते हैं ।४-१९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर के सम्वाद में
अक्षय तृतीया व्रत वर्णन नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त ।३०।

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

अङ्गारकचतुर्थीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

रूपसौभाग्यसुखदं नरनारीजनप्रियम् । पापापहं बहुफलं सुकरं सूपवासकम् ॥१
ऋद्धिवृद्धिकरं स्वर्ग्यं यशस्यं सर्वकामदम् । तन्मे वद व्रतं किञ्चिद्यदि तुष्टोऽसि माधव[1] ॥२

माधव उवाच

शृणु पार्थ परं गुह्यं यन्मया कथितं न च । पुरा तव वनस्थस्य तदद्य प्रवदाम्यहम् ॥३
शिवयोरतिसंहर्षाद्रक्तबिन्दुश्च्युतः क्षितौ । मेदिन्या स प्रयत्नेन विधृतो धृतियुक्तया ॥४
तस्माज्जातः कुमारोऽसौ रक्तो रक्तसमुद्भवः । अङ्गं प्रसिद्धमेवेहाङ्गारको वेग उच्यते ॥५
शिवाङ्गाद्रभसा जातस्तेनाङ्गारक उच्यते । अगस्थोऽङ्गारकान्तिश्च अङ्गप्रत्यङ्गसम्भवः ॥६
सौभाग्यारोग्यकृद्यस्मात्तस्मादङ्गारकः स्मृत । भक्त्या चतुर्थ्यां नक्तेन यस्तु श्रद्धासमन्वितः ॥७
तं पूजयति यत्नेन नारी वाऽनन्यमानसा । तस्य तुष्टः प्रयच्छेत्स यत्त्वया समुदाहृतम् ॥
रूपं सौभाग्यसम्पन्नं नरनारीमनोहरम् ॥८

अध्याय ३१

अङ्गारक चतुर्थीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—यादव ! यदि आप मेरे ऊपर अधिक प्रसन्न हैं, तो व्रत बताने की कृपा कीजिये, जिस के अनुष्ठान द्वारा रूप सौभाग्य सुख की प्राप्ति पूर्वक जो स्त्री पुरुषों को परम प्रिय, पापनाशक एवं अत्यन्त फलदायक हो और उपवास रहकर उसे सुसम्पन्न करने पर ऋद्धि, वृद्धि, स्वर्ग, यश एवं समस्त कामनाओं की सफलता अत्यन्त सुलभ हो । १-२

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! पहले तुम्हारे वनवास के समय भी जिस गुह्य व्रत को नहीं बताया था, आज उसे मैं तुम्हें बता रहा हूँ । पार्वती-शिव के काम-केलि के समय जो रक्त बिन्दु पृथिवी पर च्युत हुआ उसे इस भूमि ने अत्यन्त प्रयत्न के साथ धारण किया था, जिस इस रक्तवर्ण के कुमार की उत्पत्ति हुई है । अंगारक नामक वेग का है, शिवजी के अंग से शीघ्रता से उत्पन्न होने और अंग में रहकर उसकी कांति समेत अंग प्रत्यंग से जन्मग्रहण एवं सौभाग्य आरोग्य प्रदान करने के नाते भी उन्हें अंगारक कहा जाता है। श्रद्धा भक्ति समेत चतुर्थी के दिन नक्त व्रत समेत उनकी अर्चना करने वाले स्त्री पुरुष को वे प्रसन्न होकर उपरोक्त सभी फलप्रदान करते हैं और वह रूप-सौभाग्य सम्पन्न एवं नर नारी को अत्यन्त प्रिय भी हैं। ३-८

---

१. यादव ।

युधिष्ठिर उवाच

एतन्मे[1] वद देवेश अङ्गारकविधिं शुभम् । सहोममन्त्रसंस्थानं साधिवासविधानतः ॥९

श्रीकृष्ण उवाच

पूर्वं तु कृत सङ्कल्पः स्नानं कृत्वा बहिर्जले । स्नानार्थं मृत्तिकां मंत्रैर्गृह्णीयादम्भसि स्थितः ॥१०
त्वं मृदे वन्दिता पूर्वं कृष्णेनोद्धरताकिल । तेन मे दह पापौघं यन्मया पूर्वसञ्चितम् ॥११
इमं मन्त्रं पठन्पार्थ आदित्याय प्रदर्शयेत् । आदित्यरश्मिसन्तप्तां गङ्गाजलकणोक्षिताम् ॥१२
तां मृदं शिरसि प्रार्थ्य पूर्नं दत्त्वाङ्गसन्धिषु । ततः स्नानं प्रकुर्वीत मन्त्रेणान्तर्जलेपुनः ॥१३
त्वमापो योनिः सर्वेषां दैत्यदानवरक्षसाम् । स्वेदजोद्भिज्जयोनीनां रसानां पतये नमः ॥१४
स्नातोऽहं सर्वतीर्थेषु सर्वप्रस्रवणेषु च । नदीषु देवखातेषु स्नानं तेषु च मे भवेत् ॥१५
ध्यायन्ध्यनिमिमंमन्त्रं ततः स्नानं समाचरेत् । ततः स्नात्वा शुचिर्भूत्वा गृहमागत्य न स्पृशेत् ॥
न जल्पेच्च न वीक्षेत क्वचित्पापिष्ठमेव हि ॥१६
दूर्वाश्वत्थौ शमीं स्पृष्ट्वा मां च मन्त्रेण मन्त्रवित् । दूर्वामप्यस्य मन्त्रेण युतेन समुपस्थिताम् ॥१७
त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि सर्वदेवैश्च वन्दिता । वन्दिता दह तत्सर्वं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥१८

(इति दूर्वामन्त्रः)

पवित्राणां पवित्रं त्वं काश्यपी पठ्यसे श्रुतौ । शमी शमय तत्पापं यन्मया दुरनुष्ठितम् ॥१९

(इति शमीमंत्रः)

युधिष्ठिर ने कहा—देवेश ! इस अंगारक के शुभ विधान को, होम और अधिवास समेत बताने की कृपा कीजिये ।९

श्रीकृष्ण जी बोले—सर्वप्रथम संकल्प करने के उपरांत स्नान के निमित्त जल में खड़े होकर मंत्रोच्चारण पूर्वक मृत्तिका ग्रहण करे—मृत्तिके ! उद्धार करने के समय कृष्ण ने सर्वप्रथम तुम्हारी वन्दना की है, इसलिए मेरे भी पापों को नष्ट करो, मैंने भी पूर्व पापों का संचय किया है, इस मंत्र को कहते हुए वह मृत्तिका सूर्य को दिखाकर पुनः अपने शिर एवं अंग प्रत्यंग में लेपन कर सूर्य की रश्मि से स्पृष्ट गंगाजल में स्नान करते हुए यह मंत्र कहे कि दैत्य, दानव राक्षस आदि सभी को उत्पन्न करने वाले, तथा स्वेदज, उद्भिज एवं समस्त रसों के पति तुम्हें नमस्कार है, मैं आप में स्नान कर रहा हूँ। इसलिए यह मेरा स्नान समस्त तीर्थों, झरनों, नदियों एवं देव कुण्डों के स्नान का फल प्राप्त करे । इस प्रकार कहते हुए स्नान करके घर आने पर किसी का स्पर्श एवं बातचीत बिना किये (मौन रहकर) पहले यह देख ले कि यहाँ कोई पापी तो नहीं है । पश्चात् दूर्वा, अश्वत्थ (पीपल), शमी और मेरे मंत्र के उच्चारण पूर्वक स्पर्श करे। प्रथम दूर्वा के स्पर्श में—दूर्वे ! अमृत द्वारा तुम्हारा जन्म हुआ है और समस्त देवों से तुम अर्चित हो अतः मैं भी तुम्हारी वन्दना कर रहा हूँ, मेरे सभी दुष्कृतों का दहन करो।१०-१८। अनन्तर शमी वृक्ष के समीप जाकर इस प्रकार कहते हुए उसका स्पर्श करे तुम अत्यन्त पवित्र, और वेद में काश्यप भी कहे जाते हो, अतः शमी वृक्ष ! मेरे सभी पापों को विनष्ट करो।१९। अश्वत्थ के समीप

---

१. त्वमेव वद देवेश ।

अश्वत्थमङ्गं लभते मन्त्रमेतं निबोध मे । अक्षिस्पंदं भुजस्पंदं दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तितम् ॥
शत्रूणां च समुत्थानमश्वत्थ शमयस्व मे ॥२०

(इत्यश्वत्थमन्त्रः)

गां दद्यात्तु ततो देवीं सवत्सां सप्रदक्षिणाम् । तामालभ्य तु मन्त्रेण मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥२१
सर्वे देवमये देवि दैवतैस्त्वं सुपूजिता । तस्मात्स्पृशामि वन्दामि वन्दिता पापहा भव ॥२२

(इति गोमन्त्रः)

एवं मन्त्रं पठन्पार्थ भक्तिभावेन भावितः । प्रदक्षिणां यः कुरुते गां दृष्ट्वा वरवर्णिनीम् ॥२३
प्रदक्षिणीकृता तेन पृथिवी नात्र संशयः । एवं मौनेन चागत्य वन्द्यान्वन्द्य गृहं व्रजेत् ॥२४
प्रक्षाल्य च मृदा पादौ आहिताऽग्निगृहं विशेत् । होमं तत्र प्रकुर्वीत एभिर्मंत्रैः पदैर्वरैः ॥२५
शर्वाय शर्वपुत्राय पार्वत्या गोः सुताय च । कुजाय लोहिताङ्गाय ग्रहेशाङ्गारकाय च ॥
भूयोभूयोयमाहुत्या हुत्वाहुत्वा जुहोति वै ॥२६
ओंकारपूर्वकैर्मंत्रैः स्वाहाकारान्तयोजितैः । अष्टोत्तरशतं पार्थ अर्द्धमर्धार्धमेव च ॥२७
एभिर्मन्त्रपदैर्भक्त्या शक्त्या वा काममेव वा । समिद्भिः खादिरीभिश्च[1] घृतदुग्धैस्तिलैर्यवैः ॥२८
भक्ष्यैर्नानाविधैरन्यैः शक्त्या वा मन्त्रविद्वशी । हुत्वाहुतीस्ततः पार्थ देवं संस्थापयेत्क्षितौ ॥२९
स्नपनं[2] केचिदिच्छन्ति सगुडे ताम्रभाजने । सौवर्णं रक्तवर्णं च शक्त्या दारुमयं तथा ॥३०
कृष्णागरुमयं चैव श्रीखण्डघटितं पुनः । सौवर्णपात्रे रौप्ये वा अर्घ्यं कुंकुमकेसरैः ॥३१
अन्यैरालोहितैः पार्थ पुष्पैर्वस्त्रैः फलैः शुभैः । राजन्रत्नैश्च विविधैरर्थवान्भक्तितोऽर्चयेत् ॥३२

जाकर करबद्ध होकर कि—अश्वत्थ ! अशुभनेत्र एवं भुजा के स्फुरण, दुःस्वप्न, तथा शत्रुओं के समुत्थान का शमन करो ।२०। उसी प्रकार गौ के समीप जाकर जो नवी के निमित्त दान की गई हो क्षमा प्रार्थी हो कि सर्वदेवमये, देवि ! समस्त देवों ने तुम्हारी अर्चना की है, इसलिए मैं भी तुम्हारे स्पर्श एवं वन्दना करता हूँ, मेरे पापों का अपहरण करो ।२१-२२। पार्थ ! इस प्रकार अत्यन्त भक्ति में तन्मय होकर जो उत्तम गौ की प्रदक्षिणा करते हैं, वे समस्त पृथ्वी की प्रदक्षिणा करते हैं, इसमें संदेह नहीं । पुनः मौन ही रहकर वन्दनीयाँ की वन्दना पूर्वक मृत्तिका से हाथ चरण शुद्ध कर अग्नि शाला में जहाँ आहिताग्नि स्थापित हो, जाकर मंत्रोच्चारण पूर्वक हवन आरम्भ करे—मैं उन मंगले के निमित्त आहुति प्रदान करता हूँ, जो शर्व रूप, शर्व पुत्र, तथा पार्वती और गौ के पुत्र कहे गये हैं, तथा लोहित अंग, गृहेश एवं अंगारक कहे जाते हैं एवं जिसके लिए बार-बार आहुति प्रदान की जाती है । इस प्रकार ओंकार पूर्वक उनके नाम के अंत में स्वाहा पद लगाकर (कुजाय नमः स्वाहा) एक सौ आठ, आधा अथवा तदर्द्ध आहुति अपनी शक्ति के अनुसार खैर आदि की लकड़ी की प्रज्वलित अग्नि में घृत, दुग्ध, तिल, जवा और अनके भाँति के भक्ष्य पदार्थों समेत डालकर अनन्तर देव को पृथ्वी में स्थापित कर गुड़ समेत ताँबें के पात्र अथवा सुवर्ण या काष्ठ के रक्तवर्ण पात्र में जो कृष्ण अगरू तथा श्रीखण्ड से विभूषित हो, अथवा कुंकुम केसर युक्त सुवर्ण चाँदी के पात्र में रखकर रक्तवर्ण के पुष्प वस्त्र उत्तम फल एवं रत्नों द्वारा उनकी अर्चना करें।२३-३२। राजन् !

---

१. बादरीभिः । २. स्थापनम् ।

यावद्धि शक्यते चित्तं वित्तवान्भक्तिभावितः । तावद्धि वर्धते पुण्यं दातुः शतसहस्रिकम् ॥३३
किञ्चित्ताम्रमये पात्रे वंशजे मृण्मयेपि वा । पूजयन्ति नरा रक्तै[1] पुष्पैः कुंकुमकेशरैः ॥३४
(ॐ अङ्गारकाय नमः शिरसि । ॐ कुजाय नमः वदने । ॐ भौमाय नमः स्कंधयोः । ॐ मङ्गलाय नमः
बाह्वोः । ॐ रक्ताय नमः उरसि । ॐ लोहिताङ्गाय नमः कट्याम् । ॐ आराय नमः जंघयोः ।
ॐ महीधराय[2] नमः पादयोः एषाष्टपुष्पिका । पुरुषाकृति कृतः पात्रे कुजं मंत्रैः समर्चयेत् ।
गुग्गुलं घृतसंयुक्तं कृष्णागरुसमन्वितम् । धूपं सद्द्रव्यजं वापि दद्यात्तत्र समाधिना ॥३५
होमं कुर्वीत पूर्वोक्तैर्मंत्रैर्मंगलसंज्ञितैः । एवं प्रणम्य देवेश ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥३६
निष्पावकं भोजनं वा दद्याच्छक्त्या सदक्षिणम् । वित्तशाठ्यं हि कुर्वाणो न मुख्यफलभाग्भवेत् ॥३७
पश्चाद्भुञ्जीत मौनेन भूमिं कृत्वा तु भाजनम् । मन्त्रेणानेन चालभ्य तन्निबोध मयोदितम् ॥३८
सर्वौषधिरसावासे सर्वदा सर्वदायिनी । त्वत्तले भोक्तुकामोऽहं तद्भुक्तममृतं भवेत् ॥३९

युधिष्ठिर उवाच

अङ्गारकेण संयुक्ता चतुर्थी नक्तभोजनैः । उपोष्या कतिमात्रा सा किमेका वद यादव ॥४०

श्रीकृष्ण उवाच

चतुर्थी च चतुर्थी च यदाङ्गारकसंयुता । उपोष्या तत्रतत्रैव प्रदेयो विधिना कुजः ॥

अत्यन्त भक्ति श्रद्धासमेत यथाशक्ति दान करने से सैकड़ों एवं सहस्रों गुना पुण्य की वृद्धि होती है । बाँस अथवा मृत्तिका के कुछ रक्तपात्र में रक्तपुष्प, कुंकुम, केशर द्वारा मनुष्यों को ओं अंगारकाय नमः से शिर, ओं कुजाय नमः से मुख, ओं भौमाय नमः से कंधे, ओं मंगलायनमः से बाहुओं रक्तायनमः से उर, ओं लोहितांगाय नभः से कटि, ओ आराय नमः से जंघे, ओं महीधरायनमः से चरण, की पूजा करनी चाहिए । पुरुषाकार आकृत्ति बनाकर पात्र में स्थापन पूर्वक इस आठ पुष्पिका रूप कुज के मंत्र द्वारा उनकी सविधान अर्चना करना बताया गया है । पूजन के समय घृत, कृष्ण अगरु समेत गुग्गुल की अथवा किसी उत्तम वस्तु की धूप अर्पित करना चाहिए । पश्चात् उस समाधिनिष्ठ पुरुष को पूर्वोक्त मंगल मंत्र के उच्चारण द्वारा हवन करके प्रणाम पूर्वक उस देव को ब्राह्मण के लिए अर्पित करे । यथाशक्ति दक्षिणा समेत अग्नि पक्व के अतिरिक्त अन्य भोजन अर्पित करना चाहिए । वित्तशाठ्य तो कभी करना ही न चाहिए, क्योंकि उसके करने से मुख्य फल की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती है । तदुपरान्त मौन होकर भूमि पर भोजन पात्र रखकर इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक भोजन करें—समस्त औषधों के रस से सुवासित सर्वदा सब कुछ देने वाली पृथिवी देवी ! मैं तुम्हारे तल के ऊपर भोजन करने की इच्छा प्रकट कर रहा हूँ, अतः वह मेरे भुक्त पदार्थ अमृत के समान होये ।३३-३९

युधिष्ठिर ने कहा—यादव ! अंगारक संयुक्त चतुर्थी का नक्त भोजन द्वारा एक ही तिथि में उपवास करना चाहिए अथवा अनेक चतुर्थी तिथि में इसे विस्तार पूर्वक बताने की कृपा कीजिये ।४०

श्रीकृष्ण जी बोले—पाण्डव ! अंगारक युक्त प्रत्येक चतुर्थी तिथि में उपवास रह कर सविधान

---

१. रत्नैः । २. महीनन्दनाय नमः ।

वित्तहीनाः प्रतीक्षन्ते यावद्वित्तोपलम्भनम् ॥४१
चतुर्थ्यां च चतुर्थ्यां च विधानं शृणु पाण्डव । सौवर्णपात्रे कृत्वा तु अङ्गारकमकृत्रिमम् ॥
दश सौवर्णिकं मुख्यं दशार्द्धार्द्धमथापि वा ॥४२
विंशत्पलानि पात्राणि विंशत्यर्द्धपलानि च । विंशत्कर्षाणि वा पार्थ अतो न्यूनं न कारयेत् ॥४३
प्रतिष्ठाप्य कुजं मन्त्रैर्वस्त्रैः सम्परिवेष्टितम् । पुष्पमण्डपिकां कृत्वा दिव्यां सद्धूपधूपिताम् ॥४४
तत्र[1] सम्पूजयेद्देवं पूर्वमन्त्रैर्विधानतः । भक्त्या भोज्यैरनेकैश्च फलैरत्नैश्च सागरैः ॥४५
वस्त्रैः प्रावरणैर्यानैः शय्योपानद्वरासनैः । छत्रैः पुष्पैर्गन्धवरैः शक्त्या वित्तानुसारतः ॥४६
ततो विप्रं परीक्षेत व्रतशौचसमन्वितम् । वेदाध्ययनसम्पन्नं शास्त्रज्ञं निरहंकृतिम् ॥४७
अङ्गारकविधिं यश्च सम्यग्जानाति शास्त्रतः । आह्वानविधिमन्त्रांश्च होमार्चनविसर्जनम् ॥४८
सम्पूज्य वस्त्राभरणैस्तस्मै देयः कुजोत्तमः । यथा श्रुतो यथा ज्ञातस्तथा भक्त्या ह्युपोषितः ॥४९
वित्तसारेण तुष्य त्वं मम भौम भवाद्भव । पठन्निमं मन्त्रवरं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥
ब्राह्मणश्चाप्यसौ विद्वन्मन्त्रमेतमुदाहरेत् ॥५०
मङ्गलं प्रतिगृह्णामि उभयोरस्तु मङ्गलम् । दातृप्रतिग्राहकयोः क्षेमारोग्यं भवत्विति ॥५१

प्रतिग्राहकमन्त्र

एवं चतुर्थे सम्प्राप्ते धनप्राप्तिर्न विद्यते । तदामन्त्रार्चनपरः पुनरेतां समाचरेत् ॥५२

मंगल के लिए अर्चना की वस्तुएँ अर्पित करनी चाहिए । निर्धन लोगों को धन प्राप्ति के निमित्त अंगारक युक्त प्रत्येक चतुर्थी का विधान विस्तार पूर्वक बता रहा हूँ, सुनो ! पार्थ ! अंगारक की अकृत्रिम प्रतिमा सुवर्ण के उस पात्र में जो दश तोले, तदर्ध (पाँच), तदर्ध (ढाई), बीस पल, दश पल अथवा बीस कर्ष के परिमाण का बना हो, इससे न्यून का पात्र कभी न बनाना चाहिए, स्थापित कर वस्त्र से आवेष्टित करने के उपरांत पुष्प मण्डपिका में पूर्वोक्त मंत्रों के उच्चारण पूर्वक सविधान दिव्य धूप आदि वस्तुओं से उनकी अर्चना करे । पुनः भक्तिपूर्वक भोज्यार्थ अनेक फल, समुद्र रत्न, ऊनी वस्त्र, पान, शय्या, उपानह, उत्तमासन, छत्र, पुष्प, गन्ध आदि यथाशक्ति समुपार्जित वस्तुओं का समर्पण कर किसी व्रती, पवित्रता पूर्ण, वेदाध्याय धनसम्पन्न, शास्त्र मर्मज्ञ एवं निराभिमानी ब्राह्मण को सादर बुलाकर जो अंगारक के शास्त्रीय विधान को भली भाँति जानता हो, तथा आह्वान, हवन, अर्चन और विसर्जन का मर्मज्ञ हो, वस्त्र और आभूषणों द्वारा उसकी पूजा करके मंगल की वह उत्तम प्रतिमा उन्हें अर्पित करे । उस समय इस मंत्र के उच्चारण करते हुए ब्राह्मण को सादर समर्पित करना चाहिए—शास्त्र में जिस प्रकार सुना और जिस भाँति मेरी बुद्धि में इसकी धारणा हुई उसके अनुसार भक्ति पूर्वक मैंने उपवास रहकर अपनी शक्ति के अनुसार आपकी अर्चना की है, अतः भव (शिव) द्वारा उत्पन्न भौमदेव ! मेरे ऊपर प्रसन्न हो । दान-प्रतिग्रहीता उस विद्वान् को भी उस समय यह मंत्रोच्चारण करना चाहिए कि मंगल की यह उत्तम मूर्ति मैं अपना रहा हूँ, इसलिए दोनों (दाता प्रतिग्रहीता) के यहाँ मंगल होता रहे तथा वे दोनों कुशल एवं

---

१. तत्रस्थमर्चयेन्मन्त्रैः पुष्पधूपैर्विधानतः । २. शुभैः ।

आशरीरनिपाताद्वा यथोक्तफलभाग्भवेत् । अल्पवित्तो यथा शक्त्या सर्वमेतत्समाचरेत् ।।५३
अङ्गारके संयुक्ता वस्त्रां तिलशराविकाम् । अनेन विधिना दत्त्वा यथोक्तफलभाग्भवेत् ।।५४
एवं चतुर्थी यो भक्त्या कुजयुक्तामुपोपयेत् । तस्य पुण्यफलं यच्च तन्निबोध युधिष्ठिर ।।५५
इह स्थित्वा चिरं कालं पुत्रपौत्रश्रिया वृतः । देहावसाने दिव्यौजा दिव्यगन्धानुलेपनः ।।५६
दिव्यनारीगणवृतो विमानवरमास्थितः । याति देवपुरं हृष्टो देवैः सहाभिनन्दितः ।।५७
स तत्र रमते कालं देवैः सह सुरेश वत् । चतुर्युगानि षट्त्रिंशत्ततः कालान्तरे पुनः ।।५८
इह चागत्य राजासौ कुले महति जायते । रूपवान्धनवान्दाम्मी दानशीलो दयापरः ।।५९
नारी च रूपसम्पन्ना सुभगा जातिसंयुता । पुत्रपौत्रैः परिवृता भर्त्रा सह रमेच्चिरम् ।।६०
रमित्वा सुचिरं कालं पुनः स्वर्गगतिं लभेत् । एष ते कथितो राजन्सरहस्यो विधिस्तथा ।।
दुर्लभो यो मनुष्याणां देवानां भद्रमस्तु ते ।।६१

अङ्गारकेण सहिता तु सिता चतुर्थी शस्ता सुरार्च्चनविधौ पितृपिण्डदाने ।
तस्यां कुजं कुरुकुलोद्वह येऽर्चयन्ति भूमौ भवन्ति बहुमङ्गलभाजनास्ते ।।६२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
चतुर्थीव्रते अङ्गारकचतुर्थीव्रतवर्णनं नामैकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।३१।

आरोग्य रहें ।४१-५१। इस प्रकार चतुर्थी के दिन पूजन करने पर यदि धन लाभ न हो तो यंत्र के पूजन पूर्वक पुनः अंगारक युक्त चतुर्थी में मंगल की पूजा प्रारम्भ कर आजीवन करता रहे, तो अवश्य फलभागी होगा । निर्धन व्यक्ति को भी अंगारक युक्त सभी चतुर्थी के दिन उपवास पूर्वक कुज के लिये वस्त्र, तिल, एवं कसोरा आदि के समर्पण पूर्वक सविधान उनकी अर्चना करनी चाहिए, जिससे उसे भी समस्त फल प्राप्त होते हैं । युधिष्ठिर ! इस प्रकार मंगल युक्त चतुर्थी के दिन उपवास रहकर अर्चना समेत उन्हें उपरोक्त वस्तुओं के समर्पण करने से जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! इस मर्त्य लोक में चिरकाल तक पुत्र-पौत्र आदि परिवार समेत अनेक सुखों के उपभोग करने के उपरांत देहावसान होने पर दिव्य तेज, द्वारा आनन्द मग्न देवों के साथ देवलोक की यात्रा करता है । वहाँ पहुँचकर इन्द्र की भाँति देवों के साथ समस्त सुखोपभोग करते हुए छत्तीस चतुर्युगी व्यतीत करता है । अनन्तर कदाचित् पृथिवी पर जन्मग्रहण करके उत्तम कुल में रूपवान्, धनवान, सत्यवक्ता, दानी, एवं दयाशील राजा होता है । इस व्रत को सुसम्पन्न करने वाली स्त्री भी रूप सौन्दर्य, सौभाग्य एवं उत्तमगति की प्राप्ति पूर्वक पुत्र-पौत्र समेत अपने पति के साथ चिरकाल तक रमण करती है और देहावसान होने पर पुनः स्वर्ग की प्राप्ति करती है । राजन् ! इस प्रकार मैंने सरहस्य इस अंगारक चतुर्थी के विधान को सुना दिया जो मनुष्यों एवं देवों के लिए अत्यन्त दुर्लभ है । तुम्हारा मंगल हो । कुरुकुलोद्वह ! शुक्ल पक्ष की चतुर्थी अंगारक युक्त होने पर देवार्चना और पितरों के पिण्डदान के लिए उत्तम बतायी गयी है । अतः जो कोई उस दिन मंगल की सविधान अर्चना सुसम्पन्न करते हैं, उन्हें इस भूतल में अत्यन्त कल्याण की प्राप्ति होती है ।५२-६२

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर सम्वाद में
चतुर्थी व्रत के मध्य अंगारक चतुर्थी व्रत वर्णन नामक एकतीसवाँ अध्याय समाप्त ।३१।

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

विनायकस्नपनचतुर्थीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

यन्न सिद्धचन्ति कर्माणि प्रारब्धानि नरोत्तमैः । तत्केन कारणेनैतत्पृष्टो मे ब्रूहि माधव ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

विनायकोर्थसिद्धयर्थं लोकस्य विनियोजितः । गणानामाधिपत्ये च रुद्रेण ब्रह्मणा तथा ॥२
तेनोपसृष्टो यस्तस्य लक्षणानि निबोधत । स्वप्नेऽवगाहतेऽत्यर्थं जलं मुण्डांश्च पश्यति ॥३
काषायवाससश्चैव क्रव्यादांश्चाधिरोहति । अन्त्यजैर्गर्दभैरुष्ट्रैः सहैकत्रावतिष्ठते ॥४
व्रजमानस्तथात्मानं मन्यते तु गतं परैः । विमना विफलारम्भः ससीदत्यनिमित्ततः ॥५
पातकी विहीनच्छायो म्लानत्वहेतुलक्षणः । करभारूढमात्मानं महिषखरगं तथा ॥६
यातुधानाश्रितं यानं श्मशानस्यान्तिकं[1] नृप । वीक्षेत कुरुशार्दूल स्वप्रान्ते नात्र संशयः ॥
तैलार्द्रमात्रं स्वं देहं करवीरविभूषितम् ॥७
तेनोपसृष्टो लभते न राज्यं राजनन्दनः । कुमारी न च भर्तारमपत्यं गर्भमंगना ॥८
आचार्यत्वं श्रोत्रियश्च न शिष्योऽध्ययनं तथा । वणिग्लाभं न चाप्नोति कृषिं चैव कृषीवलः ॥९

अध्याय ३२

विनायकस्नपनचतुर्थीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—माधव ! मुझे यह जानने की इच्छा है कि उत्तम मनुष्यों द्वारा भी आरम्भ किये गये कर्म सफल न होकर अधूरे रह जाते हैं, इसका क्या कारण है, बताने की कृपा कीजिये । १

श्रीकृष्ण बोले—लोक में अर्थसिद्धि के निमित्त ब्रह्मा और शिव जी ने गणाधिपति विनायक की स्थापना की है । उन्होंने यह बताया है कि उनके पूजन करने पर जिन लक्षणों का प्रादुर्भाव स्वप्न में होता है, उन्हें बता रहा हूँ, जो शुभाशुभ के सूचक हैं, सुनो ! स्वप्न में अगाध जल का अवगाहन, काषाय वस्त्र धारी मुण्डी (संन्यासी) का दर्शन, राक्षसारोहण, शूद्र, गधे और ऊँटो के साथ एकत्र स्थिति, तथा चलते हुए अपने को दूसरे द्वारा अन्यत्र प्राप्त होना आदि देखने वाले पुरुष के आरम्भ निष्फल होते हैं तथा म्लान मुख होकर उसे कष्ट का अनुभव करना पड़ता है । पातकी और छायाहीन पुरुष म्लान मुख होता है । हाथी के शिशु, महिष अथवा गधे पर बैठना, राक्षस रक्त के स्पर्श, श्मशान समीप यात्रा, तथा कुरुशार्दूल ! तैल से आर्द्र होना और कनेर पुष्प से विभूषित होने के स्वप्न देखने वाले राजपुत्र को राज्य की प्राप्ति कुमारी को पति की प्रप्ति, सधवा को पुत्र, वेदाध्यायी को आचार्यत्व, शिष्य को अध्ययन, वैश्य को लाभ,

---

१. प्रासादानुगतम् ।

स्नपनं तस्य कर्तव्यं पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम् । गौरसर्षपकल्केन वस्त्रेणाच्छादितस्य तु ॥१०
सर्वौषधैः सर्वगन्धैर्विलिप्तशिरसस्तथा । शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तु वारे वा धिषणस्य तु ॥११
पुष्ये च वीरनक्षत्रे तस्यैव पुरतो नृप । भद्रासनोपविष्टस्य स्वस्तिर्वाच्या द्विजैः शुभैः ॥१२
चत्वार ऋग्यजुः सामाथर्वणप्रवणास्ततः । व्योमकेशं तु सम्पूज्य पार्वतीं भूमिजं तथा ॥१३
कृष्णस्य पितरं चाथ अवतारं सितं तथा । धिषणं क्लेदपुत्रं च कोणं लक्ष्मीं च भारत ॥
विधुंतुदं बाहुलेयं नन्दकस्य च धारिणम् ॥१४
अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात्संगमाद्ह्रदात् । मृत्तिकां रोचनां रत्नं गुग्गुलं चाप्सु निक्षिपेत् ॥१५
यदाहृतं ह्येकवर्णैश्चतुर्भिः कलशैर्ह्रदात् । चर्मण्यानडुहे रक्ते स्थाप्य भद्रासनं तथा ॥१६
सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः पावनं कृतम् । तेन त्वामभिषिचामि पावमान्यः पुनंतु मे ॥१७
ॐ भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः । भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः ॥१८
यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि । ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद्घ्नंतु सर्वदा ॥१९
स्नातस्य सार्षपं तैलं स्रुवेणौदुम्बरेण तु । जुहुयान्मूर्ध्नि शकलान्सव्येन प्रतिगृह्य च ॥२०
मितश्च सम्मितश्चैव तथा शालकटङ्कटौ । कूष्माण्डो राजपुत्रश्चेत्यन्ते स्वाहासमन्वितैः ॥२१
नामभिर्बलिमन्त्रैश्च नमस्कारसमन्वितैः । दद्याच्चतुष्पथे शूर्पे कुशानास्तीर्य सर्वतः ॥२२
कृताकृतान्स्तण्डुलांश्चचपलौदनमेव च । मत्स्यान्ह्यपक्वांच तथा मांसमेतावदेव तु ॥२३

कृषक को कृषी की प्राप्ति नहीं होती है ।२-९। उसको किसी पुण्य दिन में दुर्निमित्त के शांत्यर्थ सविधान स्नान करना चाहिए । राजन् ! गौर सर्षप (राई) अलसी की खली के स्पर्श समेत वस्त्र के आच्छन्न होकर समस्त औषध एवं सम्पूर्ण गंध के लेपन शिर में लगाकर शुक्ल पक्ष की चतुर्थी में वृहस्पति के दिन पुष्य नक्षत्र संयुक्त होने पर उनके सामने भद्रासन पर बैठकर ब्राह्मणों द्वारा स्वस्ति वाचन कराये । जो ऋग, यजु, साम तथा अथर्व वेद के मर्मज्ञ विद्वान हो, पश्चात् शिव, पार्वती और मंगल, कृष्ण जनक वासुदेव, वृहस्पति, क्लेदपुत्र, कोण, लक्ष्मी, खड्गसमेत राहु की पूजा करने के उपरांत अश्व, गज के स्थान, वल्मीक (विभौर) तथा संगम की मृत्तिका, गोरोचन, रत्न एवं गुग्गुल । उस चार कलशों के जल में डालकर, जो एक वर्ण के सौन्दर्य पूर्ण बनाये गये हों रक्त वृषभ के चर्मासन पर, जो भद्रतापूर्ण सुरचित हो, उन्हें स्थापित कर स्नान कराते हुए इन मंत्रों के उच्चारण करे—ऋषियों ने जिसके सैकडों धारों को सहस्राक्ष बना अत्यन्त पावन कर दिया है, उसी शत धारा वाले जल के द्वारा तुम्हारा अभिषेक कर रहा हूँ, अत्यन्त पवित्र भाजन होकर मुझे पावन करो ।१०-१७। ओंकार समेत राजा वरुण, सूर्य वृहस्पति, इन्द्र, वायु, एवं सप्तर्षियों ने तुम्हें प्रदान किया है, इसलिए तुम्हारे केश, सीमन्त (के वृन्द के सौन्दर्य) शिर, भाल, कान, और आँखों में स्थित दुर्भाग्य को यह जल शमन करे । स्नान के उपरांत गूलर के स्रुवा द्वारा दाहिने हाथ से राई के तेल की आहुति छोड़ते समय मित, सम्मित, शाल कटंकट, कूष्माण्ड, और राजपुत्र के अंत में स्वाहा पद लगाकर (मिताय स्वाहा) उच्चारण करता रहे । अनन्तर चौराहे पर पहुँच कर सूप में चारों ओर कुश बिछाकर नमस्कार पूर्वक नाम मंत्रोच्चारण करते हुए पृथक्-पृथक् कच्चे-पक्के चावल, मांस,

पुष्पान्वितं सुगन्धं च सुरां च त्रिविधामपि । मूलकं पूरिका पूपांस्तथैवोंडेरकस्रजः ॥२४
दध्यन्नं पायसं चैव गुडवेष्टितमोदकम् । विनायकस्य जननीमुपतिष्ठेत्ततोम्बिकाम् ॥
दूर्वासर्षपपुष्पाणां दत्त्वार्घ्यं पूर्णमञ्जलिम् ॥२५
रूपं देहि जयं देहि भगं भवति देहि मे । पुत्रान्देहि धनं देहि सर्वान्कामांश्च देहि मे ॥२६
प्रबलं कुरु मे देवि बलविख्यातिसम्भवम् । शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः ॥
भोजयेद्ब्राह्मणान्दद्याद्वस्त्रयुग्मं गुरोरपि ॥२७
एवं विनायकं पूज्य ग्रहांश्चैव विधानतः । कर्मणां फलमाप्नोति श्रियं प्राप्नोत्यनुत्तमाम् ॥२८
आदित्यस्य सदा पूजां तिलकं स्वामिनस्तथा । महागणपतेश्चैव कुर्वन्सिद्धिमवाप्नुयात् ॥२९

वैनायकं विनयसत्त्ववतां नराणां स्नानं प्रशस्तमिह विघ्नविनाशकारि ।
कुर्वंति ये विधिवदत्र भवन्ति तेषां कार्याण्यभीष्टफलदानि स संशयोऽत्र ॥३०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
विनायकस्नपनचतुर्थीव्रतं नाम द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ।३२

अथ त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः
विनायकचतुर्थीव्रतवर्णनम्
श्रीकृष्ण उवाच

अथाविघ्नकरं राजन्कथयाम व्रतं तव । येन सम्यक्कृतेनेह न विघ्नमुपजायते ॥१

कच्चे-पक्के मत्स्य पुष्पसमेत सुगन्धित तीनों भाँति के मद्य, मूलक, पूरी, पूआ, अंडेरक की माला । दधि-अन्न, खीर, मोदक समेत गुड़ की पीठी की बलि प्रदान करने के उपरांत विनायक की जननी भगवती अम्बिका के समीप जाकर दूर्वा, राई, समेत, पुष्पों के अर्घ्य प्रदान कर साञ्जलि क्षमा प्रार्थना करे कि भवति ! मुझे रूप-सौन्दर्य, जन, तेज, पुत्र और धन के प्रदान समेत समस्त कामनाओं की सफलता प्रदान करें और देवि ! मुझे प्रख्यात बलवान् बनाये । पश्चात् श्वेत वस्त्र धारण एवं श्वेत गंधानुलेपन पूर्वक ब्राह्मण भोजन हो जाने पर गुरू के लिए युग्म वस्त्र अर्पित करे । इस प्रकार विनायक के पूजनोपरांत ग्रहों की समर्चना करने पर आरम्भ कर्मों के फल तथा उत्तम श्री की प्राप्ति होती है । आदित्य की नित्यपूजा और महागणपति के नित्यतिलक करने से निश्चित सिद्धि प्राप्त होती है । इस प्रकार विनय-विनम्र पुरुषों के लिए विघ्नविनाशकारी एवं प्रशस्त विनायक देव की पूजा बता दी गयी है, जिसे सविधान सुसम्मपन्न करने पर अभीष्ट सिद्धि अवश्य प्राप्त होती है इसमें संदेह नहीं ।१८-३०

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर सम्वाद में
विनायक स्नपन चतुर्थीव्रत वर्णन नामक बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।३२।

अध्याय ३३
विनायकचतुर्थी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! मैं तुम्हें विघ्नविनाशक एक व्रत भी बता रहा हूँ, जिसे सविधान सुसम्पन्न

चतुर्थ्यां[1] फाल्गुने मासि गृहीतव्यं व्रतं त्विदम् । नक्ताहारेण राजेन्द्र तिलान्नं पारणं स्मृतम् ॥२
तदेव वह्नौ होतव्यं ब्राह्मणाय च तद्भवेत् ॥३

शूराय वीराय गजाननाय लम्बोदरायैकरदाय चैव ।
एवं तु सम्पूज्य पुनश्च होमं कुर्याद्व्रती विघ्नविनाशहेतोः ॥४

चातुर्मास्यां व्रतं चैव कृत्वेत्थं पञ्चमे तथा । सौवर्णं गजवक्त्रं तु कृत्वा विप्राय दापयेत् ॥५
ताम्रपात्रैः पायसभृतैश्चतुर्भिः सहितं नृप । पञ्चमेन तिलैः सार्द्धं गणेशाधिष्ठितेन च ॥६
मृण्मयान्यपि पात्राणि वित्तहीनस्तु कारयेत् । हेरम्बं राजतं तद्वद्विधिदानेन दापयेत् ॥
इत्थं व्रतमिदं कृत्वा सर्वविघ्नैः प्रमुच्यते ॥७
हयमेधस्य विघ्ने तु सञ्जाते सगरः पुरा । एतदेव व्रतं चीर्त्वा पुनरश्वं प्रलब्धवान् ॥८
तथा रुद्रेण देवेन त्रिपुरं निघ्नता पुरा । एतदेव कृतं यस्मात्त्रिपुरस्तेन घातितः ॥९
मया समुद्रं विशता एतदेव व्रतं कृतम् । तेनाद्रिद्रुमसंयुक्ता पृथिवी पुनरुद्धृता ॥१०
अन्यैरपि महीपालैरेतदेव कृतं पुरा । तपोऽर्थिभिर्यज्ञ सिद्ध्यै निर्विघ्नं स्यात्परन्तप ॥११
अनेन कृतमात्रेण सर्वविघ्नैः प्रमुच्यते । मृतो रुद्रपुरं याति वराहवचनं यथा ॥१२

करने पर कभी विघ्न नहीं होता है । राजेन्द्र ! फाल्गुन मास की शुक्ल चतुर्थी के दिन इस व्रत नियम के पालनपूर्वक नक्त भोजन कर तिल का पारण करे । उसी (तिल) का हवन एवं ब्राह्मण भोजन भी कराये । शूर, वीर, गजानन, लम्बोदर, एकदंत, आदि के उच्चारण करते हुए सप्रेम उनकी पूजा करके विघ्नविनाशार्थ व्रती को हवन करना चाहिए । चार मास तक इस भाँति व्रत एवं पूजन करने के अनन्तर पाँचवें मास कें सुवर्ण के एक गजदाँत बनाकर ब्राह्मणों को भक्तिपूर्वक अर्पित करना चाहिए । नृप ! चार मास तक पायस और ताम्रपात्र के प्रदान द्वारा उनकी पूजा करके पाँचवे मास में तिल के साथ गणेश की प्रतिष्ठा-पूजन करना चाहिए । निर्धन व्यक्ति को अन्य पात्र अथवा मृत्तिका पात्र में पूजन करना बताया गया है । इस प्रकार हेरम्ब (गणेश) के निमित्त अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्ण अथवा चाँदी की प्रतिमा की सविधान अर्चना कर ब्राह्मण को अर्पित करे इस भाँति इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर वह समस्त विघ्नों से मुक्त हो जाता है ।१-७। क्योंकि पहले समय में अश्वमेध यज्ञ के अनुष्ठान में विघ्न हो जाने पर राजा सगर ने इसी व्रतानुष्ठान द्वारा इस अश्व की पुनः प्राप्ति की थी । उसी भाँति रुद्र देव के त्रिपुरासुर के वध के समय पहले इस व्रत को सुसम्पन्न किया था, जिससे त्रिपुरासुर का निधन हुआ था । समुद्र प्रवेश के समय मैंने भी इस व्रत को सुसम्पन्न किया था, जिससे पर्वत एवं वृक्षों समेत इस पृथ्वी का पुनरुद्धार कर सका । तथा अन्य राजाओं और तपस्वियों ने अपने अभीष्ट सिद्धार्थ इसे सुसम्पन्न किया है। परंतप ! इस व्रत के अनुष्ठान मात्र से प्राणी समस्त विघ्नों से मुक्त हो जाता है और देहावसान होने पर बराह के कथनानुसार वह रुद्रपुर की प्राप्ति करता है।८-१२। इस प्रकार जिसने विश्वेश्वर की जो सप्तमी के चन्द्र-खण्ड की कांति से विभूषित होने की भाँति शुभ्र गजदाँत से सुशोभित है, चतुर्थी के दिन नक्त भोजन

---

१. शुक्लपक्षीयाम्—इत्यर्थः ।

विघ्नानि तस्य न भवन्ति गृहे कदाचिद्धर्मार्थकामसुखसिद्धिविघातकानि ।
यः सप्तमीन्दुशकलाकृतिकां तदन्तं विघ्नेशमर्चयति नक्तकृती चतुर्थ्याम् ।।१३
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
विनायकचतुर्थीव्रतं नाम त्रयस्त्रिशोऽध्यायः ।३३

।। इति चतुर्थीकल्पः समाप्त ।।

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

शान्तिव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

शान्तिव्रतं प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमनाधुना । येन चीर्णेन शान्तिः स्यात्सर्वदा गृहमेधिनाम् ।।१
पञ्चम्यां शुक्लपक्षस्य कार्तिके मासि पार्थिव । आरभ्य वर्षमेकं तु ह्यश्नीयादम्लवर्जितम्[1] ।।२
नक्तं देवं च सम्पूज्य हरिं शेषोपरिस्थितम् । अनन्तायेति पादौ तु धृतराष्ट्राय वै कटिम् ।।३
उदरं तक्षकायेति उरः कर्कोटकाय च । पद्माय कर्णौ सम्पूज्य महापद्माय दोर्युगम् ।।४
शङ्खपालाय वक्षस्तु कुलिकायेति वै शिरः । एवं विष्णुं सर्वगतं पृथगेव प्रपूजयेत् ।।५
क्षीरेण स्नपनं कुर्याद्धरिमुद्दिश्य वाग्यतः । तदग्रे होनयेत्क्षीरं तिलैः सह विचक्षणः ।।६

और तिल पारणपूर्वक सविधान अर्चना की है, उसके घर धर्म, अर्थ, एवं काम की सुखसिद्धि सदैव होती रहती है तथा किसी प्रकार का कभी भी विघ्न नहीं होता है ।१३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
विनायक चतुर्थीव्रत वर्णन नामक तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।३३।

।।चतुर्थी कल्प समाप्त।।

अध्याय ३४

शान्तिव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं अब तुम्हें उस शांति व्रत का विधान बता रहा हूँ, जिसके अनुष्ठान द्वारा गृहस्थों को सर्वथा पूर्ण शांति प्राप्त होती है, सावधान होकर सुनो ! पार्थिव ! कार्तिकमास की शुक्ल पञ्चमी से आरम्भ कर वर्ष की समाप्ति पर्यन्त आँवले के त्यागपूर्वक भोजन करे, तथा नक्त के समय शेषशायी भगवान् विष्णु की सर्वाङ्ग आराधना—अनंताय नमः से चरण, धृतराष्ट्राय नमः से करि, तक्षकाय नमः से उदर, कर्कटिकाय नमः से हृदय, पद्माय नमः से कान, महापद्माय नमः से बाहू, शंखपालाय नमः से वक्षःस्थल, कुलिकाय नमः से शिर की पूजा करते हुए इस प्रकार सर्वगत विष्णु देव की पृथक् पूजा करने के उपरांत हरि के उद्देश्य से मौन होकर क्षीर से स्नान के उपरांत उनके सम्मुख क्षीर समेत तिल का हवन

---

१. दन्तवर्जितम् ।

एवं संवत्सरस्यान्ते कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् । अच्युतं काञ्चनं कृत्वा सुवर्णं तु विचक्षणः ।।७
गां सवत्सां वस्त्रयुग्मं कांस्यपात्रं सपायसम् । हिरण्यम् च यथाशक्ति ब्राह्मणायोपपादयेत् ।।८
एवं यः कुरुते भक्त्या व्रतमेतन्नराधिप । तस्य शान्तिर्भवेन्नित्यं नागानामभयं तथा ।।९
शेषाहिभोगशयनस्थमथोगसूतिं सम्पूज्य यज्ञपुरुषं पतगेन्द्रनाथम् ।
ये पूजयन्ति मधुरैः सितपञ्चमीषु तेषां न नागजनितं भयमभ्युपैति ।।१०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
शान्तिव्रतं नाम चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।३४

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

सारस्वतव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

मधुरा भारती केन व्रतेन मधुसूदन । तथैव जनसौभाग्यमतिविद्यासु कौशलम् ।।१
अभेदश्चापि दम्पत्योस्तथा बन्धुजनेन च । आयुश्च विपुलं पुंसां जायते केन केशव ।।२

श्रीकृष्ण उवाच

सम्यक्पृष्टस्त्वया राजञ्छृणु सारस्वतं व्रतम् । यस्य सङ्कीर्तनादेव तुष्यतीह सरस्वती ।।३

करे । इस प्रकार वर्ष की समाप्ति तक सविधान इसे सुसम्पन्न करके अनन्तर ब्राह्मण भोजन भगवान् की सुवर्ण की प्रतिमा, सवत्सा गौ, चार वस्त्र, काँसे का पात्र, पायस, तथा हिरण्य यथाशक्ति ब्राह्मण को अर्पित करे । नराधिप ! इस प्रकार भक्तिपूर्वक इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर उसे सदैव शांति प्राप्त रहती है और नागों से भय कभी नहीं होता है । इस भाँति शेषशायी भगवान् यज्ञपुरुष की जो पतगेन्द्र नाथ कहे जाते हैं, शुक्ल पञ्चमी के दिन मधुर पदार्थों द्वारा अर्चना करते हैं, उन्हें सभी प्रकार की सुखशांतिपूर्वक नागों से भय कभी नहीं होता है ।१-१०

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
शांति व्रत वर्णन नामक चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।३४।

अध्याय ३५

सारस्वत व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—मधुसूदन ! केशव ! किस व्रत के अनुष्ठान द्वारा मधुरवाणी, सौभाग्य पराकाष्ठा की विद्या, कौशल, दम्पति में सदैव अविच्छिन्न गाढ़प्रेम, बन्धुओं के अवियोग, और दीर्घायु की प्राप्ति होती है ।१-२

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! आप ने अत्यन्त उत्तम प्रश्न किया है, अतः मैं सारस्वत व्रत के विधान बता रहा हूँ, जिसके अनुष्ठान करने से सरस्वती देवी अत्यन्त प्रसन्न होती है, सावधान होकर सुनो ! जो

योऽयं भक्तः पुमान्कुर्यादेतद्व्रतमनुत्तमम् । तद्वत्सरादौ सम्पूज्य विप्रेण तं समाचरेत् ॥४
अथ चादित्यवारेण ग्रहताराबलेन च । पायसं भोजयित्वा च कुर्याद्ब्राह्मणवाचनम् ॥५
शुक्लवस्त्राणि दद्याच्च सहिरण्यानि शक्तितः । गायत्रीं पूजयेद्भक्त्या शुक्लमाल्यानुलेपनैः ॥
एभिर्मंत्रपदैः पश्चात्पूर्वं कृत्वाकृताञ्जलिः ॥६
यथा तु देवि भगवान्ब्रह्मा लोकपितामहः । त्वां परित्यज्य नो तिष्ठेत्तथा भव वरप्रदा ॥७
वेदशास्त्राणि सर्वाणि नृत्यगीतादिकं च यत् । वाहितं यत्त्वया देवि तथा मे सन्तु सिद्धयः ॥८
लक्ष्मीर्मेधा वरारिष्टिर्गौरी तुष्टिः प्रभा मतिः । एताभिः पाहि तनुभिरष्टाभिर्मां सरस्वति ॥९
एवं सम्पूज्य गायत्रीं वीणाक्षमणिधारिणीम् । शुक्लपक्षेऽक्षतैर्भक्त्या सकमण्डलुपुस्तकाम् ॥१०
मौनव्रतेन भुञ्जीत सायं प्रातश्च धर्मवित् । पञ्चम्यां प्रतिपक्षे च पूजयित्वा सुवासिनीः ॥११
तिलैश्च तण्डुलप्रस्थं घृतपात्रेण संयुतम् । क्षीरं तथा हिरण्यं च गायत्री प्रीयतामिति ॥१२
सन्ध्यायां च ततो मौनं तद्व्रतं तु समाचरेत् । नान्तरा भोजनं कुर्याद्यावन्मासास्त्रयोदश ॥१३
समाप्ते तु व्रते दद्याद्भोजनं शुक्लतण्डुलैः । पूर्णं सुवस्त्रयुग्मं च गां च विप्राय भोजनम् ॥१४
देव्यै वितानं घण्टां च सितनेत्रं पटान्वितम् । चन्दनं वस्त्रयुग्मं च दध्यन्नं शिरैर्युतम् ॥१५
तथोपदेष्टारमपि भक्त्या सम्पूजयेद्गुरुम् । वित्तशाठ्येन रहितो वस्त्रमाल्यानुलेपनैः ॥१६

कोई भक्तपुरुष इस व्रत का अनुष्ठान आरम्भ करे, उसे चाहिए कि वर्ष के आरम्भ में ब्राह्मण की आज्ञा शिरोधार्य कर व्रत ग्रहण करे। अपने ग्रह एवं तारावल को भली भाँति देखकर किसी रविवार के दिन पायस भोजन द्वारा ब्राह्मण को संतृप्त कर स्वस्ति वाचन कराये। यथाशक्ति ब्राह्मण को शुक्ल वस्त्र, और सुवर्ण प्रदान करने के उपरांत भक्तिपूर्वक शुक्ल माला, गंध और अनुलेपन द्वारा गायत्री की अर्चना मंत्रोच्चारण करते हुए सुसम्पन्न करके साञ्जलि क्षमा प्रार्थना करे कि—देवि ! जिस प्रकार लोक के पितामह भगवान् ब्रह्मा तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जाते हैं, मेरे लिए भी वैसा ही करने की कृपा करें। तथा देवि ! समस्त वेदशास्त्र एवं नृत्यगीत आदि जो कुछ आप के पास निधि है, वे सभी सिद्धियाँ मुझे भी प्राप्त हों। सरस्वति ! आप अपनी लक्ष्मी, मेधा, वरा, रिष्टि, गौरी, तुष्टि, प्रभा एवं मसि, आदि विभूतियों (अंगों) द्वारा मेरी रक्षा करें। इस प्रकार शुक्ल पक्ष की पंचमी के दिन वीणा, अक्षमाल, मणि, कमण्डलु और पुस्तक से सुशोभित गायत्री देवी की अर्चना भक्तिपूर्वक सुसम्पन्न करके उस धार्मिक व्रती को सायं प्रातः मौन होकर भोजन कराना चाहिए। प्रत्येक पक्ष की पञ्चमी के दिन तिल, तंडुल, घी, क्षीर, सुवर्ण द्वारा सौभाग्यवती स्त्री की अर्चना करके अञ्जलि बाँधकर गायत्री देवी मुझ पर प्रसन्न हों, कहकर क्षमा प्रार्थी होये।३-१२। इसी प्रकार सायंकाल के समय भी मौनव्रत धारणपूर्वक उनकी पूजा सुसम्पन्न करनी चाहिए। प्रातः और सायंकाल पूजा सुसम्पन्न करने के उपरांत ही भोजन करने का विधान बताया गया है। इस प्रकार तेरह मास तक प्रतिदिन पूजन करने के अनन्तर उसकी समाप्ति में श्वेत तण्डुल पूर्ण पात्र, युग्म वस्त्र, और गौ ब्राह्मण के लिए अर्पित कर देवी के लिए भी वितान (चाँदनी) घंटा, शुभ नेत्र, चन्दन, युग्म वस्त्र, दध्यन्न, और शिखर समर्पित करके भक्तिपूर्वक अपने उपदेष्टा गुरु की भी यथा शक्ति वस्त्र, माला, अनुलेपन द्वारा पूजा करे। दान के समय वित्तशाठय दोष पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। इस

अनेन विधिना यस्तु कुर्यात्सारस्वतं व्रतम् । विद्यावानर्थयुक्तश्च रक्तकण्ठश्च जायते ।।१७
सरस्वत्याः प्रसादेन व्यासवत्तु कविर्भवेत् । नारी वा कुरुते या तु सापि तत्फलभागिनी ।।
ब्रह्मलोके वसेत्तावद्यावत्कल्पायुतत्रयम् ।।१८
सारस्वतं व्रतं यस्तु भृगुयादपि यः पठेत् । विद्याधरपुरे सोऽपि वसेत्कल्पायुतत्रयम् ।।१९

संवत्सरं व्रतवरेण सरस्वतीं ये सम्पूजयन्ति जगतो जननी जनित्रीम् ।
विद्यावदातहृदया मधुरस्वरास्ते रूपान्विता बहुकलाकुशला भवन्ति ।।२०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
सारस्वतव्रतनिरूपणं नाम पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।३५

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

नागपञ्चमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पञ्चमी दयिता राजन्नागानन्दविवर्द्धनी । पञ्चम्यां किल नागानां भवतीत्युत्सवो महान् ।।१
वासुकिस्तक्षकश्चैव कालिको माणिभद्रकः । धृतराष्ट्रो रैवतश्च कर्कोटकधनंजयौ ।।
एते प्रयच्छन्त्यभयं प्राणिनां प्राणजीविनाम् ।।२
पञ्चम्यां स्नपयन्तीह नागान्क्षीरेण ये नराः । तेषां कुले प्रयच्छन्ति अभयं प्राणिनां सदा ।।३

विधान द्वारा सारस्वत व्रत को सुसम्पन्न करने वाला पुरुष विद्यावान, धनवान् एवं रक्त कण्ठ होता है तथा सरस्वती जी की प्रसन्नता से वह व्यास की भाँति महान कवि, नारी भी इस के अनुष्ठान द्वारा उपरोक्त फल प्राप्त करती है और तीस सहस्र कल्प तक ब्रह्मलोक में सुसम्मानित होती है । इस सारस्वत नामक व्रत को सुसम्पन्न करने एवं सुनने वाले प्राणी विद्याधर के लोक में तीससहस्र कल्प तक सुप्रतिष्ठित होते हैं । इस प्रकार सम्पूर्ण वर्ष इस उत्तम व्रत विधान द्वारा जो जगजननी सरस्वती जी की अर्चना करते हैं, वे निष्णात् विद्वान्, पवित्र हृदय, मधुरस्वर, रूप सौन्दर्य प्राप्ति पूर्वक कलाओं में अत्यन्त कुशल होते हैं ।१३-२०

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
सारस्वत व्रत-वर्णन नामक पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।३५।

अध्याय ३६

नागपञ्चमी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! पञ्चमी तिथि नागों के लिए, अत्यन्त प्रिय है और इसी पञ्चमी तिथि में नागों का महान उत्सव भी होता है । वासुकि, तक्षक, कालिय, मणिभद्र, धृतराष्ट्र, रैवत, कर्कोटक, और धनञ्जय नामक नागगण प्राणियों को अभय-प्रदान करते हैं । पञ्चमी के दिन जो मनुष्य क्षीर द्वारा नागों को

शप्ता नागा यदा मात्रा दह्यमाना दिवानिशम् । निर्वापिता गवां क्षीरैस्ततः प्रभृति वल्लभाः ॥४

युधिष्ठिर उवाच

मात्रा शप्ताः कथं नागाः किमुद्दिश्य च कारणम् । कथं वा तस्य[1] शापस्य विनाशोऽभूज्जनार्दन ॥५

श्रीकृष्ण उवाच

उच्चैःश्रवाश्वराजश्च श्वेतवर्णोऽमृतोद्भवः । तं दृष्ट्वा चाब्रवीत्कद्रूर्नागानां जननीं स्वसाम् ॥६
अश्वरत्नमिदं श्वेतं पश्यपश्यामृतोद्भवम् । कृष्णांश्च वीक्ष्यसे बालान्सर्वश्वेतानुताद्य वै ॥७

विनतोवाच

सर्वश्वेतो हयवरो नायं कृष्णो न लोहितः । कथं त्वं वीक्षसे कृष्णं विनतोवाच तां स्वसाम् ॥८

कद्रूरुवाच

वीक्षेऽहमेकनयना कृष्णबालसमन्वितम् । द्विनेत्रा च त्वं विनते न पश्यसि पणं कुरु ॥९

विनतोवाच

अहं दासी भवित्री ते कृष्णकेशे प्रदर्शिते । न चेद्दर्शयसे कद्रु मम दासी भविष्यसि ॥१०
एवं ते विपणं कृत्वा गते क्रोधसमन्विते । सुषुप्ते प्राज्यदोषे तु कद्रूर्जिह्ममचिंतयत् ॥११

स्नान कराता है, उसके कुल में वे नागगण अभय दान देते हैं । क्योंकि अपनी माता के द्वारा शाप प्राप्त कर जिस समय अत्यन्त पीडित हो रहे थे, उस समय उसी पञ्चमी के दिन गौओं के दुग्ध द्वारा स्नान कराने पर उनकी पीड़ा शान्त हो गई थी, इसीलिए वह उन्हें अत्यन्त प्रिय है ।१-४

युधिष्ठिर ने कहा—जनार्दन ! माता द्वारा नागों को शाप क्यों मिला, उसका उद्देश्य एवं कारण क्या है ? और उस शाप का शमन कैसे हुआ, बताने की कृपा कीजिये ।५

श्रीकृष्ण बोले—एक समय अश्वराज उच्चैश्रवा को देखकर नागों की माता कद्रू ने जो अमृत के साथ उत्पन्न होने के नाते श्वेत वर्ण का था, अपनी भगिनी विनता से कहा—इस अश्व रत्न को देखो, जो अमृत से उत्पन्न बताया जाता है, उसके सूक्ष्म काले बाल तुम्हें दिखायी दे रहे हैं या समस्त अंग में श्वेत ही बाल देख रही हो ।६-७

विनता ने कहा—यह सर्वश्रेष्ठ अश्व सर्वाङ्ग श्वेत है, और न कृष्ण न रक्तवर्ण और तुम उसे कृष्ण वर्ण कैसे देख रही हो । इस प्रकार विनता के कहने पर ।८

कद्रू बोली—विनते ! मेरे एक ही नेत्र है किन्तु मैं उसके काले बाल को देख रही हूँ, और तुम्हारे दो नेत्र हैं, तू नहीं देख रही है ? अच्छा तो प्रतिज्ञा कर ! ९

विनता ने कहा—यदि काले बाल उसमें दिखायी दें तो मैं तुम्हारी दासी होकर आजीवन सेवा करूँगी । और कद्रू ! यदि तुम वैसा न दिखा सकी तो तुम्हें मेरी दासी होना पड़ेगा । इस प्रकार वे दोनों अत्यन्त क्रुद्ध होकर प्रतिज्ञा करने के उपरांत शयनागार में पहुँच कर शयन किया, किन्तु कद्रू ने कुछ कपट

---

१. मन्दमभवत्प्रसादात्कस्य माधव ।

आहूय पुत्रान्प्रोवाच बाला भूत्वा हयोत्तमे । तिष्ठध्वं विपणौ जेष्ये विनतां जयगृद्धिनीम् ॥१२
प्रोचुस्ते जिह्मबुद्धिं तां नागाः कद्रूं विगृह्य च । अधर्म एष तु महान्करिष्यामो न ते वचः ॥
अशपद्दुषिता कद्रूः पावको वः प्रधक्ष्यति ॥१३
गते बहुतिथे काले पाण्डवो जनमेजयः । सर्पसत्रं स कर्ता वै भूमावन्यैः सुदुष्करम् ॥१४
तस्मिन्सत्रे च तिग्मांशुः पावको भक्षयिष्यति । एवं शप्त्वा तदा कद्रूः प्रत्युवाच न किंचन ॥१५
मात्रा शप्तस्तदा नागः कर्तव्यं नान्वपद्यत । वासुकिर्दुःखसंतप्तः पपात भुवि मूर्च्छितः ॥१६
वासुकिं दुःखितं दृष्ट्वा ब्रह्मा प्रोवाच सांत्वयन् । मा शुचो वासुकेऽत्यर्थं शृणु मद्वचनं परम् ॥१७
यायावरकुले जातो जरत्कारुरिति द्विजः । भविष्यति महातेजास्तस्मिन्काले तपोनिधिः ॥१८
भगिनीं च जरत्कारुं तस्य त्वं प्रतिदास्यसि । भविता तस्य पुत्रोऽसावस्तीक इति विश्रुतः ॥१९
स तत्सत्रं प्रवृद्धं वै नागानां भयदं महत् । निषेधयिष्यति मुनिर्वाग्भिः सम्पूज्य पार्थिवम् ॥२०
तदियं भगिनी नाग रूपौदार्यगुणान्विता । जरत्कारुर्जरत्कारोः प्रदेया ह्यविचारतः ॥२१
यदासौ प्रार्थ्यतेऽरण्ये यत्किञ्चित्प्रवदिष्यति । तत्कर्तव्यमशेषेण इच्छेच्छ्रेयस्तथात्मनः ॥२२
पितामहवचः श्रुत्वा वासुकिः प्रणिपत्य च । तथाकरोद्यथा चोक्तं यत्नं परममास्थितः ॥२३
तच्छ्रुत्वा पन्नगाः सर्वे प्रहर्षोत्फुल्ललोचनाः । पुनर्जातमिवात्मानं मेनिरे भुजगोत्तमाः ॥२४

पूर्ण व्हहार करने का निश्चय किया उसने अपने पुत्रों को बुलाकर कहा—तुम लोग सूक्ष्म रूप से उस श्रेष्ठ अश्व के अङ्ग में प्रविष्ट हो जाओ, जिससे मैं उस जयाभिमानी विनता को इस प्रतिज्ञा में पराजित कर दूँ । नागों ने उसकी कपट बुद्धि जानकर कहा—ऐसा करना महान् अधर्म है, अतः तुम्हारी इस आज्ञा को हम लोग नहीं स्वीकार करेंगे ! इसे सुनकर कद्रू ने उन्हें शाप दिया कि पावक तुम्हें भस्मसात् कर दे । बहुत दिनों के व्यतीत होने पर पाण्डव जनमेजय सर्पसत्र नामक यज्ञ का अनुष्ठान आरम्भ करेंगे जो इस धरातल में अन्य लोगों के लिए अत्यन्त दुर्लभ है । उसी यज्ञ में प्रचण्ड पावक तुम्हें दग्ध करेगा । इस प्रकार शाप प्रदान कर कद्रू ने पुनः कुछ नहीं कहा । माता के शाप प्रदान करने पर वासुकी नाग कर्तव्य च्युत होते हुए अत्यन्त दुःखसंतप्त होने के कारण मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े । ब्रह्मा ने वासुकी को दुःखी देखकर उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—वासुके ! इस प्रकार चिन्तित न हो, और सावधान होकर मेरी बात सुनो ! यायावर देश-देशान्तर में भ्रमण करने वाले के कुल में महातेजस्वी एवं तपोनिधि जरत्कारु नामक द्विज उत्पन्न होंगे । उस समय तुम जरत्कारु नामक अपनी भगिनी उन्हें अर्पित कर देना, जिससे उनके आस्तीक नामक पुत्र उत्पन्न होगा । जिस समय नागों का भयदायक वह सर्प यज्ञ प्रारम्भ होगा, वह आस्तीक पुत्र वाणी द्वारा राजा को प्रसन्न करते हुए उस यज्ञ को स्थगित करा देगा । इसलिए जरत्कारू नामक यह तुम्हारी भगिनी के जो रूप एवं उदार गुण भूषित हैं, जरत्कारु नामक द्विज को समर्पित करने में किसी प्रकार के विचार करने की आवश्यकता न रहेगी । उस अरण्य में जरत्कारु द्विज के मिलने पर अपने आत्मकल्याणार्थ तुम्हें उसकी सभी आज्ञाओं का पालन करना होगा । पितामह की ऐसी बातें सुनकर नागवासुकी ने विनय-विनम्र होकर सहर्ष उसकी स्वीकृति प्रदान की और उसी समय से उसके लिए प्रयत्न भी करना आरम्भ किया । १०-२३ । इसे सुनकर सभी श्रेष्ठ नागों के नेत्र अत्यन्त हर्षातिरेक द्वारा

अप्लवे तु निमग्नानां घोरे यज्ञाग्निसागरे । आस्तीकस्तत्र भविता प्लवभूतोऽभयप्रदः ॥२५
श्रुत्वा स चाग्निराजानमृत्विजस्तदनन्तरम् । निवर्तयिष्यति यागं नागानां मोहनं परम् ॥२६
पञ्चम्यां तच्च भविता ब्रह्मा प्रोवाच लेलिहान् । तस्मादियं[1] महाराज पञ्चमी दयिता शुभा ॥२७
नागानां हर्षजननी दत्ता वै ब्रह्मणा पुरा । दत्त्वा तु भोजनं पूर्वं ब्राह्मणानां तु कामतः ॥२८
विसृज्य नागाः प्रीयन्तां ये केचित्पृथिवीतले । हिमाचले ये वसन्ति येऽन्तरिक्षे दिविस्थिताः ॥
ये नदीषु महानागा ये सरःस्वभिगामिनः ॥२९
ये वापीषु तडागेषु तेषु सर्वेषु वै नमः ॥३०
नागान्विप्रांश्च सम्पूज्य विसृज्य च यथार्थतः । ततः पश्चाच्च भुञ्जीयात्सह भृत्यैर्नराधिप ॥३१
पूर्वं मधुरमश्नीयात्स्वेच्छया तदनन्तरम् । एवं[2] नियमयुक्तस्य यत्फलं तन्निबोध मे ॥३२
मृतो नागपुरं याति पूज्यमानोऽप्सरोगणैः । विमानवरमारूढो रमते कालमीप्सितम् ॥३३
इह चागत्य राजासौ सर्वराजवरो भवेत् । सर्वरत्नसमृद्धश्च वाहनाढ्यश्च जायते ॥३४
पञ्चजन्मन्यसौ राजा द्वापरेद्वापरे भवेत् । आधिव्याधिविनिर्मुक्तः पत्नीपुत्रसहायवान् ॥
तस्मात्पूज्याश्च नागाश्च[3] घृतक्षीरादिना सदा ॥३५

विकसित कमल की भाँति खिल उठे । उस दिन उन लोगों ने अपने को पुनः जन्म ग्रहण करने के समान समझा । सभी लोगों में यह चर्चा होने लगी कि—उस घोर एवं अगाध यज्ञ-अग्निसागर के प्रस्तुत होने पर उससे पार होने के लिए केवल आस्तीक ही, अभयप्रद नौका होंगे तथा आस्तीक भी इसे सुनकर नागों के सम्मोहनार्थ आरम्भ यज्ञ को स्थगित करने के लिए अग्नि, राजा, और ऋत्विजों को क्रमशः विनय-विनम्रपूर्वक उससे निवृत्त करने की चेष्टा करेंगे । ब्रह्मा ने लेलिहों (नागों) को बताया है कि यह सब पञ्चमी के दिन होगा । इसीलिए महाराज ! यह पञ्चमी तिथि नागों को अत्यन्त प्रिय है जिस हर्षजननी को पहले ब्रह्मा ने नागों को प्रदान किया था । अतः उस दिन ब्राह्मणों को यथेच्छ भोजनों से संतृप्त करके 'नागगण मुझ पर प्रसन्न रहें' ऐसा कहकर कुछ लोग इस भूतल में उनके विसर्जन करते हैं । नराधिप ! हिमालय, अन्तरिक्ष, स्वर्ग नदी, सरोवर, बावली, एवं तडाग आदि में निवास करने वाले उन महानागों को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ । इस प्रकार नागों और ब्राह्मणों को प्रसन्नता पूर्वक विसर्जन करके पश्चात् परिजनों समेत भोजन करना चाहिए । सर्वप्रथम मधुर भोजन पश्चात् यथेच्छ भोजन करने आदि सभी नियमों के सुसम्पन्न करने वाले को जिस फल की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! २४-३२। देहावसान होने पर यह परमोत्तम विमान पर सुखासीन एवं अप्सराओं द्वारा सुसेवित होकर नागलोक की प्राप्ति कर यथेच्छ समय तक सुखोपभोग करने के अनन्तर इस मर्त्य लोक में जन्म ग्रहण कर सर्वश्रेष्ठ राजा होता है, जो समस्त रत्नों से सुस्मृद्ध एवं अनेक प्रकार के वाहनों से सदैव सुसज्जित होता है । पाँच जन्म तक प्रत्येक द्वापर युग में सर्वमान्य राजा होता है, जो आधि व्याधि रोगों से मुक्त होकर पत्नी पुत्र समेत सदैव, आनन्दोपभोग करता है । इसलिए घी, क्षीर आदि से सदैव नागों की अर्चना करनी चाहिए ।३३-३५

---

१. इह । २. एतेन व्रतमुख्येन । ३. मान्याश्च ।

युधिष्ठिर उवाच

दशन्ति यं नरं कृष्ण नागाः क्रोधसमन्विताः । भवेत्किं तस्य दष्टस्य विस्तराद्ब्रूहि मां हरे ।।३६

श्रीकृष्ण उवाच

नागदष्टो नरो राजन्प्राप्य मृत्युं व्रजत्यधः । अधो गत्वा भवेत्सर्पो निर्विषो नात्र संशयः ।।३७

युधिष्ठिर उवाच

नादष्टः पिता यस्य भ्राता माता सुहृत्सुतः । स्वसा वा दुहिता भार्या किं कर्तव्यं वदस्व मे ।।३८
मोक्षाय तस्य गोविन्द दानं व्रतमुपोषितम् ! ब्रूहि मे यदुशार्दूल येन स्वर्गतिमाप्नुयात् ।।३९

श्रीकृष्ण उवाच

उपोष्या पञ्चमी राजन्नागानां पुष्टिवर्द्धिनी । वर्षमेकं तु राजेन्द्र विधानं शृणु यादृशम् ।।४०
मासे भाद्रपदे या तु शुक्लपक्षे महीपते । सा च पुण्यतमा प्रोक्ता ग्राह्या सद्गतिकाम्यया ।।४१
ज्ञेया द्वादश वर्षांते पञ्चम्यो भरतर्षभ ! चतुर्थ्यामेकभक्तं तु तस्यां नक्तं प्रकीर्तितम् ।।४२
भूरिचन्द्रमयं नागमथवा कलधौतजम् । कृत्वा दारुमयं चापि उताहो मृण्मयं नृप[1] ।।४३
पञ्चम्यामर्चयेद्भक्त्या नागं पञ्चफणं शृणु । करवीरैस्तथा पद्मैर्जातीपुष्पैः सुशोभनैः ।।४४
गन्धपुष्पैः सनैवेद्यैः पूज्य पन्नगसत्तमम् । ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद् घृतपायसमोदकैः ।।४५

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण ! क्रुद्ध होकर नाग जिसे काट लेता है, उसकी कौन गति होती है, विस्तार पूर्वक बताने की कृपा कीजिये ।३६

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! नाग के काटने पर मृत्यु द्वारा वह प्राणी अधोगति (पाताल) पहुँच कर विषहीन सर्प होता है ।३७

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन् ! नाग के काट लेने पर उस प्राणी के प्रति उसके पिता, माता, मित्र, पुत्र, भगिनी, पुत्री, और स्त्री का क्या कर्तव्य होता है ? गोविन्द, यदुशार्दूल ! उस प्राणी के मोक्षार्थ इस प्रकार कोई दान व्रत अथवा उपवास आदि बताने की कृपा कीजिये, जिसे सुसम्पन्न करने पर उसे स्वर्ग की प्राप्ति हो जाये ।३८-३९

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! उस प्राणी के मोक्षार्थ इसी पंचमी विधि का सविधान उपावस करना चाहिए, जो नागों के लिए अत्यन्त पुष्ट वर्द्धिनी है । राजेन्द्र मैं उसके विधान को बता रहा हूँ, जो एक वर्ष तक निरन्तर सुसम्पन्न किया जाता है, सावधान होकर सुनो ! महीपते ! भाद्रपद की शुक्ल पञ्चमी अत्यन्त पुण्यतमा होने के नाते प्राणियों की सद्गति कामना के लिए अत्यन्त प्रशस्त बतायी गयी है । भरतर्षभ ! बारहवर्ष तक निरन्तर उसके सुसम्पन्न करने के उपरांत उसके व्रतोद्यापन के निमित्त चतुर्थी में एक भक्त नक्त भोजन करके पञ्चमी के दिन नागी की उस सौन्दर्य पूर्ण प्रतिमा की, जो सुवर्ण, रजत (चाँदी) काष्ठ अथवा मृत्तिका द्वारा प्रयत्न पूर्वक निर्मित रहती है, और पाँच फलों से सुसज्जित भी कनेर, कमल, चमेली एवं अन्य सुगन्धित पुष्प, और नैवेद्य द्वारा अर्चना करके घृत समते पायस एवं मोदक

---

१. तथा ।

नारायणबलिः कार्यः सर्पदष्टस्य देहिनः । दाने पिण्डप्रदाने च ब्राह्मणानां च तर्पयेत् ।।४६
वृषोत्सर्गास्तु कर्तव्यो गते सम्वत्सरे नृप । स्नानं कृत्वोदकं दद्यात्कृष्णोऽत्र प्रीयतामिति ।।४७
अनन्तो वासुकिः शेषः[1] पद्मः कम्बल एव च । तथा तक्षक नागश्च नागश्चाश्वतरो नृप ।।४८
धृतराष्ट्रः शङ्खपालः कालियस्तक्षकस्तथा । पिङ्गलश्च महानागो मासिमासि प्रकीर्तिताः ।।
वत्सरान्ते पारणं स्यान्महाब्राह्मणभोजनम् ।।४९
इतिहासविदे नागः काञ्चनेन कृतो नृप । तथार्जुनी प्रदातव्या सवत्सा कांस्यदोहना ।।५०
एव पारणके पार्थ विधिः प्रोक्तो विचक्षणैः । कृते व्रतवरे तस्मिन्सद्गतिं यान्ति बान्धवाः ।।५१
ये दन्दशूकरदनैर्दष्टाः प्राप्ता ह्यधोगतिम् । वर्षमेकं चरिष्यन्ति भक्त्या ये व्रतमुत्तमम् ।।
दांष्ट्रिकं मोक्ष्यते तेषां शुभं स्थानमवाप्स्यति ।।५२
यश्चेदं शृणुयान्नित्यं पठेद्भक्त्या[2] समन्वितः । न वै कुटुम्बे नागेभ्यो भयं भवति कुत्रचित् ।।५३

श्रीकृष्ण उवाच

तद्वद्भाद्रपदे मासि पञ्चम्यां श्रद्धयान्वितः । यस्त्वालिख्य नरो नागान्कृष्णवर्णादिवर्णकैः ।।
पूजयेद्गन्धपुष्पैस्तु सर्पिर्गुग्गुलुपायसैः ।।५४
तस्य तुष्टिं समायान्ति पन्नगास्तक्षकादयः । आसप्तमात्कुलात्तस्य न भयं नागतो भवेत् ।।५५

के भोजन से ब्राह्मण को अत्यन्त संतृप्त करें । पश्चात् उस सर्पदष्ट प्राणी के मोक्षार्थ नारायण बलि भी करनी चाहिए । नृप ! दान और पिण्ड दान के समय ब्राह्मणों को भली भाँति संतप्त कर वर्ष के अन्त में उसके लिए वृषोत्सर्ग नामक यज्ञ भी करना चाहिए । स्नान करके उदक दान करते समय 'कृष्ण प्रसन्न हों' कहकर पुनः प्रत्येक मास में अत्यन्त अनन्त वासुकी, शेष, पद्म, कम्बल, तक्षक, अवश्वतर, धृतराष्ट्र, शंखपाल, कालिय, तक्षक, पिंगल आदि महानागों के नामोच्चारण पूर्वक पूजनोपरांत वर्ष के अन्त में महाब्राह्मण को भोजनादि से तृप्त कर पारण करना चाहिए । इतिहास वेत्ता ब्राह्मण को बुलाकर नाग की सुवर्ण प्रतिमा, जो सवत्सा गौ, और काँसे की दोहनी दान से सुसज्जित रहती है, सप्रेम अर्पित करनी चाहिए । पार्थ ! उसके पारण के निमित्त विद्वानों ने यही विधान बताया है । बन्धुओं द्वारा इस प्रकार इसे सुसम्पन्न करने पर उस प्राणी की अवश्य सद्गति होती है । सर्पों के काट लेने पर अधोगति प्राप्त उस प्राणी के निमित्त जो एक वर्ष तक इस उत्तम व्रत को सुसम्पन्न करेंगे, उससे उस प्राणी की शुभस्थान की प्राप्ति पूर्वक अवश्य मुक्ति होगी । इस प्रकार भक्ति श्रद्धा पूर्वक जो ईसे श्रवण अथवा अध्ययन करेंगे, उनके परिवार में नागों का भय कभी नहीं होगा ।४०-५३

श्रीकृष्ण बोले—भाद्रपद मास की पञ्चमी के दिन श्रद्धा भक्ति पूर्वक जो कृष्णादि वर्ण (रंग) द्वारा नागों की प्रतिमा सुनिर्मित कर गन्ध, पुष्प, घृत, गुग्गुल, और खीर द्वारा उसकी अर्चना करता है, उस पर तक्षक आदि नाग गण अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं और उसके सात पीढ़ी तक के वंशजों को नाग भय नहीं होता

---

१. शङ्खम् । २. पठेद्वा श्रद्धयान्वितः ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नागान्सम्पूजयेद्बुधः । तथा चाश्वयुजे मासि पञ्चम्यां कुरुनन्दन ।।५६
कृत्वा कुशमयान्नागानिंद्राण्या सह पूजयेत् । घृतोदकाभ्यां पयसा स्नापयित्वा विशाम्पते ।।५७
गोधूमैः पयसा स्विन्नैर्भक्ष्यैश्च विविधैस्तथा । यस्त्वस्यां विविधान्नागाञ्छुचिर्भक्त्या समन्वितः ।।५८
पूजयेत्कुरुशार्दूल तस्य शेषादयो नृप । नागाः प्रीता भवन्तीह शांन्तिं प्राप्नोति शोभनाम् ।।
स शान्तिलोकमासाद्य मोदते शाश्वतीः समाः ।।५९
इत्येतत्कथितं वीर पञ्चमीव्रतमुत्तमम् । तत्रायमुच्यते मंत्रः सर्वदोषनिषेधकः ।।६०
(ॐ कुरुकुल्ले[१] हुं फट् स्वाहा)
भक्तेन भक्तिसहिताः शतपञ्चमीषु ये पूजयन्ति भुजगाकुसुमोपहारैः[२] ।
तेषां गृहेष्वभयदा हि सदैव सर्पाः शश्वत्प्रमोदपरमा रुचयो भवन्ति ।।६१
इति श्री भविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
नागपञ्चमीव्रतवर्णनं नाम षट्त्रिंशतमोऽध्यायः ।३६

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः
श्रीपञ्चमीव्रतवर्णनम्
युधिष्ठिर उवाच

कथमासाद्यते लक्ष्मीर्दुर्ल्लभा भुवनत्रये । दानेन तपसा वापि व्रते नियमेन वा ।।१

है । कुरुनन्दन ! अतः नागों की पूजा के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए । विशांपते उसी प्रकार आश्विन मास की पञ्चमी के दिन नागों की कुश की प्रतिमा बना कर इन्द्राणी के साथ उन्हें स्थापित कर घृत, उदक और क्षीर के क्रमशः स्नान पूर्वक गेहूँ के चूर्ण (आंटा) और घृत के अनेक भाँति के व्यजनों के समर्पण करते हुए उन्हें श्रद्धा भक्ति समेत अत्यन्त प्रसन्न करता है, उससे कुल में शेष आदि नाग गण अत्यन्त प्रसन्न होकर सदैव शांति प्रदान करते है तथा देहावसान के समय शांति लोक प्राप्त कर अनेक वर्षों तक सुखोपभोग करता हूँ । वीर ! इस प्रकार मैंने इस परमोत्तम पञ्चमी व्रत की व्याख्या सुना दी जिसमें समस्त दोष के निवृत्यर्थ यह 'ओं कुरू कुल्ले हुँ फट् स्वहा' मंत्र बताया गया है । भक्ति भावना समेत जो लोग लगभग एक सौ पञ्चमी व्रत एवं उस हिम पुष्प आदि उपहारों द्वारा नागों की अर्चना करते हैं उनके गृह में सदैव अभय और निरन्तर सौख्य प्रदान नाग गण किया करते हैं ।५४-६१

श्री भविष्य महापुराण के उत्तर पर्च में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
नाग पञ्चमी व्रत वर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।३६।

अध्याय ३७
श्रीपञ्चमीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—यदुश्रेष्ठ ! आप मेरे विचार से सम्पूर्ण वेत्ता हैं, अतः मुझे यह बताने की कृपा

---

१. ओं वाच कुल्ले हुं फट् स्वाहा । २. सुभगोपहारैः ।

जपहोमनमस्कारैः संस्कारैर्वा पृथग्विधैः । एतद्वद यदुश्रेष्ठ सर्ववित्त्वं मतो मम ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्ना पूर्वं श्रीः श्रूयते शुभा । वासुदेवाय सा दत्ता मुनिना मानवृद्धये ॥३
वासुदेवोऽपि तां प्राप्य पीनोन्नतपयोधराम् । पद्मपत्रविशालाक्षीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ॥४
भाभासितदिगाभोगं साक्षाद्भानोः प्रभामिव । नितम्बाडम्बरवतीं मत्तमातङ्गगामिनीम् ॥
रेमे सह तया राजन्विभ्रमोद्भ्रान्तचित्तया ॥५
सा च विष्णुं जगज्जिष्णुं पतिं त्रिजगतां पतिम् । प्राप्य कृतार्थमात्मानं मेने मानयशोधना ॥६
हृष्टं पुष्टं जगत्सर्वमभवद्भावितं तया । लक्ष्म्या[1] निरीक्षितं चैव सानन्दं हि महीतलम् ॥७
क्षेमं सुभिक्षमारोग्यमनाक्रन्दमनाकुलम्[2] । जगदासीदनुद्भ्रान्तं प्रशान्तोपद्रवं तथा ॥८
दिवि देवा मुमुदिरे दानवा दैत्यमागताः । विस्फारितफणाभोगा नागाश्चैव रसातले ॥९
हृदये ब्राह्मणैर्वह्नौ भुज्यते त्रिदिवैर्हविः । चातुर्वर्ण्यमसङ्कीर्णं पाल्यते पार्थ पार्थिवैः ॥१०
विरोचनप्रभृतिभिर्दृष्ट्वैवं दैत्यसत्तमैः । तपस्तप्तुमथारब्धमग्निमाश्रित्य संयतैः ॥११
सोमसंस्थाहविः संस्थापाकसंख्यादिभिर्मखैः । सदाचारैः समारब्धमिष्टं स्वष्टाभिलाषिभिः ॥१२

कीजिये कि—तीनों लोकों में पर दुर्लभ लक्ष्मी की प्राप्ति किस दान, तप, व्रत, नियम, जप, हवन, नमस्कार एवं अन्य पृथक् संस्कार द्वारा होती है।१-२

श्रीकृष्ण बोले—सर्वप्रथम भी श्री का जन्म भृगु के यहां हुआ था, यही सुना जाता है। उसे महर्षि ने मानवृद्ध्यर्थ उस लक्ष्मी को वासुदेव के लिए अर्पित किया। वासुदेव ने भी उस लक्ष्मी को, जो स्थूल एवं उन्नत पयोधर, कमल पत्र के समान विशाल नेत्र, पूर्ण चन्द्र के समान मुख आदि अंगों से अत्यन्त मनमोहक थी, प्राप्त कर राजन् ! अपनी आभा से समस्त दिशाओं को पूर्ण प्रकाशित करने वाली एवं साक्षात् सूर्य प्रभा के समान प्रभा पूर्ण, विशाल कमनीय निलम्ब से विभूषित और मत्तगजेन्द्र की भाँति गमन करने वाली उस नारी रत्न लक्ष्मी के साथ विष्णु ने रमण करना आरम्भ किया, जो विलास पूर्ण दृष्टि से भ्रान्त चित्त वाले व्यक्ति की भाँति इधर-उधर देख रही थीं। संसार के सर्वश्रेष्ठ विजेता, एवं तीनों लोकों के प्रभु भगवान् विष्णु को पतिरूप में प्राप्त कर उस यशस्विनी एवं मानिनी लक्ष्मीने भी अपने को कृतार्थ माना। उसकी प्रसन्नता वश यह सम्पूर्ण जगत् अत्यन्त हृष्ट पुष्ट हो गया था। लक्ष्मी श्री कृपा दृष्टि से अनुग्रहीत होने पर इस भूमण्डल में चारों ओर आनन्द सागर उमड़ रहा था—सर्वत्र क्षेम, सुभिक्ष, आरोग्य, एवं सुख शांति का आवाह था। उस समय जगत् में किसी प्रकार का कष्ट प्रद कलह एवं अशान्ति नहीं थी—स्वर्ग में देवगण, दानव, दैत्य और रसातल में नागलोक अपने फणों को विस्तृत किये सुखोपभोग कर रहे थे। ब्राह्मणों द्वारा अग्नि में डाली गयी हवि की आहुतियों को ग्रहण कर देवगण अत्यन्त आनन्द मग्न थे। पार्थिव गण चारों वर्णों का उत्तम पालन पोषण कर रहे थे। उसे देखकर विरोचन आदि श्रेष्ठ दैत्यों ने क्षोभ प्रकट करते हुए संयम पूर्वक अग्निहोत्र समेत तप करना आरम्भ किया।३-११। सोम, हवि, एवं पाक आदि द्वारा अनेक भाँति के यज्ञ भी उन लोगों ने सुसम्पन्न किया, क्योकि सदाचार आदि द्वारा वे लोग अपना

---

१. लक्ष्यायं पालपञ्चम्यां सदृष्टे च महीतलम्। २. अनामयम्।

एवं धर्मप्रधानैस्तैर्वेदवादरतात्मभिः । जगदासीत्समाक्रान्तं विक्रमेण क्रमेण तु ॥१३
लक्ष्मीविलासप्रभवो देवानामभवन्मदः । मदाच्छीलं च शौचं च सत्यं सद्यो व्यनीनशन् ॥१४
सत्यशौचविहीनास्तान्देवान्संत्यज्य चञ्चलान् । जगाम दानवकुलं कुलदेवानुरागतः ॥१५
लक्ष्म्या भावितदेहैस्तैः पुनरुद्धतमानसैः । व्यवहर्तुं समारब्धमन्यायेन मदोद्धतैः ॥१६
वयं वेदा वयं यज्ञा वयं विद्या वयं जगत् । ब्रह्मविष्णुशङ्कराद्या वयं सर्वे दिवौकसः ॥१७
अहङ्कारविमूढांस्ताञ्ज्ञात्वा दानवसत्तमान् । सागरं सा विवेशाथ भ्रान्तचित्ता भृगोः सुता ॥१८
क्षीराब्धिमध्यगतया लक्ष्म्या क्षीणार्थसञ्चयम् । निरानन्दगतश्रीकमभवद्भुवनत्रयम् ॥१९
गतश्रीकमथात्मानं मत्वा शम्बरसूदनः । पप्रच्छाङ्गिरसं विप्रं ब्रूहि किञ्चिद्व्रतं मम ॥२०
येन सम्प्राप्यते लक्ष्मीर्लब्धा न चलते पुनः । निश्चलापि सुहृन्मित्रैर्भोग्या भवति सा मुने ॥२१
न सा श्रीत्यभिमन्तव्या कन्या सा पाल्यते गृहे । परार्थे या सुहृन्मित्रभृत्यैर्नैवोपभुज्यते ॥२२
शक्रस्यैतद्वचः श्रुत्वा बृहस्पतिरुदारधीः । कथयामास संचिंत्य शुभं श्रीपञ्चमीव्रतम् ॥२३
यत्पुरा कस्यचित्प्रोक्तं व्रतानामुत्तमं व्रतम् । तदस्मै कथयामास सरहस्यमशेषतः ॥२४
तच्छ्रुत्वा कर्तुमारब्धं सुरेशेन सुरैस्तथा । दैत्यदानवगन्धर्वैर्यक्षैः प्रक्षीणकल्मषैः ॥२५
सिद्धैः प्रसिद्धचरितैर्विष्णुना प्रभविष्णुना । ब्राह्मणैर्ब्रह्मतत्त्वज्ञैः समर्थैः पार्थिवैः सह ॥२६

अभीष्ट सिद्ध करना चाहते थे । कुछ दिनों में उन लोगों के वेद-वाद परायणता आदि धर्म के कृत्यों और विक्रयों द्वारा सम्पूर्ण जगत् आक्रान्त हो उठा और देवों को लक्ष्मी विलास के कारण उस समय सर्वथा उन्माद हो गया था । जिससे उस मद के कारण उनका शील, शौच (पवित्रता) और सत्य उसी समय नष्ट हो गया । पुनः सत्य शौचादि से हीन एवं चञ्चल उन देवों को त्याग कर लक्ष्मी ने अनुराग पूर्ण होकर दानव कुल में प्रस्थान किया । लक्ष्मी-विलास में आसक्त होने के नाते उन मदोद्धत दानवों ने भी सर्वत्र अन्याय पूर्ण व्यवहार करना आरम्भ किया—वेद, यज्ञ, विद्या, जगत्, ब्रह्मा, विष्णु, शंकर एवं समस्त देवता हमीं लोग हैं—इस भाँति अहंकार विमूढ़ दानवों को देख कर भृगुपुत्री लक्ष्मी ने भ्रान्त चित्त होकर सागर में प्रविष्ट हो गई । क्षीर सागर के मध्य में लक्ष्मी के प्रविष्ट हो जाने पर सभी जगह अर्थ संचय क्षीण होने लगा और कुछ ही दिन में तीनों लोक से आनन्द और श्री की समाप्ति हो गई । उस समय शम्बर सूदन (इन्द्र) ने अपने को भी हीन देखकर अंगिरा पुत्र वृहस्पति से कहा—विप्र ! किसी इस प्रकार के व्रत बताने की कृपा कीजिये, जिसके द्वारा ऐसी लक्ष्मी की प्राप्ति हो, जो चल न हो अर्थात् सदैव अचल बनी रहे । मुने ! निश्चल होने पर भी सुहृद् मित्र आदि द्वारा उसका उपभोग भली भाँति हो किन्तु उसे भी न समझकर कन्या की भावना से अपने घर पालन-पोषण करे और परार्थ होने पर सुहृत् मित्र एवं सेवक आदि उसका उपभोग न कर सके। शक्र की ऐसी बात सुनकर उदारचेता वृहस्पति ने कहा—श्री के निमित्त इस परमोत्तम पञ्चमी व्रत को सविधान सुसम्पन्न करना चाहिए।१२-२३। यह उत्तम व्रत पहले समय में किसी के लिए बताया गया था, उसी को मैं सरहस्य तुम्हें बता रहा हूँ। यह सुनकर सुरेश ने उसे सविधान सुसम्पन्न किया और उसी भाँति दैत्य, दानव, गंधर्व, निष्पाप यक्ष, सिद्ध, प्रभावशाली विष्णु और राजाओं के साथ व्रह्मतत्ववेत्ता ब्राह्मणों ने सुसम्पन्न किया किन्तु उसी ने सात्विक भावना से राजस और

कैश्चित्सात्त्विकभावेन राजसेनापरैरपि । तामसेन तथा कैश्चित्कृतं व्रतमिदन्तथा ।।२७
व्रते समाप्ते भूयिष्ठे निष्ठया परया प्रभो । देवानां दानवानां च युद्धमासीदथोद्धतम् ।।२८
निर्मथ्य भुजवीर्येण सागरं सरितां पतिम् । समाहरामो ह्यमृतं हिताय त्रिदिवौकसाम् ।।२९
इत्येवं समयं कृत्वा ममन्थुर्वरुणालयम् । मन्थानं मन्दरं कृत्वा वेत्रं कृत्वा तु वासुकिम् ।।३०
मथ्यमानजलाज्जातश्चन्द्रः शीतांशुरुज्ज्वलः । अनन्तरं समुत्पन्ना लक्ष्मीः क्षीराब्धिमध्यतः ।।३१
तया विलोकिताः सर्वे दैत्यदानवसत्तमाः । आलोक्य सा जगामाशु विष्णोर्वक्षःस्थलं शुभम् ।।३२
विधिना विष्णुना चीर्णं व्रतं तेनाब्धिसम्भवा । शरीरस्था ह्यभूवास्य विभ्रमोद्भ्रान्तलोचना ।।३३
किं च राजसभावेन शक्रेणैतत्कृतं यतः । ततस्त्रिभुवनैश्वर्यं प्राप्तं तेन महर्द्धिकम् ।।३४
तमसावृतचित्तैस्तु सञ्चीर्णं दैत्यदानवैः । तेन तेषामथैश्वर्यं दृष्टनष्टमभूत्किल ।।३५
एवं सश्रीकमभवत्सदेवासुरमानुषम् । जरच्च जगतां श्रेष्ठ व्रतस्यास्य प्रभावतः ।।३६

युधिष्ठिर उवाच

कथमेतद्व्रतं कृष्ण क्रियते मनुजैः कदा । प्रारभ्यते पार्यते च सर्वं वद यदूत्तम ।।३७

श्रीकृष्ण उवाच

मार्गशीर्षे सिते पक्षे पञ्चम्यां पतगोदये । उपवासस्य नियमं कुर्यादाशुसुहृद्धृदि ।।३८
स्वर्णरौप्यारकूटोत्था ताम्रमृत्काष्ठजाथ वा । चित्रपट्टगतां देवीं लक्ष्मीं क्षमापाल कारयेत् ।।३९

तामस भावना से भी किसी किसी ने इसका आरम्भ किया था, जिससे व्रत के समाप्त होने पर देवों और दानवों का महान् भीषण युद्ध प्रारम्भ हुआ। उसी बीच विष्णु ने देवों के साथ यह निश्चय किया कि—देवों के हितार्थ सरित्पति क्षीर सागर को अपनी भुजाओं द्वारा मथ कर अमृत निकालना परमावश्यक है, यह सोचकर उन्होंने सब के साथ उस वरुणालय (सागर) का मंथन करना आरम्भ किया, जिसमें मंदराचल मथानी, नागवासुकी रस्सी बनाये गये थे। सर्वप्रथम उस सागर मंथन से उज्ज्वल एवं शीत किरण वाले चन्द्रमा का जन्म हुआ और तदनन्तर क्षीर सागर के मध्य से लक्ष्मी उत्पन्न होते ही सभी देव, ने श्रेष्ठ दानवों को भी देखा किन्तु भगवान् विष्णु के ही वक्षःस्थल का ही उन्होंने आश्रय लिया इसलिए कि विष्णु ने उत्तम विधान द्वारा उस व्रत को सुसम्पन्न किया था। विलास पूर्ण एवं मदभरे नेत्र वाली लक्ष्मीसदैव के लिए विष्णु का ही शरीर अपनाया और शक्र (इन्द्र) ने राजस भाव से उस व्रत को सुसम्पन्न किया था, जिससे उन्हें तीनों लोक का बहुमूल्य ऐश्वर्य प्राप्त हुआ। दैत्य तथा दानवों ने तामस भाव से उनकी उपासना की थी, जिससे उन्हें ऐश्वर्य की प्राप्ति तो हुई किन्तु देखते देखते वह नष्ट भी हो गया। उसी समय से देव, असुर और मनुष्यों को श्री प्राप्ति होने लगी।२४-३६

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण, यदुत्तम ! मनुष्यों को यह व्रत किस प्रकार और कब प्रारम्भ एवं समाप्त करना चाहिए, बताने की कृपा कीजिये।३७

श्रीकृष्ण बोले—मार्गशीर्ष मास की शुक्ल पञ्चमी के दिन सूर्योदय होने पर उपवास समेत व्रत के नियमों का पालन आरम्भ करना चाहिए। सुवर्ण, चांदी, पीतल, ताँबे अथवा काष्ठ पर लक्ष्मी की सुन्दर प्रतिमा का निर्माण करे, जिसमें उनके हाथ में कमल, पद्म वर्ण, और कमल दल के समान विकसित

पद्महस्तां पद्मवर्णां पद्मा पद्मदलेक्षणाम् । दिग्गजेन्द्रैः स्नाप्यमानां काञ्चनैः कलशोत्तमैः ॥४०
ततो यामत्रये जाते निम्नगायां गृहेऽथ वा । स्नानं कुर्यादसम्भ्रान्तं शक्रवदुपचारतः ॥४१
देवान्पितृंश्च सन्तर्प्य ततो देवगृहं व्रजेत् । तत्रस्थां पूजयेद्देवीं पुष्पैस्तत्कालसम्भवैः ॥४२
चपलायै नमः पादौ चंचलायै च जानुनी । कटिं कमलवासिन्यै नाभिं ख्यात्यै नमोनमः ॥४३
स्तनौ मन्मथवासिन्यै ललितायै भुजद्वयम् । उत्कंठितायै कण्ठं च माधव्यै मुखमण्डलम् ॥४४
नमः श्रियै शिरः पूज्य दद्यान्नैवेद्यमादरात् । फलानि च यथालाभं विरूढान्धान्यसञ्चयान् ॥४५
ततः सुवासिनी पूज्या कुसुमैः कुंकुमेन च । भोजयेन्मधुरान्नेन प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥४६
ततस्तु तण्डुलप्रस्थं घृतपात्रेण संयुतम् । ब्राह्मणाय प्रदातव्यं श्रीशः सम्प्रीयतामिति ॥४७
निर्वर्त्य तदशेषेण ततो भुञ्जीत वाग्यतः । मासानुमासं कर्तव्यं विधिनानेन भारत ॥४८
श्रीर्लक्ष्मीः कमला सम्पदुमा नारायणी तदा । पद्मा धृतिः स्थितिः पुष्टिर्ऋद्धिः सिद्धिर्यथाक्रमम् ॥
मासानुमासं राजेन्द्र प्रीयतामिति कीर्तयेत् ॥४९
ततश्च द्वादशे मासि सम्प्राप्ते पञ्चमे दिने । वस्त्रमण्डपिकां कृत्वा पुष्पगन्धाधिवासिताम् ॥५०
शय्यायां स्थापयेल्लक्ष्मीं सर्वोपस्कारसंयुताम् । मौक्तिकाष्टकसंयुक्तां नेत्रपट्टावृतस्तनीम् ॥५१
सप्तधान्यसमोपेतां रसधातुसमन्विताम् । पादुकोपानहच्छत्रभाजनासनसत्कृताम् ॥५२
दद्यात्सम्पूज्य विधिवद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने । व्यासाय वेदविदुषे यस्य वा रोचते स्वयम् ॥
सोपस्कारां सवत्सां च धेनुं दत्त्वा क्षमापयेत् ॥५३

एवं विशाल नेत्र हों, और दिक्पाल (गजेन्द्र गण), सुवर्ण कलशों द्वारा उन्हें स्नान करा रहे हों। तदनन्तर वसंत तीसरे पहर किसी नदी अथवा गृह में इन्द्र की भाँति उपचार समेत स्नान करके देव पितृतर्पण आदि नित्य कर्म की समाप्ति के अनन्तर देव मन्दिर में प्रविष्ट होकर समाप्ति के पुष्पों द्वारा उनकी सविधि अर्चना करे। चपलायै नमः से चरण, चंचलायै नमः से जानुनी (घुटने), कमलवासिन्यै नमः से कटि, ख्यात्यै नमः से नाभि, मन्मथवासिन्यै नमः से स्तन, ललितायै नमः से बाहु, उत्कण्ठितायै नमः से कण्ठ, माधव्यै नमः से मुख, और श्रियै नमः से शिर की अर्चना करके उन्हें सादर फल, हरे भरे सस्य अर्पित करे। ३८-४५। पश्चात् पुष्प, और कुंकुम द्वारा सौभाग्यवती की पूजा और मधुर भोजन से तृप्त कर अनुनय विनय पूर्वक विसर्जन करने के उपरांत घृत फल समेत एक सेर तण्डुल ब्राह्मण को अर्पित करते हुए श्रीशः प्रीयताम् (भगवान् विष्णु प्रसन्न हों) कहकर अनन्तर सबके साथ मौन होकर भोजन करे। भारत! इस प्रकार प्रत्येक मास के विधान कर्तव्य में श्री, लक्ष्मी, कमल, सम्पद, उमा, नारायणी, पद्मा, धृति, स्थिति, वृष्टि, और सिद्धि नामों के उच्चारण पूजन एवं संकीर्तन करता रहे। बारहवें मास में पञ्चमी के दिन पुष्प और सुगन्ध से अधिवासित परमोत्तम वस्त्र के सौन्दर्य पूर्ण मण्डप बना कर उसमें सुसज्जित शय्या पर जो समग्र साधनों से विभूषित की गयी हो, अधिवासन के उपरांत लक्ष्मी की प्रतिमा को उस पर स्थापित करके, जिनके आठ मोतियों से केश, सूक्ष्म वस्त्र से स्तन और परिधान (साड़ी) वस्त्र से सुसज्जित हो, और सप्तधान्य, रस, धातु, पादुका, उपानह, छत्र, भोजन, वस्त्र, आसन आदि से सुशोभित हों, पूजनोपरांत किसी कुटुम्बी ब्राह्मण को जो व्यास की भाँति वेद का निष्णात विद्वान् अथवा जिसे इच्छा हो सादर समर्पित कर काँसे की दोहनी समेत सवत्सा गौ के दान करके क्षमा प्रार्थना करे—क्षीर सागर के

क्षीराब्धिमथनोद्भूते विष्णोर्वक्षःस्थलालये । सर्वकामप्रदे देवि ऋद्धिं यच्छ नमोस्तु ते ॥५४
ततः सुवासिनीः पूज्याः वस्त्रैराभरणैः शुभैः । भोजयित्वा स्वयं पश्चाद्भुञ्जीत सह बन्धुभिः ॥५५
एवं यः कुरुते पार्थ भक्त्या श्रीपञ्चमीव्रतम् । तस्य श्रीर्भवने भाति कुलानामेकविंशतिः ॥५६
नारी वा कुरुते या तु प्राप्यानुज्ञां स्वभर्तृतः । सुभगा दर्शनीया च बहुपुत्रा च जायते ॥५७
श्रीपञ्चमीव्रतमिदं दयितं मुरारेर्भक्त्या समाचरति पूज्यभृगोस्तनूजाम् ।
राज्यं निजं स भुवि भव्यजनोपभोगान्भुक्त्वा प्रयाति भुवनं मधुसूदनस्य ॥५८

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
पञ्चमीव्रतकल्पे पञ्चमीव्रतनिरूपणं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।३७

अथाष्टत्रिंशोऽध्यायः

विशोकषष्ठीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

षष्ठीविधानमधुना कथयस्व जनार्दन । सर्वव्याधिप्रशमनं सर्वकर्मफलप्रदम् ॥१
श्रुतं मया पूज्यमानो भानुः सर्वं प्रयच्छति । दिवाकराराधनं मे तस्मात्कथय केशव ॥२

मंथन से उत्पन्न विष्णु के वक्षस्थल में निवास करने वाली एवं समस्त कामनाओं को सफल करने वाली देवि ! मुझे यथेच्छ ऋद्धि प्रदान कीजिये, मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ ! अनन्तर सौभाग्यवती स्त्री की वस्त्र और आभूषणों द्वारा पूजन एवं उत्तम भोजन से संतृप्त करने के पश्चात् वान्धवों समेत स्वयं भोजन करे । पार्थ ! इस प्रकार भक्तिपूर्वक इस पञ्चमी व्रत को सुसम्पन्न करने वाले प्राणी के गृह में इक्कीस पीढ़ी तक लक्ष्मी का अचल निवास रहता है, तथा पति की आज्ञा प्राप्त कर इसे सुसम्पन्न करने वाली स्त्री भी सौभाग्यवती, परमसौन्दर्य और अनेक पुत्रों की प्राप्ति करती है । इस प्रकार पञ्चमी व्रत को जो भगवान् मधुसूदन को अत्यन्त प्रिय है, सुसम्पन्न करते हुए भृगुपुत्री लक्ष्मी की भक्ति पूर्वक आराधना करता है, वह इस भूतल में राज्य पद पर भूषित होकर अनेक भव्य भोगों के उपरांत देहावसान के समय सादर विष्णु लोक की प्राप्ति करता है ।४६-५८

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वाद के पञ्चमी व्रत कल्प में
श्रीपञ्चमी व्रत वर्णन नामक सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।३७।

अध्याय ३८

विशोकषष्ठीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—जनार्दन ! मुझे इस समय वह षष्ठी विधान बताने की कृपा कीजिये, जिससे समस्त व्याधियों के शमन और समस्त कामनाओं की सिद्धि प्राप्त होती है । केशव ! मैंने यह भी सुना है कि भानु की आराधना करने पर समस्त सुखों की प्राप्ति होती है, अतः दिवाकर का आराधना-विधान बताने की कृपा अवश्य करें ।१-२

श्रीकृष्ण उवाच

विशोकषष्ठीमतुलां वक्ष्यामि मनुजोत्तम । यामुपोष्य नरः शोकं न कदाचिदिह जायते ।।३
माघे कृष्णतिलैः स्नातः पञ्चम्यां शुक्लपक्षतः[1] । कृताहारः कृशरया दन्तधावनपूर्वकम् ।।४
उपवासव्रतं कृत्वा ब्रह्मचारी भवेन्निशि । ततः प्रभाते चोत्थाय कृतस्नानस्ततः शुचिः ।।५
कृत्वा तु काञ्चनं पद्ममर्कोऽयमिति पूजयेत् । करवीरेण रक्तेन रक्तवस्त्रयुगेन च ।।६
यथा विशोकं भवनं त्वयैवादित्यसर्वदा । तथा विशोकता मे स्यात्त्वद्भक्तिर्जन्मजन्मनि ।।७
एवं सम्पूज्य षष्ठ्यां तु शक्त्या सम्पूजयेद्‌द्विजान् । सुप्त्वा सम्प्राश्य गोमूत्रमुत्थाय कृतनिश्चयः[2] ।।८
सम्पूज्य विप्रमन्त्रेण गुडपात्रसमन्वितः । सुसूक्ष्मवस्त्रयुगलं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।।९
अतैललवणं भुक्त्वा सप्तम्यां मौनसंयुतः । ततः पुराणश्रवणं कर्तव्यं भूतिमिच्छता ।।१०
अनेन विधिना सर्वमुभयोरपि पक्षयोः । कुर्याद्यावत्पुनर्माघशुक्लपक्षस्य सप्तमी ।।११
व्रतान्ते कलशं दद्यात्सुवर्णकमलान्वितम् । शय्यां सोपस्करां तद्वत्कपिलां च पयस्विनीम् ।।१२
अनेन विधिना यस्तु वित्तशाठ्यविवर्जितः । विशोकषष्ठीं कुरुते स याति परामं गतिम् ।।१३
यावज्जन्मसहस्राणां साग्रकोटिशतं भवेत् । तावन्न शोकमभ्येति रोगदौर्गत्यवर्जितः ।।१४
यं यं प्रार्थयते कामं तं तं प्राप्नोति पुष्कलम् । निष्कामं कुरुते यस्तु स परं ब्रह्म गच्छति ।।१५

श्रीकृष्ण बोले—नरश्रेष्ठ ! मैं तुम्हें अनुपम विशोक षष्ठी के विधान बता रहा हूँ, जिसमें उपवास रहने पर मनुष्य को कभी किसी प्रकार का शोक नहीं होता है । माघ मास में कृष्ण पञ्चमी के दिन काले तिल से स्नान कर कृशरान्न (खिचड़ी) के भोजन कर रात्रि में ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने के उपरांत प्रातःकाल दंतधावन पूर्वक उपवास के नियम पालन करते हुए पवित्रता पूर्ण स्नान नित्य नियम के उपरांत सुवर्ण के अष्टदल कमल को सूर्य मान कर रक्त कनेर पुष्प एवं रक्त वस्त्र द्वारा उनकी अर्चना कर क्षमा प्रार्थी होकर कहे कि—आदित्य देव ! आपकी प्रसन्नता से सभी प्राणियों का शोक नष्ट होता है, अतः मुझे भी सर्वदा के लिए शोक हीन करते हुए प्रत्येक जन्म में अपनी भक्ति प्रदान करते रहे । षष्ठी के दिन इस प्रकार उनकी आराधना करके ब्राह्मणों की पूजा के उपरांत गोमूत्र पान पूर्वक शयन कर रात्रि व्यतीत करे पश्चात् सप्तमी के दिन प्रातः काल नित्य नियम सुसम्पन्न करे गुड़ पात्र और दो सूक्ष्म वस्त्र समेत ब्राह्मण पूजन एवं तेल, लवण के त्याग पूर्वक भोजनोपरांत मौन होकर अपने ऐश्वर्य प्राप्त्यर्थ पुराण कथा श्रवण करना आरम्भ करे । इस विधान द्वारा दोनों पक्षों की षष्ठी में व्रतानुष्ठान सुसम्पन्न करते हुए अगले माघ की शुक्ल सप्तमी के दिन सुवर्ण कमल समेत कलश, साधन समेत शय्या, कपिला एवं पयस्विनी गौ, के दान पूर्वक उसकी समाप्ति करे । इस विधान द्वारा जो पुरुष अपने वित्तशाठ्य दोष से सतर्क रहकर इस विशोक षष्ठी व्रत को भक्ति पूर्वक सुसम्पन्न करता है, उसे परम गति की प्राप्ति पूर्वक सौ कोटि जन्म तक रोग, दुर्गति, एवं शोक हीन सुखों की प्राप्ति होती है, और जिस पदार्थ की कामना करता है उसकी सफलता शीघ्र हो जाती है । जो पुरुष निष्काम होकर इसको सुसम्पन्न करता है उस पर ब्रह्म की प्राप्ति

---

१. कृष्णपक्षतः । २. कृतनैत्यकः ।

यः पठेच्छृण्याद्वापि षष्ठीं शोकविनाशिनीम्। सोऽपींद्र लोकमाप्नोति न दुःखी जायते क्वचित् ।।१६
ये भास्करं दिनकरं करवीरपुष्पैः सम्पूजयन्त्यभिनमन्ति कृतपोपवासाः।
ते दुःखशोकरहिताः सहिताः सुहृद्भिर्भूमौ विहृत्य रविलोकमवाप्नुवन्ति ।।१७
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
विशोकषष्ठीव्रतं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ।३८

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

कमलषष्ठीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अन्यामपि प्रवक्ष्यामि पद्मषष्ठीं शुभां तथा। यामुपोष्य नरः पापविमुक्तः स्वर्गभाग्भवेत् ।।१
मार्गशीर्षे शुभे मासि पञ्चम्यां नियतव्रतः। षष्ठीमुपोष्य कमलं कारयित्वा सुकाञ्चनम् ।।२
शर्करासंयुतं दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने। रूपं च काञ्चनं कृत्वा फलस्यैकस्य धर्मवित् ।।३
दद्यात्प्रातः कृतस्नानो भानुर्मे प्रीयतामिति। भक्त्या तु विप्रान्सम्पूज्य सप्तम्यां क्षीरभोजनम् ।।४
कृत्वा कुर्यात्फलत्यागं या च स्यात्कृष्णसप्तमी। एतामुपोष्य विधिवदनेनैव क्रमेण तु ।।५
तद्वै हैमं फलं दत्त्वा सुवर्णं कमलान्वितम्। शर्करापात्रसंयुक्तवस्त्रमालासमन्वितम् ।।६
षष्ठ्योरुभयोर्महाराज यावत्सम्वत्सरं ततः। उपोष्य दद्यात्क्रमशः सूर्यमन्त्रानुदीरयेत् ।।७

होती है। इस प्रकार उस शोक शमन करने वाली षष्ठी को सुसम्पन्न एवं उसकी कथा पढ़ता या सुनाता है, उसे भी इन्द्र लोक की प्राप्ति पूर्वक कभी दुःख का अनुभव नहीं करना पड़ता है। उपवास पूर्वक जो कनेर पुष्प द्वारा भास्कर के पूजन एवं नमस्कार करता है, उसे दुःख रहित होकर इस धरातल पर अपने मित्रों समेत समस्त सुखोपभोग करने के उपरांत सूर्य लोक की प्राप्ति होती है।३-१७

श्री भविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
विशोक षष्ठी व्रत वर्णन नामक अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त।३८

अध्याय ३९

कमलषष्ठी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पद्म षष्ठी नामक एक अन्य व्रत-विधान बता रहा हूँ, जिसमें उपवास रहकर पुरुष पाप मुक्त होकर स्वर्ग की प्राप्ति करता है। मार्गशीर्ष मास की शुभ पञ्चमी में संयम पूर्वक व्रत नियम पालन करते हुए षष्ठी में सुवर्ण कमल की पूजा कर शक्कर समेत उसे सादर किसी कुटुम्बी ब्राह्मण को अर्पित करते हुए सुवर्ण या चाँदी का एक फल भी प्रातः स्नान के उपरांत समपर्ण करे और सूर्य मुझ पर प्रसन्न हों, कह कर ब्राह्मण के पूजन पूर्वक सप्तमी के दिन क्षीर भोजन कर समाप्त करे। इसी क्रम से कृष्ण पक्ष की सप्तमी भी उपवास रहकर फल के त्याग (दान) पूर्वक सुसम्पन्न करना चाहिए। उसमें सुवर्ण के कमल और सुवर्ण का ही फल होना चाहिए, जो शक्कर, वस्त्र और माला समेत पूजनोपरांत ब्राह्मण को अर्पित किया जाता है। महाराज! इस प्रकार दोनों पक्षों की षष्ठी को पूरे वर्ष तक सुसम्पन्न

भानुरर्को रविर्ब्रह्मा सूर्यः शुक्रो हरिः शिवः । श्रीमान्विभावसुस्त्वष्टा वरुणः प्रीयतामिति ॥८
प्रतिमासं च सप्तम्यामेकैकं नाम कीर्तयेत् । प्रतिपक्षं फलत्यागमेतत्कुर्वन्समाचरेत् ॥९
व्रतान्ते विप्रमिथुनं पूजयेद्वस्त्रभूषणैः । शर्कराकलशं दद्याद्धैमपद्मफलान्वितम् ॥१०
यथा फलकरो मासस्त्वद्भक्तानां सदा रवे । तथानन्तफलावाप्तिरस्तु जन्मनिजन्मनि ॥११
इमामनन्तफलदां फलषष्ठीं करोति यः । स सर्वपापनिर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते ॥१२
सुरापानादिकं किञ्चिद्यदत्रामुत्र वा कृतम् । तत्सर्वं नाशमायाति सूर्यलोकं स गच्छति ॥१३
भूतान्भव्यांश्च पुरुषांस्तारयेदेकविंशतिम् । शृणुयाद्यः पठेद्वापि सोपि कल्याणभाग्भवेत् ॥१४
हैमं फलं सकमलं कलशं सितायाः षष्ठीमुपोष्य विधिवद्द्विजपुङ्गवाय ।
दद्यात्सुरासुरशिरोमणिघृष्टपादं भानुं प्रणम्य फलसिद्धिमुपैति मर्त्यः ॥१५

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कमलषष्ठीव्रतं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।३९

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

मंदारषष्ठीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम् । सर्वकामप्रदां पुण्यां षष्ठीं मन्दारसंज्ञिताम् ॥१

करते हुए प्रत्येक मास में सूर्य के नाम मंत्रों के उच्चारण करने चाहिए । १-७। भानु, अर्क, रवि ब्रह्मा, सूर्य, शुक्र, हरि, शिव, श्रीमान्, विभावसु, त्वष्टा, और वरुण के क्रमशः प्रत्येक मास की सप्तमी में नामोच्चारण पूर्वक 'मुझ पर प्रसन्न हों' कहते हुए सुवर्ण के त्याग करता रहे । पुनः व्रत के समाप्ति में युगल ब्राह्मणों की वस्त्र, आभूषण, शक्कर, कलश, एवं सुवर्ण के कमल और फल के प्रदान समेत पूजनोपरांत क्षमा प्रार्थना करे कि—रवे ! जिस प्रकार आप के मास सदैव फल प्रदान करते रहते हैं, उसी भाँति मुझे भी प्रत्येक जन्म में अनन्त फलों की प्राप्ति होती रहे । इस प्रकार अत्यन्त फलप्रद षष्ठीको जो (विधान) सुसम्पन्न करता है, वह समस्त पाप से मुक्त होकर सूर्य लोक में सम्मानित होता है और लोक परलोक में सुरापान आदि जो कुछ किये रहता है, उसके नाश पूर्वक सूर्य लोक की प्राप्ति करता है और अपने भूत एवं भविष्य के इक्कीस पीढ़ी के उद्धार भी करता है । इसके सुनने अथवा पढ़ने वाला भी कल्याण भागी होता है । इस प्रकार इस शुक्ल षष्ठी के व्रत को उपवास रहकर सुवर्ण के कमल, कलश और फल के दान स्त्री श्रेष्ठ ब्राह्मण को अर्पित कर देवों एवं असुरों के किरीट मुकुट की मणियों से अभिवन्दित चरण वाले सूर्य को भक्ति पूर्वक प्रणाम करता है, उसे शीघ्र अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है ।८-१५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर सम्वाद में कमल षष्ठी व्रत वर्णन
नामक उनतालिसवाँ अध्याय समाप्त ।३९।

अध्याय ४०

मंदारषष्ठी-व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें उस मंदार नामक षष्ठी के विधान बता रहा हूँ, जो समस्त पापों के

माघस्यानलपक्षे तु पञ्चम्यां लघुभुङ्नरः । दन्तकाष्ठं ततः कृत्वा षष्ठीमुपवसेद्बुधः ॥
विप्रान्सम्पूज्य विधिवन्मंदारं प्राशयेन्निशि ॥२
ततः प्रभाते चोत्थाय कृतस्नानः पुनर्द्विजान् । भोजयेच्छक्तितः कृत्वा मन्दारकुसुमाष्टकम् ॥३
सौवर्णं पुरुषं तद्वत्पद्महस्तं सुशोभनम् । पद्मं कृष्णतिलैः कृत्वा ताम्रपात्रेऽष्टपत्रकम् ॥४
पूज्य मन्दारकुसुमैर्भास्करायेति पूर्वतः । नमस्कारेण तद्वच्च सूर्यायेत्यनले दले ॥५
दक्षिणे तद्वदर्काय तथार्यम्णे च नैर्ऋते । पश्चिमे वसुधात्रे च वायव्ये चण्डभानवे ॥६
पूष्णे ह्युत्तरतः पूज्य आनन्दायेत्यतः परम् । कर्णिकायां तु पुरुषः पूज्यः सर्वात्मनेति च ॥७
शुक्लवस्त्रैः समावेष्ट्य भक्ष्यैर्माल्यफलादिभिः । एवमभ्यर्च्य तत्सर्वं दद्याद्वेदविदे पुनः ॥
भुञ्जीतातैललवणं वाग्यतः प्राङ्मुखो गृही ॥८
अनेन विधिना सर्वं सप्तम्यां मासिमासि च । कुर्यात्सम्वत्सरं यावद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥९
एतदेव व्रतान्ते तु निधाय कलशोपरि । गोभिर्विभवतः सार्द्धं दातव्यं भूतिनिच्छता ॥१०
नमो मन्दारनाथाय मन्दारभवनाय च । त्वं च वै तारयस्वास्मानस्मात्संसारकर्दमात् ॥११
अनेन विधिना यस्तु कुर्यान्मन्दारकं व्रतम् । विपाप्मा स सुखी मर्त्यः कल्पं च दिवि मोदते ॥१२
इमा मघौघपटलध्वान्तसद्व्रतिदीपिकाम् । गच्छन्प्रगृह्य संसारशर्वर्यां न स्खलेन्नरः ॥१३

प्रणाश पूर्वक समस्त कामनाओं को सफल करने वाली एवं पुण्य रूप है । माघ मास की शुक्ल पञ्चमी के दिन लघु आहार करके षष्ठी के प्रातः काल दातून करने आदि से प्रारम्भ कर उपवास के सभी नियम पालन और ब्राह्मण पूजन के उपरांत रात्रि में मंदार के प्राशन करके शयन करे । अनन्तर सप्तमी के दिन प्रातः काल स्नान एवं नित्य नियम सुसम्पन्न करने के उपरांत यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन सुवर्ण निर्मित मंदार के आठ पुष्प, और सुवर्ण के पुरुष निर्माण करे, जिसके साथ सुवर्ण कमल से विभूषित हो, पुनः उस अष्टदल कमल को जो काले तिल समेत कर्णिका समेत स्थित हो ताम्र पात्र में स्थापित कर उस मंदार कुसुमों द्वारा उस कमल दल में भास्कराय नमः से पूर्व, सूर्याय नमः से अग्निकोण, अर्काय नमः से दक्षिण, अर्यम्णे नमः से नैऋत्य, वसुधायै नमः से पश्चिम, भानवे नमः से वायव्य, पूष्णे नमः से उत्तर, आमन्दाय नमः से ईशान कोण की अर्चना करके कर्णिका में उस सुवर्ण पुरुष की शुक्ल वस्त्र से आवेष्टित कर माला एवं भक्ष्य फल आदि द्वारा भक्ति पूर्वक अर्चना सुसम्पन्न करे । इस प्रकार उसकी सविधान पूजा के उपरांत उसे सादर वेद निष्णात विद्वान् को अर्पित कर घर में तेल लवण के त्याग पूर्वक पूर्वाभिमुख मौन होकर भोजन करे । इसी विधान द्वारा प्रत्येक मास की प्रति सप्तमी में यथाशक्ति पूर्ण वर्ष तक पूजन दान करने के अनन्तर उसकी समाप्ति में कलश के ऊपर उपरोक्त वस्तुएँ स्थापित कर अपने कल्याणार्थ धन, और गौ आदि के पूजन करते हुए क्षमा प्रार्थना करे कि मंदार नाथ एवं मंदार विधान को मैं सविनय नमस्कार करता हूँ, इस संसार कीचड़ से मेरा उद्धार करें ।१-११। इस प्रकार सविधान इस मंदार व्रत को सुसम्पन्न करने वाला मनुष्य पाप मुक्त होकर इस भूमण्डल में सुखोपभोग करने के उपरांत देहावसान होने पर कल्प तक स्वर्ग का सुखोपभोग करता है । पाप समूह को नष्ट करने वाली इस षष्ठी व्रत रूप प्रज्वलित बत्ती से युक्त दीपक को हाथ में लिए यात्रा करता है, उसे इस संसार रूप रात्रि में कोई कष्ट न

मन्दारषष्ठीं विख्यातामीप्सितार्थफलप्रदाम् । यः पठेच्छृणुयाद्वापि सोऽपि पापैः प्रमुच्यते ॥१४
षष्ठीमुपोष्य तिलपङ्कजकर्णिकायां सम्पूज्य भास्करमहो सुरवृक्षपुष्पैः ।
यत्प्राप्नुवन्ति पुरुषा न हि तत्कदाचिद्गोभूहिरण्यतिलदाः पदमाप्नुवन्ति ॥१५
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
मन्दारषष्ठीव्रतनिरूपणंनाम चत्वारिंशोऽध्यायः ।४०

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

ललिताषष्ठीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

भद्र भाद्रपदे मासि शुक्लषष्ठ्यां युधिष्ठिर । योषित्सुवेषा सुभगा सर्वलोकमनोहरा ॥१
प्रातः स्नानं महानद्यां कृत्वा संगृह्य वालुकाम् । नवे वंशमये पात्रे यायाद्गृहमतन्द्रिता ॥२
सोपवासा प्रयत्नेन देवीं तत्र प्रपूजयेत् । कृत्वा वस्त्रगृहं रम्यं दीपनेत्रपटावृतम् ॥३
तत्र संस्थाप्य तां देवीं पुष्पैः सम्पूजयेन्नवैः । ध्यात्वा ललितिकां गौरीं तपोवननिवासिनीम् ॥४
मन्त्रेणानेन कुसुमैश्चंपकस्य सुशोभनैः । चम्पकं करवीरं च नेमालिं मालतीं तथा ॥
नीलोत्पलं केतकीं च संगृह्य तगरं तथा ॥५
एकैकस्य त्वष्टशतमष्टाविंशतिरेव वा । अक्षतैः कलिका ग्राह्यास्तैस्तु देवीं समर्चयेत् ॥६

होकर अच्युत सुख से मार्ग समाप्त करता है । अभीष्ट फलदायक इस मंदार षष्ठी व्रत को पढ़ने अथवा सुनने वाला भी समस्त पापों से मुक्त होता है । इस भाँति इस षष्ठी के दिन उपवास पूर्वक तिल निर्मित कमल की कर्णिका में मन्दार पुष्पों द्वारा भास्कर की पूजा करने पर मनुष्य को जिस फल की प्राप्ति होती है उसे गो, भूमि और सुवर्ण के एवं तिल दान करने वाले नहीं प्राप्त कर सकते हैं ।१२-१५
श्रीभविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में मंदार षष्ठी व्रत वर्णन
नामक चालीसवाँ अध्याय समाप्त ।४०।

अध्याय ४१

ललिता षष्ठी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—भद्र, युधिष्ठिर ! भाद्रपद मास की शुक्ल षष्ठी के दिन सौभाग्यवती स्त्री को चाहिए कि अपने वेष भूषा को मनमोहक बनाकर प्रातः काल किसी महा नदी में स्नान करने के उपरांत नवीन बाँस के पात्र में घर लौटते समय बालू भी लेती आये । घर पहुँच कर उपवास रहते हुए बालू द्वारा देवी की सौन्दर्य पूर्ण प्रतिमा बमाकर सूक्ष्म वस्त्रादि से विभूषित करने के उपरांत उस प्रतिमा को वस्त्र के सुसज्जित मण्डप में स्थापित कर नबीन पुष्पों द्वारा तपोवन निवासिनी ललिता देवी के ध्यान पूर्वक उसकी सविधान पूजन करे । उनकी अर्चना में चम्पा के पुष्प होने चाहिए अथवा कनेर, नेमालि, मालती, नील कमल, केतकी और तगर भी होने चाहिए।१-५ जिसकी एक एक संख्या आठ सौ, अथवा अट्ठाईस हों तथा

गङ्गाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नीलपर्वते । स्नात्वा कनखले तीर्थे हरं लब्धवती वजेत् ॥७
ललितेललिते देवि सौख्यसौभाग्यदायिनि । या सौभाग्यसमुत्पन्ना तस्यै देव्यै नमोनमः ॥
एवमभ्यर्च्य विधिना नैवेद्यं पुरतो न्यसेत् ॥८
कूष्माण्डैः कर्कटीवृन्तैः कर्कोटैः कारवेल्लकैः । वृन्ताकैरक्षतैरङ्गैर्दीपधूपाद्यलक्तकैः ॥९
सार्द्धं सगुडकैर्धूपैः सोहालककरम्बकैः । गुडपुष्पैःकर्णवेष्टैर्मोदकैर्मुखमोदकैः ॥१०
एवमभ्यर्च्य विधिवद्रात्रौ जागरणं ततः । गीतवाद्यनटच्छत्रप्रेक्षणीयैः सुशोभनैः ॥
सखीभिः सहिता साध्वी तां रात्रीं प्रशमन्नयेत् ॥११
न च सम्मीलयेन्नेत्रे नारी यामचतुष्टयम् । दुर्भगा दुर्गता वन्ध्या नेत्रसम्मीलनाद्भवेत् ॥१२
एवं जागरणं कृत्वा सप्तम्यां सरितं नयेत् । गन्धपुष्पैरथाभ्यर्च्य गीतवाद्यपुरःसरम् ॥१३
तच्च दद्याद्विजेन्द्राय नैवेद्यादि नरोत्तम । स्नात्वा गृहमुपागम्य हुत्वा वैश्वानरं क्रमात् ॥
देवान्पितॄन्मनुष्यांश्च पूजयित्वा सुवासिनीम् ॥१४
कुमारिका भोजनीया ब्राह्मणा दशपञ्च च । भक्ष्यभोज्यैर्बहुविधैर्देया तेभ्यः सुदक्षिणा ॥
ललिता प्रीतियुक्ताऽस्तु इत्युक्त्वा तान्विसर्जयेत् ॥१५
यः कश्चिदाचरेदेतद्भक्त्या ललितिकाव्रतम् । नरो वा यदि वा नारी तस्य पुण्यफलं शृणु ॥१६
तन्नास्ति मानुषे लोके तस्य यन्नोपपद्यते । सुखसौभाग्यसंयुक्ता गौरीलोकमवाप्नुयात् ॥१७

अक्षत कलियों से भी देवी की उत्तम अर्चना की जा सकती है। पूजन के समय—उस गंगाद्वार (हरिद्वार) में जो कुशाओं एवं बिल्व से संयुक्त नीलपर्वत पर सुशोभित है, तथा कनखल तीर्थ में स्नान पूर्वक शिव को प्राप्त करके ही विश्राम किया है, और सौख्य एवं सौभाग्य दायिनी ललिते देवि ! आप सौभाग्य रूप है, अतः मैं आप को बार-बार नमस्कार कर रही हूँ, इस प्रकार उच्चारण कर उनके समक्ष नैवेद्य रखकर कुष्मांड, ककड़ी, अखरोट, करेला, अक्षत पपीता, धूप, दीप, अलक्तक (महावर) सोहालक करम्बक, महुआ के पुष्प, कुण्डल और मोदक द्वारा उनकी सविधान अर्चना करने के उपरांत रात्रि में गीत, वाद्य, सुन्दर नाटकादि दृश्य के द्वारा सखियों समेत जागरण करे। रात्रि के उस चार प्रहर के समय में निद्रा के कारण कुछ भी नेत्र निमीलन न होने पाये, क्योंकि नेत्रनिमीलन (झपकी) होने से स्त्री को दुर्भगा दुर्गति एवं वंध्या होना पड़ता है। पश्चात् सप्तमी के दिन प्रातः काल गन्ध पुष्पादि द्वारा अर्चना करने के उपरांत गायन वाद्य करते हुए उस प्रतिमा को किसी नदी में छोड़े दें और उसकी सभी वस्तुएं किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित कर स्नान कर घर आने पर हवन, देव-पितृ तर्पण के अनन्तर सौभाग्यवती स्त्री की पूजा, कुमारी भोजन, दश या पांच ब्राह्मणों को दक्षिणा समेत अनेक भाँति के भोजन से तृप्त कर 'ललिता देवी अत्यन्त प्रसन्न हों' कहते हुए उनके विसर्जन करे।६-१५। इस भाँति ललिता देवी की भक्ति पूर्वक आराधना सुसम्पन्न करने वाले पुरुष अथवा स्त्री को जिस फल की प्राप्ति होती है, बता रहा हूँ, सुनो ! उसके सुख सौभाग्य प्राप्ति पूर्वक उपभोगार्थ कोई वस्तु इस लोक में अप्राप्तव्य नहीं रहती है और देहावसान के समय गौरी लोक की प्राप्ति होती है। इस प्रकार षष्ठी के दिन जल के भीतर प्रविष्ट होकर

षष्ठ्यां जलान्तरगता वरवंशपात्रे संगृह्य पूजयति या सिकताः क्रमेण।
नक्तं च जागरमनुद्धतगीतनृत्यैः कृत्वा ह्यसौ त्रिभुवने ललितेव भाति ॥१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
ललिताषष्ठीव्रतवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ।४१।

अथ द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः

कार्तिकेयपूजावर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

येयं मार्गशिरे मासि षष्ठी भरतसत्तम। पुण्या पापहरा धन्या शिवा शान्ता गुहप्रिया ॥१
निहत्य तारकं षष्ठ्यां गुहस्तारकराजवत्। रराज तेन दयिता कार्त्तिकेयस्य सा तिथिः ॥
स्नानदानादिकं कर्म तस्यामक्षयमुच्यते ॥२
यस्यां पश्यन्ति गाङ्गेयं दक्षिणापथमाश्रितम्। ब्रह्महत्यादिपापैस्ते मुच्यन्ते नात्र संशयः ॥३
तस्मादस्यां सोपवासः कुमारं स्वर्णसम्भवम्। राजतं वा महाराज मृण्मयं वापि कारयेत् ॥४
अपराह्णे ततः स्नात्वा समाचम्य यतव्रती। पद्मासनस्थो गाङ्गेयं ध्यायंस्तिष्ठेत्समाधिना ॥५
ब्राह्मणस्तु ततो विद्वान्गृहीत्वा करकं नवम्। पातयेत्तस्य शिरसि धारां वै दक्षिणामुखः ॥६

स्नानोपरांत बाँस के पात्र में बालुकाओं को लेकर उसकी सुन्दर प्रतिमा के पूजन, गीत एवं नृत्य, वाद्य द्वारा रात्रि जागरण करने पर वह तीनों लोक में प्रख्याति प्राप्त ललिता देवी की भाँति सुशोभित होती है।१६-१८

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
ललिता षष्ठीव्रत वर्णन नामक एकतालीसवाँ अध्याय समाप्त।४१।

अध्याय ४२

कार्तिकेय पूजा का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—भारत सत्तम ! मार्गशीर्ष मास की षष्ठी अत्यन्त पुण्या, पापहारिणी, धन्या, कल्याणिनी, शान्त एवं गृह प्रिय है।१-२। इसी षष्ठी के दिन कुमार को तारकासुर का निधन कर लोकोत्तर ख्याति प्राप्त की है, इसीलिए उन कार्तिकेय को यह तिथि अत्यन्त प्रिय है। इस दिन स्नान एवं दान आदि जो कुछ कर्म किये जाते हैं, अक्षय फल प्रदान करते हैं। इस तिथि में गांगेय (कुमार) के दक्षिणा पथ आश्रित होते हुए जो लोग दर्शन करते हैं, उनके ब्रह्महत्यादि सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं इनमें संदेह नहीं। महाराज ! इसलिए इस तिथि के दिन सुवर्ण चाँदी अथवा मृत्तिका की कुमार की प्रतिमा बनाकर अपराह्ण के समय संयम पूर्वक स्नान-नित्य नियम के उपरांत पद्मासन द्वारा बैठकर गङ्गा पुत्र (स्कन्द) के ध्यान में समाधिनिष्ठ होकर उस विद्वान् ब्राह्मण को दक्षिणाभिमुख होकर नवीन करवा द्वारा उनके शिर पर स्नानार्थ जल गिरायें उस समय कहना चाहिए कि— गंगाकुमार ! शिव जी की विभूति की भाँति

चन्द्रमण्डलभूतानां भवभूतिपवित्रितः । गङ्गाकुमारधारेयं पतिता तव मस्तके ॥७
एवं स्नात्वा समभ्यर्च्य भास्करं भुवनाधिप । पुष्पधूपादिना पश्चात्पूजयेत्कृत्तिकासुतम् ॥८
देवसेनापते स्कन्द कार्त्तिकेय भवोद्भव । कुमार गृह गाङ्गेय शक्तिहस्त नमोऽस्तु ते ॥९
एभिर्नामपदैः पूज्य नैवेद्यं विनिवेदयेत् । फलानि दक्षिणान्नानि चन्दनं मलयोद्भवम् ॥१०
पार्श्वस्थौ पूजयेच्छागकुक्कुटौ स्वामिवल्लभौ । सकलापं मयूरं च प्रत्यक्षां हिमजां तथा ॥११
कृत्तिकाकटकं पार्श्वे सम्पूज्य स्कन्दवल्लभम् । तेनैव नामभिर्होमः कार्यः साज्यैस्तिलैस्तथा ॥१२
एवं निर्वर्त्य विधिवत्फलमेवं युधिष्ठिर । भक्षयित्वा स्वपेद्भूमौ स्वास्तृते दर्भसंस्तरे ॥१३
नालिकेरं मातुलुंगं नारिंगं पनसं तथा । जम्बीरं दाडिमं द्राक्षां हृद्यान्याम्रफलानि च ॥१४
श्रीफलामलकं तद्वत्रपुसं कदलीफलम् । क्रमेण भक्षयेद्राजन्संयतो नियतव्रती ॥
अलाभे कलकालौघफलमद्यादतन्द्रितः ॥१५
प्रत्यक्षो हेमघटितश्छागो वा कुक्कुटोऽथवा । प्रातर्दद्याद् द्विजायैतत्सेनानीः प्रीयतामिति ॥१६
सेनायां स च सम्भूतः क्रौञ्चारिः षण्मुखो गृहः । गाङ्गेयः कार्तिकेयश्च स्वामी बालग्रहाग्रणीः ॥१७
छागप्रियश्शक्तिधरो द्वारो द्वादशभः स्मृतः । प्रीयतामिति सर्वेषु क्रमान्मासेषु कीर्तयेत् ॥१८
ब्राह्मणान्भोजयित्वादौ पश्चाद्भुञ्जीत वाग्यतः । एवं संवत्सरस्यान्ते कार्त्तिके मासि शोभने ॥१९
कार्त्तिकेयं समभ्यर्च्य वासोभिर्भूषणैः सह । गाङ्गेयः कार्तिकेयश्च सकृदेवैवमाचरेत् ॥२०
सम्वत्सरविधिं कृत्वा जपं होमपुरस्कृतम् । दद्याद्विप्राय राजेन्द्र वाचकाय विशेषतः ॥२१
एते विप्राः स्मृता दिव्या भौमास्त्वन्ये द्विजातयः । पालितेऽस्मिन्व्रते पार्थ तीर्णः स्याद्भवसागरात् ॥२२

अत्यन्त पवित्र यह धारा चन्द्र मण्डल के आकार में तुम्हारे मस्तक पर गिर रही है । भुवनाधिप ! इस प्रकार स्नान कराकर पुष्प, एवं धूप आदि द्वारा उन कृत्तिका सुत की अर्चना करके देव सेनापति, स्कन्द, कार्तिकेय, भवपुत्र, कुमार, गृह, गाङ्गेय, और शक्ति हस्त को नमस्कार है, कहते हुए उन्हें नैवेद्य, फल समेत दक्षिणा तथा मलय चन्दन आदि सुगन्ध की वस्तुएँ सादर समर्पित करनी चाहिए । पश्चात् उनके पार्श्व में स्थित छाग (बकरी) कुक्कुट (मुर्गा), कल्प समेत मयूर और पार्वती जी की पूजा करते हुए उनके पार्श्व में स्थित स्कन्द प्रिय कृत्तिका कटक की अर्चना करके उन्हीं नामों के उच्चारण पूर्वक घृत और तिल का हवन करे । युधिष्ठर ! तदुपरांत फल भक्षण कर भूमि में कुश के आसन पर शयन करे । नारियल, मातुलुङ्ग (विजौरा नीबू), नारङ्गी, कटहल, जम्बीर, अनार, द्राक्षा, प्राण, श्रीफल, आंवला, ककडी, केला, आदिफलों के भक्षण क्रमशः प्रतिमा में उस व्रती को करना चाहिए । और उसके अजा लाभ का लौघ फल व्रत में छाग (बकरी) और कुकुट मुर्गे की अथवा किसी एक की सुवर्ण की प्रतिमा बना कर पूजनोपरांत सादर किसी ब्राह्मण विद्वान् को अर्पित करे। और सेनानी प्रसन्न हों, कहकर विसर्जन करे सेनानी, क्रौञ्चारि, षण्मुख, गुह, गाङ्गेय, कार्तिकेय, स्वामी, बाल गृह, प्राणी, घटाप्रिय, शक्तिधर, और द्वार नामों के उच्चारण क्रमशः प्रत्येक मासों में करके उनकी अर्चना सुसम्पन्न करना चाहिए तथा ब्राह्मण भोजन के उपरांत मौन होकर स्वयं भोजन करे। इस प्रकार वर्ष की समाप्ति के अवसर पर उस उत्तम कार्तिक मास में वस्त्राभूषण द्वारा कार्तिकेय की पूजा, सम्वत्सर विधान और जप हवन के उपरांत उसे ब्राह्मण वाचक को सादर समर्पित करे।३-२१। राजेन्द्र ! यही दिव्य एवं भौम ब्राह्मण ही इस व्रत में व्रती द्वारा पूजित होने योग्य बताये गये हैं। पार्थ ! व्रत में इनकी पूजा करने से वह व्रती भवसागर को पार करता है।

एवं यः कुरुते भक्त्या नरो योषिदथापि वा । स प्राप्येह शुभं कामं गच्छतीन्द्रसलोकताम् ॥२३
सदैव पूजनीयस्तु कार्तिकेयो महीयते । कार्त्तिकेयादृते नान्यो राज्ञां पूज्यः प्रवक्ष्यते ॥२४
सङ्ग्रामं गच्छमानो यः पूजयेत्कृत्तिकासुतम् । स सर्वं जयते वीरो यथेन्द्रो दानवान् रणे ॥२५
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूजयेच्छंकरात्मजम् । पूज्यमानस्तु सद्भक्त्या सर्वान्कामान्प्रयच्छति ॥२६
यस्तु षष्ठ्यां नरो नक्तं कुर्याद्भारतसत्तम । सर्वपापविनिर्मुक्तो गाङ्गेयस्य सदा व्रजेत् ॥२७
श्रुत्वैवं दक्षिणां मासं गत्वा श्रद्धासमन्वितः । पूजयेद्देवदेवेशं स गत्वा शिवमन्दिरम् ॥२८

स्कन्दं गुहं शरवणोद्भवमादिदेवं शम्भोः सुतं सदयितं गिरिराजपुत्र्याः ।
स्वर्गे निरर्गलसुखान्यनुभूयते न सेनापतिर्भवति राज्यधुरन्धरोऽसौ ॥२९

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
तारकवधकार्त्तिकेयपूजाषष्ठीव्रतवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।४२

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

विजयसप्तमीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

सप्तमी च यदा देव केन कालेन पूज्यते । किंफला नियमः कश्चिद्वद देवकिनन्दन ॥१

इस भाँति भक्तिपूर्वक व्रत को सुसम्पन्न करने वाले पुरुष अथवा स्त्री अपनी कामनाओं की सफलता पूर्वक अन्त में इन्द्रलोक प्राप्त करती है । महीपते ! इसलिए कार्तिकेय जी की सदैव पूजा करनी चाहिए और कार्तिकेय के अतिरिक्त अन्य कोई देव राजाओं के लिए पूज्य है भी नहीं क्योंकि संग्राम के लिए उत्सुक प्राणी कृत्तिका की पूजा करके यदि रणस्थल में प्रयाण करता है, तो वह वीर दानवों को इन्द्र की भाँति शत्रुओं को पराजित कर विजय प्राप्त करता है । अतः उन शिवात्मज कुमार की पूजा के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए क्योंकि भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करने पर समस्त कामनाओं की सफलता प्राप्त होती है । भारत सत्तम ! इस प्रकार जो पुरुष षष्ठी में नक्त व्रत सुसम्पन्न करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर कुमार लोक की प्राप्ति करता है । दक्षिण पथाश्रित उन्हें सुनकर श्रद्धा समेत शिवजी के मन्दिर में जाकर शिव एवं पार्वती के पुत्र कार्तिकेय की जो देवनायक के पद पर प्रतिष्ठित हैं, तथा स्कन्द, गुह, शरवणोद्भव आदि नामों से प्रख्यात है, सविधान अर्चना करता है करने पर वह राज्य धुरंधर होकर समस्त सुखों के उपभोग करने के उपरांत स्वर्ग में सेनापति के पद पर प्रतिष्ठित होता है ।२२-२९

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व मे श्रीकृष्ण युधिष्ठर सम्वाद में
तारक वध कार्तिकेय पूजा षष्ठी व्रत वर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ।४२।

अध्याय ४३

विजयसप्तमीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—देव, देवकिनन्दन ! सप्तमी की पूजा किस समय की जाती है, और उसके फल, तथा नियम बताने की कृपा करें ।१

श्रीकृष्ण उवाच

शुक्लपक्षे तु सप्तम्यां यदादित्यदिनं भवेत् । सप्तमी विजया नाम तत्र दत्तं महाफलम् ॥२
स्नानं दानं जपो होम उपवासस्तथैव च । सर्वं विजयसप्तम्यां महापातकनाशनम् ॥३
प्रदक्षिणां यः कुरुते फलैः पुष्पैः दिवाकरम् । स सर्वगुणसम्पन्नं पुत्रं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥४
प्रथमा नालिकेरैस्तु द्वितीया रक्तनागरैः । तृतीया मातुलुङ्गैश्च चतुर्थी कदलीफलैः ॥५
पञ्चमी वरकूष्माण्डैः षष्ठी पक्वेस्तु तैंदुकैः[1] । वृन्ताकैः सप्तमी देया अष्टोत्तरशतेन च ॥६
मौक्तिकैः पद्मरागैश्च नीलैः कर्केतनैस्तथा । गोमेदैर्वज्रवैडूर्यैः शतेनाष्टाधिकेन तु ॥७
अक्षोटैर्बदरैर्बिल्वैः करमर्दैः सबर्बरैः । आम्रातकजंबीरैर्जंबुककर्कोटिकाफलैः ॥८
पुष्पैर्धूपैः फलैः पत्रैर्मोदकैर्गुणकैः शुभैः । एभिर्विजयसप्तम्यां भानोः कुर्यात्प्रदक्षिणाम् ॥९
अन्यैः फलैश्च काम्यैश्च ऐक्षवैर्ग्रंथिवर्जितैः । रवेः प्रदक्षिणा देया फलेन फलमादिशेत् ॥१०
न विशेन्न च सञ्जल्पेन्न च कश्चिद्वदेदपि । एकचित्ततया भानुश्चिन्तनाय प्रयच्छति ॥११
वसोर्धारा प्रदातव्या भानोर्गव्येन सर्पिषा । चन्द्रातपत्रं बध्नीयाज्जयं किंकिणिकायुतम् ।१२
कुंकुमेन समालभ्य पुष्पधूपैश्च पूजयेत् । शुभं निवेद्य नैवेद्यं ततः पश्चात्क्षमापयेत् ॥१३
भानो भास्कर मार्तण्ड चण्डरश्मे दिवाकर । आरोग्यमायुर्विजयं पुत्रं देहि नमोऽस्तु ते ॥१४

श्रीकृष्ण बोले—शुक्लपक्ष की सप्तमी के दिन रविवार होने से वह सप्तमी विजयानाम से ख्याति होती है, इसलिए उसमें दान करने से महान् फल की प्राप्ति होती है। स्नान, दान, जप, हवन, और उपवास आदि सभी कर्म विजया सप्तमी के दिन सुसम्पन्न होने पर महान् पातकों के नाश करते हैं। उस दिन फल पुष्प समेत जो भगवान् दिवाकर की प्रदक्षिणा करता है, उसे सर्वगुणसम्पन्न पुत्र की प्राप्ति होती है। नारियल समेत पहली, रक्तनागर सेत दूसरी, बिजौरा नीबूं से तीसरी, केला से चौथी, कूष्माण्ड से पाँचवी, तिनी के चावल समेत छठी और एक सौ आठ वृन्ताक (पपीता) आदि फलों द्वारा आठवी सप्तमी में सूर्य की प्रदक्षिणा करनी चाहिए। उसी भांति मोती, पद्मराग, नील, कर्केतन, गोमेद, वज्र, वैदूर्य की भी संख्या एक सौ आठ होनी चाहिए। अखरोट, बेर, बिल्व, करनर्द, बर्वर, आम, आँवला, जम्बीर, जामुन, और कोर्टिका फल समेत पुष्प, धूप, फल, पत्र, एवं उत्तम मोदक द्वारा विजया सपतमी के दिन सूर्य की प्रदक्षिणा की जाती है। इसी प्रकार अन्य फलों और गांठहीन ऊख के द्वारा सूर्य की प्रदक्षिण की जाती है, क्योंकि फल प्रदान के अनुसार ही उसे फल की प्राप्ति होती है। भानुदेव की आराधना के समय किसी के घर प्रस्थान और किसी के साथ बातचीत करना अवैध बताया गया है। इसलिए उस समय केवल तन्मय होकर उनकी आराधना ही करनी चाहिए।२-११। हवन के समय उन्हें गाय के घी का वसोर्धारा और पूजन के समय चाँदी का सौन्दर्य पूर्ण छत्र एवं किंकड़ी (ऽछंटियों) से विभूषित करना बताया गया है। कुंकुम के लेपन कर पुष्प धूप से पूजन करने के अनन्तर उत्तम नैवेद्य से उन्हें तृप्त कर क्षमा प्रार्थना करे कि भानो, भास्कर, मार्तण्ड, चण्डरश्मे, एवं दिवाकर! प्रसन्न होकर आप मुझे आरोग्य, आयु, विजय एवं पुत्र प्रदान करने की कृपा करें, आपको मैं नमस्कार कर रहा हूँ। इस प्रकार उपवास,

---

१. षष्टिपकैस्तु तण्डुलैः।

उपवासेन नक्तेन तथैवायाचितेन च । कृता नियमयुक्तेन या त्वियं जयसप्तमी ॥१५
रोगी विमुच्यते रोगाद्दरिद्रः श्रियमाप्नुयात् । अपुत्रो लभते पुत्रं विद्या विद्यार्थिनो भवेत् ॥१६
शुक्लपक्षे यदा पार्थ सादित्यसप्तमी भवेत् । तदा नक्तेन मुद्गाशी क्षपयेत्सप्त सप्तमीः ॥१७
भूमौ पलाशपत्रेषु स्नात्वा हुत्वा यथाविधि । समाप्ते तु व्रते दद्यात्सौवर्णं मुद्गमिश्रितम् ॥१८
मुद्गं श्रेष्ठाय विप्राय वाचकाय विशेषतः । सप्तम्यां सप्तिसंयुक्त आदित्येन नरोत्तम ॥१९
उपोष्य विधिनानेन मन्त्रप्राशनपूजनैः । षडक्षरेण मन्त्रेण सर्वं कार्यं विजानता ॥२०
अर्चनं वह्निकार्यं च शतमष्टोत्तरं नरः । समाप्ते तु व्रते पश्चात्सुवर्णेन घटापितम् ॥२१
सौवर्णं भास्करं पार्थ रुक्मपात्रगतं शुभम् । रक्ताम्बरं च काषायं गन्ध दद्यात्सदक्षिणम् ॥२२
मन्त्रेणानेन विप्राय कर्मसिद्ध्यै द्विजातये । ॐ भास्कराय सुदेवाय नमस्तुभ्यं यशस्कर ॥२३
ममाद्य समीहितार्थप्रदो भव नमोनमः । दानानि च प्रदेयानि गृहाणि शयनानि च ॥२४
श्राद्धानि पितृदेवानां शाश्वतीं तृप्तिमिच्छता । यात्राप्रशस्ता यातॄणां राज्ञां च जयमिच्छताम् ॥२५
विजयो जायतेऽवश्यं यतीनां च नृणां तदा । अतोर्थं विश्रुता लोके सदा विजयसप्तमी ॥२६
एवमेषा तिथिः पार्थ इह कामप्रदा नृणाम् । परत्र सुखदा सौम्या सूर्यलोकप्रदायिनी ॥२७
दाता भोगी च चतुरो दीर्घायुर्नीरुजः सुखी । इहागत्य भवेद्राजा हस्त्यश्वधनरत्नवान् ॥२८
नारी वा कुरुते या तु सापि तत्पुण्यभागिनी । भवत्यत्र न संदेहः कार्यः पार्थ त्वया क्वचित् ॥२९

नक्तव्रत, अयाचित, अन्न के भोजन आदि नियमों के पालन पूर्वक इस जया सप्तमी व्रत को सुसम्पन्न करने वाले प्राणी रोगों से मुक्त, दरिद्र को लक्ष्मी, अपुत्री को पुत्र, विद्यार्थी, को विद्या की प्राप्ति होती है ! पार्थ ! शुक्ल पक्ष में रविवार के दिन सप्तमी होने पर नक्त व्रत में मूंग के भोजन करते हुए सातो सप्तमी को सविधि—भूमि शयन, पलाश पत्र में भोजन तथा स्नान और हवन सुसम्पन्न कर व्रत के समाप्ति में कथावाचक को मूंग के लड्डू में सुवर्ण रखकर प्रदान करना चाहिए।१२-१८। नरोत्तम ! इस भाँति आदित्य युक्त सातों सप्तमी में सविधान उपवास मंत्रोच्चारण, प्राशन और पूजन में उस व्रती को षडक्षर मंत्र के उच्चारण द्वारा सुसम्पन्न कर एक सौ आठ आहुति अग्नि देव को प्रदान करना चाहिए । पार्थ ! पुनः व्रत की समाप्ति में भास्कर की सुवर्ण की प्रतिमा को सुवर्ण या चाँदी के पात्र में स्थापित कर रक्तवर्ण के कौशेय (रेशमी) वस्त्र से सुसज्जित करके दक्षिणा समेत गन्ध आदि उत्तम वस्तुओं द्वारा उनकी एवं उस वाचक ब्राह्मण की पूजा करके क्षमा प्रार्थना करे कि—यशस्कर, एवं सुदेव भगवान् भास्कर देव को मैं नमस्कार करता हूँ, आज आप मेरी अभिलाषा की पूर्ति करें । तत्पश्चात् अनेक भाँति के दान, गृह, शय्या आदि के दान से उन्हें तृप्त करे। देव पितरों के श्राद्ध में उन्हें निरन्तर तृप्त रखने की मनुष्य और विजयार्थ यात्रा के लिए उत्सुक राजाओं तथा अन्य यात्रियों को व्रतानुष्ठान अवश्य सुसम्पन्न करना चाहिए । इससे उन्हें विजय की प्राप्ति अवश्य होती है । पार्थ ! इसीलिए लोक में यह विजय सप्तमी के नाम से प्रख्यात है, जो मनुष्यों को इस लोक में समस्त सुख और परलोक में पहुँचने पर सूर्यलोक प्रदान करती है ।१९-२७। पश्चात् जन्म ग्रहण करने पर दाता, भोगी, चतुर, दीर्घायु, आरोग्य एवं समस्त सुख की प्राप्ति पूर्वक हाथी, अश्व, एवं धन रत्नों से विभूषित राजा होता है । पार्थ ! इस व्रत को सुसम्पन्न करने वाली स्त्री भी पुण्य भानिनी होकर उपरोक्त फल प्राप्त करती है। इसमें संदेह नहीं। इस प्रकार स्वर्ग, मनोरथ, सुख

स्वर्ग्या समीहितसुखार्थफलप्रदा च या मृग्यते मुनिवरैः प्रवरा तिथीनाम् ।
सा भानुपादकमलार्चनचिंतकानां पुंसां सदैव विजया विजयं ददाति ।।३०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
विजयसप्तमीव्रतकथनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।४३

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

आदित्यमण्डलविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथान्यदपि ते वच्मि दानं श्रेयस्करं परम् । आदित्यमण्डलं नाम सर्वाशुभविनाशनम् ।।१
यवचूर्णेन शुभ्रेण कुर्याद् गोधूमजेन वा । सुपक्वं भानुबिम्बाभं गुडगव्याज्यपूरितम् ।।२
सम्पूज्य भास्करं भक्त्या तदग्रे मण्डलं शुभम् । रक्तचन्दनजं कुर्यात्कुंकुमं वा विशेषतः ।।३
मण्डलं तत्र संस्थाप्य रक्तवस्त्रैः सुपूजितम् । ब्राह्मणाय प्रदातव्यं मन्त्रेणानेन पाण्डव ।।४
आदित्यतेजसोत्पन्नं राजतं विधिनिर्मितम् । श्रेयसे मम विप्र त्वं प्रतिगृह्णेदमुत्तमम् ।।५

(इति दानमंत्रः)

कामदं धनदं धर्म्यं पुत्रदं सुखदं तव । आदित्यप्रीतये दत्तं प्रतिगृह्णामि मण्डलम् ।।६

(इति प्रतिग्रहणमन्त्रः)

एवं धन आदि फल प्रदान करने वाली यह विजया सप्तमी, जो तिथियों श्रेष्ठ, एवं महर्षिगण जिसके लिए सदैव लालायित रहते हैं, उस दिन भानु के चरण की आराधना करने वाले प्राणी को सदैव विजय प्रदान करती है ।२८-३०

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
विजयासप्तमीव्रतवर्णन नामक तैंतालीसवां अध्याय समाप्त ।४३।

अध्याय ४४

आदित्यमण्डलविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें आदित्य मण्डल नामक एक अन्य दान बता रहा हूँ, जो परम श्रेयस्कर और समस्त पापों का विनाशक है । जवा अथवा गेहूं के चूर्ण (आटे) में गुड और गौ के घी डालकर सूर्य के विम्ब के समान बनाकर और परिपक्व कर उसे भास्कर की अर्चना के उपरांत उनके समक्ष में भक्ति पूर्वक रक्तचन्दन अथवा कुंकुम द्वारा मण्डल बनाकर वस्त्र से विभूषित एवं पूजित कर मंत्रोच्चारण पूर्वक ब्राह्मण को अर्पित करे । पाण्डव ! अर्पित करते समय इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए—विप्र ! सूर्य के तेज से उत्पन्न, रजत (चांदी) द्वारा सविधान निर्मित इसे मेरे कल्याणार्थ आप ग्रहण करें । प्रतिग्राही को भी इस प्रकार कहना चाहिए—कि आदित्य के प्रीत्यर्थ प्रदान किये गये इस मण्डल को, जो कामनाओं, धन, धर्म, पुत्र, एवं सुख प्रदान करने वाला है, मैं सादर ग्रहण कर रहा हूँ । राजन् ! इस प्रकार का दान

एवं दत्त्वा नरो राजन्सूर्यवद्दिवि राजते । सर्वकामसमृद्धार्थो मण्डलाधिपतिर्भवेत् ।।७
दातव्यं जयसप्तम्यां तदारभ्य दिनेदिने । भास्करस्य महाराज शक्त्या भावेन भावितः ।।८
गोधूमचूर्णजनितं यवचूर्णजं वा आदित्यमण्डलमखण्डगुडाद्यपूर्णम् ।
कृत्वा द्विजाय विधिवत्प्रतिपादयेद्यो भूमौ भवत्यमितमण्डलमण्डितोऽसौ ।।९

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
आदित्यमण्डलविधिवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः।४४

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

त्रयोदशवर्ज्यसप्तमीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

यामुपोष्य नरः कामान्प्राप्नोति मनसेप्सितान् । तामेकां वद मे देव सप्तमीं धनसौख्यदाम् ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

भानोर्दिने सिते पक्षे अतीते चोत्तरायणे । पुन्नामाह्वयनक्षत्रे गृह्णीयात्सप्तमीव्रतम् ।।२
सव्रीहिकान्यवतिलान्सह माषमुद्गैर्गोधूममांसमधुमैथुनकांस्यपात्रम् ।
अभ्यंजनांजनशिलातलचूर्णितानि षष्ठ्यां परं परिहरेदहनि प्रसिद्ध्यै ।।३

करने वाला पुरुष सूर्य के समान स्वर्ग में सुशोभित होता है अनन्तर समस्त कामनाओं की समृद्धता पूर्वक मण्डलाधीश्वर होता है । महाराज ! पुनः उसी दिन से आरम्भ कर सदैव जयसप्तमी के दिन भास्कर देव की भावनाओं से प्रेरित होकर अपनी शक्ति के अनुसार मण्डल का दान करते रहना चाहिए । इस भांति गेहूं अथवा जवा के चूर्ण में गुड घी डाल कर (सूर्य के बिम्ब के समान) बना कर एवं परिपक्व कर उस मण्डल को सविधान ब्राह्मण को अर्पित करने वाला इस भूतल में मण्डलेश्वर पद पर प्रतिष्ठित होता है।१-९

श्री भविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
आदित्य मण्डल विधि वर्णन नामक चौवालिसवां अध्याय समाप्त ।४४।

अध्याय ४५

त्रयोदशवर्ज्यसप्तमी व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—देव ! मुझे उस सप्तमी का विधान बताने की कृपा कीजिये, जिसके उपवास रहने से मनुष्य को मनोरथ की सिद्धि, धन एवं सौख्य की प्राप्ति होती है ।१

श्रीकृष्ण बोले—सूर्य के दक्षिणायन होने पर शुक्ल सप्तमी के दिन रविवार एवं पुनर्वसु नक्षत्र होने पर व्रत विधान, आरम्भ करते हुए उसे पूर्व षष्ठी के दिन से ही वृद्धि, जव, तिल, उरद, मूंग, गेहूँ, मांस, मधु, मैथुन काँस्य पात्र, अभ्यञ्जन, और काले शिलातल के चूर्ण के त्याग करने चाहिए । पुनः सप्तमी के

देवान्मुनीन्पितृगणान्सजलांञ्जलीभिः संतर्प्य पूज्य गगनांगणहस्तभुक्तान् ।
हुत्वानले तिलयवान्बहुशो घृताक्तान्भूमौ स्वपेद्धृदि निधाय हि तं सवित्रम् ।।४
यानि त्रयोदशजनैरिह वर्जितानि द्रव्याणि तानि परिहृत्य परिद्विषष्ट्या ।
सम्प्राश्य शुद्धचणकानिह वर्षमेकं प्राप्नोति भारत सुखं मनसेप्सितं च ।।५

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसंवादे
त्रयोदशवर्ज्यसप्तमीव्रतं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ।४५

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

कुक्कुटीमर्कटीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

लोमशो नाम विप्रर्षिर्मथुरायां गतः पुरा । सोर्चितो वसुदेवेन देवक्या च युधिष्ठिर ।।१
उपविष्टः कथाः पुण्याः कथयित्वा मनोहराः । ततः कथयितुं भूयः कथामेतां प्रचक्रमे ।।२
कंसे हते मृताः पुत्राः पुत्रा जाताः पुनः पुनः । मृतवत्सा देवकि त्वं पुत्रदुःखेन दुःखिता ।।३
यथा चन्द्रमुखी दीप्तिर्बभूव मृतपुत्रिका । पश्चाच्चीर्णव्रता सैव बभूवाक्षतवत्सका ।।
त्वमेक देवकि तथा भविष्यसि न संशयः ।।४

प्रातः काल देव, मुनि और पितरों से निमित्त तर्पण करने के उपरान्त गगन प्राङ्गण में विहार करने वाले सूर्य की सविधि अर्चना एवं घृतयुक्त (घी में डुबे हुए) तिल जवा के हवन करके रात्रि के समय सूर्य के ध्यान पूर्वक भूमि में शयन करे । भारत् ! उपरोक्त तेरह निषिद्ध वस्तुओं के त्याग पूर्वक केवल शुद्ध चने द्वारा ही जीवन निर्वाह करते हुए एक वर्ष का समय पूरा करने पर उसे यथेच्छ सुख की प्राप्ति होती है ।२-५

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्वाद में
त्रयोदशवर्ज्य सप्तमी व्रत वर्णन नामक पैंतालिसवाँ अध्याय समाप्त ।४५।

अध्याय ४६

कुक्कुटीमर्कटीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण जी बोले—युधिष्ठिर ! एक समय महर्षि लोमश के मथुरा जाने पर वसुदेव और देवकी द्वारा सुपूजित होने के उपरांत पवित्र एवं मनमोहक कथाओं के प्रसङ्ग में उन्होंने यह भी कहना आरम्भ किया कि—देवकि ! कंसके निधन होने पर भी तुम्हारे अनेक पुत्र हुए किन्तु दुर्भाग्य वश रह न सके, इसलिए पुत्र दुःख से दुःखी होकर तुम यह जो मृतवत्सा होने का अनुभव कर रही हो, चन्द्रमुखी रानी के समान, उसने अनेक संतानों के निधनहोने के दुःख को अनुभव करती हुई इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर अनेक अक्षय संतानों का सुख प्राप्त किया है, तुम्हें भी वैसा ही सुख होगा, इसमें संशय नहीं ।१-४

देवक्युवाच

का सा चन्द्रमुखी ब्रह्मन्बभूव बहुपुत्रिका ॥५
चरितं किं व्रतवरं बहुसन्ततिकारकम् । सतां सदर्थकरणं सौभाग्यारोग्यवर्द्धनम् ॥६

लोमश उवाच

अयोध्यायां पुरा राजा नहुषो नाम विश्रुतः । तस्य राज्ञो महादेवी नाम्ना चन्द्रमुखी पुरा ॥७
पुरोहितस्य तस्यैव पत्न्यासीन्मानमानिका । तयोरासी दृढा प्रीतिः स्पृहणीया परस्परम् ॥८
अथापि तेऽपि मित्रिण्यौ स्नानार्थं सरयूजले । प्राप्ते प्राप्ताश्च तत्रैव बह्व्यश्च नगराङ्गनाः ॥९
स्नात्वा तु मण्डलं चक्रुः स्वपतेर्व्यक्तरूपिणः । लेखयित्वा शिवं शान्तमुमया सह शङ्करम् ॥१०
गन्धपुष्पाक्षतैर्भक्त्या पूजयित्वा यथाविधि । प्रणम्य गन्तुकामास्ताः पृष्टास्ताभ्यां नरस्त्रियः ॥११
ता ऊचुः शङ्करोऽस्माभिः पार्वत्या सह पूजितः । स्वर्णसूत्रमयस्तंतुः शिवायात्मा निवेदितः ॥१२
धारामयमिदं तावद्यावत्प्राणावधारणम् । तासां तु वचनं श्रुत्वा मित्रिण्यौ तेऽपि भारत ॥१३
तस्यैव समयं तत्र बद्ध्वा दोर्भ्यां तु दोरकैः । ततस्ताः स्वगृहाञ्जग्मुः स्वसखीभिः समावृताः ॥१४
कालेन महता यातं तस्या वै तद्व्रतं नृप । चन्द्रवत्याः प्रमत्ताया विस्मृतः स तु दोरकः ॥१५
मृता कैश्चिदहोरात्रैः सा बभूव प्लवङ्गमी । मानी च कुक्कटी जाता प्रायः संनिकटञ्चरे ॥१६
तथैव जाते मित्रिण्यौ पूर्वजातिस्मरे तथा । संभूय भूमसमयं प्राग्भूतं चक्रतुः पुनः ॥१७
तद्दिने तत्र सम्प्राप्ते पुनः कालेन ते मृते । तत्रैव मात्रके देशे जाते गोकुलसंयुते ॥१८

देवकी ने कहा—ब्रह्मन् ! अनेक पुत्रों का सुख प्राप्त करने वाली वह चन्द्रमुखी कौन है, और उनके संतान प्रदायक श्रेष्ठ व्रत को, जो सज्जन के मनोरथ, सौभाग्य आरोग्य वर्द्धक हैं, उसने सुसम्पन्न किया है ।५-६

लोमश बोले—पहले समय में अयोध्यापुरी के राजा नहुष थे, जिनकी प्रधान रानी का नाम चन्द्रमुखी था । उनके पुरोहित की मानमानिका नामक पत्नी के साथ उसकी घनिष्ठ मित्रता थी । अनन्तर सरयू जल में स्नानार्थ उन दोनों के प्रस्थान करने पर नगर की अनेक सुन्दरियोंका भी यहाँ समागम हुआ । स्नान करके व्यक्त पति के मण्डल तथा उमा के साथ शांत शिव की प्रतिमा बनाकर गन्ध पुष्प, एवं अक्षतों द्वारा भक्तिपूर्वक अर्चना तथा प्रणाम करके घर के लिए प्रस्थित उन स्त्रियों से इन दोनों के पूछने पर कहा कि—हम लोगों ने पार्वती समेत शिव जी की पूजा की है, और सुवर्ण सूत्र उनके हाथ में बांधकर उन्हें अपनी आत्मा सौंप दी है कि—यह धारामय होकर आजीवन वर्तमान रहे । भारत ! उन लोगों की बातें सुनकर इन दोनों मित्र स्त्रियों ने भी (शिव के हाथ में) सुवर्णसूत्र बांधकर अपनी सखियों समेत अपने अपने भवन को प्रस्थान किया । नृप ! अधिक समय व्यतीत होने पर भी उस प्रमत्त चन्द्रमुखी को व्रतसूचक उस सूत्र बन्धन की बातें स्मरण न हो सकी । कुछ काल के उपरांत निधन होने पर वह वानरी के रूप में हुई और पुरोहित की वह मानी स्त्री कुक्कुटी (मुर्गी) की योनि में । किन्तु, पूर्व स्मरण के कारण उन दोनों ने उसी मित्रता के नाते एक दूसरे के सन्निकट रहकर अपने जीवन को व्यतीत करते हुए उस शरीर के त्याग किया । रानी चन्द्रमुखी अपने पितृ नगर गोकुल में ही राजा पृथ्वीनाथ

राज्ञो जाया बभूवाथ पृथ्वीनाथस्य वा पुनः । ईश्वरी नाम विख्याता राज्ञी राजेन्द्रवल्लभा ।।१९
अग्निमीला[1] द्विजस्याभूद्भार्या भूषणनामिका । पुरोहितस्य कालेन कुक्कुटी बहुपुत्रिणी ।।२०
जातिस्मरा पद्महस्ता अष्टपुत्रा मृतप्रजा । पुनर्निरन्तरा प्रीतिर्बभूवाथ तयोर्नृप ।।२१
तत्रेश्वरी पुत्रमेकं प्रसूता चैव रोगिणम् । नववर्षस्तु पञ्चत्वमगात्स च युधिष्ठिर ।।२२
ततस्तां भूषणां द्रष्टुमथैषा पुत्रदुःखिता । सखीभावादतिस्नेहात्सर्वपुत्रसमन्विता ।।
अमुक्ताभरणा नित्यं स्वभावेनैव भूषिता ।।२३
तां दृष्ट्वा पुत्रिणीं भव्यां प्रजज्वालेश्वरी रुषा । ततो गृहं प्रेष्य च तां सखीं वै तीव्रमत्सरा ।।२४
चिन्तयामास सा रात्र्यां तस्याः पुत्रवधं प्रति । हताहताश्च तत्पुत्रा पुनर्जीवन्त्यनामयाः ।।२५
कदाचिदाहूय सखीं भूषणां पुरतः स्थिताम् । ईश्वरी प्राह किमिदं सखि पुण्यं त्वया कृतम् ।।२६
येन ते निहताः पुत्राः पुनर्जीवन्ति नो भयम् । बहुपुत्रा जीववत्सा अमुक्ताभरणा कथम् ।।
शोभसेऽभ्यधिकं भद्रे विद्युत्सौदामिनीव हि ।।२७

भूषणोवाच

भद्रे भाद्रपदे मासि सप्तम्यां सलिलाशये । स्नात्वा शिवं मण्डलके लेखयित्वा सहाम्बिकम् ।।२८
भक्त्या सम्पूज्य समयं कुर्याद्बद्ध्वा करे गुणम् । यावज्जीवं मया वातच्छिवस्यात्मा निवेदितः ।।२९

की सहधर्मिणी हुई, जिस राजमहिष की प्रख्याति ईश्वरी नाम भूपा प्रज्वलित था । और पुरोहित की अनेक पुत्र वाली वह स्त्री, जो कुक्कुटी हुई थी, भूषणा नाम से प्रख्यात होकर अग्निमीला ब्राह्मण की पत्नी हुई । उसे जातिस्मरण, लक्ष्मी के समान सुख और अष्टपुत्रों के निधन होने पर भी उसके पुत्र जीवित थे । नृप ! उन दोनों में पुनः गाढ़मैत्री स्थापित हुई । उस समय ईश्वरी के ही रोगी पुत्र उत्पन्न किया था, जो नववर्ष' जीवित रहने के उपरांत स्वर्गीय हो गया । युधिष्ठर ! उस समय पुत्रदुःख से अत्यन्त दुःखी ईश्वरी ने सखी भावना से प्रेरित एवं अत्यन्त स्नेह के कारण भूषणा को मिलने के लिए बुलवाया । भूषणा ने समस्त आभूषणों से सुसज्जित होकर एवं सभी पुत्रों को साथ लिए रानी के महल में प्रवेश किया । उस समय उसे सुसज्जित रूप एवं पुत्रों को देखकर अत्यन्त रुष्ट होकर प्रज्वलित अग्नि की भाँति क्रोध से जल उठी । उसे इतना महान् मत्सर उत्पन्न हुआ कि वह उस अपनी सखी को किसी प्रकार बिदाकर उस रात्रि उसके पुत्रों के बधार्थ ही उपाय सोचती रही । पश्चात् उसने अनेक पुत्रों के वध कर दिये, किन्तु वे पुनः जीवित होकर सर्वथा स्वस्थ रहते थे । बहुत दिनों के अनन्तर उसने अपनी भूषणा सखी को पुनः बुलाकर उस ईश्वरी ने उसके सामने ही कहा—सखि ! तुमने कौन सा पुण्य किया है कि जिसके नाते तुम्हारे ये मृतक पुत्र पुनः जीवित होकर सदैव के लिए निर्भय हो जाते हैं । इस प्रकार अनेक पुत्रों की प्राप्ति पूर्वक तुम सदैव भूषण रहित होकर विद्युत् की भाँति सुशोभित हो रही हो ।७-२७

भूषणा बोली—भद्रे ! भाद्रपद मास की सप्तमीके दिन किसी जलाशय में स्नान कर अम्बिका समेत शिव जी का मण्डल प्रतिमा बनाकर भक्ति पूर्वक पूजनोपरांत हाथ में सुवर्ण सूत्र बांधकर यह प्रतिज्ञा किया कि आजीवन मैंने अपनी आत्मा तुम्हें अर्पित की है । इस प्रकार अविज्ञापूर्वक उसी समय से उस

---

१. अग्निमाला ।

इत्येवं समयं कृत्वा ततःप्रभृति दोरकम् । स्वर्णरौप्यमयं वापि करशाखासु धारयेत् ।।३०
मण्डकं वेष्टिकां दद्याच्छ्वश्रूपक्षे द्विजे तु वा । स्वयं च ता न भोक्तव्या व्रतभङ्गभयात्सखि ।।३१
परितो मुद्रिका रौप्या सौवर्णी च युधिष्ठिर । ताम्रपात्रोपरि स्थाप्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।।३२
सोहालकानि कांसारं दद्याद्भुञ्जीत च स्वयम् । मण्डलं सद्म वित्तं च शिवं शक्तिसमन्वितम् ।।३३
सम्पूज्य सखि दुष्प्राप्यं त्रैलोक्येऽपि न विद्यते । तदेवं समयः पूर्वं त्वया सह मया कृतः ।।३४
स मया पालितो भक्त्या ततोऽहं सुस्थिता सखि । त्वया स भग्नः समयो दर्पात्त्यक्तः शरीरयोः ।।३५
तेन सन्ततिविच्छिन्ना राज्येऽपि सति दुःखिता । एष प्रभावः कथितो व्रतस्यास्य मया तव ।।३६
अर्द्धं तव प्रदास्यामि तस्य धर्मस्य सुव्रते । सखीभावात्प्रतीच्छ त्वं नात्र कार्या विचारणा ।।३७
इत्युक्त्वा प्रतिजग्राह व्रतदानफलं ततः । बभूव सुप्रजाः साध्वी मोक्षं प्राप सुरेश्वरी ।।३८
व्रतस्यास्य प्रभावेण सुपुत्रा त्वं च देवकि । भविष्यसि त्रिलोकेशं पुत्रं च जनयिष्यसि ।।३९
इत्येवं कथयित्वास्यै लोमशो मुनिपुङ्गवः । जगाम नभसा पार्थ मयाऽप्येतत्तवोदितम् ।।४०
ये चरिष्यंति मनुजा व्रतमेतद्युधिष्ठिर । कृकवाकुप्रसङ्गाख्यं देवक्या चरितं शुभम् ।।४१
तेषां सन्ततिविच्छेदो न कदाचिद्भविष्यति । स्त्रियश्च याश्चरिष्यन्ति, व्रतमेतत्सुतप्रदम् ।।
मर्त्यलोके सुखं स्थित्वा यास्यन्ति शिवमन्दिरम् ।।४२

सुवर्ण अथवा चांदी के डोरे को अङ्गुलियों में धारण कर उस मण्डल और वस्त्र आदि श्वसुर पक्ष के ब्राह्मण को अर्पित करे । तथा सखि ! व्रतभंग के भय से स्वयं भोजन करे । युधिष्ठिर ! उस सुवर्ण अथवा चांदी की मुद्रिकाओं को ताँबें के पात्र पर स्थापित कर उसे ब्राह्मण को निवेदित करते हुए मधुर पक्वान्न से भी तृप्त कर पश्चात् स्वयं भोजन करे । सखि ! इस प्रकार यथाशक्ति मण्डल एवं शक्ति समेत शिव की आराधना करने पर उसे तीनों लोक में कोई वस्तु अप्राप्य नहीं रहती है । सखि ! यही प्रतिज्ञा पहले तुम्हारे साथ मैंने की थी, भक्ति पूर्वक मैंने उसका पालन किया और तुमने अहंकार वश उसके त्याग करने से अपने को शरीर के भी त्याग किया है । इसीलिए राज्य प्राप्ति करने पर भी संतान विच्छेद दुःख का अनुभव तुम्हें करना पड़ रहा है । इस प्रकार मैंने तुम्हें इस व्रत का प्रभाव सुना दिया । सुव्रते ! मैं अपने धर्म के आधे भाग को तुम्हें दे रही हूँ, और सखी भाव से तुम इसके अपनाने में कोई विचार मत करो । इतना कहने पर उसने उस व्रत दान को स्वीकार किया, जिससे उस सुरेश्वरी साध्वी को अनेक पुत्रों की प्राप्ति पूर्वक अन्त में मोक्ष की प्राप्ति हुई । देवकि ! इस प्रकार तुम भी इस व्रत के प्रभाव से अनेक पुत्रों से युक्त होने पर भी त्रैलोक्य के अधीश्वर को पुत्र रूप में उत्पन्न करोगी । पार्थ ! इतना कहकर मुनि श्रेष्ठ लोमश ने आकाश मार्ग से प्रस्थान कर दिया । वही सब बातें मैंने भी तुम्हें बताया है ।२८-४०। युधिष्ठिर ! इस व्रत को जो देवकी द्वारा सुसम्पन्न एवं (कृकवाकु) के प्रसङ्गों से प्रख्यात है, सुसम्पन्न करने वाले के संतान विच्छेद कभी नहीं होगा । इसे सुसम्पन्न करने वाली स्त्री भी पुत्र की प्राप्ति पूर्वक इस भूतल में सुखानुभूति के उपरांत शिव लोक प्राप्त करती है । इस भाँति इस उत्तम व्रत को, जो कुक्कुटी (मुर्गी) तथा वानरी चरितापूर्ण है, चराचर के ईश शिव को ध्यान पूर्वक सुसम्पन्न करने वाला पुरुष समस्त कलि

य: कुक्कुटीव्रतवरं प्लवगीसमेतं चक्रे चराचरगुरुं हृदये निधाय।
तद्व्याकरोति कलुषौघविघातरक्षां सा स्त्री युवां भवति शोभनगीतवत्सा ॥४३

इति श्री भविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कुक्कुटीमर्कटीव्रतवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्याय ।४६

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्याय:

उभयसप्तमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सप्तमीव्रतकल्पमुत्तमम् । माघमासात्समारभ्य शुक्लपक्षे युधिष्ठिर ॥१
सप्तम्यां कुरु सङ्कल्पमहोरात्रे व्रते नृप । वरुणेत्यर्चयित्वा तु ब्रह्मकूर्चं तु कारयेत् ॥२
अष्टम्यां भोजयेद्विप्रांस्तिलपिष्टं गुडौदनम् । अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानव: ॥३
सप्तम्यां फाल्गुने मासि सूर्यमित्यभिपूजयेत् । वाजपेयस्य यज्ञस्य यथोक्तं लभते फलम् ॥४
सप्तम्यां चैत्रमासे तु वेदांशुमभिपूजयेत् । उक्थाध्वरसमं पुण्यं नर: प्राप्नोति भक्तिमान् ॥५
वैशाखस्य तु सप्तम्यां धातारमभिपूजयेत् । पशुबन्ध्वध्वरे पुण्यं सम्यक्प्राप्नोति मानव: ॥६
सप्तम्यां ज्येष्ठमासस्य इन्द्र इत्यभिपूजयेत् । वाजपेयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति दुर्लभम् ॥७
आषाढमासे सप्तम्यां पूजयित्वा दिवाकरम् । बहुवर्णस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति पुष्कलम् ॥८

कल्प के विध्वंस एवं सौख्य प्राप्त करता है और स्त्री भी सुन्दर संतानों से युक्त होती है ।४१-४३

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
कुक्कुट व्रत वर्णन नामक छियालिसवाँ अध्याय समाप्त ।४६।

अध्याय ४७

उभयसप्तमीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण जी बोले—युधिष्ठिर ! मैं तुम्हें एक अन्य सप्तमी का विधान बता रहा हूँ सुनो ! नृप ! माघमास की शुक्ल सप्तमी के दिन संकल्प पूर्वक उपवास रहकर वरुण की अर्चना के उपरांत ब्रह्म कूच करके अष्टमी में तिल में गुड़ मिश्रित भोजन से ब्राह्मण को संतृप्त करने पर उस पुरुष को अग्निष्टोम यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं। फाल्गुन मास की सप्तमी के दिन सूर्य, नाम से पूजनादि करने पर वाजपेय यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं। चैत्र मास की सप्तमी में 'वेदांशु' नामक (सूर्य) की अर्चना करने पर उस भक्तिमान पुरुष को उक्था यज्ञ के समान फल प्राप्त होते हैं। वैशाख मास की सप्तमी के दिन 'धाता' नामक सूर्य की अर्चना करने पर पशुबंधन यज्ञ के सभी पुण्य तथा ज्येष्ठ सप्तमी के दिन इन्द्र नामक सूर्य की पूजा करने पर वाजपेय यज्ञ के दुर्लभ फल, ज्येष्ठ सप्तमी के दिन इन्द्र नामक सूर्य की पूजा करने पर वाजपेय यज्ञ के दुर्लभ फल प्राप्त होते हैं। १-७। आषाढ़ मास की सप्तमी में दिवाकर नामक सूर्य की अर्चना करने से बहुवर्ण यज्ञ के फल, श्रावण मास

सप्तम्यां श्रावणे मासि मातापिं नाम पूजयेत् । सौत्रामणिफलं सम्यक्प्राप्नोति पुरुषः शुभम् ।।९
रविं प्रौष्ठपदे मासे सप्तम्यामर्चयेच्छुचिः । तुलापुरुषदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।।१०
आश्वयुक्छुक्लसप्तम्यां सवितारं प्रपूज्य च । गोसहस्रप्रदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।।११
कार्तिके शुक्लसप्तम्यां दिनेशं सप्तवाहनम् । योऽभ्यर्चयति पुण्यात्मा पौण्डरीकं स विन्दति ।।१२
भानुं मार्गसिते पक्षे पूजयित्वा विधानतः । राजसूयस्य यज्ञस्य फलं दशगुणं भजेत् ।।१३
भास्करं पौषमासे तु पूजयित्वा यथाविधि । नरमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति पुष्कलम् ।।१४
तदेव कृष्णसप्तम्यां नाम सम्पूजयेद्बुधः । सोपवासः प्रयत्नेन वर्षमेकं युधिष्ठिर ।।
पश्चात्समाप्ते नियमे सूर्ययागं समाचरेत् ।।१५
शुचिर्भूमौ समे देशे लेपयेद्रक्तचन्दनैः । एकहस्तं द्विहस्तं वा चतुर्हस्तमथापि वा ।।१६
सिंदूरगैरिकाभ्यां च सूर्यमण्डलमालिखेत् । रक्तपुष्पैः सपद्मैश्च धूपैः कुन्दुरकादिभिः ।।
सम्पूज्य दद्यान्नैवेद्यं विचित्रं घृतपाचितम् ।।१७
पुरतः स्थापयेत्कुम्भान्सहिरण्यान्नसंयुतान् । अग्निकार्यं ततः कुर्यात्समभ्युक्ष्य हुताशनम् ।।१८
आकृष्णेनेति मन्त्रेण समिद्भिश्चार्कसम्भवैः । तिलैराज्यगुडोपेतैर्दद्याद्दशशताहुतीः ।।१९
ततस्तु दक्षिणा देया ब्राह्मणानां युधिष्ठिर । भोजयित्वा रक्तवस्त्रैः शुक्लान्यपि पिधापयेत् ।।२०
द्वादशात्र प्रशंसन्ति गावो वस्त्रान्विताः शुभाः । छत्रोपानहयुग्मं च एकैकाय प्रदापयेत् ।।
एवं विसृज्य तान्विप्रान्स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ।।२१

की सप्तमी में 'भारतीय' नामक सूर्य की पूजा करने पर उस पुरुष को सौत्रामणि यज्ञ के फल और भाद्रपद मास की सप्तमी में रवि की अर्चना करने से तुला पुरुष दान के फल प्राप्त होते हैं । आश्विन शुक्ल सप्तमी में सविता की अर्चना करने पर सहस्र गोदान फल, कार्तिक शुक्ल सप्तमी के दिन सप्तवाहन नाम सूर्य की आराधना करने पर उस पुण्यात्मा को पुण्डरीक के फल प्राप्त होते हैं । मार्गशीर्ष में सप्तमी के दिन भानु की पूजा करने पर राजसूय यज्ञ के दशगुने फल अधिक प्राप्त होते हैं । उसी प्रकार पौषमास में भास्कर की सविधान अर्चना करने पर नरमेध यज्ञ के पुण्यफल प्राप्त होते हैं और कृष्ण सप्तमी में भी उसी नाम द्वारा अर्चना करनी चाहिए । युधिष्ठिर ! इसी प्रकार एक वर्ष तक उपवास समेत सप्रयत्न व्रत सुसम्पन्न करने के उपरांत सूर्ययाग को सविधान सुसम्पन्न करने के उद्देश्य से किसी पवित्र भूमि में रक्त चन्दन से लेपन करके एक दो चार हाथ का विस्तृत एवं सौन्दर्य पूर्ण सूर्य मण्डल को सिन्दुर और गेरू द्वारा बनाये । अनन्तर रक्त पुष्प, कमल, धूप एवं कुदुरकादि से सविधान अर्चना करके घृत युक्त नैवेद्य अर्पित करे और उनके समक्ष पूर्ण कलश सुवर्ण समेत रख स्थापित पूर्वक कुश कण्डिका विधान समेत हवन आरम्भ करते हुए 'आकृष्णेनेति' मंत्र द्वारा मंदार के लकड़ी से प्रज्वलित अग्नि में तिल, घी, एवं गुड़ की दश आहुति डाल कर ब्राह्मणों को रक्त वस्त्र और श्वेत वस्त्र धारण कराकर भोजन से तृप्त कर यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करे । दक्षिणा के विषय में बारह वस्तुओं की यहाँ प्रशंसा की गयी है—गौ, वस्त्र, छत्र, उपानह आदि वस्तु सौ में से प्रत्येक को वितरण करना चाहिए । इस प्रकार उस ब्राह्मणों को सम्मान पूर्वक विसर्जन करने के उपरांत स्वयं मौन होकर भोजन करे ।८-२१। पार्थ ! इस प्रकार इस सप्तमी व्रत को

य एवं कुरुते पार्थ सप्तमीव्रतमुत्तमम् । नीरुजो रूपवान्वाग्मी दीर्घायुश्चैव जायते ॥२२
सप्तम्यां सोपवासस्तु भानोः पश्यन्ति ये मुखम् । सर्वपापविनिर्मुक्ताः सूर्यलोकमवाप्नुयुः ॥२३
व्रतमेतन्महाराज सर्वाशुभविनाशनम् । सर्वदुष्टप्रशमनं शरीरारोग्यकारकम् ॥
सूर्यलोकप्रदं चान्ते प्राहैवं नारदो मुनिः ॥२४

ये सप्तमीमुपवसन्ति सितासितां च नामाक्षरैरहिमदीधितिमर्चयन्ति ।
ते सर्वरोगरहिताः सुखिनः सदैव भूत्वा रवेरनुचराः सुचिरं भवन्ति ॥२५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
उभयसप्तमीव्रतवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।४७

अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

कल्याणसप्तमीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

भगवन्दुर्गसंसारसागरोत्तारकारकम् । किञ्चिद्व्रतं समाचक्ष्व स्वर्गारोग्यसुखप्रदम् ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

यदा तु शुक्लसप्तम्यामादित्यस्य दिनं भवेत् । तदा सा तु महापुण्या विजया तु निगद्यते ॥२
प्रातर्गव्येन पयसा स्नानमस्यां समाचरेत् । शुक्लाम्बरधरः पद्ममक्षतैः परिकल्पयेत् ॥३

सुसम्पन्न करने वाला पुरुष आरोग्य, रूपवान्, सत्यनिष्ठ, और दीर्घायु होता है । सप्तमी के दिन उपवास रहकर सूर्य मुख के दर्शन करने वाले पुरुष समस्त पापों से मुक्त होकर सूर्य लोक की प्राप्ति करते हैं । महाराज ! समस्त पापनाशक, सम्पूर्ण दुष्टों के विध्वंसक, आरोग्य, और अन्त में सूर्य लोक प्रदान करने वाले इस व्रत को नारद मुनि ने इसी भाँति वर्णन किया है । इस प्रकार कृष्ण एवं सप्तमी के दिन उपवास रहकर उपरोक्त नामोंच्चारण पूर्वक सूर्य की सविधान एवं भक्ति पूर्वक अर्चना सुसम्पन्न करते हैं, वे समस्त रोगों से मुक्त एवं सम्पूर्ण सुखों के अनुभव करने के उपरांत सदैव के लिए सूर्य के अनुचर हो जाते हैं।२२-२५

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
उभय सप्तमी व्रत नामक वर्णन नामक सैंतालिसवाँ अध्याय समाप्त ।४७।

अध्याय ४८

कल्याणसप्तमीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! इस घोर संसार सागर को पार करने के लिए मुझे एक ऐसा व्रत विधान की कृपा कीजिये, जिसे सुसम्पन्न करने पर स्वर्ग, आरोग्य एवं समस्त सुखों की प्राप्ति हो ।१

श्रीकृष्ण बोले—शुक्ल सप्तमी के दिन रविवार होने से वह महापुण्य स्वरूपा विजया के नाम से प्रख्यात होती है । प्रातः काल गौ के क्षीर से स्नान एवं शुक्ल वस्त्र परिधान पूर्वक अक्षतों द्वारा कर्णिका

प्राङ्मुखोऽष्टदलं मध्ये तद्विचित्रां च कर्णिकाम् । सर्वेष्वपि दलेष्वेव विन्यसेत्पूर्वतः क्रमात् ।।४
पूर्वेण तपनायेति मार्तण्डायेति वै नमः । याम्ये दिवाकरायेति विधात्रे नैर्ऋतेन च ।।५
पश्चिमे वरुणायेति भास्करायेति वानिले । सौम्ये च वरुणायेति रवयेत्येऽष्टमे दले ।।६
आदावन्ते च तन्मध्ये नमोऽस्तु परमात्मने । मन्त्रैरेवं समभ्यर्च्य नमस्कारान्तदीपितैः ।।७
शुक्लवस्त्रफलैर्भक्ष्यैर्धूपमाल्यानुलेपनैः । स्थण्डिले पूजयेद्भक्त्या गुडेन लवणेन च ।।८
ततो व्याहृतिहोमेन विभज्य द्विजपुङ्गवान् । शक्तितस्तर्पयेद्भक्त्या गुडक्षीरघृतादिभिः ।।९
तिलपात्रं हिरण्यं च गुरवे च निवेदयेत् । एवं नियमकृत्स्नात्वा प्रातरुत्थाय मानवः ।।१०
कृतस्नानजपो विप्रैः सहैव घृतपायसम् । भुक्त्वा च वेदविद्भिर्द्विर्बैडालव्रतवर्जितैः ।।११
एवं सम्वत्सरस्यान्ते कृत्वैतदखिलं नृप । उद्यापयेद्यथाशक्ति भास्करं संस्मरन्हृदि ।।१२
घृतपात्रं सकरकं सोदकुम्भं निवेदयेत् । वस्त्रालङ्कारसन्युक्तां सुवर्णास्यां पयस्विनीम् ।।१३
एकामपि प्रदद्याद्गां वित्तहीनो विमत्सरः । वित्तशाठ्यं न कुर्वीत ततो मोहात्पतत्यधः ।।१४
अनेन विधिना यस्तु कुर्यात्कल्याणसप्तमीम् । शृणुयाद्वा पठेद्वापि सोऽपि पापैः प्रमुच्यते ।।१५

यश्चाष्टपत्रकमलोदरकर्णिकायां सम्पूजयेत्कुसुमधूपविलेपनाद्यैः ।
षष्ठ्याः परेऽहनि नवार्तिहरं दिनेशं कल्याणभाजनमसौ भवते हि जन्तुः ।।१६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कल्याणसप्तमीव्रतवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।४८

समेत अष्टदल कमल का सुनिर्माण करके समस्त दलों में क्रमशः (सूर्य) के नामोच्चारण करते हुए स्थापन पूजन करना चाहिए—पूर्व में तपनाय नमः, अग्निकोण में मार्तण्डायनमः, दक्षिण में दिवाकराय नमः, नैर्ऋत्य में विधात्रै नमः, पश्चिम में वरुणाय नमः, वायव्य में भास्कराय नमः उत्तर में वरुणाय नमः और ईशान में रवये नमः, तथा आदि, मध्य एवं अन्त में नमः परमात्मने कहकर आवाहन स्थापन के उपरांत शुक्ल वस्त्र, उत्तम, फल, धूप, माला, अनुलेपन द्वारा उस कमल एवं हवन वेदी की भक्ति पूर्वक पूजा करके गुड़-लवण समेत की व्याहृति हवन के उपरांत श्रेष्ठ ब्राह्मणों को यथा शक्ति गुड, क्षीर एवं घृत आदि के मधुर भक्ष्य द्वारा अत्यन्त प्रसन्न कर सुवर्ण तिल पात्र गुरू के लिए समर्पित करे। प्रातः काल होने पर उस व्रती पुरुष को स्नान जप करने के अनन्तर विद्वान् ब्राह्मणों के साथ ही, जो विडाल व्रत के त्याग हों, घृत समेत पायस भोजन करना चाहिए। नृप ! इस प्रकार वर्ष के अन्त में हृदय में भास्कर के स्मरण पूर्वक यथाशक्ति घृत समेत करवा, जलपूर्ण कुम्भ, वस्त्र एवं अलंकार से सुसज्जित पयस्विनी एक गौ की मत्सरहीन होकर निर्धनावस्था में किसी प्रकार प्रदान करना ही चाहिए। वित्त शाठ्य (धन रहते देव निमित्त व्यय न करना अथवा अल्प करना) का विशेष ध्यान न रखने पर उस का अधः पतन होता है। इस प्रकार इस कल्याण सप्तमी को सुसम्पन्न करने अथवा श्रवण या अध्ययन करने वाला समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। इस भाँति जो पुरुष सप्तमी के दिन कर्णिका समेत अष्टदल कमल के भीतर (नाम्मोच्चारण पूर्वक) पुष्प, धूप, एवं अनुलेपन आदि से दिवानायक सूर्य की आराधना करता है, वह समस्त कल्याणों का दृढ़ भाजन होता है।२-१६

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
कल्याण सप्तमी व्रत वर्णन नामक अड़तालिसवाँ अध्याय समाप्त।४८।

अथैकोनपञ्चाशोऽध्यायः

शर्करासप्तमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

शर्करासप्तमीं वक्ष्ये सर्वकल्मषनाशिनीम् । आयुरारोग्यमैश्वर्यं ययानन्तं प्रजायते ।।१
माधवस्य सिते पक्षे सप्तम्यां श्रद्धयान्वितः । प्रातः स्नात्वा तिलैः शुद्धैः शुक्लमाल्यानुलेपनैः ।।२
स्थण्डिले पद्ममालिख्य कुंकुमेन सकर्णिकम् । तस्मिन्नमः सवित्रेति गन्धपुष्पं निवेदयेत् ।।३
स्थापयेदुदककुम्भं च शर्करापात्रसंयुतम् । रक्तवस्त्रैः स्वलंकृत्य शुक्लमाल्यानुलेपनैः ।।४
सुवर्णाश्वसमायुक्तं मन्त्रेणानेन पूजयेत् । विश्वेदेवमयो यस्माद्वेदवादीति पठचते[1] ।।५
त्वमेवामृतसर्वस्वमतः पाहि सनातन । सौरसूक्तं जपंस्तिष्ठेत्पुराणश्रवणेन वा ।।६
अहोरात्रे गते पश्चादष्टम्यां कृतनित्यकः । सर्वं च वेदविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् ।।७
भोजयेच्छक्तितो विप्राञ्छर्कराघृतपायसैः । भुञ्जीत तैललवणं स्वयमप्यथ वाग्यतः ।।८
अनेन विधिना सर्वं मासि मासि समाचरेत् । वत्सरान्ते पुनर्दद्याद्ब्राह्मणाय समाहितः ।।९
शयनं वस्त्रसम्वीतं शर्कराकलशान्वितम् । सर्वोपस्कारसंयुक्तं तथैकां गां पयस्विनीम् ।।१०
गृहं च शक्तितो दद्यात्समस्तोपस्करान्वितम् । सहस्रेणापि निष्काणां कृत्वा दद्याच्छतेन वा ।।११

अध्याय ४९

शर्करासप्तमीव्रत का वर्णन

कृष्ण जी बोले—मैं तुम्हें शर्करा नामक सप्तमी का विधान बता रहा हूँ, जिसे सुसम्पन्न करने पर समस्त पापों के नाश पूर्वक न्याय, आरोग्य एवं अनन्त ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है सुनो ! चैत्रमास की शुक्ल सप्तमी के दिन श्रद्धा समेत प्रातः काल स्नान करके शुद्धतिल, श्वेत माला एवं अनुलेपन से विभूषित वेदी के ऊपर कुंकुम द्वारा कर्णिका समेत पुष्पदल कमल के निर्माण के उपरांत 'सवित्रे नमः' कहकर गंध और पुष्प के निवेदन करते हुए शर्करा पात्र समेत जल पूर्ण कुम्भ की याचना करने और रक्त वस्त्र, श्वेत माला एवं अनुलेपन के द्वारा उसे सुसज्जित कर सुवर्ण निर्मित अश्व के समेत मंत्रोच्चारण पूर्वक उसकी सप्रेम अर्चना करे। देव ! वैदिक विद्वान् यतः आप ही अमृत सर्वदेव को विश्वदेव मय बतलाते हैं, अतः सनातन ! आप मेरी रक्षा करें। अनन्तर सौर सूक्त के जप अथवा (सूर्य) पुराण के श्रवण करते हुए रात्रि व्यतीत करने के उपरांत अष्टमी के दिन नित्य कर्म सुसम्पन्न कर उसे किसी विद्वान् ब्राह्मण को अर्पित करके यथाशक्ति शक्कर घी, युक्त पायस द्वारा ब्राह्मणों को भली भाँति तृप्त करे। १-७। अनन्तर तेल लवण के त्याग पूर्वक मौन होकर स्वयं भी भोजन करे। इस विधान द्वारा प्रत्येक मास में समस्त सप्तमी व्रत को सुसम्पन्न करते हुए व्रत की समाप्ति में पुनः ब्राह्मण को सुसज्जित शय्या, शक्कर एवं समग्र साधन समेत कलश, तथा एक पयस्विनी गौ अर्पित करके यथाशक्ति साधन सम्पन्न गृह अथवा उसके निष्क्रय के रूप में एक सहस्र

---

१. मुच्यते।

दशभिर्द्वित्रिभिर्निष्कैस्तदर्धेनापि भक्तितः । सुवर्णाश्वः प्रदातव्यः पूर्ववन्मन्त्रवाचनम् ।।१२
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत कुर्वन्दोषान्समश्नुते । अमृतं पिबतो वक्त्रात्सूर्यस्यामृतबिन्दवः ।।१३
निपेतुरेत उत्थाय शालिमुद्गेक्षवः स्मृताः । शर्करा च परं तस्मादिक्षुरसोद्भवा मता ।।१४
इष्टा रवेरतः पुण्या शर्करा हव्यकव्ययोः। शर्करासप्तमी चैषा वाजिमेधफलप्रदा ।।१५
सर्वे[1] ह्युपशमं यान्ति पुनः सन्ततिवर्द्धिनी । यः कुर्यात्परया भक्त्या स परं ब्रह्म गच्छति ।।१६
कल्पमेकं वसेत्स्वर्गे ततो याति परं पदम् ।।१७

इदमनघ शृणोति यः स्मरेद्वा परिपठतीह सुरेश्वरस्य लोके।
मतिमपि च ददाति यो जनानाममरवधूजनकिन्नरैः स पूज्यः ।।१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
शर्करासप्तमीव्रतवर्णनं नामैकोपञ्चाशोऽध्यायः ।४९

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कमलासप्तमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि तद्व्रतकमलसप्तमीम् । यस्याः संकीर्तनादेव तुष्यतीह दिवाकरः ।।१

निष्टक, अथवा सौ, दश, दो तीन या उसके आधे निष्टक प्रदान करते हुए पूर्व की भाँति मंत्रोच्चारण पूर्वक सुवर्ण के अश्व प्रदान करना चाहिए । दान के समय वित्तशाठ्य दोष पर विशेष ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि वैसा न करने से दोष भागी होना पड़ता है । अमृत पान करते समय सूर्य के मुख से गिरे हुए अमृत की बूंदों से शाठी (चावल) मूंग और ईख का उत्पन्न होना बताया जाता है तथा ऊख के रस से उत्पन्न होने के कारण शक्कर उन्हें अत्यन्त प्रिय है । इसीलिए रूप के हव्य कव्य में पुष्प शक्कर का सम्मिलित रहना परम आवश्यक है । और अश्वमेध फल प्रदान करने वाली इस शर्करासप्तमी को भक्तिपूर्वक सविधान सुसम्पन्न करने वाला पुरष समस्त उपद्रव के शमन पूर्वक सन्तान की निरन्तर वृद्धि और परब्रह्म की प्राप्ति करता है । एक कल्प तक स्वर्ग में सुखोपभोग करने के उपरांत परमपद की प्राप्ति करता है । अनघ ! इस प्रकार इस व्रत विधान का श्रवण पठन अथवा सम्मति प्रदान करने वाला पुरुष स्वर्ग में पहुँच कर देवों की स्त्रियों एवं किन्नरों द्वारा सुपूजित होता है ।८-१८

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वाद में
शर्करासप्तमी व्रत वर्णन नामक उनचासवाँ अध्याय समाप्त ।४९।

अध्याय ५०

कमलासप्तमीव्रत का वर्णन

कृष्ण जी बोले—मैं तुम्हें कमला सप्तमी नामक व्रत का विधान बता रहा हूँ, जिसके संकीर्तन मात्र

---

१. विघ्ना इति शेषः ।

वसन्तेऽमलसप्तम्यां स्नातः संगौरसर्षपैः । तिलपात्रे च सौवर्णं निधाय कमलं शुभम् ॥२
वस्त्रयुग्मवृतं कृत्वा गन्धपुष्पैरथार्चयेत् । नमस्ते पद्महस्ताय नमस्ते विश्वधारिणे ॥३
दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तु ते । ततो द्विकालवेलायामुदकुम्भसमन्वितम् ॥४
विप्राय दद्यात्सम्पूज्य वस्त्रमाल्यविभूषणैः । अहोरात्रे गते पश्चादष्टम्यां भोजयेद्द्विजान् ॥५
यथाशक्त्याथ भुञ्जीत विमांसं तैलवर्जितम् । अनेन विधिना शुक्लसप्तम्यां मासिमासि च ॥६
सर्वं समाचरेद्भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः । व्रतान्ते शयनं दद्यात्सुवर्णकमलान्वितम् ॥७
गावं[1] स दद्याच्छक्त्या तु सुवर्णाढ्यां पयस्विनीम् । भाजनासनदीपादीन्दद्यादिष्टानुपस्करान् ॥८
अनेन विधिना यस्तु कुर्यात्कमलसप्तमीम् । लक्ष्मीमनन्तामभ्येत्य सूर्यलोके च मोदते ॥९
कल्पेकल्पे तथा लोकान्सप्तगत्वा पृथक्पृथक् । अप्सरोभिः परिवृतस्ततो याति पराङ्गतिम् ॥१०

य: पश्यतीदं शृणुयान्मुहूर्तं पठेच्च सुमतिं ददाति ।
सोऽप्यत्र लक्ष्मीमचलामवाप्य गन्धर्वविद्याधरलोकमेति ॥११

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कमलासप्तमीव्रत वर्णनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५०

करने से दिवाकर देव अत्यन्त प्रसन्न होते हैं । वसन्त मास की शुक्ल सप्तमी के दिन स्नान करके तिल के पात्र में (पीली राई) समेत सुवर्ण निर्मित कमल को स्थापित कर दो वस्त्रों से उसे आच्छन्न करने के उपरांत गन्ध पुष्प द्वारा सविधि अर्चना करके कर कमल विभूषित, विश्व को धारण करने वाले, दिवाकर एवं प्रभाकर देव को बार बार नमस्कार है । क्षमा प्रार्थना करे । अनन्तर दोनों वेला में जलपूर्ण घर को वस्त्र, माला एवं भूषण भूषित करके पूजा के उपरांत ब्राह्मण को समर्पित करे । इस प्रकार दिन-रात व्यतीत कर अष्टमी में तेल मांस वर्जित मधुर भोजनों द्वारा यथाशक्ति ब्राह्मणों को प्रसन्न करे । इसीभाँति प्रत्येक मास की शुक्ल सप्तमी में अनुष्ठान को सुसम्पन्न करते हुए व्रत के अंत में सुसज्जित शय्या पर सुवर्ण कमल स्थापित कर पूजनोपरांत उसे तथा सुवर्ण समेत पयस्विनी गौ, भोजन पात्र, आसन दीप आदि सभी साधन ब्राह्मणों के लिए सादर समर्पित करना चाहिए । इस भाँति सविधि कमलसप्तमी को सुसम्पन्न करने वाला पुरुष अनन्त लक्ष्मी की प्राप्ति पूर्वक सूर्य लोक का सुखानुभव करता है—एक एक कल्प तक पृथक्-पृथक् सातों लोकों के सुखानुभव पूर्वक अप्सराओं से सुसेवित होते हुए उत्तम गति प्राप्त करता है । इस व्रत विधान को देखने, सुनने अथवा मुहूर्त मात्र ही पढ़ने वाला या उपदेश देने वाला पुरुष भी अचल लक्ष्मी की प्राप्ति पूर्वक गन्धर्वविद्याधर के लोकों की प्राप्ति करता है ।१-११

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
कमला सप्तमी व्रत वर्णन नामक पचासवां अध्याय समाप्त ।५०।

---

१. आर्षम् ।

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

शुभसप्तमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अन्यामपि प्रवक्ष्यामि शोभनां शुभसप्तमीम् । यामुपोष्य नरो रोगाच्छोकदुःखात्प्रमुच्यते ।।१
पुण्य आश्वयुजे मासि कृतस्नानः यमः शुचिः । वाचयेच्च ततो विप्रानारभेच्छुभसप्तमीम् ।।२
कपिलां पूजयेद्भक्त्या गन्धमाल्यानुलेपनैः । नमामि सूर्यसम्भूतामशेषभुवनालयाम् ।।३
त्वामहं शुभकल्याणशरीरां सर्वसिद्धये । अथाहृत्य तिलप्रस्थं ताम्रपात्रेण संयुतम् ।।४
काञ्चनं वृषभं तद्वद्वस्त्रमाल्यगुडान्वितम् । दद्याद्विकालवेलायामर्यमा प्रीयतामिति ।।५
पञ्चगव्यं च सम्प्राश्य स्वप्याद्भूमौ विमत्सरः । ततः प्रभाते सञ्जाते भक्त्या सन्तर्पयेद्द्विजान् ।।६
अनेन विधिना दद्यान्मासिमासि सदा नरः । वाससी वृषभं हैमं तद्वद्धेनोस्तु पूजनम् ।।७
सम्वत्सरान्ते शयनमिक्षुदण्डगुडान्वितम् । सोपधानकविश्रामं भाजनासनसञ्युतम् ।।८
ताम्रपात्रं तिलप्रस्थं सौवर्णवृषसञ्युतम् । दद्याद्वेदविदे सर्वं विश्वात्मा प्रीयतामिति ।।९
अनेन विधिना राजन्कुर्याद्यः शुभसप्तमीम् । तस्य श्रीर्विमला कीर्तिर्भवेज्जन्मनिजन्मनि ।।१०
अप्सरोगणगन्धर्वैः पूज्यमानः सुरालये । वसेद्गणाधिपो भूत्वा यावदाभूतसम्प्लवम् ।।११
स कल्पादवतीर्णस्तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत् । ब्रह्महत्यासहस्रस्य भ्रूणहत्याशतस्य च ।।१२

अध्याय ५०

शुभसप्तमीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें एक अन्य शुभ एवं शोभन सप्तमी का विधान बता रहा हूँ, जिसका उपवास रहकर मनुष्य रोग, शोक एवं दुःखों से मुक्त होता है। पुण्य कार्तिक मास की सप्तमी के दिन यमपूत स्नान करके कथा आरम्भ पूर्वक शुभ सप्तमी का अनुष्ठान आरम्भ कर गन्ध, एवं अनुलेपन द्वारा कपिला गौ की पूजा करके क्षमा प्रार्थना करे कि सूर्य से उत्पन्न, निखिल भुवनों के आधार एवं शुभ कल्याण की साक्षात् मूर्ति आप को मैं सर्व सिद्धयर्थ नमस्कार करता हूँ। अनन्तर ताम्र पात्र में एक सेर तिल रखकर उसके ऊपर वृषभ की सुवर्ण प्रतिमा को वस्त्र माला एवं गुड़ से सुशोभित कर द्विकाल वेला में 'अर्यमा प्रसन्न हों कह कर ब्राह्मण के लिए अर्पित कर रात्रि में पञ्चगव्य के प्राशन पूर्वक भूमि शयन कर अनन्तर प्रातःकाल में भक्ति पूर्वक ब्राह्मणों को तृप्त करे। १-६। इसी विधान द्वारा प्रत्येक मास में वस्त्र, वृषभ की सुवर्ण प्रतिमा, और गौ के पूजन पूर्वक वर्ष की समाप्ति में सुसज्जित शय्या, ऊख, गुड़ भोजन पात्र, ताम्रपात्र, एकसेर तिल, सुवर्ण की वृषभ प्रतिमा आदि वस्तुएँ पूजनोपरांत 'विश्वात्मा प्रसन्न हों' कहकर किसी विद्वान् ब्राह्मण को समर्पित करना चाहिए। राजन् ! इस विधान द्वारा इस शुभ सप्तमी को सुसम्पन्न करने वाला पुरुष भी निर्मल कीर्ति प्राप्ति करके प्रत्येक जन्म में करते हुए अन्त में अप्सराओं और गन्धर्वों से पूजित होकर स्वर्ग में गणाधिप होकर प्रतिष्ठित होता है। पुनः सृष्टि के आरम्भ होने पर सातों द्वीपों का अधीश्वर होता है और यह शुभ

नाशङ्करोति पुण्येयं कृता वै शुभसप्तमी ॥१३

इमां पठेद्यः शृणुयान्मुहूर्तं वीक्षन्नते सङ्गादपि दीयमानम् ।
सोऽप्यत्र सम्बाध्य विमुक्तदेहः प्राप्नोति विद्याधरनायकत्वम् ॥१४

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
शुभसप्तीव्रतनिरूपणं नामैकोपञ्चाशत्ततोऽध्यायः ।५१

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

स्नपनसप्तमीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

किमुद्वेगाद्भवेत्कृत्यमलक्ष्मीः केन हन्यते । मृतवत्सादिकार्येषु दुःस्वप्ने च किमिष्यते ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा कृतानि पापानि फलन्त्यत्र युधिष्ठिर । रोगदौर्गत्यरूपेण तथैवेष्टविघातनैः ॥२
तद्विघाताय वक्ष्यामि सदा कल्याणसप्तमीम् । सप्तमीस्नपनं नाम व्याधिपीडाविनाशनम् ॥३
बालानां मरणं यत्र क्षीरपानं प्रशस्यते । तद्वद्वृद्धातुराणां च यौवने वापि वर्तताम् ॥४
शान्तये तत्र वक्ष्यामि मृतवत्सादिके च यत् । एतदेवाद्भुतोद्वेगचिन्ताविभ्रममानसम् ॥५
वराहकल्पे सम्प्राप्ते मनोर्वैवस्वतेऽन्तरे । कृते युगे महाराज हैहयो रूपवर्द्धनः ॥६

सप्तमी सुसम्पन्न होने पर सहस्र ब्रह्म हत्या तथा सौ भ्रूण हत्या के पाप विध्वंसकरती है । इस प्रकार इसके अध्ययन, श्रवण अथवा मुहूर्त मात्र दर्शन करने वाले पुरुष भी निःसंग होकर विद्याधर के नायक पद पर प्रतिष्ठित होते हैं ।७-१४

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-सम्वाद में
शुभ सप्तमी व्रत वर्णन नामक इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ।५१।

अध्याय ५२

स्नपनसप्तमीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—मनुष्यों के उद्वेग (अशांति) और दुर्भाग्य किस उपाय द्वारा नष्ट होते हैं तथा मृतवत्सा आदि दोषों के निवारण एवं दुःखस्वप्नों के कर्तव्य बताने की कृपा कीजिये ।१

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर जन्मान्तरीय पापों के परिणाम स्वरूप मनुष्यों के रोग, दुर्गति और अभीष्ट के हनन रहते हैं । अतः इनके विघातार्थ मैं कल्याण सप्तमी के विधान तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ! सप्तमी में स्नान करने से व्याधियों एवं तज्जनित पीडाओं के शमन होते हैं । बच्चों के निधन होने पर प्रशस्त क्षीर पान की भाँति वृद्ध और आतुरों के लिए मृतवत्सादि दोषों के अपहरणार्थ इसी सप्तमी के व्रत सुसम्पन्न किया जाता है तथा उद्वेग एवं चिंता जर्जर प्राणियों के लिए भी । बाराह कल्प में वैवस्वत

आसीन्नृपोत्तमः पूर्वं कृतवीर्यः प्रतापवान् ।स सप्तद्वीपमखिलं पालयामास भूतलम् ।।७
यावद्वर्षसहस्राणि सप्तसप्तति भारत । जातमात्रं च तस्याथ शुभं पुत्रशतं किल ।।८
यवनस्य तु शापेन विनराममगमत्पुरा । कृतवीर्यः समाराध्य सहस्रांशुं दिवाकरम् ।।९
उपवासव्रतैर्दिव्यैर्वेदसूक्तैश्च भारत । दर्शयामास चात्मानं कृतवीर्यस्य भानुमान् ।।१०
कृतवीर्येण वै पृष्टः प्रोवाचेदं बृहस्पतिः । अतिक्लेशेन[1] महता पुत्रस्तव नराधिप ।।११
भविष्यति चिरञ्जीवी किं तु कल्मषनाशनम् । सप्तमीस्नपनं वाप्यां कुरु पापविनष्टये ।।१२
जातस्य मृतवत्सायाः सप्तमे मासि भूपते । ग्रहताराबलं लब्ध्वा कृत्वा ब्राह्मण वाचनम् ।।१३
बालस्य जन्मनक्षत्रं वर्जयेत्तां तिथिं बुधः । सद्वृद्धातुरगाणां तु कृतं स्यादिति तेषु च ।।१४
गोमयेनोपलिप्तायां भूमावेकाग्रचितवान् । तण्डुलै रक्तशालेयैर्वरुणाक्षीर संयुतम् ।।१५
निर्वपेत्सूर्यमुद्गाभ्यां मातृभ्योऽपि विधानतः । कीर्तयेत्सूर्यदैवत्यं सप्तार्चिषि घृताहुतीः ।।१६
जुहुयाद्रुद्रसूक्तेन तद्वद्रुद्राय भारत ! होतव्याः समिधश्चात्र तत्र वार्कपलाशजाः ।।१७
यवकृष्णतिलैर्होमः कर्तव्याष्टशतं पुनः । हुत्वा स्नानं च कर्तव्यं मध्ये गाङ्गेन धीमता ।।१८
विप्रेण वेदविदुषा विधिवद्दर्भपाणिना । स्थापयित्वा चतुष्कोणे चतुष्कुम्भान्प्रशोभनान् ।।१९
पञ्चमं च पुनर्मध्ये चाक्षतेन विभूषितम्[2] । स्थापयेद्दर्पणाक्रान्तं सप्तर्षिणाभिमन्त्रितम् ।।२०
सौरेण तीर्थतोयेन पूर्णचन्द्रमलान्वितम्[3] । सर्वान्सर्वौषधियुतान्पञ्चभङ्गजलान्वितान्[4] ।।२१

मन्वन्तर के समय कृत युग में महाराज हैहय वंश के भूषण स्वरूप कृतवीर्य नामक प्रतापी राजा राज करता था, जो इस वसुन्धरा पर सातों द्वीपों का अधीश्वर था । भारत ! सतहत्तर सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर उनके सौन्दर्य पूर्ण सौ पुत्र उत्पन्न हुए, किन्तु यवन के शाप द्वारा उत्पन्न होते ही विनष्ट भी हो गये थे । अनन्तर भारत ! उपवास, व्रत, एवं दिव्य वेद सूक्तों द्वारा सहस्रांशु भगवान् दिवाकर की आराधना करने पर सूर्य ने कृतवीर्य को साक्षात् दर्शन प्रदान किया । कृतवीर्य के पूछने पर बृहस्पति (सूर्य) ने उनसे कहा—नराधिप ! अत्यन्त क्लेश सहन करने पर पर आप को कठिनाई से एक चिरजीवी पुत्र की प्राप्ति होगी किन्तु, सर्वप्रथम कल्मष नाशक इस सप्तमी का अनुष्ठान अपने पाप विनाशार्थ आरम्भ करो ।२-१२। भूपते ! सातवें मास में पुत्र उत्पन्न होने पर (रानी के) मृतवत्सादि दोष निवारणार्थ ग्रह तारा बल देखकर ब्राह्मण द्वारा स्वस्ति वाचन पूर्वक बालक के जन्म नक्षत्र तिथि को त्यागकर गोमय से शुद्ध की हुई भूमि में रक्त वर्ण के साठी चावल एवं वरुणाक्षीर द्वारा सूर्य की प्रतिमा बनाकर सविधान अर्चना करने के उपरांत प्रज्वलित अग्नि में घृत की आहुति प्रदान करे । भारत ! रुद्र मूर्ति सूर्य प्रसन्नार्थ रुद्र सूक्त के पाठ करते हुए मंदार अथवा पलाश की समिधा (लकड़ी) से प्रज्वलित अग्नि में जवा और काले तिल की एक सौ आठ आहुति प्रदान करके मध्याह्न के समय गङ्गा जल में स्नान करने के अनन्तर हाथ में कुश लिए हुए वैदिक विद्वानों द्वारा चारों कोने पर चार कलशों के स्थापन करते हुए उनके मध्य में सौन्दर्य पूर्ण पाँचवें कलश की प्रतिष्ठा कर जो दर्पण से विभूषित, सप्तर्षियों से अभिमन्त्रित हो । उस कलशों का सौर तीर्थ के जल, कपूर, समस्त औषधियाँ, पंच पल्लव, पंच रत्न, और फलों से पूर्ण एवं वस्त्र

---

१. अतिक्रमेण । २. दक्षिणम् । ३. कर्पूरसंयुतमित्यर्थः । ४. पञ्चभङ्गा पञ्चपल्लवाः—इत्यर्थः ।

पञ्चरत्नफलैर्युक्ताञ्छाखाभिरपि वेष्टितान् । गजाश्वरथ्याराजद्वार्वल्मीकाद्ध्रदगोकुलात् ॥२२
सुशुद्धांमृदमानीय सर्वेष्वेव विनिक्षिपेत् । चतुर्ष्वपि च कुम्भेषु रत्नगर्भेषु मध्यमम् ॥२३
गृहीत्वा ब्राह्मणं चात्र सौरान्मन्त्रानुदीरयेत् । नारीभिः सप्तसंख्याभी रथाङ्गाङ्गाभिरत्र च ॥२४
भोजिताभिर्यथाशक्तिमाल्यवस्त्रविभूषणैः । सविप्राभिश्च कर्तव्यं मृतवत्साभिषेचनम् ॥२५
दीर्घायुरस्तु बालोऽयं जीवपुत्रा च भाविनी । आदित्यचन्द्रमासार्धं ग्रहनक्षत्रमण्डलम् ॥२६
शक्रः सलोकपालो वै ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरः । एते चान्ये च वै देवाः सदा पान्तु कुमारकम् ॥२७
मासनिर्मांस हुतभुङ्मा च बालग्रहा क्वचित् । पीडां कुर्वन्तु बालस्य मा मातृजनकस्य वै ॥२८
ततः शुक्लाम्बरधराः कुमारं पतिसंयुताः । सप्तकं पूजयेद्भक्त्या पुष्पैर्गन्धैः फलैः शुभैः ॥२९
काञ्चनीं च ततः कृत्वा तिलपात्रो परिस्थिताम् । प्रतिमां धर्मराजस्य गुरवे विनिवेदयेत् ॥३०
वस्त्रकाञ्चनरत्नौघैर्भक्ष्यैः सघृतपायसैः । पूजयेद्ब्राह्मणांस्तद्वद्वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ॥
भुक्त्वा च गुरुणा चेयमुच्चार्या मन्त्रसन्ततिः ॥३१
दीर्घायुरस्तु बालोऽयं यावद्वर्षशतं सुखी । यत्किञ्चिदस्य दुरितं तत्क्षिप्तं वडवामुखे ॥३२
ब्रह्मा रुद्रो विष्णुः स्कन्दो वायुः शक्रो हुताशनः । रक्षन्तु सर्वे दुष्टेभ्यो वरदा यान्तु सर्वदा ॥३३
एवमादीनि चान्यानि वदतः पूयजेद्गुरून् । शक्तितः कपिलां दत्त्वा प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥३४
चरुं च पुत्रसहिता प्रणम्य रविशङ्करौ । हुतशेषं तदानीयादादित्याय नमोऽस्तु ते ॥३५

से आवेष्टित कर हाथी, घोड़े, शय्या राजद्वार, वल्मीक, सरोवर, और गौओं के निवास स्थान की शुद्ध मृत्तिका उन कलशों में डाले पूजनोपरान्त मध्यम कलश के जल द्वारा ब्राह्मणों और सात स्त्रियों से जो भोजन कराकर यथाशक्ति माला, वस्त्र, एवं आभूषणों से भूषित की गई हो, मृतवत्सा स्त्री का अभिषेक होना चाहिए। यह पुत्र दीर्घ जीवी हो, और यह स्त्री अब से जीवितपुत्रा हो एवं सूर्य, चन्द्र, समस्त ग्रह, नक्षत्र, मण्डल, लोकपाल समेत इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर देवों सदैव इस कुमार की रक्षा करें। मांस एवं निर्मांस भोजी बाल ग्रह इस शिशु, तथा इसके माता पिता को कभी पीड़ित न करें—इस प्रकार अभिषेक करने के अनन्तर श्वेत वस्त्र धारण किये पति समेत सात स्त्रियों के पुष्प, गन्ध, एवं शुभ फलों द्वारा इस कुमार की पूजा करने के उपरांत तिलपात्र में स्थापित धर्म राज की उस काञ्चनी प्रतिमा को गुरु के लिए अर्पित कर वित्तशाठ्यदोष को ध्यान में रखते हुए यथाशक्ति वस्त्र, सुवर्ण, एवं रत्नों और घृत समेत पायस के भोजनों द्वारा ब्राह्मणों को तृप्त करके गुरुदेव की अर्चना करे, जो उस समय भोजनों द्वारा गद्गदचित्त होकर—यह बालक चिरजीवि हो, [1]बारह वर्ष तक निरन्तर सुखी रहे, इसके जो कुछ शेष दुरित हों, वह बड़वामुख (अग्नि) में प्रक्षिप्त होकर विनष्ट हो जाँय, ब्रह्मा, रुद्र, विष्णु, स्कन्द, वायु, शक्र, अग्नि आदि देव समस्त अनिष्टों से इसकी रक्षा करते हुए सदैव वरदायक रहें—आदि आशीर्वाद मंत्रोंच्चारण रूप में प्रदान करता रहे। तदुपरांत यथाशक्ति सुसज्जित कपिला गौ के दान और नमस्कार करके विसर्जन करे।१३-३४। पश्चात् पुत्र समेत उस स्त्री को यदि चाहिए कि सूर्य और शंकर के प्रणाम पूर्वक हुत शेष चरु को ग्रहण करते हुए आदित्य को नमस्कार कर रही हूँ, कहकर क्षमा प्रार्थना करे। यही

---

१. शिशु अवस्था में बारह वर्ष तक पूतना आदि (अभोगा) रोग का भय रहता है।

अयमेवाद्भुतं योगो ह्यद्भुतेषु च शस्यते । कर्तुर्जन्मनि वृक्षाणां देवान्सम्पूजयेत्तदा ॥
शान्त्यर्थं शुक्लसप्तम्यामेतत्कुर्वन्न सीदति ॥३६
पुण्यं पवित्रमायुष्यं सप्तमीस्नपनं रविः । कथयित्वा नरश्रेष्ठ तत्रैवान्तरधीयत ॥३७
स चानेन विधानेन कार्तवीर्योऽर्जुनो नृपः । सम्वत्सराणामयुतं शशास पृथिवीमिमाम् ॥३८
आरोग्यं भास्करादिच्छेद्धनमिच्छेद्धुताशनात् । शङ्कराज्ज्ञानमिच्छेत्तु गतिमिच्छेज्जनार्दनात् ॥३९

एतन्महापातकनाशनं स्यादप्यक्षयं वेदविदः पठन्ति ।
शृणोति यश्चैनमनन्यचेतास्तस्यापि सिद्धिं मुनयो वदन्ति ॥४०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
स्नपनसप्तमीव्रतवर्णनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५२

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अचलासप्तमीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

अध्रुवेण शरीरेण सुपक्वेनापि किं फलम् । माघस्नानविहीनेन यत्त्वलं यदुनन्दन ॥१
प्रातः स्नानासमर्थानां शरीरं पश्य देहिनाम् । किं तेन वद कर्तव्यं माघे संसारभीरुणा ॥२

अद्भुत योग उद्वेग आदि को शमनार्थ प्रशस्त बताया गया है । बालक जन्म, तथा मृतवत्सा आदि दोषों के शान्त्यर्थ इसी शुक्ल सप्तमी का व्रतानुष्ठान सुसम्पन्न करने वाला पुरुष कभी दुःख का अनुभव नहीं करता है । नरश्रेष्ठ ! इस प्रकार इस पुण्य, पवित्र, आयुप्रद सप्तमी के स्नान आदि के वर्णन कर सूर्य देव उसी समय अन्तर्हित हो गये नृप ! इसी विधान द्वारा इस सप्तमी को सुसम्पन्न करने के परिणाम स्वरूप वह कृतवीर्य का पुत्र सहस्रार्जुन ने दश सहस्र वर्ष तक इस समस्त पृथ्वी का निर्बाध शासन किया । भास्कर से आरोग्य, अग्नि से धन, शंकर से ज्ञान और जर्नादन भगवान् से उत्तम गति की प्राप्ति मनुष्यों को करनी चाहिए । इसके अनुष्ठान द्वारा महापातक का विध्वंस होना वेद निष्णात विद्वानों ने कहा है । अनन्य भाव से इसके श्रवण करने वाले की भी सिद्धि होती है, ऐसा मनुष्यों का कहना है ।३५-४०

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में स्नपन सप्तमी व्रत वर्णन
नामक बावनवाँ अध्याय समाप्त ।५२।

अध्याय ५३

अचलासप्तमीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—यदुनन्दन ! इस नश्वर शरीर को प्राप्त कर मनुष्य यदि माघस्नान से वंचित रहा, तो वृद्धावस्था तक इसे धारण करने का कौन फल उसे प्राप्त हुआ२? और माघ मास के प्रातः स्नान करने में असमर्थ इस संसार भीरु जीवों के कर्तव्य बताने की कृपा कीजिये। यदूत्तम ! शरीर की सुकुमारता एवं

कायक्लेशसहा नार्यो न भवन्ति यदूत्तम । सौकुमार्यं शरीरस्य अचलत्वात्तथैव च ।।३
कथं च ताः सुरूपाः स्युः सुभगाः सुप्रजास्तथा । सुकृतस्येह पुण्यस्य सर्वमेतत्फलं यतः ।।४
अल्पायासेन सुमहद्येन पुण्यमवाप्यते । स्त्रीभिर्माघे मम ब्रूहि स्नानं तत्त्वं च माधव ।।५

श्रीकृष्ण उवाच

श्रूयतां पाण्डवश्रेष्ठ ! रहस्यमृषिभाषितम् । यन्मया कस्यचिन्नोक्तमचलासप्तमीव्रतम् ।।६
वेश्या चेन्दुमती नाम रूपौदार्यगुणान्विता । आसीत्कुरुकुलश्रेष्ठ मगधस्य विलासिनी ।।७
तनुमध्या सुजघना पीनोन्नतपयोधरा ! सम्यग्विभक्तावयवा पूर्णचन्द्रनिभानना ।।८
सौंदर्यं सौकुमार्यं च तस्याः कामेन गीयते । यस्याः सन्दर्शनादेव कामः कामातुरो भवेत् ।।९
मूर्तिः शशधरस्येव नयनानन्दकारिणी । वशीकरणविद्येव सर्वलोकमनोहरा ।।१०
एकस्मिन्दिवसे प्रातः सुमुखस्थितया तया । चिंतिता हृदये राजन्संसारस्यानवस्थितिः ।।११
सन्निमज्य जगदिदं विषये कायसागरे । जन्मगृत्युजराग्राहं न कश्चिदवबुद्धयते ।।१२
अपाको भूतभाण्डानां धातृशिल्पिविनिर्मितम् । स्वकर्मैधनसम्वीतं पच्यते बालवह्निना ।।१३
ये यान्ति दिवसाः पुंसां धर्मकामार्थवर्जिताः । न ते पुनरिहायान्ति हरभक्ता नरा यथा ।।१४
स्नानं दानं तपो होमं स्वाध्यायः पितृतर्पणम् । यस्मिन्दिने न क्रियते वृथा स दिवसो नृणाम् ।।१५

अचल होने के नाते स्त्रियाँ शारीरिक क्लेश सहन करने में असमर्थ होती है, किन्तु, सौन्दर्य पूर्ण, सौभाग्य और शोभन सन्तान की प्राप्ति उन्हें किस प्रकार होतीहै, क्योंकि ये समस्त सुन्दर फल सुकृत जन्म पुण्य द्वारा ही उपलब्ध होते हैं । सुमाधन ! व्रत अल्प आयास द्वारा महान पुण्य की प्राप्ति तथा माघ में स्त्रियों के स्नान मुझसे कहने की कृपा कीजिये । १-५

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डव श्रेष्ठ ! इस अचला सप्तमी के विधान रहस्य को जिसे ऋषियों ने बताया है और मैंने, अभी तक किसी से कहा नहीं है, कह रहा हूँ, सुनो ! कुरुकुल श्रेष्ठ ! रूप लावण्य एवं उदारादि गुण भूषित इन्दुमती नामक वेश्या मगध में परम विलासिनी स्त्रियों में से थी, जिसकी कटि अत्यन्त सूक्ष्म, शोभन जाँघें, पीन एवं उन्नत पयोधर तथा उस विधुवदनी के समस्त अंग मनमोहक थे । उसके सौन्दर्य और सौकुमार्य का वर्णन स्वयं मन्मथ ने मुक्त कण्ठ से किया था, क्योंकि उसके दर्शन मात्र से वह स्वयं कामातुर हो जाता था । चन्द्रमा की प्रतिमा की भाँति वह सदैव नेत्रों को तृप्त करने वाली, तथा वशीकरण की भाँति समस्त लोकों के लिए मनोहर थी । राजन् ! एक दिन प्रातः काल उस सुमुखी ने संसार की असारता पर विचार करना आरम्भ किया कि सम्पूर्ण संसार इस शरीर रूपी विषय सागर में निमग्न होकर इसमें रहने वाले जन्म, मृत्यु एवं जरा (बुढ़ाई) रूपी भीषण ग्राह (घड़ियाल) को कुछ भी ध्यान नहीं दे रहा है । ब्रह्मा रूपी शिल्पी द्वारा सुनिर्मित यह शरीर, जो भूतों (प्राणियों) का अपाक भाजन है, स्वकर्म रूपी ईंधन से प्रज्वलित बाल अग्नि द्वारा पक्व होता है । मनुष्यों के जितने दिन धर्म, अर्थ एवं काम से वञ्चित होकर व्यतीत हो जाते हैं, शिवभक्त मनुष्यों की भाँति वे पुनः लौट कर नहीं आते हैं । स्नान, दान, तप, हवन, स्वाध्याय, एवं पितृ तर्पण आदि पुण्य कर्म का सम्पादन जिस दिन नहीं होता है, मनुष्यों का वह दिन व्यर्थ निकल जाता है । ६-१५। पुत्रों तथा स्त्री और घर में यह मन इतना आसक्त रहता है

पुत्राणां दारगृहकसमासक्तं हि मानसम् । वृकीवोरणमासाद्य मृत्युर्द्धाराय गच्छति ॥१६
इत्येवं चिंतयित्वा तु वेश्या चेन्दुमती ततः । वशिष्ठस्याश्रमं पुण्यं जगाम गजगामिनी ॥१७
वशिष्ठमृषिमासीनं प्रणम्य विनयात्ततः । कृताञ्जलिपुटा भूत्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥१८

इन्दुमत्युवाच

दशसूनासमश्चक्री दशचक्रिसमो ध्वजः । दशध्वजसमा वेश्या दशवेश्यासमो नृपः ॥१९
मया न दत्तं न हुतं नोपवासो व्रतं कृतम् । भक्त्या न पूजितः शम्भुः श्रितो[1] नैको धनी नरः ॥२०
साम्प्रतं वर्तमानाया व्रतं किंचिद्वदस्व मे । येन दुःखाम्बुपापौघादुत्तरामि भदार्णवात् ॥२१
एतदस्याः सुबहुशः श्रुत्वा धर्मं परन्तपः । वशिष्ठः कथयामास महाकारुणिको मुनिः ॥२२

वशिष्ठ उवाच

माघस्य सितसप्तम्यां सर्वकामफलप्रदम् । तपः सौभाग्यजननं स्नानं तव वरानने ॥२३
कृत्वा षष्ठ्यामेकभुक्तं सप्तम्यां निश्चलं जलम् । रात्र्यन्ते चालयेथास्त्वं दत्त्वा शिरसि दीपकम् ॥२४
माघस्य सितसप्तम्याचलं चालितं मया । जलामलानां सर्वेषां कृतं न चलनं तथा ॥२५
वशिष्ठवचनं श्रुत्वा तस्मिन्नहनि भूपते । सर्वं चकारेन्दुमती स्नानं दानं यथाविधि ॥२६
त्र्यहस्नानप्रभावेण[2] भुक्त्वा भोग्यान्यथेप्सितान् । इन्द्रलोकेप्सरः सङ्घे नायिकात्वमवाप सा ॥२७

कि रण में पहुँचकर भेंडिये की भाँति अनायास मृत्यु के मुख में पहुँच जाता है । इस प्रकार विचार कर उस गज गामिनी इन्दुमती वेश्या ने महर्षि वशिष्ठ जी के पुण्य आश्रम को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचने पर सुखासीन वशिष्ठ जी को सविनय प्रणाम करने के उपरांत अञ्जली बाँधकर उसने यह कहना आरम्भ किया ।१६-१८

इन्दुमती ने कहा—दश भाँति की हिंसा के समान एक चक्री, दश चक्री के समान एक ध्वज, दश ध्वज के समेन एक वेश्या और दश वेश्या के समान एक राजा होता है । अतः देव ! मैंने न कोई दान दिया, न हवन किया, और न उपवास रहकर कोई व्रतानुष्ठान ही सुसम्पन्न किया तथा शिव जी के आश्रित रहकर भक्ति समेत उनकी कभी भी अर्चना नहीं की । इसलिए इस समय मेरे लिए कोई व्रत बताने की कृपा कीजिये, जिसके द्वारा मुझ पापिनी का भी इस संसार सागर से उद्धार हो जाये । इसके ऐसे अनेक धार्मिक वचनों को सुनकर परम तपस्वी वशिष्ठ जी ने अत्यन्त करुणा के नाते आर्द्र होकर उपदेश देना आरम्भ किया—१९-२२।

वशिष्ठ जी बोले—वरानने ! माघ शुक्ल सप्तमी के दिन स्नान करना तुम्हारे लिए अत्यन्त हितकर है, क्योंकि समस्त कामनाओं की सफलता पूर्वक वह अत्यन्त सौभाग्य के दिन रात्रि के पिछले समय दीप दान समेत उस (जलाशय के) निश्चल जल का संचालन (स्नान) करे । उस समय कहे भी कि—माघ शुक्ल सप्तमी के दिन जब कि उस निर्मल जल का संचालन नहीं हुआ था, उस निश्चल जल का संचालन मैंने किया है । नृप ! वशिष्ठ जी की बातें सुनकर उसी दिन उस इन्दुमती वेश्या ने उनके कथनानुसार स्नान दान आदि कर्मों को सविधान सुसम्पन्न किया । उस स्नान के प्रभाव वश उसके इस लोक के समस्त सुखों के उपभोग करने के अनन्तर इन्द्र लोक की समस्त अप्सराओं का नायकत्व पद प्राप्त

---

१. श्रितः आश्रित इत्यर्थः । २. अहो स्नानप्रभावेण ।

अचलासप्तमीस्नानं कथितं च विशाम्पते । सर्वपापप्रशमनं सुखसौभाग्यवर्द्धनम् ।।२८

युधिष्ठिर उवाच

सप्तमीस्नानमाहात्म्यं श्रुतं न च विशेषतः । साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामि विधिमन्त्रसमन्वितम् ।।२९

श्रीकृष्ण उवाच

एकभक्तेन सन्तिष्ठेत्षष्ठ्यां सम्पूज्य भास्करम् । सप्तम्यां तु व्रजेत्प्रातः सुगम्भीरं जलाशयम् ।।३०
सरित्सङ्गं तडागं च देवखातमथापि वा । सुखावगाहसलिलं दुष्टसत्त्वैरदूषितम् ।।३१
पशुभिः पक्षिभिश्चैव जलजैर्मत्स्यकच्छपैः । न जलं चाल्यते यावत्तावत्स्नानं समाचरेत् ।।३२
नमस्ते रुद्ररूपाय रसानां पतये नमः । वरुणाय नमस्तेऽस्तु हरिवास नमोऽस्तु ते ।।३३
यावज्जन्म कृतं पापं मया जन्मसु सप्तसु । तन्मे रोगं च शोकं च माकरी हन्तु सप्तमी ।।३४
जननी सर्वभूतानां सप्तमीसप्तसप्तिके । सर्वव्याधिहरे देवि नमस्ते रविमण्डले ।।३५
जलोपरितरं दीपं स्नात्वा सन्तर्प्य देवताः । चन्दनेन लिखेत्पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम् ।।३६
मध्ये शर्वं सपत्नीकं प्रणवेन तु पूजयेत् । भानुं शक्रे दले पूज्य रविं वैश्वानरे दले ।।३७
याम्ये विवस्वान्नैर्ऋत्ये भास्करस्येति पूजयेत् । पश्चिमे सविता पूज्यः पूज्योऽर्को वायुना जले ।।३८
सौम्ये सहस्रकिरणः शेषे सर्वात्मनेति च । पूज्याः प्रणवपूर्वास्तु नमस्कारान्तयोजिताः ।।३९
पुष्पैः सुगन्धधूपैश्च वस्त्रेणाच्छाद्य भास्करम् । विसर्जयेत्ततः पश्चात्स्वस्थानं गम्यतामिति ।।४०

किया । विशाम्पते ! इस प्रकार अचला सप्तमी का स्नान महत्व मैंने तुम्हें सुना दिया,जो समस्त पापों के शमन पूर्वक सुख सौभाग्य का वर्द्धक है ।२३-२८

युधिष्ठिर ने कहा—सप्तमी के स्नान का महत्व मैंने सुना, किन्तु इस समय विशेषकर मैं मंत्र समेत उसका विधान सुनना चाहता हूँ ।२९

श्रीकृष्ण बोले—षष्ठी के दिन भास्कर की पूजा के उपरांत एकाहार रहकर रात्रि व्यतीत करे, पश्चात् सप्तमी के दिन प्रातः काल किसी जलाशय नदी, सरोवर, देव कुण्ड अथवा अन्य जलाशय में उस समय पहुँच कर जब कि पशु, पक्षी, मत्स्य, कच्छप अथवा अन्य दुष्ट जीव द्वारा उस जलाशय का जल सञ्चालित न किया गया हो, स्नान कर प्रार्थना करे । समस्त रसों के अधीश्वर रुद्ररूप, एवं वरुण देव को नमस्कार है, जिसमें स्वयं विष्णु निवास करते हैं—मेरे सात जन्मों के किये हुए समस्त पाप, रोग एवं शोक आदि दुःखों के शीघ्र अपहरण यह मकर की सप्तमी करे । उनचास रूप धारण करने वाली देवि ! तुम समस्त प्राणियों की जननी एवं रविमण्डल रूप हो, अतः मेरी समस्त व्याधि का अपहरण करो, मैं तुम्हें नमस्कार करती हूँ । पश्चात् जल के ऊपर दीपक रखकर स्नान तर्पण आदि करके चन्दन द्वारा कर्णिका समेत, अष्ट दल कमल का सुन्दर निर्माण करने के उपरांत मध्य में पार्वती समेत शिव जी की ओंकार करते हुए पूजन करके पूर्व में भानु, अग्नि कोण में रवि, दक्षिण में विवस्वान्, नैऋत्य में भास्कर, पश्चिम में सविता, वायव्य में अर्क, उत्तर में सहस्र किरण और ईशान में सर्वात्मा के नामोच्चारण द्वारा स्थापन पूजन पुष्प, सुगन्ध एवं धूप अर्पित करते हुए सुसम्पन्न कर वस्त्र से आच्छन्न उन भास्कर का अपने स्थान

ताम्रपात्रे सुविस्तीर्णे मृण्मये वा युधिष्ठिर । स्थापयेत्तिलचूर्णं च सघृतं सगुडं तथा ॥४१
काञ्चनं तालकं कृत्वा ह्यसिक्तिस्तिलचूर्णकम् । संस्थाप्य रक्तवस्त्रैस्तु पुष्पैर्धूपैस्तथार्चयेत् ॥४२
ततस्तं ब्राह्मणे दद्याद्दत्त्वा मन्त्रेण तालकम् । आदित्यस्य प्रसादेन प्रातः स्नानफलं भजेत् ॥४३
दुष्टदौर्भाग्यदुःखेभ्यो मया दत्तं तु तालकम् । ततस्तत्तालकं कृत्वा ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥४४
सुपुत्रपशुभृत्याय मेऽर्कोयं प्रीयतामिति । ततो व्रतोपदेष्टारं पूजयेद्वस्त्रगोतिलैः ॥४५
विप्रानन्यान्यथाशक्त्या पूजयित्वा गृहं व्रजेत् । एतत्ते कथितं कार्यं रूपसौभाग्यकारकम् ॥४६
अचलासप्तमीस्नानं सर्वकामफलप्रदम् ॥४७

इति पठति य इत्थं यः शृणोति प्रसङ्गात्कलिकलुषहरं वै सप्तमीस्नानमेतत् ।
मतिमपि नयनानां यो ददाति प्रसङ्गात्सुरभवनगतोऽसौ पूज्यते देवसङ्घैः ॥४८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
अचलासप्तमीव्रतविधिवर्णनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५३

अथ चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

बुधाष्टमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

बुधाष्टमीव्रतं भूयो ब्रवीमि शृणु पाण्डव । येन चीर्णेन नरकं नरः पश्यति न क्वचित् ॥१

पधारने की कृपा कीजिये, कहकर विसर्जन करे । पूजन करते समय ओंकार पूर्वक नमस्कारान्त पद का उच्चारण करना चाहिए । युधिष्ठिर ! विस्तीर्ण ताम्र पात्र अथवा किसी मृत्तिका के पात्र में तिल के चूर्ण को घी गुड़ स्थापन पूर्वक सुवर्ण के तालक को काले तिल के चूर्ण समेत स्थापित करके वस्त्र से सुशोभित करते हुए पुष्प धूप आदि से अर्चना करने के उपरांत उस विद्वान् ब्राह्मण को अर्पित करे । ऐसा करने से आदित्य देव प्रसन्न होकर उसे स्नान फल प्रदान करते हैं । दुष्ट, ग्रह, दौर्भाग्य एवं अनेक दुःखों के अपहरणार्थ मैंने यह तालक ब्राह्मण को अर्पित किया है, इससे पशु, पुत्र, एवं सेवक आदि समेत मुझ पर भगवान् सूर्य प्रसन्न हों पश्चात् व्रत के उपदेष्टा (गुरु) तथा अन्य ब्राह्मणों की यथाशक्ति वस्त्र, गौ और तिल द्वारा पूजन करके गृह का प्रस्थान करे । रूपसौभाग्यदायक इस अचला सप्तमी के स्नान को मैंने तुम्हें बता दिया, जिससे समस्त कामनायें सफल होती हैं । इस प्रकार इस कलि कलुष के अपहरण करने वाले सप्तमी स्नान को पढ़ने, सुनने अथवा प्रसङ्ग वश उपदेश देने वाले पुरुष देवों से सुसेवित होकर देव लोक की प्राप्ति करते हैं ।३०-४८

श्री भविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्वाद में
अचला समप्तमी व्रत विधान वर्णन नामक तिरपनवाँ अध्याय समाप्त ।५३।

अध्याय ५४

बुधाष्टमी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डव ! बुधवार संयुक्त अष्टमी व्रत का विधान जिसके सुसम्पन्न करने पर मनुष्य

पुरा कृतयुगस्यादौ इलो राजा बभूव ह । बहुभृत्यसुहृन्मित्रमन्त्रिभिः परिवारितः ॥२
जगाम हिमवत्पार्श्वे महादेवेन वारितः । योऽन्यः प्रविशते भूमौ सा स्त्री भवति निश्चितम् ॥३
स राजा मृगसंगेन प्राविशत्तदुमावने । एकाकी तुरगोपेतः क्षणात्स्त्रीत्वं जगाम ह ॥४
सा बभ्राम वने शून्ये पीनोन्नतपयोधरा । कुतोऽहमागतेत्येवं न त्वबुध्यत किंचन ॥५
तां ददर्श बुधः सौम्यां रूपौदार्यगुणान्विताम् । अष्टम्यां बुधवारेण तस्यास्तुष्टो बुधो ग्रहः ॥६
दधौ गर्भं तदुदरे इलायाः रूपतोषितः । पुत्रमुत्पादयामास योऽसौ ख्यातः पुरूरवाः ॥७
चन्द्रवंशकरो राजा आद्यः सर्वमहीक्षिताम् । ततः प्रभृति पूज्येयमष्टमी बुधसञ्युता ॥८
सर्वपापप्रशमनी सर्वोपद्रवनाशिनी । अथान्यदपि ते वच्मि धर्मराज कथानकम् ॥९
आसीद्राजा विदेहानां मिथिलायां स वैरिभिः । सङ्ग्रामे निहतो वीरस्तस्य भार्या दरिद्रिणी ॥१०
ऊर्मिला नाम बभ्राम महीं बालकसंयुता । अवन्ती विषयं प्राप्ता ब्राह्मणस्य निवेशने ॥११
चकारोदरपूर्त्यर्थं नित्यं कण्डनपेषणे । हृत्वा स्तोकगोधूमान्ददौ बालकयोस्तदा ॥१२
कारुण्यान्मातृवात्सल्यात्क्षुधासंपीड्यमानयोः । कालेन बहुना साध्वी पञ्चत्वमगमच्छुभा ॥१३
पुत्रस्तस्या विदेहायां गत्वा स्वपितुरासने । उपविष्टः सत्त्वयोगाद्बुभुजे गामनाकुलः ॥१४

को नरक का भय नहीं होता है, तुम्हें बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! पहले समय में कृतयुग के समय भूमण्डल के अधीश्वर राजा इल थे, जो अपने सेवक, मित्र, एवं मित्रगणों समेत हिमालय के समीप वाले प्रदेश की यात्रा के लिए प्रस्तुत हुए थे । महादेव जी के इस प्रकार निवारण करने पर भी कि—इस भूमि प्रदेश में मेरे अतिरिक्त अन्य कोई भी यात्रा करने पर निश्चित स्त्री का रूप प्राप्त करेगा । उनकी आज्ञा का उल्लंघन कर मृगया के त्याग से उस उत्तम वन में घोड़े पर बैठकर वह राजा एकाकी वन में ज्यों पहुँचा, उसी क्षण अश्व समेत स्त्री रूपमें परिणत हो गया ! पीत एवं उन्नत यशोधर से भूषित वह उस जंगल में भ्रमण करते हुए 'मैं कैसे और कहाँ आ गई' इसका कुछ भी ज्ञान नहीं कर पा रहा था, उसी बीच बुध देव से भेंट हुई । उसके सौम्य रथ को देखकर जो उदारादि गुणों से विभूषित था, बुध देव को अत्यन्त प्रसन्नता हुई । उस दिन अष्टमी समेत बुधवार था । बुध देव ने उसके रूप लावण्य पर अत्यन्त तुष्ट होकर उसे गर्भाधान कराया, जिससे पुरूरवा नामक एक प्रख्यात पुत्र का जन्म हुआ, जो समस्त चन्द्रवंशी राजाओं में सर्वप्रथम राजा था । उसी दिन से बुध संयुक्त इस अष्टमी का पूजन आरम्भ हुआ, जो समस्त पाप एवं उपद्रवों को निरन्तर विनष्ट करती है । धर्मराज ! तुम्हें एक अन्य भी कथानक सुना रहा हूँ सुनो ! एक बार विदेहराज की मिथिला नगरी का राजा रण स्थल में अपने शत्रुओं द्वारा आहत हुआ । दरिद्र दुःख से पीड़ित होने पर उसकी उर्मिला नाम पत्नी ने अपने शिशुओं समेत घर से निकल कर इधर उधर पृथ्वी पर भूलती भटकती उनकी नगरी में पहुँच कर एक ब्राह्मण के यहाँ शरण प्राप्त किया । उनके घर नित्य गृह के कार्य कूटने पीसने एवं सफाई आदि करती हुई अपनी जीविका का निर्वाह कर रही थी, उसी बीच उसने एक दिन ब्राह्मण के घर से थोड़ा गेहूँ अपने बच्चों को क्षुधा निवर्त्यर्थ दे दिया जो उस समय उस अत्यन्त क्षुधा पीड़ित हो रहे थे। उनकी अवस्था देखकर उससे न रहा गया, करुणा और मातृवत्सलता के नाते वह स्वयं भी अधीर थी। कुछ समय के उपरांत उस साध्वी का निधन हो गया। १-१३। और पुत्र ने विदेह नारी में आकर पुनः अपने पैतृक गृह आदि को अपने अधीन किया और निश्चिन्त होकर जीवन के दिन व्यतीत

अन्विष्य धर्मराज्ञो वै सा कन्या मिथिवंशजा। विवाहिता हिता भर्तुः सा महानायिकाऽभवत् ॥१५
श्यामला नाम चार्वंगी प्रसिद्धा श्रूयते श्रुतौ। तामुवाच दरारोहां धर्मराजः स्वयं प्रियाम् ॥१६
वहस्व सर्वव्यापारं श्यामले त्वं गृहे मम। कुरु स्वजनभृत्यानां दानक्षेपं यथेप्सितम् ॥१७
किं त्वेते पञ्जराः सप्त कीलकैरतियन्त्रिताः। कदाचिदपि नोद्घाटयास्त्वया वैदेहनन्दिनी ॥१८
एवमस्त्विति तामुक्त्वा निजं कर्म चकार ह। कदाचिद्व्याकुलीभूते धर्मराजे विदेहजा॥
उद्घाटयित्वा प्रथमं ददर्श जननीं स्वकाम् ॥१९
सा पच्यमाना क्रन्दन्ती भीषणैर्यमकिङ्करैः। हेलया क्षिप्यते बद्ध्वा तप्ततैले पुनः पुनः ॥२०
तथैव तालकं दत्त्वा व्रीडितासा मनस्विनी। द्वितीये पञ्जरे तद्वत्सा तामेवं ददर्श ह ॥२१
सुधावल्लिप्यमानां तां शिलातलेष्टकेन तु। तृतीयपञ्जरे तद्वत्तां ददर्श स्वमातरम्॥
क्रकचैः पाट्यते मूर्ध्नि घण्टायुक्तैः करोल्बणैः ॥२२
चतुर्थे पञ्जरे स्थाने भीषणैर्दारुणाननैः। भक्ष्यमाणां श्वापदैश्च क्रन्दन्तीं तां पुनः पुनः ॥२३
पञ्चमे निहिता भूमौ कण्ठे पादेन पीड़िता। संदंशैर्वनघातैश्च विदीर्णा क्रियते रुषा ॥२४
षष्ठे चेक्षुयन्त्रगतां मस्तके मुद्गराहताम्। सम्पीडयमानामनिशं सुदृढामिक्षुखण्डवत् ॥२५
सप्तमे पञ्जरे चीर्णस्वनां पूतिकगन्धिनीम्। दृष्ट्वा तथा गतां तां तु मातरं दुःखर्कर्षिता॥

करने लगा, किन्तु उसकी भगिनी ने धर्मराज के साथ अपना पाणिग्रहण सुसम्पन्न कराकर अपने पति की अत्यन्त वल्लभा नायिका का पद ग्रहण किया। उस सुन्दरी का नाम श्यामला था, जिसने अत्यन्त प्रख्याति प्राप्त की है। अनन्तर धर्म राज ने अपनी उस मनोनीत प्रेयसी से कहा—प्रिये, श्यामले! मेरे इस गृह को तुम अपना गृह समझ कर इसका भार वहन करो—परिवार एवं सेवक आदि के यथेच्छ पालन पोषण तथा देना लेना आदि सभी संभालो, किन्तु लोहे के इन सातों पिंजड़ों को, जो लोहे की कीलों से अत्यन्त दृढ़ नियन्त्रित कर दिये गये हैं, वैदेह नन्दिनि! इन्हें कभी न खोलना। 'तथास्तु' कहकर उसने भी स्वीकार किया और अपने गृह कार्यों में तन्मयता से परिश्रम प्रारम्भ किया। एकबार धर्मराज के किसी कार्य में अत्यन्त व्यस्त रहने पर विदेह नन्दिनी श्यामला के पहले पिंजड़े को खोला तो उसमें उसे अपनी माता का दर्शन हुआ।१४-१९। जो भीषण यमदूतों द्वारा नरको में पकायी जाने के कारण करुण क्रन्दन कर रही थी और वे यमदूत उसे बाँधकर बार बार तप्त लेत के कडाहे में उसे डाल रहे थे वह मनस्विनी उस दृश्य को देखकर अत्यन्त लज्जित हुई और अन्त में उसे वैसे ही बन्द कर दिया। दूसरे पींजड़े को खोलने पर उसमें भी अपन माता को देखा, जो पत्थर की शिला और ईटों के अन्दर चुनी जा रही थी। तीसरे में भी उसने देखा कि भीषण हांथों से आरा खींचते हुए यमदूत उसके शरीर को शिर से आरम्भ कर दो भागों में विभक्त कर रहे हैं। चौथे पींजड़े में भयानक दाँत वाले कुत्ते उसके मांस काट काट कर खा रहे हैं और वह पूर्व की भाँति करण क्रन्दन कर रही है। पाँचवें में उसने देखा कि भूमि पर शयन कराकर जंगली हिंसक जन्तु अपने चरण द्वारा उसे कण्ठ को पीड़ित करते हुए उसके शरीर को विदीर्ण कर रहे हैं। छठे में इक्षुयन्त्र (कोल्हू) में ऊख के टुकड़े की भाँति उसके शरीर खण्ड को निष्पीन कर रहे हैं। और ऊपर से मस्तक पर मुद्गर के प्रहार करते उसने देखा। तथा सातवें में उसने देखा कि मल दुर्गंध के कुण्ड में वह निमग्न की जा

श्यामला म्लानवदना किंचिन्नोवाच भामिनी ॥२६
अथागतं यमं प्राह सरोषा श्यामला पतिम् । किं तवापहृतं राजन्मम मात्र सुदारुणम् ॥
येनेयं विविधैर्घातैर्बध्यते बहुधा त्वया ॥२७
यमः प्राह प्रियां दृष्ट्वा भद्रे ह्युद्घाटितास्त्वया । एते पञ्जरकाः सप्त निषिद्धा त्वं मया पुरा ॥२८
तव मात्रा सुतस्नेहाद्गोधूमा ये हृताः किल । किं न जानासि तद्भद्रे येन रुष्टा ममोपरि ॥२९
ब्रह्मस्वं प्रणयाद्भुक्तं दहत्यासप्तमं कुलम् । तदेव चौर्यरूपेण दहत्याचन्द्रतारकम् ॥३०
गोधूमास्त इमे भूताः कृमिरूपाः सुदारुणाः । ये पुरा ब्राह्मणगृहे हृतास्तव कृतेऽनया ॥३१

श्यामलोवाच

जानामि तदहं सर्वं यन्मे मात्रा कृतं पुरा । तथापि त्वां समासाद्य सा च जामातरं शुभम् ॥
मुच्यते कृमिराशित्वाद्यथा तदधुना कुरु ॥३२
तच्छ्रुत्वा चिन्तयाविष्टश्चिरं स्थित्वा जगाद ताम् । धर्मराजः सहासीनां प्रियां प्राणधनेश्वरीम् ॥३३
इतश्च सप्तमेऽतीते जन्मनि ब्राह्मणी शुभा । आसीस्तस्मिस्त्वया सङ्गात्सखीनां पर्युपासिता ॥
बुधाष्टमी सुसम्पूर्णा यथोक्तफलदायिनी ॥३४
तत्फलं यद्ददास्यस्यै सत्यं कृत्वा ममाग्रतः । तेन मुच्यते ते माता नरकात्पापसंकटात् ॥

रही है। इस प्रकार अपनी माता को अगाध दुःख सागर में निमग्न देखकर उस साध्वी श्यामला ने अपने मुख को केवल म्लान करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा। किन्तु धर्म राज के आने पर भामिनी श्यामला ने रोषपूर्ण शब्दों में अपने पति से कहा—राजन्! मेरी माता ने तुम्हारा क्या अपहरण किया है, जिससे आप उसे अनेक भाँति के दारुण आघातों द्वारा पीडित कर रहे हैं। यम ने भी अपनी प्रेयसी को देखकर कहा—भद्रे! इसीलिए मैंने इन पींजडों को खोलने के लिए पहले से ही रोक दिया था, किन्तु पूछ रही हो, तो बता रहा हूँ। भद्रे! तुम्हारी माता ने पुत्र स्नेह के कारण गेहूँ की चोरी जो की थी, क्या तुम उसे नहीं जानती है, जो मुझ पर क्रुद्ध हो रही है—प्रेमवश ब्राह्मण के धन का उपभोग करने पर सात पीढ़ी का नाश हो जाता है—और चोरी कार्य तो तारा समेत चन्द्रमा को भी विनष्ट कर देता है। जिस गेंहूं की चोरी इसने पुत्र के लिए ब्राह्मण के घर की थी, वे (गेहूँ के दाने) भीषण रूप कीड़े होकर इसे पीड़ित कर रहे हैं।२०-३१

श्यामला ने कहा—मेरी माता ने पहले जो कुछ किया है, उसे मैं भली भाँति जानती हूँ, किन्तु, तुम्हारे ऐसे कल्याण मूर्ति जामाता (जमाई) को प्राप्त कर भी उसकी वैसी ही दुर्दशा होती रहे, यह उचित नहीं है। इन कीड़ों से मुक्त होने के लिए आप कोई उपाय शीघ्र करे। इसे सुनकर थोड़ी देर तक गम्भीर भाव से विचार कर धर्मराज ने उस अपनी प्रेयसी से, जो उनके एवं प्राण एवं धन आदि की ईश्वरी (स्वामिनी) थी, कहा—प्रिये! आज से पूर्व सातवें जन्म में तुमने ब्राह्मणी के यहाँ उत्पन्न होकर सखियों के साथ में बुध युक्त अष्टमी व्रत का नियम पालन किया था, जो समस्त फल प्रदान करती हूँ। यदि मेरे सम्मुख संकल्प पूर्वक उस फल को अपनी माता के लिए अर्पित करो, तो अवश्य इस नारकीय पाप संकट से

तच्छ्रुत्वा त्वरितं स्नात्वा ददौ पुण्यं स्वकं कृतम् । स्वमातुः श्यामला तुष्टा तेन मोक्षं जगाम सा ।।३५
उर्मिला रूपसम्पन्ना दिव्यदेहधरा शुभा । विमानवरमारूढा दिव्यमाल्याम्बरावृता ।।३६
भर्तुः समीपे स्वर्गस्था दृश्यतेऽद्यापि सा जनैः । बुधस्य पार्श्वे नभसि मिथिराजसमीपतः ।।
विस्फुरन्ती महाराजबुधाष्टम्या प्रभावतः ।।३७

युधिष्ठिर उवाच

यद्येवं प्रवरा कृष्ण सा तिथिर्वै बुधाष्टमी । तस्याः एव विधिं ब्रूहि यदि तुष्टोऽसि मे प्रभो ।।३८

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु पाण्डव यत्नेन बुधाष्टम्या विधिं शुभम् । यदा यदा सिताष्टम्यां बुधवारो भवेद्यदि ।।
तदातदा च सा ग्राह्या एकभक्ताशनैर्नृभिः ।।३९
स्नात्वा नद्यां तु पूर्वाह्णे गृहीत्वा कलशं नवम् । जलपूर्णं तु सद्रव्यं पूर्णपात्रसमन्वितम् ।।४०
अष्टवारान्प्रकर्तव्या विधानैस्तु पृथक्पृथक् । प्रथमा मोदकैः कार्या द्वितीया फेणकैस्तथा ।।४१
तृतीया घृतपूपैश्च चतुर्थी वटकैर्नृप । पञ्चमी शुभ्रकारैश्च षष्ठी मोहालकैस्तथा ।।४२
अशोकवर्तिभिः शुभ्रैः सप्तमी खण्डसंयुतैः । अष्टमी फलपुष्पैश्च केवलाखण्डफेणिकैः ।।
एवं क्रमेण कर्तव्या सुहृत्स्वजनबान्धवैः ।।४३
सह कृत्वा स्थितैर्भोज्यं भोक्तव्यं स्वस्थमानसैः । उपोष्याणामिदं श्रेष्ठं कथयद्भिः शनैः शनैः ।।४४

तुम्हारी माता मुक्त हो जाये । इसे सुनते ही श्यामला ने उसी समय स्नान करके उस अपने पुण्य का दान संकल्प पूर्वक माता के लिए सुसम्पन्न किया, जिससे उसकी माता उसी समय मुक्त हो गई । दिव्य देह धारण करने के नाते रूप लावण्य से सुशोभित होकर (उसकी माता) उर्मिला दिव्यमाला, वस्त्र एवं आभूषणों से सुसज्जित होती हुई दिव्य विमान द्वारा अपने पति के साथ स्वर्ग में आज भी दिखायी दे रही है । महाराज ! इस बुधाष्टमी व्रत के प्रभाव से मिथिलाराज के समीप बुध देव के पार्श्वभाग में वह आज भी चमक रही है ।३२-३७

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण ! यदि बुधाष्टमी व्रत का इतना महान् महत्त्व है,तो उसके विधान भी बताने की कृपा कीजिये और प्रभो ! यदि मुझ पर अत्यन्त तुष्ट हैं तो सर्व प्रथम इसी के विधान बताने की कृपा कीजिये ।३८

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डव ! बुध के संयुक्त होने पर उस विशिष्ट अष्टमी का विधान मैं बता रहा हूँ, सुनो ! जब कभी शुक्ल पक्ष की अष्टमी बुधवार युक्त हो, तो सप्तमी के दिन एकाहार रहकर मनुष्य को अष्टमी का दिन उस का व्रत सुसम्पन्न करना चाहिए । उस दिन प्रातः काल नदी में स्नान करके नवीन घट में जल समेत समस्त वस्तुओं द्वारा उसे सुशोभित कर पूजनोपरांत पूर्णपात्र समेत दान करना चाहिए । इस भाँति आठ बार अष्टमी विधान पृथक् पृथक् सुसम्पन्न करने में पहली बार मोदक द्वारा दूसरी फेणक (मठ्ठा) तीसरी घी के पूआ, चौथी, बटक (बाटी), पाँचवी श्वेत द्रव्य छठीं सोहाल, सातवीं अशोक और आठवीं फल पुष्प एव अखंड फेणिक द्वारा क्रमशः उसे सुसम्पन्न कर परिजनों समेत स्वस्थ चित्त होकर भोजन करे । उस उपवास व्रती को धीरे धीरे कथा कहते या सुनते हुए भोजन करते रहने पर

श्रुत्वाष्टमीबुधस्यापि माहात्म्यं भोजनं त्यजेत् । तावदेव न भोक्तव्यं कथा यावत्समाप्यते ।।४५
तथा भुक्त्वा बुधस्याग्रे आचम्य च पुनः पुनः । विप्राय वेदविदुषे तम् बुवन्प्रतिपादयेत् ।।४६
साक्षतं सहिरण्यं च जातरूपमयं शुभम् । अर्चितं विविधैः पुष्पैर्धूपदीपैः सुगन्धिभिः ।।४७
पीतवस्त्रैः समाच्छन्नं बुधं सोमात्मजाकृतिन् । माषकेण सुवर्णेन तदर्धार्धेन वा पुनः ।।४८
ॐ बुधाय नमः । ॐ सोमात्मजाय नमः । ॐ दुर्बुद्धिनाशनाय नमः । ॐ सुबुद्धिप्रदाय नमः । ॐ ताराजाताय नमः । ॐ सौम्यग्रहाय नमः । ॐ सर्वसौख्यप्रदाय नमः । एतेपूजामन्त्राः । अष्टमी तु यदा पूर्णा तदा राजर्षिसत्तम । ब्राह्मणान्भोजयेदष्टौ गां दद्याच्च सवत्सिकाम् ।।४९
वस्त्रालङ्करणैः सर्वैर्भूषणैर्विविधैरपि । सपत्नीकं समभ्यर्च्य कर्णमात्राङ्गुलीयकैः ।।
मन्त्रेणानेन कौन्तेय दद्यादेवं समाचरन् ।।५०
बुधोऽयं प्रतिगृह्णातु द्रव्यस्थोऽयं बुधः स्वयम् । दीयते बुधराजाय तुष्यतां च बुधो मम ।।५१
(इति दानमंत्रः)
बुधः सौम्यस्तारकेयो राजपुत्र इलापतिः । कुमारो द्विजराजस्य यः पुरूरवसः पिता ।।५२
(इति प्रतिग्रहणमंत्रः)
दुर्बुद्धिबाधजनितं नाशयित्वा च मे बुधः । सौख्यं च सौमनस्यं च करोतु शशिनन्दनः ।।५३
इत्युच्चार्य गृहीत्वा तु दद्यान्मन्त्रपुरःसरम् । सप्तजन्मनि राजेन्द्र जातो जातिस्मरो भवेत् ।।५४
धनधान्यसमायुक्तः पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनः । दीर्घायुर्विपुलान्भोगान्भुक्त्वा चैव महीतले ।।५५

कथा समाप्ति के साथ ही भोजन भी त्याग देना चाहिए । क्योंकि बताया गया है कि जब तक कथा होती रहे भोजन तभी तक करे और उसकी समाप्ति के साथ ही उसका त्याग भी । पश्चात् आचमन आदि द्वारा मुख शुद्धिपूर्वक किसी ब्राह्मण विद्वान् को बुध की वह अक्षत सुवर्ण प्रतिमा, जो सौन्दर्य पूर्ण विनिर्मित अनेक भाँति के पुष्प, धूप, दीप एवं सुगन्धि से अर्पित एवं पीताम्बर से आच्छन्न की गयी हो, और एक मासा, आधे, अथवा उसके अर्ध भाग (चौथाई) सुवर्ण से की हो, सादर समर्पित करे । पूजन के समय ओं बुधाय नमः, ओं सोमात्मजाय नमः, ओं दुर्बुद्धिनाशकाय नमः, ओं सुबुद्धिप्रदाय नमः, ओं ताराजाताय नमः, ओं सौम्यग्रहाय नमः, ओं सर्वसौख्यप्रदायनमः मंत्रों के उच्चारण करने चाहिए । राजर्षिसत्तम ! अष्टमी व्रत के समाप्त होने पर आठ ब्राह्मणों के भोजनोंपरांत सवत्सा गौ का दान वस्त्र, अलंकार, भूषणों, और अंगूठियों से सुविभूषित दम्पति की पूजाकर उन्हें सादर समर्पित करे । कौंतेय ! उस समय 'इस द्रव्य में स्वयं बुध देव स्थित होकर इसे स्वीकार करें, मैं राजाबुध के लिए यह अर्पित कर रहा हूँ, मेरे ऊपर वे प्रसन्न हों, कहते हुए दान करना चाहिए और प्रतिग्रहीता को 'सौम्य मूर्ति बुध तारा के पुत्र, राजपुत्र इला के पति, द्विजराज (चन्द्र) के कुमार एवं पुरूरवा के पिता है।३९-५१। कहकर ग्रहण करना चाहिए अनन्तर क्षमा प्रार्थना करे कि—बुध देव, शशिनन्द ! आप मेरी दुर्बुद्धि के अपहरण पूर्वक समस्त सौख्य प्रदान करते हुए मेरे चित्त को सदैव प्रसन्न रखें। राजेन्द्र ! इस प्रकार मंत्रोंच्चारण पूर्वक आदान प्रदान करने से सात जन्म तक जाति स्मरण और इस भूतल में दीर्घायु, एवं विशाल भोगों के उपभोग करने के उपरांत किसी पवित्र

ततः सुतीर्थे मरणं ध्यात्वा नारायणं विभुम् । मृतोऽसौ स्वर्गमाप्नोति पुरन्दरसमो नरः ।।५६
वसते यावदासृष्टेः पुनराभूतसम्प्लवम् । एवमेतन्मया ख्यातं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।।५७
एषैवं च मयाख्याता गुह्या पार्थ बुधाष्टमी । यां श्रुत्वा ब्रह्महा गोघ्नः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।५८
यच्चाष्टमीं बुधयुतां समवाप्य भक्त्या सम्पूजयेद्विधुसुतं कनपृष्ठसंस्थम् ।
पक्वान्नपानसहितैः सहिरण्यवस्त्रै पश्येदसौ यमपुरं न कदाचिदेव ।।५९
इति श्रीभविष्ये महपुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
बुधाष्टमीव्रतवर्णनं नाम चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५४

अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

जन्माष्टमीवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

जन्माष्टमीव्रतं ब्रूहि विस्तेरण ममाच्युते । कस्मिन्काले समुत्पन्नं किं पुण्यं को विधिः स्मृतः ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

हते कंसासुरे दुष्टे मथुरायां युधिष्ठिर । देवकी मां परिष्वज्य कृत्वोत्सङ्गे रुरोद ह ।।२
तत्रैव रङ्गवाढेन मञ्चारूढजनोत्सवे । मल्लयुद्धे पुरावृत्ते समेते कुकुराऽन्धके ।।३

तीर्थ में नारायण भगवान् के स्मरण करते हुए निधन प्राप्त होता है, अनन्तर स्वर्ग में पहुँच कर पुरंदर (इन्द्र) के समान महाप्रलय पर्यन्त समस्त सौख्य का उपभोग करता है । पार्थ ! इस प्रकार मैंने इस बुधाष्टमी व्रत को, जो सभी व्रतों में परमोत्तम स्वयं जिसे सुनकर ब्रह्म हत्या आदि समस्त पाप समूल नष्ट हो जाते हैं । जो बुध समेत इस अष्टमी में उपावस पूर्वक बुध की सुवर्ण प्रतिमा के पूजा करके पक्वान, हिरण्य, वस्त्र से उन्हें विभूषित करने वाला पुरुष यमराज से भयभीत कभी नहीं होता है ।५२-५९
श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
बुधाष्टमी व्रत वर्णन नामक चौवनवाँ अध्याय समाप्त ।५४।

अध्याय ५५

जन्माष्टमी का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—अच्युत ! जन्माष्टमी व्रत का माहात्म्य वर्णन करने की कृपा कीजिये, किस समय यह व्रत उत्पन्न हुआ और इसे सुसम्पन्न करने से कौन-सा पुण्य प्राप्त होता है, तथा विधान क्या है।१

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर मथुरा में दुष्ट कंसासुर के निधन होने पर देवकी मुझे अपने (गोद) में बैठा कर रोदन करने लगी । उस समय वहाँ मंचानों पर बैठे एवं इतर आगन्तुक दर्शकों का महान् समूह एकत्र था, जहाँ पहले हमलोगों के साथ राक्षसों का मल्ल युद्ध भी हो चुका था । अपने प्रेमी बन्धुओं एवं

**स्वजनैर्बन्धुभिः स्निग्धैः समं स्त्रीभिः समावृते । वसुदेवोऽपि तत्रैव वात्सल्यात्प्ररुरोद ह ॥४
समाकृष्य परिष्वज्य पुत्रपुत्रेत्युवाच ह । सगद्गदस्वरो दीनोबाष्पपर्याकुलेक्षणः ॥५
बलभद्रं च मां चैव परिष्वज्य मुदा पुनः । अद्य मे सफलं जन्म जीवितं यत्सुजीवितम् ॥६
यदुभाभ्यां सुपुत्राभ्यां समुद्भूतः समागमः । एवं वर्षेण दाम्पत्ये हृष्टं पुष्टं तथा ह्यभूत् ॥७
प्रणिपत्य जनाः सर्वे बभूवस्ते प्रहर्षिताः । एवं महोत्सवं दृष्ट्वा मामाह सकलो जनः ॥८**
प्रसादः क्रियतां नाथ लोकस्यास्य प्रसादतः । यस्मिन्दिने जगन्नाथ देवकी त्वामजीजनत् ॥९
तद्दिने देहि वैकुण्ठं कुर्मस्तेऽत्र नमोनमः । सम्यग्भक्तिप्रपन्नानां प्रसादं कुरु केशव ॥१०
एवमुक्ते जनौघेन वसुदेवोऽतिविस्मितः । विलोक्य बलभद्रं च मां च कृत्वा रुरोद ह ॥
एवमस्त्विति लोकानां कथयस्व यथा तथा ॥११
ततश्च पितुरादेशात्तथा जन्माष्टमीव्रतम् । मथुरायां जनौघाग्रे पार्थ सम्यक्प्रकाशितम् ॥१२
पौरजना जन्मदिनं वर्षेवर्षे ममोदितम् । पुनर्जन्माष्टमीं लोके कुर्वन्तु ब्राह्मणादयः ॥
क्षत्रिया वैश्यजातीयाः शूद्रा येन्येऽपि धार्मिकाः ॥१३
सिंहराशिगते सूर्ये गगने जलदाकुले । मासि भाद्रपदेऽष्टम्यां कृष्णपक्षेऽर्धरात्रके ॥
वृषराशिस्थिते चन्द्रे नक्षत्रे रोहिणीयुते ॥१४
वसुदेवेन देवक्यामहं जातो जनाः स्वयम् । एवमेतत्समाख्यातं लोके जन्माष्टमीमव्रतम् ॥१५

स्त्रियों के उस संकुल में वसुदेव भी वात्सल्य के नाते रोदन करने लगे । 'पुत्र-पुत्र कहते हुए पकड़ कर मुझे अपने क्रोड (गोद) में बैठाकर गद्गद वाणी द्वारा, आखों में आसूंभरे दीन की भाँति हर्षातिरेक के नाते बार बार मेरे और बलभद्र का आलिङ्गन करते हुए वे कहने लगे कि —आज मेरा जन्म सफल हुआ एवं मेरा जीवन सार्थक हुआ, क्योंकि मेरा अपने दोनों पुत्रों से आज सुखद मिलन हो रहा है । वे प्रसन्न होकर इतने हृष्ट पुष्ट हो गये जितना कोई पूर्ण वर्ष में होता है । वहाँ की उपस्थित जनता नम्रता पूर्ण अत्यन्त हर्षित हो रही थी, जो उस महोत्सव में आमन्त्रित की गयी थी । वह जन समुदाय मुझे देखकर कहने लगा कि नाथ ! इन जनों को अपनाकर आनन्दित करें तथा जगन्नाथ ! देवी देवकी ने जिस दिन आप को उत्पन्न किया है, उस दिन लोगों को बैकुण्ठ का आभास प्रदान करने की कृपा करें, हम लोग आपको बार-बार नमस्कार कर रहे हैं। केशव ! अपने प्रणत भक्तों को यही सदा प्रदान करें।२-१०। उस जन समुदाय के इस प्रकार कथम को सुनकर आश्चर्य चकित हो कर वसुदेव मुझे और बलभद्र को देखकर रोदन करने लगे। जिस किसी प्रकार मैंने 'तथास्तु' कहकर उन लोगों को आश्वासन दिया और पिता की आज्ञा से मथुरा में उस जन समुदाय को जन्माष्टमी व्रत का वर्णन करना आरम्भ किया। पार्थ ! उसके अनुसार समस्त पुरवासी प्रत्येक वर्ष मेरे जन्म दिन का महोत्सव करने लगे और लोक में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र इस जन्माष्टमी व्रत को भली भाँति सुसम्पन्न कर सके। इसलिए भी मैंने इसको पूर्ण विवेचन किया था । जनवृन्द ! सिंहराशि पर सूर्य के गमन करने पर भादों की कृष्णाष्टमी में आधी रात के समय वृष राशिस्थ चन्द्रमा और रोहिणी नक्षत्र के समागम के मेघाच्छन्न होने पर वसुदेव देवकी द्वारा मैंने जन्म ग्रहण किया है। राजन् ! इस प्रकार यह जन्माष्टमी व्रत लोक में

भगवत्पार्श्वतो राजन्बहुरूपं महोत्सवम् । मथुरायास्ततः पश्चाल्लोके ख्यातिं गमिष्यति ।।
शान्तिरस्तु सुखं चास्तु लोकाः सन्तु निरामयाः ।।१६

युधिष्ठिर उवाच

तत्कीदृशं व्रतं देव लोकैः सर्वैरनुष्ठितम् । जन्माष्टमीव्रतं नाम पवित्रं पुरुषोत्तम ।।१७
येन त्वं तुष्टिमायासि लोकानां प्रभुरव्ययः । एतन्मे भगवन्ब्रूहि प्रसादान्मधुसूदन ।।१८

श्रीकृष्ण उवाच

पार्थ तद्दिवसे प्राप्ते दन्तधावनपूर्वकम् । उपवासस्य नियमं गृह्णीयाद्भक्तिभावितः ।।१९
एकेनैवोपवासेन कृतेन कुरुनन्दन । सर्वजन्मकृतैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ।।२०
उपावृत्तस्य पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह । उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः ।।२१
ततः स्नात्वा च मध्याह्ने नद्यादौ विमले जले । देव्याः सुशोभनं कुर्याद्देवक्याः सूतिकागृहम् ।।२२
पद्मरागैः पत्रनेत्रैर्मण्डितं चर्चितं शुभैः । रम्यं तु वनमालाभी रक्षामणिविभूषितम् ।।२३
सर्वं गोकुलवत्कार्यं गोपीजनसमाकुलम् । घण्टामर्दलसङ्गीतमाङ्गल्यकलशान्वितम् ।।२४
यवार्धं स्वस्तिका कुडचैः शङ्खवादित्रसङ्कुलम् । बद्धासुरा लोहखड्गैः प्रियच्छागसमन्वितम् ।।२५
धान्ये विन्यस्य मुसलं रक्षितं रक्षपालकैः । षष्ठ्या देव्या च सम्पूर्णैर्नैवेद्यैर्विविधैः कृतैः ।।२६
एवमादि यथाशेषं कर्तव्यं सूतिकागृहम् । एतन्मध्ये प्रतिष्ठाप्या सा चाप्यष्टविधा स्मृता ।।२७

प्रसिद्ध हुआ पश्चात् अनेक रूपधारी यह महोत्सव मथुरा में भगवान् के पार्श्व से लोक में ख्याति प्राप्त करेगा, लोक में सुखशान्ति हो, सभी प्राणी आरोग्य रहे ।११-१६

युधिष्ठिर बोले—देव ! पुरुषोत्तम लोगों ने इस व्रत को किस विधान द्वारा सुसम्पन्न किया, जो जन्माष्टमी नाम से प्रख्यात एवं परम पवित्र है । भगवन्, मधुसूदन ! इसके सुसम्पन्न करने से अव्यय एवं प्रभु रूप आप अत्यन्त प्रसन्न होते हैं, अतः कृपा कर इसी की व्याख्या कीजिये ।१७-१८

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! उस दिन प्रातः काल भक्ति मग्न होकर दातून करने से आरम्भ कर उपवास के नियमों को ग्रहण करना चाहिए क्योंकि कुरुनन्दन ! एक ही उपवास करने से उस जन्म के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं । और उपवास का अभिप्राय भी यही होता है कि पाप निवृत्त एवं समस्त भोगों के त्याग पूर्वक सात्त्विक गुणों द्वारा (उतने) समय व्यतीत करना (उपवास कहलाता है) तदुपरांत मध्याह्न के समय किसी नदी आदि जलाशय में निर्मल जल में स्नान करके देवकी देवी के सूतिका गृह को पद्मराग मणि एवं पत्र नेत्र से भली भाँति विभूषित करते हुए रक्षामणि से भी सुसज्जित करे। वहाँ के सभी कार्य (व्यवहार) गोकुल की भाँति ही होने चाहिए। अनेक भाँति की सुसज्जित गोपियों से अलंकृत घण्टा, मृदङ्ग आदि के वाद्य, माङ्गलिक कलश, जवार्ध, स्वस्तिका, शंख आदि वाद्यों की ध्वनि, बँधा हुआ असुर, लोहे खड्ग, और प्रिय छाग (बकरी) से सुशोभित करके फैलाये गये धान्य पर रखकर रक्षपालों द्वारा सुरक्षित मुशल तथा अनेक भाँति के सुमधुर नैवेद्य आदि सभी शेष पदार्थों द्वारा उस सूतिका गृह को विभूषित करना चाहिए। उसी के मध्य में सुवर्ण, चाँदी, ताँबें, पीतल मृत्तिका,

काञ्चनी राजती ताम्री पैत्तली मृण्मयी तथा। दार्वी मणिमयी चैव कर्णिका लिखिताथ वा ॥२८
सर्वलक्षणसम्पन्ना पर्यंकेचार्द्धसुप्तिका। प्रतप्तकाञ्चनाभासा मया सह तपस्विनी ॥२९
प्रस्तुता च प्रसूता च तत्क्षणाच्च प्रहर्षिता। मां चापि बालकं सुप्तं पर्यंके स्तनपायिनम् ॥३०
श्रीवत्सवक्षसं पूर्णं नीलोत्पलदलच्छविम्। यशोदा चापि तत्रैव प्रसूता वरकन्यकाम् ॥३१
तत्र देवगृहं नागा यक्षविद्याधरा नराः। प्रणताः पुष्पमालाग्रव्यग्रहस्ताः सुरासुराः ॥३२
सञ्चरन्त इवाकाशे प्राकारैरुदितोदितैः। वसुदेवोऽपि तत्रैव खड्गचर्मधरः स्थितः ॥३३
कश्यपो वसुदेवोऽयमदितिश्चापि देवकी। बलभद्रः शेषनागो यशोदादित्यजायत ॥३४
नन्दः प्रजापतिर्दक्षो गर्गश्चापि चतुर्मुखः। एषोऽवतारो राजेन्द्र कंसोऽयं कालनेमजः ॥३५
तत्र कंसनियुक्ता ये दानवा विविधायुधाः। ते च प्राहारिकाः सर्वे सुप्ता निद्रादिमोहिताः ॥३६
गोधेकुकुञ्जराश्चास्य दानवाः शस्त्रपाणयः। नृत्यंत्यप्सरसो हृष्टा गन्धर्वा गीततत्पराः ॥३७
लेखनीयश्च तत्रैव कालियो यमुनाह्रदे। रम्यमेदं विधिं कृत्वा देवकीं नवसूतिकाम् ॥३८
तां पार्थ[1] पूजयेद्भक्त्या गन्धपुष्पाक्षतैः फलैः। कूष्माण्डैर्नालिकेरैश्च खर्जूरैर्दाडिमीफलैः ॥३९
बीजपूरैः पूगफलैर्ल्लकुचैस्त्रपुसैस्तथा। कालदेशोद्भवैर्मृष्टैः पुष्पैश्चापि युधिष्ठिर ॥४०
ध्यात्वावतारं प्रागुक्तं मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥४१

काष्ठ, एवं मणि की सुन्दर देवकी जी की प्रतिमा अथवा चित्र आदि जो समस्त लक्षणों से अंकित हो। सुसज्जित शय्या के आधे भाग पर शयन किये वह संतप्त सुवर्ण की प्रतिमा आसन्नप्रसवा मेरे प्रसन्नार्थ प्रस्तुत दिखायी देती हो, और प्रसन्न होने पर उसी समय हर्ष निमग्न उस प्रसूता के साथ मुझे भी बालक रूप में वहाँ शयन कराये, जो शयन किये दुग्ध पान करते हो, श्रीवत्स से विभूषित वक्षःस्थल और नीलकमल दल की माधुरी छवि से सम्पन्न हों, और यशोदा भी वहाँ उत्तम कन्या के प्रसव समेत स्थित हों। भगवान् के उस सूतिका गृह में नाग, यक्ष, विद्याधर एवं मनुष्य, नम्रता पूर्ण पुष्प मालाओं से सुशोभित इस भाँति दिखायी दें, जो दर्शनार्थ आकाश में जैसे व्यग्र होकर इधर उधर संचरण कर रहे हों। खड्ग और चर्म (ढाल) लिए वसुदेव की भी प्रतिमा वहाँ रहनी चाहिए। कश्यप जी वसुदेव अदिति देवकी, शेष नाग बलभद्र, दिति यशोदा, प्रजापति दक्ष नन्द, और चतुर्मुख ब्रह्मा गर्ग के रूप में अवतारित थे। राजेन्द्र ! उसी प्रकार यह कंस काल नेमि का पुत्र था। मेरे प्रकट होने के समय कंस द्वारा नियुक्त किये गये सूतिका गृह द्वार के सभी दानवगण, जो अनेक भाँति के अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित थे, तथा इतर गण, जो वहाँ सावधानी से पहरा दे रहाथा, निद्रमग्न होकर भूमि शायी हो गये। नृत्य करती हुए अप्सराएं, हर्ष मग्न एवं गान करते हुए गन्धर्व एवं यमुना कुण्ड में निवास करते हुए कालिया नाग की प्रतिमा बनानी चाहिए। पार्थ ! इस प्रकार देवीकी भी उस सूतिका गृह का निर्माण करने भक्ति पूर्वक गन्ध, पुष्प, अक्षत, फल, कूष्माण्ड, नारियल, खजूर, अनार, विजौरानीबू, सुपारी बडहर, पायस आदि ऋतु फलों एवं पुष्पों द्वारा उनकी अर्चना करते हुए उनके ध्यान एवं मंत्रोच्चारण पूर्वक पूजन करना चाहिए। १९-४१। युधिष्ठिर ! उस मनोरम रूप वाली एवं सुबदन देवमाता देवकी की सर्वदा जय हो, जो मुझ बालक को साथ लिए सुसज्जित

---

१. पाद्यार्घ्यैः।

गायद्भिः किन्नराद्यैः सततपरिवृता वेणुवीणानिनादैर्भृङ्गारादर्शकुम्भप्रमरकृतकरैः सेव्यमाना मुनीन्द्रैः ।
पर्यङ्के स्वास्तृते या मुदिततरमनाः पुत्रिणी सम्यगास्ते सा देवी देवमाता जयति सुवदना देवकी कान्तरूपा ॥४२
पादावभ्यंजयन्ती श्रीर्देवक्याश्चरणान्तिके । निषण्णा पङ्कजे पूज्या नमो देव्यै च मंत्रतः ॥४३
ॐ दैवक्यै नमः । ॐ वसुदेवाय नमः । ॐ बलभद्राय नमः । ॐ श्रीकृष्णाय नमः । ॐ सुभद्रायै नमः ।
ॐ नन्दाय नमः । ॐ यशोदायै नमः ।
एवमादीनि नामानि समुच्चार्य पृथक्पृथक् । पूजयेयुर्द्विजाः सर्वे शूद्राणाममन्त्रकम् ॥४४
विध्यन्तरमपीच्छन्ति केचिदत्र द्विजोत्तमाः । चन्द्रोदये शशाङ्काय अर्घ्यं दद्याद्धरिं स्मरेत् ॥४५
अनघं वामनं शौरिं वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम् । वासुदेवं हृषीकेशं माधवं मधुसूदनम् ॥४६
वाराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिहं ब्राह्मणप्रियम् । दामोदरं पद्मनाभं केशवं गरुडध्वजम् ॥४७
गोविन्दमच्युतं कृष्णमनन्तमपराजितम् । अधोक्षजं जगद्बीजं सर्गस्थित्यन्तकारणम् ॥४८
अनादिनिधनं विष्णुं त्रैलोक्येशं त्रिविक्रमम् । नारायणं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥४९
पीताम्बरधरं नित्यं वनमालाविभूषितम् । श्रीवत्साङ्कं जगत्सेतुं श्रीधरं श्रीपतिं हरिम् ॥५०
योगेश्वराय योगेशभवाय योगपतये गोविन्दाय नमोनमः ।
(इति स्नान मंत्रः)
यज्ञेश्वराय यज्ञसम्भवाय यज्ञपतये गोविन्दाय नमोनमः ॥५१
इत्यनुलेपनार्घ्याद्यर्चनधूपमन्त्रः । विश्वाय विश्वेश्वराय विश्वसम्भवाय विश्वपतये गोविन्दाय नमोनमः ॥५२
(इति नैवेद्यमन्त्रः)

शय्या पर अत्यन्त मुदित होकर शयन किये हो, वेणु वीणा द्वारा गान करते हुए किन्नरसाठा, एवं अगस्त्य आदि महर्षियों से आवृत हैं। देवकी देवी के चरण के समीप उनके चरण की सेवा करती एवं कमल पर सुशोभित की भी पूजा करे। उस समय 'नमो देव्यै' मंत्र का उच्चारण करना चाहिए, तथा 'ओं देवक्यै नमः' ओं वासुदेवाय नमः, 'ओं बलभद्राय नमः', 'ओं श्रीकृष्णाय नमः', 'ओं सुभद्रायै नमः', 'ओं नन्दाय नमः', 'ओं यशोदायै नमः', आदि नामों के उच्चारण पूर्वक पृथक् पृथक् पूजा करना ब्राह्मण, क्षत्रिय, एवं वैश्यों) को बताया गया है। उसी प्रकार स्त्री और शूद्रों को विना मंत्र के। कुछ विद्वानों के विधान में भी मतभेद हैं—चन्द्रोदय होने पर भगवान् के स्मरण पूर्वक चन्द्रमा को अर्घ्य प्रदान करना चाहिए। अनघ, वामन, शौरि, वैकुण्ठ, पुरुषोत्तम, वासुदेव, हृषीकेश, माधव, मधुसूदन, वाराह, पुण्डरीकाक्ष, नृसिह, ब्राह्मणप्रिय, दामोदर, पद्मनाभ, केशव, गरुडध्वज, गोविन्द अच्युत, कृष्ण, अनन्त अपराजित, अधोक्षज, जगत् के बीच एवं उसी की सृष्टि, स्थिति, विनाशक, तथा आदि अंत से शून्य विष्णु त्रैलोक्येश, त्रिविक्रम, नारायण, चतुर्बाहु, शंख, चक्रगदाधारी, पीताम्बरधारी, नित्यवनमाला से विभूषित एवं श्रीवत्सांक, जगत्सेतु, श्रीधर, श्रीपति, हरि, योगेश्वर, योगेश, भव, योगपति तथा गोविन्द को नमस्कार है—इसके उच्चारण पूर्वक स्नान कराना चाहिए।४२-५०। यज्ञेश्वर, यज्ञद्वारा उत्पन्न, यज्ञपति एवं गोविन्द को बार-बार नमस्कार है, इसके उच्चारण द्वारा लेपन, अर्घ्य अर्चन एवं धूप आदि प्रदान करना चाहिए। विश्वरूप, विश्वेश्वर, विश्वसृष्टा, विश्वपति तथा गोविन्द को नमस्कार है, इसके उच्चारण से नैवेद्य अर्पित करना

धर्मेश्वराय धर्मपतये धर्मसम्भवाय गोविन्दाय नमोनमः ।।५३

(इति दीपासनमंत्रः)

क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिनेत्रसमुद्भव । गृहाणार्घ्यं शशाङ्केन्दो रोहिण्या सहितो मम ।।५४
स्थण्डिले स्थापयेद्देवं सचन्द्रां रोहिणीं तथा । देवकीं वसुदेवं च यशोदां नन्दमेव च ।।५५
बलदेवं तथा पूज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते । अर्द्धरात्रे वसोर्द्धारां पातयेद्गुडसर्पिषा ।।५६
ततो वर्द्धापनं षष्ठीनामादिकरणं मम । कर्तव्यं तत्क्षणाद्रात्रौ प्रभाते नवमीदिने ।।५७
यथा मम तथा कार्यो भगवत्या महोत्सवः । ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ।।५८
हिरण्यं काञ्चनं गावो वासांसि कुसुमानि च । यद्यदिष्टतमं तत्तत्कृष्णो मे प्रीयतामिति ।।५९
यमेवं देवकी देवी वसुदेवादजीजनत् । भौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ।।६०
सुजन्मवासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च । शान्तिरस्तु शिवं चास्तु इत्युक्त्वा तु विसर्जयेत् ।।६१
एवं यः कुरुते देव्या देवक्याः सुमहोत्सवम् । वर्षेवर्षे भगवतो मद्भक्तो धर्मनन्दन ।।६२
नरो वा यदि वा नारी यथोक्तफलमाप्नुयात् ।।६३
पुत्रसन्तानमारोग्यं धनधान्यादिसद्गृहम् । शालीक्षुयवसम्पूर्णमण्डलं सुमनोहरम् ।।६४
तस्मिन्राष्ट्रे प्रभुर्भुंक्ते दीर्घायुर्मनसेप्सितान् । परचक्रभयं नास्ति तस्मिन्राज्येऽपि पाण्डव ।।६५
पर्जन्यः कामवर्षी स्यादीतिभ्यो न भयं भवेत् । यस्मिन्गृहे पाण्डुपुत्र क्रियते देवकीव्रतम् ।।६६
न तत्र मृतनिष्क्रांतिर्न गर्भपतनं तथा । न च व्याधिभयं तत्र भवेदिति गतिर्मम ।।६७

बताया गया है । धर्मेश्वर, धर्मपति, धर्मात्मा धर्मसम्भव उस गोविन्द को नमस्कार है, के उच्चारण पूर्वक दीप और आसन तथा उसी भाँति क्षीर सागर से उत्पन्न, एवं अत्रि महर्षि के नेत्र से प्रकट होने वाले चन्द्र देव ! रोहिणी समेत मेरे इस अर्घ्य को ग्रहण करें । पश्चात् वेदी के (ऊपर देव (कृष्ण) चन्द्रमा समेत, रोहिणी, देवकी सुदेव, यशोदा नन्द और बलदेव की अर्चना करने से समस्त पापों से मुक्ति प्राप्त होती है । आधीरात के समय गुड समेत घी का वसोद्धार प्रदान कर वर्द्धापन और षष्ठी में नामकरण आदि संस्कार रात्रि के उसी समय करना चाहिए । प्रातः काल नवमी के दिन मेरे समान ही भगवती का महोत्सव करना बताया गया है । ब्राह्मण भोजनोपरांत उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करते समय—सुवर्ण, गौ, वस्त्र, एवं कुसुम आदि, भगवान् की इष्ट वस्तुएँ उन्हें सादर समर्पित कर रहा हूँ, भगवान् कृष्ण मेरे ऊपर प्रसन्न हों । देवकी देवी के वसुदेव द्वारा भगवान् को मौन और ब्रह्मा के रक्षार्थ उत्पन्न किया है, अतः उस ब्रंह्मात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ । अनन्तर वासुदेव, एवं ब्राह्मण के हितार्थ शोभन जन्म ग्रहण करने वाले (भगवान्) शान्ति एवं कल्याण प्रदान करें—कहकर विसर्जन करे। धर्मनन्दन ! इस प्रकार प्रतिवर्ष मुझ समेत देवकी देवी के महोत्सव करने वाले पुरुष अथवा स्त्री को उक्त फल प्राप्त होता है—५१-६३। पुत्र, आरोग्य, धन धान्य समेत उत्तम ग्रह, शाली (साठी), ऊख, और जवा आदि से सुसम्पन्न उस राष्ट्र में वे दीर्घायु होकर इच्छित भोगों के उपभोग करते हैं । पाण्डव ! उस राज्य में उसे कभी भी शत्रुभय नहीं होता है । मेघ सदैव इच्छानुसार जलप्रदान करते रहते हैं, ईति का भय कभी नहीं होता है। पाण्डुपुत्र ! जिस गृह में देवकी का व्रत सविधान सुसम्पन्न किया जाता है, उस घर में मरण-प्रसव अथवा गर्भपतन कभी नहीं होता है और उसी भाँति व्याधि भी नहीं होता है, ऐसा

न वैद्यजनसंयोगो न चापि कलहो गृहे । सम्पर्केणापि यः कश्चित्कुर्याज्जन्माष्टमीव्रतम् ।।
विष्णुलोकमवाप्नोति सोऽपि पार्थ न संशयः ।।६८

जन्माष्टमी जनमनोनयनाभिरामा पापापहा सपदिनन्दितनन्दगोपा ।
यो देवकीं सदयितां यजतीह तस्यां पुत्रानवाप्य समुपैति पदं स विष्णोः ।।६९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
जन्माष्टमीव्रतवर्णनं नाम पञ्चपंचाशत्तमोऽध्यायः ।५५

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दूर्वाष्टमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

शुक्ले भाद्रपदस्यैव पक्षेऽष्टम्यां युधिष्ठिर । दूर्वाष्टमीव्रतं पुण्यं यः कुर्याच्छ्रद्धयान्वितः ।।१
न तस्य क्षयमाप्नोति सन्तानं सप्तपौरुषम् । नन्दते वर्द्धते नित्यं यथापूर्वं तथा कुलम् ।।२

युधिष्ठिर उवाच

कुत एषा समुत्पन्ना दूर्वा कस्माच्चिरायुषा । कस्माच्च सा पवित्रा च लोकनाथ ब्रवीहि मे ।।३

मेरा कहना है । न कभी वैद्यों की आवश्यकता होती है, और कलह का काम नहीं रहता है । पार्थ! किसी के सम्पर्क द्वारा भी इस जन्माष्टमी व्रत को सुसम्पन्न करने वाले को विष्णु लोक की प्राप्ति होती है, इसमें संदेह नहीं । इस प्रकार जनमनरंजन, नयनाभिराम एवं पापहारी इस जन्माष्टमी व्रत को सुसम्पन्न करते हुए प्रसन्नता पूर्ण नंद गोपियों समेत देवी देवकी की अर्चना करने पर उसे पुत्र प्राप्ति विष्णु **पद की** प्राप्ति होती है ।६४-६९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर संवाद में
जन्माष्टमी व्रतवर्णन नामक पचपनवाँ अध्याय समाप्त ।५५।

अध्याय ५६

दूर्वाष्टमीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर ! भाद्र शुक्लाष्टमी के दिन श्रद्धालु होकर दूर्वाष्टमी व्रत के विधान, जो अत्यन्त पुण्य रूप हैं, सविधि सुसम्पन्न करने वाले पुरूष की सात पीढ़ियों में संतान एवं पौरूष का विच्छेद नहीं होता है, पूर्वक की भाँति सदैव प्रसन्नता पूर्ण उनकी वृद्धि होती रहती है ।१-२

युधिष्ठिर ने कहा—लोकनाथ ! इस दूर्वाष्टमी का जन्म, किस भाँति और किसके द्वारा हुआ है, तथा यह महान् पवित्र क्यों है । मुझे बताने की कृपा कीजिये ।३

श्रीकृष्ण उवाच

क्षीरोदसागरे पूर्वं मथ्यमानेऽमृतार्थिना । विष्णुना बाहुजंघाभ्यां यद्धृतो मन्दरो गिरिः ॥४
भ्रमितो वै स वेगेन रोमाण्युद्धर्षितानि वै । तान्येतानि जलोर्मीभिरुत्क्षिप्तानि तदर्णवात् ॥५
अजायत शुभा दूर्वा रम्या हरितशाद्वला । एवमेषा समुत्पन्ना दूर्वा विधुतनूरुहा ॥६
तस्याश्चोपरि विन्यस्तं मथितामृतमुत्तमम् । देवदानवगन्धर्वैर्यक्षविद्याधरैस्तथा ॥७
तत्राप्यमृतकुम्भस्य पेतुर्निष्यन्दबिन्दवः । तैरियं स्पृष्टमात्राभूद्दूर्वा रम्याऽजराऽमरा ॥८
वन्द्या पवित्रा देवैस्तु वन्दिताभ्यर्चिता पुरा । अष्टम्यां फलपुष्पैस्तु खर्जूरैर्नालिकेरकैः ॥९
द्राक्षाक्षोटकपित्थैश्च बर्बरैर्लकुचैस्तथा । नारिंगैर्जंबुकैराम्रैर्बीजपूरैश्च दाडिमैः ॥१०
दध्यक्षतैः सुपुष्पैश्च धूपनैवेद्यदीपकैः । मन्त्रेणानेन राजेन्द्र शृणुष्वावहितेन च ॥११
त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि वन्दिता च सुरासुरैः । सौभाग्यं सन्ततिं कृत्वा सर्वकार्यकरी भव ॥१२
यथा शाखाप्रशाखाभिर्विस्तृतासि महीतले । तथा ममापि सन्तानं देहि त्वमजरामरे ॥१३
एवमेषा पुरा पार्थ पूजिता त्रिदशोत्तमैः । तेषां पत्नीवधूभिश्च भगिनीभिस्तथैव च ॥१४
पूजिताभ्यर्हिता वाचा गौर्या राजञ्छ्रिया तथा । मर्त्यलोके वेदवत्या दमयन्त्यापि सीतया ॥१५
सुकेश्या च घृताच्या च रम्भया च सुकेशया । सहन्या कामकन्दन्या मेनकोर्वशिकादिभिः ॥१६
स्त्रीभिरेवार्चिता दूर्वा सौभाग्यसुखदायिनी । स्नाताभिः शुचिवस्त्रभिः सखीभिः ससुहृज्जनैः ॥१७
दत्त्वा दानानि विप्रेभ्यः फलं दत्त्वार्चयेत्प्रभोः । तिलपिष्टकगोधूमसप्तधान्यानि पाण्डव ॥१८

श्रीकृष्ण बोले—प्राचीन काल में क्षीर सागर के मथन करने के लिए भगवान् विष्णु ने मंदराचल को अपनी जंघाओं पर धारण किया था। वेग से उसके भ्रमण करने पर घर्षित होने (घिसने) पर उनके लोम समुद्र की तरङ्गों द्वारा ऊपर आकर हरी हरी एवं शुभ दूर्वा का रूप धारण किया। इसी प्रकार इस चन्द्रवदना दूर्वा के जन्म ग्रहण करने पर उसी के ऊपर रखकर उसे भक्षने से अमृत का प्रादुर्भाव हुआ। देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष तथा विधाधरो द्वारा ले जाते समय उस कलश से अमृत के विन्दु गिर पड़े थे, उसके स्पर्श होने के नाते यह दूर्वा अजर अमर एवं देवों द्वारा वन्दित हुई है। इसलिए उस अष्टमी के दिन फल, पुष्प, खजूर, नारियल, द्राक्षा, अखरोट, कैथ, बर्बर, बड़हर, नारंगी, जामुन, आम, बिजौरा नींबू, अनार, दही, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य द्वारा उसकी अर्चना करनी चाहिए। राजेन्द्र, उसका विधान मैं बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो! दूर्वे! तुम्हारा जन्म अमृत द्वारा हुआ है, सुर एवं असुरों ने तुम्हारी अर्चना की है, अतः सौभाग्य तथा संतान के प्रदान पूर्वक मेरे समस्त कार्यों को सफल करो। हे अजर अमर रहने वाली दूर्वे! इस पृथ्वी तल पर जिस प्रकार शाखाओं एवं शाखाओं द्वारा अविच्छिन्न विस्तृत हुई हो, उसी भाँति एवं उनकी पत्नी, पुत्रवधू, भगिनी, तथा सरस्वती, गौरी लक्ष्मी और मर्त्यलोक में वेदवती, दमयन्ती, सीता, सुकेशी, घृताची, रम्भा और सुकेश, सहन्या, कामकन्दनी, मेनका, तथा उर्वशी आदि स्त्रियों ने इस सौभाग्य एवं सुख दायिनी दूर्वा की अर्चना की है। स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण पूर्वक सखियों एवं सहृदय जनों समेत ब्राह्मणों को दान देने के उपरांत भगवान् की अर्चना करनी चाहिए। अनन्तर तिल चूर्ण, गेहूँ, और सप्त धान्य के भक्षण सुहृद्, सम्बन्धी, एवं स्वजन के साथ करे।४-१८।

भक्षयित्वा सुहृन्मित्रसम्बधिस्वजने तथा । या नार्यो विचरिष्यन्ति व्रतमेतत्पुरातनम् ।।१९
दूर्वाष्टमीति विख्यातं पुण्यं सन्तानकारकम् । ताः सर्वाः सुखसौभाग्यपुत्रपौत्रादिभिस्तथा ।।२०
मर्त्ये लोके चिरं स्थित्वा ततःस्वर्गं गताः पुनः । देवैरानन्दितास्तत्र भर्तृभिः सह बान्धवैः ।।२१
वसन्ति रममाणस्ता यावदाभूतसंप्लवम् ।।२२

मेघावृतेऽम्बरतले हरिते वनान्ते या साष्टमी शुभफला सफला नभस्ये ।
दूर्वाफलाक्षततिलैः प्रतिपूज्य योषिद्दूर्वेव वृद्धिमुपयाति सुतैः सुहृद्भिः ।।२३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
दूर्वाष्टमीव्रतवर्णनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५६

अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कृष्णाष्टमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

कृष्णाष्टमीव्रतं पार्थ शृणु पापभयापहम् । धर्मसंजननं लोके रुद्रप्रीतिकरं परम् ।।१
मासि मार्गशिरे प्राप्ते दन्तधावनपूर्वकम् । उपवासस्य नियमं कुर्यान्नक्तस्य वा पुनः ।।२
अशक्तशक्तभेदेन गृहान्निष्क्रम्य वाह्यतः । कृष्णाष्टम्यां वर्षमेकं गुरुं पृष्ट्वा विचक्षणः ।।३
ब्रह्मचारी जितक्रोधः शिवार्चनजपे रतः । ततोऽपराह्णसमये स्नात्वा नद्यां विशुद्धधीः ।।४

इस प्रकार पुण्य तथा संतानकारक इस दूर्वाष्टमी व्रत को सुसम्पन्न करने वाली स्त्रियाँ सुख, सौभाग्य, पुत्र पौत्र आदि समेत इस भूमण्डल में चिरकाल तक समस्त भोगों के उपभोग करने के अनन्तर अन्त में स्वर्ग लोक प्राप्त करती हैं । वहाँ पहुँच कर अपने पतियों आदि के साथ देवों से सुसेवित रहकर महाप्रलय के समय तक रमण करती है । इस प्रकार भाद्र शुक्लाष्टमी के दिन मेघाच्छन्न आकाश के समय हरे भरे उपवनों में दूर्वा, अक्षत तथा तिल द्वारा इस दूर्वाष्टमी के व्रत को सुसम्पन्न करने पर वह स्त्री सुहृत बन्धुओं समेत दूर्वा के समान ही वृद्धि प्राप्त करती है ।१९-२३

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्वाद में
दूर्वाष्टमी व्रत वर्णन नामक छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ।५६।

अध्याय ५७

कृष्णाष्टमी का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! पाप नाशक, धर्मजनन एवं रुद्र दीप्तिकारक कृष्णाष्टमी व्रत मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! मार्गशीर्ष मास की कृष्णाष्टमी के दिन दंतधावन पूर्वक उपवास के नियम ग्रहण कर नक्त व्रत समेत उसे सुसम्पन्न करे। अशक्त होने पर गृह से बाहर निकल कर पूछने पर गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करते हुए एक वर्ष तक ब्रह्मचारी, क्रोधहीन होकर शिवार्चन एवं जप में तन्मय रहे।१-३।

शिवलिङ्गं समभ्यर्च्य सुमनोभिः सुगन्धिभिः । गुग्गुलं च शुभं दग्ध्वा दद्यान्नैवेद्यमुत्तमम् ॥५
ततो देवस्य पुरतो होमं कुर्यात्तिलैः गुरुः । मार्गशीर्षे शुभे मासि शङ्करायेति पूजयेत् ॥६
गोमूत्रप्राशनं कृत्वा स्वप्याद्भूमौ ततो निशि । अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलमाप्नोति मानवः ॥७
एवं पुष्येऽपि सम्पूज्य शम्भुं नाम महेश्वरम् । कृष्णाष्टम्यां घृतं प्राश्य वाजपेयफलं भजेत् ॥८
मावे माहेश्वरं नाम कृष्णाष्टम्यां प्रपूजयेत् । निशि पीत्वा गवां क्षीरं गोमेधाष्टकमाप्नुयात् ॥९
फाल्गुने च महादेवं सम्पूज्य प्राशयेत्तिलान् । राजसूयस्य यज्ञस्य फलमष्टगुणं भजेत् ॥१०
चैत्रे च स्थाणुनामानं कृष्णाष्टम्यां शिवं यजेत् । यवाहारोऽश्वमेधस्य यज्ञस्य फलमाप्नुयात् ॥११
वैशाखे शिवनामानमिष्ट्वा रात्रौ कुशोदकम् । पीत्वा पुरुषमेधस्य फलं दशगुणं भजेत् ॥१२
ज्येष्ठे पशुपतिं पूज्य गवां शृङ्गोदकं पिबेत् । गवां लक्षप्रदानस्य नरः फलमवाप्नुयात् ॥१३
आषाढे चोग्रनामानमिष्ट्वा सम्प्राश्य गोमयम् । वर्षाणां नियुतं साग्रं रुद्रलोके महीयते ॥१४
श्रावणे शर्वनामानमिष्ट्वार्कं निशि भक्षयेत् । बहुस्वर्णस्य यज्ञस्य नरः फलमवाप्नुयात् ॥१५
मासि भाद्रपदेऽष्टम्यां त्र्यम्बकं नाम पूजयेत । बिल्वपत्रं निशि प्राश्य अन्नदीक्षाफलं भजेत् ॥१६
भवनामाश्विने पूज्यः प्राशयेत्तण्डुलोदकम् । पौण्डरीकस्य यज्ञस्य फलं शतगुणं भजेत् ॥१७
कार्तिके रुद्रनामानं सम्पूज्य प्राशयेद्दधि । अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥१८
अब्दान्ते भोजयेद्विप्राञ्छिवभक्तिपरायणान् । पायसं मधु संयुक्तं घृतेन समभिप्लुतम् ॥

पश्चात् अपराह्ण के समय नदी के विशुद्ध जल में स्नान करके शोभन पुष्प एवं सुगंध द्वारा शिवलिंङ्ग की सप्रेम अर्चना करनी चाहिए। गुग्गुल की धूप, और मधुर नैवेद्य सादर अर्पित करने के उपरांत उनके सम्मुख तिल द्वारा गुरु से हवन सुसम्पन्न कराये। मार्गशीर्ष मास में 'शंकर, की अर्चना, गोमूत्र के प्राशन, और रात्रि में भूमि शयन करने पर मनुष्य को अतिरात्र यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार पौष मास में कृष्णाष्टमी में महेश्वर के इस शम्भु नामोच्चारण द्वारा पूजन, एवं घृत के प्राशन करने पर वाजपेय यज्ञ के फल प्राप्त हैं। माघ की कृष्णाष्टमी के दिन 'महेश्वर' नामोच्चारण पूर्वक पूजन, और रात्रि में गोक्षीर के प्राशन करने से आठ यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं। फाल्गुन में 'महादेव की अर्चना तथा तिल के प्राशन करने से राजसूय यज्ञ का आठ गुना फल प्राप्त होता है।४-१०। चैत्रमास में कृष्णाष्टमी के दिन 'स्थाणु' यज्ञ का फल प्राप्त होता है। वैशाख मास में 'शिव' नामक उच्चारण एवं पूजन करके रात्रि में कुशोदक के प्राशन करने से नरमेध यज्ञ के दश गुने फल प्राप्त होते हैं। ज्येष्ठ मास में 'पशुपति' नाम शिव की पूजा एवं गोश्रृंगोदक के प्राशन करने से मनुष्य को लक्ष गोदान के फल प्राप्त होते हैं। आषाढ़ मास में 'उग्र' नामक शिव की आराधना तथा गोमय के प्राशन करने से दशसहस्र वर्ष तक रुद्र लोक में सम्मानित होता है। श्रावण में 'शर्व' नामक (शिव) की अर्चना करके रात्रि में मंदार के प्राशन करने से मनुष्य को बहुसुवर्ण वाले यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं। भाद्रपद मास की अष्टमी के दिन 'त्र्यम्बक' नामक शिव की आराधना और रात्रि में बिल्वपत्र के प्राशन करने से अन्न दीक्षा के फल प्राप्त होते हैं। आश्विन में 'भव' नामक शिव की पूजा तथा तण्डुलोदक के प्राशन करने से पुण्डरीक यज्ञ के सौ गुने फल प्राप्त होते हैं।११-१७। कार्तिक मास में 'रुद्र' नामक शिव की अर्चना और दधि के प्राशन करने से मनुष्य को अग्निष्टोम यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं। इस प्रकार व्रत के समाप्त होने पर वर्ष के अन्त में शिव भक्त ब्राह्मणों को मधु एवं घी परिपूर्ण पायस

शक्त्या हिरण्यवासांसि भक्त्या तेभ्यो निवेदयेत् ॥१९
सतिलाः कृष्णकलशा भक्ष्यभोज्येन संयुताः । द्वादशात्र प्रदातव्याश्छत्रोपानद्युगान्विताः ॥
निवेदयीत रुद्राणां गां च कृष्णां पयस्विनीम् ॥२०
वर्षमेकं चरेदेवं नैरन्तर्य्येण यो नरः । कृष्णाष्टमीव्रतं भक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु ॥२१
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वैश्वर्यसमन्वितः । मोदते भूपवन्नित्यं मर्त्यलोके शतं समाः ॥२२
अनेन विधिना देवाः सर्वे देवत्वमागताः । देवी देवीत्वमापन्ना गुहः स्कन्दत्वमागतः ॥२३
ब्रह्मा ब्रह्मत्वमापन्नो ह्यहं विष्णुत्वमागतः । इन्द्रश्च देवराजत्वं गाणपत्यं गणो गतः ॥२४
नारी वा पुरुषो वापि कृत्वा[1] कृष्णाष्टमीव्रतम् । अखण्डितं महाराज पुण्यं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥२५
सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानैः सर्वकामिकैः । रुद्रकन्यासमाकीर्णैर्हंससारससंयुतैः ॥२६
नृत्यवादित्रसंयुक्तैरुत्कृष्टध्वनिनादितैः । दोधूयमानश्चमरैः स्तूयमानः सुरासुरैः ॥२७
त्रिनेत्रः शूलपाणिश्च शिवैश्वर्यसमन्वितः । आस्ते शिवपुरे तावद्यावत्कल्पेषु चाष्टकम् ॥२८
इत्येतत्ते समाख्यातं पार्थ कृष्णाष्टमीव्रतम् । यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो[2] मुच्यते नात्र संशयः ॥२९

कृष्णाष्टमीव्रतमिदं शिवभावितात्मा सत्याशनैरुदितनामयुतैरुपोष्य ।
कृष्णान्ददाति कलशान्सतिलान्नयुक्तान्योसौ प्रयाति पदमुत्तममिन्दुमौलेः ॥३०

इति श्रीभविष्येमहापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कृष्णाष्टमीव्रतवर्णनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५७

से संतृप्त कर यथाशक्ति सुवर्ण, वस्त्र, तिल समेत बारह कृष्ण कलश, अनेक भाँति के भक्ष्य पदार्थ, छत्र, उपानह पयस्विनी कृष्णा गौ सादर समर्पित करना चाहिए । इस प्रकार एक वर्ष तक निरन्तर भक्तिपूर्वक कृष्णाष्टमी के व्रत सुसम्पन्न करने से जिस फल की प्राप्ति होती है मैं वह कह रहा हूँ, सुनो ! समस्त पापों से मुक्त होकर समस्त ऐश्वर्य समेत इस भूतल पर राजा की भाँति सौ वर्ष तक सुखोपभोग करता है । इस विधान द्वारा इसे सुसम्पन्न कर देवी देवों ने देवत्व, गुहस्कन्द, ब्रह्मा ब्रह्मत्व और मैंने विष्णुत्व प्राप्त किया है । उसी भाँति इन्द्र ने देवराजत्व और गण ने गणपतित्व की प्राप्ति की है । महाराज् ! इस कृष्णाष्टमी व्रत को सुसम्पन्न करने पर नारी अथवा पुरुष को अखण्ड पुण्य प्राप्त होता है, अनन्तर यथेच्छ सुखोपभोग से पूर्ण एवं कोटि सूर्य के समान प्रकाशित विमान पर बैठकर जो रुद्र कन्याओं से आच्छन्न तथा हंस सारस से संयुक्त तथा नृत्य-गान की उत्कृष्ट ध्वनि से निनादित रहता है, शिवलोक की प्राप्ति करता है । सुर असुर चामर डुलाते हुए उसकी वन्दना करते हैं । शिव के समस्त ऐश्वर्य से सम्पन्न होकर शूलपाणि एवं त्रिनेत्र शिव की भाँति सुखोपभोग करते हुए आठकल्प तक वहाँ निवास करता है । पार्थ ! इस प्रकार मैंने कृष्णाष्टमी व्रत का विधान तुम्हें बता दिया, जिसके श्रवण करने पर प्राणी समस्त पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं । कल्याण मूर्ति इस कृष्णाष्टमी को उपवास पूर्वक सुसम्पन्न करते हुए वर्षान्त में तिल और पूर्ण बारह कलशों को प्रदान करने वाला मनुष्य चन्द्रशेखर का उत्तम पद प्राप्त करता है ।१८-३०

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर-सम्वाद में
कृष्णाष्टमी व्रत वर्णन नामक सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ।५७।

---

१. वृद्धः । २. पार्थ पापस्य ।

अथाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अनघाष्टमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

ब्रह्मपुत्रो महातेजा अत्रिर्नाम महानृषिः । तस्य पत्नी महाभाग अनसूया पतिव्रता ।।१
तयोः कालेन महता जातः पुत्रो महातपाः । दत्तो नाम महायोगी विष्णोरंशो महीतले ।।२
द्वितीयो नाम लोकेस्मिन्ननघश्चेति विश्रुतः । तस्य भार्या नदी नाम बभूव सहचारिणी ।।३
अष्टपुत्रा जीववत्सा सर्वब्राह्मणगुणैर्वृता । अनयोर्विष्णुरूपेण लक्ष्मीश्चैवनदी स्मृता ।।४
एवं तस्य सभार्यस्य योगाभ्यासरतस्य वा । आजग्मुः शरणं देवाः शुम्भदैत्येन पीडिताः ।।५
ब्रह्मलब्धप्रसादेन द्रुतं गत्वामरावतीम् । संरुद्धां जम्भदैत्येन दिव्यवर्षशतं नृप ।।६
दैत्यदानवसंयोगे पातालादेत्य भारत । तस्य सैन्यमसंख्येयं दैत्यदानवराक्षसैः ।।७
तेन निर्णाशिता देवाः सेंद्रचन्द्रमरुद्गणाः । त्याजिताः स्वानि धिष्ण्यानि त्यक्त्वा जग्मुर्दिशो दश ।।८
अग्रतः प्रलयं यांतः सेन्द्रा देवा भयार्दिताः । पृष्ठतोनुव्रजन्ति स्म दैत्या जम्भपुरःसराः ।।९
युध्यन्तः शरसन्धानैर्गदामुसलमुद्गरैः । नर्दन्तो वृषभारूढाः केचिन्महिषवाहनाः ।।१०
शरभैर्गंडकैर्व्याघ्रैर्वानरै रभसैर्द्रुताः । मुञ्चन्तो यान्ति पाषाणाञ्छतघ्नीस्तोमराञ्छरान् ।।११

अध्याय ५८

अनघाष्टमी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—महाभाग ! ब्रह्मा के पुत्र अत्रि की जो महातेजस्वी एवं महान् ऋषि थे, पतिव्रता पत्नी का नाम अनसूया था । बहुत दिनों के व्यतीत होने पर दोनों के संयोग से 'दत्त' नामक महातेजस्वी एक पुत्र दत्त, जो विष्णु का अंश एवं महायोगी था । उसी समय में एक अनघ नामक परम तपस्वी ऋषि थे, उनकी सहचारिणी का नाम नदी, जो आठ पुत्रों से संयुक्त, जीवित पुत्रिका, एवं ब्राह्मण गुणों से युक्त थी । अनघ विष्णुरूप और नदी लक्ष्मी रूप थी । पत्नी समेत योगाभ्यास करते हुए उन ऋषि की शरण में प्राप्त होकर शुम्भ दैत्य से पीड़ित देवों ने उनकी प्रार्थना की थी । नृप ! ब्रह्मा से वरदान प्राप्त कर दैत्य ने शीघ्र अमरावती को प्रस्थान कर उसे चारों ओर से घेर लिया और दिव्य सौ वर्ष तक वहाँ का सुखोपभोग करता रहा । भारत ! उसकी दैत्य, दानव एवं राक्षसों की असंख्य सेनाएँ स्वर्ग में पहुँच कर इन्द्र चन्द्र एवं मरुद्गण आदि देवों को अपने शस्त्राघातों से जर्जरित कर पराजित किया, पश्चात् देवों ने भी अपने स्थानों को त्याग कर इधर-उधर पलायन करना आरम्भ किया आगे जाने पर राक्षसों द्वारा विनष्ट हो जाने पर भय से इन्द्रादि देवों के इधर उधर भागने पर उनके पीछे जम्भादि राक्षसों ने भी धावा किया ।१-९। उस तुमुल संग्राम में शर, गदा, मुशल, एवं मुद्गर आदि शास्त्रास्त्रों से सुसज्जित वे दैत्यगण, जो नर्दमान वृषभ, महिष, क्षरभ, गैंडा, व्याघ्र एवं वानरों पर बैठे हुए वेग से शत्रुओं पर आघात कर रहे थे, तथा पाषाणों और गोलियों की वर्षा देवों का पीछा करते हुए विन्ध्यगिरि के समीप पहुँच

यावद्विन्ध्यगिरिं प्राप्तास्तत्तस्याश्रममण्डलम् । अनघश्चानदी चैव दाम्पत्यं यत्र तिष्ठति ।।१२
तयोः समीपं सम्प्राप्तास्ते नराः शरणार्थिनः । अनघोऽपि च तान्देवाँल्लीलयैव सवासवान् ।।१३
अभ्यन्तरे प्रविश्याथ तिष्ठध्वं विगतज्वराः । तथेति नाम ते कृत्वा सर्वे तुष्टिं समास्थिताः ।।१४
दैत्या अपि द्रुतं प्राप्ता घ्नंतः प्रहरणैररीन् । इत्यूचुरुल्बणा घोरा गृह्णीध्वं ब्राह्मणीं मुनेः ।।१५
द्रुतं द्रुमानाक्षिपध्वं पुष्पोपगफलोपगान् । अथारोप्यानघं मूर्ध्नि दैत्या जग्मुस्तदाश्रमान् ।।१६
तत्क्षणाच्चापि दैत्यानां श्रीर्बभूव शिरोगता । दत्तकेनापि ते दृष्टा नष्टा ध्यानाग्निना क्षणात् ।।
निस्तेजसो बभूवुर्हि निःश्रीका मदपण्डिताः ।।१७
देवैरपि गृहीतास्ते दैत्याश्च हरणे रणे । रुदन्तो निस्तनन्तश्च निश्चेष्टा ब्रह्मकण्टकाः ।।१८
ऋष्टिभिः करणैः शूलैस्त्रिशूलैः परिघैर्धनैः । एवं ते प्रलयं जग्मुस्तत्प्रभावान्मुनेस्तदा ।।१९
असुरा देवशस्त्रौघैर्जिता इन्द्रेण घातिताः । देवा अपि स्वराष्ट्रेषु तस्थुः सर्वे यथा पुरा ।।
सुरैरपि मुनेस्तस्य देवर्षेर्महिमाऽभवत् ।।२०
ततः स सर्वलोकानां भवाय सततोत्थितः । कर्मणा मनसा वाचा शुभान्येव समाचरत् ।।२१
काष्ठकुड्यशिलाभूत ऊर्ध्वबाहुर्महातपाः । ब्रह्मोत्तरं नाम तपस्तेपे सुविनयतव्रतः ।।२२
नेत्रे ह्यनिमिषे कृत्वा भ्रुवोर्मध्ये विलोकयन् । त्रीणि वर्षसहस्राणि दिव्यानीति हि नः श्रुतम् ।।२३
तथोर्द्धरेतसस्तस्य स्थितस्यानिमिषस्य हि । योगाभ्यासप्रयत्नस्य माहिष्मत्याः पतिः प्रभुः ।।२४

गये । देवों ने उस जंगल में उस आश्रम में पहुँच कर जहाँ अनघ और नदी का दाम्पत्य जीवन योगाभ्यास में सदैव तन्मय रहा करता था, उनसे शरण की याचना की । उसे सुनकर अनघ ने भी इन्द्र समेत उन देवों को (गिरि गह्वर के) अभ्यन्तर में सुरक्षित रखकर उनसे कहा—शान्त एवं सुखमय जीवन व्यतीत करो । देवगण भी उसे स्वीकार कर वहीं अत्यन्त सन्तुष्ट रहने लगे । अपने आघातों से शत्रुओं को पीड़ित करते हुए दैत्यों ने भी वहाँ पहुँच कर कठोर एवं विषमय वाणी का प्रयोग किया 'मुनि की इस ब्राह्मणी को पकड़ कर ले चलो' और पुष्प फल समेत इन वृक्षों को उखाड़ कर इन्हें आच्छन्न कर दो । अनन्तर दैत्यों ने अनघ महर्षि के शिर पर वृक्ष समूहों को प्रक्षिप्त कर अपने स्थान को प्रस्थान किया, उसी समय दैत्यों की श्री उनके शिरोमणि से निकली और उसी क्षण दत्तक के देखने एवं ध्यान करने पर अग्नि में भस्म होकर समूल नष्ट हो गई । पश्चात् श्रीहीन उन मूर्ख दैत्यों को देवों ने पकड़ कर अपने ऋष्टि, करुण, शूल, त्रिशूल, परिध एवं घन आदि के आघातों द्वारा मुनि के प्रभाव से उन्हें समूल नष्ट कर दिया, जो उस समय रोदन एवं करुणक्रन्दन करते हुए निश्चेष्ट हो रहे थे । इस प्रकार इन्द्र आदि देवों के शस्त्रास्त्र आघातों द्वारा दैत्यों के समूल नष्ट होने पर देवगण अपने अपने राष्ट्रों में पहले की भाँति सिंहासनासीन होकर सुखोपभोग करने लगे । देवों के निमित्त देवर्षि मुनि की इस प्रकार की महिमा जागरुक होने पर समस्त लोकों के कल्याणार्थ उन्होंने मन वाणी और शरीर द्वारा कार्य करना आरम्भ किया--काष्ठ एवं पत्थर शिलाओं के समान अचल होकर उस महातपस्वी ने संयम पूर्वक ऊर्ध्व बाहु होकर ब्रह्मोत्तर नामक तप करना आरम्भ किया ।१०-२२। अपने अपलक दोनों नेत्रों से भ्रू के मध्य में देखते हुए उन्होंने दिव्य तीन सहस्र वर्ष तक घोर तपस्या की । उर्ध्व बाहु होकर एकाग्र दृष्टि से ध्यान पूर्वक योगाभ्यास में महर्षि के तन्मय

एकाहाद्रुतमभ्येत्य कार्तवीर्यार्जुनो नृपः । शुश्रूषा विनयं चक्रे दिवारात्रमतन्द्रितः ॥२५
गात्रसम्वाहनं पूजां मनसा चिन्तितं तथा । सम्पूर्णे नियमे वृत्ते दृढतुष्ट्या समन्वितः ॥२६
तस्मै ददौ वरान्पुष्टांश्चतुरो भूरितेजसः । पूर्वं बाहुसहस्रं तु स वव्रे प्रथमं वरम् ॥२७
अधर्माद्धीयमानस्य सद्भिस्तस्मान्निवारणम् । धर्मेण पृथिवीं जित्वा धर्मेणैवानुपालनम् ॥२८
संग्रामान्सुबहूञ्जित्वा हत्वा वीरान्सहस्रशः । सङ्ग्रामे युध्यमानस्य वधो मे स्याद्धरेः करात् ॥२९
तेन दत्तेन लोकेऽस्मिन्दत्तं राज्य महीतले । कार्तवीर्याय कौंतेय योगाभ्यासः सविस्तरः ॥
चक्रवर्तिपदं चैव अष्टसिद्धिसमन्वितम् ॥३०
तेनापि पृथिवी कृत्स्ना सप्तद्वीपा सपर्वता । ससमुद्राकरवती धर्मेण विधिना जिता ॥३१
तस्य बाहुसहस्रं तु प्रभावात्किल धीमतः । यागाद्रथो ध्वजश्चैव प्रादुर्भवति मायया ॥३२
दशयज्ञसहस्राणि तेषु द्वीपेषु सप्तसु । निरर्गलानि वृत्तानि स्वयं वै तस्य पाण्डव ॥३३
सर्वे यज्ञा महाबाहो प्रसन्ना भूरिदक्षिणाः । सर्वे काञ्चनवेदिक्याः सर्वे यूपैश्च काञ्चनैः ॥३४
सर्वदेवैर्महाभागैर्विमानस्थैरलङ्कृताः । गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवोपशोभिताः ॥३५
तस्य यज्ञे जगुर्गाथां गन्धर्वा नारदस्तथा । चरितं राजसिंहस्य महिमानं निरीक्ष्य ते ॥३६
न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः । यज्ञैर्दानैस्तपोभिर्वा विक्रमेण श्रुतेन च ॥३७
द्वीपेषु सप्तसु स वै खड्गचर्मशरासनी । व्यचरच्छयेनवद्यो वै दूरादारादवैक्षत ॥३८

होने पर महिष्मति का अधीश्वर सहस्रबाहु ने एक ही दिन में वहाँ पहुँच कर अनुनय विनय समेत उनकी सेवा में रात-दिन तत्पर रहने लगा । वह उन्हीं महर्षि की पूजा, एवं ध्यान करते हुए उनकी वाद संवाहन (हाथ पैर दाबना) आदि शारीरिक शुश्रुषा भी करने लगा । इस प्रकार सम्पूर्ण नियम के सुसम्पन्न होने पर प्रसन्न होकर उन्होंने इसे चार वरदान प्रदान किया सहस्रबाहु होने का पहला, अधार्मिक अध्ययन का सज्जनों द्वारा निराकरण दूसरा, धर्म द्वारा पृथिवी को प्राप्त कर धर्म द्वारा उसका पालन करना तीसरा और अनेक संग्रामों में अनेक वीरों के धराशायी होने पर रणस्थल में ही भगवान् के हाथों द्वारा अपना निधन रूप चौथा वरदान प्राप्त कर इस महीतल पर उस दुष्ट ने समस्त राज्य उन्हें प्रदान किया और कौंतेय ! (महर्षि ने) योगाभ्यास के विस्तार पूर्वक अष्टसिद्धि समेत उस चक्रवर्ती पद की प्राप्ति की। सहस्रबाहु ने भी समुद्र पर्यन्त समस्त पृथिवी को धर्म द्वारा अपने अधीन किया। पाण्डव ! प्रथम उस धीमान् के सहस्र बाहु उत्पन्न हुए और अनन्तर माया द्वारा यज्ञ से रथ और ध्वज निकला । सहस्रबाहु ने सातो द्वीपों में दशसहस्र यज्ञ को सविधान स्वयं सुसम्पन्न किया, महाबाहो ! जो उस समय विशाल संभार से सम्पन्न तथा जिसमें यथेच्छ दक्षिणा द्वारा सभी लोग अत्यन्त संतृप्त थे और उन यज्ञों की समस्त वेदियों तथा यूप (स्तम्भ) सुवर्ण निर्मित और सुवर्ण सुसज्जित थे । उस समय सभी देव गण अपने विमानों पर स्थित रहते हुए अलंकृत किये गये थे, अप्सराएँ नित्य गान करती थीं, तथा गन्धर्व नारदादि उसकी गाथा का गान कर रहे थे । पार्थिव ! इस भाँति उस राजसिंह की महामहिमा को देखकर यह निश्चय होता है कि वैसा करने पर तुम भी उस सहस्रबाहु के समान गति प्राप्त करोगे । उसने यज्ञ, दान, एवं तप आदि के क्रम से तथा विक्रम और वेदों के द्वारा सातों द्वीपों समेत इस पृथिवी पर खड्ग, चर्म, धनुषबाण, धारणकर चारों ओर निःशङ्क विचरण करैं रहा था ।२३-३८। वह दूर और समीप सभी

अनष्टद्रव्यता चास्य न शोको न च वैक्लमः । प्रभावेण महीराजोरक्षद्धर्मेण च प्रजाः ॥३९
पञ्चाशीतिसहस्राणि वर्षाणां दै नराधिप । समुद्रवसनायां स चक्रवर्ती बभूव ह ॥४०
स एव पशुपालोभूत्क्षेत्रपालः स एव च । स एवं वृष्ट्यां पर्जन्यो योगित्वादर्जुनोऽभवत् ॥४१
स वै बाहुसहस्रेण ज्याघातकठिनत्वचा । वाति रश्मिसहस्रेण क्षोभ्यमाणे महोदधौ ॥४२
स हि नागमनुष्यैस्तु माहिष्मत्यां महाद्युतिः । कर्कोटाहेः सुताञ्जित्वा पुरि तत्र न्यवेशयत् ॥४३
स वै पत्नीं समुद्रस्य प्रावृट्कालेम्बुजेक्षणाम् । क्रीडते च मदोन्मत्तः प्रतिस्रोतश्चकार ह ॥४४
ललितं क्रीडता तेन फलनिष्पन्दमालिनी । ऊर्मीभ्रुकुटिमत्येवं शंकितास्येति नर्मदा ॥४५
तस्य बाहुसहस्रेण क्षोभ्यमाणे महोदधौ । भवन्त्यालीनानिश्चेष्टाः पातालस्था महासुराः ॥४६
तूर्णीकृतो महाभाग लीनाहीनमहामातः । चकारोत्तुङ्गक्षुब्धोर्मिं दोःसहस्रेण सागरम् ॥४७
क्रान्ता निश्चलमूर्द्धानो बभूदुश्च महोरगाः । सायाह्ने कदलीखण्डान्निर्घातनिहता इव ॥
जिता धनुर्धराः सर्वे सुत्यैतैः पञ्चभिः शरैः ४८
लङ्काधिपं मोहयित्वा सबलं रावणं बलात् । निर्जित्य वशमानीय माहिष्मत्यां बबन्ध च ॥४९
ततोभ्येत्य पुलस्त्यस्तु अर्जुनं सम्प्रसादयन् । मुमोच रक्षः पौलस्त्यं पौलस्त्येनानुगामिना ॥
तस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्यातलस्वनः ॥५०
क्षुधितेन कदाचित्स प्रार्थितश्चित्रभानुना । सप्तद्वीपां चित्रभानोः प्रादाद्भिक्षां महीमिमाम् ॥५१

स्थानों में दिखायी देता था । उसकी सम्पत्ति कभी क्षीण नहीं हुई और न कभी शोक चिंता । नराधिप ! इस प्रकार उसने धार्मिक उपायों द्वारा प्रजाओं की रक्षा करते हुए पचासी सहस्र वर्ष तक इस समुद्र पर्यन्त समस्त पृथ्वी का चक्रवर्ती पद सुशोभित किया, तथा वही पशुपाल और क्षेत्रपाल भी हुआ था वर्षा के लिए मेघ एवं योग द्वारा अर्जुन भी हुआ ! उसने अपने उन सहस्र बाहुओं द्वारा, जो धनुष प्रत्यंचा के संघर्ष से अत्यन्त कठोर हो गये थे । विस्तृत ख्याति प्राप्त कर महासागर को भी क्षुब्ध कर दिया था ।३९-४२। एक बार उस महातेजस्वी ने कर्कोटक नामक सर्पाधीश्वर की पुत्री को विजय रूप में प्राप्त कर अपनी महिष्मती पुरी में लाया और वर्षा ऋतु में उस कमलनयनी प्रेयसी के साथ समुद्र में क्रीडा करते हुए दूसरी नदी का निर्माण ही कर दिया । वह सदोन्मत्त होकर बहुधा नर्मदा में क्रीडा करता था, इसीलिए क्रीड़ा करते समय अत्यन्त प्रसन्न रहने पर भी तरङ्ग शून्य होकर नर्मदा सदैव सशंकित रहती थी । उसके सहस्रबाहुओं द्वारा समुद्र के क्षुब्ध होने पर पाताल निवासी असुर गण मौन होकर दीन हीन रहने लगे तथा दो सहस्र बाहुओं से सागर को विचलित करते देख कर अत्यन्त विषधर सर्पराज शेष उसके आक्रमण करने पर भी सर्वथा अपने शिर को निश्चल रखते थे और सायंकालीन कदली खण्ड की भाँति अपने को निहत भी समझते थे । उसने अपने तीक्ष्ण पाँच बाणों द्वारा लंकाधीश्वर रावण को बलात् मोहित कर पकड़ कर अपने अधीन किया और महिष्मती में लाकर बाँध दिया ।४३-४९। अनन्तर पुलस्य ने वहाँ जाकर उसे (सहस्रार्जुन को) प्रसन्न कर अपने पौत्र (रावण) को मुक्त कराया । एक बार उसकी बाहु प्रत्यंचा के आघात से टकराकर महान् शब्द हुआ था और एक समय क्षुधा पीड़ित चित्रभानु के याचना करने पर उसने सातों द्वीप समेत इस पृथ्वी को भिक्षा रूप में उन्हें दान दिया था जो वहाँ कुण्ड में शयन करने वाले

कुण्डेशयस्ततोऽद्यापि दृश्यते भगवान्हरिः । निम्बादित्यश्च प्रत्यक्षो जाग्रत्संस्तस्य वेश्मनि ।।
बभूव दुहितुर्हेतोः शरदोऽद्यापि तिष्ठति ।।५२
स एवं गुणसंयुक्तो राजाभूदर्जुनो भुवि । अनघस्य प्रसादेन योगाचार्यस्य पांडव ।।५३
तेनेयं वरलब्धेन कार्तवीर्येण योगिना । प्रवर्तिता मर्त्यलोके प्रसिद्धा ह्यनघाष्टमी ।।५४
अघं पापं स्मृतं लोके तच्चापि त्रिविधं भवेत् । यस्मादघं नाशयति तेनासावनघा स्मृता ।।५५
तस्याष्टगुणमैश्वर्यं विनोदार्थं विभाव्यते । अणिमा महिमा प्राप्तिः प्राकाम्ये लघिमा तथा ।।५६
ईशित्वं च वशित्वं च सर्वकामावसायिता । इत्यष्टौ योगसिद्धस्य सिद्धयो मोक्षलक्षणाः ।।५७
समुत्पन्ना दत्तकस्य लोके प्रत्ययकारकाः । यात्रासमाप्तौ संगृह्य यदघानि तथैव वा ।।५८
जगत्समस्तमनघं कुर्यादस्माददतोऽनघा । मदंशो मद्गतप्राणो लोकेस्मिन्वृतको[1] द्विजः ।।५९

युधिष्ठिर उवाच

कीदृशं पुण्डरीकाक्ष स वै राजार्जुनो व्रतम् । चक्रे वा त्रिषु लोकेषु कैर्मन्त्रैः समयैश्चकैः ।।
कस्मिन्काले तिथौ कस्यामेतन्मे वद केशव ।६०

श्रीकृष्ण उवाच

कृष्णाष्टम्यां मार्गशीर्षे दम्पती दर्भनिर्मितौ । अनघं चानघां चैव बहुपुत्रैः समन्विताम् ।।६१

भगवान् आज भी दिखायी देते हैं । निम्बादित्य भी उसके घर में पुत्री के निमित्त प्रत्यक्ष होकर आज भी शरद रूप में वर्तमान है । पाण्डव ! इस प्रकार अनघ महर्षि की असीम अनुकम्पा द्वारा वह राजा समस्त भूतल में सर्वगुण सम्पन्न राजा हुआ । और उनके द्वारा वरदान प्राप्त सहस्रार्जुन इस मर्त्यलोक में इस अनघाष्टमी का प्रचार किया है । अघ नाम पाप का बताया गया है, जो लोक में तीन भाँति का होता है । तथा उस अघ को नष्ट करने वाले को अनघ कहा जाता है । उसके विनोदार्थ आठ गण समेत यह ऐश्वर्य सदैव वहाँ वर्तमान रहता था—अणिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, महिमा । प्रभुत्व, वशित्व और समस्त कामनाओं को सफल करने वाली यही आठ योग सिद्धियाँ बतायी गयी हैं, जो मोक्ष लक्षण सम्पन्न हैं । लोक के दृढ़ ज्ञानार्थ ये सिद्धियाँ दत्तक के लिए प्रत्यक्ष हुई थी, यात्रा की समाप्ति में जिसका संग्रहण भी उन्होंने किया था । समस्त जगत् को पाप मुक्त करने के नाते उस ब्राह्मण का नाम अनघ और इस अष्टमी का अनघा नाम हुआ है, जो ब्राह्मण मेरे अंश, मेरे लिए सदैव चिन्तन करने वाला एवं इस लोक में प्रख्यात वृत्तक है ।५०-५९

युधिष्ठिर ने कहा—पुण्डरीकाक्ष ! उस राजा ने इस व्रत को किस भाँति, किस समय एवं किस मंत्र के उच्चारण द्वारा सुसम्पन्न करते हुए तीनों लोकों में प्रख्यात किया है, और केशव ! उसकी तिथि भी बताने की कृपा करें ।६०

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर ! मार्गशीर्ष मास की कृष्णाष्टमी के दिन कुश की निर्मित प्रतिमा अनघ

---

१. वृत्तकः ।

पुरा कृतीकृतौ शान्तौ भूमिभागे स्थितौ शुभौ । स्नात्वैवमर्चयेत्पुष्पैः ससुगन्धैर्युधिष्ठिर ।।६२
ऋग्वेदोक्तऋचा विप्रो विष्णुं ध्यात्वा ममांशजम् । अनघं वासुदेवेनानघां लक्ष्मीं व्रजां तनुम् ।।
प्रद्युम्नादिपुत्रवर्गं हरिवंशे यथोदितम् ।।६३
"ॐ अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्याः सप्तधामभिः ।
इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूळ्हमस्यपांसुरे त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः।
अतो धर्माणि धारयन् । विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा । तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ।
तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत्परमं पदम्" ।।
लोकोद्भवैः फलैः कन्दैः शृङ्गारैर्बदरैः शुभैः । दितैश्च धान्यैः पुष्पैश्च गन्धधूपैः सदीपकैः ।।६४
यः पूजयेद्भक्तियुक्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते । ततो द्विजान्भोजयेच्च सुहृत्सम्बन्धिबान्धवान् ।।६५
व्रतावसाने गृह्णीयात्कश्चिदेको नरो व्रतम् । तेषां मध्ये दृढाश्चक्रुरनघव्रतपारगाः ।।६६
इदं जीवनघाती चेतसत्यं तु समयोषितम् । वर्षमेकं ततः स्वेच्छा इदं तवानघव्रतम् ।।६७
तत्रोपेक्षणकं कार्यं नटनर्तकगायकैः । प्रभाते तु नवम्यां तं तोयमध्ये विसर्जयेत् ।।६८
एवं यः कुरुते यात्रां वर्षेवर्षे च हर्षितः । भक्तियुक्तः श्रद्धया च सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।६९
कुटुम्बं वर्द्धते तस्य यस्य विष्णुः प्रसीदति । आरोग्यं सप्त जन्मानि ततो यान्ति परां गतिम् ।।७०

एतामघौघशमनामनघाष्टमीं च कौंतेय सम्प्रति मया कथितां हिताय ।
कुर्वंत्यनन्यमनसः स्वयशोभिवृद्धचै ऋद्धिं प्रयान्ति कृतवीर्यसुतानुरूपाम् ।।७१

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
अनघाष्टमीव्रतवर्णनं नामाष्टापञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५८

की और अनेक पुत्रों समेत अनघा की सु भूमि भाग में स्थापित कर स्नान एवं सुगन्धित पुष्पों द्वारा अर्चना करने के उपरांत ब्राह्मण को विष्णु, मेरे अंश, अनघ, और वासुदेव की अनघा रूप धारिणी लक्ष्मी तथा हरिवंश में बताये गये के अनुसार प्रद्युम्नादि पुत्रों के ध्यान ऋग्वेदोक्त ऋचाओं द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए। सामयिक फल, कन्द, शृंगार, बरे, धन, धान्य, पुष्प, गंध, धूप दीप द्वारा भक्ति पूर्वक जो उनकी पूजा करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होता है। अनन्तर सत्दृत, सम्बन्ध एवं बन्धु वर्गों समेत ब्राह्मण भोजन कराये। व्रत की समाप्ति में कुटुम्ब के किसी एक पुरुष को यह व्रत अपनाना चाहिए और उनके बीच किसी अनघ व्रत मर्मज्ञ को इस प्रकार सान्त्वना देना चाहिए कि यह व्रत जीवनघाती नहीं अपितु जीवन को सर्वथा परमोन्नत करने वाला है क्योंकि मैंने एक वर्ष तक इस तुम्हारे अनघ व्रत को यथेच्छ पालन किया, अनन्तर नट नर्तक एवं गायकों द्वारा अनुरञ्जित समाज द्वारा नवमी के प्रातः काल किसी जलाशय में उसका विसर्जन करे। इस प्रकार हर्ष पूर्ण श्रद्धा भक्ति समेत प्रति वर्ष इसकी यात्रा (क्रिया) सुसम्पन्न करने वाले का समस्त पाप विनष्ट होता है और विष्णु के प्रसन्न होने पर सात जन्म तक कुटुम्ब वृद्धि, आरोग्य एवं शेष सुखोपभोग के उपरांत उत्तम गति होती है। कौंतेय ! पापसमूह नाशिनी इस अष्टमी की व्याख्या मैं तुम्हें सुना दी, इसे सुसम्पन्न करने वाले पुरुष की यशोऽभिवृद्धि पूर्वक सहस्रार्जुन की भाँति ऋद्धि प्राप्त होती है।६१-७१

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर सम्वाद में
अनघाष्टमी व्रत वर्णन नामक अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त ।५८।

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः

सोमाष्टमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि व्रतं श्रेयस्करं परम् । शिवलोकप्रदं पुण्यं विधिवन्मे निबोधताम् ॥१
वारे सोमे सिताष्टम्यां पक्षे सोमं समर्चयेत् । विधिना चन्द्रचूडालं प्राप्यमेतत्स चन्द्रकम् ॥२
दक्षिणार्धे हरिं ध्यात्वा मध्ये तु परितः प्रभुम् । पञ्चामृतादिना देवं स्थापयित्वा यतव्रती ॥३
चन्दनेनेन्दुयुक्तेन दक्षिणार्धं विलेपयेत् । हरभागं नीलरक्तं शिवस्योपरि मौक्तिकम् ॥४
पश्चात्पुष्पैः समभ्यर्च्य सितै रक्तैरनुत्तमैः । नीराजनं पुनः कुर्यात्पञ्चविंशतिदीपकैः ॥
अथ[1] सिद्धैः शुभैर्भक्ष्यैर्नैवेद्यं विनिवेदयेत् ॥५
एवंकृतोपवासस्तु प्रभाते पूर्ववच्छिवम् । सम्पूज्याज्यं तिलैर्मिश्रं जुहुयाज्जातवेदसि ॥६
व्रतिनो ब्राह्मणान्पश्चाद्भोजयित्वा विधानतः । मिथुनानि तु सम्भोज्य यथाशक्त्यनुपूजयेत् ॥७
आवर्त्य पितरावर्च्य विधिना तेन सुव्रत । सम्वत्सरान्ते कर्तव्यं यत्तत्सर्वं निबोध मे ॥८
प्रागुक्तविधिना पूज्या सितपीतयुगद्वयम् । दद्याद्वितानकं चैव पताकां घटकीं तथा ॥९
धूपगन्धारसी चापि दीपवृक्षं सुशोभनम् । एवमादीनि योज्यानि पूर्ववद्भोज्यमाचरेत् ॥१०

अध्याय ५९

सोमाष्टमी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें एक परम श्रेयस्कर व्रत का विधान बता रहा हूँ, जिसे सुसम्पन्न करने पर पुण्य शिवलोक की प्राप्ति होती है, सावधान होकर सुनो ! शुक्ल पक्ष की अष्टमी में सोमवार के दिन चन्द्रमा तथा चन्द्र चूड शिव की सविधान अर्चना करनी चाहिए चन्द्रमा समेत सुसज्जित उनकी प्रतिमा में दक्षिणार्ध में हरि और मध्य में चारों ओर प्रभु के ध्यान पूर्वक स्थापना एवं पञ्चामृत आदि द्वारा स्नान के उपरान्त उस यतवृती को उसके दक्षिणार्ध भाग को चन्दन और नीलरक्त शिवभाग को मोतियों से सुशोभित करना चाहिए। पश्चात् श्वेत, रक्त वर्ण वाले परमोत्तम पुष्पों द्वारा पूजन और पच्चीस दीपक (पृथक् पृथक वत्तियों) द्वारा नीराजन (आरती) करके पापवरणार्थ शुभ एवं मधुर भक्ष्य अर्पित करे। इस प्रकार उपवास पूर्वक रात्रि व्यतीत होने के अनन्तर प्रातः काल में पूर्ववत् शिव की अर्चना करके प्रज्वलित अग्नि में घी तिल की आहुति प्रदान कर व्रती ब्राह्मणों को भोजन से तृप्त करे। सुव्रत् ! ब्राह्मण दम्पत्ती को यथाशक्ति आभूषण वस्त्र एवं भोजन से तृप्त कर शिव शिवा की पुनः पूजा कर उसकी समाप्ति करनी चाहिए। १-८। वर्ष के अन्त में व्रत की समाप्ति के दिन सुसम्पन्न किये जाने वाले कर्मों को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! पूर्वोक्त विधान द्वारा पूजनोपरांत श्वेत और पीत वर्ण के वितान (चंदोवा), पताका, घंटा, धूप, गंध, रस, और दीप वृक्षों से उन्हें सुशोभित कर पूर्व की

---

१. अद्यसिद्धयै।

चतुरस्त्रं त्रिकोणं च मण्डलं कारयेत्ततः । त्रिकोणे पार्वतीं ध्यायेच्चतुरस्त्रे महेश्वरम् ॥११
सङ्कल्प्य द्विजदाम्पत्यं वासोभिर्भूषणैस्तथा । पूजयित्वा यथाशक्त्या कुर्यान्नीराजनं शुभैः ॥
दीपकैः पञ्चविंशद्भिर्भोजयित्वा विसर्जयेत् ॥१२
अब्दपञ्चकमेकं वा एवं यः कुरुते नरः । उभाभ्यां लोकमासाद्य पदं यास्यत्यनामयम् ॥१३
आ देहपतनाद्यस्तु नित्यमेतत्समाचरेत् । इहैव स हरिः साक्षान्नररूपो विभाव्यते ॥१४
न स्पृशन्त्यापदस्तस्य न दुःखी भवति क्वचित् । ज्वरग्रहादिभिर्नैव पीडयतेऽसौ कदाचन ॥१५

श्रीकृष्ण उवाच

अथ वा तेन मार्गेण तामवेहि सिताष्टमीम् । सम्प्राप्यादित्ययोगेन प्राग्विधानेन चाभ्यसेत् ॥१६
किन्तु[1] दक्षिणतन्त्रस्थं भास्करं वार्चयेद्बुधः । पद्मरागेण दिव्येन सुवर्णेन च पार्वतीम् ॥१७
कुंकुमेन समालभ्य चन्दनेन शिवं तथा । अभावे सर्वरत्नानां हेम सर्वत्र योजयेत् ॥१८
रुद्रबीजं परं पूतं प्रियं रुद्रस्य सर्वदा । रक्तमाल्याम्बरधरं नैवेद्यं घृतपाचितम् ॥१९
शेषः पूर्वविधानेन कर्तव्यो विधिविस्तरः । तिथौ पूर्णे च कुर्वीत गव्येनानघ पारणम् ॥२०
एतत्प्राक्च विधायाब्दं पञ्चाब्दानेवमेव च । कृत्वा सूर्यादिलोकेषु भुक्त्वा भोगान्व्रजेत्परम् ॥२१
पतङ्गवत्प्रतापी स्यादहीनश्च जनप्रियः । अस्मिन्रोगो न बाधेत धनवान्पुत्रवान्भवेत् ॥२२

भाँति भोजन आदि सभी कर्मों के उपरांत चौकोर और त्रिकोण मण्डल की स्थापना करते हुए त्रिकोण में पार्वती और चौकोर में महेश्वर का ध्यान पूजन, और द्विज दम्पत्ती को विविध भाँति के वस्त्राभूषणों से सुसज्जित एवं यथाशक्ति पूजन करके पचीस दीपों के नीराजन (आरती) तथा ब्राह्मण भोजन के अनन्तर विसर्जित करे। इस प्रकार पाँच अथवा एक ही वर्ष तक इस व्रत विधान के सुसम्पन्न करने पर दोनों लोक के सुखोपभोग करने के अनन्तर उत्तम पद की प्राप्ति होती है। इस व्रत को आजीवन सुसम्पन्न करने वाला पुरुष इस लोक में वह नर रूप में साक्षात विष्णु माना जाता है। उसे किसी प्रकार की आपत्ति या दुःख तथा ज्वर ग्रहादि पीड़ा कभी नहीं होती है।९-१५

श्रीकृष्ण बोले—अथवा उसी प्रकार की शुक्लाष्टमी रविवार के दिन प्राप्त होने पर पूर्व विधान द्वारा उसकी (अष्टमी) निरंतर अर्चना करते हुए दक्षिण तन्त्रस्थ भास्कर की उपासना करे—पद्मराग अथवा दिव्य सुवर्ण द्वारा पार्वती को विभूषित कर कुंकुम द्वारा उन्हें और चन्दन से शिव को समलंकृत करना चाहिए। समस्त रत्नों के अभाव में सर्वत्र सुवर्ण का ही प्रयोग करना चाहिए। अत्यन्त पवित्र एवं प्रिय होने के नाते रुद्र बीज द्वारा शिव और रक्तमाला वस्त्र से उमा को सुसज्जित करके घृतप्लुत नैवेद्य से उन्हें सुतृप्त करे। अनघ! शेष विधान पूर्व की भाँति सुसम्पन्न करते हुए तिथि के समाप्त होने पर गोघृत के पारण करना चाहिए। इस व्रत को एक वर्ष सुसम्पन्न करके पुनः पाँच वर्ष तक उसी भाँति सुसम्पन्न करने पर सूर्यादि लोकों में समस्त सुखोपभोग की प्राप्ति पूर्वक परम पद की प्राप्ति होती है।१६-२१। वह सूर्य की भाँति प्रतापी, अदीन, तथा जनप्रिय होता है, कभी रोग बाधा नहीं होती है। धन-पुत्र से सदैव परिपूर्ण रहता है। कुरुकुलोद्वह! शुक्लपक्ष की अष्टमी सोम या रविबार के दिन आने पर उपवास पूर्वक उस

---

१. किं तु लक्षणनेत्रस्थम्।

यद्यष्टमी भवति सोमयुता कदाचिदर्केण वा कुरुकुलोद्वह तामुपोष्य।
पूज्यो मया सह हरं हरिणांकचिह्नं भक्त्यायुषां पदमुपैति पदम् पुरारेः ॥२३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
सोमाष्टमीव्रतवर्णनं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ।५९

अथ षष्टितमोऽध्यायः

श्रीवृक्षनवमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

समुत्पन्नेषु रत्नेषु क्षीरोदमथने पुरा । दैत्यानां मोहनार्थाय योषिद्भूते जनार्दने ॥१
बिल्वे वृक्षे क्षणं श्रांता विश्रान्ता कमलालया ! यामेवमिति वान्योन्यं युयुधुर्देवदानवाः ॥२
जिताः सर्वे पुरा पार्थ युद्धे कृष्णेन चक्रिणा । पातालं गमिता दैत्याः सश्रीकः स्वयमायसौ ॥३
श्रीः समावासिता यस्माच्छ्रीवृक्षस्तु ततः स्मृतः । तस्माद्भाद्रपदस्यैव शुक्लपक्षे कुरूत्तम ॥४
नवम्यामर्चयेद्भक्त्या ईषत्सूर्योदये नगम् । श्रीवृक्षं विविधैः पुष्पैरनग्निपाचितैः फलैः ॥५
तिलपिष्टान्नगोधूमैर्धूपगन्धस्रगम्बरैः । ईषद्भानुकराताम्रताम्रीकृतनभस्तले ॥६
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र कृत्वा ब्राह्मणभोजनम् ! ततो भुञ्जीत मौनेन तैलक्षारविवर्जितः ॥

दिन मेरे साथ शिव और चन्द्रमा की भक्तिपूर्वक अर्चना करने से उसे मुरारि पद की प्राप्ति होती है।२२-२३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
सोमाष्टमी व्रत वर्णन नामक उनसठवाँ अध्याय समाप्त ।५९।

अध्याय ६०

श्रीवृक्षनवमीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पहले समय में क्षीर सागर के मंथन करने पर (१४) रत्नों का आविर्भाव हुआ, जिसके निमित्त दैत्यों को मोहित करने के लिए भगवान् जनार्दन ने (मोहिनी) स्त्री का रूप धारण किया। भ्रांत उस कमला (मोहिनी) ने विल्व वृक्ष के नीचे एक क्षण विश्राम किया। जिससे उसी समय उसे अपनाने के निमित्त उन मुग्ध देव-दानवों में महान् युद्ध आरम्भ हुआ। पार्थ ! चक्रधारी ! भी कृष्ण ने उन दैत्यों को पहले ही पराजित किया था, इसीलिए श्री समेत उनके वहाँ आने पर दैत्य गण पाताल चले गये।१-३। श्री के (उस क्षणिक) निवास करने के नाते उस वृक्ष को श्रीवृक्ष कहा जाने लगा। अतः कुरूत्तम ! भाद्रपद मास की शुक्ल नवमी के दिन सूर्योदय के समय भक्ति पूर्वक उस वृक्ष की अर्चना करनी चाहिए। राजेन्द्र ! अनेक भाँति के पुष्प, अनग्नि पाक फल, तिल-चूर्ण, गेहूँ-चूर्ण, धूप, गन्ध, माला एवं वस्त्र द्वारा प्रभातकालीन सूर्य के रक्तविम्ब से नभस्तल के रक्तिम होने के समय भी वृक्ष की सविधान अर्चना सुसम्पन्न कर ब्राह्मण भोजन के उपरांत वाणी संयम पूर्वक तैल-छार रहित भोजन करे जो अनग्नि

अनग्निपाकं भूपात्रे दधिपुष्पफलैः शुभम् ।।७
एवं यः कुरुते पार्थ श्रीवृक्षस्यार्चनं नरः । नारी वा दुःखशोकाभ्यां मुच्यते नात्र संशयः ।।८
सप्तजन्मान्तरं यावत्सुखसौभाग्यसंयुता । श्रीमती फलिनी धन्या मर्त्यलोके महीयते ।।९
श्रीवृक्षमक्षतफलं वसितं नवम्यां नैवेद्यपुष्पफलवस्त्रविचित्रधान्यैः ।
पूज्यः प्रभातसमये पुरुषोत्तमेष्ट सम्प्राप्नुवन्ति पुरुषाः पुरुषेन्द्रवन्द्याम् ।।१०

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
श्रीवृक्षनवमीव्रतवर्णनं नाम षष्टितमोऽध्यायः ।६०

अथैकषष्टितमोऽध्यायः

ध्वजनवमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

महिषासुरे विनिहते भगवत्या महासुरैः । पूर्ववैरमनुस्मृत्य संग्रामा बहवः कृताः ।।१
नानारूपधरा देवी अवतीर्य पुनः पुनः । धर्मसंस्थापनार्थाय निजघ्ने दैत्यसत्तमान् ।।२

पाक फलों, पुष्पों, एवं दधि समेत भूपात्र पर सुसज्जित किया गया हो । पार्थ ! इस प्रकार वृक्ष की पूजा सुसम्पन्न करने वाले पुरुष अथवा स्त्री शोक दुःख से मुक्त होती है, इसमें संदेह नहीं । सात जन्म तक वह श्रीमती सुख सौभाग्य संयुक्त होकर पुत्र-पौत्रादि रूपी फल समेत इस मर्त्य लोक में अत्यन्त सम्मानित होती है । इस प्रकार नवमी के दिन प्रातः काल सूर्योदय के समय नैवेद्य, पुष्प, फल, वस्त्र, एवं अनेक प्रकार के धान्य द्वारा अक्षत फल वाले श्री वृक्ष की जो पुरुषोत्तम का परम प्रिय है, सविधान पूजन करने पर मनुष्यों को परम पद की प्राप्ति होती है ।४-१०

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
श्रीवृक्षनवमी व्रत वर्णन नामक साठवाँ अध्याय समाप्त ।६०।

अध्याय ६१

ध्वजनवमीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—भगवती जगदम्बिका द्वारा महिषासुर के निधन होने पर भी उसी वैर को स्मरण कर उन महान् असुरों ने अनेक बार संग्राम किया किन्तु देवी ने भी धर्म के संस्थापनार्थ अनेक भाँति के रूप धारण कर उन महान् असुर योद्धाओं का बार-बार हनन किया । तदुपरांत महिष पुत्र महाबली रक्तासुर

अथ रक्तासुरो नाम महिषस्य सुतो महान् । आसीत्तेन तपस्तप्तं वर्षाणां नियुतानि षट् ॥
तस्मै ददौ चतुर्वक्त्रो राज्यं त्रैलोक्यमण्डले ॥३
तेन लब्धं वरेणाथ मेलयित्वा दनोः सुतान् । प्रारब्धं सह शक्रेण युद्धं गत्वाऽमरावतीम् ॥४
तद्दृष्ट्वा दानवबलं सन्नद्धात्युद्धतध्वजम् । युयुधे दानवैः सार्द्धं सुरैः शक्रपुरस्सरैः ॥५
तत्र प्रावर्तत नदी शोणतौघतरङ्गिणी । खड्गमत्स्यगदाग्राहवसुनन्दककच्छपा ॥
वहन्ती पितृलोकाय सुरासुरभयानका ॥६
अथ रक्तासुरो रोषाद्युयुधे विबुधैः सह । ते हन्यमाना विबुधा रक्ताक्षेण महारणे ॥७
भ्रष्टाः स्वर्गं परित्यज्य त्यक्तप्रहरणा द्रुतम् । करच्छत्रां पुरीं प्राप्ता यत्रास्ते भववल्लभा ॥८
दुर्गा चामुण्डया सार्धं नवदुर्गासमन्विता । आद्या तावन्महालक्ष्मीर्नन्दा क्षेमकरी तथा ॥९
शिवदूती महारुण्डा भ्रामरी चन्द्रमङ्गला । रेवती हरसिद्धिस्तु नवैताः परिकीर्तिताः ॥
एतासां ते स्तुतिं चक्रुस्त्रिदशाः प्रणताननाः ॥१०

अमरपतिमुकुटचुम्बितचरणाम्बुजसकलभुवनसुखजननी ।
जयति जगदीशवन्दिता सकलामलनिष्कला दुर्गा ॥११
विकृतनखदशनभूषणरुधिरवशाच्छुरितक्षतखड्गहस्ता ।
जयति नरमुण्डमुण्डितपिशित सुराहारकृच्चण्डी ॥१२

के साठ सहस्र वर्ष तक घोर तप करने पर चतुर्मुख ब्रह्मा ने इस त्रैलोक्य मण्डल में उसे पुनः राज्य प्रदान किया। वरदान प्राप्त कर उस राक्षस ने दनु वंशजों को प्रोत्साहन देकर अपने पक्ष में मिलाया और असंख्य सैनिकों समेत अमरावती में पहुँच कर इन्द्र के साथ युद्ध आरम्भ कर दिया।१-४। दानवों की भीषण सेना देख कर देवों ने इन्द्र को आगे कर उन उद्धृत ध्वजा वाले दानवों के साथ घोर संग्राम किया, जिससे एक शोणित वाहिनी भीषण नदी उत्पन्न हो गयी तथा जिसमें गदा, ग्राह, वसु और नंदक (तलवार) कच्छप के समान भीषण रूप धारण कर उन देवों एवं असुरों को पितृ लोक के लिए आवाहित करते थे। अनन्तर देवों के साथ युद्ध करते हुए रक्तासुर के तीक्ष्ण प्रहारों द्वारा आहत होकर देवों ने शास्त्रास्त्रों के त्याग पूर्वक स्वर्ग पुरी का भी त्याग कर भववल्लभा (भवानी) की करच्छत्रा नामक पुरी को प्रस्थान किया। जहाँ चामुण्डा एवं अपने नवरूपों समेत श्री महादुर्गा जी आवास करती हैं—आद्या महालक्ष्मी, नन्दा, क्षेमकरी, शिवदूती, महारुण्डा, भ्रामरी, चन्द्र मङ्गला, रेवती और हरसिद्धि, उनके नाम बताये गये हैं। वहाँ पहुँच कर देवों ने विनम्र होकर उनकी स्तुति करना प्रारम्भ किया।५-१०। ब्रह्माण्ड के समस्त प्राणियों को सुख प्रदान करने वाली उस दुर्गा जी की जय हो, जिसके चरण कमल को सुरेश का मुकुट सदैव चुम्बन करता है, और जगदीश की वन्द्या, कलायुक्त, अमलच्छवि एवं निर्गुण रूप हैं। नरमुण्ड की माला एवं राक्षसों के मांस-रक्त के पान करने वाली चण्डी देवी की जय हो, जो भूषण रूप नख और दशनों के विकृत होने के नाते

प्रच्छादितशिखिगणोद्वलविकटजटाबद्धचन्द्रमणिशोभा ।
जयति दिगम्बरभूषा सिद्धवटेशा महालक्ष्मीः ॥१३
करकमलजनितशोभा पद्मासनबद्धपद्मवदना च ।
जयति कनण्डलुहस्ता नन्दा देवी नतार्तिहरा ॥१४
दिग्वसना विकृतमुखा फेत्कारोद्दामपूरितदिशौघा ।
जयति विकरालदेहा क्षेमङ्करी रौद्रभावस्था ॥१५
क्रोशितब्रह्माण्डोदरसुरवरमुखरहुंकृतनिनादा ।
जयति सदातिमिहस्ता शिवदूती प्रथमशिवशक्तिः ॥१६
मुक्ताट्टहासभैरवदुःसहतरचकितसकलदिक्चक्रा ।
जयति भुजगेन्द्रमणिशोभितकर्णा महातुण्डा ॥१७
पटुपटहमुरजमर्दलझल्लरिझङ्कारनर्तितावयवा ।
जयति मधुव्रतरूपा दैत्यहरी भ्रामरी देवी ॥१८
शान्ता प्रशान्तवदना सिंहवरा ध्यानयोगतन्निष्ठा ।
जयति चतुर्भुजदेहा चन्द्रकला चन्द्रमण्डला देवी ॥१९
पक्षपुटचंचुघातैः संचूर्णितविविधशत्रुसङ्घाता । जयति शितशूलहस्ता बहुरूपा रेवती भद्रा ॥२०

प्रवाहित रक्त की धारा वश क्षत अंगों में चमकने वाले खड्ग को धारण करती हैं । दिगम्बर वेष धारिणी, एवं सिद्धों की स्वामिनी महालक्ष्मी की जय हो, जो अपनी विकराल जटा में बाँधे हुए चन्द्रमणि की शोभा को मयूरों द्वारा आच्छादित करती हैं । कर में कमण्डलु लिए एवं प्रणत भक्तों की आर्तिहरिणी नन्दा देवी की जय हो, जो अपनी करकमल-जनित शोभा को कमलासन में आबद्ध सा किये एवं कमल मुखी परम सुन्दरी हैं । दिगम्बर वेश, विकृत मुख, अपनी रोष पूर्ण श्वास की ज्वाला से चारों दिशाओं को प्रज्वलित करने वाली, विकराल देह एवं रौद्रमास से स्थित रहने वाली क्षेमकरी देवी की जय हो ।११-१५। शिव की शिव दूती नामक उस आधा शक्ति की जय हो, जो इस ब्रह्माण्ड के उदर में क्रन्दन करने वाले देवेन्द्र की उस मुखरता को अपने हुंकार विवाद से नष्ट करती हैं । और अत्यन्त प्रमत्त होकर अपने हात में मत्स्य धारण करती है । भुजगेन्द्र से अपने कर्ण को आबद्ध करने वाली उस महातुण्डा देवी की जय हो । जो अपने भीषण एवं अत्यन्त दुःसह अट्टहास से सम्पूर्ण दिशाओं को चकित करती हैं । पटह, मुरज, मर्दल एवं झालरि वाद्यों के अलङ्कारों से सात शरीर के अंग को नचाने वाली, मधुव्रत रूप एवं दैत्य घातिनी भ्रामरी देवी की जय हो । चार भुजाओं से भूषित, चन्द्र कलाओं से पूर्ण उस चन्द्र मण्डल देवी की जय हो, जो शांत स्वभाव, अत्यन्त शान्त मुख, और परमोत्तम सिंह पर सुशोभित होकर योगियों की भाँति ध्यान मग्न रहती हैं । भद्र रूप धारिणी रेवती देवी की जय हो, जो अपने दोनों पक्षों और चोंच के

पर्यटति जगति हृष्टा पितृवननिलयेषु योगिनीसहिता।
जगति हरसिद्धिनाम्नी हरसिद्धिर्वंदिता सिद्धैः॥२१

इति नवदुर्गासंस्तवमनुपममार्याभिरपरराट् कृत्वा। इदमूचे सह देवैस्त्राह्यस्मान्सर्वभीतिभ्यः॥२२
पुनः पुनः प्रणम्योचुर्भवानीं सिंहवाहिनीम्। अस्माकं भयभीतानां शरण्ये शरणं भव॥२३
देवानां तद्वचः श्रुत्वा दत्त्वा तेभ्योऽभयं ततः। सिंहारूढा विनिर्गत्या दुर्गाभिः सहिता पुरा॥२४
युयुधे दानवेस्सार्धं महासमरदुर्दिनम्। कुमारी विंशतिभुजा घनविद्युल्लतोपमा॥२५
तेऽपि तत्रासुरा प्राप्ताः प्रचण्डा रुद्ररूपिणः। सर्वे लब्धवराः शूराः सुतप्ततपसस्तथा॥२६
महाग्राहपराक्रान्ता दुष्टमायाविनष्टये। अब्राह्मण्याद्वद्यमिषा नामतश्च निजोद्यतात्॥२७
इन्द्रमारी असत्क्लेशः प्रलम्बो नरकः सुतः। कुष्ठः पुलोमा शरभः शम्बरो दुन्दुभिः खरः॥२८
इल्वलो नमुचिर्भौमो वातापिर्धेनुकःकलिः। मायावृतौ बलौ बन्धुर्मधुकैटभकालजित्॥२९
रहः प्रौंड्रादिदैत्येन्द्राः प्राधान्येन प्रकीर्तिताः। फनगोभिर्जनाः सर्वे सन्नद्धाः स्वग्रतो ध्वजः॥३०
रूपतो वर्णिताश्चैव ध्वजास्तेषां पृथक्पृथक्। प्रत्यदृश्यन्त राजेन्द्र ज्वलिता इव पावकाः॥३१
काञ्चनाः काश्चना पीडाः काञ्चनस्रगलंकृताः। पताका विविधैर्वालैरुच्छ्रिता लक्षणान्विताः॥३२

आघातों द्वारा अनेक शत्रु संघ का मर्दन करती हैं तथा तीक्ष्ण शूल हाथ में लिए अनके रूप धारण करती हैं।१६-२०। उसी भाँति सिद्धों से सुसेवित हर सिद्धि देवी की जय हो, जो हर्ष मग्न होकर योगिनियों समेत अपने पिता हिमालय के वन निवेशों में स्वतन्त्र विचरण किया करती हैं। इस प्रकार आर्या छन्द वाली स्तुतियों द्वारा नवदुर्गा की स्तुति करने के उपरांत देवराज इन्द्र ने देवों के साथ यह भी कहा कि—समस्त भय से हम लोगों की रक्षा करो पश्चात् प्रणत होकर अनुनय विनय पूर्वक बार-बार उस सिंह वाहिनी भवानी से कहा—शरण्ये! हम भय भीतों की शरण हो। सिंहारूढ होकर देवी ने अपनी विभूतियों समेत देवों को अभय दान प्रदान कर पुर से बाहर निकल कर दानवों के साथ महासमर आरम्भ किया। उस समय कुमारी रूप भगवती के बीस भुजा और स्वयं घन घमण्ड की विद्युल्लता की भाँति प्रकाशित हो रही थी।२१-२५। समराङ्गण में दैत्य गण भी, जो शूर वीर, कठिन तप द्वारा वरदान प्राप्त कर प्रचण्ड एवं रुद्र रूप दिखायी देते थे, उन दुष्टों की माया के विनष्ट करने के लिए महाग्राह रूपी देवी द्वारा आक्रान्त होने पर जो इन्द्रमारी, अलत्क्लेश, प्रलम्ब, नरक, कुष्ठ, पुलोमा, शरभ, शम्बर, दुंदुभि, खर, इल्वल, नमुचि, भौम, वातापि, धेनुक, कलि मायावी दोनों बन्धु मधु कैटभ और कालजित् एवं प्रौंड्रादि नामों से प्रख्यात थे, अपनी ध्वजाओं को आगे किये रण क्रीड़ा के लिए सन्नद्ध थे।२६-३०। उन अशुद्ध आमिषभोजी राक्षसों के, जो सामग्री समेत उपस्थित थे, रूपों के वर्णन कर दिये गये, उनकी ध्वजाएँ भी पृथक्-पृथक् प्रज्वलित अग्नि की भाँति दिखायी देती थी। काञ्चनमय, काञ्चन-खचित, और काञ्चन की मालाओं से विभूषित वे पताकाएँ उन्नत लक्षणों से अंकित थी, जो नील, पीत, श्वेत-रक्त, और कृष्ण वर्ण की चौकोर

नील्यः पीताः सिता रक्ताः कृष्णास्ताः पञ्चवर्णकाः । तत्र पट्टपटीसौत्राः कृतबुद्बुदकर्बुराः ॥३३
पताकाकान्तिरनला नर्तक्य इव शोभनाः ॥३४
ततो हलहलारावं चक्रुस्ते दानवोत्तमाः । प्रास्फालयन्त पणवभेरीझर्झरगोमुखान् ॥
न्यवादयन्तानकान्ये शङ्खाडम्बरडिंडिमान् ॥३५
एवं ते समयुध्यन्त भवान्यौ दैत्यदानवाः । समाजघ्नुः शरैः शूलैः परिघैः शक्तितोमरैः ॥
कर्णकैरीषणैः कुन्तैः शतघ्नीकूटमुद्गरैः ॥३६
आहत्य मानरोषेण जज्वलुः समरेऽधिकम् । सिंहारूढाद्रुतं देवी रणमध्ये प्रधाविता ॥३७
आच्छिद्याच्छिद्य चिह्नानि ध्वजान्नानाविधांस्तथा । बलात्कारेण दैत्यानामनाथसमरे रुषा ॥३८
चिह्नकानि ददौ तुष्टा देवेभ्यः शीघ्रचारिणी । सुरैरपि गृहीतानि जय देवीति वादिभिः ॥३९
अम्बिका तु भृशं तुष्टा तेषां चक्रे क्षणात्क्षयम् । कालरात्री दानवानां मारीव निपपात सा ॥
जीवितानि च जग्राह दैत्यानां देवनन्दिनी ॥४०
अथ रक्तासुरं कण्ठे गृहीत्वापात्य भूतले । देवी जघान तीक्ष्णेन त्रिशूलेन भृशं दिवि ॥४१
स भिन्नहृदयः पश्चाद्भूमौ तत्र प्रपोथितः । तथापि देव्या निहतः पपात च ममार च ॥४२
देवास्तानसुराञ्जित्वा गत्वा शत्रुपुरं जितम् । ददृशुस्ते रणप्रान्ते लम्बमानान्महाध्वजान् ॥
यात्रां चक्रुः सम्प्रहृष्टा नवम्या ध्वजचिह्निताम् ॥४३

एवं सूत्रों की चित्र-विचित्र चित्रकारियों से सुसज्जित थीं, तथा प्रज्वलित अग्नि वर्ण की नर्तकियों की भाँति उस समय उनकी कान्ति मनमोहक थी। उसी समय उन श्रेष्ठ दानवों के कोलाहल भयानक शब्द सुनायी पड़े, जो पणव, भेरी, झर्झर, गोमुख, आनक, शंख, आडम्बर, और डिंडिम की ध्वनियों से परिवर्द्धित था। तदुपरांत भगवती के साथ उन दैत्य दानवों का समर प्रारम्भ हुआ, जिसमें शर, शूल, परिध, तोमर शक्ति, कर्णके, इषण, कुंत, शतघ्नी एवं कूट मुद्गर के आघातों से रुष्ट होकर भगवती अत्यधिक प्रज्वलित (कुद्ध) हो उठी, और सिंह पर सुशोभित होकर उस रण में आक्रमण के साथ, छत्र, चिह्न, एवं अनेक भाँति की ध्वजाओं को बलात् दैत्यों से छीन कर उन देवों को प्रदान किया।३१-३८। शीघ्रचारिणी देवी द्वारा प्राप्त चिह्नों को सहर्ष स्वीकार कर देवों ने 'जय-जय' की ध्वनि करना आरम्भ किया, जिससे प्रसन्न होकर देवी अम्बिका ने उसी क्षण दैत्यों का वधकर उन्हें धराशायी कर दिया। कारकात्री ने मारी की भाँति दानवों का संहार किया, देवनन्दिनी उन्हें जीवित पकड़ कर भक्षण कर जाती थीं। पश्चात् देवी ने अपने तीक्ष्ण त्रिशूल द्वारा रक्तासुर के कण्ठ को भेदन कर आकाश में उछाल कर पृथिवी पर गिरा दिया। भूमि पर गिरते ही हृदय के विदीर्ण होने के अवसर कुछ स्वस्थ होना चाहा, किन्तु देवी ने उसे पुनः आघात द्वारा गिराया जिससे गिरने पर आहत होते ही उसके प्राण निकल गये। तदुपरांत देवों ने शत्रुओं के आवास स्थानों पर अधिकार किया और यह भी देखा कि वहाँ ऐसे विशाल ध्वज लगे हुए हैं, जो रण के अंत तक लम्बे दिखायी देते थे। पाण्डव! देवों ने अत्यन्त प्रसन्न होकर नवमी के दिन ही वह ध्वज चिह्नित

अतोद्यापीह भूपालैर्जयलब्धीच्छयादृतैः । उपोष्यते नरैर्भक्तैर्नारीभिश्चैव पाण्डव ॥४४

युधिष्ठिर उवाच

कीदृग्विधानं तस्यास्तु नवम्या ब्रूहि मे प्रभो । सरहस्यं समन्त्रं च येन तुष्यति चण्डिका ॥४५

श्रीकृष्ण उवाच

पौषस्य शुक्लपक्षे या नवमी सम्परिश्रुता । तस्यां स्नात्वा शुभैः पुष्पैरर्चनीया हरेः स्वसा ॥४६
कुमारी सुभगा देवी सिंहस्यन्दनगामिनी । ध्वजान्नानाविधान्कृत्वा पुरस्तस्याश्च पूजयेत् ॥
मालतीकुसुमैर्दीपैर्गन्धधूपविलेपनैः ॥४७
बलिभिः पशुभिर्मेध्यैः सुरामांसासृगम्बरैः । दधिचन्दनचूर्णैश्च भग्नैश्चानग्निपाचितैः ॥
मन्त्रेणानेन कौंतेय ब्रह्मणोप्यथवा ननु ॥४८
भद्रां भगवतीं कृष्णां विश्वस्य जगतो हिताम् । सम्वेशिनीं संयमनीं ग्रहनक्षत्रमालिनीम् ॥४९
प्रपन्नोहं शिवां रात्रीं भद्रे पारय मे व्रतम् । सर्वभूतपिशाचेभ्यः सर्वसत्वसरीसृपैः ॥
देवेभ्यो मानुषेभ्यश्च भयेभ्यो रक्ष मां सदा ॥५०
ततश्चारोपयेद्राजा देवीनां भवने तथा । भोजयेत कुमारीं च प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥५१
उपवासेन कुर्वीत एकभक्तेन वा पुनः । भक्त्या भूपालपञ्चास्य भक्तिस्तस्या गरीयसी ॥५२

यात्रा आरम्भ की थी । इसीलिए जयाभिलाषी राजा, पुरुष एवं स्त्रियाँ भक्ति पूर्वक उसमें उपवास रहते हैं ।३९-४४

युधिष्ठिर ने कहा—प्रभो ! उस नवमी के उपवास आदि विधानों को सहर्ष बताने की कृपा कीजिये, जिसके समंत्रक प्रयोग करने पर भगवती चण्डिका शीघ्र प्रसन्न होती हैं ।४५

श्रीकृष्ण बोले—पौष मास की शुक्ल नवमी के दिन स्नान करके सुगन्धित एवं मनोरम पुष्पों द्वारा हरि की भगिनी (देवी) की सप्रेम अर्चना करनी चाहिए । सिंह के स्पन्दन पर सुशोभित उन सुभगा कुमारी देवी के सम्मुख अनेक भाँति की ध्वजाओं के स्थापन पूर्वक मालती पुष्प, दीप, गन्ध, धूप, अनुलेपन, पशु की बलि—उसके मध्य, मांस रक्त एवं चर्म सुरा, दधि, चन्दन, और अनग्नि पक्क फलों द्वारा मंत्रोच्चारण करते हुए उसकी पूजा करे भद्रे ! ब्रह्म विश्व के हितार्थ आविर्भूत होने वाली कृष्णा एवं भगवती भद्रा की शरण में प्राप्त हूँ, जो आब्रह्माण्ड की संवेशिनी, संयमन करने वाली एवं ग्रह, नक्षत्र-मालाओं से विभूषित है । तथा शिवा एवं कालरात्रि रूप हैं । भद्रे ! मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ, समस्त भूत, पिशाच, सभी प्राणियों, सर्प, देव, और उभय भाँति के मनुष्यों से मेरी सदैव रक्षा करो । अनन्तर राजा को चाहिए उन्हें देवी के भवन में आरोपित करके कुमारियों के भोजनोपरांत क्षमा प्रार्थना करे । भूप ! उपवास रहकर अथवा एकाहारी रहकर ध्वजा-रोपण करना प्रशस्त कहा गया है और भक्ति पूर्वक उनके मन्दिर का निर्माण करने वाला पुरुष एवं उसकी भक्ति अत्यन्त गौरव शालिनी बतायी

एवं ये पूजयिष्यन्ति ध्वजैर्भगवतीं नराः । तेषां दुर्गा दुर्गमार्गे चोरव्यालाग्नि संकटे ।।५३
रणे राजकुले गेहे युद्धमध्ये जले स्थिते । रक्षां करोति सततं भवानी सर्वमङ्गला ।।५४
अस्यां बभूव विजयो नवम्यां पाण्डुनन्दन । भगवत्यास्तु तेनैषा नवमी सततं प्रिया ।।५५
धन्या पुण्या पापहरा सर्वोपद्रवनाशनी । अनुष्ठेया प्रयत्नेन सर्वान्कामानभीप्सुभिः ।।५६
देव्यर्चनाहितमतिर्मनुजो नवम्यां हैमस्रजं ध्वजवरं स हि रोपयेद्यः ।
भोगानवाप्य मनसोभिमतान्प्रकामं देहं विहाय समुपैति स वीरलोकम् ।।५७
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
ध्वजनवमीव्रतवर्णनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ।६१

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

उल्कानवमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

उल्काख्यां नवमीं राजन्कथयामि निबोधताम् । या काश्यपेन कथिता तारकस्यार्तिनाशिनी ।।१
अश्वयुक्छुक्लपक्षे या नवमी लोकविश्रुता । नद्यां स्नात्वा समभ्यर्च्य पितृदेवीं यथाविधि ।।२
पश्चात्सम्पूजयेद्देवीं चामुण्डां भैरवप्रियाम् । पुष्पैर्धूपैस्सनैवेद्यैर्मांसमत्स्यसुरासवैः ।।३
पूजयित्वा स्तवं कुर्यान्मन्त्रेणानेन मानवः । समारोप्याञ्जलिं मूर्ध्नि जानुभ्यामवनीं गतः ।।४

गयी है । इस प्रकार ध्वजाओं द्वारा भगवती की आराधना करने वाले मनुष्य के दुर्गम मार्ग में स्थित होकर भवानी सर्व मंगला देवी चोर, सर्प, अग्नि संकट, रण, राजकुल, गृह, युद्ध, जल मध्य से उसकी निरन्तर रक्षा करती हैं । पाण्डुनन्दन ! इसी नवमी के दिन विजय होने के नाते भगवती को यह नवमी अत्यन्त प्रिय है । इसलिए समस्त कामनाओं की सफलता के इच्छुकों को इसी दिन में अनुष्ठान एवं स्तुति करनी चाहिए, जो धन्य पुण्य, पापहारिणी तथा समस्त उपद्रवों को शमन करने वाली है । इस प्रकार देवी की आराधना में तन्मय रहने वाले मनुष्य को, जो नवमी के दिन सुवर्ण की माला समेत को आरोपित करते हैं, समस्त सुखोपभोग के अनन्तर देवी लोक की प्राप्ति होती है ।४६-५७

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
ध्वज-नवमी व्रत वर्णन नामक एकसठवाँ अध्याय समाप्त ।६१।

अध्याय ६२

उल्कानवमीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! उल्का नवमी का व्रत विधान मैं तुम्हे बता रहा हूँ, जिस तारक के दुःख शमनार्थ बृहस्पति ने उन्हें बताया था । सुनो ! आश्विन मास की शुक्ल नवमी के दिन नदी में स्नान करके पितृ एवं देव के तर्पण करने के उपरांत पुष्प, धूप, नैवेद्य, सुरा, मांस, मत्स्य द्वारा भैरव प्रिया चामुण्डा देवी की अर्चना सुसम्पन्न करके उस मनुष्य को घुटने के बल भूमि पर बैठे और अञ्जलि को शिर से लगा

महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि । द्रव्यमारोग्यविजयौ देहि देवि नमोऽस्तु ते ।।५
कुमारीर्भोजयेत्पश्चान्नवनीलसुकंचुकैः[1] । परिधानैर्भूषणैश्च भूषयित्वा क्षमापयेत् ।।६
सप्त पञ्चाप्यथैकां वा चित्तवित्तानुरूपतः । श्रद्धया तुष्यते देवी इति वीरानुशासनम् ।।७
अभ्युक्ष्य मण्डलं कृत्वा गोमयेन शुचिस्मितः । दत्तासने चोपविशेत्पात्रं च पुरतो न्यसेत् ।।८
ततः सुसिद्धमन्नं यत्तत्सर्वं परिवेषयेत् । सघृतं पायसं चापि स्थापयेत्पात्रसन्निधौ ।।९
तृणानि षष्टिमादाय चादाय धमनीं तथा । प्रज्वालयेत्ततो भोज्यं यावज्ज्वलति पावकः ।।१०
प्रशान्ते भोजनं त्यक्त्वा समाचम्य प्रसन्नधीः । चामुण्डां हृदये ध्यात्वा गृहकृत्यपरो भवेत् ।।११
अनेन विधिना सर्वं मासिमासि समाचरेत् । ततः संवत्सरस्यान्ते भोजयित्वा कुमारिकाः ।।१२
वस्त्रैराभरणैः पूज्य प्रणिपत्य क्षमापयेत् । सुवर्णं शक्तितो दद्याद्गां च विप्राय शोभनाम् ।।१३
य एवं कुरुते पार्थ पुरुषो नवीव्रतम् । न तस्य शत्रवो नार्तिः स राजा नष्टतस्करः ।।१४
भूताः प्रेताः पिशाचा नो जनयन्ति भयं गृहे । समुद्यतेषु शस्त्रेषु हन्ता तस्य न विद्यते ।।१५
तं रक्षति सदोद्युक्ता सर्वास्वापत्सु चण्डिका । नरो वा यदि वा नारी व्रतमेतत्समाचरेत् ।।
उल्कावत्स सपत्नानां ज्वलन्नास्ते सदा हृदि ।।१६

कर इस भाँति स्तुति करनी चाहिए। कि महिषासुर घातिनि एवं मुण्डमाला धारण करने वाली चामुण्डे महाभागे ! मैं आपको बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ, मुझे द्रव्य समेत आरोग्य तथा विजय प्रदान करने की कृपा करें। अनन्तर कुमारी भोजन तथा नवीन एवं नीलरंग की चोली वस्त्र और आभूषण से उन्हें विभूषित करके अपने चित्त वृत्ति के अनुसार सात, पाँच अथवा एक ही बार श्रद्धा समेत क्षमा प्रार्थना करने पर देवी प्रसन्न होती हैं, ऐसा बताया गया है। भूमि को जल अभिसिञ्चित कर उस मण्डल को गोमय से लीप कर शुद्ध करे, पश्चात् आसन पर बैठकर उनके सम्मुख सत्पात्र में सिद्ध अन्न को, जो घृतप्लुत एवं खीर युक्त हो, रखकर साठ की संख्या में तृण रखकर धमनी (धौंकनी) द्वारा अग्नि प्रज्वलित करके जब तक वह जलता रहे भोजन करे उसके शांत होने पर भोजन त्याग कर अत्यन्त प्रसन्नता से आचमन करे और हृदय में चामुण्डा देवी के ध्यान पूर्वक गृहकार्य करता रहे। इस प्रकार प्रतिमास में सविधान उसे सुसम्पन्न करते हुए वर्ष की समाप्ति में कुमारियों के भोजनोपरांत वस्त्राभूषणों से उनकी पूजा करके नम्रतापूर्वक क्षमा प्रार्थना करे। ब्राह्मण के लिए यथाशक्ति सुवर्ण और शोभन गौ का दान अवश्य करना चाहिए।१-१३। पार्थ ! इस प्रकार नवमी व्रत को सुसम्पन्न करने वाले पुरुष को शत्रु राजा एवं तस्कर जनित संकट, भूत, प्रेत एवं पिशाच के भय नहीं होता है और चलित अस्त्रों के मध्य भी उसका हन्ता कोई नहीं हो सकता है। सभी आपत्तियों में चण्डिका देवी उसकी रक्षा करती है। इस व्रत को सुसम्पन्न करने वाली स्त्री भी अपनी सपत्नियों के हृदय में उल्का की भाँति सदैव प्रज्वलित रहती है। इस प्रकार नवमी के दिन

---

१. नवनीलकुसंभकैः ।

तां शुष्ककोहरमुखीं प्रकटोरुदंष्ट्रां कापालिनीं समवलम्बितमुण्डमालाम् ।
उक्तव्रतेषु पुरुषो नवमीषुचण्डीं सम्पूज्य कस्य हृदये न च शं करोति ।।१७

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
उल्कानवमीव्रतवर्णनं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ।६२

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः

दशावतारचरित्रव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पूर्वं कृतयुगस्यादौ भृगोर्भार्या महासती । दिव्यारामाश्रमे रम्या गृहकार्यैकतत्परा ।।१
बभूव सा भृगोर्नित्यं हृदयेप्सितकारिणी । तस्यां मुनिर्महातेजा । अग्निहोत्रं निधाय च ।।२
विष्णोस्त्रासाद्दानवानां कुलत्राणसमाकुलम् । मुक्त्वा युद्धस्थितं पार्श्वे समर्प्य मुनिपुङ्गवः ।।३
दत्त्वा निक्षेपकं सर्वं[1] दिव्यायै सुमहातपाः । जगाम हिमवत्पार्श्वे हरं तोषयितुं रहः ।।४
संजीवनीकृते नित्यं कणैर्धूममधोमुखः । पपौ दानवराजस्य विजयाय पुरोहितः ।।५
आजगाम गते तस्मिन्गरुडेनाश्रितो हरिः । अभ्येत्य जल्पनं चक्रे चक्रेणोत्कृत्तकन्धरम् ।।६

चण्डिका देवी की, जो शुष्क हरमुख, ऊरु और दाँतों को प्रकट किये, कपाल लिए एवं लम्बायमान मुण्डमाला से विभूषित है, आराधना करने पर किसके हृदय को अपने अधीन नहीं कर लेता है । अर्थात् सभी उसके दासानुदास होने के लिए लालायित रहते हैं ।१४-१७

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर के सम्वाद में
उल्कानवमी व्रत-वर्णन नामक बासठवाँ अध्याय समाप्त ।६२।

अध्याय ६३

दशावतार चरित्र का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पहले समय में कृतयुग के आरम्भ में भृगु (शुक्र) की स्त्री महासती दिव्या अपने आश्रम से रहती हुई गृहकार्य को अत्यन्त परिश्रम एवं पटुता से सुसम्पन्न कर रही थी, जिससे वह अपने पति मनु की हृदयेश्वरी बन गयी थी । महातेजा मुनि ने उस अपनी वल्लभा को अग्नि होत्र सौंप कर विष्णु के त्रास से भयभीत दानवों के ऋणार्थ युद्धस्थिति को रोककर तथा अपनी प्रिया दिव्या को धरोहर रूप में उसे प्रदान कर आशुतोष हर को प्रसन्न करने के लिए हिमालय के समीप प्रदेश को प्रस्थान किया । संजीवनी विद्या की प्राप्ति के लिए उन्होंने कठिन तप आरम्भ किया—अधोमुख होकर धूप कण का पान करते हुए आराधना आरम्भ की । दानव राज के विजयार्थ पुरोहित भृगु के उस कठिन व्रत के लिए जंगल चले जाने पर उनके गृह गरुड पर बैठे विष्णु का आगमन हुआ । भगवान् विष्णु ने

---

१. ह्यर्घम् ।

गलद्रुधिरसम्पन्नं लोहितार्णवसंनिभम् । दृष्ट्वासुरबलं सर्वं निहतं विष्णुना तदा ॥
दिव्या संशप्तुकामाभूद्विष्णुं सास्राविलेक्षणा ॥७
यावन्नोच्चरते वाचं चक्रेण कृत्तकंधरम् । तावन्निपातयामासशिरस्तस्याः सकुण्डलम् ॥८
प्राप्य संजीवनीं विद्यां यावदायात्यसौ मुनिः । तावत्स दैत्यान्नापश्यत्पश्यति स्म निपातितम् ॥९
रोषाच्छशाप च हरिं भ्रुकुटीकुटिलाननः । अवश्यभावभावित्वाद्विश्वस्य हितकारणात् ॥१०
यस्मात्त्वया हता दैत्या ब्रह्मणो मत्परिग्रहाः । तस्मात्त्वं मानुषे लोके दश वारान्गमिष्यसि ॥११
अतोऽर्थं मानुषे लोके रक्षार्थं च महीक्षिताम् । अवतारं चकाराहं भूयोभूयः पृथग्विधम् ॥१२
पूर्वोक्तैः कारणैः पार्थ अवतीर्णं महीतले । मां नरा येऽर्चयिष्यन्ति तेषां वासस्त्रिविष्टपे ॥१३

युधिष्ठिर उवाच

व्रतं दशावताराख्यं कृष्ण ब्रूहि सविस्तरम् । समन्त्रं सरहस्यं च सर्वपापप्रणाशनम् ॥१४

श्रीकृष्ण उवाच

प्रोष्ठपदे सिते पक्षे दशम्यां नियतः शुचिः । स्नात्वा जलाशये स्वच्छे पितृदेवादितर्पणम् ॥१५
कृत्वा कुरुकुलश्रेष्ठ गृहमागत्य मानवः । गृह्णीयाद्धान्यचूर्णस्य द्विहस्तप्रसृतित्रयम् ॥१६
क्रमेण पावयेत्तां तु पुंसंज्ञं घृतसंश्रितम् । वर्षे वर्षे दिने तस्मिन्यावद्वर्षाणि वै दश ॥१७
प्रथमे पूरिकान्वर्षे द्वितीये घृतपूरकान् । तृतीये शुक्लकांसारं चतुर्थे मोदकाञ्छुभान् ॥१८

वहाँ पहुँच कर कुछ बातें की और अपने चक्र द्वारा उनके कंधे में आघात किया, जिससे उसने (दिव्या ने) देखा कि समस्त असुर सैनिकों के शरीर से शोणित नदी प्रवाहित हो रही है। इस प्रकार विष्णु द्वारा असुर सेना को विनष्ट देख कर दिव्या ने अश्रुमुखी होकर प्रचण्ड रूप धारण किया और विष्णु को शाप देने के लिए कटिबद्ध हुई। जब तक वह मुख से कुछ कहे कि विष्णु ने अपने चक्र द्वारा कुण्डल समेत उसके शिर को काट कर भूमि पर गिरा दिया। अनन्तर संजीवनी विद्या को प्राप्त कर मुनि ने घर आकर दैत्यों के नाश देखने के पूर्व अपना ही (दिव्या का निधन) सर्वनाश देखा, जिससे भौंहे और मुख को कुटिल करते हुए उन्होंने अत्यन्त रोष से विष्णु को शाप प्रदान किया—उस अवश्यंभावी को, जो विश्व का एक मात्र हित साधन था, कौन टाल सकता था। उन्होंने कहा—जो ब्रह्म होकर तुमने दैत्यों और विशेष कर मेरे परिजनों का संहार किया है, अतः मनुष्य लोक में तुम्हें दश बार जन्म ग्रहण करना पड़ेगा। पार्थ ! इसीलिए मैं मर्त्य लोक में राजाओं के रक्षार्थ बार-बार पृथक-पृथक अवतार धारण करता हूँ और पूर्वोक्त कारणों वश मैं अभी इस पृथ्वी तल पर अवतरित हूँ। इसलिए मेरी अर्चना करने वाले मनुष्यों का आवास स्थान स्वर्ग में अवश्य निश्चित रहता है।१-१३

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण ! समस्त पापों के शमन करने वाले इस दशावतार नामक व्रत की व्याख्या विस्तारपूर्वक सरहस्य एवं मंत्र समेत बताने की कृपा कीजिये।१४

श्रीकृष्ण बोले—भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की दशमी के दिन संयम पूर्वक किसी जलाशय में पवित्रता पूर्ण स्नान एवं देवपितृ तर्पण करने के उपरांत अपने घर आकर तीन अञ्जली धान्य के पूर्ण में घीकुवांर को मिलाकर उसी के नैवेद्य क्रमशः प्रत्येक वर्ष प्रदान करता रहे। पहले वर्ष में पूरी, दूसरे में

सोहालकान्पञ्चमेऽब्दे षष्ठेऽब्दे खण्डवेष्टकान् । सप्तमेऽब्दे कोकरसानपूपांश्च तथाष्टमे ॥१९
नवमे कर्णवेष्टांस्तु दशमे खण्डकाञ्छुभान् । दश धेनूर्दशहरे दशविप्राय दापयेत् ॥२०
क्रमेण भक्षयित्वा च यथोक्तं भरतर्षभ । अर्द्धार्द्धं पिष्टयेदेवमर्द्धार्द्धं वा द्विजातये ॥
स्वत एवार्धमश्नीयाद्गता रम्ये जलाशये ॥२१
दशावतारानभ्यर्च्य पुष्पधूपविलेपनैः । मन्त्रेणानेन मेधावी हरिमभ्युक्ष्य वारिणा ॥२२
मत्स्यं कूर्मं वराहं च नरसिंहं त्रिविक्रमम् । श्रीरामं रामकृष्णौ च बुद्धं चैव सकल्किनम् ॥२३
गतोऽस्मि शरणं देवं हरिं नारायणं प्रभुम् । प्रणतोऽस्मि जगन्नाथं स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥२४
छिनत्तु वैष्णवीं मायां भक्त्या जातो जनार्दनः । श्वेतद्वीपं नयस्यस्मान्समात्मनि निवेदयेत् ॥२५
एवं यः कुरुते पार्थ विधिनानेन सुव्रत । दशावतारनामाख्यं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥२६
श्रूयन्ते यास्त्विवगालोच्य पुरुषाणां दशा दश । ताश्छिनत्ति न संदेहः शक्रप्रहरणैर्हरिः ॥२७
संसारसागरे घोरे मज्जंतं तत्र मां हरिः । श्वेतद्वीपं नयत्वाशु व्रतेनानेन तोषितः ॥२८
किं तस्य न भवेल्लोके यस्य तुष्टो जनार्दनः । सोऽहं जनार्दनो राजन्कालरूपी धरासुतः ॥
मर्त्यलोके स्वयं पार्थ भूभारोत्तारकारणम् ॥२९
या स्त्रीव्रतमिदं पार्थ चरिष्यति मयोदितम् । सा लक्ष्म्याऽचलया युक्ता भर्तुपुत्रसमन्विता ॥३०
मर्त्यलोके चिरं स्थित्वा विष्णुलोके महीयते । विष्णुलोकाद्रुद्रलोकं ततो याति परं पदम् ॥३१

घृत पूरक, तीसरे में शुक्ल कांसार, चौथे में मोदक, पाँचवें में सोहाल, छठे में खांड पूरी, सातवें में कोकरस, आठवें में मालपूआ नवें कर्णवेष्ट और दशवे में खांड के शुभ पदार्थ अर्पित करते हुए दश विष्णु के निमित्त दश गोदान दश ब्राह्मणों को प्रदान करे और उपरोक्त पदार्थ के भक्षण करते हुए इस वृत को सुसम्पन्न करता रहे । भरतर्षभ ! सर्वप्रथम उस भक्ष्य चूर्ण का चौथाई देव और तदर्ध ब्राह्मण को अर्पित कर किसी जलाशय के समीप जाकर उस आधे भाग का भोजन करना चाहिए । इस भाँति उस मेधावी पुरुष को चाहिए कि पुष्प, धूप, एवं लेपन द्वारा विष्णु के दश अवतारों की अर्चना करके इस मंत्र द्वारा भगवान् को अभिषेक करे—मत्स्य, कूर्म (कच्छप), बराह, नरसिंह, वामन, श्रीराम, रामकृष्ण, बुद्ध तथा कल्की उस नारायण प्रभु की शरण में मैं प्राप्त हूँ, जगन्नाथ को मैं प्रणाम कर रहा हूँ, विष्णु देव मुझ पर प्रसन्न हों । मैं भक्ति पूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि जनार्दन देव मेरी वैष्णवी-मायाबंधन को दूर करें, मैं आत्म निवेदन कर रहा हूँ कि मुझे श्वेत द्वीप पहुँचाने की कृपा करें । सुव्रत पार्थ ! इस प्रकार सविधान इस दशावतार नामक व्रत को सुसम्पन्न करने पर जिस फल की प्राप्ति होती है, बता रहा हूँ, सुनो ! १५-२६। भगवान् विष्णु इन्द्र के आयुधों द्वारा पुरुषों के इस प्रख्यात दश दशाओं का विच्छेद अवश्य करते हैं, इसमें संदेह नहीं । मेरे इस व्रत से संतुष्ट होकर भगवान् विष्णु इस भीषण संसार सागर में निमग्न होते हुए मुझे शीघ्र श्वेतद्वीप पहुचाएँ । भगवान् जनार्दन के सन्तुष्ट होने पर भक्त की कौन कामना सिद्ध नहीं होती है ! राजन्, पार्थ ! मैं वही जनार्दन इस पृथ्वी के भार को नष्ट करने के लिए इस पृथ्वी पर कालरूप से अवतरित हूँ । पार्थ ! मेरे इस प्रकार बताये हुए इस व्रत को सुसम्पन्न करने वाली स्त्री अचल लक्ष्मी युक्त होकर इस मर्त्यलोक में पति पुत्र समेत चिरकाल तक सुखोपभोग करके विष्णु लोक में सम्मानित होती है और विष्णु लोक से रुद्र लोक तथा परम पद की

ये पूजयन्ति पुरुषाः पुरुषोत्तमस्य मत्स्यादिकांस्तु दशमीषु दशावतारान्।
मर्त्या दशस्वपि दशासु सुखं विहृत्य ते यान्ति यानमधिरुह्य सुरेशलोकान्॥३२

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
दशावतारचरित्रवर्णनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः।६३

अथ चतुष्षष्टितमोऽध्यायः

आशादशमीवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पार्थ पार्थिववृन्दानां मुखपङ्कजसद्रवे। शृणुष्वावहितो वच्मि तवाशादशमीव्रतम्॥१
नलनामाभवत्पूर्वं निषधेषु महीपते। स भ्रात्रा निर्जितो राज्ये पुष्करेणेति नः श्रुतम्॥२
अक्षैर्द्यूतेन राजेन्द्र निर्ययौ भार्यया सह। वनं प्रतिभयं शून्यं झिल्लीकगणनादितम्॥३
स गत्वा प्रत्यहोरात्रं जलमात्रेण वर्तयन्। ददर्श वनमध्यस्थाञ्छकुनीन्काञ्चनच्छवीन्॥४
ग्रहीतुमिच्छंस्तान्राजन्समाच्छाद्य स्ववाससा। समापेतुः खगास्तूर्णं गृहीत्वा वसनं शुभम्॥५
आससाद सभाः काश्चिद्धृतवासाः सुदुःखितः। दमयन्तीं समाप्राप्य निद्रयापहृतां तदा॥

प्राप्ति करती है। इस प्रकार दशमी के दिन भगवान् के मत्स्यादि दश अवतारों की अर्चना करने वाले पुरुष इस मर्त्यलोक में दशावस्थाओं में सुखोपभोग करके अंत में विमान द्वारा देवलोक प्राप्त करते हैं।२७-३२

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर-सम्वाद में
दशावतारचरित्र वर्णन नामक तिरसठवाँ अध्याय समाप्त।६३।

अध्याय ६४

आशादशमी का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ! मैं तुम्हें आशादशमी व्रत का विधान बता रहा हूँ, जो राजसमूहों के मुख कमल को विकसित करने के लिए उत्तम रवि रूप है। सावधान होकर सुनो! पहले समय में निषध देश के राजा नल प्रतिष्ठित राजा हुए थे। उन्होंने अपने भ्राता (पुष्कर) के साथ द्यूत क्रीडा (जूआ खेलना) प्रारम्भ किया। जिसके परिणाम स्वरूप राज्य छोड़कर, अपनी भार्या दमयन्ती को साथ लेकर उस घोर अरण्य का यात्री होना पड़ा है, जहाँ हिंसक पशु, एवं झिल्लीक गण से वह सदैव मुखरित रहता था। वहाँ पहुँचने पर केवल जलपान के द्वारा अपने दिन व्यतीत करते हुए उन्हें वन के मध्य स्वर्ण छवि वाली पक्षियाँ दिखायी पड़ी। राजन्! नल ने उन्हें पकड़ने के लिए उन पर अपने वस्त्र डाल दिये किन्तु, वे पक्षियाँ उनके उस शुभ वस्त्र को लेकर अत्यन्त शीघ्रता से आकाश में उड़कर अदृश्य हो गयी। अनन्तर वस्त्र के अपहरण से भी अत्यन्त दुःखी होकर दमयन्ती के साथ किसी सभा (स्थान) में पहुँच कर वे विश्राम करने लगे। वहाँ भ्रान्त दमयन्ती

दुःखादुत्सृज्य गतवान्भाग्यतः प्राग्धनेश्वरम् ॥६
गते तु नैषधे भैमी प्रबुद्धे चाञ्चिताननना । अपश्यन्ती नलं वीरं वीर भीमसुता वने ॥
इतश्चेतच्च बभ्राम हाहेति रुदती मुहुः ॥७
दुःखशोकसमाक्रान्तां नलदर्शनलालसा । आससाद दिनैः कैश्चित्सा चैद्यपुरमंजसा ॥८
उन्मत्तवत्परिवृता शिशुभिः कौतुकाकुलैः । सा दृष्टा चेदिराजस्य जनन्या जनवेष्टिता ॥९
चन्द्रलेखेव पतिता भूमौ भासितदिङ्मुखा । आरोप्य सा स्वभवनं पृष्टा का त्वं वरानने ॥१०
उवाच भैमी सव्रीडं सैरध्रीं मां निबोधताम् । न धावयेयं चरणौ नोच्छिष्टं भक्षयाम्यहम् ॥११
यदि प्रार्थयते कश्चिद्दंडयस्ते साम्प्रतं भवेत् । प्रतिज्ञयानया देवि तिष्ठेयं तव वेश्मनि ॥
एवमस्त्वनवद्यांगि राजमाताप्युवाच ताम् ॥१२
एवंविधा तद्भवने कञ्चित्कालमनिंदिता । उवास वसनार्द्धेन प्रवृत्तान्ते किल द्विजः ॥
आनयामास मुदितो दमयन्तीं गृहं पितुः ॥१३
मात्रा पित्रा समायुक्ता सुतैर्भ्रातृभिरेव च । दमयन्ती तथाप्यास्ते दुःखं नैषधवर्जिता ॥१४
प्रोवाच विमनाहूय व्रतं दानमथापि वा । कथयध्वं यथा मे स्यादिष्टेन सह सङ्गमः ॥१५
तत्रेतिहासकुशलो विप्रः प्रोवाच बुद्धिमान् । भद्रे त्वमाशादशमीं कुरुष्वेप्सितसिद्धिदाम् ॥१६

को अत्यन्त निद्रित अवस्था में छोड़कर (भाग्यवादी की दृढ़ आज्ञा से) उन्होंने कुबेर-हिमालय के पहले वाले प्रदेश (अयोध्या) को प्रस्थान किया।१-६। उनके चले जाने पर प्रबुद्ध होकर उस चन्द्रमुखी भीम सुता दमयन्ती ने राजा नल को न देख कर उन्हें इधर-उधर वनों में खोजती हुई 'हाय हाय' कहते रुदन करती, दुःख शोक के भार से पीड़ित, नल के दर्शन की इच्छा से कितने दिनों के मार्ग को कष्ट से पार कर राजा वैद्य की पुरी में पहुँची। वहाँ पहुँच कर वह उन्मत्त की भाँति दिखायी देने लगी, जिससे शिशु-वृन्दों ने उसे अपना कौतुक-लक्ष्य बना कर चारों ओर से घेर लिया था। उसी बीच चेदिराज की माता ने उधर देखा कि किसी स्त्री को कुछ लोग चारों ओर से घेर कर खड़े हुए हैं, जो भूमि में गिर कर दिशाओं को पूर्ण प्रकाशित करने वाली चन्द्र लेखा की भाँति दिखायी देती थी, शीघ्र अपने भवन में बुलवाकर उससे पूछा—'सुन्दरि! तुम कौन हो और क्या चाहती हो? भैमी ने लज्जा पूर्वक कहा—मैं सैरन्ध्री (दासी) हूँ, और वही अपना सेवा कार्य चाहती हूँ, किन्तु देवी! चरण प्रक्षालन (पैर धोना) एवं उच्छिष्ट भोजन का भक्षण नहीं करूँगी, तथा मुझसे अनुचित प्रार्थना करने वाला उसी समय दण्डित किया जाये। इसी प्रतिज्ञा पर मैं आप के महल में सेवा कार्य के लिए रहना स्वीकार करूँगी। 'तथास्तु' कहकर राजमाता ने उस प्रशस्त-वदना की बात स्वीकार किया। इस प्रकार उसने वही आधे वस्त्र पहने उस राजभवन में कुछ समय तक निवास किया अनन्तर समाचार ज्ञात होने पर उसके पिता भीम ने ब्राह्मण द्वारा उसे अपने यहाँ बुला लिया। वहाँ पहुँचने पर माता, पिता, सुत और भ्राताओं द्वारा सुसेवित होने पर भी दमयन्ती को नल के वियोग में अत्यन्त कष्ट ही था। उसने खिन्न मन से कहा विप्र! व्रत, दान अथवा अन्य जिस उपाय से मेरा और नल का साथ हो सके, मुझे बताने की कृपा करें।७-१५। इसे सुनकर इतिहास कुशल उस ब्राह्मण ने कहा—'भद्रे! मनोरथ सिद्ध करने वाली इस आशादशमी का व्रत विधान प्रारम्भ करो'। पुराण

चकार सर्वम् तन्वङ्गी यत्पुराणविदा तदा । ख्यातमाख्यातविदुषा दमनेन पुरोधसा ।।१७
व्रतस्यास्य प्रभावेण दमयन्त्या नरोत्तम । सञ्जातः सुखदोऽत्यर्थं भर्त्रा सह समागमः ।।१८

युधिष्ठिर उवाच

कथमाशादशम्येषा गोविन्द क्रियते कदा । सर्वमेतत्समाचक्ष्व मां सर्वज्ञोऽसि यादव ।।१९

श्रीकृष्ण उवाच

राज्याशया राजपुत्रः कृष्यर्थं तु कृषीवलः । भार्यार्थं तु वणिक्पुत्रः पुत्रार्थे गुर्विणी तथा ।।२०
धर्मार्थकामसंसिद्धयै लोककन्या वरार्थिनी । यष्टुकामो द्विजवरो रोगी रोगापनुत्तये ।।२१
चिरप्रवासिते कान्ते कालेन धृतिपण्डिता । एतेष्वन्येषु कर्तव्यमाशाव्रतमिदं सदा ।।२२
यदा यस्य भवेदार्तं कार्यते हि तदा व्रतम् । शुक्लपक्षे दशम्यां तु स्नात्वा सम्पूज्य देवताः ।।२३
नक्तं तदाशाः सम्पूज्याः पुष्पालक्तकचन्दनैः । गृहाङ्गणे लेखयित्वा यवैः पिष्टातकेन वा ।।
दत्त्वा घृताक्तं नैवेद्यं पुनः कार्यं निवेदयेत् ।।२४
आशाश्चाशाः सदा सन्तु सिद्ध्यन्तां च मनोरथाः । भवतीनां प्रसादेन सदा कल्याणमस्त्विति ।।२५
एवं सम्पूज्य भुञ्जीत दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् । अनेन क्रमयोगेन मासिमासि समाचरेत् ।२६
यावन्मनोरथः पूर्णस्ततः पश्चात्समुद्यमात् । मासि पूर्णे च षण्मासे वर्षे वर्षे द्वये गते ।।२७
सौवर्णा कारयेदाशा रौप्यपिष्टातकेन वा । ज्ञातिबन्धुजनैः सार्द्धं स्नातः सम्यगलंकृतः ।।२८

निष्णात एवं आख्यान के विद्वान् उस दमन पुरोध ने जैसा कहा, उसे उस कोमलाङ्गी ने वैसा ही सविधान सुसम्पन्न किया, नरोत्तम् ! इस व्रत के प्रभाव से दमयन्ती का भर्ता (नल) के साथ अत्यन्त सुखद समागम हुआ।१६-१८

युधिष्ठिर ने कहा—गोविन्द एवं यादव आप मासों के अधिनायक हैं अतः यह आशादशमी किस विधान द्वारा और कब सुसम्पन्न की जाती है आदि सभी कुछ मुझे बताने की कृपा करें।१९

श्रीकृष्ण बोले—'राज्य की आशा से राजपुत्र, कृषि के निमित्त कृषक, भार्या प्राप्त्यर्थ वैश्य-पुत्र, पुत्र प्रसव के लिए गर्भिणी धर्म, अर्थ और काम के सिद्ध्यर्थ जनवर्ग, अनुकूल वर की कामना से कन्याओं, यज्ञ के सुसम्पन्नार्थ उत्तम ब्राह्मणों, रोगापहरणार्थ रोगी और चिरकाल से पति के प्रवासी होने पर धैर्य धारण करने वाली वियोगिनी स्त्री को तथा अन्य कामनाओं की पूर्ति के लिए भी इस आशादशमी व्रत का अनुष्ठान सुसम्पन्न करना चाहिए। तथा जिस किसी समय किसी भाँति का कष्ट अनुभव होने लगे, तो उसके अपवारणार्थ इस व्रत का अवश्य पालन करना चाहिए। शुक्ल पक्ष की दशमी के दिन स्नान देव पूजन आदि करके गृहाङ्गण में पिष्टातक (चूर्ण) द्वारा सुन्दर प्रतिमा बनाकर पुष्प, अलक्तक, एवं चन्दनादि द्वारा भक्ति पूर्वक आशा की अर्चना करके घृतप्लुत नैवेद्य अर्पित करने के उपरांत प्रार्थना करे कि—'आशादेवि ! आप समस्त आशा रूप हैं और सदैव रहें, मेरे मनोरथों को सफल करती रहे और आपके प्रसाद से सदैव कल्याण हो। अनन्तर ब्राह्मण को भोजन एवं दक्षिणा से तृप्त कर स्वयं भोजन करे और इसी क्रम से प्रत्येक मास की दशमी का सविधान व्रत मनोरथ पूर्ण होने तक करता रहे। ढाई वर्ष के उपरांत व्रत के समाप्त होने पर गृहाङ्गण में सुवर्ण, चाँदी अथवा सुगन्धित चूर्ण द्वारा आशा की सौन्दर्यपूर्ण प्रतिमा बनाकर बन्धुओं समेत स्नान एवं नूतन वस्त्रादि से सुसज्जित होकर

पूजयेन्मन्त्रसन्दर्भैरभिध्यात्वा गृहाङ्गणे । तव सन्निहितः शक्रः सुरासुरनमस्कृतः ।
पूर्वा चन्द्रेण सहिता ऐन्द्रीदिग्देवते नमः ॥२९
अग्नेः परिग्रहादार्ये तवमाग्नेयीति पठ्यसे । तेजोमयी परा शक्तिराग्नेयी वरदा भव ॥३०
देवराजं समासाद्य लोकः संयमयत्यसौ । तेन संयमनी यासि याम्ये कामप्रदा भव ॥३१
खड्गंसहातिविकृता नैर्ऋतिस्त्वमुपाभृता । तेन नैर्ऋतनाम्नीत्वं कृतदान्मनघवा सदा ॥३२
त्वय्यास्ते भवनाधारवरुणो यादसां पतिः । इष्टकामार्थसिद्ध्यर्थं वारुणिप्रभवा भव ॥३३
अधिश्रितालि यस्मात्त्वं वायुना जगदायुनी । वायव्ये त्वमतः शान्तिं नित्यं यच्छ नमोनमः ॥३४
कुबेरवासतः सौम्या प्रख्याता त्वमथोत्तरा । ऐशानी जगदीशेन शम्भुना त्वमलंकृता ॥
अतस्त्वं शिवसान्निध्यं देवि देहि शिवे नमः ॥३५
सर्पाष्टककुलेन त्वं सेवितासि तथाप्यधः । नागांगनाभिः सहिता हिता नः सर्वदा भव ॥३६
सप्तलोकैः परिगता सर्वदा त्वं शिवा यतः । सनकाद्यैः परिवृता ब्राह्मी जिह्मानपाकुरु ॥३७
नक्षत्राणि च सर्वाणि ग्रहास्ताराग्रहास्तथा । नक्षत्रमातरो ये च भूतप्रेतदिनायकाः ॥
सर्वे ममेष्टसिद्ध्यर्थे भवन्तु प्रणताः सदा ॥३८
एभिर्मंत्रैः समभ्यर्च्य पुष्पधूपादिना ततः । वासोभिरभिसंस्थाप्य फलानि विनिबेदयेत् ॥३९
तत्तूर्यध्वनिघोषेण गीतमङ्गलनिःस्वनैः । नृत्यन्तीभिर्वरस्त्रीभिस्तां रात्रिमतिवाहयेत् ॥४०

मन्त्रोच्चारण पूर्वक ध्यान-पूजन करे—पूर्वदिक् देवता को मैं नमस्कार करता हूँ, जो देव एवं असुर वन्दित इन्द्र का सम्पर्क सदैव प्राप्त करती है और उदीयमान चन्द्रमा से संयुक्त रहती है। आर्ये (अग्निदिक्)! अग्नि के साथ परिग्रह होने के नाते 'आग्नेयी' के नाम से तुम्हारी प्रख्याति है, आप तेजोमयी एवं पराशक्ति रूप हैं अतः मुझे वरदान प्रदान करें।२०-३०। याम्ये (दक्षिणदिक्)! देवराज इन्द्र को प्राप्त कर तुम लोक का संयमन् करती हो उसी से तुम्हें लोग संयमनी कहते हैं अतः मेरे लिए भी कामप्रदा हो। (नैऋत्य दिक्!) खड्गसहन करने वाली, विकृत एवं निऋति से अलंकृत हो, इसीलिए मधवा इन्द्र ने नैऋत्य नाम से तुम्हारी ख्याति की है। वारुणि! समुद्र के जल-जन्तु के अधीश्वर वरुण के भवन का आधार तुम हो अतः मेरे इष्ट काम और अर्थ की सिद्धि प्रदान करो। इस ब्रह्माण्ड के आयु स्वरूप वायु के आश्रित रहने के नाते तुम्हें वायव्य कहा गया है, अतः मुझे नित्य शान्ति प्रदान करने की कृपा करो मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ। सुन्दरि! कुबेर के वशीभूत होने के नाते तुम्हें लोग उत्तरा भी कहते हैं। ऐशानी देवि! जगन्नियन्ता शम्भु द्वारा तुम सदैव अलंकृत हो, अतः शिवे देवि! मुझे भी शिव सान्निध्य प्रदान करने की कृपा करो, मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ। सर्पराज के आठ कुलों द्वारा सुसेवित होने पर भी तुमने अधोलोक को ही अपनाया है, अतः अधोदेवि! नागांगनाओं समेत सदैव मेरे हितार्थ उद्यत रहो।३१-३६। सातो लोकों में व्याप्त रहकर तुम सदैव कल्याण की निधि हो, अतः सनकादि ब्रह्मर्षियों से आवृत होकर सदैव मेरे लिए कल्याण प्रदान करो। उसी भाँति नक्षत्र, समस्त गृह, तारा, नक्षत्र मातृकाएँ, भूत, प्रेत, पिशाच एवं विनायक आदि देवगण मेरे इष्ट सिध्यर्थ सदैव नम्र-विनम्र रहे। इन्हीं मन्त्रोच्चारण द्वारा पुष्प, धूप, वस्त्र, आदि से उनका अलंकार और अर्चना करके अनेक भाँति के फल अर्पित करे। तुरुही आदि वाद्य, गीत, मांगलिक शब्द और सुन्दरियों के नृत्य द्वारा उस रात्रि को व्यतीत करती हुई उन्हें

कुंकुमक्षोदतीव्रेण दानमानादिभिः सुखम् । प्रभाते वेदविदुषे सर्वं तत्प्रतिपादयेत् ।।४१
अनेन विधिना सर्वं क्षमयन्प्रणिपत्य च । भुञ्जीत मित्रसहितः सुहृद्बन्धुजनैरपि ।।४२
य एवं कुरुते पार्थ दशमीव्रतमादरात् । स सर्वकाममाप्नोति मनसाभीप्सितं नरः ।।४३
स्त्रीभिर्विशेषतः कार्यं व्रतमेतद्युधिष्ठिर । लघुचित्ता यतो नार्यः सदा कामपरायणाः ।।४४
धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वकामफलप्रदम् । कथितं ते महाराज मया व्रतमनुत्तमम् ।।४५

ये मानवा मनुजपुङ्गव कामकामाः सम्पूजयन्ति दशमीषु सदा दशाशाः ।
तेषां विशेषनिहिता हृदये प्रकाममाशाः फलत्यलममलं बहुनोदितेन ।।४६

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
आशादशमीव्रतं नाम चतुष्षष्टितमोऽध्यायः ।६४

अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

तारकद्वादशीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

अहं त्वागस्करः पापः पृथिवीक्षयकारकः । परिपृच्छामि गोविन्द त्वां नमस्कृत्य पादयोः ।।१
गुह्याद्गुह्यतरं ब्रूहि व्रतं किञ्चिदनुत्तमम् । तरामि येन पापौघं भीष्मद्रोणवधार्णवम् ।।२

कुंकुम, अक्षौद, दान एवं मान आदि से प्रसन्न करके पुनः प्रातः काल किसी विद्वान् ब्राह्मण को वह सब अर्पित करे । इस विधान द्वारा व्रत सुसम्पन्न कर क्षमा प्रार्थना के उपरांत मित्र-बन्धुओं समेत भोजन करे । पार्थ ! इस प्रकार सादर इस दशमी व्रत को सुसम्पन्न करने वाले पुरुष की समस्त कामनाएँ सफल होती हैं । युधिष्ठिर ! स्त्रियों को यह व्रत विशेषकर सुसम्पन्न करना चाहिए क्योंकि वे लघुचित्त एवं सदैव कामपरायण होती हैं । महाराज ! इस प्रकार धन्य, यशस्वी, आयु एवं, समस्त कामना प्रदान करने वाले इस उत्तम व्रत का विधान तुम्हें बता दिया गया । दशमी के दिनों में इस आशा दशमी के दश व्रतानुष्ठान को सुसम्पन्न करने वाले मनुज पुगंवों के हृदय में यह आशा अनेक फलों से युक्त होकर प्रतिफलित होती है ।३७-४६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
आशादशमी व्रत वर्णन नामक चौंसठवा अध्याया समाप्त ।६४।

अध्याय ६५

तारकद्वादशी का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—गोविन्द ! मैं पृथिवी का क्षय करने वाला, पापी एवं आप का महान् अपराधी हूँ, अतः आप के चरण की वन्दना करके मैं पूछ रहा हूँ कि —सर्वश्रेष्ठ एक गूढ़ से भी गूढ़ व्रत बताने की कृपा कीजिये । जिससे भीष्म-द्रोण के वध-जनित उस अगाध पाप-सागर को पार कर सकूँ ।१-२

श्रीकृष्ण उवाच

आसीत्पुरोत्तरो नाम्ना विदर्भायां कुशध्वजः । सांतःपुरसुतो यश्च चक्रे राज्यमतंद्रितः ।।३
जघान तापसं सोऽथ प्रमादान्मृगयां गतः । मृगं मत्वा महारण्ये ब्राह्मणं दैवमोहितः ।।४
तेन कर्मविपाकेन देहान्ते नरकं गतः । तत्रासौ यातना घोरा अनुभूयातिपीडितः ।।५
तस्मादिहागतो मर्त्ये रौद्रो विषधरोऽभवत् । अदशत्सोऽपि राजेन्द्र ब्राह्मणं चरणे रुषा ।।६
लब्ध्वा सह च पञ्चत्वं जगाम द्विजसंयुतः । विपन्नस्तु ततः सिंहो द्वितीयेऽभूत्सुदारुणः ।।७
विदारितमुखो हिंस्रो नानासत्त्वभयंकरः । जघानासौ पुनः श्रेष्ठं राजन्यं मृगया गतम् ।।८
ततोऽपि बहुभिः शस्त्रै राजलोकैर्निपातितः । पुनर्व्याघ्रो बभूवासौ तृतीयेऽपि भवान्तरे ।।९
तीक्ष्णपादनखाघातव्यापादितमृगान्वयः । तेनापि वैश्यो निधनं नीतः किञ्चिद्वनान्तरम् ।।१०
स नीतः कृमिराशित्वं लोकैः खातनिपातनात् । सञ्जातस्तु महानृक्षो नखराहतजन्तुरुक् ।।११
जघान बालं चण्डालादसौ मृत्युमवाप्नुयात् । पञ्चमे मकरो जातः समुद्रेऽतिभयंकरः ।।१२
स्त्रियं जघान तरुणीं स्नातुकामामथागताम् । प्रभाते शङ्करस्याग्रे शशाङ्कग्रहणे निशि ।।१३
तत्रापि बडिशं दत्त्वा जनैः प्राणैर्वियोजितः । पुनः षष्ठे भवे जातः पिशाचः पिशिताशनः ।।१४
क्रूरश्छिद्रपरः क्षुद्रो नरप्राणवियोजकः । सोऽवतीर्णो नरस्यांगं कर्षयामास कस्यचित् ।।१५

श्रीकृष्ण बोले—पहले समय में विदर्भ देश का अधीश्वर राजा कुशध्वज था, जो अपने स्त्री-पुत्र समेत सतत प्रयत्न द्वारा प्रजाओं के पालन-पोषण में सदैव व्यस्त रहता था । एक बार मृगयार्थ जंगल में जाकर दुर्दैव वश मोहित होकर प्रमादी की भांति घूमते हुए उस राजा ने मृग के धोखे में एक तपस्वी ब्राह्मण की हत्या की । उस दुर्विपाक के परिणाम-स्वरूप उसे देहावसान होने पर नरक जाना पड़ा । वहाँ की घोर यातनाओं के अत्यन्त कटु अनुभव करने के उपरांत इस मर्त्यलोक में अत्यन्त रौद्र एवं विषधर सर्प की योनि-ग्रहण किया । राजेन्द्र ! पश्चात् उसने अत्यन्त रुष्ट होकर एक ब्राह्मण के चरण में काट लिया, किन्तु उस ब्राह्मण के साथ उसका भी निधन हो गया । दूसरे जन्म में वह दारुण सिंह हुआ, जिसका अत्यन्त विशाल मुख और स्वयं हिंसक एवं समस्त प्राणियों के लिए भयंकर था । मृगया के लिए आये हुए किसी राजा का उसने पुनः वध किया, किन्तु, राजा के अनेक सेवकों ने अपने अस्त्रों द्वारा उसका भी निधन किया । तीसरे जन्म में वह भीषण व्याघ्र हुआ, जो अपने चरण के तीक्ष्ण नखों द्वारा जंगल के जन्तुओं का सदैव वध करता था। अनन्तर उस प्रदेश में आये हुए एक वैश्य का उसने वध किया और अनेक लोगों ने मिलकर उसे भी वहाँ से भगाया, जिससे वह आगे चल कर एक गड्ढे में गिर गया और उसी कारण उसके अंग में असंख्य कृमि उत्पन्न हो गये। उस दुःसह पीडा को सहन करते अनेक दिनों में निधन होने पर ऋक्ष योनि प्राप्त किया, जो अपने नखों से जीव जन्तुओं को पीड़ित करते रहते हैं । किसी बालक का हनन करने पर किसी चण्डाल द्वारा उसकी भी मृत्यु हो गयी। पाँचवें जन्म में वह समुद्र में भीषण मगर हुआ। ३-१२। एक बार चन्द्र ग्रहण में रात्रि में प्रातः समय शिवालय के सामने समुद्र जल में स्नान करने वाली एक तरुणी स्त्री का उसने वध किया किन्तु उपस्थित लोगों ने उसी समय वडिश द्वारा उसे भी पकड़ कर काल कवलित कर दिया। पुनः छठें जन्म में मांस-भोजी पिशाच हुआ, जो क्रूर, छिद्रान्वेशी, क्षुद्र और मनुष्यों का प्राणहन्ता था। किसी मनुष्य के अंगों के कर्षण करने

मन्त्रेणाहूय सिद्धेन वातिकेन व्यसुः कृतः । सप्तमे स पुनर्जातो दुर्निरीक्ष्यवपुर्भृशम् ॥१६
क्रूरदंष्ट्रः करालास्यो मांसशोणितभोजनः । दिग्वासा मरुभूमीषु वाशिष्ठो ब्रह्मराक्षसः ॥१७
स राष्ट्रं जर्जरं[1] शून्यं सर्वं चक्रे विषादिषु । आक्रम्य भीमदासेन राज्ञा राक्षसशत्रुणा ॥१८
समारोप्य धनुः सङ्ख्ये ब्रह्मास्त्रेण निपातितः । भूयोऽभवद्व्याघ्रसमः स्वजन्मन्यष्टमे भुवि ॥१९
वनेचराणां क्रुद्धाङ्गो ब्राह्मणान्निधनं गतः । ततो हस्ती च भल्लूको मातङ्गेन धनुष्मता ॥२०
एकादशेऽपि पाञ्चालो भवमध्येऽपि भीषणः । ऊर्ध्वकेशोतिरक्ताक्षो जातो ह्रस्वतनुर्दृढः ॥२१
पापो धर्मध्वजो रक्षो देवतोज्झितमाल्यधृक् । स दण्डपाशिकेनैव वृक्षाग्रे ह्यवलम्बितः ॥२२
द्वादशे स पुनर्जातः पुष्कलक्लेशभाजनः । भक्ष्यलोभाद्बिलगतो व्याधेन विनिपातितः ॥२३
तेन चासीत्कृतं पूर्वं तारकद्वादशीव्रतम् । तस्य प्रभावाज्जातोऽपि दुष्टयोनौ पुनः पुनः ॥२४
अवाप शीघ्रं पञ्चत्वं संसारभवसागरे । पुनरेवाभवद्राजा विदर्भायां सुधार्मिकः ॥२५
भूयश्चोपोषिता तेन तारकद्वादशी शुभा । दृश्यतां व्रतमाहात्म्यं जातोजातः पुनः पुनः ॥२६
तत्प्रभावद्भुवने भुक्त्वा राज्यमकण्टकम् । प्राप विष्णुपुरे स्थानं यावदाभूतसंप्लवम् ॥२७

युधिष्ठिर उवाच

कथमेतद्व्रतं कृष्ण कर्तव्यं पुरुषोत्तमैः । स्त्रीभिर्वा भर्तृवाक्येन स्नानदानजपादिकम् ॥२८

(खगोचने) पर उसने भी किसी सिद्ध तांत्रिक द्वारा उसका निधन कराया । सातवें जन्म में अत्यन्त दुर्निरीक्ष्य ब्रह्म राक्षस हुआ, जो विकराल, दाँत, भीषणमुख, मांस-शोणितभोजी, दिगम्बर, भूमिवासी और वाशिष्ठ कुल के समान घातक था । गुर्जर प्रदेश के राष्ट्र को अत्यन्त निर्जन बना देने पर वहाँ के राजा भीमदास ने जो उस राक्षस का महान् शत्रु था अपने धनुष पर ब्रह्मास्त्र के प्रयोग द्वारा उसका निधन किया । आठवें जन्म में पुनः व्याघ्र के समान ही एक अन्य हिंसक जंतु हुआ, वनेचरों के लिए सदैव काल स्वरूप था । किसी ब्राह्मण द्वारा निधन होने पर हस्ती, पश्चात् भल्लूक (रीछ) हुआ किसी धनुर्धारी किरात (वनचर) द्वारा वध होने पर पाञ्चाल (पंजाब) प्रदेश में अतिभीषण राक्षस हुआ, जो उर्ध्वकेश किये, रक्तनेत्र, लघु एवं दृढकाय, पापी, अधर्म की मूर्ति एवं सदेव त्यक्त मालाओं को धारण करता था । वह सदैव दण्ड और पाश अस्त्र लिए एक वृक्ष की शिखा पर स्थित रहता था । बारहवें जन्म में अत्यन्त क्लेश भाजन (सर्प) योनि प्राप्त किया जो भक्ष्य के लोभवश विल में प्रवेश करते समय किसी व्याघ्र द्वारा आहत किया गया था । उसने पूर्व काल में तारक नागक द्वादशी व्रत का विधान सुसम्पन्न किया था, जिसके प्रभाव से इस संसार सागर में बार-बार दुष्ट योनियों में जाने पर भी शीघ्र निधन प्राप्त करता था । तदुपरांत वह विदर्भ देश का परम सुधार्मिक राजा हुआ । उसने पुनः उस तारक नामक द्वादशी व्रत का अनुष्ठान उपवास पूर्वक सविधान सुसम्पन्न किया, जिसके प्रभाव से बार-बार जन्म ग्रहण करने पर भी इस भूतल में निष्कंटक राज्य के अनन्त सुखोपभोग करने के उपरांत महाप्रलय समय पर्यन्त विष्णु-लोक का अविच्छिन्न निवास प्राप्त किया ।१३-२७

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण ! पुरुष श्रेष्ठों को किस भाँति इस व्रत को सुसम्पन्न करना चाहिए और पतिव्रताओं को पति की आज्ञा प्राप्त होने पर स्नान दान, एवं जप आदि समेत इसे कैसे सुसम्पन्न करना बताया गया है ।२८

श्रीकृष्ण उवाच

मार्गशीर्षे सिते पक्षे गृहीत्वा द्वादशीव्रतम् । अकृत्रिमे जले स्नानमपराह्णे समाचरेत् ।।२९
प्रणम्य भास्करायाथ कृत्वा देवार्चनं तथा । होमश्च तावत्स्थातव्यो यावदस्तमितो रविः ।।३०
ततो भुक्त्वा फलैः पुष्पैर्गन्धधूपविलेपनैः । सजलं साक्षतं कृत्वा सहिरण्यं शुभैः फलैः ।।३१
रम्ये ताम्रमये पात्रे जानुभ्यां धरणीं गतः । पूर्वामुखः प्रदोषाग्रे मूर्ध्नि कृत्वार्घ्यभाजनम् ।।३२
भूमौ तु मण्डलं कृत्वा गोमयेन सतारकम् । चन्दनेन समालिख्य ध्रुवं हि गगनोन्मुखः ।।३३
सहस्रशीर्षामन्त्रेण भूमौ शक्त्या शनैः स्वयम् । तारकाणां कुरुश्रेष्ठ दद्यादर्घ्यमतन्द्रितः ।।३४
पर्युक्ष्य धूममुत्क्षिप्य दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् । क्रमेण सर्वं निर्वर्त्य भोज्यं भोज्यं निशागमे ।।३५
मार्गशीर्षे खण्डखाद्यं पौषे सोहालकं तथा । तिलतण्डुलकं माघे गुडापूपं च फाल्गुने ।।३६
मोदकांश्चैत्रमासे तु वैशाखे खण्डवेष्टकम् । ज्येष्ठे सक्तुभृतैः पात्रैराषाढ़े गुडपूरिकैः ।।३७
श्रावणे मधुशीर्षेण नभस्ये पायसेन च । घृतपर्णैश्चाश्वयुजे कांसारैः कार्तिके क्रमात् ।।३८
एभिर्द्वादशभिर्वर्षैर्भोजयित्वा द्विजान्स्वयम् । भुञ्जीत भक्त्या राजेन्द्र पश्चादेवं क्षमापयेत् ।।३९
समाप्ते तु व्रते कृत्वा राजतं तारकागणम् । दृष्ट्वा वा पूर्वविधिना पूजयित्वा क्षमापयेत् ।।४०
कुम्भा द्वादश दातव्याः सोदका मोदकाश्रिताः । ब्राह्मण्यां परिधानं च पद्मरागः सकुंचकः ।।४१
ब्राह्मणे वल्गुलल्लाटं लक्षपुष्पोपशोभितम् । चालकेनोपवीतं च पुष्पं दत्त्वा क्षमापयेत् ।।४२

श्रीकृष्ण बोले—मार्गशीर्ष मास की शुक्ल द्वादशी के दिन अपराह्ण समय किसी नदी अथवा अन्य अकृत्रिम जलाशय में स्नान, भास्कर को प्रणाम और देवार्चना के उपरांत सूर्य के अस्त होने समय तक हवन कार्य सुसम्पन्न करके भोजनानन्तर प्रदोष के समय ताम्र पात्र में फल, पुष्प, गन्ध, धूप, अनुलेपन, अक्षत, जल और सुवर्ण रखकर घुटने के बल पूर्वाभिमुख बैठकर गोमय से मंडलाकार लिपी हुई भूमि में चन्दन द्वारा ताराओं की निर्मित प्रतिमा के लिए आकाश की ओर देखते हुए 'सहस्रशीर्षा' मंत्र के उच्चारण पूर्वक धीरे धीरे अर्घ्य प्रदान करे। पश्चात् धूम का पर्युक्षण (सिंचन) करके वे सभी वस्तुएं दक्षिणा समेत किसी विद्वान् ब्राह्मण को अर्पित कर क्रमशः सभी कार्यों के सुसम्पन्न होने पर ब्राह्मण भोजन तथा स्वयं भोजन करे। इसी प्रकार प्रतिमास में इसे सुसम्पन्न करते हुए मार्गशीर्ष मास में खांड की वस्तु, पौष में सोहाल, माघ में तिल चावल के लड्डू, फाल्गुन में गुड का पूआ, चैत्र में मोदक, वैशाख में खांड का पदार्थ, ज्येष्ठ में सामग्री समेत सत्तू का पूर्ण पात्र, आषाढ़ में गुड़ समेत पूरी, श्रावण में मधु मिश्रित पदार्थ भाद्रपद में पायस, अश्विन में घृत का तरल पदार्थ और कार्तिक में कसेरू के भोजन करना चाहिए। राजेन्द्र ! इस प्रकार बारह वर्ष तक व्रत को सुसम्पन्न करते हुए ब्राह्मण भोजनोपरांत भोजन करे और भक्ति समेत देव की क्षमा प्रार्थना करे।२९-३९। व्रत के समाप्त होने पर चाँदी की तारागण की प्रतिमा बनवाकर पूर्वोक्त सविधान पूजन तथा क्षमा प्रार्थना करके मोदक समेत जलपूर्ण बारह घट, ब्राह्मणी के लिए साड़ी, कञ्चुकी (चोली) और पद्मरागमणि के भूषण, ब्राह्मण के लिए सौन्दर्य पूर्ण शिरोभूषण जो एक लक्ष पुष्पों से विभूषित किया गया हो, तथा चालक द्वारा (निर्मित) उपवीत एवं पुष्प अर्पित कर

अनेन विधिना राजन् यः करोति व्रतं नरः । नारी वा भरतश्रेष्ठ भक्तिभावपुरः सरा ।।४३
नक्षत्रलोकं व्रजति विमानेनार्कवर्चसा । अप्सरोगणगन्धर्वयक्षविद्या धरामरैः ।।४४
सहस्रभर्त्ता स्वर्लोके पूज्यमाने दिवाकरैः । वसेत्कल्पायुतं यावत्पुनर्विष्णुपुरं व्रजेत् ।।४५
एतद्व्रतं पुरा चीर्णं शच्या राज्ञ्या श्रियोमया । सीतया दमयंत्या च रुक्मिण्या सत्यभामया ।।४६
मेनया रंभया स्वर्गे उर्वश्या देवदत्तया । अन्याभिरपि नारीभिः पुरुषैश्च पृथग्विधैः ।।४७
चीर्णमेतद्व्रतं पार्थ सर्वपापभयापहम् ।।४८

जन्मान्तरेष्वपि कृतानि हरत्यघानि या संदहत्यहरहः सुकृतोपयोगात् ।
सा द्वादशी जगति तारकनामधेया तन्नास्ति यन्न विदधाति कृता मनुष्यैः ।।४९

इति श्रीभविष्येमहापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
तारकद्वादशीव्रतं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ।६५

अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः

अरण्यद्वादशीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

भगवन्ब्रूहि मे सम्यगरण्यद्वादशीव्रतम् । सप्राशनं सोपवासं सरहस्यं समन्त्रकम् ।।१

क्षमा प्रार्थना करे। राजन्, भरतश्रेष्ठ ! इस विधान द्वारा इस व्रत को सुसम्पन्न करने वाले पुरुष अथवा स्त्री को सूर्य के समान प्रकाशित विमान पर सुशोभित और अप्सराओं, गन्धर्व, यक्ष एवं विद्याधर-देवों तथा साक्षात् दिवाकर से पूजित होकर नक्षत्र लोक की प्राप्ति होती है । दश सहस्र कल्प तक वहाँ के सुख पूर्ण निवास करने के उपरान्त विष्णुलोक की प्राप्ति होती है ।४०-४५। पार्थ ! पहले समय में इन्द्राणी समेत इन्द्र, लक्ष्मी सहित मैं, सीता, दमयन्ती, रुक्मिणी, सत्यभामा, मेना, रम्भा, उर्वशी एवं देवदत्ता और अन्य स्त्री-पुरुषों ने पृथक्-पृथक् इस समस्त भयहारी व्रत को सविधान सुसम्पन्न किया है । सुकृत कर्मों के योग से जो जमान्तरीय एवं नित्य के पापों का शमन करती है, उसे संसार में तारक द्वादशी के नाम से ख्यात किया गया है, इसलिए इस व्रत को सभी मनुष्य अत्यन्त प्रेम से सुसम्पन्न करते हैं ।४६-४९

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवाद में
तारक द्वादशी व्रत वर्णन नामक पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ।६५।

अध्याय ६६

अरण्यद्वादशी व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! मुझे आप अरण्य द्वादशी व्रत के विधान, प्राशन, उपवास, रहस्य एवं मन्त्र समेत बताने की कृपा करें ।१

श्रीकृष्ण उवाच

कौन्तेय यत्पुरा चीर्णं सीतया वनसंस्थया । व्रतं राघववाक्येन प्रशस्तं दोषवर्जितम् ॥२
लोपामुद्रालये साध्व्यो मुनिपत्न्यो बहुप्रजाः । भोजितास्तर्पिताः सर्वैराहारैः सर्वकामिकैः ॥३
पद्मिनीपत्रविस्तीर्णे सोपदंशैर्यथा नवैः । भक्ष्यैर्भोज्यैस्तथा लेह्यैश्चोष्यैश्चापि यदृच्छया ॥४
तामिहैकमनाः पार्थः शृणुष्वारण्यद्वादशीम् । मार्गशीर्षे सिते पक्षे एकादश्यां दिनोदये ॥५
स्नात्वा नरः सोपवासः कृत्वा पूजां जनार्दने । गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपैर्दीपैर्जागरणैर्निशाम् ॥६
नीत्वा प्रभाते गत्वा च वने वेदाङ्गपारगान् । भोजयित्वा फलप्रायं स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥७
पञ्चगव्यं प्राशयित्वा पूर्वमेवाथ तद्दिने । वर्षमेकं शुभं पूर्णं पारयित्वा युधिष्ठिर ॥८
श्रावणे कार्त्तिके माघे[1] चैत्रे वाथ समर्चिते । सोपदंशैः पत्रशाकैस्तिलशष्कुलिकादिभिः ॥९
अपूपैः[2] खण्डवेष्टैश्च मरीचैः सिंहकेसरैः । धूलीमुखैरमृतफलैः स्वादुकोकरसैः शुभैः ॥१०
शीतलैस्तर्पयेद्विद्वानर्कपुष्पैः सुमालकैः । दधिक्षीराज्यपाणिज्यैश्चातुर्जातकरञ्जितैः ॥११
कर्पूरनखविद्धैश्च मधुरैः पनसोत्तमैः । बहुवृक्षं वनं गत्वा सुस्वादुसलिलं शिवम् ॥१२

श्रीकृष्ण बोले—कौंतेय ! वनवास के समय जानकी जी ने अपने पति राघव की आज्ञा शिरोधार्य कर इस दोषहीन एवं प्रशस्त व्रत को सुसम्पन्न किया था । उसी प्रकार (अगस्तपत्नी) लोपामुद्रा के आश्रम निवासिनी अनेक मुनिपत्नियों ने, जो अनेक संतानों से सुशोभित थी, समस्त प्रकार के यथेच्छ भोजनों द्वारा ब्राह्मणों को संतृप्त करती हुई, इस व्रत को सुसम्पन्न किया । उन्होंने कमल के विस्तृत पत्र पर लेह्न, चोष्य, नवीन उपदंश्य आदि अनेक भाँति के भक्ष्य भोज्यों द्वारा विप्रों को तृप्त किया था । पार्थ! उसी अरण्य द्वादशी का व्रत विधान मैं बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो । मार्गशीर्ष मास की शुक्ल एकादशी के दिन प्रातः सूर्योदय के समय स्नान करके उपवास नियम के ग्रहण पूर्वक गंध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप द्वारा भगवान् जनार्दन के सप्रेम पूजा सुसम्पन्न करके जागरण करते हुए रात्रि व्यतीत करें । उपरांत प्रभात समय किसी वन में जाकर वेद निष्णात ब्राह्मणों को भोजन कराकर स्वयं भी मौन होकर फल भक्षण करे । तथा पूर्व दिन रात्र में उसे पञ्चगव्य का प्राशन करना चाहिए । युधिष्ठिर इस विधान द्वारा एक वर्ष तक व्रत को सुसम्पन्न करने के अनन्तर उसकी समाप्ति में श्रावण, कार्तिक अथवा चैत्र के मास में भगवान् की पूजा करके उपदंश्य, पत्र, शाक, तिलमिश्रित शष्कुली, खांडपूर्ण एवं मिर्च नागकेसर आदि सुगन्धित वस्तु मिश्रित मालपूआ, अत्यन्त सुस्वादु, सरस, मनोहर एवं अमृत के समान मधुर धूली मुख आदि फल शीतल, सुस्वादु एवं मधुर जल से भलीभाँति विद्वान् को तृप्त करे, जो अर्कपुष्प की माला सुशोभित किया गया हो । दही, क्षीर एवं घृत प्लुत पदार्थों और कर्पूर वासित मधुर कटहल फल अर्पित करे ।२-११। अनन्तर अनेक वृक्ष के सघन जंगल के निवासी बारह ब्राह्मण विद्वानों को भद्रासन

---

१. मासे । २. प्रपापैः ।

सुखासनोपविष्टांश्च प्रागुदङ्मुखवच्छुचीन् । भोजयेद्दश च द्वौ वा मुनीनारण्यवासिनः ।।१३
एकदण्डींस्त्रिदण्डींश्च गृहस्थांश्चापि सुव्रतान् । ब्राह्मणीर्विविधाः सप्त एकपत्नीः पतिव्रताः ।।१४
चार्वंग्यश्चार्चिताः स्नाताः सर्वावयमशोभनाः । सुवस्त्राः कुंकुमाक्ताङ्गाः सुगन्धकुसुमान्विताः ।।१५
अङ्गैर्वा भोजनीयास्तास्ताश्चादित्यस्य देवताः । वासुदेवजनार्दनदामोदरमधुसूदनाः ।।१६
पद्मनाभकृष्णविष्णुगोवर्द्धनत्रिविक्रमाः । श्रीधरश्च हृषीकेशः पुण्डरीकाक्ष आदिवाराहाः ।।१७
एभिर्द्वादशभिर्मन्त्रैर्नमस्कारान्तयोजितैः । गन्धचन्दनसम्वस्त्रं धूपं दत्त्वा पृथक्पृथक् ।।१८
भोजयित्वा शुभान्नानि दद्यात्ताभ्यः सुदक्षिणाम् । प्रणम्य प्रार्थयेद्भक्त्या विष्णुर्मे प्रीयतामिति ।।१९
ततो भुञ्जीत सहितो भृत्यैः प्रेष्यजनेन च । आगताभ्यागतैर्लोकैः सुहृत्सम्बन्धिबन्धुभिः ।।२०
एवं कौन्तेय कुरुते योऽरण्यद्वादशीं नरः । स देहान्ते विमानस्थो दिव्यकन्यासनावृतः ।।
याति ज्ञातिसमायुक्तः श्वेतद्वीपं हरेः पुरम् ।।२१
यत्र लोकाः पीतवस्त्राः श्यामदेहाश्चतुर्भुजाः । शङ्खचक्रगदापद्मचारुहस्ताः सकौस्तुभाः ।।२२
गरुडासनाः साभरणा मुकुटोत्कटकुण्डलाः । नीलोत्पलोद्दामपद्ममालयालंकृतोरसः ।।२३
लक्ष्मीधरा मेघवर्णाः कपूर्राङ्गदभूषणाः । तिष्ठन्ति विष्णुसामान्ये यावदाभूतसंप्लवम् ।।२४

पर पूर्व और उत्तराभिमुख सुखासीन कर उपरोक्त वस्तुओं के भोजन से तृप्त करना चाहिए जिनमें एक दंडी और त्रिदंडी संन्यासी तथा कर्मनिष्ठ गृहस्थ भी हो। उस समय सात ब्राह्मणी के भोजन भी सुसम्पन्न करे, जो अपने पति की एक वही पत्नी एवं पतिव्रता हो। उन सुन्दरियों को सर्वाङ्ग स्नान लेपन (उपटन) सुवासित सुन्दर वस्त्र, कुंकुम, सुगन्ध और पुष्पों द्वारा अंग प्रत्यंग, सुशोभित कर सुन्दर भोजनोपरांत वासुदेव, जनार्दन, दामोदर, मधुसूदन, पद्मनाभ, कृष्ण, विष्णु, गोवर्द्धन, त्रिविक्रम, श्रीधर, हृषीकेश, पुण्डरीकाक्ष एवं आदिवाराह, के अंत में नमस्कार पद जोड़कर (वासुदेवायनमः) गंध, चंदन, वस्त्र, धूप द्वारा पृथक्-पृथक् उनकी पूजा करके दक्षिणाओं से अत्यन्त प्रसन्न करे । पश्चात् प्रणाम पूर्वक प्रार्थना करे कि—'विष्णु मुझ पर प्रसन्न हों, । इस प्रकार इस विधान द्वारा सुसम्पन्न करके सेवक, दूत, आगन्तुक, मित्र, एवं बंधुओं समेत भोजन करे । कौंतेय ! अरण्य द्वादशी व्रत को इस प्रकार सुसम्पन्न करने वाला मनुष्य देहावसान के समय विमान पर स्थित होकर दिव्य कन्याओं से सुसेवित होते हुए अपने बन्धुओं समेत श्वेत द्वीप नामक विष्णु के लोक की प्राप्ति करता है जिस लोक के निवासी के पीत वस्त्र, श्यामल देह, चारभुजाएं शंख चक्र, गदा, पद्म से भूषित रहती है, कौस्तुभमणि, गरुड़ वाहन, भूषण, मुकुट कुण्डल से भूषित और नीलकमल की भाँति सूत्र में गुथी हुई कमल की माला से सुशोभित वक्षःस्थल है । लक्ष्मी धारी, मेघ वर्ण एवं कपूर्र, अङ्गद भूषण भूषित वे निवासी सामान्यतः वहाँ विष्णु समान ही दिखायी देते हैं । महाप्रलय तक वहाँ सुखोपभोग करने के अनन्तर इस भूतल में जन्म ग्रहण करने पर महातेजस्वी,

तस्मादेत्य महातेजाः पृथिव्यां नृपपूजिताः । मर्त्यलोके कीर्तिमन्तः सम्भवन्ति नरोत्तमाः ॥२५
ततो यान्ति परं स्थानं मोक्षमार्गं शिवं शुभम् । यत्र गत्वा न शोचन्ति न संसारे भ्रमन्ति च ॥२६
ये द्वादशीमुपवसन्ति सितामरण्यनाम्नीं वने द्विजवरानथ भोजयन्ति ।
साध्व्यः स्त्रियः सुचरिताभरणाश्च तासां विष्णुः प्रसादमुपयाति ददाति मोक्षम् ॥२७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
अरण्यद्वादशीव्रतं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ।६६

अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः

रोहिणीचन्द्रव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

घनावृते वरे देवे वर्षाकाले ह्युपस्थिते । मयूरकेकाकुलिते दर्दुरारावपूरिते ॥१

राजाओं के पूज्य एवं प्रख्यात कीर्तिमान होते हैं । पश्चात् देहावसान होने पर शिव प्रसाद उस परम पद (मोक्ष) की प्राप्ति करते हैं । जहाँ पहुँच कर किसी प्रकार कर शोक और संसार भ्रमण (जन्म मरण) नहीं होता है । इस प्रकार द्वादशी के दिन उपवास पूर्वक इस व्रत को सुसम्पन्न करने वाले, जिसमें अरण्य निवासी ब्राह्मण विद्वानों को भोजन और पतिव्रता स्त्रियों को भोजन एवं आभूषण वस्त्र से सुसम्पन्न किया जाता है, पुरुष को प्रसन्नता पूर्ण होकर विष्णु मोक्ष प्रदान करते हैं ।१२-२७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वाद में
अरण्यद्वादशी व्रत वर्णन नामक छाछठवाँ अध्याय समाप्त ।६६।

अध्याय ६७

रोहिणीचन्द्रव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—कृष्ण ! वर्षा काल के समय घनाच्छादन आकाश को देखकर मयूर और दादुर (मेंढक) अपनी वाणियों से मुखरित करते हैं, उन दिनों कुल स्त्रियाँ किस देवता की पूजा करती हैं,

कुलस्त्रियः प्रयच्छन्ति कस्यान्नं कात्र देवता । किं व्रतं कृष्ण विख्यातमन्नं कस्यां तिथौ भवेत् ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

प्रवृत्ते श्रावणे मासि कृष्णपक्षे ह्युपस्थिते । एकादश्यां शुचिर्भूत्वा सर्वौषधिजलैः शुभैः ॥३
माषचूर्णेन राजेन्द्र कुर्यादिंदुरिकाशनम् । मोदकांश्च तथा पञ्च घृतपक्वान्सुनिर्मलान् ॥४
नरमेकैकमुद्दिश्य ततो गत्वा जलाशयम् । दुष्टयादोविरहितं सतोयं जलजैर्युतम् ॥५
तस्यैव पुलिने रम्ये जुष्टान्ते गोमयादिना । कृत्वा मण्डलकं वृत्तं पिष्टकादिभिरर्चितम् ॥६
चर्चितं गन्धकुसुमैर्धूपदीपाक्षतोज्ज्वलम् । तत्र चन्द्रं लिखेदेव रोहिण्या सहितं विभुम् ॥
अर्चयेच्च सभार्यो वै मन्त्रेणानेन भावितः ॥७
सोमराज नमस्तुभ्यं रोहिण्यै ते नमोनमः । महासति महादेवि सम्पादय ममेप्सितम् ॥८
एवं सम्पूज्य तस्याग्रे नैवेद्यं देयमर्चितम् । तत्रैव ब्राह्मणे दद्यात्सोमो मे प्रीयतामिति ॥
प्रीयतामिति मे देवी रोहिणी सहितप्रिया ॥९
एवमुच्चार्य दत्त्वा च ततोऽन्तर्जलमाविशेत् । कण्ठान्तं कटिमात्रं वा गुल्फान्तं वा जलाशये ॥१०
ध्यायेच्च मनसा सोमं रोहिणीसहितं तदा । यावत्समस्तं तद्भुक्तं भुक्त्वा चान्तस्तटे स्थितः ॥११

भोजनार्थ कौन अन्न अर्पित करती हैं, उस व्रत का नाम क्या है, और किस तिथि में किस पुत्र की प्रधानता बतायी गयी है ।१-२

श्रीकृष्ण बोले—राजेन्द्र ! श्रावण मास की कृष्ण एकादशी के दिन समस्त औषधमिश्रित जल से पवित्र होकर उरदी के चूर्ण का इन्दुरिकाशन और घृतपक्व निर्मल मोदक प्रत्येक व्यक्ति के पर्याप्त भोजनार्थ एक एक के उद्देश्य से बनाकर ग्रह आदि दुष्ट जन्तु से ही किसी उत्तम जलाशय के रमणीक तट पर गोमय से मण्डलाकार लीप कर चूर्ण आदि से सुशोभित करे अनंन्तर गंध, कुसुम, धूप, दीप से अर्चना करते हुए श्वेत अक्षतों द्वारा रोहिणी समेत चन्द्रमा को सुन्दर प्रतिमा बनाकर इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक सप्रेम उनकी पूजा करे—सोमराज को नमस्कार है, और महासती एवं महादेवी रोहिणी को मैं बार बार नमस्कार कर रहा हूँ, आप लोग मेरी कामनाशीघ्र सफल करे । इस भाँति भक्ति पूर्वक पूजन करके नैवेद्य अर्पित करे और उसे उसी स्थान ब्राह्मण को प्रदान करते समय 'रोहिणी देवी समेत चन्द्र देव मुझ पर प्रसन्न हों' ।३-९। ऐसा कहते हुए जल के भीतर कंठ, कटि या गुल्फ (एड़ी) तक के जल में प्रविष्ट होकर रोहिणी समेत सोम का ध्यान करते हुए उसका भक्षण करे और उसके समाप्त होते ही तत्पर स्थित हो जाये । नियम पूर्वक वहाँ रहकर अन्त में ब्राह्मण भोजन और दक्षिणा से उन्हें तृप्त कर दृढ़ प्रतिज्ञा करे

नियम्य वसताम् चान्ये ततो विप्राय भोजनम् । दक्षिणासहितं देयं निश्चयं वाचि कल्पयेत् ।।
भक्त्या शक्त्या यथाचित्तं यथावित्तं तथा तथा ।।।१२
यः करोति नरो राजन्नारी वाथ कुमारिका । वर्षेवर्षे विधानेन पार्थेदं रोहिणीव्रतम् ।।१३
इह लोके चिरं स्थित्वा धनधान्यसमाकुले । गृहाश्रमे शुभां लब्ध्वा पुत्रपौत्रादिसन्ततिम् ।।१४
ततः सुतीर्थे मरणं ततो ब्रह्मपुरं व्रजेत् । तस्माद्विष्णुपुरं पार्थ ततो रुद्रपुरं शुभम् ।।१५
खे रोहिणी शशधराभिमता हिता च किं कारणं शृणु नरेन्द्र निवेदयामि ।
सम्पिष्टमाषरचितेन्दुरिकाशितुं यद्भुक्तं जले गुडघृतेन फलं तदेतत् ।।१६
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
रोहिणीचन्द्रव्रतं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ।६७

अथाष्टषष्टितमोऽध्यायः

अवियोगव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

अवियोग व्रतं ब्रूहि मम यादवनन्दन । विधानं तस्य कीदृक्च किं पुण्यं काऽत्र देवता ।।१

कि—'मैं भक्ति पूर्वक यथाशक्ति मनोनुरूप इस व्रत को सुसम्पन्न करता रहूँगा ।' इस प्रकार इस रोहिणी व्रत को सुसम्पन्न करने वाले कुमार अथवा कुमारी को इस लोक में धन धान्य समेत गृहस्थाश्रम के पुत्र पौत्रादि समेत सुखोपभोग करने के उपरांत किसी प्रतिष्ठा सुतीर्थ में देहावसान होने पर ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है । पार्थ ! पश्चात् विष्णु लोक और रुद्र लोक की भी क्रमशः उसे प्राप्ति होती है । इस भाँति नरेन्द्र ! मनुष्य को ऊपर सदैव रोहिणी समेत चन्द्रमा के प्रसन्न रहने का कारण मैं बता रहा हूँ सुनो ! इस व्रत के अनुष्ठान के समय जल के भीतर प्रविष्ट होकर माष (उरदी) के चूर्ण में गुड़ घी डाल कर चन्द्रमा के आकार वने उस मधुर भक्ष्य (इन्द्रादि का) के भक्षण करना ही इस का मुख्य कारण बताया गया है।१०-१६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
रोहिणी चन्द्र व्रत वर्णन नामक सरसठवाँ अध्याय समाप्त ।६७।

अध्याय ६८

अवियोगव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—यादवनन्दन ! मुझे अवियोग व्रत के विधान, उसके पुण्य और प्रधान देवता के बताने की कृपा कीजिये ।१

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु पाण्डव यत्नेन कथ्यमानं यथाखिलम् । अवियोगव्रतं नाम व्रतानामुत्तमोत्तमम् ।।२
प्रौष्ठपदे शुक्लपक्षे द्वादश्यां प्रातरुत्थितः । यस्तु शुक्लाम्बरधरः स्नात्वा पूर्वं जलाशये ।।३
हृद्ये रम्ये सौधतटे हरिं लिख्येत मण्डले । गोधूमचूर्णपिष्टेन लक्ष्मीं तत्पार्श्ववर्तिनीम् ।।४
तत्रैव च हरं गौरीं सावित्रीं ब्रह्मणा सह । राज्ञीसहितं च रविं त्रैलोक्योद्योतकारकम् ।।५
गन्धैः पुष्पैश्च धूपैर्नैवेद्यैरर्चयेद्यथाशक्त्या । अवियोगव्रतचारी मन्त्रेणानेन राजेन्द्र ।।६
नारी वा पुरुषो वा अवियोगमतिं दृढां कृत्वा । भक्त्या ध्यानी मौनी दाम्पत्यं पूजयेद्देवम् ।।७
सहस्रमूर्द्धा पुरुषः पद्मनाभो जनार्दनः । व्यासोऽपि कपिलाचार्यो भगवान्पुरुषोत्तमः ।।८
नारायणो मधुलिहो विष्णुर्दामोदरो हरिः । महावराहो गोविन्दः केशवो गरुडध्वजः ।।९
श्रीधरः पुण्डरीकाक्षो विश्वरूपस्त्रिविक्रमः । उपेन्द्रो वामनो रामो वैकुण्ठो माधवो ध्रुवः ।।१०
वासुदेवो हृषीकेशः कृष्णः संकर्षणोऽच्युतः । अनिरुद्धो महायोगी प्रद्युम्नो नन्द एव च ।।११
नित्यं स मे शुभः प्रीतः सश्रीकः केशशूलिनः । उमापतिर्नीलकण्ठः स्थाणुः शम्भुर्भगाक्षिहा ।।१२
ईशानो भैरवः शूली त्र्यम्बकस्त्रिपुरान्तकः । कपर्दीशो महालिंगी महाकालो वृषध्वजः ।।१३
शिवः शर्वो महादेवो रुद्रो भूतमहेश्वरः । ममास्तु सह पार्वत्या शङ्करः शङ्करश्चिरम् ।।१४
ब्रह्मा शम्भुः प्रभुः स्रष्टा पुष्करी प्रपितामहः । हिरण्यगर्भो वेदज्ञः परमेष्ठी प्रजापतिः ।।१५
चतुर्मुखः सृष्टिकर्ता स्वयंभूः कमलासनः । विरञ्चिः पद्मयोनिश्च ममास्तु वरदः सदा ।।१६

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डव ! समस्त व्रतों में परमोत्तम इस अवियोग नामक व्रत की व्याख्या विस्तार पूर्वक तुम्हें बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! भाद्रपद मास की शुक्ल द्वादशी के दिन प्रातः काल किसी जलाशय में स्नान नित्य कर्म सुसम्पन्न करने के अनन्तर उसी जलाशय के सुरम्य तट पर गेहूँ के चूर्ण (आटे) द्वारा विष्णु लक्ष्मी, हर-गोरी, ब्रह्मा-सावित्री, और राज्ञी समेत त्रैलोक्य निर्माता सूर्य की सौन्दर्य पूर्ण प्रतिमा बनाकर यथा शक्ति गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य समेत भक्ति पूर्वक मंत्रोच्चारण करते हुए सविधि अर्चना करनी चाहिए । उसी समय स्त्री पुरुष स्त्री को अवियोग व्रत के लिए दृढ़ संकल्प भक्ति समेत ध्यान, एवं मौन होकर देव दम्पत्तियों की पूजा प्रारम्भ कर अन्त में क्षमा प्रार्थना भी करते रहना चाहिए कि—सहस्र शीर्षा (शिर) वाले पुरुष, जिन्हें, पद्मनाभ, जनार्दन, व्यास, कपिलाचार्य, भगवान् पुरुषोत्तम, नारायण, मधुलिह, विष्णु, दामोदर, हरि, महावराह, गोविन्द केशव, गरुड़ध्वज, श्रीधर, पुण्डरीकाक्ष, विश्वरूप, त्रिविक्रम, उपेन्द्र, वामन राम, वैकुण्ठ, माधव, ध्रुव, वासुदेव, हृषीकेश, कृष्ण, संकर्षण, अच्युत, अनिरुद्ध, महायोगी प्रद्युम्न, और नंद कहा जाता है श्री समेत मेरे लिए शुभ प्रदान करते हुए परम प्रसन्न हों । जप-त्रिशूल से सुशोभित उमापति, नीलकंठ, स्थाणु, शम्भु, भगाक्षिहा, ईशान, भैरव, शूली, त्र्यम्बक, त्रिपुरान्तक, कपर्दी, ईश, महालिंगी, महाकाल, वृषध्वज शिव, शर्व, महादेव, रुद्र, भूत महेश्वर, एवं पार्वती समेत शंकर जी मेरे लिए सदैव शंकर कल्याणप्रद हों । तथा ब्रह्मा, शंभु, प्रभु, स्रष्टा, पुष्करी, प्रपितामह, हिरण्यगर्भ, वेदज्ञ, परमेष्ठी, प्रजापति, चतुर्मुख, सृष्टिकर्ता स्वयं भू, कमलासन, विरञ्चि एवं पद्मयोनि मेरे लिए सदैव वरदायक हों।२-१६। उसी भाँति आदित्य, भास्कर, भानु,

आदित्यो भास्करो भानुः सूर्योऽर्कः सविता रविः । मार्तण्डो मण्डलज्योतिरग्निरश्मिर्जनेश्वरः ।।१७
प्रभाकरः सप्तसप्तिस्तरणिः सरणिः खगः । दिवाकरो दिनकरः सहस्रांशुर्मरीचिमान् ।।१८
पद्मप्रबोधनः पूषा किरणी मेरुभूषणः । निकुम्भो वर्णभो देवः सुप्रीतोऽस्तु सदा मम ।।१९
लक्ष्मीः श्रीः सम्पदा पद्मा मा विभूतिर्हरिप्रिया । पार्वती ललिता गौरी उमा शङ्करवल्लभा ।।२०
गायत्री प्रकृतिः सृष्टिः सावित्री वेधसो मता । राज्ञी भानुमती संज्ञा नित्यभा भास्करप्रिया ।।२१
इति पद्मनाभशङ्करपितामहार्कादीन्सप्रियान्पूज्य । दत्त्वादत्त्वा दानं भुक्त्वा चान्ते व्रजेद्वेश्म ।।२२
द्वादश्यां चरति नरो व्रतमेतद्भक्तिभावितो लोके । भवति यशोधनभागी सन्ततिमान्विगतसन्तापः ।।२३
हरिहरहिरण्यगर्भप्रभाकराणां क्रमेण लोकेषु । भुक्त्वा भोगान्विपुलानथ योगी निर्वृतो भवति ।।२४
स्त्रीपुंसयोर्यदि युग्मं पुरुषो वा यदि समाचरति कश्चित् । नारी वा व्रतमेतच्चीर्त्वा यात्यालयं विष्णोः ।।२५

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
हरिहरहिरण्यगर्भप्रभाकराणामवियोगव्रतं नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ।६८

अथैकोनसप्ततितमोऽध्यायः

गोवत्सद्वादशीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

अक्षौहिण्यो दशाष्टौ च मद्राज्यार्थे क्षयं गताः । तेन पापेन मे चित्ते जुगुप्सातीव वर्तते ।।१

सूर्य, अर्क, सविता, रवि, मार्तण्ड, मण्डल ज्योति, अग्नि रश्मि, जनेश्वर, प्रभाकर, सप्त सप्ति, तरणि, सरणि, खग, दिवाकर, दिनकर, सहस्रांशु, मरीचिमान्, पद्मप्रबोधन, पूषा, किरणी, मेरुभूषण, निकुंभ और वर्णभ देव मुझ पर सदा प्रसन्न रहे। लक्ष्मी, श्री, सम्पदा, पद्मा, मा, विभूति, हरिप्रिया, पार्वती, ललिता, गौरी, उमा, शंकरवल्लभा, गायत्री, आकृति, सृष्टि, सावित्री ब्रह्मप्रिया, और राज्ञी, भानुमती, संज्ञा, नित्यभा, तथा भास्कर प्रिया आदि देवियाँ पति समेत सदैव मुझ पर प्रसन्न रहें। इस प्रकार पद्मनाभ (विष्णु), शंकर, पितामह, एवं सूर्य आदि देवों को पत्नी समेत अर्चना पृथक्-पृथक दान और ब्राह्मण भोजन के उपरांत स्वयं भी भोजन करके घर का प्रस्थान करे। इस प्रकार द्वादशी के दिन भक्ति भावना से इस व्रत को सुसम्पन्न करने वाले मनुष्य यश, धन, सौभाग्य, एवं संतति की प्राप्ति पूर्वक सदैव विगत संताप रहता है। अनन्तर विष्णु, शिव, ब्रह्मा और सूर्य के लोकों में क्रमशः विपुल सुखोपभोग करने के उपरांत महायोगी की भाँति निर्वाण पद प्राप्त करता है। पुरुष अथवा स्त्री को उपरोक्त देवों की पत्नियों समेत उनकी सविधान पूजा करने पर विष्णु लोक की प्राप्ति होतीहै।१७-२५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
हरिहरहिरण्यगर्भ और प्रभाकर के अवियोग व्रत वर्णन नामक अड़सठवाँ अध्याय समाप्त।६८।

अध्याय ६९

गोवत्सद्वादशीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—जगत्पते ! मेरे राज्य प्राप्ति के निमित्त अठ्ठारह अक्षौहिणी सैनिकों का वध हुआ

तत्र ब्राह्मणराजन्यवैश्यशूद्रादयो हताः । भीष्मद्रोणकलिङ्गादिकर्णशल्यसुयोधनाः ॥२
तेषां वधेन यत्पापं तन्मे मर्माणि कृंतति । पापप्रक्षालनं कञ्चिद्धर्मं ब्रूहि जगत्पते ॥३

श्रीकृष्ण उवाच

सुमहत्पुण्यजननं गोवत्सद्वादशीव्रतम् । अस्ति पार्थ महाबाहो पाण्डवानां धुरन्धर ॥४

युधिष्ठिर उवाच

केयं गोद्वादशी नाम विधानं तत्र कीदृशम् । कथमेषा समुत्पन्ना कस्मिन्काले जनार्दन ॥५
एतत्सर्वं हरे ब्रूहि पाहि मां नरकार्णवात् ॥६

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा कृतयुगे पार्थ मुनिकोटिः समागता । तपश्चचार विपुलं नामव्रतधरा गिरौ ॥७
हर्षेण महताविष्टा देवदर्शनकांक्षया । जम्बूमार्गे महापुण्ये नामतीर्थविभूषिते ॥८
पारियात्रे सिद्धपात्रे रम्ये तन्दुलिकाश्रमे । टन्टाविरिति[1] विख्याते उत्तमे शिखरे नृप ॥९
तापसारण्यमतुलं दिव्यकाननमण्डितम् । वशिष्ठशुक्राङ्गिरसक्रतुदक्षादिभिर्वृतम् ॥१०
वल्कलाजिनसम्वीतैर्भृगोराश्रममण्डलम् । नानामृगगणैर्जुष्टं शाखामृगगणैर्युतम् ॥११

है, उस पाप के कारण मेरे चित्त में अत्यन्त जुगुप्सा हो रही है। क्योंकि उस युद्ध में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र जाति के अनेक सैनिक आहत हुए हैं और भीष्म, द्रोण, कलिंगादिक कर्ण, शल्य तथा सुयोधन समेत इन सभी के वध जनित पाप मेरे मर्मस्थल को विदीर्ण कर रहा है। अतः इन पापों के प्रक्षालनार्थ किसी धर्माचरण का उपदेश करने की कृपा कीजिये।१-३

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डवों के धुरंधर, महाबाहो, पार्थ ! अत्यन्त पुण्य जनक गोवत्स द्वादशी नामक व्रत का विधान तुम्हें बता रहा हूँ।४

युधिष्ठिर ने कहा—जनार्दन ! गोद्वादशी किसे कहते हैं, उसका विधान क्या है, और किस समय (इस लोक में) उसका अविर्भाव हुआ है, हरे ! इन सबके विस्तार पूर्वक उत्तर देते हुए आप मुझे इस नरक सागर से रक्षित रखने की कृपा करें।५-६

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! पहले समय में कोटि मुनियों ने देव दर्शन की अभिलाषा से हर्षमग्न होकर अनेक भाँति के व्रतानुष्ठान पूर्वक उस पर्वत शिखर पर तप करना आरम्भ किया। जो 'टंटावि' के नाम से प्रख्यात जम्बू मार्ग में परमोत्तम, महापुण्य एवं अनेक तीर्थों से सुशोभित है। उस आश्रम का नाम तन्दुलिकाश्रम है, जो सोमापर्वत और सिद्ध प्रदेशों से सम्मिलित है। नृप ! उस तपसारण्य के विस्तृत क्षेत्र में दिव्य वन की अतुल शोभा सदैव निखरी सी रहती है जो बल्कल एवं मृग चर्म धारी वशिष्ठ, शुष्क, अंगिरापुत्र, क्रतु दक्ष आदि से चारों ओर से आवृत एवं भृगु के आश्रम मण्डल से विभूषित है। वहाँ जंगल के सभी प्रकार के जन्तुगण आपस में प्रीति पूर्वक निवास करते हैं। शाखामृग गण (वानरों) के मनोहरदृश्य सदैव होते रहते हैं। सिंह और हरिण, अत्यन्त शांत दिखायी देते हैं। वहाँ सभी वस्तु तथा सभी भाँति के वृक्ष हैं, जो इस प्रकार गहन, निर्ऋत, रम्य एवं, अनेक प्रकार की लताओं से आच्छन्न उस

---

१. टटाभिरिति।

प्रशान्तसिंहहरिणं सर्ववस्तुगतद्रुमम् । गहनं निर्झरं रम्यं लतासंतानसंकुलम् ॥१२
सिंहव्याघ्रगजैर्भिन्न हरिणैः शबरैः शशैः । वराहैरुरुमिश्रितैः समन्तादुपशोभितम् ॥१३
तपस्यता तत्र तेषां मुनीनां दर्शनार्थिनाम् । व्याजं चक्रे महीनाथ द्वादशार्धार्धलोचनः ॥१४
बभूव ब्राह्मणो वृद्धो जरापाण्डुरमूर्द्धजः । श्लथच्चर्मतनुः कुब्जो यष्टिपाणिः सवेपथुः ॥
उमापि चक्रे गोरूपं शृणु तत्पार्थ यादृशम् ॥१५
क्षीरोदतोयसम्भूता याः पुराऽमृतमन्थने । पञ्च गावः शुभाः पार्थ पञ्चलोकस्य मातरः ॥१६
नन्दा सुभद्रा सुरभी सुशीला बहुला इति । एता लोकोपकाराय देवानां तर्पणाय च ॥१७
जमदग्निभरद्वाजवशिष्ठासित गौतमाः । जगृहुः कामदाः पञ्च गावो दत्ताः सुरैस्ततः ॥१८
गोमयं रोचना मूत्रं क्षीरं दधि घृतं गवाम् । षडंगानि पवित्राणि संशुद्धिकरणानि च ॥१९
गोमयादुत्थितः श्रीमान्बिल्ववृक्षः शिवप्रियः । तत्रास्ते पद्महस्ता श्रीः श्रीवृक्षस्तेन स स्मृतः ॥
बीजान्युत्पलपद्मानां पुनर्जातानि गोमयात् ॥२०
गोरोचना च माङ्गल्या पवित्रा सर्वसाधिका । गोमूत्राद्गुग्गुलुर्जातः सुगन्धितः प्रियदर्शनः ॥
आहारः सर्वदेवानां शिवस्य च विशेषतः ॥२१
यद्बीजं जगतः किञ्चित्तज्ज्ञेयं क्षीरसम्भवम् । दधुः सर्वाणि जातानि मङ्गलान्यर्थसिद्धये ॥

आश्रम की भूमि में सिंह व्याघ्र, गज, हरिण, शम्बर, शश, वराह, तथा अनेक भाँति के रुरु (मृग) स्वच्छन्द चारों ओर निर्वाध भ्रमण करते है। उस आश्रम में उन दर्शनार्थी महात्माओं की तपोनिष्ठा को देखकर त्रिनेत्र शिवजी ने जो पंचदश (१५) नेत्रों से भी अलंकृत है, कुछ व्याज पूर्ण व्यवहार करना आरम्भ किया—उन्होंने वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण किया, वयोवृद्ध होने के नाते उनके शिर के केश अत्यन्त पीत वर्ण के हो गये थे, शरीर की त्वचा (मांस से) शिथिल होकर झूल रही थी, शरीर में कूबर निकल आया था और वे स्वयं हांथ में यष्टिका (छडी) लिए हिलतें काँपते चल रहे थे। पार्थ ! उधर उमादेवी ने भी जिस प्रकार का गोरूप धारण किया था, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! पहले समय में क्षीरसागर के मथने पर उसमें से पाँच सौन्दर्य पूर्ण गौओं की उत्पत्ति हुई थी, जो लोक माताएँ कही जाती है नंदा, सुभद्रा, सुरभी, सुशीला और ब्रह्मा के नाम प्रख्यात होकर लोक के उपकार और देवों की तृप्ति के लिए आविर्भूत हुई थी। इन पाँचों कामधेनु गौओं को देवों के सप्रेम प्रदान करने पर जमदग्नि, भरद्वाज, वसिष्ठ, असित, एवं गौतम ने सहर्ष ग्रहण किया। गौओं के षडंग पदार्थ गोमय, गोरोचन, मूत्र, क्षीर, दधि और घृत, अत्यन्त पवित्र एवं संशुद्धिकारक माने जाते हैं। क्योंकि गोमय से उत्पन्न होने के नाते बिल्ववृक्ष भी सम्पन्न तथा शिवप्रिय है। उस वृक्ष पर पद्महस्ता लक्ष्मी सदैव सुशोभित रहती है, इसीलिए उसे भी श्री वृक्ष कहा जाता है। उसी गोमय द्वारा नील कमल के बीज भी उत्पन्न हुए हैं।७-२०। गोरोचन, मांगलिक, पवित्र एवं सर्वसाधक है। गोमूत्र से अत्यन्त सुगन्ध द्वारा मनोहारी गुगुल की उत्पत्ति हुई है। जो समस्त देवों एवं विशेषकर शिव जी का आहार है। इस समस्त जगत् का जो कुछ थोडा बहुत मूल बीज है, वह (गो) क्षीर से ही उत्पन्न हुआ है। जो अर्थ सिद्धि के निमित्त मंगल परम्परा का विधान कहा गया है।

घृतादमृतमुत्पन्नं देवानां तृप्तिकारणम् ॥२२
ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम् । एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरन्यत्र तिष्ठति ॥२३
गोषु यज्ञाः प्रवर्तंते गोषु देवाः प्रतिष्ठिताः । गोषु वेदाः समुत्कीर्णाः सषडंगपदक्रमाः ॥२४
शृङ्गमूले गवां नित्यं ब्रह्मा विष्णुश्च संस्थितौ । शृङ्गाग्रे सर्वतीर्थानि स्थावराणि चराणि च ॥२५
शिवो मध्ये महादेवः सर्वकारणकारणम् । ललाटे संस्थिता गौरी नासावंशे च षण्मुखः ॥२६
कम्बलाश्वतरौ नागौ नासापुटसमाश्रितौ । कर्णयोरश्विनौ देवौ चक्षुर्भ्यां शशिभास्करौ ॥२७
दन्तेषु वसवः सर्वे जिह्वायां वरुणः स्थितः । सरस्वती च कुहरे यमयक्षौ च गण्डयोः ॥२८
सन्ध्याद्वयं तथोष्टाभ्यां ग्रीवायां च पुरन्दरः । रक्षांसि ककुदे द्यौश्च पार्ष्णिकाये व्यवस्थिता ॥२९
चतुष्पात्सकलो धर्मो नित्यं जङ्घासु तिष्ठति । खुरमध्येषु गन्धर्वाः खुराग्रेषु च पन्नगाः ॥३०
खुराणां पश्चिमे भागे राक्षसाः सम्प्रतिष्ठिताः । रुद्रा एकादश पृष्ठे वरुणः सर्वसन्धिषु ॥३१
श्रोणीतटस्थाः पितरः कपोलेषु च मानवाः । श्रीरपाने गवां नित्यं स्वाहालङ्कारमाश्रिताः ॥३२
आदित्या रश्मयो वालाः पिण्डीभूता व्यवस्थिताः । साक्षाद्गंगा च गोमूत्रे गोमये यमुना स्थिता ॥३३
त्रयस्त्रिंशद्देवकोटचो रोमकूपे व्यवस्थिताः । उदरे पृथिवी सर्वा सशैलवनकानना ॥३४
चत्वारः सागराः प्रोक्ता गावां ये तु पयोधराः । पर्जन्यः क्षीरधारासु मेघा बिन्दुव्यवस्थिताः ॥३५
जठरे गार्हपत्योऽग्निर्दक्षिणाग्निर्हृदि स्थितः ।
कण्ठे आहवनीयोऽग्निः सभ्योऽग्निस्तालुनि स्थितः ॥३६
अस्थिव्यवस्थिताः शैला मज्जासु क्रतवः स्थिताः । ऋग्वेदोऽथर्ववेदश्च सामवेदो यजुस्तथा ॥३७

घृत से अमृत की उत्पत्ति हुई है जिससे देवों को परम तृप्ति हुई है ।२१-२२। इस प्रकार ब्राह्मणों और गौओं के कुल एक ही हैं किन्तु उसे दो भागों में विभक्त कर दिया गया है—मंत्र एकत्र स्थित हैं और हवि अन्यत्र गौओं में समस्त यज्ञ एवं देव गण प्रतिष्ठित हैं तथा षडंग वेद पद क्रम आदि समेत उनमें व्याप्त है । गौओं के शृंग मूल में ब्रह्मा, विष्णु सदैव निवास करते हैं, शृंग के अग्रभाग में समस्त तीर्थ, स्थावर और चर स्थित हैं, मध्यभाग में समस्त कारणों के मूलकारण महादेव शिव विराजते हैं, ललाट में गौरी, नासा वंश में षडानन, नासापुट में कम्बल और अश्वतर नामक नाग, कान में अश्विनीकुमार, नेत्रों में चन्द्र सूर्य, दांतों में सभी वसुगण, जिह्वा में वरुण, कुहर में सरस्वती, गंडस्थल में भाग में यज्ञ यक्ष, ग्रीवा में दोनों इष्ट संध्या समेत पुरन्दर, कुकुद (डिल्ल) में रक्षोगण, पार्ष्णि (एड़ी) में आकाश पृथिवी, तथा चार चरण समेत धर्म उनकी जंघाओं में नित्य निवास करता है। खुर के मध्य में गन्धर्व, अग्रभाग में पन्नग (सर्प), खुर के पीछे भाग में राक्षस, पृष्ठ भाग में एकादशी रुद्र, समस्त सन्धियों में वरुण, भोगीतट में पितर गण, कपोल में मानव, अपान स्थान में भी स्वाहा से अलंकृत होकर सदैव रहती है । आदित्य की उदयकालीन समस्त किरणें समस्त शरीर में स्थित हैं गोमूत्र में साक्षात् गंगा, गोमय में यमुना, रोम कूपों में तैंतीस कोटि देवता, और उदर में समस्त शैल एवं कानन समेत पृथिवी, तथा पयोधर में चारों सागरों, क्षीर धारा में पर्जन्य विन्दुओं में मेघगण स्थित है ।२३-३५। उसी प्रकार जठर में गार्हपत्याग्नि, हृदय में दक्षिणाग्नि कंठ में आहवनीय अग्नि, तथा तालु में सम्याग्नि अस्थियों में पर्वत गण, मज्जा में क्रतु (यज्ञ), गौओं के सुरक्त, पीत तथा कृष्ण आदि वर्ण में ऋग्वेद, अथर्ववेद, सामवेद और यजुर्वेद सुव्यवस्थित है । युधिष्ठिर ! इस प्रकार

सुरक्तपीतकृष्णादौ गवां वर्णे व्यवस्थिताः । तासां रूपमुमा स्मृत्वा सुरभीणां युधिष्ठिर ॥३८
संस्मृत्य तत्क्षणाद्गौरी इयेष सदृशीं तनुम् । आत्मानं विदधे देवी धर्मराज शृणुष्व ताम् ॥३९
षडुन्नतां पञ्चनिम्नां मण्डूकाक्षीं सुवालधिम् । ताम्रस्तनीं रौप्यकटिं सुखुरीं सुमुखीं सिताम् ॥४०
सुशीलां च सुतस्नेहां सुक्षीरां सुपयोधराम् । गोरूपिणीमुमां स्पृष्ट्वा स्वामिनीं तां सवत्सिकाम् ॥४१
दर्शया प्रतरन्हृष्टो महादेवः स्वचेतसि । शनैः शनैर्ययौ पार्थ विप्ररूपी महाश्रमम् ॥४२
दत्त्वा कुलपतेः पार्श्वे भृगोस्तां गां न्यवेदयत् । तपस्विना महातेजास्तां च सर्वेषु पाण्डव ॥४३
न्यासरूपां ददौ धेनुं रक्षित्वा तां दिनद्वयम् । यावत्स्नात्वा इतस्तीर्त्वा जम्बूमार्गं वियाम्यहम् ॥४४
रक्षिष्यामः प्रतिज्ञाते मुनिभिः सुरभीमिमाम् । अन्तर्द्धिमगमद्देवः पुनर्व्याघ्रो बभूव ह ॥४५
वज्रचक्रनखो दर्वी ज्वलत्पिङ्गललोचनः । जिह्वा करालवदनो जिह्वालाङ्गूलदारुणः ॥४६
सम्प्रायादाश्रमपदं तां च धेनुं सवत्सिकाम् । त्रासयामास तां देव मुनीनां दिक्ष्ववस्थितः ॥४७
ऋषयोऽपि समाक्रान्ता आर्तनादं प्रचक्रिरे । हाहेत्युच्चैः केचिदूचुर्हुंहुंकारैस्तथापरे ॥४८
तालास्फोटान्ददुः केचिद्व्याघ्रं दृष्ट्वातिभैरवम् । सापि हम्भारवांश्चक्रे गौरुत्प्लुत्य सवत्सिका ॥४९
तस्या व्याघ्रभयार्तायाः कपिलाया युधिष्ठिर । पलायन्त्या शिलामध्ये क्षणं खुरचतुष्टयम् ॥५०
व्याघ्रवत्सकयोस्तत्र वन्दितं सुरकिन्नरैः । दृश्यतेऽतीव सुव्यक्तं तदद्यापि चतुष्टयम् ॥५१

सुरभी के उन रूपों के स्मरण करके गौरी जी ने उनके समान रूप धारण किया । धर्मराज ! देवीजी ने जिस प्रकार का रूप धारण किया है मैं बता रहा हूँ, सुनो ! ३६-३९। उनके उस मनोहारी शरीर के ये अंग उन्नत, पाँच निम्न, मेढक के समान नेत्र, सुन्दर वालों से विभूषित पूछ, ताम्रपत्र के समान रक्तवर्ण के स्तन, श्वेत वर्ण की कटि, सौन्दर्य पूर्ण खुर, सुशोभन मुखसित वर्ण था । उमा के उस सवत्सा और स्वामिनी गोरूप को देखकर जो सुशील पूर्ण सुत स्नेह से कातर, सुन्दर क्षीर और पयोधर से विभूषित था, अपने हृदय में अत्यन्त हर्षित होते हुए महादेव उसके पीछे धीरे-धीरे चल रहे थे । पार्थ ! विप्ररूप धारी एवं महातेजा महादेव ने उस आश्रम मे पहुँच कर कुलपति भृगु महर्षि के पार्श्व में स्थित होकर सभी तापसों के समक्ष निवेदन किया । पाण्डव ! उन्होंने कहा कि— न्यास (धरोहर) रूप में यह गौ आप लोगों के पास रख रहा हूँ, जम्बू मार्ग (तीर्थ) में स्नान कर मैं दो दिन में लौट आऊंगा, आप लोग तब तक इसकी रक्षा करे । हम लोग इस सुरभी की रक्षा अवश्य करेंगे इस भाँति मुनियों के प्रतिज्ञाबद्ध होने पर महादेव ने अन्तर्हित होकर पुनः व्याघ्र का रूप धारण किया । वज्र के समान कठोर एवं तीक्ष्ण कर चरण के नख, दर्वी (करछी) के समान लम्बी चौड़ी जिह्वा, जपत्वं प्रज्वलित अंगार के समान पिंगल नेत्र, कराल मुख, दारुण लांगूल (पूंछ) थी । उस आश्रम में इस भीषण रूप से वे मुनियों की ओर अवस्थित होकर सवत्सा उस गौ का त्रस्त कर रहे थे । उसके आक्रमण से भयभीत होने वाले महर्षिगण आर्तनाद करने लगे—४०-४७½। उच्च स्वर से कोई हाय हाय कर रहा था, कोई हुंकार और उस भीषण व्याघ्र को देखकर कोई ताली पीट रहाथा वह गौ भी अपने बछड़े समेत गौओं की 'हंभा' बोली द्वारा करुण क्रन्दन करती हुई पलायन करने लगी । युधिष्ठर ! व्याघ्र से भयभीत होकर उस कपिला के पलायन करने पर शिलाओं के मध्य में व्याघ्र और वत्स के चारों ओर खुर के चिह्न अंकित हैं, जो सुर किन्नरों से वन्दित हैं, आज भी

सजलं शिवलिंगं च शम्भोस्तीर्थं तदुत्तमम् । यस्संस्पृशति राजेन्द्र स गोवध्यां व्यपोहति ।।५२
तत्र स्नात्वा महातीर्थे जम्बूमार्गे नराधिप । ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ।।५३
ततस्ते मुनयः क्रुद्धा ब्रह्मदत्तां महास्वनाम् । जघ्नुर्घंटां सुरैर्दत्तां गिरिकन्दरपूरणीम् ।।५४
शब्देन तेन व्याघ्रोऽपि मुक्त्वा गावं सदत्सिकाम् । विप्रैस्तत्र कृतं नाम ढुण्ढागिरिरिति श्रुतिः ।।
तं प्रपश्यन्ति ये पार्थ ते रुद्रा नात्र संशयः ।।५५
अथ प्रत्यक्षतां श्रेष्ठस्तेषां देवो महेश्वरः । शूलपाणिस्त्रिपुरहा कामघ्नो वृषभे स्थितः ।।५६
उमासहायो वरदः सस्वामी सविनायकः । सनन्दिः समहाकालः सभृङ्गी समनो हरः ।।५७
वीरभद्रा च चामुण्डा घण्टाकर्णादिभिर्वृता । मातृभिर्भूतसङ्घातैर्यक्षराक्षसगुह्यकैः ।।
देवदानवगन्धर्वमुनिविद्याधरोरगैः ।।५८
प्रणम्य देवेदेवाय पत्नीभिः सहितैरुमा । गोरूपिणी सवत्सा च पूजिता ब्रह्मचारिभिः ।।५९
कार्त्तिके शुक्लपक्षे[1] तु द्वादश्यां नन्दिनीव्रतम् । ततः प्रभृति राजेन्द अवतीर्णं महीतले ।।६०
उत्तानपादेन तथा व्रतं चीर्णमिदं शृणु । उत्तानपादनामासीत्क्षत्रियः पृथिवीपते ।।६१
तस्य भार्याद्वयं चासीद्रुचिशुघ्नीति विश्रुतम् । शुघ्नीजातो ध्रुवः पुत्रो वामपादधरोऽलसः ।।६२
रुच्याः समर्पितः शुघ्न्या ध्रुवोऽयं रक्ष्यतां सखि । अहं करिष्ये शुश्रूषां भर्तुस्तावत्सदा स्वयम् ।।६३

अत्यन्त स्फुट दिखायी देते हैं । राजेन्द्र भगवान् शम्भु का वह सजल एवं परमोत्तम शिवलिंग तीर्थ वहाँ सुशोभित है, जिसके स्पर्श करने से मनुष्य गो हत्या पाप से शीघ्र मुक्त हो जाता है । नराधिप ! वहाँ के जम्बू मार्ग नामक महातीर्थ में स्नान करने पर ब्रह्म हत्यादि पाप से प्राणी अवश्य मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं । अनन्तर उन मुनिवृन्दों ने क्रुद्ध होकर भीषण स्वपन करने वाले उस देव दत्त नामक घंटा को बजाया, जो सुरगण प्रदत्त था उसके भीषण रव से व्याप्त होने पर गिरि कन्दरों द्वारा भीषण प्रतिध्वनि हुई, जिसके कारण उस व्याघ्र ने उस बछड़े समेत गाय को छोड दिया । ब्राह्मणों ने उस स्थान की 'ढुंढागिरी' से ख्याति की है । पार्थ ! उसके दर्शन करने वाले अवश्य रुद्र रूप हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं ।४८-५५। तदुपरान्त महादेव ने उन ऋषियों के सम्मुख प्रत्यक्ष होकर उस रूप से दर्शन दिया, जो अत्यन्त सौम्य था—त्रिपुरान्तक एवं कामविनाशी शिव हांथ में त्रिशूल लिए, उमासमेत वृषभ वाहन पर शोभित, स्वामी कार्तिकेय, विनायक, नंदी, महाकाल, भृंगी, वीरभद्रा, चामुण्डा, और घंटाकर्ण आदि से विभूषित थे । मातृकाएँ, भूतगण, यक्ष, राक्षस गुप्तक, देव, दानव, गन्धर्व, मुनि, विद्याधर, पन्नग, आदि ब्रह्मचारी गणों ने उमासमेत देवाधि देव भगवान् शिव को प्रणाम कर वत्स समेत गोरूप धारिणी उमा की कार्तिक शुक्ल द्वादशी के दिन अर्चना की है । राजेन्द्र ! उसी समय से इस पृथ्वी तल पर यह व्रत अवतरित हुआ है । (राजा) उत्तानपाद ने भी इस व्रत को सविधान सुसम्पन्न किया है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! पृथ्वीपते ! उत्तानपाद नामक एक क्षत्रिय (राजा) थे । रुचि और शुघ्नी नामक उनकी दो स्त्रियाँ थी । शुघ्नी पुत्र ध्रुव के उत्पन्न होने पर, जो बालपन के चरण से विभूषित उस समय अत्यन्त सौन्दर्य पूर्ण दिखायी देते थे । शुघ्नि ने अपनी पत्नी रुचि को वह पुत्र अर्पित कर दिया और कहा—'सखि ! इस

---

१. कृष्णपक्षे तु ।

रुची रसवतीं नित्यं प्रत्यहं कुरुते गृहे । अकरोद्भर्तृशुश्रूषां शुघ्नी नित्यं पतिव्रता ॥६४
कदाचित्क्रोधमात्सर्यात्सापत्न्यं दर्शितं तया । स्वयं रुच्या निहत्यासौ शिशुः खण्डलशः कृतः ॥६५
तापिकायां तथा स्थाल्यां पक्वसिद्धः सुसंस्कृतः । अन्नभोजनवेलायां ददाति नृपभाजने ॥६६
तं वै भक्षयितुं दुष्टा सामिषं भोजनं किल । अथ भोजनवेलायां वत्से जीवितमाप्तवान् ॥६७
तथैव प्रहसन्बालो मातुरुत्सङ्गजोऽभवत् । तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यं रुची पप्रच्छ विस्मिता ॥६८
किमेतद्ब्रूहि वृत्तान्तं कस्येयं व्युष्टिरुत्तमा । किं त्वयाचरितं किञ्चिद्व्रतं दत्तं हुतं तथा ॥६९
सत्यंसत्यं पुनः सत्यं येन जीवति ते सुतः । मयायं सप्त वारांस्तु विशल्य शकलो कृतः ॥७०
पक्वः स्वयं कृतः स्थाल्यां व्यञ्जनैः सह भोजनैः । परिविष्यमाणः स पुनः कथं जीवितमाप्तवान् ॥७१
किं ते सिद्धा महाविद्या मृतसञ्जीवनी शुभा । रत्नं मणिर्महारत्नं योगाञ्जनमहौषधम् ॥७२
कथयस्व महाभागे सत्यंसत्यं भगिन्यसि । एवमुक्ते रुचिस्तस्यै व्याचख्यौ वत्सगोव्रतम् ॥७३
कार्त्तिके चैव द्वादश्यां यथा चानुष्ठितं पुरा । व्रतस्यास्य प्रभावेन पुनर्जीवति मे सुतः ॥७४
वत्सो मे वत्सवेलायां मृतोऽर्थं लभते पुनः । समागमश्च भवति व्रतैः प्रवसितैरपि ॥७५
यथार्थमेतद्व्याख्यातं ते च गोद्वादशीव्रतम् । तवापि रुचि तत्सर्वं भविष्यति शुभं प्रियम् ॥७६
एवमुक्तं व्रतं चीर्णं रुच्या पुत्राः सुखं धनम् । संप्राप्ता जीवितान्ते च ध्रुवस्थाने निवेशिताः ॥७७

बालक ध्रुवकी देखभाल तुम करो ।५६-६३। मैं सदैव पति की शुश्रूषा ही करनी चाहती हूँ । इसलिए इसके पालन करने का समय मुझे नहीं है । रुचि सदैव अपने पति के निमित्त रसागार भंडार गृह में भोजन भी बनाती थी और पतिव्रत शुघ्नी नित्य पति की ओर सेवा करती थी एक बार सापत्न्य बैर के नाते अत्यन्त क्रुद्ध होकर रुचि शुघ्नी के पुत्र ध्रुव को खंड खंड करके भोजन पात्र में रखकर प्रज्वलित चूल्हे पर चढ़ा दिया । भोजन के समय राजा के सामने बालक के उस पक्व मांस को भी रखा । उपरांत भोजन के समय वह पुत्र जीवित हो कर अपनी माता के अंक में हँसते खेलते दिखायी दिया । उसे देखकर अत्यन्त आश्चर्य चकित होकर रुचि ने शुघ्नि से पूछा कि—इस वृत्तान्त को तुम बताओ—यह किस सत्कर्म का परमोत्तम फल है, तुमने किस व्रत का अनुष्ठान, हवन अथवा दान किया है । वह सत्य, और सत्य एवं परमसत्य है । क्योंकि उसी कारण यह तुम्हारा जीवित है । मैंने इसे सात बार स्वयं अपने हाथों से खंड खंड करके परिपक्व किया है और अन्य व्यञ्जनादि भोजनों में इसे उलट पुलट कर अत्यन्त सम्मिलित कर दिया था। फिर भी कैसे यह जीवित हो गया ! क्या तुम उस सिद्ध एवं अमृत संजीविनी महाविद्या को जानती हो, अथवा तुम्हारे पास कोई रत्न, मणि, महारत्न, योगाञ्जन या महौषध है।६४-७२। महाभागे ! इस वृतान्त को सत्य-सत्य बताना, क्योंकि तुम मेरी भगिनी हो। इस प्रकार रुचि के कहने पर शुघ्नी ने इस वत्स गोव्रत की व्याख्या सविधान उसे सुनाया—पहले समय में मैंने कार्तिक शुक्ल द्वादशी के दिन इस व्रतानुष्ठान को सविधान सुसम्पन्न किया था, जिसके प्रभाव से यह मेरा पुत्र पुनर्जीवित हुआ है । और यह मेरा वत्स वत्स वेला (सायंप्रातःकाल) में अमृत प्राप्त करता है, तथा प्रवासी होने पर भी इसका समागम होता है । इस प्रकार मैंने इस गोद्वादशी व्रत का माहात्म्य यथार्थ वर्णन कर दिया । इसलिए रुद्र देवि ! तुम्हारी भी इष्ट इससे सिद्ध होगा । इस प्रकार शुघ्नि के बताते हुए उस व्रतानुष्ठान को सुसम्पन्न कर रुचि ने भी धन पुत्र समेत सुखोपभोग करने के अनन्तर ध्रुव लोक में स्थान प्राप्त किया ।७३-७७। और सृष्टि निर्माता ब्रह्मा के

ब्रह्मणा सृष्टिकारेण रुचिर्भर्त्रा सहासिता । दशनक्षत्रसंयुक्तो ध्रुवः सोऽद्यापि दृश्यते ॥
ध्रुवर्क्षे च यदा दृष्टे लोकः पापैः प्रमुच्यते ॥७८

युधिष्ठिर उवाच

कीदृशं तद्विधानं च तन्मे ब्रूहि जनार्दन । यत्कृतं शुष्निवचनाद्रुच्या यदुकुलोद्भव ॥७९

श्रीकृष्ण उवाच

सम्प्राप्ते कार्तिके मासि शुक्लपक्षे कुरूत्तम । द्वादश्यां कृतसंकल्पः स्नात्वा पुण्ये जलाशये ॥
नरो वा यदि वा नारी एकभक्तं प्रकल्पयेत् ॥८०
ततो मध्याह्नसमये दृष्ट्वा धेनुं सवत्सिकाम् । सुशीलां वत्सलां श्वेतां कपिलां रक्तरूपिणीम् ॥८१
ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां स्त्रीजनेश्वर । यथाक्रमेण पूज्यैनां गन्धपुष्पजलाक्षतैः ॥८२
कुंकुमालक्तकैर्दीपैर्माषान्नवटकैः शुभैः । कुसुमैर्वत्सकं चापि मन्त्रेणानेन पाण्डव ॥८३
ॐ माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः ।
प्रनुवोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट" नमो नमः स्वाहा ॥८४
इत्थं सम्पूज्यं गां पृष्ट्वा पश्चात्तां च क्षमापयेत् । ॐ सर्वदेवमये देवि लोकानां शुभनन्दिनि ।
मातर्ममाभिलाषितं सफलं कुरु नन्दिनि ॥८५
एवमभ्यर्चयेदेकां गामेतद्धि गवाह्निकम् । पर्युक्ष्य वारिणा भक्त्या प्रणम्य सुरभीं ततः ॥८६
तद्दिने तापिकापक्वं स्थालीपाकं च वर्जयेत् । भूमौ स्वयं ब्रह्मचारी शयीत फलमाप्नुयात् ॥८७
यावन्ति गात्रे रोमाणि गवां कौरवनन्दन । तावत्कालं स वसति गोलोके नात्र संशयः ॥८८

समान अपने पति के साथ रुचि सदैव सुशोभित हुई रहती है । दश नक्षत्रों समेत ध्रुव आज भी दिखायी देते हैं, उनके नक्षत्र के दिन उनके दर्शन करने से मनुष्यों के पाप नष्ट हो जाते हैं ।७८

युधिष्ठिर ने कहा—यदुकलोद्भव, जनार्दन ! इस व्रत का विधान मुझे बताने की कृपा करें, जिसे शुष्नी के कहने पर रुचि ने सुसम्पन्न किया है ।७९

श्रीकृष्ण बोले—कुरूत्तम ! कार्तिक मास की शुक्ल द्वादशी के दिन प्रातः किसी पुण्य जलाशय में स्नान करके व्रत के लिए संकल्प करते हुए उस स्त्री या पुरुष को एकाहारी होना चाहिए । अनन्तर मध्याह्न के समय सवत्सा गौ का दर्शन पूजन करे सुशीला एवं वत्सला हो । उसी प्रकार क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों को भी क्रमशः श्वेत, कपिल एवं रक्तवर्ण की गौ के पूजन बताया गया है । गन्ध, पुष्प, जल, अक्षत, कुंकुम, अलक्तक, दीप, और माषान्न (उरदी) के सुशोभन वटक (बड़ा) द्वारा गौ की और कुसुमों द्वारा उसके वत्स (बछड़े) की समंत्र अर्चना होनी चाहिए । पाण्डवों की माता रूद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्याना ममृतस्य नाभि" आदि मंत्रों द्वारा उस गौ वत्स की पूजा सुसम्पन्न कर पश्चात् आकार पूर्वक प्रार्थना करे—समस्त देवमय एवं लोक के कल्याण प्रदान करने वाली मातः कुरुनन्दिनि ! मेरी कामना सफल करो ।' इस प्रकार एक गौ की अर्चना की थी क्षमा प्रार्थना के अनन्तर सभी वस्तुओं को जल से अभिसिञ्चित करते हुए सुरभी को भक्तिपूर्वक प्रणाम करे और उस दिन पक्व भोजन के त्याग पूर्वक भूमि शयन करने से उस ब्रह्मचारी को जिस फल की प्राप्ति होती है, बता रहा हूँ, सुनो ! कौरवनंदन ! गौ के शरीर में जितने लोम होते हैं, उतने दिन वह गोलोक का निश्चल निवास प्राप्त करता है, इसमें सन्देह

मेरोः पुर्यष्टकं रम्यमिन्द्राग्नियमरक्षसाम् । वरुणानिलयक्षाणां रूद्रस्य च युधिष्ठिर ।।
तासामुपरि गोलोकस्तत्र याति स गोव्रती ।।८९

ऊर्जे सिते द्विदशमेऽहनि गां सवत्सां याः पूजयन्ति कुसुमैर्वटकैश्च हृद्यैः ।
ताः सर्वकामसुखभोगविभूतिभाजो मर्त्ये वसन्ति सुचिरं बहुजीववत्साः ।।९०

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठरसम्वादे
गोवत्सद्वादशीव्रतं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ।६९

अथ सप्ततितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे देवशयनोत्थापनद्वादशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु पार्थ प्रवक्ष्यामि गोविन्दशयनं व्रतम् । कटदानं समुत्थानं चातुर्मास्यव्रतक्रमम् ।।१

युधिष्ठिर उवाच

किं देवशयनं नाम देवस्स्वपिति चाप्यसौ । देवः किमर्थं स्वपिति किं विधानं सदा वद ।।२
के मन्त्राः के च नियमा व्रतान्यथ क्रिया च का । किं ग्राह्यं किं च भोक्तव्यं सुप्ते देवे जनार्दने ।।३

श्रीकृष्ण उवाच

मिथुनस्थे सहस्रांशौ स्थापयेन्मधुसूदनम् । तुलाराशिगते तस्मिन्पुनरुत्थापयेद्व्रतम् ।।४

नहीं, जो मेरु पर्वत रहने वाली इन्द्र, अग्नि, यम, राक्षस, वरुण, वायु, यक्ष एवं रुद्र की रमणीयक इन आठ पुरियों के ऊपर स्थित है। युधिष्ठिर ! इस भाँति कार्तिक शुक्ल द्वादशी के दिन कुसुम और वटक (बड़ा) द्वारा सवत्सा गौ की सविधान अर्चना सुसम्पन्न करने वाला इस मर्त्य लोक में अपने अनेक परिवार समेत चिरकाल तक सभी प्रकार के सुखोपभोग करता है।८०-९०

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठरसम्वाद में
गोवत्स द्वादशी व्रत वर्णन नामक उन्हत्तरवाँ अध्याय समाप्त।६९।

अध्याय ७०

श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवाद में देवशयनोत्थापनद्वादशीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! मैं तुम्हें गोविन्दशयन नामक व्रत का विधान बता रहा हूँ, जिसमें कट दान, भगवानकार उत्थान, और चातुर्मास्य व्रत का क्रम बताया है, सुनो।१

युधिष्ठिर ने कहा—(देव!) शयन किसे कहा जाता है, क्या भगवान् भी शयन करते हैं! और उनका शयन किमर्थ होता है ! अतः उसके विधान, मन्त्र, नियम, व्रत, उसकी क्रिया, और भगवान् जनार्दन के शयन करने पर भक्ष्य-भोज्य में किस वस्तु का ग्रहण होता है और किसके त्याग आदि सभी बातों को बताने की कृपा कीजिये।२-३

श्रीकृष्ण बोले—सूर्य के मिथुन राशिस्थ होने पर भगवान् मधुसूदन की स्थापना और तुलाराशि

अधिमासे च पतिते एष एव विधिक्रमः । नान्यथा स्थापयेद्देवं न चैवोत्थापयेद्धरिम् ॥५
आषाढस्य सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः । स्थापयेद्भक्तिमान्विष्णुं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥६
पीताम्बरधरं सौम्यं पर्यङ्के स्वास्तृते शुभे । शुक्लवस्त्रसमाच्छन्ने सोपधाने युधिष्ठिर ॥७
इतिहासपुराणज्ञो विष्णुभक्तोऽपि यः पुमान् । स्नापयित्वा दधिक्षीरघृतक्षौद्रजलैस्तथा ॥८
समालभ्य शुभैर्गन्धैर्धूपैर्वस्त्रैरलङ्कृतम् । पूजयित्वा कुङ्कुमाद्यैर्मंत्रेणानेन पाण्डव ॥९
सुप्ते त्वयि जगन्नाथ जगत्सुप्तं भवेदिदम् । विबुद्धे त्वयि बुध्येत जगत्सर्वं चराचरम् ॥१०
एवं तां प्रतिमां विष्णोः स्थापयित्वा युधिष्ठिर । तस्यैवाग्रे स्वयं वाचं गृह्णीयान्नियमांस्ततः ॥११
चतुरो वार्षिकान्मासान्देवस्योत्थापनावधि । स्त्री वा नरो वा मद्भक्तो धर्मार्थं सुदृढव्रतः ॥१२
गृह्णीयान्नियमानेतान्दंतधावनपूर्वकम् । तेषां फलानि वक्ष्यामि तत्कर्तृणां पृथक्पृथक् ॥१३
मधुरस्वरो भवेद्राजा पुरुषो गुडवर्जनात् । तैलस्य वर्जनात्पार्थ सुन्दराङ्गः प्रजायते ॥१४
कटुतैलपरित्यागाच्छत्रुक्षयमवाप्नुयात् । मधूकतैलत्यागेन सौभाग्यमतुलं भवेत् ॥१५
पुष्पादिभोगत्यागेन स्वर्गे विद्याधरो भवेत् । योगाभ्यासी भवेद्यस्तु स ब्रह्मपदमाप्नुयात् ॥१६
कटुकाम्लतिक्तमधुरक्षारकाषायमेव च । यो वर्जयेत्स वैरूप्यं दौर्गत्यं नाप्नुयात्क्वचित् ॥१७
ताम्बूलवर्जनाद्भोगी रक्तकण्ठश्च जायते । घृतत्यागात्सुलावण्यं सर्वसिद्धिः पुनर्भवेत् ॥१८

की संक्रांति में उत्थापन करना चाहिए। उस समय अधिक मास के उपस्थित होने पर भी वही विधान एवं क्रम बताया गया है और अन्य रूप से उनकी शयन-स्थापना होनी चाहिए तथा न जागरण रूप उत्थान ही होना चाहिए। आषाढ़ शुक्ल एकादशी के दिन उपवास पूर्वक श्वेतस्त्र तथा उपधाव (तोशक-तकिया से) सुसज्जित शय्या के ऊपर भगवान् विष्णु की उस प्रतिमा को, जो शंख, चक्र, गदा एवं पद्म से सुशोभित और पीताम्बर से विभूषित हो, शयनार्थ स्थापित करें। इतिहास पुराण वेत्ता एवं विष्णु-भक्त उस पुरुष को चाहिए कि—दधि, क्षीर, घृत, मधु, शहद और अन्य में जल से प्रतिमा का स्नान करा कर सुगन्ध के विलेपन पूर्वक धूप वस्त्र से अलंकृत करते हुए कुंकुम आदि के समंत्र उनकी अर्चना सुसम्पन्न करे। पाण्डव! तदुपरांत—'जगन्नाथ, देव! न्याय के शयन करने पर यह सारा संसार शयन कर जाता है और पुनः प्रबुद्ध होने पर समस्त पराया जगत् जागृत होता है। इस प्रकार की प्रार्थना समेत विष्णु की उस प्रतिमा को शय्या पर स्थापित कर उन्हीं के समक्ष संकल्प पूर्वक चातुर्मासिक-नियम का ग्रहण करे। युधिष्ठिर! विष्णु देव के जागरण-अवधि तक के चातुर्मासिक नियमों के भक्ति पूर्वक ग्रहण करने वाले सभी प्रथम पुरुष को, जो मेरे परमभक्त एवं धर्मार्थ उस व्रत के लिए दृढ़ प्रतिज्ञा रहते हैं, और दंतधावन पूर्वक ही नियम का पालन करना आरम्भ करते हैं, प्राप्त होने वाले तत्कर्तृक फलों को पृथक्-पृथक् बता रहा हूँ, सुनो! नियम ग्रहण करने पर उन्हें दियाँ गुड के त्याग करने पर वह मधुरवाणी राजा होता है। पार्थ! तैल के त्याग से सुन्दर शरीर, कटु-तैल के त्याग से शत्रु पक्ष, मधूक (महुवा) तेज के त्याग से अतुल सौभाग्य की शोभा होती है।४-१५। उसी भाँति पुष्प आदि भोगों के त्याग से स्वर्ग में विद्याधर एवं योगाभ्यास से ब्रह्मपद की गद्दी तथा कटु आम्ल (खट्टे), तिक्त, मधुर, क्षार एवं काषाय के त्याग से अंग-वैरूप और दुर्गति कभी नहीं होती है। ताम्बूल के त्याग से रक्त कण्ठ भोगी, घृत और त्याग से लावण्य

फलत्यागाच्च मतिमान्बहुपुत्रश्च जायते । शाकपत्राशनाद्रोगी अपक्वादोऽमलो भवेत् ।।१९-
पादाभ्यङ्गपरित्यागाच्छिरोभ्यङ्गाच्च पार्थिव । दीप्तिमान् दीप्तकरणो यक्षो द्रव्यपतिर्भवेत् ।।२०
दधिदुग्ध तक्रनियमाद्गोलोकं लभते नरः । इन्द्रातिथित्वमाप्नोति स्थालीपाकविवर्जितात् ।।२१
लभेत संततिं दीर्घां तापपक्वस्य भक्षणात् । भूमावस्तरशायी च विष्णोरनुचरो भवेत् ।।२२
सदा मुनिः सदा योगी मधुमांसस्य वर्जनात् । निर्व्याधिर्नीरुजौजस्वी सुरामद्यविवर्जनात् ।।२३
एवमादिपरित्यागाद्धर्मः स्याद्धर्मनन्दन । एकान्तरोपवासेन ब्रह्मलोके महीयते ।।२४
धारणं नखरोमाणां गङ्गास्नानं दिनेदिने । मौनव्रती भवेद्यस्तु तस्याज्ञाऽस्खलिता भवेत् ।।२५
भूमौ भुङ्क्ते सदा यस्तु स पृथिव्याः पतिर्भवेत् । नमो नारायणायेति जपतोनशनं फलम् ।।२६
पादाभिवंदनाद्विष्णोर्लभेद्गोदानजं फलम् । विष्णुपादाम्दुसंस्पर्शात्कृतकृत्यो भवेन्नरः ।।२७
विष्णुदेवकुले कुर्यादुपलेपनमर्चनम् । कल्पस्थायी भवेद्राजा स नरो नात्र संशयः ।।२८
प्रदक्षिणाशतं यस्तु करोति स्तुतिपाठकः । हंसयुक्तविमानेन स च विष्णुपुरं व्रजेत् ।।२९
गीतवाद्यकरो विष्णोर्गांधर्वं लोकमाप्नुयात् । नित्यं शास्त्रविनोदेन लोकान्यस्तु प्रबोधति ।।३०
स व्यासरूपी भगवानंते विष्णुपुरं व्रजेत् । पुष्पमालादिभिः पूजां कृत्वा विष्णुपुरं व्रजेत् ।।३१
नित्यस्नायी नरो यस्तु नरकं स न पश्यति । भोजनं च जयेद्यस्तु स स्नानं पौष्करं लभेत् ।।३२
कृत्वा प्रेक्षणकं दिव्यं राज्यं सोऽप्सरसां लभेत् । अयाजितेन प्राप्नोति वापीकूपे यथा फलम् ।।३३

समेत सर्वसिद्धि तथा फल त्याग से अनेक पुत्र की प्राप्ति होती है । शाक-पत्ते के भोजन से रोगी और अपक्व-भोजन से निर्मल चित्त, चरण तथा शिर के अभ्यंग त्याग से दीप्यमान् एवं दीप्तिकरण युक्त द्रव्याधीश्वर होता है। पार्थिव ! दधि-क्षीर तथा तक्र (मट्ठे) के त्याग करने से गोलोक का निवास, और (वटलोई) पात्र में परिपक्व मध्य के त्याग से इन्द्र का सम्मानित अतिथि होता है ! केवल ताप-पक्व वस्त्र के भक्षण करने से अविच्छिन्न संतति, भूमि शायी होने से विष्णु के अनुसार, मधु-मांस त्याग से सदैव मुनि, योगी, सुरा-मद्य के त्याग से व्याधि हीन तथा ओजपूर्ण आरोग्य करता है । कर्म-नन्दन ! इस प्रकार आदि वस्तु के त्याग से धर्म, एकांत उपवास से ब्रह्मलोक का सम्मान अदा होता है । नख-रोम (शिटकोटा आदि) के धारण पूर्वक मौन व्रत एवं प्रतिदिन स्नान करने वाले की सभी बातें सार्थक होती हैं । सदैव भूमि पर भोजन करने वाला पृथिवी का अधीश्वर होता है, किन्तु 'नमोनारायण' के जप पूर्वक अशन (भोजन) करने से ही उच्च फल की प्राप्ति होती ।१६-२६। विष्णु की चरण-वन्दना करने से गोदान के फल प्राप्त होते हैं, और विष्णु का पादारविन्द का स्पर्श करने से मनुष्य व्रत में कृत-कृत्य हो जाता है । कुल परम्परा में विष्णु देव की सदैव लेख अर्चन करने वाला मनुष्य कल्प स्थायी राजा होता है, इसमें संशय नहीं । स्तुति पाठ पूर्वक सौ प्रदक्षिणा करने वाला हंस युक्त विमान द्वारा विष्णु लोक का निवास प्राप्त करता है । विष्णु के विभिन्न गीत वाद्य करने से गन्धर्व-लोक की प्राप्ति होती है । नित्य शाखाओं की चर्चा करते हुये लोगों को जागरूक करने वाला पुरुष व्यास रूपी भगवान् कहलाता है अंत में उसे विष्णु लोक की प्राप्ति होती है, तथा पुष्प-माला की प्राप्ति द्वारा पूजन करने वाले को भी । नित्य स्नान के फल, प्राप्त होते हैं । विष्णु के निमित्त प्रेक्षणवाद की रचना करने से अप्सराओं का दिया हुआ

**षष्टकालेन्नभोज्येन स्थायी स्वर्गे नरो भवेत् । पर्णेषु यो नरो भुङ्क्ते कुरुक्षेत्रफलं लभेत् ।।३४
शिलायां भोजनान्नित्यं स्नानं प्रयागजं भवेत् । यामद्वये जलत्यागान्न रोगैः परिभूयते ।।३५
एवमादिव्रते पार्थ तुष्टिमायाति हेतुतः । सुप्ते सति जगन्नाथे केशवे गरुडध्वजे ।।३६
निवर्तते क्रियाः सर्वाश्चातुर्वर्ण्यस्य भारत । विवाहव्रतबंधादिभूतसंस्कारदीक्षणम् ।।३७
यज्ञाश्च गृहवेशादि गोदानाच्च प्रतिष्ठितम् । पूज्यानि यानि कर्माणि तानि सर्वाणि वर्जयेत् ।।३८
असंक्रांतं तु मासं वै दैवे पित्र्ये वर्जयेत् । मलिम्लुचमशौचं च सूर्यसक्रांतिवर्जितम् ।।३९
प्राप्ते भाद्रपदे मासि एकादश्यां दिने हरेः । कटदानं भवेद्विष्णोर्महापूजां प्रवर्तयेत् ।।४०
य एतदेव शयनं तत्रेदं कारणं शृणु । पुरा तपःप्रभावेन तोषयित्वा हरिं विभुम् ।।४१
ममापि मानयत्यङ्गं प्रार्थितो योगनिद्रया । निरीक्ष्य चात्मनो देवा रुद्धं लक्ष्म्या उरः स्थलम् ।।४२
शङ्खचक्रासिमार्गाद्यैर्बाहवोप्यथ वक्षसा । अधो नाभेर्विरुद्धं मे वैनतेयेन पक्षिणा ।।४३
मुकटेन शिरो रुद्धं कुण्डलाभ्यां च कर्णकौ । ततो ददावहं तुष्टो नेत्रयोः स्थानमादरात् ।।४४
चतुरो वार्षिकान्मासान्माऽऽश्रिता सा भविष्यति । योगनिद्रापि [1]माहात्म्यं श्रुत्वा पौरातनं शुभम् ।।४५
चकार लोचनावासमतोऽर्थे मे युधिष्ठिर । अहं च तां भावयित्वा मानयामि ननस्विनीम् ।।४६
योग निद्रा महानिद्रा शेषाभिशयने स्थितः । क्षीरोदधौ च विध्यग्रे धौतपादः समाहितः ।।४७**

राज्य प्राप्त होता है । अपरिचित पुत्र के भोजन से वापसी और कूप के निर्माण फल, छठें काल में अन्य भोजन करने से स्वर्ग में स्थायी निवास, पत्र पर भोजन करने से कुरुक्षेत्र का पल और शिला पर भोजन करने से प्रयाग स्नान के पुण्य प्राप्त होते हैं । द्वितीय प्रहर में जल के त्याग करने से वह कभी रोग-पीड़ित नहीं होता है । पार्थ! इस प्रकार इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर मैं अत्यन्त प्रसन्न होता हूँ । भारत ! गरुड़ध्वज केशव एवं जगन्नाथ के शयन करने पर चारों वर्णों की सभी क्रियाएँ विवाह, व्रतबंध, भूत-संसार, दीक्षा, यज्ञ, गृह प्रवेश आदि समस्त क्रियाएँ, जो योगदान द्वारा प्रतिष्ठित होती है वे सभी पूज्य कर्म इसमें निषिद्ध किये गये हैं । उसी भाँति संक्रांति हीन मास आदि मास में देव और पितृ की सभी क्रियायें स्थगित होने लगती हैं । भाद्रपद मास की शुक्ल एकादशी के दिन विष्णु के लिए केश-दान करना विष्णु की महापूजा का प्रवर्तक होता है।२७-४०। पार्थ! इस समय में शयन करने का कारण बता रहा हूँ, सुनो ! योगनिद्रा देवी ने पहले समय में तप द्वारा भगवान् को प्रसन्न करके समान पूर्वक मेरे अंग-निवास की प्रार्थना की थी । उस समय वैसा देखकर देवो ने लक्ष्मी द्वारा मेरे स्थल को अवरुद्ध करा दिया और शङ्ख, चक्र एवं रबड़ आदि द्वारा बाहु तथा नाभि से नीचे भाग को वक्षःस्थल द्वारा गरुड़ ने अवरुद्ध कर दिया । उसी भाँति मुकुट द्वारा शिर और कुण्डल से कान अवरुद्ध होने पर मैंने अत्यन्त तुष्ट होने के कारण (योगमाया को) अपने नेत्रों में सादर स्थान प्रदान किया । और कहा कि वर्ष के हर चातुर्मास्य के समयवत मेरे आकृति रहेगी । युधिष्ठिर ! योगनिद्रा भी मेरे उस बात को सुनकर सभी से सहर्ष मेरे नेत्रों में निवास करती है । मैं भी उस समय शेषशायी होकर योगनिज एवं महानिज रूपी उस मनस्थित का भावना पूर्ण सुसम्मान करता हूँ । क्षीर-सागर में शेष-शायी होने के समय विधि के सम्मुख या प्रक्षालन

१. तद्वाक्यम् ।

लक्ष्मीकराम्बुजैरच्छैर्मृग्यमानपदद्वयः । तस्मिन्कालेऽपि मद्भक्तो यो मासांश्चतुरः क्षिपेत् ।।४८
व्रतैरनेकैर्नियमैः पाण्डवश्रेष्ठ मानवः । कल्पस्थायी विष्णुलोकं स व्रजेन्नात्र संशयः ।।४९
ततोऽवबुध्यते देवः श्रीमाञ्छङ्खगदाधरः । कार्तिके शुक्लपक्षस्य एकादश्यां पृथक्छृणु ।।५०
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र देवमुत्थापयेद्द्विजः । इदं विष्णुर्विचक्रमे स्वासने च तदा नृप ।।५१
समुत्थिते तदा विष्णौ क्रियाः सर्वाः प्रवर्तयेत् । महातूर्यरवे रात्रौ भ्रामयेत्स्यंदने स्थितम् ।।५२
उत्थिते देवदेवेशे नगरे पार्थिवः स्वयम् । दीपोद्रेककरे मार्गे नृत्यगीतजनाकुले ।।५३
यं यं दामोदरः पश्येदुत्थितो धरणीधरः । तं तं प्रदेयं राजेन्द्र सर्वं स्वर्गाय कल्पते ।।५४
रात्रौ प्रजागरे देवमेकादश्यां सुरालये । प्रभाते विमले स्नात्वा द्वादश्यां विष्णुमर्चयेत् ।।५५
होमयेद्धव्यवाहं च हव्यद्रव्यैर्घृतादिभिः । ततो विप्राञ्छुभान्स्नात्वा भोजयेदन्नविस्तरैः ।।५६
घृतदधिक्षौद्रकाद्यैर्गुडधूपैः समोदकैः । यजमानोऽपि संतुष्टस्त्वरा हास्यविवर्जितः ।।५७
एकादश दशाष्टौ वा पञ्च द्वौ वा कुरूत्तम । अर्चयेच्चन्दनैर्धूपैः पुष्पैर्गन्धैर्द्विजोत्तमान् ।।५८
श्रद्धोक्तविधिना पार्थ भोजयेद्भाग्यवान्यतीन् । आचांतेभ्यस्ततो दद्यात्त्यागं यत्किञ्चिदेव हि ।।५९
स्वदाद्या स्वमनोभीष्टपत्रपुष्पफलादिकम् । चतुरो वार्षिकान्मासान्नियमो यस्य यः कृतः ।।६०
कथयित्वा द्विजेभ्यस्तं दद्याद्भक्त्या सदक्षिणाम् । दत्त्वा विसर्जयेद्विप्रांस्ततो भुञ्जीत च स्वयम् ।।६१

पूर्वक मेरे विदित होने पर लक्ष्मी जी अपने कर कमलों से मेरी निरन्तर सेवा करती हैं। इसलिए पाण्डव! उस समय में चार मास तक व्रत-नियम द्वारा उसे व्यतीत करने से दृढ़ प्रतिज्ञा वाले मेरे भक्त पुरुष विष्णु लोक में एक कल्प का निवास प्राप्त करते हैं, इसमें संशय नहीं। पश्चात् कार्तिक शुक्ल एकादशी के दिन शङ्ख चक्र, गदाधारी श्री विष्णु देव के जागृत होने के लिए विधान बता रहा हूँ, सुनो! राजेन्द्र! इदं विष्णुर्विचक्रमे, आदि इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उन्हें प्रबुद्ध करना चाहिए। क्योंकि नृप! उनके शयनोत्थान करने पर ही समस्त धार्मिक क्रियाओं का आरम्भ होता है। उस समय राजा को चाहिए कि उन्हें सुसज्जित साधन (रथ) पर सुशोभित करके अनेक वाद्य-ध्वनियों के कोलाहल समेत भ्रमण करायें।४१-५२। मार्ग में प्रकाश का आधिक्य और नृत्य-गीत करने वाले मनुष्यों का महान् संकुल होना चाहिए। उस समय जागृत होकर धरणीधर भगवान् दामोदर जिस जिस प्रदेय वस्तुओं के निरीक्षण करते हैं, वे स्वर्ग में सुसम्मानित होती हैं। एकादशी के दिन रात्रि में विष्णु देव के जागृत होने पर द्वादशी के प्रातः काल स्नान करके उनकी सप्रेम अर्चना सुसम्मान करे। हवनीय वस्तु-तिल, चावल, जवा, आदि घृतयुक्त करके प्रज्वलित अग्नि में आहुति प्रदान करे। तत्पश्चात् ब्राह्मणों को विविध भाँति के भोजन कराये, जो घृत, दधि, मधु, आदि एवं मनोरम गुड-मोदक से सुसम्पन्न किया गया हो। यजमान भी शीघ्रता एवं हास-परिहास का त्याग कर ब्राह्मण-सेवा में ही दत्त चित रहे। कुरुत्तम! एकादश, दश, आठ, पाँच, प्रथम दो ब्राह्मणों को (भोजन के पहले० चन्दन, धूप, पुष्प, एवं गन्धों द्वारा सप्रेम अर्चना करनी चाहिए तथा पार्थ! उस भाग्यवान् को श्रद्धा-भक्ति पूर्वक चार यतियों को भी भोजन कराना चाहिए। अनन्तर अपनी अभीष्ट वस्तु-पत्र, पुष्प एवं फल आदि जो कुछ हो, संकल्प पूर्वक दानरूप में उन्हें अर्पित करे। इस प्रकार चौमासे में जिस वस्तु का नियम पहले से कर लिया गया हो, उसके कथन पूर्वक दक्षिणासमेत उसे ब्राह्मणों को अर्पित करते हुए विसर्जन के उपरान्त

यत्यक्तं चतुरो मासान्प्रवृत्तिन्तस्य चाचरेत् । एवं य आचरेत्पार्थ सोऽनन्तं धर्ममाप्नुयात् ॥६२
अवसाने तु राजेन्द्र वासुदेवपुरीं व्रजेत् । यस्याविघ्नैः समाप्येत चातुर्मास्यव्रतं नृप ॥६३
स भवेत्कृतकृत्यस्तु न पुनर्मातृको भवेत् । यो देवशयनं पार्थ मासं मासं समाचरेत् ॥६४
उत्थानं चापि कृष्णस्य स हरेर्लोकमाप्नुयात् । शृणोति ध्यायति स्तौति जुहोत्याख्याति यो नरः॥
विष्णोर्भक्तिं परां पार्थ स गच्छेद्वैष्णवं पदम् ॥६५

दुग्धाब्धिभोगशयने भगवाननन्तो यस्मिन्दिने स्वपिति यत्र विबुध्यते वा ।
तस्मिन्ननन्यमनसामुपवासभाजां पुंसां ददाति सुगतिं गरुडाङ्कसङ्गी ॥६६

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
देवशयनोत्थापनद्वादशीव्रतवर्णनं नामसप्ततितमोऽध्यायः ।७०

अथैकसप्ततितमोऽध्यायः
नीराजनद्वादशीव्रतवर्णनम्
श्रीकृष्ण उवाच

पुरा बभूव राजर्षिरजपाल इति श्रुतः । प्रार्थितः स प्रजाभिस्तु सर्वदुःखापनुत्तये ॥१
दुःखापनोदं कुरु भो व्याधितानां नरेश्वर । एवमुक्तिश्चिरं ध्यात्वा कृत्वाव्याघोन्प्रजागणान् ॥२
पालयामास हृष्टोऽसावजपालस्ततोऽभवत् । तेनैषा निर्मिता शांतिर्नाम्ना नीराजता जने ॥३

स्वयं भोजन करे और चौमासे में अन्य वस्तु की पुनः सेवा करना आरम्भ करे । पार्थ ! इस प्रकार इस व्रत को सुसम्पन्न करने वाला अनन्त धर्म की प्राप्ति करता है तथा देहावसान के समय इन्द्रलोक की प्राप्ति करता है । राजेन्द्र ! नृप ! जिस पुरुष का चातुर्मास्य-व्रत निर्विघ्न सुसम्पन्न होता है वह कृत कृत्य होकर पुनः मांस-जठर में प्रवेश नहीं करता है । पार्थ ! इस देव के शयन और उत्थान नामक व्रत को प्रति (वर्षक) मास में सुसम्पन्न करता है, उसे विष्णु लोक की प्राप्ति होती है । पार्थ ! इस व्रत के श्रवण, ध्यान, स्तवन, दान एवं आख्यान करने वाले को विष्णु की पराभक्ति समेत वैष्णव भक्ति की प्राप्ति होती है । इस प्रकार क्षीर-सागर शायी भगवान अनन्त देव के शयन और जागरण के दिन उपवास पूर्वक प्रबल प्रेम प्रकट करने वाले को गरुड वाहन भगवान् विष्णु उत्तम गति प्रदान करते हैं ।५३-६६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर संवाद में
देवशयन उत्थापन द्वादशी व्रत वर्णन नामक सत्तरहवाँ अध्याय समाप्त ।७०।

अध्याय ७१
नीराजन द्वादशी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पहले समय में राजर्षि अजपाल नामक राजा राज करते थे, उनकी प्रजाएँ अपने समस्त दुःखों के विनाशार्थ उनसे प्रार्थना की नरेश्वर ! हमलोग अत्यन्त व्याधि-पीड़ित हैं, पुनः हमें इससे मुक्त करने की कृपा कीजिए । प्रजाओं के इस प्रकार कहने पर राजा अजपाल ने चिरकाल तक ध्यान रहने के अनन्तर प्रजाओं को व्याधि मुक्त क्रिया तथा अत्यन्त प्रसन्न रहकर उनके पालन-पोषण भी किया पाण्डव

तस्यास्तु पाण्डवश्रेष्ट लक्षणं वच्मि ते शृणु ! राजा पुरोहितैः सार्द्धमनुष्ठेया विधानतः ॥४
तस्मिन्काले बभूवाथ रावणो राक्षसेश्वरः । लङ्कास्थितः सुरगणान्नियुनक्ति स्वकर्मसु ॥५
अखण्डमण्डलं चन्द्रमातपत्रं चकार ह ! इन्द्रं सेनापतिं चक्रे वायुं पांसुप्रमार्जकम् ॥६
वरुणं बद्धकर्मस्थं धनदं धनरक्षकम् । यमं संयमनेऽरीणां युयुजे मंत्रणे मनुम् ॥७
मेघाश्छादन्ति नृपतिं द्रुमपुष्पादिपंक्तिषु । सप्तर्षयः शांतिपरा ब्रह्मणा सह संस्थिताः ॥८
यामिका मध्यकक्षायां गन्धर्वा गीततत्पराः । प्रेक्षणीयेऽप्सरोवृंदं बाह्ये विद्याधरा वृताः ॥९
गङ्गाद्याः सरितः पाने गार्हपत्ये हुताशनः । विश्वकर्मान्नसंस्कारे यमः शिल्पिप्रयोजने ॥१०
तिष्ठन्ति पार्थिवाः सर्वे पुरःसेवाविधायिनः । दृश्यन्ते भासुरै रत्नैः प्रभावंतो विभूषणैः ॥११
संदृश्य रावणः प्राह प्रशस्तं प्रतिहारकम् । सेवां कर्तुं मम स्थाने ब्रूहि[1] कोऽत्र समागतः ॥१२
स उवाच प्रणम्याग्रे दण्डपाणिर्निशाचरः । एष ककुत्स्थो मांधाता धुंधुमारो नलोऽर्जुनः ॥१३
ययातिर्नहुषो भीमो राघवोऽयं विदूरथः । एते चान्ये च बहवो राजान इति आसते ॥१४
मेघाकारास्तव स्थाने नाजपाल इहागतः । रावणः कुपितः प्राह शीघ्रं दूतं व्यसर्जयत् ॥१५
इत्युक्ते प्रहितो दूतो धूम्राक्षो नाम राक्षसः । धूम्राक्ष गच्छ ब्रूहि त्वमजपालं ममाज्ञया ॥१६
सेवां कुरु समागच्छ कबन्धो यस्य पार्थिवः । अन्यथा चन्द्रहासेन त्वं करिष्ये विकंधरम् ॥१७

श्रेष्ठ ! उन्हीं राजा अजपाल द्वारा इस शांति की, जो मनुष्यों के लिए परमोत्तम एवं नीराजन के नाम से प्रख्यात है, लक्षण मैं बता रहा हूँ सुनो ! पुरोहितों को साथ लेकर राजा को सविधान इसका अनुष्ठान आरम्भ करना चाहिए। उन्हीं दिनों राक्षसाधीश्वर रावण ने लंका में रहकर देवगणों को अपने यहाँ प्रत्येक (उनके योग्य) कार्यों में नियुक्ति किया था—चन्द्रमा को अखण्ड मण्डलाकार आतपत्र (छत्र), इनको सेनापति, वायु को गृहमार्जनक (झाड़ू लगाने वाला), वरुण को बद्धकर्म, कुबेर धनाध्यक्ष, यम को शत्रुनियामक, मनु को मन्त्री एवं वृक्ष-पुष्प आदि की पंक्तियों में मेघ द्वारा आच्छादन अजपाल कर रहे थे। उसी भाँति ब्रह्मा के साथ राजर्षि गण शांति निदान में संलग्न थे। दक्षिण ओर की मध्य कक्षा में गन्धर्व गण गानकर रहे थे, प्रेक्षणीय स्थानों में अप्सराएँ और वाह्य भाग में विद्याधर नियुक्त थे। पान करने के लिए गङ्गा आदि सरिताओं की नियुक्ति की, गार्हपत्य के लिए अग्नि, भण्डार गृह (रसोई) में विश्वकर्मा, शिल्पि कार्य में यम और समस्त नृपगण आचरणों के भूषणों से भूषित होकर उसके समक्ष सेवा कार्य में संलग्न थे। उस समय रावण ने अपने प्रतिहारी प्रशस्त से कहा—यहाँ मेरी सेवा के लिए कौन-कौन उपस्थित है, मुझे शीघ्र बताओ ! दण्डपाणि उस समय राक्षस ने प्रणाम पूर्वक उससे कहा—यह ककुत्स्थ, मांधाता, धुंधुमार, नल, अर्जन, ययाति, नकुल, भीम तथा रघुवंशी राजा विदूरथ हैं और अन्य सभी राजगण उपस्थित हैं एवं मेघ के रूप में यह राजा अजपाल की सेवा कर रहा है। जो सुनकर रावण ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर (अजपाल के पास) शीघ्र दूत भेजने की आज्ञा प्रदान की—उसने धूमाक्ष नामक दूत से कहा—'धूम्राक्ष ! मेरी आज्ञा से तुम शीघ्र जाकर उस अजपाल से कहो कि जिसका राजा कबन्ध है वह शीघ्र आकर मेरी सेवा करो, अथवा चन्द्रहास (रावण) द्वारा विना कन्धे का कर दूँगा'।१-१७। रावण

---

१. नारदः। २. वशम्।

रावणेनैवमुक्तस्तु धूम्राक्षो गरुडो यथा । संप्राप्य तां पुरीं रम्यां तच्च राजकुलं गतः ।।१८
ददर्श यं तमेकं स अजपालमजावृतम् । मुक्तकेशं मुक्तकक्षं नैकमुक्तक्रमद्वयम् ।।१९
यष्टिस्कन्धं रेणुभृतं व्याधिभिः परिवारितम् । निहतामित्रशार्दूलं सर्वोपद्रवनाशनम् ।।२०
मह्यामालिख्य नामानि विनिघ्नितं द्विषां गणम् । स्नातं भुक्तं शुभे स्थाने कृतकृत्यं मुनिं यथा ।।२१
दृष्ट्वा हृष्टमनाः प्राह धूम्राक्षो रावणोदितम् । साक्षेपमजपालोऽपि प्रत्युक्त्वा कारणांतरम् ।।२२
प्रेषयामास धूम्राक्षं ततः कृत्यं समादधे । ज्वरमाकारयित्वा तु प्रोवाचेदं महीपतिः ।।२३
गच्छ लङ्काधिपस्थानमाचरस्व यथोचितम् । नियुक्तस्तदजपालेन ज्वरो राजञ्जगाम ह ।।२४
गत्वा च कंपयामास सगणं राक्षसेश्वरम् । रावणस्तं विदित्वा नु ज्वरं परमदारुणाम् ।।२५
प्रोवाच तिष्ठतु नृपस्तेन मे न प्रयोजनम् । ततः सविज्वरो राजा बभूव धनदानुजः ।।२६
तेनैषा निर्मिता शांतिरजपालेन धीमता । सर्वरोगप्रशमनी सर्वोपद्रवनाशिनी ।।२७
कार्तिके शुक्लपक्षस्य द्वादश्यां रजनीमुखे । समुत्थिते विनिद्रे तु देवे दामोदरे तदा ।।२८
वेद्यंते रत्नमालाभी रम्ये मालानुरञ्जिते । जनयित्वा नवं विष्णुं हुत्वा मन्त्रैर्द्विजोत्तमैः ।।२९
वर्द्धमानतरूस्थाभिर्दीपिकाभिर्हुताशनम् । कृत्वा महाजनः सर्वैर्हरिं नीराजयेच्छनैः ।।३०
पुष्पैरभ्यर्चितं देवं समालब्धं च चन्दनैः । बदरैः कर्बुरैश्चैव त्रपुसैरिक्षुभिस्तथा ।।३१
गन्धैः पुष्पैरलंकारैर्वस्त्रै रत्नैश्च पूजितैः । तस्यैवानुमतां लक्ष्मीं ब्रह्माणं चण्डिकां तथा ।।३२

के इस प्रकार कहने पर धूम्राक्ष ने गरुड की भाँति शीघ्र उसकी रम्यपुरी में पहुँच कर राज दरबार में राजा अजपाल को देखा जो अजाओं (बकरियों) से आवृत था । उसके केश और कक्ष खुले थे तथा क्रमशः दोनों ही मुक्त थे, कन्धे पर घड़ी रखे, धूलि-धूसर, स्वयं व्याधि-परिवार से युक्त था । अपने शत्रु राजाओं का निहन्ता समस्त उपद्रवों का विनाशक, शत्रु गणों के नाम पार्थ ! पर लिख-लिख कर हनन करने वाला वह अजपाल, स्नान भोजन से निवृत्त होकर मुनि की भाँति कृत नृत्य कर्म एवं प्रसन्न मना राजसिंहासन पर सुशोभित था। धूम्राक्ष ने उन्हें देखकर उनसे रावण की सभी बातें सुनाया। राजा अजपाल ने भी साक्षेप (गर्वपूर्ण) उसका उत्तर देकर धूम्राक्ष को भेज दिया और उसके प्रति (रावणार्थ) अपना कृत्य आरम्भ किया—'राजा ने ज्वर को बुलाकर कहा—लंका जाओ और रावण के पास पहुँच कर यथोचित व्यवहार करो।' राजन् ! अजपाल के नियुक्त करने पर ज्वर वहाँ जाकर परिजन समेत राक्षस रावण को कम्पित करने लगा। अनन्तर रावण ने उस ज्वर को अत्यन्त भीषण जानकर कहा—उस राजा को रहने दो, (अर्थात् मेरी सेवा के लिए अजपाल को न बुलाओ), क्योंकि उससे मेरी कोई आवश्यकता नहीं है। पश्चात् वह रावण ज्वर से मुक्त हुआ। १८-२६। उसी धीमान् अजपाल ने इस शांति का निर्माण किया है, जो समस्त रोग के शमन एवं सम्पूर्ण उपद्रवों की विनाशिनी है। कार्तिक मास की शुक्र द्वादशी के दिन सायंकाल के समय भगवान् दामोदर देव के जागृत होने पर माला और रत्न मालाओं से विभूषित एवं रमणीक वेदी स्थान भगवान् विष्णु के जन्मोत्सव पूर्वक श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मणों द्वारा एवं दीपक वक्ष (रोशनी) आदि के उपरान्त धीरे-धीरे भगवान् का नीराजन (आरती) करे। उस समय विष्णु देव को पुष्प, चन्दन, वेर, कर्बुर त्रपु (रांगां) इच्छु, गन्ध, पुष्प, अलंकार, वस्त्र एवं रत्नों द्वारा पूजन पूर्वक सुसज्जित करने के उपरान्त उसी भाँति लक्ष्मी,

आदित्यं शङ्करं गौरीं यक्षं गणपतिं ग्रहान् । मातरं पितरं नागान्सर्वान्नीराजयेत्ततः ॥३३
गवां नीराजनं कुर्यान्महिष्यादेश्च मण्डलम् । भ्रामयेत्त्रासयेसच्छर्दिघण्टावादनछादनैः ॥३४
ता गावः प्रस्नुता यान्ति स्वापीडास्तबकाङ्गगदाः । सिन्दूरकृतशृङ्गाग्राः संभारवशवत्सकाः ॥३५
अनुयांति सगोपालाः कालयन्तो धनानि ते । छेदानुलिप्तरक्ताङ्गा रक्तपीतसिताम्बराः ॥३६
एवं कोलाहले वृत्ते गवां नीराजनोत्सवे । तुरगाँल्लक्षणैर्युक्तान्द्विरदांश्च सुपूजितान् ॥३७
राजचिह्नानि सर्वाणि उद्धृत्य स्वगृहाङ्गणे । राजा पुरोहितैः सार्द्धं मन्त्रिभृत्यपुरःसरः ॥३८
सिंहासनोपविष्टश्च शङ्खतूर्यादिनिस्वनैः । पूजयेद्गन्धकुसुमैर्वस्त्रदीपविलेपनैः ॥३९
ततः स्त्रीलक्षणैर्युक्ता वेश्या वाथ कुलाङ्गना । शीर्षोपरि नरेन्द्रस्य भ्रामयेद्दारुपात्रिकाम् ॥४०
शांतिरस्तु समृद्धिश्च द्विजैश्च स्वजनेन च । ततो नीराजयेत्सौम्यं हस्त्यश्वरथसङ्कुलम् ॥४१
एवमेषा महाशान्तिः ख्याता नीराजने जने । येषां राष्ट्रे पुरे ग्रामे क्रियते पाण्डुनन्दन ॥४२
तेषां रोगाः क्षयं यांति सुभिक्षं वर्द्धते तदा । शान्तिर्नीराजनाल्लोके सर्वान्रोगान्व्यपोहति ॥४३
लोकानावर्द्धयित्वा तु अजपालवरो यथा । एषां रोगादिपीडासु जन्तूनां हितमिच्छता ॥४४
वर्षेवर्षे प्रयोक्तव्या शान्तिर्नीराजना इति ॥४५

ब्रह्मा, चण्डिका, आदित्य, शंकर, गौरी, यक्ष, गणपति, गृहगण, मातृ-पितृ और नागो के नीराजन पूर्वक गौओं को नीराजन तथा महिषी आदि के मण्डल करना चाहिए, जो घंटावादन और आच्छादन द्वारा भ्रमण के समय भासित की जाती है। मयूरपिच्छ द्वारा भूषित करने तथा सीगों के अग्र भाग को सिन्दूरों से अनुरञ्जित होने पर वे वस्त्र समेत सुसज्जित गौएँ आधिक दुग्ध देती हैं, जिनके एक वर्ण द्वारा अंग और रक्त पीत एवं श्वेत वस्त्रों द्वारा समस्त देह सुसज्जित रहती है। गोपालों को भी उसी भाँति सुशोभित होकर उनका पुनर्गामी होना चाहिए। २७-३६। इस प्रकार गौओं के कोलाहलपूर्ण नीराजन के समय सुलक्षणों से युक्त घोड़े, हाथियों, राजचिह्न आदि को गृहाङ्गण में रख कर राजा पुरोहित, मन्त्रिगण तथा परिजन समेत वहाँ पहुँच राजसिंहासन को स्वयं विभूषित करते हुए शंख तुरही आदि की ध्वनि पूर्वक पुष्प, वस्त्र, दीप एवं अलेपन द्वारा उन सब की अर्चना करे। तदुपरांत सभी लक्षणों से विभूषित वेश्या अथवा कुलस्त्री सभी द्वारा राजा के शिर के ऊपर दारुपात्रिका का भ्रमण होना चाहिए। ब्राह्मणों तथा स्वजनों द्वारा शांति पाठ के अनन्तर हाथी, अश्व रथ के उस सौम्य समुदाय का नीराजन करे। पाण्डुनन्दन! इस प्रकार मनुष्यों के हितार्थ नीराजन विषयक यह महा शांति उत्पन्न हुई है, अतः जिस राष्ट्र नगर अथवा ग्राम में यह सुसम्पन्न होती है, वहाँ के सभी के रोग-शमन पूर्वक प्रदेश में अत्यन्त सुभिक्ष होता है। यह शांति नीराजन द्वारा लोक के समस्त रोगों को विनष्ट करती है। अजपाल के कथनानुसार प्राणियों के हितार्थ एवं उत्पन्न रोग का आदि के शमनार्थ इसे सुसम्पन्न करने पर अजावृद्धि होती है अतः प्रत्येक वर्ष इस नीराजना शांति को सुसम्पन्न करना परमावश्यक है। अजपाल के वाक्यों से यह निश्चित है कि नूतन जल धर के समान श्यामल भगवान विष्णु के नीराजन पूर्वक ब्राह्मण, रथ, गज, एवं राजचिह्नों के नीराजन करने वाले रोग

नीराजयन्ति नवमेघनिभं हरिं ये गोब्राह्मणानरथगजांश्च नरेशविद्वान् ।
ते सर्वरोगरहिताश्च नुता नरेन्द्रैरिंद्रप्रभा भुवि भवंत्यजपालवाक्यात् ॥४६

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
नीराजनद्वादशीव्रतवर्णनं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ।७१

अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः

भीष्मपञ्चकव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

यदेतदतुलं पुण्यं व्रतनामुत्तमं व्रतम् । कर्तव्यं कार्तिके मासि प्रयत्नाद्भीष्मपञ्चकम् ॥१
विधानं कीदृशं तस्य फलं च यदुसत्तम । कथयस्व प्रसादान्मे मुनीनां हितमिच्छताम् ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

प्रवक्ष्यामि व्रतं पुण्यं व्रतानामुत्तमं व्रतम् । यथाविधि च कर्तव्यं फलं चास्य यथोदितम् ॥३
मयापि भृगवे प्रोक्तं भृगुश्चोशनसे ददौ । उशनापि हि विप्रेभ्यः प्रह्लादाय च धीमते ॥४
तेजस्विनां यथा वह्निः पवनः शीघ्रगामिनाम् । विप्रो यथा च पूज्यानां दानानां काञ्चनं यथा ॥५
भूलोकः सर्वलोकानां तीर्थानां जाह्नवी यथा । यथाश्वमेधो यज्ञानां मथुरा मुक्तिकांक्षिणाम् ॥६
वेदो यथैव शास्त्राणां देवानामच्युतो यथा । तथा सर्वव्रतानां तु वरोक्तं भीष्मपञ्चकम् ॥७

मुक्त होकर इस धरातल पर इन्द्र की भाँति सौन्दर्य पूर्ण प्रजा से भूषित होते हैं । ३७-४६।

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में भी कृष्णयुधिष्ठिर संवाद में
नीराजन द्वादशी व्रत वर्णन नामक इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७१।

अध्याय ७२

भीष्मपञ्चकव्रतवर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—कुरुसत्तम! आप ने कार्तिक मास में भीष्मपञ्चक-कर्तव्य को सुसम्पन्न करना परमावश्यक बताया है, अतः उस अतुल पुण्य वाले परमोत्तम व्रत का विधान और फल मेरे तथा महर्षियों के हितार्थ बताने की कृपा कीजिये ! १-२

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें पुण्य रूप एवं परमश्रेय व्रत का विधान एवं फल उसी प्रकार बता रहा हूँ, जिस प्रकार इसका वर्णन शास्त्र में किया गया है । सर्वप्रथम मैंनै मनु जी को और भृगु ने शुक्र को और शुक्र ने ब्राह्मणों एवं श्रीमान् प्रह्लाद को बताया था । जिस प्रकार तेजस्वी पुरुषों में अग्नि, शीघ्र गामियों में पवन, पूज्यों में विप्र, दान में सुवर्ण, सर्वलोकों में भूलोक, तीर्थो में गंगा, यज्ञो में अश्वमेघ, मुक्तेच्छुकों के लिए मथुरा, शास्त्रों में वेद एवं देवों में अच्युत का महत्व विशेष है, उसी भाँति समस्त व्रतों में यह भीष्म पञ्चक व्रत परमोत्तम बताया गया है ।३-७। भीष्म पञ्चक व्रत अत्यन्त दुष्कर वस्तु है, ऐसा भद्र पुरुषों का कहना है

दुष्करं भीष्ममित्याहुर्न शक्यं तदिहोच्यते । यस्तत्करोति राजेन्द्र तेन सर्वं कृतं भवेत् ॥८
वशिष्ठभृगुभर्गाद्यैश्चीर्णं कृतयुगादिषु । नाभागांगांबरीषाद्यैश्चीर्णं त्रेतायुगादिषु ॥९
सीरभद्रादिभिर्वैश्यैः शूद्रैरन्यैः कलौ युगे । दिनानि पञ्च पूज्यानि चीर्णमेतन्महाव्रतम् ॥१०
ब्राह्मणैर्ब्रह्मचर्येण जपहोमक्रियाभिः । क्षत्रियैश्च तथा शक्त्या शौचव्रतपरायणैः ॥११
पराधिः परिहर्तव्यो ब्रह्मचर्येण निष्ठया । मद्यं मासं परित्यज्य मैथुनं पापभाषणम् ॥१२
शाकाहारपरैश्चैव कृष्णार्चनपरैर्नरैः । स्त्रीभिर्वा भर्तृवाक्येन कर्तव्यं सुखवर्द्धनम् ॥१३
विधवाभिश्च कर्तव्यं पुत्रपौत्रादिवृद्धये । सर्वकामसमृद्ध्यर्थं मोक्षार्थमपि पांडव ॥१४
नित्यं स्नानेन दानेन कार्त्तिकी यावदेव तु । प्रातः स्नात्वा विधानेन मध्याह्ने च तथा व्रती ॥१५
नद्यां निर्झरगर्ते वा समालभ्य च गोमयम् । यवव्रीहितिलैः सम्यक्तर्पयेच्च प्रयत्नतः ॥१६
देवानृषीन्पितॄंश्चैव ततोन्यान्कामचारिणः । स्नानं मौनं नरः कृत्वा धौतवासा दृढव्रतः ॥१७
ततोऽनुपूजयेद्देवं सर्वपापहरं हरिम् । स्नापयेच्चाच्युतं भक्त्या मधुक्षीरघृतेन च ॥१८
तत्रैव पञ्चगव्येन गंधचंदनवारिणा । चन्दनेन सुगंधेन कुंकुमेनाथ केशवम् ॥१९
कर्पूरोशीरमिश्रेण लेपयेद्गरुडध्वजम् । अर्चयेद्रुचिरैः पुष्पैर्गंधधूपसमन्वितैः ॥२०
गुग्गुलुं घृतसंयुक्तं दहेत्कृष्णाय भक्तितः । दीपकं च दिवा रात्रौ दद्यात्पंचदिनानि तु ॥२१
नैवेद्यं देवदेवस्य परमान्नं निवेदयेत् । ॐ नमो वासुदेवायेति जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥२२

अतः उसके महत्व का वर्णन अशक्य है। क्योंकि राजेन्द्र! जिसने इस व्रत को सुसम्पन्न किया है, उसने सभी कुछ कर लिया। कृत युग में वशिष्ठ, भृगु एवं गर्ग आदि, त्रेतायुग में नाभाग, अम्बा, अम्बरीष आदि तथा कलियुग में शीरभद्रादि वैश्य और अन्य शूद्रों ने इस व्रत को सुसम्पन्न किया है। ब्रह्मचर्य के पालनपूर्वक जप, हवन-क्रियाओं द्वारा ब्राह्मणों को और यथा शक्ति पवित्रता पूर्ण व्रत के परायण द्वारा क्षत्रियों को पाँच दिन में इस महाव्रत को सुसम्पन्न कराना है। (व्रत के समय) ब्रह्मचर्य के पालन पूर्वक (अपने कर्तव्य द्वारा) किसी प्राणी को मानसिक पीड़ा न होने पाये, इसका विशेष ध्यान रखते हुए मद्य, मांस, मैथुन और पाप भाषण का सर्वथा परित्याग करना चाहिए। उस समय भगवान् कृष्ण की अर्चना और शाकाहारी होना बताया गया है। सधवा स्त्री भी सुख समृद्धि वर्द्धक इस व्रत को अपने पति की आज्ञा से सुसम्पन्न कर सकती है और पाण्डव! विधवा स्त्रियों को अपने पुत्र-पौत्रादि के वृद्धयर्थ, समस्त कामनाओं की सफलता और मोक्षार्थ इसका अनुमान अवश्य करना चाहिए। कार्तिक मास में नित्य स्नान और दान करते हुए व्रती को प्रातः स्नान के उपरान्त मध्याह्न के समय किसी नदी, झरना अथवा सरोवर आदि जलाशय में जाकर शरीर में गोमय के अनुलेपन पूर्वक मौन स्नान करके जवा, धान, चावल और तिल समेत देव ऋषि एवं पितृतर्पण करने के उपरांत स्वच्छ वस्त्र को धारण कर संकल्प पूर्वक समस्त पापहारी भगवान् विष्णु की अर्चना आरम्भ करे। अच्युत भगवान् को मधु, क्षीर एवं घृत और पञ्चगव्य द्वारा स्नान कराकर सुगन्ध पूर्ण चन्दन, कुंकुम, कपूर तथा अर्चना सुसम्पन्न करे। उस समय घृत पूर्ण गुग्गल की धूप अवश्य प्रदान करना चाहिए और पाँच दिन तक अखण्ड दीप की ज्योति होनी चाहिए।८-२१। अनन्तर देवाधिदेव के सम्मुख परमोत्तम नैवेद्य अर्पित करते हुए 'ॐ नमो वासुदेवाय' मंत्र का एक सौ आठ

जुहुयाच्च घृताक्तांश्च तिलव्रीहींस्ततो व्रती । षडक्षरेण मंत्रेण स्वाहाकारान्वितेन च ।।२३
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां प्रणम्य गरुडध्वजम् । जपित्वा पूर्ववन्मंत्रं क्षितिशायी भवेन्नरः ।।२४
सर्वमेतद्विधानं च कार्यं पञ्चदिनेषु हि । संविशेत्कंबले चास्मिन्पदपूर्वं शृणुष्व मे ।।२५
प्रथमेऽह्नि हरेः पादौ पूजयेत्कमलैर्नरः । द्वितीये बिल्वपत्रेण जानुदेशं समर्चयेत् ।।२६
पूजयेच्च तृतीयेऽह्नि नाभिं भृङ्गरसेन च । मध्ये बिल्वजयाभिश्च ततः स्कंधौ प्रपूजयेत् ।।२७
ततोऽनुपूजयेच्छीर्षं मालत्याः कुसुमैर्नवैः । कार्तिक्यां देवदेवस्य भक्त्या तद्गतमानसः ।।२८
अर्चयित्वा हृषीकेशमेकादश्यां समाहितः । संप्राश्य गोमयं सम्यङ् मंत्रवत्समुपावसेत् ।।२९
गोमूत्रं मन्त्रवत्कृत्वा द्वादश्यां प्राशयेद्व्रती । क्षीरं तत्र त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां तथा दधि ।।३०
संप्राश्य कायशुद्ध्यर्थं[1] लङ्घयेत चतुर्दिनम् । पंचमे तु दिने स्नात्वा विधिवत्पूज्य केशवम् ।।३१
भोजयेद्ब्राह्मणान्भक्त्या तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् । तथोपदेष्टारमपि पूजयेद्वस्त्रभूषणैः ।।३२
ततो नक्तं समश्नीयात्पञ्चगव्यपुरःसरम् । एवं समापयेत्सम्यग्यथोक्तं व्रतमुत्तमम् ।।३३
सर्वपापहरं पुण्यं प्रख्यातं भीष्मपञ्चकम् । मद्यपो यस्त्यजेन्मद्यं जन्मनो मरणांतिकम् ।।३४
तद्भीष्म पञ्चकं त्यक्त्वा प्राप्नोत्यभ्यधिकं फलम् । ब्रह्मचर्यं नरश्चीर्त्वा सुघोरं नैष्ठिकं व्रतम् ।।३५
यत्प्राप्नोति महत्पुण्यं तत्कृत्वा भीष्मपंचकम् । गात्राभ्यंगं शिरोऽभ्यंगं मधु मांसं च मैथुनम् ।।३६
ब्रह्मलोकमवाप्नोति त्यक्त्वैकं भीष्मपञ्चकम् । संवत्सरेण यत्पुण्यं कार्तिकेन च यद्भवेत् ।।३७

(एक माला) जप और घृत तिल-चावल की आहुति षडाक्षर मंत्र के अन्त में स्वाहा शब्द के उच्चारण पूर्वक प्रदान करे।२२-२३। सायंकाल के समय संध्या वन्दन के अनन्तर भगवान् गरुड़ध्दज को प्रणाम, और पूर्ववत् मंत्र-जप करके पृथिवी पर शयन करना चाहिए। उसी भाँति उसे पाँच दिन तक करना चाहिए- कम्वल पर सुखासीन होकर प्रथम दिन कमल पुष्प द्वारा भगवान् के चरण, दूसरे दिन नित्य पत्र द्वारा जानु (घुटने), तीसरे दिन भृंग (भंगरैया) द्वारा नाभि, और विल्व तथा जपा द्वारा मध्यभाग और स्कन्ध-पूजन के उपरांत मालती पुष्पों द्वारा शिरोभाग की पूजा करनी चाहिए। कार्तिक मास में देव नामक भगवान् विष्णु के ध्यान परायण रहकर एकादशी के दिन उन हृषीकेश की आराधना के अनन्तर अभिमंत्रित गोमय के अशन, द्वादशी के दिन गोमूत्र, त्रयोदशी में क्षीर, और चतुर्दशी में दधि के प्राशन करके इस प्रकार चार दिन शरीर शुद्ध होने के उपरांत-पाँचवे दिन भगवान् केशव की सविधान अर्चना करे। शराबी ब्राह्मणों को भोजन एवं दक्षिणा द्वारा अत्यन्त प्रसन्न करके वस्त्र-भूषण द्वारा उपदेश की भी अर्चना करे। पश्चात् रात्रि में पंचगव्य के पान पूर्वक नक्त भोजन करके उस व्रत की समाप्ति करे, जो परमोत्तम, सर्वपापहारी, पुण्य एवं भीष्मपञ्चक के नाम से प्रख्यात है। जो मद्यपी (शमावी) अपने मद्यप मद्य का भीष्म पञ्चक के दिन परित्याग करता है, उसे अधिक फल प्राप्त होता है। ब्रह्मचर्य के सुघोर एवं नैष्ठिक व्रत के पालयिता को जिस महान् पुण्य की प्राप्ति होती है, भीष्म पञ्चक व्रत को सुसम्पन्न करने पर वह अत्यन्त सुलभतया प्राप्त होता है। शरीर एवं शिर के अभ्यंग, मधु-मांस, मिथुन, के त्याग पूर्वक एक भीष्म पञ्चक व्रत को सुसम्पन्न करने पर ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। सम्पूर्ण वर्ष,

---

१. कार्यसिद्ध्यर्थम्।

यत्फलं कार्तिकेनोक्तं भवेत्तद्भीष्मपञ्चके । व्रतमेतत्सुरैः सिद्धैः किन्नरैर्नागगुह्यकैः ॥३८
फलं समीहितं प्राप्य कृत्वाभ्यर्च्य जनार्दनम् । पापस्य प्रतिमा कार्या रौद्रवक्त्रातिभीषणा ॥३९
खड्गहस्तातिविकृता सर्वलोकमयी नृप । तिलप्रस्थोपरि स्थाप्या कृष्णवस्त्राभिवेष्टिता ॥४०
करवीरकुसुमापीडा चलत्काञ्चनकुंडला । ब्राह्मणाय प्रदातव्यो कृष्णो मे प्रीयतामिति ॥४१
अन्येषामपि दातव्यं यत्कृत्वा वसु वांछितम् । कृतकृत्यः स्थिरो भूत्वा विरक्तः संयतो भवेत् ॥४२
शांतचेता निराबाधः परं पदमवाप्नुयात् । नीलोत्पलदलश्यामश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्भुजः ॥४३
अष्टषष्ठैकनयनः शंकुकर्णो महारवनः । जटी द्विजिह्वस्ताम्रास्यो मृगराजतनुच्छदः ॥४४
चिंतनीयो महादेवो यस्य रूपं न विद्यते । इदं भीष्मेण कथितं शरतल्पगतेन मे ॥४५
तदेव ते समाख्यातं दुष्करं भीष्मपंचकम् । व्रतं च राजशार्दूल प्रवरं भीष्मपञ्चकम् ॥४६
यस्तस्मिंस्तोषयेद्भक्त्या तस्मै मुक्तिप्रदोऽच्युतः । ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथवा यतिः ॥४७
प्राप्नोति वैष्णवं स्थानं तत्कृत्वा भीष्मपञ्चकम् । ब्रह्महा मद्यपः स्तेयी गुरुगामी सदाकृती ॥४८
मुच्यते पातकात्सम्यक्कृत्वैकं भीष्मपञ्चकम् । नास्माद्व्रतात्पुण्यतमं वैष्णवेभ्यो यतोव्रतम् ॥४९
अथास्मिंस्तोषितो विष्णुर्नृणां मुक्तिप्रदो भवेत् । श्रुत्वैतत्पठ्यमानं तु पवित्रं भीष्मपंचकम् ॥५०
मुच्यते पातकेभ्यो वा पाठको विष्णुलोकभाक् । धन्यं पुण्यं पापहरं युधिष्ठिर महाव्रतम् ॥५१

तथा कार्तिक मास में कहे हुए फल भीष्मपञ्चक के व्रती को प्राप्त होते हैं। इस व्रत के अनुमान द्वारा सुर, सिद्ध, किन्नर, गुह्यक और नाम गणों ने जनार्दन देव की समर्चना करके अपने अभीष्ट की सिद्धि की है। नृप! पाप की प्रतिमा- रौद्रमुख, अतिभीषण काय, खड्ग हाथ में लिए, अतिविकृति एवं समस्त लोकमयी-वनाकर काले वस्त्र से आवेष्टित करके एक सेर तिल के ऊपर स्थापित करे। कनेर-पुष्प, मयूरपुच्छ, और सुवर्ण-कुण्डल से विभूषित करने के उपरांत 'कृष्ण मुझ पर प्रसन्न हों, कहते हुए ब्राह्मण को अर्पित करें तथा अन्य को भी प्रदान करना चाहिए। इसको सुसम्पन्न करने पर अभीष्ट धन की प्राप्ति तथा कृतकृत्य एवं स्थिर विरक्त संयत होता है और उस शांत चेता को निर्वाध परम पद की प्राप्ति होती है। नील कमल दल की भाँति श्यामल, चार दाँत, चार भुजाएँ, पन्द्रह नेत्र, शंकुकर्ण, महास्वन, जटीयुक्त, सर्पभूषित, ताम्रमुख, और वाघम्बर धारण किये उस रूप हीन महादेव के इस रूप का ध्यान करना चाहिए। ऐसा भीष्म ने शरशय्या पर पड़े हुए मुझसे कहा था। राजशार्दूल! उसी प्रकार, एवं परमोत्तम भीष्मपञ्चक व्रत का वर्णन मैंने तुम्हें सुनाया है। उस व्रतानुष्टान में प्रसन्न करने पर भगवान् अच्युत उसे मुक्ति प्रदान करते हैं। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, अथवा संन्यासी को भीष्मपञ्चक व्रत सम्पन्न करने पर वैष्णवलोक की प्राप्ति होती है। भीष्मपञ्चक व्रत को एक ही बार सुसम्पन्न करने पर ब्रह्महत्या, मद्यपान, चोरी, एवं गुरुतल्पग प्राप्ति के पाप से मुक्त हो जाता है। वैष्णव यतियों के लिए इसके अतिरिक्त कोई अन्य परमोत्तम व्रत नहीं हैं। इस पवित्र भीष्मपञ्चक व्रत के श्रवण, पाठ करने से पाप-मुक्ति पूर्वक विष्णु लोक की प्राप्ति होती है। युधिष्ठिर! इसलिए यह महाव्रत धन्य, पुण्य एवं अत्यन्त पापहारी है।२४-५१। पाण्डव! अन्य भोजन के त्याग

यद्भीष्मपञ्चकमिति प्रथितं पृथिव्यामेकादशीप्रभृतिपञ्चदशीनिरुद्धम् ।
अन्नस्य भोजननिवृत्तिवशादमुष्मिन्निष्टं फलं दिशति पाण्डव शार्ङ्गधन्वा ।।५२
इति श्रीभविष्ये महापुराण श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
भीष्मपञ्चकव्रतवर्णनं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ।७२

अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

मल्लद्वादशीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

शङ्खचक्रगदापाणे श्रीवत्स गरुडासन । ब्रूहि मे मल्लद्वादश्या विधानं देवकीसुत ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

यदा भंडीरन्यग्रोधे वसामि यमुनातटे । गोपालमध्ये गोवत्सैरष्टवर्षोस्मि लीलया ।।२
कंसासुरवधार्थाय मथुरोपवने तदा । आबालो बालरूपेण गोपमल्लैर्बलोत्कटैः ।।३
समेत्य मल्लगोपस्य बलेन सह कानने । आस्फोटयन्ति नृत्यन्ति त्रिदशे त्रिदशा इव ।।४
सुरभद्रो मण्डलीकयोगवर्द्धनयोगदाः । यक्षेन्द्रभद्र इत्यादि तेषां नामानि गोकुले ।।५
गोपीनामपि नामानि प्राधान्येन निबोध मे । गोपाली पालिका धन्या विशाखा ध्याननिष्ठिका ।।६
इल्वानुगन्धा सुभगा तारका दशमी तथा । इत्येवमादिभिरहं सूपविष्टो वरासने ।।७

पूर्वक एकादशी से प्रारम्भ कर पूर्णिमा पर्यन्त इस भीष्मपञ्चक नामक व्रत को जो इस भूतल पर अत्यन्त प्रख्यात है, सुसम्पन्न करते हुए प्रसन्न करने पर शार्ङ्गपाणि भगवान् विष्णु उसे अभीष्ट प्रदान करते हैं।५२

श्री भविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
भीष्मपञ्चक व्रत वर्णन नामक बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७२।

अध्याय ७३

मल्लद्वादशी व्रत-वर्णन

युधिष्ठिर बोले—शंख, चक्र, गदा धारण करने वाले, श्रीवत्स (भृगुलता) भूषित एवं गरुड़वाहन देवकीसुत! मुझे मल्ल द्वादशी व्रत का विधान बताने की कृपा कीजिए ।१

श्रीकृष्ण बोले—जिस समय भण्डीरवन में यमुना तटवर्ती वटवृक्ष के नीचे गोपालों के मध्य रहकर गोवंसों के साथ अनेक भाँति की लीलाएँ करता था और कंसासुर केवधार्थ मथुरा के उपवन में अत्यन्त वलोत्कट गोमल्लों के साथ मेरी, वलभद्र एवं अन्य गोपमल्लों की मल्लक्रीडा होती थी-वे सब ताल ठोकते थे, नृत्य करते थे और तीनों समय में देवों के समान रहते थे, जिनके सुरभद्र, मण्डलीक, योगवर्द्धन, योगद और पक्षेन्द्रभद्र नाम थे, तथा गोकुल आदि की रहने वाली प्रधान गोपियों को भी बता रहा हूँ, सुनों! गोपाली, पालिका, धन्या, विशाखा, ध्याननिष्ठिका, इल्वा, अनुगंधा, सुभागा, तारका और दशमी आदि

पूजितोऽस्मि सुरैः पुष्पैर्दधिदुग्धाक्षतैस्तथा । शतानि त्रीणि षष्टिश्च मल्लानां पूजयंति माम् ॥८
मल्लिन्यश्च सुरामांसैरङ्गजागरनर्त्तनैः । मल्लयुद्धैर्बहुविधैर्बाह्यैर्मल्लभटैः स्फुटैः ॥९
भक्ष्यैर्भोज्यैस्तथा पानैर्दधिदुग्धघृतासवैः । गोदानैर्वृषदानैश्च श्रद्धया विप्रपूजनैः ॥१०
गोष्ठीप्रभूतैर्बंधूनां स्नेहसंभाषणैर्मिथः । एवं द्वादश द्वादश्यो ग्रहीतव्या यथेच्छया ॥११
संबंधिभिः क्रमेणैव मल्लानां च पृथक्पृथक् । पूजयंति क्रमेणैव मासिमासि तनुं मम ॥१२
मासादिकार्तिकांतं च भक्त्या द्वादशनामभिः । पारणेपारणे दद्यान्मल्लकानि द्विजातये ॥१३
केशवनारायणमाधवगोविन्दविष्णुमधुसूदनत्रिविक्रमवामन
श्रीधरहृषीकेशपद्मनाभदामोदराणां नमोनमः इति॥१४
गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैर्जागरणैर्निशि । गीतवाद्यैश्च नृत्यैश्च मल्लक्ष्वेडाङ्गयुद्धकैः ॥१५
घृतदानैः क्षीरदानैः कृष्णो मे प्रीयतामिति । एवमेष विधिः प्रोक्तो मासैर्द्वादशभिर्नृप ॥१६
द्वादशी या ममाद्यापि मनसः प्रीतिवर्द्धनी । मल्लैः प्रवर्तिता यस्मादतोऽर्थं मल्लद्वादशी ॥१७
तेषां परममल्लानां तेषां ज्ञानं युधिष्ठिर । गोष्ठे सुप्राज्यं गोमहिष्याद्यजाविकम् ॥१८
मत्प्रसादाद्धर्मपुत्र बलं कीर्तियशो धनम् । एवमन्येऽपि पुरुषा ह्यबला मल्लद्वादशीम् ॥१९
ये करिष्यंति मद्भक्तास्तेषां दास्यामि हृद्गतम् । आरोग्यं बलमैश्वर्यं विष्णुलोकं च शाश्वतम् ॥२०

गोपियों समेत मैं वह सौन्दर्य पूर्ण उत्तम प्रासन पर सुखासीन होकर पुष्प, दधि, दुग्ध और अक्षतादि द्वारा सुपूजित होता था। आज भी वहाँ तीन सौसाठ मल्ल तथा मल्ल स्त्रियों द्वारा सुरा, मांस, जागरण और नृत्य से मेरी पूजा होती है। अनेक भाँति के मल्लयुद्ध करने वाले बाहरी मल्लभरों द्वारा मल्लयुद्ध के प्रदर्शन भक्ष्य भोज्य, दधि, क्षीर, एवं घृत और (आसवों) तथा गोदान, वृषदान, श्रद्धा समेत विप्रपूजन एवं सज्जन गोष्ठी और बन्धुओं में स्नेह पूर्ण भाषणों द्वारा वे हमारी सेवा करते हैं। इसी प्रकार अन्य भी वारह द्वादशी तक इस व्रत को सुसम्पन्न करना चाहिए।२-११। उपरोक्त गोपों की भाँति सम्बन्धियों द्वारा क्रमशः मल्लों की पृथक्-पृथक् युद्ध बन्धुओं से प्रतिमास मेरी शारीरिक पूजा करनी चाहिए।१२। मार्ग शीर्ष मास से आरम्भ कर कार्तिक मास वर्पन्त भक्ति पूर्वक 'केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, एवं दामोदर को नमस्कार है' प्रतिमास में क्रमशः ऐसा कहते हुए प्रत्येक पारण में ब्राह्मणों को मल्ल अर्पित करना चाहिए। गन्ध, पुष्प, धूप, दीप द्वारा विष्णु के पूजन, रात्रि जागरण, गायन, वाद्य, नृप, नामोच्चारण पूर्वक अंग-अपंग के युद्ध, घृतधन और क्षीर दान अर्पित कर कृष्ण मुझ पर प्रसन्न हों, कहकर अन्त में विसर्जन करे। नृप! इस प्रकार मैंने इन वारह द्वादशियों के विधान का वर्णन कर दिया, जो द्वादशी आज भी मेरे प्रेम की वृद्धि कर रही है तथा मल्लों द्वारा आरम्भ होने के नाते मल्ल द्वादशी के नाम से ख्यात है।१३-१७। युधिष्ठिर! इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर उन परम मल्लों के गोष्ठी सुप्राज्य, तथा गौ, महिषी, बकरी और भेंड़ विषपक ज्ञान की प्राप्ति पूर्वक मेरी प्रसन्नता से बल, कीर्ति, यश और धन की वृद्धि होती है। धर्मपुत्र! इसी प्रकार अन्य पुरुषों और स्त्रियों को भी जो भक्ति पूर्वक इस मल्ल द्वादशी व्रत को सविधान सुसम्पन्न करते हैं, मनोरथ सफल करता हूँ तथा अरोग्य, बल, ऐश्वर्य, और शाश्वत विष्णुलोक का निवास भी प्रदान करता हूँ। भाण्डीर वन में न्यग्रोध

भाण्डीरपादपतले मिलितैर्महद्भिर्मल्लैरनाकुलितबाहुबलैर्बलिष्ठैः ।
संपूजितः सपदि यत्र तिथौ ततश्च सा द्वादशी सुविदिता व्रत मल्लसंज्ञा ।।२१

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
नल्लद्वादशीव्रतवर्णनं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ।७३

अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

भीमद्वादशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

विदर्भाधिपतिः श्रीमानासीत्पूर्वं सुधार्मिकः । दमयन्त्याः पिता पूर्वं नलस्य श्वशुरो भुवि ।।१
सत्यवादनशीलश्च प्रजापालनतत्परः । क्षत्रधर्मरतः श्रीमान् संग्रामेष्वपराजितः ।।२
तस्यापि कुर्वतो राज्यं शास्त्रदृष्टेन कर्मणा । आजगाम महाभागः पुलस्त्यो ब्रह्मणः सुतः ।।३
सर्वज्ञाननिधिः श्रीमांस्तीर्थयात्राप्रसङ्गतः । तमागतमथो दृष्ट्वा ब्रह्मयोनिमकल्मषम् ।।४
उत्थाय प्रददौ राजा स्वमासनमभीप्सितम् । अर्घ्यं पाद्यं च यत्किञ्चित्तत्तस्मै प्रददौ स्वयम् ।।५
राज्यं चैवात्मना सार्द्धं निवेद्य स कृतांजलिः । तेन चैवाभ्यनुज्ञातो निषसाद वरासने ।।६
पप्रच्छ कुशलप्रश्नं तपस्यध्ययने तथा । तथेति चोक्त्वा स मुनिस्तं राजानमभाषत ।।७

(वट) की छाया में अनेक मल्ल योद्धाओं द्वारा द्वादशी के दिन मेरी पूजा होने के नाते इसे मल्ल द्वादशी कहा गया है ।१८-२१

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्वाद में
मल्ल द्वादशी व्रत वर्णन नामक तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७३।

अध्याय ७४

भीमद्वादशी व्रत-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पूर्व काल में विदर्भ देश के नरेश्वर (राजा भीम) परम धार्मिक पुरुष थे, जो दमयंती के पिता एवं राजा नल के श्वसुर थे । सत्यवादी, प्रजाओं के पालन-पोषण में सदैव तत्पर, क्षत्रिय धर्म निष्ठ, एवं रणस्थल में अजेय उस राजा के शास्त्रीय-विधान द्वारा राजशासन काल में एक बार ब्रह्मा के पुत्र महाभाग पुलस्त्य महर्षि का उनके यहाँ आगमन हुआ, जो समस्त ज्ञान-विज्ञान एवं ब्रह्मतेज विभूषित थे । तीर्थ यात्रा के क्रम में कलमषहीन उन ब्रह्म-पुत्र के आगमन को देखकर राजा ने सहसा आसन, से उठकर अपने अभीष्ट अर्घ्य-पाद्य द्वारा उनकी सेवा की तथा अंजली बाँधकर अपने समेत सम्पूर्ण राज्य उन्हें निवेदित किया । पश्चात् उनकी आज्ञा से राजसिंहासन को भूषित करते हुए उनके अध्ययन और तप का कुशल-मंगल पूछा । महर्षि ने राजा मे प्रश्न का यथोचित उत्तर देते हुए कहा ।१-७

पुलस्त्य उवाच

कच्चित्ते कुशलं राजन्कोशे जनपदे पुरे । धर्मे च ते मतिर्नित्यं कच्चित्पार्थिव वर्तते ॥८

भीम उवाच

सर्वत्र कुशलं ब्रह्मन्येषां कुशलमिच्छसि । तव चागमनेनाहं पावितः संगवारिणा ॥९
एवं तौ संविदं कृत्वा संभाष्याथ परस्परम् । रेमाते पूर्ववृत्तान्तैः कथाभिरितरेतरम् ॥१०
ततः कथांते राजेन्द्र पुलस्त्यं जातविस्मयः । पप्रच्छ सर्वलोकस्य हिताय जगतः पतिः ॥११
भगवन्प्राणिनः सर्वे संसारार्णवमध्यगाः । दृश्यंते विविधैर्दुःखैः पीड्यमाना दिवानिशम् ॥१२
नरके गर्भवासे[1] च व्याधिभिर्जन्मनः तथा । तथा कष्टवियोगादिदुःखैर्दौर्गत्यसंभवैः ॥१३
लालप्यमाना बहवः परपीडोपजीविनः । एवं विधान्यनेकानि दुःखानि मुनिपुङ्गव ॥१४
दृष्ट्वैव तानि तान्येव भृशं मे व्याधितं मनः । तेषां दुःखानि भूतानां प्राणिनां भुवि मानद ॥१५
उपकारकरं ब्रूहि ममानुग्रहकाम्यया । स्वल्पायासेन भगवञ्जायते सुमहत्फलम् ॥१६

पुलस्त्य उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् । यदुपोष्य न दुःखानां भाजनो जायते जनः ॥१७
माघमासे सिते पक्षे द्वादशी पावनी स्मृता । तस्यां जलार्द्रवसन उपोष्य सुखभाग्भवेत् ॥१८

पुलस्त्य बोले—राजन्! आप के कोश एवं प्रजाएँ सकुशल हैं! तथा पार्थिव! तुम्हारी धार्मिक दृढ़-भावना सदैव अविरत रहती है ! ८

भीम ने कहा—ब्रह्मन्! जिनके कुशल आप पूँछ रहे हैं, वे सभी सकुशल हैं और मैं तों आप के इस आगमन द्वारा इस संयोग (मिलन) रूपी वारि से अत्यन्त पवित्र हो गया। इसी प्रकार वे दोनो परस्पर के कुशलमंगल की जानकारी के उपरांत पूर्व वृत्तान्त एवं अन्योन्य कथाओं द्वारा अधिक समय तक मनोविनोद करते रहे। राजेन्द्र! कथाओं के अन्त में राजा भीम ने लोक कल्याणार्थ महर्षि प्रवर पुलस्त्य जी से पूछाँ—'भगवान्! संसार मे सभी प्राणी इस घोर भवसागर में निमग्न हो रहे हैं—वे अनेक व्याधियों द्वारा अहर्निश पीड़ित दिखायी दे रहे हैं—नरक वास, गर्भ वास, व्याधि पीड़ित जन्य, वियोगादि जन्य दुःख तथा दुर्गति की यातनाओं के सम्मुख कर रहे हैं। अनेक प्राणी तो लालन-पालन के योग्य होते हुए भी पर-पीड़ोपजीवी देखे जाते हैं। इस प्रकार अन्य अनेक भाँति के घोर दुःख हैं। मुनि पुङ्गव! इन दुःखों को देखने से मुझे अत्यन्त मानसिक पीड़ा होने लगती है अतः मानव! मुझ पर अनुग्रह करते हुए प्रायः इन भूतल के प्राणियों के उपकारार्थ कोई व्रत आदि उपाय मुझे बताने की कृपा करे, भगवान्! जिससे स्वल्प प्रयत्न द्वारा अच्छे और महान् फल की प्राप्ति हो सके ! ९-१६।

पुलस्त्य बोले—राजन्! मैंने तुम्हें एक परमोत्तम व्रत बता रहा हूँ, जिसमें उपवास रहने पर मनुष्यों को दुःख भाजन नहीं होना पड़ेगा, (सावधान होकर) सुनो! माघमास की शुक्ल द्वादशी के दिन, जो अत्यन्त पावनी बतायी गयी है—जलार्द्रवसन के धारण पूर्वक उपवास करने से सुख की प्राप्ति होती है। १७-१८

---

१. उत्तरोत्तरम्।

भीम उवाच

कथं सा मुनिशार्दूल उपोष्या द्वादशी भवेत् । विधिना केन विप्रेन्द्र तन्मे ब्रूहि यथाक्रमम् ।।१९

पुलस्त्य उवाच

शृणु राजन्नवहितो व्रतं पापप्रणाशनम् । तव शुश्रूषणाद्वाच्यं ममाप्येतन्न संशयः ।।२०
अदीक्षिताय नो देया नाशिष्याय कदाचन । विष्णुभक्ताय शांताय धर्मनिष्ठाय चैव हि ।।२१
वाच्यमेतन्महाराज भवतान्यस्य न क्वचित् । ब्रह्महा गुरुघाती च बालस्त्रीघातकस्तथा ।।२२
कृतघ्नो मित्रध्रुक्चौरः क्षुद्रो भग्नव्रतस्तथा । मुच्यते पातकैः सर्वैर्व्रतेनानेन भूपते ।।२३
शुद्धे तिथौ मुहूर्ते च मंडपं कारयेत्ततः । दशहस्तप्रमाणेन दशपूर्वोत्तरे प्लवे ।।२४
तन्मध्ये पञ्चहस्तां तु वेदिकां परिकल्पयेत् । शुक्लां सुकुट्टिमां भूमिं वेद्यां कृत्वा प्रयत्नतः ।।२६
विलिखेन्मंडलं तत्र[1] पञ्चवर्णैर्विधानतः । ब्राह्मणो वेदसम्पन्नो विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः ।।२६
पञ्चविंशतितत्त्वज्ञः स्वाचाराभिरतस्तथा । कुण्डानि कल्पयेत्तत्र अष्टौ चत्वारि वा पुनः ।।२७
ब्राह्मणांस्तेषु युंजीत चातुश्चरणिकाञ्छुभान् । मध्ये च मण्डलस्याथ कर्णिकायां जनार्दनम् ।।२८
प्रत्यङ्मुखं न्यसेद्देवं चतुर्बाहुमरिंदम । पूजयेत्तं विधानेन शास्त्रोक्तेन विचक्षणः ।।२९
गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्नैवेद्यैर्विविधैरपि । एवं सम्पूज्य देवेशं ब्राह्मणैः सह देशिकः ।।३०
न्यसेत्स्तंभद्वयं पश्चात्तिष्ठन्काष्ठसमन्वितम् । देवस्याभिमुखं तत्र पीठं तु परिकल्पयेत् ।।३१

भीम ने कहा—मुनि शार्दूल! किस विधान द्वारा उस द्वादशी का उपवास किया जाता है, विप्रेन्द्र! उसके सभी क्रम मुझे बताने की कृपा करें।१९

पुलस्त्य बोले—राजन्! तुम्हारी शुश्रूषा से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ, इसमें संशय नहीं। अतः इस द्वादशी-व्रत का यह पापापहारी विधान तुम्हें बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो! महाराज! दीक्षाहीन, अशिष्य एवं अन्य व्यक्ति को इसे कभी न बताना चाहिए। विष्णुभक्त ही इसके लिए अधिकारी हैं, जो अत्यन्त धर्म निष्ठ एवं शांत हो। भूपते! इसके सुसम्पन्न करने से ब्रह्महत्या, गुरुघात, बाल और सभी का घात कृतघ्न, मित्रद्रोह, चोरी, क्षुद्र, और मानव्रत आदि समस्त घातक गण विनष्ट होते हैं।उस (द्वादशी) तिथि के दिन शुभ मुहूर्त में दश हाथ का विस्तृत मण्डप का निर्माण कर, जो पूर्व और उत्तर की ओर पनप (ढालू) हो, उसके मध्यभाग में पक्की सुसज्जित भूमि पर पाँच हाथ की वेदी की सुन्दर रचना करे, उस वेदी के ऊपर पाँच रगों से वैदिक, विष्णुभक्त एवं संयमी ब्राह्मणों द्वारा सौन्दर्य पूर्ण मण्डल (पंत्र) की संविधान रचना करके कुण्डों के निर्माण कराये। आठ अथवा चार ब्राह्मणों द्वारा, जो पच्चीस तत्वों के मर्मज्ञ, आचार-निष्ठ, श्रममूर्ति एवं वेद के चतुष्पादाध्यायी हों, मण्डल के मध्य और कर्णिका में चतुर्बाहु भगवान् जनार्दन की प्रतिमा पश्चिमाभिमुख स्थापित करके शास्त्रीय विधान द्वारा गन्ध, पुष्प, धूप, एवं अनेक भाँति के नैवेद्य से उनकी अर्चना करते हुए अपने देशिक ब्राह्मणों द्वारा देवेश के पश्चाद्भाग में दोकाष्ठ स्तम्भ के न्याय पूर्वक देवाधिदेव के अभिमुख छत्तीस अंगुल के चौकोर पीठासन स्थापित करे।२०-३१

---

१. अष्टौ चत्वारि वा पुनः।

षट्त्रिंशदङ्गुलं श्रेष्ठं चतुरस्रं समंततः । तत्र शिक्यं समालंब्य सुवृत्तं सुदृढं नवम् ॥३२
आरोपयेद्घटं तत्र यादृशं तच्छृणुष्व मे । कलधौतं तथा रौप्यं ताम्रं वाप्यथ मृण्मयम् ॥३३
सर्वलक्षणसंयुक्तं दृढं व्यंगविवर्जितम् । तत्सहस्रं शतं कुर्यादेकच्छिद्रमथापि वा ॥३४
कुशलत्वानुरूपेण पाशैकच्छिद्रमेव वा । सन्निधाने ततः कुर्यात्सलिलं वस्त्रपावनम् ॥३५
होमार्थं कल्पयेच्चापि पालाश्यः समिधः शुभाः । तिला घृतं तथा क्षीरं शमीपत्राणि चैव हि ॥३६
वेद्याः पूर्वोत्तरे भागे ग्रहपीठं प्रकल्पयेत् । तत्र पूज्या ग्रहाः सर्वे ग्रहयज्ञविधानतः ॥३७
पूर्वस्यां दिशि शक्रस्य पूजां कुर्वीत यत्नतः । दक्षिणस्यां यमस्याथ प्रतीच्यां वरुणस्य च ॥३८
कुबेरस्य तथोदीच्यां बलिं कुर्यात्फलाक्षतैः । एवं संभृत्य संभारं शुक्लांबरधरस्तथा ॥३९
समालभ्य शुभैर्गंधैर्दर्भपाणिरतन्द्रितः । पीठमारोपयेयुस्ते यजमानं द्विजोत्तमाः ॥४०
यजमानोऽपि देवस्य सम्मुखः प्रयतः शुचिः । उपविश्य पठेन्मन्त्रं पुराणोक्तमिदं शृणु ॥४१
नमस्ते देवदेवेश नमस्ते भुवनेश्वर । व्रतेनानेन मां पाहि परमात्मन्नमोस्तु ते ॥४२
ततोदकस्य धारास्ताः प्रत्यङ्गेषु समन्विताः । शिरसा धारयेत्तूष्णीं तद्गतेनान्तरात्मना ॥४३
होमं कुर्युस्ततो विप्रा दिक्षु सर्वासु तत्पराः । पठेयुः शान्तिकाध्यायं विष्णुसंज्ञानि यानि वै ॥४४
वादित्रैस्ताडयमानैश्च शङ्खगेयस्वनैस्तथा । पुण्याहजयशब्दैश्च वेदस्वनविमिश्रितैः ॥४५
मंगलैः स्तुतिसंयुक्तैः कारयेत्तन्महोत्सवम् । देवदेवस्य चरितं केशवस्य महात्मनः ॥४६
हरिवंशादिकं सर्वं श्रावयेद्ब्राह्मणो वरः । सौपर्णिकमथाख्यानं भारताख्यानमेव च ॥४७

उसके रस्सी के सहारे अत्यन्त गोलाकार, दृढ़ एवं नवीन घर का जिस भाँति आरोपण होता है, मैं बता रहा हूँ सुनो! सुवर्ण, चाँदी, ताँबे अथवा मृत्तिका के सर्वलक्षण सम्पन्न, दृढ़ एवं सौन्दर्य पूर्ण घर को, जिसमें सहस्र, शत अथवा एक छिद किया गया हो और वह कुसे अथवा सूत्र (डोरा) से संयुक्त हो, उस पर स्थापित कर उसके सविधान में वस्त्रपूत जल की स्थापना करे। हवन के लिए पलाश की रश्मि पर, तिल, घृत, क्षीर और रेशमीपत्र के स्थापन पूर्वक वेदी के पूर्वोत्तर भाग में ग्रह पीठासन पर पूज्य ग्रहों की सविधान अर्चना सुसम्पन्न करे—पूर्व दिशा में देवराज इन्द्र, दक्षिण दिशा में यम, पश्चिम में वरुण, और उत्तर दिशा में कुबेर की अर्चना करके फल-अक्षत समेत बलि प्रदान करना चाहिए। इस प्रकार यज्ञ-संभार संयुक्त तथा शुक्ल वस्त्रके धारण, गन्ध के व्रतालेप और हाथ में कुश लिए उस तंडारहित यजमान को ब्राह्मणों द्वारा मण्डपपीठ पर शोभित होना चाहिए। उस समय यजमान को भी देवनायक (विष्णुदेव) के संमुख पवित्रता पूर्ण एवं सप्रयत्न बैठकर इस पुराणोक्त मंत्रों द्वारा वन्दना करनी चाहिए—देव देवेश एवं भुवनाधिपति को नमस्कार है, परमात्मन्! इस व्रतानुष्ठान द्वारा मेरी रक्षा करो। मैं आप को बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ।३२-४२। अनन्तर प्रत्यंगो में समन्वित होने वाली उस उदक-धारा को तन्मय एवं मौन होकर शिर से धारण करने के उपरांत हवन सुसम्पन्न करके प्रति दिशाओं में स्थित ब्राह्मणों द्वारा विष्णु के शांति अध्याय के पाठ, वाद्य, शंख-ध्वनि गान, पुण्य एवं जय शब्दों के उच्चैः उच्चारण वेद पाठ एवं मांगलिक स्तुतियों द्वारा उस महोत्सव को सुसम्पन्न करे। देवाधिदेव भगवान् केशव देव के हरिवंशादि का ब्राह्मण द्वारा श्रवण, सौपर्णिक-भारत के आख्यान और आख्यान में कुशल विद्वानों के

व्याख्यानकुशलाः केचिच्छ्रावयेयुरतन्द्रिताः । अनेन विधिना सर्वां तां रात्रिं प्रीतिवर्द्धिनीम् ।।४८
यजमानो नयेद्धीमान्यावत्सूर्योदयो भवेत् । ब्राह्मणाश्चापि तां रात्रीं जुह्वतो जातवेदसम् ।।४९
मंत्रैस्तु वैष्णवैर्दिव्यैः क्षपयेयुर्महीपते । वासुदेवस्य शिरसि वसोर्द्धारां प्रपातयेत् ।।५०
क्षीरेणाज्येन वा राजन्सर्वसिद्धिप्रदायिनीम् । ततः प्रभातसमये यजमानो द्विजैः सह ।।५१
स्नानं कुर्यान्नृपश्रेष्ठ नद्यां सरसि वा पुनः । अथ वा शक्तिहीनस्तु यजमानोष्णवारिणा ।।५२
ततः शुक्लानि वस्त्राणि परिधाय यतव्रतः । अर्घ्यं दत्त्वा भास्कराय सविधानं प्रसन्नधीः ।।५३
पुष्पैर्धूपैः सनैवेद्यैः पूजयेत्पुरुषोत्तमम् । हुत्वा हुताशनं भक्त्या दत्त्वा पूर्णाहुतिं ततः ।।५४
पूजयेद्ब्राह्मणान्सर्वान्होतारो यज्ञकल्पिताः । शय्याभोजनगोदानैर्वस्त्रैराभरणैस्तथा ।।५५
आचार्यः पूजनीयोऽत्र सर्वस्वेनापि भारत । येन वा तस्य सन्तुष्टिर्देवतुल्यो गुरुर्यतः ।।५६
वित्तशाठ्यविहीनस्तु भक्तिशक्तिसमन्वितः । दीनानाथविशिष्टाश्च बन्दिनश्च समागताः ।।५७
तेषामन्नं हिरण्यं च दद्याच्छुद्धेन चेतसा । एवं संपूज्य विप्राय भोजयित्वा यथेप्सितम् ।।५८
यथाविभवसारेण पश्चाद्भुञ्जीत वाग्यतः । हविष्यमन्नं यज्ञेन हविष्याः सतिलास्तथा ।।५९
एवं यज्ञो महाराजंश्चोक्तस्ते संप्रकीर्तितः । नापिष्ठाः सर्वपापेभ्यो मुच्यंते नात्र संशयः ।।६०
वाजपेयातिरात्राभ्यां ये यजंति शतं समाः । सर्वे ते विष्णुयागस्य कलां नार्हंति षोडशीम् ।।६१
सप्त जन्मानि सौभाग्यमायुरारोग्यसंपदः । प्राप्नोति द्वादशीमेतां तामुपोष्य विधानतः ।।६२

भाषण-श्रवण पूर्वक उस प्रीतिवर्द्धनी समस्त रात्रि को व्यतीत कर, जिसमें ब्राह्मणगण वैष्णव मंत्रों के उच्चारण पूर्वक अग्नि देव को प्रसन्न करते रहे, सूर्योदय होने पर यजमान क्षीर अथवा घृत की वसोर्द्धारा भगवान् वासुदेव के शिर पर गिराये । महीपते! ऐसी वसोर्द्धारा सर्वसिद्धि प्रदान करती है । राजन्! प्रभात होने पर ब्राह्मणों के साथ यजमान किसी नदी, सरोवर अथवा अन्य जलाशय में स्नान, एवं शुक्ल वस्त्र धारण कर प्रसन्न चित से सविधान सूर्य को अर्घ्य प्रदान करे । नृपश्रेष्ठ! अशक्त यजमान को उष्ण जल से शुद्ध होना चाहिए । अनन्तर भक्ति पूर्वक पुष्प, दूध, नैवेद्य समेत भगवान् पुरुषोत्तम की अर्चना कर, अग्नि में पूर्णाहुति प्रदान करे । तदुपरांत यज्ञ में अनुष्ठित सभी होता आदि ब्राह्मणों को शय्या, भोजन, गोदान, वस्त्र और आभूषणों द्वारा सुसम्मानित करके सर्वस्व समर्पित करते हुए आचार्य की पूजा करनी चाहिए । भारत! जिससे वे अधिक प्रसन्न हों उन्हें वही वस्तु अर्पित करें क्योंकि गुरु को देवतुल्य बताया गया है । वित्तशाठ्य (कृपणता) दोष के परित्याग पूर्वक भक्ति सहित यथाशक्ति दीन, अनाथ, वंदी एवं अन्य अभ्यागतों का शुद्ध भावना से यथा शक्ति अन्न और सुवर्णप्रदान करना चाहिए । इस प्रकार पूजनोपरान्त धनानुसार ब्राह्मणों को यथेच्छ भोजनों से संतृप्त यज्ञ में अवशिष्ट शीतल हविस्यान्न का मौन होकर स्वयं भोजन करे । राजन्! इस भाँति मैंने (विष्णु) यज्ञ की व्याख्या तुम्हें बता दिया, जिसके सुसम्पन्न होने पर घोर पापी भी समस्त पातकों से मुक्त हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं । वाज-पेय एवं अतिरात्र यज्ञ को सौवार सुसम्पन्न करने पर प्राप्त होने वाले उसके सभी फल इस विष्णु-यज्ञ की सोलहवीं कला की भी समानता प्राप्त नहीं कर सकते हैं ।४३-६१। इस द्वादशी में सविधान उपवास रहने पर सात जन्म तक सौभाग्य, आयु एवं आरोग्य की प्राप्ति पूर्वक देहावसान होने पर

मृतो विष्णुपुरं याति विष्णुना सह मोदते । चतुर्युगानि द्वात्रिंशद्विष्णुरूपधरः स्थित; ।।६३
रुद्रलोके तथा राजन्युगानि द्वादशैव तु । ब्रह्मलोके तथा त्रीणि सूर्यलोके युगानि च ।।६४
पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य राजा भवति धार्मिकः । पृथिव्यधिपतिः श्रीमान्विजितारिः प्रतापवान् ।।६५
व्रतमेतत्पुरा चीर्णं सागरेण महात्मना । अजेन धुन्धुमारेण दिलीपेन ययातिना ।।६६
अन्यैश्च पृथिवीपालैः पालिताशेषभूतलैः । स्त्रीभिर्वैश्यैस्तथा शूद्रैर्धर्मकामैः सदा नृप ।।६७
भृग्वाद्यैर्मुनिभिः सर्वैर्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः । त्वया च पृष्ठेन मया कथितं ते नराधिप ।।६८
अद्य प्रभृति चैवेयं ख्यातिं यास्यति भूतले । भीमाख्या द्वादशी चेति कृतकृत्या च भारत ।।६९
एषा पुलस्त्यमुनिना कथिता कुरुनन्दन । यश्चैनां कथितां ध्यात्वा कुर्याद्वा भक्तिभावतः ।।७०
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते । दरिद्रश्चापि भोः पार्थ वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ।।
विष्णुभक्तेन कर्तव्या संसारभयभीरुणा ।।७१

भीमेन या किल पुरा समुपोषिता च रात्रौ घटस्थिरसुशीतलवारिधारा ।
तां द्वादशीं दशमुखारिमुखाच्छ्रुतां च सम्यग्व्रती चरति याति स विष्णुलोके ।।७२

इति श्री भविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
भीमद्वादशीव्रतवर्णनं नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ।७४

विष्णुलोक में विष्णु देव के साथ आमोद-प्रमोद प्राप्त होता है । राजन् ! वहाँ बत्तीस चतुर्युग तक विष्णु रूप में सुखानुभूति करने के उपरान्त वारह युग तक रुद्रलोक, तीन युग तक ब्रह्मलोक और एक युग तक सूर्यलोक का सम्मान प्राप्त होता है । पश्चात् पुण्य क्षीण होने पर इस भूतल का विजेता, प्रतापी, धार्मिक एवं श्रीमान् पृथिवीपति होता है । पहले समय में सर्वप्रथम महात्मा सगर, अज, धुन्धमार, दिलीप एवं ययाति तथा अन्य नृपगण, स्त्रियाँ, वैश्य, धर्मार्थी शूद्र, भृगु आदि मुनिवृन्द और वेद के पारदर्शी विद्वान् ब्राह्मणों ने इस व्रत को सुसम्पन्न किया है । नराधिप ! तुम्हारे प्रश्न का इस प्रकार मैंने यथोचित व्याख्या में उत्तर प्रदान किया है । भारत ! इस कृत कृत्य भीम द्वादशी इस भूतल पर आज से अत्यन्त प्रख्याति होगी । कुरुनन्दन ! इस प्रकार पुलस्त्य मुनि ने इसकी व्याख्या उन्हें सुनायी थी । भक्ति भावना से इस पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक में पूजित होते हैं । पार्थ ! दरिद्र पुरुष को भी वित्तशाठ्य दोष के त्याग का विशेष ध्यान रखना चाहिए । संसार भय-भीरु विष्णु भक्त को यह व्रत अवश्य सुसम्पन्न करना चाहिए । राजा भीम ने जिस द्वादशी के दिन उपवास रह कर रात्रि में घट स्थापन पूर्वक सुशीतल वारिधारा का संचार किया है, उसी द्वादशी व्रत को रावण के निहन्ता (नृप) राम के मुख से सुनकर सुसम्पन्न करने वाला विष्णु लोक की प्राप्ति करता है ।६२-७२

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में भी श्रीकृष्णयुधिष्ठर के संवाद में
भीमद्वादशी व्रत वर्णन नामक चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७४।

अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

श्रवणद्वादशीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

उपवासासमर्थानां सदैव पुरुषोत्तम ! एका या द्वादशी पुण्या तां वदस्व ममानघ ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

मासि भाद्रपदे शुक्ला द्वादशी श्रवणान्विता । सर्वकामप्रदा पुण्या चोपवासे महाफला ।।२
सङ्गमे सरितां स्नात्वा द्वादश्यां समुपोषितः । अयत्नात्समवाप्नोति द्वादशद्वादशीफलम् ।।३
बुधश्रवणद्वादश्यामेवं वै संयतो भवेत् । अतीव महती तस्यां कृतं सर्वमथाक्षयम् ।।४
द्वादशी श्रवणोपेता यदा भवति भारत । सङ्गमे सरितां स्नात्वा गङ्गादिस्नानजं फलम् ।।
सोपवासः समाप्नोति नात्रकार्या विचारणा ।।५
जलपूर्णे तथा कुम्भे स्थापयित्वा विचक्षणः । पञ्चरत्नसमोपेतं सोपवीतं सुपूजितम् ।।६
तस्य स्कन्धे सुघटितं स्थापयित्वा जनार्दनम् । यथाशक्ति स्वर्णमयं शङ्खशार्ङ्गविभूषितम् ।।७
स्नापयित्वा विधानेन सितचन्दनचर्चितम् । सितवस्त्रयुगच्छन्नं छत्रोपानद्युगान्वितम् ।।८
ॐ नमो वासुदेवायेति शिरः सम्पूजयेद्धरेः । श्रीधराय मुखं तद्वत्कण्ठं कृष्णाय वै पुनः ।।९
ॐ नमः श्रीमते वक्षो भुजौ सर्वास्त्रधारिणे । व्यापकाय नमः कुक्षी केशवायोदरं नमः ।।१०

अध्याय ७५

श्रवणद्वादशी व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—पुरुषोत्तम अनघ ! उपवास रहने में असमर्थ प्राणियों के लिए एक ही किसी पुण्य द्वादशी की व्याख्या बताने वाले की कृपा कीजिये ।१

श्रीकृष्ण बोले—भाद्रपद मास की शुक्ल द्वादशी श्रवण नक्षत्र प्राप्त होने पर समस्त काम प्रदायिनी, पुण्य एवं उपवास के लिए महाफलप्रदा बतायी गयी है । द्वादशी के दिन किसी सरिता-संगम में स्नान करके उपवास रहने पर अनायास बारहों द्वादशी के फल होते हैं । बुधवार के दिन श्रवण युक्त द्वादशी में संयमपूर्वक व्रती रहने से महान फल प्राप्त होते हैं—उसमें किये हुए सभी कर्म, अक्षय फल प्रदान होते हैं । भारत ! श्रवण नक्षत्र युक्त द्वादशी के दिन सरिता-संगम में स्नान करने पर गंगा-स्नान के फल प्राप्त होते हैं । उसमें बिना विचारे हुए उपवास अवश्य रहना चाहिए । अनन्तर जल पूर्ण घट स्थापन करके उसके स्कंध भाग में भगवान जनार्दन पञ्चरत्न यज्ञोपवीत समेत स्थापित करते हुए यथाशक्ति सुवर्ण के शङ्ख और धनुष से विभूषित कर सविधान स्नान कराये और श्वेत चन्दन से चर्चित कर श्वेत दो वस्त्र, छत्र एवं उपानह आदि द्वारा—ॐ नमो वासुदेवाय मन्त्र के उच्चारण से उनके शिर, भू धराय नमः से मुख, कृष्णाय नमः से कंठ, श्रीमते नमः से वक्ष, सर्वास्त्रधारिणे नमः से बाहू, व्यापकाय नमः से कुक्षि, केशवाय

त्रैलोक्यजनकायेति एवं संपूजयेद्धरिम् । सर्वाधिपतये जङ्घे पादौ सर्वात्मने नमः ।।११
अनेन विधिना राजन्पुष्पैर्धूपैः समर्चयेत् । ततस्तस्याग्रतो देयं नैवेद्यं घृतपाचितम् ।।१२
सोदकांश्च नवान्कुंभाञ्छक्त्या दद्याद्विचक्षणः । एवं संपूज्य गोविंदं जागरं तत्र कारयेत् ।।१३
प्रभाते विमले स्नात्वा संपूज्य गरुडध्वजम् । पुष्पधूपादिनैवेद्यैः फलैर्वस्त्रैः सुशोभनैः ।।
ततः पुष्पाञ्जलिं बद्धा मन्त्रमेतमुदीरयेत् ।।१४
नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवण सञ्ज्ञक । अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव ।।१५
एवं संपूज्य गोविंदं ब्राह्मणं पूजयेत्ततः । अनंतरं ब्राह्मणे वै वेदवेदांतपारगे ।।
पुराणज्ञे विशेषेण विधिवत्संप्रदापयेत् ।।१६
द्वादश्यां श्रवणे युक्ते अशेषाहस्कराग्विते । करकं संगमे स्नात्वा प्रीयतां मे जनार्दनः ।।१७

श्रीकृष्ण उवाच

अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् । महत्यरण्ये यद्वृत्तं भूमिपाल शृणुष्व तत् ।।१८
देशो दशार्णको नाम तस्य भागे तु पश्चिमे । अस्ति कश्चिन्मरुदेशः सर्वसत्त्वभयंकरः ।।१९
सुतप्तसिकता भूमिर्यत्र दुष्टा महोरगाः । अल्पच्छायद्रुमाकीर्णो मृतप्राणि समाकुलः ।।२०
शमीखदिरपालाशकरीरैः पीलुभिः सह । तत्र भीमा द्रुमाः पार्थ कण्टकैः शबला दृढैः ।।२१
दग्धप्राणिगणाकीर्णा यत्र भूर्दृश्यते क्वचित् । अन्नोदकं नो लभन्ते राजंस्तत्र बलाहकाः ।।२२

नमः से उदर और त्रैलोक्य जनकाय नमः से समस्त की अर्चना करते हुए सर्वाधिपतये नमः से जंघाएँ और सर्वात्मने नमः से चरण की समर्चा सुसम्पन्न करना चाहिए।२-११। राजन्! इसी विधान द्वारा पुष्प, धूप, आदि से उन्हें प्रसन्न कर उनके सम्मुख घृत नैवेद्य, यथा शक्ति एक से अधिक (नव) जलपूर्ण पर अर्पित करे। ९-९३। इस प्रकार गोविन्द की अर्चना करके जागरण द्वारा रात्रि व्यतीत करने के उपरांत विष्णु की पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, फल एवं सुशोमन वस्त्रों द्वारा पूज्य करके पुष्पाञ्जलि ग्रहण कर क्षमा प्रार्थना करे—बुध एवं श्रवण संज्ञा वाले गोविन्द देव को बार-बार नमस्कार है, मेरे पापौघ के विनाश पूर्वक समस्त सौख्य प्रदान करे। इस प्रकार गोविन्द की आराधना के समनन्तर ब्राह्मण की अर्चना करके उसी वेद-वेदान्त के मर्मज्ञ एवं पुराण निष्णात विद्वान् को वे सभी वस्तुएँ अर्पित करना चाहिए। बुधवार एवं श्रवण युक्त द्वादशी के दिन संगम में स्नान पूर्वक उपरोक्त ब्राह्मण को करक (कमण्डलु) के स्नान करते हुए 'जनार्दन देव मुझ पर प्रसन्न हों, कहना चाहिए।१२-१७

श्रीकृष्ण बोले—भूमिपाल! इसी विषय का एक प्राचीन इतिहास उस महान् अरण्य में जो कुछ हुआ है—मैं बता रहा हूँ, सुनो! दशार्ण देश के पश्चिम भाग में कोई मरु प्रदेश है, जिसमें समस्त प्राणियों को भयंकर यातनाएँ प्राप्त होती हैं—वहाँ की सिकता (वालुका) मयी भूमि अत्यन्त सन्तप्त रहती है, एवं अनेक दुष्ट एवं महान सर्पगण दिखायी देते हैं, अल्प छाया वाले वृक्ष मृतक प्राणियों से घिरे रहते हैं, सभी, खदिर (खैर), करीर (वांस) और पीलु वृक्ष अधिक हैं। पार्थ! वहाँ के भीमकाय वृक्ष दृढ़ कंटकों से व्याप्त रहते हैं—तथा भूमि में दग्ध प्राणियों की महान् राशि दिखायी देती है। राजन्! बलाहकों (दैत्यो आदि) को वहाँ अन्नोदक की प्राप्ति नहीं होती। भ्रमण करते पक्षीगण कभी-कभी दिखायी देते हैं।१८-२१½।

कदाचिदपि दृश्यन्ते भ्राम्यन्तो हि विहङ्गमाः । वृक्षांतरगतैर्नित्यं शिशुभिस्तृषितैः समम् ।।
उत्कृत्तजीविता राजन्दृश्यन्ते विहगोत्तमाः ।।२३
तृषातुराश्च सहसा मृगाः सैकतमागताः । सैकतेष्वेव नश्यन्ति जलं सैकतसेतुवत् ।।२४
तस्मिंस्तथाविधे देशे कश्चिद्दैववशाद्वणिक् । निजसार्थपरिभ्रष्टः प्रविष्टो मरुजांगले ।।२५
पिशाचान्मलिनांस्तीक्ष्णान्निर्मांसान्भीमदर्शनान् । इतस्ततः संचरतो ददर्श वणिगुत्तमः ।।२६
बभ्रामोद्भ्रान्तहृदयः क्षुत्तृषाश्रमकर्षितः । क्व ग्रामः क्व जलं क्वाहं यास्यामि न बुबोध सः ।।२७
अथ प्रेतान्ददर्शासौ तृष्णाव्याकुलितेंद्रियान् । स्नायुबद्धास्थिचरणान्प्रेक्षमाणानितस्ततः ।।२८
प्रेतस्कंधसमारूढमेकं प्रेतं ददर्श ह । अपश्यद्बहुभिः प्रेतैः समंतात्परिवारितम् ।।२९
आगच्छन्तं तमव्यग्रं स्नुतुशब्दपुरःसरम् । प्रेतस्कंधान्महीं गत्वा तस्यांतिकमुपागमत् ।।३०
स दृष्ट्वाथ वणिक्छ्रेष्ठमिदं वचनमब्रवीत् । अस्मिन्वै निर्जले देशे गमनं भवतः कथम् ।।३१
तमुवाच वणिग्धीमान्सार्थभ्रष्टस्य चैव मे । प्रवेशो दैवयोगेन पूर्वकर्मकृतेन तु ।।३२
तृष्णा मां बाधतेऽत्यर्थं क्षुद्दुनोति भृशं तथा । प्राणाः कण्ठमनुप्राप्ता वचनं नश्यतीव मे ।।
अत्रोपायं न पश्यामि जीवेयं येन केनचित् ।।३३

कृष्ण उवाच

इत्येवमुक्ते प्रेतस्तं वणिजं वाक्यमब्रवीत् । पुंनागमिममाश्रित्य प्रतीक्षस्व मुहूर्तकम् ।।३४

राजन्! वहाँ के विहगगण वृक्षों के कोटरों में स्थित अपने शिशु-शावकों को पिपासा पीड़ित होने पर नित्य प्राण परित्याग करते देखते हैं—और तृषा से व्याकुल होकर मृगगण भी जलके भ्रमवश उस सैकत (बालू) प्रदेश में इधर-उधर से सहसा आ पहुँचते हैं, जहाँ सिकता (बालू) मय प्रलय की भाँति जल सर्वथा नष्ट हो जाता है। इस भाँति के उस मरुजंगल प्रदेश में एकबार कोई वेश्या अपने साथियों के साथ छूट जाने पर भूलता-भटकता आ पहुँचा। उसने मलिन, तीक्ष्ण, मांस रहित एवं भयंकर स्वरूप वाले वणिक् को इधर-उधर भ्रमण करते देखकर स्वयं भी अन्तचित्त, एवं सुधर-तृषा से पीडित होने के नाते कहीं स्थिर न रह सका—इधर-उधर घूमता ही रहा। कहां ग्राम, कहाँ जल हैं और मैं कहाँ जा रहा हूँ, इसका कुछ भी ज्ञान उसे नहीं था।२२-२९। अनन्तर उसने तृषा पीड़ित, इन्द्रिय शिथिल, स्नानु सा आबद्ध प्राप्ति और चरण तथा इधर-उधर ध्यान से देखने वाले उन प्रेतों को देखते हुए यह भी देखाकि किसी प्रेत के कन्धे पर एक प्रेत स्थित है जिसे अनेक प्रेतगण चारों ओर से घेरे हुए हैं—एवं 'स्नुतु' शब्द करते हुए निर्भय उधर ही आ रहे हैं। प्रेत के कन्धे के उतर कर उस प्रेत ने उस वैश्य सेठ के समीप जाकर उससे कहा—इस निर्जल प्रदेश में आप का कैसे आगमन हुआ! बुद्धिमान् वैश्य ने कहाकि —दैवयोग से साथियों के साथ छूटने और जलान्तरीय कर्म के प्रभाव से मुझे यहाँ आना पड़ा—मैं तृष्णा एवं क्षुधा से अत्यन्त पीड़ित हो रहा हूँ, प्राण निकलने के हेतु कंठ तक आगया है तथा बोल नहीं पा रहा हूँ। किन्तु जीवित रहने का यहाँ कोई उपाय दिखायी नहीं देता है।३०-३३

श्रीकृष्ण बोले—इस भाँति उसके कहने पर प्रेत ने उस वैश्य से कहा—इसी पुंनाग वृक्ष के नीचे प्रायः मुहूर्त मात्र मेरी प्रतीक्षा करें—मैं अभी आ रहा हूँ—मेरी इस अतिथि सेवा को स्वीकार करने के

कृतातिथ्यो यथालाभं गमिष्यसि यथासुखम् । एवमुक्तस्तथा चक्रे स वणिक्तृष्णयार्दितः ॥३५
मध्याह्नसमये प्राप्ते ततस्तं देशमागतः । पुन्नागवृक्षात्करको वारिधारामनोरमः ॥
दध्योदनसमायुक्तो वर्धमानेन संयुतः ॥३६
आगते करके तस्मिन्प्रादादतिथये तदा । भुक्त्वान्नं च जलं पीत्वा वणिक्तुष्टिमुपागतः ॥
वितृष्णो विज्वरश्चैव क्षणेन समपद्यत ॥३७
ततस्तु प्रेतसंघस्य भोक्तुकामस्य वै ददौ । दध्योदनं सपानीयं प्रेतास्तृप्तिं परां गताः ॥३८
अतिथिं तर्पयित्वा च प्रेतलोकं च सर्वशः । ततः स्वयं स बुभुजे भुक्तशेषं यथासुखम् ॥३९
तस्य भुक्तवतश्चान्नं पानीयं च क्षयं ययौ । प्रेताधिपं ततस्तृप्तो वणिग्वचनमब्रवीत् ॥४०
आश्चर्यमेतत्परमं वनेऽस्मिन्प्रतिभाति मे । अन्नपानस्य सम्प्राप्तिः परमस्य कुतस्तव ॥४१
स्तोकेन च तथान्नेन बिभर्षि सुबहून्पृथक् । तृप्ताः परं कथं त्वेते निर्मांसा भिन्नकुक्षयः ॥४२
अपरं च कथं चेह मम पापपरिक्षयः । हस्तावलंबनकस्त्वं सम्प्राप्तो निर्जने वने ॥
तृप्तश्चासि कथं ग्रासमात्रेण च शुभव्रत ॥४३
कस्त्वमस्यां सुघोरायामटव्यां तु कृतालयः । तमेतं संशयं छिंधि परं कौतूहलं मम ॥४४
एवमुक्तः स वाणिज्या प्रेतो वचनमब्रवीत् । शृणु भद्र प्रवक्ष्यामि दुष्कृतं कर्म चात्मनः ।४५
शाकले नगरे रम्ये अहमासं सुदुर्मतिः । वाणिज्यासक्तितः पूर्वं कालो नीतो मयानघ ॥४६
धनलोभान्मया तत्र कदाचिच्च प्रमादिना । न दत्ता भिक्षवे भिक्षा तृष्णया पीडिताय च ॥४७

अनन्तर, आप अपने, अभीष्ट स्थान को सुख पूर्वक चले जाइयेगा । उसके कथनानुसार वैश्य ने वैसा ही किया—वह मध्याह्न के समय वहाँ पहुँचा था । उस पुराण वृक्ष के नीचे उसे कमण्डल में वारिधराके मनोरम जल और दध्योदन (देहीमात), जो आवश्यकतानुसार बढ़ता रहता था, वहाँ आया । प्रेत ने सप्रेम उसे वैश्य को अर्पित किया । अन्न भोजन एवं जलपान करके वह वैश्य अत्यन्त प्रसन्न हुआ, उसके तृष्णादि के ज्वर क्षण मात्र में नष्ट हो गये । तत्पश्चात् उस प्रेत ने उन प्रेतों को भी दधि-चावल तथा जलप्रदान किया जिससे वे लोग अत्यन्त तृप्त हो गये । इस प्रकार अतिरिक्त वैश्य और प्रेत मंत्रों के संतृप्त होने पर उसने शेष भाग स्वयं भोजन किया । अत्यन्त तृप्त होने पर उस वैश्य ने उस प्रेत नायक से कहा—मुझे अत्यन्त आश्चर्य हो रहा है, जो तुम्हें इस घोर जंगल में इस प्रकार के सुस्वादु पूर्ण भोजन की प्राप्ति जिस अल्प परिणाम भोजन से तुम पृथक्-पृथक् अनेक लोगों की संतृप्ति पूर्वक सदैव रक्षा करते हो । भिन्न कुक्षि वाले इन मांसहीन प्रेतों की संतृप्ति कैसे हो गयी! और इस निर्जन वन में मेरे पाप क्षीण कैसे हुआ, जिसके परिणाम स्वरूप आप का कटावलम्बन मुझे प्राप्त हुआ—आप कैसे और कहाँ से आये । शुभव्रत! (भोजन के) ग्रास मात्र से तुम्हारी तृप्ति कैसे हो गयी और इस भयानक पृथवी में निवास करने वाले आप कौन हैं! कृपया मेरे इस संशय को दूर करें क्योंकि (इसके जानने के लिए) मुझे महान् कुतूहल हो रहा है । वैश्य के इस प्रकार कहने पर प्रेत ने कहा—भद्र! अपने दुष्कृतों को मैं बता रहा हूँ, अनघ! पूर्व जन्म में मैं शाकल नगर का निवासी था, मेरी मन्दगति सदैव अपने वणिक्-व्यवसाय में ही तन्मय रहती थी। इस प्रकार जीवन यापन करते हुए हम अत्यन्तलोभ के कारण तृष्णा पीड़ित रहते थे।३४-४७।

प्रतिवेशे च तत्रासीद्ब्राह्मणो गुणवान्मम । श्रवणद्वादशीयोगे मासि भाद्रपदे तथा ।।४८
स कदाचिन्मया सार्धं तोषां नाम नदीं ययौ । तस्याश्च सङ्गमः पुण्यो यत्रासीच्चन्द्रभागया ।।४९
चंद्रभागा सोमसुता तोषा दैवार्कनंदिनी । तयोः शीतोष्णसलिलसंगमः सुमनोहरः ।।५०
तत्तीर्थवरमासाद्य प्राति वेश्यः स च द्विजः । श्रवणद्वादशीयोगे स्नातश्चैवमुपोषितः ।।५१
चंद्रभागातोषयोश्च वारिधान्यैर्नवैर्दृढैः । दध्योदनयुतैः सार्धं सम्पूर्णैर्वर्धमानकैः ।।५२
छत्रोपानद्युगं वस्त्रं प्रतिमां विधिवद्धरेः । चंद्रभागाजीवनेन दध्योदनयुतं तदा ।।५३
एतत्कृत्वा गृहं प्राप्तस्ततः कालेन केनचित् । पञ्चत्वमहमासाद्य नास्तिक्यात्प्रेततां गतः ।।
अस्यामटव्यां घोरायां यथा दृष्टस्त्वयानघ ।।५४
ब्रह्मस्वहारिणस्त्वेते पापाः प्रेतत्वमागताः । परदाररताः केचित्स्वामिद्रोहरताः परे ।।५५
मित्रद्रोहरताः केचिद्देशेऽस्मिंस्तु सुदारुणे । ममैते भृत्यतां याता अन्नपानकृतेन च ।।५६
अक्षय्यो भगवान्कृष्णः परमात्मा सनातनः । यद्दीयते तमुद्दिश्य अक्षय्यं तत्प्रकीर्तितम् ।।५७
मया विहीनाः किं त्वेते वनेऽस्मिन्भृशदारुणे । पीडामनुभविष्यन्ति दारुणां कर्मयोनिजाम् ।।५८
एतेषां त्वं महाभाग ममानुग्रहकाम्यया । अनेकनामगोत्राणि गृहाण लेखनेन च ।।५९
अस्तु कक्षागता चैव तव संपुटिका शुभा । हिमवत्यां तथासाद्य तत्र त्वं लप्स्यसे निधिम् ।।६०
गयाशीर्षे ततो गत्वा श्राद्धं कुरु महामते । एकमेकमथोद्दिश्य प्रेतं प्रेतं यथासुखम् ।।६१

किन्तु मेरे पड़ोस में रहने वाले एक विद्वान् ब्राह्मण ने एकबार भाद्रपदमास की शुक्ल, श्रवण युक्त द्वादशी के अवसर पर तोषा नामक नदी की यात्रा की, जहाँ तोषा और चन्द्रभागा का रमणीयक संगम हुआ है। सोम सुता चन्द्रभागा एवं चन्द्र नन्दिनी तोषा का संगम-जल शीतोष्ण और अत्यन्त मनोहर है। उस परमोत्तम तीर्थ में पहुँच कर उस प्रतिवेशी (पड़ोसी) ब्राह्मण ने उस योग में स्नान के अनन्तर उपवास नियम के पालन पूर्वक चन्द्रभागा और तोष्ण के नवीन, दृढ़ एवं वर्धमान वारिधान्य के चावल तथा दधि, धन, उपानह एवं युग्म वस्त्र द्वारा भगवान् विष्णु की उस सौन्दर्य पूर्ण प्रतिमा की सविधान अर्चना करके उसके साथ में कभी चन्द्रभागा के जल एवं उसी दध्योदन द्वारा प्राण रक्षा करते घर का प्रस्थान किया। कुछ काल के अनन्तर देहावसान होने पर नास्तिक होने के नाते मुझे प्रेत-योनि प्राप्त हुई। अनघ! उसी समय से मैं इस घोर अरण्य में रह रहा हूँ, जैसा कि आप देख रहे हैं।४८-५४। ब्रह्मस्व के अपहरण करने वाले इन पापियों को भी प्रेत योनि प्राप्त हुई है—इनमें कोई परास्त्रीगामी, कोई स्वामि द्रोही और कोई मित्र द्रोही है, जो इस दारुण प्रदेश में रह रहे हैं। अन्न-पान से पालन-पोषण करने के नाते ये सभी मेरे सेवक हुए हैं। परमात्मा, एवं सनातन भगवान् कृष्ण अक्षय हैं, और उनके उद्देश्य से जो कुछ प्रदान किया जाता है वह भी अक्षय होता है, क्योकि इस घोर प्रदेश में मेरे विना ये प्रेतगण कर्मानुसार अत्यन्त घोर पीडा का अनुभव करेंगे अतः महाभाग! मेरे ऊपर अनुग्रह करते हुए आप अनेक नाम गोत्र का उल्लेख कर दें।५५-५९। अनन्तर हिमालय के कक्ष प्रदेश में पहुँचने पर आप को निधि प्राप्त होगी। महाशय! गया तीर्थ में पहुँच कर प्रत्येक प्रेतों के उद्देश्य से उनके नाम गोत्र के उच्चारण पूर्वक श्राद्ध सुसम्पन्न कीजियेगा। इस प्रकार उस वैश्य के साथ सम्भाषण करते उस प्रेत राज की शरीर अग्नि तप्त

एवं सम्भाषमाणोऽसौ तप्तजांबूनदप्रभः । विमानवरमारुह्य स्वर्गलोकमितो गतः ॥६२
स्वर्गते प्रेतनाथे तु प्रभावात्स वणिक्पुमान् । नामगोत्राणि संगृह्य प्रयातः स हिमाचलम् ॥६३
तत्र प्राप्य निधिं गत्वा विनिक्षिप्य स्वके गृहे । धनभागमुपादाय गयाशीर्षवटं ययौ ॥
प्रेतानां क्रमशस्तत्र चक्रे श्राद्धं दिने दिने ॥६४
यस्य यस्य गयाश्राद्धं स करोति दिने वणिक् । स च तस्य सदा स्वप्ने दर्शयत्यात्मनस्तनुम् ॥६५
ब्रवीति च महाभाग प्रसादेन तवानघ । प्रेतभावो मया त्यक्तः प्राप्तोस्मि परमां गतिम् ॥६६
स कृत्वा धनलोभाच्च प्रेतानां सत्कृतिं वणिक् । जगाम स्वगृहं तत्र मासि भाद्रपदे तथा ॥६७
श्रवणद्वादशीयोगे पूजयित्वा जनार्दनम् । दानं च दत्त्वा विप्रेभ्यः सोपवासो जितेन्द्रियः ॥६८
महानदीसङ्गमेषु प्रतिवर्षं युधिष्ठिर । चकार विधिवद्दानं ततो दिष्टांतमागतः ॥६९
अवाप परमं स्थानं दुर्लभं चात्र मानवैः । यत्र कामफला वृक्षा नद्यः पायसकर्दमाः ॥
शीतलामलपानीयाः पुष्करिण्यो मनोहराः ॥७०

तं देशमासाद्य वणिङ् महात्मा सुतप्तजांबूनदभूषिताङ्गः ।
कल्पं समग्रं सह सुन्दरीभिः स्वर्गे स रेमे मुदितः सदैव ॥७१

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
श्रवणद्वादशीव्रतवर्णनं नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५

सुवर्ण की भाँति मनोहर हो गयी । उस समय वह एक परमोत्तम विमान पर सुखासीन होकर स्वर्ग चला गया । प्रेतराज स्वर्ग के चले जाने पर उससे प्रभावित होकर उस वैश्य ने प्रेतों के नाम-गोत्र के संकलन पूर्वक हिमालय की यात्रा की । वहाँ प्राप्त हुई निधि को अपने गृह में सुरक्षित रखकर शुभ निमित्तक कुछ धन समेत गया की यात्रा की । वहाँ पहुँचकर उसने क्रमशः प्रत्येक दिन उनके श्राद्ध करना प्रारम्भ किया—वह वैश्य जिस दिन से प्रेत के उद्देश्य से श्राद्ध सुसम्पन्न करता था, वह प्रेत रूप में उसे (प्राप्त हुई) दिव्य शरीर का दर्शन प्रदान करते हुए कहता था कि—'महाभाग अनघ ! तुम्हारी कृपा से प्रेत भाव के त्याग पूर्वक मुझे परम गति की प्राप्ति हुई ।' इस भाँति उस वैश्य ने उन प्रेतों की सद्गति प्राप्ति कराने के अनन्तर अपने गृह का प्रस्थान किया । युधिष्ठिर ! प्रति वर्ष भाद्रपद के शुक्ल तथा श्रवण युक्त द्वादशी के दिन महानदी के संगम स्थल पर पहुँच कर उस वैश्य ने संयम पूर्वक स्नान, उपवास भगवान जनार्दन की सविधान आराधना और ब्राह्मण-दान सप्रेम सुसम्पन्न करता रहा अनन्तर देहावसान होने पर मानव मात्र दुर्लभ उस परम स्थान की प्राप्ति की, जो कामनानुसार फलप्रदायक वृक्षों, पायस रूपी कर्दम (पंक) पूर्ण नदियों और प्रयत्न, शीतल वारि पूर्ण बावलयों से सदैव सुसज्जित रहता है । उस परमोत्तम स्थान में पहुँच कर उस महात्मा वैश्य ने संतप्त जाम्बूनद (सुवर्ण) भूषित सुन्दरियों के साथ सम्पूर्ण कल्प आमोद-प्रमोद पूर्वक रमण किया ।६०-७१

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
श्रवणद्वादशी व्रत वर्णन नामक पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७५।

अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः

विजयश्रवणद्वादशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

द्वादश्यास्ते विधिः प्रोक्तः श्रावणे यो युधिष्ठिर । सर्वपापप्रशमनः सर्वसौख्यप्रदायकः ।।१
एकादशी यदा सा स्याच्छ्रवणेन समन्विता । विजया सा तिथिः प्रोक्ता भक्तानां विजयप्रदा ।।२
बलवानजितो दैत्यो बलिर्नामा महाबलः । तेन देवगणाः सर्वे त्याजिताः सुरमंदिरम् ।।३
ततो देवा महाविष्णुं गत्वा वचनमूचिरे । त्वं गतिः सर्वदेवानां शीघ्रं कष्टात्समुद्धर ।।४
जहि दैत्यं महाबाहो बलिं बलनिषूदन । श्रुत्वा विष्णुस्तदा वाक्यं देवानां करुणोदयम् ।।५
उवाच वाक्यं कालज्ञो देवानां हितकाम्यया । जाने वैरोचनिं दैत्यं बलिं त्रैलोक्यकण्टकम् ।।६
तपसा भावितात्मानं शान्तं दान्तं जितेन्द्रियम् । मद्भक्तं मद्गतप्राणं सत्यसन्धं महाबलम् ।।
तपसोऽन्तः सुबहुना काले नास्य भविष्यति ।।७
यदाविनयसम्पन्नं ज्ञास्ये कालेन केनचित् । समाहृत्य प्रियं तस्य तदा दास्ये दिवौकसाम् ।।८
अदितिर्मां प्रपन्ना वै पुत्रार्थे पुत्रलोभिनी । तस्यामतिहितं देवाः करिष्ये नात्र संशयः ।।९
तद्देवानां हितं सर्वे चाहितं तु सुरद्विषाम् । तद्गच्छध्वं निरुद्विग्नाः कालः कश्चित्प्रतीक्ष्यताम् ।।१०

अध्याय ७६

विजयश्रवणद्वादशी व्रत-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर ! श्रवण-द्वादशी वर्णन किया हुआ विधान समस्त पापों के शमन पूर्वक अत्यन्त सौख्य का वर्द्धक है । उसी भाँति श्रवण युक्त एकादशी का भी भक्तों के विजयप्रद होने के नाते विजया तिथि कहा गया है ! बलवान, अजेय एवं महाबली दैत्यराज बलि द्वारा परिणत होने पर देवों के अपने-अपने आवास स्थानों को त्याग कर महाविष्णु के यहाँ जाकर उनसे इस प्रकार कहा—'महाबाहो ! हम समस्त देवों की गति, आप ही हैं, अतः इस कष्ट से शीघ्र उद्धार करने की कृपा करें । बलिनिषूदन! उस दैत्यराज बलि का हनन शीघ्र होना चाहिए । देवों के इस करुण वाक्य को सुनकर कालवेत्ता भगवान् विष्णु ने देवों के हितार्थ-उनसे कहा—"मैं" उस विरोचन दैत्यराज बलि को भली-भाँति जानता हूँ वह त्रैलोक्य का महान् कण्टक है । उसने तपोबल द्वारा, अपने को शांत, पवित्र, जितेन्द्रिय, सत्यप्रतिज्ञ एवं महा बलवान् बना दिया है । वह सदैव मुझमें ही तन्मय रहने वाला मेरा महान् भक्त है । अतः उसके तप पुण्य के क्षीण होने में सभी बलवान् प्रवेक्षित हैं । इसलिए मैं किसी उपवास पर विनय- विनम्र की याचना द्वारा उसके समस्त प्रिय (वस्तुओं) का अपहरण कर देवताओं को प्रदान करता करुँगा। देववृन्द! पुत्र की कामना प्राप्ति हेतु आराधना की है, अतः उसका परमहित मैं अवश्य करूँगा, इसमें सन्देह नहीं।१-९। इसमें देवों का भी अत्यन्त कल्याण एवं देव द्रोही राक्षसों का अहित होगा। इसलिए जाओ, और अनुद्विग्न रहकर कुछ समय की प्रतीक्षा करो । इस प्रकार कहने पर देवों ने वहाँ से प्रस्थान

एवमुक्ता गता देवाः कार्यं विष्णुरचिंतयत् । सा चिन्तयित्वा सुचिरं देव्या गर्भावतारणम् ॥
अदितिर्वरयामास वांछितं मे भविष्यति ॥११
अथ काले बहुतिथे गते सा गर्भिणी ह्यभूत् । सुषुवे नवमे मासि पुत्रं सा वामनं हरिम् ॥१२
ह्रस्वपादं ह्रस्वकायं महच्छिरसमर्भकम् । पाणिपादोदरकृशं स्वयं नारायणं हरिम् ॥१३
दृष्ट्वा तु वामनं जातं यदि सा वक्तुमुद्यता । निरुद्धवाक्या ह्यभवद्वक्तुं किंचिन्न पारितम् ॥१४
एकादश्यां भाद्रपदे श्रवणेन नरोत्तम । तंचचाल मही जाते वामने तु त्रिविक्रमे ॥१५
भयं बभूव दैत्यानां देवानां तोष आभवत् । जातकर्मादिकांस्तस्य संस्कारान्स्वयमेव हि ॥१६
चकार कश्यपो धीमान्प्रजापतिरनुद्यतः । आबद्धमेखलो दंडी धृत्वा यज्ञोपवीतकम् ॥१७
कुशस्वच्छोदकधरः कमंडलुविभूषितः । बलेर्बलवतो यज्ञं जगाम बहुविस्तरम् ॥१८
दृष्ट्वा बलिमथोवाच वामनोऽभ्येत्य तत्क्षणम् । अथ चाह यज्ञपते दीयतां मम मेदिनी ॥१९
पादत्रयप्रमाणेन पठनार्थे स्थितो ह्यसि । दत्तादत्ता तव मया बलिः प्राह द्विजोत्तमम् ॥२०
ततो वर्द्धितुमारब्धो वामनोऽनंतविक्रमः । पादौ भूमौ प्रतिष्ठाय शिरसावृत्य रोदसी ॥२१
ताभ्यामिंद्रादिकाँल्लोकाँल्ललाटे ब्रह्मणः पदम् । न तृतीयं पदं लेभे ततो नेदुर्दिवौकसः ॥२२
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं सिद्धा देवर्षयस्तथा । साधुसाध्विति देवेशं प्रशशंसुर्मुदान्विताः ॥२३

किया और विष्णु देव ने उस कार्य के निमित्त विचार प्रारम्भ किया—उन्होंने देवी (अदिति) के गर्भावतार को स्मरण करते हुए कि—अदिति ने पुत्रार्थ मुझसे वरदान प्राप्त किया है—अतः मेरा कार्य वहीं से सम्पन्न होगा—ऐसा निश्चय किया।१०-११। अनेक समय के व्यतीत होने पर अदिति ने गर्भ धारण किया नवें मास में भगवान् के उस रूप को उत्पन्न किया, जो लघु चरण, लघुकाय, महान् शिर, कृश हाथ, चरण और उदर सुसज्जित था। उस वामन रूप के उत्पन्न होने पर अदिति कुछ कहना चाहती थी किन्तु विरुद्धकंठ के नाते कुछ भी न कह सकी। नरोत्तम! भाद्रपदमास की श्रवण-युक्त एकादशी के दिन त्रिविक्रम वामन भगवान् के अवतरित होने पर पृथिवी में कम्प, दैत्यों में भय एवं देवों में हर्ष प्रवाह उत्पन्न हुआ। श्रीमान् तथा प्रजापति कश्यप जी ने स्वयं उनके जातकर्म आदि संस्कारों के सविधान सुसम्पन्न किया—मेखला से आबद्धकर दंड और यज्ञोपवीत धारण कराया। कुश समेत स्वच्छ जल पूर्ण कमण्डलु से विभूषित होकर बामन भगवान् ने बलवान् बलिराज के उस विस्तृत यज्ञ-संभार के दर्शनार्थ प्रस्थान किया। वहाँ पहुँच कर उन्होंने उसी समय बलि से कहा—यज्ञपते! मुझे तीन पग भूमि प्रदान कीजिये। क्योंकि तुम इस समय दान करने के लिए स्थित हो। उसे सुनकर बलि ने उन ब्राह्मण से कहा—मैंने आपको (सहर्ष) उतनी भूमि प्रदान किया। अनन्तर अनन्त विक्रम वाले बामन देव ने अपनी शरीर की वृद्धि करना आरम्भ किया—दोनों चरण भूमि पर स्थिर कर शिर से, आकाश को आवृत कर लिया, और दोनों से इन्द्रादि लोक को आक्रान्त करते हुए ललाट में ब्रह्म स्थान स्थित किया। इस प्रकार तीसरे पग की भूमि की प्राप्ति न होने पर देवगण वाद्यों द्वारा हर्ष ध्वनि प्रकट करने लगे। सिद्ध और देवर्षियो को वह देख कर महान् आश्चर्य हुआ। वे सब प्रसन्न होकर देवाधिदेव वामन की 'साधु-साधु' शब्दों के उच्चारण द्वारा अत्यन्त प्रशंसा करने लगे।१२-२३। पश्चात् त्रिभुवन को अपने अधीन करते

ततो दैत्यगणान्सर्वाञ्जित्वा त्रिभुवनं वशी । बलिमाह ततो गच्छ सुतलं स्वबलानुगः ।।२४
तत्र त्वमीप्सितान्भोगान्भुक्त्वा मद्बाहुपालितः । अस्येंद्रस्यावसाने तु त्वमेवेन्द्रो भविष्यसि ।।२५
एवमुक्तो बलिः प्रायान्नमस्कृत्य नरोत्तमम् । विसृज्येमं बलिं देवान्सकलान्स उवाच ह ।।२६
स्वानि धिष्ण्यानि गच्छध्वं तिष्ठध्वं विगतज्वराः । देवेनोक्ता गता देवा हृष्टाः संपूज्य वामनम् ।।२७
देवः कृत्वा जगत्कार्यं तत्रैवांतर्द्धिनागमत् । एतत्सर्वं समभवदेकादश्यां नराधिप ।।
तेनेष्टा देवदेवस्य सर्वदा विजया तिथिः ।।२८
एषा वै फाल्गुने मासि पुष्येण सहिता नृप । विजया प्रोच्यते सद्भिः कोटिकोटिगुणोत्तरा ।।२९
एकादश्यां सोपवासो रात्रौ संपूजयेद्धरिम् । रौप्ये सौवर्णपात्रे वा दारुवंशमयेऽपि वा ।।३०
कुण्डिकां स्थापयेत्पार्श्वे छत्रं वै पादुके तथा । शुभां च वैष्णवीं यष्टिं तथा सूत्रकमंडलू ।।३१
आच्छाद्य पात्रं वासोभिः फलैश्चापि सुशोभनैः । मार्गचार्मणगन्धैश्च भक्त्या वा मृगचर्मणा ।।३२
तिलाढकेन वित्ताढ्यः प्रस्थेन कुडवेन वा । व्रीहिभिर्वाथ गोधूमैः फलैः शुक्लतिलैर्भवेत् ।।३३
पुष्पैर्गंधर्धूपदीपैः पक्वान्नैरर्चयेद्धरिम् । नानाविधैश्च नैवेद्यैर्भक्ष्यभोज्यैर्गुडौदनैः ।।३४
स्वस्ववित्तानुसारेण सहिरण्यं च कारयेत् । मंत्रैः शतगुणं चैव भक्त्या लक्षगुणोत्तरम् ।।
भक्तिमांश्च गुणोपेतं कोटिकोटिगुणोत्तरम् ।।३६
एभिर्मन्त्रपदैस्तत्र पूजयेद्गरुडध्वजम् । उपहारैर्नरश्रेष्ठ शुचिर्भूत्वा समाहितः ।।३६
ॐ जलजोपमदेहाय जलजास्याय शंखिने । जलराशिस्वरूपाय नमस्ते पुरुषोत्तम ।।३७

हुए उन संयमी वामन देव ने दैत्यगणों को पराजित कर बलि से कहा—अपने परिजनों समेत तुम सुतल लोक में निवास करो । वहाँ मेरे द्वारा इस इन्द्र का अन्त होने पर इन्द्र पद की प्राप्ति होगी । बलि ने नमस्कार पूर्वक उसे स्वीकार किया । अनन्तर वामन देव ने देवों से कहा—अपने-अपने गृह जाकर सुख-शांति का अनुभव करो । उनके इस भाँति कहने पर देवों ने सहर्ष वामन की अर्चना पूर्वक अपने-अपने आवासस्थान को प्रस्थान किया—और देवाधिदेव जगत् कार्य सुसम्पन्न कर उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये । नराधिप! यह समस्त कार्य एकादशी के ही दिन सुसम्पन्न हुआ था, इसीलिए यह विजया तिथि देवाधिदेव को अत्यन्त प्रिय है । नृप! फाल्गुन मास में पुष्य नक्षत्र प्रद होने पर भी इसे विजया तिथि कहा गया है, जो उत्तरोत्तर कोटि-कोटि गुने अधिक फल प्रदान करती है । एकादशी के दिन उपवास रह कर रात्रि में सुवर्ण, चाँदी, काष्ठ, एवं वांस के सौन्दर्य पूर्ण पात्र पर विष्णु देव को स्थापित कर उनके पूजन पूर्वक कुण्ड स्थापन, और उनके पार्श्व भाग में छत्र, पादुका (खड़ाऊँ), मनोरम वैष्णवी यष्टि (छड़ी), यज्ञोपवीत एवं कमण्डलु, आदि को वस्त्र से आच्छादित कर उत्तम फल, मृग नाभि, (कस्तूरी), अथवा मृगचर्म, ढाईसेर या वित्तानुसार, एक पाव तिल, धान्य या गोधूम (गेहूँ), श्वेत तिल, पुष्प, गंध, धूप, दीप और पक्वान्न, अपने भाँति के नैवेद्य, भक्ष्य-भोज्य, गुडोदन (मीणभात) और यथाशक्ति हिरण्य दान द्वारा भगवान् विष्णु देव की भक्ति-श्रद्धासमेत अर्चना सुसम्पन्न करते समय 'मंत्रंशत गुण आदि' मंत्रपदों के उच्चारण, जिनके उच्चारण सौ गुने, भक्ति समेत लक्ष गुने और भक्तिमान् को कोटि गुने फल प्राप्त होते हैं, तथा उन गरुड वाहनको उपहारों द्वारा सुसम्मानित करे।२४-३८। नरश्रेष्ठ! पवित्रता पूर्ण ध्यानावस्थित होकर—'कमल की भाँति देह एवं मुख से भूषित, शंख धारी उन जल राशि-स्वरूप वाले पुरुषोत्तम

नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने । नमस्ते केशवानंत वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥३८
इति स्नानमन्त्रः । मलयेषु समुत्पन्नं गन्धाढ्यं सुमनोहरम् । मया निवेदितं तुभ्यं गृहाण परमेश्वर ॥३९
इति चन्दनमन्त्रः । वनस्पतिसमुत्पन्नं गन्धाढ्यं सुमनोहरम् । मया निवेदितं पुष्पं गृहाण पुरुषोत्तम ॥४०
इति पुष्पमन्त्रः । नमः कमलकिंजल्कपीतनिर्मलवाससे । मनोहरवपुःस्कन्धधृतचक्राय शार्ङ्गिणे ॥४१

इति पूजामंत्रः

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहश्च वामनः । रामो रामश्च कृष्णश्च नामभिर्वामनाय ते ॥
पादाद्यैकैकाङ्गस्य पूजनं शीर्षगं ततः ॥४२

इति सर्वाङ्गपूजा

धूपोऽयं देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधर । अच्युतानंत गोविन्द वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥४३

इति धूपमन्त्रः

त्वमेव पृथिवी ज्योतिर्वायुराकाशमेव च । त्वमेव ज्योतिषां ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥४४

इति दीपमन्त्रः

अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम् । भक्ष्यभोज्यसमायुक्तं प्रसीद परमेश्वर ॥४५
अन्नं प्रजापतिर्विष्णूरुद्रेन्द्रशशिभास्कराः । अन्नं त्वष्टा यमोऽग्निश्च पापं हरतु मेऽव्ययः ॥४६

इति नैवेद्यमंत्रः

जगदादिर्जगद्रूपमनादिर्जगदन्तकृत् । जलाशयो जगद्योनिः प्रीयतां मे जनार्दनः ॥४७

इति प्रीणनमंत्रः

अनेककर्मनिर्बंधध्वंसिनं जलशायिनम् । नतोऽस्मि मथुरावासं माधवं मधुसूदनम् ॥४८

को बार-बार केशव, अनन्त एवं वासुदेव को बार-बार नमस्कार है।' इन मंत्रो के उच्चारण करते हुए उन्हें सम्मान, और मलय देश में उत्पन्न एवं परम मनोहर गंधाढ्य को मैं निवेदित कर रहा हूँ, परमेश्वर! इसे ग्रहण करने की कृपा करें—से चन्दन अर्पित करके—'पुरुषोत्तम! वनस्पति द्वारा उत्पन्न सुमनोहर तथा अत्यन्त सुगन्धित पुष्प तुम्हें अर्पित कर रहा हूँ,—से आप भूषित करें। कमल-केशर समान पीत एवं निर्मल वस्त्र को धारण करने वाले, तथा मनोहर शरीर के अंग स्कन्ध वाले चक्र से सुसज्जित रहने वाले उन शार्ङ्गपाणि (विष्णु) को नमस्कार है, इसे पूजा का मन्त्र कहा गया है। मत्स्य, कूर्म (कच्छप), वराह, नरसिंह, वामन, राम, परशुराम, और कृष्ण नामों के उच्चारण करते हुए चरण से शिर तक के प्रत्येक अंग की पूजा करनी चाहिए। 'देवाधि देव, शंख, चक्र, गदाधारी, अच्युत, अनन्त, गोविन्द और वासुदेव को नमस्कार है, उच्चारण करते हुए—'पृथिवी, ज्योति, वायु, आकाश, और ज्योतियों के परम ज्योति तुम्हीं हो, इस दीप को ग्रहण करने की कृपा करो। के उच्चारण से दीप, तथा इन चार प्रकार के अन्न द्वारा बने हुए सुस्वादु, एवं षड़रस युक्त, भक्ष्य-भोज्य तुम्हें समर्पित कर रहा हूँ, परमेश्वर! मुझ पर प्रसन्न हो। प्रजापति, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, शशि, भास्कर, त्वष्टा, यम और अग्नि, आदि सभी देव रूप जगत्-कारण भगवान् जनार्दन मुझ पर प्रसन्न हों। अनेक कर्मनिर्बन्धों के विनाशक, क्षीरशायी, मथुरा निवासी, उन माधव मधुसूदन को नमस्कार है।३९-४८। तथा वामन रूप त्रिविक्रम को सतत

नमोवामनरूपाय नमस्तेऽस्तु त्रिविक्रम । नमस्ते मणिबन्धाय वासुदेव नमोऽस्तु ते ।।४९

इति नमस्कारमन्त्रः

नमो नमस्ते गोविन्द वामनेश त्रिविक्रम ।।५०

अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वकामप्रदो भव ।।५१

इति प्रार्थनामन्त्रः

सर्वगः सर्वदेवेशः श्रीधरः श्रीनिकेतनः । विश्वेश्वरश्च विष्णुश्च श्रीशायी च नमोनमः ।।५२

इति शयनमन्त्रः

एवं संपूज्य यो रात्रावेकादश्यां नृपोत्तम । जागरं तत्र कुर्वीत गीतवादित्रनिस्वनैः ।।५३
या च श्रवणसंयुक्ता द्वादशी परमा तिथिः । तस्यां च सङ्गमे स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।५४
एवं संपूज्य यत्नेन प्रभाते विमले सति । प्रदेयं शास्त्रविदुषे ब्राह्मणाय च मंत्रतः ।।५५
ब्राह्मणश्चापि मन्त्रेण प्रतिगृह्णीत मंत्रवत् । वामनोऽस्य प्रतिग्राही वामनाय नमोनमः ।।५६
(ॐ गुह्ये । ॐ शिरसि । ॐ पादयोः । ॐ नाभौ । ॐ भुजयोः । ' सर्वांगे । सर्वात्मने नमः ।)
पुष्पं फलं च नैवेद्यं सर्वमेतद्यथाविधि । नरो दद्यादुपोष्यैवमेकादश्यां समंत्रकम् ।।५७
पूर्वोक्तविधिना प्रातर्भोजनं पृषदाज्यकम् । पूर्वं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यः पश्चाद् भुञ्जीत वाग्यतः ।।५८
भूयोभूयोऽपि राजेन्द्र सर्वत्रैवं विधिः स्मृतः । समाप्ते तु व्रते राजन् यत्पुण्यं तन्निबोध मे ।।५९
चतुर्युगानि राजेन्द्र एकसप्ततिसङ्ख्यया । प्राप्य विष्णुपुरे राजन् क्रीडते कालमक्षयम् ।।६०
इहागत्य भवेद्राजा प्रतिपक्षक्षयंकरः । हस्त्यश्वरथपत्तीनां दाता भोक्ता विमत्सरी ।।६१

नमस्कार है । मंणि बंधन से आबद्ध वासुदेव को नमस्कार है, देव! मेरे पाप-समूह के ध्वंसन पूर्वक समस्त कामनाओं को प्रदान करने की कृपा करें । इस क्षमा प्रार्थना करते हुए उन्हें—सर्व व्यापक, सर्वदेवेश, श्रीधर, श्रीनिकेतन, विश्वेश्वर, विष्णु और उन श्रीशायी को नमस्कार है—शयनकराये । नृपोत्तम! इस भाँति एकादशी की रात्रि में भगवान् की पूजा करके गीत वाद्य द्वारा जागरण करता रहे । श्रवण संयुक्त उस परमद्वादशी तिथि के समय संगम में स्नान करने पर समस्त पातकों से मुक्ति प्राप्त होती है । इस प्रकार प्रयत्न पूर्वक उनकी पूजा के उपरांत प्रातः काल के समय उस विमल वस्त्र को किसी विद्वान् ब्राह्मण को समंत्रक अर्पित करे और ब्राह्मण का भी मंत्रोच्चारण पूर्वक ही उसका ग्रहण करना चाहिए । इसके प्रतिग्राही वामन रूप को नमस्कार है—ओंकार के उच्चारण पूर्वक गुह्य, शिर, पाद, नाभि, वाहू, एवं सर्वाङ्ग के स्पर्श करते हुए उस सर्वात्मा को नमस्कार है, कह कर पुष्प, फल, चन्दन, एवं नैवेद्य द्वारा उस एकादशी के दिन उपवास रहकर समंत्रक उनकी अर्चना करनी चाहिए । अतः प्रातः काल सर्वप्रथम ब्राह्मण को घृत भोजन द्वारा संतृप्त करके पश्चात् स्वयं भोजन करे । राजेन्द्र! सर्वेश उनके बार-बार के पूजन इसी विधान द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए । राजन्! इस प्रकार व्रत के समाप्त होने पर जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो! ४९-५९। इकहत्तर चतुर्युगी के समय तक वह विष्णुलोक में क्रीडा करते हुए समस्त सुखानुभव के उपरांत इस धरातल पर शत्रुविनाशक भयंकर राजा होता है—हाथी, घोड़े, रथ एवं पदाति के दाता, भोक्ता, मत्सरहीन, रूप सौभाग्य सम्पन्न, दीर्घायु रोग एवं

रूपसौभाग्यसंपन्नो दीर्घायुर्नीरुजो भवेत् । पुत्रैः परिवृतो जीवो जीवेच्च शरदः शतम् ॥६२
एतस्याः फलमाख्यातमेकादश्या मया तव । पूर्वमेव समाख्याता द्वादशी श्रवणान्विता ॥६३
उपोष्यैकादशीं पश्चाद्द्वादशीमप्युपोषयेत् । न चात्र विधिलोपः स्यादुभयोर्देवता हरिः ॥६४
(एकादशीद्वादश्योरन्यतरस्यां श्रवणयुक्तायां श्रवणयुक्तोपवासेनैव व्रतद्वयसिद्धिः । एकस्मिन् व्रते पूर्वमन्यां तिथिमुपोष्य पश्चादपारयित्वैवान्योपोष्यत इति यो विधिलोपः स एकदेवताकत्वेन न भवतीत्यर्थः)।
बुधश्रवणसंयुक्ता द्वादशी सङ्गमोदकम् । दानं दध्योदनं सत्यमुपवासः परो विधिः ॥६५
सगरेण ककुत्स्थेन धुंधुमारेण गाधिना । एतैश्चान्यैश्च राजेन्द्र कृतं वै द्वादशीव्रतम् ॥६६
सा द्वादशी बुधयुता श्रवणेन सार्कं स्याद्वै जयाय कथिता ऋषिभिर्नभस्ये ।
तामादरेण समुपोष्य नरोऽमरत्वं प्राप्नोति पार्थ अणिमादिगुणोपपन्नम् ॥६७
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवादे
विजयश्रवणद्वादशीव्रतवर्णनं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः ।७६

अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः
सम्प्राप्तिद्वादशीव्रतवर्णनम्
श्रीकृष्ण उवाच

कृष्णपक्षे तु पौषस्य संप्राप्तं द्वादशीव्रतम् । पौषादिपारणं मासैः षड्भिर्ज्येष्ठान्तिकं स्मृतम् ॥१

अनेक पुत्रों से संयुक्त होकर सौ वर्ष का जीवन प्राप्त करता है । इस प्रकार मैंने इस एकादशी का समस्त फल तुम्हें बता दिया और श्रवण युक्त द्वादशी के फल पहले ही बता दिये गये हैं । एकादशी के उपवास के अनन्तर द्वादशी के उपवास करने में विधिलोप (अवैधानिक) नहीं होता है क्योंकि दोनो के देवता भगवान् विष्णु ही हैं । 'एकादशी व्रतद्वय सिद्धिः अर्थात् एकव्रत-विधान को सुसम्पन्न करने के लिए पूर्वतिथि में उपवास रहकर बिना पारण किये हुए पुनः किसी दूसरी तिथि के उपवास करने पर प्राप्त होने वाला विधि लोप (निष्फल) रूप दोष दोनों विधि के एक ही देवता होने पर नहीं होता है ।' अतः श्रवण युक्त द्वादशी बुधवार के दिन संगम जल से स्नान, दही भात के दान सत्य पूर्वक उपवास करना परमोत्तम विधान बताया गया है । राजेन्द्र! सागर, ककुत्स्थ, धुंधमार, तथा गाधि राजाओं ने इस द्वादशी व्रत को सविधान सुसम्पन्न किया है । पार्थ! भाद्रपद मास में श्रवण शुक्ल द्वादशी बुधवार के दिन सादर उपवास करने पर मनुष्य को अणिमादि गुणों समेत अमरत्व की प्राप्ति होती है, क्योंकि ऋषियों ने विजया तिथि बताया है ।६०-६७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
विजय श्रवण द्वादशी व्रत वर्णन नामक छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७६।

अध्याय ७७
सम्प्राप्तिद्वादशीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पौष मास के कृष्ण पक्ष की द्वादशी से आरम्भ कर ज्येष्ठ मास तक के इनके मासों

प्रथमं पुण्डरीकाक्षं नाम कृष्णस्य गीयते । द्वितीये माधवाख्यं तु विश्वरूपं तु फाल्गुने ।।२
पुरुषोत्तमाख्यं तु ततः पंचमेऽच्युतसंज्ञकम् । षष्ठे जयेति देवेशगुह्यनाम प्रकीर्तितम् ।।३
पूर्वोक्तेषु च मासेषु स्नानप्राशनयोस्तिलाः । आषाढादिषु मासेषु पञ्चगव्यमुदाहृतम् ।।४
स्नानं च प्राशनं चैव पञ्चगव्यं सदेष्यते । पूजयेत्पुण्डरीकाक्षं तैस्तैरेव च नामभिः ।।५
प्रतिमासं च देवेश कृत्वा पूजां यथाविधि । विप्राय दक्षिणां दद्याच्छ्रद्दधानश्च भक्तितः ।।६
पारणं चैव देवेश प्रीणनं भक्तिपूर्वकम् । कुर्वीत भक्त्या गोविन्दसद्भावेनार्चनं यतः ।।७
नक्तं भुञ्जीत सततं तैलक्षारविवर्जितम् । एकादश्यामुपोष्यैवं द्वादश्यामथ वा दिने ।।८
एवं संवत्सरस्यांते यदभिप्रेतमात्मनः । धनं वसु हिरण्यं च धान्यं भाजनमासनम् ।।
शय्यां वा ब्राह्मणे दद्यात्केशवः प्रतिगृह्यताम् ।।९
एतामुपोष्य विधिना विष्णुप्रीतौ च तत्परः । सर्वान् कामानवाप्नोति यद्यदिच्छति चेतसा ।।
ततो लोकेषु विख्यातं संप्राप्तं द्वादशीति वै ।।१०
कृताभिलषिता दृष्टा प्रारब्धा धर्मतत्परैः । पूरयेदखिलान्कामान्संस्मृता वा दिनेदिने ।।११
संप्राप्तिकामुपवसन्ति समीहितार्था ये मानदा मनुजपुङ्गव विष्णुभक्ताः ।
तेषां समीहितफलानि ददाति शश्वद्वासः सुरेशभवने भगवत्प्रसादात् ।।१२

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
संप्राप्तिद्वादशीव्रतं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ।७७

के पारण विधान बता रहा हूँ—प्रथम मास में कृष्ण के पुण्डरीकाक्ष नाम, दूसरे में माधव, फाल्गुन में विश्वरूप, चौथे में पुरुषोत्तम, पाँचवे में अत्यन्त और छठे में जप देवेश के इन ग्राह्य नामों के उच्चारण एवं तिल के स्नान और प्राशन करना चाहिए । आषाढ़ आदि मासों में पंचगव्य ही प्रशस्त बताया गया है अतः उसी के स्नान और प्राशन होना चाहिए । उन मासों में भी उपरोक्त नामोच्चारण पूर्वक भगवान् की प्रतिमास की सविधान अर्चना सुसम्पन्न करते हुए ब्राह्मण को श्रद्धा भक्ति पूर्वक दक्षिणा, पारण और देवेश की क्षमायाचना करनी चाहिए। इस प्रकार भक्तिपूर्वक गोविन्द की अर्चना करके तेल और क्षार (नमक) रहित रात्रि में भोजन करे । इस व्रत के विधान में एकादशी अथवा द्वादशी के दिन उपवास करना चाहिए । इस भाँति वर्ष के अन्त में अपने अभीष्ट वस्तु—चाँदी, सुवर्ण, धान्य, पात्र, आसन और शय्या—अर्पित करते हुए 'भगवान् केशव इसे स्वीकार करें' कहकर उनमें सप्रेम तन्मय रहे । ऐसा करने से उसकी मन इच्छित सभी कामनाएँ सफल होती हैं और लोक ख्याति भी प्राप्त होती है । मनुजपुंगव! इस प्रकार इसमें संप्राप्ति नामक द्वादशी सादर उपवास पूजन करने वाले मनुष्यों को भगवत्प्रसाद अभीष्ट सिद्धि और देवेन्द्र भवन का अविच्छिन्न निवास प्राप्त होता है ।१-१२

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
संप्राप्ति द्वादशी व्रत वर्णन नामक सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७७।

अथाष्टसप्ततितमोऽध्यायः

गोविन्दद्वादशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

तथान्यामपि ते वच्मि गोविंदद्वादशीं शृणु । तस्याः सम्यगनुष्ठानात्प्राप्नोत्यभिमतं फलम् ॥१
पौषे मासे सिते पक्षे द्वादश्यां समुपोषितः । सम्यक्संपूज्य गोविन्दनाम्ना देवमधोक्षजम् ॥२
धूपपुष्पोपचारैश्च नैवेद्यैश्च समाहितः । गोविंदेति जपेन्नाम पुनस्तद्गतमानसः ॥३
विप्राय दक्षिणां दद्याद्यथाशक्त्या नराधिप । स्वयं विबुद्धस्तुलितो गोविन्देति च कीर्तयेत् ॥४
पाखण्डिभिर्विकर्मस्थैरालापांश्च विवर्जयेत्[1] । गोमूत्रं गोमयं वापि दधि क्षीरमथापि वा ॥५
गोदोहतः समुद्भूतं प्राश्नीयादात्मशुद्धये । द्वितीयेऽह्नि पुनः स्नानं तथैवाभ्यर्च्य केशवम् ॥६
तेनैव नाम्ना संपूज्य दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् । ततो भुञ्जीत गोदोहं संभूतेन समुद्भवम् ॥७
एवमेवाखिलान्मासानुपोष्य प्रयतः शुचिः । दद्याद्गवाह्निकं विद्वान्प्रतिमासं तु शक्तितः ॥८
पारिते च पुनर्वर्षे गोविन्दं पद्मया सह । गोविन्दः प्रीतिमायातु व्रतेनानेन मे सदा ॥९
विशेषतः पुनर्दद्यात्तस्मिन्नह्नि गवाह्निकम् । भक्त्या परमया राजञ्छृणु यत्फलमाप्नुयात् ॥१०

अध्याय ७८

गोविन्दद्वादशीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें गोविन्द द्वादशी व्रत विधान बता रहा हूँ, सुनो! जिस अनुष्ठान को सविधान सुसम्पन्न करने पर मन इच्छित फल प्राप्त होता है। पौष मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी के दिन उपवास रहकर धूप, पुष्पादि उपचार और नैवेद्य द्वारा गोविन्द देव की अर्चना करके दत्तचित्त होकर 'गोविन्द' नाम का जप करना चाहिए। नराधिप! यथा शक्ति ब्राह्मण को दक्षिणा प्रदान कर देव-भावना से गोविन्द नाम का कीर्तन करता रहे। पाखण्डी एवं निन्दित पुरुषों के साथ संलाप के त्याग भी करे। प्रथमदिन दही, क्षीर अथवा गोदोहन के समय प्राप्त गोमय या गोमूत्र का प्राशन आत्म शुध्यर्थ करना चाहिए। १-५½। दूसरे दिन अतः उसी भाँति पूर्वोक्तनामोच्चारण द्वारा भगवान् केशव की स्नान प्राप्ति अर्चना, तथा ब्राह्मण को दक्षिणा प्रदान कर गोदोहन के समय उससे उत्पन्न पदार्थों का भोज न करे। इस भाँति प्रतिमास की द्वादशी में उपवास और यथा शक्ति गोविन्द की अर्चना, करते हुए वर्ष की समाप्ति में लक्ष्मी समेत गोविन्द की अर्चना करके क्षमा प्रार्थना करे कि—'इस व्रतानुष्ठान द्वारा गोविन्ददेव सदैव मुझ पर प्रसन्न रहे।' राजन्! उस दिन विशेष कर पुनः उन्हें भक्ति समेत गवाह्निक प्रदान करने पर जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, मैं कह रहा हूँ, सुनो! तथा सुवर्ण खचित सींग और रजत (चौटी) भूषित खुरों वाली सौ गौओं समेत परमोत्तम नृपदान करने पर भी। निखिलभोगों के उपभोग करने के अनन्तर

---

१. विकल्पस्थैः।

स्वर्णशृंगं रौप्यखुरं गोशतैर्वृषभं वरम् । इति मासं द्विजातिभ्यो दत्वा यत्भोगमश्नुते ।।११
तदाप्नोत्यखिलं सम्यग्व्रतमेतदुपोषितः । तं च लोकमवाप्नोति गोविन्दो यत्र तिष्ठति ।।१२
गोविन्दद्वादशीमेतां समुपोष्य विधानतः । विद्योतमाना दृश्यन्ते लोकेऽद्यापि शशांकवत् ।।१३
गोविन्दमर्चयति गोरसभोजनस्तु गा वै विनोदयति तद्वद्गवाह्निकं च ।
यो द्वादशीषु कुरुराज कृतोपवासः प्राप्नोत्यसौ सुरभिलोकमपेतशोकम् ।।१४
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
गोविन्दद्वादशीव्रतवर्णनं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ।७८

अथैकोनाशीतितमोऽध्यायः

अखण्डद्वादशीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

उपवासव्रतानां तु वैकल्यं यन्महामते । दानधर्मे कृतं यस्य विपाकं वद यादृशः ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

यज्ञानामुपवासानां व्रतानां च नरेश्वर । वैकल्यात्फलवैकल्यं यादृशं तच्छृणुष्व मे ।।२
[1]उपवासान्विना खण्डं प्राप्नुवंत्येव तच्छृणु । भ्रष्टैश्वर्या निर्धनाश्च वसन्ति पुरुषाः पुनः ।।३
रूपं तथोत्तरं प्राप्य व्रतवैकल्यदोषतः । काणाः कुब्जाश्च षण्ढाश्च भवंत्यन्धाश्च मानवाः ।।४

भगवान् गोविन्द के लोक की प्राप्ति होती है । सविधान गोविन्द द्वादशी के उपवास (एवं हरि पूजा) करने वाले आज भी चन्द्रमा की भाँति प्रकाश पूर्ण दिखायी देते हैं । कुरुराज! द्वादशी के दिन उपवास करते हुए गोविन्द की अर्चना, गोरस के भोजन, गौवों के विनोद एवं गवाह्निक के अर्पण करने वाले को शोक निवृत्ति पूर्वक सुरभि लोक की प्राप्ति होती है ।६-१४।

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में भी श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
गोविन्द द्वादशी व्रत वर्णन नामक अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७८।

अध्याय ७९

अखण्डद्वादशीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—महामते ! उपवास व्रत और दान धर्म के वैकल्य (भङ्ग) होने पर जिस प्रकार के विपाक (फल) प्राप्त होते हैं, उन्हें बताने की कृपा कीजिये ।१

श्रीकृष्ण बोले——नरेश्वर! यज्ञ, उपवास, एवं व्रतों का वैकल्य (भङ्ग) होने पर जिस दुःखदायक फलों की प्राप्ति होती है, मैं कह रहा हूँ सुनो! तथा सर्वप्रथम उपवास के विना प्राप्त होने वाले दुष्फलों का बता रहा हूँ,—व्रत वैकल्य दोष के नाते पुरुष ऐश्वर्य से भ्रष्ट होकर सदैव निर्धन रहता है तथा एकाक्ष (काना) कूबड़ा, छक्का (हिजड़ा) और अन्धा होता है ।२-४। वैसे पुरुष अपने अनुरूप पत्नी और सभी अपने

---

१. उपवासादिना राज्यं प्राप्वयंत्येव ।

उपवासी नरः पत्नीं नारी प्राप्य तथा पतिम् । वियोगं व्रतवैकल्ये दुर्भगत्वमवाप्नुयात् ।।५
ये द्रव्ये सत्यदातारस्तथान्ने सत्यनग्नयः । कुले वसंति दुःशीला दुष्कुलाः शीलनिश्च ये ।।६
वस्त्रानुलेपनैर्हीना भूषणैश्चातिरूपिणः । विरूपरूपाश्च तथा प्रसाधकगुणान्विताः ।।७
ते सर्वे व्रतवैकल्यात्फलवैकल्यमागताः । तस्मात्तद्व्रतवैकल्यं यज्ञवैकल्यमेव च ।।
उपवासेन कर्तव्यं वैकल्याद्विकलं फलम् ।।८

युधिष्ठिर उवाच

कथंचिद्यदि वैकल्यमुपवासादिके भवेत् । किं तत्र वद कर्तव्यमच्छिद्रं येन जायते ।।९

श्रीकृष्ण उवाच

अखंडद्वादशी ह्येषा समस्तेष्वेव कर्मसु ।।१०
वैकल्यं प्रशमं याति शृणुष्व गदतो मम । मार्गशीर्षे सिते पक्षे द्वादश्यां नियतः शुचिः ।।
कृतोपवासो देवेशं समभ्यर्च्य जनार्दनम् ।।११
स्नातो नारायणं ब्रूयाद्भुञ्जन्नारायणं तथा । गच्छन्नारायणं देवं स्वपन्नारायणं पुनः ।।१२
पञ्चगव्यजलस्नातो विशुद्धात्मा जितेन्द्रियः । यवव्रीहिमयं पात्रं दत्त्वा विप्राय भक्तितः ।।
इदमुच्चारयेत्पश्चाद्देवस्य पुरतो हरेः ।।१३
सप्तजन्मनि यत्किञ्चिन्मया खण्डव्रतं कृतम् । भगवंस्त्वत्प्रसादेन तदखंडमिहास्तु मे ।।१४
यथाखंडं जगत्सर्वं त्वमेव पुरुषोत्तम । तथाखिलान्यखंडानि व्रतानि मम संतु वै ।।१५
चतुर्भिरपि मासैस्तु पारणं प्रथमं स्मृतम् । प्रीणनं च हरेः कुर्यात्पारिते पारणे ततः ।।१६

अनुरूप पति की प्राप्ति कर सदैव वियोगी, व्रत-च्युति एवं भाग्यहीन रहते हैं । धन के रहते हुए दान न करने और अन्न के रहते अग्नि को आहुति न प्रदान करने वाले पुरुष सत्कुल में अश्लील एवं असत्कुल में शीलवान् होते हैं । वस्त्र अनुलेपन से हीन, भूषणों से अतिरूपवान्, विरूप, और साधकगुण सम्पन्न आदि से सभी पुरुष व्रत भंग दोष के कारण फल-वैकल्य (अंग विकार आदि) प्राप्ति करना चाहिए। अन्यथा उसका अनिष्ट फल होना निश्चित रहता है ।५-८

युधिष्ठिर ने कहा—उपवास आदि कर्मों में किसी भाँति विघ्न हो जाने पर उस समय क्या कर्तव्य होता है, जिससे उसकी पूर्णता में कोई त्रुटि न रह सके, बताने की कृपा कीजिये ।९

श्रीकृष्ण बोले——यह अखण्ड द्वादशी ही समस्त कर्मों में उत्पन्न वैकल्य दोष का प्रशमन करती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो! मार्गशीर्ष (अगहन) मास की शुक्ल द्वादशी के दिन संयम पूर्वक पवित्र होकर उपवास रहते हुए देवेश जनार्दन की अर्चना करके स्नान, भोजन, गमन, और शयन आदि सभी काल में 'नारायण देव' का नामस्मरण करना चाहिए । संयम पूर्वक पंचगव्य जल से विशुद्ध होकर भक्तिपूर्वक ब्राह्मण को जवा और धान्य के पूर्णपात्र प्रदान कर नारायण देव के समक्ष क्षमा प्रार्थना करे कि—'भगवान्! आज से पिछले सातजन्मों में मेरे जितने खण्डित व्रत हैं, आप के प्रसाद से वे व्रत अखण्ड हो जाँये। पुरुषोत्तम! जिस प्रकार आप जगत् के प्रधान एवं अखण्ड हैं, उसी भाँति मेरे निखिल खण्डित व्रत अखण्ड रूप प्राप्त करें। इस व्रतानुमान में चार मास के अनन्तर प्रथम पारण बताया गया है।१०-१६।

चैत्रादिषु च मासेषु चतुर्गुण्यं तु पारणम् । तत्रापि सक्तुपात्राणि दद्याच्छ्रद्धासमन्वितः ॥१७
श्रावणादिषु मासेषु कार्त्तिकान्तेषु पारणम् । तत्रापि घृतपात्राणि दद्याद्विप्राय दक्षिणाः ॥१८
सौवर्णं रौप्यं ताम्रं च मृण्मयं पात्रमिष्यते । स्वशक्त्यपेक्षया राजन् पालाशं वापि कारयेत् ॥१९
एवं संवत्सरस्यांते ब्राह्मणान् स जितेन्द्रियः । द्वादशामन्त्र्य विप्रांश्च भोजयेद्घृतपायसैः ॥२०
वस्त्राभरणदानैश्च प्रणिपत्य क्षमापयेत् । उपदेष्टारमप्यत्र पूजयेद्विधिवद्गुरुम् ॥२१
एवं सम्यग्यथान्याय्यमखण्डद्वादशीं नरः । समुपोष्य अखण्डस्य व्रतस्य फलमश्नुते ॥२२
सप्तजन्मसु वैकल्यं यद्व्रतस्य क्वचित्कृतम् । करोत्यविकलं सर्वमखण्डद्वादशी तु तत् ॥२३
तस्मादेषा प्रयत्नेन नरैः स्त्रीभिश्च सुव्रत । अखण्डद्वादशी सम्यगुपोष्या फलकांक्षया ॥२४
ये द्वादशीव्रतमखण्डमिति प्रसिद्धं मार्गोत्तमाङ्गमधिकृत्य कृतेन येन ।
खण्डव्रतानि पुरुषैः सुकृतानि यानि संपूर्णतां समुपयान्ति हरेः प्रसादात् ॥२५

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे-
ऽखण्डद्वादशीव्रतवर्णनं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ।७९

अथाशीतितमोऽध्यायः

मनोरथद्वादशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

फाल्गुनेऽमलपक्षस्य एकादश्यामुपोषितः । नरो वा यदि वा नारी समभ्यर्च्य जगत्पतिम् ॥१

पश्चात् विष्णु को प्रसन्न करते हुए शेष मासों के व्रतों को सुसम्पन्न करता रहे । चैत्र आदि मासों में चौगुना पारण कहा गया है, उसमें भी श्रद्धा समेत धृत पात्र का दान करना चाहिए । श्रावण से आरम्भ कर कार्तिक मास तक अर्चना घृत पूर्ण पात्र ब्राह्मण को अर्पित करे । राजन्! सुवर्ण, रजत, ताम्र, मृत्तिका, अथवा यथाशक्ति पलास-पत्र का वाल बनाये । इस प्रकार संवत्सर के अन्त में संयम पूर्वक द्वादश ब्राह्मणों निमंत्रित कर घृत पूर्ण पायस के भोजनोपरान्त वस्त्र और आभूषणों से प्रसन्न करके क्षमा याचना करे तथा उपदेष्टा भुरु की भी सविधान अर्चना करे ।१७-२२। इस भाँति अखण्ड द्वादशी में यथोचित उपवास करके मनुष्य अखण्ड फल की प्राप्ति करता है । सात जन्मों तक उसके सभी खण्डित व्रत अथवा पुरुषों को फल की आकांक्षा से इस अखण्ड द्वादशी के उपवास के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए । इस अखण्ड द्वादशी व्रत को उपवास पूर्वक सुसम्पन्न करने वाले के सभी खण्डित व्रत भगवान् विष्णु के प्रसाद से अखण्ड सम्पूर्णता प्राप्त करते हैं ।२३-२५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
अखण्ड द्वादशी व्रत वर्णन नामक उन्यासीवाँ अध्याय समाप्त ।७९।

अध्याय ८०

मनोरथद्वादशीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—फाल्गुन शुक्ल एकादशी केदिन नर-नारी सभी को चाहिए कि जगत्पति भगवान्

हरेर्नाम वदन्भक्त्या भावयुक्तो युधिष्ठिर । उत्तिष्ठन्प्रस्वपंश्चैव हरिमेवानुकीर्तयेत् ॥२
ततोन्यस्मिन्दिने प्राप्ते द्वादश्यां नियतो हरिम् । स्नात्वा सम्यगनभ्यर्च्य दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् ॥३
हरिमुद्दिश्य चैवाग्नौ घृतहोमकृतक्रियः । प्रणिपत्य जगन्नाथमिति वाणीमुदीरयेत् ॥४
पातालसंस्थां वसुधां यां प्रसाद्य मनोरथान् । अवाप वासुदेवोसौ प्रदद्यात्तु मनोरथान् ॥५
यमभ्यर्च्य दिवि प्राप्तः सकलांश्च मनोरथान् । भ्रष्टराज्यश्च देवेन्द्रो यमभ्यर्च्य जगत्पतिम् ॥६
मनोरथानभिनवान्प्राप्तवांश्च मनोहरान् । एवमभ्यर्च्य पूजां च निष्पाद्य च हरेस्ततः ॥
भुञ्जीत प्रयतः सम्यग्हविष्यं पाण्डुनन्दन ॥७
फाल्गुने चैत्रे वैशाखे ज्येष्ठे मासि च सत्तम । चतुर्भिः पारणं मासैरेभिर्निष्पादितं भवेत् ।८
रक्तपुष्पैश्च चतुरो मासान्कुर्वीत चार्चनम् । दहेत्तु गुग्गुलुं प्राश्य गोभृंगक्षालनं जलम् ॥९
हविष्यान्नं च नैवेद्यमात्मनश्चापि भोजनम् । ततश्च श्रूयतां पार्थ आषाढादौ तु या क्रिया ॥१०
जातीपुष्पाणि धूपश्च शस्तः सार्जरसो नृप । प्राश्य दर्भोदकं चास्य शाल्यन्नं च निवेदनम् ॥११
स्वयं तदेव चाश्नीयाच्छेषं पूर्ववदाचरेत् । कार्तिकादिषु मासेषु गोमूत्रं कायशोधनम् ॥१२
सुगन्धिश्चेच्छया पूजा धूपं भृङ्गारकेन च । कांसारं चात्र नैवेद्यमश्नीयात्तच्च वैस्वयम् ॥१३
प्रतिमासं च विप्राय दातव्या दक्षिणा तथा । पारणं चेच्छया विष्णोः पारणे पावने मते ॥१४
यथाशक्त्या यथाप्रीत्या वित्तशाष्ठ्यं विवर्जयेत् । सद्भावेनैव गोविंदः पूजितः प्रीयते यतः ॥१५
पारणांते यथाशक्ति स्नापितः पूजितो हरिः । प्रीणितश्चेप्सितान्कामांस्तान्ददात्यव्ययान्नृप ॥१६

विष्णु की अर्चना के अनन्तर भक्तिभावना से जागृत स्वप्न सभी काल में भगवान् के नामों का कीर्तन किया करें। पश्चात् दूसरे दिन द्वादशी के समय स्नान करके भगवान् की अर्चना, ब्राह्मण-दक्षिणा, और हरि के उद्देश्य से घी की आहुति प्रदान करके जगन्नाथ की विनय-विनम्र क्षमा याचना करे कि —पाताल स्थित होने पर भी वसुधा की प्राप्ति द्वारा अपने मनोरथों के सफल करने वाले भगवान् वासुदेव मेरे मनोरथों को सफल करें तथा राज्यच्युत देवेन्द्र ने जिस जगत्पति की आराधना द्वारा स्वर्ग के उस मनोरथों के सफल करते हुए मनोहर एवं अभिनव मनोरथों को भी सफल किया है। पाण्डुनन्दन! इस भाँति भगवान् विष्णु की भक्ति पूर्वक आराधना करके स्वयं हविष्यान्न का भोजन करे। सत्तम! इस प्रकार फाल्गुन चैत, नैशाख और ज्येष्ठ मास में पूजन करके पारण करना चाहिए। उन चारों मासों में रक्त पुष्प द्वारा पूजन, गुग्गुल की धूप, गोश्रृंग-पूत जल, हविष्यान्न एवं नैवेद्य को अर्पित करते हुए स्वयं भी यही भोजन करे। पार्थ! अनन्तर आषाढ़ आदि मासों में चमेली के पुष्प सार्जरस (शाल वृक्ष के रस) के प्रशस्त धूप, साठी चावल के भोजन निवेदन करते हुए कुशोदक के प्राशन पूर्वक उन्हीं के भोजन करे। कार्तिक आदि मासों में पाकशुद्धयर्थं गोमूत्र के आशन, सुगंध, धूप, सुवर्ण-पात्र के जल, कसेरू मे नैवेद्य द्वारा पूजन करके स्वयं भी उसी के भोजन करे। प्रतिमास में ब्राह्मण की दक्षिणा तथा विष्णु का ऐच्छिक पारण यथा शक्ति एवं सप्रेम सुसम्पन्न करते हुए वित्त शाठ्य (कृपणता) दोष का त्याग करे। क्योंकि सद्भावना द्वारा ही पूजित होने पर गोविन्द प्रसन्न होते हैं।१-१५। नृप! पारणान्त में स्नान-पूजन करने पर प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु उसे

वर्षांते प्रतिमामिष्टां कारयित्वा सुशोभनाम् । स्वर्णकेन यथा शक्त्या शङ्खशार्ङ्गविभूषिताम् ।।१७
पुष्पवस्त्रयुगच्छन्नां ब्राह्मणाय निवेदयेत् । द्वादशब्राह्मणांस्तत्र भोजयित्वा क्षमापयेत् ।।१८
द्वादशात्र प्रदातव्याः कुंभाः सान्नजलाक्षताः । छत्रोपानद्युगैः सार्द्धं दक्षिणाभिश्च भारत ।।१९
एषा पुण्या पापहरा द्वादशी फलमिच्छताम् । यथाभिलषितान् कामान् ददाति नृपसत्तम ।।२०
पूरयत्यखिलान्भक्त्या यतश्चैषां मनोरथान् । मनोरथा द्वादशीयं ततो लोकेषु विश्रुता ।।२१
उपोष्यैतां त्रिभुवनं लब्धमिन्द्रेण वै पुरा । आदित्याश्चेष्टिताः पुत्रा धनमौशनसा तथा ।।२२
धौम्येनाध्ययनं प्राप्तमन्यैश्चाभिमतं फलम् । राजर्षिभिस्तथा विप्रैः स्त्रीविट्शूद्रैश्च भूतले ।।२३
यं यं काममभिध्याय व्रतमेतदुपोषितम् । तत्तदाप्नोत्यसंदिग्धं विष्णोराराधनोद्यतः ।।२४
अपुत्रो लभते पुत्रमधनो[1] लभते धनम् । रोगाभिभूतश्चारोग्यं कन्या प्राप्नोति सत्पतिम् ।।२५
समागमं प्रवसनैरुपोष्यैतामवाप्यते । सर्वान्कामानवाप्नोति मृतः स्वर्गे च मोदते ।।२६
नापुत्रो नाधनो ज्येष्ठो वियोगी न च निर्गुणः । उपोष्यैतद्व्रतं मर्त्यः स्त्रीशूद्रो वापि जायते ।।२७
स्वर्गलोके सहस्राणि वर्षाणामयुतानि च । भोगानभिमतान्भुक्त्वा तत्र तत्र यथेच्छया ।।२८
इह पुण्यवतां नृणां धनिनां लघुशालिनाम् । गृहे प्रजायते राजन् सर्वव्याधिविवर्जितः ।।२९

मनोनुकूल फल प्रदान करते हैं । वर्ष के अन्त में उनकी सुवर्ण-प्रतिमा को शंख एवं शार्ङ्ग से भूषित कर पुष्प तथा युग्म (चार) वस्त्रों से सुसम्पन्न करके ब्राह्मण को अर्पित कर और बारह ब्राह्मणों को भोजन से संतृप्त कर क्षमा याचना करते हुए बारह सान्नोदक कुंभ, छत्र, उपानह एवं दक्षिणा से उन्हें सम्मानित करे । भारत! यह पुण्य एवं पापहारिणी द्वादशी सविधान सुसम्पन्न करने पर मन इच्छित कामनाएँ प्रदान करती है । नृपसत्तम! भक्ति समेत इसे सुसम्पन्न करने पर निखिल मनोरथ सफल होते हैं, इसीलिए लोक में वह मनोरथ द्वादशी नाम से ख्यात है । पुरातन काल में इसमें उपवास करने पर इन्द्र को त्रिभुवन, आदित्य को इच्छित पुत्र, शुक्र को धन, धौम्य को अध्ययन और अन्यों को भी उनके अभिमत फल प्राप्त हुए हैं । उसी प्रकार राजर्षि, ब्राह्मण, सभी वैश्य, एवं शूद्रों ने इस भूतल पर जिन कामनाओं के उद्देश्य इस व्रत को उपवास रहकर सुसम्पन्न किया है, वे सभी कामनाएँ इस विष्णु की आराधना द्वारा निःसंदेह सफल हुई है । अपुत्र को पुत्र, निर्धन को धन, रोगी को आरोग्य, और कन्याओं को सत्पति की प्राप्ति होती है ।१६-२५। इसके उपवास से प्रवासी को गृह समागम तथा समस्त कामनाओं की सफलता के अनन्तर देहावसान होने पर स्वर्ग की प्राप्ति होती है । इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर पुरुष सभी अथवा शूद्र भी कभी अपुत्र, निर्धन, ज्येष्ठ, वियोगी एवं निर्गुण नहीं होते तथा राजन्! स्वर्ग में दशसहस्र वर्ष तक ऐच्छिक भोगों मे उपभोग करने के उपरांत धनी-मानी कुल में जन्म ग्रहण कर सदैव नीरोग रहते हैं । जो

---

१. अलब्धः ।

न द्वादशीमुपवसन्ति मनोरथाख्यां नैवार्चयंति पुरुषोत्तममादिदेवम् ।
गोब्राह्मणांश्च न नमन्ति न पूजयन्ति ये ते मनोभिलषितं कथमाप्नुवन्ति ।।३०

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
मनोरथद्वादशीव्रतवर्णनं नामाशीतितमोऽध्यायः ।।८०

अथैकाशीतितमोऽध्यायः

उल्कानवमीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

अल्पायासेन भगवन् धनेनाल्पेन वा विभो । पापं प्रशममायाति येन तद्वक्तुमर्हसि ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु पार्थ परां पुण्यां द्वादशीं पापनाशिनीम् । यामुपोष्य परं पुण्यमाप्नुयाच्छ्रद्धयान्वितः ।।२
माघमासे च संप्राप्ते आषाढर्क्षं भवेद्यदि । मूलं वा कृष्णपक्षस्य द्वादश्यां नियतव्रतः ।।३
गृह्णीयात्पुण्यफलदं विधानं तस्य मे शृणु । देवदेवं समभ्यर्च्य सुस्नातः प्रयतः शुचिः ।।४
कृष्णनाम्ना च संपूज्य एकादश्यां महामते । उपोषितो द्वितीयेह्नि पुनः संपूज्य केशवम् ।।५
संस्तूय नाम्ना तेनैव कृष्णाख्येन पुनःपुनः । दद्यात्तिलांश्च विप्राय कृष्णो मे प्रीयतामिति ।।६

लोग मनोरथ द्वादशी में उपवास, पुरुषोत्तम देव की अर्चना, को ब्राह्मणों को नमन नहीं करते हैं उनकी अभीष्ट सिद्धि कैसे होती है ।२६-३०

श्री भविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
मनोरथ द्वादशी व्रत वर्णन नामक अस्सीवाँ अध्याय समाप्त ।८०।

अध्याय ८१

उल्कानवमीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—भगवान् विभो! अल्प धन तथा अल्प प्रयत्न पूर्वक जिस व्रत द्वारा पाप का प्रशमन हो सके, आप बताने की कृपा करें! १

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ! मैं उस पुण्य, पापनाशिनी एवं परा द्वादशी की चर्चा कर रहा हूँ, जिसमें श्रद्धा भक्ति समेत उपवास करने पर अत्यन्त पुण्य की प्राप्ति होती है । माघमास की कृष्ण द्वादशी के दिन आषाढ़ नक्षत्र प्राप्त होने पर संयम पूर्वक इस पुण्य व्रत को आरम्भ करने पर जिस फल की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो! महामते! एकादशी के दिन स्नान-पवित्र होकर देवेश विष्णु के कृष्ण नामोच्चारण करते हुए रात्रि व्यतीत होने के उपरांत द्वादशी के दिन उपवास रहकर उसी कृष्ण नामोच्चारण स्तुति एवं केशव देव के पूजन सुसम्पन्न करके 'कृष्ण मुझ पर प्रसन्न हों' कहते हुए ब्राह्मण को तिल प्रदान करे और

ततश्च प्राशयेच्छस्तांस्तथा कृष्णांतिलान्नृप । विष्णुप्रीणनमंत्रोक्ते समाप्ते वर्षपारणे ॥७
कृष्णकुंभास्तिलैः सार्द्धं पक्वान्नेन च संयुताः । छत्रोपानद्युगैर्वस्त्रैः सहिता अन्नगर्भिणः ॥
ब्राह्मणेभ्यः प्रदेयास्ते यथावन्माससंख्यया ॥८
तिलप्ररोहाजायंते यावत्संख्यास्तिला नृप । तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥
अरोगो जायते नित्यं नरो जन्मनि जन्मनि ॥९
अन्धो न बधिरश्चैव न कुष्ठी न च कुत्सितः । भवत्येतामुषित्वा तु तिलाख्यां द्वादशीं नरः ॥१०
अनेन पार्थ विधिना तिलदाता न संशयः । मुच्यते पातकैः सर्वैरनायासेन मानवः ॥११
दानं विधिस्तथा श्राद्धं सर्वपातकशांतये । नार्थः प्रभूतो नायासः शरीरे नृपसत्तम ॥१२

सर्वोपभोगनिरतोह्नि परे दशम्यां स्नानं तिलैस्तिलनिवेदनकृत्तिलाशी ।
दत्त्वातिलान्द्विजवराय विराजकेतु संपूज्य विष्णुपदवीं समुपैति मर्त्यः ॥१३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
उल्कानवमीव्रतवर्णनं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥८१

पश्चात् स्वयं उसी का आशन करे ! नृप! इस प्रकार विष्णु का नामोच्चारण मंत्र द्वारा जपते हुए वर्ष के अन्त में तिलसमेत एवं पक्वान्न समेत कृष्ण कुम्भ, छत्र, उपानह, चार वस्त्र एवं मिष्ठान के नैवेद्य माससंख्या (वारह) के अनुसार ब्राह्मण को सादर अर्पित करे । नृप! उन तिलों द्वारा उत्पन्न तिल की संख्या के समान उतने वर्ष यह व्रती स्वर्ग लोक के सम्मान प्राप्ति के अनन्तर प्रत्येक जन्म में व्याधि रहित रहता है । इस तिल नामक द्वादशी के उपवास करने से मनुष्य कभी भी अंधा, वधिर, कुष्ठी एवं कुत्सित (निन्दित) नहीं होता है । पार्थ! इस विधान द्वारा तिल दान करने वाला समस्त पातकों से निःसंदेह मुक्त हो जाता है । नृप सत्तम! समस्त पातकों के शमनार्थ श्रद्धा समेत इस व्रत के अनुष्ठान एवं दानं करने से न अधिक धन की आवश्यकता है और न शारीरिक परिश्रम की । इस प्रकार दशमी के दिन समस्त भोगों के त्याग पूर्वक तिल द्वारा स्नान, भोजन निवेदन, आशन, तथा ब्राह्मणों को दान तथा हरि की अर्चना करने पर उसे विष्णु लोकप्राप्त होता है ।२-१३।

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
उल्कानवमी व्रत वर्णन इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ।८१।

---

१. कृतेनानेन । २. पूज्यं वा

अथ द्व्यशीतितमोऽध्यायः

सुकृतद्वादशीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

यन्न तापाय वै पुंसां भवत्यामुष्मिकं कृतम् । तदपायाय भवति तदाचक्ष्व यदूत्तम ॥१
उपवासप्रभावं वै कृष्णाराधनकांक्षिणाम् । कथयेह महाबाहो नैव तृप्यामि जल्पतः ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

श्रूयतां पार्थ यत्पृष्टः कौतुकाद्भवता वयम् । आमुष्मिकं न तापाय प्रतापाय च जायते ॥३
उपोशितप्रभावं च कृष्णाराधनकांक्षिणाम् । कथयामि यथावृत्तं पूर्वमेव नरोत्तम ॥४
वैदिशं नाम नगरं प्रख्यातं नृपसत्तम । तत्र वैश्योऽभवत्पूर्वं सीरभद्र इति श्रुतः ॥५
भार्यया मातृदुहित पुत्रपौत्रैः समन्वितः । प्रभूत भृत्यवर्गश्च बहुव्यापारकारकः ॥६
पुत्रपौत्रादिभरणे व्यासक्तिर्मतिरेव च । परलोकं प्रति पतिस्तस्य नासीत्कदाचन ॥७
चकारानुदिनं सोऽथ न्यायान्यायैर्धनार्जनम् । सर्वत्रान्यत्र निःस्नेहः पुत्रस्नेहपरिप्लुतः ॥८
न जुहोत्युदिते काले न ददात्यतितृष्णया । बभूव चोद्यमस्तस्य पुत्रादिभरणे परः ॥९
नित्यनैमित्तिकानां च हानिं चक्रे स्वकर्मणा । तृष्णाभिभूतो राजेन्द्र स्ववर्गभरणोज्झितः ॥१०

अध्याय ८२

सुकृतद्वादशीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—यदूत्तम! मनुष्यों के उन ऐहिक कर्मों को जिससे किसी प्रकार का संतोष नहीं होता है प्रत्युत पुण्य ही होता है, बताने की कृपा कीजिये । महाबाहो! कृष्ण की आराधना करने वालों के उपवास का वर्णन करें क्योंकि आप की कथाओं से मुझे तृप्ति नहीं हो रही है ।१-२

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ! आप ने कौतुकवश मुझसे जो प्रश्न किया है कि—'मनुष्यों के ऐच्छिक कर्म, जो ताप की अपेक्षा प्रताप उत्पन्न करते हैं, तथा कृष्ण की आराधना के अभिलाषुकों के उपवास प्रभाव बताने की कृपा करें ।' नरोत्तम! मैं उसका यथावत् वर्णन कर रहा हूँ, सुनो! ।३-४। नृपसत्तम! विदिशा नगरी में सीरभद्र नामक एक प्रख्यात वैश्य रहता था, जो स्त्री, माता, सभी पुत्र, एवं पौत्रों से संयुक्त रह अनेक भृत्यों द्वारा सदैव अनेक भाँति का सफल व्यापार करता था । अपने पुत्र-पौत्रादि परिवार के भरण-पोषण में अहोरात्र संलग्न रहने के नाते उसने कभी-भी परलोक-विषयों का ध्यान ही नहीं किया । वह प्रतिदिन न्याय-प्रयास से धनोपार्जन करते हुए सदैव पुत्र स्नेह में आत्म-विभोर रहता था और अन्य विषयों से निःस्पृही प्रतितृष्णा क्रान्त होने के नाते उसने कभी हवन-यज्ञ एवं किसी प्रकार का दान नहीं किया । उसके सभी प्रकार के उद्यम पुत्रादिकों के भरण-पोषणार्थ ही होते थे। राजेन्द्र! इस प्रकार उसने प्रति तृष्णा के नाते अपने ही हाथों अपने नित्य नैमित्तिक की अपार क्षति की।५-९। इस प्रकार अनेक

कालेनागच्छतासोऽथ मृतो विंध्याटवीतटे । यातनादेहभृत्प्रेतो ग्रीष्मकालेऽभवन्नृप ॥११
तं ददर्श महाभागो दिव्ययानसमन्वितः । वेदवेदाङ्गविद्वेषी विपीतो नाम वै द्विजः ॥
भास्करस्यांशुभिर्दीप्तैर्दह्यंतमतिदारुणैः ॥१२
प्रतप्तवालुकामध्ये तृषार्तं चातिपीडितम् । क्षुत्क्षामकंठं शुष्कास्यं तथोद्वृत्तविलोचनम् ॥
निष्क्रांतजिह्वमङ्गेषु विस्फोटैः सर्वतश्चितम् ॥१३
निश्वासायासखेदेन विह्वलं पीडितोदरम् । निजेन कर्मणा बद्धमसमर्थं प्रसर्पणे ॥१४
तथादृशमथो दृष्ट्वा गर्दभेदो महानृषिः । विपीतः प्राह राजेन्द्र कारुण्यभरितं वचः ॥१५
जानन्नपि यथाप्राप्तं तस्यानुष्ठानजं फलम् । जंतोस्तस्योपकाराय सर्वतो ह्लादयन्निव ॥१६

विपीत उवाच

अधः सूर्यांशुनिस्तप्तैर्बहुभिः पथि पांशुभिः । उपर्यर्ककरैस्तीक्ष्णैस्तृषावातनिपीडितम् ॥१७
अन्यस्तत्राणकैर्घोरैरविषह्यैःसुदारुणैः । कथयेह यथातत्त्वमेकाकी दह्यसे कथम् ॥१८
तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा विपीतस्य सवेदनः । वेदनार्त उवाचेदं कृच्छ्रादुच्छ्वस्य मन्दकम् ॥१९

सीरभद्र उवाच

ब्रह्मन्नालोचितं पूर्वं कथमंते भविष्यति । अशाश्वते शाश्वतधीस्तेन दह्यामि दुर्मतिः ॥२०
इदं करिष्याम्यपरं त्विदं कृत्वात्विदं पुनः । इतीच्छा शतमारूढस्तेन दह्यामि दुर्मतिः ॥२१

समय व्यतीत होने के उपरांत देहावसान होने पर वह विंध्याटवी के समीप प्रेत योनि में उत्पन्न होकर उस (प्रचण्ड) ग्रीष्म समय में शारीरिक यातनाओं के अत्यन्त कटु अनुभव कर रहा था। उस समय विपीत नामक एक ब्राह्मण ने उसे देखा, जो दिव्ययान युक्त एवं वेद-वेदाङ्ग का महान् द्वेषी था। वह भास्कर की अति दारुण एवं प्रखर किरणों द्वारा संतृप्त एवं उस प्रज्जलित बालुकाओं के बीच, अत्यन्त तृषा पीड़ित था। क्षुधापीडित होने के नाते उसके क्षीणकण्ठ, शुष्क वदन एवं नेत्र ऊपर निकले जैसे आ रहे थे। जिह्वा मुखसे निकली हुई थी, और अंगों में अनेक फोड़े (फलके) हो गये थे। इस प्रकार उष्ण एवं ऊर्ध्व (लम्बी) श्वासों से विद्वान्, उदर पीड़ित, एवं निजकर्मों से आवद्ध होने के नाते चलने में असमर्थ उस प्रेत को देख कर विपीत नामक, गर्दन में महर्षि ने करुणा पूर्ण वाणी से कहा। राजेन्द्र! यद्यपि वह ब्राह्मण जानता था कि—यह किस कर्म का फल अनुभव कर रहा है—तथापि जीव के उपकारार्थ उसने उसे सभी प्रकार से आच्छादित करने की भाँति कहना आरम्भ किया।१०-१६

विपीत बोले— सूर्य के प्रखर किरणों द्वारा संतप्त हुई मार्ग-धूलियों (रजकणों) से और प्रचण्ड मार्तण्ड के तीक्ष्ण किरणों तृषा और वात से पीडित होते हुए आप एकाकी यहाँ क्यों दग्ध हो रहे हैं, इसका मूल कारण बताइये! विपीत की ऐसी बातें सुनकर वेदना-पीडित उस प्रेतने उर्ध्व (लम्बी) श्वांस लेने के कारण अत्यन्त कठिनाई से कहना आरम्भ किया।१७-१९

सीरभद्र ने कहा— ब्रह्मन्! मैंने (अपने कर्मों पर) कभी नहीं ध्यान दिया कि—इसका परिणाम क्या होगा। इस अशाश्वत् जगत् को सदैव शाश्वत मानता रहा इसीलिए मुझे ऐसी दुर्दशा हो

शीतोष्णवर्षादिभवं लोभात्सोढं मयाऽशुभम् । तदेव हि न धर्मार्थं तेन दह्यामि दुर्मतिः ॥२२
पितृदेवमनुष्याणामदत्त्वा योषिता हि ये । ते गता नापि वर्तंते दह्याम्येकोऽत्र दुर्मतिः ॥२३
पुत्रक्षेत्रकलत्रेषु ममत्वाहृतचेतसा । बह्वसाधु कृतं कर्म तेन दह्यामि दुर्मतिः ॥२४
मृते मयि धने तस्मिन्नन्यायोपार्जिते सदा । रूपवंतोऽभिवर्तन्ते दह्याम्येकोऽत्र दुर्मतिः ॥२५
न मया पूजिता गेहान्निर्गता द्विजसत्तमाः । स्ववर्गमिह कामेन तेन दह्याम्यहंमतिः ॥२६
यन्नो न पूजिता देवाः कुटुम्बं पोषितं परम् । एकाकी तत्र दह्यामि ये सुतास्तेऽन्यतो गताः ॥२७
नित्यं नैमित्तिकं कर्म पूर्वेषां चैव नो कृतम् । एकाकी तेन दह्यामि गतस्ते फलभोगिनः ॥२८
दाराः पुत्राश्च भृत्याश्च पापबुद्ध्या मया भृताः । एकाकी तेन दह्यामि गतास्ते फलभोगिनः ॥२९
दाराः पुत्राश्च भृत्यार्थे मया न्यायार्थसञ्चयः । कृतस्तेनात्र दह्यामि ये भुक्तास्तेऽन्यतो गताः ॥३०
क्षतपापं मया भुक्तमन्यैस्तत्कर्म सञ्चितम् । दह्याम्येकोऽहमत्यन्तं गतास्ते फलभोगिनः ॥३१
यन्ममत्वाभिभूतेन मया पापमुपार्जितम् । न तदन्यस्य कस्यापि, केवलं मम दुष्कृतम् ॥३२
अन्तर्दुःखेन दग्धोऽहं बहिर्दह्यामि भावयन् । तावद्दुःखं नवाभं तु पापमेकं द्विधा स्थितम् ॥३३
कुरु तस्मात्समुद्धारं पश्यस्यमृतसागरम् । तव येनाहमाह्लादं प्राप्नुयां मुनिसत्तम ॥३४

रही है। इस कार्य को सर्व प्रथम करके अनन्तर पुनः इसे करूँगा। इसी प्रकार सैकड़ों इच्छाओं में तल्लीन रहा करता था। मैंने लोभ वश शीतकाल उष्ण (गर्मी) काल एवं वर्षा काल के घोर प्रकोप का सहन किया, किन्तु धर्मार्थ न कर सका, इसीलिए मुझ दुर्मति को इस प्रकार दग्ध होना पड़ रहा है। पितर, देव और (याचक) आदि मनुष्यों को कुछ भी न देकर सदैव कलत्र आदि का ही पोषण करता रहा, किन्तु वे सब तो नहीं करते और मैं एकाकी यहाँ दग्ध हो रहा हूँ। पुत्र, क्षेत्र एवं कलत्र आदि की ममता में सदैव तल्लीन रह कर मैनें अनेक असाधु कर्म किया है। मेरे निधन होने के पश्चात् मेरे उस धन के उपयोग, जिसके उपार्जन में मैंने न्याय-अन्याय का कुछ भी स्मरण नहीं किया था, सभी घर के लोग कर रहे हैं और मैं ही अकेला इस यातना को भोग रहा हूँ। घर पर आये हुए अतिथि का सम्मान मैंने नही किया, वे विमुख होकर लौट गये, केवल अपने ही वर्ग का पोषण करता रहा ।२०-२६। देवों के पूजन न कर मैनें सदैव कुटुम्ब-पोषण ही किया, किन्तु वे सुतादिक तो प्रथम रह गये और मैं यहाँ दग्ध हो रहा हूँ। पूर्व के नित्य-नैमित्तिक कर्मो के पालन मैंने कभी नहीं किया और सदैव निश्छलभाव से कलत्र, पुत्र और सेवकों का ही पालन करता रहा किन्तु वे सभी फल भागी तो चले गये और मैं एकाकी इसका अनुभव कर रहा हूँ। सभी पुत्र एवं भृत्यों के निमित्त मैंने अन्यायतः अर्थ सञ्चय किया, जिसके उपभोग करके वे सब जहाँ के तहाँ चले गये, किन्तु उन लोगों ने अपने संचित कर्मों का उपभोग किया और मैंने इस प्रकार के क्षीण पाप (दुर्विपाक कर्मों) का। ममता-मग्न होकर मैंने जितने पाप कर्म किये हैं, वे सब मेरे ही दुष्कृत हैं किसी अन्य के नहीं। इसीलिए अन्तः और ब्राह्य के उभयथा दुःखों से दग्ध हो रहा हूँ। जो मेरे एक ही भागों के दो रूप हैं। अतः मुनिसत्तम! आप को अमृत सागर अवश्य दिखायी दे रहा है, उससे मेरा उद्धार करने की कृपा करें जिससे आप के द्वारा मुझे भी कुछ आह्लाद की प्राप्ति हो जाये ।२७-३४

विपीत उवाच

अल्पकालिक उद्धारे तव पश्यामि संशयम् । प्रक्षीणं पापमेतावत्सुवृत्तं चास्ति ते परम् ।।३५
प्रतीते दशमे जन्मन्यच्युताराधनेच्छया । सुकर्मजयदा भद्रद्वादशीं समुपोषितः ।।
न च तस्याः प्रसादेन पापमत्यन्तदुर्जयम् ।।३६
अल्पैरहोभिः संक्षीणमामपात्रे यथा जलम् । गतं पापमयं ह्यस्याः प्रभावोऽत्यन्तदुर्लभः ।।३७
नाशं पापस्य कुरुते जयं सुकृतकर्मणः । सकृत्कर्मप्रदा ह्येषा ततो वै द्वादशी स्मृता ।।३८
यथैतद्दुःखितार्तेन भवता परिदेवितम् । तमुवाचात्र संदेहो मम तापाय देव किम् ।।३९
पापमत्र कृतं प्रेत्य भद्र तापाय जायते । आह्लादाय तथा पुण्यमिह पुण्यकृतां नृणाम् ।।४०
सीरभद्रं समाश्वास्य ययावित्थं महामुनिः । सोप्यल्पेनैव कालेन ततो मोक्षमवाप्तवान् ।।४१
उपवासप्रभावश्च कथितस्ते नरोत्तम । येनाल्पैरेव दिवसैर्भूरि पापं क्षयं गतम् ।।४२
तस्मान्नरेण पुण्याय यतितव्यं न पातकम् । उपवासाश्च कर्तव्याः सदैवात्महितैषिणा ।।४३

युधिष्ठिर उवाच

अथैतत्कष्टपापानां विपाको नरकस्थितैः । पुरुषैर्भुज्यते शश्वत्तं मोक्षं वद सत्तम ।।४४

श्रीकृष्ण उवाच

जयासमेताः पुरुषाः सदा सुकृतकर्मणः । जया सा द्वादशी शस्ता नृणां सुकृतकर्मणाम् ।।४५

विपीत बोले—तुम्हारे अल्प कालिक उद्धार होने में मुझे सन्देह हो रहा है, क्योंकि इतना महा पाप तो तुम्हारा नष्ट अवश्य हो गया किन्तु अभी अधिकांश शेष है। आज के दशवें जन्म में मैंने भगवान् अच्युत की आराधना की कामना से जप और कल्याण प्रदायिनी इस सुकृत द्वादशी के उपवास (व्रत) सुसम्पन्न किया था। क्योंकि उसके समक्ष कोई दुर्जेय पाप है ही नहीं। इसीलिए उसके अत्यन्त दुर्लभ अभाव के नाते मेरे सभी पाप अल्प काल में कच्चे पात्र में स्थित जल की भाँति अल्प काल में ही नष्ट हो गये। उन सुकृत कर्मों द्वारा पाप के नाश पूर्वक जप का अप्राप्य होता है और सुकृत कर्म प्रदान करने के नाते उसकी सुकृत द्वादशी नाम से ख्याति भी हुई है।३५-३८। उस (प्रेत) ने कहा—देव! आपने मेरे दुःख में दुःख प्रकट किया है, अतः वह द्वादशी व्रत विधान बताने की कृपा कीजिये। आप ने प्रथम सन्देह भी प्रकट किया, जिससे मुझे कुछ विशेष सन्ताप अवश्य हुआ, किन्तु इस लोक में पापकर्म करने पर भरण के अनन्तर संताप, और पुण्य करने वाले मनुष्यों के पुण्य कर्म आह्लाद। (विशेष हर्ष) के लिए अवश्य होते ही हैं। अनन्तर उस महामुनि ने उसकी व्याख्या पूर्वक उसे सीरभद्र को आश्वासन प्रदान कर आगे की यात्रा की और वह (उस विधान द्वारा) अल्प काल में ही अपने घोर पापों से मुक्त हो गया। नरोत्तम! इस प्रकार मैंने उपवास के उस प्रभाव को, जिसके द्वारा अल्प समय में ही उसके अनेक पाप नष्ट हो गये, तुम्हें बता दिया। इसलिए मनुष्यों को सदैव पुण्य के लिए ही प्रयत्नशील रहना चाहिए, और आत्म कल्याण को ध्यान में रखते हुए उपवास भी करना चाहिए।३९-४३

युधिष्ठिर ने कहा—सत्तम! कष्ट दायक विपाक कर्मों के दुर्विपाक (दुःखपरिणाम) नरक स्थित पुरुषों को निरन्तर भोगने पड़ते हैं, अतः उनके मोक्ष्यार्थ उपाय बताने की कृपा करें।४४

श्रीकृष्ण बोले—सुकर्म करने वाले पुरुषों के लिए जय प्रदान समेत (पाप विनष्ट करने वाली) वह

फाल्गुनामलपक्षस्य एकादश्यामुपोषितः । द्वादश्यां तु द्विजश्रेष्ठ पूजयेन्मधुसूदनम् ।।४६
एकादश्यां समुत्तिष्ठन्विष्णोर्नामानुकीर्तयन् । पूजायां वासुदेवस्य भुञ्जीत सुसमाहितः ।।४७
कामं क्रोधं च लोभं च मदं मोहं च वर्जयेत् । द्रोहादीन् वर्जयेद्दोषान् सर्वान्धनमदोद्भवान् ।।४८
भाययेद्विष्णुभक्तश्च संसारेऽसारतां तथा । एवं भावितचित्तेन प्राणिनां हितमिच्छता ।।४९
नमो नारायणायेति वक्तव्यं स्वपता निशि । तथैव कुर्याद्द्वादश्यां नाम्ना क्षुत्पारणं नृप ।।५०
सौवर्णताम्रपात्राणि मृण्मयान्यपि पांडव । यवपात्राणि पूर्वं तु दद्यान्मासचतुष्टयम् ।।५१
आषाढादिद्वितीयं तु पारयेच्च महामते । तत्रापि घृतपात्राणि दद्याच्छ्रद्धासमन्वितः ।।५२
कार्तिकादिषु मासेषु माघांतेषु तथा तिलान् । विप्राय दद्यात्पात्रं तु प्रतिमासमुपोषितः ।।५३
नामत्रयमशेषेण मासिमासि दिनद्वयम् । तथैवोच्चारयन् दद्यान्मासिमासि यवादिकम् ।।
प्रणम्य च हृषीकेशं कृतपूजः प्रसादयेत् ।।५४

विष्णो नमस्ते जगती प्रसोत्रे श्रीवासुदेवाय नमो नमस्ते ।
नारायणाख्यः प्रणतैर्विचिंत्यः करोतु मां शाश्वतपुण्यराशिम् ।।५५
प्रसीद पुण्यं जयमेति विष्णो श्रीवासुदेवार्द्धिमुपैतु पुण्यम् ।
प्रयातु वाशेषमथोविनाशं मातेंऽघ्रिपद्मादितरत्र मे मतिः ।।५६

विष्णो पुण्योद्भवो मेस्तु वासुदेवास्तु मे शुभम् । नारायणोऽस्तु मे धर्मो जहि पापमशेषतः ।।५७

जया द्वादशी अत्यन्त प्रशस्त बतायी गयी है । द्विज श्रेष्ठ! फाल्गुन मास की शुक्ल एकादशी के दिन उपवास करके द्वादशी के दिन भगवान् मधुसूदन की सप्रेम अर्चना करनी चाहिए । एकादशी के प्रातः काल उठते ही विष्णु के नामानुकीर्तन प्रारम्भ कर पूजन आदि कर्मों में भी यथावसर करता रहे, भगवान् वासुदेव की पूजा के उपरांत भोजन में भी समाहितमनस्क रहे । उस समय धन के भाव से उत्पन्न होने वाले इन सभी काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, और द्रोहादि के त्याग पूर्वक उस विष्णु भक्त को संसार की नश्वरता पर विशेष ध्यान रख कर उनकी प्रेम-भावना को अधिक आश्रय देना चाहिए । इस प्रकार भावना निमग्न होकर प्राणियों के हितार्थ रात्रि में शयन करते समय नमो नारायणाय का उच्चारण करे । नृप! उसी प्रकार द्वादशी के दिन भी नामोच्चारण पूर्वक ही क्षुधांशांत्यर्थ पारण करे ।४५-५०। पाण्डव! प्रथम के चारों मासों में सुवर्ण, ताम्र, अथवा मृत्तिका के पात्र में जवा रखकर प्रदान करता रहे । महामते! आषाढ़ आदि मासों के दूसरे चौमासे में श्रद्धा समेत घृत पान, और कार्तिक आदि से माघ के अन्त समय तक तिल पात्र उपवास करते हुए प्रतिमास ब्राह्मण को प्रदान करता रहे । प्रत्येक मास के दोनों (एकादशी-द्वादशी के) दिन भगवान् के विशेष नामों के उच्चारण और पक्वान्नादि के पूर्ण पात्र ब्राह्मण को प्रतिमास अर्पित करते हुए भगवान् हृषीकेश की सप्रणाम पूजा करके क्षमा प्रार्थना करे— जगत्कारण विष्णु को नमस्कार है, और श्री वासुदेव को नमस्कार है । श्री नारायणदेव का वह मुखारविन्द, जिसका ध्यान सदैव प्रणत पुरुष किया करते हैं, मुझे शाश्वत पुण्य की राशि बनाये । विष्णो! आप प्रसन्न हों, और मेरा पुण्य श्री वासुदेव जी की पुण्य-जप रूप भक्ति प्राप्त करे (अर्थात् अतुल हो जाये) अथवा विनष्ट हो जाये, किन्तु मेरी बुद्धि आप के चरण-कमल का त्याग कभी न करे । विष्णो! मेरा पुण्योद्भव हो, अशेष पापों के विनाश हो, नारायण! मेरी धर्म-वृद्धि हो और अशेष पापों के विनाश ।५१-५६। उसी भाँति अनेक जन्मों

अनेकजन्मजनितं बाल्ययौवनवार्द्धके । पुण्यं विवृद्धिमायातु यातु पापं च संक्षयम् ।।५८
आकाशादिषु शब्दादौ श्रोत्रादौ महदादिषु । प्रकृतौ पुरुषे चैव ब्रह्मण्यपि च स प्रभुः ।।५९
यथैक एव धर्मात्मा वासुदेवो व्यवस्थितः । तेन सत्येन पापं मे नरकार्तिकप्रदं क्षयम् ।।६०
प्रयातु सुकृतस्यास्तु समानु दिवसञ्जयः । पापस्य हानिः पुण्यस्य वृद्धिर्मेस्तूत्तमोत्तमा ।।६१
एवमुच्चार्य विप्राय दद्यात् यत् कथितं तव । भुञ्जीत कृतकृत्यस्तु पारणेपारणे गते ।।६२
पारणान्ते तु देवेश प्रीणनं शक्तितो नृप । कुर्वीताखिलपाखण्डैरालापं च विवर्जयेत् ।।६३
एवं संवत्सरस्यान्ते काञ्चनीं प्रतिमां हरेः । पूजयित्वा वस्त्रपुष्पैर्घृतपात्रेण संयुतैः ।।६४
गां सवत्सां च विप्राय दद्याच्छ्रद्धासमन्वितः । विलंबितं च यत्पूर्वं देवानन्यान् भजेद्यदि ।।६५
तस्मिन्नहनि दातव्यं भोजने चानिवारितम् । इत्येषा कथिता पुण्या सुकृतस्य जयावहा ।।
द्वादशी नरकं पार्थ यामुपोष्य न पश्यति ।।६६
नाग्नयो न च शस्त्राणि न च लोहमुखाः खगाः । नारकास्तं प्रबाधन्ते मतिर्यस्य जनार्दने ।।६७
नामोच्चारणमात्रेण विष्णोः क्षीणाघसञ्चयः । भवत्यघविनाशश्च नरके पतनं कुतः ।।६८
नमो नारायण हरे वासुदेवेति कीर्तयन् । न याति नरकं मर्त्यः संक्षीणाशेषपातकः ।।६९
तस्मात्पाखण्डिसंसर्गकुर्वन् द्वादशीमिमाम् । उपोष्य पुण्योपचये न याति नरकं नरः ।।७०

में वाल्य, यौवन एवं वृद्धावस्था-जनित पुण्य की वृद्धिपूर्वक पापों का ध्वंस हो । आकाशादि पञ्च तत्त्वों शब्द आदि (रूप रस गन्धादि) विषय, श्रोत्र (कर्ण) आदि इन्द्रियाँ, महदादि (सोलह विकार), प्रकृति, पुरुष और ब्रह्मा में सदैव एक भाँति स्थित रहने वाले धर्मात्मा वासुदेव नारकीय दुःख प्रद मेरे पापों के विनाश कर सुकृत कर्मों की अनुदिन परमोत्तम वृद्धि होती रहे । इस प्रकार कहकर ब्राह्मण को दान करने के अनन्तर कृतकृत्य होते हुए प्रत्येक पारण में भोजन करे । नृप! पारण के अनन्तर पाखण्डों और असप्त् आलापों के त्याग पूर्वक वर्ष की समाप्ति में भगवान् विष्णु की काञ्चनमयी प्रतिमा बनवा कर सविधान पूजन करके वस्त्र, पुष्प, घृतपात्र, तथा सवत्सा गौ श्रद्धा समेत ब्राह्मण को अर्पित करे । विलम्ब होने अथवा किसी अन्य देव की अर्चना उपस्थित होने पर भी उस दिन ब्राह्मण भोजन अवश्य होना चाहिए । पार्थ! इस प्रकार मैंने तुम्हें पुण्य एवं जयावह उस सुकृत द्वादशी का वर्णन सुना दिया, जिसमें उपवास रहकर मनुष्य नरक-दर्शन नहीं करता है ।५७-६६। भगवान् जनार्दन के लिए वुद्धचा प्रयत्न करने वाले मनुष्यों को अग्नि, शास्त्र, लोहमुख पक्षी गण जनित कष्ट और नारकीय यातनाएँ प्राप्त नहीं होती हैं । क्योंकि भगवान् विष्णु के नामोच्चारण मात्र से पापों के समूह विनष्ट हो जाते हैं तो नरक-पतन सम्भव कहाँ। नारायण, हरे, एवं वासुदेव आदि भगवान् के नामों के कीर्तन करने वाले मनुष्य निखिल पापों के विनष्ट हो जाने के कारण नरक के भी नहीं होते हैं। इसलिए पाखण्डों आदि के त्याग पूर्वक सुकृत द्वादशी के उपवास करने पर पुण्य वृद्धि के नाते उस पुरुष को नरक की प्राप्ति नहीं होती है।६७-७०। जो द्वादशी सुकृत नाम से प्रख्यात होकर पाप-नाश, सुकृत-वृद्धि, अनुदिन वृद्धि-प्रदान एवं समस्त दोषों के अपहरण करती

पापं क्षिणोति सुकृतस्य करोति वृद्धिं वृद्धिं प्रयच्छति नियच्छति सर्वदोषान् ।
यद्द्वादशीह सुकृतातिहिता च लोके कस्मान्न तामुपवसंति विमूढचित्ताः ॥७१
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तर पर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
सुकृतद्वादशीव्रतवर्णनं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ।८२

अथ त्र्यशीतितमोऽध्यायः

धरणीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

यदेतत्परमं गुह्यं सर्ववेदेषु पठ्यते । स देवः पुण्डरीकाक्षः स्वयं नारायणो हरिः ॥१
स यज्ञैर्विविधैरिष्टैर्व्रतैश्च यदुसत्तम । प्राप्यते परमो देवः सनातनः कथञ्चन ॥२
बहुवित्तेन भगवन्नृत्विग्भिर्वेदपारगैः । प्राप्यन्ते सुमहार्थैश्च क्वचित्त्यक्ताः सुदुष्कराः ॥३
वित्तेन च विना दानं दातुं कृष्ण न शक्यते । विद्यमानेऽपि न मतिः कुटुम्बासक्तचेतसः ॥४
तस्य मोक्षः कथं कृष्ण सर्वथा दुर्लभो हरिः । अल्पायासेन लभते येन देवः सनातनः ॥
तन्मे सामान्यतो ब्रूहि सर्ववर्णेषु यद्भवेत् ॥५

श्रीकृष्ण उवाच

कथयामि परं गुह्यं रहस्यं देवनिर्मितम् । धरण्या यत्कृतं पूर्वं मज्जन्त्या वसुधातले ॥६

है, उस लोक-हितैषिणी में मूढ़चेता प्राणी उपवास क्यों नहीं करते हैं! (अर्थात् सदैव करना चाहिए) ।७१।

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
सुकृत द्वादशी व्रत वर्णन नामक बयासीवाँ अध्याय सपाप्त ।८२।

अध्याय ८३

धरणीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—यदुसत्तम ! समस्त वेदों में पुण्डरीकाक्ष एवं स्वयं नारायण विष्णु देव को परम गुह्य बताया गया है, अतः उन देवेश की प्राप्ति अनेक भाँति के अथवा काम्यव्रत, द्वारा होती है, अथवा अन्य उपाय द्वारा, बताने की कृपा कीजिये । कृष्ण ! यदि भगवान् की प्राप्ति बहुवित्त द्वारा होती है जिसमें वेद निष्णात ऋत्वग् विद्वानों की सहायता अपेक्षित है अथवा किसी दुष्कर के त्याग द्वारा तो बिना दान के वित्त की प्राप्ति सम्भव नहीं होती और धन के रहने पर अहोरात्र कुटुम्ब के भरण-पोषण में आसक्त रहने के नाते उधर (दान करने की ओर) बुद्धि ही नहीं जाती । इसलिए कृष्ण ! उस (वृद्धि) का मोक्ष किस प्रकार हो सकता है, क्योंकि भगवान् विष्णु तो सर्वथा दुर्लभ है । अल्पायास से सभी वर्ण के प्राणियों को भगवान् विष्णु सिद्ध हो सके, मुझे बताने की कृपा कीजिये ।१-५

श्रीकृष्ण बोले—पार्थिव ! मैं इसके लिए तुम्हें एक परम गुह्य एवं देव निर्मित रहस्य बता रहा हूँ,

पृथिव्याः पार्थिवपुरा सञ्जातः सङ्गमोऽम्बुभिः । तस्मिन्सलिलसंलग्ने मही प्रायाद्रसातलम् ।।७
सा भूतधात्रीधरणी रसातलगता शुभा । आराधयामास विभुं देवं नारायणं परम् ।।८
उपवासव्रतैर्देवी नियमैश्च पृथग्विधैः । कालेन महता तस्याः प्रसन्नो गरुडध्वजः ।।
उज्जहार स्थितो चेमां स्थापयामास चाच्युतः ।।९
प्राप्ते मार्गशिरे मासे दशम्यां नियतात्मवान् । स्नात्वा देवार्चनं कृत्वा अग्निकार्यं यथाविधि ।।१०
शुचिवासाः प्रसन्नात्मा ह्यत्यल्पान्नं सुसंस्कृतम् । भुक्त्वा पञ्चपदं कृत्वा पुनः शौचं च पादयोः ।।११
कृत्वाष्टाङ्गुलमात्रं तु क्षीरवृक्षसमुद्भवम् । भक्षयेद्दन्तकाष्ठं तु ततश्चाचम्य यत्नतः ।।१२
स्पृष्ट्वा न्यस्यान्यकर्माणि चिरं ध्यात्वा जनार्दनम् । शङ्खचक्रगदापाणिं पीताम्बरसमावृतम् ।।१३
एवमुच्चारयेद्वाचं तस्मिन्काले महाद्युते । एकादश्यां निराहारः स्थित्वाहमपरेऽहनि ।।
सम्भोक्ष्ये पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ।।१४
एवमुक्त्वा ततो देव देवदेवस्य सन्निधौ । जपेन्नारायणायेति रूपे तत्र विधानतः ।।१५
ततः प्रभाते विमले नदीं गत्वा समुद्रगाम् । इतरां वा तडागं वा गृहे वा नियतात्मवान् ।।१६
आनीय मृत्तिकां शुद्धां मन्त्रेणानेन मानवः । धारणं पोषणं त्वत्तो भूतानां देवि सर्वदा ।।
तेन सत्त्वेन मां पाहि पापान्मोचय सुव्रते ।।१७

इति मृत्तिकामन्त्रः

ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवेः । भवन्ति भूतानि सतां मृत्तिकामालभेत्पुनः ।।१८

जिसे वसुधा तल में निमग्न होती हुई धरणी ने सर्वप्रथम सुसम्पन्न किया है । जिस समय यह सारा संसार सलिल मग्न होने लगता है, उस समय यह धारण करने वाली धरणी भी रसातल चली जाती है । उसी समय यह धात्री उपवास, व्रत, नियम एवं पृथक् विधान द्वारा विभु एवं परम् उस नारायण देव की आराधना करती है । पश्चात् अनेक काल के व्यतीत होने पर भगवान् गरूड ध्वज प्रसन्न होकर उद्धार करके इसकी स्थापना करते हैं । मार्गशीर्ष मास की शुक्ल दशमी के दिन संयम पूर्वक स्नान, देवार्चन एवं सविधान करके पवित्र वस्त्र धारण कर प्रसन्नता पूर्ण सुसंस्कृत पक्वान्न का अल्पभोजन करे । अनन्तर पंचपद पूर्वक चरण प्रक्षालन, के उपरांत क्षीर वृक्ष के आठ अंगुल की दातुन आचमन (कुल्ला) और स्नान करके (अंग और करके) व्यास पूर्वक शंख, चक्र, गदा से सुसज्जित एवं पीताम्बर भूषित भगवान् जनार्दन का चिरकाल तक ध्यान करते हुए इस प्रकार उनसे प्रार्थना करे कि पुण्डरीकाक्ष ! मैं इस एकादशी के दिन निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करूँगा । अतः अच्युत ! आप मेरे शरण हो । ऐसा कहकर उन्हीं देवाधिदेव के समीप सविधान नारायण नाम का जप करे । पुनः विमल प्रातः काल होने पर किसी समुद्र गामिनी नदी, तडाग, अथवा गृह कूप पर स्थित होकर संयम पूर्वक उसे इस मंत्र द्वारा शुद्ध मृत्तिका लाना चाहिए—देवि ! सदैव धारण पोषण तुम्हारे ही द्वारा होता आया है, अतः उसी बल द्वारा मेरी रक्षा कीजिये और सुव्रते ! पाप से मुक्त भी । अनन्तर इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक आदित्य का दर्शन करे—इस ब्रह्माण्ड के उदर मध्यवर्ती समस्त तीर्थ भगवान् सूर्य के किरणों से स्पृष्ट है, जिनके द्वारा निखिल प्राणियों की सृष्टि होती है अतः इस का आलम्भन कर रहा हूँ ।६-१८। इस प्रकार उस मृत्तिका को सूर्य के सम्मुख प्रदर्शन

इत्यादित्यादर्शनमन्त्रः

एवं मृदं रवेरग्रे कृतवाथात्मानमालभेत् । त्रिःकृत्वाशेषमृदया कुण्डमालिख्य वै जले ॥१९
ततः स्नात्वा नरः सम्यक्चक्रवर्त्युपचारकः । आचम्यावश्यकं कृत्वा पुनर्देव गृहं व्रजेत् ॥२०
तमाराध्य महायोगं देवं नारायणं प्रभुम् । केशवाय नमः पादौ कटिं दामोदराय च ॥२१
ऊरुयुग्मं नृसिंहाय उरः श्रीवत्सधारिणे । कण्ठं कौस्तुभनाथाय वक्षः श्रीपतये तथा ॥२२
त्रैलोक्यविजयायेति बाहू सर्वात्मने शिरः । रथाङ्गधारिणे चक्रं शङ्करायेति चाम्बुजम् ॥२३
गम्भीरायेति च गदामभयं शान्तमूर्तये । एवमभ्यर्च्य देवेशं देवं नारायणं प्रभुम् ॥२४
पुनस्तस्याग्रतः कुम्भांश्चतुरः स्थापयेद्बुधः । जलपूर्णान्समाल्यांश्च सितचन्दनचर्चितान् ॥२५
चतुर्भिस्तालपात्रैश्च स्थगितान्रत्नसंयुतान् । चत्वारस्ते समुद्रास्तु कलशाः परिकीर्तिताः ॥२६
तेषां मध्ये तु सम्पीठं स्थापयेद्वस्त्रसम्वृतम् । तस्मिन्सौवर्णं रौप्यं वा ताम्रं वा दारवं तथा ॥
पात्रं तोयभृतं कृत्वा तस्य मध्ये ततो न्यसेत् ॥२७
सौवर्णं मात्स्यरूपेण कृत्वा देवं जनार्दनम् । वेदवेदाङ्गसंयुक्तं श्रुतिस्मृतिविभूषितम् ॥२८
भक्ष्यैर्बहुविधै राजन् फलैः पुष्पैश्च शोभितम् । गन्धैर्धूपैर्मन्त्रवरैरर्चयित्वा यथाविधि ॥२९
रसातलगता वेदा यथा देव त्वयाहृताः। मत्स्यरूपेण तद्वन्मां भवादुद्धर केशव ॥३०
एवमुच्चार्य तस्याग्रे जागरं तत्र कारयेत् । यथाविभवसारेण प्रभातेऽपि पुनः पुनः ॥
चतुर्णां ब्राह्मणानां तु चतुरो दापयेद्धटान् ॥३१

कर अपने शरीर के सर्वाङ्गों में उसका लेपन और सम्मुख प्रदर्शन कर अपने शरीर के सर्वाङ्गों में उसका लेपन और उसी जल में शेष मृत्तिका द्वारा तीन बार कुण्ड के समान गोलाकार बनाकर चक्रवर्ती के उपचार पूर्वक स्नान करे। तदुपरांत आचमन आवश्यक (नित्य नैमित्तिक कार्य एवं देव पितृ तर्पण) करके देवमन्दिर में महायोगी एवं प्रभु नारायण देव की आरधना करे—केशवाय नमः से चरण, दामोदराय नमः से कटि, नृसिंहाय नमः से दोनों ऊरू, श्रीवत्सधारिणे नमः से उरु, कौस्तुभनाथाय नमः से कण्ठ, श्रीपतये नमः से वक्ष, त्रैलोक्याय विजयाय नमः से बाहू, सर्वात्मने नमः से शिर, रथाङ्गधारिणेनमः से चक्र, शंकराय नमः से कमल, गम्भीराय नमः से गदा और शांतमूर्तये नमः से सर्वाङ्ग की अर्चना करनी चाहिए। इस प्रकार देवाधि देव उन नारायण प्रभु की अर्चना करने के अनन्तर उनके समक्ष जलपूर्ण चार कलशों की स्थापना करे, जो माल्यभूषित एवं सितचन्दन चर्चित हो। उनकी सन्निधि में रत्न पूर्ण चार तिलपात्र भी रखना चाहिए। उन चार कलशों को चारों समुद्रों का प्रतिरूप बताया गया है। उन कलशों के मध्य वस्त्राच्छन्न एक सौन्दर्य पूर्ण पीठ स्थापन कर उसी के मध्य सुवर्ण, रजत, ताम्र अथवा काष्ठ के पात्र में पूर्ण जल रखकर स्थापित करे।१९-२७। पुनः उस जल के मध्य में भगवान् जनार्दन के मत्स्य रूप की सुवर्ण प्रतिमा रखकर, जो वेद-वेदाङ्ग युक्त एवं श्रुति-स्मृति विभूषित रहती है, अनेक भाँति के भक्ष्य, फल, पुष्प, गंध, धूप द्वारा सविधान एवं श्रेष्ठ मंत्रवर्णों के उच्चारण पूर्वक उनकी अर्चना सुसम्पन्न करके क्षमा प्रार्थना करे कि—'केशव देव ! जिस प्रकार आप ने रसातल प्राप्त वेदों का उद्धार किया है, उसी भाँति इस मत्स्य रूप द्वारा मेरा भी उद्धार करे। इस प्रकार कहकर उनके समक्ष जागरण करे। पुनः प्रातः काल अपनी धनशक्ति के अनुसार निर्मित एवं स्थापित कलशों को ब्राह्मणों के लिए अर्पित करे।२८-३१। विधान

पूर्वं तु बह्वृचे दद्याच्छन्दोगे दक्षिणं तथा । यजुः शाखान्विते दद्यात्पश्चिमं घटमुत्तमम् ।।३२
उत्तरं कामतो दद्याद्देश एव विधिक्रमात् । ऋग्वेदः प्रीयतां पूर्वं सामवेदश्च दक्षिणः ।।३३
यजुषः पश्चिमो नाम्ना आथर्वायोत्तरं तथा । पूर्णपात्रैस्तु सतिलैः स्थगितान्कारयेद्घटान् ।।३४
ततस्तं जलपात्रस्थं ब्राह्मणाय कुटुम्बिने । दद्यादेवं महाभाग ततः पश्चात्तु भोजयेत् ।।३५
ब्राह्मणान्पायसान्नेन ततः पश्चात्स्वयं गृही । भुञ्जीत भृत्यसहितो वाग्यतः संयतेन्द्रियः ।।३६
अनेन विधिना यस्तु द्वादशीं क्षपयेन्नरः । तस्य पुण्यफलं राजञ्छृणु सत्यवतां वर ।।३७
यदि वक्त्रसहस्राणि भवन्ति हि युगेयुगे । आयुश्च ब्रह्मणस्तुल्यं भवेद्यदि महामते ।।
तदस्य फलसंख्यानं कर्तुं शक्यं न धारयेत् ।।३७
यः कृष्णद्वादशीमेतामनेन विधिना नृप । करोति ब्रह्मलोकं स समाप्नोति न संशयः ।।३९
ब्रह्महत्यादिपापानि जन्मान्तरकृतान्यपि । अकामतः कामतो वा प्रणश्यन्ति न संशयः ।।४०
तथैव पौषमासेन अमृतं मथितं सुरैः । तत्र कूर्मोभवद्देवः स्वयमेव जनार्दनः ।।४१
तस्येयं तिथिरुद्दिष्टा हरेर्वै कूर्मरूपिणः । पौषमासं समासाद्य द्वादशीं शुक्लसंयुताम् ।।४२
तस्यां प्राग्वत्संकल्पः प्रातः स्नानादिकाः क्रियाः । निर्वर्त्याराधयेद्रात्र्यामेकादश्यां जनार्दनम् ।।
प्रीयमन्त्रैर्नृपश्रेष्ठ देवदेवं जगद्गुरुम् ।।४३

कूर्माय पादौ प्रथमं सुपूज्य नारायणायेति कटिं हरेस्तु ।
सङ्कर्षणायेत्युदरं विशोधेत्पुरोभवायेति च कण्ठपीठम् ।।४४

क्रम से पूर्व दिशा का कलश व ऋच (ऋग्वेद) के विद्वान् दक्षिण कलश छन्दोग (सामवेदी) पश्चिम कलश यजु: शाखाध्यायी और उत्तर कलश यथेच्छ व्यक्ति को देना चाहिए । पूर्व दिशा में स्थित ऋग्वेदी, दक्षिण सामवेदी, पश्चिम यजुर्वेदी, और उत्तर स्थित अथर्ववेदी प्रसन्न हों । महाभाग ! सतिल एवं पूर्णपात्र समेत वह जल घट किसी कुटुम्बी ब्राह्मण को सादर समर्पित करना चाहिए । पश्चात् ब्राह्मणों को पायस भोजनों द्वारा संतृप्त कर अनन्तर परिवार एवं परिजन समेत मौन तथा संयम पूर्वक भोजन करे । राजन् सत्यावतांवर ! इस विधान द्वारा इस द्वादशी व्रत को सुसम्पन्न करने वाले मनुष्य को जिस फल की प्राप्ति होती है मैं बता रहा हूँ, सुनो ! महामते ! यदि प्रत्येक युग में ब्रह्मा के समान आयु और सहस्रमुख धारण कर उसकी फल संख्या निर्धारित करना चाहें तो भी असमर्थ रहेंगे । नृप ! उस विधान द्वारा कृष्ण द्वादशी व्रत को सुसम्पन्न करने वाला पुरुष ब्रह्म लोक की प्राप्ति करता है इसमें संदेह नहीं ।३२-३९। ज्ञान अज्ञान वश कीगयी जन्मान्तरीय ब्रह्महत्या एवं अन्य पापराशि भी सर्वथा, निर्मूल हो जाते हैं । उसी भाँति पौष मास में देवों के अमृत मन्थन समय में भगवान् जनार्दन देव ने स्वयं कच्छप रूप धारण किया था । इसलए कच्छप रूप धारी भगवान् विष्णु के लिए यह तिथि सर्वथा उद्दिष्ट है । पौष मास की शुक्ल द्वादशी के दिन पूर्व की भाँति संकल्प पूर्वक प्रातः स्नान आदि क्रियाओं को सुसम्पन्न करना चाहिए । नृपश्रेष्ठ ! एकादशी के दिन रात्रि के समय देवाधिदेव एवं जगद्गुरु भगवान् जनार्दन की सर्वाङ्ग अर्चना उनके प्रेयान मंत्रों द्वारा करनी चाहिए । कूर्माय नमः से चरण, नारायणाय नमः से कटि, संकर्षणाय नमः से उदर, और पुरोभवाय नमः से कंठ, पीठ, सुवाहवे नमः से भुजाएँ, एवं सर्वात्मने नमः

सुबाहवेत्येव भुजौ शिरश्च सर्वात्मने पाण्डव पूजनीयौ ।
स्वनाममन्त्रेण च शङ्खचक्रे गदां नमस्कारपरेण चैव ॥४५
एभिर्मन्त्रैः पुष्पसुगन्धधूपैर्नैवेद्यदीपैर्विविधैः फलैश्च ।
अभ्यर्च्य देवं कलशं तदग्रे संस्थापयेन्माल्यविलेपनाढ्यम् ॥४६
तं रत्नगर्भं सुसुगन्धतोयं कृत्वा ततो हेममयं स्वशक्त्या ।
समन्दरं कूर्मतनुं सुरेशं संस्थापयेच्चात्र शुभे च पात्रे ॥४७
घृतैश्च पूर्णे कलशोऽग्रसंस्थं सम्पूजयेज्जागरनृत्यगीतैः ।
सम्पूज्य विप्रान् घृतपायसेन निवेद्य पूर्वं द्विजपुङ्गवाय ॥
निर्वर्त्य सर्वं विधिवत्ततश्च भुञ्जीत सन्तुष्टमनाः समृत्यः ॥४८
एवं कृते कल्पयुगान्तराणि स्वर्गे वसेत्सर्वसमृद्धकामः ॥४९
संसारचक्रं स विहाय शीघ्रमाप्नोति लोके तु हरेः पुराणे ।
प्रयान्ति पापानि विनाशमाशु श्रिया युतो जायति सत्यधर्मः ॥५०
अनेकजन्मार्जितसंयुतानि नश्यन्ति पापानि नरस्य भक्त्या ।
प्रागुक्तरूपं च फलं लभेत नारायणं वस्तुमुपैति सद्यः ॥५१

एवं माघे सिते पक्षे द्वादशीं धरणीधर । वराहस्य भृणुष्वान्यां राजन् परमधार्मिक ॥५२
प्रागुक्तेन विधानेन स्नानं सङ्कल्पमेव च । कृत्वा देवं समभ्यर्च्य एकादश्यां समाहितः ॥५३
धूपनैवेद्यगन्धैस्तु अर्चयित्वा पुनर्नरः । पश्चात्तस्याग्रतः कुम्भं जलपूर्णं तु विन्यसेत् ॥५४

से शिर एवं सर्वाङ्ग की अर्चना करनी चाहिए । पाण्डव ! स्वनाम मंत्रोच्चारण पूर्वक शंख, चक्र, और गदा की अर्चना एवं नमस्कारान्त नाम मंत्रों द्वारा पुष्प, धूप, सुगन्ध, नैवेद्य, दीप और विविध प्रकार के फलों को अर्पित करते हुए उनकी अर्चना के उपरांत उनके सम्मुख माला भूषित एवं चन्दन चर्चित उस कलश का स्थापन करे, जो अन्तः पीत रत्नों, सुगंध एवं मधुर जलों से परिपूर्ण हो । उसके ऊपर सुवर्ण निर्मित मन्दर समेत भगवान् कच्छप की हेममयी प्रतिमा किसी शुभ पात्र में रखकर स्थापित घृत पूर्णपात्र समेत अर्चना करने के अनन्तर नृप गान द्वारा रात्रि जागरण करे । पूजनोपरांत घृत पूर्ण पायस भोजन द्वारा ब्राह्मण को सुतृप्त कर और समस्त विधि सुसम्पन्न हो जाने के अनन्तर प्रसन्नता पूर्ण रहकर गुह्य आदि के साथ स्वयं भोजन करे । इस भाँति इसे सविधान सुसम्पन्न करने पर देवहावसान के समय स्वर्ग पहुँचकर एक कल्पयुग समस्त कामनाओं के परिपूर्ण सुखोपभोग करते हुए इसी प्रकार समस्त संसार चक्र के परमोत्तम लोकों के भ्रमण करके उसे भगवान् विष्णु के उस पुराण लोक की प्राप्ति होती है । समस्त पापों के विनाश होने पर वह सदैव श्री सम्पन्न एवं सत्य धर्म की मूर्ति रूप में स्थित रहता है । भक्ति पूर्वक इस व्रत को सुसम्पन्न करने वाले मनुष्यों को अनेक जन्मों के पाप नाश पूर्वक नारायण लोक की प्राप्ति होती है ।४०-५१। इसी प्रकार धरणीधर ! माघ शुक्ल द्वादशी के दिन भगवान् के वराहावतार की प्रतिमा का पूजन करना चाहिए । राजन् ! उस परम धार्मिक को पूर्वोक्त विधान द्वारा स्नान संकल्प पूर्वक एकादशी के दिन तन्मयता से भगवान् की अर्चा धूप, नेवेद्य एवं गन्ध द्वारा सुसम्पन्न कर उनके अग्रभाग में जलपूर्ण

वाराहायेति पादौ तु माधवायेति वै कटिम् । क्षेत्रज्ञायेति जठरं विश्वरूपेत्युरो हरेः ।।५५
पूर्वत्रायेति कण्ठं तु प्रजानां पतये शिरः । प्रद्युम्नायेति च भुजौ दिव्यास्त्राय सुदर्शनम् ।।५६
अमृतोद्भवाय शंङ्खं तु गदिने च गदां तथा । एवमभ्यर्च्य मेधावी तस्मिन्कुम्भेऽपि विन्यसेत् ।।५७
सौवर्णं रूप्यं ताम्रं वा पात्रं विभवशक्तितः । सर्वबीजैस्तु सम्पूर्णं स्थापयित्वा विचक्षणः ।।५८
तत्र शक्त्या च सौवर्णं वाराहं कारयेत्ततः । दंष्ट्राग्रेणोद्धरन् पृथ्वीं सपर्वतवनद्रुमाम् ।।५९
माधवं मधुहन्तारं वाराहं रूपनास्थितम् । सर्वबीजभृतैः पात्रै रत्नगर्भघटोपरि ।।६०
स्थापयेत्परमं देवं जातरूपमयं हरिम् । सितवस्त्रयुगच्छन्नं ताम्राभावे तु वैणवे ।।६१
स्थाप्यार्चयेद्गन्धपुष्पैर्नैवेद्यैर्विविधैः फलैः । पुष्पमण्डपिकां कृत्वा जागरं तत्र कारयेत् ।।६२
प्रादुर्भावं हरेर्दिव्यं वाचयेद्दापयेद्बुधः । एवं सनियमस्यास्य प्रभाते उदिते रवौ ।।६३
वेदवेदाङ्गविदुषे साधुवृत्ताय धीमते । विष्णुभक्ताय राजेन्द्र विशेषेण प्रदापयेत् ।।६४
एवं सकुम्भं दत्त्वा च हरिं वाराहरूपिणम् । ब्राह्मणाय भवेद्यत्फलं तन्मे निशामय ।।६५
इह जन्मनि सौभाग्यं श्रीकान्ती पुष्टिमेव च । प्राप्नोति पुरुषो राजन् यद्यदिच्छति किञ्चन ।।६६
एकाऽपि विधिनोपास्ता ददात्यमृतमुत्तमम् । किं पुनर्वर्षमेकं च करोति कुरुनन्दन ।।६७
एषा च फाल्गुने मासि शुक्लपक्षे तु द्वादशी । उपोष्या पूर्वविधिना हरिमाराधयेत्सुधीः ।।६८
नरसिंहाय पादौ तु गोविन्दायोदरं तथा । कटिं विश्वसृजे पूज्ये अनिरुद्धेत्युरो हरेः ।।६९

कलश की स्थापन करे। 'वराहाय नमः से चरण, माधवाय नमः से कटि, क्षेत्रज्ञाय नमःसे जठर, विश्वरूपाय नमःसे उदर, पूर्वत्राय नमःसे कण्ठ, प्रजानां पतये नमः से शिर, प्रद्युम्नाय नमः से बाहु, दिव्यास्त्राय नमःसे सुदर्शन, अमृतोद्भवाय नमःसे शंख, और गदिने नमः से गदा की पूजा करके उस मेधावी को उस कलश पर बाराह भगवान् की प्रतिमा स्थापित करना चाहिए, जो सुवर्ण, चाँदी, ताँबा अथवा अपने विभवानुसार किसी अन्य पात्र पर स्थित हो और सुवर्ण द्वारा निर्मित की गयी हो। समस्त बीजों समेत स्थापित करते हुए उस विचक्षण को मधुहन्ता माधव के उस वरहारूप की प्रतिमा का इस भाँति निर्माण करना चाहिए। जिसमें वे अपने दंष्ट्रा (दाँत) के अग्रभाग पर समस्त पर्वत वन द्रुम समेत पृथिवी को रखकर उस का उद्धार कर रहे हों। रत्न गर्भित उस सौन्दर्य पूर्ण कलश पर भगवान् की उस सुवर्ण प्रतिमा को श्वेत शाखाओं से आच्छन्न कर ताँबे आदि के अभाव में वाँस पात्र में ही स्थापित एवं गन्ध पुष्प, नैवेद्य और विविध भाँति के फलों से उनकी अर्चना के उपरांत पुष्प मंडप में जागरण करता रहे।५२-६२। और उसी स्थान भगवान् का दिव्य जन्मोत्सव करे। इस भाँति नियम पालन के उपरांत प्रातःकाल सूर्योदय होने पर किसी वेद वेदाङ्ग के निष्णात विद्वान् ब्राह्मण को, जो साधु-शील, अत्यन्त धीमान् एवं विशेषकर विष्णु भक्त हो, भगवान् की वाराहरूपी प्रतिमा समेत वह कलश सादर समर्पित करने पर जिस फल की प्राप्ति होती है, मैं कह रहा हूँ, सुनो! राजन्! इसी जन्म में सौभाग्य, श्री, कांति, पुष्टि समेत मनोनीत कामनाएँ सफल होती हैं। कुरुनन्दन! सविधान एक बार (वह व्रत) सुसम्पन्न करने पर परमोत्तम अमृत प्रदान करता है, और जो उसी भाँति सम्पूर्ण वर्ष तक उसे सुसम्पन्न करता रहता है, उसे पुनः क्या कहा जा सकता है। फाल्गुन मास की शुक्ल द्वादशी के दिन विद्वानों को उपवास रहते हुए भगवान् को सविधान अर्चन सुसम्पन्न करना चाहिए।६३-६८। 'नरसिंहाय नमः से चरण, गोविन्दाय नमः से

कण्ठं तु शितिकण्ठाय वैनतेयाय वै शिरः । असुरध्वंसनायेति वक्त्रं तोयात्मने नमः ॥७०
शङ्खमित्येव सम्पूज्य गन्धपुष्पैः फलैस्तथा । तदग्रे तु घटं स्थाप्य सितवस्त्रायुगान्वितम् ॥७१
तस्योपरि नृसिंहं तु सौवर्णं ताम्रभाजने । हैमे च शक्तितः कृत्वा दारुवंशमयेऽपि वा ॥७२
रत्नगर्भमये स्थाप्य भक्त्या सम्पूज्य मानवः । द्वादश्यां वेदविदुषे ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥७३
एषा वन्द्या पापहरा द्वादशी भवते मया । कथिता च प्रयत्नेन श्रुता च भवतेप्सिता ॥७४
एवमेनां नरव्याघ्र चैत्रे सङ्कल्प्य द्वादशीम् । उपोष्याराधयेत्पश्चाद्देवदेवं जनार्दनम् ॥७५
कुण्डिकां स्थापयेत्पार्श्वे छत्रिकां पादुके तथा । अमलं वासनं स्थाप्य बृसीं कांसपरिच्छदाम् ॥७६
फलैः पुष्पैः सुगन्धैश्च प्रभाते सद्द्विजातये । दापयेत्प्रीयतां विष्णुर्ह्रस्वरूपीत्युदीरयेत् ॥७७
मासनाम्नात्र संयुक्तं प्रादुर्भावं विधानतः । प्रीयतामिति सर्वत्र विधिरेवं प्रकीर्तितः ॥७८
अपुत्रो लभते पुत्रमधनो धनमाप्नुयात् । भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं मृतं विष्णुपुरं व्रजेत् ॥७९
क्रीडित्वा सुचिरं कालमिह मर्त्यमुपागतः । चक्रवर्ती भवेद्धीमान् ययातिरिति नाहुषः ॥८०
वैशाखेऽप्येवमेवं तु सङ्कल्प्य विधिवन्नरः । तद्वत्स्नानं मृदा तद्वत्ततो देवालयं व्रजेत् ॥८१
तत्राराध्य हरिं भक्त्या एभिर्मन्त्रैर्विचक्षणः । जामदग्न्याय पादौ तु उदरं सर्वधारिणे ॥८२
मधुसूदनायेति कटिमुरः श्रीवत्सधारिणे । क्षत्रान्तकाय च भुजौ मणिकण्ठाय कण्ठकम् ॥८३

उदर, विश्वसृजे नमः से कटि, अनिरुद्धाय नमः से उर, शितिकण्ठाय नमः से कण्ठ, वैनतेयाय नमः से शिर, असुरध्वंसनाय नमः से मुख, और तोयात्मने नमः से शंख, की अर्चना गंध पुष्प, एवं फलों द्वारा सुसम्पन्न कर उनके समक्ष चार वस्त्रों से आच्छन्न घट के स्थापन कर भगवान् नृसिंह की सुवर्ण प्रतिमा किसी सुवर्ण, ताम्र, अथवा शक्त्यानुसार काष्ठ या बांस के पात्र में रखकर उसी रत्न गर्भस्थ घट पर स्थापित एवं पूजित करना चाहिए। पुनः द्वादशी के दिन किसी वैदिक विद्वान् ब्राह्मण को सादर समर्पित करे। इस प्रकार मैंने इस वंदनीया पापहरा द्वादशी का वर्णन तुम्हें सुना दिया, जिसे आप ने सप्रयत्न श्रवण किया है। नरश्रेष्ठ! इसी भाँति चैत्र मास की शुक्ल द्वादशी के दिन उपवास रहकर देवाधिदेव भगवान् जनार्दन की आराधना करनी चाहिए। उनके पार्श्व भाग में कुण्डिका स्थापन पूर्वक छत्र, पादुका (खड़ाऊँ), वामन की प्रतिमा मृगचर्म कुशासन समेत स्थापित कर फल, पुष्प, सुगन्ध आदि द्वारा अर्चना करने के अनन्तर प्रातः काल उन सभी वस्तुओं को 'लघुकाय (वामन) रूपी विष्णु प्रसन्न हों, कहते हुए किसी आचार नैष्ठिक ब्राह्मण के लिए सादर समर्पित करे। इसी प्रकार सभी मासों में ये नाम के अनुसार सविधान उनके प्रादुर्भाव एवं 'वे प्रसन्न हों' यही विधान सर्वत्र प्रशस्त बताया गया है। इसे सुसम्पन्न करने पर अपुत्री को पुत्र, निर्धन को धन, राज्य च्युत को राज्यकी प्राप्ति पूर्वक देहावसान होने पर विष्णु लोक की प्राप्ति होती है।६९-७९। वहाँ चिरकाल तक क्रीडा करने के उपरांत वह इस धरातल पर जन्म ग्रहण कर ययाति अथवा नहुष कुल में चक्रवर्ती राजा होता है। वैशाख मास में भी सविधान एवं संकल्प पूर्वक मृत्तिका स्नान करके देव मन्दिर में इन मंत्रों के उच्चारण द्वारा भक्ति श्रद्धा संयुक्त भगवान् विष्णु की आराधना करे—जामदग्नये नमःसे चरण, सर्वधारिणे नमः से उदर, मधुसूदनाय नमः से कटि, श्रीवत्सधारिणे नमः से उर क्षत्रान्तकाय नमः से बाहु, मणिकण्ठाय नमः से कण्ठ, सुरूपाय नमः से मुख, पुनः जामदग्नये नमः से

पूजयेन्नियतो भूत्वा तुरूपायेति वै मुखम् । स्वनाम्ना शङ्खचक्रे च शिरो ब्रह्माण्डधारिणे ।।८४
एवमभ्यर्च्य मेधावी प्राग्वंशस्याग्रतो घटम् । विन्यस्येत्पुष्पवस्त्राढ्यं सितचन्दनचर्चितम् ।।८५
वैणवेऽभिनवे पात्रे स्थापयेन्मधुसूदनम् । जामदग्न्येन रूपेण कृत्वा सौवर्णमग्रतः ।।८६
दक्षिणे परशुं हस्ते तस्य देवस्य कारयेत् । सर्वगन्धैस्तु सम्पूज्य पुष्पैर्नानाविधैः शुभैः ।।८७
ततस्तस्याग्रतः कुर्याज्जागरं भक्तिमान्नरः । प्रभाते विमले सूर्ये ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।।८८
एवं नियमयुक्तस्य यत्फलं तन्निबोध मे । काश्यपे ब्रह्मणो लोके चोषित्वाप्सरसाङ्गणैः ।।
स्थित्वा भौते च सृष्टौ च चक्रवर्ती भवेत् ध्रुवम् ।।८९
ज्येष्ठे मासेऽप्येवमेव संकल्प्य विधिवन्नरः । अर्चयेत्परमं देवं पुष्पैर्नानाविधैः शुभैः ।।९०
नमो दामोदरायेति पादौ पूर्वं समर्चयेत् त्रिविक्रमायेति कटिं धृतविश्वाय चोदरम् ।।९१
उरः सम्वर्तकायेति कण्ठं सम्वत्सराय च । सर्वासुधारिणे बाहुं स्वनाम्नाब्जरथाङ्गके ।।९२
सहस्रशिरसेऽभ्यर्च्य शिरस्तस्य महात्मनः । एवमभ्यर्च्य विधिवत्प्रागुक्तविधिवन्न्यसेत् ।।९३
प्राग्वद्वस्त्रसुगन्धैश्च सौवर्णौ रामलक्ष्मणौ । अर्चयित्वा विधानेन प्रभाते ब्राह्मणाय तौ ।।
दातव्यौ मनसा काममीहता पुरुषेण तु ।।९४
अपुत्रेण पुरा पृष्टो राज्ञा दशरथेन तु । पुत्रकामेन यजता वशिष्ठः परमार्चितः ।।९५

शंख चक्र और ब्रह्माण्डधारिणे नमः से शिर की समर्चना करके उनके सम्मुख पुष्प वस्त्र से सुशोभित एवं चन्दन चर्चित कलश की स्थापना कर उसके ऊपर नूतन बाँस के पात्र में मधुसूदन भगवान् के परशुरामावतार की सुवर्ण प्रतिमा रखकर स्थापित करे, जिसके दक्षिण हांथ में परशु (कुठार) सुसज्जित हो। सुगन्ध और अनेक भाँति के पुष्प द्वारा उनकी अर्चना करने के उपरांत इस भक्तिमान् पुरुष को उनके सम्मुख रात्रि जागरण करना चाहिए। पुनः निर्मल मन से प्रातः काल में सूर्योदय होने पर उसे सादर ब्राह्मण को अर्पित करे। इस प्रकार नियम पूर्वक उसे सुसम्पन्न करने पर जिस फल की प्राप्ति होती है, बता रहा हूँ सुनो ! ब्रह्मलोक में अप्सरावृन्दों के साथ चिरकाल तक सुखानुभव करने के उपरांत इस भूमण्डल पर जन्मग्रहण कर चक्रवर्ती राजा होता है।८०-८९। इसी प्रकार ज्येष्ठ मास में भी संकल्प पूर्वक सविधान अनेक भाँति के मांगलिक पुष्पो द्वारा भगवान् की अर्चना करनी चाहिए। सर्वप्रथम दामोदराय नमः से भगवान् की अर्चना करनी चाहिए—सर्वप्रथम दामोदराय नमः से चरण, त्रिविक्रमाय नमः से कटि, धृतविश्वाय नमः से उदर, संवर्तकाय नमः से उर, संवत्सराय नमः से कण्ठ, सर्वासुधारिणे नमः से बाहु, स्वनाम द्वार कमल चक्र, और सहस्र शिरसे नमः उन महात्मा के शिर की अर्चा करे। इस प्रकार सविधि अर्चना के उपरांत पूर्वोक्त की भाँति वस्त्र एवं सुगन्ध भूषित घट के ऊपर भगवान् राम लक्ष्मण की सुवर्ण प्रतिमा के स्थापन पूजन कर। पुनः प्रातः समय वे सभी वस्तुएँ किसी ब्राह्मण को अर्पित करने पर उस प्रशस्त व्रती पुरुष की पुत्रकामना समेत पुण्य कामनाएँ भी सफल होती है।९०-९४। क्योंकि पूर्वकाल में पुत्रहीन राजा दशरथ के पुत्रकामनया पूजनोपरांत भी वशिष्ठ जी से पूछने पर उन्होंने इसी विधान का वर्णन किया था। रहस्य समेत अवगत होने पर इस विधान द्वारा उन्होंने उसे सुसम्पन्न किया, जिसके प्रभाव से भगवान् राम ने ही उनके पुत्र रूप में अवतरित हुए और अत्यन्त सन्तुष्ट

इदमेव विधानं तु कथयामास वै द्विजः । सरहस्यं विदित्वा स राजा कृतवानिदम् ॥९६
तस्य पुत्रः स्वयं जज्ञे रामो नाम महाबलः । चतुर्धा सोऽव्ययो विष्णुः परितोषादजायत ॥
एतदेवं महाख्यातं परलोके सुखप्रदम् ॥९७

श्रीकृष्ण उवाच

आषाढेऽप्येवमेवं तु सङ्कल्प्य विधिना नरः । अर्चयेत्परमं देवं गन्धपुष्पैः समाहितः ॥९८
वासुदेवाय पादौ तु कटिं सङ्कर्षणाय च । प्रद्युम्नायेति जठरमनिरुद्धाय वै नमः ॥९९
चक्रपाणिं भुजौ कण्ठं मुखं भूपतये तथा । स्वनाम्ना शङ्खचक्रे तु पुरुषायेति वै शिरः ॥१००
एवमभ्यर्च्य मेधावी प्राग्वत्तस्याग्रतो घटम् । विन्यस्य वस्त्रसंयुक्तं तस्योपरि ततो न्यसेत् ॥
काञ्चनं वासुदेवेति चक्रबाहुं सनातनम् ॥१०१
तमभ्यर्च्य विधानेन गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् । प्राग्वत्तद्ब्राह्मणे दद्याद्वेदवादिनि सुव्रते ॥१०२
एषा ह्युपोषिता राजन्विद्यां विप्रे प्रयच्छति । राज्यं च भ्रष्टराज्यानामपुत्राणां सुतान्बहून् ॥१०३
मृतो विष्णुपुरं रम्ये क्रीडते कालमक्षयम् ॥१०४
मन्वन्तराणि षट्त्रिंशत्ततः कालात्यये पुनः । इह लोके भवेद्राजा सप्तजन्मनि मानवः ॥
दाता यशः क्षमायुक्तस्ततो निर्वाणमाप्नुयात् ॥१०५

श्रीकृष्ण उवाच

एवमेवं श्रावणे तु मासि सङ्कल्प्य द्वादशीम् । अर्चयेत्परमं देवं गन्धपुष्पनिवेदनैः ॥१०६
बुधाय पादौ सम्पूज्य श्रीधरायेति वै कटिम् । पद्मोद्भवाय जठरमुरः सम्वत्सराय च ॥१०७

होने के नाते वे चार भाँति का रूप धारण कर वहाँ रह रहे थे । इस भाँति परलोक सुखावह इस विषय को मैंने तुम्हें बता दिया ।९५-९७

श्रीकृष्ण बोले—इसी भाँति आषाढ मास में संकल्प पूर्वक सविधान गंध पुष्प द्वारा भगवान् की अर्चना करे—वासुदेवाय नमः से चरण, संकर्षणाय नमः से कटि, प्रद्युम्नाय नमः से जठर, तथा अनिरुद्धाय नमः से बाहु, कण्ठ, भूपतये नमः से मुख, स्वनाम द्वारा शंख चक्र और पुरुषाय नमः से शिर की अर्चना करे । इस भाँति पूजनोपरांत उस मेधावी पुरुष को चाहिए कि पूर्वोक्त की भाँति उनके समक्ष वस्त्र चन्दन भूषित कलश स्थापन कर उसके ऊपर सनातन एवं चन्द्रपाणि भगवान् वासुदेव की सुवर्ण मूर्ति स्थापित कर सविधान गंध पुष्प द्वारा क्रमशः उसकी अर्चना केअनन्तर उस सब को किसी वैदिक विद्वान् एवं नैष्ठिक ब्राह्मण को सादर समर्पित करे । राजन् ! इस प्रकार उपवास पूर्वक इसे सनियम सुसम्पन्न करने पर यह उस व्रती ब्राह्मण को विद्या प्रदान करता है । तथा राज्य च्युत को राज्य, अपुत्री को अनेक पुत्र की प्राप्ति पूर्वक देहावसान होने पर विष्णु लोक में अक्षयं काल तक क्रीड़ा करता है । पुनः छत्तीस मन्वन्तरों के उस अनेक काल के व्यतीत होने पर इस भूमि में जन्म ग्रहण कर दाता, यश एवं क्षमा आदि अनेक गुण सम्पन्न राजा होता है और निधन होने पर निर्वाण की प्राप्ति करता है ।९८-१०५

श्रीकृष्ण बोले—इसी प्रकार श्रावण मास की द्वादशी के दिन संकल्प पूर्वक सविधान गंध, पुष्प एवं क्षमायाचना आदि द्वारा परम विष्णु देव को सुपूजित करे—'बुधाय नमः' से चरण, श्रीधराय नमः से कटि, पद्मोद्भवाय नमः से उदर, संवत्सराय नमः से उर, सुग्रीवाय नमः से कण्ठ एवं चित्रबाहवे नमः से बाहू की

सुग्रीदायेति वै कण्ठं भुजौ वैचित्रबाह्वे । प्राग्वदस्त्राणि सम्पूज्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥१०८
अनेन विधिना सर्वां द्वादशीं समुपोषितः । शुद्धौदनेन तस्याभूत्स्वयं पुत्रो जनार्दनः ॥१०९
महतीं च श्रियं प्राप्य पुत्रपौत्रसमन्वितः । भुक्त्वा राज्यश्रियं सोऽथ गतः परमिकां गतिम् ॥११०
एष ते विधिरुद्दिष्टः श्रावणे मासि सत्तमः । एकैकोपोषिताप्यस्तु राज्यमेकैव यच्छति ॥
किं पुनर्द्वादशैवात्र दद्युरैन्द्रं महत्पदम् ॥१११
तद्वद्भाद्रपदे मासि शुक्लपक्षे तु द्वादशीम् । सङ्कल्प्य विधिना देवमर्चयेत्परमेश्वरम् ॥११२
नमोऽस्तु कल्किने पादौ हृषीकेशाय वै कटिम् । म्लेच्छप्रध्वंसनायेति जगन्मूर्ते तथोदरम् ॥११३
शितिकण्ठाय कण्ठं तु खड्गपाणीति वै भुजौ । शङ्खचक्रे स्वनाम्नात्र विश्वमूर्ते तथासितः ॥११४
एवमभ्यर्च्य मेधावी प्राग्वत्तस्याग्रतो घटम् । विन्यस्य कल्किनं देवं सौवर्णं तत्र कारयेत् ॥११५
सितवस्त्रयुगच्छन्नं गन्धपुष्पोपशोभितम् । कृत्वा प्रभाते विप्राय प्रदेयः शास्त्रवित्तमे ॥११६
एवं कृते भवेद्यत्तु तन्निबोध नृपोत्तम । दशावतारदानेन पूजने चैव तत्फलम् ॥११७
पूज्यते मत्स्यरूपेण सर्वज्ञत्वमभीप्सुभिः । स्ववंशभरणायाथ कूर्मरूपी तु पूज्यते ॥११८
भवोदधिनिमग्नैस्तु वाराहः पूज्यते हरिः । नृसिंहनवरूपेण तद्वत्पापभयान्नरः ॥११९
वामनं मोहनाशाय वित्तार्थे जमदग्निजम् । क्रूरशत्रुविनाशाय यजेद्दाशरथिं बुधः ॥१२०

अर्चना करके पूर्व की भाँति वस्त्राच्छन्न कलश और प्रतिमा के स्थापन पूजन करे अनन्तर ब्राह्मण को सादर समर्पित करे । इसी विधान द्वारा समस्त द्वादशी के उपवास रहकर पूजन सुसम्पन्न करने पर उनके यहाँ भगवान् जनार्दन शुद्धोदन (बुद्ध) के रूप अवतरित हुए जिसे पुत्र, पौत्र की प्राप्ति तथा राज्य श्री का सुखोपभोग और निधन होने पर परमोत्तम गति की प्राप्त हुई । सत्तम ! इस प्रकार मैंने तुम्हें श्रावण मास का विधान बता दिया जिसके एक ही द्वादशी के व्रतोपवास सुसम्पन्न करने पर वह द्वादशी राज्य प्रदान करती है और समस्त वर्ष की बारह द्वादशी व्रत को सुसम्पन्न करने वाले को क्या कहना है, वह तो उसे ऐन्द्र पद प्रदान करता है ।१०६-१११। तद्वत् भाद्रपद मास की शुक्ल द्वादशी के दिन संकल्प पूर्वक सविधान भगवान् की अर्चना करे—कल्किने नमः से चरण, हृषीकेशायनमः से कटि, म्लेच्छ प्रध्वंसनाय नमः से और जगन्मूर्तये नमःसे उदर, शितिकण्ठाय नमः से कण्ठ, खड्गपाणयेनमः से बाहु, स्वनाम द्वारा शंख चक्र और विश्वमूर्तये नमः से शिर की समर्चना सुसम्पन्न करे । अनन्तर पूर्ववत् सुसज्जित घट स्थापन कर उसके ऊपर कल्कि देव की सुवर्ण प्रतिमा को श्वेत वस्त्र से आच्छन्न कर गंध, पुष्पों द्वारा उसकी पुण्यर्चना करने के उपरांत उसे किसी शास्त्र निपुण विद्वान् ब्राह्मण को सादर समर्पित करे। नृपोत्तम ! इस प्रकार उसकी अर्चना द्वारा जिस फल की प्राप्ति होती है, बता रहा हूँ, सुनो ! इसके पूजन सुसम्पन्न करने पर भगवान् के दश अवतारों के दान फल प्राप्त होते हैं, जो इस भाँति कहे गये थे कि—सर्वज्ञत्व की कामना से मत्स्यावतार, कुटुम्ब के भरण पोषणार्थ कच्छप भगवान्, संसार सागर को पार करने के लिए भगवान की वाराह मूर्ति पापमय से नृसिह, मोहनाशार्थ वामन, वित्त प्राप्यर्थ परशुराम, क्रूर शत्रुओं के विनाशार्थ राम, पुत्रकामनार्थ बलराम, कृष्ण रूप सौन्दर्यार्थ, बुद्ध और शत्रु

बलकृष्णौ यजेद्धीमान्पुत्रकामो न संशयः । रूपकामो यजेद्बुद्धं कल्किनं शत्रुघातने ॥
सर्वां दत्त्वा विधानेन पूजां प्राप्नोति वाञ्छितम् ॥१२१

श्रीकृष्ण उवाच

तद्वदाश्वयुजे मासि शुक्लपक्षे तु द्वादशीम् । संकल्प्याभ्यर्चयेद्देवं पद्मनाभं सनातनम् ॥१२२
पद्मनाभाय पादौ तु कटिं वै पद्मयोनये । उदरं सर्वदेवाय पुष्कराक्षाय वा उरः ॥
अव्ययाय तथा शीर्षं प्राग्वदस्त्राणि पूजयेत् ॥१२३
ततस्तस्याग्रतः कुम्भं माल्यवस्त्रसमन्वितम् । यथाशक्त्या काञ्चनेन पद्मनाभेति भूषितम् ॥१२४
रात्रौ तु जागरं कृत्वा प्रभाते विमले ततः । ब्राह्मणे तत्प्रदातव्यं संसारभयभीरुणा ॥१२५
एवं कृते तु यत्पुण्यं तद्वक्तुं शक्यते कथम् । ब्रह्महत्यादिपापानि किं तु पञ्चैव भारत ॥
नश्यन्ति कृतपुण्यस्य विष्णोर्नामानुकीर्तनात् ॥१२६

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु राजन् महाबाहो कार्तिके मासि द्वादशीम् । उपोष्य विधिना येन यथास्याः प्राप्यते फलम् ॥१२७
प्राग्विधानेन संकल्प्य वासुदेवं प्रपूजयेत् । अनुलोमेन देवेशं पूजयित्वा विचक्षणः ॥
नमो दामोदरायेति सर्वाङ्गं पूजयेद्धरिम् ॥१२८
एवं सम्पूज्य विधिना तस्याश्च चतुरो घटान् । स्थापयेद्रत्नगर्भांश्च सितचन्दनचर्चितान् ॥१२९

हननार्थ भगवान् के कल्कि रूप की अर्चना की जाती है सविधान पूजन सुसम्पन्न होने पर इन सभी के दान फल प्राप्त होते हैं ।११२-१२१

श्रीकृष्ण बोले—आश्विन शुक्ल की द्वादशी के दिन संकल्प पूर्वक सविधान सनातन पद्मनाभ भगवान् की अर्चना करनी चाहिए—पद्मनाभाय नमः से चरण, पद्मयोनये नमःसे कटि, सर्वदेवायनमः से उदर, पुष्कराक्षाय नमः से उर, अव्ययाय नमः से शिर और पूर्व की भाँति अस्त्रों की पूजा करे। पुनः उसके समक्ष माला और वस्त्र से विभूषित घट स्थापन कर उसके ऊपर भगवान् पद्मनाभ की सुवर्ण प्रतिमा की यथाशक्ति आराधना करनी चाहिए। रात्रि में जागरण करने के उपरांत विमल प्रभात के समय संसारभय भीरु उस व्रती को चाहिए कि वह सब वस्तु किसी विद्वान् ब्राह्मण को सादर समर्पित करे। इस प्रकार इसे सुसम्पन्न करने पर जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, उसका वर्णन करना सामर्थ्य के परे है। भारत् ! उसके विषय में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि ब्रह्म हत्या आदि पाँच दारुण पापों का विनाश केवल विष्णु के नामानुकीर्तन द्वारा ही हो जाता है।१२२-१२६

श्रीकृष्ण बोले—महाबाहो, राजन् ! कार्तिक मास की शुक्ल द्वादशी के सविधान उपवास एवं पूजन करने से जिस प्रकार फलों की प्राप्ति होती है, कह रहा हूँ, सुनो ! पूर्वोक्त विधान द्वारा संकल्प पूर्वक वासुदेव की पूजा करनी चाहिए—उनके चरण से आरम्भ कर शास्त्र समेत शिर तक अनुलोम क्रम द्वारा प्रत्येक अंगों की अर्चना करते हुए 'नमःदामोदराय' से विष्णु के सर्वाङ्ग की पूजा करनी चाहिए। इस प्रकार सविधान पूजनोपरांत उनके सम्मुख रत्न गर्भित एवं चन्दन चर्चित चार कलशों के स्थापन पूजन

स्रग्दामालम्बितग्रीवान्सितवस्त्रैश्च गुण्ठितान् । स्थगितांस्ताम्रपात्रे तु तिलपूर्णैः सकाञ्चनैः ।।१३०
चत्वारः सागरास्ते च कथिता राजसत्तम । तन्मध्ये प्राग्विधानेन सौवर्णं स्थापयेद्धरिम् ।।१३१
योगेश्वरनङ्गनिधिं विरक्तं पीतवाससम् । तद्वद्देवं च सम्पूज्य जागरं तत्र कारयेत् ।।१३२
कृत्वा तु वैष्णवं योगं यजेद्योगेश्वरं हरिम् । षोडशे वै रथांगेषु रजोभिर्बहुभिः कृते ।।१३३
एवं कृत्वा प्रभाते तु ब्राह्मणान् पञ्च भोजयेत् । चत्वारः कलशा देयाश्चतुर्णां पञ्चमस्य हि ।।१३४
योगेश्वरं च सौवर्णं दापयेत्प्रयतः शुचिः । ब्राह्मणाय समं दत्तं द्विगुणं वेदवादिने ।।१३५
वेदवेदाङ्गविदुषे सहस्रगुणितं भवेत् । पञ्चमस्य रहस्यं तु ससमं चोपपादयेत् ।।१३६
विधानं तस्य पञ्चैव दत्त्वा कोटिगुणोत्तरम् । इतिहासपुराणज्ञे दत्तं चैवाक्षयं भवेत् ।।१३७
पञ्चदत्त्वा विधानेन द्वादश्यां विष्णुमर्च्य च । विप्राणां भोजनं दद्याद्यथाशक्त्या सदक्षिणम् ।।
दीनानाथादिकान्सर्वान्पूजयेच्छक्तितो नृप ।।१३८
धरणीव्रतमेतत्तु पुरा कृत्वाप्रजापतिः । प्रजां लेभे ततो मुक्तिर्ब्रह्मणा विष्णवे शुभे ।।१३९
युवनाश्वो हि राजर्षिरनेन विधिना पुरा । मान्धातारं सुतं लेभे परं ब्रह्म च शाश्वतम् ।।१४०
तथा हैहयदायादः कृतवीर्यो नराधिपः । चक्रवर्तिसुतं लेभे सहस्रार्जुनमूर्जितम् ।।१४१
शकुन्तलाप्येवमेव व्रतं चीर्त्वा नरोत्तमम् । लेभे शाकुन्तलं पुत्रं दुष्यन्तश्चक्रवर्तिनम् ।।१४२
तथा पुराणराजानो वेदोक्ताश्चक्रवर्तिनः । अनेन विधिना प्राप्ताश्चक्रवर्तितत्वमुत्तमम् ।।१४३

करे, जो कण्ठ से नीचे भाग तक लटकती हुई मालाओं से विभूषित, और वस्त्रों से सुसज्जित हों तथा ताम्र पात्र में काञ्चन समेत तिल पूर्ण सस्थित किये गये हों। राजसत्तम ! इन चारों को सागर बताया गया है। उनके मध्य में पूर्व विधान द्वारा भगवान् की सुवर्ण प्रतिमा, जो योगेश्वर के रूप में निर्मित एवं पीताम्बर भूषित हो, स्थापित कर पूजनोपरांत रात्रि जागरण करे। विष्णु पूजन, योगेश्वर मंत्र के जप और चक्र में अधिक रज दृष्टि गोचर हो, इसके लिए उसकी षोडशोचार अर्चा करनी चाहिए। अनन्तर प्रातः काल पाँच ब्राह्मणों को भोजन द्वारा सुतृप्त कर चार को चार कलश और पाँचवें ब्राह्मण को योगेश्वर की सुवर्ण मूर्ति का दान सादर प्रदान करे। किसी सामान्य ब्राह्मण को कलश दान अर्पित करने पर सम, वेदवेत्ता को देने पर दुगुने एवं वेद वेदाङ्ग निष्णात विद्वान् को अर्पित करने पर सहस्र गुने फल प्राप्त होते हैं। वह सुवर्ण प्रतिमा भी उस पाँचवें सामान्य ब्राह्मणों को अर्पित करने पर साधारण, वेदनिष्णात् को देने पर कोटि गुने और इतिहास पुराण मर्मज्ञ को अर्पित करने पर अक्षय फल प्राप्त होता है। इस प्रकार पाँचों ब्राह्मणों को दान, सविधान विष्णु का द्वादशी में अर्चन, यथाशक्ति दक्षिणा समेत ब्राह्मण भोजन एवं दीन अनाथ आदि प्राणियों को भी यथाशक्ति तृप्त करना चाहिए। १२७-१३८। नृप पूर्वकाल में प्रजापति ने इस धरिणी व्रत को सुसम्पन्न कर प्रजा (सन्तान) प्राप्ति पूर्वक मुक्ति प्राप्त की। राजर्षि युवनाश्व ने इसी विधान द्वारा इसे सुसम्पन्न कर शाश्वत ब्रह्मलोक की प्राप्ति की। इसी प्रकार हैहयवंशीय कृतवीर्य ने सहस्रार्जुन नामक चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त किया और दुष्यन्त शकुन्तला ने इस परमोत्तम व्रत को सुसम्पन्न कर भारत नामक पुत्र प्राप्त किया था। इसी प्रकार वेदोक्त अनेक चक्रवर्ती राजाओं ने सविधान इसे सुसम्पन्न कर चक्रवर्ती पद की प्राप्ति की है। १३९-१४३। और सर्वप्रथम धरणी ने पाताल लोक में

धरण्या अपि पाताले मग्नयाचरितं पुरा । व्रतमेतत्ततो नाम्ना धरणीव्रतमुच्यते ।।१४४
समाप्तेऽस्मिंस्तदा देवी हरिणा क्रोडरूपिणा । उद्धृता दशनाग्रेण स्थापिता नौरिवाम्भसि ।।१४५
धरणीव्रतमेतत्ते कथितं पाण्डुनन्दन । य इदं शृणुयाद्भक्त्या यश्च कुर्यान्नरोत्तम ।।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमाव्रजेत् ।।१४६

चीर्णं रसातलतले गतया धरण्या तेन प्रसिद्धिमगमद्धरणीव्रतेति ।
यः समाचरति धर्मरतिर्द्धरित्र्यामुद्धृत्य सप्त पुरुषान्स परं प्रयाति ।।१४७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
धरणीव्रतं नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ।८३

अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः

विशोकद्वादशीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

किमभीष्टवियोगशोकसङ्घाल्लघु इह समुपोषतां व्रतं वा ।
विभवोद्भवकारि भूतलेऽस्मिन्भवति विभो भयसूदनं च पुंसाम् ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

परिमृष्टमिदं जगत्प्रियं ते विबुधानामपि दुर्लभं महत्त्वात् ।
तव भक्तिमतस्तथापि वक्ष्ये व्रतमिन्द्रासुरदानवेषु गुह्यम् ।।२

निमग्न होने पर इस व्रत को सुसम्पन्न किया था, जिससे 'धरणी व्रत' नाम से इसकी प्रख्याति हुई। व्रत के समाप्त होने पर बाराह मूर्ति भगवान् को द्रंष्ट्रा (दाँत) के अग्रभाग पर जल में नौका की भाँति स्थित होकर उनके द्वारा इस पृथ्वी का उद्धार हुआ था। पाण्डुनन्दन ! इस प्रकार मैंने यह धरणी व्रत तुम्हें सुना दिया जिसे भक्ति पूर्वक श्रवण करने पर समस्त पापों से मुक्त होकर वह विष्णु सायुज्य मोक्ष प्राप्त करता है। रसातल में पहुँचने पर धरणी के इसे सविधान सुसम्पन्न करने पर धरणीव्रत नाम से इसकी प्रख्याति हुई। इसलिए इस भूतल पर इसे सुसम्पन्न करने पर उस धार्मिक पुरुष के सात पीढ़ी परिवार विष्णु के परमोत्तम लोक प्राप्त करते हैं।१४४-१४७

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसम्वाद में
धरणीव्रतवर्णन नामक तिरासीवाँ अध्याय समाप्त ।८३।

अध्याय ८४

विशोकद्वादशी व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—विभो ! उपवास रहने वाले पुरुषों के अभीष्ट सिध्यर्थ किसी इस भाँति के लघुव्रत बताने की कृपा कीजिये, जो इस धरातल पर ऐश्वर्य वृद्धि के लिए प्रख्यात एवं भय विनाशक हो।१

श्रीकृष्ण बोले—लोकहितार्थ तुम्हारे इस प्रश्न एवं भक्ति को देखकर मैं तुम्हें ऐसा व्रत बता रहा हूँ, जो महत्त्वपूर्ण, देव दुर्लभ एवं देव दानव और राक्षसों के लिए परम गुह्य है। आश्विन मास की शुक्ल

पुण्यमाश्वयुजे मासि विशोकद्वादशीव्रतम् । दशम्यां लघुभुग्विद्वानारभेन्नियमेन तु ।।३
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा दन्तधावनपूर्वकम् । एकादश्यां निराहारः सम्यगभ्यर्च्य केशवम् ।।४
विधिवत्त्वां समभ्यर्च्य भोक्ष्यामि अपरेऽहनि । एवं नियमकृत्सुप्त्वा प्रातरुत्थाय मानवः ।।५
स्नानं सर्वौषधैः कुर्यात्पञ्चगव्यजलेन तु । शुक्लमाल्याम्बरस्तद्वत्पूजयेच्छ्रीशमुत्पलैः ।।६
विशोकाय नमः पादौ जङ्घे च वरदाय वै । श्रीशाय जानुनी तद्वदूरू च जलशायिने ।।७
कन्दर्पाय नमो गुह्ये माधवाय नमः कटिम् । दामोदरायेत्युदरं पार्श्वे च विपुलाय वै ।।८
नाभिं च पद्मनाभाय हृदयं मन्मथाय वै । श्रीधराय विभोर्वक्षः करौ मधुभिदे नमः ।।९
चक्रिणे नाम बाहुं च दक्षिणं गदिने नमः । वैकुण्ठाय नमः कण्ठमास्यं यज्ञमुखाय वै ।।१०
नासामशोकनिधये वासुदेवाय चाक्षिणी । ललाटं वामनायेति किरीटं विश्वरूपिणे ।।११
नमः सर्वात्मने तद्वच्छिर इत्यभिपूजयेत् । एवं सम्पूज्य गोविन्दं फलमाल्यानुलेपनैः ।।१२
ततस्तस्याग्रतो भव्यं स्थण्डिलं कारयेन्मृदा । चतुरस्रं समन्ताच्चारत्निमात्रमुदक्प्लवम् ।।१३
नदीवालुकया पूर्णं लक्ष्म्याकृतिं कृती न्यसेत् । स्थण्डिले सूर्यमारोप्य लक्ष्मीमित्यर्चयेद् बुधः ।।१४
नमो देव्यै नमः शान्त्यै नमो लक्ष्म्यै नमः श्रियै । नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै नमो[1] दृष्ट्यै नमोनमः ।।१५
विशोका दुःखनाशाय विशोका वरदास्तु मे । विशोका वास्तु सन्तत्यै विशोका सर्वसिद्धये ।।१६

दशमी के दिन लघु आहार करके उस पुण्य विशोक द्वादशी व्रत विधान को नियम पूर्वक उत्तर अथवा पूर्वाभिमुख दंत धावन (दातून) करने से ही प्रारम्भ करना चाहिए । एकादशी के दिन उपवास रहते हुए भगवान् केशव की सविधि अर्चना सुसम्पन्न कर मैं दूसरे दिन भोजन करूँगा' इस भाँति नियम करके शयन करने के अनन्तर प्रातः काल उस पुरुष को समस्त औषध मिश्रित पञ्चगव्य के जल से स्नान और शुक्ल वर्ण की माला एवं वस्त्र धारण करके कमल पुष्पों द्वारा श्री पति विष्णु भगवान् की अर्चना करनी चाहिए—'विशोकाय नमः से उनके चरण युगल, वरदाय नमः से जंघा, श्रीशाय नमः से घुटना, जलशायिने नमः से कटि, दामोदराय नमः से उदर, विपुलाय नमः से पार्श्व भाग, पद्मनाभाय नमः से नाभि, मन्मथाय नमः से हृदय, श्रीधराय नमः से वक्ष, और मधु भिदेनमः से कर, चक्रिणे नमः से वाम बाहु, गदिने नमः से दक्षिण बाहु, वैकुण्ठाय नमः से कण्ठ, यज्ञ मुखाय नमः से मुख, अशोकनिधये नमः से नासा, वासुदेवाय नमः से दोनों नेत्र, वामनाय नमः से भाल, विश्वरूपाय नमः से किरीट, और सर्वात्मने नमः से गोविन्द के शिर की पूजा फल, माला, एवं विलेपन द्वारा सुसम्पन्न करके उनके सम्मुख मृत्तिका श्री सुन्दर वेदी की रचना करे, जो चौकोर, अरत्नि मात्र विस्तृत उत्तर की ओर से ढालू और नदी की वालुकाओं से परिपूर्ण हो । उस पर लक्ष्मी की प्रतिमा स्थापित कर सूर्य के आवाहन पूर्वक उनकी पूजा तथा क्षमा प्रार्थना करे ।२-१४। देवी को नमस्कार है, एवं शान्ति, लक्ष्मी श्री, पुष्टि, तुष्टि और दृष्टि रूप को नमस्कार है । विशोक दुखों का नाश पूर्वक मुझे वर प्रदान करे और संतति प्रवाह को अविच्छिन्न रखती हुई विशोका मेरी सम्पूर्ण सिद्धि करती रहे ।१५-१६। अनन्तर शुक्लाम्बर धारी वह पुरुष वेष्टन भूषित सूप की

---

१. हृष्टयै कृष्टयै नमोनमः ।

ततः शुक्लाम्बरधरो शूर्पं संवेष्ट्य पूजयेत् । भक्ष्यैर्नानाविधैस्तद्वत्सुदर्णकमलेन च ॥१७
रजनीषु च सर्वासु पिबेद्दर्भोदकं व्रती । ततस्तु नृत्यगीतादि कारयेत्सर्वरात्रकम् ॥१८
यामत्रये व्यतीते तु सुप्त्वा स्वस्थोपमानसः । अभिगम्य च विप्राणां मिथुनानि सदार्चयेत् ॥१९
शक्तितस्त्रीणि चैकं वा वस्त्रमाल्यानुलेपनैः । शयनास्थानि पूज्यानि नमोऽस्तु जलशायिने ॥२०
ततस्तु गीतवाद्याद्यै रात्रौ जागरणे कृते । प्रभाते विमले स्नानं कृत्वा दाम्पत्यमर्चयेत् ॥२१
भोजनं च यथाशक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः । भुक्त्वा श्रुत्वा पुराणानि तद्दिनं त्वातिवाहयेत् ॥२२
अनेन विधिना सर्वं मासिमासि समाचरेत् । व्रतान्ते शयनं दद्याद्गुडधेनुसमन्वितम् ॥
सोपधानकविश्राममास्तरावरणं शुभम् ॥२३
यथा न लक्ष्मीर्देवेश त्वां परित्यज्य गच्छति । तथा कुरु यथायोग्यमशोकं चास्तु मे सदा ॥२४
यथा देवेन रहिता न लक्ष्मीर्जायते क्वचित् । तथा विशोकता मेऽस्तु भक्तिरग्र्या च केशवे ॥२५
मन्त्रेणानेन ध्यात्वा तु गुडधेनुसमन्वितम् । शूर्पं च लक्ष्म्यां सहितं दातव्यं भूतिमिच्छता ॥२६
उत्पातं करवीरं च बाणमम्लान कुण्डलम् । केसरं सिन्दुवारं च मल्लिकागन्धपाटलम् ॥
कादम्बैः कुंकुमैर्जात्या तथान्यैरपि पूजयेत् ॥२७

युधिष्ठिर उवाच

गुडधेनुविधानं मे त्वमाचक्ष्व जगत्पते । किंरूपा केन मन्त्रेण दातव्या तदिहोच्यताम् ॥२८

पूजा अनेक भाँति के भक्ष्य पदार्थ तथा सुवर्ण कमल द्वारा सुसम्पन्न करके रात्रि में कुशोदक के प्राशन और नृत्य, गीत द्वारा जागरण करता रहे। तीन प्रहर व्यतीत हो जाने पर रात्रि के चौथे प्रहर में शयन से उठकर तथा स्वस्थचित्त होकर (नित्य नैमित्तिक के पश्चात्) ब्राह्मण दम्पति की सदैव अर्चना करनी चाहिए। यथा शक्ति वस्त्र, माला एवं लघुलेपन द्वारा तीन अथवा एक ब्राह्मण दम्पति और उनके शयन स्थान की पूजा 'नमोऽस्तु जलशायिने' मंत्र द्वारा ही करना बताया गया है। इस भाँति नृत्य, गीत और वाद्यों द्वारा रात्रि जागरण करने के पश्चात् विमल प्रातः काल के समय स्नान, दम्पत्ति पूजन, यथाशक्ति एवं वित्त शाठ्य (कृपणता) दोष ध्यान में रखते हुए अनेक भाँति के भक्ष्य पदार्थ से ब्राह्मणों को तृप्त कर स्वयं भी भोजन करके पुराण श्रवण द्वारा दिन व्यतीत करे। इसी विधान द्वारा प्रत्येक मास में व्रत पूजन करते हुए उसके अन्त में गुड, धेनु युक्त उस भाँति की शय्या जो उत्तम आस्तरावरण (चद्दर) एवं तोशक तकिये से सुसज्जित हो, अर्पितकरके क्षमा प्रार्थना करे कि—देवेश ! जिस प्रकार तुम्हें छोड़कर लक्ष्मी कभी कहीं नहीं जाती है, उसी भाँति मुझे सदैव के लिए शोक रहित करें। जिस प्रकार देव रहित होकर लक्ष्मी कहीं नहीं जाती है, उसी प्रकार शोक रहित करते हुए मुझे केशव की उत्तम भक्ति प्राप्त हो। इस मंत्र से ध्यान करते हुए अपने ऐश्वर्यार्थ गुड धेनु समेत एवं लक्ष्मी भूषित सूप का दान तथा उत्पात, कनेर, वाण, अम्लान कुण्डल, केसर, सिंदुवार, मालती, गंध पाटल, कदम्ब, कुंकुम और जाती पुष्पों द्वारा पूजन सदैव करना चाहिए।१७-२७

युधिष्ठिर ने कहा—जगत्पते ! गुड़ धेनु का विधान बताने की कृपा करें। उसका स्वरूप क्या है और किस मंत्र द्वारा उसका दान किया जाता है।२८

श्रीकृष्ण उवाच

गुडधेनुविधानं च यद्रूपमिह यत्फलम् । तदिदानीं प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनम् ॥२९
कृष्णाजिनं चतुर्हस्तं प्रागेवं विन्यसेद्भुवि । गोमयेनानुलिप्तायां दर्भानास्तीर्य सर्वतः ॥३०
लब्धेन काञ्चनं तद्वत्समं च परिकल्पयेत् । प्राङ्मुखी कल्पयेद्धेनुमुदक्पादां सवत्सिकाम् ॥३१
उत्तमा गुडधेनुः स्यात्सदा भार चतुष्टया । वत्सं भारेण कुर्वीत द्वाभ्यां वै मध्यमा स्मृता ॥३२
अर्द्धभारेण वत्सः स्यात्कनिष्ठा भारकेण तु । चतुर्थांशेन वत्सः स्याद्गृहवित्तानुसारितः ॥३३
धेनुवत्सौ कृतावेतौ सितसूक्ष्माम्बरावृतौ । शुक्तिकर्णाविक्षुपादौ शुक्तिमुक्ताफलेक्षणौ ॥३४
सितसूत्रशिरालौ तु सितकम्बलकम्बलौ । ताम्रगल्लकपृष्ठौ तौ सितचामररोमकौ ॥३५
विद्रुमभ्रूयुगावेतौ नवनीतस्तनान्वितौ । क्षौमपुच्छौ कांस्यदोहाविन्द्रनीलकतारकौ ॥३६
सुवर्णभृङ्गाभरणौ राजतखुरसंयुतौ । नानाफलसमायुक्तौ घ्राणगन्धकरण्डकौ ॥
इत्येवं रचयित्वा तु धूपदीपैरथार्चयेत् ॥३७
या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवे व्यवस्थिता । धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥३८
विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहायां च विभावसौ । चन्द्रार्कशक्रशक्तिर्या धेनुरूपास्तु सा श्रिये ॥३९
चतुर्मुखस्य या लक्ष्मीर्या लक्ष्मीर्धनदस्य च । या लक्ष्मीर्लोकपालानां सा धेनुर्वरदास्तु मे ॥४०
स्वधा त्वं पितृमुख्यानां स्वाहा यज्ञभुजां पुनः । सर्वपापहरे धेनोतस्माद्भूतिं प्रयच्छ मे ॥४१

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें गुडधेनु का विधान, उसका स्वरूप और फल बता रहा हूँ, जो समस्त पापों का शमन करता है। गोमय (गोबर) से लिपी हुई भूमि में चार हाथ का विस्तृत कृष्ण मृगचर्म बिछाकर, जिसके चारों ओर कुश बिछाये गये हो, उसी पर पूर्व की ओर मुख और उत्तर की ओर चरण किये उस सवत्सा गौ की कल्पना करनी चाहिए चार भाग गुड की धेनु सदैव परमोत्तम मानी गयी है। उस समय उसके बछड़े का निर्माण एक भार गुड से होना चाहिए। दो भाग गुड की बनी हुई धेनु, जिसमें आधे भार गुड़ का बछड़ा बनाया जाता है, मध्यमा और अपने गृह वित्तानुसार एक भार गुड की कल्पित धेनु, जो चौथाई भार गुड़ निर्मित बछड़े से संयुक्त रहती है, कनिष्ठा बतायी गयी है। इस प्रकार सवत्सा धेनु का निर्माण कर श्वेत वर्ण के सूक्ष्म वस्त्रों से आवृत करना चाहिए, जिनके शुवित्त (सीप) से कान, ऊख से चरण, मुक्ताफल, (मोती) से नेत्र, श्वेत सूत्र से नाडियाँ, श्वेत कम्बल से गले के कम्बल (लोमसमूछचर्म), ताम्रगल्लक से पृष्ठ पीठ, श्वेत चामर से रोम, मूंगे की भौंहे, नवनीत के स्तन, क्षौम (रेशम) से पूँछ, कांसे की दोहनी, इन्द्रनील मणि से आँखों की तारिका बनी हो और सुवर्ण से सींग, रजत (चाँदी) से खुर सुसज्जित कर अनके फलों द्वारा उसके नासा पुट एवं छिद्रकी रचना की गयी हो। इस प्रकार उसकी रचना करके धूप दीप आदि से उनकी अर्चा करने के अनन्तर क्षमा प्रार्थना करे।२९-३७। समस्त प्राणियों में तथा देवों में सुव्यवस्थित रहने वाली लक्ष्मी देवी अपने धेनु रूप द्वारा मेरे पापों को नष्ट करे। विष्णु के वक्षस्थल पर विभूषित, अग्नि में स्वाहा रूप से वर्तमान रहने वाली चन्द्र सूर्य एवं इन्द्र की शक्ति रूप लक्ष्मी अपने धेनुरूप द्वारा मेरी भी समृद्धि करे। उसी प्रकार चतुर्मुख ब्रह्मा, कुबेर, एवं लोक पालों की लक्ष्मी अपने धेनुरूप से मुझ पर प्रदान करे। तुम पितरों की स्वधा और यज्ञभोक्ता की स्वाहा हो, अतः पाप हारिणी इस अपने धेनुरूप से मुझे ऐश्वर्य प्रदान करने की कृपा करो।३८-४१। इस प्रकार उस धेनु का निर्माण

एवमामन्त्र्य तां धेनुं ब्राह्मणाय निवेदयेत् । विधानमेतद्धेनूनां सर्वासामिह पठ्यते ॥४२
यास्तु पापविनाशिन्यः श्रूयन्ते दश धेनवः । तासां स्वरूपं वक्ष्यामि नामानि च नराधिप ॥४३
प्रथमा गुडधेनुः स्याद् घृतधेनुरथापरा । तिलधेनुस्तृतीया स्याच्चतुर्थी मधुधेनुका ॥४४
जलधेनुः पञ्चमी तु षष्ठी तु क्षीरसम्भवा । सप्तमी शर्कराधेनुर्दधिधेनुरथाष्टमी ॥
रसधेनुश्च नवमी दशमी स्यात्स्वरूपतः ॥४५
कुम्भाः स्युर्दशधेनूनामितरासां तु राशयः । सुवर्णधेनुमप्यत्र केचिदिच्छन्ति मानवाः ॥४६
नवनीतेन रत्नैश्च तथाप्यन्ये महर्षयः । एतदेव विधानं स्यात्त एवोपस्कराः स्मृताः ॥४७
मन्त्रावाहनसंयुक्ताः सदा पर्वणिपर्वणि । यथाश्रद्धं प्रदातव्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः ॥४८
गुडधेनुप्रसङ्गेन सर्वास्तव मयोदिताः । अशेषयज्ञफलदाः सर्वपापहराः शुभाः ॥४९
व्रतानामुत्तमं यत्स्याद्विशोकद्वादशीव्रतम् । तदङ्गत्वेन चैवैषा गुडधेनुः प्रशस्यते ॥५०
अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपातेऽथ वा पुनः । गुडधेन्वादयो देया उपरागादिपर्वसु ॥५१
विशोकद्वादशी चैषा सर्वपापहरा शुभा । यामुपोष्य नरो याति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥५२
इह लोके तु सौभाग्यमायुरारोग्यमेव च । वैष्णवं पदमाप्नोति मरणे सद्गतिर्भवेत् ॥५३
भवार्बुदसहस्राणि दश चाष्टौ च धर्मवित् । न शोकदुःखदौर्गत्यं तस्य सञ्जायते नृप ॥५४
नारी वा कुरुते यातु विशोकद्वादशीमिमाम् । नृत्यगीतपरा नित्यं सापि तत्फलमाप्नुयात् ॥५५

एवं पूजन करके विद्वान् ब्राह्मण को अर्पित करे । यही विधान समस्त धेनुओं के दान में बताया गया है । नराधिप ! मैं उन दशधेनुओं के स्वरूप एवं नाम बता रहा हू, जिन्हें पापविनाशिनी बताया गया है । सर्वप्रथम गुडधेनु, दूसरी घृतधेनु, तीसरी तिलधेनु, चौथी मधुधेनु, पाँचवी जलधेनु, छठीं क्षीरधेनु, सातवीं शर्कराधेनु, आठवीं दधिधेनु, नवीं रसधेनु और दशवीं स्वरूपतः (अर्थात् साक्षात्) धेनु कहीं गयी है । कुछ विद्वानों का कहना है कि दश धेनुओं के निर्माण में कुम्भ और अन्य धेनुओं के लिए राशि की कल्पना की जाती है और सबसे पृथक् एक सुवर्ण धेनु भी होती है । अन्य महर्षियों की सम्मति में नवनीत और रत्नों द्वारा धेनुओं का निर्माण होता है । किन्तु सब के विधान और साधन यही एक मात्र है । सदैव प्रत्येक पर्वों के अवसर पर श्रद्धानुकूल इन भुक्ति एवं मुक्ति प्रदायिनी धेनुओं के दान अवश्य करना चाहिए। इस प्रकार मैंने इस गुड़ धेनु के प्रसंग में उन सभी धेनुओं का वर्णन तुम्हें सुना दिया, जो निखिल यज्ञों के फल प्रदान करने वाली समस्त पापहारिणी और शुभ मूर्ति है । यह विशोक द्वादशी व्रत समस्त व्रतों से परमोत्तम व्रत है और उसी भाँति तदंगत्वेन इस गुड धेनु की अत्यन्त प्रशंसा की गयी है ।४२-५०। दोनों अयन, विषुव, पुण्य काल, व्यतीपात योग एवं ग्रहण आदि पर्व तिथियों के अवसर पर इन गुड धेनु आदि के दान अवश्य करना चाहिए । यह विशोक द्वादशी समस्त पापों के शमन करने वाली एवं शुभ है, जिसमें उपवास रहकर मनुष्य विष्णु के परम पद की प्राप्ति करता है । इस धरातल पर सौभाग्य, आयु और आरोग्य की प्राप्ति पूर्वक सुखानुभव के अनन्तर देहावसान होने पर सद्गति रूप में विष्णु लोक की प्राप्ति होती है। नृप ! इस अनुष्ठान के सुसम्पन्न करने पर अठारह, अर्बुद सहस्र वर्ष तक उसे धर्म वेत्ता को शोक, दुःख, और दुर्गति नहीं होते हैं । इस विशोक द्वादशी व्रत के अनुष्ठान को सुसम्पन्न करने वाली उस स्त्री को भी, जो नृत्य गीत द्वारा रात्रि जागरण करती है, उपरोक्त सभी फल प्राप्त होते हैं ।५१-५५। इस

इति पठति य इत्थं यः शृणोतीह सम्यङ् मधुपुरनरकारेरर्चनं यश्च पश्येत् ।
मतिमपि च जनानां यो ददातीन्द्रलोके वसति स विबुधाद्यैः पूज्यमानः सदैव ।।५६

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
विशोकद्वादशीव्रतं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ।८४

अथ पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

विभूतिद्वादशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु भूपाल वक्ष्यामि विष्णुव्रतमनुत्तमम् । विभूतिद्वादशीं नाम सर्वामरनमस्कृतम् ।।१
कार्त्तिके वाथ वैशाखे मार्गशीर्षे च फाल्गुने । आषाढे वा दशम्यां च शुक्लायां लघुभुङ्नरः ।।२
कृत्वा सायन्तनीं सन्ध्यां गृह्णीयान्नियमं बुधः । एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम् ।।३
द्वादश्यां द्विजसंयुक्तः करिष्ये भोजनं विभो । तदविघ्नेन मे यातु साफल्यं मधुसूदन ।।४
ततः प्रभात उत्थाय कृतस्नानजपः शुचिः । पूजयेत्पुण्डरीकाक्षं शुक्लमाल्यानुलेपनैः ।।५
भूतिदाय नमः पादौ विशोकाय च जानुनी । नमः शिवायेत्यूरु च विश्वमूर्ते नमः कटिम् ।।६

प्रकार इसके पारायण एवं भली भाँति श्रवण करने और मधुहन्ता भगवान् के पूजन दर्शन तथा इसके लिए मनुष्यों को सन्मति प्रदान करने वाले पुरुष देव वन्दनीय होकर सदैव इन्द्रलोक में सुखानुभव करते हैं।५६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसम्वाद में
विशोक द्वादशी व्रत वर्णन नामक चौरसीवाँ अध्याय समाप्त ।८४।

अध्याय ८५

विभूतिद्वादशी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—भूपाल ! मैं तुम्हें विभूति द्वादशी नामक व्रत का वर्णन सुना रहा हूँ, जो विष्णु के व्रतों में परमोत्तम एवं समस्त देवों से पूजित है। सावधान होकर सुनो ! कार्तिक, वैशाख, मार्गशीर्ष (अगहन), फाल्गुन अथवा आषाढ़ मास की शुक्ल दशमी के दिन लघु आहार करके सायंकालीन संध्या के अनन्तर उसका नियम पालन आरम्भ करना चाहिए। विभो ! एकादशी के दिन निराहार रहकर भगवान् जनार्दन की अर्चना एवं द्वादशी के दिन ब्राह्मणों के साथ भोजन करूँगा। मधुसूदन ! वह निर्विघ्न समाप्त होकर मुझे सफलता प्रदान करे। इस भाँति संकल्प पूर्वक शयन करने पर पुनः प्रातःकाल स्नान जप आदि से पूर्ण पवित्रता प्राप्त करते हुए श्वेतमाला और अनुलेपन आदि वस्तुओं से भगवान् पुण्डरीकाक्ष की अर्चना करनी चाहिए।१-५। ऐश्वर्यदायक को नमस्कार है, कहकर चरण युगल, शोक हीन रहने वाले को नमस्कार है, कहकर शिव को नमस्कार है, कहकर उरू विश्वमूर्ति को नमस्कार है कहकर कटि, कन्दर्प

कन्दर्पाय नमो मेढ्रमादित्याय नमः करौ । दामोदरायेत्युदरं वासुदेवाय च स्तनौ ।।७
माधवायेति हृदयं कण्ठं वैकुण्ठिने नमः । श्रीधराय मुखं केशान् केशवायेति पाण्डव ।।८
पृष्ठं शार्ङ्गधरायेति श्रवणौ वरदाय वै । स्वनाम्ना शङ्खचक्रासिगदापरशुपाणये ।।९
सर्वात्मने शिरो राजन् नम इत्यभिपूजयेत् । दशावताररूपाणि प्रतिमासं क्रमान्नृप ।।१०
दत्तात्रेयं यथा व्यासमुत्पलेन समन्वितम् । दद्यादनेन विधिना पाखण्डानपि वर्जयेत् ।।११
समाप्यैवं यथाशक्त्या द्वादशं द्वादशीर्नरः । सम्वत्सरान्ते लवणपर्वतेन सह प्रभो ।।
शय्यां दद्यान्मुनिश्रेष्ठ गुरवे रससंयुताम् ।।१२
ग्रामं च शक्तिमान्दद्यात्क्षेत्रं वा भवनान्वितम् । गुरुं सम्पूज्य विधिवद्वस्त्रालङ्कारभूषणैः ।।१३
अन्यानपि यथाशक्त्या भोजयित्वा द्विजोत्तमान् । तर्पयेद्वस्त्रगोदानैरन्यत्र धनसञ्चयात् ।।१४
अल्पवित्तो यथाशक्त्या स्तोकंस्तोकं समाचरेत् । यश्चातिनिःस्वः पुरुषो भक्तिमान् माधवं प्रति ।।
पुष्पार्चनविधानेन स कुर्याद्वत्सरत्रयम् ।।१५
अनेन विधिना यस्तु विभूतिद्वादशीव्रतम् । कुर्यात्स पापनिर्मुक्तः पितॄणां तारयेच्छतम् ।।१६
जन्मनां शतसाहस्रं न शोकफलभाग्भवेत् । न च व्याधिर्भवेत्तस्य न दारिद्र्यं न बन्धनम् ।।१७
वैष्णवो वाथ शैवो वा भवेज्जन्मनिजन्मनि । यावद्युगसहस्राणां शतमष्टोत्तरं भवेत् ।।

को नमस्कार है, कहकर मेढ्र (लिङ्ग), आदित्य को नमस्कार है, कहकर दोनों हाथ, दामोदर को नमस्कार है, कहकर उदर, वासुदेव को नमस्कार है, कहकर स्तन, माधव को नमस्कार है, कहकर हृदय, वैकुण्ठपति को नमस्कार है, कहकर कण्ठ, श्रीधर को नमस्कार है, कहकर मुख, केशव को नमस्कार है, कहकर केश, शार्ङ्गधर को नमस्कार है, कहकर पृष्ठ, वरद को नमस्कार है, कहकर दोनों श्रवण, स्वनाम के उच्चारण कर शंख, चक्र, तलवार और परशुपाणि को नमस्कार है, कहकर गदा, एवं सर्वात्मा को नमस्कार है, कहकर उनके शिर की अर्चना करनी चाहिए। राजन् ! इस प्रकार भगवान् के दश अवतारों की प्रतिमाके क्रमशः प्रतिमास पूजन करके कमल पुष्प भूषित दत्तात्रेय और व्यास की प्रतिमा इस विधान द्वारा ब्राह्मणों को अर्पित करे और पाखण्डों के सर्वथा परित्याग भी। इस भाँति बारह द्वादशी व्रत को सुसम्पन्न करने के अनन्तर व्रत की समाप्ति में लवण पर्वत समेत सुसज्जित एवं संयुत शय्या विष्णु के निमित्त गुरु को अर्पित करते हुए उस शक्तिमान् पुरुष को चाहिए कि ग्राम अथवा सुसज्जित भवन समेत क्षेत्र भी अर्पित करे। वस्त्र और आभूषणों द्वारा सविधान गुरु की अर्चना करने के उपरांत अन्य श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भी यथाशक्ति भोजन से संतृप्त कर वस्त्र, गोदान और धन दान द्वारा संतुष्ट करना चाहिए। अल्प वित्त वाले यथाशक्ति थोड़े थोड़े धन के व्यय द्वारा उसे सुसम्पन्न करते रहना चाहिए। अत्यन्त निर्धन पुरुषोत्तम माधव भगवान् का अन्य भक्त हो, पुष्पार्चन द्वारा तीन वर्ष तक उस व्रत नियम का पालन करना बताया गया है।६-१५। इस विधान द्वारा इस विभूति द्वादशी व्रत को सुसम्पन्न करने वाला पुरुष समस्त पातकों से मुक्त होकर पूर्वजों की सौ पीढ़ियों के उद्धार करता है। सैकड़ों एवं सहस्रों जन्म तक वह शोक ग्रस्त नहीं होता है। उसे न कोई व्याधि होती है न दरिद्र एवं न किसी बंधन में पड़ता है। प्रत्येक जन्म में वह वैष्णव अथवा शैवमत ग्रहण कर एक सौ आठ सहस्र युग के

तावत्स्वर्गे वसेद्राजन्भूपतिश्च पुनर्भवेत् ॥१८
पुरा रथन्तरे कल्पे राजासीत्पुष्पवाहनः । नाम्ना लोकेषु विख्यातस्तेजसा सूर्यसन्निभः ॥१९
तपसा तस्य तुष्टेन चतुर्वक्त्रेण भारत । कमलं काञ्चनं दत्तं यथाकामगतिः सदा ॥२०
समस्तभृत्यसहितः सान्तः पुरपरिस्थितः । द्वीपानि सुरलोकं च यथेष्टं विचरत्यसौ ॥२१
कल्पादौ सप्तमे द्वीपे तेन पुष्करवासिनः । लोके सम्पूजिता यस्मात्पुष्करद्वीप उच्यते ॥२२
तदैव ब्रह्मणा दत्तं यानमस्य यतो नृप । पुष्पवाहनमित्याहुस्तस्मात्तं देवदानवाः ॥२३

नागस्य तस्यास्य जगत्त्रयेऽपि ब्रह्माम्बुजस्थस्य तपोऽनुभावात् ।
पत्नी च तस्याप्रतिमा नरेन्द्र नारीसहस्रैरभितोऽभिनन्द्या ॥२४
नाम्ना च लावण्यवती बभूव या पार्वतीवेष्टतमा भवस्य ।
तस्यात्मजानामयुतं बभूव धर्मात्मनामग्र्यधनुर्द्धराणाम् ॥२५
तदात्मनः सर्वमवेक्ष्य राजा मुहुर्मुहुर्विस्मयमाससाद ।
सोभ्यागतं पूज्य मुनिप्रवीरं प्रचेतसं वाचमिमां बभाषे ॥२६
कस्माद्विभूतिरमला मम मर्त्यपूज्या जाया च सर्वविजितामरसुन्दरी या ।
भार्या त्वनल्पतपसा वसुतोषितेन दत्तं ममाम्बुजगृहं परमप्रसादात् ॥२७
यस्मिन्प्रविष्टमपि कोटिशतं नृपाणां सामात्यकुञ्जरनराश्वघनावृतानाम् ।
नालक्ष्य सम्बाधतया हि बाधस्तारागणैरपि सुरासुरलोकपालैः ॥२८

काल पर्यन्त स्वर्ग में निवास कर अन्त में पुनः भूपति होता है। राजन्! पहले समय में रथन्तर कल्प के समय एक पुष्पवाहन नामक राजा राज करता था, जो इस पृथ्वी तल पर प्रख्यात एवं सूर्य के समान तेजस्वी था। भारत! उसके तप से अत्यन्त तुष्ट होकर चतुर्मुख ब्रह्मा ने उसे एक सुवर्ण कमल प्रदान किया, जो सदैव मनोवाञ्छित सफल करता था। अपने समस्त सेवक और अन्तःपुर समेत वह सदैव द्वीपों एवं देवलोक में यथेच्छ विचरण करता था। कल्पादि में उसे सातवाँ पुष्कर द्वीप (ब्रह्मा द्वारा) दिया हुआ। वहाँ के निवासी लोक पूजित हैं इसी लिए उसका पुष्कर (श्रेष्ठ) द्वीप नामकरण हुआ था। नृप ब्रह्मा ने वह द्वीप उसे उसी समय प्रदान किया था। वह वहाँ के लोगों का वन्दनीय हुआ इसीलिए देव दानवों ने पुष्पवाहन' नाम से उसकी प्रख्याति की।१६-२३। नरेन्द्र! तप के प्रभाव से ब्रह्मा द्वारा सुवर्ण कमल प्राप्त उस सर्वश्रेष्ठ राजा की पत्नी भी उस समय अद्वितीय थी, जिसका सदैव चारों ओर सहस्रों नारियों द्वारा अभिनन्दन होता था। भगवान् शंकर की प्रियतमा पार्वती की भाँति वह लावण्यवती रानी भी अपने पति की अत्यन्त प्रेयसी स्त्री हुई। उस स्त्री से उस राजा के दशसहस्र धनुर्धर एवं परम धार्मिक पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा ने अपने इस वैभव एवं इस प्रकार की स्त्री पुत्रों को देखकर अत्यन्त आश्चर्य हो रहा था। एक बार मुनि प्रवर प्रचेता के आगमन होने पर राजा ने उनकी अभ्यागत सेवा करने के अनन्तर उनसे इस प्रकार कहा, देव मेरी यह अमल विभूति तथा मानव वन्दनीया एवं देवाङ्गनाओं से परम सुन्दरी किस पुण्य द्वारा मुझे प्राप्त हुई है। क्योंकि ऐसी स्त्री की प्राप्ति अल्प पुण्यों द्वारा नहीं हो सकती है। अत्यन्त प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने मुझे कमल गृह प्रदान किया है।२४-२७। जिसमें सौ कोटि राजाओं अथवा उनके मंत्री संमेत असंख्य घोड़े प्रविष्ट होने पर उसी प्रकार नहीं दिखायी देते हैं। जिस भाँति असुर लोकपाल रूपी

तस्मात्किमन्यजननीजठरोद्भवेन धर्मादिकं कृतमशेषजनातिगं स्यात्।
सम्यङ्मयाथ तनयैरनया महर्षे माहार्यया तदखिलं कथय प्रचेतः ॥२९
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ध्यानेनावेक्ष्य चाखिलम्। प्रचेतास्तमुवाचाथ श्रृणु भूप पुरातनम् ॥३०
लुब्धकस्त्वं पुरा राजन्सर्वसत्त्वभयंकरः। आसीदसाधुचरितः सुहृन्मित्रविवर्जितः ॥३१
यतमध्यो ह्रस्वकेशः कृष्णाङ्गो रक्तलोचनः। धनुष्पाणिर्वनगतः कृतान्तकसमो भवान् ॥३२
अभूदनावृष्टिरतीव रौद्रा कदाचिदाहारनिमित्तरोषः।
पद्मान्यथादाय ततो बहूनि गतं पुरं वैदिशनामधेयम् ॥३३
उन्मूल्य लोभाच्च पुरं समस्तं भ्रान्तं त्वयाशेषमहत्तदासीत्।
क्रेता न कश्चित्कमलेषु जातस्तोके भृशं क्षुत्परिपीडितश्च ॥३४
उपविष्टस्त्वमेकस्मिन्सभार्यो भवनाङ्गणे। अथ मङ्गलशब्दस्तु त्वया रात्रौ तथा श्रुतः ॥३५
समाप्य माघमासस्य द्वादश्यां लवणाचलम्। निवेदयंती गुरवे शय्यां चोपस्करान्विताम् ॥३६
अलंकृत्य हृषीकेषं सौवर्णं परमं पदम्। साथ दृष्टा ततस्ताभ्यामिदं चित्तेवधारितम् ॥३७
किमेभिः कमलैः कार्यं वरं विष्णुरलंकृतः। इति भक्तिस्तदा जाता दाम्पत्यस्य नरेश्वर ॥३८
तत्प्रसङ्गात्समभ्यर्च्य केशवं लवणाचलम्। शय्या च पुष्पप्रकरैः पूजिताभूच्च सर्वदा ॥३९

तारागणों के बीच आकाश में नौका नहीं दिखायी देती हैं। महर्षे! इसलिए मैंने कहाँ किस जननी के जठर में जन्म ग्रहण कर कौन धर्म का आचरण किया, जिससे इस प्रकार की श्रेष्ठता, उत्तम युक्तों एवं ऐसी (अनुपम) स्त्री की प्राप्ति मुझे हुई है। प्रचेतस्! आप मेरे इन सभी प्रश्नों के यथोचित्त उत्तर प्रदान करने की कृपा करें। उस राजा की उन सभी बातों को सुनकर महर्षि प्रचेता ने ध्यान द्वाराउसके सम्पूर्ण रहस्य को जानकर राजा से कहना आरम्भ किया राजन्! मैं पुरातन बातें कह रहा हूँ, सुनो! पहले जन्म में तुम अत्यन्त भयंकर लुब्धक (बहेलिया) थे। दुश्चरित्र होने के नाते तुम्हारे कोई मित्र आदि नहीं था। मध्यम कद, छोटे-छोटे केश, कालावर्ण, रक्तनेत्र, और हांथ में धनुष लिए तुम सदैव उस वन के मध्य यम की भाँति दिखायी देते थे। एकबार अनावृष्टि होने के कारण आहार न मिलने पर तुम्हें अत्यन्त रोष उत्पन्न हुआ। शिकार के बदले तुमने अनेक कमलों को तोड़कर साथ लिए अपने विदिशा नगर का प्रस्थान किया। लोभवश समस्त कमलों को तोड़कर वहाँ लाने पर तुम्हारे इस कर्म पर नगर के सभी लोग भ्रान्त से दिखायी पड़ने लगे—अर्थात्! कुछ भी देकर उन कमलों का कोई क्रेता (खरीददार) नहीं हुआ। अत्यन्त क्षुधा से पीड़ित होकर तुम पत्नी समेत किसी घर के अंगने में बैठे-बैठे रात्रि व्यतीतकर रहे थे कि उसी समय मांगलिक शब्दों की ध्वनि कहीं से सुनायी पड़ी।२८-३५। पश्चात् शब्दानुकरण करने पर तुम्हें वह स्त्री दिखायी पड़ी जो इस व्रतानुष्ठान की समाप्ति में माघ मास की द्वादशी के दिन भगवान् हृषीकेश की सुवर्ण प्रति को अलंकार वस्त्रों से विभूषित एवं पूजित कर लवण पर्वत समेत समस्त साधन सम्पन्न एवं सुसज्जित शय्या गुरु को समर्पित कर रही थी। उसे देखकर तुम दोनों के चित्त में ऐसी भावना उत्पन्न हुई कि इन कमलों से भगवान् विष्णु अलंकृत क्यों न किया जाय। नरेश्वर! दम्पति में इस प्रकार की भक्ति उत्पन्न होने पर उसी प्रसङ्ग में लवण पर्वत समेत केशव और उस शय्या को उन पुष्पों द्वारा

अथानङ्गवती तुष्टा तयोर्हेमशतत्रयम् । प्रादाद्गृहीतं ताभ्यां च न तत्सर्वावलम्बनात् ।।४०
अनङ्गवती च पुनस्तयोरन्नं चतुर्विधम् । आनाय्योपहृतं कृत्वा भुज्यतामिति भूपते ।।४१
ताभ्यां तु तदपि त्यक्तं भोज्यावः श्वो वरानने । प्रसङ्गाच्चोपवासेन तवाद्यास्तु सुखावहः ।।४२
जन्मप्रभृति पापिष्टावावां देवि दृढव्रते । सत्प्रसंगाद्धनुर्मध्ये धर्मलाभस्तु चावयोः ।।४३
इति जागरणं ताभ्यं प्रसङ्गात्तदनुष्ठितम् । प्रभाते च तया दत्ता शय्या सलवणाचला ।।४४
ग्रामश्च गुरवे भक्त्या विप्रेभ्यो द्वादशैव हि । वस्त्रालङ्कारयुक्ताङ्गा गावश्च कनकान्विताः ।।४५
भोजनं च सुहृन्मित्रदीनान्धकृपणैः समम् । तत्तु लुब्धकदाम्पत्यं पूजयित्वा विसर्जितम् ।।४६
भवांस्तु लुब्धको जातः सपत्नीको नरेश्वरः । पुष्पाणां प्रकरे तस्मात्केशवस्य प्रपूजनम् ।।४७
प्राप्तं सुदुर्लभं वीर त्वया पुष्करमन्दिरम् । तस्य सर्वस्य माहात्म्यादलं न तपसा नृप ।।४८
यथा कामगतं दक्षं पद्मयोनिं विरिञ्चिना । सन्तुष्टस्तस्य राजेन्द्र ब्रह्मरूपी जनार्दनः ।।४९
शय्यानङ्गवती वेश्या कामदेशस्य साम्प्रतम् । पत्नी सपत्नी सञ्जाता रत्या प्रीतिरिति श्रुता ।।५०
लोकेष्वानन्दजननी सकलामरपूजिता । तदप्युत्सृज्य राजेन्द्र निर्वाणं समवाप्स्यसि ।।५१
इत्युक्त्वा स मुनिः सर्वं तत्रैवान्तर्हितोऽभवत् । राजा यथोक्तं च पुनः स चक्रे पुष्पवाहनः ।।५२

सुसज्जित एवं पूजित किया । अनन्तर अनंगवती ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए उसके उपलक्ष में उन दोनों को तीन सौ प्रदान किया, किन्तु उन लोगों ने उसका कुछ ही अंश स्वीकार किया । अंनगवती ने पुनः चार भाँति के भक्ष्य पुनः उन्हें लाकर दिया और कहा इसे भोजन कर लो । भूपते ! उस समय उन दम्पति ने उसका भी त्याग करते हुए कहा—वरानने ! मैं प्रातः समय इसका भोजन करूँगा प्रसङ्ग वश आप दोनों उस रात्रि उपवास किया, जिसका आज सुखावह परिणाम प्राप्त हुआ । आपने उस समय कहा—दृढवृत करने वाली देवि ! हम लोग जन्म ग्रहण के समय से ही पाप करना आरम्भ किया है, इसलिए महान पापी हैं, किन्तु जीवन में सत्संग वंश आज इतना धर्म लाभ भी हुआ । इस प्रकार कहते सुनते प्रसंग वश रात्रि जागरण भी हो गया । प्रातः काल होने पर अनंगवती नामक उस स्त्री ने लवण पर्वत समेत सुसज्जित शय्या, और गाय भक्ति पूर्वक अपने गुरु को अर्पित कर उन द्वादश ब्राह्मणों को वस्त्र, आभूषण एवं सुवर्ण भूषित गौओं के दान से सुसम्मानित कर सुहृत्, मित्र दीन, अन्धे और कृपणादि व्यक्तियों को भोजन से सन्तुष्ट किया । अनन्तर उस लुब्धक (शिकारी) दम्पति को भी सुसम्मानित कर विदा किया । वही सपत्नीक लुब्धक (बहेलिया) आप नरेश्वर रूप में उत्पन्न हुए हैं । वीर ! आप ने पुष्प समूहों से भगवान् केशव की सुखद अर्चना की है, जिससे अत्यन्त दुर्लभ इस पुष्कर मन्दिर (पुष्कर द्वीप) की प्राप्ति हो हुई है । नृप ! उसी सब का महत्व है, धन परिवार समेत यह तपो दुर्लभ सुवर्ण कमल ब्रह्मा द्वारा तुम्हें प्राप्त हुआ है । राजेन्द्र ! ब्रह्म रूपी जनार्दन देव इस व्रत के अनुष्ठान के ऊपर विशेष सन्तुष्ट होते हैं ।इसीलिए वह अनंगवती वेश्या इस समय कामदेव (काम) की पत्नी रति की सपत्नी रूप से उत्पन्न हुयी है, जो लोकों में सतत आनन्द प्रदायिनी एवं देवों की वन्दनीय है । राजेन्द्र ! आप उसे (स्त्रीको) भी त्याग कर निर्वाण पद प्राप्त करेंगे।३६-५१। इस प्रकार राजा से कहकर मुनि देव उसी समय अन्तर्हित हो गये। राजा पुष्पवाहन ने मुनि के कथनानुसार धर्माचरण

इमामाचरतो ब्रह्मन्नखण्डव्रतमाचरेत् । यथाकथञ्चित्कालेन द्वादश द्वादशीर्मुने ॥
कर्तव्याः शक्तितो देया विप्रेभ्यो दक्षिणा नृप ॥५३

इति कलुषविदारणं जनानामिति पठति शृणोति चातिभक्त्या ।
मतिमपि च ददाति देवलोके वसति स परःशतानि वत्सराणाम् ॥५४

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
विभूतिद्वादशीव्रतवर्णनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ।८५

अथ षडशीतितमोऽध्यायः

मदनद्वादशीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

श्रोतुमिच्छामि भगवन्मदनद्वादशीव्रतम् । सुतानेकोनपञ्चाशद्येन लेभे दितिः पुरा ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

तद्वशिष्ठादिभिः प्रोक्तमित्येका तिथिरुत्तमा । विस्तरेण तदेवेदं मत्सकाशान्निबोधत ॥२
चैत्र मासे सिते पक्षे द्वादश्यां नियतव्रतः । स्थापयेदव्रण कुम्भं सिततण्डुलपूरितम् ॥३
नानाफलयुतं तद्वदिक्षुदण्डसमन्वितम् । सितवस्त्रयुगच्छन्नं सितचन्दनचर्चितम् ॥४

करते हुए इस द्वादशी व्रत का अखण्ड व्रत पालन किया और अन्य को भी उचित है कि इस द्वादशी के बारह व्रतों को सुसम्पन्न करते हुए ब्राह्मणों को यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करे। इस प्रकार इस कलुष विध्वंसक द्वादशी का भक्तिपूर्वक पारायण श्रवण अथवा सम्मति प्रदान करने वाला पुरुष सौ वर्ष तक देव लोक में उत्तम सुखानुभव करता है।५२-५४

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्वाद में
विभूति द्वादशी व्रत वर्णन नामक पचासीवाँ अध्याय समाप्त।८५।

अध्याय ८६

मदनद्वादशीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर—भगवन्! मुझे मदन द्वादशी व्रत सुनने की इच्छा हो रही है, जिसके अनुष्ठान, द्वारा दिति को उन्चास पुत्रों की प्राप्ति हुई है।१

श्रीकृष्ण बोले—वशिष्ठ आदि महर्षियों ने इसके विषय में बताया है कि 'यही एक परमोत्तम तिथि है' उसी को विस्तार रूप से मैं सुना रहा हूँ, सावधान होकर सुनो! चैत्र शुक्ल द्वादशी के दिन संयम पूर्वक व्रत नियम पालन करते हुए श्वेत तण्डुल पूर्ण सुन्दर कलश की स्थापना करे, जो अनेक भाँति के फल और ऊख दण्ड से संयुक्त तथा श्वेत वस्त्र से आच्छन्न, श्वेत चन्दन (मलयागिर) से चर्चित, एवं अनेक भाँति के

नानाभक्ष्यसमोपेतं सहिरण्यं च शक्तितः । ताम्रपात्रं गुडोपेतं तस्योपरि निवेदयेत् ॥५
तस्योपरि तथा कामं कदलीदलसंस्थितम् । कुर्याच्छर्करयोपेतमिति तस्य समीपतः ॥६
गन्धं पुष्पं तथा दद्याद्गीतं वाद्यं च कारयेत् । तदलाभे कथां कुर्यात्कामकेशवयोर्नरः ॥७
कामं नाम्ना हरेरर्चां स्नापयेद्गन्धवारिणा । शुक्लपुष्पाक्षततिलैरर्चयेन्मधुसूदनम् ॥८
कामाय पादौ सम्पूज्य जङ्घे सौभाग्यदाय च । मन्मथाय तथा मेढ्रं माधवाय कटिं नमः ॥९
शान्तोदरायेत्युदरमनङ्गायेत्युरो हरेः । मुखं पद्ममुखायेति बाहुं पञ्चशराय वै ॥१०
नमः सर्वात्मने मौलिमर्चयेदिति केशवम् । ततः प्रभाते कुम्भं च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥११
ब्राह्मणान् भोजयेद्भक्त्या स्वयं च लवणादृते । भक्त्यार्थं दक्षिणां दद्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥१२
प्रीयतामत्र भगवान्कामरूपी जनार्दनः । हृदये सर्वभूतानां यथा वेदोऽभिधीयते ॥१३
अनेन विधिना सर्वं मासिमासि समाचरेत् । फलमामलकं प्राश्य द्वादश्यां भूतले स्वपेत् ॥१४
ततस्त्रयोदशे मासि घृतधेनुसमन्विताम् । शय्यां दद्याद्द्विजेन्द्राय सर्वोपस्करसंयुताम् ॥१५
काञ्चनं कामदेवं च शुक्लां गां च पयस्विनीम् । वसोभिर्द्विजदांपत्यं पूज्य शक्त्या विभूषणैः ॥१६
होमः शुक्लतिलैः कार्यः कामनामानि कीर्तयेत् । गव्येन सर्पिषा तत्र पायसेन च धर्मवित् ॥१७

भक्ष्य भोज्य और यथाशक्ति हिरण्य से भूषित हो। ताम्रपात्र में गुड़ रख कर उसके ऊपर रखते हुए कदलीदल और शक्कर भी रखना चाहिए। अनन्तर उसके समीप भगवान् की प्रतिमा का गंध पुष्पादि द्वारा अर्चन तथा गीत वाद्य करना चाहिए। उसके प्रभाव में केशव की कथा चर्चा होनी चाहिए।२-७। भगवान् के नामों के उच्चारण पूर्वक भगवान् मधुसूदन एवं काम की अर्चना गंध मिश्रित जल, श्वेत पुष्प, अक्षत तथा तिल द्वारा सुसम्पन्न करते हुए—काम को नमस्कार है, इससे उनके चरण युगल सौभाग्य दायक को नमस्कार है, कहकर जाँघे, मन्मथ को नमस्कार है कहकर कटि, शान्तोदर को नमस्कार है, कहकर उदर, अनंग को नमस्कार है, कहकर उरु, पद्ममुख को नमस्कार है, कहकर मुख, पञ्चशर को नमस्कार है, कहकर बाहू, और सर्वातमा को नमस्कार है, कहकर उनके शिर की अर्चना करनी चाहिए। इस प्रकार भगवान् विष्णु केशव की अर्चना सुसम्पन्न कर पुनः प्रातः काल वह कलश किसी विद्वान् ब्राह्मण को सादर समर्पित करे। अनन्तर ब्राह्मणों को भक्ति पूर्वक भोजन और यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान द्वारा संतुष्ट कर इस प्रकार क्षमा प्रार्थना करे कि—'कामरूपी भगवान् जनार्दन इस व्रतानुष्ठान द्वारा मुझ पर उसी प्रकार प्रसन्न हों, जिस प्रकार समस्त प्राणियों के हृदय में वेद भगवान् धारण करने पर निहित रहते हैं। पश्चात् लवण हीन भोजन कर उसकी समाप्ति करे। इस भाँति प्रत्येक मास में सविधान इसे सुसम्पन्न करते हुए उस द्वादशी के दिन आँवले का प्राशन और भूमि शयन करना चाहिए।८-१४। तदुपरांत तेरहवें मास में व्रत के समाप्त होने पर घृत धेनु समेत सब साधन सम्पन्न सुशय्या किसी विद्वान् ब्राह्मण को सादर समर्पित कर काम देव की सुवर्ण प्रतिमा श्वेत वर्ण की पयस्विनी (कपिला) गौ, यथा शक्ति वस्त्राभूषण द्वारा द्विज दम्पति के पूजन और काम के नामों के उच्चारण पूर्वक श्वेत तिल का हवन करना चाहिए। अनन्तर उस धार्मिक को चाहिए कि—गौ के घृत पूर्ण खीर के भोजन द्वारा ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करते हुए कृपणता का त्याग करें और

विप्रेभ्योभोजनं दद्याद्वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् । इक्षुदण्डान्नरो दद्यात्पुष्पमालां च शक्तितः ॥१८
यः कुर्याद्विधिनानेन मदनद्वादशीमिमाम् । सर्वपापदिनिर्मुक्तः प्राप्नोति परमं पदम् ॥१९
इह लोके वरान्पुत्रान्सौभाग्यं सुखमश्नुते । कश्यपो व्रतमाहात्म्यादागत्य परया मुदा ॥२०
चकाराकर्कशां भूयो रूपलावण्यसंयुताम् । वरेण च्छन्दयामास या च वव्रे वरं वरम् ॥
पुत्रं शत्रुवधार्थाय समर्थममितौजसम् ॥२१
प्रार्थयामि महाभाग्यं सर्वामरनिषूदनम् । कश्यपः प्राह तां भद्रे एवमस्तु सुशोभने ॥२२
सम्वत्सरशतं त्वेकं गर्भो धार्यः सुखेप्सया । सन्ध्यायां नैव भोक्तव्यं गर्भिण्या वरवर्णिनि ॥२३
न स्थातव्यं न गन्तव्यं वृक्षमूलेषु सर्वदा । नोपस्कारे भुवि विशेन्मुसलोलूखलादिषु ॥२४
जलं न चावगाहेत शून्यागारं विवर्जयेत् । वर्जयेत्कलहं गेहे गात्रभङ्गं तथैव च ॥२५
मुक्तकेशी न तिष्ठेत नाशुचिः स्यात्कथञ्चन । न शयीतोन्नतशिरा न चाप्यर्द्रशिराः क्वचित् ॥२६
न वस्तुहीना नोद्विग्ना नार्द्रपादा न भूतले । नामङ्गल्यां वदेद्वाचं न च हास्यपरा भवेत् ॥२७
कुर्याच्च गुरुशुश्रूषां नित्यं मङ्गलतत्परा । सर्वौषधीभिः कोष्णेन वारिणा स्नानमाचरेत् ॥२८
कुस्त्रियो नाभिभाषेत वस्त्रवातं विवर्जयेत् । मृतवत्सादिसंसर्गं परगेहं च सुन्दरि ॥२९
न शीघ्रं मार्गमाक्रामेंल्लङ्घयेन्न महानदीम् । न च वीभत्सकं किञ्चिनुचेद्रक्षयेद्भयानकम् ॥३०
गुरुवातुलमाहारमजीर्णं न समाचरेत् । सम्पूर्णगर्भिण्यायामं व्यायामं वा विवर्जयेत् ॥३१

यथाशक्ति उक्त दण्ड एवं पुष्प माला से भूषित कर दक्षिणा समेत उन्हें विसर्जित करें । इस विधान द्वारा मदन द्वादशी व्रत को सुसम्पन्न करने पर समस्त पातकों के विनाश एवं परम पद की प्राप्ति होती है । तथा इस लोक में सुख सौभाग्य की प्राप्ति पूर्वक अनेक उत्तम पुत्रों की प्राप्ति भी होती है । इसी व्रत महात्म्य से अत्यन्त प्रसन्न होकर महर्षि प्रवर कश्यप जी ने कोमलाङ्गी एवं रूप लावण्य सम्पन्न उस अपनी दिति नामक भार्या के पास पहुँच कर उसे यथेच्छ वर याचना की अनुमति प्रदान की । उस सुन्दरी ने कहा—देव ! महाभाग ! शत्रुओं के वध करने के लिए समर्थ एवं अमित तेजस्वी पुत्र की मैं प्रार्थना कर रही हूँ, जो समस्त देव वृन्दों का समूल विनाश कर सके । इसे सुनकर कश्यप जी ने कहा—भद्रे ! ऐसा ही होगा । किन्तु सुशोभने ! इस सुख वाञ्छा की पूर्ति के लिए तुम्हें सौ वर्ष तक एक गर्भ धारण करना पड़ेगा । वरवर्णिनी ! गर्भिणी को सन्ध्या काल में भोजन करना निषिद्ध है, वृक्षों के मूल भाग पर न चढ़ना एवं न बैठना चाहिए । उसी भाँति भूमि में मूशल उलूखल (ओखली) पर या उसके सहारे बैठना, किसी जलाशय में प्रविष्ट होकर स्नान, शून्य गृह में निवास, गृह में कलह, तथा गोत्र भंग न करना चाहिए उसी भाँति खुले वेश और किसी प्रकार अपवित्र न रहना चाहिए । उन्नत शिर करके शयन जलार्द्र शिर, वस्तुहीन, उद्विग्न एवं चरण प्रक्षालन कर भूमि में चलना निषिद्ध है । उन्हें कभी भी अमांगलिक वाणी के उच्चारण एवं हास्य न करना चाहिए । मंगल भावना से नित्य गुरु सेवा और समस्त औषध मिश्रित कुछ गर्म जल से स्नान करना आवश्यक होता है ।१५-२८। दुष्प्रकृति वाली स्त्रियों के साथ बात चीत तथा वस्त्र की वायु का सेवन उन्हें नहीं करना चाहिए । सुन्दरि ! मृतवत्सा (अल्पायु संतान वाली) आदि स्त्रियों के साथ, पर गृह गमन, शीघ्रतापूर्वक मार्ग गमन, तथा महा नदी का उल्लंघन अथवा संतरण न करना चाहिए । किसी बीभत्स एवं भयानक का दर्शन, गुरु भोजन, वायुरोग एवं अजीर्ण रोग उत्पन्न कारक भोजन निषिद्ध है । गर्भिणी को परिश्रम या व्यायाम कभी न करना चाहिए । उन्हें सदैव औषधों

गर्भो रक्ष्यः सदौषध्या हृदि धार्यो न मत्सरः। अनेन विधिना साध्वि शोभनं पुत्रमाप्नुयात् ॥३२
अन्यथा गर्भपतनं स्तम्भनं वा प्रवर्तते। तस्मात्त्वननया वृत्या गर्भेऽस्मिंश्च समाचरेः॥
भविष्यति शुभः पुत्रः सर्वावयवसुन्दरः ॥३३
स्वस्त्यस्तु ते गमिष्यामि तथेत्युक्तस्तया च सः। पश्यतां सर्वभूतानां तत्रैवान्तर्हितोभवत् ॥३४
ततः सा कश्यपोक्तेन विधिना समतिष्ठत। अथाप पुत्रान्दिव्याशदेकोनान्पाण्डुनन्दन ॥३५
एवमन्यापि या नारी मदनद्वादशीमिमाम्। करोति पुत्रानाप्नोति सह भर्त्रा सुखी भवेत् ॥३६

एकोनमर्द्धशतमाप दितिः सुतानां येन व्रतेन बलवीर्यसमन्वितानाम्।
मर्त्यः समाचरित पुत्रधनाभिलाषी तत्सर्वमत्र सफलं भवतीह पुंसः ॥३७

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
मदनद्वादशीव्रतवर्णनं नाम षडशीतमोऽध्यायः।८६

अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः

अबाधकव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

कान्तारवनदुर्गेषु सुप्रसन्नाटवीषु च। समुद्रतरणे दाने सङ्ग्रामे तस्करार्दने ॥१
कां देवतां स्मरेत्कृष्ण परित्राणाकरीमिह। कथं च देवः पुरुषः परित्राणं स्मृतो जनैः ॥२

द्वारा गर्भ रक्षा का विशेष ध्यान रखना और मन में कभी मत्सर आदि दोष न आने पाये। साध्वि! इस विधान द्वारा उसे उत्तम पुत्र की प्राप्ति होती है, अन्यथा गर्भ के पतन या स्तम्भन होने का भय रहता है। इसलिए तुम इन विधानों द्वारा इसकी रक्षा करो। इससे सर्वाङ्ग सुन्दर एवं एक शुभ पुत्र का जन्म होगा। अनन्तर 'स्वस्त्यस्तु' (तुम्हारा कल्याण हो) कहकर सब के देखते उसी स्थान अर्न्तहित हो गये और दिति ने भी उनकी बातों को स्वीकार कर उसी विधान को आरम्भ किया। पाण्डुनन्दन! कश्यप जी के बताये हुए विधान पालन के फल स्वरूप उसे (दिति) को उन्चास पुत्रों की प्राप्ति हुई। इसी भाँति अन्य स्त्रियाँ भी इस मदन द्वादशी के अनुष्ठान द्वारा अनेक पुत्रों की प्राप्ति पूर्वक पति समेत सुखी रह सकती है। इस व्रतानुष्ठान द्वारा दिति ने बलवीर्य सम्पन्न उन्चास पुत्रों की प्राप्ति की है, अतः पुत्र धन की अभिलाषा वाले मनुष्य भी इस अनुष्ठान द्वारा सम्पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकेंगे।२९-३७

श्री भविष्य महापुराण के उत्तरपर्व के श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
मदन द्वादशी व्रतवर्णन नामक छियासीवाँ अध्याय समाप्त।८६।

अध्याय ८७

अबाधकव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण! घोरवन, दुर्ग, जंगलों की भाँति विस्तृत ऊसर भूमि, समुद्र तरण, दान, संग्राम, तथा तस्कर जनित उपद्रव के समय किस रक्षक देवता का स्मरण किया जाता है एवं उस देव श्रेष्ठ पुरुष को मनुष्यों ने अपना त्राण कर्ता कैसे समझा।१-२

श्रीकृष्ण उवाच

सर्वमङ्गलमाङ्गल्यां दुर्गां भगवतीमिमाम् । नाप्नोति दुःखं पुरुषः संस्मरन्सर्वमङ्गलाम् ॥३
अलक्ष्यां लक्ष्यभूतानां संस्मरन्सर्वमङ्गलाम् । न भयं समवाप्नोति पुरुषः पार्थ कुत्रचित् ॥४
यदा तां प्रतिजिज्ञासुरवन्त्यामहमागतः । पुरा सन्दीपनिः पार्थ बलेन सह भारत ॥५
प्राप्तविद्येन च मया प्रतिज्ञातास्य दक्षिणा । दिव्यं स्तवं विदित्वा मे तेनाहं याचितः प्रभो ॥६
प्रभासतीर्थे पुत्रो मे गतः केनाप्यसौ हतः । तमानय महाबाहो सत्यं कुरु वचो मम ॥७
उपाध्यायस्य वचनाद्वैवस्वतपुरे मया । प्राप्तः सन्दीपनेः पुत्रः समानीतः क्षणादसौ ॥८
दक्षिणां तामुदाहृत्य प्रस्थितौ पुनरागतौ । स्थानमेतत्स्वपादांकं कृत्वावां गृहमागतौ ॥९
ततः प्रभृति पुत्रार्थाः पूजयन्ति जनाः सदा । मां चैव बलभद्रं च मध्यस्थां सर्वमङ्गलाम् ॥१०
वामे नारायणो हंस एवमेव च के भवेत् । अबाधकं योर्चयते तृतीयं कुन्तिनन्दन ॥११
त्रयोदश्यां सिते पक्षे मासिमासि यतव्रतः । नक्तेनैवोपवासेन एकभक्तेन वा पुनः ॥१२
गन्धपुष्पैश्च मधुभिः सीधुभिश्च सुरासवैः । मृण्मयीं काञ्चनीं वापि कृत्वा प्रतिकृतिं तु यः ॥१३
यक्षगन्धबलिक्षेपैः पललौदनसंसृजैः। योऽभ्यर्चयति राजेन्द्र सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१४
नारी वा भर्तृसहिता स्वर्गलोके महीयते ॥१५

श्रीकृष्ण बोले—सर्वमङ्गल रूप, एवं मांगलिक कार्यों के लिए प्रख्यात भगवती दुर्गा के स्मरण करने पर मनुष्य कभी दुःखी नहीं होता है । पार्थ ! उस सर्वमङ्गला भगवती के स्मरण करने पर जो प्राणियों के दृष्टि गोचर न होती हुई भी समस्त मंगल प्रदान करती है, पुरुषों को किसी प्रकार का भय नहीं होता है । भारत ! उसके प्रति जिज्ञासा प्रकट करते हुए मैं बलभद्र के साथ जिस समय अवन्ति नगरी के सुप्रतिष्ठित संदीपन ब्राह्मण के घर आपसे और उनसे विद्याध्ययन कर अन्त में गुरु दक्षिणा की प्रतिज्ञा करते समय मुझसे उन्होंने दिव्य भावना से प्रेरित होकर कहा—प्रभो ! मेरे पुत्र को प्रभास तीर्थ में किसी ने आहत कर दिया है, महाबाहो ! मैं चाहता हूँ कि मेरी बात को सत्य करते हुए आप उसे अवश्य लायेंगे । मैंने अपने उपाध्याय (अध्यापक) की बातें सुनकर यमराज के यहाँ जाकर उन संदीपन के पुत्र को उसी समय वहाँ से लाया और दक्षिणा रूप में उन्हें सौंप कर पुनः हम दोनों इसी स्थान से होकर अपने घर गये । उसी समय से संसार के सभी लोग मुझे बलभद्र को तथा मध्य में सर्वमङ्गला दुर्गा भगवती की पूजा करते हैं । कुन्ति उनके बायें भाग नारायण, बलभद्र और तीसरा उन्हें अबाध रूप से जो प्रतिमास की शुक्रत्रयोदशी के दिन संयम पूर्वक नक्त व्रत, उपवास अथवा एकाहार करके गंध, पुष्प, मधु, ईख का मध और सुरासव द्वारा उनकी सुवर्ण प्रतिमा अथवा मृत्तिका की मूर्ति की अर्चना यक्षगन्ध की धूप बलि प्रदान एवं मांस भात द्वारा सुसम्पन्न करते हैं, उनके सभी पातक विनष्ट हो जाते हैं । राजेन्द्र ! स्त्री भी इसे सुसम्पन्न करने पर पति समेत स्वर्ग की पूजनीय होती है ।३-१५। इस प्रकार शुक्र त्रयोदशी के दिन अम्बा अम्बिका

अम्बाम्बिके द्विदशमेऽह्नि सिते सदैव यः पूजयेत्कुसुममांससुरोपहारैः।
नश्यन्ति तस्य भवनेष्वतिभीषणानि चौराग्निराजजनितानि भयानि सद्यः ॥१६

इति भविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
अबाधकव्रतवर्णनं नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः।८७

अथाष्टाशीतितमोऽध्यायः

मन्दारकनिम्बार्कव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

ब्रूहि मे यदुशार्दूल व्रतं गन्धविनाशनम्। कटुतिक्ताम्लदेहोत्थदौर्भाग्यशमनं तथा ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

इमं प्रश्नं पुरा पार्थ जाजुकर्ण्यो महामुनिः। पृष्टो राज्ञ्या विष्णुभक्त्या कालनन्दनजातया ॥२
कथयामास सम्पृष्टः सूपविष्टा शृणोति सा। देवी कृताञ्जलिपुटा जाजुकर्ण्योऽवदद्व्रतम् ॥३
ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे त्रयोदश्यां युधिष्ठिर। स्नात्वा पुण्यनदीतोये पूजयेच्छुभदेशजम् ॥४
श्वेतमन्दारकमर्कं वा करवीरं च रक्तकम्। निम्बं च सूर्यदेवस्य वल्लभं दुर्लभं तथा ॥५
पुष्पैर्नैवेद्यधूपाद्यैर्मन्त्रेणानेन पाण्डव। निरीक्ष्य गगने सूर्यं ध्यात्वा हृदि समुच्चरेत् ॥६
सूर्यं श्वेतारमन्दारश्वेतार्कास्यसंशयम्। करवीर नमस्तुभ्यं निम्बवृक्ष नमोऽस्तु ते ॥७

भगवती की अर्चना पुष्प, मांस, आसव एवं बलिदान द्वारा सुसम्पन्न करने पर उसके गृह की समस्त बाधा चोर, अग्नि, एवं मृगी आदि से रोगजनित सभी दोष उसी समय नष्ट होते हैं।१६

श्री भविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्वाद में
अबाधक व्रत वर्णन नामक सतासीवाँ अध्याय समाप्त।८७।

अध्याय ८८

मन्दार निम्बार्क व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—यदुशार्दूल! मुझे एक ऐसा व्रत बताने की कृपा कीजिये जिसके अनुष्ठान द्वारा कटु, तिक्त और अम्ल (खट्टा) रसपूर्ण उसदेह ज्ञनित दुर्गंध का विनाश एवं दुर्भाग्य का शमन होता है।१

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ! पहले समय में कालनन्दनजाति में उत्पन्न उस विष्णु भक्ता रानी ने यही प्रश्न जाजुकर्ण्य महर्षि से किया था। उसके पूछने पर जाजुकर्ण्य ने कहना आरम्भ किया और वह बैठी हुई हांथ जोड़े सुन रही थी—युधिष्ठिर! ज्येष्ठ मास की शुक्ल त्रयोदशी के दिन नदी के पवित्र जल से स्नान करके किसी शुभ स्थान में उत्पन्न श्वेत मंदार, अर्क, रक्त कनेर, अथवा सूर्य देव के अत्यन्त वल्लभ नीम की जो अन्य के लिए दुर्लभ है, पुष्प, नैवेद्य, धूप, आदि द्वारा मंत्रोंच्चारण पूर्वक अर्चना करनी चाहिए। पाण्डव! आकाश मध्य में सूर्य का निरीक्षण एवं हृदय में ध्यान करते हुए सूर्य, श्वेत मंदार, श्वेत अर्क तथा

इत्थं योऽर्कपतेर्भक्त्या वर्षेवर्षे पृथङ् नरः । मूलमन्त्रेण नृश्रेष्ठ वा नारी भक्तिसंयुता ॥
तस्याः शरीरदौर्गन्ध्यं दौर्भाग्यं वा अजाविकम् ॥८

निम्बं नवार्ककरवीरलतां सुपुष्पां याः पूजयन्ति कुसुमाक्षतधूपदीपैः ।
ताः सर्वकामसुखभोगसमृद्धिभाजो दौर्भाग्यदोषरहिताः सुभगा भवन्ति ॥९

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
मन्दारनिम्बार्ककरवीरव्रतवर्णनं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ।८८

अथैकोननवतितमोऽध्यायः

त्रयोदशीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

यमस्याराधनं ब्रूहि श्रीवत्स पुरुषोत्तम । कथं न गम्यते कृष्ण नरकं नरकेसरिन् ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

द्वारवत्यां पुरा पार्थ स्नातोऽहं लवणाम्भसि । दृष्टवान्मुनिमायान्तं मुद्गलं नाम पार्थिव ॥२
प्रज्वलन्तमिवादित्यं तपसा द्योतितान्तरम् । तं प्रणम्यार्घ्यसत्कारैः पप्रच्छाहं युधिष्ठिर ॥३
यमादर्शननामैतद्व्रतं जन्तुभयापहम् । कथयामास सकलं मुद्गलो विस्मयान्वितः ॥४

कनेर एवं निम्ब वृक्ष को नमस्कार है। कहकर उसकी समाप्ति करे। इस प्रकार प्रति वर्ष श्रद्धा भक्ति समेत मूल मंत्र के उच्चारण पूर्वक सूर्य की आराधना करने वाले मनुष्य (स्त्री या पुरुष) की शरीर के दुर्गंध और दुर्भाग्य समूल विनष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार नीम, श्वेतार्क, श्वेत मंदार, और कनेर की पुष्पित लता की पुष्प, अक्षत, धूप, दीप द्वारा अर्चना करने वाली स्त्रियों और पुरुषों के शरीर के दुर्गंध की शांति पूर्वक उन्हें समस्त सुखभोग एवं समृद्धि सौभाग्य प्राप्त होते हैं।२-९

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वाद में
मन्दार निम्बार्क करवीर व्रत वर्णन नामक अट्ठासीवाँ अध्याय समाप्त।८८।

अध्याय ८९

त्रयोदशीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—श्रीवत्स पुरुषोत्तम एवं नरकेसरिन ! मुझे यम की आराधना बताने की कृपा कीजिये तथा कृष्ण ! नरक गमन न करने के लिए क्या उपाय है।१

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! पहले समय में मैं द्वारका पुरी में रहकर एक समय लवण (खारी) समुद्र में स्नान कर रहा था, उसी समय मुद्गल नामक महर्षि आते हुए दिखायी दिये। पार्थिव ! वे ज्वलन्त सूर्य की भाँति अपने तप अग्नि से पूर्ण प्रकाशित होने के नाते दिखायी देते थे। युधिष्ठिर ! मैंने प्रणाम पूर्वक अर्घ्यादि सत्कार से सुसम्मानित करने के अनन्तर उनसे पूँछा। उसे सुनकर मुद्गल ने आश्चर्य चकित होकर उस व्रत की कथा कहना आरम्भ किया जिस समय के दर्शन न होने एवं जन्तुओं के समस्त नष्ट हो जाते हैं।२-४।

मुद्गल उवाच

अकस्मात्कृष्ण मूर्च्छा मे पतितोऽस्मि धरातले । पश्यामि दण्डपुरुषैर्मद्देहात्प्रज्वलन्निव ।।५
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो बलादाकृष्य रोषितः । बद्धो यमभटैर्गाढं नीयते वेदवादिभिः ।।६
क्षणात्सभायां पश्यामि यमं पिङ्गललोचनम् । कृष्णावदातं रौद्रास्यं मृत्युं व्याधिशतान्वितम् ।।७
वातपित्तमहाश्लेष्मैर्मूर्तिमद्भिरुपासितम् । कासशोफज्वरान्तकस्फोटिकालूतमारिभिः ।।८
ज्वरगर्दभशीर्षादिभङ्गन्दरमलक्षयैः । गण्डमालाक्षिरोगैश्च मूत्रकृच्छ्रहोव्रणैः ।।९
वेदनाभिः प्रमेहैश्च पिटकैर्गंडबुद्बुधैः । विषूचिकागलग्राहदरिद्राभूततस्करैः ।।१०
इत्थं बहुविधै रौद्रैर्नानारूपभयंकरैः । करालशस्त्रहस्तैश्च संग्रामैर्नरकैस्तथा ।।११
राक्षसैर्दानवैरुग्रैरुपविष्टैः पुरः स्थितैः । धर्माधिकरणस्थैश्च चित्रगुप्तादिलेखकैः ।।१२
सिंहव्याघ्रैर्वराहैश्च तरक्षैश्चानुजन्तुकैः[1] । वृश्चिकैर्दंशमशकैः शिवासर्पैः सडुण्डुभैः ।।१३
गृध्रैरुलूकैर्बहुभिर्मत्कुणैर्डाकिनीग्रहैः । अपस्मारस्मरोन्मादवृद्धिकारेवतीग्रहैः ।।१४
पिशाचैर्यक्षकूष्माण्डैः पाशखड्गधनुर्द्धरैः । मुक्तकेशैस्त्रासकरैर्भ्रुकुटीकुटिलाननैः ।।१५
बृहत्कायैर्नारकीयैः पापिष्ठानां नियामकैः । असिपत्रवनाङ्गारैः क्षारगर्ताण्डदायकैः ।।१६
असिभङ्गामिषच्छेदरुधिरस्रावकादिभिः । आस्थाने सम्भृतो भाति यमो मृत्यूपमोसमः ।।१७
स आह किङ्करान्सर्वान्धर्मराजो जनार्दन । किमयं मुनरानीतो युष्माभिर्भ्रांतनामभिः ।।१८

मुद्गल बोले—कृष्ण ! एक बार मुझे अकस्मात् मूर्च्छा आ गई जिससे मैं भूमि में गिर गया । उस समय मुझे दिखायी देता था कि यम के दूत हाथ में दण्ड लिए, जो वेद वादी भी माने जाते हैं, मेरी देह से एक अंगुष्ठ मात्र के पुरुष को जो अत्यन्त प्रदीप्त था, बलात् निकाल कर दृढ बन्धनों से बाँधे लिये जाते हों । क्षण मात्र में मैंने सभा में पहुँच कर पिंगल नेत्र कृष्ण वर्ण, भीषण मुख और सैकड़ों मृत्यु व्याधियों से घिरे यम को देखा । वे वात, पित्त, महाश्लेष्मा मूर्ति मान होकर उनकी उपासना कर रहे थे और कास (खांसी), शोफ, ज्वरांतक, स्फोटक, लूता, मारी (मृगी) गर्दभशिखर लिज्वर, भगंदर, गंडमाला, नेत्र रोग, मूत्रकृच्छ, हरव्रण, वेदना, प्रमेह, पिटक, गंडबुद्बुद, विषूचिका, गलग्रह, दरिद्रता, भूत तस्कर, आदि अनेक भाँति के रौद्र एवं भीषण रूपवाले तथा कराल शस्त्र धारीसंग्राम, नरक, दानव, और धर्माधिकारी चित्रगुप्त आदि लेखकों से संयुक्त थे । सिंह, व्याघ्र, वाराह, तरक्षु (लकडबग्घा), जम्बूक, विच्छी, दंश (डसा) मशक (मसा) शिवासर्व, दुदुंभ, गीध, उल्लू, मत्कुण (खटमल) वृन्द, डाकिनी, ग्रह, अपस्मार, स्मरोरभाद, वृद्धिका, रेवती गृह, पिशाच, यक्ष, कूष्माण्ड, एवं पाश, खड्ग, धनुष लिए केश बिखरे, हाथों द्वारा मास दिखाने, भौंहे टेढ़ी मुख कुटिल एवं वृहत्काय वाले वे नारकीय दूत गण जो पापियों परे नियंत्रण रखते हैं, अपने असिपत्र, वनांगार, क्षारगर्त (गड्ढा) दण्ड दायक वहाँ उपस्थित थे जो तलवार भङ्ग व्याज से नारकीय प्राणियों के अंगच्छेद कर रुधिर स्राव कर रहे थे।५-१७। जनार्दन ! उस समय धर्मराज ने अपने दूतों से कहा—तुम लोगों ने भ्रम में पड़कर नाम वाले इस महर्षि को क्यों यहाँ उपस्थित किया। मैंने

---

१. जानुंजम्बुकैः ।

मुद्गलो नाम कौडिन्ये नगरे भीष्मकात्मजः। क्षत्रियोऽस्ति स आनेयः क्षीणायुस्त्यज्यतां मुनिः॥१९
इत्युक्तास्ते गतास्तस्मादायाताः पुनरेव ते। ऊचुर्यमभटाः प्रह्वा धर्मराजं सविस्मयाः॥२०
अस्माभिस्तत्र क्षीणायुर्नल देही लक्षितो गतैः। न जानीमो भानुसूनो कथञ्चित्तद्भ्रान्तमानसाः॥२१

यमराज उवाच

प्रायेण ते न दृश्यन्ते पुरुषैर्यमकिंकरैः। कृता त्रयोदशी नरकार्तिविनाशिनी॥२२
उज्जयिन्यां प्रयागे वा भैरवे वाथ ये मृताः। तिलान्नगोहिरण्यादि दत्तं यैश्च गवाह्निकम्॥२३

दूत उवाच

कीदृशं तद्व्रतं स्वामिञ्छंस नो भास्करात्मज। किं तत्र वद कर्तव्यं पुरुषैस्तव तुष्टिदम्॥२४

यम उवाच

पूर्वाह्णे मार्गशीर्षादौ वर्षमेकं निरन्तरम्। त्रयोदश्यां सौम्यदिने सूर्यागारवर्जितः॥२५
मम[1] नाम्ना द्विजानष्टौ पञ्च चैव समाह्वयेत्। वेदान्तगाञ्जातिशुद्धाञ्छान्तचित्तान्सुशोभनान्॥२६
वाचकश्चापि तन्मध्ये सदा भास्करवल्लभान्। दिनस्य प्रथमे यामे शुचौ देशे समास्थितान्॥२७
अन्तर्वासोवृतान्भक्तान्सोपदिष्टदिगुन्मुखान्। अभ्यङ्गयेच्छिरोदेशत्तिलतैलेन मर्दयेत्॥२८
स्नापयेद्गन्धकाषायैः सुखोष्णाम्बुभिरेव च। पृथक्पृथक्स्नापयित्वा सर्वानेव द्विजोत्तमान्॥२९

कौंडिन्य नगर के निवासी भीष्मवंशज एवं क्षत्रिय कुलोत्पन्न उस मुद्गल को यहाँ लाने के लिए कह रहा था। अतः इस मुनि को छोड़ दो और उसी को ले आओ। इसभाँति उनके कहने पर दूत गण वहाँ जाकर पुनः लौट आये और विनीत भाव से आश्चर्य प्रकट करते हुए धर्मराज से कहने लगे—भानु पुत्र! भ्रान्त होने के नाते हम लोग वहाँ जा कर भी किस क्षीण पुवाल देही को नहीं देखा, नहीं जानते कि इसका रहस्य क्या है।१८-२१

यमराज बोले—किंकर वृन्द! तुमलोग आप उन पुरुषों को नहीं देख सकते हो, जिन्होंने नरक दुःख विनाशिनी इस त्रयोदशी व्रत का अनुष्ठान सुसम्पन्न किया है। उज्जयिनी, प्रयाग एवं भैरव स्थान में जिसने तिल, पुत्र, गौ, और हिरण्य इस प्रकार के गवाह्निक दान किया है, उसे देखना असम्भव है।२२-२३

दूतों ने कहा—स्वामिन् भास्करात्मज किस प्रकार का यह व्रत है, और उसमें आप के प्रसन्नार्थ पुरुषों का क्या कर्तव्य है, हमें बताने की कृपा करें।२४

यमराज बोले—मार्गशीर्ष (अगहन) मास से प्रारम्भ कर प्रत्येक त्रयोदशी चन्द्रवार के पूर्वाह्ण समय मेरे नाम पर इस प्रकार के तेरह ब्राह्मणों को निमंत्रित करे, जो अध्यात्म निपुण, अति शुद्ध, शांतचित्त, एवं परम सुशोभन हों। उनके मध्य में किसी भास्कर प्रिय को वाचक पद पर प्रतिष्ठित करे। दिन के प्रथम भाग में पवित्र स्थान में स्थित उन लंगोटीधारी, भक्त एवं रूप दिष्ट ब्राह्मणों के शिर आदि प्रत्येक अंग में तिल तैल मर्दन कर गन्ध पूर्ण एवं किंचित उष्ण को आसनासीन करे। अनन्तर उस व्रती एवं भक्ति परायण पुरुष को चाहिए कि स्वयं उनकी शुश्रूषा करके पृथक् सभी की पूर्वाभिमुख बैठकर

---

१. यमनाम्ना।

शुचिर्भूत्वा तथाचान्तो व्रती भक्तिपरायणः । स्वयं सम्भृत्य शुश्रूषां तेषां कृत्वा नरोत्तम ।।३०
प्राङ्मुखानुपविष्टांश्च त्रयोदश पृथक्पृथक् । भोजयेच्छालिमुद्गाद्यं गुडपूपान्सुखोचितान् ।।३१
सुव्यञ्जनं सुपक्वान्नं भूयोभूयो निवेदयेत् । शुचिर्भूत्वा तथाचान्तो ह्यर्चयेत्तिलतण्डुलैः ।।३२
प्रस्थमात्रैरथैकैकं ताम्रपात्रसमन्वितैः । सदक्षिणैः सच्छत्रैश्च जलकुम्भैः पवित्रकैः ।।३३
चर्मप्रावरणैः श्रेष्ठैस्तेषां दत्त्वा विसर्जयेत् । मन्त्रेणानेन राजेन्द्र अर्चयेत्तान्पृथक्सुधीः ।।
ब्राह्मणान्वाचकं वापि पंक्तिभेदं न कारयेत् ।।३४
ॐ नमः शनैश्चरो मृत्युर्दंडहस्तो विनाशकः । अभावः प्रलयः सौरिर्दुःखघ्नः शमनोऽन्तकः ।।३५
लोकपालो ह्यतिक्रूरो रौद्रो घोराननः शिवः । यमः प्रसन्नमानस्को दद्यान्मेऽभयदक्षिणाम् ।।३६

(स्वाहा)

इत्युक्त्वा सम्प्रयच्छेच्च देयं दत्त्वा व्रती पुनः । द्विजांश्चानुव्रजेत्तृप्तान्गृहांश्चार्चितचर्चितान् ।।३७
एवं यः पुरुषः कश्चित्सकृद्व्रतमिदं चरेत् । स मृतोऽपि नरोमर्त्यो नायाति मम मन्दिरम् ।।३८
अदृष्टो मम मायाभिर्विमानेनार्कमण्डलम् । स चायाति पुरीं विष्णोस्ततः शिवपुरं व्रजेत् ।।३९
कृतं चीर्णं व्रतं तेन मुद्गलेन ममोदितम् । तेन नायात्यसौ लोके मम क्षत्रियपुङ्गवः ।।४०
इति कालवचः श्रुत्वा तेऽपि दूता गतास्तु मे । अहं पुनः समापन्नस्तूर्णं कालैर्विसर्जितः ।।
स्वशरीरं पुनः प्राप्य नीरोगः पुनरुत्थितः ।।४१
त्वां द्रष्टुमागतः प्रोक्तमेतद्वृत्तं मया तव । इत्युक्त्वा मुद्गलो राजन्प्रयातः स्वगृहं प्रति ।।४२

चावल, मूंग के भक्ष्य एवं गुड के पूआ से उन्हें संतृप्त करें । नरोत्तम ! अनेक भाँति के उन पक्वान एवं सुव्यजनों का बार-बार निवेदन कर आचमन, (मुखशुद्धि) करने के उपरांत ताम्रपात्र में एक से तिल चावल, दक्षिणा, छत्र, जलपूर्ण कलश और चर्मवस्त्र (ऊनी वस्त्र) समेत अर्पित कर उन्हें बिदा करें । राजेन्द्र ! पृथक् पृथक् सभी विद्वानों की अर्चना करते हुए पंक्ति भेद का विशेष ध्यान रखे । वाचक को भी उसी भाँति सुसम्मानित करना चाहिए ।२५-३४। उन्हें दान प्रदान करते समय ऐसा कहना चाहिए—शनैश्चर को नमस्कार है, मृत्यु रूप, दण्ड लिए, विनाशक, प्रभाव, प्रलय एवं दुःख नाशक सूर्य पुत्र यम को नमस्कार है, जो लोकपाल, अतिक्रूर , रौद्र, भीषण मुख, शिव (कल्याण) पूर्ति है । यम प्रसन्न होकर मुझे अभय दक्षिणा प्रदान करें । ऐसा कहते हुए ब्राह्मण को दान देने के उपरांत उस व्रती को उन ब्राह्मणों के सम्मानार्थ अनुगमन करके अपने गृह जाना चाहए । इस प्रकार इस विधान द्वारा इस व्रतानुष्ठान को एक बार भी सुसम्पन्न करने वाले पुरुष निधन होने पर यमपुरी का प्रस्थान नहीं करते अपितु मेरी माया द्वारा अदृष्ट होकर सुसज्जित विमानों पर सुशोभित होते हुए सूर्य मण्डल के मार्ग से विष्णु पुरी का प्रस्थान करते हैं, और तदनन्तर शिवपुरी कैलाश का मुद्गल ने मेरे कहे हुए इस व्रतानुष्ठान को सुसम्पन्न किया है, इसीलिए वह क्षत्रिय पुङ्गव मेरी पुरी में नहीं आ रहा है । काल की ऐसी बाँते सुनकर वे दूत गण मुझे छोड़कर चले गये । और मैं भी काल से परित्यक्त होने के नाते उसी समय अपनी शरीर में प्रविष्ट होकर नीरोग उठ बैठा ।३५-४१। अनन्तर तुम्हारे दर्शन के लिए यहाँ आकर तुम्हें यह वृत्तान्त सुनाया । राजन् ! इतना

इदं कुरुष्व कौन्तेय त्वमप्यत्र महीतले । ततो यास्यस्यसन्दिग्धं वञ्चयित्वा यमं मृतः ।।४३
एवं येऽन्येऽपि पुरुषाः स्त्रियो वापि युधिष्ठिर । त्रयोदश्यां त्रयोदश्यां च चरिष्यन्ति[1] भूतले ।।४४
एकभक्तेन नक्तेन उपवासेन वा पुनः । यमदर्शनमाख्यातं गतं सर्वव्रतोत्तमम् ।।४५
सर्वपापविनिर्मुक्ता दिव्यमानं समाश्रिताः । यास्यन्तीन्द्रपुरं हृष्टा अप्सरोगणसम्वृताः ।।४६
दोधूयमानाश्चमरैःस्तूयमानाः सुरासुरैः । गन्धर्वतूर्यनादेन च्छत्रपंक्तिविराजिताः ।।४७
अदृष्टो घोररूपास्यैर्यमदूतैर्युधिष्ठिर । अनर्दितो व्याधिगणैरदृष्टो यमकिङ्करैः ।।४८
अदारितो महारौद्रैर्नानाप्रहरणोत्तमैः । यमदृष्टिपथान्मुक्ताः सर्वसौख्यसमन्विताः ।।४९
सर्वसौख्यसमायुक्ताः शिववत्सौम्यदर्शनाः । स्वर्गे वसन्ति सुचिरं भाविताः स्वेन कर्मणा ।।५०

स्नात्य त्रयोदश मुनीन्घृतपायसेन सम्पूज्य पूज्यतिलतण्डुलवस्त्रदानैः ।
कुर्वन्ति ये व्रतमिदं त्रिदशेह्नि पूताः पश्यन्ति ते यममुखं न कदाचिदेव ।।५१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
यमदर्शनत्रयोदशीव्रतवर्णनं नामैकोननवतितमोऽध्यायः ।८९

कहकर मुद्गल अपने घर चले गये । कौंतेय ! इस महीतल पर तुम भी इस अनुष्ठान को सुसम्पन्न करो, जिससे देहावसान के समय यम को वञ्चित करते हुए विष्णु लोक भी निश्चित प्राप्त कर सको। युधिष्ठर! इसी प्रकार अन्य स्त्री अथवा पुरुष इस भूतल पर रहकर अपने जीवन में प्रत्येक त्रयोदशी के दिन एकाहार नक्त व्रत उपवास द्वारा इस यमदर्शन नामक श्रेष्ठ व्रत को सुसम्पन्न करके समस्त पापों से मुक्त होते हुए अप्सराओं से सुशोभित विमानों द्वारा स्वर्ग का प्रस्थान करते हैं । युधिष्ठिर ! उस समय देव एवं असुर वृन्द स्तुति करते हुए उसके चामर डुलाते हैं और गन्धर्वों के तुरुही वाद्य की ध्वनियों एवं छत्र पंक्तियों से विभूषित होता है भीषण काय एवं मुख वाले यमदूत उसे देख नहीं सकते । किसी व्याधि द्वारा पीड़ित होता, यमकिन्नरों से सर्वदा अदृष्ट रहता है, महान् एवं रौद्र अस्त्रों से कभी आर्त नहीं होता और यम मार्ग से सर्वथा मुक्त रहता है । समस्त सौख्य की प्राप्ति पूर्वक शिव की भाँति सौम्य दर्शन प्राप्त कर चिरकाल तक स्वर्ग निवास करता है । इस प्रकार त्रयोदशी के दिन स्नान करके घृत युक्त पायस (खीर) तिल, तन्दुल एवं वस्त्र द्वारा मुनियों की अर्चना करते हुए इस व्रतानुष्ठान को सदैव सुसम्पन्न करने पर उन्हें यममुख का भीषण दर्शन कभी नहीं होता है ।४२-५१

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्वाद में
यमदर्शन त्रयोदशी व्रत-वर्णन नामक नवासीवाँ अध्याय समाप्त ।८९।

---

१. यजिष्यन्ति ।

अथ नवतितमोऽध्यायः

अनङ्गत्रयोदशीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

भगवन्भूतभव्येश संसारार्णवतारक ! व्रतं कथय किञ्चिन्मे रूपसौभाग्यदायकम् ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

किं कृतैर्बहुभिः पार्थ व्रतैरुन्मत्तचेष्टितैः । कायक्लेशकरैः क्रूरैरसारैः फलसाधनैः ॥२
वरमेकापि वरदा कृतानङ्गत्रयोदशी । प्रसिद्धिं समनुप्राप्ता मर्त्ये कामप्रदायिनी ॥३
सौभाग्यरोग्यजयदा सर्वातङ्कनिवारिणी । सर्वदुष्टोपशमनी सर्वमङ्गलवर्धनी ॥४
शृणुष्व तां महाबाहो कथयामि सविस्तरम् । पुरा दग्धेन कामेन त्रिनेत्रनयनाग्निना ॥५
भस्मीभूतेन लोकानां सङ्कल्पिता पुरानघ । अनङ्गेन कथा ह्येषा तेनानङ्गत्रयोदशी ॥६
हेमन्ते समनुप्राप्ते मासि मार्गशिरे शुभे । शुक्लपक्षे त्रयोदश्यां सोपवासो जितेन्द्रियः ॥७
स्नानं नद्यां तडागे च गृहे वा नियतात्मवान् । कृत्वा समभ्यर्च्य विभुं विधिना शशिशेखरम् ॥८
धूपदीपैः सनैवेद्यैः पुष्पैः कालोद्भवैस्तथा । शंभुनामान्यथोच्चार्य[१] होमःकार्यस्तिलाक्षतैः ॥९

अध्याय ९०

अनंग त्रयोदशी व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन् ! आप जीवों के परम हितैषी एवं संसार सागर के उद्धारक हैं, अतः मुझे कोई रूपसौभाग्यदायकव्रत बताने की कृपा कीजिये ।१

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! (उसमें) उन्मत्त की भाँति चेष्टा रख कर ऐसे अन्य अनेक व्रतों को जो काय को क्लेशित करने, क्रूर, प्रसार एवं फल साधक हैं, सुसम्पन्न करने से क्या लाभ है, जब कि इस वरदायिनी अनंत त्रयोदशी को एक ही बार सुसम्पन्न करने से मनुष्य की ख्याति पूर्वक अनेक भाँति की सभी कामनाएँ सफल हो सकती हैं । यह अनंग त्रयोदशी, सौभाग्य, आरोग्य, एवं जय प्रदान करती हुई समस्त पातकों की निवृत्ति करती है तथा सभी दुष्टों की शांति पूर्वक समस्त मण्डलों का वर्धन करती है । महाबाहो ! मैं विस्तार पूर्वक उसका वर्णन करता हूँ, सुनो ! अनघ ! पहले समय में भगवान् शंकर के तीसरे नेत्र की अग्नि द्वारा काम के भस्मसात् होने पर लोगों ने अंनग कथा पूर्ण इसी अनंग त्रयोदशी की कल्पना की है । हेमन्त ऋतु के समागम में मार्गशीर्ष (अगहन) मास की शुक्ल त्रयोदशी के दिन उपवास रहते हुए संयम पूर्वक किसी नदी, सरोवर अथवा गृह, कूप आदि के जल से स्नान करके व्यापक रहने वाले भगवान् चन्द्रचूड (शिव) की सविधान धूप, दीप, नैवेद्य, एवं सामयिक पुष्प फल द्वारा अर्चना करके उनके नेत्रों के उच्चारण पूर्वक तिल-अक्षत के हवन ।२-९। अंग नामों की पूजा, एवं मधु प्राशन रात्रि शंयन करना

---

१. मधुनामान्यथोच्चार्य ।

अनङ्गनाम्ना सम्पूज्य मधु प्राश्य स्वपेन्निशि । नैवेद्यैर्मधुरैर्दिव्यैः सुस्वादैघृतपाचितैः ॥१०
धूपं सुगन्धिं दद्याच्च रक्तपुष्पैस्तु पूजनम् । रम्भातुल्या भवेत्सा तु रूपयौवनशालिनी ॥११
मधुवत्स्यात्सम्मधुरः कामरूपधरस्तथा । दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः ॥१२
पुष्यमासस्य चैवोक्तं चन्दनं प्राशयेन्निशि । योगेश्वरं तु सम्पूज्य मालतीकुसुमैः शुभैः ॥१३
नैवेद्यं घृतपूराश्च ह्नशान्तास्तु ताः स्त्रियः । सौम्यशीतसुगन्धाढ्यचन्दनप्राशनोद्भवैः ॥१४
राजसूयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् । माघे नटेश्वरं नाम पूजयेत्पङ्कजेन तु ॥१५
नैवेद्यं क्षीरखण्डाद्यैर्मौक्तिकं प्राशयेन्निशि । बहुपुत्रा भवेत्सा तु धनं सौभाग्यमुत्तमम् ॥१६
मुक्ताचूर्णनिभैर्नेत्रैर्यद्वा स्यात्तद्वदेव हि । गौरीतुल्या भवेत्सा तु कोमलाङ्गी प्रजायते ॥१७
तप्तजाम्बूनदाभासो भवेद्दिव्यतनुर्महान् । गोमेधस्य सहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥१८
फाल्गुने मासि सम्पूज्य देवदेवं हरेश्वरम् । कर्णिकारस्य पुष्पाणि नैवेद्यै बीजपूरकम्[१] ॥१९
कङ्कोलं प्राशयेद्रात्रौ सौन्दर्यमतुलं लभेत् । चैत्रे सुरूपकं नाम पूजयेद्दमनेन तु ॥२०
नैवेद्यं धूपकं दद्याद् घृतखण्डविपाचितम् । कर्पूरं प्राशयेद्रात्रौ सौभाग्यं महदाप्नुयात् ॥२१
चन्द्रश्च चन्द्रकान्तिश्च चन्द्रवर्त्यहरावृते । नरमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति शोभनम्[२] ॥२२
वैशाखे च महारूपं पुष्पैर्नौमालिकार्चनम् । कारम्बकैस्तु नैवेद्यं दातव्यं चातिशोभनम् ॥२३

चाहिए । मधुर, दिव्य, मृतप्लुत एवं अत्यन्त सुस्वादु नैवेद्य को समर्पित करते हुए सुगन्धित धूप तथा रक्त पुष्प द्वारा पूजन करने पर वह स्त्री रम्भा के समान रूप यौवन सम्पन्न होकर उत्तम वराङ्गना होती है । पुरुष उसके सुसम्पन्न करने पर मधुर भाषी, काम की भाँति यथेच्छ सौन्दर्य समेत दश अश्वमेध के फल प्राप्त करता है ।१०-१२। पौष मास में उसी उपरोक्त विधान द्वारा उनकी अर्चना करके चन्दन के प्राशन पूर्वक रात्रि में शयन करे । मालती के सुन्दर पुष्प, और घृत प्लुत नैवेद्य द्वारा योगेश्वर शंकर की आराधना तथा मन्द, सुगंध एवं शीतल चन्दन के प्राशन करने पर उन स्त्रियों को राजसूय यज्ञ के उत्तम फल प्राप्त होते हैं । माघमास में नटेश्वर शिव की कमल, नैवेद्य, क्षीर के नैवेद्य द्वारा अर्चना और रात्रि में जल का प्राशन करने वाली स्त्री बहुपुत्र, धन एवं उत्तम सौभाग्य प्राप्त करती है, और उसके नेत्र मोती चूर्ण के समान चमकीले होते हैं तथा वह गौरी की भाँति कोमलाङ्गी होती है । उसी प्रकार पुरुष भी तपाये गये सुवर्ण की भाँति कान्त पूर्ण दिव्य देह समेत सहस्र गोमेध यज्ञ के फल की प्राप्त करता है । फाल्गुन मास में कर्णिकार (हरदी) के पुष्प एवं नैवेद्य द्वारा देवाधिदेव हर की अर्चना और जम्बीर पूर्ण कंकोल के प्राशन करने से अतुल सौन्दर्य प्राप्त होता है । चैत्र मास में संयम पूर्वक नैवेद्य, धूप एवं घृत खांड के भक्ष्य द्वारा सुरूप नामक शिव की अर्चा और रात्रि में कपूर के प्राशन करने पर महान् सौभाग्य प्राप्त होता है । तथा चन्द्रच्छविपूर्ण शंकर की भाँति वह दिखायी देता है, जो चन्द्र कांति पूर्ण चन्द्र से संयुक्त हैं । और नरमेध के परमोत्तम फल प्राप्त होते हैं ।१३-२२। वैशाख मास में पुष्प, मनःसिल (मैनसिल) द्वारा महारूप नामक शिव की अर्चना करम्ब (मिश्रित) परम मधुर नैवेद्य अर्पित करते हुए जाति फल (जायफल) के प्राशन

---

१. तु जवीरकम् । २. षड्गुणम् ।

जातीफलं तु सम्प्राश्य जातिमाप्नोत्यनुत्तमाम् । सफलास्तस्य सर्वाशा भवन्ति भुवि भारत ॥२४
गोसहस्रफलं प्राप्य ब्रह्मलोके महीयते । ज्येष्ठे मासे तु प्रद्युम्नं पूजयेन्मल्लिकासुमैः ॥२५
नैवेद्यं खण्डवर्तिं च लवङ्गं प्राशयेन्निशि । ज्येष्ठं पदमवाप्नोति तथा लक्ष्मीं जनार्दनात् ॥२६
सर्वसौख्यसमोपेतः स्थित्वा भुवि शतं समाः । वाजपेयस्य यज्ञस्य शतमष्टगुणोत्तरम् ॥२७
आषाढ़े चैव सम्प्राप्ते उमाभर्तारमर्चयेत् । पुष्पधूपादिनैवेद्यैः प्राश्नीयाच्च तिलोदकम् ॥२८
तिलोत्तमारूपधरा सुखी स्याच्छरदः शतम् । श्रावणे उमापतिं नाम तिलपुष्पैस्तु पूजयेत् ॥२९
नैवेद्यं लड्डुकान्दद्यात्कृष्णांश्च प्राशयेत्तिलान् । पौण्डरीकस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनाकुलम् ॥३०
तदन्ते राजराजः स्याच्छत्रुण्क्षक्षयंकरः । सद्योजातं भाद्रपदे पूज्य कुंकुमकेशरैः ॥३१
नैवेद्यं सोलिकां दद्यात्प्राशयेदगुरुं निशि । अगुरुं प्राशयित्वा तु गरुर्भवति भूतले ॥३२
पुत्रपौत्रैः परिवृत्तो भुक्त्वा भोगान्मनोऽनुगान् । उक्तयज्ञफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते ॥३३
त्रिदशाधिपतिमश्वयुजि पूज्य सिन्दूरकस्रजैः । स्वर्णादिकं तु सम्प्राश्य स्वर्णवर्णः प्रजायते ॥३४
रूपवान्सुभगो वाग्मी भुक्त्वा भोगान्महीतले । सुवर्णकोटिदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥३५
विश्वेश्वरं[१] कार्तिके तु सर्वपुष्पैस्तु पूजयेत् । दमनस्य फलं प्राश्य दमनेन पुमान् भवेत् ॥३६
दमनोन्मादकर्ता च सर्वस्य जगतः प्रभुः । भवेद्भुजबलोपेतस्ततः शिवपुरं व्रजेत् ॥३७

करने पर उत्तम जाति की प्राप्ति होतीहै । तथा भारत ! इस भूतल पर उसकी सभी कामनाएँ सफल होती रहती है । इस प्रकार गोसहस्र के फल प्राप्ति पूर्वक वह ब्रह्मलोक में पूजनीय होता है । ज्येष्ठ मास में मालती पुष्प की माला और खांड पूरित नैवेद्य के अर्पण द्वारा प्रद्युम्न की आराधना एवं रात्रि में लवंग के प्राशन करने से ज्येष्ठ पद समेत भगवान् जनार्दन से लक्ष्मी प्राप्त होती है । इस धरातल पर सैकड़ों वर्ष तक समस्त सुखों के अनुभव एवं एक सौ आठ गुने वाजपेय यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं । आषाढ मास में पुष्प, धूप आदि नैवेद्य द्वारा उमापति महादेव की अर्चना और तिलोदक के प्राशन करने से तिलोत्तमा के समान रूप लावण्य प्राप्त कर वह स्त्री सौ वर्ष तक सुखी जवन व्यतीत करती है । श्रावण मास में तिल पुष्प, एवं लड्डू के नैवेद्य द्वारा उमापति की अर्चना तथा कृष्ण तिल के प्राशन करने से पौंडरीक (विष्णु) यज्ञ के फल प्राप्ति समेत वह शत्रु पक्ष का विनाशक राजा होता है । भाद्रपद मास में कुंकुम केसर द्वारा सदाशिव की अर्चा सोलिका नैवेद्य के समेत रात्रि में अगुरु के प्राशन करने पर वह व्रती इस भूतल पर गुरु होता है ।२३-३२। और अपने पुत्र पौत्र समेत अनेक भाँति के मनोनीत सुखभोग करके उक्त यज्ञ की फल प्राप्ति पूर्वक विष्णु लोक में पूजनीय होता है । आश्विन मास में सिंदूर पुष्प की माला से त्रिदशाधिपति (देवनायक शिव) की आराधना सुवर्णादि के प्राशन करने पर सुवर्ण के समान उत्तम वर्ण प्राप्त होता है, तथा रूपवान्, सुभग, सत्यवक्ता होते हुए अनेक भाँति के उपभोग एवं कोटि सुवर्ण दान के फल प्राप्त करता है । कार्तिक मास में समस्त पुष्पों से भगवान् विश्वेश्वर की अर्चना और दमन फल प्राशन करने से वह दमन की भाँति गुण प्राप्त कर उसके समान उन्माद कर्ता एवं समस्त संसार का प्रभु होता है । अपने भुजाओं के असीम बल द्वारा

---

१. विद्येश्वरम् ।

एवं संवत्सरस्यान्ते पारितेऽस्मिन्व्रतोत्तमे । यत्कर्तव्यं तदधुना श्रूयतां कुरुनन्दन ।।३८
व्रते विघ्नो यदा च स्यादशक्त्या सूतकेन वा । उपोष्यमेवोपवसेत्तदा द्रुमपुरः पुनः ।।३९
पूर्वोक्तमेवं निर्वत्य सौवर्णं कारयेच्छिवम् । ताम्रपात्रे तु संस्थाप्य कलशोपरि विन्यसेत् ।।४०
शुक्लवस्त्रेण सञ्छाद्य पुष्पनैवेद्यपूजितम् । ब्राह्मणाय प्रदातव्यं शिवभक्ताय सुव्रत ।।४१
शक्तिमाञ्छयनं दद्याद्गां सवत्सां पयस्विनीम् । छत्रोपानात्प्रदातव्यं कलशाः सोदकास्तथा ।।४२
शान्ताश्च केचिदिच्छन्ति शक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् । पञ्चामृतेन स्नानं च तस्मिन्नहनि कारयेत् ।।४३
देवदेवस्य राजेन्द्र पुष्पदीपान्नसंयुतम् । भोजनं च यथा शक्त्या षड्रसंमधुरोत्तमम् ।।४४
प्रदद्याच्छिवभक्तेभ्यो विशुद्धेनान्तरात्मना । एवं निर्वर्त्य विधिवत्कृतकृत्यः पुमान्भवेत् ।।४५
नारी वा भरतश्रेष्ठ कुमारी वा यतव्रता । पारिते तु व्रते पश्चात्कुर्याच्च सुमहोत्सवम् ।।४६
अनेन विधिना कुर्याद्यस्त्वनङ्गत्रयोदशीम् । स राज्यं निहतामित्रं[1] कीर्तिमायुर्यशो बलम् ।।४७
सौभाग्यं महदाप्नोति यावज्जन्मशतं नृप । ततो निर्वाणमायाति शिवलोकं च गच्छति ।।४८

कामेन या किल पुरा समुपोषितासीच्छुभ्रा तिथिस्त्रिदशमी सुशुभाङ्गहेतोः ।
तां प्राशनैरुदितनामयुतैरुपेतां कृत्वा प्रयाति परमं पदमिन्दुमौलेः ।।४९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वण्यनङ्गत्रयोदशीव्रतवर्णनं नाम नवतितमोऽध्यायः ।९०

सुखोपभोग करने के अनन्तर शिवलोक की प्राप्ति करता है ।३३-३७। यदुनन्दन ! इस भाँति सम्वत्सर (वर्ष) की समाप्ति होने पर इस परमोत्तम व्रत के विषय में मनुष्यों के क्या कर्तव्य होते हैं, तुम्हें बता रहा हूँ सुनो ! इस व्रतानुष्ठान के समय अशक्त होने अथवा सूतक प्राप्ति द्वारा किसी भाँति के विघ्न उपस्थित होने पर उसे उपवन (बगीचे) में उपवास रहकर उसके समस्त नियमों के पालन करना चाहिए । भगवान् शंकर की सुवर्ण प्रतिमा ताम्रपात्र में स्थापित कर कलश के उपर रखे और वस्त्र से आच्छन्न करते हुए पुष्प, नैवेद्य द्वारा उसकी सविधान अर्चना करने के उपरान्त किसी शिव भक्त एवं विद्वान् ब्राह्मण को सादर समर्पित करे । सुव्रते ! उस शक्ति सम्पन्न व्रती को उस समय सुसज्जित शय्या, दूध देने वाली सवत्सा गौ, धन, उपानह और जलपूर्ण कलश के दान करना चाहिए । कुछ शांत वादियों ने शक्ति समेत दक्षिणा प्रदान करना बताया है । राजेन्द्र ! उस दिन देवनायक शिव की प्रतिमा को पंचामृत द्वारा स्नान, और पुष्प दीप आदि से अर्चना करने के अनन्तर यथा शक्ति षड्रस के मधुर भोजनों द्वारा शिवभक्त एवं विद्वान् ब्राह्मणों को विशुद्ध अन्तः करण भली भाँति तृप्त करने वाला पुरुष कृतकृत्य हो जाता है । भरत श्रेष्ठ ! नारी अथवा संयम पूर्वक व्रत को सुसम्पन्न करने वाली कुमारी को व्रत समाप्ति के दिन परम महोत्सव करना चाहिए । नृप ! इस विधान द्वारा इस अनंग त्रयोदशी व्रत को सुसम्पन्न करने वाला पुरुष शत्रुहीन राज्य कीर्ति आयु, यश, बल एवं महान् सौभाग्य की प्राप्ति पूर्वक अपने सैकड़ों जलों तक प्राप्त सुखानुभूति करते हुए अन्त में निर्वाण पद एवं शिवलोक की प्राप्ति करता है । इस प्रकार अपने सर्वाङ्ग सुन्दर होने हेतु कामदेव ने इस शुभ तिथि त्रयोदशी में उपवास एवं (शिवके) पूजन किया था । अतः प्रत्येक मास में बताये गये उपरोक्त प्राशनों द्वारा उस तिथि में उपवास और पूजन करने पर चन्द्रचूड (शिव) का पावन परम पद प्राप्त होता है ।३८-४९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में अनंग त्रयोदशी व्रत वर्णन नामक नब्बेवाँ अध्याय समाप्त ।९०।

---

१. ममं ।

अथैकनवतितमोऽध्यायः

पालीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

अम्बुपूर्णतडागेषु महातोयाशयेषु च । कस्यार्थं सम्प्रयच्छन्ति कृष्णैताः कुलयोषितः ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

मासि भद्रपदे प्राप्ते शुक्ले भूततिथौ नृप । तडागपाल्यां दातव्यं वरुणायार्घ्यमुत्तमम् ॥२
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैः स्त्रीभिस्तथैव च । तस्मिन्दिने भक्तिनम्रैर्देयादर्घ्यं युधिष्ठिर ॥३
पुष्पैः फलैस्तथा वस्त्रैर्दीपालक्तकचन्दनैः । अनग्निपाकसिद्धान्नैस्तिलतण्डुलमिश्रकैः ॥४
खर्जूरैर्नालिकेरैश्च बीजपूर्णारकैस्तथा । द्राक्षादाडिमपूगैश्च त्रपुसैश्चापि पूजयेत् ॥५
आलिख्य मण्डले देवं वरुणं वारुणीयुतम् । मन्त्रेणानेन राजेन्द्र पूजयेद्भक्तिभावतः ॥६
वरुणाय नमस्तुभ्यं नमस्ते यादसाम्पते । अपाम्पते नमस्तेऽस्तु रसानाम्पतये नमः ॥७
मा क्लेदं मा च दौर्गंध्यं विरस्यं मा मुखेऽस्तु मे । वरुणो वारुणीभर्ता वरदोऽस्तु सदा मम (स्वाहा) ॥८
एवं यः पूजयेद्भक्त्या वरुणं वरुणालयम् । मध्याह्ने सरसि स्नात्वा नग्निपाकी व्रती नृप[1] ॥९
चातुर्वर्ण्यथ वै नारी व्रतेनानेन पाण्डव । नैवेद्यं ब्राह्मणे देयं यन्नैवेद्ये प्रकल्पितम् ॥१०

अध्याय ९१

पालीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण ! अगाध सरोवर आदि महान् जलाशय में ये कुल वधुएँ किसके लिए निमित्त (अर्घ्य) प्रदान करती हैं मुझे बताने की कृपा कीजिए ।१

श्रीकृष्ण बोले—नृप ! भाद्रपद मास के शुक्ल चतुर्दशी के दिन 'तडाग' 'पाली' व्रत विधान करने लिए अर्घ्य प्रदान करना बताया गया है । युधिष्ठिर ! उस दिन भक्ति पूर्वक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, एवं स्त्रियों को इस प्रकार अर्घ्य प्रदान करना चाहिए जिसमें पुष्प, फल, वस्त्र, दीप, अलक्तक (महावर), चन्दन, अनाग्नि, पाक तिल चावल मिश्रित सिद्धान्न, खजूर, नारियल, बिजौरा नीबू, द्राक्षा (किसमिस) दाडिम (अनार), पूंगीफल (सुपारी) और ककडी फल मिश्रित हो । राजेन्द्र ! मण्डल में वरुण दम्पति की मूर्ति स्थापित कर इस मंत्र द्वारा भक्ति भावना से पूजन करे वरुण को नमस्कार है, जलनिधि को नमस्कार है, जल पति एवं रसों के अधीश्वर को नमस्कार है देव ! क्लेश, दुर्गंध एवं नीरसता मेरे मुख में कभी न हो अपने वरुण भर्ता समेत वारुणी मेरे लिए सदैव वरदानार्थ प्रस्तुत रहें ।२-८। नृप ! इस प्रकार विधान द्वारा मध्याह्न के समय सरोवर में स्नान कर नग्नि पाकी रहकर चारों वर्ण के सभी नारी नर इस व्रत को सुसम्पन्न करते हुए ब्राह्मण को शास्त्र निर्णीत नैवेद्य प्रदान करें । इस भाँति परमोत्तम पाली

---

१. मम ।

एवं यः कुरुते पार्थ पालीव्रतमुत्तमम् । तत्क्षणात्सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ।।११
संरुद्धशुद्धसलिलातिबलां विशालां पालीमुपेत्य बहुभिस्तरुभिः कृतालीम् ।
ये पूजयन्ति वरुणं सहितं समुद्रैस्तेषां गृहे भवति भूतिरलब्धनाशः ।।१२
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
पालीव्रतवर्णनं नामैकनवतितमोऽध्यायः ।९१

अथ द्विनवतितमोऽध्यायः

रम्भाव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अस्मिन्नेव दिने पार्थ शृणु ब्रह्मसभातले । देवलेन पुरा गीतं देवर्षिगणसन्निधौ ।।१
अप्सरोगणगन्धर्वैर्देवैः सर्वैः समर्चितम्[1] । संसारासारतां दृष्ट्वा तत्रस्थकदलीद्रुमे ।।
शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां मासि भाद्रपदे नृप ।।२
दत्तमर्घ्यं वरस्त्रीभिः फलैर्नानाविधैः शुभैः । विरूढैः सप्तधान्यैश्च दीपालक्तकचन्दनैः ।।३
दधिदूर्वाक्षतैर्वस्त्रैर्नैवेद्यैर्घृतपाचितैः । जातीफलैर्लवङ्गैश्च तथैलालवलीफलैः ।।४
कदलैः कन्दरभटैर्मोचा सात्र निगद्यते । तस्मिन्नहनि दातव्यं स्त्रीभिः सर्वाभिरप्यलम् ।।५

व्रत को सुसम्पन्न करने वाला उसी समय समस्त पातकों से मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है । शुद्ध जल के अवरोध करने वाली उस बलातिक्रांत एवं विशाल पाली में पहुँच कर जो अनेक तरुवरों से सुसज्जित की जाती है, समुद्र समेत वरुण दम्पति के सविधान पूजन करने वाले को अचल भूमि की प्राप्ति होती है ।९-१२

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में पालीव्रतवर्णन नामक इक्यानबेवां अध्याय समाप्त ।९१।

अध्याय ९२

रम्भा-व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! पहले समय में इसी (चतुदर्शी) दिन देवल जी ने देव एवं ऋषि गणों के बीच ब्रह्मा सभा में बताया है । संसार की प्रसारता को ध्यान में रखकर अप्सराओं गन्धर्व एवं देवों ने वहाँ कदली वृक्ष पर उसी अनुसार उसी भावना से पूजन भी किया था, मैं कह रहा हूँ, सुनो ! नृप ! भाद्रपद मास की शुक्ल चतुर्दशी के दिन सभी स्त्रियों को अनेक भाँति के शुभ फल, हरे सप्त धान्य, दीप, अलक्तक, चन्दन, दही, दूर्वा, अक्षत, वस्त्र, घृत प्लुत नैवेद्य, जाप फल लवंग, इलायची, लवली फल, कदली, तथा कदंर भट द्वारा जिसे मोंचा भी कहा जाता है, वह अर्घ्य मंत्रोच्चारण पूर्वक प्रदान करना

---

[1] समन्वितम् ।

मन्त्रेणानेन चैवार्घ्यं शृणुष्व च नराधिप ! चित्या त्वं कन्दलदलैः कदले कामदायिनि ॥
शरीरारोग्यलावण्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते ॥६
इत्थं यः पूजयेद्राजा पुरुषो भक्तिमान्नृप । नारी वानग्निगाकान्ता चातुर्वर्ण्या युधिष्ठिर ॥७
तस्याः कुले न भवति क्वचिन्नारी कुलाटनी । दुर्गता दुर्भगा वन्ध्यास्वैरिणी पापकारिणी ॥८
विलासिनी वा वृषली पुनर्भूः पुनरेतसी । गणिका स्वैरिणी वोढा मूल्यकर्मकरी खला ॥९
भर्तृ व्रतात्प्रचलिता न कदाचित्प्रजायते । भवेत्सौभाग्यसौख्याढ्या पुत्रपौत्रैस्तथावृता ॥
आयुष्मती कीर्तिमती रमेद्वर्षशतैर्भुवि ॥१०
एकं रम्भा व्रतं चीर्णं गायत्र्या स्वर्गसंस्थया । तथा गौर्या च कैलास इन्द्राण्या नन्दने वने ॥११
श्वेतद्वीपे तथा लक्ष्म्या राज्ञ्या च रविमण्डले । अरुन्धत्या दारुवने स्वाहया मेरुपर्वते ॥१२
सीतादेव्या त्वयोध्यायां वेदवत्या हिमाचले । भानुमत्या नागपुरे व्रतमेतदनुष्ठितम् ॥१३
एतद्व्रतं पार्थिवेन्द्र मासि भाद्रपदे सिते । या करोति न सा दुःखैः कदाचिदपि पीड्यते ॥१४

संभिन्नकन्दकदलीं च मनोज्ञरूपां याः पूजयन्ति कुसुमाक्षतधूपदीपैः ।
तासां गृहेषु न भवन्ति कदाचिदेव नार्यस्त्वनार्यचरिता दिधवा विरूपाः ॥१५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
रम्भाव्रतवर्णनं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ।९२

चाहिए ।१-५। नराधिप ! अनन्तर इस प्रकार क्षमायाचना करके कि कदली दल में निवास करने वाली कामदायिनी देवि ! इन कदली पुष्पों द्वारा अग्नि (के समान) प्रज्वलित होती है । मैं बार बार नमस्कार कर रहा हूँ, मुझे आरोग्य एवं रूप लावण्य प्रदान करने की कृपा करे । नृप ! इस प्रकार जो राजा, भक्तिमान् पुरुष अथवा नारी इसे सुसम्पन्न करती है, युधिष्ठिर ! उसके कुल में कोई स्त्री कुलटा, दुर्गति दुःखी, दुर्भगा, वंध्या, स्वतन्त्र बिहार करने वाली, पापिनी, विलासिनी, वृषली (शूद्री), पुनर्भू, निर्वाहित, व्यभिचारिणी, गणिका, स्वतन्त्र भारवाहिनी, सवैतनिक दासी नहीं है । किन्तु वह अपने पतिव्रता धर्म से कभी भी विचलित नहीं होती है । अपने पुत्र पौत्र समेत अगाध सुख सौभाग्य के अनुभव पूर्वक आयुष्मती और यशस्विनी रहकर इस भूतल पर सैकड़ों वर्ष तक पति के साथ विहार करती है । इसी एक रम्भा व्रत को स्वर्ग में रहकर गायत्री, कैलास में गौरी, नन्दन वन में इन्द्राणी, श्वेत द्वीप में लक्ष्मी, सूर्य मण्डल में उनकी बली राज्ञी दारुन में अरून्धती, मेरू पर्वत पर स्वाहा, अयोध्या पुरी में सीता जी, हिमालय पर वेदवती और नागपुरी में भानुमती देवी ने सविधान सुसम्पन्न किया है । पार्थवेन्द्र ! भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष में इस व्रतानुष्ठान को न करने वाली स्त्री अनेक दुःखों का अनुभव करती है । इस प्रकार किसी कदली वृक्ष में मनोहर रूप की भावना कर पुष्प, अक्षत धूप, एवं दीप आदि द्वारा सविधान पूजन करने वाली स्त्रियों के कुल में कोई स्त्री अनार्यचरित, विधवा एवं कुरूपा नहीं होती है ।६-१५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वाद में
रम्भा व्रत वर्णन नामक बानबेवाँ अध्याय समाप्त ।९२।

अथ त्रिनवतितमोऽध्यायः

आग्नेयीचतुर्दशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

चतुर्दशी महाराज हुतभुग्दयिता शुभा । नष्टस्तदा हव्यवाहः पुनस्तित्वमाप्तवान् ॥१

युधिष्ठिर उवाच

कथमग्निः पुरा नष्टो देवकार्येप्युपस्थितः । केनाग्नित्वं कृतं तत्र कथं हि विदितोऽनलः ॥
एतद्वदस्व देवेश सर्वं हि विदितं तव ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा सुरा महाराज तारकेण पराजिताः । अपृच्छन्विश्वकर्तारं तारकं को वधिष्यति ॥३
उवाचासौ चिरं ध्यात्वा रुद्रोमाशुक्रसम्भवः । गङ्गास्वाहाग्नितेजोजः शिशुर्दैत्यं वधिष्यति ॥४
एवं श्रुत्वा गता देवा यत्र शम्भुः सहोमया । प्रणम्य ते तमूचुर्हि यदुक्तं ब्रह्मणा तदा ॥५
प्रतिपन्नं च रुद्रेण उमया सहितेन तत् । प्रयत्नमकरोत्तं च य उक्तोमरसत्तमैः ॥६
दिव्यं वर्षशतं साग्रं गतः कालोऽस्य मैथुने । न चाप्युपरमस्तत्र तयोरासीत्कथञ्चन ॥
भयं च सुमहत्तेषां देवानां समजायत ॥७

अध्याय ९३

आग्नेयीचतुर्दशीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—महाराज! चतुर्दशी तिथि अग्नि की परम प्रेयसी है, क्योंकि नष्ट होते हुए भी अग्नि देव में इसी दिन पुनः अस्तित्व प्राप्त किया था ।१

युधिष्ठिर ने कहा—देवेश! पहले समय में एकबार देवकार्य में संलग्न रहने पर भी अग्नि देव सर्वथा विनष्ट हो चुके थे, तो किसके द्वारा उन्हें अग्नित्व प्राप्त हुआ और अनन्त नाम से उनकी ख्याति कैसे हुई । इसका रहस्य आप को भली भाँति मालूम है अतः मुझे बताने की कृपा करें ।२

श्रीकृष्ण बोले—पहले समय में तारकासुर द्वारा पराजित होने पर देवों ने विश्वस्रष्टा ब्रह्मा के पास जाकर उनसे पूछा कि— तारकासुर का वध कौन करेगा । चिरकाल तक ध्यान करने के अनन्तर उन्होंने कहा—रुद्र-उमा के तेज से उत्पन्न पुत्र, जिसे गंगा, स्वाहा और अग्नि के तेज से उत्पन्न होना भी बताया जायेगा, उस दैत्य का वध करेगा । इसे सुनकर देवों ने उमा समेत शिव जी जिस स्थान में रहता था, वहाँ जाकर ब्रह्मा की कही हुई सभी बातें उनसे कहा—अनन्तर देवों के कथनानुसार रुद्र ने उमा समेत उस प्रयत्न को प्रारम्भ किया। मैथुन करते हुए उनके दिव्य सौ वर्ष व्यतीत जाने पर भी उन दोनों का किसी प्रकार विराम नहीं हुआ । इसे देखकर देवों को अत्यन्त भय हुआ।३-७। उन्होंने सोचा—रुद्र से उत्पन्न

स रुद्रसम्भवो यो वै भविष्यति महाबलः । स दैत्यान्दानवगणान्वधिष्यति न संशयः ॥८
केन कालेन भवति रतेर्विरतिरेतयोः । एतद्विचिन्त्य प्रहितौ देवैस्तत्रानिलानलौ ॥९
गतौ तौ चोमया दृष्टौ समस्थौ विषमस्यथा । शशाप च रुषा देवी देवान्गर्भविवर्जिता ॥१०
यस्मात्तैर्जनितो विघ्नो मेऽपत्यार्थे दिवौकसाम् । तस्मात्ते स्वेषु दारेषु जनयिष्यन्ति न प्रजाः ॥११
अथोवाच तदा देवो देवान्सर्वगणाञ्छनैः । अग्निर्गृह्णातु वीर्यं मे संभृतं सुचिरं हि यत् ॥१२
एवमुक्तोथ रुद्रेण नष्टोऽग्निर्देवसङ्कुलात् । न स्वस्थो न भुविस्थो वा न सूर्यस्थो न च भूतले ॥१३
देवा अन्वेषणे यत्नमकुर्वन्नग्निदर्शने । कृमिकीटपतङ्गाश्च अष्टौ च त्रिदिवौकसः ॥१४
हंसाः केकाः शुकाः वह्निः शीघ्रं शरवणं गताः । शशापाग्निर्गजा जिह्वा द्विगुणो वा भविष्यति ॥१५
दृष्ट्वाथ विबुधाः सर्वे पक्षिणं पक्षिणां वरम् । जीवं जीवकनामानं भोभोः सत्यं वदस्व नः ॥१६
कच्चिदृष्टस्त्वया वह्निर्वनेऽस्मिन्नटता सदा । नाभद्रं नापि भद्रं वा किञ्चिदेव वचोऽब्रवीत् ॥१७
भूयोभूयस्तु पृष्टोऽपि न गामुच्चारयेच्चिरम् । तुष्टस्तस्याब्रवीद्वह्निर्जीवंजीव वदामि ते ॥१८
यस्मान्न किञ्चिदुक्तं ते तस्माच्चित्रतनूरुहाः । जीव जीव पुनर्जीव यावदिच्छा तथायुषः ॥१९
द्वितीयं ते वरं दद्मो जीवंजीवक शोभनम् । व्यक्ता ते मानुषी वाचा स्पष्टार्था च भविष्यति ॥२०
कश्चिद्यदि तवाधस्थाद् बुधः स्नानं करिष्यति । वंध्या वा षोडशाब्दीया क्षणाद्बालो भविष्यति ॥२१
मासं यश्च तृतीयं वै भक्षयिष्यत्यनिंदितम् । अजरः सोऽमरश्चैव सर्वकालं भविष्यति ॥२२

होने वाला अवश्य महाबली होगा और दैत्य-दानव गणों का वध भी करने में समर्थ होगा, किन्तु इन दोनों के रति का विराम कब होगा! यह सोचकर देवों ने विप्र और अग्नि को वहाँ भेजा। वे दोनों गये और मैंने देखा भी कि वे विषम परिस्थित में फंस गये हैं—देवी को गर्भ नहीं हुआ था, इसी लिए रुष्ट होकर उन्होंने देवों को शाप दिया कि —देवों के निमित्त संतान उत्पन्न करने में तुम लोगों ने विघ्न उपस्थित किया है (अतः तुम्हारी स्त्रियों को कोई सन्तान न होगी।) अनन्तर शंकर देव ने समस्तदेव गणों से कहा कि—इस मेरे चिर संचित वीर्य को अग्नि ग्रहण करें। इस प्रकार कहकर रुद्र के निकले हुए तेजरूप वीर्य से अग्नि सर्वथा नष्ट हो गये आकाश, भूतल एवं सूर्य के यहाँ कहीं भी उनका पता न चला। वहाँ देवों ने भी अग्नि दर्शनार्थ उनके अन्वेषण में अत्यन्त प्रयत्न किया—कृमि, कीट, पतंग, आठ भाँति के देव, हंस, केका (मयूर) तथा शुक्र आदि के स्थानों मे खोजा। अग्नि नहीं मिले। अग्नि शरवण में पहुँच गये थे। अग्नि को शाप दिया था कि—गज की भाँति दुगुनी जिह्वा तुम्हारी होगी। अनन्तर देवों के एक सर्वोत्तम पक्ष देखा जिसे जीवक कहा जाता है, और कहा—भो! हम लोगों से सत्य-सत्य बताइये —इस पुण्य में भ्रमण करते आप ने कहीं अग्नि का देखा है, इसके अनन्तर में उस पक्षी ने शुक्र-प्रशुक्र कोई बात नहीं कही। यहाँ तक कि बार-बार पूछने पर भी बहुत समय तक उसने कुछ बोला ही नहीं। इससे प्रसन्न होकर अग्नि के जीव-जीवक पक्षी से कहा—तुमने कुछ नहीं कहा, इससे मैं प्रसन्न होकर वरदान दे रहा हूँ कि—जीवंजीव! तुम अपनी इच्छानुसार आयु प्राप्त कर जीवित रहो। मैं तुम्हें एक सुन्दर वरदान दे रहा हूँ कि—तुम्हारी वाणी मनुष्य की भाँति स्पष्ट अर्थ बताने वाली होगी, तुम्हारे नीचे विद्वान् अथवा वंध्या सभी कोई भी सोलह वर्ष की आयु वाले यदि स्नान करेंगे तो उसी समय बालक रूप हो जाँयगे।८-२१। और निदिंत मांस का भोजी सदैव अजर-अमर होगा। इस प्रकार उसे वर प्रदान करने

इदं दत्त्वा वरांस्तस्य वह्नित्वमथ आप्तवान् । विबुधा अपि तत्रैव तमदृश्यंतं वंशगम् ।।२३
ऊष्मया जातकल्माषं ज्ञात्वा संहृष्टमानसः । तुष्टा वंशमथोचुस्ते देवास्त्रिभुवनेश्वराः ।।२४
ऊष्मया कल्मषीभूय ह्यग्निर्गर्भं धरिष्यति । यो गृही वैणवीं यष्टिं ब्रह्मचारी च नैष्ठिकः ।।२५
पण्डाग्निपालने पुण्यं यद्दृष्टं ब्रह्मवादिभिः । वदंतं कल्मषीयष्टिस्तं प्राप्नोति द्विजोत्तमम् ।।२६
वंशस्यानुग्रहं कृत्वा देव्याहृतिनथाब्रुवन् । गृह्णीत शुक्रं भद्रस्य तव पुत्रो भविष्यति ।।२७

युधिष्ठिर उवाच

यदाग्निर्नष्टो देवानां केनाग्नित्वं तदा कृतम् । भूयोऽपि केन कालेन अग्निरग्नित्वमाप्तवान् ।।२८

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु राजन्प्रनष्टेऽग्नौ येनाग्नित्वं कदाचन । यस्मिन्काले तिथौ यस्यां पुनरग्नित्वमाप्तवान् ।।२९
उतथ्याङ्गिरसोः पूर्वमासीद्व्यतिकरो महान् । अहं विद्यातपोभ्यां वै तव ज्यायाञ्छ्रुतेन च ।।
उतथ्येनैवमुक्तस्तु अङ्गिराः प्राह तं मुनिम् ।।३०
गच्छावो ब्रह्मसदनं मरीचिप्रमुखैर्द्विजैः । उपेतं चान्यमुनिभिर्ब्रह्मराजर्षिसत्तमैः ।।
उतथ्यः प्राहसद्ब्रह्मनृषींस्तांस्तांस्तब्धमानसः ।।३१
ज्यायान्वा कतमोस्माकमिति नः कथ्यतां स्फुटम् ।।३२
अथोवाच मुनिर्ब्रह्मा तावुभौ क्रुद्धमानसौ । आनयध्वं द्रुतं गत्वा विबुधान् भुवनेश्वरान् ।।३३

के अनन्तर उन्होंने अग्नित्व प्राप्त किया, जहाँ देवगण भी अपने उस रूप वंशग को देख रहे थे।९-२३। (अग्नि की) गर्मी से वहाँ (धूएँ द्वारा) अंधेरा होने देखकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए देवों एवं त्रिभुवनेश्वरों ने अग्नि की प्रशंसा करते हुए कहा—अपनी उष्मा द्वारा कलमष (धुआँ) उत्पन्न कर अग्नि निश्चय गर्भ धारण करेंगे। गृहस्थ अथवा नैष्टिक ब्रह्मचारी को वेणु-यष्टि (बाँस की छड़ी) ग्रहण कर न वही पुण्य प्राप्त होता है, जो पण्डाग्नि के पालन करने में ब्रह्म वेत्ताओं ने बताया है। द्विजोत्तम! उसी भाँति कलमषी यष्टि भी उसे कहने वाले को ही प्राप्त होता है। देवी (पार्वती) ने भी अपने वंश के ऊपर अनुग्रह करते हुए कहा—कल्याण स्वरूप शिव के वीर्य को तुम लोग धारण करो, उससे तुम्हें पुत्र अवश्य होगा।२२-२७

युधिष्ठिर ने कहा—देवकार्यार्थ उपस्थित अग्नि को किस ने नष्ट किया, उन्हें किसके द्वारा अग्नित्व प्राप्त हुआ और पुनः अग्नि को किस समय अग्नित्व प्राप्त हुआ था।२८

श्रीकृष्ण बोले—राजन्! अग्नि कैसे नष्ट हुए, अग्नित्व कैसे प्राप्त हुआ और किस समय अग्नि को पुनः अग्नित्व की प्राप्त हुई। मैं बता रहा हूँ, सुनो! पहले समय में उतथ्य और अंगिरा नामक ऋषियों में महान् विवाद आरम्भ था, विद्या, तप एवं वेदाध्याय मैं ही सर्व श्रेष्ठ हूँ, उतथ्य के ऐसा कहने पर अंगिरा ने उनसे कहा—मरीचि आदि प्रमुख द्विजों के साथ हम लोग ब्रह्मा के भवन में चलकर वहाँ इसका निर्णय कर लें। श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि एवं राजर्षि तथा अन्य ऋषियों के साथ वहाँ पहुँचने पर उतथ्य ने कुछ सस्मित-सा होकर ब्रह्मा तथा उन ऋषियों के समक्ष कहा कि—आप लोग यह स्पष्ट बताने की कृपा करें कि—हम दोनों में कौन श्रेष्ठ है! अनन्तर ब्रह्मा ने उन दोनों क्रुद्ध मुनियों से कहा—सर्व प्रथम तुम दोनों शीघ्र जाकर सभी

ततो विवादं पश्यामि भवतां तैः समेत्य च । ततस्तौ सहितौ नत्वाऽऽनिन्यतुश्च ऋषींस्तदा ।।३४
लोकपालान्महेन्द्रादीनसयमान्वारुणानिलान् । साध्यान्मरुद्गणान्विश्वानृषीन्भृग्वग्निनारदान् ।।३५
गन्धर्वान्वित्तरक्षोघ्नान्राक्षसान्दैत्यदानवान् । नायातस्तत्र तिग्मांशुः सर्वे चान्ये समागताः ।।३६
दृष्ट्वा तु विबुधान्सर्वान्ब्रह्मा प्रोवाच तानृषीन् । आनयध्वमितः सूर्यं साम्ना दंडेन वा पुनः ।।३७
एवमुक्तो गतस्तावदुतथ्यः सूर्यमण्डलम् । स गत्वा प्राह मार्तण्डं शीघ्रमेह्येव संविदम् ।।३८
स उतथ्यमथोवाच कथं ब्रह्मन्व्रजाम्यहम् । एदमुक्त्वा गतः सूर्यो भुवने मयि निर्गते ।।३९
एवमुक्तो मुनिः प्रायात्सर्वं देवसमागमम् । आचचक्षे च यत्प्रोक्तं भास्वता तपनं प्रति ।।४०
उवाचाङ्गिरसं ब्रह्मा शीघ्रमेनं त्वमानय । स तथोक्तो गतस्तत्र यत्रासौ तपते रविः ।।४१
एह्येहि भगवन् सूर्य तप्यते भवतान्वहम् । एवमुक्तो गतः सूर्यो यत्र देवाः समागताः ।।४२
स्थित्वा मुहूर्तं प्रोवाच किं वा कार्यमुपस्थितम् । पृच्छन्तमेव मार्तंडं ब्रह्मा प्रोवाच सादरम् ।।४३
गच्छ शीघ्रं न दहते भुवनं यावदङ्गिराः । लब्धप्रायं तु गोलोकं वर्तते कृष्णपिङ्गलम् ।।४४
पाटलो हरितः शोणः श्वेतो वर्णः प्रणाशितः । शाकद्वीपं कुशद्वीपं कौञ्चद्वीपं सपन्नगम् ।।
दग्धमङ्गिरसा सर्वं भूयोऽपि प्रदहिष्यति ।।४५
यावच्च दहते सर्वं भुवनं तपसांगिराः । गच्छ तावदितः शीघ्रं स्वस्थाने तप भास्कर ।।४६

देवों एवं भुवनाधीश्वरों को यहाँ ले आओ ।२९-३३। तदुपरांत उनके समक्ष इसी भवन में इस विवाद का निर्णय किया जायेगा । इसे सुनकर वे दोनों सभी ऋषियों आदि को बुला लाये जिसमें लोकपाल महेन्द्र आदि देव, यम, वरुण, वायु, साध्य, मरुद्गण, विश्वावसु, भृगु, अग्नि, नारद आदि ऋषि, धन-रक्षक गन्धर्व, राक्षस, दैत्य, दानव सभी उपस्थित थे । किन्तु प्रखर किरण वाले सूर्य न आ सके । ब्रह्मा ने देवगण आदि सभी को वहाँ देखकर भी उन ऋषियों से यह कहा कि—साम (शान्ति) अथवा दण्ड उपाय द्वारा यहाँ सूर्य को अवश्य लाओ । ऐसा कहने पर उतथ्य ने सूर्य-मण्डल का प्रस्थान किया ।३४-३८। वहाँ पहुँचने पर उन्होंने सूर्य से कहा कि —आप शीघ्र यहाँ पहुँचने का प्रयत्न करें, यही समाचार है । ऐसा कहने पर उन्होंने उतथ्य ऋषि से कहा—'ब्रह्मन्! मैं कैसे चल सकता हूँ! इतना कह कर सूर्य मेरे उस भवन में चले गये जहाँ मैं रह नहीं रहा था । और उतथ्य ने भी उनकी बात सुन कर देवों के बीच आ सुनाया । जिसे सूर्य ने उनसे कहा था । इसे सुनकर ब्रह्मा ने अंगिरा से कहा—तुम इन्हें शीघ्र लाओ! उन्होंने स्वीकृति प्रदान कर वहाँ का प्रस्थान किया जहाँ रहते हुए सूर्य अपने अखण्ड तेज प्रकाशित कर रहे थे ।३९-४१। उन्होंने कहा—भगवान् सूर्य! आप नित्य ऐसे ही तपा करते हैं! आइये, आइये मेरे साथ चलिये । ऐसा कहने पर सूर्य सहर्ष चल पड़े और देवों के बीच पहुँच कर क्षण के उपरांत उन्होंने कहा—'मेरे योग्य कौन कार्य उपस्थित है । मार्तण्ड के ऐसा पूछने पर ब्रह्मा ने सादर कहा—अंगिरा ऋषि उस अपने को दग्ध कर देना चाहते हैं अतः उसके सूर्य वहाँ पहुँच जाओ । प्रायः जो लोक की शेष रहा है, किन्तु फिर भी कृष्ण-पिंगल ही हो गया, नये रक्त-हरितस्व और रक्त वर्ण दिखायी देता है । उसका श्वेत वर्ण तो सर्वथा नष्ट हो गया । शाक द्वीप, कुश द्वीप और अलग समेत क्रौंच द्वीप आदि समस्त को अंगिरा ने दग्ध कर डाला है तथा फिर भी करने के लिए उद्यत हैं। भास्कर! जब तक अंगिरा समस्त लोकों के दहन न करें, उसके पूर्व ही तुम यहाँ से शीघ्र प्रस्थान कर पुनः अपन स्थानस्थित रह कर प्रकाश करो।४२-४६। विप्र ब्रह्मा के

एवमुक्तः स विभुना स्वस्थानमधिरूढवान् । विसृष्टवानंगिरसं सकाशममृताशिनाम् ।।४७
गत्वाङ्गिरा उवाचेदं गतः किं करवाण्यहम् । देवा अङ्गिरसं प्राहुस्तपोराशिमकल्मषम् ।।४८
संप्रशस्योचुरग्नित्वं कुरु तावन्महीतले । पूर्वं यथाग्निः कृतवांस्तथा त्वमपि सत्तम ।।४९
यावदग्निं प्रपश्यामः कासौनष्टः क्व तिष्ठति । एवमुक्तः सदेवैस्तु अग्नित्वं कृतवांस्तदा ।।५०
देवैर्दृष्टो यथा ह्यग्निस्तत्ते सर्वं निवेदितम् । देवकार्ये कृते तस्मिन्देवावह्निमथाब्रुवन् ।।५१
अग्नेऽग्नित्वं कुरुष्व त्वमङ्गिरास्तु यथा पुरा । एवमुक्तः सुरैर्वह्निश्चिन्तयामास दुःखितः ।।५२
केन मेऽपहृतं तेजः केनाग्नित्वं कृतं त्विह । दृष्ट्वाथाग्निरङ्गिरसं तेजोराशिमकल्मषम् ।।५३
उवाच मुञ्च मत्स्थानं वचस्तोषकरं शृणु । अहं ते तनयश्चेष्टो भविष्ये प्रथमे शुभे ।।५४
बृहस्पतीति नामा वै तथान्ये बहवः सुताः । एवमुक्तो मुनिस्तुष्टो बहूंश्चाजनयत्सुतान् ।।५५
वह्निं संजनयामास पुत्रान्पौत्रांस्तदाङ्गिराः । अवाप पुनरग्नित्वमग्निस्तस्यां तिथौ नृप ।।५६
सर्वमेव चतुर्दश्यां संजातं हव्यवाहनम् । हव्यवाहनदेवानां भूतानां गुह्यचारितम् ।।५७
ततोष्टपतिपत्वे च रुद्रेण प्रतिपादितम् । पूजितेयं तिथिर्देवैर्दिविस्थैश्च नृपैरपि ।।५८
पैलजाबालिमन्वाद्यैरन्यैश्च नहुषादिभिः । विषशस्त्रहतानां च संग्रामेन्यत्र ते क्वचित् ।।५९
अज्ञातावृषपापैश्च व्यालैर्ये व्याप्य हिंसिताः । नदीप्रवाहपतितः समुद्रे पर्वतेऽध्वनि ।।६०

इस प्रकार कहने पर सूर्य अपने स्थान पर अधिकार प्राप्त किया । देवों के साथ अंगिरा को भी वहाँ से विसर्जित करने पर अंगिरा ने देवों के पास जाकर उनसे कहा—मेरे योग्य कौन कार्य है! इसे सुनकर उस तपोनिधि अंगिरा से देवों ने प्रशंसा पूर्वक कहा—सत्तम! पूर्व काल में जिस भाँति अग्नि द्वारा सभी कार्य सुसम्पन्न होता था, उसी भाँति इस भूतल में तुम भी अग्नित्व की स्थापना करो । हम लोग तब तक अग्नि का अन्वेषण करेंगे कि —अग्नि कहाँ पर छिपा दिये हैं और कहाँ रह रहे हैं । देवों के इस प्रकार कहने पर उन्होंने अग्नि की स्थापना की । इस भाँति मैंने देवों को जिस प्रकार पुनः अग्नि दर्शन न प्राप्त हुआ तुम्हें बता दिया । देवकार्य करने के अनन्तर देवों ने अग्नि से कहा अग्नि! जिस प्रकार पहले अंगिरा ने अग्नित्व की स्थापना की है, आप भी वैसा ही कीजिये! देवों के इस भाँति कहने पर अग्नि देव चिन्तित होकर दुःख प्रकट करने लगे कि—किसने मेरे तेज का अपहरण किया है और अग्नित्व का स्थापन यहाँ किसने किया! अनन्तर अग्नि ने उन तेजों विधान एवं कलमष हीन अंगिरा ऋषि को देखकर उनसे कहा—आप मेरे स्थान का परित्याग कर दें, मैं आप को अत्यन्त संतोष की बात बता रहा हूँ—मैं आप का प्रथम एवं विप्रहितैषी पुत्र हूँगा, मेरा नाम वृहस्पति होगा तथा अन्य भी अनेक पुत्र होंगे । ऐसा कहने पर मुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए । उन्होंने अनेक पुत्रों को उत्पन्न किये । अग्नि ने भी अनेक पुत्र-पौत्रों को उत्पन्न किया ।४७-५५½। नृप! उसी (चतुर्दशी) तिथि में अग्नि को पुनः अग्नित्व (तेज) की प्राप्ति हुई । चतुर्दशी के दिन हव्य वाहन (अग्नि) के उत्पन्न होने के नाते उन्हें सब देवों का गुप्तचर बनाया गया और भगवान् रुद्र ने भी दिग्पालों का आधिपत्य प्रदान किया । इसीलिए यही तिथि समस्त स्वर्गवासी देवता, नृपगण, पैल, जाबाल आदि ऋषि, एवं अन्य ऋषि आदि राजाओं द्वारा पूजित हुई है।५६-५८½। विष या शस्त्र द्वारा संग्राम में आहत, अथवा अत्यन्त कहीं निधन होने पर, अज्ञात निधन, वृषपाप, सर्प के काटने, नदी प्रवाह अथवा

पतिताः पर्वतेभ्यश्च तोयाग्निदहने मृताः । उदध्या पातिता ये च ये के चात्महनो जनाः ।।
तेषां शस्तं चतुर्दश्यां श्राद्धं स्वर्गसुखप्रदम् ।।६१
श्राद्धानि चैव दत्तानि दानानि सुलघून्यपि । प्रसूनफलभोज्यानिउपतिष्ठंति तान्नरान् ।।६२
एवं तिथिरियं राजन्नग्नेयी प्रोच्यते[1] जनैः । रौद्रीं च केचिदित्याहू रुद्रोग्निः स च पठ्यते ।।६३
यस्यां मनोरथं यंयं समुद्दिश्य ह्युपोषति । ददाति तस्य तद्वह्निः साग्रे संवत्सरे गते ।।६४
चतुर्दश्यां निराहारः समभ्यर्च्य त्रिलोचनम् । पुष्पधूपादिनैवेद्यै रात्रौ जागरणान्नरः ।।
पञ्चगव्यं निशि प्राश्य स्वप्याद्भूमौ विमत्सरः ।।६५
श्यामाकमथवा भुक्ता तैलक्षारविवर्जितम् । होमः कृष्णतिलैः कार्यः शतमष्टोत्तरं नृप ।।६६
अग्नये हव्यवाहनाय सोमायांगिरसे नमः । ततः प्रभाते विमले स्नाप्य पंचामृतैः शिवम् ।।६७
पूजयित्वा विधानेन होमं कृत्वा तथैव च । उदीरयेन्मन्त्रमेतं कृत्वा शिरसि चांजलिम् ।।६८
नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं नमः सूर्याग्निरूपिणे । पुत्रान्यच्छ सुखं यच्छ मोक्षं यच्छ नमोऽस्तु ते ।।६९
नीराजनं ततः कृत्वा पश्चाद्भुञ्जीत वाग्यतः । एवं संवत्सरस्यांते कृत्वा सर्वं यथोदितम् ।।७०
सौवर्णं कारयेद्देवं त्रिनेत्रं शूलपाणिनम् । वृषस्कंधगतं सौम्यं सितवस्त्रयुगान्वितम् ।।७१

समुद्र में पतन होने, पर्वतीय मार्ग पर्वत से गिर कर, जल में डूबने, अग्नि में जल कर, ऊपर कूदने और आत्म हत्या करने वाले प्राणियों के उद्धारार्थ चतुर्दशी के दिन श्राद्ध करने तथा किसी छोटी वस्तु के प्रदान करने से स्वर्ग का सुख प्राप्त होता है। उस दिन पुष्प, फल जो कुछ दान किया जाता है उस पुरुष को अवश्य प्राप्त होता है। राजन्! इस प्रकार इस तिथि को कुछ लोग आग्नेयी (अग्नि की प्रेयसी) और कुछ लोग रुद्र की प्रेयसी कहकर रौद्री अग्नि कहते हैं। जिस मनोरथ के उद्देश्य से जो कोई इसमें उपवास करता है, अग्नि उसे सफल करता है। वर्ष के आरम्भ में चतुर्दशी के दिन उपवास करते हुए त्रिलोकनाथ को त्रिलोचन (शिव) की पुष्प, धूप एवं नैवेद्य आदि द्वारा अर्चना करके रात्रि जागरण एवं पंचगव्य के प्राशन करते हुए भूमि-शयन करना चाहिए।५९-६५। नृप! मन्साहीन हृदय से तेल और क्षार (नमक आदि) के त्याग पूर्वक श्यांमाक के भोजन वाले तिल की एक सौ आठ आहुति, अग्नि, हव्य वाहन, सोम और अंगिरा को नमस्कार है, कहते हुए प्रदान करनी चाहिए। तदुपरांत निर्मल प्रातः काल के समय पंचामृत द्वारा शिव जी का सविधान स्नान-पूजन करके पूर्व की भाँति हवन कार्य के अनन्तर शिरसे प्रणाम पूर्वक क्षमा याचना करे।६६-६८। कि—त्रिमूर्ति को नमस्कार है, तथा सूर्य और अग्नि रूप तुम्हें नमस्कार है। मैं आप को बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ, मुझे अनेक पुत्रों समेत सुखानुभव और (देहावसान के समय) मोक्ष देने की कृपा करें। अनन्तर नीराजन करके मौन होकर भोजन करें। इसी भाँति प्रत्येक मास की चतुर्दशी के दिन सविधान सुसम्पन्न करने वर्ष के अन्त में पूर्वोक्त के अनुसार ही उसकी समाप्ति करना चाहिए—उस दिन सर्वप्रथम त्रिनेत्र एवं शूल पाणि भगवान् शिव की सुवर्ण प्रतिमा ताम्र पात्र में, जो वृष (वैल) के कंधे पर स्थित, स्वयं सौम्य रूप सम्पन्न, श्वेत चार वस्त्रों से सुसज्जित, चन्दन-चर्चित और मालाओं से

---

१. बुध्यते।

चन्दनेनानुलिप्ताङ्गं सितमाल्योपशोभितम् । स्थापयित्वा ताम्रपात्रे ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।।
सर्वकालिकमेतत्ते कथितं व्रतमुत्तमम् ।।७२
संवत्सरं समाप्तं हि व्रतस्य तु यदा भवेत् । काले गते बहुतिथे तीर्थस्य शरणं भवेत् ।।
मृतस्य देहो दिव्यस्थो दिव्यालंकारभूषितः ।।७३
दिव्यानारीगणवृतो विमानवरमास्थितः । देवदेवैः समः शंभोः क्रीडति त्रिपुरे चिरम् ।।७४
इह चागत्य कालान्ते जातः स च नृपो भवेत् । दाता यज्वा धनी दक्षो ब्राह्मणो ब्राह्मणप्रियः ।।७५
श्रीमान्वाग्मी कृती धीमान्पुत्रपौत्रसमन्वितः । पत्नीगणसमायुक्तश्चिरं भद्राणि पश्यति ।। ७६

ये दुर्ल्लभा भुवि सुरोरगमानदानां कामा ह्यनुत्तमगुणेन युताः सदैव ।
तानाप्नुवन्ति सितभूततिथौ सुरेशं सम्पूज्य सोमतिलकं विधिवन्मनुष्याः ।।७७

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
[1]आग्नेयीचतुर्दशीव्रतवर्णनं नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः ।।९३

विभूषित हो, स्थापित करके पूजनोपरांत किसी विद्वान् ब्राह्मण को ताम्रपात्र पर समर्पित करे । मैंने इस भाँति तुम्हें इस सर्वकालिक एवं परमोत्तम व्रत का वर्णन सुना दिया, जिस व्रत के वर्ष समाप्ति के अवसर पर पूजन करने के अनन्तर बहुत समय व्यतीत होने पर उसे तीर्थ शरण (निवास) प्राप्त होता है और वहाँ के निधन होने पर दिव्य देह की प्राप्ति पूर्वक दिव्यालंकार से सुसज्जित होकर उत्तम विमान में अप्सरा वृन्दों से सुशोभित होता है । अनन्तर उस शिव पुरी में देव-नाथ के साथ चिरकाल तक क्रीडा करता है । कभी इस लोक में आने के समय दाता, यज्वा (यज्ञकर्ता) ब्राह्मण प्रिय और ब्राह्मण कुल में राजा होता है । श्रीसम्पन्न, सत्यवक्ता, कृतकृत्य एवं धीमान् वह राजा पत्नी गण एवं पुत्र-पौत्र समेत चिरकाल तक कल्याण-परम्परा के प्रमुख पूर्वक जीवन व्यतीत करता है । उत्तम गुण सफल मनुष्यों के देव शुक्लचतुर्दशी के दिन चन्द्रचूडशिव की सविधान आराधना करने पर निःसंदेह सफलता प्राप्त होती है ।६९-७७

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
आग्नेय (आनन्द) चतुर्दशी व्रत वर्णन नामक तिरानवेवाँ अध्याय समाप्त ।९३।

---

१. आनन्दचतुर्दशीव्रतवर्णनं नाम ।

अथ चतुर्नवतितमोऽध्यायः

अनन्तचतुर्दशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अनंतव्रतमस्त्यन्यत्सर्वपापहरं शिवम् । सर्वकामप्रदं नृणां स्त्रीणां चैव युधिष्ठिर ॥१
शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां मासि भाद्रपदे शुभे । तस्यानुष्ठानमात्रेण [1]सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२

युधिष्ठिर उवाच

कृष्ण कोऽयं त्वयाख्यातो ह्यनंत इति विश्रुतः । किं शेषनाग आहोस्विदनंतस्तक्षकः स्मृतः ॥३
परमात्माथ वानंत उताहो ब्रह्म उच्यते । क एषोऽनंतसंज्ञो वै तथ्यं ब्रूहि केशव ॥४

श्रीकृष्ण उवाच

अनंत इत्यहं पार्थ मम नाम निबोधय । आदित्यादिषु वारेषु यः काल उपपद्यते ॥५
कलाकाष्ठामुहूर्तादिदिनरात्रिशरीरवान् । पक्षमासर्तुवर्षादियुगकल्पव्यवस्थया ॥६
योऽयं कालोमयाख्यातस्तव धर्मभृतां वर । सोऽहं कालोऽवतीर्णोऽत्र भुवो भारावतारणात् ॥७
दानवानां विनाशाय वसुदेवकुलोद्भवम् । मां विद्धयनंतं पार्थ त्वं विष्णुं जिष्णुं हरं शिवम् ॥८
ब्रह्माणं भास्करं सर्वव्यापिनमीश्वरम् । विश्वरूपं महात्मानं सृष्टिसंहारकारकम् ॥९
प्रत्ययार्थं मयाख्यातं सोऽहं पार्थ न संशयः ।

अध्याय ९४

अनन्तचतुर्दशी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर! समस्त पापापहारी, कल्याण रूप यह अनन्त व्रत भी सभी पुरुषों की सम्पूर्ण कामनाओं को सफल करता है। भाद्रपद मास की शुक्ल चतुर्दशी के दिन उसके अनुष्ठान मात्र से समस्त पातकों से मुक्ति प्राप्त होती है। १-२

युधिष्ठिर के कहा—कृष्ण! आप ने अभी कहते समय अनन्त का नाम लिया है। वह अनन्त कौन है, शेषनाग अथवा तक्षक! परमात्मा या व्रह्म! केशव! मुझे यह तथ्य बताने की कृपा कीजिये—यह अनन्त नाम किसका है ! ३-४

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ! इसे भलीभाँति जान लो, अनन्त यह नाम मेरा है। रविवार आदि दिनों जितने काल (समय) उपस्थित होते हैं—कला, काष्ठ, एवं मुहूर्त आदि दिन-रात्रि, तथा पक्ष, मास, ऋतु एवं वर्ष आदि, जिसके द्वारा युग तथा कल्प की व्यवस्था की गयी है। धर्म धुरन्धर! इनमें जो काल नाम से बताया जाता है, भूभार के अपहरणार्थ यह काल रूप मैं ही अवतरित हूँ। पार्थ! दानवों के विनाशार्थ वसुदेव के कुल में उत्पन्न मुझे ही, अनन्तजयी, विष्णु, हर, शिव, व्रह्मा, भास्कर, शेष, सर्वव्यापी ईश्वर, विश्व रूप, महात्मा, एवं सृष्टि संहारी जानों। पार्थ! इसमें संशय नहीं कि तुम्हारे विश्वासार्थ मैंने व्याख्या पूर्वक कहा है।५-९

---

१. सर्वपापं प्रणश्यति।

युधिष्ठिर उवाच

अनन्तव्रतमाहात्म्यविधिं वद विदां वर ॥१०
किं पुण्यं किं फलं चास्य ह्यनुष्ठानवतां नृणाम् । केन वादौ पुरा चीर्णं मर्त्ये केन प्रकाशितम् ॥११
एवं समस्तं विस्तार्य ब्रूह्यनंतव्रतं हरे ।

श्रीकृष्ण उवाच

आसीत्पुरा कृतयुगे सुमंतो नाम वै द्विजः ॥१२
वशिष्ठगोत्रे चोत्पन्नः सुरूपश्च भृगोः सुताम् । दीक्षां नामोपयेमे तां वेदोक्तविधिना ततः ॥१३
तस्याः कालेन संजाता दुहितानंतलक्षणा । शीला नाम सुशीला सा वर्धते पितृसद्मनि ॥१४
माता च तस्याः कालेन हरदाहेन पीडिता । विननाश नदीतीरे मृता स्वर्गपुरं ययौ ॥१५
सुमंतोऽपि ततोऽन्यां वै धर्मपुंसः सुतां पुनः । उपयेमे विधानेन कर्कशां नाम नामतः ॥१६
दुःशीलां कर्कशां चंडीं नित्यं कलहकारिणीम् । सापि शीला पितुर्गेहे गृहार्चनरता विभो ॥१७
कुड्यस्तंभतुलाधारदेहलीतोरणादिषु । चातुर्वर्णकरं वैश्यनीलपीतसितासितैः ॥१८
स्वस्तिकैः शंखपद्मैश्च अर्चयन्ती पुनःपुनः । पित्रा दृष्टा सुमन्तेन स्त्रीचिह्ना यौवने स्थिता ॥१९
कस्मै देया मया शीला विचार्यैवं सुदुःखितः । पिता ददौ मुनीन्द्राय कौंडिन्याय शुभे दिने ॥२०
स्मृत्युक्तशास्त्रविधिना विवाहमकरोत्तदा । निवर्त्योद्वाहिकं सर्वं प्रोक्तवान् कर्कशां द्विजः ॥२१

युधिष्ठिर के कहा—विदांवर! मुझे अनन्त व्रत का माहात्म्य और विधान बताने की कृपा करें। इसके अनुष्ठान करने पुरुष को किस पुण्य और किस फल की प्राप्ति होती है! तथा इस मृर्त्यलोक में सर्वप्रथम किस व्यक्ति ने इसका अनुष्ठान सुसम्पन्न किया है।इस प्रकार समस्त बातों की विस्तृत व्याख्या पूर्वक भगवान् विष्णु के अनन्त व्रत बताने की कृपा करें।१०-११

श्रीकृष्ण बोले—पहले सतयुग के समय सुमन्त नामक एक ब्राह्मण था, जो बसिष्ठ गोत्र में उत्पन्न, एवं परम सुन्दर था। उसने सविधान द्वारा भृगु-पुत्री दीक्षा का पाणिग्रहण किया। कुछ समय व्यतीत होने पर उस स्त्री से शीला नामक एक कन्या का जन्म हुआ, जो अनन्त लक्षणों से भूषित एवं परम सुशीला थी। पिता के घर पर वह (चन्द्र कला की भाँति) वढ़ रही थी, उसी समय नदी-तट पर उसकी माता कालरूपी हरदाह से पीड़ित होकर निधन होने के अनन्तर स्वर्ग चली गयी। उपरांत सुमन्त ने एक अन्य धर्म पुरुष की कन्या का पाणिग्रहण किया, जो कर्कशा नाम से प्रख्यात थी। वह दुःशीला, कर्कशा, एवं चण्डी रूप धारण कर नित्य कलह करने वाली थी। विभो! शीला अपने पिता के घर में रहती हुई उसकी स्वच्छता के लिए दिन-रात अथक परिश्रम करती थी। गृह की भित्ति (दीवाल) स्तम्भ, तुलाधार, देहली, एवं तोरण आदि को नील, पीत, श्वेत तथा कृष्ण (काले) रंगों से सुशोभित और स्वास्तिक तथा शंख, पद्म चिन्हों से उसे अंकित करती हुई उसे उसके पिता ने देखाकि—यह युवावस्था को प्राप्त हो रही है, क्योंकि सभी चिह्न इसमें स्पष्ट प्रतीत हो रहे हैं। अतः मैं इस शीला कन्या को किसे अर्पित करूँ। यह विचार कर उसके पिता दुःखी होने लगे। अनन्तर सर्व सम्मति से उन्होंने शुभ मुहूर्त में मुनि श्रेष्ठ कौंडिन्य को अपनी पुत्री प्रदान किया।१२-२०। स्मृति-शास्त्र के विधान द्वारा विवाह संस्कार

किञ्चिदायादिकं देयं जामातुः पारितोषिकम् । तच्छ्रुत्वा कर्कशा क्रुद्धा प्रोद्धृत्य गृहमण्डपम् ॥२२
कपाटे सुस्थिरं कृत्वा गम्यतामित्युवाच ह । भोज्यावशिष्टचूर्णेन पाथेयं च चकार सा ॥२३
कौंडिन्योऽपि विवाह्यैनां पथि गच्छञ्छनैःशनैः । शीलां सुशीलामादाय नवोढां गोरथेन हि ॥२४
मध्याह्ने भोज्यवेलायां समुत्तीर्य सरित्तटे । ददर्श शीला सा स्त्रीणां समूहं रक्तवाससाम् ॥२५
चतुर्दश्यामर्चयन्तं भक्त्या देवं पृथक्पृथक् । उपगम्य शनैः शीला पप्रच्छ स्त्रीकदम्बकम् ॥२६
नार्यः किमेतन्मे ब्रूत किंनाम व्रत मीदृशम् । ता ऊचुर्योषितः सर्वा अनन्तो नाम विश्रुतः ॥२७
साब्रवीदहमप्येवं करिष्ये व्रतमुत्तमम् । विधानं कीदृशं तत्र किं दानं कस्य पूजनम् ॥२८

स्त्रिय ऊचुः

शीले पक्वान्नप्रस्थस्य पुन्नान्नः सुकृतस्य तु । अर्द्धं विप्राय दातव्यमर्द्धमात्मनि भोजनम् ॥२९
कर्तव्यं तु सरित्तीरे कथां श्रुत्वा हरेरिमाम् । अनंतानंतमभ्यर्च्य मंडले गंधदीपकैः ॥३०
धूपैः पुष्पैः सनैवेद्यैः पीतालक्तैश्चतुःशतैः । तस्याग्रतो दृढं सूत्रं कुंकुमाक्तं सुदोरकम् ॥३१
चतुर्दशग्रंथियुतं वामे[1] स्त्री दक्षिणे पुमान् । मंत्रेणानेन राजेन्द्र यावद्वर्षं समाप्यते ॥३२

सुसम्पन्न हो जाने के उपरांत उन्होंने अपनी कर्कशा नामक आर्या से कहा—जामाता जा रहे हैं, अतः इन्हें अपने कुछ हाथ भाग द्वारा सम्मानित करना चाहिए । यह सुनकर क्रुद्ध होकर कर्कशा ने गृह मण्डप की सभी वस्तुएँ किंवाड़ के भीतर रखकर उसको दृढ़ बन्द कर कहा—'चले जाओ (कुछ नहीं मिलेगा) । केवल भोज्य का कुछ अवशिष्ट बचा रह गया था । पाथेय (मार्ग-व्यय) रूप में वही उसने उन्हें दिया । विवाह होने के अनन्तर कौंडिन्य भी उस नवोढ़ा शीला को साथ लिए गोरथ (बैलगाड़ी-वहन) पर बैठे धीरे-धीरे मार्ग में जा रहे थे । मध्याह्न के समय नदी को पार कर उस भोजन बेला के समय शीला ने देखा कि—यहाँ इस नदी तट पर रक्त वस्त्र भूषित कुछ स्त्रियों का समूह उपस्थित है, जिसमें सभी स्त्रियाँ पृथक्-पृथक् श्रद्धा भक्ति पूर्वक अनन्त भगवान् की सविधान अर्चना उस चतुर्दशी के दिन कर रही थीं । शीला ने धीरे-धीरे वहाँ जाकर उन स्त्रियों से पूछा—आप लोग यह कौन व्रत सुसम्पन्न कर रही हैं, मुझे बताने की कृपा करें । इसे सुनकर उन सभी स्त्रियों ने कहा—'अनन्त' नाम से इसकी प्रख्याति है । शीला ने कहा—मैं भी यह परमोत्तम व्रत सुसम्पन्न करूँगी, किन्तु इसका विधान दान, और किसका पूजन होगा । बताने की कृपा करें ।२१-२८

स्त्रियों ने कहा—शीले! भली भाँति बनाये हुए एक सेर के पक्वान के आधे भाग ब्राह्मण को अर्पित कर शेष स्वयं अथवा परिसर के लिए सुरक्षित रखे । किसी नदी के तट पर इस कथा के श्रवण पूर्वक मण्डल में स्थापित अनन्त देव की गन्ध, दीपक, धूप, पुष्प, नैवेद्य, तथा चार सौ पीत अलक्तक द्वारा सविधान अर्चना करके उनके सम्मुख दृढ़ सूत्र का बना हुआ जो कुंकुम में भलीभाँति भीगा हो, चौदह गांठ का एक सुन्दर डोरा रख पूजनोपरांत सभी स्त्रियाँ बायें हाथ और पुरुष दक्षिण हाथ में बाँधकर वर्ष की समाप्ति तक सुरक्षित रखे ।२९-३२। राजेन्द्र! उसे हाथ में बाँधते समय इस प्रकार क्षमा प्रार्थी होना चाहिए—वासुदेव!

---

१. वामे करतले न्यसेत् ।

अनन्त संसारमहासमुद्रे मग्नान्समभ्युद्धर वासुदेव।
अनन्तरूपे विनियोजितात्मा ह्यनन्तरूपाय नमो नमस्ते॥३३
अनेन दोरकं बद्ध्वा भोक्तव्यं स्वस्थमानसैः। ध्यात्वा नारायणं देवमनंतं विश्वरूपिणम्॥३४
भुक्त्वा चांते व्रजद्वेश्म हीदं प्रोक्तं व्रतं तव। सापि श्रुत्वा व्रतं चक्रे शीला बद्ध्वा सुदोरकम्॥३५
भर्ता तस्याः समागत्य तां ददर्श महाधनाम्। पाथेयशेषं विप्राय दत्त्वा भुक्त्वा तथैव च॥३६
पुनर्जगाम सा हृष्टा गोरथेन स्वमाश्रमम्। भर्त्रा सहैव शनकैः प्रत्यक्षं तत्क्षणादभूत्॥
[1]तेनानन्तप्रभावेण शुभगोधनसङ्कुलः ॥३७
गृहाश्रमः श्रिया युक्तो धनधान्यसमायुतः। आकुलो व्याकुलो रम्यः सर्वत्रातिथिपूजनः॥३८
सापि माणिक्यकाञ्चीभिर्मुक्ताहारविभूषिता। दिव्यांगवस्त्रसंछन्ना सावित्रीप्रतिमाभवत्॥३९
कदाचिदुपविष्टेन दृष्टं बद्धं सुदोरकम्। शीलाया हस्तमूले तु साक्षेपं त्रोटितं रुषा॥४०
तेन कर्मविपाकेण तस्य सा श्रीः क्षयं गता। गोधनं तस्करैर्नीतं गृहं चाग्निविदाहितम्॥४१
यद्यदेवागतं गेहे तत्र तत्रैव नश्यति। स्वजनैः कलहो मित्रैर्वचनं न जनैस्तथा॥४२
अनंताक्षेपदोषेण दारिद्र्यं पतितं गृहे। न कश्चिद्वदते लोकस्तेन सार्द्धं युधिष्ठिर॥४३

अनन्त! इस संसार में निमग्न प्राणियों का उद्धार करें। अनन्त रूप में मैंने अपनी आत्मा को संलीन कर अनन्त रूप आप को बार-बार नमस्कार करता हूँ। डोरा बाँधने के उपरांत स्वस्थ चित्त से नारायण एवं विश्वरूपी अनन्त देव के ध्यान पूर्वक भोजन करके सप्रेम अपने गृह का प्रस्थान करे। इस प्रकार मैंने तुम्हें यह व्रत बता दिया। शीला ने भी इसे सुनकर व्रत नियम पालन पूर्वक एक डोरा हाथ में बाँध लिया। उसी समय उसके पति ने वहाँ आकर उसे महाधन सम्पन्न देखा। शीला ने पाथेय यात्रा (मार्ग व्यय) धन रख कर शेष धन के दान और भोजन द्वारा ब्राह्मणों को सुसम्मानित किया। भोजन करके वह हर्षित होती हुई गोरथ (वहल) द्वारा अपने आश्रम आई। वहाँ पहुँचते उसने यह देखा कि—पति समेत उसके उस आश्रम में पहुँचने के साथ उसी अनन्त व्रत के प्रभाव से वहाँ गौओं का समूह उत्पन्न हो गया है, उसका प्रारम्भ-गृह धन-धान्य पूर्ण भी सम्पन्न दिखायी दे रहा है। उसकी ओर से चारों ओर लोग, अतिथि पूजन में व्याकुल हो रहे हैं। शीला भी उसी समय माणिक्य आदि के आभूषणों से अंग-प्रत्यंग सुसज्जित, मुक्ताहार भूषित और दिव्य वस्त्रों से आच्छन्न होना सावित्री की साक्षात् प्रतिमा मालूम होने लगी। इस प्रकार अनन्त सुखानुभति करती हुई उस शीला के साथ बैठे हुए उसके पति ने एक बार कभी उसके हाथ में बंधे हुए उस (अनन्त के) डोरे को देखा। उन्होंने रुष्ट होकर आक्षेप करते हुए शीला के हाथ से उस डोरे को तोड़ कर फेंक दिया। उस कर्म के दुःखदायी परिणाम स्वरूप उनकी समस्या भी नष्ट हो गयी। गौओं को चोरों ने चुरा लिया, और अग्नि होत्र (अग्नि) ने गृह त्याग दिया।३३-४१। अर्थात् जो धन जहाँ से आया था वह वहाँ चला गया—नष्ट हो गया। स्वजनों में कलह, मित्रजनों से बात-चीत न हो—आदि दुःखों के साथ अनन्त भगवान् के अपमान के नाते उनके घर में साङ्गोपाङ्ग दारिद्र का निवास हो गया। उसके कारण युधिष्ठिर! उनके साथ कोई भी पुरुष बात नहीं करता

---

१. तेनानंतव्रतेनास्य बभौ।

ततो जगाम कौंडिन्यो निर्वेदाद्वनगह्वरम् । मनसा ध्यायतेऽनंतं कदा द्रक्ष्यामि केशवम् ।।४४
व्रतं निरशनं गृह्य ब्रह्मचर्यं जपन्हरिम् । विह्वलः प्रययौ पार्थ अरण्यं जनवर्जितम् ।।४५
तत्रापश्यन्महावृक्षं फलितं पुष्पितं तथा । तमपृच्छत्त्वयानंतः कच्चिद्दृष्टो महाद्रुम ।।
तद्ब्रूहि सोप्युवाचेदं नानंतं वेद्म्यहं द्विज ।।४६
एवं निरीक्षितस्तेन गां ददर्श सवत्सकाम् । तृणमध्ये प्रधावन्तीमितश्चेतश्च पाण्डव ।।४७
सोऽवदद्धेनुके ब्रूहि यद्यनंतस्त्वयेक्षितः । गौरुवाचाथ कौंडिन्यं नानंतं वेद्म्यहं विभो ।।४८
ततो जगामाथ वने गोवृषं शाद्वले स्थितम् । दृष्ट्वा पप्रच्छ गोस्वामिन्ननंतो लक्षितस्त्वया ।।४९
गोवृषस्तमुवाचाथ नानन्तो वीक्षितो मया । ततो व्रजन्ददर्शाग्रे रम्यं पुष्करिणीद्वयम् ।।५०
अन्योन्यजलकल्लोलवीचिभिः परिशोभितम् । छन्नं कुमुदकह्लारैः कुमुदोत्पलमण्डितम् ।।५१
सेवितं भ्रमरैर्हंसैश्चक्रैः कारंडवैर्बकैः । ते अपृच्छ द्विजोऽनन्तो भवद्भ्यां नोपलक्षितः ।।५२
ऊचतुः पुष्करिण्यौ तं नानंतं विद्महे द्विज । ततो व्रजन्ददर्शाग्रे गर्दभं कुञ्जरं तथा ।।५३
तावप्युक्तौ मुनिना तेन तस्यापि विनिवेदितम् । नावाभ्यां वीक्षितोऽनंतस्तच्छ्रुत्वा निषसाद ह ।।५४
तस्मिन्क्षणे मुनिवरे कौण्डिन्ये ब्राह्मणोत्तमे । कृपयाऽनन्तदेवोऽपि प्रत्यक्षः समजायत ।।५५
वृद्धब्राह्मणरूपेण इत एहीत्युवाच तम् । प्रवेशयित्वा स्वगृहं गृहीत्वा दक्षिणे करे ।।५६
तां पुरीं दर्शयामास दिव्यनारीनरैर्युताम् । तस्यां निविष्टमात्मानं वरसिंहासने नृप ।।५७

था । अनन्त उस दुःख से दुःखित कौंडिन्य ने घोर जंगल का प्रस्थान किया । मन में सदैव यही चिन्ता करते थे कि—मैं अनन्त भगवान् केशव को कहाँ और कैसे देखूँ । ब्रह्मचारी रहकर उपवास पूर्वक व्रत के पालन करते हुए भगवान् अनन्त के दर्शनार्थ कौंटिन्य व्याकुल होकर निर्जन जंगल में चले गये । पार्थ! वहाँ पहुँचने पर उन्हें फल-पुष्प भूषित एक महावृक्ष दिखायी दिया । उसे देखकर उन्होंने कहा—महाद्रुम! तुमने कहीं अनन्त देव को देखा है! उसने कहा-द्विज! मैं अनन्त को नहीं जानता हूँ । पाण्डव! इसी भाँति चारों ओर देखते हुए वह (विप्र) जा रहा था, मार्ग में बछड़े समेत एक गौ दिखायी पड़ा । जो उस हरे-भरे तृण समूहों में दौड़ रही थी । उससे उन्होंने कहा—धेनुके! मुझे बताओ, तुमने कहीं अनन्त को देखा है । इसके प्रत्युत्तर में गौ ने कहा—विभो! कौंडिन्य! मैं अनन्त को नहीं जानती । अनन्तर वन में आने जाने पर उन्होंने हरी घास में एक वृष (बैल) देखा । उससे गोस्वामिन्! तुमने कहीं अनन्त देव को देखा है । उसने कहा—अनन्त को मैं कहीं नहीं देखा । आगे बढ़ने पर उसे दो सुन्दर पुष्करिणियाँ दिखायी पड़ी, जो आपस में जल-कल्लोल करने वाली तरङ्गों से सुशोभित हो रही थी, और कुमुदिनी के कुङ्गल (कलियों) से आच्छन्न एवं कुमुद तथा कमल से विभूषित एवं भ्रमरगण, हंस, चकोर, कारण्डव और वकुलो से सुशोभित थीं । ब्राह्मणों ने उनसे पूँछा—आप लोगों ने कहीं अनन्त को देखा है! उन लोगों ने उत्तर दिया—द्विज! हम लोगों ने अनन्त को कहीं नहीं देखा है । उपरांत आगे जाने पर गर्दभ (गधा) और गजराज दिखायी पड़ा । उन दोनों से भी उन्होंने निवेदन किया । किन्तु उनके ऐसा उत्तर देने पर कि हमें कहीं नहीं अनन्त दिखायी दिये । वे ब्राह्मण देव वहीं बैठ गये । उसी समय मुनि श्रेष्ठ एवं ब्राह्मणोत्तम कौंडिन्य के ऊपर भगवान् अनन्त देव ने कृपा करते वहाँ उन्हें प्रत्यक्ष रूप से दर्शन दिया ।४२-५५। वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण कर उन्होंने (अनन्त देव ने) उन ब्राह्मणों से कहा—यहाँ

पार्श्वस्थशङ्खचक्रासिगदागरुडशोभितम् । दर्शयामास विप्राय पूर्वोक्तं विश्वरूपिणम् ।।५८
विभूतिभेदेश्चानन्तमनन्तं परमेश्वरम् । तं दृष्ट्वा तु द्विजोऽनन्तमुवाच परया मुदा ।।५९
पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः । पाहि मां पुण्डरीकाक्ष सर्वपापहरो भव ।।६०
अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् । चूतवृक्षो वृषः कस्तु का गौः पुस्करिणीद्वयम् ।।
गर्दभं कुञ्जरं चैव देव मे ब्रूहि तत्त्वतः ।।६१

अनन्त उवाच

चूतवृक्षो हि विप्रोऽसौ विद्वान्यो वेदगर्वितः । विद्यादानं[1]नोपकुर्वञ्छिष्येभ्यस्तरुतां गतः ।।६२
सा गौर्वसुन्धरा दृष्टा निष्फला या त्वयेक्षिता । स हर्षो वृषभो दृष्टो लाभार्थं यस्त्वया वृतः ।।६३
धर्माधर्मव्यवस्थानं तच्च पुष्करिणीद्वयम् । खरः क्रोधस्त्वया दृष्टः कुंजरो धर्मदूषकः ।।
ब्राह्मणोऽसावनंतोऽहं गुहासंसारगह्वरे ।।६४
इत्युक्तं ते मया सर्वं विप्र गच्छ पुनर्गृहम् ।।६५
चरानंतव्रतं तत्त्वं नव वर्षाणि पंच च । ततस्तुष्टः प्रदास्यामि नक्षत्रस्थानमुत्तमम् ।।६६
भुक्त्वा च विपुलान्भोगान्सर्वान्कामान्यथेप्सितान् । पुत्रपौत्रैः परिवृतस्ततो मोक्षमवाप्स्यसि ।।६७

आवो, यहाँ आवो । उनका दाहिना हाथ पकड़ कर वृद्ध ब्राह्मण रूप धारी अनन्त ने अपने गृह के भीतर ले जाकर दिव्य सभी-पुरुषों से सुशोभित उस पुरी को दिखाया जहाँ सिंहासन पर उन्हीं का रूपान्तर अपने पार्श्व भाग में शंख, चक्र, खड्ग, गदा और गरुड़ से युक्त होकर विभूषित हो रहा था । नृप, उन ब्राह्मण को उन्होंने अपना पूर्वोक्त विश्व रूप दिखाया, जो अनेक भाँति की विभूतियों (सौख्यों) से सुसम्पन्न होने के नाते उनकी अनन्तता का परिचायक था । ब्राह्मण देव कौंडिन्य ने परमेश्वर अनन्त देव को देख कर अपनी परम प्रसनन्ता प्रकट करते हुए उनकी क्षमा अर्चना की—कमलनेत्र! मैं स्वयं पाप स्वरूप, पापकर्मी, पापात्मा और पाप से ही उत्पन्न हुआ है । अतः समस्त पापों के अपहरण पूर्वक आप मेरी रक्षा करें । आज मेरा जन्म सफल हुआ और जीवन सुजीवन हुआ । देव! मार्ग में मुझे मिलने वाले वे आप के वृक्ष, वृषभ, गौ, दो पुष्करिणी गधा और हाथी कौन थे, बताने की कृपा करें ।५६-६१

अनन्त बोले—आम का वृक्ष वह ब्राह्मण है जो अपनी वेद विद्या के मद में अंधा रहने के नाते शिष्यों को कभी पढ़ाया ही नहीं, इससे उसे वृक्ष होना पड़ा । वह गौ निष्फला भूमि थी जिसे तुमने देखा था । वह प्रसन्न चित्त वृक्ष जिसे तुमने भलीभाँति देखा था, लोभाक्रान्त तुमने जिसको अपनाया था वह वही था । धर्मा धर्म की व्यवस्था (स्थान) रूप वे दोनों पुस्करिणियाँ थीं । वह गधा क्रोध का रूप और वह हाथी धर्मदूषक था । इस संसार की घोर अन्धकारमय इस गुफा में यह ब्राह्मण रूप अनन्त मैं हूँ । विप्र! इस प्रकार मैंने तुम्हें सभी कुछ बता दिया अब तुम अपने घर लौट जाओ और चौदह वर्ष तक इस अनन्त व्रत-तत्त्व की उपासना करते रहो । तदुपरांत प्रसन्न होकर मैं तुम्हें उत्तम नक्षत्र स्थान प्रदान करूँगा । मनोनुकूल विपुल भोगों के उपभोग करते हुए तुम अपने पुत्र-पौत्रों समेत देहावसान के समय

---

१. आसीददानाच्छास्त्रस्य ।

इति दत्त्वा वरं देवस्तत्रैवान्तर्हितोऽभवत् । कौण्डिन्योऽप्यागतो गेहं चचारानन्तसद्व्रतम् ॥६८
शीलया सह धर्मात्मा भुक्त्वा भोगान्मनोरमान् । अंते जगाम च स्वर्गं नक्षत्रं च पुनर्वसूम् ॥६९
कल्पस्थानी च संभूतो दृश्यतेऽद्यापि स ज्वलन् । अनंतव्रतधर्मेण सम्यक्चीर्णेन कौरव ॥७०
एतत्ते कथितं पार्थं व्रतानामुत्तमं व्रतम् । यत्कृत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥७१
ये च शृण्वन्ति सततं वाच्यमानं नरोत्तम । ते सर्वे पापनिर्मुक्ता यास्यंति परमां गतिम् ॥७२

संसारसागरगुहासु सुखं विहर्तुं वाञ्छन्ति ये कुरुकुलोद्भव शुद्धसत्त्वाः ।
सम्पूज्य ते त्रिभुवनेशमनंतदेवं बध्नाति दक्षिणकरे वरदोरकं मे ॥७३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
अनंतचतुर्दशीव्रतवर्णनं नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ।९४

अथ पञ्चनवतितमोऽध्यायः

श्रवणिकाव्रतम्

युधिष्ठिर उवाच

लोके प्रसिद्धाः श्रूयंते श्रावण्यो नाम देवताः । एताः काः किं च कुर्वंति धर्मं चासां ब्रवीहि मे ॥१

मोक्ष प्राप्त करोगे ।६२-६७। इस भाँति वरदान देकर अनन्त देव उसी स्थान अन्तर्हित हो गये । धर्मात्मा कौंडिन्य भी घर आकर उस उत्तम अनन्त व्रत को सुसम्पन्न किया, जिससे शीला के साथ समस्त मनोरथ सुखों के उपभोग करते हुए देहावसान के समय उन्हें स्वर्ग में पुनर्वसु नक्षत्र का लोक प्राप्त हुआ । कल्प स्थायी रह कर उस अनन्त व्रत धर्म के अनुष्ठान सुसम्पन्न करने के नाते आज भी प्रकाश पूर्ण दिखायी देते हैं । कौरव! पार्थ! इस प्रकार मैंने तुम्हें एक परमोत्तम व्रत की व्याख्या सुनायी, जिसके अनुष्ठान द्वारा प्राणी समस्त पातकों से मुक्त होता है, इसमें संशय नहीं । नरोत्तम! इसके श्रवण करने वाले भी समस्त पापों से मुक्त होकर परमोत्तम गति प्राप्त करते हैं । कुरुकुल-भूषण! इस प्रकार संसार-सागर की गुफा में सुखी जीवन व्यतीत करने की वाञ्छा से पुनान्तःकरण शुद्धि पूर्वक त्रिभुवनाधीश्वर अनन्त की आराधना और मेरे उस डोरे को दक्षिण हाथ में बाँधना चाहिए ।६८-७२।

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
अनन्त चतुर्दशी व्रत वर्णन नामक चौरानबेवाँ अध्याय समाप्त ।९४।

अध्याय ९५

श्रवणिकाव्रत-वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—लोक प्रसिद्ध श्रावणी नामक देवताओं के नाम मैं प्रायः सुना करता हूँ, वे कौन हैं, क्या करते हैं और उनके धर्म क्या हैं! मुझे बताने की कृपा करें! १

श्रीकृष्ण उवाच

विद्यन्ते देवताः पुण्याः श्रावण्यो नाम पांडव । ब्रह्मणा प्रथमं सृष्टा नियोगश्च जने कृतः ।।२
यो यद्वदति लोकेस्मिञ्छुभं वाप्यथ वाशुभम् । श्रावयंति हि तच्छीघ्रं ब्राह्मण्यः कर्मगोचरम् ।।३
जातास्त्रिलोके पूज्यास्तु नियमेन प्रजापते । दूराच्छ्रवणविज्ञानं दूराद्दर्शनगोचरम् ।।४
तासामस्तीह सा शक्तिरचिन्त्या तर्कहेतुभिः । नरैस्तुष्टैश्च यत्प्रोक्तं कार्याकार्यस्य कारणात् ।।५
तच्छृण्वंति यतः पार्थ नैकाः श्रावणिका मताः । यथा देवा यथा दैत्या यथा विद्याधरा नराः ।।६
यथा हि सिद्धगंधर्वा नागाः किंपुरुषाः खगाः ।राक्षसाश्च पिशाचाश्च देवानामष्टयोनयः ।।
तथैताः पुण्यनामानो वंद्याः श्रावणिकाः स्मृताः ।।७
ता समुद्दिश्य कर्तव्यं व्रतं नारीनरैरिह । किं तु तासां महोग्रं तु व्रतं संयमनं सदा ।।८
आघ्राय धूपं पक्वान्नं जलं चागन्धमेव च । दातव्या पुनरन्यासां नारीणां भोज्यपारणा ।।९
अदत्त्वा यदि मृत्युः स्यादन्तरालेऽपि पाण्डव । तदा लग्नग्रहैर्ग्रस्ता लग्ना ह्यपरिकारटम् ।।
सफेनिलैर्मुखै रौद्रैर्म्रियन्ते नीचदुःखिताः ।।१०
श्रूयंते हि पुरा पार्थ पृथिव्यां नहुषो नृपः । तस्य भार्या महादेवी जयश्रीर्नाम भारत ।।११
प्रत्यक्षरूपसंपन्ना दर्शनीयतरा शुभा । पीवरोरुस्तना श्यामा मृदुकुञ्चितमूर्द्धजा ।।१२
शब्दगद्गदसंभाषा मत्तमातंगगामिनी । यथारूपा तथा शीला सती चेष्टा महीतले ।।१३

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डव! पुण्य रूप श्रावणी नामक देवताओं की भी स्थिति लोक में है ही जिन्हें सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा ने उत्पन्न कर इस लोक के आप के प्राणी के (द्रष्टा) के रूप में नियुक्त किया है। इस लोक में प्राणी जो कुछ शुभ-अशुभ कहता है, उसे वे ब्रह्मा को शीघ्र सुनाती हैं। अतः वे त्रिलोक की पूज्य हैं। उन्हें सभी के दूर से श्रवण विज्ञान और दूर से ही दर्शन भी होते हैं इसलिए उनलोगों की शक्ति तर्क (उहापोह) अथवा हेतुकारण, द्वारा अनुमेय नहीं है। पार्थ! अपने कार्याकार्य कर्तव्य के अनुसार प्रसन्न होकर मनुष्यों द्वारा कही गयी वातों कों वे एक ही नहीं अपितु सभी श्रवणिकायें सुनती हैं। जिस प्रकार देव, दैत्य, विद्याधर, सिद्ध, गन्धर्व, नाग, किंपुरुष (किन्नर), नाग, राक्षस और पिशाच देवों की आठ योनियाँ बतायी गयी हैं, उसी भाँति वंदनीय तथा ये पुण्य नाम वाली श्रवणिका भी हैं। उनके उद्देश्य से इस लोक में नारी-नर सभी को व्रतानुष्ठान करना चाहिए। किन्तु उनके उस महान् उग्र व्रत को संयम पूर्वक सुसम्पन्न करते हुए धूप, अक्रान्त जल और सुगन्ध पारण भोजन के समय पुनः अन्य स्त्रियों को अर्पित करे।२-९। पाण्डव! उस समय यदि उपरोक्त वस्तुओं के दान के पूर्व मृत्यु हो गयी, उस समय की घटना के कारण उसके मुख का आकार भीषण एवं उससे फेनिल फेन की भाँति लार टपकते हुए उस नीच की दुःखद मृत्यु होती है। पार्थ! पहले समय में इस वसुधा के अधीश्वर राजा नहुष थे। उनकी प्रधान रानी का नाम जयश्री था। भारत! उसका रूप-लावण्य अनुपम होने के नाते वह अत्यन्त दर्शनीय एवं कल्याण मूर्ति थी। उसके उरु और स्राव स्थूल, स्वयं श्यामा, कोमल एवं टेढे शिर के बाल थे। गद्गदवाणी में शब्दोच्चारण करने के नाते उसकी भाषा मुग्ध करने वाली थी और मतवाले गजराज की भाँति गमन करने वाली थी। इस धरातल पर जिस भाँति

सा कदाचिद्‌गता स्नातुं गङ्गायां चाश्रमे मुनेः । वशिष्ठस्य ददर्शाथ सतीं भार्यामरुंधतीम् ॥१४
भोजयंतीं मुनीनां तु पत्नीर्नानान्नभोजनैः । तया च प्रणिपत्याथ पृष्टा देव्या महासती ॥१५
पूज्यं भगवति ब्रूहि किमेतद्व्रतमुच्यते ॥१६

अरुन्धत्युवाच

जयश्रिये शृणुष्व त्वं नाम्ना श्रावणिकाव्रतम् । एतद्भर्त्रा समाख्यातं वशिष्ठेन महर्षिणा ॥१७
गूढं ब्रह्मर्षिसर्वस्वं सुरतिव्रतमं शुभम् ! गच्छ वा तिष्ठ वा राज्ञि तवातिथ्यं करोम्यहम् ॥१८
एवमुक्ता जयश्रीस्तु भोज्ये तस्मिन्यदृच्छया । बुभुजे सापि तत्रैव अरुंधत्या कृतादरा ॥१९
भुक्त्वाचम्य जगामाथ स्वपुरं परमेश्वरम् । कालेन विस्मृतं तस्यास्तद्व्रतं तस्य भोजनम् ॥२०
ततस्तु समये पूर्णे म्रियमाणा महासती । जयश्रीर्घर्घरं गंतुं कुर्वाणा कंठगद्‌गदम् ॥२१
फेनं लालाविलाद्वक्त्रादुद्गिरन्ती मुहुर्मुहुः । स्थिता पञ्चदशाहानि बीभत्सा दारुणानना ॥२२
ततः षोडशके प्राप्ते दिने स्वयमरुंधती । प्रविश्याभ्यंतरं पूर्णं तां राज्ञीमवलोक्य च ॥
नहुषाय समाचख्यौ यदुक्तं श्रावणी व्रते ॥२३
तच्छ्रुत्वा नहुषो राजा द्रुतं भोज्यं प्रचक्रमे । यथोक्तं तदरुंधत्या यच्च यावदभीप्सितम् ॥२४
दत्वा च करकानष्टौ तामुद्दिश्य जयश्रियम् । क्षणाज्जगाम पञ्चत्वं करकाणां प्रदानतः ॥२५

वह रूप शील से विभूषित थी उसी भाँति वह महासती भी थी । एक बार गंगा स्नान के लिए प्रस्थान कर उसने गुरु एवं मुनि वशिष्ठ जी के आश्रम में जाकर उनकी धर्म पत्नी एवं सती मूर्ति अरुन्धती का दर्शन किया । उस समय अरुन्धती अनेक भाँति के अन्न भोजनों द्वारा मुनि पत्नियों को संतृप्त कर रही थीं । उसी बीच देवी जयश्री ने महासतो अरुन्धती से विनय-विनम्र प्रश्न किया—भगयअवति! आज यह कौन पूज्य व्रत है, जिसे आप तृष्टता से सुसम्पन्न कर रहीं हैं ! मुझे बताने की कृपा करें ।१०-१६

अरुन्धती बोली—जयश्रिये! मैं तुम्हें इस श्रावणिका की व्याख्या सुना रही हूँ, सावधान होकर सुनो! मेरे पति वशिष्ठ महर्षि ने इसे मुझे बताया था । यह व्रत अत्यन्त रहस्य पूर्ण, ब्रह्मचर्य का सर्वस्व, एवं अत्यन्त शुभ पतिव्रत धर्म है । राज्ञि! जाना चाहती हो तो, जाओ अथवा ठहरो । मेरा आतिथ्य सत्कार स्वीकार करो । अरुन्धती के इस प्रकार कहने पर जयश्री ने सहर्ष उस भोज में सम्मिलित होकर उनके उस सादरसत्कार को स्वीकार किया । भोजनोपरांत वह अपनी उत्तम पुरी अयोध्या को लौट आई । इससे देहावसान के समय वह महासती जयश्री घाघरा नदी के तट पर स्थित रह कर उसी के पवित्र जल से अपने कंठ को गन्ध करती रही, किन्तु उसके मुख से बार-बार फेनिल लार टपक रहा था । पन्द्रह दिन वहाँ निवास करने पर उसका मुख अत्यन्त वीभत्स एवं भयानक हो गया था । उसकी उस घोर पीड़ा को सुनकर सोलहवें दिन महासती अरुन्धती स्वयं वहाँ आई और कफ पूर्ण ढंग से घुरघुर शक करती हुई उस रानी की पीड़ा का कारण उन्होंने राजा नहुष से श्रवणिका व्रत विषयक पूर्वोत्तर सभी बातें बतायी ।१७-२३। उसे सुन कर राजा नहुष ने अरुन्धती के आदेशानुसार उनके मनोनीत वस्तुओं का (अत्यन्तशीघ्र) भोज्य आरम्भ किया और रानी जयश्री के उद्देश्य से आठ करवों के दान सुसम्पन्न किया । उसी करवों के प्रदानानन्तर क्षण मात्र में रानी का निधन हुआ । सूर्य के समान प्रकाश पूर्ण

जगाम शक्रलोकं सा विमानेनार्कवर्चसा । दोधूयमाना चमरैः स्तूयमाना सुरासुरैः ।।२६

श्रीकृष्ण उवाच

मार्गशीर्षादिमासेषु द्वादशस्वपि पाण्डव । द्रव्यप्राप्तिश्च भक्तिश्च दानकाले प्रशस्यते ।।२७
भुक्त्वा यज्ञे चतुर्दश्यामष्टम्यां वा युधिष्ठिर । व्रती स्नात्वा तु पूर्वाह्णे नद्यादौ विमले जले ।।२८
आमन्त्रयेद्दशैकैका नारीगौरीस्वरूपिणीः । यताचाराः सुवेषाश्च ब्राह्मणीर्वा स्वगोत्रजाः ।।२९
द्वादश ब्राह्मणांस्तत्र वेदवेदाङ्गपारगान् । मन्त्रज्ञानितिहासज्ञानुपशान्तान्जितेन्द्रियान् ।।३०
सर्वं दद्याद्विधानेन पादक्षालनपूर्वकम् । चन्दनेन सुगन्धेन पुष्पधूपादिना तथा ।।३१
ग्रीवासूत्रकसिन्दूरकुङ्कुमेन च भूषयेत् । तासामग्रे प्रदातव्या वर्द्धन्यो द्वादशैव तु ।।३२
अच्छिद्रा जलपूर्णास्तु सुवृत्ताः सूत्रवेष्टिताः । सोहालकादिभिश्छन्नाः पुष्पमालाविभूषिताः ।।३३
चन्दनेन समालब्धाः सहिरण्याः पृथक्पृथक् । तन्मध्ये वर्द्धनीं चैकां स्वके शीर्षे निवेशयेत् ।।३४
स्थित्वा मण्डलके मध्ये यजमानः स्वयं तदा । यद्बाल्ये यच्च कौमारे वार्द्धके वापि यत्कृतम् ।।
तत्सर्वं नाशमायातु पितृदेवर्षिणां नृणाम् ।।३५
इमा मे समयं स्वर्ण तारयस्व भवार्णवात् । अद्याहं गन्तुमिच्छामि विष्णोः पदमनुत्तमम् ।।
एवमस्त्विति ता ब्रूयुः स्त्रियः सर्वा युधिष्ठिर ।।३६

विमान पर सुशोभित एवं देव और असुर द्वारा चलते हुए चामरों से सुसेवित होकर वह इन्द्रलोक पहुँच गयी ।२४-२६

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर ! पाण्डव ! मार्गशीर्ष आदि बारहों मासों में दान के समय द्रव्य प्राप्ति और भक्ति दोनों प्रशस्त कहे गये हैं । चतुर्दशी अथवा अष्टमी के दिन यज्ञ में भोजन करने के उपरान्त उस व्रती को पूर्वाह्ण के समय नदी आदि किसी जलाशय के निर्मल जल में स्नान करके दश स्त्रियों को आमन्त्रित करना चाहिए, जो एक-एक करके सभी स्त्रियाँ गौरी की भाँति सुरूपवती, सदाचारिणी एवं उनके वेष-भूषा उत्तम हों और ब्राह्मणी हों अथवा अपने गोत्र की । पुनः वेद-वेदाङ्ग निष्णात, मंत्र-इतिहास के मर्मज्ञ, उपदेश कुशल एवं जितेन्द्रिय बारह ब्राह्मणों को निमन्त्रित करना चाहिए ।२७-३०। सर्वप्रथम उनके पाद प्रक्षालन करके चन्दन, सुगन्ध, पुष्प, धूप आदि द्वारा उन स्त्रियों के पूजन और कण्ठ सूत्र, सिन्दूर एवं कुंकुम से उन्हें विभूषित करके उनके सम्मुख बारह वर्द्धनी पात्र रखे, जो छिद्ररहित, जलपूर्ण, सुन्दर गोलाकार, सूत्र से आवेष्टित, सोहालक आदि से छिन्न, माला विभूषित, चन्दन-चर्चित और हिरण्य युक्त हों । पृथक्-पृथक् उन्हें स्थापित कर पूजनोपरान्त यजमान उस मण्डल के मध्य में स्थित होकर मध्य की वर्द्धनी सिर में स्पर्श किये ऐसा कहे कि—बाल्य, कौमार एवं वृद्धावस्था में मैंने जो कुछ उत्कर्ष किया है, इस देव, ऋषि, पितृ एवं मनुष्यों के तर्पण द्वारा विनष्ट हो जाये। ये सभी वर्द्धनी पात्र मेरे देहावसान के समय इस संसार-सागर से मेरा उद्धार करें और मैं आज ही विष्णु के उस परमोत्तम लोक की प्राप्ति करना चाहता हूँ।३१-३५। युधिष्ठिर ! उस समय उन सभी स्त्रियों को 'एवमस्तु (ऐसा ही हो)' कहना

ततो ब्राह्मणमाहूय यजमान इदं वदेत् । ब्रूहि ब्राह्मण यन्मे त्वमघं येन क्षयं व्रजेत् ।।३७
उत्तीर्य श्रावणं मासं समुत्तारय साम्प्रतम् । उत्तारयेत मन्त्रेण ब्राह्मणो वर्धनीं च ताम् ।।३८
उपोष्य शिरसो देव्याः समुत्तीर्य रुहद्द्रुमान् । कटुकं निम्बवृक्षं वा ततो मधुकमारुह ।।
ततो गच्छ महादेवं श्रवणे श्रवणोत्तमे ।।३९

इति वर्धनिकोत्तारणमन्त्र

एवं ताः समयं प्रोच्य दत्त्वाशीर्वचनानि च ।।४०
तां वर्द्धनिकामेकान्ते विप्राय प्रतिपादयेत् । गृहीत्वा करकान्नार्य्यो व्रजेयुः स्वेषु वेश्मसु ।।४१
यजमानोऽपि यातासु यथेष्टं कामनाचरेत् । एवमाचरते पार्थ श्रावणीव्रतमादरात् ।।४२
तस्य काले तु सम्प्राप्ते सुखं मृत्युः प्रजायते । निर्व्याधिर्नीरुजो भोजी स्थित्वास्थित्वा शतं सुखम् ।।४३
पुत्रपौत्रसमृद्ध्याद्यौ भुक्त्वा मर्त्यसुखानि च । रुद्रलोकमवाप्नोति सोमलोकं स गच्छति ।।४४
स्त्रीणां तुल्यं स हीनोऽपि व्रती व्रतफलं व्रजेत् । गौरीभोज्येषु दत्तेषु एकादशसु यत्फलम् ।।४५
तदेकेनापि लभते पार्थ श्रावणिकाव्रते । भक्त्या गच्छन्ति ते लोकान्विहृत्य सुखमादरात् ।।४६

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवादे
श्रवणिकाव्रतं नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः ।९५

चाहिए। अनन्तर यजमान उन ब्राह्मणों को बुलाकर उनसे कहे कि—ब्राह्मण ! जिसके द्वारा मेरा पाप नष्ट हो सके, कहने की कृपा करें और इस समय इस श्रावण मास (वर्द्धनी) को मेरे शिर से उतारने की भी। उस समय ब्राह्मणों को मन्त्रोच्चारण पूर्वक यजमान के शिर से उस वर्द्धनी को उतारना चाहिए और उतारते समय उन्हें ऐसा कहना चाहिए कि—उपवास पूर्वक तुम देवी के शिर से उतर कर कटुक और नीम के वृक्ष पर आरोहण कर पुनः महुए के वृक्ष पर आरोहण करो। तदुपरान्त श्रवणोत्तम महादेव श्रवण की प्राप्ति करो। इस प्रकार प्रतिज्ञा रूप में कहकर आशीर्वाद देने के उपरान्त एकान्त में वर्द्धनी किसी ब्राह्मण को समर्पित करे। पश्चात् वे स्त्रियाँ करवो के ग्रहण पूर्वक अपने-अपने घर को प्रस्थान करें। तथा यजमान भी उन स्त्रियों के जाने के अनन्तर यथेच्छ कार्य प्रारम्भ करे। पार्थ ! इस प्रकार सादर इस श्रावणी व्रत को सुसम्पन्न करने पर देहावसान समय उसकी सुख पूर्वक मृत्यु होती है। व्याधिरहित अनेक भाँति के सुखों के उपभोग अपने पुत्र-पौत्रादि परिवार समेत करने के उपरान्त उसे रुद्र लोक और चन्द्रलोक की क्रमशः प्राप्ति होती है। स्त्री रहित होने पर भी उस व्रती को स्त्रियों के तुल्य ही व्रत-फल की प्राप्ति होती है। पार्थ ! गौरी प्राप्ति के भोज्य में जाने वाले उन एकादश फलों के एक ही फूल प्रदान द्वारा भक्ति पूर्वक उस श्रावणिका व्रत को सुसम्पन्न करने पर उसे समस्त लोकों के विहार पूर्वक उत्तम लोक (मोक्ष) की प्राप्ति होती है। ३६-४६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
श्रावणिका व्रत वर्णन नामक पञ्चानवेवाँ अध्याय समाप्त ।९५।

अथ षण्णवतितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथ नक्तोपवासस्य विधानं शृणु पांडव । येन विज्ञातमात्रेण नरो मोक्षमवाप्नुयात् ॥१
येषु तेषु च मासेषु शुक्लपक्षे चतुर्दशीम् । ब्राह्मणं भोजयित्वा तु प्रारभेत ततो व्रतम् ॥२
मासिमासि भवन्ति द्वावष्टम्यौ च चतुर्दशी । शिवार्चनरतो भूत्वा शिवध्यानैकमानसः ॥
वसुधाभाजनं कृत्वा भुञ्जीयान्नक्तभोजनम् ॥३
उपवासात्परं भैक्ष्यं भैक्ष्यात्परमयाचितम् । अयाचितात्परं नक्तं तस्मान्नक्तेन भोजयेत् ॥४
देवैश्च भुक्तं पूर्वाह्णे मध्याह्ने मुनिभिस्तथा । अपराह्ने च पितृभिः सन्ध्यायां गुह्यकादिभिः ॥५
सर्वलोकानतिक्रम्य नक्तभोजी सदा भवेत् । हविष्यभोजनं स्नानं सत्यमाहारलाघवम् ॥६
अग्निकार्यो ह्यधःशय्यो नक्तभोजी सदा भवेत् । एवं संवत्सरस्यांत व्रतपूर्णस्य सर्पिषा ॥
पूर्णकुम्भोपरि स्थाप्य पूजयेच्च सुशोभने ॥७
कपिलापञ्चगव्येन स्थापयेन्मृण्मयं शिवम् । फलं पुष्पं यवक्षीरं दधिदूर्वांकुरांस्तथा ॥८
तत्कुम्भानां जलोन्मिश्रमर्घमष्टांगमुच्यते । शिरसा धारयित्वा तु जानू कृत्वा महीतले ॥९
महादेवाय दातव्यं गन्धपुष्पं यतोक्रमम् । भक्ष्यौदनैर्बलिं कृत्वा प्रणम्य परमेश्वरीम् ॥१०

अध्याय ९६

श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर संवाद

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डव ! मैं तुम्हें उत्तम उपवास का वह विधान बता रहा हूँ, जिसके केवल ज्ञान मात्र से मनुष्यों को मोक्ष प्राप्त होता है, सावधान होकर सुनो ! जिस किसी मास की शुक्ल चतुर्दशी के दिन ब्राह्मण भोजन पूर्वक उस व्रत का आरम्भ करना चाहिए। प्रत्येक मास की दोनों अष्टमी और चतुर्दशी के दिन सप्रेम भगवान् शिव की अर्चना करते हुए उनके ध्यान एकाग्रचित्त होना चाहिए । अनन्तर ब्राह्मण भोजन कराकर स्वयं नक्त (स्त्रियाँ) भोजन करें। क्योंकि उपवास से भिक्षा के अन्न और उससे अयाचित एवं उससे नक्त परमोत्तम बताया गया है अतः नक्त भोजन सर्वश्रेष्ठ है। देवगण पूर्वाह्न में, मुनिगण मध्याह्न में, पितृगण अपराह्न में और गुह्यक आदि संध्या में भोजन करते हैं, इसलिए समस्त लोगों को (समय का) अप्रतिक्रमण कर सदैव नक्त भोजी होना चाहिए। नित्य स्नान, हविष्यान्न का लघु आहार, हवन एवं भूमिशयन नक्तभोजी के लिए परमावश्यक है। इस प्रकार इस घृत के व्रत सम्पूर्ण होने पर वर्ष के अन्त में सुशोभन जल पूर्वकलश के ऊपर स्थापित कर पूजा करनी चाहिए ।१-७। उस समय कपिला गौ, शिव की मृण्मयी प्रतिमा को स्थापन एवं पंचगव्य द्वारा स्नान पूजन करने के उपरान्त फल, पुष्प, जवा, क्षीर, दही, कुश तथा सजल कुम्भ इन आठ वस्तुओं के मिश्रित अर्घ्य प्रदान करने के लिए उस कलश को शिर से स्पर्श किये दोनों घुटने पृथ्वी पर टेक कर महादेव जी के लिए क्रमशः अर्घ्य प्रदान करना चाहिए। उपरान्त भक्ष्य-भात द्वारा परमेश्वरी को

धेनुं वा दक्षिणां दद्याद्वृषं वापि धुरंधरम् । श्रोत्रियाय दरिद्राय कल्पव्रतविदाय च ॥
यो ददाति शिवे भक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु ॥११
विमानमर्कप्रतिमं हंसयुक्तमलङ्कृतम् । आरूढोऽप्सरसां गीतैर्याति रुद्रालये सुखम् ॥१२
स्थित्वा रुद्रस्य भवने वर्षकोटिशतत्रयम् । इह लोके नृपश्रेष्ठ ग्रामलक्षेश्वरो भवेत् ॥१३
यश्चाष्टमीषु च शिवासु चतुर्दशीषु नक्तं समाचरति शास्त्रविधानदृष्टम् ।
स्वर्गांगनाकलरवाकुलितं विमानमारुह्य याति स सुखेन सुरेशलोकम् ॥१४
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे षण्णवतितमोऽध्यायः ।९६

अथ सप्तनवतितमोऽध्यायः

शिवचतुर्दशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

शृणुष्वावहितो राजन् वक्ष्ये माहेश्वरं व्रतम् । त्रिषु लोकेषु विख्यातं नाम्ना शिवचतुर्दशी ॥१
मार्गशीर्षत्रयोदश्यां सितायामेकभुङ्नरः । मासेष्वन्येषु वा राजन्पार्थ एवं न कारयेत् ॥२
चतुर्दश्यां निराहारः समभ्यर्च्य महेश्वरम् । सौवर्णं वृषभं दत्त्वा भक्ष्यामि च परेऽहनि॥३
एवं नियमकृत्सुप्त्वा प्रातरुत्थाय मानवः । कृतस्नानजपः पश्चादुमया सह शङ्करम् ॥

सप्रणाम बलि प्रदान कर 'धेनु' दक्षिणा तथा उत्तम धुरंधर एक वृष (बैल) उस दरिद्र एवं कल्प व्रत वेत्ता श्रोत्रिय को अर्पित करें । इस प्रकार भक्ति पूर्वक शिव जी को उपरोक्त वस्तुएँ अर्पित करने पर जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, कह रहा हूँ, सुनो! सूर्य के समान प्रकाश पूर्ण, हंस युक्त एवं अलंकृत उस विमान पर सुखासीन होकर अप्सरा वृन्दों से सुसेवित होते हुए वह रुद्रलोक की प्राप्ति करता है । नृप श्रेष्ठ! वहाँ तीन सौ कोटि वर्ष तक सुखोपभोग करने के अनन्तर इस लोक में वह लक्ष ग्रामों का अधीश्वर होता है । इस प्रकार अष्टमी और चतुर्दशी के दिन शास्त्र विधान द्वारा नक्त व्रत को सुसम्पन्न करने वाले प्राणी स्वर्गांगनाओं (अप्सराओं) के मधुरालाप से सुसम्मानित विमान पर बैठ कर सुख पूर्वक इन्द्रलोक की प्राप्ति करते हैं ।८-१४

श्री भविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवाद में छानवेवाँ अध्याय समाप्त ।९६।

अध्याय ९७

शिवचतुर्दशी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—राजन्! मैं तुम्हें वह माहेश्वर व्रत बता रहा हूँ, जो तीनों लोकों में शिव चतुर्दशी के नाम से परम अख्यात है, सावधानतया सुनो! पार्थ! मार्गशीर्ष मास की शुक्लत्रयोदशी के दिन एकव्रती रहकर, जो कि किसी अन्य मास में करने के लिए निषेध किया गया है, चतुर्दशी के दिन उपवास पूर्वक भगवान् महेश्वर की अर्चना करके दूसरे दिन वृष (वैल) की सुवर्ण-प्रतिमा का दान करें ।१-३। इस प्रकार नियम पालन करने वाले उस मानव को प्रातः काल उठकर स्नान-जप करने के पश्चात् उमासमेत शंकर जी

पूजयेत्कुसुमैः शुक्लैर्गन्धधूपानुलेपनैः ॥४
पादौ नमः शिवायेति शिरः सर्वात्मने नमः । ललाटं तु त्रिनेत्राय नेत्राणि हरये नमः ॥५
मुखमिन्दुमुखायेति तथेशानाय चोदरम् । पार्श्वे चानंतधर्माय ज्ञानरूपाय वै कटिम् ॥६
ऊरू चानन्त्य वैराग्यं जानुनी चार्चयेद्बुधः । प्रधानाय नमो जंघे गुल्फौ व्योमात्मने नमः ॥७
व्योमव्योमात्मरूपाय पृष्ठमभ्यर्चयेन्नरः । नमः सृष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै पार्वतीं चापि पूजयेत् ॥८
ततश्च वृषभं हेममुदकुम्भसमन्वितम् । शुक्लमाल्यांबरयुतं पञ्चरत्नविभूषितम् ॥९
भक्ष्यैर्नानाविधैर्युक्तं ब्राह्मणाय निवेदयेत् । प्रीयतां देवदेवोऽत्र सद्योजातः पिनाकधृक् ॥१०
घृतदाज्यं च संप्राश्य स्वप्याद्भूमावुदङ्मुखः । पञ्चदश्यां ततः प्रातः सर्वमेतत्समाचरेत् ॥११
तर्पयित्वा ततोऽन्नेन ब्राह्मणाञ्छक्तितः शुभान् । सुहृत्पदातिसहितः पश्चाद्भुञ्जीत वाग्यतः ॥१२
ततः कृष्णचतुर्दश्यामेतत्सर्वं समाचरेत् । चतुर्दशीषु सर्वासु कुर्यात्पूर्ववदर्चनम् ॥१३
ये च मासे विशेषाः स्युस्तान्निबोध क्रमादिह । मार्गशीर्षादिमासेषु स्वपन्नेतानुदीरयेत् ॥१४
शंकराय नमस्तुभ्यं नमस्ते करवीरक । त्र्यंबकाय नमस्तुभ्यं महेश्वरमतः परम् ॥१५
नमस्तेऽस्तु महादेव स्थाणवे च ततः परम् । नमः पशुपते नाथ नमस्ते शंभवे नमः ॥१६
नमस्ते परमानंद नमः सोमार्द्धधारिणे । नमो भीमाय चोग्राय त्वामहं शरणं गतः ॥१७

की शुक्ल पुष्प, गन्ध, धूप एवं अनुलेपन (उपटन) समेत इनके द्वारा आराधना करे— 'शिव को नमस्कार है, कहकर उनके चरण, सर्वात्मा को नमस्कार है, कहकर शिर, त्रिनेत्र को नमस्कार है, कहकर भाल, हरि को नमस्कार है, कहकर नेत्र, चन्द्रमुख को नमस्कार है, कहकर मुख, ईशान को नमस्कार है, कहकर उदर, अनंत धर्म को नमस्कार है, कहकर दोनों पार्श्वभाग, ज्ञानरूप को नमस्कार है, कहकर कटि, अनन्त वैराग्य को नमस्कार है, कहकर ऊरू और जानु (जंघे), प्रधान को नमस्कार है, कहकर जंघे, व्योमात्मा को नमस्कार है कहकर गुल्फ, एवं व्योम और व्योमात्म रूप को नमस्कार है, कहकर पृष्ठ की अर्चना करते हुए (मनुष्य को), सृष्टि को नमस्कार है और तुष्टि को नमस्कार है, कहकर वे भगवती पार्वती की आराधना करनी चाहिए ।४-८। अनन्तर वृषभ (बैल) की सुवर्ण-प्रतिमा समेत जल कलश, जो शुक्लवर्ण की माला-वस्त्र, और पाँचो रत्नों से विभूषित किया रहता है, तथा अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थ ब्राह्मण को समर्पित करना चाहिए ।९-१०। उस समय 'इस कर्म द्वारा देवाधिदेव, एवं विनाकधारी शंकर प्रसन्न हों, कहकर दान करे और घृत का आशन कर उत्तराभिमुख भूमि में शयन करे । पुनः पञ्चदशी (पूर्णिमा) के दिन प्रातः समय उपरोक्त विधानों को सुसम्पन्न कर शुभमूर्ति ब्राह्मणों को यथाशक्ति अन्न भोजन से भलीभाँति संतुष्ट करें। अनन्तर मित्र-भृत्य के साथ स्वयं मौन होकर (वाक्संयमपूर्वक) भोजन करें । कृष्ण चतुर्दशी के दिन भी इसी विधान द्वारा इसे सुसम्पन्न करते हुए समस्त चतुर्दशी के दिन पूर्व की भाँति अर्चना करनी चाहिए । मास में जो विशेष करना होता है, उसे भी बता रहा हूँ, सुनो! मार्गशीर्ष आदि मासों में शयन के समय ऐसा कहना चाहिए ।११-१४। शंकर को नमस्कार है, करवीरक! तुम्हें नमस्कार है, अम्बक को नमस्कार है, महेश्वर को नमस्कार है, महादेव को नमस्कार है, स्थाणु को नमस्कार है, पशुपति को नमस्कार है, शंभु को नमस्कार है, परमानन्द को नमस्कार है, अर्धचन्द्रधारी को

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् । पंचगव्यं तथा बिल्वं यवागूक्षीरवारिजम् ॥१८
तिलांश्च कृष्णान्विधिवत्प्राश्नीयात्समुदाहृतान् । प्रतिमासं चतुर्दश्यामेकैकं प्राशनं स्मृतम् ॥१९
मंदारैर्मालतीभिश्च तथा धत्तूरकैरपि । सिंदुवारैरशोकैश्च मल्लिकाकुब्जपाटलैः ॥२०
अर्कपुष्पैः कदंबैश्च शतपत्रैस्तथोत्पलैः । करवीरैश्च राजेन्द्र तथा पूज्यो महेश्वरः ॥२१
एकैकेन चतुर्दश्यामर्चयेत्पार्वतीपतिम् । पुनश्च कार्तिके मासि संप्राप्ते तर्पयेद्द्विजान् ॥२२
अन्नैर्नानाविधैर्भक्ष्यैर्वस्त्रैर्माल्यविभूषणैः[1] । कृत्वा नीलं वृषोत्सर्गं श्रुत्युक्तविधिना नरः ॥२३
उमामहेश्वरं हैमं वृषभं च गवा सह । मुक्ताफलाष्टकयुतं सितनेत्रपटावृतम् ॥२४
सर्वोपस्करयुक्तायां शय्यायां विनिवेदयेत् । उदकुम्भयुतं तद्वच्छालितण्डुलसंयुतम् ॥२५
स्थाप्य विप्राय शान्ताय वेदव्रतपराय च । ज्येष्ठसामविदे देयं न च कुर्वन्ति ते क्वचित् ॥२६
अव्यङ्गाय च सौम्याय सदा कल्याणकारिणे । सपत्नीकाय संपूज्य माल्यवस्त्रविभूषणैः ॥
न वित्तशाठ्यं कुर्वीत कुर्वल्लोभात्पतत्यधः ॥२७
अनेन विधिना यस्तु कुर्याच्छिवचतुर्दशीम् । सोऽश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥२८
ब्रह्महत्यादिकं पापं यदत्रामुत्र वा कृतम् । पितृभिर्मातृभिर्वापि तत्सर्वं नाशमाप्नुयात् ॥२९
दीर्घायुरारोग्यकुलाभिवृद्धिरत्राक्षयान्यत्र चतुर्भुजत्वम् ।
गणाधिपत्यं दिवि कल्पकोटीः स्वर्गे उषित्वा पदमेति शम्भोः ॥३०

नमस्कार है, एवं भीम को नमस्कार है और उग्रदेव! मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ । गोमूत्र, गोमय, क्षीर, दही, घृत, कुशोदक, पंचगव्य, विल्वयवागू (लप्सी) क्षीर, कमल, नाल, कृष्णतिल, का प्रत्येक मासों में क्रमशः सविधान आशन करना बताया गया है, प्रतिमास की चतुर्दशी के दिन क्रमशः उपरोक्त के आशन करते हुए मंदार, मालती, धत्तूर, सिंधवार, अशोक, चमेली, कुब्ज, पोटल, अर्क-पुष्प, कदम्ब, कमल और करवीर (कनेर) पुष्पों द्वारा पार्वती पति की आराधना करते हुए व्रत की समाप्ति में कार्तिक मास के अवसर पर अनेक भाँति के अन्नों के भक्ष्य-भोज्य, वस्त्र, मालायें, और आभूषणों द्वारा ब्राह्मणों को संतृप्त करना चाहिए । तथा वेद विधान द्वारा नीलवृषोत्सर्ग करते हुए उमा-महेश्वर और गौसमेत वृष की सुवर्ण प्रतिमा, जो आठ मुक्ताफल (मोती) के श्वेत नेत्र, घंटा भूषित एवं वस्त्राच्छन्न हो, तथा समस्त साधन सम्पन्न सुसज्जित शय्या उन्हें अर्पित कर साठी चावल युक्त जल कलश स्थापन-पूजन के उपरांत शांत, वेद-व्रत परायण किसी विद्वान् ब्राह्मण को सादर समर्पित करना चाहिए । जो प्रधान साम गायक, अव्यंग, सौम्य, सदा कल्याण कर्ता एवं सपत्नीक हो । माल्य वस्त्र, एवं आभूषणों द्वारा भूषित करने के उपरांत उसे उपरोक्त के प्रदान से सुसम्मानित करे उस समय धन की कृपणता न करनी चाहिए, क्योंकि उससे उसका अधः पतन होता है ।१५-२७। इस भाँति इस विधान द्वारा शिव चतुर्दशी व्रत को सुसम्पन्न करने पर उस मनुष्य को सहस्र अश्वमेघ यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं । लोक-परलोक में पिता-माता द्वारा किये गये ब्रह्महत्या आदि समस्त पाप भी विनष्ट हो जाता है ।२८-२९। दीर्घायु, आरोग्य और अक्षीण कुल वृद्धि समेत सुखानुभव करने के उपरान्त देहावसान के समय गणाधिपत्य पद की प्राप्ति पूर्वक स्वर्ग में

---

१. माल्यानुलेपनैः ।

न बृहस्पतिरप्यतमन्नरस्य फलमिन्द्रो न पितामहोऽपि वक्तुम् ।
न च सिद्धगणोऽप्यलं वाहं यदि जिह्वायुतकोटयपीह वक्त्रे ।।३१
भवत्यमरवल्लभः पठति यः स्मरेद्वा सदा शृणोत्यपि विमत्सरः सकलपापनिर्मोचनीम् ।
इमां शिवचतुर्दशीममरकामिनीकोटयः स्तुवंति दिवि नंदिताः किमु समाचरेद्यः सदा ।।३२
या पार्थ नारी कुरुतेऽतिभक्त्या भर्तारमापृच्छ्य शुभं गुरुं वा ।
सापि प्रसादात्परमेश्वरस्य परं पदं याति पिनाकपाणेः ।।३३
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
शिवचतुर्दशीव्रतवर्णनं नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ।९७

अथाष्टनवतितमोऽध्यायः

फलत्यागचतुर्दशीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

तथा सर्वफलत्यागमाहात्म्यं शृणु भारत । यदक्षयं परे लोके सर्वकामफलप्रदम् ।।१
मार्गशीर्षे शुभे मासि चतुर्दश्यां धृतव्रतः । आरंभे शुक्लपक्षस्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।।२
अन्येष्वपि तु मासेषु अष्टम्यां नरसत्तम । सदक्षिणापायसेन शक्तितः पूजयेद्द्विजान् ।।३
अष्टादशानां धान्यानामन्यत्र फलमूलकम् । वर्जयेदब्दमेकं तु विधिनौषधकारकम् ।।४

पितामह, और सिद्धगण नहीं कर सकते हैं तथा किसी के मुख में दशसहस्र जिह्वा हो जाये तथापि वह भी असमर्थ होगा । मत्सरहीन होकर इसके स्मरण या श्रवण करने से समस्त पातक की मुक्ति पूर्वक उस पुरुष की देवाङ्गनाएँ सदैव सेवा प्रति करती हैं और जो इसे सुसम्पन्न करता है, उसे क्या कहा जा सकता है । पार्थ! अपने भर्ता अथवा गुरु आदि श्रेष्ठ लोगों की आज्ञा प्राप्त कर भक्ति पूर्वक इसे सुसम्पन्न करने वाली कभी भी परमेश्वर पिनाकपाणि (शिव) के प्रसाद से उनका लोक प्राप्त करती है ।३०-३३।

श्रीभविष्यमहापुराण में शिव चतुर्दशी नामक व्रत वर्णन नामक सत्तानवेवाँ अध्याय समाप्त ।९७।

अध्याय ९८

फलत्याग चतुर्दशी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—भारत! मैं तुम्हें समस्त फल त्याग का महत्व बता रहा हूँ, जो समस्त कामनाओं की सफलता पूर्वक परलोक के लिए अक्षय रहता है । सावधान होकर सनो! मार्गशीर्ष मास की शुक्र चतुर्दशी के दिन व्रत के नियम-पालन पूर्वक ब्राह्मण द्वारा कथा श्रवण करना चाहिए । नरसत्तम! अन्य मास में भी अष्टमी के दिन दक्षिणा समेत पायस भोजन द्वारा ब्राह्मणों को पूजित करते हुए संतृप्त करना चाहिए ।१-३। इस व्रत नियम के पालन में एक वर्ष तक अठारह प्रकार के धान्यों के फल-मूल का सेवन न

ततः संवत्सरस्यांते चतुर्दश्यष्टमीषु च । अशक्तश्च व्रतं कर्तुं सहसैव प्रमुच्यते ॥५
सौवर्णं कारयेद्रुद्रं धर्मराजं तथैव च । कूष्माण्डं मातुलुङ्गं च वृंताकं पनसं तथा ॥६
आम्रातकपित्थं च कलिंगं सेर्ववारुकम् । श्रीफलं सवटाश्वत्थं जंबीरं कदलीफलम् ॥७
बदरं दाडिमं शक्त्या कार्याण्येतानि षोडश । मूलकामलकं जंबूपुष्करं करमर्दकम् ॥८
उदुम्बरं नालिकेरं द्राक्षा च बृहतीद्वयम् । कंकाली काकतुंडीरं करीरकुटजं शमी ॥९
रौप्याणि कारयेच्छक्त्या फलानीमानि षोडश । ताम्रं तालफलं कुर्यादगस्त्यफलमेव वा ॥१०
पिण्डीरकं च खर्जूरं तथा सूरण कंदकम् । पनसं लकुचं चैव कर्कटं तिंतिडिं तथा ॥११
चित्रावल्लीफलं तद्वत्कूटशाल्मलिकाफलम् । मधूकं कारवेल्लं च वल्लीं गुदपटोलकम् ॥१२
कारयेच्छक्तितो धीमान्फलान्येतानि षोडश । उदकुंभद्वयं कुर्याद्धान्योपरि सवाससम् ॥
पक्षपात्रद्वयोपेतं यमरुद्रसमन्वितम् ॥१३
धेन्वा सहैव शांताय विप्रायाथ कुटुम्बिने । सपत्नीकाय सम्पूज्य पुण्येऽहनि निवेदयेत् ॥१४
यथा फलेषु सर्वेषु वसंत्यमरकोटयः । तथा सर्वफलत्यागाच्छिवे भक्तिः सदास्तु मे ॥१५
यथा शिवश्च धर्मश्च सदानन्तफलप्रदौ । तद्युक्तफलदानेन तौ स्यातां मे वरप्रदौ ॥१६
यथा फलानां कामस्य शिवभक्तस्य सर्वदा । यथानन्तफलावाप्तिरस्तु जन्मनि जन्मनि ॥१७
यथा भेदं न पश्यामि शिवविष्ण्वर्कपद्मजाम् । तथा ममास्तु विश्वात्मा शङ्करः शंकरः सदा ॥१८
इत्युच्चार्य च तत्सर्वमलंकृत्य विभूषणैः । शक्तश्चेच्छयनं दद्यात्सर्वोपस्करसंयुतम् ॥

करना चाहिए, किन्तु औषध रूप में सेवन करने के लिए निषेध नहीं है। अनन्तर वर्ष की समाप्ति में चतुर्दशी और अष्टमी के दिन व्रत रहने में असमर्थ होने पर उसे रुद्र, धर्मराज, कूष्माण्ड, विजौरा नीबू, वृन्ताक, कटहल, आम, अनार, कैथ, कुटज, सेर्व वारुक, श्रीफल (विल्व), वरगद, पीपल, जंबीर नीबू, केला, वेर, अनार, के फलों की सुवर्ण-प्रतिमा का निर्माण कराना चाहिए। उसी प्रकार मूलक, आँवला, जामुन, पुस्कर, करमर्दक, गूलर, नारियल, द्राक्षा, दो भटुकटैया, कंकाली, कांकतुण्डी,। करीर, कुटज और सभी इन सोलहों फलों की चांदी की प्रतिमा तथा ताल फल, अगसृपे फल, पिंडीरक, खजूर, सूरज, कन्द, कटहल, बड़हर, कर्कटी, ईमली, चित्रावेल्ली, कूट, सेमस्फल, महुआ, कारवेल, वल्ली, और गुदपटोल इन सोलह फलों की तोंबे की प्रतिमा होनी चाहिए। धान्य के ऊपर वस्त्राच्छन्न करके दो जल कलश की स्थापना पूर्वक दो पक्ष पात्र युक्त रुद्र और यम की प्रतिमा तथा नौ पूजनोपरांत शांत एवं कुटुम्बी किसी ब्राह्मण दम्पती को उस पुण्यहित सादर समर्पित करके क्षमा याचना करते हैं।४-१४। जिस प्रकार सभी फलों में करोड़ों देवगण निवास करते हैं, उसी प्रकार समस्त फलों के त्याग करने पर शिव में मेरी अल्प भक्ति सदैव बनी रहे। शिव और धर्मराज सदा अनन्त फल दायक कहे जाते हैं, इसलिए उक्त फल प्रदान पूर्वक वे दोनों मेरे लिए वर प्रदान करते रहें। जिस प्रकार शिव भक्त को यथेच्छ फलों की प्राप्ति सदैव होती रहती है, उसी प्रकार मुझे भी प्रत्येक जन्म में अनन्त फलों की प्राप्ति होती रहे। शिव, विष्णु, सूर्य और लक्ष्मी में मुझे कभी-कभी भेद संदेह न हो, इसके लिए विश्वात्मा भगवान् शंकर मेरा सदैव कल्याण करते रहें।१५-१८। ऐसा कहकर भूषण-भूषित उपरोक्त के दान करें। सशक्त रहने पर समस्त साधन सम्पन्न एवं

अशक्तस्तु फलान्येव यथोक्तानि विधानतः ॥१९
तथोदकुंभसहितौ शिवधर्मौ च काञ्चनौ । विप्राय दत्त्वा भुञ्जीत तैलक्षारविवर्जितम् ॥
अन्यानपि यथा शक्त्या भोजयेद्द्विजपुङ्गवान् ॥२०
न शक्नोति विहातुं चेत्सर्वाण्यपि फलान्युत । एकमेव परित्यज्य तदित्थं प्रतिपादयेत् ॥२१
एतत्त्यागव्रतानां तु गवे वैष्णवयोगिनाम् । शस्तं सर्वफलत्यागं व्रतं वेदविदो विदुः ॥२२
नारीभिश्च यथाशक्त्या कर्तव्यं राजसत्तम ॥२२
नैतस्मादपरं किञ्चिदिह लोके परत्र च । व्रतमस्ति मुनिश्रेष्ठ यदन्नं तत्फलप्रदम् ॥२३
सौवर्णरौप्यताम्रेषु यावंतः परमाणवः । भवन्ति चूर्यमाणेषु फलेषु नृपसत्तम ॥
तावद्युगसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥२४

एतत्समस्तकलुषापहरं जनानामाजीवनाय मनुजेश्वर सर्वदा स्यात् ।
जन्मान्तरेष्वपि न पुत्रकलत्रदुःखमाप्नोति धाम स पुरंदरजुष्टमेव॥२५
यो वा शृणोति पुरुषोल्पधनो नरो वा यो ब्राह्मणस्तु भवनेषु च धार्मिकाणाम् ।
पापैर्विमुक्तश्च पुरं मुरारेरानंदकृत्परमुपैति नरेन्द्र सोऽपि ॥२६

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
फलत्यागचतुर्दशीव्रतवर्णनं नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ।९८

सुसज्जित शय्या भी समर्पित करनी चाहिए और अशक्त रहने पर सविधान उपरोक्त फलों को भी । जल कलश समेत शिव और धर्मराज की सुवर्ण-प्रतिमा के दान करने के अनन्तर तेल और क्षार रहित भोजन करे । यथाशक्ति अन्य ब्राह्मणों को भी भोजनों द्वारा संतृप्त करे और समस्त फलों के त्याग में असमर्थ होने पर ही फल का त्याग करे और कहे भी कि गौ, के निमित्त इसके त्याग एवं व्रत करने वाले वैष्णव योगियों के समस्त फलत्याग शास्त्र में बताये गये हैं ऐसा वैदिक विद्वानों का निश्चय है । राजसत्तम ! स्त्रियों को भी यथाशक्ति इस व्रत को सुसम्पन्न करना चाहिए । मुनिश्रेष्ठ ! लोक तथा परलोक में इसके समान कोई अन्य व्रत नहीं है, जिसमें अन्न दान द्वारा उपरोक्त फल की प्राप्ति हो सके । नृपश्रेष्ठ ! सुवर्ण, चाँदी, और ताँबे के परमाणु और फलों के पूर्ण की संख्या के सहस्रों युग रुद्र लोक में वह सम्मानित होता है । इस प्रकार महेश्वर ! समस्त पाप नाशक इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर वह व्रती आजीवन सुखी रहता है और कालान्तर में भी पुत्र-स्त्री, विषयक दुःख न होकर उसे इन्द्रलोक की प्राप्ति होती है । धार्मिकों के मन्दिरों में इसके श्रवण करने वाले अल्पधार्मिक पुरुष, ब्राह्मण और इसे सुसम्पन्न करने वाला नरेन्द्र भी समस्त पापों की मुक्तिपूर्वक मुरारिकृष्ण लोक को प्राप्त करता है ।१९-२६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
फलत्याग चतुर्दशी व्रत वर्णन नामक अट्ठानबेवाँ अध्याय समाप्त ।९८।

अथ नवनवतितमोऽध्यायः

पौर्णमासीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पौर्णमासी महाराज सोमस्य दयिता तिथिः । पूर्णमासो भवेद्यस्यां पौर्णमासी ततः स्मृता ॥१
पौर्णमास्यां च सञ्जातः सङ्ग्रामो जयलक्षणः । सोमस्यारिबुधैः सार्द्धं सर्वसत्वभयङ्करम् ॥२
तारायां चन्द्रमाः सक्तस्तस्या भर्ता बृहस्पतिः । तयोरभून्महायुद्धं भार्याकृत्येषु वै पुरा ॥३

युधिष्ठिर उवाच

तारा कस्य सुता कस्मात्स क्रुद्धः ससुरारिहा । सोमेन सह सङ्ग्रामं चक्रे चक्रगदाधर ॥४

श्रीकृष्ण उवाच

प्रजापतेरभूत्कन्या तारा वृत्रस्य चानुजा । तां बृहस्पतये प्रादात्पृथिव्यामेकसुन्दरीम् ॥५
देवाचार्याय सा भार्या त्वनिर्देश्या तथाविधा । रूपेणाभ्यां रूपवती सा निर्धूय व्यवस्थिता ॥६
बृहस्पतिं पर्यचरद्यथा चान्याः स्त्रियः क्वचित् । तां ददर्शायतापाङ्गीं तन्वङ्गीं चारुहासिनीम् ॥७
शीतांशुर्दर्शनादेव कामस्य वशमीयिवान् । आबभाषे च मधुरं तारे एह्येहि मा चिरम् ॥८
इङ्गिताकारकुशला तारा सोमस्य चेष्टितम् । बुद्धा शुद्धिमथो तन्वी प्राहेदं मधुराक्षरम् ॥९

अध्याय ९९

पौर्णमासीव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—महाराज! पूर्णिमातिथि चन्द्रमा को अत्यन्त पवित्र है क्योंकि पूर्णमासी तिथि वहीं होती है जिसमें मास की पूर्ति हो और इसी पूर्णमासी के दिन चन्द्रमा का देवों के साथ जयसूचक संग्राम हुआ था। जो समस्त प्राणियों के लिए भयावह था। पहले समय में तारा में प्रसक्त होने के नाते चन्द्रमा से और उसके पति बृहस्पति से भी यहाँ घोर संग्राम हुआ था।१-३

युधिष्ठिर ने कहा—चक्र एवं गदाधारी भगवन्! तारा किसकी पुत्री है और देवों समेत अपने शत्रु हन्ता वृहस्पति ने क्रुद्ध होकर चन्द्रमा के साथ घोर युद्ध क्यों किया।४

श्रीकृष्ण बोले—प्रजापति (ब्रह्मा) की पुत्री जो वृत्रासुर की कनिष्ठा भगिनी है 'तारा' नाम से विख्यात है। उस त्रैलोक्य सुन्दरी को उन्होंने देवों के आचार्य वृहस्पति को सविधान अर्पित किया। यद्यपि उस सुन्दरी तारा के रूपलावण्य द्वारा वे दोनों अत्यन्त मदन व्यथित थे तथापि वह अन्य स्त्रियों की भाँति वृहस्पति की सेवा करती थी। उस विशाल लोचना को, जो सौन्दर्य के निधान एवं मुग्धहास करने वाली थी, देखते ही चन्द्रमा काम पीडित होने लगे। उन्होंने संकेत करते हुए उससे मधुर शब्दों में कहा—तारा! आओ, आओ! विलम्ब न करो।५-८। इंगित आकार समझने वाली उस कुशल तारा ने

मुनेरंगिरसः पुत्रस्त्वं च सौम्योऽसि सोमराट् । अङ्गिरसो मुनेर्वीर स्नुषाहमुचितं न ते ।।
सह सौम्येन यो योगस्तद सिद्धोऽद्भुतो महान् ।।१०
अंगिरास्त्वां किल पुरा ससुरासुरराक्षसैः । राजत्वे स्थापयामास नैतत्स्मरसि किं विधो ।।११
कथमद्य निशानाथ ह्यनङ्गेनासि पीडितः । तस्माद् ब्रवीमि सिद्धिं ते रोचये घटितं कुरु ।।
परवत्यस्मि भद्रं ते न गम्यास्मि बुधोत्तम ।।१२
एवमुक्तस्तथा चासौ न चैतत्कृतवांस्ततः । गृहीत्वाकर्षयामास सोमोऽनङ्गवशीकृतः ।।१३
बृहस्पतिस्तु तां ज्ञात्वा स तं सोमगर्हयत् । प्रेषयिष्यति मे भार्यां स्वयमेव ममान्तिकम् ।।१४
एवं चिरेण विज्ञाय बृहस्पतिरुदारधीः । नासादय स्वकां भार्यां रोषात्प्रस्फुरिताधरः ।।१५
आचख्यौ सर्वमिन्द्राय सोमस्येदं विचेष्टितम् । इन्द्रः समाह्वयामास देवानृषिगणांस्तथा ।।१६
न सोमो गणयामास ततोऽबुध्यत देवराट् । आकार्यं त्रिदशान्सर्वानाचख्यौ चन्द्रचेष्टितम् ।।१७
तच्छ्रुत्वा देवगंधर्वाः क्रोधान्धाः क्षुब्धमानसाः । प्रगृहीतप्रहरणा रथानारुरुहुः स्वकान् ।।१८
सोमोऽपि देवान्सोद्योगाञ्ज्ञात्वा सुकृतनिश्चयान् । दैत्यदानवरक्षांसि समानीय व्यवस्थितः ।।१९
आरुह्य च रथश्रेष्टं युद्धायैव मनो दधे । प्रवृत्तं सुमहद्युद्धं शरतोमरकंपनैः ।।२०
कौणपैः क्ष्मासुरैः शूलैर्देवदानवदारणम् । स तेषां सुमहद्युद्धं दत्त्वा तारागणाधिपः ।।

चन्द्रमा की उस चेष्टा को देखकर शुद्ध भावना से पूर्ण एवं मधुर अक्षरों में कहा—वीर! आप अंगिरा मुनि के पुत्र, सौम्य एवं सोमराट् हैं, और मैं भी उन्हीं अंगिरा मुनि की ही स्नुषा हूँ, अतः आप को मेरे साथ ऐसी चेष्टा करना उचित नहीं है। सौम्य होने के नाते ही आप की महान् एवं योग की सिद्धि हुई है—महर्षि-प्रवर अंगिरा ने देव, असुर और राक्षसों के लिए तुम्हें राज पद पर प्रतिष्ठत किया है, विधो! क्या इसका भी स्मरण नहीं हो रहा है! निशानाथ! आज आप काम-पीडित क्यों हो रहे हैं।९-१२। इसलिए मैं कह रहीं हूँ, आप का वह कार्य सिद्ध नहीं हो सकेगा। आप की जैसी इच्छा हो करें, किन्तु देवोत्तम! मैं पराये की हो चुकी हूँ, अब आप के साथ गमन करना उचित नहीं है। इस प्रकार तारा के कहने पर भी उन्होंने काम पीड़ित होने के नाते उस का कहना नहीं माना और उसे पकड़ कर अपनी ओर खींच लिया। वृहस्पति ने उसे देखकर चन्द्रमा की बड़ी निन्दा की। अनन्तर बहुत दिनों तक उन्हें यहीं निश्चय था कि—चन्द्रमा मेरी पत्नी स्वयं भेज देगें। किन्तु चिरकाल की प्रतीक्षा के उपरांत भी उनके द्वारा माया के प्रेषण न करने पर उन्होंने अत्यन्त रुष्ट होकर, जिसमें उनके होंठ फड़क रहे थे, इन्द्र से चन्द्रमा की समस्त चेष्टाओं का विवरण निवेदन किया। उसे सुनकर देवराज ने समस्त देवों और ऋषिगणों को अपने यहाँ, आवाहित किया। किन्तु इन्द्र को यह जानते देर नहीं लगी कि—चन्द्रमा ने मेरी आज्ञा की अवहेलना की है। उन्होंने समस्त देवों के समक्ष चन्द्रमा की उस अनीति का स्पष्ट विवेचन किया जिसे सुनकर देव और गन्धर्वगण क्रोधान्ध एवं अत्यन्त क्षुब्ध होकर अपने अस्त्र-शस्त्र समेत रथ पर बैठकर युद्धार्थ चल पड़े। चन्द्रमा ने भी युद्धोन्मुख देवों के निश्चय को भलीभाँति जानकर दैत्य, दानव और राक्षसों को आवाहित कर रण की तैयारी की।१३-१९। एक परमोत्तम रथ पर बैठकर उन्होंने रण भूमि में पहुंचते ही संग्राम प्रारम्भ कर दिया। तारा गणाधीश्वर चन्द्रमा ने देव-दानवों के शर, तोमर, एवं शूलों! द्वारा प्रारम्भ उस

बभञ्ज देवान्सेन्द्रांश्च हिमवृष्ट्या क्षपाकरः ॥२१
स जित्वा देवगन्धर्वान्सोमो राजन्यसत्तम । श्रिया परमया युक्तो यथा नान्यो हविर्भुजाम् ॥२२
देवाश्च निर्जितास्तेन सोमेनामिततेजसा । आजग्मुः शरणं देवं शरण्यं स्वर्गवासिनाम् ॥२३
इन्द्रः सर्वं समाचख्यौ सोमस्येदृग्विचेष्टितम् । श्रुत्वा क्रुद्धो हृषीकेश आरुह्य गरुडं रुषा ॥
गृहीत्वा [1]चायुधं श्रेष्ठं युद्धायैव मनो दधे ॥२४
प्रकर्तुं सुमहद्युद्धं चक्रशार्ङ्गगदाधरः । जगाम विबुधैः सार्धं सोमस्योपरि रोषितः ॥२५
विष्णुं विदित्वा संप्राप्तं सोमो दैत्यगणैः सह । युद्धाय समरामर्षी स्थितः [2]प्रध्माय वारिजम् ॥२६
स जित्वा देवसंघातं सेंद्रं[3] वायुपुरस्सरम् । विष्णुना सह संयुक्तं शस्त्रास्त्रैरसुभोजनैः ॥२७
यदा नासावुपरमेद्युद्धाय सह विष्णुना । तदाऽऽददे रुषा विष्णुश्चक्रं क्रोधसमन्वितः ॥२८
अथाह ब्रह्मा देवेशमजितं विष्णुमव्ययम् । योऽसौ मेघप्रपुष्टांगं यत्त्वां वच्मि निबोध तत् ॥२९
नास्ति वध्यं त्रिभुवने चक्रस्यास्य तवानघ । सोमो दिवाधिपत्ये च मया समभिषेचितः ॥३०
तस्माद्ययुज्यते देवकार्येऽस्मिस्तद्विधीयताम् । अथाह भगवान्विष्णुः सुरब्रह्मर्षिसन्निधौ ॥३१
सिनीवाली कुहूर्नाम तस्यां क्षपाकारः । विनष्टोऽपि पुनर्जन्म प्राप्स्यतीति न संशयः ॥३२

भयानक युद्ध में देवों का डटकर सामना करने के अनन्तर अपनी हिमवृष्टि द्वारा इन्द्रादि देवों को मर्माहत कर दिया । राजन्य सत्तम! देव गन्धर्वों को पराजित करने पर हविभोक्ता अग्नि की भाँति उन्हें परमोत्तम श्री की प्राप्ति हुई । चन्द्रमा के तेज से आहत होने पर देवों ने स्वर्गवासियों के शरण्य भगवान् विष्णु की शरण में पहुँच कर चन्द्रमा की उस धृष्टता पूर्ण चेष्टा का विशद विवेचन किया और इन्द्र ने भलीभाँति उसका विवरण किया जिसे सुनकर भगवान् हृषीकेश ने रुष्ट होकर अपने पुष्पक समेत गरुड़ वाहन पर बैठ कर युद्ध करने का निश्चय किया और भीषण युद्ध प्रारम्भ करने के लिए देवों समेत रणस्थल को प्रस्थान भी किया । युद्धार्थ रण भूमि में उपस्थित विष्णु को देखकर समरामर्षी चन्द्रमा ने भी दैत्यगणों समेत रणस्थल में पहुँच कर शंख ध्वनि द्वारा अपनी उपस्थित की सूचना दी । प्राण भक्षी शस्त्रास्त्रों द्वारा इन्द्र, वायु आदि प्रमुख देवों को पराजित कर उन्होंने विष्णु के साथ भी युद्ध करने के लिए निश्चय किया और उनके सम्मुख उपस्थित भी हो गये । चन्द्रमा को अपने साथ युद्ध स्थगित करते न देखकर भगवान् विष्णु ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उन पर प्रहारार्थ अपने चक्र को ग्रहण किया । उस समय उन्हें क्रुद्ध देखकर ब्रह्मा ने देवेश, अजित एवं अव्यय भगवान् विष्णु से कहा—भगवान् अनघ! आप मेघ मे समान अत्यन्त पुष्ट अंगवाले हैं और इस चक्र द्वरा त्रिभुवन की रक्षा करते हैं अतः मेरी प्रार्थना पर विशेष ध्यान देने की कृपा करें—'मैंने चन्द्रमा को द्विजाधिपत्य पद पर प्रतिष्ठित किया है । इसलिए देवकार्यार्थ युद्ध के लिए उपस्थित आप इस प्रकार का अनर्थ न करें। इसे सुनकर भगवान् विष्णु ने देवों और ब्रह्मर्षियों के समक्ष कहा—सिनीवाली एवं कुहू नामक अमावास्या तिथि के दिन यहीं निशाकर चन्द्रमा नष्ट हो जायेगा और विनष्ट होकर पुनः नाम ग्रहण करेंगे इसमें संशय नहीं।२०-३२। राका (पूर्णिमा) को प्राप्त

---

१. विमलं चक्रम् । २. प्रध्मातवारिजः । ३. विष्णुं चाभिप्रदुद्रुवे ।

राकां चानुमतिं प्राप्य वृद्धिरस्य भविष्यति। आप्यायितश्च श्रुत्युक्तैः पितृपिण्डैः समन्त्रकैः॥
ब्राह्मणैर्हव्यकव्यानि देवेभ्यः प्रापयिष्यति ॥३३
वृद्धिः कृष्णेन चैवास्य न च जातस्य भूयसी। एवमेव विधिर्दृष्टस्तस्याप्याय नमेव मे॥३४
अमोघस्य न मोघत्वं भविष्यति कदाचन्। शप्तश्च सोमो दक्षेण स चावश्यं भविष्यति॥३५
सुदर्शनस्य च प्रीतिरेवमेव भविष्यति। एवमस्त्विति देवेश यद्भवान्प्रब्रवीति वै॥३६
ब्रह्मा प्रोवाच सोमं तु विनीतवदुपस्थितम्। अर्पयस्व गुरोर्भार्यां न कार्यं पुनरीदृशम्॥३७
स तथोक्तः समानीय ददौ तारां बृहस्पतेः। पुनरूचे शशी स्पष्टं शृण्वतां त्रिदिवौकसाम्॥३८
अस्यां गर्भो मदीयोऽयं यदपत्यं ममैव तत्। बृहस्पतिरथोवाच मया गर्भः समाहितः॥३९
क्षेत्रे मदीये चोत्पन्नस्तस्मात्स मम पुत्रकः। उक्तं च वेद शास्त्रज्ञैर्ऋषिभिर्द्धर्मदर्शिभिः॥४०
उप्तं वाताहृतं बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति। क्षेत्रिणस्तस्य तद्बीजं न बीजी फलभाग्भवेत्॥४१
सम्यगुक्तं न भवता शशांकः प्राह तत्त्ववित्। माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः॥
इति पौराणिकाः प्राहुर्मुनयो नयचक्षुषः ॥४२
विवदंतौ निवार्याथ ब्रह्मा प्रोवाच तां वधूम्। शनैरेकान्तमानीय गर्भोयं कस्य शंस मे॥४३
एवमुक्ता तु सा तारा ह्रिया नोवाच किञ्चन। उत्ससर्ज क्षणाद्गर्भं भाभासितसुरालयम्॥४४

कर इनकी वृद्धि होगी। वृद्धि होने पर वे देवमंत्रो के उच्चारण पूर्वक ब्राह्मणों द्वारा दिये गये पिण्डदान को पिता गण और हव्यकव्य को देव लोग प्राप्त करेंगे। उत्पन्न होने पर इनकी वृद्धि कृष्ण पक्ष में न हो सकेगी। इस प्रकार के दृष्टिगोचर विधान में इनका अध्यापन (वृद्धि) भी ऐसा ही निर्मित है। और मेरे इस अमोघ (अस्त्रों) में कभी भी विफलता होना असम्भव है, किन्तु दक्ष द्वारा दिये गये शाप का फल भागी इन्हें अवश्य होना है।३३-३५। इसलिए इनका सुदर्शन प्रेम भी वैसा ही बना रहेगा। भगवान् देवाधीश के इस भाँति कहने पर ब्रह्मा ने कहा—देवेश! आप का सभी कहना परमोत्तम है। पुनः उन्होंने विनय-विनम्र उपस्थित उन चन्द्रमा से कहा—तुम गुरु बृहस्पति की भार्या लौटा दो और पुनः कभी ऐसा करने का उत्साह न करना, उन्होंने 'तथास्तु' कहकर तारा वृहस्पति को समर्पित कर दिया और उसी समय समस्त देवों के समक्ष यह भी कहा कि—इसमें जो गर्भ है वह मेरा है, अतः उत्पन्न होने पर वह संतान मेरी होगी। इसे सुनकर वृहस्पति ने भी कहा कि—गर्भ मेरी स्त्री में है, अतः मेरे क्षेत्र में उत्पन्न होने के नाते यह पुत्र मेरा होगा। क्योंकि वेद-शास्त्र के निपुण मर्मज्ञ ऋषियों ने कहा भी है कि—वायु द्वारा आहत अथवा किसी प्रकार बोये गये बीज का अंकुर जिसके क्षेत्र में उत्पन्न होता है, वह बीज उसी क्षेत्र वाले का होता है न कि बीज बोने वाले का।३६-४१। इसे सुनकर तत्त्ववेत्ता शशांक ने कहा—'आप ने भलीभाँति विचार कर नहीं कहा। क्योकि नृप विशारद एवं पुराणमर्मज्ञ मुनियों ने वह बताया है कि—पुत्र की माता उसके पिता की भस्त्रा (माठी) के समान है, अतः उससे उत्पन्न होने वाला पुत्र पिता का ही होता है। ब्रह्मा ने इन दोनों विवाद निवारणार्थ तारा को एकान्त स्थान में ले जाकर उससे धीरे से कहा—मुझे बताओ, यह गर्भ किसका है! उनके ऐसा कहने पर तारा ने लज्जा वश नम्रमुख करके कुछ भी नहीं कहा। किन्तु उसी समय स्वर्ग को देदीप्यमान गर्भ का उत्सर्जन किया। ब्रह्मा ने उस पुत्र से कहा—पुत्र! आप किसके

तमुवाच ततो ब्रह्मा पुत्र कस्य सुतो भवान् । सोमस्याहं सुतो ब्रह्मन्निति तथ्यं मयोदितम् ॥४५
बुधोऽयं विबुधाः प्राहुः सर्वज्ञानविदां वरः : गृहीत्वा पुत्रकं सोमो जगाम स्वं निवेशनम् ॥४६
गुरुर्गृहीत्वा स्वां भार्यां जगाम भवनं शनैः । सोमोऽपि तनयं लब्ध्वा हर्षव्याकुलमानसः ॥४७
पौर्णमासी समाख्याता प्राप्तपूर्णमनोरथा । प्राप्तः पुत्रो मया ह्यस्यां लब्धश्च विजयस्तथा ॥४८
तस्मादेनामुमासिष्ये विधिना व्रततत्परः । एवमन्योऽपि पूर्णार्थः पूर्णांशः पूर्णलक्षणः ॥४९
यो मामक्यां तिथौ भक्त्या विधिवत्पूजयिष्यति । तस्य प्रसादभिमुखः सर्वकामप्रदो ह्यहम् ॥५०
एवमेषा तिथिः पार्थ सोमस्य दयिता शुभा । पौर्णमासी समाख्याता पूर्णोमासो भवेद्यथा ॥५१
तदस्यां स्रोतसि स्नात्वा संतर्प्य पितृदेवताः । आलिख्य मंडले सोमं नक्षत्रैः सहितं विभुम् ॥५२
पूजयेत्कुसुमैर्हृद्यैर्नैवेद्यैर्घृतपाचितैः । शुक्लाक्षतैः शुक्लवस्त्रैः पूजयित्वा क्षमापयेत् ॥
शाकाहरणमुन्यन्नैर्नक्तं भुञ्जीत वाग्यतः ॥५३
वसन्तबान्धव विधो शीतांशो स्वस्तिः नः कुरु । गगनार्णवमाणिक्यचन्द्रदाक्षायणीपते ॥५४
[1]पक्षेपक्षे पौर्णमास्यां विधिरेष प्रकीर्तितः । कृष्णपक्षेऽपि यः कश्चिच्छ्रद्धावान्वै व्रती भवेत् ॥५५
तस्याप्येष विधिः प्रोक्तः सर्वसौख्यप्रदायकः । आमावास्या तिथिरियं पितृणां दयिता सदा ॥
अस्यां दत्तं तपस्तप्तं पितृणामक्षयं भवेत् ॥५६

पुत्र हैं! उसने कहा—ब्रह्मन्! मैं चन्द्रमा का पुत्र हूँ। मैंने कहा-यह तथ्य कह रहा है और देवों ने कहा—यह समस्त ज्ञानियों में परमोत्तम चेष्टा है अतः इसको बुध कहना चाहिए। अनन्तर चन्द्रमा ने पुत्र लेकर और वृहस्पति ने अपनी भार्या लेकर अपने-अपने गृह का प्रस्थान किया। पुत्र प्राप्ति होने पर सोम को अत्यन्त हर्ष हुआ। उन्होंने कहा—यह पूर्णमासी मनोरथ सफल करने वाली तिथि है। क्योंकि मैंने इसी दिन पुत्र और विजय दोनों की प्राप्ति की है! अतः सविधान व्रत को सुसम्पन्न करने के निमित्त मैं इसमें उपवास करूँगा। यद्यपि इसके समान अन्य व्रत भी मनोरथ सफल करने के लिए पूर्णांश एवं पूर्ण लक्षण युक्त हैं तथापि इस मेरी प्रेयसी तिथि के दिन भक्ति पूर्वक सविधान मेरी पूजा करने पर मैं प्रसन्न होकर उनकी समस्त कामनाएँ सफल करता हूँ। पार्थ! इस प्रकार यह तिथि रूप में की उत्पन्न प्रेयसी है और मैंने उस पूर्णमासी की समस्त व्याख्या कर दी जिसमें मास की पूर्ति होती है। इसलिए नदी में स्नान करके देव-पितृ तर्पण करने के उपरांत मण्डल की रचना कर उसके भीतर नक्षत्रों समेत विप्र सोम की अर्चना मनोहर पुष्प, घृतप्लुत नैवेद्य, श्वेत अक्षत और श्वेत वस्त्र द्वारा सुसम्पन्न करते हुए शाकाहार एवं मुनि के पुत्र का मौन होकर नक्त भोजन करे और इस भाँति क्षमा प्रार्थना करे कि—वसन्त वान्धव एवं शीत किरण वाले विधो! हमें कल्याण परम्परा प्रदान कर अनुगृहीत करो। आप, गगन-सागर की परमोत्तम रवि, चन्द्र तथा दाक्षायणी के पति हैं। यही विधान प्रत्येक मास की पूर्णिमा व्रत के लिए बताया गया है। और कृष्ण पक्ष में भी श्रद्धा-भक्ति पूर्वक कोई व्रती होना चाहे, तो उसके लिए भी यही समस्त सौख्य दायक विधान कहा गहा है। इसी भाँति यह समस्त तिथि पितरों को सदैव प्रिय हैं। क्योंकि इसमें दिया गया दान तप पितरों के लिए अक्षय होता है।४२-५६। महाराज! अमावस्या के दिन सप्रयत्न

---

१. मासेमासे।

अमावास्या महाराज प्रयत्नैर्यैरुपोषिता । तैरक्षय्यं भवेद्दत्तं पितृभ्यस्तीर्थमुत्तमम् ॥५७
यः कश्चित्कुरुते तस्मिन्पितृपिण्डोदकक्रियाम् । स तारयति पुण्यात्मा[1] पुरुषानेकविंशतिम् ॥५८
भवेयुरक्षयास्तस्य लोकाः पितृनिषेविताः । यदा तु इह कालांते तस्यात्रागमनं भवेत् ॥५९
ब्राह्मणः पितृभक्तश्च सर्वविद्याविशारदः । एवं जन्मनि राजेन्द्र भवेद्धनसमन्वितः ॥६०
एवं संवत्सरस्यांते हैमं कृत्वा सुशोभनम् । सोमं नक्षत्रसहितं विप्राय प्रतिपादयेत् ॥६१
उपदेशं प्रयच्छेद्यस्तस्मै व्रतकृते नरः । संपूज्य वस्त्राभरणैर्मंत्रेणेत्थं निवेदयेत् ॥
मासेमासे विधिरयं व्रतस्यास्य नराधिप ॥६२
यो न शक्नोति वा कर्तुं पक्षं वाथ निरंतरम् । स एकामप्युपोष्यैव कुर्यादुद्यापनं सुधीः ॥६३
यश्चैतत्कुरुते पार्थ पौर्णमासीव्रतं नरः । सर्वपापविनिर्मुक्तश्चन्द्रवद्दिवि राजते ॥६४
पुत्रपौत्रधनोपेतो यज्वा दाता प्रियंवदः । सन्ततिं विपुलां प्राप्य प्रयागे मरणं भजेत् ॥६५
ततश्चैवाक्षयाँल्लोकान्प्राप्नोति सुरसेवितान् । सेव्यमानः स गन्धर्वैः स्तूयमानः सुरासुरैः ॥
आस्ते संपूर्णसर्वांगो यावत्कल्पायुतत्रयम् ॥६६

उपवास करते हुए पितरों के उद्देश्य से दिया गया यह उत्तम तीर्थ अक्षय होता है । उस दिन पिण्डोदक क्रिया करने वाला वह पुण्य पुरुष अपनी इक्कीस पीढ़ी का उद्धार करता है । तथा उसका वह पितृ लोक सदैव के लिए अक्षय रहता है । राजेन्द्र! कदाचित् उसकी इस लोक में आगमन होने पर वह ब्राह्मण, पितृ भक्त और समस्त विधाओं में खयाति प्राप्ति विद्वान् एवं धनवान् होता है । अनन्तर वर्ष के अन्त में नक्षत्र समेत चन्द्रमा की सुवर्ण प्रतिमा बनाकर पूजनोपरांत ब्राह्मण को अर्पित करें । वस्तुतः इस व्रत के उद्देश्य को ही वस्त्राभूषण द्वारा सुसम्मानित करने के उपरांत प्रतिमा आदि समर्पित करना चाहिए । नराधिप! प्रत्येक मास में इसे सुसम्पन्न करने के लिए यही विधान बताया गया है । जो पुरुष प्रत्येक मास में इस व्रत को सुसम्पन्न करने में असमर्थ होता है, उसे एक ही व्रत को उपवास पूर्वक सुसम्पन्न करने के अनन्तर इसका उद्यापन कर देना चाहिए । पार्थ! इस पौर्णमासी व्रत को सुसम्पन्न करने वाला पुरुष समस्त पातकों से मुक्त होकर स्वर्ग में चन्द्रमा की भाँति सुशोभित होता है । पुनः इस धरातल पर जल ग्रहण कर पुत्र, पौत्र, एवं धन समेत सुखी, यज्वा, दाता एवं प्रियवादी होता है । सन्तति एवं विपुल भोग प्राप्त कर अन्त में तीर्थराज प्रयाग में प्राणोत्सर्ग होता है और अनन्तर सुरसेवित अक्षय लोकों की प्रप्ति होती है। वह वहाँ गन्धर्वों द्वारा सुसेवित और देवों-असुरों द्वारा वन्दनीय होते हुए तीन अयुत (तीस सहस्र) कल्प पर्यन्त सुखानुभव प्राप्त करता है।५७-६६। पार्थ! इस प्रकार शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा में सोम और कृष्ण पक्ष की

---

१. नरकात् ।

अभ्यर्चयन्ति सितपञ्चदशीषु सोमं कृष्णासु[1] ये पितृगणं जलपिण्डदानैः।
तेषां गृहाणि धनधान्यसुतादिसंपत्पूर्णानि पार्थिव भवंति विधेर्विधानात् ॥६७

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
विजयपौर्णमासीव्रतवर्णनं नाम नवनवतितमोऽध्यायः।९९

अथ शततमोऽध्यायः

वैशाखीकार्त्तिकीमाघीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

संवत्सरे च याः काश्चित्तिथयः पुण्यलक्षणाः। ता मे वद यदुश्रेष्ठ स्नाने दाने महाफलाः॥१

श्रीकृष्ण उवाच

वैशाखी कार्तिकी माघी तिथयोऽतीव पूजिताः। स्नानदानविहीनैस्ता न नेयाः पाण्डुनन्दन ॥२
तीर्थस्नानं तदा शस्तं दानं वित्तानुरूपतः। वैशाख्यां पांडवश्रेष्ठ श्रेष्ठा द्योतनिका मता ॥३
कार्त्तिक्यां पुष्करारण्यं माघ्यां वाराणसी स्मृता। स्नानेनोदकदानेन तारयत्यपि दुष्कृतीन् ॥४
कुम्भान्स्वच्छांभसः पूर्णान्सहिरण्यान्नसंयुतान्। वैशाख्यां ब्राह्मणो दत्त्वा न शोचति कृते व्रते ॥५

अमावस्या के दिन जल-पिंड दान द्वारा पितरों की अर्चना करता है, उसे विधि के विधान द्वारा धन-धान्य, सुतादि और सम्पत्तिपूर्ण गृह उपलब्ध होते हैं।६७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्वाद में
विजयपौर्णमासी-व्रत वर्णननामक निन्यानवेवाँ अध्याय समाप्त।९९।

अध्याय १००

वैशाखी, कार्तिकी, माघी व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—यदुश्रेष्ठ! मुझे पूरे वर्ष की उन सभी पुण्य तिथियों के महत्त्व आदि बताने की कृपा कीजिए, जिनमें स्नान-दान करने से महान्‌फलों की प्राप्ति होती है।१

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डुनन्दन! वैशाख, कार्तिक और माघ मास की तिथियाँ अत्यन्त पूजनीय बतायी गयी हैं, उन्हें स्नान-दान से कभी वञ्चित न रखना चाहिए। पाण्डव श्रेष्ठ! वैशाख मास की तिथियों में तीर्थ-स्नान और अपने वित्तानुसार दान करना महर्षि प्रवरों ने अत्यन्त श्रेयस्कर बताया है। उसी प्रकार कार्तिक मास में पुष्कर और माघ मास में वाराणसी तीर्थ में स्नान एवं उदक दान करने से अत्यन्त पातकी का भी संतरण हो जाता है। वैशाख मास की तिथि में व्रत-पालन पूर्वक स्वच्छ जलपूर्ण घट के, जो सुवर्ण और अन्न से सुसज्जित हों, दान करने पर उसे कभी भी किसी प्रकार की चिंता नहीं होती है।२-५। उस

---

१. कृत्वा बलिम्।

मधुरान्नरसैः पूर्णान्भाजनान्कनकोज्ज्वलान् । गोभूहिरण्यवासांसि विधिवत्प्रतिपादयेत् ॥६
माघ्यां मघासु च तथा संतर्प्य पितृदेवताः । तिलपात्राणि देयानि तिलांश्च पललौदनम् ॥७
कार्पासदानमत्रैव तिलदानं च शस्यते । कम्बलाजिनरत्नानि मोचकौ पापमोचकौ ॥८
उपानद्दानमत्रैव कथितं सर्वकामदम् । यत्र वा तत्र वा स्नानं दानं वित्तानुरूपतः ॥९
कलिकालोद्भवं सर्वं शस्यते पाण्डुनन्दन । कार्तिक्यां तु वृषोत्सर्गो विवाहः पुण्यलक्षणः ॥
कार्यं कुरुकुलश्रेष्ठ हरेर्नीराजनं तथा ॥१०
गजाश्वरथदानं च घृतधेन्वादयस्तथा । प्रदेयाः पुण्यकृद्भिश्च तास्ताः सङ्कल्प्य देवताः ॥११
फलानि यानि विद्यन्ते सुगन्धिमधुराणि च । जातीफलं च कङ्कोलं लवङ्गं लवलीफलम् ॥१२
खर्जूरीं नालिकेरांश्च कदल्याश्च फलानि च । दाडिमान्मातुलुङ्गांश्च कर्कोटांस्त्रपुसांस्तथा ॥१३
वृंताकान्कारवेल्लंश्च बिम्बान्कूष्मांडकर्बुरान् । अप्रदानेन येषां तु तिथयो यांति भारत ॥
ते व्याधिता दरिद्राश्च जायन्ते भुवि मानवाः ॥१४
न केवलं ब्राह्मणानां दानं सर्वस्य शस्यते । भगिनीभागिनेयानां मातुलानां पितृष्वसुः ॥
दरिद्राणां च बंधूनां दानं कोटिगुणोत्तरम् ॥१५
मित्रं कुलीनश्चापन्नो बन्धुर्दारिद्र्यदुःखितः । आशयाभ्यागतो दूरात्सोऽतिथिः स्वर्गसङ्क्रमः ॥१६
वनं प्रस्थापिते रामे ससीते सहलक्ष्मणे । मातामहकुलादेत्य विशुद्धेनान्तरात्मना ॥
सा सर्वैः श्रावितानेकैः कौशल्या भरतेन वै ॥१७

तिथि के दिन मधुर अन्न-रस से पूर्ण वे पात्र, जो सुवर्ण द्वारा देदीप्य मान हों, गौ, भूमि हिरण्य और वस्त्र के सहित दान करना चाहिए। उसी प्रकार माघ मास में मघा नक्षत्र के दिन पितृ-देव के तर्पण पूर्वक तिल पात्र, तिल, मांस-ओदन (भात) कपाश और तिल दान करना प्रशस्त कहा गया है। कम्वल, मृगचर्म, एवं रत्नदान पाप मोचक बताया गया है और समस्त कामनाओं को सफल करने वाला उपानह्-दान भी इसी मास में करना चाहिए। पाण्डुनन्दन! स्नान चाहे जहाँ करो, किन्तु दान अपने अनुसार ही करना चाहिए। इस प्रकार कलिकाल में सभी प्रशस्त है। कुरुकुलश्रेष्ठ! कार्तिक (पूर्णिमा) के दिन वृषोत्सर्ग, पुण्य विवाह, भगवान् विष्णु के नीराजन अवश्य करना चाहिए और पुण्यात्माओं द्वारा तत्तद्देवताओं के निमित्त संकल्प पूर्वक गज, अश्व, रथ, धृत और धेनु के दान तथा सुगन्धित एवं मधुर फलों—जातीफल, कंकोल, लवंग, लवलीफल, खजूर, नारियल, केला, कदलीफल, अनार, विजौरा नीबू, कर्कोटक, त्रपुस, भाँया आदि, नारिकेल, विम्ब, कूष्माण्ड, और कर्बुर फल के दान करना चाहिए। भारत! इन तिथियों को दान से वञ्चित रखने पर मानव इस पृथिवी में व्याधिग्रस्त होकर दरिद्र-पीड़ित होते हैं।६-१४। उपरोक्त समस्या के दान वाले ब्राह्मणों के लिए ही नहीं प्रशस्त कहे गये हैं अपितु भगिनी, भागिनेय (भाञ्जा), मातुल और पिता को भगिनी के संतानों एवं दरिद्र वन्धुगणों को दिये गये दान कोटि गुने अधिक फल प्रदान करते हैं। मित्र, विपद्ग्रस्त कुलीन, दरिद्र वन्धु, और दूर से किसी आशा वश आया हुआ अभ्यागत, ये सभी अतिथि, क्रमशः स्वर्ग सोपान हैं। सीता और लक्ष्मण समेत भगवान् राम के वन जाने पर मातामह के यहाँ (तीन साल) से आने पर विशुद्ध अन्तः करण वाले भरत जी ने अपने को निरपराधी बताने के लिए कौशल्या के समक्ष अनेक प्रकार का शपथ किया।१५-१७। किन्तु कोशल पुत्री कौशल्या

यदा न प्रत्ययं याति कथंचित्कौशलात्मजा । तदा विशुद्धभावेन तिथयः श्राविताः पुनः ।।१८
वैशाखी कार्तिकी माघी तिथयोऽमरपूजिताः । अप्रदानवतो यांति यस्यार्योनुमते गतः ।।१९
एतच्छ्रुत्वा तु कौशल्या सहसा प्रत्ययं गता । अंकमानीय भरतं सांत्वयामास दुःखितम् ।।२०
एतत्तीर्थानां माहात्म्यं आख्यातं बहुविस्तरम् । भूयस्तु किं प्रवक्ष्यामि तव राजन् महामते ।।२१
वैशाखकार्तिकमघासहिताथ माघे या पूर्णिमा भवति पूर्णशशाङ्कचिह्ना ।
तस्यां जलान्नकनकाम्बरमातपत्रं दत्त्वा प्रयाति पुरुषः पुरुहूतलोकम् ।।२२
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
वैशाखीकार्तिकीमाघीव्रतवर्णनं नाम शततमोऽध्यायः ।१००

अथैकाधिकशततमोऽध्यायः

युगादितिथिव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

पुनर्मे ब्रूहि देवेश त्वद्भक्त्या भावितात्मनः । कथ्यमानमिहेच्छामि शुभधर्मपदं महत् ।।१
यत्राण्वपि नरैर्दत्तं जप्तं वा सुमहद्भवेत् ।।२

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु पांडव ते वच्मि रहस्यं देवनिर्मितम् । यन्मया कस्यचिन्नोक्तं सुप्रियस्यापि भारत ।।३

को उससे विश्वास होते न देख कर उन्होंने पुनः तिथियों का भी शपथ किया—'वैशाखी, कार्तिकी और माघी (पूर्णिमा) तिथियाँ देव पूज्य हैं उसे वे फल दायक न हों ।' इसे सुनते ही कौशल्या जी ने विश्वस्त होकर सहसा उन्हें अपने गोद में लेकर दुःखनिवृत्यर्थ सान्त्वना देने लगीं । महामते, राजन्! इन तिथियों का महत्त्व मैंने अत्यन्त विस्तृत रूप में तुम्हें सुना दिया, पुनः यदि जानना चाहते हो, बताओ । वैशाख, कार्तिक और मघायुक्त माघ की पूर्णिमा के दिन चन्द्र भूषित होने से जल, अन्न, सुवर्ण, वस्त्र, और छत्र के दान करने वाले को इन्द्र लोक की प्राप्ति होती है ।१८-२२।

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
वैशाखी, कार्तिक और माघी (पूर्णिमा) के व्रत वर्णन नामक सौवाँ अध्याय समाप्त ।१००।

अध्याय १०१

युगादितिथिव्रतमाहात्म्य का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—देवेश! आप की भक्ति द्वारा पूतात्मा होने के नाते मुझे सतत यही इच्छा हो रही है कि आप कुछ न कुछ कहते रहें । अतः आप किसी ऐसे शुभ धर्मात्मक एवं महान् व्रत—विकेवर्णन करने की कृपा करें जिसमें मनुष्यों को अणुमात्र दान अथवा जप करने से महान् फल की प्राप्ति हो सके।१-२

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डव! मैं तुम्हें एक देव-निर्मित रहस्य बता रहा हूँ, जिसे किसी को आज तक

वैशाखमासस्य तु या तृतीया नवम्यसौ कार्तिकशुक्लपक्षे।
नभस्यमासस्य तु कृष्णपक्षे त्रयोदशीं पञ्चदशीं च माघे ।।४

वैशाखस्य तृतीया तु समा कृतयुतेन तु । नवमी कार्तिकी या तु त्रेतायुगसमागता ।।५
त्रयोदशी नभस्ये तु द्वापरेण समा मता । माघे पञ्चदशी राजन् कलिकालादिरुच्यते ।।६
एता चतस्रो राजेन्द्र युगानां प्रभवाद्यथा । युगादयश्च कथ्यन्ते तथैताः सर्वसूरिभिः ।।७
उपवासस्तपो दानं जपहोमक्रियास्तथा । यद्यत्तु क्रियते किंचित्सर्वं कोटिगुणं भवेत् ।।८
वैशाखस्य तृतीयायां श्रीसमेतं जगद्गुरुम् । नारायणं पूजयेथाः पुष्पधूपविलेपनैः ।।
वस्त्रालंकारसंभारैर्नैवेद्यैर्विविधैस्तथा ।।९
ततस्तस्याग्रतो धेनुर्लवणस्याढकेन तु । कार्या कुरुकुलश्रेष्ठ चतुर्भागेण वत्सकः ।।१०
अविचर्मोपरि स्थाप्य कल्पयित्वा विधानतः । शास्त्रोक्तक्रमयोगेन ब्राह्मणायोपपादयेत् ।।११
श्रीधरः श्रीपतिः श्रीमाञ्छ्रीशः संप्रीयतामिति । अनेन विधिना दत्त्वा धेनुं विप्राय भारत ।।
गोसहस्रं दशगुणं प्राप्नोतीह न संशयः ।।१२
तथैव कार्तिके मासि नवम्यां नक्तभुङ्नरः । स्नात्वा नदीतडागेषु देवखातेषु वा पुनः ।।१३
उमासहायं वरदं नीलकण्ठमथार्चयेत् । पुष्पधूपादिनैवेद्यैरनिन्द्यैः शङ्करं शिवम् ।।१४
धेनुं तिलमयीं दद्यात्पुराणोक्तविधानतः । अष्टमूर्तिर्नीलकण्ठः प्रीयतामिति चिंतयेत् ।।१५

बताया ही नहीं । भारत! वैशाखमास की तृतीया, कार्तिक शुक्ल नवमी, भाद्रपद कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी और माघ की अमावस्या ये तिथियाँ युग प्रवर्तक कही गयी हैं । वैशाखमास की शुक्ल तृतीया के दिन कृत (सत्य) युग, कार्तिक शुक्ल की नवमी के दिन सत्य युग और त्रेता युग, भाद्रपद की त्रयोदशी के दिन द्वापर और माघ की अमावास्या के दिन कलियुग का आरम्भ होता है । राजेन्द्र! ये चारों तिथियाँ युगों के प्रवर्तक होने के नाते समस्त विद्वानों की अनुमति से युगादि कही जाती है । इसलिए इन तिथियों में उपवास, तप, दान, जप और हवन क्रिया आदि जो कुछ किये जाते हैं वे कोटिगुने अधिकफल प्रदान करते हैं ।३-८। वैशाख मासकी तृतीया के दिन श्री समेत जगद्गुरु नारायण की पुष्प, धूप, लेपन, वस्त्र, अलंकार, और विविधभाँति के मधुर नैवेद्यों के अर्पण द्वारा सप्रेम अर्चना करनी चाहिए । कुरुकुल श्रेष्ठ! तत्पश्चात् उनके सम्मुख एक आढक लवण द्वारा निर्मित धेनु और उसके चौथाई भाग द्वारा रचित वत्स (बछड़ों) को शास्त्र विधान द्वारा अवि (भेंड) के चर्माशन पर स्थापित एवं पूजित कर ब्राह्मणों को समर्पित करे । उस समय उसको ऐसा कहना चाहिए कि-श्रीधर, श्रीपति, श्रीमान् और श्री के ईश भगवान् विष्णु मुझ पर प्रसन्न हों । भारत! इस प्रकार से ब्राह्मण को गोदान प्रदान करना पर उसे दशसहस्र गौ के फल प्राप्त होते हैं इसमे संशय नहीं । उसी प्रकार कार्तिक मास की शुक्ल नवमी के दिन उस नक्तभोजी पुरुष को किसी नदी, सरोवर अथवा देव कुण्ड आदि जलाशय में स्नान करके उमापति, एवं वरदायक नीलकण्ठ भगवान् की उत्तम पुष्प, धूप एवं नैवेद्यादि द्वारा, अर्चना करनी चाहिए । कल्याण मूर्ति भगवान् शिव की पूजा के उपरांत विधान द्वारा तिलमयी गौ के दान करते समय 'अष्टमूर्ति भगवान् नीलकण्ठ प्रसन्न हों,

यदत्र प्राप्यते पुण्यं पार्थ तत्केन वर्ण्यते । दत्त्वा तिलमयीं धेनुं शिवलोकमवाप्नुवात् ॥१६
त्रयोदशी नभसि सा कृष्णभस्यां समर्चयेत् । [1]पितृन्पायसदानेन मधुना च घृतेन तु ॥
भोजयेद्ब्राह्मणान्भक्त्या वेदवेदाङ्गपारगान् ॥१७
पितृनुद्दिश्य दातव्या सवत्सा कांस्यदोहनी । प्रत्यक्षा गौर्महाराज तरुणी सुपयस्विनी ॥१८
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः । प्रीयंतां गोप्रदानेन इति दत्त्वा विसर्जयेत् ॥१९
कृतेनानेन राजेन्द यत्पुण्यं प्राप्यते नृभिः । तत्केन वर्णितुं याति वर्षकोटिशतैरपि ॥२०
पुत्रान्पौत्रान्प्रपौत्रांश्च धनं च महदीप्सितम् । इह चाप्नोति पुरुषः परत्र च शुभां गतिम् ॥२१
पञ्चदश्यां च माघस्य पूजयित्वा पितामहम् । गायत्र्या सहितं देवं वेदवेदाङ्गभूजितम् ॥२२
नवनीतमयीं धेनुं फलैर्नानाविधैर्युताम् । सहिरण्यां सवत्सां च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥
कीर्तयेत्प्रीयतामत्र पद्मयोनिः पितामहः ॥२३
यत्स्वर्गे यच्च पाताले यच्च मर्त्ये सुदुर्लभम् । तदवाप्नोत्यसंदिग्धं पद्मयोनिप्रसादतः ॥२४
यानि चान्यानि दानानि दत्तानि सुबहून्यपि । युगादिषु महाराज अक्षयानि भवंति हि ॥२५
अल्पमल्पं हि यः कश्चित्प्रदद्यान्निर्धनोऽपि सन् । तदक्षयं भवेत्सर्वं युगादिषु न संशयः ॥२६
वित्तानुसारं स्वं ज्ञात्वा वित्तवान्पार्थिवोऽपि वा । अनुसारेण वित्तस्य असाध्येन समाधिना ॥२७
भूर्हिरण्यं गृहं वासः शयनान्यासनानि च । छत्रोपानत्सुयुग्मानि प्रदेयानि द्विजातिषु ॥२८

कहना चाहिए । पार्थ! इस व्रत-दान द्वारा जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, उसका वर्णन करना सभी के लिए अशक्य है । तिलनिर्मित धेनु दान करने से शिव लोक की प्राप्ति होती है । भाद्रपद की कृष्ण त्रयोदशी के दिन मधु-घृत पूर्ण पायस (खीर) पिण्डदान द्वारा पितरों का संतृप्त कर भक्ति पूर्वक वेद-वेदाङ्गमर्मज्ञ ब्राह्मणों को भोजन कराये और पितरों के उद्देश्य से सवत्सा गौ और कांसे की दोहनी भी प्रदान करना चाहिए । महाराज! उस तरुणी पयस्विनी एवं प्रत्यक्षस्थित गौ के दान करते समय कहना चाहिए कि— 'पिता, पितामह, और प्रपितामह इस गोदान द्वारा प्रसन्न हों । अनन्तर विसर्जन करे । राजेन्द्र! इस सुकृत द्वारा मनुष्यों को जिस पुण्य राशि की प्राप्ति होती है, सौ कोटि वर्ष में भी उसका वर्णन कोई नहीं कर सकता है । पुरुष को इस लोक में अनेक पुत्र-पौत्र- और यथेच्छ धन की प्राप्ति पूर्वक अन्त में शुभ गति प्राप्ति होती है । उसी प्रकार माघ की कृष्ण पञ्चदशी (अमावस्या) के दिन गायत्री समेत वेद-वेदाङ्गभूषित पितामह (ब्रह्मा) की अर्चना के उपरांत नवनीतमयी धेनु की और अनेक भाँति के फल, हिरण्य समेत वछड़े की अर्चना करके सादर ब्राह्मण को अर्पित करे और उस समय कहता रहे कि—'पद्मयोनि पितामह ब्रह्मा' इस कर्म से प्रसन्न हों ।९-२३। पितामह ब्रह्मा की कृपा से जो स्वर्ग, मर्त्य और पाताल लोक में उसे प्राप्त होती हैं इसमें संदेह नहीं । महाराज! इन युगादितिथियों के दिन अन्य वस्तुओं के भी किये गये दान अक्षय होते हैं । जो कोई निर्धन व्यक्ति इन दिनों अल्प भी दान करता है, वह सब अक्षय होता है इसमें संदेह नहीं । इसलिए कि—भूमि, हिरण्य, गृह, वस्त्र, शयन, आसन, छत्र और उपानह के दान

---

१. पितृनुद्दिश्य ।

एवं दत्त्वा यथाशक्त्या भोजयित्वा द्विजानपि । पश्चाद्भुञ्जीत सुमना वाग्यतः स्वजनैः सह ।।२९
यत्किञ्चिन्मानसं पापं कायिकं वाचिकं तथा । तत्सर्वं नाशमायाति युगादितिथिपूजनात् ।।३०
उद्गीयमानो गन्धर्वैः स्तूयमानः सुरासुरैः । रमते चाक्षयं कालं स्वर्गलोके न संशयः ।।३१
यद्दीयते किमपि कोटिगुणं तदाहुः स्नानं जपोनियममक्षयमेव सर्वम् ।
स्यादक्षयासु युगपूर्वतिथीषु राजन्व्यासादयो मुनिवराः समुदाहरन्ति ।।३२
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
युगादितिथिव्रतमाहात्म्यवर्णनं नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ।१०१

अथ द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

वटसावित्रीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

स्मरामि हृशीकेश यन्नोक्तं भवता क्वचित् । तत्सावित्रीव्रतं ब्रूहि ममोपरि दयां कुरु ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

कथयामि कुलस्त्रीणां महाभाग्यं युधिष्ठिर । यथा चीर्णं व्रतवरं सावित्र्या राजकन्यया ।।२
आसीन्मद्रेषु धर्मात्मा सर्वभूतहिते रतः । पार्थिवोऽश्वपतिर्नाम पौरजानपदप्रियः ।।३

ब्राह्मणों को प्रदान करें । उपरांत ब्राह्मणों को यथा शक्ति भोजन कराकर परिवार समेत स्वयं भी मौन होकर भोजन करें । इन युगादितिथियों के पूजन करने से मन, वाणी एवं शरीर-जनित समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं । गन्धर्व गण उसका गुणगान करते हैं और सुर-असुर उसकी सदैव वन्दना किया करते हैं । इस प्रकार वह स्वर्गलोक में अक्षय काल तक रमण करता है । राजन्! व्यासादि मुनिवरों के कथनानुसार इन युगादितिथियों में स्नान, जप, दान आदि जो कुछ किया जाता है, वह कोटि गुने फल प्रदान करते हुए प्रक्षय रहता है ।२४-३२

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
युगादितिथिव्रत-माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ एक अध्याय समाप्त ।१०१।

अध्याय १०२

वटसावित्रीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—हृषीकेश! मेरे ऊपर दया कर आप मुझे उस सावित्री व्रत को बताने की कृपा कीजिये, जिसे आप ने अभी तक किसी को बताया नहीं है ।१।

श्री कृष्ण बोले—युधिष्ठिर! सावित्री आदि राजकन्याओं ने उसे जिस प्रकार सुसम्पन्न किया है, कुलस्त्रियों के उस महाभाग्यशाली व्रत को मैं तुम्हें बता रहा हूँ । मद्र देश में अश्वपति नामक एक

क्षमावांश्च क्षितिपतिः सत्यवांश्च जितेन्द्रियः । स सभार्यो व्रतमिदं चचार नृपतिः स्वयम् ॥४
सावित्रीव्रतसिद्धं तत्सर्वकामप्रदायकम् । तस्य तुष्टाभवद्राजन् सावित्री ब्राह्मणः प्रिया ॥५
भूर्भुवःस्वरितीत्येषा साक्षान्मूर्तिमती स्थिता । कमण्डलुधरा देवी प्रसन्नवदनेक्षणा ॥६
उवाच दुहिता ह्येका तव राजन् भविष्यति । इत्येवमुक्त्वा सावित्री जगामादर्शनं पुनः ॥७
कालेन सा तथा राजन् दुहिता देवरूपिणी । सावित्र्या प्रीतमा दत्ता सावित्र्याः जप्तया तदा ॥८
सावित्रीत्येव नामास्याश्चक्रुर्विप्रास्तथा पिता । सा गृहवती सश्रीर्व्यवर्द्धत नृपात्मजा ॥
सावित्री सुकुमाराङ्गी यौवनस्था बभूव ह ॥९
तां सुमध्यां पृथुश्रोणीं प्रतिमां काञ्चनीमिव । प्राप्तेव देवकन्येति दृष्ट्वा तामितरे जनाः ॥१०
सा तु पद्मपलाशाक्षी प्रज्वलंतीव तेजसा । चचार सा च सावित्रीव्रतं यद्भृगुणोदितम् ॥११
अथोपोष्य शिरःस्नाता देवतामभिगम्य सा । हुत्वाग्निं विधिवद्विप्रान्वाचयित्वेन्दुपर्वणि ॥१२
तेभ्यः सुमनसः शेषाः प्रतिगृह्य नृपात्मजा । साध्वी पतिव्रताभ्येत्य देवश्रीरिव रूपिणी ॥१३
सोऽभिवाद्य पितुः पादौ शेषान्पूर्वं निवेद्य च । कृतांजलिर्वरारोहा नृपतेः पार्श्वतः स्थिता ॥१४
तां दृष्ट्वा यौवनं प्राप्तां स्वच्छां तां देवरूपिणीम् । उवाच राजा संमंत्र्य स्मृत्यर्थं सह मंत्रिभिः ॥१५

राजारहता था, जो धर्मात्मा, समस्त प्राणियों का हितैषी, पुरवासियों को अनन्तप्रिय, क्षमाशील, पृथिवीपति, सत्यवादी एवं इन्द्रियसंयमी था । स्त्री समेत उस राजा ने स्वयं समस्त कामनाओं को सफल करने वाले उस सिद्ध सावित्री को सविधान सुसम्पन्न किया । राजन्! ब्रह्मप्रिया सावित्री ने अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा को प्रत्यक्ष दर्शन दिया, जो भूर्भुवःस्वः की साक्षात् प्रतिमा मालूम होती थी । कमण्डलु लिए हुए उन सावित्री देवी ने अपनी प्रसन्नमुखमुद्रा एवं विकसित नेत्र से प्रसन्नता प्रकट करती हुई राजा से कहा—राजन्! तुम्हारे एक पुत्री होगी । इतना कह कर सावित्री पुनः अन्तर्हित हो गयीं । राजन्! सावित्री के एक मात्र अटल प्रेम और उनकी अर्चना-वन्दना करने के नाते समयानुसार राजा के एक देव स्वरूपिणी कन्या की उत्पत्ति हुई । विप्रवृन्द! उसके पिता ने उस कन्या का सावित्री ही नाम रखा । वह सुकुमारी राज कुमारी धीरे-धीरे सौन्दर्य समेत बढ़ने लगी और कुछ ही काल में पूर्ण युवती हो गयी उस काञ्चनी प्रतिमा को देखकर जिसका मध्यभाग (कटि) अत्यन्त क्रमनीय एवं श्रोणिभाग पृथुल था, पुरवासी गण उसे देवकन्या ही मानते थे । कमल पुष्प की भाँति नेत्र एवं तेज से प्रज्जलित रहने वाली उस सावित्री ने भृगुऋषि के बताये अनुसार सावित्री व्रत सविधान सुसम्पन्न किया ।२-११। राजकुमारी ने उस चन्द्र पर्व के दिन सर्वप्रथम उपवास पूर्वक शिर से स्नान, देव-पूजन, अग्नि में सविधान हवन, और ब्राह्मणों द्वारा कथा-पारायण कराने के उपरांत ब्राह्मणों से प्रसाद रूप पुष्प (मंत्राक्षत) ग्रहण किया । उस साध्वी पतिव्रता ने, जो साक्षात् देव श्री की मूर्ति दिखायी देती थी, अपने पिता के समीप पहुँच कर समस्त वृत्तान्तों के निवेदन पूर्वक हाथ जोड़कर उनके चरण का अभिवादन किया और अनन्तर वह वरा-रोहा राजा के बगल में बैठ गयी । राजा ने उस देवरूपिणी एवं अत्यन्त स्वच्छ अपनी कन्या को यौवन प्राप्त देखकर मंत्रियों के साथ विचार कर उससे कहा—सयुक्तिक और सामयिक विचार के अनुसार ही लोग

युक्तः प्रदानकालोऽस्यास्तेन कश्चिद् वृणोत्विमाम् । विचारयित्वा पश्यामि वरं तुल्यं महात्मनः ॥१६
देवादीनां यथा वाच्यो न लभेयं तथा कुरु । बोद्धयमाना मया पुत्रि धर्मशास्त्रेषु गच्छतम् ॥१७
पितुर्गृहे तु या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता । ब्रह्महत्या पितुस्तत्र सा कन्या वृषली स्मृता ॥१८
अतोर्थं प्रेषयामीति कुरु पुत्रि स्वयंवरम् । वृद्धैरमात्यैः सहिता शीघ्रं गच्छ विधारय ॥१९
एवमस्त्विवति सावित्री प्रोक्ता तस्माद्विनिर्ययौ । तपोवनानि रम्याणि राजर्षीणां जगाम सा ॥२०
मान्यानामत्र वृद्धानां कृत्वा पादाभिषेचनम् । ततोभिगम्य तीर्थानि सर्वाण्येवाश्रयाणि च ॥२१
आजगाम पुनर्वेश्म सावित्री सह मन्त्रिभिः । तत्रापश्यच्च देवर्षि नारदं पुरतः पितुः ॥२२
आसीनमासने विप्रं प्रणम्य स्मितभाषिणी । कथयामास तत्सर्वं यथावत्तं वनेऽभवत् ॥२३

सावित्र्युवाच

आसीत्साल्वेषु धर्मात्मा क्षत्रियः पृथिवीपतिः । द्युमत्सेन इति ख्यातो दैवदत्तो बभूव सः ॥२४

नारद उवाच

अहो बत महत्कष्टं सावित्र्या नृपतेः कृतम् । बाल्यभावाद्यदनया न कृतः सत्यवान्नृपः ॥२५
सत्यं वदत्यस्य पिता सत्यं माता प्रभाषते । उपेतोऽस्ति गुणैः सर्वैर्द्युमत्सेनसुतो बली ॥२६

वरण आदि करते हैं अतः पहले अपनी ऐसी धारणा बताओ कि—मेरा वरण करने के लिए कोई प्रस्तुत है। मैं भी अपने विचारों से इसी निष्कर्ष पर पहुँच रहा हूँ कि— किसी महान् व्यक्ति के साथ सम्बन्ध हो तो अच्छा है और जहाँ तक हो सके मैं देवों की निन्दा का पात्र न बन सकूं वैसा ही करना! अतः पुत्रि! मैं ने धर्मशास्त्रों के आलोकन से यह निश्चय किया कि—अब तुम अपना विवाह संस्कार अवश्य करो, क्योंकि विवाह संस्कार हीन कन्या अपने पिता के घर यदि रजोवती होती है तो उसके पिता को ब्रह्म हत्या का दोषभागी होना पड़ता है और वह कन्या वृषली कही जाती है। इसलिए पुत्रि! मैं तुम्हें कुछ मंत्रियों के साथ भेज रहा हूँ तुम स्वयं वर का अन्वेषण कर उसे अपनाओं। जाने के लिए शीघ्रता करो और मेरी बातों का ध्यान रखना। इसे स्वीकार कर सावित्री राजर्षियों के रमणीयक तपोवन के लिए निकल पड़ी। वहाँ के मान्य एवं वृद्धों के चरण-पूजन करके वह सभी-कल्याण तीर्थों में गयी और मंत्रियों के साथ पुनः घर लौट आयी। घर आकर उसने अपने पिता के पास बैठे हुए देवर्षि नारद को देखा, जो उत्तम आसन पर सुशोभित हो रहे थे। मन्द मुसुकान करती हुई उसने उन विप्रदेव को प्रणाम कर उनके समक्ष जंगल के समस्त वृतान्त का निवेदन किया।१२-२३

सावित्री बोली—साल्व देश में द्युमत्सेन नामक क्षत्रिय राजा थे, जो धर्मात्मा, एवं दैव द्वारा प्रदत्त थे। उसे सुनकर नारद ने कहा।२४

नारद बोले— आश्चर्य एवं अत्यन्त खेद है कि सावित्री ने अपने लड़कपन (अज्ञानता) के कारण (सत्यवान के साथ अपना पाणिग्रहण संस्कार हेतु उनका वरण कर अपने पिता राजा को महान् कष्ट प्रदान कियाहै। यद्यपि सत्यवान् अत्यन्त गुणी पुरुष है और उसके पिता एवं माता सदैव सत्य बोलते हैं और वह द्युमत्सेन का पुत्र (सत्यवान्) बली तथा समस्त गुणों से युक्त भी है, तथापि उसमें एक महान्

एको दोषोऽस्ति नान्योऽस्य सोऽद्यप्रभृति सत्यवाक् । संवत्सरेण हीनायुर्देह त्यागं करिष्यति ॥२७
नारदस्य वचः श्रुत्वा तनयां प्राह पार्थिवः । पुत्रि सावित्रि गच्छ त्वमन्यं वरय सत्पतिम् ॥
संवत्सरेण सोल्पायुर्देहत्यागं करिष्यति ॥२८

सावित्र्युवाच

सकृज्जल्पंति राजानः सकृज्जल्पंति पंडिताः । सकृत्प्रदीयते कन्या त्रीण्येतानि सकृत्सकृत् ॥२९
दीर्घायुरथ वाल्पायुः सगुणो निर्गुणोऽपि वा। सकृद्वृतो मया भर्ता न द्वितीयं वृणोम्यहम् ॥३०
मनसा निश्चयं कृत्वा ततो वाचाऽभिधीयते । क्रियते कर्मणा पश्चात्प्रमाणं मे मनः सदा ॥३१

नारद उवाच

यद्येतदिष्टं दुहितुस्ततः शीघ्रं विधीयताम् । अविघ्नमग्रे सावित्र्याः प्रदाने दुहितुस्तव ॥३२
एवमुक्त्वा समुत्पत्य नारदस्त्रिदिवं गतः । राजा च दुहितुः सर्वं वैवाहिकमथाकरोत् ॥
शुभे मुहूर्ते पार्श्वस्थैर्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥३३
सावित्र्यपि वरं लब्ध्वा भर्तारं मनसेप्सितम् । मुमुदेऽतीव तन्वङ्गी स्वर्गं प्राप्येव पुण्यकृत् ॥३४
एवं तत्राश्रमे तेषां वसतां प्रीतिपूर्वकम् । कालस्तपस्यतां कश्चिदतिचक्राम भारत ॥३५
सावित्र्यास्तप्यमानायास्तिष्ठंत्याश्च दिवानिशम् । नारदेन यदुक्तं तद्वाक्यं मनसि वर्तते ॥३६
ततः काले बहुतिथे व्यतिक्रांते कदाचन । सम्प्राप्तकालो म्रियेत इति संचिंत्य भामिनी ॥

दोष यह है—वह वर्ष के भीतर ही शरीर त्याग कर देगा । किन्तु यह उसका निजी दोष नहीं है क्योंकि वह तो आज जक सत्य ही बोलता आया है । नारद की ऐसी बाते सुनकर राजा ने अपनी कन्या से कहा—पुत्रि सावित्री! तुम जावो और किसी अन्य पति का शीघ्र वरण करो! क्योंकि वह (सत्यवान्) अल्पायु होने के नाते शीघ्र इसी वर्ष में शरीर का त्याग कर देगा ।२५-२८

सावित्री बोली—राजा और पण्डितों के कथन तथा कन्या दान ये तीनों एक ही बार होते हैं । अतः वे दीर्घायु, अल्पायु, सगुण, अथवा निर्गुण जो कुछ हों, मैंने भर्ता के रूप में उनका एक बार वरण कर लिया है अब दूसरे का वरण नहीं करूँगी । क्योंकि जो कार्य करना होता है उसे प्रथममन से निश्चय किया जाता है अनन्तर वाणी द्वारा प्रकट किया जाता है और तब वह कार्य आरम्भ होता है । इस कार्य में सदैव के लिए मेरा मन ही प्रमाण रूप है ।२९-३१

नारद बोले—तुम्हारी कन्या का यदि यही निश्चय है तो इसे पूरा करने में शीघ्रता करो और तुम्हारे द्वारा कन्यादान होने पर इस तुम्हारी पुत्री सावित्री का आगे चल कर अमङ्गल भी नहीं होगा । इतना कहकर नारद जी स्वर्ग चले और राजा ने भी कन्या के विवाह सम्बन्धी सभी कार्यो को शुभ मुहूर्त में अपने पड़ोसी वैदिक ब्राह्मण द्वारा पूरा किया । कृशाङ्गी सावित्री भी मन इच्छित पति को पाकर स्वर्ग प्राप्त पुण्यात्मा की भाँति अत्यन्त प्रसन्न हुई । भारत! इस प्रकार उस आश्रम में दोनों को प्रीतिपूर्वक सुखी जीवन व्यतीत करते कुछ समय बीत गया । नारद की कही हुई बातों का सदैव मनमें ध्यान रख कर उसने दिन रात के घोर परिक्रमा से उन दिनों तपस्या भी आरम्भ की थी । बहुत दिनों के बीत जाने पर

प्रोष्ठपदे सिते पक्षे द्वादश्यां रजनीमुखे ॥३७
गणयन्ती च सावित्री नारदोक्तं वचो हृदि । व्रतं त्रिरात्रमुद्दिश्य दिवारात्रं विनाभवत् ॥३८
ततस्त्रिरात्रं निर्वर्त्य स्नात्वा संतर्प्य देवताः । चतुर्थेऽहनि मर्तव्यमिति संचिंत्य भामिनी ॥
श्वश्रूश्वशुरयोः पादौ ववंदे चारुहासिनी ॥३९
अथ प्रतस्थे परशुं गृहीत्वा सत्यवान्वनम् । सावित्र्यपि च भर्तारं गच्छतः पृष्ठतोऽन्वगात् ॥४०
ततोऽवदत्स भर्ता तां पृच्छस्व श्वशुरौ निजौ । तथेत्युक्त्वा हि पप्रच्छ नत्वा श्वश्रूपदानि सा ॥४१
श्वशुरावववदतां च न गन्तव्यं त्वयानघे । बाले त्वं परमं भीरुः कथं गच्छसि काननम् ॥४२
भूयो भावेन सा प्रोचे द्रष्टव्यं काननं मया । गच्छेति तां तदोचाते श्वशुरौ चारुहासिनीम् ॥४३
ततो गृहीत्वा तरसा फलपुष्पसमित्कुशान् । यथा शुष्काणि चादाय काष्ठभारमकल्पयत् ॥४४
अथ पाटयतः काष्ठं जाता शिरसि वेदना । व्यथा मां बाधते बाले स्वप्तुमिच्छामि सुंदरि ॥४५
विश्रमस्व महाबाहो सावित्री प्राह दुःखिता । पश्चादुपगमिष्यामि स्वाश्रमं श्रमनाशनम् ॥४६
यावदुत्संगके कृत्वा शिर आस्ते महीतले । तावद्ददर्श सावित्री पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् ॥
किरीटिनं पीतवस्त्रं साक्षात्सूर्यमिवोदितम् ॥४७
तमुवाचाथ सावित्री प्रणम्य मधुपिङ्गलम् । कस्त्वं देवोऽथ वा दैत्यो मां धर्षयितुमागतः ॥४८

एक बार ऐसा सोचकर कि—'समय आने पर यह (सत्यवान्) अवश्य मर जायेंगे ।' उसने भादो मास की शुक्ल द्वादशी के संध्या समय हृदय में नारद की बातों का विशेष ध्यान रखकर त्रिरात्र व्रत आरम्भ किया । पश्चात् दिन रात के उस त्रिरात्र व्रत से निवृत्त होकर उसने स्नान और देवपूजन किया । वह भामिनी सोच रही थी कि—आज चौथे दिन (इनका) मरण अवश्य है, अतः सौभाग्य के लिए उस प्रसन्नवदना ने अपनी सास-ससुर की चरण-वन्दना की । उसी समय सत्यवान् कुल्हाणी लेकर वन की ओर चल पड़े । उसे उन्हें जाते देखकर सावित्री भी अपने पति के पीछे चल पड़ी ।३२-४०। उसे पीछे आती हुई देखकर सत्यवान् ने कहा—(प्रिये) 'सास-ससुर की आज्ञा लेकर ही चलो ।' उसने 'तथा' (स्वीकार) कह कर सास-ससुर की चरण-वन्दना पूर्वक कहा—उनसे आज्ञा मांगी । किन्तु उन लोगों ने कहा—अनघे! तुम जंगल मत जाओ । और बोले! तुम तो अत्यन्त भीरु हो, जंगल कैसे जा रही हो । उसने अत्यन्त विनम्रता से कहा—'मुझे वन देखने की बड़ी इच्छा है । इसे सुन कर उसके सास-ससुर ने उस चारुहासिनी को सप्रेम वन जाने की आज्ञा प्रदान की । पश्चात् शीघ्रता से चलती हुई उसने फल, पुष्प समिधा (लकड़ी) और कुशाओं के संचय पूर्वक सूखी लकड़ियों का एक प्रहर बोझा तैयार किया । तदुपरांत लकड़ी काटते समय सत्यवान् के शिर में पीड़ा उत्पन्न हुई । उन्होंने कहा—बाले! मुझे अत्यन्त पीड़ा हो रही है, अतः सुन्दरी! मैं शयन करना चाहता हूँ ।४१-४५। उस समय उनके दुःख से दुःखी होकर सावित्री ने कहा— महाबाहो! आप थोड़ा विश्राम कर लें, पश्चात् अपने आश्रम लौट चला जायेगा । सावित्री ने ज्यों ही बैठकर उनके शिर को अपनी गोद में रखा त्यों हि एक कृष्ण-पिंगल वर्ण पुरुष उसे दिखायी दिया, जो किरीट और पीतवस्त्र-धारण किये साक्षात् सूर्य की भाँति मालूम हो रहा था । सावित्री ने प्रणाम पूर्वक उस काले पुरुष से कहा—मेरी घर्षणा करने के लिए आये हुए तुम देव अथवा दैत्य कौन हो ? ।४६-४८। पुरुषश्रेष्ठ! मुझे कोई

न चाहं केनचिच्छक्या स्वधर्मादवरोपितुम् । स्प्रष्टुं वा पुरुष श्रेष्ठ दीप्ता वह्निशिखा यथा ।।४९

यम उवाच

यमः संयमनश्चास्मि सर्वलोकभयङ्करः । क्षीणायुरेव ते भर्ता तं नयामि पतिव्रते ।।
न शक्यः किंकरैर्नेतुमतोऽहं स्वयमागतः ।।५०
एवमुक्त्वा सत्यवतः शरीरात्पाशसञ्चयैः । अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं निश्चकर्ष यमो बलात् ।।
अथ प्रयातुमारेभे पंथानं पितृसेवितम् ।।५१
सावित्र्यपि वरारोहा पृष्ठतोऽनुजगाम ह । पतिव्रतां तथा श्रांतां तामुवाच यमस्तदा ।।५२
निवर्त गच्छ सावित्रि स्वगृहे त्वमिहागता । एष मार्गो विशालाक्षि न केनाप्यनुगम्यते ।।५३

सावित्र्युवाच

न श्रमो न च मे ग्लानिः कदाचिदपि जायते । भर्तारमनुगच्छंति यास्तासां न श्रमादयः ।।५४
सतां संतो गतिर्नान्या स्त्रीणां भर्ता सदा गतिः । वेदो वर्णाश्रमाणां च शिष्याणां च गतिर्गुरुः ।।५५
सर्वेषामेव जन्तूनां स्थानमस्ति महीतलम् । भर्तार एव मनुजस्त्रीणां नान्यः समाश्रयः ।।५६
एवमन्यैश्च विविधैर्वाक्यैर्धर्मार्थसंहितैः । तुतोष सूर्यतनयः सावित्रीं चेदमब्रवीत् ।।५७
तुष्टोऽस्मि तव भद्रं ते वरं वरय भामिनी । सावित्र्यपि वरान्वव्रे विनयावनतानना ।।५८
चक्षुःप्राप्तिस्तथा राज्यं श्वशुरस्य महात्मनः । पितुः पुत्रशतं चैव पुत्राणां शतमात्मनः ।।५९

अपने धर्म से विचलित नहीं कर सकता और प्रज्वलित अग्नि-शिखा की भाँति मेरा स्पर्श भी नहीं कर सकता है ।४९

यम बोले—पतिव्रते! मैं समस्त (पापी) लोगों को भीषण संयमन (नियंत्रण) करने वाला यम हूँ । यह तुम्हारे पति (सत्यवान्) की आयु अब क्षीण हो चुकी है अतः इसे अब यमपुरी ले जा रहा हूँ । मेरे सेवक गण इन्हें ले जाने में असमर्थ थे इसीलिए मैं स्वयं आया हूँ । इतना कह कर यमराज ने बल प्रयोग द्वारा सत्यवान् की देह से पाश में बँधे अंगूठे मात्र के एक पुरुष को निकाला । अनन्तर पितरों के मार्ग से जाने का उपक्रम भी किया । किन्तु वह वरारोहा सावित्री भी उनके पीछे जाने लगी । उस पतिव्रता को शांत देखकर यम ने उससे कहा—विशाल नेत्रों वाली सावित्री! तुम अपने घर लौट जाओ, यहाँ क्यों आ रही हो । क्योंकि इस मार्ग से कोई दूसरा नहीं आ सकता है ।५०-५३

सावित्री बोली—मुझे कोई भ्रम अथवा ग्लानि नहीं हो रही है क्योंकि पति की अनुगामिनी स्त्रियों को भ्रम आदि का कष्ट होता ही नहीं । सज्जनों के सज्जन और स्त्रियों के पति ही सदा गीत रूप हैं । जिस प्रकार वर्णाश्रमों की भाँति वेद, शिष्यों के गुरु, और समस्त जीवों का स्थान यह महीतल है उसी भाँति स्त्रियों के आशय पति ही होते हैं अन्य नहीं । इसी प्रकार अन्य अनेक धर्मार्थ विषय की उसकी बातें सुनकर यमराज अत्यन्त प्रसन्न हुए । उन्होंने सावित्री से कहा—भामिनी! तुम्हारा कल्याण हो । मैं तुम्हारी बातों से अति प्रसन्न हूँ अतः यथेच्छ वर की याचना करो । उसने विनय-विनम्र होकर उनसे वर की याचना की ।५४-५८। हमारे ससुर महोदय को आँख प्राप्ति समेत राज्य की प्राप्ति हो और उनके सौ पुत्र एवं

जीवितं च तथा भर्तुर्धर्मसिद्धिश्च शाश्वती । धर्मराजो वरान्दत्त्वा प्रेषयामास तां ततः॥६०
अथ भर्तारमासाद्य सावित्री हृष्टमानसा । जगाम साश्रमपदं सह भर्त्रा निराकुला ॥६१
भाद्रस्य पौर्णमास्यां तु यथा चीर्णं व्रतं त्विदम् । माहात्म्यमस्य नृपते कथितं सकलं मया ॥६२

युधिष्ठिर उवाच

कीदृशं तद्व्रतं देव सावित्र्या यदनुष्ठितम् । तस्मिन्भाद्रपदे मासि सिद्धान्नं तस्य कीदृशम् ॥६३
का देवता व्रते तस्मिन्ब्रूहि कामं प्रति प्रभो । सविस्तरं हृषीकेश ब्रूहि धर्मं सनातनम् ॥६४

श्रीकृष्ण उवाच

श्रूयतां पाण्डवश्रेष्ठ सावित्रीव्रतमादरात् । कथयामि कथं चीर्णं तया सत्या युधिष्ठिर ॥६५
त्रयोदश्यां भाद्रपदे दंतधावनपूर्वकम् । त्रिरात्रं नियमः कार्यं उपवासस्य भारत ॥६६
अशक्त्या तु त्रयोदश्यां नक्तं कुर्याज्जितेन्द्रियः । अयाचितं चतुर्दश्यामुपवासेन पूर्णिमाम् ॥६७
नित्यं स्नात्वा महानद्यां तडागे चाथ निर्झरे । विशेषः पौर्णमास्यां तु स्नानं सर्षपमृज्जलैः ॥६८
गृहीत्वा तिलकान्पात्रे प्रस्थमात्रं युधिष्ठिर । अथ वा धान्यमादाय यवशालितिलादिकम् ॥६९
ततो वंशमये पात्रे वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् । सावित्रीप्रतिमां कृत्वा सर्वावयशोभनाम् ॥७०
सौवर्णीं मृण्मयीं वापि स्वशक्त्या रौप्यनिर्मिताम् । रक्तवस्त्रयुगं दद्यात्सावित्र्यैः ब्राह्मणे तथा ॥७१

उन पुत्रों के सौ पुत्र हों तथा जीवनदान समेत मेरे पति की शाश्वती धर्मसिद्धि होती रहे । पश्चात् धर्मराज ने उसे वर प्रदान कर उसके घर भेज दिया । पति की प्रप्ति से सावित्री को अत्यन्त प्रसन्नता हुई । अनन्तर उसने पति के साथ अत्यन्त स्वस्थ चित से अपने आश्रम का प्रस्थान किया । नृपते! इस प्रकार भादों मास की पूर्णिमा के दिन जिस प्रकार यह व्रत सुसम्पन्न होता है मैंने उसका सफल महत्त्व तुम्हें बता दिया ।५९-६२।

युधिष्ठिर ने कहा—देव! भादों के मास में सावित्री ने जिस व्रत का अनुष्ठान किया था, उसका स्वरूप क्या है, उस व्रत में कौन सा सिद्धान्न खाया जाता है! प्रभो, हृषीकेश! अपनी कामना को सफल करने के लिए उस व्रत में किस देवता की आराधना की जाती है! मुझे विस्तार पूर्वक यह सनातन धर्म बताने की कृपा कीजिये ।६३-६४

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डवश्रेष्ठ! युधिष्ठिर! पतिव्रता सावित्री ने किस प्रकार इस व्रत को सुसम्पन्न किया है, सादर सुना रहा हूँ, सावधान होकर सुनो! भारत! भादों मास की शुक्ल त्रयोदशी के दिन से ही दातून करने से लेकर उपवास पूर्वक उस त्रिरात्र व्रत नियम का पालन करना चाहिए । उस दिन से उपवास करने में असमर्थ होने पर इन्द्रिय संयम पूर्वक त्रयोदशी के दिन नक्त (रात्रि में) भोजन, चतुर्दशी के दिन अपचित अन्न के भोजन और केवल पूर्णिमा के दिन उपवास करे ।६५-६७। किसी महानदी, सरोवर अथवा झरना में नित्यस्नान करते हुए पूर्णिमा के दिन राई, मिट्टी समेत जल से विशेष स्नान करना चाहिए । युधिष्ठिर (बाँस के) पात्र में एक सेर तिल, धान्य, जवा, अथवा साठी चावल, रख कर उसे दो वस्त्रों से आवेष्टित करे, पश्चात् सुवर्ण, मिट्टी अथवा यथाशक्ति चाँदी की सावित्री की सर्वाङ्गसुन्दर प्रतिमा बना

सावित्रीं ब्रह्मणा सार्द्धमेवं भक्त्या प्रपूजयेत् । गन्धैः सुगन्धिपुष्पैश्च धूपनैवेद्यदीपकैः ।।७२
पूर्णैः कोशातकैर्भक्ष्यैः कूष्माण्डैः कर्कटीफलैः । नालिकेरैश्च खर्जूरैः कपित्थैर्दाडिमोफलैः ।।७३
जम्बूजम्बीरनारङ्गैः कर्कटैः पनसैस्तथा । जीरकैः कटुखण्डैश्च गुडेन लवणेन च ।।७४
विरूढैः सप्तधान्यैश्च वंशपात्रे प्रकल्पितैः । राजन्या सूत्रकण्टैश्च शुभैः कुङ्कुमकेसरैः ।।७५
अवतारवतीत्येवं सावित्री ब्रह्मणः प्रिया । तामर्चयेत मंत्रेण सावित्रीं ब्राह्मणः स्वयम् ।।
इतरेषां पुराणोक्तमन्त्रोऽत्र समुदाहृतः ।।७६
ॐकारपूर्वके देवि वीणापुस्तकधारिणि । वेदमातर्नमस्तुभ्यमवैधव्यं प्रयच्छ मे ।।७७
एवं संपूज्य विधिवज्जागरं कारयेत्ततः । गीतवादित्रशब्देन ह्यष्टतारीकदं बकैः ।।७८
नृत्यहासैर्नयेद्रात्रिं पृष्ठतश्च कथानकैः । सावित्र्याख्यानकं वापि वाचयेद्द्विजसत्तमम् ।।
यावत्प्रभातसमयं गीत्या भावरसैः समम् ।।७९
ततः प्रभाते विमल उषःकाले ह्युपस्थिते । ब्राह्मणे वेदविदुषि सावित्रीं विनिवेदयेत् ।।८०
यथा सावित्रकल्पज्ञे सावित्र्याख्यानवाचके । दैवज्ञ उंच्छवृतौ च दरिद्रे चाग्निहोत्रिणि ।।८१
मंत्रेणानेन कौंतेय प्रणम्य विधिपूर्वकम् । दर्भाक्षततिलैर्मिश्रा पूर्वाशाभिमुखास्थिता ।
सुधी विप्रवरो विप्र ॐकारस्वास्तिपूर्वके ।।८२

कर स्थापित करे। रक्तवर्ण के चार वस्त्रों से सावित्री और ब्रह्मा सुशोभित कर ब्रह्मा के साथ में ही सावित्री की भक्ति पूर्वक गंध, सुगंधित पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और दीपक द्वारा विशेष अर्चना करे।६८-७२। पूर्ण कोशातकी के भक्ष्य, कूष्माण्ड (कुम्हड़ा), ककड़ी, नारियल, खजूर, कैथ, अनार, जामुन, जम्हीरी नीबू, नारङ्गी, कटहल, जीरा, कटुखंड, गुड़ और नमक मिश्रित वह भोजन होना चाहिए। नये सवाधान्य के अंकुर, राजन्या सूत्रकंट और शुभ कुंकम केसर से उस बाँस के पात्र को विभूषित रखे। जिसमें सावित्री देवी स्थापित हों। अवतारवती उस ब्रह्म प्रिया सावित्री देवी की अर्चना वेदमंत्रों द्वारा ब्राह्मण को स्वयं करना चाहिए और इतर जनों को निम्नलिखित पौराणिक मंत्रों द्वारा—ओंकार पूर्वक उस (सावित्री) देवी को नमस्कार कर रहा हूँ, जो वीणा वाद्य और पुस्तक को धारण किये वैधव्य का नाश करती हैं और वेद की माता है। इस प्रकार सविधान पूजन करने के अनन्तर रात्रि-जागरण करते हुए गीत, वाद्य, नृप के ह्रास और कथाओं के द्वारा रात व्यतीत करनी चाहिए। किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ द्वारा सावित्री का आख्यान और भाव-रस पूर्ण गीत गाते हुए रात व्यतीत करने के अनन्तर उस विमल ऊषा काल के किसी वैदिक ब्राह्मण विद्वान को सावित्री की वह प्रतिमा समर्पित करे।७३-८०। 'जिस प्रकार सावित्री कल्प के ज्ञाता और सावित्री-आख्यान के कथावाचक का सुसम्मान किया जाता है उसी प्रकार उञ्छवृत्ति[1] वाले ज्योतिषी, और दरिद्र अग्नि होत्री का सम्मान करना चाहिए।' कौंतेय! इस मंत्र द्वारा सविधि सावित्री देवी को प्रणाम करके निम्नलिखित मंत्रोच्चारण पूर्वक वह प्रतिमा ब्राह्मण को अर्पित करे— कुश, अक्षत, और तिल मिश्रित आसन पर पूर्वाभिमुख सुशोभित सती सावित्री देवी को हिरण्य समेत श्रेष्ठ एवं

---

१. किसानों द्वारा खेत काटकर छोड़ने के उपरांत उसमें कहीं-कहीं के शेष दानों को इकट्ठा कर उससे जीवका निर्वाह करना।

सावित्रीयं मया दत्ता सहिरण्या महासती । ब्रह्मणः प्रीणनार्थाय ब्राह्मण प्रतिगृह्यताम् ।।८३
एवं दत्त्वा द्विजेंद्राय सावित्रीं तां युधिष्ठिर । नैवेद्यादि च तत्सर्वं ब्राह्मणं स्वगृहं नयेत् ।।
स्वयं दशपदं गच्छेत्स्ववेश्म पुनराविशेत् ।।८४
तत्र भुक्त्वा हविष्यान्नं ब्राह्मणैर्बांधवैः सह । विसर्जयेत्ततो विप्रान्सावित्री प्रीयतामिति ।।८५
पञ्चदश्यां तथा ज्येष्ठे वटके च महासती । त्रिरात्रोपोषिता नारी विधिनानेन पूजयेत् ।।८६
सार्द्धं सत्यवता साध्वीं फलनैवेद्यकदीपकैः । पट्टावलम्बनं कृत्वा काष्ठभारं युधिष्ठिर ।।८७
रात्रौ जागरणं कृत्वा नृत्यगीतपुरस्सरैः । प्रभाते विधिना पूर्वं पूर्वोक्तेन नरोत्तम ।।
तत्सर्वं ब्राह्मणे दद्यात्प्रणिपत्य क्षमापयेत् ।।८८
एतत्तु ते व्रतमिदं कथितं विधिवन्मया । याश्चरिष्यंति लोकेस्मिन्पुत्रपौत्रसमन्विताः ।।
भुक्त्वा भोगांश्चिरं भूमौ यास्यंति ब्रह्मणः पदम् ।।८९
एतत्तु ते व्रतमिदं कथितं विधिवन्मया । याश्चरिष्यंति लोकेस्मिन्पुत्रपौत्रसमन्विताः ।।
भुक्त्वा भोगांश्चिरं भूमौ यास्यन्ति ब्रह्मणः पदम् ।।९०
एतत्पुण्यं पापहरं धन्यं दुःस्वप्ननाशनम् । जपतां शृण्वतां चैव सावित्रीव्रतमादरात् ।।९१

स्मृत्यर्थवेदजननीं सहशंभुजायां संपूजयेदिह त्रिरात्रकृतोपवासा ।
सावित्रिवत्पितृकुलं च तथा स्वभर्तुरुद्धारयेच्च विभुनक्ति चिरं सुखानि ।।९२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
वटसावित्रीव्रतवर्णनं नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ।१०२

विद्वान ब्राह्मण के लिए अर्पित कर रहा हूँ । हे ब्राह्मण! ओंकार पूर्वक स्वस्ति उच्चारण करते हुए ब्रह्मा के प्रसन्नार्थ इसका ग्रहण करो । युधिष्ठिर! इस प्रकार सावित्री को, अर्पित करने पर वह ब्राह्मण उस प्रतिमा समेत नैवेद्य आदि सब वस्तु अपने घर ले जाये । उस समय (यजमान को) ब्राह्मण के साथ उसके सम्मानार्थ दश पग चल कर पुनः अपने घर लौट आना चाहिए ।८१-८४। पश्चात् सावित्री प्रीपताम् (प्रसन्न हों) कहकर विप्रो को सादर विसर्जित करे । युधिष्ठिर ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा के दिन वट के नीचे त्रिरात्र व्रत के उपवास पूर्वक नारी को इसी विधान द्वारा पूजन करना चाहिए । परदे के भीतर लकड़ी के गट्ठर समेत सत्यवान् के साथ सती सावित्री की फल, नैवेद्य, और दीपक आदि द्वारा अर्चना सुसम्पन्न करके नृत्य गीत करते हुए जागरण द्वारा रात्रि व्यतीत करे और विमल प्रभात होने पर पुनः पूर्वोक्त की भाँति प्रतिमा आदि सब कुछ सादर ब्राह्मण को अर्पित कर क्षमा याचना करे । इस प्रकार मैंने वह व्रत सविधान तुम्हें सुना दिया । जो स्त्रियाँ इस विधान द्वारा इस त्रिरात्र व्रत को सुसम्पन्न करेंगी, वे इस लोक में पुत्र-पौत्र समेत चिरकाल तक उत्तम भोगों के उपभोग करके अन्त में ब्रह्म पद प्राप्त करेंगी । इस सावित्री व्रत को सादर सुनने वाले प्राणी को पाप और दुःस्वप्न के विनाश पूर्वक पुण्य की प्राप्ति होती है । इस त्रिरात्र व्रत में उपवास पूर्वक स्मृति-वेद आदि की जननी (सावित्री) की पार्वती के साथ अर्चना करने पर वह सभी भी सावित्री की भाँति पितृ कुल और पति के उद्धार पूर्वक चिरकाल तक सुख का उपभोग करती है ।८५-९२

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्वाद में
वट सावित्री व्रत वर्णन नामक एक सौ दूसरा अध्याय समाप्त ।१०२।

अथ त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

कार्तिककृत्तिकाव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पूर्वमासीत्कृतयुगे क्षत्रिणी बहुपुत्रिणी । नाम्ना कलिंगभद्रेति रूपलावण्यसंयुता ।।१
तुङ्गस्तनी पद्मनेत्रा हंसनागेन्द्रगामिनी । सौभाग्यगुणसंपूर्णा चंद्रबिंबनिभानना ।।२
धनरत्नैश्च सम्पूर्णा मध्यदेशे वृषस्थले । राज्ञः पत्नी तु सा देवी दिलीपस्य महात्मनः ।।
कलिङ्गभद्रा ललिता महादेवी गुणान्विता ।।३
महाप्रसादं मन्वाना बहुमानपुरस्सरम् । ब्राह्मणेभ्यश्च दानानि प्रयच्छति महासती ।।४
त्यागसंभोगसौभाग्ये द्वितीया नैव तादृशी । नारीणां तु नरश्रेष्ठ दिलीपस्य यथा विधा ।।५
यथा च कार्तिके मासि गृहीतं क्षत्रयाव्रतम् । षण्मासेन व्रतं यावदिदं संचिन्त्य चेतसि ।।
पारितं च तया सर्वं किंचिन्मात्रं तु वर्तते ।।६
पारणेपारणे चापि पुराणज्ञे द्विजोत्तमे । उद्यापनं प्रयच्छन्ती कालं नयति सुन्दरी ।।७
कदाचिदर्धरात्रे तु सुप्ता भर्त्रा सहैव सा । दष्टा सर्पेण रौद्रेण जगाम निधनं क्षणात् ।।८
तेन दोषेण सा बाला अजायोनौ ह्यजायत । वनेचरी धर्मपरा पूर्वजातिस्मरा दृढ़ा ।।९

अध्याय १०३

कार्तिककृत्तिकाव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पहले समय में कलिंगभद्रा नामक एक क्षत्रियाणी रानी थी, जो अनेक पुत्रों से युक्त एवं रूप-लावण्य सम्पन्न थी । उसके ऊँचे स्तन और कमल के समान नेत्र तथा हंस एवं गजराज की भाँति उसकी चाल थी । समस्त सौभाग्य के गुणों से युक्त वह चन्द्रमुखी मध्यदेश के वृषस्थल निवासी एवं महात्मा राजा दिलीप की पत्नी थी, जो धन-रत्नों से परिपूर्ण थे । महादेवी के गुणों से युक्त वह परमसुन्दरी रानी कलिंगभद्रा, जो उच्चकोटि की पतिव्रता थी, महाप्रसाद की भाँति अत्यन्त सम्मान पूर्वक ब्राह्मणों को दान देती थी । नरश्रेष्ठ! उस समय राजा दिलीप की प्रेयसी पत्नी कलिंग भद्रा के समान त्याग संभोग और सौभाग्य में सामना करने वाली कोई दूसरी स्त्री नहीं थी ।१-३। 'छः मास में वह व्रत समाप्त हो जायगा' वह सोचकर उसने कार्तिक मास में क्षत्रिका व्रत का अनुष्ठान आरम्भ किया किन्तु अनुष्ठान का सब कुछ अंश समाप्त करने पर भी कुछ अवशेष रह गया । प्रत्येक पारण में वह सुन्दरी पुराणवेत्ता ब्राह्मण को उद्यापन में दान की समस्त वस्तुओं से सुसम्मानित करती थी । इस प्रकार अपने सुखी जीवन को व्यतीत करती हुई वह किसी दिन आधी रात के समय अपने पति के साथ शयन किये थी कि उसी बीच भीषण सर्प के काट लेने से उसकी मृत्यु हो गयी । जिसके कारण उस बाला को अजा (वकरी) की योनि में जाना पड़ा ।४-८। अजा (वकरी) रूप में भी वह जंगलों में घूमती हुई

पूर्वाभ्यासेन तेनैव गृहीतं कृत्तिकाव्रतम् । व्यस्ता यूथपरिभ्रष्टा उपवासपरिस्थिता ॥१०
परक्षेत्रेण गच्छंती अजा सस्यावमर्दनी । कार्तिक्यां गलके बद्धा ग्राम्यकेण चिरागता ॥११
दृष्टात्रिणा महाभागा पूर्वजातिस्मरेण सा । कारणं बुध्य तां बुद्धा सहकालिंदभद्रिकाम् ॥१२
मोक्षिता बदरीबद्धा चरंती कृत्तिकाव्रतम् । गोपालबंधनात्साध्वी अनिर्वेदपरा तु सा ॥१३
संप्राप्य बदरीपत्रं पीत्वा पुष्करिणीपयः । ममेत्युक्त्वा ह्यसंभ्रांता पारयामास तद्व्रतम् ॥
तस्यै योगं ततो दत्त्वा जगामात्रिस्तपोवनम् ॥१४
सापि योगेश्वरी भूत्वा निंदित्वा जन्म चात्मनः । तत्याज योगात्स्वान्प्राणान्प्रस्थिता गौतमस्य हि ॥
ऋषेर्बभूव दुहिता ह्यहल्यागर्भसुन्दरी ॥१५
योगलक्ष्मीति नाम्ना सा कन्या गुणगणैर्युता । विद्येव दत्त्वा सा पित्रा शाण्डिल्याय महर्षये ॥
तपोधनाय दान्ताय नित्यं सहचरी बभौ ॥१६
ब्राह्मलक्ष्म्या दीप्यमाना साक्षाद्वेदस्मृतिर्यथा । सरस्वती च स्वाहा च शची चारुन्धती यथा ॥१७
गौरी राज्ञी तथा लक्ष्मीर्गायत्री चोत्तमा सती । महालक्ष्मीस्तथा राजञ्छाण्डिल्यस्य गृहे बभौ ॥१८
पितृदेवमनुष्याणां नित्यं शुश्रूषणे रता । अथ तेनात्रिणा दृष्टा पुनर्गर्भवती गृहे ॥१९
भक्त्या भिक्षां प्रयच्छंती ब्राह्मणानामनिंदिता । योगाद्विदित्वा तामूचे भगवान्पूर्ववच्छनैः ॥२०

जन्मान्तरीय कर्मों के स्मरण के कारण कृत्तिका व्रत का पालन करना आरम्भ किया । वह अपने यूथ से अलग रह कर उपवास करने लगी । दूसरों के खेतों में जाना छोड़ दिया । अनन्तर उसी कार्तिक पूर्णिमा के दिन उसे कोई ग्रामीण पुरुष यहाँ बाँध रखा किन्तु अत्रि (महर्षि) ने चिरकाल के अनन्तर उधर से लौटते समय उसे देखा । पूर्वजन्म के स्मरण होने के नाते उसने उन्हें पहचान लिया और अपने बाँधे जाने के कारण को जानने के लिऐ उन्हें संकेत भी किया । महर्षि ने भी कृत्तिका व्रत का अनुष्ठान करने वाली अजा (बकरी) को कलिंग भद्रा जान कर उसे वेर के वृक्ष से बँधे बंधन से मुक्त कराया । वह पतिव्रता उस अहीर के द्वारा बाँधे जाने पर भी अपने अल्प व्रत के नाते कुछ भी दुःख का अनुभव नहीं कर रही थी । बंधन से मुक्त होकर उसने वेर का पत्ता खाया और पुष्करिणी का जल पीया । पश्चात् 'यह मेरा ही है' ऐसा कहकर निर्भ्रान्त चित्त से उस व्रत के अनुष्ठान को पूरा किया । महर्षि अत्रि ने उसे योग का उपदेश देकर अपने तपोवन को प्रस्थान किया और उसने भी (योगाभ्यास द्वारा) योगेश्वरी होकर अपने उस जन्म की निन्दा करती हुई योग द्वारा अपने प्राण का परित्याग किया और पुनः गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या के गर्भ से परमसुन्दरी कन्या होकर उत्पन्न हुई ।९-१५। उसके पिता गौतम ने उसका योगलक्ष्मी नाम करण करके सर्वगुण सम्पन्न उस कन्या को विद्या की भाँति ही शांडिल्य महर्षि को प्रदान किया । वेद की सहचरी स्मृति की भाँति वह ब्राह्मलक्ष्मी से देदीप्यमान होकर उन तपोधनं एवं विशुद्ध शांडिल्य ऋषि की नित्यकी सहधर्मिणी होकर रहने लगी राजन्! सरस्वती, स्वाहा, शची, अरुन्धती, गौरी, (सूर्य पत्नी) राज्ञी, लक्ष्मी और परमसती गायत्री की भाँति ही वह शांडिल्य के घर की महालक्ष्मी हुई ।१६-१८। पितरों, देवों और अतिथि मनुष्यों की नित्य सेवा शुश्रूषा करती थी । तदुपरांत गर्भवती समय में महर्षि अग्नि से पुनः भेंट हो गयी, जबकि वह भक्ति पूर्वक ब्राह्मणों को भिक्षा प्रदान कर रही थी । भगवान् अग्नि ने योगद्वारा

योगलक्ष्मि महाभागे वर्तंते कति कृत्तिकाः । सापि जातिस्मरा प्राह भगवंतं महासती ॥
षड्वर्तंते महायोगिन्नेका परवशे स्थिता ॥२१
तच्छ्रुत्वास्यै भगवता सकारुण्येन चेतसा । दत्तं व्रतं तथा मन्त्रो येन स्वर्गं जगाम सा ॥२२
इह भुक्त्वा चिरं भोगान्पुत्रपौत्रश्रिया वृता । ततः सा तत्पदं प्राप्ता पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥२३

युधिष्ठिर उवाच

कीदृशं तद्व्रतं कृष्ण मन्त्रश्चापि जनार्दन । विधानं कृत्तिकानां च तं च कालं वदस्व मे ॥२४

श्रीकृष्ण उवाच

कृत्तिकासु स्वयं सोमः कृत्तिकासु बृहस्पतिः । यदा स्यात्सोमवारेण सा महाकार्तिकी स्मृता ॥२५
ईदृशी बहुभिर्वर्षैर्बहुपुण्यैश्च लभ्यते । तथा सा न वृथा नेया यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥२६
अन्यापि कार्तिकी पार्थ समुपोष्य विधानतः । तस्या विधानं राजेन्द्र शृणुष्वैकमना भव ॥२७
कार्तिके शुक्लपक्षस्य पूर्णमास्यां दिनोदये । नक्ताय नियमं कुर्याद्दन्तधावनपूर्वकम् ॥२८
उपवासस्य वा शक्त्या ततः स्नात्वा जलाशये । कुरुक्षेत्रे प्रयागे वा पुष्करे नैमिषे तथा ॥२९
शालग्रामे कुशावर्ते मूलस्थाने सकुन्तले । गोकर्णे वार्बुदे पुण्येष्वथ वाप्यमरकंटके ॥३०
पुरे वा नगरे वापि ग्रामे घोषेऽथ पत्तने । यत्र वा तत्र वा स्नायान्नरो योषिदथापि वा ॥
देवर्षिपितृपूजां च कृत्वा होमं युधिष्ठिर ॥३१

उसे पहचान कर पूर्व की भाँति पुनः उससे धीरे-धीरे पूछा—'महाभागे—योगलक्ष्मि! कितनी कृत्तिकायें हों चुकी । उस महासती ने भी पूर्व जन्म के स्मरण द्वारा कहा—भगवन्! महायोगिन्! छह है किन्तु इस समय में फिर भी एक परवश है । इसे सुनकर भगवान् अग्नि ने करुणा प्रकट करते हुए उसके व्रत को पूरा करते हुए वह मंत्र भूतल में पुत्र-पौत्र समेत चिरकाल तक अनेक भाँति के भोगों के उपभोग करने के अनन्तर उस पद पर चली गयी जहाँ से कभी जन्म होता ही नहीं ।१९-२३

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण! जनार्दन! कृत्तिकाओं का वह व्रत और उसका विधान किस प्रकार का है, मुझे बताने की कृपा कीजिये ।२४

श्रीकृष्ण बोले—कृत्तिकाओं में स्वयं सोम और बृहस्पति निवास करते हैं और सोमवार के दिन प्राप्त होने पर वह महाकार्तिक कही जाती है जो अपने वर्षों के पुण्य से प्राप्त होती है । इसलिए अपने श्रेय के इच्छुक को इसे व्यर्थ न निकल जाने देना चाहिए । पार्थ! राजेन्द्र! दूसरी कार्तिकी का भी सविधान उपवास आदि करना चाहिए । मैं उसका विधान बता रहा हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो! कार्तिक मास की (शुक्र) पूर्णिमा को दिन निकलते समय दातून से आरम्भ कर नक्त (रात्रि तक) के समस्त नियमों के पालन करने की प्रतिज्ञा करनी चाहिए । उपवास करने में असामर्थ रहने पर कुरुक्षेत्र, प्रयाग, पुष्कर, नैमिष, शालग्राम, कुशावर्त, सकुंतल मूलस्थान गोकर्ण, अर्बुद अथवा पुष्प अमरकण्टक के किसी जलाशय में या पुर, नगर, गांव अथवा घर में जहाँ कहीं स्नान करके उस स्त्री या पुरुष को देव, ऋषि एवं पितरों की

ततोऽस्तसमये प्राप्ते पात्रं गव्यस्य सर्पिषः । क्षीरस्य वा सुसंपूर्णं कृत्वा गुडफलान्वितम् ।।
षट्प्रमाणं यथा व्योम्नि कृत्तिकाशकटं न्यसेत् ।।३२
षट्कृत्तिकानां बिम्बानि स्वर्णरौप्यमयानि च । रत्नगर्भाणि कुर्याच्च स्वशक्त्या पाण्डुनन्दन ।।३३
प्रथमा स्वर्णनिष्पन्ना द्वितीया रौप्यकीकृता । तृतीया रत्नघटिता चतुर्थी नवनीतजा ।।३४
पञ्चमी कणिकान्यूना षष्ठी पिष्टमयीकृता । षट् कृत्तिकाः कृतबिंबाः कृत्वालक्तकसूत्रिका ।।३५
रत्नगर्भाः कुंकुमाक्ताः पृष्ठतः स्तबकान्विताः । सिंदूरचन्दनाभ्यक्ता जातीपुष्पैः सुपूजिताः ।।
मंत्रेणानेन राजेन्द्र द्विजाय प्रतिपादयेत् ।।३६

"ॐ सप्तर्षिदारा ह्यनलस्य वल्लभा या ब्रह्मणा रक्षितयेति युक्ताः ।
तुष्टाः कुमारस्य यथार्थमातरो ममापि सुप्रीततरा भवंतु—स्वाहा" ।।३७

एवमुच्चार्य विप्राय प्रदेयाः कृत्तिका नृप । ब्राह्मणोऽपि प्रतीच्छेत मंत्रेणानेन पांडव ।।३८
धर्मदाः कामकाः सन्तु इमा नक्षत्रमातरः । कृत्तिका दुर्गसंसारात्तारयंत्वावयोः कुलम् ।।३९
अनेन विधिना दत्त्वा दृष्ट्वा चैवांबरे स्थिताः । विसृज्य ब्राह्मणान्भक्त्या चानुव्रज्य पदानि षट् ।।
निवर्त्य च कथार्थं तु शृणुयात्फलमाप्नुयात् ।।४०
विमानेनार्कवर्णेन गत्वा नक्षत्रमंडलम् । दिव्येन वपुषा युक्तः स्रक्चंदनविभूषितः ।।४१
दिव्यनारीगणवृतः सुखं भुंक्ते ह्यनामयम् । दोधूयमानश्चमरै रत्नपङ्क्त्या विराजितः ।।४२

पूजा और हवन करनी चाहिए । युधिष्ठिर! पश्चात् सूर्यास्त के समय गौ का घृत अथवा दुग्ध गुड और फल समेत किसी पात्र में रख कर छः भागों में विभाजित करते हुए व्योम में स्थित कृत्तिकाशकट को अर्पित करे । पाण्डुनन्दन! छः कृत्तिकाओं के उन विम्बों को सुवर्ण अथवा चाँदी के रत्नगर्भित बनाये यथाशक्ति पहला विम्ब सुवर्ण का दूसरा चाँदी का तीसरा, रत्न का, चौथा नवनीत (मक्खन) का, पाँचवाँ गेहूँ के आटे (मैदा) का और छठाँ पीठी का बनाकर रत्नगर्भित उन्हें अलक्तक और कुंकुम से भूषित कर उनके पृष्ठ भाग पुष्प गुच्छों से सुशोभित करे । राजेन्द्र! सिन्दूर, चन्दन और चमेली का पुष्पों से विभूषित एवं पूजित कर किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ को समर्पित कर दे । नृप-पाण्डव! ब्राह्मण को अर्पित करते समय यह मंत्र कहना चाहिए ।२५-३६। 'कुमार के ऊपर सन्तुष्ट होने वाली वे मातायें, जो सप्तर्षियों की स्त्रियाँ एवं अग्नि की वल्लभा होकर ब्रह्म द्वारा सुरक्षित हैं, मेरे ऊपर भी उसी भाँति अत्यन्त प्रसन्न हों । इसे पूर्व में ओंकार शब्द और अन्त में स्वाहा शब्द समेत उच्चारण करते हुए सादर अर्पित करे । उसी प्रकार अतिग्राही ब्राह्मण भी उसे ग्रहण करते समय कहे कि—धर्म और कामनाओं को सफल करने वाली कृत्तिकाँए जो नक्षत्रो की जननी रूप हैं, इस दुर्गम संसार से हम दोनों के कुल का उद्धार करें । इस विधान से प्रदान करते समय आकाश में उनके दर्शन कर ब्राह्मण विसर्जित करे । उस समय (उनके सम्मानार्थ) कम से कम छः पग तक उनके पीछे चलना चाहिए । पश्चात् लौट कर कथा की यथार्थ बातें सुननें पर जो फल प्राप्त होते हैं सुनों! ३७-४०। सूर्य के समान प्रभापूर्ण विमान पर बैठ कर वह नक्षत्र मण्डल की यात्रा करना है । उस समय वह दिव्य शरीर धारण किये माला-चन्दन से भूषित एवं दिव्य नारियों से सुसेवित होते हुए उत्तम सुख का अनुभव करता है । उसके दोनों ओर चामर चलते रहते हैं, रत्नों की राशि सदैव लगी रहती है

पारिजातकमंदारपुष्पभारोपशोभितः । कृतार्थः परिपूर्णाशस्तिष्ठेदाभूतसंप्लवम् ।।४३
ताराः कृत्वा व्रतांते वा गत्वा स्वर्गं सभर्तृका । रमते निर्भया साध्वी सर्वभोगसमन्विता ।।४४
यश्चैतच्छृणुयात्पार्थ भक्तियुक्तः समाधिना । नारी वा पुरुषो वापि मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ।।४५
सौवर्णरौप्यमणिगोनवनीतसिद्धाः षट् कृत्तिकाः कणिकपिष्टमयीश्च कृत्वा।
पात्रे निधाय कुसुमाक्षतधूपदीपैः संपूज्य जन्मगहनं न विशंति मर्त्याः ।।४६
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कार्तिक्यां कृत्तिकाव्रतवर्णनं नाम त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ।१०३

अथ चतुरधिकशततमोऽध्यायः

पूर्णमनोरथव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पञ्चदश्यां शुक्लपक्षे फाल्गुनस्य नरोत्तम । पाखंडान्पतितां चैव तथैवान्त्यावसायिनः ।।१
नास्तिकान्भिन्नवृत्तांश्च पापिनो नैव चालपेत् । नारायणे गतमनाः पुरुषो हि जितेन्द्रियः ।।२
तिष्ठन्व्रजन्प्रस्खलन्वा भुञ्जानोऽपि जनार्दनम् । कीर्तयेच्च क्रियाकाले सप्तकृत्वो महीपते ।।३

इस प्रकार पारिजात एवं मंदार आदि पुष्पों के भार से सुशोभित होकर वह कृतार्थ एवं समस्त आशाओं को पूरी कर महाप्रलय तक वर्तमान रहता है। व्रत के अन्त में नक्षत्रों की प्रतिमाओं के दान करने पर सभी पति समेत स्वर्ग पहुँच कर शुभ-पतिव्रता की भाँति समस्त सुखों का उपभोग करती हैं। पार्थ! भक्ति पूर्वक एकाग्र मन से इस पापों से मुक्त हो जाती है। इस प्रकार सुवर्ण, चाँदी, मणि, तथा गाय के मक्खन गेहूँ का मैदा, अथवा पीठी से कृत्तिकाओं की प्रतिमा बनाकर पात्रों में उनके स्थापन पूर्वक पुष्प, अक्षत, धूप, और दीप द्वारा पूजन करने से मनुष्यों को जन्म ग्रहण करने के घोर दुःख का अनुभव नहीं करना पड़ता है।४१-४६।

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
कार्तिक में कृत्तिका व्रत वर्णन नामक एक सौ तीसरा अध्याय समाप्त।१०३।

अध्याय १०४

पूर्णमनोरथव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—नरोत्तम! फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा के दिन पाखण्डी, पतित, शूद्र, नास्तिक, (अपनी जाति से) अन्य वृत्ति (जीविका) अपनाने वाले एवं पापी प्राणियों से किसी प्रकार की बात-चीत न करके केवल इन्द्रिय-संयम पूर्वक नारायण में चित्त लगाकर ठहरते, चलते, गिरते-उठते, खाते-पीते, और अन्य क्रियाओं के करते समय भी भगवान् जनार्दन के नामों का संकीर्तन करना चाहिए। इस भाँति सात प्रकार से उनका कीर्तन-सेवा करते हुए लक्ष्मी समेत जनार्दन भगवान् की अर्चना करे।१-३। संध्यादि से

लक्ष्म्या समन्वितं देवमर्चयेच्च जनार्दनम् । संध्याह्युपरमे चन्द्रस्वरूपं हरिमीश्वरम् ॥
रात्रौ च लक्ष्मीं संचिन्त्य सम्यगर्घ्येण पूजयेत् ॥४
श्रीनिशाकररूपस्त्वं वासुदेव जगत्पते । मनोभिलषितं देव पूरयस्व नमोनमः ॥५
मंत्रेणानेन दत्त्वार्घं देवदेवस्य भक्तितः । नक्तं भुञ्जीत न स्वैरं तैलक्षारविवर्जितम् ॥६
तथैव चैत्रे वैशाखे ज्येष्ठे च नृपसत्तम ! अर्चयेच्च यथाप्रोक्तं मासिमासि च तद्दिने ॥७
निष्पादितं भवेदेकं पारणं पार्थ शक्तितः । द्वितीयं चापि वक्ष्यामि पारणं ते नरोत्तम ॥८
आषाढे श्रावणे मासि प्राप्ते भाद्रपदे तथा । तथैवाश्वयुजेऽभ्यर्च्य श्रीधरं प्रियया सह ॥
अर्घं चन्द्रमसे दत्त्वा भुञ्जीताथ यथाविधि ॥९
द्वितीयमेतदाख्यातं तृतीयं पारणं शृणु ! कार्तिकादिषु मासेषु तथैवाभ्यर्च्य केशवम् ॥
भूत्वा समन्वितं दद्याच्छशांकाय तथा निशि ॥१०
भुञ्जीत च यथाख्यातं तृतीयं पारणं शृणु । प्रतिपूज्य ततो दद्याद्ब्राह्मणेभ्यश्च दक्षिणाम् ॥
प्रतिमासं च वक्ष्यामि प्राशनं कायशुद्धये ॥११
चतुरः प्रथमान्मासान्पञ्चगव्यमुदाहृतम् । कुशोदकं तथैवान्यदुक्तं मासचतुष्टयम् ॥१२
सूर्यांशुतप्तं तद्वच्च जलं कायविशोधनम् । गीतवाद्यादिकं रात्रौ तथा कृष्णकथां शुभाम् ॥
कारयेच्चैव देवस्य पारणेपारगे गते ॥१३

निवृत्त होने पर चन्द्रस्वरूप एवं ईश्वर भगवान् विष्णु के ध्यान पूर्वक पूजन करना चाहिए और रात्रि में लक्ष्मी जी के ध्यान करते हुए अर्घ्य प्रदान करते समय इस मंत्र का उच्चारण करे कि—'वासुदेव। जगत्पते! आप भी निशा-पति चन्द्र की भाँति स्वरूप धारण किये हैं, अतः देव! मेरी अभिलाषा पूरी करें। मैं आप को बार-बार नमस्कार करता हूँ।' देवाधि देव भगवान् विष्णु को इस भाँति भक्ति पूर्वक अर्घ्य प्रदान करके रात्रि में तेल रहित नक्त भोजन करे किन्तु यथेच्छ नहीं। नृपसत्तम! उसी प्रकार चैत्र, वैशाख, और ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा के दिन पूर्वोक्त रीति से भगवान् की अर्चना करके तीसरे मास के अन्त में बताये गये के अनुसार पारण करे। इस प्रकार यह पहला पारण हुआ और अब दूसरा बता रहा हूँ सुनो! पार्थ, नरोत्तम! आषाढ़, सावन और भादों तथा आश्विन (कुवार) मास में प्रिया लक्ष्मी समेत भगवान् श्रीधर की अर्चना और चन्द्रमा को अर्घ्य प्रदान करके यथा विधान भोजन (पारण) करे। इस प्रकार यह दूसरा पारण बता दिया गया। अब तीसरा पारण बता रहा हूँ, सुनो! कार्तिक आदि चारों मासों में भगवान् केशव देव की अर्चना और रात्रि में शशांक (चन्द्र) देव को अर्घ्य प्रदान करके भोजन (पारण) करे। इस प्रकार तीसरे पारण की व्याख्या करके पारण करने की वस्तु बता रहा हूँ, सुनो! सर्वप्रथम भगवान् की अर्चा और ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान करने के अनन्तर मेरे बताये हुए वस्तु का शरीर शुद्ध्यर्थ पारण करे।४-११। प्रथम (फाल्गुन आदि) के चौथे मास के अन्त में पञ्चगव्य, दूसरे (कार्तिक आदि के) तीसरे पारण में सूर्य किरण से संतृप्त जल के पारण शरीर-शुध्यर्थ करना चाहिए। प्रत्येक पारण में रात्रि के समय गीत, वाद्य के उपरांत भगवान् कृष्ण की शुभ कथा सुननी चाहिए। प्रथम पारण

जनार्दनं सपत्नीकमर्चयेत्प्रथमं ततः । सश्रीकं श्रीधरं तद्वत्तृतीये भूतिकेशवौ ।।१४
प्रतिमासं तु नामानि कृष्णस्यैतानि भारत । कृतोपवासः सुस्नातः पूजयित्वा जर्नादनम् ।।
उच्चारयन्नरो याति यथालोकं यथासुखम् ।।१५
ततोविप्राय वै दद्यादुदकुम्भं सदक्षिणम् । उपानद्वस्त्रयुग्मं च च्छत्रं कनकमेव च ।।१६
यद्वै मासगतं नाम प्रीयतामिति कीर्तयेत् । केशवं मार्गशीर्षे तु पौषे नारायणं तथा ।।१७
माधवं माघमासे तु गोविन्दमपि फाल्गुने । चैत्रमासे तथा विष्णुं वैशाखे मधुसूदनम् ।।१८
ज्येष्ठे त्रिविक्रमो ज्ञेयस्त्वाषाढे च वामनः । श्रीधरः श्रावणे तद्वद्हृषीकेशेति चापरम् ।।१९
रामो भाद्रपदे मासि गीयते पुण्यकांक्षिभिः । पद्मनाभमाश्वयुजि दामोदरमतः परम् ।।२०
कार्तिके देवदेवेशं स्तुवंस्तरति दुर्गतिम् । एवं संवत्सरस्यांते प्रतिमासे क्रमोदितम् ।।
यदि दातुं न शक्नोति दद्याच्चैवैकहेलया ।।२१
विशेषश्चात्र कथितश्चन्द्रं कृत्वा हिरण्ययम् । पूजयित्वा फलैर्वस्त्रैर्ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।।२२
स्तुवन्नेवं विधानेन पारणेऽभ्यर्चयेत्प्रभुम् । तावंति जन्मान्यसुखं नाप्नोतीष्टावियोगजम् ।।२३
इहैव स्वस्थतां प्राप्य मरणे स्मरणं ततः । स्थानं तु मम संप्राप्य स्वर्गलोके महीयते ।।२४
ततो मानुष्यमासाद्य निरातंको गतज्वरः । धनधान्यवति स्फीतेजन्म साधुकुलेर्हति ।।२५

के मासों में सपत्नीक जनार्दन देव, दूसरे में श्री समेत श्रीधर और तीसरे में भूति समेत केशव की पूजा करनी चाहिए। प्रति मास में भगवान् कृष्ण के इन्हीं नामों का कीर्तन करना चाहिए। उपवास करते हुए भगवान् जनार्दन की अर्चना के अनन्तर उनके नाम का कीर्तन करने पर मनुष्य परमोत्तम लोक की प्राप्ति पूर्वक यथेच्छ सुखों का उपभोग करता है।१२-१५। (उद्यापन के समय) जलपूर्ण कलश, दक्षिणा, उपानह, चारवस्त्र, छत्र और सुवर्णका दान ब्राह्मण को सादर समर्पित कर उस समय में पूजित होने वाले भगवान् के नाम का कीर्तन करे। अगहन में केशव, पौष में नारायण, माघ में माधव, फाल्गुन में गोविन्द, चैत में विष्णु, वैशाख में मधुसूदन, ज्येष्ठ में त्रिविक्रम, आषाढ़ में वामन, सावन में श्रीधर, और हृषीकेश भादों में राम, आश्विन में पद्मनाभ और दामोदर तथा कार्तिक में देवदेवेश की स्तुति करने पर मनुष्य की दुर्गति नहीं होती है। इस प्रकार पूरे वर्ष के क्रमशः प्रति मास के नाम कीर्तन बता दिया गया। यदि उपरोक्त वस्तुओं के दान करने में असमर्थ हो तो एक ही किसी वस्तु का दान करे।१६-२१। विशेष दान भी बता रहा हूँ, सुनो! चन्द्रमा की सुवर्ण की मूर्ति बनवाकर फल-वस्त्र समेत इसी विधान द्वारा प्रत्येक पारण में उनकी पूजा करने पर वह भी अनेक जन्मों तक सुखों के उपभोग करते हुए प्रिय के वियोग दुःख का अनुभव नहीं करता है। तथा इस लोक में आजीवन स्वस्थ एवं सुखी रह कर अन्त में मेरे स्वर्ग लोक में सुसम्मानित होता है।२२-२४। पश्चात् मनुष्य की शरीर प्राप्त कर निर्भीक और चिन्ता हीन रहते हुए धन-धान्य सम्पन्न एवं पवित्र कुल में जन्म ग्रहण करता

श्रीशर्वरी मधुनि हा भगवाञ्छशांकः संकल्प्य चन्दनतिलाक्षतपुष्पमिश्रम् ।
यच्छंति येऽर्घमनया नृप पूर्णिमायां नूनं भवंति परिपूर्णमनोरथास्ते ॥२६

इति श्री भविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
पूर्णमनोरथव्रतं नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः ।१०४

अथ पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

विशोकपूर्णिमाव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अशोकपूर्णिमां चान्यां शृणुष्व गदतो मम । यामुपोष्य नराः शोकं नाप्नुवंति कदाचन ॥१
फाल्गुनामलपक्षस्य पौर्णमास्यां नरोत्तम । मृगज्जलेन नरः स्नात्वा दत्वा शिरसि वै मृदम् ॥
मृत्प्राशनं ततः कृत्वा च स्थंडिलं मृदा ॥२
पुष्पैः पत्रैस्तथाभ्यर्च्य भूधरं नाम नामतः । धरणी च तथा देवीमशोकेत्यभिकीर्तयेत् ॥३
यथा विशोकां धरणे कृतवांस्त्वां जनार्दनः । तथा मां सर्वशोकेभ्यो मोचयाशेषधारिणि ॥४
यथा समस्तभूतदामाधारस्त्वं व्यवस्थिता । तथा विशोकं कुरु मां सकलेच्छाविभूतिभिः ॥५
ध्यानमात्रे तथा विष्णोः स्वास्थ्यं जानासि मेदिनी । तथा मनः स्वस्थतां मे कुरु त्वं भूतधारिणि ॥६
एवं स्तुत्वा तथाभ्यर्च्य चन्द्रयार्घ्यं निवेद्य च । उपोषितव्यं नक्तं वा भोक्तव्यं तैलवर्जितम् ॥७

है । नृप! पूर्णिमा के दिन भी निशापति भगवान् चन्द्र देव के लिए संकल्प पूर्वक चन्दन, तिल, अक्षत और पुष्प मिश्रित अर्घ्य प्रदान करने वाले मनुष्यों के मनोरथ निश्चय सफल होते हैं ।२५-२६

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
पूर्णमनोरथ व्रत वर्णन नामक एक सौ चौथा अध्याय समाप्त ।१०४।

अध्याय १०५

विशोकपूर्णिमा व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं एक अन्य अशोक पूर्णिमा की व्याख्या तुम्हें बता रहा हूँ, जिसमें उपवास करने पर मनुष्य को कभी भी किसी प्रकार का शोक नहीं होता है सुनो! नरोत्तम! फाल्गुन मास की शुक्र पूर्णिमा के दिन मिट्टी समेत जो से स्नान, शिर में मिट्टी के लेप और मिट्टी के आशन करके पुष्प-पत्र द्वारा भूधर भगवान् और पृथिवी देवी की अर्चना करे अनन्तर धरणी के अशोक नाम का कीर्तन करके प्रार्थना करे—अखिल लोक धारण करने वाली देवि! जिस प्रकार भगवान् जनार्दन ने तुम्हें शोक रहित किया है, मुझे भी उसी भाँति समस्त शोकों से रहित करो तथा जिस प्रकार सम्पूर्ण प्राणियों आदि का आधार तुम्हें बनाया गया है उसी भाँति मुझे भी समस्त इच्छाओं की पूर्ति समेत शोक हीन करने की कृपा करें । जीवों को धारण करने वाली मेदिनी देवि! ध्यान मात्र से जिस भाँति विष्णु मेरे मन को स्वस्थ करो ।१-६। इस भाँति स्तुति पूजन और चन्द्रमा के लिए अर्घ्य प्रदान कर उपवास करते हुए रात्रि में

अनेनैव प्रकारेण चत्वारः फाल्गुनादयः । उपोष्या नृपते मासाः प्रथमं पारणं स्मृतम् ॥८
आषाढादिषु मासेषु तद्वत्स्नानं मृदम्बुना । तथैव प्राशनं पूजा तद्वदिंदोस्तथार्हणम् ॥९
चतुर्ष्वन्येषु चैवोक्तं कार्तिकादिषु पारणम् । पारणत्रितये चैव चातुर्मासिकमुच्यते ॥१०
विशेषपूजा दानं च तथा जागरणं निशि । विशेषेणैव कर्तव्यं पारणेपारणे गते ॥११
प्रथमे धरणी नाम तुभ्यं मासचतुष्टयम् । द्वितीये मेदिनी वाच्या तृतीये च वसुन्धरा ॥१२
पारणेपारणे पार्थ युग्मानेवार्च्चयेद्द्विजान् । धरणीं देव देवं च तत्तत्स्थानेन केशवम् ॥१३
वस्त्राभावे च सूत्रेण पूजयेद्धरणीं तथा । घृताभावे तथा क्षीरं शस्तं वा सलिलं हरेः ॥१४
एवं संवत्सरस्यान्ते गौः सवत्सा द्विजातये । प्रदेया धरणी देवी वस्त्रालङ्कारसंयुता ॥१५
पातालसंस्थया देव्या चीर्णमेतन्महाव्रतम् । धरण्या केशवप्रीत्यै ततः प्राप्ता समुन्नतिः ॥१६
देवेन चोक्ता धरणी वराहवपुषा पुरा । उपवासव्रतपरा समुद्धृत्य रसातलात् ॥१७
व्रतेनानेन कल्याणि त्वयाहं परितोषितः । तस्मात्प्रसादमतुलं करोमि तव सुव्रते ॥१८
यथैव कुरुषे भक्त्या पूजां मम सुशोभनाम् । तथैव तव कल्याणि प्रणतो यः करिष्यति ॥१९
व्रतमेतदुपाश्रित्य पारणं च यथाविधि । सर्वबाधाविनिर्मुक्तो जन्मजन्मांतराण्यपि ॥
विशोकः सर्वकल्याणभाजनं स्यान्न संशयः ॥२०
यथा त्वमेव वसुधे संप्राप्ता निर्वृतेः पदम् । तथा स परमेंल्लोके सुखं प्राप्स्यति मानवः ॥२१

तेल-नमक रहित नक्त भोजन करे। नृप! इसी विधान द्वारा फाल्गुन आदि चार मासों के पूजनादि सुसम्पन्न कर अन्त में पारण करे। इसी प्रकार आषाढ़ आदि के चारों मासों में मिट्टी-जल स्नान और उसके अन्त में दूसरा पारण तथा कर्तिक आदि चारों मासों में पूर्वोक्त विधान द्वारा पूजन -जागरण आदि करके तीसरा पारण करे। इन चातुर्मासिक पारणों में विशेष पूजा, दान और रात्रि में जागरण करते हुए प्रत्येक पारण में विशेष करने के लिए तत्पर रहना चाहिए। प्रथम पारण के चौमासे में धरणी, दूसरे में मेदिनी और तीसरे पारण में वसुंधरा नाम का कीर्तन-पूजन करते हुए चार-चार ब्राह्मणों की अर्चा करे।७-१३३। धरणी और देवाधिदेव केशव की पूजा करते समय वस्त्राभाव में सूत्र से ही पूजन करने तथा घृत के अभाव में क्षीर अथवा जल द्वारा भगवान् की अर्चा करे। इस प्रकार वर्ष के अन्त में सवत्सा गौ और वस्त्रालंकार भूषित धरणी देवी ब्राह्मण को अर्पित करें। पाताल में रहते समय धरणी देवी ने इस महाव्रत का अनुष्ठान किया था जिससे प्रसन्न होकर भगवान् केशव देव ने उसकी उन्नति की। भगवान् ने उस समय वाराह रूप धारण कर उपवास परायण उस धरणी देवी का रसातल से उद्धार किया। उन्होंने कहा—कल्याणि! सुव्रते! मैं तुम्हारे इस व्रतानुष्ठान से अत्यन्त प्रसन्न हूँ, अतः तुम्हें, अनुपम प्रसन्नता प्रदान करूँगा। भक्तिपूर्वक तुमने जिस प्रकार मेरी परमोत्तम पूजा की है उसी भाँति अन्य प्राणी भी नम्रता पूर्वक इस व्रत का अनुष्ठान और सविधान पारण करेंगे, तो जन्म-जन्मान्तर की समस्त बाधा से वे मुक्त रहेंगे और शोकहीन रहकर वे सदैव कल्याण पात्र हैं इसमें संदेह नहीं।१४-२०। वसुधे! जिस प्रकार तुम्हें परम पद की प्राप्ति हुई है उसी प्रकार वह मनुष्य भी उत्तम लोक की प्राप्ति कर सुखोपभोग करता है। इसी प्रकार इस विशोक नामक व्रत का जो

एवमेतन्महापुण्यं सर्वपापप्रशांतिदम् । विशोकाख्यं व्रतवरं तत्कुरुष्व महाव्रतम् ।।२२
सम्यग्विशोककरणी नृपपूर्णिमा ते ख्याता मया मनुमहेन्द्रसमानकीर्ते।
एवं करोति कुरुपुङ्गव यः प्रयत्नाच्छोको न तस्य भवतीह कुलेऽपि पुंसः ।।२३
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
विशोकपूर्णिमाव्रतं नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ।१०५

अथ षडधिकशततमोऽध्यायः

अनन्तव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

सर्वकामानवाप्नोति समाराध्य जनार्दनम् । प्रकारैर्बहुभिः कृष्ण यान्यानिच्छति चेतसा ।।१
नृणां स्त्रीणां च सर्वेषां नान्यच्छोकस्य कारणम् । अपत्यादधिकं किंचिद्विद्यते ह्यत्र जन्मनि ।।२
अपुत्रता महादुःखमतिदुःखं कुपुत्रता । सुपुत्रः सर्वसौख्यानां हेतुभूतोमतो मम ।।३
धन्यास्ते ये सुतं प्राप्ताः सर्वदुःखविवर्जितम् । शक्तं प्रशांतं बलिनं परां निर्वृतिमागतम् ।।४
स्वकर्माभिरतं नित्यं देवद्विजपरायणम् । शास्त्रज्ञं सर्वधर्मज्ञं दीनानाथानुकंपिनम् ।।५
विनिर्जितारिसर्वस्वं मनोहृदयनन्दनम् । देवानुकूलतायुक्तं युक्तं सम्यग्गुणेन च ।।६

महापुण्य रूप और समस्त पापों का विनाश करता है, अनुष्ठान अवश्य करो । मनु और महेन्द्र की भाँति कीर्ति प्राप्त करने वाले नृप! कुरुपुङ्गव! यह पूर्णिमा जिसकी व्याख्या मैंने तुम्हें भलीभाँति सुनाई है जो प्रयत्न पूर्वक इसे सुसम्पन्न करते हैं उनके कुल में किसी प्रकार का शोक नहीं होता है ।२१-२५
श्रीभविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्वाद में
विशोक पूर्णिमाव्रत वर्णन नामक एक सौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।१०५।

अध्याय १०६

अनन्तव्रतवर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण! जो जिस-जिस की कामना करता है, उसे अनेक प्रकार से भगवान् जनार्दन की आराधना द्वारा प्राप्त करता है । इस जन्म में स्त्री पुरुषों के शोक का कारण सन्तान से अधिक अन्य कोई है भी नहीं । क्योंकि अपुत्रता महादुःख और कुपुत्रता का अनुभव अति दुःख बताया गया है । मेरा विचार है कि उसी प्रकार सुपुत्र ही समस्त सौख्यों का कारण है । वे सब धन्य हैं जिन्होंने समस्त दुःख रहित, शक्त, प्रशान्त, एवं बलवान् पुत्र की प्राप्ति की है। उन्हें ही अत्यन्त शान्ति प्राप्त होती है।१-४। अपने कर्म में तत्पर, नित्य द्विज-देव की अर्चना करने वाले, शास्त्र और समस्त धर्म का मर्मज्ञ, दीन-अनाथ के ऊपर कृपा करने वाले, देव सौभाग्य युक्त, सर्व गुण सम्पन्न मित्र तथा अपने जन-परिजन द्वारा

मिश्रस्वजनसन्मानलब्धं निर्वाणमुत्तमम् । यः प्राप्नोति सुतं तस्मान्नान्यो धन्यतरो भुवि ॥७
सोऽहमेवंविधं श्रोतुं कर्मेच्छामि महामते । येनेदृग्लक्षणः पुत्रः प्राप्यते भुवि मानवैः ॥८

श्रीकृष्ण उवाच

एवमेतन्महाभाग पुत्रापुत्रसमुद्भवम् । दुःखं प्रयात्युपशमं तनयान्नेह केनचित् ॥९
अत्रापि श्रूयतां वृत्तं यत्पूर्वमभवन्मुने । उत्पत्तौ कार्तवीर्यस्य हैहयस्य महात्मनः ॥१०
कृतवीर्यो महीपालो हैहयो नाम वै पुरा । तस्य शीलधना नाम बभूव वरवर्णिनी ॥११
पत्नीसहस्रप्रवरा महिषी शीलमण्डना । सा त्वपुत्रा महाभागा मैत्रेयीं पर्यपृच्छत ॥१२
गुणवत्पुत्रलाभाय कृतासनपरिग्रहम् । तया पृष्टाथ सा सम्यङ्मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी ॥१३
कथयामास परमं नाम्नानन्तव्रतं महत् । सर्वकामफलावाप्तिकारणं पापनाशनम् ॥
तस्याः सुपुत्रलाभाय राजपुत्र्यास्तपस्विनी ॥१४

मैत्रेय्युवाच

यो यमिच्छेन्नरः कामं नारी वा वरवर्णिनी ॥१५
स तं समाराध्य विभुं समाप्नोति जनार्दनात् । मार्गशीर्षे मृगशिरो भीमो यस्मिन्दिनेऽभवत् ॥१६
तस्मिन्संप्राश्य गोमूत्रंस्नातो नियतमानसः । पुष्पैर्धूपैस्तथा गन्धैरुपवासैश्च भक्तितः ॥
वामपादमनन्तस्य पूजयेद्वरवर्णिनि ॥१७

सुसम्मानित और अत्यन्त प्रशान्त सुत की प्राप्ति करने वाले इस भूतल में अत्यन्त धन्य हैं अन्य नहीं। महामते! इस लिए मैं ऐसा ही कर्म जानना चाहता हूँ, जिसके सुसम्पन्न करने पर उपरोक्त लक्षण युक्त पुत्र की प्राप्ति इस भूतल में होती है।५-८

श्रीकृष्ण बोले—महाभाग! पुत्र और अपुत्र-जनित दुःख-सुख की बात जो कह रहे हो वह सर्वथा वैसा ही है। क्योंकि जिस प्रकार पुत्र द्वारा दुःखों के प्रशमन होते हैं वैसा अन्य किसी द्वारा नहीं । मुने! इस विषय में तुम्हें पहले का एक वृत्तान्त सुना रहा हूँ, सुनो! हैहय वंश में उत्पन्न महात्मा कृतवीर्य की उत्पत्ति का इतिहास इस प्रकार है—पहले समय में हैहय नामक कृतवीर्य राजा रहते थे जिसके शीलधना नामक परमोत्तम पत्नी थी। वह उनकी प्रधान रानी सहस्रों स्त्रियों में परमोत्तम और शील का निधान थी किन्तु पुत्र हीन होने के नाते वह महाभाग एक बार मैत्रेयी से गुणवान् पुत्र उत्पन्न होने का कारण पूँछा। रानी के पूछनेपर ब्रह्मवादिनी मैत्रेयी ने उसे भलीभाँति अनन्त व्रत का परम महत्व समझाया जो समस्त कामनाओं को सफल करने वाला एवं पाप नाशक है। इस प्रकार उस तपस्विनी ने राजपुत्री के सुपुत्र उत्पन्न होने की सभी बातें बतायी।९-१४

मैत्रेयी बोली—स्त्री अथवा पुरुष जिस वस्तु की इच्छाकरते हैं वे भगवान् जनार्दन देव की आराधनाद्वारा उस विभु से प्राप्त कर लेते हैं। उत्तमाङ्गि! मार्गशीर्ष (अगहन) मास की मृगशिरा नक्षत्र युक्त पूर्णिमा के दिन गोमूत्र के प्राशन पूर्वक स्नान करके एकाग्र चित्त से भगवान् अनन्त के बाँये चरण की अर्चना पुष्प, धूप और गन्ध आदि द्वारा सुसम्पन्न करे। उपवास रहकर भक्ति पूर्वक पूजन करते

अनंतः सर्वकामानामनंतं भगवान्फलम् । ददात्वनन्तं च पुनस्तदेवान्यत्र जन्मनि ॥१८
अनंतपुण्योपचयमनन्तं तु महाव्रतम् । यथाभिलषितावाप्तिं कुरु मे पुरुषोत्तम ॥१९
इत्युच्चार्याभिपूज्यैनं यथावद्विधिना नरः । समाहितमना भूत्वा प्राणिपातपुरस्सरम् ॥२०
विप्राय दक्षिणां दद्यादनंतः प्रीयतामिति । समुच्चार्य ततो नक्तं भुञ्जीत तैलवर्जितम् ॥२१
ततश्च पौषे पुष्यर्क्षे तथैव भगवत्कटिम् । वामामभ्यर्च्चयेद्भक्त्या गोमूत्रप्राशनं ततः ॥२२
अनंतः सर्वकामानामिति चोच्चारयेत्पुनः । भोजयेत तथा विप्रान्वाचयित्वा यथाविधि ॥२३
माघे मघासु तद्वच्च बाहुं देवस्य पूजयेत् । स्कन्धौ च मम फाल्गुन्योः फाल्गुने मासि भामिनि ॥२४
चतुर्ष्वेतेषु गोमूत्रं प्राशयेन्नृपनंदिनि । ब्राह्मणाय तथा दद्यात्तिलान्कनकमेव च ॥२५
देवस्य दक्षिणं स्कन्धं चैत्रे चित्रासु पूजयेत् । तथैव प्राशनं चात्र पञ्चगव्यमुदाहृतम् ॥
विप्रे प्रवाचके दद्याद्यवान्मासचतुष्टयम् ॥२६
वैशाखे च विशाखासु बाहुं सम्पूज्य दक्षिणम् । तथैवोक्तान्यवान्दद्यान्नक्तं कुर्याद्द्विजक्रियाम् ॥२७
ज्येष्ठासु कटिपूजां च ज्येष्ठमासि शुभव्रते । आषाढासु तथाषाढे कुर्यात्पादार्चनं शुभे ॥२८
पादद्वयं तु श्रवणे श्रावणे मासि पूजयेत् । घृतं विप्राय दातव्यं प्राशनीयं यथाविधि ॥२९
श्रावणादिषु मासेसु प्राशनं दानमेव च । एतदेवं समाख्यातं देवांस्तद्वच्च पूजयेत् ॥३०
गुह्यं प्रोष्ठपदायोगे मासि भाद्रपदेऽर्चयेत् । तद्वदाश्वयुजे पूज्यं हृदयं चाश्विनीषु च ॥३१

समय ऐसे कहता भी रहे कि—पुरुषोत्तम! भगवान् अनन्त मुझे समस्त कामनाओं का अनन्त फल प्रदान करें और अगले जन्म में भी अनन्त फल की प्राप्ति समेत अनन्त पुण्य एवं अनन्त महाव्रत का सौभाग्य प्राप्त हो। इस प्रकार मेरी सभी अभिलाषाओं को पूरी करने की कृपा करें।१५-१९। सावधान होकर अनन्त भगवान् की अर्चना के अनन्तर अनुनय-विनय समेत 'अनन्त भगवान् प्रसन्न हों' कहते हुए ब्राह्मणों के पूरक अनन्त देव हैं, ऐसा वह कर भोजन करे और यथा विधान ब्राह्मण द्वारा कथा का श्रवण भी करे। दामिनि! नृप नन्दिनि! इसी भाँति माघ मास में मघा नक्षत्र युक्त पूर्णिमा के दिन अनन्त भगवान् की बाहू और फाल्गुन मास में फाल्गुनी नक्षत्र युक्त पूर्णिमा के अवसर पर उनके कंधे की अर्चना करे तथा इन चारों मासों में गोमूत्र का ही प्राशन करता रहे। पूजनोपरांत ब्राह्मण को तिल और कनक के दान से सुसम्मानित करे। उसी प्रकार चित्रा नक्षत्र युक्त चैत्र की पूर्णिमा के दिन अनन्त देव के दाहिने कंधे की पूजा, पञ्चगव्य के प्राशन और चार मास के कथापारायण की दक्षिणा में ब्राह्मण को जवा प्रदान करे। वैशाख मास की विशाखा नक्षत्र युक्त पूर्णिमा के दिन दाहिनी बाहु के पूजनोपरांत पूर्व की भाँति जवा के दान और रात्रि में नक्त भोजन करे।२०-२७। शुभव्रते! ज्येष्ठ मास की ज्येष्ठा नक्षत्र युक्त पूर्णिमा के दिन उनके कटि की पूजा तथा आषाढ़ युक्त आषाढ़ मास की पूर्णिमा में उनके चरण की अर्चना करे। श्रवण नक्षत्र युक्त श्रावण (सावन) मास की पूर्णिमा के दिन दोनों चरण की अर्चना करके यथा विधान धृत के प्राशन और दान करे क्योंकि सावन आदि मासों में इसी का प्राशन तथा दान करना प्रमुख बताया गया है और उसी भाँति देवों की पूजा भी।२८-३०। भाद्रपद नक्षत्र युक्त भादों की पूर्णिमा के दिन उनके गुह्य स्थान और अश्विनी नक्षत्र युक्त आश्विन मास की पूर्णिमा में उनके हृदय की अर्चना, स्नान और आशन आदि सावधान होकर करे।

कुर्यात्समाहितमनाः स्नानं प्राशनमर्चनम् । अनन्तशिरसः पूजां कार्तिके कृत्तिकासु च ॥३२
यस्मिन्यस्मिन्दिने पूजा तत्र तत्र तदा दिने । नामानंतस्य जप्तव्यं क्षुतप्रस्खलितादिषु ॥३३
घृतेनानंतमुद्दिश्य पूर्वं मासचतुष्टयम् । कुर्वीत होमं चैत्रादौ शालिना कुलनंदिनी ॥३४
क्षीरेण श्रावणादौ च होमो मासचतुष्टयम् । प्रशस्तं सर्वमासेषु हविष्यान्नेन भोजनम् ॥३५
एवं द्वादशभिर्मासैः पारणात्रितयं शुभे । व्रतावसाने चानन्तं सौवर्णं कारयेच्छुभम् ॥३६
राजतं मुसलं चैव हलं पार्श्वेषु विन्यसेत् । पुष्पधूपादिनैवेद्यैः पूजा कार्या यथाविधि ॥३७
ताम्रपीठोपरि हरेर्मन्त्रैरेभिर्यथाक्रमम् । नमोऽस्त्वनंताय शिरः पादौ सर्वात्मने नमः ॥३८
शेषाय जानुयुगलं कामायेति कटिं नमः । नमोस्तु वासुदेवाय पार्श्वे संपूजयेद्धरेः ॥३९
संकर्षणायेत्युदरं भुजं सर्वासुधारिणे । कण्ठं श्रीकण्ठनाथाय मुखमिंदुमुखाय च ॥४०
हलं च मुसलं चैव स्वनाम्ना पूजयेद्बुधः । एवं सम्पूज्य गोविन्दं सितवस्त्रविभूषितम् ॥४१
छत्रोपानसुसंयुक्तं स्रग्दामालंकृतं तथा । नक्षत्रदेवताः पूज्या नक्षत्राणि च सर्वशः ॥४२
सोमो नक्षत्रराजश्च मासः संवत्सरं तथा । द्वादशात्र घटान्कुर्यात्सतोयांश्चान्नसंयुतान् ॥४३
एवं संपूज्य विधिवद्देवदेवं जनार्दनम् । ब्राह्मणं पूजयित्वा च वस्त्रैराभरणैस्तथा ॥४४
कर्णांगुलैः पवित्रैश्च शांतं दांतं जितेन्द्रियम् । पुराणज्ञं धर्मनित्यमव्यंगं सुप्रियंवदम् ॥४५

उसी भाँति कार्तिक मास की कृत्तिका नक्षत्र युक्त पूर्णिमा के दिन अनन्त भगवान् के शिर की पूजा सुसम्पन्न करे।३१-३२। जिस-जिस दिन उनकी पूजा बतायी गयी है उसमें खाते-पीते आदि सभी समय के नाम का कीर्तन करता रहे। कुलनन्दिनि! पहले (अगहन आदि) के चारों मासों में भगवान् अनन्त के उद्देश्य से घृत के हवन, चैत्रआदि के मासों में साठी चावल के हवन करे तथा सभी मासों में प्रशस्त हविष्यान्न के भोजन। शुभे! बारह मास की तीन पारणों की समाप्ति के अनन्तर (उद्यापन में) अनन्त भगवान् की सुवर्ण की प्रतिमा बनवा कर चाँदी के हल और मूसलसे उनके दोनों पार्श्व भाग सुशोभित करे। ताँबे के पीठासन पर उन्हें स्थापित कर पुष्प, धूप, नैवेद्यादि द्वारा क्रमशः उनके अंगों की पूजा निम्नलिखित मंत्रोच्चारण पूर्वक सुसम्पन्न करे। 'अनन्त को नमस्कार है' से उनके शिर, 'सर्वात्माको नमस्कार है, से चरण, 'शेष को नमस्कार है' से 'दोनों जानु (घुटने)' 'काम को नमस्कार है' से 'कटि' 'वासुदेव को नमस्कार है' से दोनों पार्श्व भाग, 'संकर्षण को नमस्कार है' से उदर, 'प्राणीमात्र को धारण करने वाले को नमस्कार है' से भुजाएँ, 'श्रीकण्ठनाथ को नमस्कार है' से कण्ठ, 'इन्द्रमुख को नमस्कार है' से मुख और हल तथा मुसल की अर्चना करने वाले नाम मंत्र द्वारा सुसम्पन्न करे।३३-४०½। इस प्रकार उन गोविन्द देव की, जो श्वेत वस्त्र से भूषित, छत्र और उपानह से युक्त एवं उत्तम पुष्प की मात्रा से अलंकृत किये गये हों, अर्चना करने के अनन्तर नक्षत्र के देवता और उन सभी नक्षत्रों की पूजा करे। पश्चात् नक्षत्र राज सोम (चन्द्र), मास तथा संवत्सर (वर्ष) की अर्चना करते समय अन्न समेत जल-पूर्ण कलश का भी पूजोपरांत दान करे। इस भाँति देवाधिदेव जनार्दन भगवान् की पूजा करके वस्त्र, आभूषण, कुण्डल, अंगूठी और पवित्री द्वारा उस पुराण-वेत्ता ब्राह्मण की पूजा करके जो शांत चित्त, इन्द्रिय-संयमी, धर्ममूर्ति, दोष-हीन मधुर भाषी हो, 'अनन्त देव प्रसन्न हों' कह कर उन्हीं को वह सब कुछ

तस्मै देयं समस्तं तदनन्तः प्रीयतामिति । अन्येषां ब्राह्मणानां च देयं शक्त्या यथेप्सितम् ।।४६
अनेन विधिना पार्थं व्रतं चैतत्समाप्यते । पारिते च समाप्नोति सर्वानेव मनोरथान् ।।४७
पुत्रार्थिभिर्वित्तकामैर्भृत्यदारानभीप्सुभिः । प्रार्थयद्भिश्च मर्त्येऽस्मिन्नारोग्यफलसम्पदः ।।४८
एतद्व्रतं महाभागे पुण्यं स्वस्त्ययनप्रदम् । अनन्तव्रतसंज्ञं वै सर्वपापप्रणाशनम् ।।४९
तत्कुरुष्वैव देवि त्वं व्रतं शीलधने परम् । वरिष्ठं सर्वलोकस्य यदि पुत्रमभीप्ससि ।।५०

श्रीकृष्ण उवाच

इति शीलधना श्रुत्वा मैत्रेयीवचनं शुभम् । चकारैतद्व्रतवरं सा विष्ण्वाहितमानसा ।।५१
पुत्रार्थिन्यास्ततस्तस्माद्व्रतेनानेन सुव्रत । विष्णुस्तुतोष तुष्टे च विष्णौ सा सुषुवे सुतम् ।।५२
तस्य वै जातमात्रस्य प्रववौ चानिलः शुभम् । नीरजस्कमभूद्व्योम मुदं प्रापाखिलं जगत् ।।५३
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात च । प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।।५४
धर्मे मनः समस्तस्य पार्थं लोकस्य चाभवत् । तस्य नाम पिता चक्रे तनयस्यार्जुनेति वै ।।५५
कृतवीर्यसुतत्वाच्च कार्तवीर्यो बभूव सः । तेनापि भगवान्विष्णुर्दत्तात्रेयस्वरूपवान् ।।
आराधितोऽतिमहता तपसा पार्थ भूभृता ।।५६
तस्य तुष्टो जगन्नाथश्चक्रवर्तित्वमुत्तमम् । ददौ शौर्यधने[1] चापि सकलान्यायुधानि च ।।
स[2] वव्रे च वधो देव मम त्वत्तो भवेदिति ।।५७

अर्पित भी कर दे । अनन्तर अन्य ब्राह्मणों को भी यथाशक्ति यथेच्छ दान से सुसम्मानित करे । पार्थ! इसी विधान द्वारा इस व्रत का अनुष्ठान सुसम्पन्न किया जाता है और इसके पूरा होने पर सम्पूर्ण मनोरथ सफल होते हैं । इस मर्त्य (मनुष्य) लोक में पुत्र, वित्त, सेवक और स्त्री आदि की कामना वश इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर आरोग्य और सम्पत्ति समेत उसकी सभी कामनाएँ सफल होती हैं । महाभागे, शीलधने! यदि तुम्हें समस्त लोगों से परमोत्तम पुत्र की अभिलाषा है तो इस व्रत का, जो पुण्यस्वरूप कल्याणकारी समस्त पापों का नाशक है, अनुष्ठान अवश्य करो ।४१-५०

श्रीकृष्ण बोले—मैत्रेयी की इन शुभ बातों को सुनकर रानी शीलधना ने भगवान्-विष्णु में अपना चित लगाकर पुत्र की कामना से इस व्रत को सुसम्पन्न किया । सुव्रत! उससे भगवान् विष्णु अत्यन्त प्रसन्न हुए, जिसके उत्पन्न होने पर कल्याणकारी वायु चलने लगा, आकाश अत्यन्त निर्मल हो गया, समस्त संसार को हर्ष हुआ, देवताओं ने दुंदुभी बजायी और पुष्प की वर्षा की, देव-गन्धर्व गान करने लगे एवं अप्सरायें नृत्य करने लगी । पार्थ! उस समय सम्पूर्ण लोकों की धर्म में अधिक प्रवृत्ति हुई । पिता ने उस का 'अर्जुन' नाम करण किया और कृतवीर्य के पुत्र होने से कार्तवीर्य भी नाम हुआ । पार्थ! उस कार्तवीर्य ने भगवान् विष्णु के दत्तात्रेय स्वरूप की महान् तप द्वारा आराधना की, जिससे अत्यन्त तुष्ट होकर भगवान् जगन्नाथ ने चक्रवर्तित्व प्रदान किया और उसके साथ-साथ शौर्य, बल एवं सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र भी । उसने कहा-देव! आप के द्वारा ही मेरा निधन होये, किन्तु जगत्पते! स्मरणमात्र से मुझे

---

१. शौर्यबले । २. स वव्रे च वरं देव मम त्राता भवेति च ।

परं तु स्मरणं ज्ञानं भीतानामार्तिनाशनम् । स्मरणादुपकारित्वं जगतोऽस्य जगत्पते ।।५८
तमाह देवदेवेशः पुण्डरीकनिभेक्षणः । सर्वमेतन्महाभाग तव भूयो भविष्यति ।।५९
यश्च प्रभाते रात्रौ च त्वां नरः कीर्तयिष्यति । नमोऽस्तुकार्तवीर्यायेत्यभिधास्यति चैव यः ।।
तिलप्रस्थप्रदानस्य नरः पुण्यमवाप्स्यति ।।६०
अनष्टद्रव्यता चैव तव नामानुकीर्तने । भविष्यति महीपालेत्युक्त्वा तं प्रययौ हरिः ।।६१
स चापि वरमासाद्य प्रसन्नाद्गरुडध्वजात् । पालयामास भूपालः सप्तद्वीपां वसुंधराम् ।।६२
तेनेष्टं विविधैर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः । जित्वारिवर्गमखिलं धर्मतः पालिताः प्रजाः ।।६३
अनंतव्रतमहात्म्यादासाद्य तनयं च तम् । पितुः पुत्रोद्भवं दुःख नासीत्स्वल्पमपि प्रभो ।।६४
एवमेतत्समाख्यातमनंताख्यं व्रतं तव । यत्कृत्वा राजपत्नी सा कार्तवीर्यमसूयत ।।६५
यश्चैतच्छृणुयाज्जन्म कार्तवीर्यस्य मानवः । स्त्री वा दुःखमपत्योत्थं सप्तजन्मसु नाश्नुते ।।६६

ऐश्वर्यमप्रतिहतं परमं विवेकं पुत्रानमित्रहृदयार्तिकरान्बहूंश्च ।
[1]कृत्वा त्वनंत इति यद्व्रतनामधेयं प्राप्नोत्यनंतविभवस्य विभोः प्रसादात् ।।६७

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवाद
अनंतव्रतवर्णनं नाम षडधिकशततमोऽध्यायः ।१०६

इस जगत् के उपकारी होने एवं उसके स्मरण, ज्ञान और दुःखीजनों के दुःख दूर करनेका ज्ञान अधिक मात्रा में बना रहे । देवाधि-देव कमलनयन ने कहा—महाभाग! वह सब कुछ तुम्हें अधिकाधिक होता रहेगा । प्रातःकाल और रात्रि में तुम्हारेनाम का कीर्तन तथा 'कार्तवीर्य को नमस्कार है' कहेगा और एक सेर तिल का दान करेगा तो उस पुरुष को पुण्य की प्राप्ति होगी, तथा महीपाल! तुम्हारे नाम के संकीर्तन करने से द्रव्यसञ्चय सदैव बना रहेगा । इतना कह कर भगवान् विष्णु अन्तर्हित हो गये और उस राजा ने भगवान् गरुड़ध्वज की प्रसन्नता से वरदान की प्राप्ति कर सातों द्वीप समेत इस पृथिवी का पालन करना आरम्भ किया । उन्होंने अनेक भाँति से इष्ट यज्ञ उत्तम दक्षिणा के प्रदान पूर्वक सुसम्पन्न किया। समस्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर धर्मतः प्रजाओं का पालन किया । प्रभो! अनन्त व्रत के महत्त्व द्वारा वैसे पुत्र की प्राप्ति कर उनके पिता को (दुर्गुण) पुत्र होने का स्वल्प भी कष्ट नहीं हुआ । इस प्रकार मैंने तुम्हें अनन्त व्रतका महत्व सुना दिया जिसके अनुष्ठान द्वारा रानी ने कार्तवीर्य नामक पुत्र उत्पन्न किया । कार्तवीर्य के जन्म की कथा को सुनने वाला पुरुष अथवा स्त्री सात जन्मों तक पुत्र-जनित दुःखों के अनुभव नहीं करती है । इस भाँति अनन्त नामक व्रत के अनुष्ठान करने पर उनके प्रसाद से अतुल ऐश्वर्य, परमज्ञान, शत्रु-विजेता अनेक पुत्र और अनन्त सम्पत्ति की प्राप्ति होती है ।५१-६७।

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
अनन्त व्रत वर्णन नामक एक सौ छठाँ अध्याय समाप्त ।१०६।

---

१. सौभाग्यमिष्टजनलाभसुखं च लोकास्ते वै समस्तसुखदाः सुलभा भवन्ति ।

अथ सप्ताधिकशततमोऽध्यायः
सांभरायणीव्रतवर्णनम्
युधिष्ठिर उवाच

अप्राप्तैर्न तथा दुःखमैश्वर्याद्यैर्नरोत्तम । यथा मनोरथैः स्वैः स्वैर्नानादुःखं भवेन्नृणाम् ॥१
यथा मनोरथैर्लब्धैर्न स्याद्दुःखभयं नृणाम् । ऐश्वर्याद्विच्युतो वापि संततेर्देवलोकतः ॥२
अभीष्टादन्यतो वापि यदाघेन विनिष्कृतिम् । प्राप्नोति पुरुषो वाथ नारी वा पुण्यसंचयात् ॥
तन्ममाचक्ष्व भगवन्येन नाप्येति विच्युतिम् ॥३

श्रीकृष्ण उवाच

सत्यमेतन्महाभाग दुःखं प्राप्नोत्यसंशयः ॥४
ऐश्वर्योदयचित्तस्य बन्धुवर्गसुखस्य च । तदेतच्छ्रूयतां पार्थ यथा नेष्टात्परिच्युतिः ॥५
स्वर्गादेर्जायते सम्यगुपवासवतां सताम् । द्वादशर्क्षाणि राजेन्द्र प्रतिमासं तु यानि वै ॥६
तन्नाम्ना चाच्युतं तेषु सम्यक्संपूजेन्नृप । पुष्पैर्धूपैस्तथांभोभिरभीष्टैरपरैरपि ॥७
आदितः कृत्तिकां कृत्वा कार्तिके नृपसत्तम । कृशरान्नं नैवेद्यं पूर्वं मास चतुष्टयम् ॥८
निवेदयेत्फाल्गुनादि संयावं च ततः परम् । आषाढादिषु देवाय पायसं विनिवेदयेत् ॥९

अध्याय १०७
सांभरायणीव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—नरोत्तम! मनुष्यों को ऐश्वर्य के न मिलने पर नाना भाँति का उतना दुःख नहीं होता है, जितना कि अपने मनोनीत ऐश्वर्य के प्राप्त होने पर। जिस प्रकार मनुष्यों को सफल मनोरथ होने पर दुःख और भय नहीं होता है, उसी प्रकार ऐश्वर्य के और संतान एवं स्वर्ग आदि अभीष्ट लोकों के लोकों के च्युत हो जाने पर अधिक दुःख होता है, जो स्त्री अथवा पुरुष के पुण्य सञ्चय रहने पर भी पाप के बदले में प्राप्त होता है। भगवान्! इसलिए मुझे वह उपाय बताने की कृपा कीजिये जिससे उपरोक्त के कभी वियोग ही न हो।१-३

श्रीकृष्ण बोले—महाभाग! यह सत्य ही है कि अभिवृद्धि ऐश्वर्य और बन्धुवर्ग के सुखी प्राणी को यह दुःख निःसंदेह प्राप्त होता है। पार्थ! इसलिए मैं वह उपाय बता रहा हूँ, जिससे उपवास पूर्वक व्रत सुसम्पन्न करने वाले सज्जनों को स्वर्ग आदि अपने अभीष्ट वस्तु का कभी वियोग ही न हो। राजेन्द्र! बारह मास में होने वाले बारहों नक्षत्रों से क्रमशः प्रतिमास में प्रतिनक्षत्र के नामोच्चारण पूर्वक भगवान् अच्युत की अर्चना पुष्प, धूप तथा (तीर्थ आदि के) अभीष्ट जल द्वारा सुसम्पन्न करे। नृप सत्तम! कार्तिक मास की कृत्तिका नक्षत्र युक्त पूर्णिमा से आरम्भ करके चार-चार मास के अन्त में निम्न लिखित वस्तुओं के पारण करे—पहले चार मास के पारण में कृशरान्न (खिचड़ी), और लड्डू, फाल्गुन आदि चार मासों के पारण संयाव (लप्सी) और आषाढ आदि चार मासों मे पारण में खीर का पारण करे।४-९।

तेनैवान्नेन राजेन्द्र ब्राह्मणान्भोजयेद्बुधः । पञ्चगव्यजलस्नानं तस्यैव प्राशनाच्छुचिः ॥१०
सम्यक्संपूज्य राजेन्द्र तमेव पुरुषोत्तमम् । प्रणम्य प्रार्थयेद्विष्णुं शुचिः स्नातो यथाविधि ॥११

नमोनमस्तेऽच्युत मे क्षयोऽस्तु पापस्य वृद्धिं समुपैतु पुण्यम् ।
ऐश्वर्यवित्तादि तथाऽक्षयं मेक्षयं च मा संततिरभ्युपैतु ॥१२
यथाच्युतस्त्वं परतः परस्मात्स ब्रह्मभूतः परतः परात्मा ।
तथाच्युतं मे कुरु वांछितं त्वं हरस्व पापं च तथाप्रमेय ॥१३

अच्युतानंत गोविन्द प्रसीद यदभीप्सितम् । तदक्षयममेयात्मन्कुरुष्व पुरुषोत्तम ॥१४
एवमेवं समभ्यर्च्य प्रार्थयित्वा तथा शिवम् । नैवेद्यं स्वयमश्नीयान्नक्तं संपूजितेच्युते ॥१५
ततः संवत्सरस्यांते [1]सुखसुप्तोत्थितेऽच्युते । घृतपूर्णं ताम्रपात्रं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥१६
शक्तितो दक्षिणां दद्यादच्युतः प्रीयतामिति । ततस्तु सप्तमे वर्षे कुर्यादुद्यापनं बुधः ॥१७
कार्या चैवाच्युतस्यार्चा शक्त्या स्वर्णमयी नृप । तदग्रे ब्राह्मणी स्थाप्या स्थविरा सांभरायणी ॥१८
महासती रौप्यमयी समानार्हा सदेवता । ततस्तौ पूजयित्वा च माल्यवस्त्रविलेपनैः ॥१९
मंत्रेणानेन राजेन्द्र प्रणिपत्य विधानतः । प्रतिवर्षं च दत्तं चेत्ताम्रं पात्रं द्विजातये ॥२०
तदेवहेलया दद्यात्सहिरण्याश्वसंयुतम् । गाश्च प्रदद्यात्संपूज्य सवत्साः कांस्यदोहनाः ॥२१
एकां वा शक्तितो दद्याद्भक्त्या तुष्यति केशवः । घटा सत्पात्रनिर्दिष्टाः सान्नाः [2]पूर्णजलोज्ज्वलाः ॥२२

राजेन्द्र! उन दिनों उन्हीं पारण के अन्नों से ब्राह्मणों को सुतृप्त करते हुए पञ्चगव्य के जल से स्नान और उसी के आशन द्वारा कायशुद्धिपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तम की सविधि अर्चना करके विष्णु देव की प्रार्थना करे—अच्युत! मेरे पापों के क्षय और पुण्य की प्राप्ति हो । उसी प्रकार मेरे ऐश्वर्य एवं धन आदि अक्षय हों और क्षय मास की वृद्धि हो । अप्रमेय! अच्युत! जिस प्रकार आप सब से परे ब्रह्म रूप परमात्मा हैं उसी प्रकार मेरे मनोरथ की उच्चकोटि की सफलता और पापों के अपहरण करें । अच्युत, अनन्त, गोविन्द, एवं पुरुषोत्तम! प्रसन्न होकर मेरे मनोरथ को अक्षय सफल करने की कृपा करें । इस भाँति भगवान् की अर्चना और शिव की प्रार्थना करके रात्रि में भगवान् अच्युत की पूजा के उपरांत नैवेद्य का नक्त भोजन करें । पश्चात् वर्ष के अन्त में भगवान् अच्युत के जागने पर घृत पूर्ण ताँबे का पात्र 'अच्युत प्रसन्न हों' कहते हुए दक्षिणा समेत ब्राह्मण को अर्पित करे । तदुपरांत सातवें वर्ष निम्न लिखित विधान द्वारा उद्यापन कर्म सप्रेम सम्पन्न करे—नृप! भगवान् अच्युक्त की यथाशक्ति सुवर्ण की प्रतिमा ब्राह्मणी की चाँदी की प्रतिमा स्थापित करे, जो महासती एवं देवता की भाँति पूजनीय है । राजेन्द्र! माला, वस्त्र और लेपन (उवटन) आदि से उन दोनों की सविधान पूजा और नमस्कार करके उसी भाँति प्रतिवर्ष ताँबे का पात्र ब्राह्मण को प्रदान करते रहे ।१०-२०। सुवर्ण समेत अश्व, और कांसे की दोहनी समेत सवत्सा गौ भी उन्हें अर्पित करे । अपनी शक्ति के अनुसार एक ही गौ के प्रदान करने पर भी भगवान् केशव प्रसन्न हो जाते हैं । अन्न समेत जलपूर्ण घट छत्र, उपानह, रुई के गद्देदार शय्या और

---

१. सुखव्युष्टोत्थिते । २. पूर्णजलान्विताः ।

छत्रोपानद्युगैः सार्धमेवं दत्त्वा विसर्जयेत् । शय्यां सतूलिकां दद्याद्गृहं चोपस्करैः सह ।।२३
श्रिया च सह विष्णुं च पूजयेद्भूषयेत्प्रभुम् । वस्त्रैराभरणैश्चैव प्रणिपत्य क्षमापयेत् ।।२४
कृतेनानेन राजेन्द्र च्युतिं नाप्नोति मानवः । संततेः स्वर्गवित्तादेरैश्वर्यस्य तथैव च ।।
यद्वाभिमतमन्यच्च ततो न च्यवते नरः ।।२५
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मासनक्षत्रपूजनैः । यजेताक्षयकामस्तु सदैव पुरुषोत्तमम् ।।२६

श्रीकृष्ण उवाच

अत्रापि श्रूयते काचित्सिद्धा स्वर्गे महाव्रता । नारी तपोधना भूत्वा प्रख्याता सांभरायणी ।।
समस्तसंदेहहरा सदास्वर्गौकसां हि सा ।।२७
कस्यचित्त्वथ कालस्य देवराजः शतक्रतुः । पूर्वेन्द्रचरितं राजन्पप्रच्छेदं बृहस्पतिम् ।।२८
पूर्वेन्द्रात्परतः पूर्वे ये बभूवुः सुरेश्वराः । तेषां चरितमिच्छामि श्रोतुमांगिरसां वर ।।२९
एवमुक्तस्तदा तेन देवेन्द्रेणामलद्युतिः । प्राह धर्मभृतां श्रेष्ठः परमर्षिर्बृहस्पतिः ।।३०
नाहं चिरंतनान्वेद्मि देवराज सुरेश्वरान् । आत्मनः समकालीनमवेहि च सुरेश्वर ।।३१
ततः पप्रच्छ देवेन्द्रः कोस्माभिर्मुनिपुंगवः । प्रष्टव्योऽत्र महाभाग कृतादिवसतिर्दिवि ।।३२
बृहस्पतिश्चिरं ध्यात्वा ततः प्राह शचीपतिम् । तपस्विनीं महाभागां पृच्छैतां सांभरायणीम् ।।३३
इत्युक्तस्तेन देवेन्द्रः कौतूहलसमन्वितः । ययौ यत्र महाभागा सम्यगास्ते तपस्विनी ।।३४
सा तौ दृष्ट्वा समायांतौ देवराजबृहस्पती । सम्यगर्घ्येण संपूज्य प्रणिपत्याह सुव्रता ।।३५

साधन सम्पन्न गृह के दान किसी संत्पात्र को समर्पित कर विसर्जन करे । राजेन्द्र! लक्ष्मी के साथ भगवान् विष्णु की अर्चा वस्त्र और आभूषण द्वारा सुसम्पन्न करके विनय-विनम्र क्षमा याचना करने पर मनुष्य को किसी का वियोग दुःख नहीं होता है । संतान, स्वर्ग, वित्त और ऐश्वर्य आदि तथा अन्य अभीष्ट वस्तु का वियोग कभी नहीं होता है अतः अत्यन्त प्रयत्न के साथ अपनी अक्षय कामना के लिए मास नक्षत्र द्वारा भगवान् पुरुषोत्तम की पूजा-प्रार्थना अवश्य करनी चाहिए ।२१-२६

श्रीकृष्ण बोले—इस विषय की एक कथा सुना रहा हूँ—स्वर्ग में सांभरायणी नामक एक प्रख्यात, सिद्धि, महाव्रत करने वाली एवं तपस्विनी थी, जो सदैव देवों के समस्त संदेह को दूर करती थी ।२७। राजन्! एक समय देवराज इन्द्र ने अपने से पूर्व के इन्द्रों का चरित बृहस्पति से पूँछा, कहा कि—अंगरिस प्रवर! मुझसे पूर्व और उनसे भी पूर्व के होने वाले इन्द्रों के चरित मुझे सुनने की इच्छा है, आप बताने की कृपा करें । देवेन्द्र के ऐसा कहने पर निर्मल प्रभा पूर्ण, धार्मिक श्रेष्ठ एवं ऋषिप्रवर बृहस्पति ने कहा—देवराज! मैं चिरन्तन के इन्द्रों के विषय में कुछ नहीं जानता और मुझे भी अपना समवयस्क ही समझो! देवलोक (स्वर्ग) में कौन ऐसा श्रेष्ठ व्यक्ति है, जिससे यहाँ की आदि वसती (निवासी) के विषय में पूँछा जा सकता है । इसे सुनकर बृहस्पति ने चिरकाल तक ध्यान किया और पश्चात् शचीपति इन्द्र से कहा—आप उस महापुण्य स्वरूपा एवं तपोमूर्ति सांभरायणी से यह विषय पूँछें । उनके ऐसा कहने पर देवराज इन्द्र ने अत्यन्त कुतूहल से उस महाभाग एवं तपस्विनी सांभरायणी के यहाँ प्रस्थान किया । उस सुव्रता ने अपने यहाँ अतिथि रूप में आये हुए इन्द्र और बृहस्पति को देख कर

नमोऽस्तु देवराजाय तथैवाङ्गिरसे नमः । यद्वा कार्यं महाभागौसकलं तदिहोच्यताम् ।।३६
यदि कर्तुंमया शक्यं तत्करिष्ये विमृश्य च ।।३७

बृहस्पतिरुवाच

आवामभ्यागतौ प्रष्टुं त्वामत्रातिविवेकिनीम् । यच्च कार्यं महाभागे पृष्टं तत्कथयस्व नः ।।३८
यदि स्मरसि कल्याणि पूर्वेन्द्रचरितानि वै । तदाख्याहि महाभागे देवेन्द्रस्य कुतूहलम् ।।३९

सांभरायण्युवाच

यो वै पूर्वं सुरेन्द्रस्य ततश्च प्रथमो हि यः । तस्मात्पूर्वतरो यस्य तस्यापि प्रथमश्च यः ।।४०
तेषां पूर्वतरा ये चे वेद्मि तानखिलानहम् । तेषां च चरितं कृत्स्नं जानाम्यंगिरसां वर ।।४१
मन्वंतराण्यनेकानि सृष्टेश्च त्रिदिवौकसाम् । सप्तर्षीन्सुबहून्वेद्मि मनूनां च सुतान्नृपान् ।।४२
एवमुक्त्वा ततस्ताभ्यां [1]सुहृष्टा सांभरायणी । यथावदाचष्ट तयोः पूर्वेन्द्रचरितं महत् ।।४३
स्वायंभुवे यस्तु मनौ मनौ स्वारोचिषे च यः । उत्तमे तामसे चैव रैवते चाक्षुषे तथा ।।४४
ये बभूवुर्हि देवेन्द्रास्तस्य तस्य तपस्विनी । तदा जगाद चरितं यथावत्सांभरायणी ।।४५
कथयामास चाश्चर्यं तच्चापि कथयामि ते । शंकुकर्णस्तदा दैत्यो बभूवात्यंतदुर्जयः ।।
स लोकपालान्समरे विजित्य सह दैवतैः ।।४६

अर्घ्यादि द्वारा उन लोगों की भलीभाँति पूजा की और पश्चात् नम्रता पूर्वक कहा—मैं देवराज इन्द्र एवं अंगिरस प्रवर बृहस्पति को नमस्कार कर रही है । महाभाग! आप लोग जिस कार्य के लिए आये हैं, कहने की कृपा करें । यदि मैं कर सकूँगी, अर्थात् मेरे वश की बात होगी, तो विचार विमर्श पूर्वक उसे पूरा करने का प्रयत्न अवश्य करूँगी ।२७-३७

बृहस्पति बोले—महाभागे! हम दोनों अतिथि विवेक-कुशलता से कुछ पूछने ही आये हैं अतः जो कुछ पूछना है कह रहा हूँ, उसे हमें बताने की कृपा करें । कल्याणि महाभागे! इन देवराज को इनसे पूर्व के इन्द्र के चरित जानने का बहुत बड़ा कुतूहल है अतः इसे बता सकें तो अवश्य कहने की कृपा करें ।३८-३९

सांभरायणी बोली—इन देवराज इन्द्र के पूर्व के इन्द्र, उनसे भी पहले वाले तथा उनके भी पहले वाले और इन सभी के पहले जो इन्द्र हों चुके हैं इन सब के चरित्र मैं भलीभाँति जानती हूँ—अंगिरसांवर! मैं अनेकों मन्वन्तरों, देवों की सृष्टि, सप्तर्षियों और मनु के समस्त पुत्रों के जन्म आदि जानती हूँ उन दोनों पुरुषों से ऐसा कहकर अत्यन्त प्रसन्नता के साथ उस सांभरायणी ने पूर्व कालीन इन्द्रों के महान् चरित्र उन दोनों से यथोचित कह सुनाया—स्वायम्भुव, स्वारोचिष्, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष् मनु के समय में क्रमशः जितने इन्द्र हो चुके थे, उस सांभरयणी ने उन सबका यथावत् चरित्र वर्णन किया । बीच में उसने जो आश्चर्य की बात कही थी, उसे भी बता रहा हूँ, सुनो! पूर्व के किसी इन्द्र के समय में एक शंकुकर्ण नामक दैत्य हुआ था जो अत्यन्त दुर्जय था । उसने रण स्थल में देवों समेत लोकपालों को

---

१. सा हृष्टा ।

इन्द्रस्यासाद्य भवनं प्रविवेश सुनिर्भयः ॥४७
तं दृष्ट्वा सहसा प्राप्तं शक्रः शय्यातलेऽलुठत् । जुगोप सहसात्मानं शंकुकर्णभयार्दितः[1] ॥४८
दानवः शक्रशयने तस्मिन्नुपविवेश ह । इन्द्राण्यपि तथा भीता गता वाचस्पतेर्गृहम् ॥४९
अथ देवाः समाजग्मुर्भयाद्द्रष्टुं सुरद्विषम् । आसीनं शक्रशयने प्रणिपातपुरस्सराः ॥५०
वासुदेवोऽपि तत्रागात्तं द्रष्टुं देवकंटकम् । दृष्ट्वा कृष्णमनुप्राप्तं दानवः प्राह हर्षितः ॥५१
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं[2] यस्य मे गरुडध्वजः । शक्रशय्यासनस्थस्य द्रष्टुमभ्येति केशवः ॥५२
ततः करे समालंब्य शयनाभ्याशमानयत् । चकार कण्ठग्रहणं बान्धवस्येव हर्षितः ॥५३
ततः कृष्णस्तु सहसा गृह्य दोर्भ्यां शनैःशनैः । पीडयामास विहसन्नदन्तं भैरवान् रवान् ॥
ममार दानवेन्द्रोऽसौ बलाद्भग्नास्थिपञ्जरः ॥५४
निर्जगाम ततः शक्रः शय्यामूलादवाक्छिराः । तुष्टाव हरिमासीनं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥५५
एतद्दृष्टं मया शक्र वसंत्या सुरसद्मनि ॥५६
ततः कुतूहलपरो देवराट् तां तपस्विनीम् । उवाच जानासि कथं त्वमेतान्सांभरायणि ॥५७

सांभरायण्युवाच

सर्व एव हि देवेन्द्राः स्वर्गस्था येऽमरेश्वराः । बभूवुरेते चरितमेतेषां वेद्मि तेन वै ॥

पराजित कर उन पर अधिकार करके पश्चात् निर्भय होकर इन्द्र के महल में प्रवेश किया ।४०-४७। उसे सहसा आया हुआ देख कर इन्द्र अपनी शय्या पर पड़ गये और उस शंकुकर्ण के भय के नाते अपने को उसके भीतर छिपा लिया । वह दानव भी इन्द्र की उस शय्या पर बैठ गया जिसके भय से इन्द्राणी उसी समय बृहस्पति के घर चलीं गयीं । तदुपरांत देवगण भी भय के मारे उस अपने शत्रु दानव को देखने के लिए जो इन्द्र की शय्या पर स्थित था, विनय-विनम्रता पूर्वक वहाँ उपस्थित हुए । देवों के कण्टक (काँटे) स्वरूप उस दैत्य को देखने के लिए भगवान् वासुदेव भी वहाँ पहुँचे । वहाँ कृष्ण को आये हुए देख कर हर्षित होकर उस दानव ने कहा—मैं धन्य हूँ और आज कृत कृत्य भी हो गयाकि इस इन्द्र की शय्या पर बैठे हुए मुझे देखने के लिए गरुड़ध्वज केशव भी आ गये । इतना कह कर उसने उनका हाथ पकड़ कर उन्हें उसी शय्या पर बैठाना चाहा । उस समय भगवान् कृष्ण ने भी बन्धु आदि से मिलने की भाँति अत्यन्त हर्षित होकर उसका गला पकड़ा और हँसते हुए अपने दोनों हाथों से धीरे-धीरे उसके गले को इतने जोर से दबाया कि उसकी हड्डियाँ टूट गयीं और वह भीषण शब्द से चिल्लाते हुए मर गया । पश्चात् उस शय्या के मूल भाग से निकल कर नीचे शिर किये इन्द्र ने वहाँ स्थित एवं शंख-चक्र धारी भगवान् कृष्ण की स्तुति की । इन्द्र! इस देव पुरी (स्वर्ग) में रहती हुई मैंने यह सब अपनी आँखों देखा है । इसे सुनकर अत्यन्त कुतूहल से देवराज इन्द्र ने उस तपस्विनी से कहा—सांभरायणी! तुम इसे कैसे जानती हो! ४८-५७

सांभरायणी बोली—इस स्वर्ग के समस्त इन्द्र और देवों के चरित यहाँ रहने के नाते मैं भलीभाँति

---

१. महानुः । २. कृतपुण्योऽहम् ।

चरितं च मया तेषां श्रुतं दृष्टं तथैव च ॥५८

इन्द्र उवाच

किं कृतं वद धर्मज्ञे त्वया येनेयमक्षया । स्वर्लोके वसतिः प्राप्ता यथा नान्येन केनचित् ॥५९
अहो सर्वव्रतानां तु ह्युपोषितमथाद्भुतम् । प्रधानतरमत्यंतं स्वर्गवासप्रदं मतम् ॥६०
एवमुक्ता ततस्तेन देवेन्द्रेण तपस्विनी । प्रत्युवाच महाभागा यथावत्सांभरायणी ॥६१
मासर्क्षे [1]ह्यच्युतो देवः प्रतिमासं सुरेश्वर । यथोक्तव्रतया सम्यक्सप्तवर्षाणि पूजितः ॥६२
तस्येयं कर्मणो व्युष्टिरच्युताराधनस्य मे । देवलोकादभिमता देवराजपदच्युतिः ॥६३
स्वर्गेन्द्रविभवैश्वर्यं संततिं याति चाच्युतिम् । नरो वाञ्छति तेनेत्थं तोषणीयस्ततः प्रभुः ॥६४
एतत्ते पूर्वदेवेन्द्रचरितं सकलं मया । स्वर्गवासाक्षयत्वं च मासर्क्षाच्युतपूजनात् ॥
यथावत्कथितं देव पृच्छतस्त्रिदशेश्वर ॥६५
धर्मार्थकाममोक्षाश्च वाञ्छिता विबुधाधिप । विष्णोराराधनादन्यत्परमं सिद्धिकारणम् ॥६६
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा देवराजबृहस्पती । तत्तथेत्यूचतुः साध्वीं चेरतुश्चापि तद्व्रतम् ॥६७
तस्मात्पार्थ प्रयत्नेन प्रतिमासं समाहितः । मासर्क्षाच्युतपूजायां भवेथास्तन्मनाः सदा ॥६८

जानती हूँ तथा मैंने देखा भी और सुना भी है ।५८

इन्द्र बोले—धर्मज्ञे! तुमने कौन उपाय किया है, जिससे तुम्हें इस स्वर्ग लोक का अक्षय निवास प्राप्त हुआ है, जिसे अन्य कोई नहीं प्राप्त कर सका । तुमने समस्त व्रतों से अत्यन्त अद्भुत एवं किसी सर्वश्रेष्ठ व्रत को उपवास पूर्वक सुसम्पन्न किया है, जो मेरे सम्मति से अत्यन्त स्वर्गवास प्रदायक है । देवराज इन्द्र के ऐसा कहने पर उस महाभागा एवं तपस्विनी सांभरायणी ने उस व्रत की यथोचित व्याख्या की । उसने कहा—सुरेश्वर! पूर्वोक्त व्रत विधान द्वारा प्रतिमास में मासनक्षत्र के नामोच्चारण पूर्वक अच्युत देव की अर्चनाकरे और इस प्रकार उसे सात वर्ष तक सुसम्पन्न करता रहे । मुझे उसी अच्युतासधन कर्म के फल स्वरूप इस अभीष्ट देवलोक (स्वर्ग) का जहाँ से देवराज का पदच्युत हो जाता हैं, अक्षय निवास और स्वर्ग तथा इन्द्र के विभव एवं अटल ऐश्वर्य की प्राप्ति हुई है । जो मनुष्य इस (फल) की अभिलाषा करते हैं, उनका भगवान् का प्रसन्न करना परम कर्तव्य है । देव, त्रिदशेश्वर! तुम्हारे पूँछने पर इस प्रकार मैंने पूर्व के देवराजों के समस्त चरित और मासनक्षत्र के नामोच्चारण पूर्वक भगवान् अच्युत देव के पूजन द्वारा अक्षय स्वर्गवास की प्राप्ति का वर्णन कर दिया, जिसमें मन वाञ्छित धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति भी निहित है तथा विष्णु की आराधना से पृथक् एक परमसिद्धि का कारण भी है । उसकी ऐसी बातें सुनकर इन्द्र तथा बृहस्पति ने उसे साध्वी के कथन का समर्थन करते हुए उस व्रत को भी सविधान सुसम्पन्न किया। पार्थ! इसलिए प्रतिमास में मासनक्षत्र द्वारा भगवान् अच्युत की अर्चना के लिए तन्मयता पूर्वक प्रयत्नशील रहना परमावश्यक है।५९-६८। इस प्रकार सांभरायणी के

---

१. अपि ।

ये तांभरायणिकथाचरितव्रतेस्मिन्वर्षाणि सप्त विधिना सुधियो नयंति ।
ते स्वर्गलोकमभिगम्य कृताधिवासाः कल्पायुतायुतशतैरपि न च्यवंते ।।६९
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
सांभरायणीव्रतवर्णनं नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ।१०७

अथाष्टाधिकशततमोऽध्यायः

नक्षत्रपुरुषव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

सुरूपता मनुष्याणां स्त्रीणां च यदुसत्तम । कर्मणा जायते केन तन्ममाख्यातुमर्हसि ।।१
सुरूपाणां सुगात्राणां सुवेषाणां तथैव च । न्यूनं तथाधिकं चापि यथा नाङ्गं प्रजायते ।।२
समस्तैः शोभनैरंगैर्नराः केचिद्यदूत्तम । काणाः कुब्जाश्च[1] जायंते त्रुटितश्रवणास्तथा ।।३
नराणां योषितां चैव समस्ताङ्गसुरूपता । कर्मणा येन भवति तत्पूर्वं कथयामल ।।४
लावण्यगतिवाक्यानि सति रूपे महामते । कुर्वंत्यभ्यधिकां शोभां समस्ताः परमागुणाः ।।५
वाक्यलावण्यसंस्कारविलासललिता गतिः । विडम्बना कुरूपाणां केवला सा हि जायते ।।६
रूपकारणभूताय कर्मणा प्रयतो भवेत् । तस्मात्तन्मे समाचक्ष्व कर्म यच्चारु रूपदम् ।।७

कथनानुसार उस व्रत को सात वर्ष तक सविधान सुसम्पन्न करने वाले विद्वद्गणों की स्वर्ग लोक में निवास प्राप्ति होने पर वहाँ से एक सौ वीस सहस्र कल्प तक च्युति न होगी ।६९।

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में श्री कृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
सांभरायणी व्रत वर्णन नामक एक सौ सातवाँ अध्याय समाप्त ।१०७।

अध्याय १०८

नक्षत्रपुरुषव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—यदुसत्तम! स्त्रियों और पुरुषों को किस कर्म द्वारा उत्तम रूप की प्राप्ति होती है, मुझे बताने की कृपा करें। यदूत्तम! सुरूप, सुन्दर शरीर और उत्तम देष की प्राप्ति होते हुए भी उसमें जिसमें हीनांग और अधिक अंग होने की संभावना न हो सके क्योंकि कुछ लोग सर्वाङ्ग सुन्दर और कुछ लोग काने, लंगड़े, और कनफटे देखे जाते हैं। अमल! महामते! पुरुषों और स्त्रियों को सर्वाङ्गसौन्दर्य की प्राप्ति जिस कर्म द्वारा होती है, कहने की कृपा करें क्योंकि रूप सौन्दर्य के रहते उसकी गति (चाल) और वाक्य के भी परम सुरम्य होने पर उस व्यक्ति की शोभा अत्यधिक बढ़ जाती है। रूप के अनुरूप मनोरम वाक्य, उत्तम विलास और ललित गति के होने पर वे सब उसके विडम्बना मात्र होते हैं। इसलिए रूप-प्राप्ति होने के कारण भूत कर्म को सुसम्पन्न करने के लिये सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए। आप मुझे भी उस रूप प्रदायक व्रत को बताने की कृपा कीजिये ।१-७

---

१. खंजाश्च ।

श्रीकृष्ण उवाच

सम्यक्पृष्टं त्वया हीदमुपवासाश्रितं नृप । कथयामि यथा प्रोक्तं वशिष्ठेन महात्मना ॥८
वशिष्ठमृषिमासीनं सप्तर्षिप्रवरं द्विजम् । पप्रच्छारुन्धती पृष्टा यदेतद्भवता वयम् ॥९
तस्यास्तु परिपृच्छन्त्या जगाद मुनिसत्तम । यत्तच्छृणुष्व कौंतेय ममेदं वदतोऽखिलम् ॥१०

वशिष्ठ उवाच

श्रूयतां हृदहं पृष्टस्त्वयैतद्वरवर्णिनि । सुरूपता नृणां येन योषितां चोपजायते ॥११
अनभ्यर्च्य तु गोविंदमनाराध्य च केशवम् । रूपादिका गुणाः केन प्राप्यंतेऽन्येन कर्मणा ॥१२
तस्मादाराधनीयोऽग्रे विष्णुरेव यशस्विनी ! पारत्र्यं प्राप्तुकामेन रूपसंपत्सुतादिकम् ॥१३
यस्तु वाञ्छति धर्मज्ञे रूपं सर्वांगसुन्दरम् । नक्षत्रपुरुषं भद्रे जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥१४
सुस्नातः प्रयताहारः संपूजयति योऽच्युतम् । भक्त्या योषिन्नरो वापि सुरूपांगः प्रजायते ॥१५
योषिता हि परं रूपमिच्छन्त्या जगतः पतिः । स एवाराधनीयोऽग्रे नक्षत्रांगो जनार्दनः ॥१६

अरुन्धत्युवाच

नक्षत्ररूपी भगवान्पूज्यते पुरुषोत्तमः । मुने येन विधानेन तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥१७

श्री कृष्ण बोले—नृप! इस उपवास प्रधान कर्म (व्रत) का विषय लाकर आप ने बहुत उत्तम प्रश्न किया है, मैं महात्मा वशिष्ठ के इस विषय के कथन को कह रहा हूँ, सुनो! कौंतेय! एक बार सप्तर्षियों में सर्वश्रेष्ठ महर्षि वशिष्ठ के सुखासीन होने पर उनकी पत्नी अरुन्धती ने उनसे इसे पूँछा था। उस समय उनके पूँछने पर मुनि प्रवर वशिष्ठ ने जो कुछ कहा था, मैं वह सम्पर्ण तुम्हें बता रहा हूँ।८-१०

वशिष्ठ बोले—उत्तमाङ्गि! पुरुषों और स्त्रियों को परमोत्तम रूप की प्राप्ति कैसे होती है, जो तुमने पूँछा है, मैं वह कर्म बता रहा हूँ। तुम्हारा प्रश्न था कि—भगवान् गोविन्द केशव की अर्चना एवं आराधना विना किये किस अन्य कर्म द्वारा रूप आदि परमोत्तम गुण की प्रप्ति होती है! मेरा उत्तर है कि किसी अन्य की आराधना द्वारा इस की प्राप्ति नहीं होती है अतः सर्व प्रथम भगवान् विष्णु की ही आराधना करनी चाहिए जिससे रूप, सम्पत्ति और पुत्रादि की प्राप्ति पूर्वक परलोक सुख की भी प्राप्ति हो सके। यशस्विनि एवं धर्मज्ञे! जो लोग सर्वाङ्गसुन्दर रूप की कामना करते हैं, उन्हें क्रोधहीन होकर संयमपूर्वक नक्षत्र पुरुष (भगवान्) की आराधना करनी चाहिए। भलीभाँति स्नान और नियत आहार करते हुए भक्तिपूर्वक (स्त्री-पुरुष) जो कोई भगवान् अच्युत की अर्चना करता है उसे सर्वाङ्गसुन्दर रूप प्राप्त होता है। परमोत्तम रूप की कामना करने वाली स्त्री को भी सर्वप्रथम नक्षत्रों के अङ्ग—भूत भगवान् जनार्दन की अर्चना करनी चाहिए।११-१६

अरुन्धती बोली—मुने! जिस विधान द्वारा नक्षत्र रूपी भगवान् पुरुषोत्तम की अर्चना की जाती है, मुझे बताने की कृपा करें।१७

वशिष्ठ उवाच

चैत्रमासात्समारभ्य विष्णोः पादाभिपूजनम् । यथा कुर्वीत रूपार्थं तन्निशामय तत्त्वतः ॥१८
नक्षत्रमेकमेकं वै स्नातः सम्यगुपोषितः । नक्षत्रपुरुषस्यांग पूजयेच्च विचक्षणः ॥१९
मूले पादौ तथा जंघे रोहिण्यामर्चयेच्छुभे । जानुनी चाश्विनीयोगे आषाढे चोरुसंज्ञिते ॥२०
फाल्गुनीद्वितये गुह्यं कृत्तिकासु तथा कटिम् । पार्श्वे भाद्रपदा गुल्फे द्वे कुक्षी रेवतीषु च ॥२१
अनुराधासूरः पृष्ठं धनिष्ठास्वभिपूजयेत् । भुजयुग्मं विशाखासु हस्ते चैव करद्वयम् ॥२२
पुनर्वसावंगुलीश्च आश्लेषासु तथा नखान् । ज्येष्ठायां पूजयेद्ग्रीवां श्रवणे श्रवणे तथा ॥२३
पुष्ये मुखं तथा स्वातौ दशनानभिपूजयेत् । आस्यं शतभिषग्योगे मघायोगे च नासिकाम् ॥२४
मृगोत्तमांगे नयने पूजयेद्भक्तितः शुभे । चित्रायोगे ललाटं च भरणीषु तथा शिरः ॥२५
संपूजनीया विद्वद्भिरार्द्रायां च शिरोरुहाः । उपोषितो नरो भद्रे स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम् ॥२६
वर्जनीयं प्रयत्नेन रूपघ्नं तद्विनिर्दिशेत् । पूजयेत्तच्च नक्षत्रं नक्षत्रस्य च दैवतम् ॥२७
सोमं नक्षत्रराजानं स्वमन्त्रैरर्चयेद्बुधः । प्रतिनक्षत्रयोगे च भोजनीया द्विजोत्तमाः ॥२८
नक्षत्रज्ञाय विप्राय दानं दद्याच्च शक्तितः । अन्तराये समुत्पन्ने सूतकाशौचकारिते ॥२९
उपोष्य वाचोपविशेन्नक्षत्रमपरं पुनः । एवं माघावसाने तु व्रतपारः समाप्यते ॥३०
समाप्ते तु व्रते दद्याच्छक्त्या सोपस्करान्वितम् । नक्षत्रपुरुषं हैमं पूजयेत्तत्र शक्तितः ॥३१
ब्राह्मणं ब्राह्मणीं चैव वस्त्रालङ्कारभूषणैः । शय्यायां तु समासन्नं गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥३२

वशिष्ठ बोले—रूप प्राप्त्यर्थ चैत मास से आरम्भ कर भगवान् विष्णु के चरण की पूजा जिस भाँति की जाती है मैं उसे सविधान बता रहा हूँ सुनो! उपवास रह कर स्नान करने के उपरांत नक्षत्र पुरुष भगवान् विष्णु के अङ्गभूत नक्षत्रों की पूजा विद्वानों को करनी चाहिए—मूल नक्षत्र में उनके चरण, रोहिणी, नक्षत्र में उनकी शुभ जंधाओं, अश्विनी में जानु (घुटने), आषाढ़नक्षत्र में उरु, फाल्गुन नक्षत्र में पार्श्व भाग, रेवती नक्षत्र में दोनों गुल्फ (पैर की एंड़ी) और दोनों कुक्षि (कोरव), अनुराधा में पृष्ठभाग, घनिष्ठा में दोनों भुजाएँ, विशाखा में दोनों हाथ और उसकी अङ्गुलियाँ, आश्लेषा में नख, ज्येष्ठ में ग्रीवा (गला), श्रवण में दोनों कान, पुष्प में मुख, स्वाती में दाँत, शतभिषा में कपोल, मघा में नासिका, मृगशिरा में नेत्र, चित्रा में ललाट, भरणी में शिर और आर्द्रा में शिरोरूह (बाल) की भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिए। भद्रे! उपवास रह कर मनुष्य को अभ्यङ्ग स्नान न करना चाहिए क्योंकि वह रूप नाशक होता है। विद्वान को चाहिए कि— नक्षत्र मंत्र द्वारा नक्षत्र के अधिदेव राजा सोम की सविधान पूजा करे और प्रत्येक नक्षत्र के अवसर पर उत्तम ब्राह्मणों को भोजन तथा यथाशक्ति नक्षत्रवेत्ता विद्वान् को दान अर्पित करे।१८-२८। बीच में सूतक अथवा अशौच रूप विघ्न आ जाने पर उपवास पूर्वक अगले नक्षत्र में पूजन करे। इस प्रकार माघ के अन्त में व्रत समाप्त हो जाता है और उसकी समाप्ति में यथाशक्ति साधन सम्पन्न नक्षत्र पुरुष की सुवर्ण प्रतिमा की अर्चना और ब्राह्मणी के वस्त्राभूषण से विभूषित करके सुसज्जित शय्या पर स्थापित करे।२९-३२। पश्चात् गन्धः

सप्तधान्यं यथालाभं गां सवत्सां पयस्विनीम् । छत्रोपानद्युगं चैव घृतपात्रं तथैव च ॥३३
मन्त्रेणानेन विप्राय सुशीलाय निवेदयेत् । यथा न विष्णुभक्तानां वृजिनं जायते क्वचित् ॥
तथा सुरूपतारोग्यसुखसंपदिहास्तु मे ॥३४
यथा न लक्ष्म्या शयनं तव शून्यं जनार्दन । शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनि जन्मनि ॥३५
एवं निवेद्य तत्सर्वं प्रणिपत्य क्षमापयेत् । शक्तिहीनस्तु गां दद्याद् घृतपात्रसमन्विताम् ॥३६
नक्षत्रपुरुषाख्योऽयं यथावत्कथितस्तव । पापापनोदं कुरुते त्वन्यक्छ्रद्धावतां सताम् ॥३७
अङ्गोपाङ्गानि चैवास्य पादादीनि यशस्विनि । सुरूपाण्यभिजायंते सदा जन्मान्तराणि वै ॥३८
गात्राणि चैव भद्राणि शरीरारोग्यमुत्तमम् । सन्ततिं मनसः प्रीतिं रूपं चातीव शोभनम् ॥३९
वाङ्माधुर्यं तथा कांतिं यच्चान्यदपि वाञ्छितम् । ददाति नक्षत्रपुमान्पूजितश्च जनार्दनः ॥४०
वशिष्ठेन यथाख्यातं सर्वं तत्ते निवेदितम् । नक्षत्रपुरुषं नाम व्रतानामुत्तमोत्तमम् ॥४१

हृद्बाहुजानुनयनोरुनितंबभागं दक्षैः प्रकल्प्य सुतनुं पुरुषोत्तमस्य ।
ये पूजयन्ति जितकोपमनोविकाराः कौन्तेय ते ननु भवन्ति सुरूपदेहाः ॥४२

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
नक्षत्रपुरुषव्रतवर्णनं नामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ।१०८

माला और लेपन आदि से उनकी पूजा करने के उपरांत सप्तधान्य सवत्सा धेनु गौ, छत्र, उपानह, तथा घृत पूर्ण पात्र किसी सुशील ब्राह्मण को मंत्र द्वारा अर्पित करे—जनार्दन! जिस प्रकार विष्णु-भक्तों को असफलता नहीं ही प्राप्त होती है उसी भाँति मुझे भी सुरूपता, आरोग्य और सुख सम्पत्ति की प्राप्ति हो। आप का शयन लक्ष्मी शून्य कभी नहीं होता है, उसी प्रकार प्रत्येक जन्म में मेरी भी शय्या अशून्य ही रहे। इस प्रकार नम्रता पूर्वक समस्त वस्तु उन्हें निवेदित कर क्षमा याचना करे। शक्तिहीन होने पर केवल घृतपात्र समेत गोदान ही करें। इस भाँति नक्षत्र-पुरुष का आख्यान जैसा सुना था तुम्हें बता दिया जो श्रद्धालु सज्जनों का सदैव पापापहरण करता रहता है। यशस्विनि! उसके चरण आदि समस्त अंङ्गोपाङ्ग प्रत्येक उत्तम आरोग्य, संतान, प्रसन्नता पूर्ण मन, परम-मनोहर रूप, मधुर वाणी, कांति और अन्य अभिलषित पदार्थ नक्षत्र पुरुष भगवान् जनार्दन प्रदान करते हैं। समस्त व्रतों से परमोत्तम इस नक्षत्र पुरुष नामक व्रत को जिस प्रकार वशिष्ठ जी ने बताया था तुम्हें सुना दिया। कौंतेय! इस प्रकार नक्षत्र देव भगवान् पुरुषोत्तम के हृदय, भुजा, जानु (घुटने), उरु, नयन, और नितम्ब आदि शरीर के समस्त अंगो की मनोहर रचना करके क्रोध एवं मनोविकार से रहित होकर पूजन करने वाले को निश्चय सौन्दर्य पूर्ण शरीर की प्राप्ति होती है।३३-४२

श्रीभविष्य महापुराण में उत्तरपर्व के श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
नक्षत्रपुरुषव्रत वर्णन नामक एक सौ आठवाँ अध्याय समाप्त।१०८।

अथ नवाधिकशततमोऽध्यायः

नक्षत्राख्यव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

उपवासेष्वशक्तस्य तदेव फलमिच्छतः । अनभ्यासेन योगाद्वा किमिष्टं व्रतमुच्यते ॥१
शिवस्योपरि यस्य स्याद्भक्तिः सूर्यस्य संभवेत् । नक्षत्राख्यं व्रतं तेन कथं कार्यं वदस्व मे ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

उपवासेष्वशक्तानां नक्तं भोजनमिष्यते । अस्मिन्व्रते तदप्यत्र श्रूयतामक्षयं महत् ॥३
शिवनक्षत्रपुरुषं शिवभक्तिप्रदायकम् । यस्मिन्नक्षत्रयोगे तु पुराणज्ञाः प्रचक्षते ॥४
फाल्गुनस्यामले पक्षे यदा हस्तः प्रजायते । तदा ग्राह्यं व्रतं चैव नक्तेन शिवपूजनम् ॥५
शिवायेति च हस्तेन पादौ पूज्यतमौ स्मृतौ । शंकराय नमो [1]गुल्फौ पूज्यौ चित्रासु पांडव ॥६
भीमायेति च स्वातीषु पूजयेत्पुरुषर्षभ । ऊरुद्वयं विशाखासु त्रिनेत्रायेति पूजयेत् ॥७
मेढ्रं चैवानुराधासु अनङ्गाङ्गहराय च । कटिं ज्येष्ठासु च तथा सुरज्येष्ठेति चार्चयेत् ॥८
दानाख्याय नमो नाभिः पूज्या मूलेन शूलिनः । पूर्वोत्तराषाढयुगे पार्श्वे वै पार्वतीपतिः ॥९

अध्याय १०९

नक्षत्रव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—उपवास रहने में असमर्थ प्राणी को, जो पूर्वोक्त फलों की कामना करता है और योगाभ्यास भी नहीं कर सकता है, और शिवभक्त तथा सूर्यभक्त को यह नक्षत्र व्रत किस भाँति करना चाहिए मुझे बताने की कृपा करें।१-२

श्रीकृष्ण बोले—इस व्रत के अनुष्ठान में उपवास करने में असमर्थ पुरुष को नक्त (रात्रि) में भोजन करना चाहिए तथा और भी अक्षय एवं महान फलदायक उपाय बता रहा हूँ, सुनो! पुराणमर्मज्ञों का कहना है कि जिस नक्षत्र में शिव नक्षत्र पुरुष की अर्चना करने से अत्यन्त दृढ़ शिव-भक्ति प्राप्त होती है, कह रहा हूँ—फालगुन मास के शुक्ल पक्ष में हस्त नक्षत्र के प्राप्त होने पर भी उसी दिन से इस व्रत का अनुष्ठान आरम्भ कर रात्रि में शिव जी की अर्चना करनी चाहिए।३-५। पाण्डव! 'शिवजी को नमस्कार है' इस वाक्य से हस्तनक्षत्र में उनके अत्यन्त पूजनीय चरण, 'शङ्कर को नमस्कार है' से चित्रा नक्षत्र में उनकी गुल्फ (एड़ी) और 'भीम को नमस्कार है' से स्वाती नक्षत्र में जानु (घुटने) की अर्चना करनी चाहिए। पुरुषर्षभ! उसी प्रकार 'त्रिनेत्र को नमस्कार है' से विशाखा नक्षत्र में दोनों उरु 'अनङ्ग (काम) के अङ्गापहारी हर को नमस्कार है' से अनुराधा नक्षत्र में लिङ्ग, 'सुरज्येष्ठ को नमस्कार है' से ज्येष्ठा नक्षत्र में कटि 'दानविख्यात को नमस्कार है' से मूल नक्षत्र में शिव जी की नाभि, 'शूली को नमस्कार है' से पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में पार्वतीपति शिव के पार्श्वभाग, 'कपाली को नमस्कार है, से श्रवण

---

१. अङ्गुल्यौ।

श्रवणेन तथा कुक्षी पूज्ये कपालिनेति च । वक्षःस्थलं धनिष्ठासु सद्योजातेति नाम च ॥१०
वामेति पूजयेत्पार्थ हृदयं शतभिषासु च । पूर्वोत्तरायुगे बाहू नमः खट्वांगधारिणे ॥११
पूज्यं रुद्राय च तथा रेवतीषु करद्वयम् । नखः पूज्योऽश्विनीयोगे नमः खण्डेन्दुधारिणे ॥१२
भरणीषु ततः पृष्ठं वृषांकाय नमोऽस्तु ते । कृत्तिवासाय च तथा कृत्तिकासु कृकाटिकाम् ॥१३
वाक्यपूज्या रोहिणीयोगे नमो वाचस्पतेति च । मृगोत्तमांगे दशनान्भैरवायेति वै नमः ॥१४
आर्द्रासु पूज्यावधरौ स्थाणवेति युधिष्ठिर । नासा पुनर्वसौ पूज्या पूषदंतविनाशिने ॥१५
पुष्ये नेत्रत्रयं पूज्यं नमस्ते सर्वदर्शिने । आश्लेषायां ललाटं च त्र्यम्बकाय नमोनमः ॥१६
मघासु च जटाजूटं पूजयेदंधकारये । पूर्वाफाल्गुनिकायुग्मे श्रवणे सोमधारिणे ॥१७
नमोऽस्तु पाशांकुशपद्मशूलकपालसर्पेन्दुधनुर्द्धराय ।
गजासुरानङ्गधुरान्धकादिविनाशमूलाय नमः शिवाय ॥१८
शिरः सम्पूजयेद्दद्यात्ततो धूपविलेपनम् । ततस्तु रात्रौ भोक्तव्यं तैलक्षारविवर्जितम् ॥१९
शालितण्डुलकप्रस्थं घृतमात्रेण संयुतम् । दद्यात्सर्वेषु नक्तेषु ब्राह्मणाय नृपोत्तम ॥२०
शक्त्यभावे न दोषः स्यादधिके चाधिकं फलम् । नक्षत्रयुगले प्राप्ते नक्तयुग्मं समाचरेत् ॥२१
सूतकाशौचदोषे तु पुनरन्यदुपोषयेत् । एवं क्रमेण संप्राप्ते पारणे पाण्डवादिके ॥२२
ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या गुडक्षीरघृतादिभिः । काञ्चनं कारयेद्देवमुमया सह शंकरम् ॥२३

नक्षत्र में दोनों कुक्षि, 'सद्योजात को नमस्कार है' से धनिष्ठा नक्षत्र में वक्षः स्थल 'वामदेव को नमस्कार है' से शतभिषा नक्षत्र में हृदय 'खड्गङ्गधारी को नमस्कार है' से पूर्वा और उत्तरा नक्षत्र में दोनों बाहू, 'रुद्र को नमस्कार है' से रेवती नक्षत्र में दोनों हाथ, 'चन्द्र खण्डधारी को नमस्कार है, से अश्विनी नक्षत्र में नख, 'वृषाङ्क को नमस्कार है, से भरणीं नक्षत्र में पीठ 'कृत्तिवास (चर्मवस्त्र) धारी को नमस्कार है, से कृत्तिका नक्षत्र में कण्ठ में रहने वाली घाटी, 'वाणीपति को नमस्कार है, से रोहिणी नक्षत्र में वाणी, 'भैरव को नमस्कार है, से मृगशिरा नक्षत्र में दाँत और 'स्थाणु को नमस्कार है, से आर्द्रा नक्षत्र में अधरोष्ठ की अर्चना करनी चाहिए । युधिष्ठिर! 'दंतविनाशक को नमस्कार है' से पुनर्वसु नक्षत्र में नासा (नाक), 'सर्वदर्शी को नमस्कार है' से पुष्य नक्षत्र में तीनों नेत्र, 'त्र्यम्बक को नमस्कार है' से आश्लेषा नक्षत्र में ललाट, 'अंधकासुर निहत्ता को नमस्कार है' से मघा नक्षत्र में जटाजूट, 'सोमधारी को नमस्कार है' से पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में दोनों कान तथा 'पाश, अंकुश, पद्म, शूल, कपाल, सूर्य, चन्द्र और धनुष को धारण करने वाले एवं गजासुर, अनङ्ग (काम), धुर, तथा अन्धक आदि राक्षसों के निहन्ता शिव को नमस्कार है, से उनके शिर की अर्चना करके धूप और लेपन उन्हें समर्पित करे पश्चात् रात्रि में तेल-नमक रहित वस्तु का भोजन करना चाहिए ।६-१९। नृपोत्तम! सभी नक्त भोजन के समय एक सेर साठी चावल घृत का दान ब्राह्मण को अर्पित करता रहे । इसमें अशक्त होने पर कोई दोष नहीं होता है और युगल नक्षत्र के एक साथ प्राप्त होने पर युगल नक्त भोजन करना चाहिए क्योंकि अधिक का अधिक ही फल प्राप्त होता है! पाण्डव! बीच में सूतक और अशौच के उपस्थित होने पर पुनः अन्य समय उपवास करते हुए सुसम्पन्न करना चाहिए । इस प्रकार क्रमशः पूजन करते हुए व्रत की सम्पत्ति के अवसर पर पार्वती समेतशिव जी की सुवर्ण प्रतिमा को सुन्दर सुसज्जित एवं गाँठी आदि रहित शय्या पर स्थापित पर पूजनोपरांत

शय्यां सुलक्षणां कृत्वा विरुद्धग्रंथिवर्जिताम् । सोपधानकविश्रामां स्वस्तिरावरणां शुभाम् ।।२४
भाजनोपानहच्छत्रचामरासनदर्पणैः । भूषणैरपि संयुक्तां फलवस्त्रानुलेपनैः ।।२५
तस्यां निधाय तं देवमलंकृत्य गुणान्वितम् । कपिलां वस्त्रसंवीतां शुचिशीलां पयस्विनीम् ।।२६
सुवर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां सवत्सां कांस्यदोहनाम् । दद्यान्मंत्रेण पूर्वाह्ले न कालमभिलङ्घयेत् ।।२७
यथा न देवशयनं तव पर्वतजातया । शून्यं वृत्त्याथ संतत्या तथा मे सन्तु सिद्धयः ।।२८
यथा देव न श्रेयोऽर्थस्त्वदन्यो विद्यते क्वचित् । तथा मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात् ।।२९
ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य विसर्जयेत् । शय्यागवादितत्सर्वं [1]द्विजस्य भवनं नयेत् ।।३०

नैतद्विशीलाय न दांभिकाय कुतर्कदुष्टाय विनिंदकाय ।
प्रकाशनीयं व्रतमिन्दुमौलेर्यश्चापि लोभोपहतांतरात्मा ।।३१
भक्ताय दांताय गुणान्विताय प्रदेयमेतच्छिवभक्तियुक्तैः ।
इदं महापातककृन्नराणामप्यक्षयं वेदविदो वदंति ।।३२
या वाथ नारी कुरुतेऽतिभक्त्या भर्तारमाश्रित्य शुभं गुरुं वा ।
न बंधुपुत्रैर्नधनैर्वियोगमाप्नोति दुःखं न सुहृत्समुत्थम् ।।३३
इदं वशिष्ठेन पुराऽर्जुनेन कृतं कुबेरेण पुरन्दरेण ।
यत्कीर्तनादप्यखिलान्यघानि विघ्नं समायांति न संशयोऽत्र ।।३४

भोजनादि पात्र उपानह, छाता, चामर, आसन, दर्पण, भूषण, फल, वस्त्र और लेपनादि युक्त, तथा सुवर्ण द्वारा सींग और चाँदी से खुर भूषित हो, और काँसे की दोहनी समेत अपराह्न काल में अर्पित कर क्षमा प्रार्थना करे—देव! जिस प्रकार आप शयन पार्वती वृत्ति एवं संतान से कभी शून्य नहीं होते हैं उसी प्रकार मुझे भी सभी सिद्धियाँ हों ।२०-२८। देव! जिस प्रकार आप से पृथक् कहीं भी कल्याण सम्भव नहीं होता है उसी प्रकार आप इस दुःख सागर रूप संसार से मेरा उद्धार करने की कृपा करें। इस प्रकार क्षमा याचना करने के उपरांत प्रदक्षिणा करके, अनुनय-विनय समेत प्रणाम करते हुए विसर्जन करे और शय्या आदि ब्राह्मण के घर पहुँचा दे। दुःशील, दम्भी, कुर्तक की दुष्टता करने वाले निन्दक और अत्यन्त लोभी को चन्द्रमौलि (शिव) का यह व्रत कभी न बताना चाहिए। भक्त, पवित्र, एवं गुणवान् पुरुष को ही शिवभक्तों द्वारा यह व्रत दिया जाना चाहिए। वैदिक विद्वानों का कहना है कि यह व्रत महापातकी पुरुषों के लिए भी अक्षय फल प्रदान करता है। जो स्त्री अपने पति, अथवा गुरु आदि के आश्रित रह कर इस शुभ व्रत को सुसम्पन्न करती है उसे बन्धुवर्ग, पुत्र एवं धनादि के वियोग दुःख अथवा मित्र की ओर से किसी दुःख का अनुभव नहीं करना पड़ता है। इस व्रत को सर्व पथम वशिष्ठ, अर्जुन, कुबेर और इन्द्र से सुसम्पन्न किया था, जिसके कीर्तन द्वारा भी समस्त पापों के विनाश पूर्वक विघ्नों के शमन होते हैं इसमें संशय नहीं ।२९-३४। जो पुरुष इस शिवपुरुष नामक व्रत को इस भाँति सुसम्पन्न अथवा

---

१. ब्राह्मणस्य गृहम् ।

इति पठति शृणोति वा य इत्थं शिवपुरुषं पुरुहूतवल्लभः स्यात् ।
अपि नरकगतान्पितॄनशेषाञ्छिवभवनं नयतीह यः करोति ॥३५

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
शिवनक्षत्रपुरुषव्रतवर्णनं नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः ।१०९।

अथ दशाधिकशततमोऽध्यायः

सम्पूर्णव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

यदि कर्तुं न शक्नोति व्रतं नक्षत्रपौरुषम् । गृहीतं रभसा कृष्ण ह्यन्यद्वा व्रतमुत्तमम् ॥१
संपूर्णं जायते येन यदचीर्णं पुरा स्थितम् । कुरु प्रसादं गुह्यार्थमेतन्मे वक्तुमर्हसि ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

साधुसाधु महाबाहो कुरुराज युधिष्ठिर । रहस्यानां रहस्यं ते कथयामि व्रतोत्तमम् ॥३
सम्पूर्णं नाम तच्चापि व्रतं सम्यक्फलप्रदम् । यच्चीर्णं नरनारीभिर्भवेत्सम्पूर्णकारकम् ॥४
अवश्यं तच्च [1]कर्तव्यमक्षीणफलकांक्षिभिः । किञ्चिद्भग्नं प्रमादेन यद्व्रतं व्रतिनां स्थितम् ॥
तत्संपूर्णं भवेत्सर्वं व्रतेनानेन पाण्डव ॥५

पारायण या श्रवण करता है वह इन्द्रप्रिय होकर नरक में पड़े हुए अपने अशेष पितरों को शिवलोक पहुँचता है ।३५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
शिवनक्षत्र पुरुष व्रत वर्णन नामक एक सौ नवाँ अध्याय समाप्त ।१०९।

अध्याय ११०

सम्पूर्ण व्रतों का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण! यदि इस नक्षत्रपुरुष नाम व्रत को सुसम्पन्न करने में अशक्त होने अथवा शीघ्रतया किसी अन्य उत्तम व्रत को अपनाने पर सम्पूर्ण सिद्धि कैसे प्राप्त हो सकती है, मुझे यह गुह्य बात बताने की कृपा करें ।१-२

श्रीकृष्ण बोले—साधु-साधु! महाबाहो एवं कुरुराज युधिष्ठिर! मैं तुम्हें एक परमोत्तम व्रत बता रहा हूँ, जो अत्यन्त गुप्त है । उस व्रत का लाभ सम्पूर्ण है। जो समस्त फलों को प्रदान करता है और जिस सम्पूर्ण कारी व्रत को नर नारियों ने सुसम्पन्न किया है । उसे अक्षय फल चाहने वालों को अवश्य सुसम्पन्न करना चाहिए । पाण्डव! प्रमाद-वश व्रती पुरुषों का व्रत जो किसी प्रकार से कुछ खण्डित हो जाता है, इस व्रतानुष्ठान द्वारा उस सम्पूर्ण व्रत की सिद्धि हो जाती है । पार्थिव! (वृत्तारम्भ में) अनेक प्रकार के

---

१. सम्पूर्णफलकाङ्क्षिभिः ।

उपद्रवैर्बहुविधैर्मदान्मोहाच्च पार्थिव । यद्भग्नं किञ्चिदेव स्याद्व्रतं विघ्नविनायकैः ॥
तत्सम्पूर्णं भवेत्पार्थ सत्यंसत्यं न संशयः ॥६
काञ्चनं रौप्यकं रूपं शिल्पिना तद्घटापयेत् । भग्नव्रते तु यो देवस्तत्स्वरूपं सुनिर्मितम् ॥७
रूपं स्त्रीपुंसयोर्वापि प्रारब्धं यद्व्रते किल । नवनिष्पादितं किञ्चिद्दैवात्सर्वं तथोत्थितम् ॥८
द्विभुजं पङ्कजारूढं सौम्यप्रहसिताननम् । निष्पादितं शिल्पभावात्तस्मिन्नेव दिनेदिने ॥९
तन्मासे च पुनः प्राप्ते ब्राह्मणो विधिना गृहे । स्नापयेत्पयसा दध्ना घृतक्षीररसांबुभिः ॥१०
गन्धचन्दनपुष्पैश्च [1]चर्चयेत्कुंकुमादिना । तोयपूर्णस्य कुम्भस्य पृथिव्यां विन्यस्य चंदनैः ॥११
धूपदीपाक्षतैर्वस्त्रै रत्नैरप्युपहारकैः । अर्घ्यं दद्याच्च तन्नाम्ना मन्त्रेणानेन पाण्डव ॥१२
उपगतस्य दीनस्य प्रायश्चित्तकृताञ्जलेः । शरणं च प्रपन्नस्य कुरुष्वाद्य दयां प्रभो ॥१३
परत्र भयभीतस्य भग्नखण्डव्रतस्य च । कुरु प्रसादं सम्पूर्णं व्रतं सम्पूर्णमस्तु मे ॥१४
तपश्छिद्रं व्रतच्छिद्रं यच्छिद्रं भग्नके व्रते । तव प्रसादाद्देवेश सर्वमच्छिद्रमस्तु नः स्वाहा ॥१५
(अमुकदेवाय नमः)
पूर्वतो दक्षिणतः पश्चिमत उत्तरतः । विदिक्षु चोपर्य्यधस्ताद्दिक्पालेभ्यो नमोनमः ॥१६
इदमर्घ्यमिदं पाद्यं नैवेद्यं ते नमोनमः । एवं प्रोच्य ततः पादौः जानुनी कटिशीर्षके ॥१७
[2]वक्षःकुक्षिदृष्टिपृष्ठबाह्वंसांकशिरोरुहान् । पूजयेत्तस्य देवस्य ततः पश्चात्क्षमापयेत् ॥१८

उपद्रव, मद, तथा मोह आदि विघ्नविनाशक द्वारा व्रत के कुछ भाग खण्डित होने पर सम्पूर्ण व्रत द्वारा सत्य एवं (ध्रुव) सत्य सुसम्पन्न हो जाता है इसमें संदेह नहीं। पार्थ! व्रतारम्भ के समय खण्डित व्रत के प्रधान देवी सुवर्ण अथवा चाँदी की प्रतिमा शिल्पी द्वारा निर्माण करे, चाहे वह स्त्री अथवा पुरुष किसी की हो। दैव संयोग से उस मूर्त्ति रचना में कुछ नवीन भले आजाये, किन्तु रहे वह यथा कथित ही। दो भुजाओं, कमल पर सुशोभित, सौम्य (दर्शन) एवं प्रसन्न मुख का निर्माण उन्हीं दिनों में शिल्पी भावना (सौन्दर्यपूर्ण ढंग) से करना चाहिए। पुनः उस मास के प्राप्त होने पर ब्राह्मण को अपने घर में दूध, दही, घी, क्षीर, एवं जल का सविधि स्नान गंध, चन्दन, पुष्प और कुंकुम आदि से उन देवों की अर्चना करनी चाहिए। पाण्डव! जलपूर्ण कलश को पृथिवी में स्थापित कर चन्दन, धूप, दीप, अक्षत, वस्त्र रत्न एवं अन्य उपहार द्वारा उन्हें नाम मंत्र के उच्चारण पूर्वक उस कलश पर अर्घ्य प्रदान करे और पश्चात् इस भाँति क्षमा याचना करे—प्रभो! आप के निकट आये हुए मुझ दीन के ऊपर, जो प्रायश्चित्तार्थ हाथ जोड़े आप की शरण में प्राप्त है, दया करें। व्रत के खण्डित होने के नाते परलोक प्राप्ति के लिए भयभीत होने वाले मुझपर कृपा करते हुए आप इस सम्पूर्ण व्रत द्वारा मेरे खण्डित व्रत को सुसम्पूर्ण करें। देवेश! तप, व्रत, अथवा जिस किसी द्वारा खण्डित इस व्रत का समस्त अंग सुसम्पूर्ण हो। अमुक देव को नमस्कार है।३-१६। पूरब, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर की दिशाओं और विदिशाओं तथा ऊपर-नीचे के दिक्पालों को नमस्कार है। यह अर्घ्य, पाद्य एवं नैवेद्य आप के लिए अर्पित है और मैं आप को बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ। इस प्रकार क्षमा प्रार्थना करने के अनन्तर उनके चरण, जानु (घुटने), कटि, शिर, वक्ष, कुक्षि (कोख), नेत्र, पीठ, बाहू, कन्धे और केशों की अर्चना करके उनकी क्षमा प्रार्थना करे—सुरोत्तम! नाथ!

---

१. कुसुमादिना। २ चक्षुःकुक्षी।

पूजितस्त्वं यथाशक्त्या नमस्तेऽस्तु सुरोत्तम । ऐहिकामुष्मिकीं नाथ कार्यसिद्धिं दिशस्व मे ॥१९
एवं क्षमापयित्वा तु देवरूपं विधानतः । ततो द्विजस्य कौन्तेय विधिज्ञस्योपपादयेत् ॥२०
स्थित्वा पूर्वमुखो विप्रो गृह्णीयाद्दर्भपाणिना । विप्रस्य हस्ते यच्छेच्च दाता वै चोत्तरामुखः ॥
मन्त्रेणानेन कौन्तेय सोपवासः प्रयत्नतः ॥२१
इदं व्रतं मया खण्डं कृतमासीत्पुरा द्विज । भगवंस्त्वत्प्रसादेन संपूर्णं तदिहास्तु मे ॥२२
ब्राह्मणोऽपि प्रतिच्छेत्तु मन्त्रेणानेन तद्व्रतम् । वाक्सम्पूर्णं मनःपूर्णं पूर्णं कायव्रतेन ते ॥
सम्पूर्णस्य प्रसादेन भव पूर्णमनोरथः ॥२३
ब्राह्मणा यत्प्रभाषन्ते ह्यनुमोदन्ति देवताः । सर्वदेवमया विप्रा नैतद्वचनमन्यथा ॥२४
जलधिः क्षारतां नीतः पावकः सर्वभक्षताम् । सहस्रनेत्रः शक्रोऽपि कृतो विप्रैर्महात्मभिः ॥२५
ब्राह्मणानां तु वचनाद्ब्रह्महत्या प्रणश्यति । अश्वमेधफलं साग्रं प्राप्येत नात्र संशयः ॥२६
व्यासवाल्मीकिवचनाद्ब्राह्मणवचनाच्च गर्गगौतमपराशरधौम्याङ्गिरसवशिष्ठनारदादि-
मुनिवचनात्संपूर्णं भवतु ते व्रतम् ॥२७
एवंविधविधानेन गृहीत्वा ब्राह्मणो व्रजेत् । तद्दानं [1]प्रेषयेत्स ब्राह्मणस्य गृहे स्वयम् ॥
ततः पञ्च महायज्ञान्निर्वपेद्भोजनादि च ॥२८
एवं यः कुरुते भक्त्या व्रतमेतत्सकृत्तथा । तस्य संपूर्णतां याति तद्व्रतं यत्पुरा स्थितम् ॥२९

मैंने यथाशक्ति आप की अर्चना की है, अतः लोक-परलोक सम्बन्धी सभी कार्य सिद्धि मुझे प्रदान करें मैं आप को नमस्कार कर रहा हूँ ।१७-१९। कौंतेय! इस प्रकार देव का सविधान क्षमा प्रार्थना करने के अनन्तर वह सब कुछ किसी विद्वान् ब्राह्मण को अर्पित करे । उस समय उस प्रतिगृहीता ब्राह्मण को हाथ में कुश लिए पूर्वाभिमुख और दाता को उत्तराभिमुख रहना चाहिए । उपवास पूर्वक प्रदान करते समय इस भाँति की प्रार्थना करनी चाहिए कि—द्विज! भगवान्! इस व्रत का अनुष्ठान पहले मैंने आरम्भ किया किन्तु सुसम्पन्न होकर खण्डित ही रह गया है अतः मेरी प्रार्थना है—इस व्रत द्वारा उस खण्डित व्रत को सुसम्पूर्ण करने की कृपा करें । ग्रहण करते समय ब्राह्मण को भी इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए—'तुम्हारे इस शारीरिक व्रत द्वारा वाणी और मन की पूर्ति समेत इस सम्पूर्ण नामक व्रतानुष्ठान द्वारा आप का मनोरथ पूरा हो । ब्राह्मणों के भाषणों का देवतागण इसलिए सदैव अनुमोदन करते हैं कि ब्राह्मणों के वचन कभी अन्यथा नहीं होते । महात्मा ब्राह्मणों ने ही समुद्र और सहस्र नेत्र वाले को इन्द्र पद पर प्रतिष्ठित किया है । ब्राह्मणों के वचनों द्वारा ब्रह्म हत्या दोष विनष्ट होता है एवं पूरे अश्वमेध मे फल की प्राप्ति होती है इसमें सन्देह नहीं । व्यास, ब्राह्मण, वाल्मीकि, गौतम, पराशर, धौम्य, अंगिरस, वशिष्ठ नारद आदि मुनियों के वचन से तुम्हारा व्रत पूर्ण हो । इस विधान से ब्राह्मण उसे स्वीकार कर अपने घर को प्रस्थान करे और (यजमान) स्वयं उस दान की सभी वस्तुओं को ब्राह्मण के घर भिजवा दे ।२०-२८। पंच महायज्ञ और भोजन आदि कार्य सुसम्पन्न करे । इस प्रकार भक्ति पूर्वक जो एक बार भी इस व्रत को सुसम्पन्न करता है, व्रत देव के प्रसन्न होने पर उसका पहले का

---

१. प्रापयेत् ।

खण्डं सम्पूर्णतां याति प्रसन्ने व्रतदैवते । सम्पूर्णं च ततः कृत्वा सम्पूर्णाङ्गो भवेद्व्रती ॥३०
भोगी भव्यो लसत्कीर्तिः स्वसम्पूर्णमनोरथः । स्थित्वा वर्षशतं मर्त्ये ततः स्वर्गेऽमरो भवेत् ॥३१
यथेष्टचेष्टाचारी च ब्रह्मविष्ण्विन्द्रपूजितः । स्वर्गलोके चिरं स्थित्वा पुनर्मोक्षमवाप्नुयात् ॥३२
प्रायश्चित्तमिदं प्रोक्तं पुरा गर्गेण मे प्रभो । गोकुले गोकुलाकीर्णे मया बाल्येऽप्युपोषितम् ॥३३
एवं त्वमपि कौंतेय चर सम्पूर्णकं व्रतम् ॥३४

भग्नानि यानि मदमोहवशाद्गृहीत्वा जन्मान्तरेष्वपि नरेण समत्सरेण।
सम्पूर्णपूजनपरस्य पुरो भवन्ति सर्वव्रतानि परिपूर्णफलप्रदानि ॥३५

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
सम्पूर्णव्रतवर्णनं नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ।११०

अथैकादशाधिकशततमोऽध्यायः

कामदानवेश्याव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

वर्णाश्रमाणां प्रभवः पुराणेषु मया श्रुतः । पण्यस्त्रीणां समाचारं श्रोतुमिच्छामि तत्वतः ॥१
का ह्यासां देवता कृष्ण किं व्रतं किमुपोषितम् । केन धर्मेण चैवेताःस्वर्गमाप्स्यंत्यनुत्तमम् ॥२

खण्डित व्रत सुसम्पूर्ण हो जाता है । इस सम्पूर्ण व्रत को सुसम्पन्न करने पर व्रत करने वाले का समस्त अंग पूरा हो जाता है और वह भव्य भोगी, ख्याति प्राप्त कीर्तिमान तथा पूर्ण मनोरथ होता है इस मर्त्य लोक में सौ वर्ष तक सुखोपभोग करने के उपरान्त स्वर्ग लोक में अमर पद प्राप्त कर ब्रह्म, विष्णु एवं इन्द्र द्वारा सुसम्मानित होकर यथेच्छ विचरण करता है । इस भाँति स्वर्ग लोक में चिर स्थायी रहकर पुनः मोक्ष की प्राप्ति करता है । प्रभो! इस प्रायश्चित्त को सर्वप्रथम गर्ग ने मुझे बताया और वहाँ गोकुल में गोकुल निवासियों के बीच रहते हुए मैंने अपने बाल्यकाल में इसे सुसम्पन्न भी किया था । कौंतेय! इसलिए तुम भी इस सम्पूर्ण व्रत को अवश्य सुसम्पन्न करो । जन्मान्तर में भी मत्सरता पूर्व मनुष्यों के व्रतानुष्ठान, जो सम्पूर्ण नामक व्रत-पूजन द्वारा सुसम्पूर्ण होतें हैं और उसके प्रभाव से सभी व्रत परिपूर्ण फल प्रदान करते हैं ।२९-३५।

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
सम्पूर्ण व्रत वर्णन नामक एक सौ दशवाँ अध्याय समाप्त ।११०।

अध्याय १११

कामदानवेश्याव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण! वर्णाश्रम की उत्पत्ति तो मैंने पुराणों में सुन लिया । अब वेश्याओं का आचरण धर्म सविधान जानना चाहता हूँ । उनके दैवत कौन हैं, व्रत क्या है और उपवास किस भाँति करना चाहिए तथा किस धर्म द्वारा उन्हें परमोत्तम स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।१-२

श्रीकृष्ण उवाच

मम पत्नीसहस्राणि सन्ति पाण्डव षोडश । रूपौदार्यगुणोपेता मन्मथायतनाः शुभाः ॥३
ताभिर्वसंतसमये कोकिलालिकुलाकुले । पुष्पितोपवनोत्फुल्लकह्लारसरसस्तटे ॥
निर्भरापानगोष्ठीषु प्रसक्ताभिरलंकृते ॥४
कुरङ्गनयनः श्रीमान्मालतीकृतशेखरः । गच्छन्समीप मार्गेण साम्बः परपुरञ्जयः ॥५
साक्षात्कन्दर्परूपेण सर्वाभरणभूषितः । अनङ्गशरतप्ताभिः साभिलाषमवेक्षितः ॥६
प्रवृद्धो मन्मथस्तासां सर्वाङ्गक्षोभदायकः । निरीक्ष्य तमहं सर्वं विकारं ज्ञानचक्षुषा ॥७
अशपं रुषितः सर्वा हरिस्यंतीह दस्यवः । मयि स्वर्गमनुप्राप्ते भवतीः काममोहिताः ॥८
एतद्वाक्यमुपश्रुत्य बाष्पर्याकुलेक्षणाः । सामूचुर्वद गोविन्द कथमेतद्भविष्यति ॥९
भर्तारं जगतामीशं भवंतमपराजितम् । दिव्यानुभावां च पुरीं रत्नवन्ति गृहाणि च ॥१०
द्वारिकावासिनः सर्वान्देवरूपान्कुमारकान् । भगवन्सर्वलोकस्य कथं भोग्या भवामहे ॥११
दासभावमनुप्राप्य भविष्यामः कथं पुनः । को धर्मः क समाचारः कथं वृत्तिर्भविष्यति ॥१२
तथा लालप्यमानास्ता बाष्पपर्याकुलेक्षणाः । मया प्रोक्ता युवतयस्ताः सन्तापस्त्यज्यतामयम् ॥१३
जलक्रीडाविहारेषु पुरा सरसि मानसे । भवतीनां सगर्वाणां नारदोऽभ्याशमागतः ॥१४
हुताशनसुताः सर्वा भवत्योऽप्सरसः पुराः । अप्रणम्यावलेपेन परिपृष्टः स योगवित् ॥१५

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डव! मेरी सोलह सहस्र स्त्रियाँ हैं, जो रूप सौन्दर्य एवं उदार गुणों से युक्त होने के नाते कामदेव का शुभ मन्दिर ही कही जाती है। एक बार वसंत ऋतु के समय एक सरोवर के तट पर, जो कोकिल और भौंरों के समूह से सुशोभित, खिले हुए उपवन एवं खिली हुई कलियों से सुसज्जित था, आसव-पान में आसक्त उन सुन्दरियों के समीप वाले मार्ग से श्रीमान् साम्ब जा रहे थे, जो मृग मे समान नेत्र, मालती पुष्पों से सुगुम्फितशिर एवं शत्रुओं के विजेता थे। निखिल आभूषणों से विभूषित होने के नाते साक्षात् कामदेव की भाँति उन्हें देखकर मेरी स्त्रियाँ काम-पीड़ित होकर मुग्ध दृष्टि से देखने लगीं। अत्यन्त कामासक्त होने पर उन स्त्रियो के समस्त अंगों में पीड़ा होने लगी। उस समय मैंने अपने ज्ञानचक्षु से उनके मनकी विकृति भावनाओं का देखकर आवेश में उन्हें शाप दे दिया—'दस्युगण तुम लोगों का अपहरण करेंगे और मेरे स्वर्ग चले जाने पर तुम्हें काम पीडा होगी। इसे सुन कर आँखों में आँसू भरे ये स्त्रियाँ मुझसे कहने लगीं—गोविन्द! यह कैसे सम्भव होगा! भगवान् जगन्नियन्ता एवं अजेय आप को पतिरूप में प्राप्त कर इस प्रकार की दिव्यपुरी, रत्नों से भरे घर और देव रूप द्वारका वासी समस्त कुमारों के रहते क्या हमें सभी लोगों की उपभोग्या होना ही पड़ेगा! अस्तु दासी होने पर हमारे धर्म एवं आचार कैसे होंगे और वृत्ति (जीविका) क्या होगी! ३-१२। आँखों में आँसू भरे उन स्त्रियों के ऐसा कहने पर मैंने उनसे कहा—युवतिगण! अव सन्ताप करना छोड़ दो! क्योंकि पहले समय में एक बार मानसरोवर में जल- विहार करते समय तुम लोगों के समीप नारद ऋषि आ गये थे। उस समय अग्नि के यहाँ पुत्री रूप में उत्पन्न होकर तुम सभी अप्सराएँ थी। अभिमान वश विना प्रणाम किये ही तुम लोगों ने उन योगवेत्ता

कथं नारायणोऽस्माकं भर्ता स्यादित्युपादिश । तस्माद्व्रतप्रदानं च शापदानमभूत्पुरा ।।१६
शय्याद्वयप्रदानेन मधुमाधवमासयोः । सुवर्णोपस्करोत्सर्गाद्द्वादश्यां शुक्लपक्षतः ।।
भर्ता नारायणो नूनं भविष्यत्यन्यजन्मनि ।।१७
न कृतो यत्प्रणामो मे रूपसौभाग्यमत्सरात् । परं पृष्टोऽस्मि तेनाशु वियोगो वो भविष्यति ।।
चौरैरपहृताः सर्वा वेश्यात्वं समवाप्स्यथ ।।१८
एवं नारदशापेन मच्छापेन च सांप्रतम् । न कार्यः संभ्रमः कश्चिद्दासीत्वं वो भविष्यति ।।१९
इदानीमपि यद्वक्ष्ये तच्छृणुध्वं वराननाः । पुरा देवासुरे युद्धे हतेषु शतशः पुनः ।।२०
तेषां नारीसहस्राणि शतशोऽथ सहस्रशः । परिणीतानि यानि स्युर्बलाद्भुक्तानि यानि वै ।।२१
तानि सर्वाणि देवेशः प्रोवाच वदतां वरः । वेश्याधर्मेण वर्तध्वमधुना नृपमन्दिरे ।।२२
भक्तिमत्यो वरारोहास्तदा देवकुलेषु च । राजानः स्वामिनः स्तुत्या ब्राह्मणाश्च बहुश्रुताः ।।२३
तेषां गृहेषु तिष्ठध्वं सूतकं चापि तत्समम् । भविष्यति च सौभाग्यं सर्वासामपि शक्तितः ।।२४
नचैकस्मिन्रतिः कार्या पुरुषे धनवर्जिते । अनुमान्यः प्रसाद्यश्च शुल्कदो देववत्सदा ।।२५
सुरूपो वा विरूपो वा द्रव्यं तत्र प्रयोजनम् । न तद्व्यतिक्रमः कार्यो ब्रह्महत्यामवाप्नुयात् ।।
न चापि मद्यपाभिश्च भाव्यं कौटिल्यबुद्धिभिः ।।२६
यः कश्चिच्छुल्कमादाय गृहमेष्यति वः सदा । निश्छद्मनैवापहार्यं तत्सर्वं दंभवर्जितम् ।।२७
व्यभिचारो न कर्तव्यःस्वामिना सह कर्हिचित् । रूपयौवनदर्पेण धनलोभेन वा पुनः ।।२८

से पूँछा—हम लोगों को नारायण पति रूप में कैसे प्राप्त होंगे, इसका उपदेश दीजिये! उन्होंने व्रत का उपदेश कर उसी समय शाप भी प्रदान किया था। उन्होंने कहा—वसन्त ऋतु के दोनों मासों में शुक्ल द्वादशी के दिन सुवर्ण-साधन सम्पन्न दो शय्याओं के दान करने पर दूसरे जन्म में नारायण पति अवश्य प्राप्त होंगे। अपने रूप सौन्दर्य और सौभाग्य के मद से तुम लोगों ने विना प्रणाम किये ही मुझसे पूँछा है, इसलिए चोरों द्वारा अपहरण होने पर तुम्हें वेश्या होना पड़ेगा। इस प्रकार पहले के नारद शाप और इस समय मेरे शाप वश तुम्हें दासी होना ही पड़ेगा। अतः भ्रम करना व्यर्थ है। अब इसके अतिरिक्त मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे सुनो! वराननने! पहले देवासुर संग्राम में सैकड़ो दानवो का वध हुआ था। उनकी सैकड़ो एवं सहस्रो स्त्रियों को, जिनमें विवाहिता तथा बल प्रयोग द्वारा उपभोग की हुई थीं, देवेश ने कहा था—इस समय राज मन्दिरों में रहकर तुम सब वेश्या धर्म अपनाओं। वरारोहे! उन देव घरो में रहकर राज्य, उनके स्वामी और ब्राह्मण विद्वानों के गुणगान करो। उनके घरों मे रहने से तुम्हें उनके समान ही सूतक होगा और यथा शक्ति सौभाग्य की प्रप्ति भी होगी। वहाँ रह कर निर्धन पुरुषों से रति क्रीडा कभी न करना और शुल्क देने वाले पुरुषों का सदैव देवों की भाँति सम्मान पूर्वक प्रसन्न करना, चाहे वह रूपवान् हो, अथवा कुरूप, तुम्हें तो केवल द्रव्य से प्रयोजन है। इसमें त्रिक्रम (उलटफेर) न करना, करने पर ब्रह्म हत्या का दोष भागी होना पड़ेगा। मद्य पान कर कभी कुटिल व्यवहार न करना। तुम लोगों के घर जो कोई शुल्क लिये सदैव आता रहे, दम्भ छोड़कर निष्कपट भाव से उसके रूपयों आदि के लेने की चेष्टा करना।१३-२७। उस आगन्तुक स्वामी के साथ कभी भी किसी प्रकार का अनाचार न करना। रूप सौन्दर्य

दासी भूत्वा च या काचिद्व्यभिचारं करोति च। पतिना[1] सह पापिष्ठा पापिष्ठां यात्यधोगतिम्॥२९
देवतानां पितॄणां च पुण्येऽह्नि समुपस्थिते। गोभूहिरण्यधान्यानि प्रदेयानि च शक्तितः॥३०
ब्राह्मणेभ्यो वरारोहाः कार्याणि वचनानि च। यच्चाप्यन्यद्व्रतं सम्यगुपदेक्ष्यामि तत्त्वतः॥३१
अविचारेण सर्वाभिरनुष्ठेयं च तत्पुनः। संसारोत्तारणायालमेतद्वेदविदो विदुः॥३२
यदा सूर्यदिने प्राप्ते पुष्यो वा सपुनर्वसुः। भवेत्सर्वौषधिस्नानं सम्यङ्नारी समाचरेत्॥३३
तदा पञ्चशरस्यापि संनिधातृत्वमेष्यति। अर्चयेत्पुण्डरीकाक्षमनङ्गस्यापि कीर्तनम्॥३४
कामाय पादौ संपूज्य जंघे वै मोहकारिणे। मेढ्रं कन्दर्पनिधये कटिं प्रीतियुजे नमः॥३५
नाभिं सौख्यसमुद्राय वामनाय तथोदरम्। हृदयं हृदयेशाय स्तनावाह्लादकारिणे॥३६
उत्कण्ठायेति वै कंठमास्यमानन्दजाय च। वामांसं पुष्पचापाय पुष्पबाणाय दक्षिणम्॥३७
नमोऽनन्ताय वै मौलिं विलोलायेति च ध्वजम्। सर्वात्मने शिरस्तद्वद्देवदेवस्य पूजयेत्॥३८
नमः श्रीपतये तार्क्ष्यध्वजांकुशधराय च। गदिने पीतवस्त्राय शंखिने चक्रिणे नमः॥
नमो नारायणायेति कामदेवात्मने नमः ॥३९
नमः शांत्यै नमः प्रीत्यै नमो रत्यै नमः श्रियै। नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै नमः सर्वार्थदाय च॥४०
एवं संपूज्य गोविन्दमनंगात्मकमीश्वरम्। गंधैर्माल्यैस्तथा धूपैर्नैवेद्यैश्चैव भामिनी॥४१

और युवावस्था के मद में अथवा धनवान् होने के नाते जो कोई वेश्या उस पति के साथ अनाचार करती है, उस पापिनी को अत्यन्त भयावह अधोगति होती है। देवता-पितरों के पुण्य दिन उपस्थित होने पर गौ, भूमि, सुवर्ण और धान्य आदि के दान यथाशक्ति ब्राह्मणों को अर्पित करते रहना और उनकी आज्ञाएँ मानना। इसके अतिरिक्त भी जिस व्रत के रहस्य को उपदेश करूँगा सभी लोग विना विचारे ही उसे अवश्य सुसम्पन्न करना, क्योंकि संसार से पार होने के लिए वैदिक विद्वानों ने उसे ही समर्थ बताया है। रविवार के दिन पुष्य अथवा पुनर्वसु नक्षत्र के उपस्थित होने पर नारी को समस्त औषधि मिश्रित स्नान करके अनङ्ग (काम) रूपात्मक भगवान् पुण्डरीकाक्ष की सविधि अर्चना करे—'काम को नमस्कार है' से उनके चरण की पूजा करके 'मोहकारी को नमस्कार है' से जंघाओं, 'कन्दर्प निधि को नमस्कार है' से लिङ्ग। 'प्रीतिभाजन को नमस्कार है, से कटि, सुखसागर को नमस्कार है' से नाभि, 'वामन को नमस्कार है' से उदर, 'हृदय-शायी को नमस्कार है' से हृदय, 'हर्षप्रदाता को नमस्कार है' से स्तन। 'उत्कण्ठ को नमस्कार है' से कण्ठ, 'आनन्द जन्मा को नमस्कार है, से मुख, 'पुष्पधन्वा को नमस्कार है' से दाहिना कंधा, 'अनन्त को नमस्कार है' से मस्तक, 'विलोल को नमस्कार है, से ध्वजा, 'सर्वात्मा को नमस्कार है, से उन देवाधीश के शिर की अर्चना करनी चाहिए। गरुड़ध्वज एवं अंकुश धारी पति को नमस्कार है, गदा, पीताम्बर, शंख और चक्रधारी को नमस्कार है, नारायण को नमस्कार है, काम-देवात्मा को नमस्कार है, शान्ति को नमस्कार है, प्रीति मो नमस्कार है, रति को नमस्कार है, श्री को नमस्कार है, पुष्टि को नमस्कार है, तुष्टि को नमस्कार तथा सर्वार्थद को नमस्कार है।२८-४०। इस प्रकार माला, धूप, एवं नैवेद्य आदि से अर्चा करके उस कामिनी को एक ऐसे ब्राह्मण की गंध-प्रष्पादि द्वारा अर्चना करनी चाहिए, जो

---

१. स्वामिना।

अत्र चाहूय धर्मज्ञं ब्राह्मणं वेदपारगम् । अव्यङ्गावयवं पूज्यं गन्धपुष्पादिभिस्तथा ।।४२
शालेयतण्डुलप्रस्थं घृतपात्रेण संयुतम् । तस्मै विप्राय सा दद्यान्माधवः प्रीयतामिति ।।४३
यथेष्टाहारभुक्तं च तमेव द्विजसत्तमम् । रत्यर्थं कामदेवोऽयमिति चित्तेऽवधार्य च ।।४४
यद्यदिच्छति विप्रेन्द्रस्तत्तत्कुर्याद्विलासिनी । सर्वभावेन चात्मानमर्पयेत्स्मितभाषिणी ।।४५
एवमादित्यवारेण सदा तद्व्रतमाचरेत् । तण्डुलप्रस्थदानं च यावन्मासांस्तु द्वादश ।।४६
ततस्त्रयोदशे मासि सम्प्राप्ते तस्य भामिनी । विप्रस्योपस्करैर्युक्तां शय्यां दद्याद्विलक्षणाम् ।।४७
सोपधानकविश्रामां स्वास्तरावरणां शुभाम् । दीपिकोपानहच्छत्रपादुकासनसंयुताम् ।।४८
सपत्नीकमलंकृत्य हेमसूत्राङ्गुलीयकैः । सूक्ष्मवस्त्रैः सकटकैर्धूप माल्यानुलेपनैः ।।४९
कामदेवं सपत्नीकं गुडकुम्भोपरि स्थितम् । ताम्रपात्रासनगतं हैमनेत्रपटावृतम् ।।५०
सकांस्यभाजनोपेतमिक्षुदण्डसमन्वितम् । दद्यादेतेन मन्त्रेण तथैकां गां पयस्विनीम् ।।५१
यथांतरं न पश्यामि कामकेशवयोः सदा । तथैव सर्वकामाप्तिरस्तु विष्णो सदा मम ।।५२
यथा न कामिनीदेहात्प्रयाति तव केशव । तथापि मम देवेश शरीरस्थं पतिं कुरु ।।
तथैव काञ्चनं देवं प्रति गृह्णन्द्विजोत्तमः ।।५३
"क इदं कोऽदात्कस्मा अदात्कामः कामायादात्कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता काम समुद्रमाविशमैतत्त"
इति वैदिकमन्त्रमीरयेत्" । कोऽदादिति पठेन्मन्त्रं ध्यायंश्चेतसि माधवम् ।।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य विसृजेद्द्विजपुङ्गवम् । शय्यासनादिकं सर्वं ब्राह्मणस्य गृहं नयेत् ।।५४

धर्म मर्मज्ञ, वेदनिष्णात विद्वान् हो और उसकी शरीर के अङ्ग यथोचित हों । पश्चात् घृतपूर्ण पात्र समेत एक सेर साठी चावल के दान उन्हें अर्पित करते समय 'माधव प्रसन्न हों' कहे । ब्राह्मण के यथेच्छ एवं प्रिय आहार करने पर विलासिनी को उसके पति 'यह कामदेव है' अपने मन में ऐसी भावना रख कर उस श्रेष्ठ ब्राह्मण के समीप जाना चाहिए और मन्द मुसुकान करते हुए सर्वतोभावेन आत्मसमर्पण करके उनकी सभी इच्छाओं की पूर्ति करनी चाहिए । इस प्रकार प्रत्येक रविवार के दिन एक सेर चावल के दान समेत पूरे वर्ष तक उस व्रत को सुसम्पन्न करे । पश्चात् तेरहवे मास साधन सम्पन्न एवं विलक्षण एक शय्या का दान करे, जिसमें सुन्दर तकिया, गद्दा और मनोरम चादर से भूषित हो और दीपक, उपानह, छाता, खड़ाऊँ आदि युक्त हो । पत्नी समेत उन कामरूप भगवान् को सुवर्ण सूत्र यज्ञोपवीत , अंगूठी, सूक्ष्म वस्त्र और बलटा (कंकड़ भूष्ड) भूषित एवं धूप माला से पूजित कर ब्राह्मण को अर्पित करें, जो पत्नी समेत गोलाकार कलश पर ताम्र में स्थित, सुवर्ण के नेत्र और वस्त्र से आच्छादन तथा कांस पात्र और ऊख दण्ड युक्त है । उनके साथ एक धेनु गौ का भी दान होना चाहिए ।४१-५१। पश्चात् इस भाँति प्रार्थना करे—विष्णो! काम और केशव में मैं कभी भी किसी प्रकार का भी अन्तर (भेदभाव) न देख सकूँ तथा मेरे सभी मनोरथ सदैव सफल होते रहे । देवेश! जिस प्रकार आप के देह से कामिनी (लक्ष्मी) पृथक् नहीं होती है, उसी भाँति पति को मेरे शरीरस्थ करने की कृपा करें । उस सुवर्ण प्रतिमा का ग्रहण करते हुए ब्राह्मण को भी 'क इदं को' दादिति मंत्र का उच्चारण करना चाहिए । तदुपरान्त माधव का ध्यान करते हुए प्रदक्षिणा करके ब्राह्मण को विदा करे और शय्या आदि सभी वस्तुओं को ब्राह्मण के घर

ततःप्रभृति योऽन्योपि रत्यर्थं गृहमागतः । स सम्यक्सूर्यवारेण समं पूज्यो यथेच्छया ।।५५
एवमेकं द्विजं शांतं पुराणज्ञं[1] विचक्षणम् । तमर्चयेत् च सदा अपरं वा तदाज्ञया ।।५६
न प्राप्नोति तदा विघ्नं गर्भसूतकजं क्वचित् । दैवं वा मानुषं वा स्यादुपरागेण वा ततः ।।५७
साधारनष्टपशुवद्यथाशक्त्या [2]समापयेत् । एतद्वः कथितं सर्वं वेश्याधर्मशेषतः ।।५८
पुरुहूतेन यत्प्रोक्तं दानवीषु ततो मया । तदिदं च व्रतं सर्वं भवतीषु प्रकाशितम् ।।५९
सर्वपापप्रशमनमनंतफलदायकम् । कल्याणिनीनां कथितं कुरुध्वं तद्वरानना: ।।६०
एतत्पार्थ मया पूर्वं गोपीनां तु प्रकाशितम् । पुराणं धर्मसर्वस्वं वेश्याजनसुखप्रदम् ।।६१

करोति याशेषमखण्डमेतत्कल्याणिनी माधवलोकसंस्था ।
सा पूजिता देवगणैरशेषैरानन्दकृत्स्थानमुपैति विष्णोः ।।६२

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कामदानवेश्याव्रतवर्णनं नामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ।१११

अथ द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

वृन्ताकव्रतविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातो वृंताकविधिं व्याख्यास्यामः । संवत्सर च षण्मासांस्त्रीन्मासान्वा न भक्षयेत् ।।

पहुँचाये । पश्चात् उस दिन से जो कोई अन्य भी रति निमित्त आये, पूर्व की भाँति उसकी भी यथेच्छ पूजा करे । एक ऐसे शांत पुराण वेत्ता एवं विचक्षण ब्राह्मण की सदैव अर्चना करती रहे और अन्य की उसकी आज्ञा से ही करे । उससे उसे कर्म और सूतक जनित दैव-मानुष का अशौच और ग्रहण जनित अशौच नहीं होता है । क्योंकि वह एक खोये हुए पशु की भाँति रहती अतः उसे (आगन्तुक का) यथाशक्ति पूजन करना चाहिए । इस प्रकार आप लोगों ने बताया है, जिस प्रकार पुरुहूत (इन्द्र) ने दानवीयों को बताया था । वरानने! समस्त पापों के नाशक और अनन्त फल प्रदायक इस वेश्या धर्म को अपनाओं, जो कल्याण रूप स्त्रियों को बताया गया है । पार्थ! मैंने इस वेश्या जनों को सुख देने वाले पुराने धर्म सर्वस्व को गोपियों को पहले से बताया था । इस प्रकार इस अशेष व्रत को अखण्ड सुसम्पन्न करने वाली वह कल्याणिनी समस्त देव वृन्दों से पूजित होकर विष्णु का प्रिय लोक प्राप्त करती है ।५२-६२

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
कामदान वेश्या व्रत वर्णन नामक एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।१११।

अध्याय ११२

वृन्ताकव्रतविधि का वर्णन

श्री कृष्ण बोले—मैं तुम्हें वृन्ताक विधि की व्याख्या बता रहा हूँ—जिसमें पूरा वर्ष, छः मास

---

१. आचारज्ञम् । २. प्रपूजयेत् ।

अथ भरण्यां मघायां वा एकरात्रोपवासं कृत्वा स्थण्डिले देवानाहूय गन्धधूपपुष्पनैवेद्यदीपादिना पूजयेत् । दर्भपाणिर्गन्धोदकेनावाहयेत् । यमराजानमावाहयामि । कालमावाहयामि । नीलमावाहयामि । चित्रगुप्तमावाहयामि । वैवस्वतमावाहयामि । मृत्युमावाहयामि । परमेष्ठिनमावाहयामीति । ततोऽग्निमुपसमाधाय तिलाज्ये जुहुयात् । यमराजाय स्वाहा । कालाय स्वाहा । नीलाय स्वाहा । चित्रगुप्ताय स्वाहा । वैवस्वताय स्वाहा । मृत्यवे स्वाहा । परमेष्ठिने स्वाहेति । अग्निर्मूर्धेत्याहुतीस्त्वष्टशतं हुत्वा स्विष्टकृतिं कृत्वा प्रायश्चित्तं हुत्वा ब्राह्मणः स्वयमेव करोति । इतरेषामाचार्यः । अथ सौवर्णं वृंताकं ब्राह्मणाय निवेदयेत् । कृष्णवृषभं गां च दद्यात् । कर्णवेष्टांगुलीयके च्छत्रोपानहौ कृष्णयुगं कृष्णकम्बलं च दद्यात् । ब्राह्मणान्भोजयित्वा आशिषो वाचयेत् । पौंडरीकाश्वमेधफलमवाप्नोति । सप्त कोटिसहस्राणि नाकपृष्ठे महीयते । सप्तजन्मांतरं यावद्यमलोकं न पश्यतीत्याह भगवान्बौधायनः । वृंताकमप्रतिहतान्तरहेमसिद्धं दद्याद्द्विजाय घृततक्रसमन्वितं यः । कृत्वा व्रतं वत्सरमासमेकं याम्यं न पश्यति पुरं पुरुषः कदाचित् ॥१

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
वृंताकव्रतविधिवर्णनं नाम द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ।११२

अथवा तीन मास तक भोजन न करना चाहिए । भरणी या मघा नक्षत्र के दिन उपवास रहकर भूमि की वेदी में देवों का आवाहन पूर्वक गंध, धूप, पुष्प, नैवेद्य एवं दीपक आदि द्वारा अर्चना करके—हाथ में कुश लिए यमराज का आवाहन कर रहा हूँ, काल का आवाहन कर रहा हूँ, नील का आवाहन कर रहा हूँ, वैवस्वत का आवाहन कर रहा हूँ, मृत्यु का आवाहन कर रहा हूँ और परमेष्ठी का आवाहन कर रहा हूँ । इस प्रकार आवाहन करके अग्नि पूजन पूर्वक तिल-घृत द्वारा हवन करे—यमराज, काल, नील, चित्रगुप्त, वैवस्वत, मृत्यु और परमेष्ठी के नामों को क्रमशः चतुर्थ्यन्त उच्चारण करते हुए अन्त में स्वाहा पद कह कर आहुति डालता रहे । 'अग्निमूर्धा' मंत्र से एक सौ आठ आहुति प्रदान कर पश्चात् स्विष्टकृत और प्रायश्चित हवन करे ये सभी कार्य ब्राह्मण को स्वयम् और अन्य जाति को आचार्य द्वारा सुसम्पन्न कराना चाहिए । अनन्तर वह वृन्ताक की सुवर्ण -प्रतिमा कृष्ण वैल और गौ समेत ब्राह्मण को अर्पित करे । कुण्डल, अंगूठी, छत्र, उपानह, कृष्णयुग और काले कम्बल का भी दान उस अवसर पर करना चाहिए । उपरांत ब्राह्मण भोजन कराकर उनसे आशीर्वाद प्राप्त करे । इस प्रकार उसे सुसम्पन्न करने पर पौंडरीक अश्व-मेध की फल प्राप्त होता है । सात करोड़ सहस्र वर्ष स्वर्ग में सुसम्मानित रहकर अनन्तर सात जन्म तक उसे यमलोक नहीं जाना पड़ता ऐसा भगवान् बौधायन ने कहा है । इस प्रकार सुवर्ण, घृत, तक्र (मट्ठा) के दान समेत इस अप्रतिहत शक्ति वाले वृन्ताक व्रत को एक वर्ष अथवा एक मास ही सुसम्पन्न करने वाले पुरुष को यमपुरी नहीं जाना पड़ता है ।१

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
वृन्ताक व्रत विधान वर्णन नामक एक सौ वारहवाँ अध्याय समाप्त ।११२।

अथ त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

ग्रहनक्षत्रव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि रहस्यं ह्येतदुत्तमम् । येन लक्ष्मीनिर्वृतिस्तु पुष्टिश्चैवोपजायते ।।१
सर्वे ग्रहाः सदा सौम्या जायन्ते येन पाण्डव । आदित्यवारे हस्तेन पूर्वं गृह्य विचक्षणः ।।२
नक्तोक्तविधिना सर्वं कुर्यात्पूजां तथा रवेः । प्रत्यक्षं सप्त नक्तानि कृत्वा भक्तिपरो नरः ।।३
ततस्तु सप्तमे प्राप्ते कुर्याद्ब्राह्मणवाचनम् । भास्करं सर्वसौवर्णं कृत्वा यत्नेन मानवः ।।४
ताम्रपात्रे स्थापयित्वा रक्तपुष्पैः प्रपूज्य च । रक्तवस्त्रयुगच्छन्नं छत्रोपानद्युगान्वितम् ।।५
घृतेन स्नपनं कृत्वा [1]लड्डुकान्विनिवेद्य च । मंत्रेणानेन विदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् ।।६
आदिदेव नमस्तुभ्यं सप्तसप्ते दिवाकर । त्वं रवे तारयस्वास्मानस्मात्संसारसागरात् ।।७
कृतेनानेन राजेन्द्र भवेदारोग्यमुत्तमम् । द्रव्यसंपत्सुतप्राप्तिरिति पौराणिका विदुः ।।८
अविसंवादिनी चेयं शान्तिपुष्टिप्रदा नृणाम् । तद्वच्चित्रासु संगृह्य सोमवारं विचक्षणः ।।९
सप्तमे च ततः प्राप्ते दत्त्वा ब्राह्मणभोजनम् । कांस्यभाजनसंस्थं वा राजतं राजतेऽथ वा ।।१०

अध्याय ११३

ग्रहनक्षत्रव्रतवर्णन

श्री कृष्ण बोले—पाण्डव! तुम्हें वह परमोत्तम रहस्य बता रहा हूँ, जिसके सुसम्पन्न करने पर अत्यन्त लक्ष्मी की प्राप्ति पूर्वक पुष्टि एवं समस्त ग्रह सदैव सौम्य बने रहते हैं। विद्वान् को चाहिए कि—रविवार के दिन हस्त नक्षत्र उपस्थित होने पर पूर्वोक्त नक्त विधान द्वारा सूर्य की अर्चना करें। और उसी प्रकार भक्ति पूर्वक सात नक्त व्रत रहने के उपरांत उस अन्तिम वाले सातवें व्रतानुष्ठान में किसी विद्वान् ब्राह्मण द्वारा कथा पारायण करायें—सर्वप्रथम सूर्य की सुवर्ण प्रतिमा बनवा कर ताँबे के पात्र में उसके स्थापन पूर्वक समेत घृत से स्नान और भोजनार्थ लड्डू अर्पित करें। पश्चात् इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक वह सब कुछ उसी ब्राह्मण को अर्पित कर दे।१-६। सात घोड़े पर चलने वाले आदि देव दिवाकर को नमस्कार है। मुझे इस संसार सागर से पार करने की कृपा करें। राजेन्द्र! इस प्रकार इस व्रत को सुसम्पन्न करने पर उत्तम आरोग्य, द्रव्य सम्पति, और पत्र आदि की प्राप्ति होती है ऐसा पुराणज्ञों का कहना है। यह मनुष्यों को अविकल शांति और पुष्टि प्रदान करती है। इसी भाँति सोमवार के दिन चित्रा नक्षत्र के उपस्थित होने पर सोमराज की अर्चना करे और सातवें व्रत के समय ब्राह्मण भोजन तथा सोमराज की रजत प्रतिमा का रजत पात्र अथवा काँसे के पात्र में स्थापित एवं श्वेत वस्त्र से आच्छन्न करके

---

१. तण्डुलान्।

पात्रे कृत्वा सोमराजं श्वेतवस्त्रावगुंठितम् । पादुकोपानहच्छत्रभाजनसंयुतम् ॥११
दध्यन्नशिखरं दत्त्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत् । मंत्रेणानेन राजेन्द्र तं शृणुष्व [1]वदामि ते ॥१२
श्रीमहादेवजावल्लीपुष्पगोक्षीरपांडुर । सोम सौम्यो भवास्माकं सर्वदा ह्युत्तमोत्तम ॥१३
एवं कृते महाराज सोमस्तुष्टिप्रदो भवेत् । भवन्ति तुष्टेऽत्रिसुते सर्वे सानुग्रहाः ग्रहाः ॥१४
स्वात्यामङ्गारकं गृह्य क्षपयेन्नक्तभोजनः । सप्तमे त्वथ सम्प्राप्ते स्थापितं ताम्रभाजने ॥१५
रक्तवस्त्रयुगच्छन्नं कुंकुमेनानुलेपनम् । नैवेद्यं हंतकारं च पूज्य धूपाक्षतादिभिः ॥१६
मंत्रेणानेन तं दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने । कुजन्मप्रभवोऽपि त्वं मंगलः पठ्यसे बुधैः ॥
अमंगलं निहत्याशु सर्वदा यच्छ मंगलम् ॥१७
विशाखासु बुधं गृह्य सप्त नक्तान्यथा चरेत् । बुधं हेममयं कृत्वा स्थापितं कांस्यभाजने ॥१८
शुक्लवस्त्रयुगच्छन्नं शुक्लमाल्यानुलेपनैः । गुडौदनोपहारं तु ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥१९
बुधः सद्बुद्धिजननो बोधदः सर्वदा नृणाम् । तत्त्वाववोधं कुरु मे राजपुत्र नमोनमः ॥२०
अनुराधास्वथाचार्यं देवानां पूज्य भक्तितः । पूर्वोक्तक्रमयोगेन सप्त नक्तान्यथाचरेत् ॥२१
हैमं हेममये पात्रे स्थापयित्वा बृहस्पतिम् । पीतांबरयुगच्छन्नं पीतयज्ञोपवीतिनम् ॥२२
पादुकाच्छत्रसहितं सदंडं सकमण्डलुम् । संपूज्य पुष्पनिकरैर्दीपधूपाक्षतादिभिः ॥२३

पूजन करने के उपरांत चरणपादुका (खड़ाऊ आदि), उपानह, छत्र और भोजन पात्र के समेत दही से बने अन्न का शिखर (पर्वत) मंत्र द्वारा ब्राह्मण को अर्पित करे। राजेन्द्र! वह मंत्र मै बता रहा हूँ, सुनो! श्री महादेव जी के द्वारा उत्पन्न वल्ली'-पुष्प और गौ के क्षीर से पाण्डुर वर्ण दिखायी देने वाले सोमदेव! मेरे लिए परमोत्तम सौम्य होने की कृपा करें। महाराज! इस प्रकार उनकी अर्चना आदि करने पर सोमदेव तुष्टि प्रदान करते हैं और उन अत्रियुक्त (चन्द्र) के प्रसन्न होने सभी ग्रह अनुकूल हो जाते हैं।७-१४। स्वाती नक्षत्र में मंगलवार के दिन मंगल देव की अर्चना और नक्त भोजन करता रहे। पुनः सातवें व्रत के अवसर पर उनकी प्रतिमा को रक्त वस्त्र से आच्छादन कर ताँबे के पात्र में स्थापन पूर्वक कुंकुम का लेप हर्षप्रद नैवेद्य, धूप और अक्षत आदि द्वारा पूजनोपरांत मंत्रोच्चारण पूर्वक किसी बहुमुखी को अर्पित करे अनन्तर—मंगल देव! कु (पृथिवी और निदिन्त) जन्म होने पर भी आप मंगल ही कहे जाते हैं अतः समस्त अमंगल के विनाशपूर्वक मुझे सदैव मंगल प्रदान करते रहें। विशाखा नक्षत्र में बुध के दिन बुध के पूजन करे और सातवें व्रत के दिन बुध की सुवर्ण प्रतिमा काँस के पात्र में स्थापित कर शुक्ल वस्त्र से आवृत करके श्वेत पुष्प मालाओं आदि से पूजा तथा मीठा भात का उपहार ब्राह्मण को अर्पित करे। राजपुत्र! बुध देव मनुष्यों के सद् बुद्धि और ज्ञान के प्रदाता बताये गये हैं अतः मुझे तत्त्व विशद बोध कराने की कृपा करें मैं आप को बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ। अनुराधा नक्षत्र में गुरुवार के दिन देवों के आचार्य बृहस्पति देव की भक्ति पूर्वक पूजा करे और इस भाँति सातवे नक्त व्रत के दिन वृहस्पति की सुवर्ण प्रतिमा सुवर्ण के पात्र में स्थापित कर पीताम्बर और पीत यज्ञोपवीत से भूषित करने के उपरांत पादुका, छत्र, दण्ड और कमण्डलु के प्रदान समेत पुष्प समूह, दीप, धूप एवं अक्षत आदि से उनकी अर्चना करे।१५-२३।

---

१. महामत।

खण्डखाद्योपहारैश्च द्विजाय प्रतिपादयेत् । धर्मशास्त्रार्थशास्त्रज्ञ ज्ञानविज्ञानपारग ॥
अगाधबुद्धिगाम्भीर्य देवाचार्य नमोऽस्तु ते ॥२४
शुक्रं ज्येष्ठासु संगृह्य क्षपयेन्नक्तभोजनैः । पूर्वोक्तक्रमयोगेन द्विजसंतर्पणेन च ॥२५
सप्तमे त्वथ सम्प्राप्ते सौवर्णं कारयेच्छुभम् । रौप्ये वा वंशपात्रे वा स्थापयित्वा भृगोः सुतम् ॥२६
संपूज्य परया भक्त्या श्वेतवस्त्रविलेपनैः । अग्रे तस्य प्रदातव्यं पायसं घृतसंयुतम् ॥२७
दद्यादनेन मन्त्रेण ब्राह्मणाय विचक्षणः । भार्गवो भृगुपुत्रोऽसि शुक्र क्रमविशारद ॥२८
हत्वा ग्रहकृतान्दोषानायुरारोग्यदो भव । मूलेन सूर्यतनयं गृहीत्वा भरतर्षभ ॥२९
तस्मिन्दिने पूजनीयं ग्रहत्रितयमादरात् । शनैश्चरश्च राहुश्च केतुश्चेति क्रमान्नृप ॥३०
होमं तिलघृतैः कुर्याद्ग्रहनाम्ना तु मन्त्रवित् । अर्कः पलाशखदिरौ ह्यपामार्गोऽथ पिप्पलः ॥३१
उदुम्बरशमीदूर्वाकुशाश्च समिधः क्रमात् । एकैकस्य त्वष्टशतमष्टविंशतिरेव वा ॥३२
होतव्यं मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना वा पायसेन वा । सप्तते त्वथ संप्राप्ते नक्तं सूर्यसुतस्य तु ॥३३
ग्रहास्त्रयोऽपि कर्तव्या राजंल्लोहमयाः शुभाः । व्रतांते सर्वतश्चैतान्सौवर्णान्वाथ कारयेत् ॥३४
कृष्णवस्त्रयुगं दद्यादेकैकस्य क्रमान्नृप । मृगनाभ्या समालभ्य कृशरान्विनिवेद्य च ॥३५
होमावसाने सर्वं तद्ब्राह्मणायोपपादयेत् शनैश्चर नमस्तेऽस्तु नमोऽस्तु राहवे तथा ॥३६
केतवे च नमस्तुभ्यं सर्वशांतिप्रदो भव । एवं कृते भवेद्यस्तु तन्निबोध नरेश्वर ॥३७
यदि भौमो रविसुतो भास्करो राहुणा सह । केतुश्च मूर्ध्नि तिष्ठंति सर्वे पीडाकरा ग्रहाः ॥३८

पश्चात् खण्ड खाद्य का उपहार प्रदान कर ब्राह्मण को अर्पित करते हुए इस भाँति क्षमा याचना करे—देवचार्य! धर्मशास्त्र के अथवा शास्त्र के ज्ञाता और ज्ञान-विज्ञान के पारगामी एवं अगाधवुद्धि के विधान समेत शुक्र के दिन नक्त भोजन के विधान समेत शुक्र की अर्चा और पूर्व की भाँति ब्राह्मण भोजन आदि करे। सातवें व्रत के दिन शुक्र की सुवर्ण अथवा रजत प्रतिमा बाँस के पात्र में स्थापित करके भक्ति पूर्वक श्वेत वस्त्र, लेपन आदि द्वारा अर्चना करके उन्हें घृत पूर्ण पायस (खीर) मंत्रोच्चारण पूर्वक अर्पित करे—देव! आप भार्गव, भृगु-पुत्र एवं शुक्र क्रम के विशारद कहे जाते हैं अतः ग्रह जनित दोषों के उपशमन पूर्वक मुझे आयु और आरोग्य प्रदान करने की कृपा करें। भरतर्षभ! नृप! नक्षत्र में सूर्य-पुत्र शनि राहु और केतु की शनि के दिन अर्चना सादर सम्पन्न कर ग्रहों के नाम मंत्रो द्वारा तिल और घृत का हवन करे। अर्क (मदार), पलाश, खदिर (खैर),। चिरचिरा, पीपल, गूलर, सभी दूर्वा तथा कुश की एक सौ आठ अथवा अट्ठाईस आहुति घी मधु, या दही, अथवा खीर के साथ प्रदान करना चाहिए। नृप! इस भाँति नक्त व्रत करते हुए सातवें व्रत के दिन तीनों ग्रहों की लौह प्रतिमा, जो ऊपर से सुवर्ण भूषित हों, कृष्ण वस्त्र, कस्तूरी से सुसज्जित और पूजित होने के अनन्तर कृशरान्न (खिचड़ी) अर्पित करे तथा हवन की समाप्ति में ब्राह्मण भोजन और वह सब ब्राह्मण को अर्पित कर क्षमा प्रार्थना करे—शनैश्चर देव! आप को नमस्कार है, राहुदेव! आप को नमस्कार है।२४-३६। एवं केतु को मैं नमस्कार कर रहा हूँ। मुझे सम्पूर्ण शांति प्रदान करने की कृपा करें। नरेश्वर! इस भाँति उस व्रत को सुसम्पन्न करने पर जो फल प्राप्त होते हैं, मैं बता रहा हूँ, सुनो! यदि भौम, शनि, सूर्य, राहु और केतु शिर स्थान में स्थित हों, तो सभी ग्रह उस

अनेन कृतमात्रेण सर्वे शाम्यंत्युपद्रवाः ॥३९

एवं यः कुरुते राजन्सदाभक्तिसमन्वितः । तस्य सानुग्रहाः सर्वे यच्छन्ति विजयं सुखम् ॥४०

यश्चैतच्छृणुयात्कल्पं ग्रहाणां पठतेऽपि वा । तस्य सानुग्रहाः सर्वे शांतिं यच्छंति नान्यथा ॥४१

शनैश्चरं राहुकेतू लोहपात्रेषु विन्यसेत् । कृष्णागरुः स्मृतो धूपो दक्षिणा चात्मशक्तितः ॥४२

सूर्यं विधुं कुज बुधौ गुरुशुक्रसौरीन्हस्तादिकर्क्षसहितानुदितक्रमेण ।

संपूज्य हेमघटितान्द्विजपुङ्गवाय दत्त्वा पुमान्ग्रहगणेन न पीड्यतेऽत्र ॥४३

इतिश्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे

ग्रहनक्षत्रव्रतवर्णनं नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ।११३

अथ चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

शनैश्चरव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा त्रेतायुगे पार्थ नावर्षत्पाकशासनः । कथंचिदनयाद्राज्ञस्तस्य राष्ट्रे समंततः ॥१

ततो राष्ट्रं क्षुधाविष्टं बभूवातीवदारुणम् । पतङ्गमूषिकाकीर्णं चौरव्यालभयाकुलम् ॥२

तस्मिन्घोराकुले काले सपत्नीकः सबालकः । कौशिकः स्वगृहं त्यक्त्वा परराष्ट्रमगाच्छनैः ॥३

(व्यक्ति) को पीडित करते हैं किन्तु उपरोक्त व्रतानुष्ठान को सुसम्पन्न करने पर सभी उपद्रव नष्ट हो जाते हैं। राजन्! भक्तिपूर्वक सदा इस भाँति करने पर समस्त गृह अनुकूल होकर विजय एवं सुख प्रदान करते हैं। इस कल्प के श्रवण या पारायण करने पर सभी ग्रह अनुकूल होकर शांति प्रदान करते हैं जो अन्यथा सम्भव नहीं होता है। (पूजन के समय) शनि, राहु एवं केतु की प्रतिमा तथा यथाशक्ति दक्षिणा से सुसम्मानित करे। क्रमशः हस्त आदि नक्षत्रों में सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु की सुवर्ण प्रतिमा का क्रमिक पूजन करके किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को अर्पित करने पर ब्राह्मणों की पीड़ा नहीं होती है।३७-४३

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
ग्रहनक्षत्रव्रत्त वर्णन नामक एक सौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त।११३।

अध्याय ११४

शनैश्चर व्रत-वर्णन

श्री कृष्ण बोले—पार्थ! एक बार पहले त्रेता युग में पाकशासन (इन्द्र) के किसी प्रकार वर्षा न करने पर उस राष्ट्र में चारों ओर महान् भयंकर अकाल पड़ा था, जिसमें परिगण, मूषक (चूहे), चौर और सर्प आदि का महान् भय उपस्थित हो गया था। उस भीषण काल के समय कौशिक मुनि ने सभी बच्चों को साथ लेकर दूसरे राष्ट्र का प्रस्थान किया।१-३। धीरे-धीरे मार्ग में चलते हुए महर्षि कौशिक ने कुटुम्ब-पालन

मार्गेऽथ गच्छता तेन कौशिकेन महर्षिणा ! त्यक्तः स बालको ह्येको दुर्भरं च कुटुम्बकम् ।।४
तस्मिन्काले विशेषेण क्षीणेन्नौषधि सञ्चये ! कृत्वातिनिर्घृणं कर्म गतोऽसौ कौशिको मुनिः ।।५
सोऽपि बालो रुदन्दीनो दिशो वीक्ष्य स्थितः पथि । उत्थाय पिप्पलस्याधः फलान्यत्तुं प्रचक्रमे ।।६
कूपे जलं पपौ नित्यं तत्रैवाश्रममंडले । कृत्वा सम्यक् स्थितो रौद्रं तेपे च विपुलं तपः ।।७
अथाजगाम भगवान्नारदो वेदपारगः । तं दृष्ट्वा दीनवदनं क्षुधार्तं द्विजपोतकम् ।।८
दयया तस्य संस्कारं चक्रे मौंज्यादिबंधनम् । वेदानध्यापयामास सरहस्यपदक्रमान् ।।
ददौ वैष्णवं मन्त्रं द्वादशाक्षरमित्युत ।।९
वेदाभ्यासरतस्यास्य विष्णुध्यानपरस्य च । प्रत्यहं पिप्पलादस्य विष्णुः प्रत्यक्षतां ययौ ।।१०
वैनतेयसमारूढो नीलोत्पलदलच्छविः । चतुर्भुजः पीतवासाः शंखचक्रगदाधरः ।।११
स उवाच तदा तुष्टो वरं ब्रूहि यमिच्छसि । तच्छ्रुत्वा नारदमुखं समालोक्य शिशुस्तदा ।।
नारदेनाप्यनुज्ञातो ज्ञानविद्यामयाचत ।।१२
दत्त्वा ज्ञानं सोपदेशं योगाभ्यासं च निर्मलम् । नागारिगमनो विष्णुस्तत्रैवान्तर्हितोभवत् ।।१३
ततो राजन्महाज्ञानी महर्षिः स शिशुस्तदा ! नारदं परिपप्रच्छ केनाहं पीडितो मुने ।।१४
ग्रहेणाग्रहभूतेन बालरूपोऽपि दुःखितः । न मे पिता न मे माता जीवितोस्म्यतिपीडया ।।१५
ब्राह्मण्यं भवता दत्तं दैवान्मम द्विजोत्तम । एतच्छ्रुत्वा शिशोर्वाक्यं कथयामास नारदः ।।१६

की असमर्थता वश एक पुत्र को मार्ग में ही छोड़ दिया । संचित अन्न एवं औषधि के समाप्त होने पर अतिघृणित कर्म करते हुए उन्होंने मार्ग को किसी भाँति पार किया । वह बालक भी दीन-हीन वेप में रुदन करते मार्ग में चारों दिशाओं की ओर देखते एक पीपल वृक्ष के नीचे फल खाकर कूएँ का पानी पीते हुए किसी प्रकार अपना दिन व्यतीत करने लगा । इस भाँति उसने उस आश्रम मण्डल में रह कर अत्यन्त भीषण एवं विपुल तप किया । अनन्तर वेद पारगामी भगवान् नारद एक बार वहाँ आये मलिन मुख एवं क्षुधापीडित उस ब्राह्मण बच्चे को देख कर दयावश मौजीबन्धन (यज्ञोपवीत) आदि संस्कार सुसम्पन्न करके सरहस्य -पद क्रम आदि समेत वेदाध्ययन कराया । पश्चात् द्वादशाक्षर वैष्णव मंत्र भी प्रदान किया । वेदाभ्यास में निमग्न रहने एवं विष्णु के अल्पध्यान करने वाले उस बालक को प्रतिदिन उस पीपल के वृक्ष से निकल कर भगवान् विष्णु का साक्षात् दर्शन होने लगा । गरुड पर सुखासीन्, नील कमल दल की छवि, चार भुजाएँ, पीतवस्त्र, शंख, चक्र एवं गदाधारण करने वाले विष्णु ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उस बालक से कहा—यथेच्छ वर की याचना करो । बालक ने नारद के मुख की ओर देखकर नारद की भी आज्ञा से ज्ञान विद्या (अध्यात्मविद्या) की याचना की । गरुड वाहन भगवान्-विष्णु ज्ञानोपदेश और निर्मल योगाभ्यास प्रदान कर उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये ।४-१३। राजन्! पश्चात् उस बालक ने महाज्ञानी महर्षि होकर एक दिन नारद से पूछा—मुने! मैं किसके द्वारा पीडित हुआ था, ग्रह अथवा अन्य किसी द्वारा शिशु अवस्था में ही अत्यन्त दुःखित हुआ, जबकि मेरे पिता-माता नहीं थे, किन्तु फिर भी पीड़ित होते हुए भी जीवित रहा । द्विजोत्तम! दैवसंयोग से ब्राह्मणत्व तो मुझे आप ने प्रदान किया है । (अन्यथा उससे भी वञ्चित ही रह जाता) । बालक की ऐसी बात सुनकर नारद ने कहा—क्रूर ग्रह शनि के द्वारा

शनैश्चरेण क्रूरेण ग्रहेण त्वं हि पीडितः । पीडितश्च समस्तोऽपि देशोऽयं मंदचारिणा ॥१७
तेनैतत्ते फलं प्राप्तं सैषः सौरिः शनैश्चरः । प्रज्वलन्नतिदर्पेण [1]स्फुरतीव नभस्तले ॥१८
एवमुक्तः शिशुः क्रोधात्प्रजज्वालेवपावकः । आलोक्य गगनाद्भूमौ पातयामास वै शनिम् ॥
पतमानो गिरेः शृङ्गाद्भग्नः खञ्जो बभूव ह ॥१९
धरण्यां पतितं दृष्ट्वा भास्करात्मजमातुरम् । ननर्ति भुजक्षेपैर्नारदो हृष्टमानसः ॥२०-
हर्षाद्देवानथाहूय दर्शयामास तं शनिम् ॥२१
अथ देवास्तथा प्राप्ता ब्रह्मरुद्रेन्द्रपावकाः । शनैः संशमयामासुरूचुश्चेदमृषिं च तम् ॥२२
स्वस्ति तेऽस्तु महाभाग पिप्पलाद महामुने । भद्रं तेऽत्र कृतं नाम नारदेन महर्षिणा ॥
अन्वर्थयुक्तं विप्रेन्द्र जीवितं पिप्पलादनात् ॥२३
भगवन्पिप्पलान्यत्त्वा जीवितोऽसि यतो मुने । ततश्च पिप्पलादेति ख्यातिं लोके गमिष्यसि ॥२४
ये च त्वां पूजयिष्यंति स्नात्वा पुष्पैर्महाऋषिम् ॥२५
इहाश्रमे समभ्येत्य ह्येऽस्मिन्भक्तिभाविताः । सप्तजन्मान्तरं यावत्पुत्रपौत्रानुगामिनः ॥२६
तेषां बाधिकां[2] सत्यं ग्रहपीडा भविष्यति । स्मरिष्यंतोह ये च त्वां पिप्पलादेति नामतः ॥२७
तेषां शनैश्चर कृता पीडा न प्रभविष्यति । क्षमास्वास्य महाभाग निर्दोषोऽयं ग्रहाग्रणीः ॥२८
चरन्वृक्षं शनैरेष शुभाशुभफलप्रदः । हतसाध्या ग्रहाश्चैते न भवंति कदाचन ॥२९
बलिहोमनमस्कारैः शांतिं यच्छंति पूजिताः । अतोऽर्थमस्य दिवसे स्नानमभ्यंगपूर्वकम् ॥३०

तुम और यह समस्त देश पीडित हुआ है । इस मंदचारी शनैश्चर ने ही ऐसा फल प्रदान किया है, जो आकाश में प्रज्वलित होते हुए अभिमान स्थित है । नारद के ऐसा कहने पर उस बालक ने प्रज्वलित अग्नि की भाँति क्रुद्ध होकर आकाश की ओर देखते ही शनि को नीचे गिरा दिया । भास्कर पुत्र शनि को पृथिवी पर गिरा हुआ एवं व्याकुल देख महर्षि नारद हर्ष मग्न होकर भुजाओं को इधर-उधर डुलाते नृत्य करने लगे । पश्चात् देवों को बुलाकर गिरे हुए शनि को दिखाया । ब्रह्मा, रूद्र , इन्द्र, और अग्नि देवों ने शनि को धीरे-धीरे आश्वासन प्रदान कर पश्चात् ऋषि से कहा—महाभाग! पिप्पलाद महामुने! नारद महर्षि द्वारा तुम्हारा बहुत बड़ा कल्याण हुआ । विप्रेन्द्र, भगवन् मुने! पीपल फल खाकर जीवित रहने के नाते आप ने अपने नाम को नामार्थ में भलीभाँति संघटित कर लिया और उसी नाते 'पिप्पलाद' नाम से तुम्हारी लोकप्रसिद्धि होगी । इस आश्रम में आकर जो कोई भक्तिभाव से स्नान करके पुष्पों द्वारा उस महा ऋषि की अर्चना करेगा सात जन्म तक उसे स्वर्ग लोक की प्रप्ति होती रहेगी और ग्रह जनित बाधा कभी नहीं होगी । महाभाग! आप के इस पिप्पलाद नाम का जो कोई स्मरण करेगा, उसे शनि जन्य बाधा नहीं होगी ।१४-२७। अतः इस प्रमुख ग्रह को आप क्षमा प्रदान करें, जो वृक्षों पर धीरे-धीरे चलते शुभाश्रम फल प्रदान करता रहता है तथा हवन करने से कोई ग्रह कभी भी अनुकूल नहीं होते हैं, बलिप्रदान, हवन और नमस्कार द्वारा पूजित होने पर ये सभी ग्रह शांति प्रदान करते हैं अतः इस ग्रह के उद्देश्य से शनि के दिन तेल के अभ्यङ्ग पूर्वक स्नान करके अभ्यङ्गार्थ

---

१. स्फुटित । २. स्थावरकृता ।

कार्यं देयं च [1]विप्राणां तैलमभ्यंगहेतवे । यस्तु संवत्सरं यावत्प्राप्ते शनिदिने नरः ।।३१
तैलं ददाति विप्राणां स्वशक्त्यान्यजनेऽपि च । ततस्संवत्सरस्यांते प्राप्ते तस्य दिने पुनः ।।३२
लोहैस्संघटितं सौरिं तैलमध्ये विनिक्षिपेत् । लोहभाण्डकमध्यस्थं कृष्णवस्त्रयुगच्छदम् ।।३३
कृष्णगोदक्षिणायुक्तं कृष्णकम्बलशायिनम् । तिलतैलेन च स्नानं कृष्णपुष्पैः सुपूजितम् ।।३४
कृष्णगंधैः कृष्णधूपैः कृशरान्नैस्तिलौदनैः । पूजयित्वा सूर्यपुत्रं ब्राह्मणाय निवेदयेत्।।३५
मंत्रेणानेन ब्रह्मर्षे शन्नोदेवीति [1]भक्तिमान् । इतरेषांतु वर्णानां शृणु मन्त्रं द्विजोत्तम ।।३६
क्रूरावलोकनवशाद्भुवनं नाशयिष्यतियो ग्रहो रुष्टः । तुष्टो धनकनकसुखं ददाति सौरिः शनैश्चरः पातु ।।३७
यत्पुरा नष्टराज्याय नलाय प्रददौ किल । स्वप्ने सौरिर्निजं[2] मन्त्रं शृणु कामफलप्रदम् ।।३८
क्रोडं[3] नीलाञ्जनप्रख्यं नीलवर्णसमस्रजम् । छायामार्तण्डसम्भूतं नमस्यामि शनैश्चरम् ।।३९

नमोऽर्कपुत्राय शनैश्चराय नीहारवर्णाजनमेचकाय ।
श्रुत्वा रहस्यं भवकामदश्च फलप्रदो मे भव सूर्यपुत्र।।४०

नमोऽस्तु प्रेतराजाय कृष्णदेहाय वै नमः । शनैश्चराय क्रूराय शुद्धबुद्धिप्रदायिने ।।४१
य एभिर्नामभिः स्तौति तस्य तुष्टो [4]भवाम्यहम् । मदीयं तु भयं तस्य स्वप्नेऽपि न भविष्यति ।।४२
एवमूचे शनिः पूर्वमतस्तं ब्राह्मणे ददेत् । एवमेतद्व्रतं विप्र ये चरिष्यंति मानवाः ।।४३
स्थावरेस्थावरे प्राप्ते वत्सरं यावदेव तु । तेषां शानैश्चरी पीडा देशेऽपि न भविष्यति ।।४४

ब्राह्मण को तेल प्रदान करना चाहिए । जो मनुष्य शनि के दिन पूरे वर्षभर यथाशक्ति तेल दान ब्राह्मण अथवा अन्य जनों को देते रहते हैं और पश्चात् वर्ष की समाप्ति में शनि के दिन शनि की लोहे की मूर्ति को लोहे के पात्र में रखे हुए तेल में स्थापित कर दक्षिणा समेत कृष्णा गौ, काला कम्बल अर्पित करते हुए तैल में स्नान और काले पुष्पों से पूजा करे । कृष्ण गंध, कृष्णधूप, कृशरान्न भक्ति पूर्वक 'शन्नो देवी ति' मंत्र का उच्चारण करते हुए वह मूर्ति ब्राह्मण को सादर अर्पित करे । द्विजोत्तम! इतर जाति के पुरुषो को जिस मंत्र द्वारा वह मूर्ति अर्पित करनी चाहिए मै बता रहा हूँ, सुनो! रुष्ट होने पर अपनी क्रूर दृष्टि द्वारा लोक का विनाश और प्रसन्न होने पर सुवर्ण तथा सुख प्रदान करने वाले सूर्य पुत्र शनि मेरी रक्षा करें । जिस सौरि (शनि) ने पहले समय में राज्य के छूट जाने पर नल को स्वप्न में अपना वह मंत्र बताया था जिससे समस्त कामनाएँ सफल होती हैं तथा नील अञ्जन पर्वत के समान देह, नीलरंग की माला एवं सूर्य की छाया सभी से उत्पन्न होने वाले उस शनैश्चर को मैं नमस्कार करा रहा हूँ । सूर्य पुत्र! मैं उस अर्क पुत्र आप को नमस्कार कर रहा हूँ, जो श्याम वर्ण की चन्द्रिका सा भूषित और अपने रहस्य (मंत्र) के सुनने पर कामनाएँ सफल करते हैं, मुझे उत्तम फल प्रदान करने की कृपा करें । प्रेतराज, कृष्ण उस क्रूर ग्रह शनि को नमस्कार कर रहा हूँ । मेरे इन नामों द्वारा जो मेरी स्तुति करता है मैं उसके ऊपर अत्यन्त प्रसन्न होता हूँ और मेरा भय उसे स्वप्न में भी नहीं होता है ।२८-४२। विप्र! शनि ने ही पहले ऐसा कहा था । अतः ऐसा कह कर वह मूर्ति ब्राह्मण को अर्पित करे । इस व्रत को सुसम्पन्न करने वाले मनुष्यों को, जो पूर्ण वर्ष तक उनकी पीडा कभी नहीं होगी । इतना कह कर समस्त देव वृन्द जिस मार्ग से आये थे, चले

---

१. भक्तितः । २. स्वयम् । ३. कोद्रम् । ४. भवत्यसौ ।

एवमुक्त्वा सुरा : सर्वे प्रतिजग्मुर्यथागतम् । शनैश्चरोऽपि स्वस्थाने ग्रहांते खे प्रतिष्ठितः ।।४५
पिप्पलादोऽपि ब्रह्मज्ञो ब्रह्माज्ञां प्रतिपालयन् । शनैश्चरं तु सम्पूज्य तुष्टाव रचिताञ्जलिः ।।४६
कोणस्थः पिङ्गलो बभ्रुः कृष्णो रौद्रोऽन्तको यमः । सौरिः शनैश्चरो मन्दः प्रीयतां मे ग्रहोत्तमः ।।४७
शनैश्चरमिति स्तुत्वा पिप्पलादो महामुनिः । खे प्रज्वलन्विमानस्थो दृश्यतेऽद्यापि मानवैः ।।४८
इदं शनैश्चराख्यानं ये श्रोष्यन्ति समाहिताः । तेषां कुरुवरश्रेष्ठ शनिः पीडां न दास्यति ।।४९

कृष्णायसेन घटितां ग्रहराजमूर्तिं लोहे निधाय कलशे तिलतैलपूर्णे ।
यो ब्राह्मणाय रविजं प्रददाति भक्त्या पीडा शनैश्चरकृता न हि बाधते तम् ।।५०

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
शनैश्चरव्रतवर्णनं नाम चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ।११४

अथ पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

आदित्यदिननक्तविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

यदारोग्यकरं पुंसां यदनंतफलप्रदम् । व्रतं तद्ब्रूहि गोविन्द सर्वपापप्रणाशनम् ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

यत्तद्विश्वात्मनो धाम परं ब्रह्म सनातनम् । सूर्याग्निचन्द्ररूपेण तत्त्रिधा जगति स्थितम् ।।२

गये और शनि भी आकाश में ग्रहों के मध्य स्थित हुआ । ब्रह्मवेत्ता पिप्पलाद ऋषि ने भी ब्रह्मा की आज्ञा शिरोधार्य कर शनि की अर्चना हाथ जोड़कर उनकी क्षमा याचना की—कोने में स्थिति, पिङ्गल, बभ्रु, कृष्ण वर्ण, रौद्र स्वरूप , यम की भाँति प्राणान्त करने वाले सूर्यपुत्र, ग्रहोत्तम, एवं मन्दगामी शनैश्चर मुझ पर प्रसन्न हों । शनि की इस प्रकार स्तुति करने के नाते महामुनि पिप्पलाद विमान पर बैठे आज भी आकाश में मनुष्यों को दिखायी देते हैं । शनि के इस आख्यान को सावधानतया सुननें वाले व्यक्ति शनि पीडा से पीडित नहीं होते हैं । इस प्रकार जो कोई भक्ति पूर्वक शनि के दिन ग्रहराज शनि की लौहमूर्ति तिलसमेत तैल पूर्ण लोहे के पात्र में स्थापित एवं पूजित कर ब्राह्मण के समर्पित करता है उसे शनि-पीडा नहीं होती है ।४३-५०।

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
शनि व्रत वर्णन नामक एक सौ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।११४।

अध्याय ११५

आदित्य के दिन नक्त व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—गोविन्द! मनुष्यों को आरोग्य एवं अनन्त फल की प्राप्ति पूर्वक उनके समस्त पातकों को नष्ट करने वाले व्रत मुझे बताने की कृपा कीजिये ।१

श्रीकृष्ण बोले—कुरुनन्दन! सनातन परब्रह्म विश्वात्मा (विराट् रूप) भगवान् का धाम है,

तमाराध्य पुमान् किं न प्राप्नोति कुरुनन्दन । तस्मादादित्यवारेण सदा नक्ताशनो भवेत् ॥३
उत्पद्यते यदा भक्तिर्भानोरुपरि शाश्वती । तदारभ्य सदा कार्यं नक्तमादित्यवासरे ॥४
पूर्वोक्तविधिना चैव पूजयित्वा द्विजोत्तमान् । ततोऽस्तसमये भानो रक्तचन्दनपङ्कजम् ॥५
विलिख्य द्वादशदलं पूज्य सूर्येति पूर्वतः । दिवाकरं तथाग्नेये विवस्वंतमतः परम् ॥६
भगं तु नैर्ऋते देवं वरुणं पश्चिमे दले । महेन्द्रं मारुतदले आदित्यं तु तथोत्तरे ॥७
शांतमीशानभागे तु नमस्कारेण विन्यसेत् । कर्णिकापूर्वपत्रे[1] तु सूर्यस्य तुरगान्न्यसेत् ॥८
दक्षिणे यमनामानं मार्तंडं पश्चिमे दले । उत्तरेण रविं देवं कर्णिकायां तु भास्करम् ॥९
अर्घ्यं दद्यात्ततः पार्थ सतिलारुणचन्दनम् । फलाक्षतयुतं तद्वदिमं मंत्रमुदीरयेत् ॥१०
कालात्मा सर्वभूतात्मा वेदात्मा विश्वतोमुखः । यस्मादग्नींदुरूपस्त्वमतः पाहि प्रभाकर ॥११
अग्निमीले नमस्तुभ्यमिषे त्वोर्जे च भास्करे । अग्र आयाहि वरद नमस्ते ज्योतिषां पते ॥१२
अर्घ्यं दत्त्वा विसर्ज्याथ निशि तैलविवर्जितम् । भुञ्जीत भावितमना भास्करं संस्मरन् मुहुः ॥१३
प्राक्तनेऽह्नि शनौ चैव तैलाभ्यङ्गं विवर्जयेत् । वत्सरांते कारयित्वा काञ्चनं कमलोत्तमम् ॥१४
पुरुषं च यथाशक्त्या कारयेद्द्विभुजं तथा ॥१५

सुवर्णशृंगीं कपिलां महार्घ्यां रौप्यखुरां कांस्यदोहां सवत्साम् ।
पूर्णे गुडस्योपरि ताम्रपात्रे निधाय पद्मं च ततो निदध्यात् ॥१६

और वही सूर्य, अग्नि एवं चन्द्रमा रूप से इस जगत् में स्थित है, तो उसकी आराधना द्वारा मनुष्य को क्या नहीं प्राप्त होता है? इसलिए रविवार के दिन सदैव नक्त भोजी होना चाहिए। (मनुष्य के हृदय में) सूर्य की शाश्वती भक्ति ज़ब उत्पन्न हो जाये, उसी समय से आरम्भ कर सदैव रविवार के दिन नक्त भोजी रहना चाहिए।२-३। पूर्वोक्त विधान द्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मणों की अर्चना करके पुनः सूर्य के अस्त होते समय भानु के द्वादश दल कमल की रक्त चन्दन द्वारा रचना करके, 'सूर्य को नमस्कार है' से पूर्व की ओर, 'दिवाकर को नमस्कार है' से अग्नि कोण, विवस्वान को नमस्कार है, से दक्षिण दिशा, भग को नमस्कार है, नैर्ऋत्य कोण, वरुण को नमस्कार है, से पश्चिम, महेन्द्र को नमस्कार है, से वायु कोण, आदित्य को नमस्कार है, जो उत्तर, शांत को नमस्कार है, से ईशान कोण में उन-उन देवों को स्थापित करके कर्णिका के पूर्वभाग में सूर्य के घोड़ों की स्थापना करे। दक्षिण दल में यम, पश्चिम दल में मार्तण्ड, उत्तर में रवि, और कर्णिका में भास्कर देव को तिल, रक्त चन्दन, फल और अक्षत समेत अर्घ्य प्रदान करते समय इस मंत्र का उच्चारण करे— प्रभाकर! आप कालात्मा, सर्वभूतात्मा, वेदात्मा, विश्वतो मुख एवं अग्नि और चन्द्र रूप हैं अतः मेरी रक्षा करें।४-११। अग्निमीले और इषेत्वोर्ज भास्कर को नमस्कार है, परदायक अग्नि यहाँ आने की कृपा कीजिये। मै ज्योतिष्पति को नमस्कार कर रहा हूँ। इस प्रकार अर्घ्य देकर विसर्जन करे और तेल-क्षार रहित नक्त भोजन करके करके प्रेमभाव से भास्कर देव का बार-वार स्मरण करता रहे। उसके पूर्व शनि के दिन तैलाभ्यंग (तैलमर्दन कभी न करे)। पुनः वर्ष की समाप्ति में कमल और दो बाहु वाले) पुरुष की यथाशक्ति सुवर्ण प्रतिमा बनवाकर कपिला गौ समेत, जिसकी सींग सुवर्ण से और खुर

---

१. पूर्वभागे तु ।

गां कल्पयित्वा पुरुषं सपद्मं दद्यादनेकव्रतनायकाय।
अव्यङ्गरूपाय जितेन्द्रियाय कुटुम्बिने [1]शुद्धमनुद्धताय ॥१७
नमोस्तु ऋक्सामयजुर्विधात्रे पद्मप्रबोधाय जगत्सवित्रे।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने च त्रिलोकनाथाय नमो नमस्ते ॥१८
इत्यनेन विधानेन वर्षमेकं तु यो नरः। नक्तमादित्यवारेण कुर्यात्स नीरुजो भवेत् ॥१९
धनधान्यसमायुक्तः पुत्रपौत्रसमन्वितः। मर्त्ये स्थित्वा चिरं कालं सूर्यलोकमवाप्नुयात् ॥२०
कर्मसंक्षयमवाप्य पार्थिव शोकदुःखभयरोगवर्जितः।
स्यादमित्रकुलकालसन्निभो धर्ममूर्तिरमितौजसा युतः ॥२१
या च भर्तृगुरुदेवतत्परा वेदमूर्तिदिननक्तमाचरत्।
सापि लोकममरेशपूजिता याति कौरव रवेर्न संशयः ॥२२
यः पठेदथ शृणोति वा नरः पश्यतीत्थमथ वानुमोदयेत्।
सोऽपि शक्रभवने दिवौकसैः कल्पकोटिशतमेकमीड्यते ॥२३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवाद आदित्यदिननक्तविधिवर्णनं नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ।११५

चाँदी से सुसज्जित हो, तथा कांसे की दोहनी और वत्सा युक्त हो, गुड के ऊपर ताँबे के पात्र में कमल सहित रखे। पूजनोपरांत इन सभी वस्तुओं को उस ब्राह्मण के लिए अर्पित करनी चाहिए जो अनेक व्रतों को सुसम्पन्न किये, अव्यंग रूप, इन्द्रिय संयमी सपरिवार, शुद्ध और शांत मूर्ति हो। पश्चात् क्षमायाचना करे—ऋग्वेद, सामवेद, एवं यजुर्वेद के विधाता, कमलों को विकसित करने वाले, जगत् के सविता, त्रयी (तीनों वेद) मय, त्रिगुणात्मक और तीनों लोकों के स्वामी (सूर्य) को मैं बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ। इस विधान द्वारा एक वर्ष तक इस व्रत को सुसम्पन्न करने एवं रविवार को नक्त भोज करने वाले पुरुष नीरोग होता है। धनधान्य सम्पन्न होकर पुत्र-पौत्र समेत इस धरातल पर चिर सुख का अनुभव करने के उपरांत उसे सूर्य-लोक की प्राप्ति होती है। कर्मो के क्षीण होने पर वह शोक, दुःख, भय एवं रोग हीन, शत्रुओं का काल, धर्म मूर्ति और अमित तेज युक्त राजा होता है।१२-२१। कौरव! जो भर्ता, गुरु और देवाराधन में तत्पर रहने वाली स्त्री भी वेदमूर्ति सूर्य देव के दिन नक्त व्रत रहती है देवराज इन्द्र द्वारा उसकी भी पूजा होती इसमें संशय नहीं। इस आख्यान को पढ़ने सुनने, देखने या अनुमोदन करने वाला पुरुष भी इन्द्र के भवन में सौ कोटि कल्प देवों द्वारा सुपूजित होता है।२२-२३

श्रीभविष्यमहापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में आदित्य के दिन नक्त-व्रत वर्णन नामक एक सौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त।११५।

---

१. सर्वमनुव्रताव।

अथ षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

संक्रांत्युद्यापनवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथान्यदपि ते वच्मि संक्रांत्युद्यापने फलम् । यदक्षयं परं लोके पुराणकवयो विदुः ॥१
विषुवे अयने वापि संक्रांतिव्रतमारभेत् । पूर्वेद्युरेकभक्तेन दन्तधावनपूर्वकम् ॥२
संक्रांतिवासरे प्राप्ते तिलैः स्नानं विधीयते । अभिसंक्रमणं भूमौ चन्दनेनाष्टपत्रकम् ॥३
पद्मं सकर्णिकं कुर्यात्तस्मिन्नावाहयेद्रविम् । कर्णिकायां न्यसेत्सूर्यमादित्यं पूर्वतस्ततः ॥४
नमः सप्तार्चिषेऽग्नेये याम्ये रुङ्मण्डलाय च । नमः सवित्रे नैर्ऋत्ये वरुणं वारुणे यजेत् ॥५
सप्तसप्तिं च वायव्ये पूजयेद्भास्वतां पतिम् । मार्तंडमुत्तरे विष्णुमीशाने विन्यसेद्दले ॥६
गन्धमाल्यफलैर्भक्ष्यैः स्थण्डिले पूजयेत्ततः । चन्दनोदकपुष्पैस्तु दत्वार्घ्यं विन्यसेद्भुवि ॥७
नमस्ते विश्वरूपाय विश्वधाम्ने स्वयंभुवे । नमोऽनन्तस्ते वरद ऋक्सामयजुषां पते ॥८
अनेन विधिना दत्वा भानवेऽर्घ्यं नरोत्तम । द्विजाय सोदकं कुम्भं घृतपात्रं हिरण्मयम् ॥९
कमलं च यथाशक्त्या कारयित्वा निवेदयेत् । विधिनानेन कर्तव्यं मासि मासि नरोत्तम ॥१०
एकभक्ताशनैः पुंभिः सर्वमेतद्यथाविधि । एकस्मिन्नह्नि कर्तव्यं वत्सरांतेऽथ वा पुनः ॥११

अध्याय ११६

संक्रान्ति उद्यापन का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें एक अन्य संक्रान्ति उद्यापन का फल बता रहा हूँ, जिसे पुराणवेत्ता कवियों ने इस लोक में अक्षय और परमोत्तम बताया है। विपुव अथवा अयन के समय संक्रान्ति व्रत आरम्भ करे और उसके पूर्व के दिन एक भक्त (एकाहार) करे। पश्चात् संक्रान्ति वाले दूसरे दिन दातून करने से ही उस के नियम को पालन करते हुए तिल-स्नान करे और भूमि में चन्दन द्वारा कर्णिका समेत कमल की रचना करके कर्णिका में सूर्य का और उसमें रवि का आवाहन इस भाँति करे—'आदित्य को नमस्कार है' पूर्व की ओर, 'सप्तर्चि को नमस्कार है' अग्नि कोण, 'रोगध्वंश को नमस्कार है' नैर्ऋत्य कोण, 'वरुण को नमस्कार है' पश्चिम दिशा, 'भास्वत्पति सप्तसप्ति को नमस्कार है' वायु कोण, 'मार्तण्ड को नमस्कार है' उत्तर की ओर और 'विष्णु को नमस्कार है' कह कर दल के ईशान कोण में आवाहित करें।१-६। पश्चात् गंध, माला, फल एवं भक्ष्य पदार्थो द्वारा वेदी पर उनकी अर्चना और चन्दन पुष्प समेत जल द्वारा अर्घ्य प्रदान कर क्षमा प्रार्थना करे—विश्व रूप, विश्वधाम और स्वयंभू को नमस्कार है तथा ऋक्, साम एवं यजु के अधीश्वर और वरदायक सूर्य को नमस्कार है। नरोत्तम! इस विधान द्वारा भानु देव को अर्घ्य प्रदान करने के अनन्त जलपूर्ण कलश घृतपूर्ण पात्र, सुवर्ण और वह सुवर्ण की प्रतिमा सविधान ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करे और इसी भाँति प्रतिमास करता रहे। नरोत्तम! पूर्व दिन एकाहारी रहकर यथा विधान एक दिन पूजन करके पुनः वर्ष की समाप्ति में पूजन करे।७-११। कौंतेय! उस दिन घृत पूर्ण

कौन्तेय तस्मिन्घृतपायसेन संपूज्य वह्निं द्विजपुंगवाय ।
कुम्भान्पुनर्द्वा दशधेनुयुक्तान्दौर्गत्ययुक्तः कुशलामथैकाम् ॥१२
निवेदयेद्ब्राह्मणपुङ्गवाय हेमीं च दद्यात्पृथ्वीं ससस्याम् ।
शक्त्याथ रौप्यामथ वापि ताम्रीं पैष्टीमशक्तो वसुधां विधाय ॥१३
सौवर्णसूर्येण समं प्रदद्यान्न वित्तशाठ्यं पुरुषोऽत्र कुर्यात् ।
कुर्वन्नधो याति नरेन्द्रचन्द्रयावन्महेन्द्रप्रमुखाः सुरेशाः ॥१४
पृथ्वी च यावत्सकुलाचला च यावच्च सूर्यानिलवह्निचन्द्राः ।
तावत्सगन्धर्वकुलैरशेषैः संपूज्यते भारत नाकपृष्ठे ॥१५
ततस्तु कर्मक्षयमाप्य सप्तद्वीपाधिपः स्यात्सुकुलप्रसूतः ।
दिव्यैः सुखैर्युक्तवपुः सभार्यः प्रसूतपुत्रान्वयबन्धुवर्गः ॥१६
इति पठति शृणोति योऽतिभक्त्या विधिमखिलं रविसंक्रमेषु पुण्यम् ।
मतिमपि च ददाति सोऽपि देवैरमरपतिप्रमुखैर्मृतस्तु पूज्यः ॥१७

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
संक्रान्त्युद्यापनवर्णनं नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ।११६

पायस की आहुति द्वारा अग्नि को तृप्त कर द्वादश कलश, उतनी ही गौ अथवा दरिद्रता का नाते एक ही गौ, सुवर्ण , चाँदी, ताँबे अथवा अशक्ततया पिष्टी की पृथ्वी सूर्य के साथ ही ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करना चाहिए । नरेन्द्र पूजनं आदि में किसी भाँति कृपणता न करे अन्यथा इन्द्र आदि देवों के समय तक उसकी अधोगति होती रहेगी । भारत! और उदार-भाव से पूजन करने पर पर्वतों समेत यह पृथ्वी, सूर्य, वायु अग्नि, और चन्द्रमा के समकालीन निखिल गंधर्वो द्वारा स्वर्ग में उसकी अर्चना होती रहेगी । पश्चात कर्म के क्षय होने पर उत्तम कुल में उत्पन्न होकर सातो द्वीप का अधीश्वर होता है और दिव्य शरीर धारण कर पुत्र-स्त्री और अपने वन्धुवर्गों समेत दिव्य सुख का अनुभव करता है । इस प्रकार इस आख्यान को संक्रान्ति के दिन भक्ति पूर्वक पढ़ने, सुनने, एवं सम्मति प्रदान करने वाले प्राणी देहावसान के समय प्रमुख देव नायकों द्वारा स्वर्ग में पूजित होता है ।१२-१७

श्रीभविष्यमहापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
संक्रांन्ति उद्यापन वर्णन नामक एक सौ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।११६।

अथ सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

विष्टिव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

कृष्ण केयं जनैः सर्वैर्विष्टिर्भद्रेति चोच्यते । कस्यात्मजेयं किंरूपा पूज्यते च कथं जनैः ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

सुता मार्तण्डदेवस्य छायया जनिता पुरा । शनैश्चरस्य सोदर्या भगिन्यतिभयंकरी ॥२
सा जातमात्रा भुवनं ग्रस्तुं समुपचक्रमे । कृष्णा करालवदना सितदंष्ट्रोर्ध्वमूर्द्धजा ॥३
निर्याति यदि कार्येण कश्चित्तस्य पुरः स्थिता । विघ्नं करोति स्वपतो भुञ्जानस्य स्थितस्य वा ॥४
यज्ञविघ्नकरी रौद्रा समाजोत्सवनाशिनी । नित्योद्वेगकरी रौद्रा विनाशयति सा जगत् ॥५
तां तु दुर्विनयासक्तां दृष्ट्वा देवो दिवाकरः । चिन्तयामास कस्यापि यच्छाम्येनां सुमध्यमाम् ॥६
कन्यादुर्विनयाच्चेह पिता दोषेण गृह्यते । युवत्यास्तु ततो भर्ता तस्माद्भर्तृगृहं नयेत् ॥७
विचिन्त्यैवं सुतां भद्रां यस्य यस्य प्रयच्छति । ते नमंति क्षणेनैव सुरराक्षसकिन्नराः ॥८
मण्डपं मण्डपारम्भे भंक्त्वा भीषयते जनम् । विवस्वांश्चिन्तयाविष्टः कस्येयं प्रतिपाद्यताम् ॥९
विरूपा दुष्टहृदया स्वेच्छाचारविहारिणी । दत्ताप्येषा न दोषाय भवतीह कथंचन ॥१०

अध्याय ११७

विष्टिव्रतवर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण! सब लोग जिसे विष्टि और भद्रा कहते हैं, वह क्या वस्तु है, किससे उत्पन्न एवं उसका रूप कैसा है और क्यों सभी मनुष्य उसकी पूजा करते हैं।१

श्रीकृष्ण बोले—सूर्य देव की छाया नामक पत्नी द्वारा यह पहले ही उत्पन्न हुई थी, जो शनैश्चर की अतिभीषण भागिनी है। यह उत्पन्न होते ही तीनों भुवन को अपने मे विलीन करने के लिए तैयार हो गयी थी। काले वर्ण, करालमुख, श्वेत दाँत और ऊपर का उठे हुए केश वाली यह जो कोई कार्य वश कहीं बाहर निकलता है, उसके सामने खड़ी हो जाती है और शयन करने, खाते, अथवा बैठते समय उसका विघ्न करती है। यह रौद्रस्वरूपा यज्ञध्वंस और समाजोत्सव का विनाश करती है तथा भीषण स्वरूप से नित्य उद्वेग उत्पन्न करती हुई इस भाँति जगत् का नाश करती है। इस दुर्विनीता को देख कर दिवाकर देव चिंतित होने लगे कि इसे किसे सौंपा जाय! क्योंकि कन्या के अविनीता होने पर पिता का ही दोष बताया जाता है और युवती होने पर पालनार्थ पति की आवश्यकता होती है इसलिए उसे पति के घर भेजा जाता है।२-७। इस प्रकार विचार कर वे अपनी वह भद्रा कन्या जिस किसी को सौंपते थे वे देव, राक्षस अथवा किन्नर गण उसी समय नमस्कार करते थे और उसके अपनाने की स्वीकृति प्रदान करते थे कारण कि मण्डप के आरम्भ होते ही यह मण्डप को छिन्नभिन्न कर लोगों को भयभीत करती थी। विवस्वान् (सूर्य) देव अत्यन्त व्याकुल होकर सोच रहे थे कि इसका पाणिग्रहण किसके साथ किया जाय, क्योंकि यह विरूपा,

वितर्कयन् यावदेवमास्ते देवो दिवस्पतिः । तावत्तया जगत्सर्वं दुष्टया समभिद्रुतम् ।।११
अथाजगाम सवितुः पार्श्वे ब्रह्माऽण्डसंभवः । कार्यं निवेदयामास विष्टेर्दौष्ट्यमशेषतः ।।१२
भास्करस्तमुवाचाथ ब्रह्माणं भुवनेश्वरम् । भवान्कर्ता च हर्ता च कस्मादेवं प्रभाषसे ।।१३
एवमुक्तस्तदा ब्रह्मा भास्करेणामितद्युतिः[1] । उवाच विष्टिमानाय्य शृणु भद्रे मयोदितम् ।।१४
करणैः सह वर्तस्व बवबालवकौलवैः । सप्तमेऽर्धदिने प्राप्ते यदभीष्टं कुरुष्व तत् ।।१५
यात्राप्रवेशमाङ्गल्यकृषिवाणिज्यकारणात् । भक्षयस्वाभिमुखगान्नरानुन्मार्गगामिनः ।।१६
उद्वेजनीयो नो हि जनो भवत्या दिवसत्रयम् । पूज्या सुरासुराणां त्वं दिवसार्द्धे भविष्यसि ।।१७
उल्लंघ्य ये प्रवर्तन्ते भद्रे त्वां निर्भया नराः । तेषां विनाशयाशु त्वं कार्यमार्ये सुखी भव ।।१८
एवमुक्त्वा गतो ब्रह्मा भद्रापि भुवनत्रयम् । बभ्रामोद्भ्रांतहृदया भीषयन्ती सुरासुरान् ।।१९
एवमेषा समुत्पन्ना विष्टिरिष्टविनाशिनी । निवेदिता ते कौंतेय तस्मात्तां परिवर्जयेत् ।।२०

असितजलदवर्णा दीर्घनासोग्रदंष्ट्रा विपुलहनुकपाला[2] पिण्डिकोद्बद्धजङ्घा ।
अनलशतसहस्रं चोद्गिरन्ती समंतात्पतति भुवनमध्ये कार्यनाशाय विष्टिः ।।२१
भानोः सुता केतुशताग्रजाता। कृष्णा कुमूर्तिः सततं कुचेला ।
देवैर्नियुक्ता करणार्थसंस्था विष्टिस्तु सर्वत्र विवर्जनीया ।।२२

द्रष्टा, एवं यथेच्छ आचार और बिहार, करने वाली है और किसी को देने पर भी इसका दोष नहीं माना जायगा (प्रत्युत मेरा ही समझा जायगा) । दिन नायक देव इस प्रकार जब तक विचार मग्न थे उसी बीच इस दुष्टा ने सम्पूर्ण जगत् को आक्रान्त कर लिया ।८-११। अनन्तर अण्ड कटाह से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा सूर्य के समीप आकर उस विष्टि (भद्रा) नामक कन्या की समस्त दुष्टता की चर्चा करने लगे । उसे सुनकर भास्कर देव ने भुवनेश्वर ब्रह्मा से कहा—आप (इस जगत् के) कर्ता और हर्ता हैं इसलिए आप यह क्या कह रहे हैं! उनके ऐसा कहने पर अमेय तेज वाले ब्रह्मा ने उनकी कन्या विष्टि को बुलवाकर उससे कहा—भद्रे! मेरी बात सुनो! बव, बालव और कौलव नामक करणों के साथ निवास करो तथा सातवें अर्ध-दिन में ही यथेच्छ कार्य करना । यात्रा, (गृह) प्रवेश आदि, मंगल कार्य, कृषी अथवा व्यापारार्थ स्वामि मुख आये हुए मनुष्यों का भक्षण करो जो कुपथगामी कहे जाते हैं । तीन दिन मनुष्यों को उद्वेजित न करना, दिन के आधे समय तक सुर-असुर तुम्हारी पूजा करेंगे । भद्रे! जो मनुष्य निर्भय होकर तुम्हारा उल्लंघन करके कार्य आरम्भ करें, उनका शीघ्र विनाश करना और सदैव सुखी रहो । इतना कह कर ब्रह्मा चले गये और भद्रा ने उद्भ्रान्त होकर देवों और राक्षसों को भयभीत करती हुई तीनों लोकों का भ्रमण किया । कौंतेय! इस प्रकार मैंने इष्टविनासिनी इस भद्रा की जन्म कथा सुना दी इसलिए इसका अवश्य त्याग करना चाहिए । तीनों लोकों में चारों ओर सैकड़ो एवं सहस्रों अग्नि का वमन करती विचरती हुई यह विष्टि कार्य-विनाश करती हैं, जो काले मेघ के समान वर्ण, दीर्घ नासिका (लम्बी नाक), तेज और बड़े दाँत, विशाल हनु (ठुन्डी) और कपोल, तथा पेडू में बंधे हुए जंघे वाली दिखायी देती है । भानु के केतु आदि सैकड़ों सन्तानों में यह कृष्ण सर्व प्रथम उत्पन्न हुई है, जो कुरचप एवं कुवेला रूप है । देवों ने इस विष्टि को करण के साथ रहने के लिए नियुक्त किया है किन्तु सर्वत्र यह त्याज्य

---

१. महद्युतिः । २. विपुलहनुकपालो ।

मुखे तु घटिकाः पञ्च द्वे कण्ठे तु सदा स्थिते । हृदि चैकादश प्रोक्ताश्चतस्रो नाभिमंडले ॥२३
कट्यां पञ्चैव विज्ञेयास्तिस्रः पुच्छे जयावहाः । मुखे कार्यविनाशाय ग्रीवायां धननाशिनी ॥२४
हृदि प्राणहरा ज्ञेया नाभ्यांतु कलहावहा । कट्यामर्थपरिभ्रंशो विष्टिपुच्छे ध्रुवो जयः ॥२५
पृथिव्यां यानि कार्याणि सुशुभान्यशुभानि च । तानि सर्वाणि सिद्ध्यंति विष्टिपुच्छे न संशयः ॥२६
धन्या दधिमुखी भद्रा महामारी खरानना । कालरात्रिर्महारुद्रा विष्टिश्च कुलपुत्रिका ॥२७
भैरवी च महाकाली असुराणां क्षयंकरी । द्वादशैव तु नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ॥२८
न च व्याधिर्भवेत्तस्य रोगी रोगात्प्रमुच्यते । ग्रहाः सर्वेऽनुकूलाः स्युर्न च विघ्नादि जायते ॥२९
रणे राजकुले द्यूते सर्वत्र विजयी भवेत् ॥३०
यश्च पूजयते नित्यं शास्त्रोक्तविधिना नरः । तस्य सर्वार्थसिद्धिस्तु भवतीह न संशयः ॥३१
येनोपवासविधिना व्रतेन च [1]यशस्विनी । पूजिता [2]तुष्टिमभ्येति तदेव कथयामि ते ॥३२
यस्मिन्दिने भवेद्भद्रा तस्मिन्नहनि भारत । उपवासस्य नियमं कुर्यान्नारी नरोऽथ वा ॥३३
यदि रात्रौ भवेद्विष्टिरेकभुक्तं दिनद्वयम् । कार्यं तेनोपवासः स्यादिति पौराणिकी श्रुतिः ॥३४
प्रहरस्योपरि यदा स्याद्विष्टिः प्रहरत्रयम् । तत्रोपवासः कर्तव्य एकभुक्तमतोऽन्यथा ॥३५
सर्वौषध्युदकस्नानं सुगन्धामलकैरथ । नद्यां तडागेऽथ गृहे स्नानं सर्वत्र शस्यते ॥३६
देवान्पितॄन्प्रीणयित्वा ततो दर्भमयीं शुभाम् । विष्टिं कृत्वा पुष्पधूपैर्नैवेद्येन च पूजयेत् ॥३७

करने योग्य है ।१२-२२। मुख में दशघड़ी, कण्ठ में सदैव हृदय में एकादश (ग्यारह), नाभिमण्डल में चार, करि में पाँच और पूँछ में तीन घड़ी निवास करती है । मुख में प्राण का अपहरण, नाभि में कलह, कटि में अर्थनाश और पूंछ में रहने से निश्चित जय प्रदान करती है । पृथ्वी में जितने शुभ अथवा अशुभ कार्य हैं विष्टि के पुच्छ निवास करने पर वे सब निश्चय सिद्धि होते हैं इसमें संदेह नहीं । धन्या, दधिमुखी, भद्रा, महामारी, खरानना, कालरात्रि, महारुद्रा, विष्टि, कुलपुत्रिका, भैरवी, महाकाली, और असुरक्षया भद्रा के इन बारह नामों को प्रातः काल शय्या से उठते ही जो पढ़ता है, उसे कोई व्याधि नहीं होती है, उस रोगी को रोग से शीघ्र मुक्ति हो जाती है, सभी ग्रह अनुकूल हो जाते हैं विघ्न-बाधा कभी नहीं होती है । रणस्थल, राजकुल, द्यूत क्रीडा आदि सर्वत्र निश्चित विजय प्राप्त होती है ।२३-३०। शास्त्र-विधान द्वारा इसकी पूजा करने वाले मनुष्य की सर्वार्थ सिद्धि होती है इसमें संशय नहीं । भारत! जिस उपवास विधान द्वारा व्रातनुष्ठान में पूजित होने पर यह यशस्विनी (भद्रा) प्रसन्न होती हैं, तुम्हें बता रहा हूँ (सुनो!) नर-नारी सभी को भद्रा के दिन उपवास के नियम-पालन आरम्भ करना चाहिए । यदि भद्रा रात्रि में हो, तो (पूर्व-पर) दोनों दिन एकाहारी रहना चाहिए इसे भी उपवास कहा जाता है, ऐसी पौराणिकी जनश्रुति है और एक प्रहर से अधिक तीन प्रहर तक यदि भद्रा रहे तो उस दिन उपवास रहना चाहिए अन्यथा एकाहार करे । अनन्तर समस्त औषध मिश्रित जल से स्नान करे, जिसमें सुगंध और आँवला पड़ा हो । यदि नदी अथवा सरोवर या कूप स्नान सुलभ हो तो अत्युत्तम, क्योंकि यह स्नान परमोत्तम बताया गया है ।३१-३६। स्नान, देव-पितृ तर्पण कर्मों को सुसम्पन्न कर विष्टि की कुश की मूर्ति बनाकर पुष्प, धूप नैवेद्य आदि द्वारा सविधान उसकी अर्चना करे

१. पयस्विनी । २. पुष्टिम् ।

होमं कृत्वा [1]विष्टिनामैरष्टोतरशतं ततः । भुञ्जीत दत्त्वा विप्राय तिलान् पायसमेव च ।
सतिलां कृशरां भुक्ता पश्चाद् भुञ्जीत कामतः ॥३८
छायासूर्यसुते देवि विष्टिरिष्टर्थदायिनि । पूजितासि यथाशक्त्या भद्रे भद्रप्रदा भव ॥३९
उपोष्य विधिनानेन दश सप्त यथाक्रमम् । उद्यापनं ततः कुर्यात्पूर्ववत्पूज्य भामिनीम् ॥४०
स्थापयित्वायसे पीठे कृशरान्नं निवेद्य च । परिधाप्य कृष्णयुगं स्तुत्वा मंत्रेण तां पुनः ॥४१
ब्राह्मणाय पुनर्दद्याल्लोहं तैलं तिलांस्तथा । कृष्णां सवत्सां गामेकां तथैकं कालकंबलम् ।
दक्षिणां च यथाशक्त्या दत्त्वा भद्रां विसर्जयेत् ॥४२
य एवं कुरुते पार्थ सम्यग्भद्राव्रतं नरः । विघ्नो न जायते तस्य कार्यारम्भे कदाचन ॥४३
राक्षसाश्च पिशाचा वा पूतनाशाकिनीग्रहाः । न पीडयन्ति तं मर्त्यं यो भद्राव्रतमाचरेत् ॥४४
न चैवेष्टवियोगः स्यान्न हानिस्तस्य जायते । देहान्ते याति सदनं भास्करस्य न संशयः ॥४५
सूर्यात्मजातिदयिता भगिनी शनेर्या मर्त्ये भ्रमत्यतिरथा करणक्रमेण ।
तां कृष्णभासुरमुखीं समुपोष्य विष्टिमिष्टार्थसिद्धिमबुधोऽपि पुमानुपैति ॥४६
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
विष्टिव्रतवर्णनं नाम सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ।११७

और आहुति प्रदान करके तिल और पायस ब्राह्मणको अर्पित करे। अनन्तर तिलसमेत कृशरान्न (खिचड़ी) का भोजन करके पीछे यथेच्छ वस्तु का भोजन करे। उसकी क्षमा प्रार्थना इस भाँति करे—छाया और सूर्य की पुत्रि, देवि! विष्टि! तुम अभीष्ट सिद्धि करती हो, मैंने तुम्हारी यथा शक्ति पूजा की है अतः मेरा कल्याण करने की कृपा करो। इस विधान द्वारा क्रमशः सत्रह उपवास कर लेने के उपरांत पूर्व की भाँति उस भागिनी की अर्चना पूर्वक उद्यापन कार्य सुसम्पन्न करे—लोहे के आसन पर उसे स्थापित और काले चार वस्त्रों से आच्छन्न करके समंत्रक पूजन स्तुति करे। पश्चात् कृशरान्न (खिचड़ी), लोह, तिल, तैल, सवत्सा कृष्णा गौ, काला कम्बल और यथा शक्ति दक्षिणा से उसे सुसम्मानितकरे तथा वह सब वस्तु ब्राह्मण को अर्पित करके भद्रा व्रत को सुसम्पन्न करता है उसके कार्यारम्भ में कभी-भी विघ्न नहीं होता है। भद्रा व्रत के सुसम्पन्न करने वाले प्राणी को राक्षस, पिशाच, पूतना, शाकिनी, तथा गृहगण कभी पीडित नहीं करते हैं, न उसे कभी इष्ट वियोग हो और न उसकी कभी हानि ही सम्भव हो सकती है। देहावसान के समय उसे भास्कर लोक प्राप्त होता है। इस प्रकार उस भद्रा की, जो सूर्य की दयिता पुत्री और शनि की भगिनी होकर इस मर्त्य लोक में (वव) आदि करणों के साथ क्रमशः रथ का अतिक्रमण करने वाले वेग से विचरती है और जिसका मुख कृष्ण वर्ण एवं प्रदीप्त है, उपवास रह कर अर्चना करने पर मूढ़ पुरुष को भी इष्ट सिद्धि हो जाती है।३७-४६
श्रीभविष्य महापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
विष्टि व्रत वर्णन नामक एक सौ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त।११७।

---

१. आर्षमेतत्।

अथाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

अगस्त्यव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अगस्त्यव्रतमस्त्यन्यत्सर्वपापप्रणाशनम् । तच्छृणुष्व महीपाल कथ्यमानं मयानघ ॥१

युधिष्ठिर उवाच

शृणोमि ब्रूहि मे कृष्ण देवर्षेस्तस्य चेष्टितम् । जन्म चैवार्घ्यदानं च कालमुद्गमनस्य च ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

मित्रश्च वरुणश्चैव पूर्वमेतौ सुरोत्तमौ । मंदरस्य समीपे तु चेरतुर्विपुलं तपः ॥३
तयोः संक्षोभणार्थाय वासवेन वराप्सराः । उर्वशी प्रेषिता तत्र रूपौदार्यगुणान्विता ॥४
तस्याः संदर्शनादेव क्षुभितौ तौ सुरोत्तमौ । विकारं मनसो बुद्धा कुंभे वीर्यं ससर्जतुः ॥५
निमेः शापात्तत्र जातो वशिष्ठो भगवानृषि । अनन्तरमगस्त्यस्तु जातो दिव्यस्तपोधनः ॥६
मलयस्यैकदेशे तु वैखानसविधानतः । सभार्यः संवृतो विप्रैस्तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥७
आस्तां दैत्यौ पुरा दुष्टावादौ कृतयुगस्य तु । नाम्ना इल्वलवातापी देवब्राह्मणकण्टकौ ॥८
तयोरेकोऽभवन्मेषो द्वितीयो भोज्यदायकः । श्राद्धक्रमेण तेनैवं बहवो नाशिता द्विजाः ॥९

अध्याय ११८

अगस्त्यव्रतवर्णन

श्री कृष्ण बोले—महीपाल, अनघ! समस्त पापों को विनष्ट करने वाले एक अन्य अगस्ति नामक व्रत बता रहा हूँ, सुनो।१

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण! उन देवर्षि का व्रत सुनने के लिए तो मैं तैयार हूँ, किन्तु मुझे उनका जन्म, अर्घ्यदान और उनके प्रस्थान करने का काल भी बताने की कृपा करें।२

श्रीकृष्ण बोले—पहले समय में मित्र और वरुण नामक दोनों श्रेष्ठ देवों के मन्दराचलपर तप करना आरम्भ किया। उनके विपुल तपश्चर्या को देख कर वासव (इन्द्र) ने उन्हें विचलित करने के लिए उर्वशी नामक एक श्रेष्ठ अप्सरा वहाँ भेजा, जो रूप-सौन्दर्य और उदारता आदि गुणों से सुविभूषित थी। उसे देखते ही क्षुब्ध होने पर उन दोनों देवों ने मनो विकार उत्पन्न होने के नाते कुम्भ (घड़े) में अपना वीर्य-निक्षेप किया। निमि द्वारा शाप होने के कारण उस घड़े से प्रथम वशिष्ठ का जन्म हुआ और पश्चात् दिव्यशरीर एवं तपोधन अगस्त्य का।३-६। एक बार मलयाचल पर ब्राह्मण गण सखी समेत रहते हुए वैशाख-विधान द्वारा दुष्कर तप कर रहे थे। उस समय वहाँ इल्वल और वातापी नामक दो दुष्ट दैत्य कृत युग के आरम्भ से ही रहे थे, जो देवों और ब्राह्मणों के (मार्ग के) प्रमुख कंटक रूप थे। उनमें एक भेड़ा बन जाता था और दूसरा उसे मार कर श्राद्ध भोज्य देता था। इस श्राद्ध क्रम द्वारा उन दोनों ने बहुत

अथान्यस्मिन्दिने दैत्यो ह्यगस्त्यं संन्यमन्त्रयत् । भोज्यार्थं ब्राह्मणैः सार्द्धं भृगुगर्गकुलोद्भवैः ॥१०
अगस्त्योप्यभवच्छ्राद्धे धौरेयो रोषदर्पितः । सोऽपि हत्वापचद्वह्नौ वातापिं मेषरूपिणम् ॥११
परिविष्यमाणेषु तेषु स्तिमितं प्राह दानवम् । अगस्त्यो भगवान्क्रुद्धः सर्वं मे दीयतामिति ॥१२
मैषं मांसं ततः प्रादादिल्वलः कुपितस्तदा । भक्षयित्वाऽभवत्स्वस्थो निर्विकारो महामुनिः ॥१३
शुचिर्बभौ ततः प्राह वातापिमिल्वलः शनैः । निष्क्रमस्व मुनेर्देहं भित्त्वा कस्माद्विलम्बसे ॥१४
तच्छ्रुत्वाऽगस्त्यविप्रोऽपि उद्गारं कृतवान्गुरुम् । कुतो निष्क्रमणं प्राह भक्षितः स मया पुनः ॥१५
जीर्णोऽयं भस्म भूतोऽयं वातापिर्ब्रह्मकण्टकः । इल्वलोऽपि स्फुरत्क्रोधः सोऽगस्त्येन निरीक्षितः॥१६
भस्मीभूतः क्षणेनैव ततः शांतं जगद्बभौ । तेन वैरेण ते दुष्टा नष्टशेषास्तु दानवाः ॥१७
संमन्त्र्य निश्चयं मेरौ ततोऽगस्त्यमुपागतः । विवर्द्धयिषवस्तेजो मुनेरस्य दिवौकसः ॥१८
तेऽगस्त्यमाहुर्ब्रह्मर्षे समुद्रं शोषयस्व वै । तच्छ्रुत्वागस्त्यविप्रोऽपि आग्नेयीं धारणां दधत् ॥१९
तया पीतः समुद्रोऽपि भ्रांतमीनोर्मिकच्छपः । पीते समुद्रतोयेऽपि देवैः क्रुद्धैस्तु दानवाः ॥२०
क्षयं नीताः क्षणात्सर्वे क्रन्दमानाः पुनःपुनः । क्षेमं जगत्यभूत्सर्वमगस्त्यर्षेः प्रसादतः ॥२१
अथ गंगानदीतोयैः संपूर्णे सागरे पुनः । मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम् ॥२२
ममंथुः सहिताः सर्वे समुद्रं दैत्यदानवाः । अथोत्थिते रत्नसंघे सोमे श्रीकौस्तुभे गजे ॥२३

ब्राह्मणों का विनाश किया। तदुपरांत एक दिन भृगु, गर्ग आदि कुल के ब्राह्मणों के साथ अगस्त्य ऋषि को भी उस दैत्य ने भोजनार्थ अपने यहाँ निमंत्रित किया। जिसे अगस्त्य ने वहाँ पहुँच कर अपना रोष प्रकट कर दिया था। इल्वल ने वातापी को भेड़ा बनाकर मार डाला और उसके मांस को अग्नि में पका कर भोजनार्थ रखा। उस समय मण्डलाकार समस्त ब्राह्मणों के बैठ जाने पर भगवान् अगस्त्य ने क्रुद्ध होकर उस दानव से कहा—सब मांस मुझे दे दो। इल्वल भी कुपित होकर उस भेड़ का सम्पूर्ण मांस उन्हें दे दिया। महामुनि (अगस्त्य) ने वह सब मांस भक्षण कर पूर्व की भाँति ही स्वस्थ रहे, किसी प्रकार का विकार नहीं हुआ। हाथ मुख शुद्ध करने पर इल्वल मे वातापी से कहा—मुनि की देह विदीर्ण कर निकलो, विलम्ब क्यों कर रहे हो।७-१४। उसे सुनकर ब्राह्मण अगस्त्य ने लम्बी डकार लेकर कहा—मैंने उसका भक्षण कर लिया है अतः अब उसका निकलना कैसे सम्भव है! ब्रह्म कण्टक यह वातापी भस्म होकर (पेट में) पच भी गया। यह सुनकर क्रुद्ध होने ने नाते इल्वल का होंठ फड़कने लगा। किन्तु अगस्त्य के देखने मात्र से वह भी उसी क्षण भस्म हो गया, जिससे सम्पूर्ण जगत् शांत हुआ था। पश्चात् उस वैर के कारण विनष्ट होने से शेष बचे हुए दानवों ने आपस में मंत्रणा करके मेरु पर्वत को प्रस्थान किया। देवों ने अगत्स्य मुनि के तेज को प्रज्वलित करने के विचार से उनसे कहा—ब्रह्मर्षे! समुद्र को सूखा कर दें। यह सुनकर ब्राह्मण अगस्त्य ने आग्नेयी मर्यादा धारण कर उस समुद्र का पान कर लिया, जिसमें मछलियाँ, भँवर और कछुए आदि भ्रान्त रहते हैं। पश्चात् देवों ने क्रुद्ध होकर क्षण मात्र में करुण क्रन्दन करने वाले दानवों का विनाश कर दिया। अगस्त्य ऋषि के प्रसाद से सारा संसार पुनः कल्याण मय हुआ और गंगा-जल द्वारा सागर को पूरा कर दिया। अनन्तर एक समय दैत्य दानवों ने मंदराचल की मथानी और वासुकी रस्सी बना कर समुद्र मन्थन आरम्भ किया।१५-२२। मन्थन करने से समुदाय—चन्द्र, लक्ष्मी, कौस्तुभमणि, ऐरावत गजराज—के निकलने पर अत्यन्त लोभ वश पयोनिधि

अतिलोभान्मथ्यमाने सागरे पयसां निधौ । अथोत्थितं ज्वलद्रौद्रं कालकूटं महाविषम् ।।२४
येनासौ सुरसंघाते आघूर्णिता इवाभवत् । सागरं संप्रविष्टास्ते रात्रौ रात्रौ विनिर्ययुः ।।२५
निर्गम्य च वधं चक्रुर्मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् । बभंजुर्यज्ञपात्राणि दिवा तोये निलिल्यिरे ।।२६
समुद्रमध्ये न ज्ञात्वा ब्रह्मा नारायणो हरः । वायुः कुबेरो वसवः सर्वे देवाः सवासवाः ।।२७
ततो मन्त्रैः शंकरेणकिञ्चित्तत्रैव भक्षितम् । क्षणाद्दग्धः स मंत्रोऽपि नीलकंठीकृतो हरः ।।२८
ब्रह्मापि चेतनां प्राप्य अब्रह्मण्यमुवाच ह ! नास्ति कश्चिज्जगत्यस्मिन्विषमापातुमीश्वर ।।२९
अगस्त्यो दक्षिणाशायां लङ्कामूले महामुनिः । तद्गच्छध्वं महाभागाः शरणं सर्वदाह्यसौ ।।३०
एवमुक्ता गता देवा अगस्त्याश्रमदक्षिणान् । देवान्वीक्ष्य च तान्हर्षादगस्त्यो मुनिसत्तमः ।।३१
ध्यानं चक्रे विषं येन हिमाद्रौ संप्रवेशितम् । कंठीसूत्रं निकुंजेषु हिमपर्वतसानुषु ।।३२
तस्मिन्काले विषं लग्नं किञ्चिच्छेषं द्रुमादिषु । उन्मत्तकरवीरार्क्कस्थलभूमिजलानिले ।।३३
तद्विषं चूर्णितं तेन क्षणात्संकोचितं तथा । हिमवातेन दुष्टेन वहमानेन पाण्डव ।।३४
मनुष्याणां तु जायंते रोगा नाना विधा भुवि । ते च मासत्रयं सार्द्धं प्रवहंति विषोल्बणाः ।।३५
वृषसंक्रांतिमारभ्य सिंहांते शाम्यते विषम् । रोगदोषापनोदश्च भवेत्पार्थ प्रभावतः ।।३६
एवं कालेन महता नीरुजे व्याधिवर्जिते । जगत्यस्मिन्पुरा पार्थ घनीभूते प्रजागणे ।।३७

सागर का मन्थन करना बन्द नहीं किया । अनन्तर ज्वलन्त एवं रौद्र कालकूट महाविष के निकलने पर सभी दैत्य गण मूर्च्छित से होने लगे । किन्तु वे लोग समुद्र में छिप गये और रात्रि के समय ही बाहर निकलते थे । इस प्रकार प्रत्येक रात्रि में बाहर निकल कर तेजस्वी महर्षियों का वध करते, उनके यज्ञपात्र तोड़ते और दिन में समुद्र में छिप जाते थे ।२३-२६। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, वायु, कुबेर, वसुऔर इन्द्र आदि देवगण समुद्र के मध्य में उन्हें खोज नहीं सकते थे । अनन्तर मंत्र द्वारा शंकर ने कुछ विष का पान किया कि उसी क्षण मंत्र दग्ध हो गया और उन्हें नील कण्ठ होना पड़ा । कुछ समय में चेतना प्राप्त कर ब्रह्मा ने कहा—ईश्वर! यह तो महान् अनर्थ उपस्थित हुआ । इस समस्त जगत् में इस विष का पान करने वाला कोई नहीं है अतः देव वृन्द! दक्षिण दिशा में लङ्का के समीप महामुनि अगस्त्य रह रहे हैं । तुम लोग उन्हीं की शरण जावो, क्योंकि वे सर्वदा शरण देते रहे हैं । उनके ऐसा कहने पर देवों ने दक्षिण दिशा मे स्थित अगस्त्य आश्रम का प्रस्थान किया । देवों को वहाँ उपस्थित देख कर मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य ने हिमालय मेंजिस के द्वारा वह विष प्राप्त हुआ था । उसका ध्यान किया । उन्होंने देखा—हिमालय की चोटी और निकुञ्जों में वह विष संलग्न है । और उसका कुछ थोड़ा -सा शेष अंश वृक्षों आदि में संलग्न दिखायी दिया, जो धतूरा, मुचुकुन्द वृक्ष, कनेर, मदार की भूमि, जल और वायु में भी प्रविष्ट हो चुका था । उन्होंने उस विष को क्षण मात्र में ही पूर्ण कर संकुचित (अल्प मात्रा में) कर दिया । पाण्डव! हिमालय की उस दुष्ट वायु के चलने पर इस धरातल में मनुष्यों के अनेक भाँति के रोग उत्पन्न होते हैं और वह विष-प्रज्जलित वायु वृष संक्रान्तिसे आरम्भ होकर सिंह संक्रान्ति तक तीन मास चलती है और अन्त में शान्त हो जाती है, जिससे रोग दोष सभी शान्त हो जाते हैं ।२७-३६। पार्थ! पहले समय में इस जगत् के चिरकाल तक नीरोग और व्याधिहीन होने पर प्रजाओं की अत्यन्त वृद्धि हुई । मर्त्यलोक के इस प्रकार ऊपर हाथ

निरन्तरे मर्त्यलोके ऊर्ध्वबाहु प्रसारिणी । बलवान्धूमनिर्देशान्मृत्युर्भ्राम्यति मूर्तिमान् ॥३८
प्रजा व्यापादयन्कालादाजगाम महामुनेः । समीपं मूर्तिमान्क्रुद्धो मृत्युस्तेन निरीक्षितः ॥३९
भस्मीबभूव पश्चाच्च ब्रह्मणः सुखकारणात् । व्याधिवृन्दसमोपेतो मृत्युरन्यो विनिर्मितः ॥४०
तथान्यो दण्डकारण्ये श्वेतो नाम नृपोत्तमः । स्वमांसमश्नता तेन निर्वेदात्प्रार्थितो मुनिः ॥४१
भगवन्सर्वमेवान्यद्दत्तं राज्यमदान्मया । अन्नं जलं वा श्राद्धं च न दत्तं पापबुद्धिना ॥४२
ततोऽगस्त्यः कारुणया रत्नैः श्राद्धमकल्पयत् । श्राद्धे निवृत्ते सहसा दिव्यदेहः श्रिया वृतः ॥४३
प्राप्तश्च परमंस्थानमगस्त्यर्षेः प्रसादतः । अथ विन्ध्यो महाशैलः सूर्यरोषाद्व्यवर्धत ॥४४
कस्मान्मेरुमिवासौ मां न करोति प्रदक्षिणम् । वर्द्धमानं तु तं दृष्ट्वा ततो देवाः सवासवाः ॥४५
एकीभूयाश्रमं गत्वा स्तुत्वा देवर्षिपुङ्गवम् । अगस्त्यमूचुर्भगवन्सूर्यमार्गनिरोधिनम् ॥४६
विन्ध्यं निवारय स्वैनं स्थितौ स्थापय पर्वतम् । अगस्त्योपि द्रुतं गत्वा प्राहेदं विन्ध्यपर्वतम् ॥४७
प्रस्थितं तीर्थयात्रायां विद्धि मामचलोत्तम ।स्थितौ च स्थीयतां तावद्यावदागमनं मम ॥४८
एवमुक्त्वा सम्प्रयातो नाद्यापि विनिवर्तते। दृश्यते भ्राजयन्नाशां दक्षिणां गगने ज्वलन् ॥४९
त्रैलोक्यवंद्यचरणो लोपामुद्रासहायवान् । लोपामुद्रापि तं प्राह देवर्षिं देवपूजितम् ॥५०
तत्राश्रमस्थलिकायामृतुकाले ह्युपुस्थिते । भोक्तुमिच्छामि विषयांस्त्वया सह सुखैषिणी ॥५१
भवेद्यदि गृहं रम्यं [1]सर्वरत्नविभूषितम् । गजै रथैश्च सम्पूर्णं शयनैः प्रवरासनैः ॥५२

फैलाये बढ़ते समय सबल मृत्यु धूम की भाँति मूर्ति मती होकर प्रजाओं का विनाश करती समयानुसार महामुनि अगस्त्य के समीप आई । उन्होंने मूर्तिमान् मृत्यु को क्रुद्ध देखकर तुरन्त भस्मकर दिया किन्तु ब्रह्मा के सुखार्थ व्याधिवृन्द समेत एक अन्य मृत्यु की रचना की । एक बार दण्डकारण्य निवासी नृपोत्तम श्वेत ने, जो अपने मांस का भक्षण कर (प्रेत योनि का) जीवन व्यतीत कर रहा था, अत्यन्त दुःखी होकर मुनि अगस्त्य से प्रार्थना की—भगवन्?! राज्य मद में आकर पाप बुद्धि मैंने सब कुछ का दान किया किन्तु अन्न, जल और श्राद्ध दान नहीं किया (उसी का यह दुष् परिणाम प्राप्त हुआ है) । इसे सुनकर अगस्त्य ने करुणया रत्नों द्वारा उसका श्राद्ध सम्पन्न किया जिस से श्राद्ध सम्पन्न होते ही उसे दिव्य देह की प्राप्ति पूर्वक उत्तमलोक की प्राप्ति हुई । एक बार विन्ध्याचल सूर्य के (ऊपर क्रुद्ध होकर—क्यों ये मेरु का ही प्रदक्षिणा द्वारा सम्मान करते हैं—ऊपर (आकाश में) बढ़ने लगा । उसे बढ़ते देख कर इन्द्रादि—देव गण एक साथ देवर्षि अङ्गव अगस्त्य के आश्रम में जाकर उनकी स्तुति करने लगे—भगवान्! सूर्य मार्ग का अवरोध करने वाले इस विन्ध्य पर्वत को आप (ऊपर बढने से) रोकिये और यथा स्थान स्थित कीजिये । इसे सुनकर अगस्त्य ने शीघ्र वहाँ जाकर विन्ध्यपर्वत से कहा—अचलोत्तम! मैं तीर्थ यात्रा का प्रस्थान कर चुका हूँ, अतः जब तक मैं पुनः लौट न आऊँ तुम अपने यथा स्थान स्थित रहो ।३७-४८। इतना कह कर वे चले गये और आज तक न लौटे । दक्षिण दिशा की ओर आकाश में प्रकाश पूर्ण सुशोभित दिखायी देते हैं ।उसी भाँति लोपा मुद्रा ने उस आश्रम भूमि में ऋतु काल उपस्थित होने पर त्रैलोक्य वन्दनीय एवं देव पूजित देवर्षि अगस्त्य से कहा—मुने! मैं उस की लिप्सा से तुम्हारे साथ विषयों का उपभोग करना चाहती हूँ । अतः एक ऐसा उत्तम गृह होना चाहिए, जो समस्त रत्नो, गजों और रथों से परिपूर्ण, उत्तम शय्या,

---

१. सर्वरत्नसमन्वितम् ।

दुकूलपट्टनेत्रैश्च विलासैर्ललितैर्मुने । त्वया सह समायोगं यास्येऽहं कुरु चिन्तितम् ॥५३
एतच्छ्रुत्वा मुनिर्हृष्टः प्राह्वयद्धनदं क्षणात् । कारयामासभवनं संपूर्णं रत्नराशिभिः ॥५४
तत्र रेमे स भगवानगस्त्यः स्वाश्रमे सुखम् । तस्यैवं चेष्टितस्यर्षेः प्रयच्छार्घ्यं युधिष्ठिर ॥५५
आस्तिक्यबुद्ध्या भक्त्या च धर्मं प्राप्स्यसि पाण्डव । कन्यायामागते सूर्ये अर्वाग्वै सप्तमे दिने ॥५६
कन्यायां समनुप्राप्ते सूर्ये यः सन्निवर्तते । प्रत्यूषसमयेविद्वान्कुर्यादस्योदये निशि ॥५७
स्नानं शुक्लतिलैस्तद्वच्छुक्लमाल्याम्बरो गृही । स्थापयेदव्रणं कुम्भं माल्यवस्त्रविभूषितम् ॥५८
पञ्चरत्नसमायुक्तं घृतपात्रेण संयुतम् । नानाभक्ष्यसमोपेतं सप्तधान्यसमन्वितम् ॥५९
काञ्चनं कारयित्वा तु यथाशक्त्या सुशोभनम् । पुरुषाकृतिं प्रशान्तं च जपमण्डलधारिणम् ॥६०
कमंडलुकरं शिष्यैर्मृगैश्च परिधारितम् । मृत्युघ्नं विषहन्तारं दर्भाक्षेष्टकरं मुनिम् ॥६१
तस्मिन्क्रमे समालग्नं चन्दनेन ततो न्यसेत् । स्नापितं चानुलिप्तं च चन्दनेन सुगन्धिना ॥६२
पूजितं चापि कुसुमैर्हृद्यैर्धूपैस्तु धूपितम् । ततश्चार्घ प्रदातव्यो यैर्द्रव्यैस्तानि मे शृणु ॥६३
खर्जूरैर्नालिकेरैश्च कूष्माण्डैस्त्रपुपैरपि । कर्कोटकारवेल्लैश्च कर्चूरैर्बीजपूरकैः ॥६४
वृंताकैर्दाडिमैश्चैव नारङ्गैः कदलीफलैः । दूर्वांकुरैः कुशैः काशैः पद्मैर्नीलोत्पलैस्तथा ॥६५
नानाप्रकारैर्भक्ष्यैश्च गोभिर्वस्त्रै रसैः शुभैः । विरूढैः सप्तधान्यैश्च वंशपात्रे निधापितैः ॥६६
सौवर्णरौप्यपात्रेण ताम्रवंशमयेन च । मूर्ध्नि स्थितेन नम्रेण जानुभ्यां पृथिवीतले ॥६७

पहनने के यथेच्छ वस्त्र तथा ललित विलास के साधन रूप शृङ्गारादि की वस्तुओं से सुसज्जित हो । इसलिए मेरे उस संयोग सुखार्थ प्रायः इन सभी आवश्यकताओं को पूरी करने की कृपा करें । यह सुनकर मुनि अगस्त्य ने प्रसन्न होकर उसी क्षण कुबेर को बुलाकर उनके द्वारा सम्पूर्ण रत्नराशिपूर्ण गृह बनवाया । पश्चात् भगवान् अगस्त्य ने उस अपने आश्रम में सुखपूर्वक रमण किया । अतः युधिष्ठिर! इस प्रकार की चेष्टाओं से सुसम्पन्न करने वाले उन अगस्त्य ऋषि के लिए अर्घ्य प्रदान करो । क्योंकि भक्ति पूर्वक इस प्रकार की आस्तिक् बुद्धि रखने से तुम्हें धर्म की प्राप्ति होगी । पाण्डव! कन्या राशि पर सूर्य के आने के सात दिन पहले जो विद्वान् प्रातः काल सूर्योदय के साथ शुक्र तिल मिश्रित स्थान और श्वेत वस्त्र धारण कर एक वस्त्र रहित सुन्दर कलश, जो माला वस्त्र से विभूषित हो, पञ्चरत्न और घृतपूर्ण पात्र समेत स्थापित कर उसकी सविधि अर्चना करे। अनेक भाँति के भक्ष्य भोज्य, सप्त धान्य से उसे सुसम्मानित करके उन मुनिकी पुरुषाकार वाली सुवर्ण प्रतिमा स्थापित करे, जो यथाशक्ति सुवर्ण द्वारा रचित, सुशोभन, प्रशान्त, जय मण्डल धारण किये, हाथ में कमण्डलु, चारों ओर शिष्य और मृगों से घिरे हों । मृत्यु और विषके हन्ता, दर्भाक्ष और अभीष्ट प्रदायक उन मुनि के क्रमशः पूजन में सर्वप्रथम उन्हें चन्दन पर प्रतिष्ठित करके स्नान कराये और सुगन्ध पूर्ण चन्दन का लेपन करे ।४९-६२। अनन्तर मनोरम पुष्प और उत्तम धूप से पूजन करने के उपरान्त जिस प्रकार का अर्घ्य उन्हें प्रदान करना चाहिए मैं बता रहा हूँ, सुनो! खजूर, कुम्हड़ा, बेल, करेला, कचूर, वृन्ताक—, अनार, नारंगी, केला, दूर्वाङ्कुर, कुश, काश कमल, नील-कमल, अनेक भाँति के भक्ष्य,गौ उत्तम वस्त्र सप्त धान्य की हरियाली को सुवर्ण, चाँदी, ताँबे अथवा वाँस के पात्र में रख कर जानु (घुटने) के बल पृथिवी में आसन पर बैठे हुए उस पात्र को अपने शिर

दक्षिणाभिमुखो भूत्वा ह्यर्घ्यपाद्यादिकं च यत् । शीलेन चेतसा भक्त्या दद्यात्कौरवनन्दन ॥६८
काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसंभव । मित्रावरुणयोः पुत्र कुंभयोने नमोऽस्तु ते ॥६९
विंध्यवृद्धिक्षयकर मेषतोयविषापह । रक्तो बल्लभदेवर्षे लङ्कावास नमोऽस्तु ते ॥७०
वातापिर्भक्षितो येन समुद्राः शोषिताः पुरा । लोपामुद्रापतिः श्रीमान्योऽसौ तस्मै नमोऽस्तु ते ॥७१
येनोदितेन पापानि प्रलयं यांति व्याधयः । तस्मै नमोऽस्त्वगस्त्याय सशिष्याय सुपुत्रिणे ॥
ब्राह्मणो वेदऋचया दद्यादर्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥७२

"अगस्त्यः खनमानश्च नित्यं प्राजापत्यं बलिभिच्छमानः ।
उभौ वर्णौ वृष्टचनुग्रहार्थेनुपोष सत्यादेष्वशिखो जगाम" ॥

दत्त्वैवमर्घ्यं कौंतेय प्रतिपूज्य च पुष्पकैः । विसर्जयित्वागस्त्यं तं विप्राय प्रतिपादयेत् ॥७३
दैवज्ञव्यासरूपाय वेदवेदांगवादिने । एवं यः कुरुते भक्त्या ह्यगस्त्यप्रतिपूजनम् ॥
फलमेकं तथा धान्यं कोपं वासं परित्यजेत् ॥७४
सम्पूर्णे च ततो वर्षे पुनरन्यदुपक्रमेत् । दत्त्वार्घ्यं सप्तवर्षाणि क्रमेणानेन पांडव ॥
पुमान्फलमवाप्नोति तदेकाग्रमनाः शृणु ॥७५
ब्राह्मणश्चतुरो वेदान्सर्वशास्त्रविशारदः । क्षत्रियः पृथिवीं सर्वां प्राप्नोत्यर्णवमेखलाम् ॥७६
वैश्योऽप्यायुष्यमाप्नोति गोधनं चापि नंदति । शूद्राणां धनमारोग्यं सन्मानश्चाधिको भवेत् ॥७७
स्त्रीणां पुत्राः प्रजायंते सौभाग्यं वृद्धिऋद्धिमत् । विधवानां महापुण्यं वर्धते पांडुनन्दन ॥७८

से लगाये, दक्षिणाभिमुख, प्रसन्नचित्त एवं भक्ति पूर्वक उन्हें अर्घ्य प्रदान करे—कौरवनन्दन! पुनः उनकी इस प्रकार क्षमा याचना करे—काश पुष्प के समान (श्वेत रूप), अग्नि और वायु से उत्पन्न एवं मित्रा वरुण के पुत्र कुम्भ योनि अगस्त्य को नमस्कार है। विन्ध्यपर्वत की वृद्धि की क्षय, भेंड़ा, जल और विष के अपहारी, रक्तवर्ण वल्लभ देवर्षि एवं उन लंकावासी मुनि को नमस्कार है। वातापी का भक्षण और समुद्र शोषण करने वाले उदय होने पर समस्त पाप अनेक भाँति की व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं, शिष्य और सुपुत्र समेत उन अगस्त्य ऋषि को नमस्कार है।६३-७२। वेद की ऋचा द्वारा ब्रह्मा को अर्घ्य प्रदान करने वाले ऋषि को नमस्कार है। आकाश में स्थित, नित्य प्राजापत्य बलिके इच्छुक, वृष्टि के हेतु दो भाँति के वर्ण अगस्त्य ने शिखाहीन ही यात्रा की। कौंतेय! इस भाँति उन्हें अर्घ्य, पुष्पों से पूजित और विसर्जन करके वह प्रतिमा आदि किसी ज्योतिषी, व्यास रूप एवं वेद-वेदाङ्ग वेत्ता, विद्वान ब्राह्मण को अर्पित करे। इस भाँति भक्तिपूर्वक अगस्त्य की पूजा करने वाले को एक फल, एक अन्न और क्रोध का सर्वथा त्याग करना चाहिए तथा वर्ष की समाप्ति होने पर पुनः आरम्भ करना चाहिए। पाण्डव! इस प्रकार सात वर्ष तक इसी क्रम से अर्घ्य प्रदान करने वाले पुरुष को जिस फल की प्राप्ति होती है, सावधान होकर सुनो! ब्राह्मण चोरों वेद सहित सम्पूर्ण शास्त्रों का मर्मज्ञ विद्वान् होता है। क्षत्रिय को समुद्र से घिरी हुई समस्त पृथिवी प्राप्तिपूर्वक प्राप्त होता है। तथा शूद्रों को धन, आरोग्य और अधिक सम्मान प्राप्त होता है। उसी प्रकार स्त्रियों को अनेक पुत्र, भक्ति-वृद्धि समेत सौभाग्य प्राप्त होता है। पाण्डुनन्दन!

कन्या भर्तारमाप्नोति व्याधेर्मुच्येत दुःखितः ॥७९
येषु देशेष्वगस्त्यर्षेः पूजनं क्रियते जनैः । तेषु देशेषु पर्जन्यः कामवर्षी प्रजायते ॥८०
ईतयः प्रशमं यान्ति नश्यन्ति व्याधयस्तथा । पठंति ये त्वगस्त्यर्षेः ख्यानं शृण्वंति चापरे ॥८१
ते सर्वे पापनिर्मुक्ताश्चिरं स्थित्वा महीतले । हंसयुक्तविमानेन स्वर्गं यान्ति नरोत्तम ॥८२
मर्त्यो यदीच्छति गृहं परमर्द्धियुक्तं भोगं शरीरमरुजं पशुपुत्रपुष्टिम् ।
तत्सर्ववल्लभमुनेरुदये महार्घ्यं यच्छेन्महार्घफलवस्त्रधनैः सहान्यैः ॥८३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
अगस्त्याविधिव्रतवर्णनं नामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ।११८

अथैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अभिनवचन्द्रार्घ्यव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पार्थ पार्थिव दिव्यस्त्रीमुखपङ्कजसेंदवे । शृणुष्वाभिनवस्येंदोरुदयेऽर्घ्यविधिं परम् ॥१
रविर्द्वादशभिर्भागैर्वारुण्या दृश्यते यदि । प्रदोषसमये पार्थ अर्घ्यं दद्यात्तदा विभो ॥२
द्वितीयायां सिते पक्षे संध्याकाले ह्युपस्थिते । संस्थाप्याभिनवं चन्द्रं स भूम्यां दृश्यते यदि ॥३

इसके द्वारा विधवाओं को महान् पुण्यफल, कन्या को सुहाग पति और रोगी रोगमुक्त होता है ।७३-७८। जिस-जिस देशों के निवासी अगस्त्य ऋषि की सप्रेम अर्चना करते हैं, उन उन देशों में मेघवृन्द वहाँ की प्रजाओं के अनुकूल वर्षा करते हैं । नरोत्तम! अगस्त्य ऋषि इस आख्यान को पढने और सुनने वाले भी पाप मुक्त होकर इस भूतल में चिरकाल तक स्थायी रहते हैं और देहावसान के समय हंस युक्त विमान द्वारा स्वर्ग की यात्रा करते हैं । इस प्रकार उत्तम सिद्धि सम्पन्न गृह, उत्तम भोग, नीरोग शरीर और पशु तथा पुत्रों की पुष्टि चाहने वाले मनुष्यों को वल्लभ मुनि अगस्त्य के उदय होने पर पूर्वोत्तर विधान द्वारा उत्तम फल वस्त्र आदि का अर्घ्य प्रदान करना चाहिए ।७९-८३।

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
अगस्त्यार्घ्य विधि और व्रत वर्णन नामक एक सौ अट्ठारहवाँ अध्याय समाप्त ।११८।

अध्याय ११९

अभिनवचन्द्रार्घ्यव्रतवर्णन

श्री कृष्ण बोले—पार्थ! नवीनचन्द्र (द्वितीया के दिन) उदय होने पर पार्थिव शरीर वाली दिव्य सभी के मुख कमल समेत चन्द्रमा को दिये जाने वाले अर्घ्य विधान सुनो! सूर्य केअपने द्वादश भागों समेत पश्चिम दिशा में दिखायी पड़ने पर उस प्रदोष काल में उन्हें अर्घ्य प्रदान करना चाहिए । शुक्ल पक्ष की द्वितीया के सायं काल चन्द्रमा के भूमि दर्शन होने पर नवीन चन्द्र का स्थापन कर गोमय (गोबर) से

गोमयं मण्डलं कृत्वा चन्दनेन सुशोभितम् । रोहिण्या सहितं देवं कुमुदामोदसंभवम् ॥४
पुष्पचन्दन धूपैश्च दीपाक्षतजलैः शुभैः । दूर्वांकुरै रत्नवरैर्दध्ना वस्त्रैश्च पाण्डुरैः ॥५
मंत्रेणानेन राजेन्द्र क्षत्रियः सपुरोहितः । नवो नवोऽसि मासान्ते जायमानः पुनः पुनः ॥
आप्यायस्व समेत्वेदं सोमराज नमोनमः ॥६
अनेन विधिनाचार्यं सर्वकामफलप्रदम् । यः प्रयच्छति कौंतेय मासिमासि समाहितः ॥७
स कीर्त्या यशसा कांत्या धन्यश्च भुवि मानवः । पुत्रपौत्रैः परिवृतो गोधान्यधनसंकुलः ॥८
स्थित्वा वर्षशतं मर्त्ये ततः सोमपुरं व्रजेत् । तत्रास्ते दिव्यवपुषा भोगान्भुञ्जन्नृपोत्तम ॥
वरस्त्रीभिः सहात्यर्थं यावदाभूतसंप्लवम् ॥९

धर्मं समृद्धिमतुलां यदि वाञ्छसि त्वं मासानुमासमिह मद्वचनं कुरुष्व ।
सोमस्य सोमकुलनन्दनधूपपुष्पैरर्घ्यं प्रयच्छ नतजानु नवोदितस्य ॥१०

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
अभिनवचंद्रार्घ्यव्रतवर्णनं नामैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।११९।

मण्डलाकार (गोल) लिये और चन्दन से सुशोभित करे। पश्चात् रोहिणी समेत चन्द्रदेव को वहाँ प्रतिष्ठित कर जो, कुमुद के आमोद द्वारा उत्पन्न हुए हैं, पुष्प, चन्दन, धूप, दीप शुभ अक्षत जल, दूर्वाङ्कुर, उत्तम रत्न, दही एवं पाण्डुरंग वस्त्र द्वारा उनकी सविधि अर्चना करे और निम्नलिखित मंत्र का उच्चारण करता रहे—राजेन्द्र! पुरोहित समेत वह क्षत्रिय सोमराज! आप प्रति मास के अन्त में बार-बार नवीन होते रहते हैं उसी भाँति मेरी भी वृद्धि करने की कृपा कीजिये, मैं आपको नमस्कार कर रहा हूँ ।१-६। कौंतेय! इस विधान द्वारा जो प्रतिमास एकाग्रचित्त से समस्त कामनाओं के पूरक आचार्य को प्रदान करता रहता है, वह मनुष्य इस भूतल में कीर्ति, यश कांति की प्राप्ति पूर्वक धन्य होकर पुत्र-पौत्र गौ, धन, धान्य का सुखानुभव करके सौ वर्ष तक इस लोक में प्रतिष्ठित रहता है और देहावसान के समय चन्द्र लोक की प्राप्ति करता है। नृपोत्तम! वहाँ पहुँचने पर उसे दिव्याङ्गनाओं के साथ अपनी दिव्य शरीर द्वारा महाप्रलय काल तक सुखोपभोग प्राप्त होता है। सोमकुल नन्दन! यदि तुम्हें धार्मिक अतुल सम्पत्ति की चाह हो तो मेरी बातें स्वीकार करो—भूमि में घुटने के बल बैठकर पूर्वोक्त विधान द्वारा धूप-पुष्प मिश्रित का अर्घ्य उन नवोदय चन्द्र को सप्रेम प्रदान करो ।७-१०।

श्रीभविष्य महापुराण में उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
अभिनव चन्द्रार्घ्य व्रत वर्णन नामक एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।११९।

अथ विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

शुक्रबृहस्पत्यर्घपूजाविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः शृणु भूपाल प्रतिशुक्रप्रशांतये । यात्रारंभे प्रयाणे च तथा शुक्रोदयेष्विह ।।१
शुक्रपूजा प्रकर्तव्यां तां निशामय सारतः । राजते वाऽथ सौवर्णे कांस्यपात्रेऽथ वा पुनः ।।२
शुक्लपुष्पांबरयुते सिततण्डुलपूरिते । निधाय राजतं शुक्रं शुचि मुक्ताफलान्वितम् ।।३
सह तेन सवत्साङ्गां ब्राह्मणाय निवेदयेत् । नमस्ते सर्वदेवेश नमस्ते भृगुनन्दन ।।
कवे सर्वार्थसिद्धयर्थं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ।।४
दत्त्वैवमर्घ्यं कौन्तेय प्रणिपत्य विसर्जयेत् ।।५
यावच्छुक्रस्य न कृता पूजा सोहालकैः शुभैः । वटकैः पूरिकाभिश्च गोधूमैश्चणकैरपि ।।
तावन्न दानं दातव्यं स्त्रीभिः कामार्थसिद्धये ।।६
एवं तस्योदये कुर्वन्यात्रादिषु च भारत । सर्वसस्यागमं चैव सर्वान्मानामवाप्नुयात् ।।७
तद्वद्वाचस्पतेः पूजां प्रवक्ष्यामि युधिष्ठिर । सौवर्णपात्रे सौवर्णममरेशपुरोहितम् ।।
पीतपुष्पांबरयुतं कृत्वा स्नात्वाथ सर्षपैः ।।८
पालाशाश्वत्थभङ्गेन पञ्चगव्यजलेन च । पीताङ्गरागवसनं घृतहोमं तु कारयेत् ।।९

अथ अध्याय १२०

शुक्र और बृहस्पति की अर्घ्यपूजा-विधि

श्रीकृष्ण बोले—भूपाल! तुम्हें शुक्र शांति का विधान बता रहा हूँ, सुनो! यात्रा के आरम्भ अथवा प्रस्थान के समय और शुक्रोदय में जिस प्रकार शुक्र की अर्चना की जाती है उसका सार बता रहा हूँ। चाँदी, सुवर्ण, या काँसे के पात्र में शुक्र की चाँदी की प्रतिमा पवित्र मोतियों समेत स्थापित एवं पूजित कर सवत्सा गौ के साथ उसे ब्राह्मण को अर्पित करें और अर्घ्यदान के समय क्षमा प्रार्थना करे—समस्त देवों के स्वामी भृगुनन्दन को नमस्कार है। कवे! मेरी कामनाओं को सफल करते हुए इस अर्घ्य को स्वीकार करें मैं आप को नमस्कार कर रहा हूँ। कौंतेय! इस प्रकार अर्घ्य प्रदान करने के अनन्तर नमस्कार करते हुए विसर्जन करे।१-५। कामनाओं की सफलता के लिए शृंगार करके वड़ा और पूरी द्वारा शुक्र की पूजा किये विना स्त्रियों को अन्नदान न करना चाहिए। भारत! इस प्रकार शुक्रोदय के समय यात्रादिकाल में उनकी अर्चना करने पर समस्त धान्य की प्राप्ति पूर्वक सभी कामनाओं की पूर्ति होती है।६-७। युधिष्ठिर! इसी भाँति बृहस्पति की पूजा बता रहा हूँ। सुवर्ण के पात्र में देवराज के पुरोहित बृहस्पतिकी सुवर्ण प्रतिमा पीतपुष्प और पीतवस्त्र से भूषित करके राई, पलाश, पीपल, भङ्ग तथा पञ्च गव्य-जल से स्नान कराये और पीताङ्गराग एवं पीतवस्त्र अर्पित कर घृत की आहुति प्रदान करे। पश्चात्

प्रणम्य च गवा सार्द्धं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥१०
नमस्तेऽङ्गिरसां नाथ वाक्पतेथ बृहस्पते । क्रूरग्रहैः पीडितानाममृताय भवस्व नः ॥११
एवं सुरगुरुं पूज्य प्रणिपत्य क्षमापयेत् । संक्रातावुदये चास्ते सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥१२
अथ वा मौक्तिकान्येव सुवृत्तानि बृहंति च । भार्गवांगिरसौ चिंत्य तान्येव प्रतिपादयेत् ॥१३
भक्त्या मौक्तिकदानेन दत्तेन कुरुनन्दन । विरूपता दृशोः पुंसां यात्रास्वभ्युदयेषु च ॥
कुर्वन्बृहस्पतेः पूजां न कदाचित्प्रजायते ॥१४

ये भार्गवोदयमवाप्य सवस्त्रपुष्पां कुर्वंत्यनन्यमनसोऽङ्गिरसे च पूजाम् ।
तेषां गृहे प्रविशतां प्रतिशुक्रजातं विघ्नं न संभवति भारत पुण्यभाजाम् ॥१५

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
शुक्रबृहस्पत्यर्घपूजाविधानं नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२०

अथैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

व्रतपञ्चाशीतिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु भारत वक्ष्यामि पञ्चाशीतिव्रतानि च । नोक्तानि यानि कस्यापि मुनिभिर्धर्मदर्शिभिः ॥१
भविष्यमत्स्यमार्तंडपुराणेषु च वर्णितम् । वाराहं चैव संगृह्य कथ्यन्ते तानि पाण्डव ॥२

प्रणाम पूर्वक गोदान समेत वह प्रतिमा आदि ब्राह्मण को समर्पित कर क्षमा याचना करे—अंगिरागोत्र वालो के स्वामी एवं वाक्यपति बृहस्पति को मैं नमस्कार कर रहा हूँ, मेरी क्रूर ग्रह-जनित बाधा शान्ति करें। इस प्रकार संक्रान्ति में बृहस्पति देव की अर्चा और नमस्कार पूर्वक क्षमा याचना करने वाले की सभी कामनाएँ सफल होती हैं। कुरुनन्दन! शुक्र अथवा बृहस्पति को सुन्दर मोतियों द्वारा प्रार्थना समेत सुसम्मानित करे। क्योंकि भक्तिपूर्वक मौक्तिकदान या अर्पण यात्रा और अभ्युदय के समय करने पर कभी-भी किसी प्रकार का अङ्गविकार नहीं होता है। भारत! शुक्रोदय के समय वस्त्र-पुष्प से भूषित बृहस्पति की अर्चना करने वाले उस अनन्य भक्त एवं पुण्य भाजन के गृह अनिष्ट शुक्र के आगमन होने पर उसे किसी भाँति की बाधा नहीं होती है।८-१५

श्रीभविष्य महापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
शुक्र बृहस्पति की अर्घ्य पूजा व्रत वर्णन नामक एक सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त।१२०।

अध्याय १२१

पचासीव्रतों का वर्णन

श्री कृष्ण बोले—भारत! मैं तुम्हें पचासी व्रत बता रहा हूँ, जिन्हें धर्मदर्शी मुनियों ने कभी किसी को बताया ही नहीं है! पाण्डव! जिसकी चर्चा मैं तुमसे कर रहा हूँ भविष्य, मत्स्य, मार्तण्ड और वाराह

यदभीष्टं सुमित्राय शिष्याय च सुताय च । न कथ्यते धर्मजातं किं तेनोदरवर्तिना ॥३
श्रुतिस्मृतिपुराणेभ्यो यन्मया ह्यवधारितम् । तत्ते वच्मि कुरुश्रेष्ठ कस्यान्यस्योपदिश्यते ॥४
स्नात्वा प्रभातसंध्यायामुपगृह्य च पिप्पलम् । तिलपात्राणि यो दद्यान्न स शोचेत तत्कृते ॥५
व्रतानामुत्तमं ह्येतत्सर्वपापप्रणाशनम् । पात्रव्रतमितिख्यातं नाख्यातं कस्यचिन्मया ॥६
सुशुद्धस्य सुवर्णस्य सुवर्णं यः प्रयच्छति । पुण्येऽह्नि विप्रकथिते प्रीत्या पीतयुगान्वितम् ॥७
व्रतं वाचस्पतेरेतद्बलबुद्धिप्रदायकम् । वृत्रघ्नस्य पुराख्यातं गुरुणा सर्वकामदम् ॥८
लवणं कटुतिक्तं च जीरकं मरिचानि च । हिंगुशुण्ठिसमायुक्तं सर्वं परिचयं तथा ॥९
चतुर्थ्यामेकभक्ताशी सकृद्दत्त्वा कुटुम्बिने । गृहेषु सप्तसु सदा शिलायुक्तानि भारत ॥१०
एतच्छिलाव्रतं नाम लक्ष्मीलोकप्रदायकम् । कर्तव्यमिह यत्नेन मुखपाटवकारकम् ॥११
नक्तमत्रं चरित्वा तु गवा सार्द्धं कुटुंबिने । हैमं चक्रं त्रिशूलं च दद्याद्विप्राय वाससी ॥१२
प्रणम्य भक्त्या देवेशौ प्रीयेतां शिवकेशवौ । एतदेवव्रतं नाम महापातकनाशनम् ॥१३
कृत्वैकभुक्तं वर्षांते शक्त्या हैमवृषान्विताम् । धेनुं तिलमयीं दद्यात्सर्वोपस्करणैर्युताम् ॥१४
एतद्रुद्रव्रतं नाम पापशोकप्रणाशनम् । यः करोति पुमान्राजान्स पदं याति शाङ्करम् ॥१५
सर्वोषध्युदकस्नातः पञ्चम्यां पूज्य पञ्चकम् । सप्तोपस्करदानं च यः करोति गृहाश्रमी ॥१६
गृहाद्युलूखलं शूर्पः शिला स्थाली च पञ्चमी । उदकुम्भश्च चुल्ली च एतेषामनुकिञ्चन ॥१७

पुराणों में उसकी रुचि विस्तृत व्याख्या हुई है, उसका संकलन ही कह रहा हूँ । और सुमित्र, शिष्य एवं पुत्र की अभीष्ट बातें उनसे न कही जाये तो उसे न कहने वाले उदरकर (पेटू) से लाभ ही क्या हो सकता है । कुरुश्रेष्ठ! अतः श्रुतियों, स्मृतियों और पुराणों से इस विषय का जो ज्ञान मैंने प्राप्त किया है वह तुम्हें बता रहा हूँ, उसका उपदेश और किसे दे सकता हूँ! प्रातः काल संध्या (सूर्योदय) के समय स्नान करके पीपल वृक्ष के समीप तिलपात्र का दान करने वाला पुरुष कभी चिन्तित नहीं होता है । समस्त व्रतों में श्रेष्ठ, सम्पूर्ण पाप नाशक यह व्रत पात्रव्रत नाम से विख्यात है मैंने इसे किसी को नहीं बताया है ।१-६। ब्राह्मण के बताये हुए किसी पुण्य दिवस में शुद्ध आचार विचारवाले ब्राह्मण को पीतयुग समेत सुवर्ण का दान सप्रेम देना चाहिए । बल-बुद्धि प्रदायक वह व्रत वाचस्पति का बताया गया है । गुरु बृहस्पति ने वृत्तासुर के हन्ता इन्द्र को यह व्रत बताया था जिससे समस्त कामनाएँ सफल होती हैं । भारत! लवण (नमक), कटु तिक्त, जीरा, मरिच, हींग, सोंठी, का शिला (सिल-वहा) समेत दान चौथ के दिन एकाहारी रह कर दूसरे दिन सात घरों में परिवार वाले को देना चाहिए । लक्ष्मी प्रदायक यह व्रत शिलाव्रत के नाम से ख्यात है । मुख पटु (चतुर) होने के निमित्त नक्तभोजी होकर सुवर्ण का चक्र, त्रिशूल और दो वस्त्र भक्ति-नमस्कार पूर्वक शिव और केशव देव को अर्पित करे । पुनः वर्ष के अन्त में इस महाघातक व्रत के अनुष्ठान में एकाहारी रह कर यथाशक्ति सुवर्ण की बनी हुई बैल की प्रतिमा और तिलमयी धेनु समस्त साधनों समेत ब्राह्मण को अर्पित करनी चाहिए । राजन्! पाप-शोक नाशक इस रुद्रव्रत को सुसम्पन्नकरने पर शिवलोक शीघ्र प्राप्त होता है ।७-१५। पञ्चमी के दिन सम्पूर्ण दिन सम्पूर्ण औषध मिश्रित जल से स्नान और पाँचों देवो की पूजा करके गृह, ओखली, सूप, सिल-बट्टा, बटलोई, घड़ा,

एतानि गृहिणां गेहे प्रस्थाप्य पुरुषोत्तमम् । उपस्करोति या नारी न सीदति कदाचन ।।१८
एतद्गृहव्रतं नाम सर्वसौख्यप्रदायकम् । अत्रिणा ह्यनसूयायाः कथितं पाण्डुनन्दन ।।१९
यस्तु नीलोत्पलं हैमं शर्करापात्रसंयुतम् । ददाति श्रद्धयोपेतो ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।।२०
स वैष्णवं पदं याति लीलाव्रतमिदं स्मृतम् । आषाढादिचतुर्मासमभ्यंगं वर्जयेन्नरः ।।२१
पारिते च पुनर्दद्यात्तिलतैलघटं नवम्। भोजनं पायसाज्यं च स याति भवनं हरेः ।।२२
लोकप्रीतिकरं चैतत्प्रीतिव्रतमिहोच्यते । वर्जयित्वा मधौ यस्तु दधिक्षीरघृतैक्षवम् ।।२३
दद्याद्वस्त्रयुगं सूक्ष्मं रसपात्रैश्च संयुतम् । संपूज्य विप्रमिथुनं गौरी मे प्रीयतामिति ।।२४
एतद्गौरीव्रतं नाम भवानीलोकदायकम् । पुरुषो यस्त्रयोदश्यां कृत्वा नक्तमथो पुनः ।।२५
संवत्सरांते तस्मिन्वा दिवसे विघ्नवर्जितम् । अशोककाञ्चनं दद्यात्सद्रस्त्रयुगसंश्रितम् ।।२६
विप्राय वसुसंयुक्तं प्रद्युम्नः प्रीयतामिति । कल्पं विष्णुपदे स्थित्वा विशोकः स्यात्पुनर्नृप ।।२७
एतत्कामव्रतं नाम सर्वशोकविनाशनम् । आषाढादिचतुर्मासं वर्जयेन्नखकर्तनम् ।।२८
वृंताकभक्षणं चैव मधुसर्पिर्घटान्वितम् । कार्तिक्यां तु पुनर्हैमं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।।२९
रुद्रलोकनवाप्नोति शिवव्रतमिदं स्मृतम् । एवं पञ्चदशीं स्मृत्वा एकभक्तेन मानवः ।।३०
सम्पूज्य पूर्णिमां देवीं लिखित्वा चन्दनादिना । ततः पञ्च घटान्पूर्णान्पयोदधिघृतेन च ।।
मधुना सितखण्डेन ब्राह्मणायोपपादयेत् ।।३१

और चूल्हे इन सात वस्तु का दान भगवान् पुरुषोत्तम की चर्चा पूर्वक करने पर कोई भी गृहस्थ स्त्री-पुरुष भी दुःखी नही होता है । पाण्डुनन्दन! समस्त सुखदायक यह गृहव्रत अत्रि ने अनसुइया से कहा था । श्रद्धा समेत सुवर्ण का नीलोत्पल शक्करपात्र समेत किसी कुटुम्ब ब्राह्मण को प्रदान करना पर उसे वैष्णव लोक प्राप्त होता है और इसे लीलाव्रत कहा गया है । आषाढ़ आदि चौमासे में अभ्यङ्ग का त्याग कर पुनः चौमासे मे अन्त में तिल, तेल, नवीन, घट, घृतपूर्ण पायस भोजन ब्राह्मण को अर्पित करने पर विष्णु भवन प्राप्त होता है । लोक प्रीति करने के नाते इसे प्रीतिव्रत कहा गया है । मधु (चैत) मास में दही, क्षीर, घृत और गुड़ के त्याग पूर्वक सूक्ष्म रसपात्र समेत चार वस्त्र का दान ब्राह्मण दम्पति को पूजनोपरांत प्रदान करते समय 'गौरी प्रसन्न हों, कहे । भवानीलोकदायक इस व्रत को गौरी व्रत कहा गया है । त्रयोदशी के दिन नक्त भोजन करते हुए वर्ष के अन्त में त्रयोदशी के दिन चार वस्त्र समेत अशोक की कांचनी प्रतिमा द्रव्य समेत ब्राह्मण को प्रदान करते समय 'प्रद्युम्न प्रसन्न हों' कहे । नृप! इस भाँति इसे सुसम्पन्न करने पर कल्प पर्यंत विष्णुलोक का सुखानुभव करके शोकहीन मानव होता है । समस्त शोक विनाशक होने के नाते इसे काम व्रत कहा गया है । आषाढ़ आदि चौमासे में नख न कटाये एवं वृंत्ताक भक्षण करे । कार्तिक में पुनः अन्त में सुवर्ण कलश को अर्पित करनेपर रुद्रलोक की प्राप्ति होती है और इसे शिवव्रत कहा गया है ।१६-२९½। इसी प्रकार पूर्णिमा के दिन एकाहारी रहकर चन्दन आदि से पूर्णिमा देवी की रचना करके पूजा करने के उपरांत दूध, दही, घी, शहद, और मिश्री वा शक्कर के पूर्ण घट ब्राह्मण को सादर समर्पित करे और पुनः क्षमा प्रार्थना करे—'इन पाँच कलशों के प्रदान करने से जीवों की तुष्टि होती है मेरी भी उसी प्रकार तुष्टि होनी चाहिए। इस प्रकार ब्राह्मणों के नमस्कार करने से उसके सभी

मनोरथान्पूरयस्व संपूर्णान्पूर्णिमा ह्यसि । पञ्चकुम्भप्रदानेन भूतानां तुष्टिरस्तु मे ॥
द्विजानेवं नमस्कृत्य सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥३२
एतत्पञ्चघटं नाम व्रतं पुष्टिप्रदायकम् । वर्जयेद्यस्तु पुष्पाणि हेमंतशिशिरावृतम् ॥३३
पुष्पत्रयं च फाल्गुन्यां कृत्वा शक्त्याथ काञ्चनम् । दद्याद्वै कालवेलायां प्रीयेतां शिवकेशवौ ॥३४
शिरःसौगन्ध्यजननं सदानन्दकरं नृणाम् । कृत्वा परपदं याति सौगन्ध्यव्रतमुत्तमम् ॥३५
फाल्गुनादितृतीयायां लवणं यस्तु वर्जयेत् । समाप्ते शयनं दद्याद्गृहे चोपस्करान्वितम् ॥३६
सम्पूज्य विप्रमिथुनं भवानी प्रीयतामिति । गौरीलोके वसेत्कल्पं सौभाग्यव्रतमुत्तमम् ॥३७
सन्ध्यामौनं नरः कृत्वा समाप्ते घृतकुम्भदः । वस्त्रयुग्मं च घंटां च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥३८
सारस्वतं पदं याति पुनरावृत्ति दुर्लभम् । एतत्सारस्वतं नाम रूपविद्याप्रदायकम् ॥३९
लक्ष्मीमध्येऽथ पञ्चम्यामुपवासी भवेन्नरः । समाप्ते हेमकमलं दद्याद्धेनुसमन्वितम् ॥४०
स वैष्णवं पदं याति लक्ष्मीः स्याज्जन्मजन्मनि । एतल्लक्ष्मीव्रतं नाम दुःखशोकविनाशनम् ॥४१
या तु नारी पिबेत्तोयं जलधारां प्रपातयेत् । समाप्तघृतसंपूर्णां दद्याद्द्वंतिकां नवाम् ॥४२
एतद्धाराव्रतं नाम सर्वरोगहरं परम् । कांतिसौभाग्यजननं सपत्नीदर्पनाशनम् ॥४३
गौरीसमन्वितं रुद्रं लक्ष्म्या सह जनार्दनम् । राज्ञीसमन्वितं सूर्यं प्रतिष्ठाप्य यथाविधि ॥४४
धूपाक्षेपेण सहितां सुघण्टां पात्रसंयुताम् । यो ददाति द्विजेन्द्राणां पुष्पैरभ्यर्च्य पाण्डुरैः ॥४५

मनोरथ सफल होते हैं । तथा पुष्टिप्रदायक इस व्रत को पंच घट व्रत कहा जाता है । हेमन्त और शिशिर के मासों में पुरुषों के त्याग कर फाल्गुन की पूर्णिमा मे दिन तीन पुष्पों की यथाशक्ति काञ्चनी प्रतिमा बनवाकर संध्या समय शिव-केशव प्रसन्न हों, कहते हुए ब्राह्मण को अर्पित करे । इसे सुसम्पन्न करने पर शिर-सुगन्धि एवं आनन्द प्राप्ति समेत उत्तम लोक की प्राप्ति होती है । और इसे सौगन्ध व्रत कहा जाता है ।३०-३५। फाल्गुनमास के आरम्भ में तृतीया के दिन लवण (नमक) के त्याग करते हुए व्रत की समाप्ति में ब्राह्मण दम्पती की अर्चना पूर्वक साधन सम्पन्न सुशय्या प्रदान करते समय 'भवानी प्रसन्न हों' कहे । पुनः इस सौभाग्य व्रत को सुसम्पन्न करने के नाते उसे कल्प पर्यंत गौरी लोक का निवास प्राप्त होता है । सायं काल में मौन व्रत रहते हुए समाप्ति के समय घृत पूर्ण कुम्भ दो वस्त्र और घंटा ब्राह्मण को अर्पित करने पर सारस्वत पद की प्राप्ति होती है जहाँ पहुँचने पर फिर लौटना दुर्लभ हो जाता है । इसी लिए रूप और विद्या प्रदान करने के नाते इसे सारस्वत व्रत कहा जाता है । पञ्चमी के दिन उपवास पूर्वक मध्य काल लक्ष्मी की अर्चना करते हुए समाप्ति के समय धेनु समेत सुवर्ण की लक्ष्मी प्रतिमा प्रदान करने से विष्णु लोक की प्राप्ति होती है, और प्रत्येक जन्म में लक्ष्मी का अचल निवास होता है अतः इस दुःख शोक विनाशक व्रत को लक्ष्मी व्रत कहा जाता है । जलाहार और जलधारा प्रपात करते (गिराते) हुए व्रत समाप्ति के दिन घृत पूर्ण नवीन द्वन्तिका प्रदान करनी चाहिए ।३६-४२। इस प्रकार इस सर्वरोगापहारी धाराव्रत को सुसम्पन्न करने वाली स्त्री को कांति, सौभाग्य की प्राप्ति पूर्वक उसकी सपत्नी का दर्पनाश होता है । गौरी शिव, लक्ष्मी जनार्दन, और राज्ञी सूर्य की यथा विधान प्रतिष्ठा पूजा करके पात्र समेत सुघंटा पीत पुष्पों द्वारा ब्राह्मण की अर्चनोपरांत उन्हें अर्पित कर दक्षिणा प्रदान, और प्रणाम

दक्षिणासहितां कृत्वा प्रणम्य च विसर्जयेत् । एतद्देवव्रतं नाम दिव्यदेहप्रदायकम् ॥४६
कृत्वोपलेपनं शम्भोरग्रतः केशवस्य च । यावद्व्रतं समाप्यैतद्धेनुं च सजलान्विताम् ॥४७
जन्मायुतं स राजा स्यात्ततः शिवपुरे वसेत् । एतच्छ्रुत्वा व्रतं नाम बहुकल्याणकारकम् ॥४८
अश्वत्थं भास्करं गङ्गां प्रणम्यैव च वाग्यतः । एकभुक्तं नरः कुर्यादष्ट चैकं विमत्सरः ॥४९
व्रतान्ते विप्रमिथुनं पूज्य धेनुत्रयान्वितम् । वृक्षं हिरण्मयं दद्यात्सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥५०
दिवि दिव्यविमानस्थः सेव्यतेऽप्सरसां गणैः । एतत्कीर्तिव्रतं नाम भूतिकीर्तिफलप्रदम् ॥५१
घृतेन स्नपनं कृत्वा शम्भोर्वा केशवस्य च । ब्रह्मणो भास्करस्यापि गौर्या लंबोदरस्य वा ॥५२
अक्षतैस्तु समं कुर्यात्पद्मं गोमयमण्डले । समाप्य हेमकमलं तिलधेनुसमन्वितम् ॥५३
शुद्धमष्टाङ्गुलं दद्याच्छिवलोके महीयते । सामगाय नतश्चैतत्सामव्रतमिहोच्यते ॥५४
नवम्यामेकभुक्तं तु कृत्वा कन्याश्च शक्तितः । भोजयित्वा समादद्याद्धैमकञ्चुकवाससी ॥५५
हैमं च सिंहं विप्राय दत्त्वा शिवपुरं व्रजेत् । भवार्बुदं सुरूपश्च शत्रुभिश्चापराजितः ॥५६
एतद्वीरव्रतं नाम नारीणां च सुखप्रदम् । यावत्समारभेद्यस्तु पञ्चदश्यां पयोव्रतः ॥५७
समाप्ते श्रद्धया दद्याद्गाश्च पञ्च पयस्विनीः । वासांसि च पिशंगानि जलकुंभयुतानि च ॥५८
स याति वैष्णवं लोकं पितॄणां तारयेच्छतम् । कल्पान्ते राजराजः स्यात्पितृव्रतमिदं स्मृतम् ॥५९
तांबूलं समये नित्यं गौरीपुत्रं ददाति या । पूगचूर्णसमायुक्तं नारी वा पुरुषोऽपि वा ॥६०

पूर्वक विसर्जन करें । दिव्य देहप्रदायक इस व्रत को देवव्रत कहा जाता है । शिव और केशव (विष्णु) को लेपन भूषित करते हुए व्रत की समाप्ति में जल समेत धेनु दान करने से दश सहस्र जन्म पर्यंत राजा होता है और देहावसान होने पर शिव पुरी में निवास प्राप्त होता है इसलिए यह बहुकल्याणकारक व्रत कहा जाता है । पीपल के वृक्ष, सूर्य और गङ्गा को मौन व्रत की समाप्ति में ब्राह्मण दम्पती की अर्चना पूर्वक उन्हें तीन धेनु समेत सुवर्ण का वृक्ष प्रदान करने पर अश्वमेध का फल प्राप्त होता है और अन्त में स्वर्ग में दिव्य विमान पर बैठे अप्सरागणों से सुसेवित होता है । ऐश्वर्य और कीर्ति प्रदान करने के कारण इसे कीर्तिव्रत कहा जाता है । शिव, विष्णु, सूर्य, गौरी और लम्बोदर (गणेश) को गोमय (गोबर) से लिपी हुई गोलाकार भूमि में, जिसमें अक्षत द्वारा समभाग का सुन्दर कमल बना हो, घृत से स्नान और पूजा करते हुए अंगुल का सुवर्ण कमल प्रदान करने पर शिव लोक की प्राप्ति होती है । सामवेद के गायन करने वाले इसे सामव्रत कहते हैं ।४३-५४। नवमी के दिन एकाहारी रह कर कन्या को यथाशक्ति भोजन कराये और सुवर्ण भूषित कंचुकी (चोली) और साड़ी अर्पित करे । व्रत की समाप्ति में सुवर्ण की सिंह प्रतिमा ब्राह्मण को अर्पित करने पर शिव पुरी प्राप्त होती है और दशकरोड़ जन्म पर्यंत सुखवान एवं शत्रु का अजेय होता है । इसे वीर व्रत कहा जाता है इससे नारियों को अत्यन्त सुख प्राप्त होता है । जो पूर्णिमा के दिन पयोव्रत आरम्भ कर व्रत की समाप्ति के दिन श्रद्धा समेत धेनु, पीताम्बर, तथा जलपूर्ण कलश प्रदान करता है, वह अपने सौ पीढ़ी के पितरों को स्वर्ग लोक की प्राप्ति कराते हुए स्वयं कल्प के अन्त में राजाधिराज (महाराज) होता है और इसे पितृव्रत कहते हैं । सुसज्जित ताम्बूल (पान का बीड़ा) गौरी पुत्र गणेश को नित्य अर्पित करते हुए वर्ष के अन्त में तृतीया के दिन सुवर्ण का ताम्बूल, जो मोती

वर्षस्यान्ते तु सौवर्णं कारयित्वा फलान्वितम् । मुक्ताफलमयं चूर्णत्रितयं[1] या प्रयच्छति ।।६१
न सा प्राप्नोति दौर्भाग्यं न दौर्गन्ध्यं मुखस्य च । एतत्पत्रव्रतं नाम सौगन्ध्यजननं परम् ।।६२
चैत्रादिचतुरो मासाञ्जलं कुर्यादयाचितम् । ज्येष्ठाषाढे च वा मासं पक्षं वा पाण्डुनन्दन ।।६३
व्रतान्ते मणिकं दद्यादन्नवस्त्रसमन्वितम् । घृतेन सहितं तद्वत्सप्तधान्यसमन्वितम् ।।६४
तिलपात्रं हिरण्यं च ब्रह्मलोके महीयते । कल्पांते राजराजः स्याद्वारिव्रतमिहोच्यते ।।६५
पञ्चामृतेन स्नपनं कृत्वा विष्णोः शिवस्य च । वत्सरांते पुनर्दद्याद्धेनुं पञ्चामृतैर्युताम् ।।६६
विप्राय कनकं शंखं स पदं याति शांकरम् । राजा भवति कल्पांते वृत्तिव्रतमिहोच्यते ।।६७
यो हिंसां वर्जयित्वा तु मासं संवत्सरं तथा । व्रतांते हेमहरिणं कृत्वा शक्त्या विचक्षणः ।।६८
तद्वत्सवत्सां गां दद्यात्सोऽश्वमेधफलं लभेत् । अहिंसाव्रतमित्येतत्सर्वशांतिप्रदं नृणाम् ।।६९
माघमास्युषसि स्नानं कृत्वा दांपत्यमर्चयेत् । भोजयित्वा यथा शक्त्या माल्यवस्त्रविभूषणैः ।।७०
सौभाग्यं महदाप्नोति शरीरारोग्यमुत्तमम् । सूर्यलोके वसेत्कल्पं सूर्यव्रतमिदं स्मृतम् ।।७१
आषाढादिचतुर्मासं प्रातःस्नायी भवेन्नरः । विप्राय भोजनं दद्यात्कार्त्तिक्यां गोप्रदो भवेत् ।।७२
घृतकुंभे ततो दत्त्वा सर्वान्कामानवाप्नुयात् । वैष्णवव्रतमित्युक्तं विष्णुलोकमवाप्नुयात् ।।७३
अयनादयनं यावद्वर्जयेन्मधुसर्पिषी । तदन्ते पुण्यदानानि घृतधेन्वा सहैव तु ।।७४

चूर्ण से भूषित हो, अर्पित करने पर उस स्त्री अथवा पुरुष का दुर्भाग्य नही होता है और न कभी मुख -दुर्गन्धि होती है, अपितु सुगन्ध उत्पन्न होता है। और इसे पत्रव्रत कहा जाता है। पाण्डुनन्दन! चैत्र आदि के चार मासों में नित्य अयाचित जलदान (प्याऊ) करता है और आषाढ़ मास में पूरे समय तक न कर पक्ष तक ही सीमित करते हुए व्रत की समाप्ति के दिन अन्न वस्त्र समेत मटका दान, जो घृत, सप्त धान्य, तिल पूर्ण पात्र और सुवर्ण युक्त हो, ब्राह्मण को अर्पित करने पर ब्रह्म लोक में पूजित होता है और कल्प के अन्त में राजराजा (महाराज) होता है। इसे वारिव्रत कहा जाता है। विष्णु और शिव को पञ्चायतन से स्नान कराते हुए वर्ष के अन्त में पञ्चामृत समेत धेनु और सुवर्ण का शंख ब्राह्मण को अर्पित करने पर शंकर लोक की शीघ्र प्राप्ति होती है और कल्प के अन्त में राजप्रद प्राप्त होता है अतः इसे वृत्तिव्रत कहा गया है। हिंसा का त्याग रूप व्रत करते हुए मास अथवा वर्ष के अन्त में व्रत समाप्ति के दिन यथा शक्ति सुवर्ण रचित हरिण और सवत्सा गौ प्रदान करने पर उस बुद्धिमान् पुरुष को अश्वमेघ का फल प्राप्त होता है। मनुष्यों को शांति प्रदान करने के नाते यह अहिंसा व्रत कहा गया है। माघ मास में ऊषा काल (सूर्योदय के पूर्व शेष आराओं के रहते) स्नान करके दम्पती की अर्चना, भोजन, माला, वस्त्र और यथाशक्ति भूषण-भूषित करने पर महान् सौभाग्य तथा उत्तम आरोग्य की प्रप्ति पूर्वक अंत में सूर्य लोक में एक कल्प निवास प्राप्त होता है। इसे सूर्य व्रत कहते हैं।५५-७३। आषाढ़ आदि के मासों में प्रातः काल स्नान, ब्राह्मण भोजन कराते हुए कार्तिक पूर्णिमा के दिन घृत पूर्ण कुम्भ (कलश) समेत गो दान करने से उस पुरुष को वैष्णव लोक प्राप्त होता है अतः यह वैष्णव व्रत कहा गया है। एक अयन से दूसरे अयन (अर्थात् सूर्य के दक्षिणायन होने से उत्तरायण अथया उत्तरायण से दक्षिणायन) तक मधु (शहद) और घृत के

---

१. तृतीयायां प्रयच्छति।

दत्त्वा शिवपदं याति दत्त्वा तु घृतपायसम् । एतच्छीलव्रतं नाम शीलारोग्यफलप्रदम् ।।७५
संध्यादीपप्रदो यस्तु मांसं तैलं विवर्जयेत् । समाप्ते दीपकं दद्याच्चक्रशूले च काञ्चने ।।७६
वस्त्रयुग्मं च विप्राय स तेजस्वी भवेद्दृढम् । एतद्दीपव्रतं नाम सदा कांतिप्रदायकम् ।।७७
एकभक्तेन सप्ताहं गौरीं वा यस्तु पूजयेत् । संपूज्य पार्वतीं भक्त्या गन्धपुष्पविलेपनैः ।।७८
ततःसवासिनीभ्यां तु कुंकुमेन विलेपयेत् । पुष्पैर्विलेपयेच्चैनां कर्पूरागरुचन्दनैः ।।७९
ताम्बूलं शोभनं दत्त्वा नारिकेलफलं तथा । प्रीयतां कुमुदा देवीं प्रणिपत्य विसर्जयेत् ।।८०
एकैकां पूजयेद्देवीं सप्ताहं यावदेव तु । पुनस्तु सप्तमे पूर्णे ताः सप्तैव निमंत्रयेत् ।।८१
षड्रसं भोजयित्वा तु यथा शक्त्या विभूषणैः । भूषयित्वा माल्यवस्त्रैः कर्णवेष्टांगुलीयकैः ।।८२
कुमुदा माधवी गौरी भवानी पार्वती उमा । काली च दर्पणं हस्ते प्रत्येकं विनिवेदयेत् ।।८३
ब्राह्मणं पूजयित्वैकं वाच्यः संपन्नमस्तु ते । सप्तसुन्दरकं नाम व्रतं चैतद्युधिष्ठिर ।।८४
करोति सुन्दरं देहं सौभाग्यं यच्छते परम् । वर्जयेच्चैत्रमासे तु यस्तु गन्धानुलेपनम् ।।८५
शुक्तिं गन्धभृतां दत्त्वा विप्राय सितवाससी । शक्त्या च दक्षिणं दद्यात्सर्वान्कामान्समश्नुते ।।८६
वारुणं च पदं याति तदेतद्वरुणव्रतम् । वैशाखमासे लवणं वर्जयित्वा यतव्रतः ।।८७
मासांतेऽथ ततो दद्यात्सवत्सां गां द्विजातये । स्थित्वा विष्णुपदे कल्पं ततो राजा भवेदिह ।।८८
एतत्कांतिव्रतं नाम कांतिकीर्तिप्रदायकम् । ब्रह्माण्डं कांचनं कृत्वा तिलद्रोणोपरि स्थितम् ।।८९

त्याग करते हुए व्रत की समाप्ति में घृत, गो और घृत पूर्ण पायस समेत प्राप्त होता है इसीलिए इसे शील-व्रत कहा जाता है। मांस और तेल के त्याग पूर्वक संध्या समय दीप दान करते हुए व्रत के अन्त में दीप, सुवर्ण का चक्र और त्रिशूल समेत दो वस्त्र ब्राह्मण को प्रदान करने पर दृढ़ तेज प्राप्त होता है। सदैव क्रान्ति प्रद होने के नाते इसे दीपव्रत कहा जाता है। सप्ताह में प्रतिदिन एकाहारी रहकर गन्ध, पुष्प और लेपन द्वारा गौरी, पार्वती की सविधान अर्चना करके सौभाग्यवती दो स्त्रियों की कुंकुम के अनुलेपन पूर्वक पुष्प, कपूर, अगरु, चन्दन, द्वारा अर्चा करे। पश्चात् सुशोभित ताम्बूल और नारियल प्रदान करते हुए 'कुमुदा देवी प्रसन्न हों' कह कर विसर्जन करे।७४-८०। इस सप्ताह में प्रत्येक दिन एक-एक की पूजा करके पुनः सातवें दिन उन सातों को निमंत्रित कर षड्रस भोजन, यथाशक्ति भूषण माला, वस्त्र, कुण्डल, और अंगूठी, द्वारा कुमुदा, माधवी, गौरी, भवानी, पार्वती, उमा तथाकाली की अर्चा करे और प्रत्येक के हाथ में दर्पण अर्पित करते हुए एक ब्राह्मण की पूजा कर उनसे प्रार्थना करे—आप मेरे व्रत को सुसम्पन्न करने की कृपा करें मैं आपको नमस्कार कर रहा हूँ। युधिष्ठिर! इस भाँति इस सप्त सुन्दरक नामक व्रत को सुसम्पन्न करने पर सुन्दर देह और उत्तम सौभाग्य की प्राप्ति होती है। चैत्र मास में गन्ध का लेपन त्याग करते हुए गंध-पूर्ण शुक्ति (सुतही) श्वेत दो वस्त्र और यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करने से सभी कामनाएँ सफल होती हैं तथा वरुण पद प्राप्त होता है अतः इसे वरुण व्रत कहा गया है। वैशाख मास में संयम पूर्वक लवण (नमक) के त्याग करते हुए मास के अन्त में सवत्सा गौ ब्राह्मण को अर्पित करने पर एक कल्प तक विष्णु लोक का निवास प्राप्त होता है तदुपरांत राजा होता है। कांति और कीर्ति प्रदान करने के नाते इसे कांतिव्रत कहा जाता है।८१-८८। ब्रह्माण्ड की काञ्चन प्रतिमा एक द्रोण (पसेरी) तिल के ऊपर स्थापित और

त्र्यहं तिलव्रती भूत्वा वह्निं संतर्पयेद्द्विजम् । संपूज्य विप्रदांपत्यं माल्यवस्त्रविभूषणैः ।।९०
शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वं विश्वात्मा प्रीयतामिति । पुण्येऽह्नि दद्यात्स परं ब्रह्म यात्यपुनर्भवम् ।।९१
एतद्ब्रह्मव्रतं नाम निर्वाणफलदं नृणाम् ।।९२
पञ्चोभयमुखीं दद्यात्प्रभूतकनकान्विताम् । दिनं पयोव्रतं तिष्ठेत्स याति परमं पदम् ।।९३
त्र्यहं पयोव्रतः स्थित्वा काञ्चनं कल्पपादपम् । पलादूर्ध्वं यथा शक्त्या तण्डुलं रूपसंयुतम् ।।९४
छादितं वरवासोभिः पुष्पमालाविभूषितम् । दत्त्वा स्वर्गे वसेत्कल्पं कल्पव्रतमिदं स्मृतम् ।।९५
यस्तु वत्सतरीं भव्याङ्कुण्ठाभरणभूषिताम् । सुपर्याणां सुखस्पृष्टां खलीनालंकृताननाम् ।।९६
मोदकोदकपात्रेण ताम्बूलेन समन्विताम् । स्थगितां स्थापयेत्पृष्ठे शृङ्गाग्रेषु हिमान्विताम् ।।९७
ईदृग्विधां व्यतीपाते ग्रहणे चायनद्वये । अयाचितेन च स्थित्वा ततो दद्याद्द्विजातये ।।९८
एतद्द्वारव्रतं नाम मार्गखेदाविनाशनम् । परलोकार्द्धगमने क्लान्तिश्रमहरं परम् ।।९९
नक्ताशी त्वष्टमीषु स्याद्वत्सरान्तेऽष्टगोप्रदः । पौरंदरं पदं याति सुगतिव्रतमुच्यते ।।१००
यश्चेन्धनप्रदो राजन्हेमंतशिशिरव्रतम् । घृतधेनुं प्रयच्छेत परं ब्रह्म स गच्छति ।।१०१
शरीरारोग्यजननं द्युतिकान्तिप्रदायकम् । वैश्वानरव्रतं नाम सर्वपापप्रणाशनम् ।।१०२
एकादश्यां तु नक्ताशी यश्चक्रं विनिवेदयेत्[1] । तद्वच्छंखं तु सौवर्णं चैत्रे चित्रासु पांडव ।।१०३

पूजित करते हुए तीन दिन तिल-व्रत करके अन्त में अग्नि तथा ब्राह्मण भोजन कराकर माला, वस्त्र, एवं भूषण द्वारा ब्राह्मण दम्पती की पूजा और यथा शक्ति तीन रत्न सुवर्ण का दान करते समय 'विश्वात्मा प्रसन्न हों' कहे । इस प्रकार किसी पुण्य दिवस में इसे सुसम्पन्न करने पर ब्रह्म की प्राप्ति होती है, जिससे पुनः जन्म ग्रहण नहीं करना पड़ता है । मनुष्यों को निर्वाण फल प्रदान करने के नाते इसे ब्रह्मव्रत कहा गया है । अधिक परिणाम में सुवर्ण की उभयमुखी प्रतिमा कादान और दिन में केवल पय-आहार करते हुए चौथे दिन सुवर्ण का कल्प वृक्ष और यथाशक्ति एक पत्र से अधिक का तंदुलाकार, जो उत्तम वस्त्र एवं पुष्पमाला से विभूषित हो, अर्पित करने पर स्वर्ग में पुष्प कल्प का निवास प्राप्त होता है अतः इसे छोटा बच्चा-बछिया जो परम सुन्दरी, कण्ठाभरण भूषित, पीठपर चारजामा-जीनपोस आदि से सुसज्जित, लगाम की भाँति मुख में रस्सी (मोहरी) से बंधी हो, और पीठ तथा सीगों में चाँदी लगी है ताम्बूल समेत व्यतीपात, ग्रहण, अथवा अयन (उत्तरायण-दक्षिणायन) के समय अयाचित ब्राह्मण को प्रदान करे।८९-९८। मार्ग मे श्रम को विनाश करने वाले इस व्रत को द्वारव्रत कहा जाता है । परलोक की यात्रा में आधे मार्ग पर पहुँचने में जितना श्रम और क्रान्ति होती है विनष्ट करता है । प्रत्येक अष्टमी तिथि के दिन नक्त भोजन करते हुए वर्ष के अन्त में आठ गौप्रदान करने पर पुरन्दर (इन्द्र) पद प्राप्त होता अतः इसे सुगति व्रत कहा गया है । राजन्! हेमन्त और शिशिर ऋतु के मासोंमें ईन्धन (लकड़ी) दान करके घृत की धेनु प्रदान करने पर ब्रह्म की प्राप्ति होती है । शरीरारोग्य और कांति के प्रदान पूर्वक समस्त पापों के विनाश करने के नाते इसे वैश्वानर व्रत कहा जाता है ।९९-१०२। पाण्डव! चैत्र मास की एकादशी को नक्तभोजन

---

१. विनिवेशयेत् ।

य एतत्कुरुते भक्त्या स विष्णोः पदमाप्नुयात् । एतद्विष्णुव्रतं नाम कल्पादौ राज्यलाभकृत् ।।१०४
पयोव्रतस्तु पञ्चम्यां व्रतान्ते गोयुगप्रदः । लक्ष्मीलोके वसेत्कल्पमेतद्देवीव्रतं स्मृतम् ।।१०५
सप्तम्यां नक्तभुग्दद्यात्समाप्ते गां पयस्विनीम् । सोऽर्कलोकमवाप्नोति भानुव्रतमिहोच्यते ।।१०६
चतुर्थ्यां नक्तभुग्दद्यादष्ट गा होमचारणम् । व्रतं वैनायकं नाम सर्वविघ्नविनाशनम् ।।१०७
महाफलानि यस्त्यक्त्वा चातुर्मासं द्विजातये । हैमानि कार्त्तिके दद्याद् गोयुगेन समं नरः ।।१०८
सितं वस्त्रयुगं नाम सम्पूर्णाद्यघटानि च । एतत्फलव्रतं नाम [1]फलावाप्तिकरं सदा ।।१०९
यश्चोपवासी सप्तम्यां समांते हेमपङ्कजम् । धेनुश्च शक्तितो दद्यात्सवत्साः कांस्यदोहना ।।११०
भक्त्या राजेन्द्र विप्राय वाचकाय निवेदयेत् । एतत्सौरव्रतं नाम सूर्यलोकप्रदायकम् ।।१११
द्वादश द्वादशीर्यस्तु नाम प्राशनसंयुतः । समुपोष्य समान्ते तु सवस्त्राः सोदका घटाः ।।११२
द्वादशात्रप्रदेयाश्च सर्वकामप्रसिद्धये । गोविन्दव्रतमित्येतद्गोविन्दपददायकम् ।।११३
कार्त्तिक्यां यो वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत् । स गोलोकमवाप्नोति वृषव्रतमिदं स्मृतम् ।।११४
व्रतांते गौः प्रदातव्या भोजनं शक्तितः परम् । विप्राणामत्र कथितं प्राजापत्यमिदं व्रतम् ।।११५
चतुर्दश्यां तु नक्ताशी समांते गोयुगप्रदः । शैवं पदमवाप्नोति ज्ञेयं च त्र्यम्बकव्रतम् ।११६

करके सुवर्ण का चक्र और चित्रा नक्षत्र युक्त पूर्णिमा के दिन सुवर्ण शंख भक्तिपूर्वक प्रदान करने पर विष्णुपद प्राप्त होता है। अतः इसे विष्णुव्रत कहा जाता है। जो कल्प के आदि में राज्य का लाभ प्रदान करता है। पञ्चमी तिथि के दिन दुग्धाहार करते हुए व्रत के अन्त में दो गौ प्रदान करने पर एक कल्पपर्यंत लक्ष्मी लोक का निवास प्राप्त होता है अतः इसे देवी व्रत कहते हैं। सप्तमी में नक्त व्रत करते हुए व्रत की समाप्ति में धेनु गाय प्रदान करने पर सूर्यलोक प्राप्त होता है अतः इसे भानुव्रत कहते हैं। चतुर्थी के दिन नक्त भोजन करते हुए अन्त में आठ गौ प्रदान पूर्वक हवन सुसम्पन्न कर सम्पूर्ण विघ्नों का नाश करने के नाते यह वैनायकव्रत कहा जाता है। चौमासे में महाफलों के त्याग करते हुए कार्तिक पूर्णिमा के दिन दो गौसमेत सुवर्ण के फल चार श्वेत वस्त्र, और पूर्ण कलश प्रदान करने पर उत्तम फलों की प्राप्ति होती है अतः इसे फल व्रत कहा जाता है। राजेन्द्र! भक्ति पूर्वक सप्तमी के दिन उपवास करते हुए व्रत की समाप्ति में सुवर्ण-कमल, सवत्सा और काँसे की दोहनी समेत यथाशक्ति गौ वाचक ब्राह्मण को प्रदान करने पर सूर्य लोक की प्राप्ति होती है अतः इसे सौकर व्रत कहते हैं। प्रति द्वादशी के दिन उपवास रहकर नाम प्राशन करते हुए वर्ष के अन्त वस्त्र समेत जलपूर्ण बारह घट प्रदान करने पर समस्त कामनाएँ सिद्ध होती हैं। गोविन्द पद प्रदान करने के नाते इसे गोविन्द व्रत कहा जाता है। कार्तिकी पूर्णिमा के दिन वृषोत्सर्ग याग सम्पन्न करके नक्त भोजन करने पर गोलोक की प्राप्ति होती है अतः इसे वृषव्रत कहा जाता है।१०३-११४। ब्राह्मण को यथाशक्ति भोजन प्रदान करते हुए व्रत के अन्त में गौ प्रदान करना चाहिए। इसे प्रजायत्य व्रत कहा जाता है। चतुर्दशी के दिन नक्त भोजन करते हुए वर्ष के अन्त में चार गौ प्रदान करने पर शैव लोक प्राप्त होता है। इसे त्र्यम्बक व्रत कहते हैं।११५-११६। सात रात्रि में उपवास पूर्वक ब्राह्मण को

---

१. विष्णुलोकप्रदायकम्।

सप्तरात्रोषितोदद्याद्घृतकुम्भं द्विजातये । ब्रह्मव्रतमिदं प्राहुर्ब्रह्मलोकप्रदायकम् ॥११७
मासान्ते च स गां दद्याद्धेनुमंते पयस्विनीम् । शक्रलोके वसेत्कल्पं शक्रव्रतमिदं स्मृतम् ॥११८
कार्त्तिकस्य[1] सिते पक्षे चतुर्दश्यां नराधिप । सोपवासः पञ्चगव्यं पिबेद्रात्रौ विचक्षणः ॥११९
कपिलायास्तु गोमूत्रं कृष्णाया गोमयं तथा । सितधेन्वास्तथा क्षीरं रक्तायास्तु तथा दधि ॥१२०
गृहीत्वा कर्बुरायास्तु घृतमेकत्र मेलयेत् । वेदोक्तमन्त्रै राजेन्द्र कुशोदकसमन्वितम् ॥१२१
ततः प्रभातसमये स्नात्वा सन्तर्प्य देवताः । ब्राह्मणान्वाचयित्वा तु भुञ्जीयाद्वाग्यतः शुचिः ॥१२२
ब्रह्मकूर्चव्रतं ह्येतत्सर्वपापप्रणाशनम् । यद्बाल्ये यच्च कौमारे वार्धक्ये चापि यत्कृतम् ॥
ब्रह्मकूर्चोपवासेन तत्सर्वं नश्यति क्षणात् ॥१२३
अनग्निपक्वमश्नाति तृतीयायां तु यो नरः । गां दत्त्वा शिवमभ्येति पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥१२४
एतदृषिव्रतं नाम सर्वमाङ्गल्यकारकम् । हैमं पलद्वयादूर्ध्वं रथमश्वयुगान्वितम् ॥१२५
तिलप्रस्थोपरि गतं सितमाल्ययुगान्वितम् । दत्त्वा कृतोपवासस्तु दिवि कल्पशतं वसेत् ॥
तदन्ते राजराजः स्यादग्निव्रतमिदं स्मृतम् ॥१२६
कृत्वा पलद्वयादूर्ध्वं शय्याभ्यां संयुतं नरः । हैमं रथवरं श्रेष्ठं सर्वोपस्करसंयुतम् ॥१२७
सत्यलोके वसेत्कल्पं सहस्रमथ भूपतिः । भवेदुपोषितो दत्त्वा करिव्रतमिदं शुभम् ॥१२८
मुखवासं परित्यज्य समांते गोप्रदो भवेत्। यक्षाधिपं समाप्नोति सुमुखं व्रतमुच्यते ॥१२९

घृत पूर्ण कलश प्रदान करने पर ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है अतः यह दान करते हुए वर्ष के अन्त में धेनु गौ प्रदान करने पर शक्र (इन्द्र) लोक में एक कल्पका निवास प्राप्त होता है इसीलिए इसे शक्रव्रत कहा गया है । नराधिप! कार्तिक मास की कृष्ण चतुर्दशी के दिन उपवास करते हुए रात्रिमें उस भाँतिका पञ्चगव्यपान करना चाहिए, जिसमें कपिला गौ का गोमूत्र, कृष्णागौका गोमय (गोबर), श्वेत वर्ण वाली गौ का क्षीर, रक्त वर्ण वाली का दही, कर्बुर (चितकबरी) गौ का घृत पिलाया गया हो, राजेन्द्र! उसे कुशोदक पूर्ण करते हुए संयम पूर्वक वेदमंत्रो द्वारा वाल्य, कुमार और वृद्धावस्था के समस्त पाप उपवास करते ही उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं । तृतीया के दिन अग्नि पक्व भोजन करते हुए व्रत के अन्त में गोदान करने वाले पुरुष को शिव लोक प्राप्त होता है । जहाँ पहुँचने पर पुनरावृत्ति (पुनर्जन्म) नहीं होता है । समस्त मङ्गल करने के नाते इसे ऋषिव्रत कहा जाता है । उपवास करते हुए दोपल से अधिक सुवर्ण का अश्व समेत रथ एक सेर तिल के ऊपर स्थापित एवं पूजित करके, जिसमें श्वेत माला का जूआ लगी हो, उसका दान करने पर स्वर्ग में सौकल्प का निवास प्राप्त होता है । और अंत में महाराज का पद प्राप्त होता है । इसे अग्नि व्रत कहा गया है । उपवास पूर्वक दो पल से अधिक सुवर्ण के सुन्दर रथ समस्त साधन सम्पन्न एवं सुसज्जित शय्या प्रदान करने पर सहस्र कल्प तक सत्य लोक में निवास करने के उपरांत राजा होता है और इसे करिव्रत कहा गया है ।११७-१२८। मुख वास (ताम्बूल आदि के त्याग पूर्वक वर्ष के अन्त में गौ प्रदान करने पर यक्षाधिप पद प्राप्त होता है तथा इसे सुमुख व्रत कहा जाता है । रात्रि में जलनिवास

---

१. असिते पक्षे ।

निशि कृत्वा जले वासं प्रभाते गोप्रदो भवेत् । वारुणं लोकमाप्नोति वरुणव्रतमुच्यते ॥१३०
चान्द्रायणं च यः कुर्याद्धैमं चन्द्रं निवेदयेत् । चन्द्रव्रतमिदं प्रोक्तं चन्द्रलोकप्रदायकम् ॥१३१
ज्येष्ठे पञ्चतपाः सायं हेमधेनुप्रदोदिवम् । अथाष्टमीचतुर्दश्यौ रुद्रव्रतमिदं स्मृतम् ॥१३२
अनुलेपनं यः कुर्यात्तृतीयायां शिवालये । स स्वर्गं धेनुदो याति भवानी व्रतमुच्यते ॥१३३
माघे निश्यार्द्रवासाः स्यात्सप्तम्यां गोप्रदो भवेत् । दिवि कल्पं वसित्वेह राजा स्यात्तापनं व्रतम् ॥१३४
दत्त्वा कृतोपवासस्तु दिवि कल्पशतं वसेत् । तदंते राजराजः स्यादश्वव्रतमिदं स्मृतम् ॥१३५
तद्वत्कल्पद्वयादूर्ध्वं करिभ्यां संयुतं नरः । हैमं रथं नरश्रेष्ठ सर्वोपस्करणान्वितम् ॥१३६
त्रिरात्रोपोषितो दद्यात्फाल्गुन्यां भवनं शुभम् । आदित्यलोकमाप्नोति पूजितः स सुरासुरैः ॥१३७
सुरलोकमवाप्नोति धाम[1] व्रतसमन्वितम् । त्रिसंध्यं पूज्य[2] दांपत्यमुपवासी विभूषणैः ॥१३८
पौर्णमास्यामवाप्नोति मोक्षमिन्दुव्रतादिह ॥१३९
दत्त्वा[3] सितद्वितीयायामिंदोर्लवणभोजनम् । कांस्यं सवस्त्रं राजेन्द्र दक्षिणासहितं तथा ॥१४०
समांते गोप्रदो याति विप्राय शिवमन्दिरम् । कल्पान्ते राजराजः स्यात्सोमव्रतमिदं स्मृतम् ॥१४१
प्रतिपद्येकभक्ताशी समान्ते कपिलाप्रदः । वैश्वानरपुरं याति आग्नेयव्रतमुच्यते ॥१४२

करके प्रातः काल गोदान करने पर वरुण लोक प्राप्त होता है अतः इसे वरुण व्रत कहते हैं । चान्द्रायण व्रत करने के अनन्तर सुवर्णचन्द्र प्रदान करने पर चन्द्र लोक की प्राप्ति होती है अतः इसे चन्द्रव्रत कहते हैं । ज्येष्ठ मास की अष्टमी और चतुर्दशी के दिन पञ्चतपा (पंचाग्नि) तापों के उपरांत सायंकाल सुवर्ण की धेनु पञ्चतपा (पंचाग्नि) तापने के उपरांत सायंकाल सुवर्ण की धेनु प्रदान करना चाहिए । इसे रुद्रवत कहा जाता है । तृतीया के दिन शिवालय में शिवजी के लेप करते हुए अन्त में गोदान करने पर स्वर्ग की प्राप्ति होती है । इसे भवानी व्रत कहा गया है । माघ मास की सप्तमी की रात्रि में भीगे वस्त्र पहने व्यतीत कर अन्त में गोदान करने पर स्वर्ग में एक कल्प का निवास प्राप्त होता है और यहाँ जन्म ग्रहण करने राजपद प्राप्त होता है। इसे तापन व्रत कहते हैं। १२९-१३४। उपवास पूर्वक अश्वदान करने पर सौकल्प तक स्वर्ग निवास प्राप्त होता है और अन्त में राजाधिराजपद । इसे अश्वव्रत कहा गया है । नरश्रेष्ठ! उसी प्रकार कल्प के ऊपर दो हाथियों समेत सुवर्ण रथ जो सभी साधनों से सुसम्पन्न हो, तीन रात्रि के उपवास करने के उपरांत फाल्गुन पूर्णिमा के दिन सुन्दर भवन के साथ दान करने पर आदित्य लोक प्राप्त होता है। पश्चात् सुर एवं असुर द्वारा पूजित होकर स्वर्गलोक की प्राप्ति करता है अतः इसे धाम व्रत कहते हैं। पूर्णिमा मे दिन उपवास रह कर तीनों समय आभूषणों द्वारा ब्राह्मण दम्पती की पूजा करने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है अतः इसे इन्दुव्रत कहा गया है । राजेन्द्र! कृष्ण पक्ष की द्वितीया के दिन चन्द्रमा के लिए लवण भोजन, कांसे का पात्र वस्त्र और दक्षिणा प्रदान करते हुए वर्ष की समाप्ति में ब्राह्मण को गोदान अर्पित करने पर शिवमन्दिर की प्राप्ति होती है। पुनः कल्प के अन्त में राजाधिराज होता है अतः इसे सोमव्रत कहा गया है। १३५-१४१। प्रतिपदा के दिन एकाहारी रहते हुए वर्ष के अन्त में कपिला गौ अर्पित करने पर वैश्वानर (अग्नि)

---

१. धामव्रतमिदं स्मृतम् । २. पूजितं देवम् । ३. कस्मिश्चित्पुस्तके—"दत्त्वासिताद्वितीयायाम्" —इत्यारभ्य "संतारयति सप्तष्टौ कुलान्यात्मानमेव च" सार्धनवश्लोकात्मको ग्रन्थः—"कार्तिकादि तृतीयां प्राश्य गोमूत्रयावकम्"—इत्येतदग्रेऽस्ति ।

एकादश्यां माघमासे चतुर्दश्यष्टमीषु च । एकभक्तेन यो दद्याद्वालकान्यजिनानि च ॥१४३
उपानहौ कम्बलांश्च चैत्रे छत्रादिकं ततः । करपत्रादिकं चापि यथा शक्त्या विचक्षणः ॥१४४
ब्राह्मणानां महाराज सोऽश्वमेधफलं लभेत् । एतत्सौख्यव्रतं नाम सर्वसौख्यप्रदायकम् ॥१४५
दशम्यामेकभक्ताशी समांते दशधेनुदः । दिशश्च काञ्चनीर्दद्यान्नारीरूपा[1] युधिष्ठिर ॥१४६
तिलद्रोणोपरिगतो ब्रह्मांडाधिपतिर्भवेत् । एतद्विश्वव्रतं नाम महापातकनाशनम् ॥१४७
संपूज्य सितसप्तम्यां भानुधान्यानि सप्त यः । ददाति नक्तभुग्राजँल्लवणेन समं द्विजे ॥१४८
स तारयति सप्ताष्टौ कुलान्यात्मानमेव च । एतद्धान्यव्रतं[2] नाम धनधान्यप्रदायकम् ॥१४९
मासोपवासी यो दद्याद्धेनुं विप्राय शोभनाम्[3] । स वैष्णवं पदं याति भीमव्रतमिदं स्मृतम् ॥१५०
पक्षोपवासी यो दद्याद्विप्राय कपिलाद्वयम् । स ब्रह्मलोकमाप्नोति पूजितः सुरसत्तमैः ॥१५१
दद्यात्रिंशत्पलादूर्ध्वं महीं कृत्वा तु काञ्चनीम् । कुलाचलाद्रिसहितां तिलवस्त्रसमन्विताम् ॥१५२
तिलद्रोणोपरि गतां ब्राह्मणाय कुटुम्बिने । दिनं पयोव्रतस्तिष्ठेद्रुद्रलोके महीयते ॥१५३
एतन्महीव्रतं प्रोक्तंसप्तकल्पानुवर्तकम् । माघमासेऽथ चैत्रे वा गुडधेनुप्रदो भवेत् ॥१५४
गुडव्रतस्तृतीयायां सर्वोपस्करणैर्युतः । गौरीलोकमवाप्नोति पूज्यतेऽप्सरसां गणैः ॥१५५
[4]उमाव्रतमिदं प्रोक्तं सततानन्ददायकम् । वत्सरं त्वेकभक्ताशी सभक्ष्यजलकुंभदः ॥१५६

लोक की प्राप्ति होती है अतः इसे अग्निव्रत कहते हैं । महाराज! माघमास की एकादशी, चतुर्दशी और अष्टमी के दिन एकाहारी रह कर कुंकुम, मृगचर्म, उपानह, कम्बल तथा चैत्र में यथा शक्ति छत्ता, पंखा -जल पात्र आदि ब्राह्मणों को सादर अर्पित करने पर अश्वमेध का फल प्राप्त होता है । अतः सम्पूर्ण सौख्य प्रदान करने के नाते इसे सौख्य व्रत कहा जाता है । युधिष्ठिर! दशमी के दिन एकाहार रहते हुए वर्ष के अन्त में दश धेनु गौ और एक द्रोण तिल के ऊपर दश दिशाओं की सुवर्ण की सभी रूप प्रतिमा स्थापित एवं पूजित करने पर ब्रह्माण्ड नामक पद प्राप्त होता है । अतः इस महापातक विनाशक को विश्वव्रत कहा गया है । राजन्! कृष्ण पक्ष की सप्तमी के दिन भानु की अर्चना करके सूर्य समेत सप्त धान्य के दान और नक्तभोजी होने पर अपनेसमेत पन्द्रह कुल का उद्धार होता है। अतः धन धान्य पद होने के नाते यह धान्य व्रत बताया गया है। एक मास के उपवास करने के अन्त में सुन्दर गौ ब्राह्मण को अर्पित करने पर वैष्णव लोक की प्राप्ति होती है इसे भीम व्रत कहा गया है।१४२-१५०। एक पक्ष का उपवास करके अन्त में दो कपिला गौ ब्राह्मण को अर्पित करने पर देवों द्वारा पूजित होता हुए ब्रह्म लोक प्राप्त होता है। एक द्रोण तिल के ऊपर तीस पले से अधिक सुवर्ण की पृथिवी प्रतिमा, कुलाचल पर्वत, तिल और वस्त्र समेत किसी कुटुम्ब वाले ब्राह्मण को अर्पित कर दिन में केवल दुग्धपान करने से रुद्र लोक की प्राति होती है। सात कल्पतक फल प्रदान करने वाले इस व्रत को मही व्रत कहा गया है। माघ और चैत्र मास में गुडधेनु प्रदान करना चाहिए। तृतीया के दिन समस्त साधनों समेत गुडव्रत को सुसम्पन्न करने पर अप्सराओं द्वारा सुसम्पन्न और गौरी लोक की प्राप्ति होती है। निरन्तर आनन्द प्रद होने के नाते इसे उमा व्रत कहा गया है ।१५१-१५६। एक वर्ष तक एकाहारी रहकर अन्त में भक्ष्य भोज्य समेत सजल कुम्भ प्रदान करने पर शिवलोक

---

१. द्विजाग्रयाय । २. एतद्धानुव्रतं नाम । ३. शुभम् । ४. महाव्रतम् ।

शिवलोके वसेत्कल्पं प्राप्तिव्रतमिदं स्मृतम् । कार्त्तिकादितृतीयायां प्राश्य गोमूत्रयावकम् ।।१५७
गौरीलोके वसेत्कल्पं ततो राजा भवेदिह । एतद्रुद्रव्रतं नाम महाकल्याणकारकम् ।।१५८
चैत्री त्रिरात्रं नक्ताशी नद्यां स्नात्वा ददाति यः । अजा पयस्विनीः पञ्च ब्राह्मणाय[1] कुटुंबिने ।।१५९
न जायते पुनरसौ जीवलोके कदाचन । एतद्वस्तव्रतं प्रोक्तं सर्वव्याधिवि[2]नाशनम् ।।१६०
कन्यादानं तु यः कुर्यादुद्वाहं कारयेच्च यः । एकविंशतिकुलोपेतो ब्रह्मलोकं स गच्छति ।।१६१
कन्यादानात्परं दानं न चास्त्यभ्यधिकं क्वचित् । ये करिष्यंति नृपते तेषां लोकोऽक्षयो दिवि ।।१६२
तिलपिष्टमयं कृत्वा गजं हेमविभूषितम् । कुर्यात्कुशमयं तद्वदारोहकसमन्वितम् ।।१६३
नक्षत्रमालासहितं चामरापीडधारिणम् । दशनाग्रबद्धनेत्ररक्तवस्त्रयुगान्वितम् ।।१६४
ताम्रपात्र्यां कुण्डकं वा कृतं दत्त्वाग्रमोदकम् । प्रदद्याद्द्विजदाम्पत्यं पूज्य माल्यविभूषणैः ।।१६५
कण्ठप्रमाणमाविश्य जलं मलविवर्जितः । कान्तारकारिणा ह्येतत्कथितं तु युधिष्ठिर ।।१६६
कांतारकारिदुर्गेषु वारयत्यपि दुष्कृतीन् । इह लोके परे चैव नात्र कार्या विचारणा ।।१६७
ये कुर्वंति दिने पुण्ये व्रतं पौरंदरं नराः । तेषां पौरंदरो लोको भवेदाभूतसंप्लवम् ।।१६८
पयोव्रतस्तु पञ्चम्यां दत्त्वा नागं द्विजातये । सौवर्णं सर्पजनितं भयं तेभ्यो न जायते ।।१६९
सिताष्टम्यां सोपवासो वृषभं यः प्रयच्छति । सितवस्त्रसमाच्छन्नं घण्टाभरणभूषितम् ।।१७०

में एक कल्प का निवास प्राप्त होता है । इसे प्राप्ति व्रत कहा गया है । कार्तिक मास की आरम्भिक तृतीया के दिन गोमूत्र और यावक के प्राशन पूर्ण करने पर गौरी लोक में एक कल्प का निवास प्राप्त होता है । पश्चात् जन्म ग्रहण करने पर राजा होता है । इस महाकल्याणकारी व्रत को रुद्रव्रत बताया गया है । चैत्र मास में तीन रात्रि नक्त भोजन करने के उपरांत नदी में स्नान पूर्वक किसी कुटुम्बी ब्राह्मण को पाँच अजा (बकरी) प्रदान करने पर इस जीव लोक में कभी जन्म नही होता है । समस्त व्याधियों के शयन करने के नाते इसे बस्त व्रत कहा गहा है । कन्या दान करने और विवाह कराने वाले अपनी इक्कीस पीढ़ी समेत ब्रह्म लोक की प्राप्ति करते है । नृपते! कन्यादान से अधिक महत्व पूर्ण कोई अन्य दान नहीं है अतः उसे सुसम्पन्न करने वाले स्वर्ग में अक्षय निवास प्राप्त करते हैं । तिल के चूर्ण की गज प्रतिमा, जो सुवर्ण भूषित, कुश और आरोहक युक्त, नक्षत्रमाला, चामर, एवं शिरोभूषण भूषित तथा दाँत के अग्रभाग में नेत्र का आवरण रक्त वस्त्र बँधा हो, ताम्र पात्र में स्थापित एवं पूजित करके अनन्तर उसके अग्रभाग में मोदक रख कर माला और विभूषण द्वारा द्विजदम्पती की अर्चना करके कंठ प्रमाण निर्मल जल में खड़े हो प्रदान करना चाहिए । युधिष्ठिर! इसे कातांरकारी ने कहा था । यह दुर्गमार्ग के समस्त विद्वानों का शमन करते है तथा लोक-परलोक सभी को सुगम बताता है इसमें संदेह नहीं । पुण्य दिन में इस पौरन्दर नामक व्रत को सुसम्पन्न करने महाप्रलय पर्यन्त पुरन्दर (इन्द्र) लोक का अक्षय निवास प्राप्त होता है । पञ्चमी के दिन सर्पों को दुग्ध प्रदान करके सुवर्ण का नाग प्रदान करने पर सर्प भय नहीं होता है ।१५७-१६९। शुक्ल पक्ष की अष्टमी के दिन उपवास करते हुए श्वेत वस्त्र से आच्छादन और घण्टा तथा आभरण भूषित वृष

---

१. दरिद्राय । २. सर्वविघ्ननिवारणम् ।

शिवलोके वसेत्कल्पं ततो[1] राजा भवेदिह । वृषव्रतमिदं प्रोक्तं सर्वधर्मप्रदायकम् ।।१७१
उत्तरे त्वयने प्राप्ते घृतप्रस्थेन यो हरिम् । स्नापयित्वा ब्राह्मणाय वडवां यः प्रयच्छति ।।१७२
स सर्वकामसंयुक्तः पुत्रभ्रातृसमन्वितः[2] । सूर्यलोके वसेद्राजन्राज्ञीव्रतमिहोच्यते ।।१७३
सकृन्नवम्यां भक्तेन पूजयेद्विन्ध्यवासिनीम् । पुष्पधूपैस्ततो दद्यात्पञ्जरं शुकशोभितम् ।।१७४
हैमं विप्राय शांताय स वाग्मी जायते नरः । एतदाग्नेयमित्युक्तं व्रतमग्निपदप्रदम् ।।१७५
द्वादश्यां गुह्यकानां च पललैक्षवसंयुतम् । विप्राय भोजनं दत्त्वा यः स याति हरेः पदम्[3] ।।१७६
विष्कम्भादिषु योगेषु एकमुक्तरतो नरः । एतदाग्नेयमित्युक्तं व्रतमग्निपदप्रदम् ।।१७७
यो ददाति क्रमादेषु घृततैलफलैक्षदम् । यवगोधूमचणकान्निष्पावाञ्छालितण्डुलान् ।।१७८
लवणं दधि दुग्धं च वस्त्रं कनकमेव च । कंबलं गां वृषं छत्रमुपानद्युगलं तथा ।।१७९
कर्पूरं कुंकुमं चैव चंदनं कुसुमानि च । लोहं कनकताम्रं च रौप्यं चेति युधिष्ठिर ।।१८०
स्नातः स्वशक्त्या विधिवत्सर्वपापैः प्रमुच्यते । न वियोगमवाप्नोति योगव्रतमिदं स्मृतम् ।।१८१
कार्तिक्यां नक्तभुग्दद्यान्मेषं मार्गशिरे वृषम् । पौषमाघादिमासेषु सौवर्णीः सर्व एव हि ।।१८२
क्रमेण राशयः सर्वा वस्त्रमाल्यैर्विभूषिताः[4] । पौर्णमास्यां पौर्णमास्यां कौंतेय [5]बहुदक्षिणाम् ।।१८३
एतद्राशिव्रतं नाम [6]सर्वोपद्रवनाशनम् । सर्वाशापूरकं तद्वत्सोमलोकप्रदायकम् ।।१८४

(वैल) प्रदान करने पर शिव लोक में एक कल्प का निवास प्राप्त होता है और अनन्तर राजपद । सम्पूर्ण धर्म प्रद होने के नाते इसे वृषव्रत कहा गया है । राजन्! सूर्य के उत्तरायण होने के दिन एक सेर घृत से विष्णु के स्नान पूर्वक ब्राह्मण को (सुवर्ण) वडवा (घोड़ी) अर्पित करने पर पुत्र और भ्रातृ समेत समस्त कामनाओं का सफलता पूर्वक सूर्यलोक प्राप्त होता है । अतः इसे रात्री व्रत कहा गया है । एकाहार रह कर नवमी के दिन पुष्प धूप द्वारा विन्ध्यवासिनी देवी की एक ही वार अर्चना करने के उपरांत सुवर्ण का पिंजड़े समेत शुक्र (तोता) ब्राह्मण को प्रदान करने पर पुरुष वाग्मी होता है । अग्नि पद प्रद होने के नाते इसे आग्नेय व्रत कहा गया है । बारह गुह्यकों के मांस और ऐक्षव (गुड) तथा ब्राह्मण को भोजन प्रदान करने विष्णु-लोक प्राप्त होता है । विष्कम्भ आदि योग के दिन एकाहारी होने पर अग्नि पद प्राप्त होता है अतः इसे भी आग्नेय व्रत कहा गया है । युधिष्ठिर! क्रमशः इन योगों के दिन, घृत, तैल, फल, गुड, जवा, गेहूँ, चना, साठी चावल, लवण, दधि, दुग्ध, वस्त्र, सुवर्ण, कम्बल, गौ, वृष (वैल) छत्ता, उपानह, कपूर, कुंकुम, चन्दन, पुष्प, लोह, कनक, ताँबा, और चाँदी के दान पूर्वक सविधान स्नान करने पर समस्त पातकों के विनाश और अभीष्ट का भी वियोग नहीं होता है। अतः इसे योग व्रत कहा गया है।१७०-१८१। कौंतेय! कार्तिक मास से आरम्भ कर प्रत्येक पूर्णिमा के दिन नक्त भोजन पूर्वक कार्तिक पूर्णिमा में मेष (भेड़ा) मार्गशीर्ष (अगहन) की पूर्णिमा में वृष और पौष-माघ आदि के शेष मासों में क्रमशः सुवर्ण की राशि प्रतिमाएँ वस्त्र और मालाओं से विभूषित कर बहु दक्षिणा समेत प्रदान करने पर समस्त उपद्रवों के शमन पूर्वक सम्पूर्ण

---

१. विष्णुलोकं ततो व्रजेत् । २. पुत्रपौत्रसमन्वितः । ३. पुरम् । ४. सुपूजिताः । ५. फलदक्षिणाम् । ६. ग्रहोपद्रवनाशम् ।

पञ्चाशीतिर्व्रतानां ते कथिता पांडुनंदन । यां श्रुत्वा ब्रह्महा गोघ्नः पितृहा मातृहा तथा ।।१८५
मुच्यते तत्क्षणादेव पातकैः सोपपातकैः ।।१८६

पञ्चाधिका तव मया कथिता व्रतानां राजन्नशीतिरतिसौख्यधनप्रदानाम् ।
एतां समाचरति यः शृणुयात्पठेद्वा हस्ताग्रलग्न इव तस्य सुरेशलोकः ।।१८७

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
व्रतपञ्चाशीतिवर्णनं नामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२१

अथ द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

माघस्नानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

कृतं ब्रह्मयुगं प्रोक्तं त्रेता तु क्षत्रियं युगम् । वैश्यं द्वापरमित्याहुः शूद्रं कलियुगं स्मृतम् ।।१
कलौराजन्मनुष्याणां शैथिल्यं स्नानकर्मणि । तथापि माघव्याजेन कथयिष्यामि ते शृणु ।।२
यस्य हस्तौ च पादौ च वाङ्मनस्तु सुसंयतम् । विद्या तपश्च कीर्तिश्च सतीर्थफलमश्नुते ।।३
अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः । हेतुनिष्ठाश्च पञ्चैते न तीर्थफलभागिनः ।।४
प्रयागं पुष्करं प्राप्य कुरुक्षेत्रमथापि वा । यत्र वा यत्र वा स्नायान्माघे नित्यमिति श्रुतिः ।।५
त्रिरात्रिफलदा नद्यो याः काश्चिदसमुद्रगाः । समुद्रगास्तु पक्षस्य मासस्य सरितां पतिः ।।६

विधान बता दिया, जिसे सुनने पर ब्राह्मण, गौ, पिता एवं माता का हनन दोष तथा उपपातक समेत समस्त पातकों से उसी क्षण मुक्ति हो जाती है । राजन्! इन पचासी व्रतों के, जो तुम्हें बता दिये गये हैं एवं सौख्य तथा धन प्रद है, सुनने पढ़ने तथा सुसम्पन्न करने पर इन्द्र लोक उसके सदैव करतल गत रहता है ।१८२-१८७।

श्रीभविष्य महापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
पचासी व्रत वर्णन नामक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ।१२१।

अध्याय १२२

माघस्नानविधिवर्णन

श्रीकृष्ण बोले—कृत (सत्य) युग ब्रह्मयुग, त्रेतायुग, क्षत्रिय युग, द्वापर वैश्य युग और कलियुग शूद्र युग कहा गया है । राजन्! यद्यपि कलियुग में मनुष्यों का स्नान-कर्म अत्यन्त शिथिल रहेगा, तथापि माघ मास के (स्नान) आज से तुम्हें इसकी व्याख्या बता रहा हूँ, सुनो! जिसके हाथ, पैर, वाणी और मन अत्यन्त संयत हों और विद्या, तप एवं कीर्ति युक्त हो, उसे तीर्थफल प्राप्त होता है । श्रद्धाहीन, पापात्मा, नास्तिक, संशयालु और कारण-प्रेमी जन तीर्थ-फल भागी नहीं होते हैं । प्रयाग, पुष्कर अथवा कुरुक्षेत्र या जिस किसी तीर्थ में हो माघ में नित्य स्नान करे ऐसा वेदों का कहना है ।१-५। साधारण नदियाँ, जो समुद्र में नहीं पहुँच सकी हैं, (एकवार स्नान-करने पर) तीन रात्रि का फल प्रदान करती हैं और समुद्र गामिनी

उषःसमीपे यः स्नानं संध्यायामुदिते रवौ । प्राजापत्येन तत्तुल्यं महापातकनाशनम् ॥७
प्रातरुत्थाय यो विप्रः प्रातः स्नायी सदा भवेत् । स सर्वपापनिर्मुक्तः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥८
वृथा चोष्णोदकस्नानं वृथा जाप्यमवैदिकम् । अश्रोत्रिये वृथा श्राद्धं वृथा भुक्तमसाक्षिकम् ॥९
स्नानं चतुर्विधं प्रोक्तं स्नानविद्भिर्युधिष्ठिर ! वायव्यं वारुणं ब्राह्मं द्विव्यं चेति पृथक्छृणु ॥१०
वायव्यं गोरजःस्नानं वारुणं सागरादिषु । ब्राह्मं ब्राह्मणमंत्रोक्तं दिव्यं मेघांबुभास्करम् ॥
सर्वेषामेव स्नानानां विशिष्टं तत्र वारुणम् ॥११
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः । एते सर्वे प्रशंसंति सर्वदा माघमज्जनम् ॥१२
बालास्तरुणका वृद्धा नरनारीनपुंसकाः । स्नात्वा माघं शुभे तीर्थे प्राप्नुवंतीप्सितं[1] फलम् ॥१३
ब्रह्मक्षत्रविशां चैव मन्त्रवत्स्नानमिष्यते । तूष्णीमेव हि शूद्रस्य स्त्रीणां च कुरुनन्दन ॥१४
माघमासे रटंत्यापः किञ्चिदभ्युदिते रवौ । ब्रह्मघ्नं वा सुरापं वा कम्पं तं तं पुनीमहे ॥१५
प्रासादा यत्र सौवर्णाः स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः । दधिकुल्यावहा यत्र नद्यः पायसकर्दमाः ॥
तत्र ते यो निमज्जन्ति ये माघे भास्करोदये ॥१६
यतिवत्पथि गच्छेत मौनी पैशुन्यवर्जितः । यदीच्छेद्विपुलान्भोगांश्चन्द्रसूर्योपमान्गृहान् ॥१७

एक पक्ष (पखवारे) तथा महासागर एक मास का पल प्रदान करता है । ऊषा काल और सूर्योदय के बीच संध्या समय का स्नान प्राजापत्य की समानता प्राप्त कर महापातक का नाश करता है । सदैव प्रातः काल स्नान करने वाला ब्राह्मण समस्त पापों से मुक्त होकर परब्रह्म की प्राप्ति करता है । अतः उष्ण (गरम) जल का स्नान, वैदिक मंत्रों से पृथक मंत्रों के जप, खगोलिय का श्राद्ध भोजन या दान देना और साक्षी हीन (अकेले) भोजन करना व्यर्थ है । युधिष्ठिर! वायव्य, वारुण, ब्राह्म और दिव्य भेद से स्नान चार प्रकार का होता है । उनकी पृथक्-पृथक् व्याख्या कर रहा हूँ, सुनो! गौ के खुर की धूलि का स्नान वायव्यस्नान, सागर आदि का स्नान दारुण-स्नान, ब्राह्मण द्वारा मंत्रोक्त स्नान ब्राह्म-स्नान और सूर्य के प्रकाश में वर्षा के जल का स्नान दिव्य स्नान कहलाता है । किन्तु सभी स्नानों में वरुण स्नान ही विशिष्ट बताया गया है । ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और भिक्षुक (संन्यासी) सभी लोग माघस्नान की प्रशंसा करते हैं । बाल, युवा, एवं वृद्ध नर-नारी नपुंसक शुभ तीर्थ में माघस्नान द्वारा मन इच्छित फल प्राप्त करते हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों को मन्त्रोच्चारण पूर्वक स्नान और शूद्रों तथा स्त्रियों को मौन स्नान करना चाहिए।६-१४। कुरुनन्दन! माघ मास में सूर्य के अर्धोदय समय जल सदैव आता रहता है—ब्रह्महत्या और मद्यपान करने वाले को, जो अपने गुरुतर पाप के नाते काँपते रहते हैं, मैं पुनीत करता हूँ। माघ मास में सूर्योदय के समय स्नान करने वाले उस स्थान की प्राप्त करते हैं, जहाँ सुवर्ण भूषित प्रासाद (महल के कोठे), अप्सराओं की भांति मनोरम स्त्रियाँ, दही की नालियाँ और दूध के कीचड़ भरी नदियाँ प्रवाहित होती हैं । स्नानार्थ जाते हुए मार्ग में संन्यासी की भाँति मौन तथा परकीय निन्दा आदि दोष रहित होकर जाना चाहिए । यदि विपुल उत्तम भोग, और चन्द्र सूर्य के समान अनुपम गृहों के प्राप्ति की इच्छा हो,

---

१. महत् ।

पौषफाल्गुनयोर्मध्ये प्रातः स्नायी [1]भवेन्नरः। पौर्णमास्या ह्यमावास्याः प्रारभ्य स्नानमाचरेत् ।।१८
त्रिंशद्दिनानि पुण्याणि मकरस्थे दिवाकरे । तत्र उत्थाय नियमं गृह्णीयाद्विधिपूर्वकम् ।।१९
माघमासमिमं पूर्णं स्थाप्येहं देवमाधवम् । तीर्थशीतजले नित्यमिति सङ्कल्प्य चेतसा ।।२०
अप्रावृतशरीरस्तु यः कष्टं स्नानमाचरेत् । पदेपदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।।२१
तत्र स्नात्वा शुभे तीर्थे दत्त्वा शिरसि वै मृदम् । वेदोक्तविधिना राजन्सूर्यस्यार्घं निवेदयेत् ।।२२
पितॄन्संतर्प्य तत्रस्थो ह्यवतीर्य ततो जलात् । इष्टदेवं नमस्कृत्य पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ।।२३
शङ्खचक्रधरं देवं माधवं नाम पूजयेत् । वह्निं हुत्वा विधानेन ततस्त्वेकाशनो भवेत् ।।२४
भूशय्या ब्रह्मचर्येण शक्तः स्नानं समाचरेत् । अशक्तस्य [2]धनाढ्यस्य स्वेच्छा सा तत्र कथ्यते ।।२५
अवश्यमपि कर्तव्यं माघे स्नानमिति श्रुतिः । ईश्वरेण यथाकामं बलं धर्मोऽनुवर्तते ।।२६
तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलभोक्ता तिलोदकी । तिलहोता च दाता च षट्तिलो नावसीदति ।।२७
तैलस्यामलकानां च तीर्थे देयानि नित्यशः । तथा प्रज्वालयेद्वह्निं निवातार्थं द्विजन्मनाम् ।।२८
एवं स्नानावसाने तु भोज्यं देयमवारितम् । भोजयेद्द्विजदांपत्यं भूषयेद्वस्त्रभूषणैः ।।२९
कम्बलाजिनरत्नानि वासांसि विविधानि च । चोलकानि च दिव्यानि प्रच्छादनपटीस्तथा ।।३०
उपानहौ तथा गुप्तं मोदकैः पापमोचकैः । अनेन विधिना दद्यान्माधवः प्रीयतामिति ।।३१

तो पौष और फाल्गुन के मध्य वाले मास में प्रातः स्नायी होना आवश्यक है। इस स्नान को पूर्णिमा या अमावास्या से ही आरम्भ करना बताया गया है। मकर राशि पर सूर्य के पहुँचने पर वह पूरा तीस दिन (मास) पुण्य काल रहता है। उसमें प्रातः काल उठकर सविधान नियम पालन आरम्भ करना चाहिए-तीर्थ के इस शीतल जल में माघ मास भर माधव देव की स्थापना मैं कर रहा हूँ-इस प्रकार मानसिक संकल्प पूर्वक ही आरम्भ कर स्नान करे। नंगेवदन चलते हुए इस प्रकार के कष्ट पूर्ण स्नान करने पर उस मानव के पग-पग पर अश्वमेध फल प्राप्त होता है। राजन्! उस शुभ-तीर्थ के जल में स्नान और शिर में मृत्तिका लगा कर वैदिक विधान द्वारा सूर्य को अर्घ्य प्रदान करना चाहिए। अनन्तर तीर्थ जल से बाहर निकल कर पितृतर्पण और इष्ट देव को नमस्कार करके पुरुषोत्तम देव की उनके शंख चक्रधर और माधव नाम के उच्चारण पूर्वक अर्चना करे। पश्चात् सविधान तपन और एकाहार करे। सशक्त होने पर भूशय्या तथा ब्रह्मचर्य के पालनपूर्वक स्नान बताया गया है और अशक्त एवं धनी-मानी के लिए स्वेच्छया। अतः श्रुति के कथनानुसार माघ मास अवश्य स्नान करना चाहिए। जिस प्रकार ईश्वर यथेच्छ धार्मिक बल धारण करता है उसी भाँति तिलस्नान, तिल-लेपन, तिलभोजन, तिलोदक, तिल-हवन, और तिल-दान इस प्रकार षट्तिल (छह प्रकार से तिल के उपभोग) करने वाले कभी कहीं दुःखीं नहीं होते हैं।१५-२७। आमलक (आँवले) के तेल का दान तीर्थ में नित्य करते हुए ब्राह्मणों के घरों में उसी द्वारा अग्नि-प्रज्वालन भी करे। इस प्रकार स्नान की समाप्ति में वस्त्र और आभूषणों द्वारा द्विजदम्पती को विभूषित करके भोजन कराये और कम्बल, मृगचर्म, रत्न, अनेक भाँति के वस्त्र, चोलक (पुरुषों के कुर्ते, आदि) वस्त्र और दिव्य उत्तरीय वस्त्र (चदरा आदि), उपानह, तथा गुप्त भाव से पापमोचक मोदक

---

१. सदा भवेत्। २. धनेशस्य।

अगम्यागमनस्तेयपापेभ्यश्च परिग्रहात् । रहस्याचरिताद्वापि मुच्यते स्नानमाचरेत् ।।३२
पितृभिः पितामहैः सार्द्धं तथैव प्रपितामहैः । मातामातामहैः सार्द्धं वृद्धमातामहैस्तथा ।।३३
एकविंशकुलैः सार्द्धं भोगान्भुक्त्वा यथेप्सितान् । माघमास्युषस स्नात्वा विष्णुलोकं स गच्छति ।।३४
यो माघमास्युषसि सूर्य्यकराभिताम्रे स्नानं समाचरति चारुनदीप्रवाहे ।
उद्धृत्य सप्तपुरुषान्पितृमातृतश्च स्वर्गं प्रयात्यमलदेहधरो नरोऽसौ ।।३५

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
माघस्नानविधिवर्णनं नाम द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२२

अथ त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

नित्यस्नानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

नैर्मल्यं भावशुद्धिश्च विना स्नानं न युज्यते । तस्मात्कायविशुद्धयर्थं स्नानमादौ विधीयते ।।१
अनुद्धतैरुद्धतैर्वा जलैः स्नानं समाचरेत् । तीर्थं प्रकल्पयेद्विद्वान्मूलमंत्रेण मंत्रवित् ।।२
नमो नारायणायेति मूलमन्त्र उदाहृतः । दर्भपाणिस्तु विधिना स्वाचान्तः प्रयतः सुधीः ।।३

प्रदान द्वारा उसे सुसम्मानित करे । इस विधान द्वारा उपरोक्त दान से समय 'माधव प्रसन्न हों' कहे । अगम्या स्त्री के साथ गमन, चोरी, प्रतिग्रह एवं रहस्य मय पापों से छुटकारा मिलता है अतः स्नान अवश्य करना चाहिए । माघ मास में उष्ण काल में स्नान करने से पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, मातामह, प्रमातामह, वृद्ध प्रमाता मह, इस प्रकार अपनी इक्कीस पीढ़ी समेत उत्तम भोगों के यथेच्छ उपभोग करने के अनन्तर विष्णु लोक की प्राप्ति होती है । इस प्रकार माघ मास में उषाकाल के समय, जब अरुणोदय सूर्य की रक्त वर्ण की किरणों द्वारा जल में लालिमा भर जाती है, किसी उत्तम नदी के जल-प्रवाह में स्नान करने वाला मनुष्य निर्मल देह धारण पूर्वक अपनी माता-पिता की सात पीढ़ियों समेत स्वर्ग प्राप्त करता है ।२८-३५

श्रीभविष्य महापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
माघस्नान विधि वर्णन नामक एक सौ बाईसवाँ अध्याय समाप्त ।१२२।

अध्याय १२३

नित्यस्नानविधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—विना स्नान किये निर्मलता और भावशुद्धि नहीं होती है अतः शरीर शुद्धचर्थ सर्व-प्रथम स्नान-विधान बताया गया है । (कूप आदि से) निकाले हुए अथवा नदी आदि के ज़ल से स्नान करना आवश्यक होता है । मंत्र वेत्ता विद्वान् को चाहिए- 'नमो नारायणाय— (नारायण को नमस्कार है)' इस मूल मन्त्र के उच्चारण द्वारा तीर्थ की कल्पना करें । सर्व प्रथम आचमन द्वारा भीतर और

चतुर्हस्तसमायुक्तं चतुरस्त्रं समंततः । प्रकल्प्यावाहयेद्‌गङ्गामेभिर्मंत्रैर्विचक्षणः ।।४
ॐविष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुदेवता । पाहि नस्त्वेनसस्तस्मादाजन्ममरणांतिकात् ।।५
तिस्रः कोटयोऽर्द्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत् । दिवि भुव्यंतरिक्षे च तानि ते सन्ति जाह्नवि ।।६
नंदिनीत्येव ते नाम देवेषु नलिनीति च । क्षमा पृथ्वी च विहगा विश्वकाया[1] शिवा स्मृता ।।७
विद्याधरा सुप्रसन्ना तथा लोकप्रसादिनी । क्षेम्या तथा जाह्नवी च शांता शांतिप्रदायिनी ।।८
एतानि पुण्यनामानि स्नानकाले प्रकीर्तयेत् । भवेत्संनिहिता तत्र गङ्गात्रिपथगामिनी ।।९
सप्तवाराभिजप्तेन करसम्पुटयोजितम् । (३) मूर्ध्नि कुर्याज्जलं भूप त्रिचतुःपञ्चसप्तधा ।।१०
स्नानं कुर्यान्मृदा तद्वदामन्त्र्य च विधानतः ।।११
अश्वक्रांते रथाक्रांते विष्णुक्रांते वसुंधरे । मृत्तिके हर मे सर्वं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ।।१२
उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना । नमस्ते सर्वलोकानामसुधारिणि सुव्रते ।।१३
एवं स्नात्वा ततः पश्चादाचम्य च विधानतः । उत्थाय वाससी शुक्ले सूक्ष्मे तु परिधाय वै ।।१४
ततस्तु तर्पणं कुर्यात्त्रैलोक्याप्यायनाय तु । देवा यक्षास्तथा नागा गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।।
क्रूराः सर्पाः सुपर्णाश्च तरक्षा विहगाः खगाः ।।१५
विद्याधरा जलधरास्तथैवाकाशगामिनः । निराधाराश्च ये जीवाः पापकर्मरताश्च ये ।।१६
तेषामाप्यायनायैतद्दीयते सलिलं मया । कृतोपवीतो देवेभ्यो निवीती च भवेत्ततः ।।१७

कुशाओं के सींचने द्वारा बाहरकी शुद्धि पूर्वक हाथ में कुश लिए चार हाथ के चौकोर गड्ढे को सजल कर उसमें निम्नलिखित मन्त्रों द्वारा गङ्गा प्रवाहित करो। ओंकार के उच्चारण पूर्वक —विष्णु चरण से उत्पन्न होने के नाते वैष्णवी और विष्णु देवता वाली गङ्गे! मेरे जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत के सभी पापों से मेरी रक्षा करो। क्योंकि वायु देव के कथनानुसार साढ़ेतीन कोटिदेवगण, जो आकाश, भूतल, और अन्तरिक्ष (विदिशाओं) में स्थायी रहते हैं सभी तुम्हारे अधीन हैं।१-६। नन्दिनी, देवों प्रचलित नलिनी, क्षमा, पृथिवी, विहगा, विश्वकाया, विद्याधरा, सुप्रसन्ना, लोभ प्रसादिनी, हैमा, जान्हवी, शांता, शांतिप्रदा, स्नान के समय इन नामों के संकीर्तन करने पर त्रिपथ (आकाश -पाताल और मर्त्यलोक में) गामिनी (गमन करने वाली) गङ्गा वहाँ सम्मिलित होती हैं। भूप! दोनों हाथों को सम्पुटित करके सात वार उपरोक्त नामों के जप करते हुए तीन, चार, पाँच, अथवा सात वार जल को शिर से स्पर्श पूर्वक स्नान आरम्भ करे। उसी भाँति आमंत्रित करके सविधान मृत्तिका स्नान भी बताया गया है—अश्व, रथ, एवं विष्णु से आक्रान्त होने वाली वसुन्धरे मृत्तिके! मेरे किये हुए समस्त दुष्कृतों का अपहरण करो। समस्त लोकों के प्राण धारण करने वाली सुव्रते! बराह रूप धारी कृष्ण एवं शतबाहु द्वारा तुम्हारा उद्धार हुआ है अतः तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ। इस प्रकार स्नान और सविधान आचमन करके सूक्ष्म एवं श्वेत वस्त्र पहन कर तीनों लोकों के वृध्यर्थ तर्पण करे—देव, यक्ष, नाग, गन्धर्व, अप्सरा गण, क्रूरसर्प, सुवर्ण, वृन्द, तरक्ष, विहग, खग, विद्याधर, जलधर, आकाश गामी तथा विद्याधर रहने वाले और पापी जीव के संतृप्ति के लिए, मैं यह जल दान कर रहा हूँ।७-१६। अनन्तर बायें कन्धे पर यज्ञोपवीत धारण कर देवों के लिए, कंठ में

---

१. विश्वमाया।

मनुष्यांस्तर्पयेद्भक्त्या ब्रह्मपुत्रानृषींस्तथा । सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः ॥१८
कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा । सर्वे ते तृप्तिमायांतु मद्दत्तेनाम्बुना सदा ॥१९
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् । प्रचेतसं वशिष्ठं च भृगुं नारदमेव च ॥२०
देवब्रह्मऋषीन्सर्वांस्तर्पयेताक्षतोदकैः । अपसव्यं ततः कृत्वा सव्यं जानु च भूतले ॥२१
अग्निष्वात्ता बर्हिषदो हविष्मंतस्तथोष्मपाः । सुकलितास्तथा भौमा आज्यपाः सोमपास्तथा ॥२२
तर्पयेच्च पितृन्भक्त्या सतिलोदकचन्दनैः । दर्भपाणिस्तु विधिवत्तर्पयेन्नामगोत्रतः ॥२३
पित्रादीन्नामगोत्रेण तथा मातामहानपि । संतर्प्य विधिवद्भक्त्या इमं मंत्रमुदीरयेत् ॥२४
येऽबान्धवा बान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः । ते तृप्तिमखिला यांतु यश्चास्मत्तोऽभिवाञ्छति ॥२५
ततश्चाचम्य विधिवदालिखेत्पद्ममग्रतः । अक्षतैः सह पुष्पैश्च सतिलारुणचन्दनैः ॥२६
अर्घं दद्यात्प्रयत्नेन सूर्यनामानुकीर्तनैः । नमस्ते विश्वरूपाय नमो विष्णुसखाय वै ॥२७
सहस्ररश्मये नित्यं नमस्ते सर्वतेजसे । नमस्ते सर्ववपुषे नमस्ते सर्वशक्तये ॥२८
जगत्स्वामिन्नमस्तेऽस्तु दिव्यचन्दनभूषित । पद्मनाभ नमस्तेऽस्तु कुण्डलाङ्गदधारिणे ॥२९
नमस्ते सर्वलोकेश सर्वासुरनमस्कृत । सुकृतं दुष्कृतं चैव सम्यग्जानासि सर्वदा ॥३०
सत्यदेव नमस्तेस्तु सर्वदेव नमोऽस्तु ते । दिवाकर नमस्तेऽस्तु त्रयीमय नमोऽस्तु ते ॥३१
एवं सूर्यं नमस्कृत्य त्रिःकृत्वा च प्रदक्षिणाम् । द्विजं गां काञ्चनं स्पृष्ट्वा ततो विष्णुगृहं व्रजेत् ॥३२

रख कर ऋषियों के लिए तर्पण करने के उपरांत मनुष्यों और ब्रह्म पुत्र ऋषियों का तर्पण करे—सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, कपिल, आसुरि, वोढा और पञ्चशिख ये सभी लोग मेरे किये गये जल से तृप्त हों।१७-१९। मरीचि, अग्नि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वशिष्ठ, भृगु, नारद और समस्त देव, ब्रह्म एवं ऋषिओं का तर्पण अक्षत-जल द्वारा सुसम्पन्न करके अपसव्य (यज्ञोपवीत को दाहिने कंधे पर रख कर) होकर दाहिना घुटने के बल बैठें चन्दन, तिल जल द्वारा भक्ति पूर्वक अग्निष्वात्ता, बर्हिषद, हविष्मान् उष्मपा, सुकलित भौम, आज्यपा, और सोमपा पितरों को तृप्त करते हुए हाथ में कुश लिए नाम-गोत्र के उच्चारण पूर्वक पितृ-मातृ कुल को तर्पण द्वारा तृप्त करे और अनन्तर (वस्त्र निचोड़ने द्वारा) बन्धु, अबन्धु और अन्य जन्म के वन्धुगण मेरे इस जल दान द्वारा तृप्त हों, जो मुक्त से जल पाने की अभिलाषा रखते हों। उपरान्त आचमन करके कमल की रचना करके उस पर सूर्य के आवाहन स्थापन पूर्वक उनक नामों का कीर्तन करते हुए अक्षत, पुष्प, तिल तथा रक्तचन्दन का अर्घ्य उन्हें प्रदान करें—विश्वरूप को नमस्कार है, विष्णु सखा को नमस्कार है, सहस्रकिरण को नमस्कार है, समस्त तेज को नमस्कार है, सर्वदेह और सर्वशक्ति को नमस्कार है, जगत् के स्वामी दिव्य चन्दनभूषित, पद्मनाभ, कुण्डल और अंगद (विजयपठ) धारी को नमस्कार है। समस्त लोकों के ईश एवं समस्त असुरवृन्दों के वन्दनीय को नमस्कार है, आप (मेरे) सुकृत और दुष्कृत का भलीभाँति सदैव ज्ञान रखते हैं अतः सत्य देव को नमस्कार है और त्रयी (तीनों वेद) मय को नमस्कार है।२०-३१। इस भाँति सूर्य का नमस्कार, तीन प्रदक्षिणा, ब्राह्मण, गौ एवं सुवर्ण का स्पर्श करके विष्णु मन्दिर में दर्शनार्थ का स्नान, जो पाप का

स्नानं खलु प्रतिदिनं कथितं मुनीन्द्रैः पापापहं मलहरं सुखदं सदैव।
तस्मान्नदीष्वथ गृहेष्वथ वा तडागे कर्तव्यमेतदिह[1] धर्मधिया नरेण॥३३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
नित्यस्नानविधिवर्णनं नाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।१२३

अथ चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

रुद्रस्नानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

रुद्रस्नानविधानं मे कथयस्व जनार्दन। सर्वदुष्टोपशमनं सर्वशांतिप्रदं नृणाम्॥१

श्रीकृष्ण उवाच

देवसेनापतिं स्कन्दं रुद्रपुत्रं दुरासदम्। अगस्त्यो मुनिशार्दूलः सुखासीनमुवाच ह॥२
सर्वज्ञोऽसि कुमार त्वं प्रसादाच्छङ्करस्य वै। स्नानं रुद्रविधानेन ब्रूहि कस्य कथं भवेत्॥३

स्कन्द उवाच

मृतप्रजा तु या नारी दुर्भगा सुतवर्जिता[2]। या सुते[3]दुहितां वंध्या स्नानमासां विधीयते॥४
अष्टम्यां वा चतुर्दश्यामुपवासपरायणा। ऋतौ शुद्धे चतुर्थेऽह्नि प्राप्ते सूर्यदिनेऽथ वा॥५

नाशक एवं सदैव सुख प्रद है, मुनीद्रों के कथनानुसार मैंने तुम्हें बता दिया। अतः नदी, सरोवर, अथवा गृह में स्नान बुद्धिमान् पुरुष को अवश्य करना चाहिए।३२-३३

श्रीभविष्य महापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
नित्य स्नान विधि वर्णन नामक एक सौ तेईसवाँ अध्याय समाप्त।१२३।

अथ अध्याय १२४

रुद्रस्नानविधि-वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—जनार्दन! मुझे वह रुद्रस्नान बताने की कृपा कीजिए, जो समस्त दुष्टों के शमन पूर्वक मनुष्यों को सम्पूर्ण शान्ति प्रदान करता है।१

श्री कृष्ण बोले—एक वार मुनि श्रेष्ठ अगस्त्य जी ने सुख पूर्वक बैठे हुए देवसेना नायक स्कन्द से जो रुद्र के पुत्र एवं दुधर्ष हैं, कहा—कुमार! आप शङ्कर जी की कृपा से सर्वज्ञ हो गये हैं अतः रुद्रस्नान का विधान तथा वह किसे, और कब करना चाहिए, बताने की कृपा करें।२-३

स्कन्द बोले—जिसके बच्चे उत्पन्न होकर मर जाते हैं, दुर्भगा, पुत्र हीन, तथा जिसके कन्या ही उत्पन्न होती हैं और बन्ध्या स्त्रियों के लिए यह स्नान विधान बताया गया है—ऋतु धर्म की शुद्धि होने पर

---

१. धर्मपरेण पुंसा २. ऋतुवर्जिता। ३. दुहितामित्यार्षम्।

नद्योस्तु सङ्गमे कुर्यान्महानद्योर्विशेषतः । शिवालयेऽथ वा गोष्ठे विविक्ते वा गृहाङ्गणे ॥६
आहिताग्निं द्विजं शांतं धर्मज्ञं सत्यशीलिनम् । स्नानार्थं प्रार्थयेद्देवं[१] निपुणं रौद्रकर्मणि ॥७
ततस्तु मण्डपं कुर्याच्चतुरस्रमुदग्गतम् । बद्धचन्दनमालं तु गोमये नोपलेपितम् ॥८
तन्मध्ये [२]श्वेतरजसा सम्पूर्णं पद्ममालिखेत् । मध्ये तस्य महादेवं स्थापयेत्कर्णिकोपरि ॥९
दद्याद्दलेषु शक्त्यादींश्चतुर्थविधिं[३] पूर्वकम् । इन्द्रादिलोकपालांश्च दलेष्वन्येषु विन्यसेत् ॥१०
देवीं विनायकं चैव स्थापयेत्तस्य पार्श्वतः । दत्त्वार्घं गन्धपुष्पं च धूपदीपं गुडौदनम् ॥११
भक्ष्यान्नानाविधान्दद्यात्फलानि विविधानि च । चतुष्कोणेषु भृंगारमश्वत्थदलभूषितम् ॥१२
एकैकं विन्यसेद्ब्रह्मन्सर्वौषधिसमन्वितम् । चतुर्दिशं मंडपस्य दद्याद्भूतबलिं ततः ॥१३
आग्नेय्यां दिशि कर्तव्यं मण्डपस्य समीपतः । अग्निकार्यं शुभे कुण्डे पुष्पपत्रैरलंकृते ॥१४
लवणं सर्षपैर्युक्तं घृतेन मधुना सह । मानस्तोकेन जुहुयात्कृतहोमे नवग्रहे ॥१५
द्वितीयमग्निकार्यस्य कर्तारं ब्राह्मणं कुरु । रुद्रजापकमाचार्यं सितचन्दनचर्चितम् ॥१६
सितवस्त्रपरीधानं सितमालाधरं शुभम् । शोभितं कङ्कणैः कण्ठचैः कर्णवेष्टांगुलीयकैः ॥१७
मण्डलस्य समीपस्थो जपेद्रुद्रान्विमत्सरः । यावदेकादश गताः पुनरेव जपेत्तु तान् ॥१८
देवमण्डलवत्कार्यं द्वितीयं मण्डलं शुभम् । तस्य मध्ये तु सा नारी श्वेतपुष्पैरलंकृता ॥१९
श्वेतवस्त्रैश्च संछन्ना श्वेतगन्धानुलेपिता । सुखासनोपविष्टायामाचार्यो रुद्रचिंतकः ॥२०

चौथे दिन के उपरांत रविवार अष्टमी अथवा चतुर्दशी के दिन उपवास पूर्वक नदी के सङ्गम स्नान, अथवा विशेषतया महानदी के संगम, शिवालय, गोशाला, या विस्तृत ओर खुले हुए गृह के आङ्गण गोष्ठ अग्नि होत्र करने वाले ब्राह्मण की, जो शांत धर्मज्ञ, सत्यप्रेमी निपुण, एवं देव रूप हो, इस रौद्र स्नान के कर्मारम्भ में स्नानार्थ प्रार्थना करके उत्तर की ओर मण्डप की रचना करे जो चन्दन की माला से भूषित रहे। पुनः गोमय (गोबर) से लीप कर उसके मध्य भाग में श्वेत-रक्त चूर्ण द्वारा पूरे कमल की रचना करे और उसके मध्य कर्णिका के ऊपर सविधान महादेव, दलों में शक्ति पार्श्वभाग में विनायक तथा देवी की स्थापना एवं पूजन करने के उपरान्त अर्घ्य और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, गुडौदन (मीठा भात) अनेक भाँति के भक्ष्य और अनेक भाँति के फल अर्पित करके चारों कोने पर पीपल के पत्ते और समस्त औषधियों से पूर्ण सजल सुवर्ण का जल पात्र स्थापित करे। अनन्तर मण्डप के चारों दिशाओं में भूतबलि के प्रदान करते हुए मण्डप के समीप अग्निकोण मे बनाये एवं पुष्प पत्र से भूषित उस शुभ कुण्ड में प्रथम नवग्रह हवन और पश्चात् लवण (नमक) राई, घृत तथा मधु (शहद) की आहुति 'मानस्तोके' आदि मंत्रों के उच्चारण पूर्वक प्रदान करे।४-१५। इस अनुष्ठान मैं अग्नि कार्य करने वाले एक दूसरे ब्राह्मण और रुद्र जप करने वाले एक आचार्य कर रख कर उन्हें चन्दन, श्वेत वस्त्र, श्वेत माला, कङ्कण, कण्ठाभूषण, कुण्डल तथा अंगूठी से विभूषित करे, जो निर्मत्सरतापूर्ण एकादश रुद्र का जप मण्डल भाँति एक दूसरे मण्डल की भी रचना करें जिसके मध्य में श्वेत पुष्पों से भूषित, श्वेत वस्त्र पहने, श्वेतगंध लेप लगाये भद्रासन पर वह सभी सुख पूर्वक

---

१. एवं सगुणं रुद्रकर्मणि । २. श्वेतरक्तं च । ३. सद्यादीनात पाठ सद्यः प्रणव इति मांत्रिकसंज्ञा ।

अभिषिंचेत्ततश्चैव नामर्कपत्रपुटांबुना । चतुःषष्टिविधेनैव रुद्रेणैकादशेन तु ॥२१
शतानि सप्तपर्णानां चतुर्भिरधिकानि तु । अच्छिद्राणां मनूनां च स्नानार्थं विनियोजयेत् ॥२२
अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात्संगमाद्ध्रदात् । वेश्यांगणाद्राजगृहाद्गोष्ठादानीय वै मृदः ॥२३
सर्वौषधिं रोचनां च नदीतीर्थोदकानि च । एतान्संक्षिप्य कलशे शिवसंज्ञे सुपूजिते ॥२४
आपादतलकेशं च कुक्षी चैव विशेषतः । सर्वांगं लेपयेन्नार्याः सुशीला काचिदङ्गना ॥२५
रुद्राभिजप्तेन ततः स्नापयेत् कलशेन ताम् । तोयपूर्णाष्टकलशैरश्वत्थदलपूरितैः ॥२६
सर्वतोदिक्स्थितैः पश्चात्स्नापयेत्सफलाक्षतैः । एवं स्नाता स्नापकाय दद्याद्गां काञ्चनं तथा ॥२७
हेतुरप्यत्र निर्दिष्टा दक्षिणा गौः पयस्विनी । ब्राह्मणानामथान्येषां स्वशक्त्या पांडुनंदन ॥२८
गोवत्सकाञ्चनादीनि दत्त्वा सर्वं क्षमापयेत् । कृतेनानेन राजेन्द्र रुद्रस्नानेन भागिनी ॥२९
सुभगा सुखसंयुक्ता बहुपुत्रा च जायते । सर्वेष्वपि हि मासेषु ब्राह्मणाभिमते शुभम् ॥३०
तस्मादवयं कर्तव्यं पुत्रश्रीसुखमिच्छता ॥३१

या स्नानमाचरति रुद्रमिति प्रसिद्धिं श्रद्धान्विता द्विजवरानुमताऽऽनताङ्गी।
दोषान्निहत्य सकलान्स्वशरीरभागाद्भर्तुः प्रिया भवति भारत जीववत्सा ॥३२

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
रुद्रस्नानविधिवर्णनं नाम चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२४

बैठी रहे और रुद्र के ध्यान करके वाले आचार्य अर्कपत्र (मदार) के पत्ते की दोनियाँ द्वारा चौसठविधान, एकादश रुद्र, एक सौ चार सप्तपर्ण और निर्दुष्ट मन्त्रो के उच्चारण पूर्वक उसका अभिषेक करें । स्नान के पश्चात् उस शिवकलश, वेश्यागृह, राजगृह और गोशाला की मृत्तिका, समस्त औषध, रोचना, नदी और तीर्थ के जल पड़े हों, उस स्त्री के पैर के तलवे से लेकर शिर तक विशेषतया दोनों कुक्षि और सर्वाङ्ग में किसी सुशील कामिनी द्वारा उस मृत्तिका के लेप पूर्वक आचार्य द्वारा जल-स्नान कराना चाहिए।१६-२५। पुनः उन आठ कलशों के जल से, जो पीपल पत्ते आदि से पूर्ण और दिशाओं के स्थापित हों, फल अक्षत समेत आचार्य उस सभी का स्नान कराये । स्नानोपरांत वह सभी स्नान कराने वाले आचार्य को गौ और सुवर्ण अर्पित करे । पाण्डुनन्दन! यथाशक्ति आचार्य एवं अन्य ब्राह्मणों का दक्षिणा दे धेनु (दूध देने वाली) गौ अर्पित करना चाहिए । राजेन्द्र! इस प्रकार सवत्सा गौ एवं काञ्चन आदि अर्पित करके क्षमा प्रार्थना करे । इस भाँति रुद्र स्नान करने पर वह भामिनी, सुभाग सुखी और बहु पुत्रा होती है। पुत्र, श्री एवं सुख की वाञ्छा करने वाली स्त्रियों को ब्राह्मण की सम्मति से यह स्नान अवश्य करना चाहिए। भारत! इस प्रकार इस प्रसिद्ध रुद्र स्नान को श्रेष्ठ ब्राह्मण की अनुमति से सम्पन्न करने वाली नताङ्गी कामिनी अपनी देह के समस्त दोषों के हनन पूर्वक भर्ता की प्रेयसी एवं जीव वत्सा होती है।२६-३२

श्रीभविष्य महापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
रुद्रस्नान विधि वर्णन नामक एक सौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ।१२४।

अथ पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

चन्द्रादित्यग्रहणस्नानविधिवर्णनम्

युधिष्ठर उवाच

चन्द्रादित्योपरागेषु यत्स्नानमभिधीयते । तदहं श्रोतुमिच्छामि द्रव्यमन्त्रं प्रधानतः ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

यस्य राशि समासाद्य भवेद्ग्रहणसंप्लवः । तस्य स्नानं प्रवक्ष्यामि मन्त्रौषधिसमन्वितम् ॥२
चन्द्रोपरागं सम्प्राप्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् । सम्पूज्य चतुरो विप्रान्गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥३
पूर्वमेवोपरागस्य समानीयौषधादिकम् । स्थापयेच्चतुरः कुम्भानग्रतः सागरानिति ॥४
गजाश्वरथ्यावल्मीकसङ्गमाद्ध्रदगोकुलात् । राजद्वारप्रदेशात्तु मृदमानीय प्रक्षिपेत् ॥५
पञ्चगव्यं च कुम्भेषु पञ्च रत्नानि चैव हि । रोचनां पद्मशङ्खौ च पञ्चभङ्गसमन्वितौ ॥६
स्फटिकं चन्दनं श्वेतं तीर्थवारि ससर्षपम् । गजदन्तं कुंकुमं च तथैवोशीरगुग्गुलम् ॥
एतत्सर्वं विनिक्षिप्य कुम्भेष्वावाहयेत्सुरान् ॥७
सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा ह्रदाः । आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥८
योऽसौ वज्रधरो देव आदित्यानां प्रभुर्मतः । सहस्रनयनश्चेन्द्रः पीडां मेऽत्र व्यपोहतु ॥९
रक्षोगणाधिपः साक्षात्प्रलयानिलसप्रभः । खड्गव्यग्रोऽतिभीमश्च रक्षः पीडां व्यपोहतु ॥१०

अध्याय १२५

चन्द्र-सूर्य-ग्रहण-स्नान की विधि का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—चन्द्र और सूर्य के ग्रहण समय में जो अन्न प्रधान द्रव्य स्नान किया जाता है, मुझे सुनने की इच्छा है बताने की कृपा कीजिये ।१

श्रीकृष्ण बोले—जिसकी राशि पर वह ग्रहण लगता है, उसके लिए मन्त्र और औषध समेत वह स्नान करना बता रहा हूँ । चन्द्र ग्रहण में ब्राह्मण द्वारा स्वस्तिवाचन पूर्वक गन्ध, माला एवं अनुलेपन द्वारा चार ब्राह्मणों की अर्चना करे । ग्रहण के पूर्व समय घृत और औषध मिश्रित सागर के रूप में चार कलश की स्थापना करे, जिसमें गज, अश्व, रथ, वल्लीक, संगम, तालाब, गोशाला और राजद्वार की मृत्तिका, पंचगव्य, पंचरत्न, गोरोचन, कमल, शंख, पंचगंग, स्फटिक, श्वेत चन्दन, तीर्थजल, राई, गजदाँत, कुंकुम, खश (गडरा की जड) और गुग्गुल पड़ा हो । इन सभी वस्तुओं को कलश में डालने के अनन्तर उस कलश में देवों के आवाहन आरम्भ करे—समस्त समुद्र, नदियाँ, तीर्थ, जलद, बादल एवं सरोवर यजमान के पापविनाशार्थ यहाँ आने की कृपा करें।२-८। वज्र धारण करने वाले इन्द्र देव जो आदित्यगण के प्रभु एवं सहस्र नेत्र हैं इस मेरी व्यथा को दूर करें। रक्षागणाधिप ! जो साक्षात् प्रलय कालीन वायु की भाँति दुधर्ष खड्ग लिये व्यग्र और अति भीषण है, राक्षस जनित मेरी पीड़ा शान्त करे।९-१०।

योऽसो बिन्दुकरो बिन्दुः पिनाकी वृषवाहनः । चन्द्रोपरागपापानि स नाशयतु शङ्करः ॥११
त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च । ब्रह्मार्कविष्णुयुक्तानि तानि पापं दहन्तु वै ॥१२
एवमामन्त्रितैः कुम्भैरम्भोर्युक्तैयुगान्वितैः । ऋग्यजुः साममन्त्रैश्च शुक्लमाल्यानुलेपनैः ॥
पूजयेद्वस्त्रगोदानैर्ब्राह्मणानिष्टदेवताः ॥१३
एतानेव ततो मन्त्रान्संलिख्य कनकान्वितान् । यजमानस्य शिरसि उद्धार्यास्ते नरोत्तम ॥१४
कलशान्द्रव्यसंयुक्तान्प्राप्ते ग्रहणपर्वणि । चन्द्रग्रहे निवृत्ते तु कृतगोदानमङ्गलः ॥१५
कृतस्नानः श्वेतपट्टं ब्राह्मणाय निवेदयेत् । अनेन विधिना यस्तु सग्रहं स्नानमाचरेत् ॥१६
न तस्य ग्रहपीडास्याञ्च च बन्धुजनक्षयः । परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्ल्लभाम् ॥१७
सूर्यग्रहे सूर्यनाम सदा मन्त्रेषु कीर्तयेत् । द्रव्यैस्तैरेव कथितं स्नानं कुरुकुलोद्वह ॥१८
य इदं भृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वापि मानवः । सर्वपापविनिर्मुक्तः शक्रलोके महीयते ॥१९

चन्द्रग्रहे नृप रविग्रहणे जपन्मां मन्त्रैरिमैः समभिमन्त्र्य शुभोदकुम्भात् ।
स्नानं करोति नियमेन नरश्च यश्च पीडा न तं ग्रहकृता च पुनर्दुनोति ॥२०

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वादे
चन्द्रादित्यग्रहणस्नानविधिवर्णनं नाम पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२५

विन्दु करने वाले विन्दु पिनाकी तथा वृषवाहन शङ्कर देव ! चन्द्रग्रहण जनित मेरे समस्त पापों को नष्ट करें । त्रैलोक्य में स्थित चार, अचर समस्त प्राणी समेत ब्रह्मा, सूर्य एवं विष्णु देव मेरे पापों को भस्मसात करें । इस प्रकार उन जलपूर्ण चारों कलशों में आवाहन, ऋक्, यजु और साम के मन्त्रों द्वारा श्वेत पुष्पों की माला, विलेप, वस्त्र, तथा गोदान अर्पित करते हुए इष्ट देवता एवं ब्राह्मणों की अर्चना सुसम्पन्न करे । नरोत्तम ! इन मंत्रों को कनकमय करते हुए लिखने के उपरांत यजमान के शिर पर उन मन्त्रों के उद्धार पूर्वक उस ग्रहण के समय औषधादि संयुक्त कलशों के जल से स्नान और ग्रहण के निवृत्त होने पर मङ्गलार्थ गोदान करके श्वेत वर्ण का दुपट्टा ब्राह्मण को सादर अर्पित करें । इस विधान द्वारा ग्रहण के समय स्नान करने वाले की ग्रह पीड़ा शांति हो जाती है, बन्धु, परिवार का क्षय नहीं होता तथा ऐसी उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है जिसमें पुनरावृत्ति (पुनर्जन्म) होता ही नहीं । कुरुकुलोद्वह ! सूर्य ग्रहण के समय मंत्रोच्चार करते हुए सूर्य के नाम का ही सदैव कीर्तन करना चाहिए । और पूर्वोक्त वस्तुओं समेत घट स्नान । इस आख्यान को सुनने अथवा सुनाने वाले मनुष्य समस्त पापों से मुक्त होकर इन्द्र लोक में सुसम्मानित होते हैं । नृप ! चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण के समय मेरी आराधनापूर्वक इन मंत्रों से अभिमंत्रित उस शुभ कलश जल से सनियम स्नान करने वाले पुरुष को ग्रहपीड़ा पीड़ित नहीं करती है ।११-२०

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वाद में
चन्द्रसूर्य ग्रहण स्नान विधि वर्णन नामक एक सौ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ।१२५।

अथ षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सांभरायणीव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

गृहस्थो मरणे प्राप्ते कथं त्यजति जीवितम् । एतन्मे ब्रूहि गोविन्द परं कौतूहलं हि मे ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

नान्यदुष्कृष्टमुद्दिष्टं तज्ज्ञैरनशनात्परम् । तस्याहं लक्षणं वक्ष्ये यज्जप्यं च मुमूर्षतः ।।२
यादृग्रूपश्च भगवान्श्चिंतनीयो जनार्दनः । आसन्नमात्मनः कालं ज्ञात्वा प्राज्ञो युधिष्ठिर ।।३
निर्धूतमलदोषश्च स्नातो नियतमानसः । समभ्यर्च्य हृषीकेशं पुष्पधूपादिभिस्ततः ।।४
प्रणिपातैः स्तवैः पुण्यैर्गंधैर्धूपैस्तु पूजयेत् । दत्त्वा दानं च विप्रेभ्यो विकलादिभ्य एव च ।।
समर्प्य ब्राह्मणेभ्यश्च देवर्चाद्युपयोगि च ।।५
बन्धुपुत्रकलत्रेषु क्षेत्रधान्यधनादिषु । मित्रवर्गे च राजेन्द्र ममत्वं विनिवर्तयेत् ।।६
मित्राण्यमित्रान्मध्यस्थान्परान्स्वांश्च पुनः पुनः । अत्यर्थमपकारेण नोपकारेण चिन्तयेत् ।।७
ततश्च प्रयतः कुर्यादुत्सर्गं सर्वकर्मणाम् । शुभाशुभानां राजेन्द्र वाक्यं चेदमुदीरयेत् ।।८
परित्यजाम्यहं भोगांस्त्यजामि सुहृदोऽखिलान् । भोजनं हि मयोत्सृष्टमुत्सृष्टमनुलेपनम् ।।९

अध्याय १२६

सांभरायणी व्रत का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—गोविन्द ! ग्रहण का समय प्राप्त होने पर गृहस्थों को किस प्रकार अपना जीवन त्याग करना चाहिए । यह जानने के लिए मुझे महान् कुतुहल हो रहा है, अतः इसे कहने की कृपा कीजिये ।१

श्रीकृष्ण बोले—अनशन करने वाले विद्वानों ने उपवास करना बहुत कठिन बताया है (अर्थात् उससे कठिन अन्य कुछ भी नहीं है) अतः मरणासन्न प्राणी को उस समय का जप और अनशन का लक्षण बता रहा हूँ, सुनो ! युधिष्ठिर ! अपना मरण सन्निकट जान कर भगवान् जनार्दन के जिस रूप का ध्यान करना चाहिए उसे भी सुनो ! मन को संयत करते हुए मल दोष रहित एवं स्नान करने के पश्चात् पुष्प, धूप, नम्रतापूर्ण स्तुतियों और पुण्य गंध आदि वस्तुओं द्वारा भगवान् हृषीकेश की अर्चना, ब्राह्मणों और लंगडे लूले आदि को दान करे और देवों आदि की अर्चा आदि उपयोगी कर्म ब्राह्मणों को सौंप करके भाई, पुत्र, स्त्री क्षेत्र (खेत), धन धान्य आदि एवं मित्र वर्ग से अपना मोह हटा ले । मित्र, शत्रु, मध्यस्थ और अपना, पराया उपकार अथवा अपकार का कुछ भी स्मरण न करे । अनन्तर प्रयत्न पूर्वक समस्त कर्मों के त्याग भी । राजेन्द्र ! पुनः शुभाशुभात्मक इन वाक्यों का उच्चारण करे ।२-८। मैं सम्पूर्ण भोग और निखिल मित्रों का त्याग कर रहा हूँ । मैंने भोजन का त्याग तो कर ही दिया है किन्तु विलेप, माला, भूषण आदि,

स्रग्भूषणादिकं गेयं दानमासनमेव च । होमादयः परार्था ये ये च नित्यक्रमागताः ॥१०
नैमित्तिकास्तथा काम्याः श्राद्धधर्मादयोज्झिताः । त्यक्ताश्चाश्रमिका धर्मा वर्णधर्मास्तथोज्झिताः ॥११
पद्भ्यां कराभ्यां विहरन्कुर्वाणः कर्म चोद्वहन् । न पापं कस्यचिन्न्याय्या प्राणिनः संतु निर्भयाः ॥१२
नभसि प्राणिनो ये च दे जले ये च भूतले । क्षितेर्विवरगा ये च ये च पाषाणसंपुटे ॥१३
धान्यादिषु च वस्त्रेषु शयनेष्वासनेषु च । ते स्वयं तु विबुध्यंते दत्तं तेभ्योऽभयं मया ॥१४
न मेऽस्ति बांधवः कश्चिद्विष्णुं मुक्त्वा जगद्गुरुम् । मित्रपक्षे च मे विष्णुरधश्चोर्ध्वं तथा पुनः ॥१५
पार्श्वतो मूर्ध्नि हृदये बाहुभ्यां चैव चक्षुषोः । श्रोत्रादिषु च सर्वेषु मम विष्णुः प्रतिष्ठितः ॥१६
इति सर्वं समुत्सृज्य धृत्वा सर्वेशमच्युतम् । वासुदेवेत्यविरतं नाम देवस्य कीर्तयेत् ॥१७
दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु शेते वै प्राक्छिरास्तथा । उदक्छिरा वा राजेंद्र चिन्तयञ्जगतः पतिम् ॥१८
विष्णुं जिष्णुं हृषीकेशं केशवं मधुसूदनम् । नारायणं नरं शौरिं वासुदेवं जनार्दनम् ॥१९
वाराहं यज्ञपुरुषं पुण्डरीकाक्षमच्युतम् । वामनं श्रीधरं कृष्णं नृसिंहमपराजितम् ॥२०
पद्मनाभमजं श्रीशं दामोदरमधोक्षजम् । सर्वेश्वरेश्वरं शुद्धमनन्तं विश्वरूपिणम् ॥२१
चक्रिणं गदिनं शान्तं शङ्खिनं गरुडध्वजम् । किरीटकौस्तुभधरं प्रणमाम्यहमव्ययम् ॥२२
अहमस्मि जगन्नाथ मयि वासं कुरु द्रुतम्। आवयोरन्तरं मास्तु समीराकाशयोरिव ॥२३
अयं विष्णुरयं शौरिरयं कृष्णः पुरो मम । नीलोत्पलदलश्यामः पद्मपत्रायतेक्षणः ॥२४

गेय, दान और आसन के त्याग पूर्वक नित्य के क्रम प्राप्त पारमार्थिक हवन आदि, नैमित्तिक कर्म एवं श्राद्ध धर्म आदि काम्य कर्म का भी त्याग कर रहा हूँ । उसी भाँति आश्रम धर्म तथा जातीय धर्म कर्म को भी अपने कर चरण द्वारा अनेक ममय तक सुसम्पन्न करने के अनन्तर उसे भी त्याग दिया है । किसी भी प्राणी के लिए पाप कर्म न्याय प्राप्त नहीं है अतः वे निर्भय हों और आकाश, जल, थल, पाताल, पर्वत की गुफाओं धान्यादि, वस्त्रों और शयनासनों में रहने वाले प्राणियों को यह बात स्वयं जान लेना चाहिए कि मैंने उन्हें अभय दान दे दिया है । जगद्गुरु भगवान् विष्णु के अतिरिक्त अब मेरा कोई बन्धु नहीं है । मित्र तथा नीचे ऊपर, पार्श्व भाग, शिर, हृदय बाहु, नेत्र और कान आदि सभी स्थानों में भगवान् विष्णु स्थित हैं ।९-१६। इस प्रकार सभी के त्यागपूर्वक भगवान् अच्युत का तन्मयता से ध्यान करते हुए उनके वासुदेव नाम का कीर्तन करे । दक्षिण की ओर अग्र किये हुए कुश ऊपर पूर्व अथवा उत्तर की ओर शिर करके जगन्नियन्ता विष्णु के ध्यान पूर्वक शयन करे । राजेन्द्र पुनः विष्णु, विष्णु, हृषीकेश, केशव, मधुसूदन, नर नारायण, शौरि, वासुदेव, जनार्दन, वाराह, यज्ञ पुरुष, पुण्डरीकाक्ष, अच्युत, वामन, श्रीधर, कृष्ण, नृसिह, अपराजित, पद्मनाभ, अज, श्रीश, दामोदर, अधोक्षज, सर्वेश्वर, शुद्ध, अनन्त, विश्वरूपी, चक्री, गदी, शांत, शंखी, गरुडध्वज, तथा किरीट कौस्तुभ को धारण करने वाले अव्यय (अक्षीण) रहने वाले भगवान् को मैं प्रणाम कर रहा हूँ, जगन्नाथ ! मैं इसमें और आप मुझमें रहने की शीघ्र कृपा करें । वायु एवं आकाश की भाँति मुझमें और आप में कोई अन्तर न रहे । मेरे सामने यह विष्णु, शौरि एवं कृष्ण स्थित हैं, नील कमलदल की भाँति श्यामल तथा कमल पत्र की भाँति विस्तृत नेत्र वाले मेरे स्वामी भगवान् अधोक्षज मुझे देखने की कृपा करें, मैं उन्हें देख रहा हूँ । इस प्रकार सर्वेश्वर हरि को एकाग्रचित्त

एष पश्यतु मामीशः पश्याम्यहमधोक्षजम् । इत्थं जपेदेकमनाःस्मरन्सर्वेश्वरं हरिम् ॥२५
आसीत सुखदुःखेषु समो मित्राहितेषु च । "ॐ नमो वासुदेवाय" इत्येतत्सततं जपेत् ॥२६
यथा यथा भवेत्कामस्तथा तन्नाम कीर्तयेत् । ध्यायेच्च देवदेवेशं विष्णो रूपं मनोरमम् ॥२७
प्रसन्ननेत्रभ्रूचक्रशङ्खचक्रगदाधरम् । श्रीवक्षसं सुमनसं चतुर्वक्त्रं किरीटिनम् ॥२८
पीताम्बरधरं कृष्णं चारुकेयूरधारिणम् । चिन्तयेत्तु सदा रूपं मनः कृत्वैकनिश्चयम् ॥२९
यादृशे वा मनः स्थैर्यं रूपे बध्नाति चक्रिणः । तदेव चिन्तयेद्रूपं वासुदेवेति कीर्तयेत् ॥३०
इत्थं जपन्स्मरन्नित्यं स्वरूपं परमात्मनः । अप्राणपरमोदारस्तच्चित्तस्तत्परायणः ॥३१
सर्वपातकयुक्तोऽपि पुरुषः पुरुषर्षभ । प्रयाति देवदेवेशे लयमीड्यतमेच्युते ॥३२
यथाग्निस्तृणजातानि दहत्यनिलसङ्गतः । तथानशनसङ्कल्पः पुंसां पापमसंशयम् ॥३३

युधिष्ठिर उवाच

उत्क्रान्तिकाले भूतानां मुह्यन्ति चित्तवृत्तयः । जराव्याधिविहीनानां किमुत व्याधिदोषिणाम् ॥३४
अत्यन्तवयसा दग्धो व्याधिना चोपपीडितः । यदि स्थातुं न शक्नोति क्षितिस्थो दर्भसंस्तरे ॥३५
किमप्यन्योऽप्युपायोऽस्ति न वानशनकर्मणि । वैकल्यं येन नाप्नोति तन्मे ब्रूहि जनार्दन ॥३६
त्वयोक्तं भगवन् ध्यानं तद्ब्रूहि मम तत्त्वतः । ध्यानस्वरूपमखिलं कथयस्व जनार्दन ॥३७

से स्मरण करते हुए सुख-दुःख और मित्र शत्रु सब में समभाव की कल्पना पूर्वक 'ओं नमो वासुदेवाय' (ओंकार रूप वासुदेवाय को नमस्कार है) इस समंत्र का निरन्तर जप करे तथा ज्यों ज्यों भाव वृद्धि होती जाये त्यों त्यों उनके नाम का कीर्तन करता जाये। और देवाधिदेव भगवान् विष्णु के मनोरम रूप का ध्यान करता रहे। इस प्रकार अपने मन से एक मात्र निश्चय कर विकसित नेत्र, भौंहे एवं शंख, चक्र गदा धारण करने वाले, श्री से सुशोभित वक्षस्थल, निर्मलचित्त, चारमुख, किरीट, पीताम्बर और सुन्दर केयूर धारण करने वाले भगवान् कृष्ण के रूप का स्मरण करते हुए चक्रधारी भगवान् विष्णु के जिस रूप में मनकी दृढ़ स्थिरता हो सके उनके उस रूप का ध्यान करते हुए वासुदेवाय नमः का कीर्तन करें। पुरुषर्षभ! इस प्रकार के जप और परमात्मा के स्वरूप का नित्य स्मरण करते हुए प्राणान्त तक परम उदार, तच्चित्त और तत्परायण रहने से समस्त पातकों से युक्त पुरुष का भी देवाधिदेव भगवान् अच्युत में सायुज्य मोक्ष हो जाता है। जिस प्रकार वायु के संसर्ग से अग्नि तृण मात्र को भस्म करता है उसी भाँति अनशन करने का दृढ़संकल्प मनुष्यों के निखिल पापों का विनाश करता हूँ इसमें संदेह नहीं। १७-३३

युधिष्ठिर बोले—प्राण निकलने के समय जरा एवं व्ययहीन प्राणियों की चित्त वृत्ति मोहित होती है अथवा व्याधि दोष ग्रस्त प्राणियों की तथा अत्यन्त वयोवृद्ध एवं व्याधि पीड़ित प्राणी के लिए जो भूमि में बिछाये हुए कुशों पर बैठने में असमर्थ हो, अनशन करने का क्यों कोई अन्य उपाय है। जनार्दन! जिससे विकलता प्राप्त न हो सके वह मुझे बताने की कृपा कीजिये भगवान्! जनार्दन! आप ने ध्यान करने की जो चर्चा की है उसके मर्म और निखिल स्वरूप भी कृपया मुझे बताये। ३४-३७

श्रीकृष्ण उवाच

नात्र भूर्मिर्न च कुशाः स्वास्तराश्च न कारणम् । चित्तसन्यालं बनीभूतो विष्णुरेवात्रकारणम् ॥३८
तिष्ठन्भुञ्जन्स्वपन्गच्छन्स्तथा धावन्नितस्ततः । उत्क्रान्तिकाले गोविन्दं संस्मरंस्तन्मयो भवेत् ॥३९
यं यच्चापिस्मरन्भावंत्यजत्यन्ते कलेवरम् । तम् तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥४०
तस्मात्प्रधानमत्रोक्तं वासुदेवस्य चिन्तनम् । यद्यत्पृष्टं त्वयाध्यानं तदेव कथयामि ते ॥४१
पुरा मे कथितं पार्थ मार्कण्डेयेन धीमता ॥४२

राज्योपभोगशयनासनवाहनेषु स्त्रीगन्धमाल्यमणिवस्त्रविभूषणेषु ।
इच्छाभिलाषमतिमात्रमुदेति मोहाद्ध्यानं तदार्त्तमिति सम्प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥४३
सञ्छेदनैर्दहनताडनपीडनैश्च गात्रप्रहारदमनैर्विनिकर्तनैश्च ।
यस्येह चेतसि हि याति न चानुकम्पा ध्यानं तु रौद्रमिति तत्प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥४४
सूत्रार्थमार्गणमहाव्रतभावनाभिर्बंधप्रमोक्षगतिरागतिहेतु चिन्ता ।
पञ्चेन्द्रियाद्युपशमश्च शमश्च भूतेर्ध्यानं तु धर्म्यमिति तत्प्रवदन्ति सन्तः ॥४५
यस्येन्द्रियाणि विषयैर्न विवर्जितानि सङ्कल्पनात्मज विकल्पविकारयोगैः ।
तत्वेकनिष्ठहृदयो निभृतान्तरात्मा ध्यानं तु शुक्लमिति तत्प्रवदन्ति सिद्धाः ॥४६
आद्ये तिर्यगधोगतिश्च नियतं ध्याने तु रौद्रे सदा धर्म्ये देवगतिः शुभं फलमहोशुक्ले च जन्मक्षयः ।
तस्माज्जन्मरुजापहे हिततरे संसारनिर्वाहके ध्याने शुक्लतरे रजः प्रमथने कुर्यात्प्रयत्नं बुधः ॥४७

श्रीकृष्ण बोले—प्राणोत्सर्ग करने के समय चित्त का आलम्बन एक मात्र विष्णु भगवान् ही हैं जिसका कारण भूमि, कुश और स्तरण आदि कुछ भी नहीं है । उस समय ठहरते, खाते, शयन करते चले फिरते और दौड़ते आदि सभी काल में गोविन्द देव का स्मरण करते हुए तन्मय होना चाहिए । कौन्तेय ! शरीर त्याग के समय जिन-जिन भावों के संस्मरण होते हैं वह उसकी प्राप्ति पूर्वक उन्हीं भावों को अपनाता है । इसलिए उस समय भगवान् वासुदेव का चिन्तन करना ही सर्व प्रधान रहता है । पार्थ ! ध्यान आदि जो कुछ तुमने पूछा था मैंने सब बातें कही, पहले समय में महर्षि मार्कण्डेय ने यह मुझे बताया था । जिस ध्यान में अथवा शयन, आसन, वाहन, स्त्री, गंध माला, मणि, वस्त्र, एवं विभूषण प्राप्त होने की अत्यन्त अभिलाषा उत्पन्न हो उसे उसके मर्मज्ञों ने आर्त्त ध्यान बताया है । काटना, जलाना, ताड़ना देना, पीड़ित करने, शरीर आघात, दमन और निकृन्त की इच्छा ही जिसके मन में उत्पन्न हो अनुकम्पा किस भाँति नहीं, उसे रौद्र ध्यान कहा गया है । सूत्रों के अर्थान्वेषण, महाव्रतों की भावनाओं द्वारा संसार रूप बन्धन से मोक्ष पुनर्जन्म की चिन्ता, पाँचों इन्द्रियों के जप शमन की इच्छा वाले ध्यान को धार्मिक बताया गया है । और जिसकी इन्द्रियाँ विषयों से मुक्त न होकर संकल्प विकल्प जनित विकारों में लिपटी हों, किन्तु अन्तरात्मा में लीन होकर एकमात्र तत्त्व निष्ठ होने वाले ध्यान को शुक्ल ध्यान कहा गया है । प्रथम ध्यान से तदार्त्त, रौद्र से अधोगति, धार्मिक से देवगति, और शुक्ल ध्यान द्वारा शुभ फल की प्राप्ति पूर्वक अपुनर्जन्म प्राप्त होता है । अतः इस शुक्लन्तर ध्यान के लिए जो जन्म मरण रूप रोग का पुष्पहर्ता, अत्यन्त हितैषी, संसार का निर्वाहक और

समाः सहस्राणि तु सप्त वै जले दशैकमग्नो पवने च षोडश ।
गवां गृहे षष्टिरशीतराहवे अनाशने भारत चाक्षया गतिः ।।४८

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
सांभरायणीव्रतवर्णनं नाम षड्विंशत्युत्तरशततमोऽध्यायः ।१२६

अथ सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

वापीकूपतडागोत्सर्गविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

तडागोत्सर्जने देव विधिं विधिविदां वर । कथयस्व महाभाग मम देवकिनन्दन ।।१
वापीकूपोदकानाञ्च के मन्त्राः परिकीर्तिताः । के ऋत्विजोऽत्र के यूपाः कर्तव्याः कुण्डमण्डगे ।।२
दानं किमत्र निर्दिष्टं बलयः के प्रकीर्तिताः । कस्मिन्काले कथं कुर्यादित्येतत्सकलं वद ।।३

श्रीकृष्ण उवाच

साधुसाधु महाबाहो यन्मां त्वं परिपृच्छसि । तडागवापीकूपानामुत्सर्गं कथयामि ते ।।४
निष्पन्ने बद्धपालीके सर्वोद्भेदविवर्जिते । सोपानपंक्तिसहिते पाषाणैः सर्वतश्चिते ।।५
तस्मिन्सलिलसम्पूर्णे कार्तिके वा विशेषतः । तडागस्य विधिः कार्यः स्थिरनक्षत्रयोगतः ।।६

विकारों का शमन करता है, विद्वानों को सतत प्रयत्न शील रहना चाहिए । भारत ! जल में सात सहस्र अग्नि में ग्यारह, वायु में सोलह गौओं में ग्रहण में साठ और युद्ध में अस्सी सहस्र अनशन में अक्षय गति प्राप्ति होती है ।३८-४८

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठर के सम्वाद में
सांभरायणी व्रत वर्णन नामक एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ।१२६।

अध्याय १२७

बावली, कुआँ तथा तालाब के निर्माण-विधि का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—देव ! आप विधिज्ञों में श्रेष्ठ हैं अतः तडागोत्सर्जन की विधि मुझे बताने की कृपा कीजिये ! महाभाग, देवकीनन्दन ! बावली, कूप और सरोवर आदि निर्माण में कौन मंत्र बताये गये हैं, ऋत्विज, यूप स्तम्भ कुण्डमण्डप में किस प्रकार होना चाहिए । दान इसमें क्या बताया गया है और बलि किस भाँति की दी जाती हैं तथा किस समय एवं कैसा करना चाहिए यह समस्त विषय मुझे बताने की कृपा करें ।१-३

श्रीकृष्ण बोले—महाबाहो ! जो तुम मुझसे पूँछ रहे हो यह अत्यन्त साधु प्रश्न है अतः मैं तुम्हें तडाग, बावली एवं कूप का उत्सर्ग बता रहा हूँ, सुनो ! सरोवर के निर्माण में भूमि को पानी की तह तक खोदने के अनन्तर गोलाकार (मनुरी) ईंटे द्वारा बाँधने वृक्षों आदि के संपर्क रहित, क्रमशः सोपान

मुनयः केचिदिच्छन्ति व्यतीते चोत्तरायणे । न कालनियमो ह्यत्र प्रमाणं सलिलं यतः ॥७
तडागपालशीर्षे तु मण्डलं कारयेच्छुभम् । दशद्वादशहस्तं च चतुर्द्वारं सुविस्तृतम् ॥८
तोरणानि तु चत्वारि चतुर्दिक्षु विचक्षणैः । अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटशाखामयानि च ॥९
नानावर्णास्तु परितः पताकाः परिकल्पयेत् । मध्ये महाध्वजः कार्यः पञ्चवर्णः सुशोभनः ॥१०
चतुर्हस्ता भवेद्वेदी मध्ये पञ्चकराथ वा । यजमानप्रमाणेन मध्ये यूपेन शोभिता ॥११
कदम्बाश्वत्थपालाशवैकंकतमयः शुभः । ब्राह्मणस्यास्य निर्दिष्टो यूपः श्रुतिविचक्षणैः ॥१२
न्यग्रोधबिल्वजः प्रोक्तः क्षत्रियाणां च खादिरः । वैश्यस्योदुम्बरमयो ह्यध्वर्जुनसमुद्भवः ॥१३
विभीतकोदुम्बरजः शाकशाल्मलिसम्भवः । शूद्रस्य यूपो निर्दिष्टः सारदारुमयोऽथ वा ॥१४
लोकपालाष्टकं तत्र रजसा च विलेखयेत् । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च कमला चाम्बिका तथा ॥१५
सावित्री सहिता कार्या पुष्पधूपैरथार्चयेत् । कुर्यात्कुण्डानि चत्वारि चतुर्दिक्षु विचक्षणः ॥१६
मेखलात्रययुक्तानि हस्तमात्राणि सर्वतः । हेमालङ्कारिणः कार्या होतारः षोडशाष्ट वा ॥१७
अहताम्बरसम्वीताः स्रक्चन्दनविभूषिताः । स्थापकाश्चात्र विहिता वेदवेदाङ्गपारगाः ॥१८
इतिहासपुराणज्ञाः प्रियवाचोऽनसूयकाः । मृण्मयानि च पात्राणि ताम्राणि स्रुक्स्रुवन्तथा ॥१९
व्यञ्जनानि च कार्याणि होमार्थं समिधस्तिलाः । ग्रहयज्ञविधानेन होमः कार्यो विजानता ॥२०

(सीढियों) और पाषाण शिलाओं द्वारा चारों ओर से सुरुचित होने पर उस जल पूर्ण सरोवर का (उत्सर्ग) विधान विशेषतया कार्तिक मास और स्थिर नक्षत्र में प्रारम्भ करना चाहिए। कुछ मुनियों का अभिमत है कि उत्तरायण (सूर्य) के व्यतीत होने पर ही उसका आरम्भ होना चाहिए। किन्तु इसमें जल प्रमाण होने के नाते समय का कुछ भी नियम नहीं है। तडाग पाल के मूर्धन्य स्थान पर एक शुभ मण्डल की रचना करे, जो बाईस हाथ का लम्बा, चार दरवाजा सुविस्तृत चारों ओर तोरणों से सुसज्जित जो पीपल, गूलर, पाकर और बरगद की शाखा मय हो और अनेक भाँति की पताकाओं से चारों ओर सुशोभित हो। उसके मध्य में पाँच रंग का अत्यन्त सौन्दर्यपूर्ण महाध्वज स्थापित करके उसके मध्य में चार या पाँच हाथ की वेदी का निर्माण करने के उपरान्त यजमान प्रमाण का यूप (स्तम्भ) मध्य में स्थापित करे।४-११। कदम्ब पीपल, पलाश, शमी का यूप (स्तम्भ) ब्राह्मणों के लिए बौद्धिक विद्वानों ने बताया है उसी प्रकार बरगद, बेल, खदिर (खैर) का यूप क्षत्रियों के लिए, गूलर, अशोक, अर्जुन का स्तम्भ वैश्यों को और बहेड़ा, गूलर, शाक, सेमर अथवा वृक्ष के भीतरी भाग (सार) का स्तम्भ शूद्रों को बताया गया है। अनन्तर आठ लोक पाल ब्रह्मा, विष्णु, रूद्र, कमला (लक्ष्मी), अम्बिका और सावित्री की पुष्प धूप आदि से अर्चना करे। चारों दिशाओं में चार कुण्ड की रचना कर एक एक हाथ की तीन मेखला, और सुवर्णात्मक अलङ्कार से सुशोभित करे। इस शुभ कार्य में सोलह या आठ होता होने चाहिए, जो नवीन वस्त्र, माला, चन्दन से भूषित हो और वेद वेदाङ्ग, इतिहास और पुराण का मर्मज्ञ, मधुर भाषी, एवं अनिन्दित आचार्य होना चाहिए। यज्ञ में समस्त पात्र मृत्तिका के अथवा ताँबें के हों।१२-१९। स्रुक् और स्रुव के निर्माण पूर्वक हवन के लिए उत्तम व्यञ्जन, समिधा और तिल की आहुति ग्रह यज्ञ के विधान द्वारा अर्पित करते हुए सर्व प्रथम वेदी में प्रतिष्ठित देवों के निमित्त तथा पुष्टि

वेद्याधिवासितानां च सुराणां होम इष्यते । वारुणैस्तु तथा मन्त्रैर्होतव्यं पुष्टिवर्द्धनम् ॥२१
इन्द्रादिलोकपालानां पूर्वादिक्रमयोगतः । बलिं दद्याच्च तल्लिङ्गैर्मन्त्रैस्सर्वार्थसिद्धये ॥२२
द्वारेषु कलशान्दद्यात्सहिरण्यान्सपल्लवान् । अश्वत्थपल्लवैः कार्या शुभाश्चन्दनमालिकाः ॥२३
सौवर्णं कारयेत्कूर्मं ताम्रेण मकरं तथा । रजतेन तथा मत्स्यं त्रपुणा दर्दुरं तथा ॥२४
शिशुमारजलौकाश्च रजतेनैव कारयेत् । सर्वानपि यथास्थानं ताम्रपात्र्यां निधापयेत् ॥२५
एषा प्रतिष्ठा नामेति मन्त्रेणामन्त्रयेच्च तान् । यूपप्रतिष्ठा कर्तव्या वेदोक्तविधिना ततः ॥२६
कुंकुमेन समालभ्य पुष्पैर्धूपैः समर्चयेत् । वस्त्रयुग्मेन सम्पूज्य नैवेद्यादि यथाक्रमम् ॥२७
ततो द्विजातिप्रवरः श्रपयित्वा चरुं नवम् । ततश्चाग्न्याहुतीर्दद्याद् भूर्भुवः स्वरिति क्रमात् ॥२८
ततश्चावाहयेद्देवं वरुणं सरितां पतिम् । वादित्रघोषैर्गीतैश्च गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥२९
श्वेतेनैव तु वस्त्रेण शिरोवेष्टं तु कारयेत् । आदाय ताम्रपात्रीं तु ब्रह्मघोषपुरःसरः ॥३०
अप्रमाणं जलं गत्वा वरुणाय निवेदयेत् । त्वं वरुण इति मन्त्रेण जलमध्ये प्रवाहयेत् ॥३१
यच्चान्यद्वस्त्रबीजानि तत्सर्वं मज्जयेज्जले । तारयेच्च ततो धेनुं दक्षिणायां उदग्व्रजेत् ॥३२
गोशिरोवेष्टनं कुर्यात्सति वस्त्रे तु बुद्धिमान् । लाङ्गूलस्याग्रमादाय अवतीर्य ततो जलम् ॥३३
ज्ञातिभिः सहितः कर्ता सभार्यश्चावगाहयेत् । ततोऽवतीर्य सलिलाद्दत्त्वा गां ब्राह्मणाय ताम् ॥
शक्त्या च दक्षिणां दद्याद्देवं विप्रान्विसर्जयेत् ॥३४

वर्द्धनार्थ वरूण मंत्रो द्वारा आहुति प्रदान करते हुए पूर्वादि क्रम से इंद्र आदि लोक पालों के लिए आहुति अर्पित करे। पश्चात् उनके मंत्रों के उच्चारण पूर्वक उन्हें बलि प्रदान करके अपनी सर्वार्थ सिद्धि हेतु दरवाजों पर सुवर्ण और पल्लवों से भूषित कलशों को स्थापित करें, जो पीपल के पल्लव, चन्दन एवं शुभ माला से भूषित हों। सुवर्ण का कछुवा, ताँबें का मकर (घड़ियाल) रजत (चाँदी) की मछली, राँगे का मेंढक तथा शिशुकुमार (सूंस) और जलौका (जोंक) की चाँदी की रचना करके ताँबें के पात्र में यथा स्थान स्थापित करते हुए 'एषा प्रतिष्ठा' मंत्रोंच्चारण पूर्वक उनका आवाहन प्रतिष्ठित करे। तदुपरांत वेद विधान द्वारा यूप प्रतिष्ठा करते हुए कुंकुम के विलेप पूर्वक पुष्प, धूप, दो वस्त्र और नैवेद्य आदि वस्तुओं से क्रमशः उसकी अर्चा करके श्रेष्ठ ब्राह्मण द्वारा पकाये हुए नवीन चरु द्वारा 'भू र्भुवः स्वः' के उच्चारण पूर्वक क्रमशः आहुति प्रदान के अनन्तर सरित्पति वरुण देव का आवाहन करके वाद्य, मांगलिक घोष (शब्द), गीत, गन्ध, माला, लेप, श्वेत वस्त्र के शिरो वेष्टन (पगिया) से उन्हें सुसम्मानित करे। ब्रह्म घोष (वेद पाठ आदि) पुरस्सर उस ताम्र पात्री को अगाध अथवा कुछ जल के भीतर जाकर वरुण देव को सादर अर्पित करते हुए। 'त्वं वरुण' इति मंत्र के उच्चारण पूर्वक जल के मध्य में प्रवाहित करे।२०-३१। अन्य वस्त्र बीज आदि वस्तुओं को उसी जल में डालकर दक्षिण से उत्तर की ओर धेनु गौ पार करे। उस समय गौ के शिर में वस्त्र का वेष्टन (पगिया) बाँध कर उसकी पूंछ की अग्रभाग पकड़े और जल में उतर कर पार होये। पश्चात् जाती बन्धुओं आदि समेत तथा स्त्री सहित वह यज्ञ कर्ता जलावगाहन के उपरांत जल से निकल कर वह गौ ब्राह्मण (आचार्य) को और अन्य ब्राह्मणों को यथा शक्ति दक्षिणा प्रदान करते हुए देवों तथा ब्राह्मणों का विसर्जन (विदा) करे। मैं सामान्यतः सभी

सामान्यं सर्वभूतेभ्यो मया दत्तमिदं जलम् । एवं जलाञ्जलिं क्षिप्त्वा पूजयेज्जलमातरः ॥३५
तोष्याः कर्मकराः सर्वे कुद्दालानि च पूजयेत् । अवारितं तु दातव्यं मन्त्रपूर्वं दिनत्रयम् ॥३६
एकाहं च यथाशक्त्या वित्तशाठ्यं न कारयेत् । गोसहस्रं तदर्धं वा तस्यार्धमथवापि वा ॥३७
शतमर्धशतं वापि पञ्चविंशतिमेव च । तासामभावे गां दद्यात्सवत्सां कांस्यदोहनाम् ॥३८
एष राजंस्तडागस्य विधिस्ते परिकीर्तितः । वापीकूपविधानं च कथयामि तथा परम् ॥३९
कुण्डमण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् । तडागविधिवत्कुर्याद्यूपगोतरणादिकम् ॥४०
अकालमूलान्कलशान्वापीकोणेषु दापयेत् । तीर्थोदकसमायुक्तान्सितचन्दनचर्चितान् ॥४१
सितवासोयुगच्छन्नान्समाल्यान् रत्नगर्भिणः । श्रपयित्वा चरुं तत्र यावन्मात्रो यथाविधि ॥४२
चतस्र आहुतीर्दद्याद्भूर्भुवः स्वरिति क्रमात् । ग्रहहोमं प्रकुर्वीत शान्तिपुष्टिविवर्द्धनम् ॥४३
वरुणाय बलिं दद्याल्लोकपालेभ्य एव च । वारुणानि च सूक्तानि पठेयुर्द्विजसत्तमाः ॥४४
वेदीमध्ये मण्डलं च पद्ममत्र प्रशस्यते । तन्मध्ये पूजयेच्छम्भुं ब्रह्माणं केशवं तथा ॥४५
मत्स्यकमठमण्डूकान्वेद्या मध्येऽधिवासयेत् । मित्रमित्रोऽसि भूतानां धनदो धनकांक्षिणाम् ॥४६
वैद्यो रोगाभिभूतानां शरण्यः शरणार्थिनाम् । अनेनैव हि मन्त्रेण वरुणाय विसर्जयेत् ॥४७
आदौ चावाहयेद्देवमनेनैव विशेषतः । नमस्ते विश्वगुप्ताय नमो विष्णो अपाम्पते ॥४८
सान्निध्यं कुरु देवेश समुद्रे यद्वदत्र वै । ततस्तु दक्षिणा देया ब्राह्मणानां नराधिप ॥४९

प्राणियों के निमित्त यह जल दान अर्पित कर रहा हूँ, ऐसा कहते हुए जलाञ्जलि के त्याग पूर्वक जल माताओं की अर्चा और काम करने वाले मजदूरों को सन्तुष्ट करने के अनन्तर उनके कुदार फरसे आदि की पूजा करे। उस समय तीन पहले से अथवा यथाशक्ति एक ही दिन अविरत (चित्त रोक टोक) दान करता रहे वित्त की कृपणता न करे। एक सहस्र, उसका आधा, तदर्ध अथवा सौ, पचास या पचीस और इनके अभाव में एक सवत्सा गौ का काँसे की दोहनी समेत दान करे। राजन् ! इस प्रकार मैंने तडाग की विधि सुना दी अब इसके उपरान्त बावली और कूप का विधान बता रहा हूँ। बावली के प्रतिष्ठा में कुण्ड, मण्डप का संभार, भूषण, आच्छादन आदि और धूप (स्तम्भ) गौ, तोरण आदि सभी कुछ सरोवर विधान के समान ही किया जाता है। बावली कोने में उन अकाल मूल कलशों को स्थापित करना चाहिए, जो तीर्थ जल से भरे, श्वेत चन्दन से चर्चित, श्वेत दो वस्त्रों से आच्छन्न, मालाभूषित, एवं रत्न गर्भित हों। यथा विधान उचित मात्रा में बनायी गयी हवि द्वारा 'भू र्भुवः स्वः' के उच्चारण क्रम से चार आहुति प्रदान कर शांति और पुष्टि के वृद्ध्यर्थ ग्रह होम करे। अनन्तर वरुण तथा लोक पालों के निमित्त बलि देते समय वारुण सूक्त का पाठ ब्राह्मण द्वारा सम्पन्न करे। पुनः वेदी के मध्य में कमल की रचना करके उसके शिव, ब्रह्मा, विष्णु की अर्चा पूर्वक वेदी के मध्य में मत्स्य कच्छप, और मेढ़क का अधिवासन करे।३२-४५। पश्चात् आप प्राणी मात्र के मित्र, धनेच्छुक के कुबेर, रोगी के वैद्य और शरणार्थियों के शरण्य हैं इस मंत्र के उच्चारण द्वारा क्षमा प्रार्थना पूर्वक वरुण देव का विसर्जन करते समय देवेश ! विश्व रक्षक रूप आप को नमस्कार है, और जलाधीश्वर विष्णु को नमस्कार है, समुद्र की भाँति आप इस बावली में निवास करने की कृपा करें—ऐसा कहते हुए उनका पूर्व आवाहन करना चाहिए।

गौः स्थापकाय दातव्या भोजनं[1] चानिवारितम् । सर्वेषामेवदातव्यमेष पौराणिको विधिः ।।५०
शरावा आगतं तोयं सामुद्रं प्रथमं स्मृतम् । निपाने वा तडागे वा संस्थितं तद्भवेच्छुचि ।।५१
वापीकूपतडागे वा स्थितं तु प्रथमं जलम् । अपेयं तु भवेत्सर्वं तज्जलं सूतिकासमम् ।।५२
समुद्रोऽपि हि कौंतेय देवयोनिरपाम्पतिः । कुशाग्रेणापि रभसा न स्पृष्टव्यस्त्वसंस्कृतः ।।५३

अग्निश्चतेजो मृडयाथ देहे रेतोधाविष्णुरमृतस्य नाभिः ।
एवं ब्रुवन्पाण्डव सत्यवाक्यं ततोवगाहेत पतिं नदीनाम् ।।५४

वैष्णवे मासि सम्प्राप्ते नक्षत्रे वारुणे तथा । अर्घ्यं प्रदद्याद्भक्त्या तु तस्मिन्काले महोदधेः ।।५५
स्नात्वा तु विधिवन्मन्त्रैः सागरे तु समाहितः । फलमूलाक्षतैर्भक्ष्यैस्तथार्घ्यं सम्प्रकल्पयेत् ।।५६
अपि जन्म सहस्रं तु यत्पापं कुरुते नरः । मुच्यते सर्वपापेभ्यः स्नात्वा तु लवणांभसि ।।५७
विधिज्ञेन तु कर्तव्यं ब्राह्मणेन यथाविधि । कर्ता कारयिता चैव उभौ तु स्वर्गगामिनौ ।।५८
विधिं त्वेनमजानानो यः कुर्यादर्थमोहितः । कर्ता कारयिता चैव उभौ तौ नरकगामिनौ ।।५९
यो न कारयते शान्तिं तडागाद्येषु कर्मसु । तस्य तन्निष्फलं सर्वमुप्तं बीजमिवोषरे ।।६०
सर्वरत्नमयं दिव्यं चन्द्रार्कसदृशप्रभम् । विमानं तेजसा युक्तमारोहेत्पुण्यकर्मकृत् ।।६१

अनन्तर ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान करते समय आचार्य के लिए गौ और सभी लोगों को यथेच्छ भोजनों से प्रसन्न करना चाहिए । ऐसा पौराणिक विधान में कहा गया है । नराधिप ! मिट्टी के (कसोरे आदि) पात्र में रखा हुआ समुद्र जल प्रथम जल कहलाता है, अतः कूप के समीप किसी अन्य (बावली) अथवा जलाशय और सरोवर में वह जल रखने से इन जलाशयों के जल पवित्र हो जाते हैं । क्योंकि बावली, कूप और तडाग का जल जो सर्व प्रथम निकलताहै, सूतिका की भाँति अपेय होता है ।४६-५२। कौंतेय ! उसी भाँति उस समुद्र का भी जल, जो देवयोनि और जलाधीश्वर कहलाता है, संस्कार हीन होने पर कुश के अग्र भाग से भी स्पर्श करने योग्य नहीं रहता है । पाण्डव अतः 'अग्निश्च तेजो मृडयाथ देहे रेतोधा विष्णुरमृतस्य नाभिः' इस मंत्र के उच्चारण द्वारा संस्कार करके नदी पति समुद्र का जलावगाहन करना चाहिए । वैष्णव मास में वारुण (शतमिषा) नक्षत्र के दिन भक्ति पूर्वक सागर को अर्घ्य प्रदान करना चाहिए—मंत्रोच्चारण पूर्व सविधान स्नान करने के उपरान्त सावधान मन से भक्ष्य फल, मूल एवं अक्षत द्वारा अर्घ्य दान करके क्षमा प्रार्थना करनी चाहिए । मनुष्य अपने सहस्रों बार के जन्मों में जो कुछ पाप करता है, लवण सागर में स्नान करके वह उन समस्त पापों से मुक्त हो जाता है । विधान निपुण ब्राह्मण द्वारा यथा विधान इसे सुसम्पन्न करने पर कर्ता और कारयिता । दोनों को स्वर्ग की प्राप्ति होती है । विधि का ज्ञान शून्य मनुष्य द्वारा केवल अर्थ मोह वश इसके सम्पन्न होने पर कर्ता कारयिता दोनों नरक गामी होते हैं । इस प्रकार तडाग आदि के (प्रतिष्ठा) कर्म में शांति न कराने वाले पुरुष का किया हुआ सभी कर्म ऊपर भूमि में बीजारोपण की भाँति निष्फल हो जाता है ।५३-६०। इस भाँति का पुण्य कर्म करने वाला मनुष्य ऐसे विमान पर सुशोभित होता है, जो समस्त दिव्य रत्नों से भूषित, चन्द्र सूर्य के समान प्रभा

---

१. भेषजम् ।

कश्चित्पिबति तत्तोयं निपानस्थं ततोऽञ्जलिम् । ब्राह्मणो वा यतिर्गौर्वा येन कर्ता न सीदति ।।६२
उत्सृष्टे कृतकृत्यस्तु सुहृत्कुर्यान्महोत्सवम् । महाभोज्यं महोत्सर्गं यजमानो दिनाष्टकम् ।।६३
कारकाः कर्मणो वापि सूत्रधारादयो नराः । इष्टापूर्तेन धर्मेण तेऽपि स्वर्गं प्रयान्ति हि ।।६४
खन्यमाने महीभागे प्राणिनो ये क्षयं गताः । चित्रे वा देवकूटार्थे ते सर्वे त्रिदिवं गताः ।।६५
धेनोस्तु रोमकूपाणि यावन्तीह नरोत्तमम् । तावद्वर्षसहस्राणि वर्षकोटिशतानि च ।।६६
कोटिर्युगसहस्राणां स्वर्गे तिष्ठेत्तडागकृत् । चेत्तस्य पितरः केचिन्नरकं समुपागताः ।।६७
तान्स्तु तारयते सर्वानात्मानं च महीपते । आस्फोटयन्ति पितरो वल्गन्ति प्रपितामहाः ।।६८
अपि नः स कुले जातो यस्तडागं करिष्यति । सर्वस्वेनापि कौन्तेय भूमिष्ठमुदकं कुरु ।।६९
कुलानि तारयेत्सप्त यत्र गौर्वितृषीभवेत् । एवं वर्ष शतेनापि कृत्तिका विहरीवने ।।७०
मासं चेतागृहे कोटिक्षणध्वंसिधनस्य हि । तडागं देवभवनं वापीवृक्षोघनच्छदः ।।७१
चतुर्थकं फलं प्राप्तं कारितेऽस्मिंश्चतुष्टये । यथा मातुः समाचष्टे पुत्रः शीलं स्वकैर्गुणैः ।।७२
तथा स्वादेन च जलं कर्तुः सर्वं शुभाशुभम् । अतः शुभागतं द्रव्यं तडागादिषु लापयेत् ।।७३
धन्यस्य पान्थाः सम्प्राप्य तडागं वृक्षमण्डितम् । पीत्वापः पादपतले विश्रमन्ति रमन्ति च ।।७४
मारुतोद्धूतवीच्यग्रैः करैः कमलमण्डितम् । अभ्यागताय सुधिया तडागाद्यं प्रकल्पितम् ।।७५

पूर्ण और तेजोमय रहता है । पश्चात् उस बावली के जल को किसी ब्राह्मण, यति (संन्यासी) अथवा गौ के सर्वप्रथम स्नान करना चाहिए । जिससे कर्ता को कोई कष्ट सम्भव न हो सके । इस प्रकार उस उत्सृष्ट कर्म के सुसम्पन्न होने पर एक महोत्सव आरम्भ करना चाहिए, जिसमें आठ दिन तक महाभोज चलता रहे । इस इष्टापूर्त यज्ञ द्वारा बावली निर्माण के छोटे बड़े सभी कर्मचारी गण को स्वर्ग प्राप्ति होती है । बावली के महापुण्य रूप खनन कर्म होते समय या देवों के चित्र निर्माण में जितने प्राणी विनष्ट हुए रहते हैं वे सभी स्वर्ग निवासी होते है । नरोत्तम तडाग स्वमित पुरुष धेनु गौ की देह में स्थित रोम की संख्या के समान सौ कोटि सहस्र वर्ष और कोटि सहस्र युग तक स्वर्ग में सुसम्मानित होता है । महीपते ! यदि उसके कुछ पितर नरक में स्थायी हों, तो उन्हें समेत स्वयं का वह उद्धार करता है । तडाग निर्माता के पितर यह समझ कर कि मेरे कुल में उत्पन्न होकर यह तडाग का निर्माण अवश्य करायेगा ताल ठोंक कर प्रतिवादी का अन्वेषण करते हैं और पितामह उछलते कूदते आनन्द विभोर होते हैं । कौंतेय ! अतः अपने सर्वस्व द्वारा भी पृथ्वी में जलाशय निर्माण अवश्य कराओ जिससे गौ की तृषा शान्ति होने पर सात पीढ़ियों का उद्धार हो । यह जानते हुए कि धन सर्वदा क्षण ध्वंसी है—गृह के स्थायी धनों द्वारा तडाग, देवालय, बावली और घनी छाया वाले वृक्ष का आरोपण अवश्य करना चाहिए, क्योंकि इन चारों कर्मों को सुसम्पन्न करने पर चौथे (मोक्ष) फल की प्राप्ति होती है ।६१-७१। जिस प्रकार पुत्र अपने निजी गुणों द्वारा माता का शील स्वभाव प्रकट करता है उसी भाँति जल के आस्वादन द्वारा उसके कर्ता का शुभ सूचित होता है । अतः शुभ कर्म द्वारा उपार्जित धन तडाग आदि जलाशयों के निर्माण में अवश्य लगा देना चाहिए । वह धन्य पुरुष है, जिसके निर्माण कराये तडाग में जो अनेक वृक्षों से विभूषित हो, पथिक उनका जल पान कर वहाँ के वृक्षों का घनी छाया में विश्राम एवं रमण करते हैं, जो वायु

सामान्यं सर्वभूतेभ्यो येन भूमिगतं जलम् । तारितं कारितं तेन सुपुत्रेण कुलद्वयम् ।।७६
मूर्तं स्वभावतः सिद्धमिष्टं मन्त्रप्रदर्शितम् । इष्टापूर्ते कृते राजन्कृतकृत्यः पुमान्भवेत् ।।७७
उन्नता वाथ निम्ना वा कीर्तिर्येन प्रकाशिता । तेन त्रैलोक्यचन्द्रेण जननी पार्थ पुत्रिणी ।।७८
त्रितयं निम्नतां नेयं त्रितयं चोन्नतिं पराम् । तडागमथ यो भूमौ देव देवालयंकृती ।।७९
यः कारयति लोकेऽस्मिन्कीर्तिस्तस्यामला भवेत् । स जीवति स एवैकः स भवेदजरामरः ।।८०
उपेतानामपि दिवं स निबन्धविधायिनाम् । आस्त एवं निरातङ्कं तस्य कीर्तिमयं वपुः ।।८१
तावत्स्वर्गे स रमते यावत्कीर्तिरनश्वरा । तावत्किलायामध्यास्ते सुकृती वैबुधं पदम् ।।८२
हंसास्याक्षिप्तनील्यग्रं पद्मिनीखण्डमण्डितम् । पीयमानं महाग्रामैर्धन्याः पश्यन्ति स्वं सरः ।।८३
घटैरञ्जलिभिर्वक्त्रैर्यस्य वाटीपुटैर्जलम् । पिबन्ति जन्तवः सर्वे किमन्यत्तस्य वर्ण्यते ।।८४
तडागं नगरोपान्ते धन्यस्य किल जायते । उभयोरर्थसंसिद्धिर्दृष्टा कर्तुर्जनस्य च ।।८५
येषां देवकुलं तत्तु निष्पद्येत सरस्तटे । अभीष्टदेवतायुक्तं तेषां पार्थ किमुच्यते ।।८६
न भवन्तीष्टिका यावद्द्रोणी वा भूमिसन्निभा । स्वर्गे महीयते तावत्कारको देववेश्मनः ।।८७
भोग्यस्थाने कृतः कूपः सुस्वादुसलिलस्तथा । दृढरज्जुसमायुक्तः पुनात्यासप्तमं कुलम् ।।८८

द्वारा उद्वेलित तरङ्ग रूपी कर कमलों से सदैव सुशोभित होते रहते हैं। जिस सुपुत्र ने सर्वसाधारण के हितार्थ भूमि में जलाशय का निर्माण कराया है, उसने साथ ही साथ अपने दोनों कुल का उद्धार भी किया है। राजन् ! इस इष्टा पूर्त (प्रस्तुत हितैषी) नामक यज्ञ सुसम्पन्न करने पर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। पार्थ ! उन्नत निम्न किसी भी प्रकार की कीर्ति जिसने उत्पन्न की है। उसी त्रैलोक्य के चन्द्रमा द्वारा उसकी माता पुत्रिणी होने की ख्याति प्राप्त करती है। इस कर्म द्वारा देवाधिदेव के कुल को अलंकृत करने वाले उस पुरुष को तड़ाग निर्माण के समय उसमें तीन को अत्यन्त निम्न और तीन को अत्यन्त उँचा बनाना चाहिए। क्योंकि इस प्रकार के तड़ाग का निर्माण कराने वाले की कीर्ति निर्मल होती है और वही एक अजर अमर होकर जीवित भी कहलाता है। उसमें सीढ़ियों की रचना कराने वाले का स्वर्ग निवास निरातङ्क होता है और उसकी देह कीर्तिमयी कही जाती है। वह सुकृती अपनी कीर्ति के अनश्वर समय तक स्वर्ग में रमण और इला में देवपद पर सुशोभित रहता है। धन्य पुरुष ही अपने ऐसे सरोवर का दर्शन करता है, जिसमें हंसों के मुख में सदैव नील कमल दण्ड का अग्रभाग पड़ा रहता हो और कमलिनी समूहों से सुशोभित एवं सर्वसाधारण के सेवन करने योग्य हो। प्रत्येक भाँति के प्राणी जिसके जल को, घट, अञ्जली, मुख एवं वाटी पुट द्वारा पान करते हैं उसका (महत्त्व) वर्णन किस भाँति किया जा सकता है। धन्य पुरुष के ही सरोवर नगर के समीप बनाये जाते हैं क्योंकि उसमें प्राणियों का दोनों भाँति स्वार्थ सिद्ध होता है। पार्थ ! ऐसे सरोवर के निकट जिन लोगों के अभीष्ट देय समेत देव कुल प्रकट हो जाते हैं उनका (महत्व) वर्णन क्या किया जा सकता है। क्योंकि उसकी ईटें या द्रोणी जब तक भूमि की भाँति (बराबर) होती है तब तक उस देवालय का निर्माता स्वर्ग में सुसम्मानित होता है।७२-८६। भोग्य स्थान में (जहाँ सर्वसाधारण का हित निहित हो) सुस्वाद जल वाला कूप निर्माण कराने से सात पीढ़ियों का उद्धार होता है। जिसके कूप का सुस्वादु जल निरन्त लोग पान करते हैं समस्त प्राणियों के

यस्य स्वादुजलं कूपे पिबन्ति सततं जनाः । किं तेन न कृतं पुण्यं सर्वसत्त्वोपकारिणा ॥८९
यः प्रासादान् रचयति शुभान्देवतानां तडागे कीर्तिस्तस्य भ्रमति विपुला वंशमार्गानुयाता ।
दिव्यान्भोगान्भजति च सदा कारकश्चाप्रमेयान्भुक्त्वा सौख्यं पुनरपि च भवेच्चक्रवर्ती पृथिव्याम्॥९०
तेषां तडागानि बहूदकानि कूपाश्च यूपाश्च प्रतिश्रयाश्च ।
अन्नप्रदानं मधुरा च वाणी यमस्य ते निर्वचनीभवन्ति ॥९१
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
वापीकूपतडागोत्सर्गविधिवर्णनं नाम सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२७

अथाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

वृक्षोद्यापनविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

वृक्षारोपणमाहात्म्यं वद देवकिनन्दन । उद्यापनविधिं चैव सरहस्यं समासतः ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

वरं भूमिरुहाः पञ्च नगकाष्ठरुहा दश । पत्रैः पुष्पैः फलैर्मूलैः कुर्वंति पितृतर्पणम् ॥२
बहुभिर्मृतकिञ्जातैः पुत्रैर्धर्मार्थवर्जितैः । वरमेकं पथितरुर्यत्र विश्रमते जनः ॥३

हितैषी उस पुरुष ने किसी पुण्य का उपार्जन नहीं कर लिया। (अर्थात् समस्त पुण्य का भागी वह हो गया)। सरोवर के निकट सुन्दर प्रासाद (कोठे) पूर्ण देवालय की संरचना कराने वाले प्राणी की विपुल कीर्ति उसके वंश परम्परा में सदैव वर्तमान रहती हैं और अनेक भाँति के दिव्य प्रमेय भोगों और सौरवों के अनुभव के उपरांत वह इस भूतल में चक्रवर्ती पद भूषित करता है जिसके अनेक अगाध सरोवर, कूप, स्तम्भ, धर्मशाला बने तैयार रहते हैं। उनके यहाँ पुत्र दान सदैव होता रहता है, वाणी अत्यन्त मधुर होती है और यम के लिए वे अनिर्वचनीय होते हैं।८७-९१

श्री भविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर संवाद में
वापी, कूप, तडाग का उत्सर्ग विधि वर्णन नामक एक सौ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त।१२७।

अध्याय १२८

वृक्ष के उद्यापनविधि का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—देवकीनन्दन ! वृक्ष के लगाने का महत्त्व और उसका उद्यापन विधान रहस्य समेत एवं विवेचन पूर्ण बताने की कृपा कीजिये।१

श्रीकृष्ण बोले—भूमि में लगाये गये पाँच ही वृक्ष पर्वतीय दश अत्यन्त श्रेष्ठ कहे जाते हैं क्योंकि वे अपने पत्र पुष्प एवं फल मूल द्वारा पितरों को तृप्त करते रहते हैं। उन धर्मार्थ हीन पुत्रों के जो जीवित रहते हुए मृत के समान हैं, उत्पन्न होने से क्या लाभ हो सकता है ? मार्ग में लगा हुआ एक ही वृक्ष अत्यन्त श्रेष्ठ

प्राणिनः प्रीणयन्ति स्म च्छायावल्कलपल्लवैः । घनच्छदाः सुतरवः पुष्पैर्देवान् फलैः पितॄन् ॥४
पुष्पपत्रफलच्छायामूलवल्कलदारुभिः । धन्या महीरुहा येषां विफला यान्ति नार्थिनः ॥५
पुत्राः सम्वत्सरस्यान्ते श्राद्धं कुर्वन्ति वा नवा । प्रत्यहं पादपाः पुष्टिं श्रेयोऽर्थं जनयन्ति हि ॥६
न तत्करोत्यग्निहोत्रं सुखं यद्योषितः सुतः । यत्करोति घनच्छायः पादपः पथि रोपितः ॥७
सच्छाया च सुपुष्पा च सफला वृक्षवाटिका । कुलयोषेव भवति भर्तृलोकद्वयानुगा ॥८
अशोकफलावकरा रतिकालंकृतानना । सर्वोपभोगवेश्येव वाटिका रसिका सदा ॥९
सदा स तीर्थाभवति सदा दानं प्रयच्छति । सदा यज्ञं स यजते यो रोपयति पादपम् ॥१०

अश्वत्थमेकं पिचुमन्दमेकं न्यग्रोधमेकं दश चिञ्चिणीकान् ।
कपित्थबिल्वामलकीत्रयं च पञ्चाम्रवापी नरकं न पश्येत् ॥११
पुष्पोपगन्धाढ्यफलोपगन्धं यः पादपं स्पर्शयते द्विजाय ।
स स्त्रीसमृद्धं बहुरत्नपूर्णं लभेद्विमानप्रतिमं गृहं वै ॥१२
प्रतिश्रयाश्रान्त समाश्रयत्वात्सर्वेहितं तत्र फलं बुभुक्षोः ।
अपत्यमेकं परलोकहेतोर्विमृश्यतां किं तरवो न रोपिताः ॥१३

न खानिताः पुष्करिण्यो रोपिता न महीरुहाः । मातुर्यौवनचौरेण तेन जातेन किं कृतम् ॥१४

है, जिसकी छाया में पथिक सुखपूर्वक विश्राम करते हैं। घनी छाया वाले उत्तम वृक्ष अपनी छाया, वल्कल (छिलका) और पल्लवों द्वारा प्राणियों को तथा पुष्पों द्वारा देवों और फलों द्वारा पितरों को सुखी करते हैं जिनके लगाये हुए वृक्ष गण अपने पत्र, पुष्पों, फल, छाया, मूल (जड़), वल्कल (छिलका) और लकड़ियों द्वारा प्राणियों की सेवा करते हैं वे वृक्ष धन्य है क्योंकि याचक उनके यहाँ से विफल नहीं लौटता है। पुत्र वर्ष के अन्त में श्राद्ध करता है या नहीं उसका कुछ निश्चित नहीं रहता है। किन्तु वृक्ष समूह प्राणियों की नित्य पुष्टि और उनके सुख स्वार्थ प्रदान करते रहते हैं। अपनी परिणीता स्त्री से उत्पन्न (औरस) पुत्र अग्निहोत्र कर्म द्वारा जो भविष्य नें सुखदायक होता है वहाँ सुख नहीं पहुँचा सकता है जो मार्ग में लगाये गये धनी छाया वाले वृक्ष द्वारा प्राप्त होता है। सुन्दर छाया, और पुष्प फल समेत सुशोभित होने वाली वाटिका कुल स्त्री की भाँति दोनों कुलों को सुखी करती है। अशोक के फलों से अत्यन्त निर्मल और तिलक नामक वृक्षों से मण्डित मुख वाली वह रस भरी वाटिका वेश्या की भाँति सब की उपभोग्या होती है। वृक्षारोपण करने वाला प्राणी वृक्ष रोपने के नाते सदा सूर्य की भाँति रहता है, सदैव दान करता है और सदा यज्ञ कर्ता ही बना रहता है।२-१०। पीपल, नीम और बरगद का एक एक वृक्ष, चिञ्चणी का दश, कैथ, बेल तथा आँवले का तीन तीन, पाँच आम का वृक्ष एवं बावली का स्वामी कभी भी नरक गामी नहीं होता है। पुष्प,गन्ध और फलों से अत्यन्त पूर्ण वृक्ष ब्राह्मण को अर्पित करने वाला पुरुष स्त्री समेत समृद्ध एवं बहुरत्न पूर्ण विमान की भाँति गृह प्राप्त करता है। फल भक्षण के लिए लालायित प्राणियों से कहना है कि फल समेत भ्रान्त होने पर गृह की भाँति समस्त सुख प्रदान करने वाले वृक्षों का, जो सन्तान की भाँति परलोक के लिए एक मात्र हितैषी है, विचार पूर्वक, आरोपण क्यों नहीं किया। क्योंकि जिसने कर्म भूषित जलाशय का निर्माण नहीं कराया और वृक्षारोपण नहीं किया, माता के यौवन चोर उस प्राणी के उत्पन्न होने से क्या लाभ हुआ।

छायामन्यस्य कुर्वन्ति तिष्ठन्ति स्वयमातपे । फलन्ति च परार्थेषु न स्वार्थेषु महाद्रुमाः ॥१५
अतः परं प्रवक्ष्यामि वृक्षस्योद्यापने विधिम् । सर्वपापप्रशमनं सर्वकीर्तिविवर्द्धनम् ॥१६
अपुत्रया पुरा पार्थ पार्वत्या मन्दराचले । अशोकः शोकशमनः पुत्रत्वे परिकल्पितः ॥१७
जातकर्मादिकास्तस्य याः क्रियाः किल बुद्धिमान् । चरकात्रिपुराणोक्तास्ताः शृणुष्व युधिष्ठिर ॥१८
ततो मूले घनदलो वल्गुच्छायाङ्गपल्लवः । शीतवातातपसहः संस्कार्यस्तरुणस्तरु ॥१९
स्त्रीनामकण्टकीकुब्ज कीटवृश्चिककोटरः । नोद्याप्यः पादपः पार्थ शिष्टानां यो न सम्मतः ॥२०
आलवाले सुविहिते शुभे बद्धचतुष्किके । शोधयित्वा तमुद्देशं सुगुप्तं कारयेत्ततः ॥२१
सदैवोद्यापनं पार्थ पादपानां प्रशस्यते । शुभेऽह्नि विप्रकथिते ग्रहनक्षत्रसंयुते ॥२२
पताकालंकृतं वृक्षं पूर्वेद्युरधिवासयेत् । रक्तवस्त्रैः समाच्छाद्य रक्तसूत्रेण वेष्टयेत् ॥२३
पिष्टातकेनावकिरेत्सर्वौषध्या च पादपम् । स्थापयेत्पूर्णकलशांश्चतुर्दिक्षु विचक्षणः ॥२४
पल्लवालंकृतमुखान्सितचन्दनचर्चितान् । सितवासोयुगच्छन्नान्सकलान् रत्नगर्भिणः ॥२५
पताकालंकृताः सर्वे कार्यास्तत्सन्निधौ द्रुमाः । मूलविन्यस्तकलशा रक्तसूत्रावगुण्ठिताः ॥२६
रक्तपीतसिताच्छादैश्चर्चिताः सुमनोहरैः । कलधौतमयान्यत्र फलानि दश पञ्च वा ॥२७
ताम्रपात्र्यां सबीजानि सरत्नान्यधिवासयेत् । तूर्यमङ्गलघोषेण चतुर्दिक्षु क्षिपेद्बलिम् ॥२८

महावृक्ष स्वयं धूप में खड़े रहकर अपनी छाया दूसरों के हितार्थ प्रदान करते हैं और सदा परार्थ के लिए फलते फूलते हैं न कि स्वार्थ वश । इसके उपरांत मैं तुम्हें वृक्षों का उद्यापन विधान बता रहा हूँ, जो सम्पूर्ण पापों की शान्ति पूर्वक चौमुखी कीर्ति की वृद्धि करता है । पार्थ ! मन्दराचल पर निवास करते समय पार्वती जी ने सन्तानहीनकाल में पुत्र के स्थान पर शोकशमनकारी अशोक वृक्ष लगाकर उसमें पुत्रत्व की कल्पना की थी । युधिष्ठिर ! उन्होंने उसका जातकर्म आदि सभी संस्कार क्रियाओं द्वारा सुसम्पन्न किया था, चरक और तीनों पुराणों में प्रथित हैं, सुनो ! ऐसे तरुण वृक्ष का संस्कार करना चाहिए । जो (स्थूल) मूल, धन दल, मनोरम छाया एवं अंग रूप पल्लव हों और वह स्वयं शीत, वायु एवं धूप का सहन करने में समर्थ हो । पार्थ ! स्त्रीनामक , कांटेदार, कूबडे और जिसके कोटर (खोंडर) में कीड़े तथा विच्छू आदि रहते हों शिष्टों के सम्मति वाले इन वृक्षों का उद्यापन करना चाहिए । वृक्षों के चारों ओर आलबाल (थाला) बनाकर शुभ चबूतरे से विभूषित उस स्थान की संशोधन रक्षा करनी चाहिए । पार्थ ! वृक्षों का उद्यापन अत्यन्त प्रशस्त कर्म है अतः ब्राह्मण द्वारा बताये गये ग्रह, नक्षत्र युक्त किसी शुभ दिन पताका से भूषित उस वृक्ष का पहले दिन अधिवासन करते हुए वृक्ष रक्त वस्त्र, रक्त सूत्र से आबद्ध लेप एवं समस्त औषध पूर्ण करके चारों दिशाओं में चार ऐसे कलशों को स्थापित करे ।११-२४। जिनके मुख पल्लवों से अलंकृत, चन्दन चर्चित, श्वेत दो वस्त्रों से आच्छन्न एवं सकाल रत्न गर्भित हों और उनके समीप सभी वृक्ष पताकालंकृत हों। जिनके मूल भाग में रक्त सूत्र से चारों ओर घिरे कलश स्थित हों, जो रक्त, पीत और श्वेत रंगों से भूषित निर्मल एवं मनोहरता से पूर्ण हों। सुस्वाद दश पाँच फलों की भी ताँबे के पात्र में बीज तथा रत्नों समेत अधिवासन करके तुरूही वाद्य और मङ्गलघोष पूर्ण चारों दिशाओं में इन्द्र आदि लोकपालों तथा भूतों के निमित्त बलि प्रदान करे।२५-२८। पश्चात् दूसरे दिन निर्मल प्रातः काल के समय मेखला समेत

इन्द्रादिलोकपालेभ्यो भूतेभ्यो मन्त्रविद्गुरुः । ततः प्रभाते विमले कुण्डं कृत्वा समेखलम् ॥२९
ग्रहयज्ञविधानेन शान्तिकर्म समारभेत् । सुवर्णालंकृतान्कृत्वा ब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥३०
चतुरोऽष्टौ यथाशक्त्या वासोभिरभिपूजयेत् । तिलाज्येन च होमः स्यात्तुष्टिपुष्टिकरः सदा ॥३१
मातरं स्थापयित्वाग्रे पूजयेत्कुसुमाक्षतैः । श्रपयित्वा चरुं सम्यक्पायसाद्यपरिप्लुतम् ॥३२
होमादौ जातकर्मादि गोदानं यावदेव तु । पादपं स्नापयित्वा तु समन्त्रैस्तीर्थवारिभिः ॥३३
जातकं नामकरणमन्नप्राशनमेव च । सुवर्णसूच्या कुर्वीत कर्णवेधं विधानवित् ॥३४
जातरूपक्षुरेणात्र चूडाकार्या यथाक्रमम् । बध्नीयान्मेखलां मौञ्जीं वासश्च परिधापयेत् ॥३५
यजमानस्ततः स्नातः शुक्लाम्बरधरः शुचिः । पुष्पाञ्जलिः समभ्येत्य मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥३६

ये शाखिनः शिखरिणां शिरसा विभूषा ये नन्दनादिषु वनेषु कृतप्रतिष्ठाः ।
ये कामदाः सुरनरोरगकिन्नराणां ते मे ततस्य दुरितार्तिहरा भवन्तु ॥३७
एतैर्द्विजैर्विधिवत्प्रहुतो हुताशः पश्यत्यसावहिमदीधितिरम्बरस्थः ।
त्वं वृक्ष पुत्रपरिकल्पनया वृतोऽसि कार्यं सदैव भवता मम पुत्रकार्यम् ॥३८

इत्येवमुक्त्वा तं वृक्षं लालयित्वा पुनः पुनः। घृतापात्रे स्ववदनं दृष्ट्वाशिषमुदीरयेत् ॥३९
अङ्गादङ्गात्सम्भवति हृदयादभिजायसे । आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥४०
ब्राह्मणानां ततो देया दक्षिणा हृष्टमानसैः । स्थापकाय शुभां धेनुं दत्त्वा कुर्यान्महोत्सवम् ॥४१
दीनानाथजनानां च भोजनं चानिवारितम् । इतरेषां प्रदातव्यं सन्तुष्टेन सुरासवम् ॥४२

कुण्ड का निर्माण करके ग्रहयज्ञ विधान द्वारा शांति कर्म का आरम्भ करे । उस यज्ञ में चार या आठ वैदिक ब्राह्मणों को यथाशक्ति सुवर्ण भूषित एवं वस्त्र से पूजित करके । तुष्टि तथा पुष्टि के वृध्यर्थ तिल घी का हवन करते समय सामने मातृका के स्थापन और पुष्पाक्षत से पूजा करें । अनन्तर घृतपूर्ण पायस (खीर) से परि प्लुत हवि की आहुति प्रदान करे । हवन के आदि में वृक्षों के जातकर्म आदि संस्कार के पूत्यर्थ गोदान भी करना चाहिए । उसमें सर्वप्रथम मंत्र विधान द्वारा वृक्षों को तीर्थ जल से स्नान कराकर उनके जातकर्म नामकरण, अन्नप्राशन, सुवर्ण की सुई द्वारा कर्णवेध (कनछेदन), सुवर्ण के छुरे से चूडा कर्म (मुण्डन) यथाक्रम सुसम्पन्न करते हुए मेखला मौञ्जी बन्धन और वस्त्र भी पहनाये। तदुपरांत यजमान स्नान करके शुक्ल वस्त्र पहन कर पवित्रता पूर्ण पुष्पाञ्जलि लेकर इन मंत्रों द्वारा क्षमा प्रार्थना करे।२९-३६। पर्वतों के शिखरों पर रहते उनकी चोटी से विभूषित, नन्दन आदि वनों में सुप्रतिष्ठित एवं देव, मनुष्य, सर्प एवं किन्नर आदि की कामनायें सफल करने वाले वृक्षवृन्द मेरे दुरितों के अपहरण करें । इन श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा सविधान छोड़ी गयी आहुति से अत्यन्त प्रदीप्त होकर अग्नि- ज्वाला आकाश में पहुँच कर जैसे सब को देख रही हो । वृक्ष ! पुत्र भावना से तुम्हारी कल्पना की गयी है अतः मेरा पुत्र कर्म द्वारा होने योग्य सभी कार्य करते रहना ।' इस प्रकार कहते हुए उसे बार-बार प्यार करके घृत पात्र में अपने मुख का दर्शन करे और आशिष प्रदान करें—मेरे अङ्गों से तुम्हारे अङ्ग और हृदय से हृदय उत्पन्न हुआ है क्यों कि अपनी ही आत्मा पुत्र नाम से प्रसिद्ध होती है अतः सैकडों वर्ष का जीवन प्राप्त करो । अनन्तर हर्षमग्न होते हुए ब्राह्मणो को दक्षिणा तथा आचार्य को शुभमूर्ति धेनुओं को अर्पित कर उस महोत्सव में हीन, अनाथ प्राणियों को अनिवार्य भोजन एवं अन्य लोगों को 'सुरासव' प्रदान कर सजातीय के

ज्ञातिबन्धुजनैः सार्द्धं स्वयं भुञ्जीत कामतः । प्रेष्याः कर्मकराः सर्वे पूजनीयाः स्वशक्तितः ।।४३
य एवं कुरुते पार्थ वृक्षाणां महदुत्सवम् । सर्वकामानवाप्नोति इहलोके परत्र च ।।४४
पुत्रैर्विना शुभगतिर्न भवेन्नराणां दुष्पुत्रकैरिति तथोभयलोकनाशः ।
एतद्विचार्य सुधिया परिपाल्य वृक्षान्पुत्राः पुराणविधिना परिकल्पनीयाः ।।४५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
वृक्षोद्यापनविधिवर्णनं नामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२८

अथैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

देवपूजाविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

ये मानवास्त्रिदशमूर्तिनिकेतनानि कुर्वन्ति साधुजनदृष्टिमनोहराणि ।
तेषां मृतेऽथ परमार्थमये शरीरे लोके परिभ्रमति कीर्तिमयं शरीरम् ।।१
यः कारयेद्द्वारसिताभ्रगौरमुत्तुङ्गसौधधवलायतनं सुराणाम् ।
चन्द्रावदातभवने दिवि लब्धसौख्यो राज्यश्रियं स भुवि बोधयुतामुपैति ।।२

बन्धुओं समेत यथेच्छ भोजन करे । काम करने वाले मजदूरों को यथाशक्ति सन्तुष्ट कर विदा करना चाहिए । पार्थ ! वृक्षों के उद्यापन महोत्सव सुसम्पन्न करने वाले लोक परलोक सर्वत्र अपनी कामनाएँ सफल करते हैं । (शास्त्र का प्रवचन है) विना पुत्र के (उत्तम) गति प्राप्त नहीं होती है और दुराचारी पुत्र से दोनों लोक नष्ट हो जाता है ऐसा समझकर विद्वानों को पुत्ररूप में वृक्षारोपण करके उनका पुत्रवत् पालन पोषण करना चाहिए ।३७-४५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
वृक्ष का उद्यापन विधि वर्णन नामक एक सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ।१२८

अध्याय १२९

देवपूजा-विधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—जो लोग देव मूर्तियों का आवास स्थान (देवमन्दिर) इस भाँति बनवाते हैं जो साधुजनों के मन को सदैव लुभाया करता है पार्थिव शरीर के त्याग होने के उपरांत लोक में उनकी कीर्तमयी पारमार्थिक शरीर सदैव विचरण करती रहती है ।१। श्वेत एवं जल शून्य बादलों की भाँति धवल दरवाजे और ऊँचे धवल प्रासाद (कोठे) वाले देव मन्दिरों की रचना कराने वाले प्राणी स्वर्ग के चन्द्र किरणों की भाँति मल में अतुल सौख्य का अनुभव करने के उपरान्त भूतल में ज्ञान समेत राजलक्ष्मी

ये कारयन्ति सुरसद्मसु देवतानामर्चाः सुवर्णरजतायसशैलताम्राः ।
सामन्तमौलिमणिरश्मिसमर्चितास्ते सिंहासनेऽङ्गकिरीटभृतोऽवभान्ति ।।३
ये मेरुमौलिसुरसङ्घकृताभिषेकाः पञ्चामृतैः सुरवरानभिषेचयन्ति ।
ते दिव्यकल्पमभिधार्य सुरेश्वरत्वं राज्याभिषेकमतुलं पुनराप्नुवन्ति ।।४
ये शैलराजमलयोद्भवचन्दनेन सत्कुंकुमेन च सुराननुलेपयन्ति ।
ते दिव्यगन्धपटवाससुगन्धिदेहा नन्दन्ति नन्दनवनेषु सहाप्सरोभिः ।।५
गन्धाढ्यजातिकमलोत्पलदिव्यपुष्पैर्देवान्नवैरनुदिनं ननु येऽर्चयन्ति ।
पुष्पोत्तमैर्नरपतित्वमवाप्य तेऽपि यास्यन्ति कुन्दधवलामचिरेण सिद्धिम् ।।६
आमोदिभिर्हिमतुरुष्कसुगन्धधूपैर्ये मानवाः सुरवरानपि धूपयन्ति ।
कर्पूरधारनिभगन्धदराभिरामे स्वर्गे विमानवति ते भवने रमन्ते ।।७
दोधूयते कनकदण्डविराजितैश्च सच्चामरैर्धवलकुण्डलसुन्दरीभिः ।
दिव्याम्बरस्रगनुलेपनभूषिताङ्गं कृत्वा सुरेशभवनाम्बरवस्त्रपूजाम् ।।८
देदीप्यते दिनकरोज्ज्वलपद्मरागरत्नप्रभाच्छुरितहेममये विमाने ।
दिव्याङ्गनापरिवृतो नयनाभिरामः प्रज्वाल्य दीपममलं भवने सुराणाम् ।।९
यो जागरं सुरवराभिमतो ददाति चैत्रोत्सवादिदिवसेष्वपि तूर्यनादैः ।
वीणासुवेणुमधुरस्वरभाषिणीभिः सङ्गीयते च स कृशोदरकिन्नरीभिः ।।१०

की प्राप्ति करते हैं । सुवर्ण, चाँदी, लोहा, पत्थर और ताँबे की देवमूर्ति निर्माण कराने वाले पुरुष अङ्गद और किरीट से भूषित होकर ऐसे सिंहासन पर प्रतिष्ठित होता है, जो सामन्तों के मस्तक पर सुशोभित मणि किरणों से सदैव अर्चित होता है । मेरु पर्वत के मौलि स्थान पर रहने वाले देवों का अभिषेक और पञ्चामृत द्वारा देवों का स्नान कराता है, वह एक दिव्य कल्प तक देवरूप में सुखानुभव करने के उपरांत अतुल राज्याभिषेक की प्राप्ति करते हैं । शैलराज मलयगिरि में उत्पन्न होने वाले चन्दन का लेप देवों को अर्पित करने वाले प्राणी दिव्य गन्ध, दिव्य वस्त्र एवं दिव्यगंध भूषित देह की प्राप्ति पूर्वक नन्दन वन में अप्सराओं के साथ सुखानुभव करते हैं । गंध भरी चमेली और नील कमल के दिव्य पुष्पों द्वारा प्रतिदिन देवों की अर्चा करने वाले लोग उत्तम पुष्पों के समर्पण द्वारा नरपति की प्राप्ति करते हुए भी कुन्द की भाँति धवल सिद्धि (कीर्ति) शीघ्र ही प्राप्त करते हैं । हिम (ठंडी), लोहबान और सुगन्ध पूर्ण धूपों से देवों की सेवा करने वाले पुरुष कपूर धारा की भाँति स्वच्छ और उत्तम गन्धों से पूर्ण स्वर्गीय भवनों में सदैव रमण करते हैं । प्रबल कुण्डलों से भूषित सुन्दरियों द्वारा सुवर्ण दण्डमय एवं उत्तम चामरों से देव सेवा कराने वाले प्राणी जो दिव्य वस्त्र, माला, लेपन द्वारा वस्त्र मण्डित देव मन्दिरों की अर्चा करते रहते हैं, वे सूर्य की भाँति समुज्ज्वल और पद्मरागमणि की चञ्चल रत्नप्रभा से भूषित उस सुवर्णमय विमान पर दिव्याङ्गनाओं से घिरे सुशोभित होते हैं तथा देवालयों में अमल दीपक दान करने वाले सभी के नयनाभिराम होते हैं ।२-९। चैत्रादि मासों में उत्सवों के दिन तुरही वाद्य समेत देवों के समक्ष जागरण करने वाले प्राणी वीणा और सुवेणु की भाँति मधुरभाषिणी उन कृशोदरी किन्नरियों के साथ स्वर्ग में

कुर्वन्ति ये सद्दुपलेपनधातुरागासन्मार्जनं सुरवरायतनेऽनुरक्ताः।
मुक्ताकलापमपि काञ्चन भक्ति चित्रैर्वैडूर्यकुट्टिमतले दिवि ते वसन्ति ॥११
दद्याच्च यः परमभक्तियुतः सुराणां घण्टावितानवरचामरमातपत्रम्।
केयूरहारमणिकुण्डलभूषितोसौ रत्नाधिपो, वसति भूतलचक्रवर्ती ॥१२
अभ्यर्चयेत्प्रतिवचः कुसुमैर्विचित्रैर्देवाधिदेवपरिसंस्तुतपादपद्मान्।
भक्त्या प्रहृष्टमनसः प्रणमन्ति देवान्स्ते भूर्भुवः स्वर्महिमाप्तफला भवन्ति ॥१३

इति श्रीभविष्ये महापुराणष उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
नामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्याय।१२९

अथ त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

दीपदानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

भगवन्केन तपसा व्रतेन नियमेन वा। दानेन केन वा लोके प्रोज्वलत्वं प्रजायते ॥१
अतितेजो[1] महद्दीप्तं दीप्तांशुकिरणोज्ज्वलम्। शरीरं जायते येन तन्मे वक्तुमथार्हसि ॥२

विहार सुख प्राप्त करते हैं। अनेक भाँति के रंगों से देव मन्दिरों को सुशोभित कराते हुए सदै व झाडू आदि द्वारा उसे सप्रेम अमल स्वच्छ रखने वाले ऐसे स्वर्ग का निवास प्राप्त करते हैं, जो मोतियों की अमल सुवर्ण की चित्रविचित्र रेखाओं और वैदूर्य मणियों से जिसका भूमितल अलंकृत रहता है परमभक्ति पूर्वक घण्टा, वितान (चाँदनी), उत्तम चामर और छत्र देवों के निमित्त अर्पित करने वाले प्राणी केयूर, हार तथा मणि कुण्डल से भूषित होते हुए भूतल में रत्नाधिप चक्रवर्ती पद प्राप्त करते हैं अनेक भाँति के पुष्पों द्वारा समंत्रक देवों की सेवा उनके चरण कमल की वन्दना और भक्ति प्रेम में आनन्द विभोर होकर उनका प्रणाम करने वाले मनुष्य भूर्भुवः स्वः का महत्त्व फल प्राप्त करते हैं।१०-१३

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर संवाद में देवपूजा एवं फल व्रत वर्णन
नामक एक सौ उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त।१२९।

अध्याय १३०

दीपदानविधि का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! किस तप, व्रत, नियम अथवा दान द्वारा इस लोक में प्रकृष्ट उज्ज्वलता प्राप्त होती है। अत्यन्त तेजोमय, दीप्त, एवं प्रदीप्त किरणों से समुज्ज्वल शरीर की प्राप्ति जिसे उपाय से हो सके बताने की कृपा कीजिये।१-२

---

१. अतितीव्रं महद्दिव्यम्।

श्रीकृष्ण उवाच

मथुरायां पुरा पार्थ पिङ्गलो नाम तापसः। आगतः स च मे पत्न्या जाम्बवत्या प्रपूजितः ॥३
पृष्टश्च प्रश्नमेवैतं स चावोचद्यथातथम्। तयापि मे समाख्यातं तत्सर्वं ते वदाम्यहम् ॥४
यदा यदा नृपश्रेष्ठ पुण्यकालः प्रपद्यते। संक्रांतौ सूर्यग्रहणे चन्द्रपर्वणि वैधृतौ ॥५
उत्तरे त्वयने प्राप्ते दक्षिणे विषुवे तथा। एकादश्यां शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां दिनक्षये ॥६
सप्तम्यामथ वाष्टम्यां स्नात्वा व्रतपरो नरः। नारी वा भूमिदेवेभ्यः प्रयच्छेत्प्रयताङ्गणे ॥
घृतकुम्भेन दीपने प्रज्वलन्तं प्रदीपकम् ॥७

युधिष्ठिर उवाच

भूमिदेवा इति प्रोक्तं यत्त्वया मधुसूदन। किमेतत्कौतुकं मेऽस्ति संशयं छेत्तुमर्हसि ॥८

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा कृतयुगस्यादौ त्रिशंकुर्नाम पार्थिवः। स स्वर्गं गन्तुकामोऽभूच्छरीरेण नरोत्तम ॥
ततश्चाण्डालतां नीतो वशिष्ठेन महात्मना ॥९
त्रिशंकुः सर्वमाचख्यौ विश्वामित्राय धीमते। सोऽपि मन्युवशाद्यज्ञं चकाराहूय देवताः ॥१०
न ता हविः प्रत्यगृह्णंस्ततः क्रुद्धः कुशात्मजः। विश्वामित्रस्तु कोपेन चकारान्यान्सुरोत्तमान् ॥११
भृङ्गाटकान्नालिकेरान्पचनानानजौडकान्। मेधारथदवार्ताकतारिकूष्माण्डकोद्रवान् ॥१२
उष्ट्रान्मनुजदेवांश्च क्रोधान्मुनिरवासृजत्। चकारान्यान्सप्तऋषीन्प्रतिमासं सुरोत्तमान् ॥१३
ततः शक्रः समागम्य विश्वामित्रं प्रसाद्य वै। सृष्टिं निवारयामास ये सृष्टास्ते तथापि च ॥१४

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ पहले समय मथुरा में पिङ्गल नामक तपस्वी मेरे यहाँ आया और मेरी प्रेयसी जाम्बवती के द्वारा पूजित एवं उनके पूँछने पर जो कुछ उत्तर दिया था। मैं क्रमशः उसी का वर्णन कर रहा हूँ क्योंकि इसके पश्चात् जाम्बवती ने मुझसे सब बताया था। नृपश्रेष्ठ! प्रत्येक पुण्यकाल के अवसर पर—संक्रान्ति, सूर्य चन्द्र ग्रहण, अयन, विषुव, शुक्लपक्ष की एकादशी, कृष्ण चतुर्दशी, सप्तमी और अष्टमी के दिन स्नान करके व्रतपरायण नर नारी गृहाङ्गण में घृत कुम्भ का प्रज्वलित दीपक भूमि देवों के निमित्त सादर समर्पित करें। ३-७

युधिष्ठिर बोले—मधुसूदन आपने भूमिदेव का नाम कहकर कौन सा कौतुक प्रकट किया है अतः इस मेरे सन्देह को दूर करने की कृपा कीजिये। ८

श्रीकृष्ण बोले—नरोत्तम! पहले समय कृतयुग के आदि काल में एक त्रिशंकु नामक राजा था, जो इसी देह से स्वर्ग जाने का अभिलाषी था। किन्तु हठात् उसके इस अनुरोध पर महात्मा वसिष्ठ ने उसे चाण्डाल होने का शाप दे दिया। चाण्डाल होने पर त्रिशंकु ने महर्षि विश्वामित्र से अपनी इच्छा प्रकट की। उसे सुनकर विश्वामित्र ने क्रुद्ध होकर देवताओं के आवाहन पूर्वक यज्ञ करना आरम्भ किया किन्तु देवों के अपने हविभाग अस्वीकार करने पर उन्होंने सक्रोध अन्य देवों की सृष्टि की। क्रोध के आवेश में विश्वामित्र ने सिंगाडा, नारियल, पचनान, अनजौडका मेधारथ, वार्ताक, तारि, कूष्माण्ड, कोदौ उँट,

मर्त्यलोके च ते सर्वे देवा देवकुलेष्वथ । मन्त्रैर्निबद्धाः पिण्डीषु स्थिता मूर्तिभृतो यथा ॥१५
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो ये चान्ये देवतागणाः । लोकानामुपकाराय मर्त्यलोकमुपागताः ॥१६
प्रतिमासु स्थिताः शश्वद्भोगान्भुञ्जन्ति शाश्वतान् । वरप्रदाश्च भक्तानामिति ते गुह्यमीरितम् ॥१७
तेभ्यः पुरस्ताद्दातव्यो दीप्यमानः प्रदीपकः । सूर्याय रक्तवस्त्रेण पूर्णवर्ति घृतैर्युताम् ॥
चतुःप्रस्थैः प्रज्वलन्तीं मन्त्रेणानेन दापयेत् ॥१८
"तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम्" ॥१९
पीतवस्त्रेण कृष्णाय श्वेवस्त्रेण शूलिने । कौसुम्भवस्त्रेणाढ्येन गौरीमुद्दिश्य दापयेत् ॥२०
लाक्षारक्तेन दुर्गायै पूर्णवर्ति प्रबोधयेत् । नीलवस्त्रेण कामाय गणनाथाय खादिरैः ॥२१
नागेभ्यः कृष्णवस्त्रेण ग्रहेभ्य इषिकायुधाम् । देवाङ्गनापितृभ्यस्तु पितृवर्ति प्रबोधयेत् ॥२२
विशेषं शृणु सूर्याय पूर्णवर्तिर्निगद्यते । शिवायेश्वरवर्तीति भोगवर्तिर्जनार्दने ॥२३
पद्मवर्तिर्विरिंचाय गौर्य्यै सौभाग्यवर्तिका । नागेभ्यो नागवर्तीति ग्रहवर्तिर्युधिष्ठिर ॥२४
नेत्रपट्टेन मधुना घृतेन मधुकुण्डके । अर्चिते चर्चिते चैव ललितायै प्रबोधयेत् ॥२५
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र तन्निशामय वैदिकम् ॥२६
"अग्ने त्वां काम्यया गिरा तुभ्यं ता गिरसस्तु विश्वाः । सुक्षितयः पृथक्पृथक् ॥२७
अग्ने कामाय जेगिरे अग्निप्रियेषु धामसु ।
कामो भूतस्य भव्यस्य सम्राडेको विराजति ताभ्यां नाम स्वाहा" ॥२८

मनुष्य एवं देवों की रचना की । अन्य सप्तर्षि तथा प्रतिमास देवों की सृष्टि होते देख कर इन्द्र ने वहाँ आकर उन्हें प्रसन्न करते हुए सृष्टि करना बन्द कराया ।९-१४। किन्तु जिन देवों की सृष्टि हो चुकी थी वे मर्त्य लोक में देवकुलों में मंत्रों द्वारा पिंडीभूत मूर्तियों की भाँति निबद्ध है । उसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र एवं अन्य देव गण लोकोपकारार्थ मर्त्य लोक में जाकर प्रतिमाओं में रहते हुए निरन्तर भोगों के उपभोग करते हैं और भक्तजनों को वर प्रदान करते रहते हैं । ऐसा गुप्त आख्यान उन्होंने बताया था । उन्हीं देवों के समक्ष प्रज्वलित दीपक, सूर्य को रक्त वस्त्र समेत चार सेर घी में जलती हुई पूर्णबत्ती समंत्रक प्रदान करना चाहिए—विष्णु के उस परम रूप को पण्डित वृन्द सदैव देखा करते हैं । 'आकाश की भाँति विस्तृत नेत्र' इन मंत्रों के उच्चारण पूर्वक पीतवस्त्र से कृष्ण की श्वेत वस्त्र से शिव की, कुसुमरंग वाले वस्त्र से गौरी की, लाक्षा (लाख की भाँति) रक्त वस्त्र से दुर्गा की पूर्ण बत्ती बनानी चाहिए । उसी भाँति नील वस्त्र से कामदेव, कत्थई रंग वाले वस्त्र से गणनाथ, काले वस्त्र से नागगण, इषिकायुध वाली ग्रहों के लिए और देवाङ्गना तथा पितरों के लिए पितृवत्ती प्रज्वलित करनी चाहिए। कुछ विशेषता भी बता रहा हूँ, सुनो ! सूर्य के लिए अर्पित की जाने वाली को पूर्ण वत्ती, शिव के लिए ईश्वर वती, जनार्दन देव के लिए भोग बत्ती, ब्रह्मा को पद्मवती, गौरी को सौभाग्यवती, नामों के लिए नागवती और ग्रहों के लिए ग्रहवर्ति कही जाती है ।१५-२४। युधिष्ठिर ! वस्त्र की पट्टी शहद घृत में भली भाँति भिगोकर ललिता के प्रबोधनार्थ समर्पित करने के लिए मैं उन मंत्रों को बता रहा हूँ, सुनो ! 'अग्ने त्वां काम्या गिरा तुभ्यं ता गिरसस्तु विश्वाः' सुक्षितयः पृथक्-पृथक् ! अग्ने कामायजेगिरे अग्निप्रियेषु धामसु। कामों भूतस्य भव्यस्य सम्राडेको

एवमेतेन विधिना यः प्रयच्छति दीपकम् । विस्तीर्णे विपुले पात्रे घृतकुम्भे नियोजितम् ।।२९
यान्ति ते ब्रह्मसदनं विमानेनार्कवर्चसा । तिष्ठन्ति द्योतमानास्ते यावदाभूसंप्लवम् ।।३०
सदीपे तु यथा देशे चक्षूंषि बलवन्ति हि । तथा दीपस्य दातारो भवन्ति सफलेक्षणाः ।।३१
यथैवोर्ध्वं गतिर्नित्यं राजन्दीपशिखासु वै । दीपदातुस्तथैवोर्ध्वं गतिर्भवति शोभना ।।३२
घृतेन दीपो दातव्यो राजन्स्तैलेन वा पुनः । वसामज्जादिभिर्देयो न तु दीपः कथञ्चन ।।३३
दीपस्तैलेन कर्तव्यो न तु कर्म दिजानता । निर्वापणं च दीपस्य हिंसनं च विगर्हितम् ।।३४
यः कुर्यात्कर्मणा तेन स्यादसौ पुष्पितेक्षणः । दीपहर्ता भवत्यन्धः काणो निर्वापको भवेत् ।।३५
पद्मसूत्रोद्भवां वर्ति गन्धतैलेन दीपिताम् । विरोगः सुभगश्चैव दत्त्वा भवति मानवः ।।३६
प्रज्वाल्य देवदेवस्य कर्पूरेण तु दीपकम् । अश्वमेधमवाप्नोति कुलं चैवसमुद्धरेत् ।।३७

एतन्मयोक्तं तव दीपदानफलं समग्रं कुरुवंशचन्द्र ।
श्रुत्वा यथावत्सततं हि देया दीपास्त्वया विप्रसुरालयेषु ।।३८

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । दीपदानाल्ललितया यदवाप्तं पुराऽनघ ।।३९
आसीच्चित्ररथो नाम विदर्भेषु महीपतिः । तस्य पुत्रशतं राज्ञो जज्ञे पञ्चदशोत्तरम् ।।४०
एकैव कन्या तस्यासील्ललितानाम नामतः । सर्वलक्षणसम्पन्ना रूपेणाप्रतिमा भुवि ।।४१
तां ददौ काशिराजाय चार्वङ्गीं चारुधर्मणे । शतान्यन्यानि भार्याणां त्रीण्यासंश्चारुधर्मणः ।।४२

विराजति ताभ्यां नमः स्वाहा । राजेन्द्र ! इस विधान द्वारा विस्तृत एवं विपुल घृतपूर्ण पात्र में रखकर दीपक प्रदान करने वाले सूर्य की भाँति तेजोमयविमान पर सुशोभित होते हुए ब्रह्मसदन प्राप्त करते हैं ! और महाप्रलय पर्यंत आकाश युक्त रहते हुए सुखानुभूति करते हैं । सबल नेत्रों की भाँति उचित प्रदेश में दीप रखने से दीपदाता सफल नेत्र होता है । राजन् ! जिस प्रकार दीपशिखा की ऊर्ध्व गति सदैव बनी रहती है उसी भाँति दीप दान करने वाले प्राणी की सदैव शोभन ऊर्ध्व गति ही होती है । राजन् ! घृत दीप के अतिरिक्त तैल का भी दीपदान कर सकते हैं किन्तु वसा मज्जा पूर्ण दीप दान कभी न करना चाहिए । ज्ञान पूर्वक कर्मशील प्राणी को दीप का निर्वापण (बुझाना) और हिंसा अतिनिन्दित होने के नाते कभी न करना चाहिए । क्योंकि ऐसे प्राणियों की आँखे नष्ट हो जाती हैं—दीपक का अपहरण करने वाला अन्ध और बुझाने वाला पुरुष एकाक्ष (काना) होता है । कमलनाल दण्ड के सूत्र की वत्ती सुगन्धित तैल से प्रज्वलित कर अर्पित करने पर मनुष्य आरोग्य और सौभाग्य पूर्ण होता है । देवाधिदेव को कपूर का दीप अर्पित करने पर अश्वमेध के फल प्राप्ति पूर्वक उसके कुल का उद्धार होता है ।२५-३७। कुरुवंशचन्द्र ! मैंने तुम्हें फल समेत दीप दान का महत्त्व बता दिया, इसे सुनकर ब्राह्मणों के गृह और देवालयों में तुम्हें निरन्तर दीप दान अर्पित करना चाहिए । अनघ ! इस विषय का एक पुरातन इतिहास सुना रहा हूँ, जिसमें ललिता देवी ने दीप दान द्वारा जो फल प्राप्त किया है उसका सविस्तार वर्णन किया गया है । विदर्भ देश में चित्ररथ नामक एक राजा रहता था, जिसके एक सौ पन्द्रह पुत्र और ललिता नामक एक कन्या थी । उस समस्त लक्षणों से भूषित और अनुपम सौन्दर्य पूर्ण सुन्दरी कन्या को परम धार्मिक काशिराज को उन्होंने सौंप दी ।३८-४१। काशिराज के एक सौ तीन परम सुन्दरी स्त्रियाँ थी जिनमें

तासां मध्येऽग्रमहिषी ललिता साप्यथाभवत् ॥४३
विष्णोरायतने सा तु सहस्रं परिदीपकान् । प्रज्वालयन्त्यनुदिनं दिवारात्रमनिर्वृतम् ॥४४
तामिस्रमाश्वयुक्तपक्षं शुक्लपक्षं च कार्तिकम् । तस्याः प्रज्वलितो दीप उच्चस्थानकृतः शुभः ॥४५
तस्मिन्काले तथा नित्यं ब्राह्मणावसथे च सा । व्यग्रा भवति सायाह्ने दीपप्रेषणतत्परा ॥४६
चतुष्पथेषु रथ्यासु देवतायतनेषु च । चैत्यवृक्षेषु गोष्ठेषु पर्वतानां च मूर्द्धसु ॥४७
पुलिनेषु नदीनां च कूपमूलेषु पाण्डवः । तां सपत्न्योऽथ सङ्गम्य पप्रच्छुरिदमादृताः ॥४८
ललिते वद भद्रं ते ललितं वचनं तथा । न तथा बलिपुष्पेषु न तथा द्विजपूजने ॥४९
भवत्याः सुमहान्यत्नो दीपप्रज्वालने यथा । तदेतत्कथयास्माकं[1] ललिते कौतुकं परम् ॥५०
मन्यामहे त्वयावश्यं दीपदानफलं श्रुतम्

ललितोवाच

नाहं मत्सरिणी भद्रा न रागादिदूषिता ॥५१
एकपत्याश्रिताः साध्व्यो भवत्यो मम मानदाः । अपृथग्धर्मचरणाः शृण्वन्तु गदितं मम ॥५२
मयैतद्दीपदानस्य यथेष्टं भुज्यते फलम् । हिरण्यदयिता भार्या शैलराजसुता वरा ॥५३
उमादेवीति मद्रेषु देविका सा सरिद्वरा । नराणामनुकम्पार्थं ब्रह्मणा ह्यवतारिता ॥
श्रुता किं भवतीभिः सा देविका पापनाशिनी ॥५४

ललिता उनकी अग्रमहिषी (पटरानी) थी। विष्णु के मन्दिर में वह सहस्रों दीपक प्रतिदिन जलाती थी, जो रात दिन जलते थे। कार्तिक मास के दोनों (कृष्ण शुक्ल) पक्षों में उसका शुभ दीपक ऊँचे स्थानों (आकाश) में जलता था। उन दिनों सायंकाल वह ब्राह्मणों के गृह और मन्दिरों आदि स्थानों में दीपक भेजने के लिए अत्यन्त व्यग्र रहा करती थी। पाण्डव ! चौराहे, गली, देवालय चेत्यवृक्षों (पीपल) आदि, गोशाला, पर्वत शिखर, नदी तट, कूएँ की जगत (चबूतरा) मे उसके दीपक प्रतिदिन जलते थे। एक बार उसकी सपत्नियों ने उसके पास पहुँच कर सादर पूँछा ललिते ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारा बदन परम ललिता है। दीपकों के जलाने में जिस प्रकार आपका महान् प्रयत्न रहता है, बलि, पुष्प और ब्राह्मणों के पूजन में वैसा कभी नहीं देखा जाता। ललिते ! अतः यह कौतुक हमें बताने की कृपा करो। क्योंकि हम लोग यह अवश्य मानते हैं कि दीपदान का महत्त्व आप ने अवश्य सुना होगा।४२-५०

ललिता बोली—भद्रे ! मैं मत्सर करने वाली एवं रगादि दोष दूषित स्त्रियों में नहीं हूँ (किन्तु भद्र स्वभाव की हूँ) आप सभी पतिव्रताएँ एक पति के आश्रित रहने के नाते मेरी मानदा हैं और आपका धर्माचरण भी पृथक् न होकर सम्मिलित ही है अतः मेरा कहना सावधान होकर सुनो ! क्योंकि मुझे इस दीपदान का यथेष्ट फल प्राप्त हो रहा है। भद्र देश में पर्वतराज हिमालय की श्रेष्ठ कन्या, जो सुवर्ण की भाँति गौराङ्गी एवं दयिता भार्या हैं उमा देवी के नाम से विख्यात हैं और देविका नामक एक श्रेष्ठ नदी भी वहाँ प्रवाहित होती है जिसे ब्रह्मा ने मनुष्यों के अनुकम्पार्थ अवतारित किया था और उस पाप विनाशिनी देविका का नाम आप लोगों ने नहीं सुना है क्या ? उस नदी में एक बार भी स्नान करने पर

---

१. कृपया।

तस्यां स्नात्वा सकृन्नद्यां गाणपत्यमवाप्नुयात् । तस्यामथ नृसिंहाख्यं तीर्थं कल्मषनाशनम् ॥
हरिणा नृसिंहवपुषा यत्र स्नानं कृतं पुरा ॥५५
सौवीरराजस्य पुरा मैत्रेयोऽभूत्पुरोहितः । तेन चायतनं विष्णोः कारितं देविकातटे ॥५६
अहन्यहनि शुश्रूषां पुष्पधूपानुलेपनैः । दीपदानादिभिश्चैव चक्रे तत्र स वै द्विजः ॥५७
कार्त्तिक्यां दीपकस्तत्र प्रदत्तस्तेन चैकदा । आसीन्निर्वाणभूयिष्ठो देवार्चासु रतो निशि ॥५८
देवतायतनेऽवात्सं तत्राहमपि मूषिका । प्रदीपवर्तिहरणे कृतबुद्धिर्वराननाः ॥५९
गृहीताथ मया वर्तिर्वृकदंशो ररास च । नष्टा चाहं ततस्तस्य मार्जारस्य भयातुरा ॥६०
वक्त्रप्रान्तेन पश्यन्त्या स दीपः प्रेरितो मया । जज्वाल पूर्ववद्दीप्त्या तस्मिन्नायतने पुनः ॥६१
मृताहं च पुनर्जाता वैदर्भे राजकन्यका । जातिस्मरा महीपस्य महिषी चारुधर्मणः ॥६२
एष प्रभावो दीपस्य कार्त्तिके मासि शोभनः । दत्तस्यायतने विष्णोर्यस्येयं व्युष्टिरुत्तमा ॥६३
असङ्कल्पितमध्यस्य प्रेरणं यन्मया कृतम् । केशवे बालदीपस्य तस्येदं भुज्यते फलम् ॥६४
एतस्मात्कारणाद्दीपानहमेतानहर्निशम् । प्रयच्छामि हरेर्गेहे जातमस्य महाफलम् ॥६५
एवमुक्त्वा सपत्नी सा दीपदानपरायणा । बभूव देवदेवस्य केशवस्य गृहे सदा ॥६६
ततः कालेन महता सह राज्ञा महात्मना । विष्णुलोकमनुप्राप्तां पञ्चत्वं प्राप्य मानदा ॥६७

तं लोकमासाद्य नृपेण सार्द्धं सा राजपत्नी कमलाभनेत्रा ।
रेमे महीपाल मुदा समेता दीपप्रदानात्सकलार्तिहीना ॥६८

गाणपत्य की प्राप्ति होती है । उसी नदी में पापनाशक एक नृसिंह तीर्थ है, जहाँ भगवान् नृसिंह देव ने पहले स्नान किया था ।५१-५५। वहाँ सौवीरराज के मैत्रेय नामक पुरोहित ने भगवान् विष्णु का एक विशाल मन्दिर बनवाया है । वह ब्राह्मण उस मन्दिर में पुष्प, धूप, विलेपन एवं दीपदान द्वारा विष्णु की शुश्रुषा करते हुए एक बार कार्तिक मास में भगवान् को दीप अर्पित किया किन्तु देव पूजा में रखा हुआ वह दीपक रात्रि में बुझ गया । मैं मूषिका रूप में उसी मन्दिर में निवास करती थी । उस समय मैंने (अन्यत्र से) एक जलते हुए दीपक की बत्ती लाने का निश्चय किया और तदनुसार मैंने एक बत्ती लेकर चली कि कुत्ते भूंकने लगे । बिल्ली के भय से मैं मुख में रखी हुई बत्ती के सहारे देखती हुई पुनः वहाँ आकर मन्दिर के उस बुझे हुए दीपक को उसी द्वारा जला दिया और वह पहले की भाँति जलने लगा । पश्चात् निधन होने पर मैं विदर्भ राज की कन्या हुई और पूर्वजाति का स्मरण कराने वाली उस पृथ्वी के अधीश्वर काशिराज की जो परम धार्मिक है, प्रधान रानी हुई । विष्णु मन्दिर में कार्तिक मास में शोभन दीपदान का यह प्रभाव है जिसका मुझे समृद्ध फल प्राप्त हो रहा है । भगवान् के लिए एक छोटे से दीपदान का जो बुझा पड़ा था मैंने प्रज्वलित मात्र कर दिया था यह अनुपम फल भोग रहीं हूँ । इसी कारण मैं इन दीपों को भगवान् के मन्दिर में रात दिन जलायें रहती हूँ । इस प्रकार अपनी सपत्नियों से कह कर वह पुनः विष्णु मन्दिर में दीप दान में संलग्न हो गयी । पश्चात् कालान्तर में उस महात्मा राजा के साथ विष्णु लोक की प्राप्ति की । महीपाल ! कमल नेत्र वाली (ललिता) राज महिषी उस लोक में पहुँचकर दीप दान द्वारा प्राप्त परिणाम स्वरूप अपने राजा के साथ वहाँ चिरकाल तक रमण किया और समस्त दुःखों से मुक्त रही ।५६-६८। अतः गण्य-मान्य पण्डितवृन्द

दीपप्रदानमपि पुण्यतरं वदन्ति विप्राग्निगोसुरकुलैकगृहाङ्गणेषु ।
तद्दानदीप्तवपुषाथ पथोंधकारे गच्छन्नरः पतति न स्खलते कदाचित् ।।६९
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
दीपदानविधिवर्णनं नाम त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३०

अथैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

वृषोत्सर्गविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

कार्त्तिक्यामथ वा माघ्यामयमेव युधिष्ठिर ।।१
चैत्र्यामथ तृतीयायां वैशाख्यां द्वादशेऽह्नि वा । खण्डनीलं शङ्खपादं सपौंड्र धौतपुष्पकम् ।।२
गोभिश्चतुर्भिः सहितं सृजेच्चैव विधिं शृणु । यदुवाच पुरा गर्गो गोकुलेऽनघ पाण्डव ।।३
तत्तेहं च प्रवक्ष्यामि विधिं गर्गप्रचोदितम् । मातरं स्थापयित्वाग्रे पूजयेत्कुसुमाक्षतैः ।।४
मातृश्राद्धं ततः कुर्यात्सदाभ्युदयकारकम् । अकालमूलं कलशमश्वत्थदलशोभितम् ।।५
तत्रविद्वाञ्जपित्वा तु स्थापयेद्रुद्रदेवताम् । सुसमिद्धं ततः कृत्वा वह्निमन्त्रपुरःसरम् ।।६
अथैनं जुहुयात्षड्भिः पृथगाहुतिसंज्ञितैः । पौष्यामन्त्रैस्ततः पश्चाद्धुत्वा वह्निं यथाविधि ।।७
एकवर्णं द्विवर्णं वा रोहितं श्वेतमेव वा । जीवद्वत्सपयस्विन्याः पुत्रं सर्वांगसुन्दरम् ।।८

ब्राह्मण, गौ, और देवालयों में दीपदान करना अत्यन्त पुण्यजनक बतलाते हैं क्योंकि उस दान द्वारा तेजोमय शरीर की प्राप्ति होती है जिसके अंधकार मय मार्ग में चलते हुए मनुष्य कभी कहीं गिरता नहीं है ।६९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
दीप दान विधान वर्णन नामक एक सौ तीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३०।

अध्याय १३१

वृषोत्सर्गविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर ! कार्तिक, माघ, और चैत्र की तृतीया तथा वैशाख द्वादशी के दिन चार गौओं समेत एक ऐसे वृष का त्याग विधान बता रहा हूँ, जो खंडनील, शंखपाद, पौंड्र और धवल वर्ण हो । सुनो ! अनघ पाण्डव ! पहले समय गर्ग जी ने गोकुल में आकर जो विधान बताया था, वही विधान मैं तुम्हें बता रहा हूँ । मातृस्थापन करके पुष्पाक्षत से उनके पूजन करने के अनन्तर अभ्युदयकारक मातृ श्राद्ध सुसम्पन्न करना चाहिए—पीपल पल्लव भूषित एवं सुशोभित कलश स्थापन पूर्वक रुद्र जप करने के उपरांत प्रज्वलित अग्नि में मन्त्रोच्चारण पूर्वक छ आहुति प्रदान करे । १-६। पश्चात् समंत्र एवं सविधान हवन करने के अनन्तर किसी ऐसी गौ की जिसके बच्चे अकाल पीड़ित न होते हैं, एकरंग, दोरंग अथवा लोहित (रक्त) वर्ण का सर्वाङ्ग सुन्दर वृष चार बछियों समेत अलंकृत होने पर त्याग के समय उनके कानों में कहे

चतस्रो वत्सतर्यश्च ताभिः सार्धमलंकृतम् । तासां कर्णे जपेद्विप्रः पतिं वो बलिनं शुभम् ॥९
समितास्तेन सहिताः क्रीडध्वं हृष्टमानसाः । ततो वामे त्रिशूलं च दक्षिणे चक्रमालिखेत् ।१०
अङ्कितं शङ्खचक्राभ्यां वर्षितं कुसुमादिना । पुष्पमालाकृतग्रीवं सितवस्त्रैश्च च्छादितम् ॥११
विमुञ्चेद्वत्सकाभिश्च नीलाभिर्बलिनं वृषम् । देवालये गोकुले वा नदीनां सङ्गमेऽथ वा ॥१२
इत्युक्तं गर्गमुनिना विधानं वृषमोक्षणे । स्वेच्छाविहारिणं दृप्तं गर्जन्तं सुन्दरं गवाम् ॥१३
ककुद्मिनं पतिं या धन्ये विमुञ्चन्ति गोवृषम् । फलं च[1] तस्य वक्ष्यामि ब्रुवतो मे निबोध तत् ॥१४
वृषोत्सर्गे पुनात्येव दशातीतान्दशापरान् । यत्किंचित्स्पृशते तोयं समुत्तीर्य जलान्महीम् ॥१५
वृषोत्सृष्टं पितृणां तु तदक्षयमुदाहृतम् । यैश्च यैश्च स्पृशेत्तोयं लाङ्गूलादिभिरन्ततः ॥१६
सर्वं तदक्षयं तस्य पितृणां नात्र संशयः । शृङ्गैः खुरैर्वा यद्भूमिमुल्लिखत्यनिशं वृषः ॥१७
मधुकुल्याः पितुस्तस्य अक्षयास्ता भवन्ति वै । सहस्रतलमात्रेण तडागो न यथाश्रुति ॥१८
पितृणां या भवेत्तृप्तिस्तां वृषस्त्वतिरिच्यते । यो ददाति तिलैर्मिश्रान्स्तिलान्वा श्राद्धकर्मणि ॥
मधु वा नीलखण्डं वा अक्षयं सर्वमेव तत् ॥१९
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् । यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥२०
न करोति वृषोत्सर्गं सुतीर्थे वा जलाञ्जलिम् । न प्रयच्छति यः पुत्रः पितुरुच्चार एव सः ॥२१

कि—तुम लोगों को एक बलिष्ठ एवं शुभ मूर्ति पति प्रदान किया गया है अतः प्रसन्नता पूर्ण उसके साथ क्रीडा करो । अनन्तर वाम भाग में त्रिशूल और दक्षिण में चक्र से भूषित वह वृष, जो शंख चक्र से अलंकृत और पुष्प वर्षा से आच्छन्न, पुष्प माला पहन कर श्वेत वस्त्र से आच्छादित किया गया हो, उन चार नवीन गौओं समेत देवालय, गोष्ठ या नदी संगम में छोड़ दे । वृष त्याग में गर्गमुनि ने यही विधान बताया है । स्वेच्छाविहार करने वाला, बली, गौओं के बीच गर्जन करने वाले बृहत् ककुद् (डिल्ल) वाले ऐसे सुन्दर वृष का त्याग करने वाले धन्य हैं । मैं ऐसे वृषोत्सर्ग का फल भी बता रहा हूँ, सुनो ! वृषोत्सर्ग यज्ञ सुसम्पन्न करने पर दश पीढ़ी पूर्व की और दश अगली पीढ़ी का उद्धार होता है । (सरोवर के) जल को पार कर वह वृष जिस किसी वस्तु (जल, भूमि और अन्न) का स्पर्श करता है वह पितरों के लिए अक्षय होता है । अपनी लांगूल (पूंछ) आदि अंगों द्वारा वह वृष जिस जल का स्पर्श करता है वह पितरों के लिए अक्षय हो जाता है । इसमें संदेह नहीं ।७-१६। अपनी सीगों और खुरों से जिस भूमि को वह निरन्तर खोदता है वह पितरों के लिए अक्षय मधु (शहद) की नाली प्रवाहित होती है । श्रुतियों के कथनानुसार सैकडों गढ्ढे जिसकी समानता न कर सें वही सरोवर कहलाता है । इसीलिए पितरों की भली भाँति तृप्ति करने वाले को ही प्रशस्त वृष कहा गया है । श्राद्ध कर्म में तिल अथवा तिल मिश्रित मधु और नील खण्ड प्रदान करने पर वह सब अक्षय हो जाता है । एतदर्थ अनेक पुत्रों का उत्पन्न होना परमावश्यक है क्योंकि उनमें कोई अवश्य गया श्राद्ध, अश्वमेध यज्ञ अथवा नील वृषोत्सर्ग करेगा अपने पितरों के उद्देश्य से वृषोत्सर्ग और प्रधान तीर्थों में जलाञ्जलि प्रदान न करने वाला पुत्र पितरों का मलरूप है । अपनी सीगों और

---

१. वृषस्व । २. नृणाम् ।

यद् भूमिमालिखति शृङ्गखुरैः प्रहृष्टो यद्वा करोति प्रतिमल्लवृषान्निरीक्ष्य।
खण्डं समस्तमपि तस्य विवाहकर्तुः संतोषमावहति शक्रसभागतस्य ।।२२

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
वृषोत्सर्गविधिवर्णनं नामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।१३१

अथ द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

फाल्गुनपूर्णिमाव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

किमर्थं फाल्गुनस्यान्ते पौर्णमास्यां जनार्दन । उत्सवो जायते लोके ग्रामेग्रामे पुरे पुरे ।।१
किमर्थं शिशवस्तस्यां गेहेगेहेऽतिवादिनः । होलिका दीप्यते कस्मात्फाल्गुनान्ते किमुच्यते ।।२
अडाडेति च का संज्ञा शीतोष्णेति किमुच्यते । को ह्यस्यां पूज्यते देवः केनेयमवतारिता ।।
किमस्यां क्रियते कृष्ण एतद्विस्तरतो वद ।।३

श्रीकृष्ण उवाच

आसीत्कृतयुगे पार्थ रघुर्नाम नराधिपः । शूरः सर्वगुणोपेतः प्रियवादी बहुश्रुतः ।।४
स सर्वां पृथिवीं जित्वा वशीकृत्य नराधिपान् । धर्मतः पालयामास प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ।।५

खुरों द्वारा भूमि खोदने तथा अपने प्रतिद्वन्द्वी अन्य वृषों को देखकर गर्जन से इन्द्र की सभा में बैठे हुए उस प्राणी को जिसने इस वृष का विवाह (बछियों) के साथ सुसम्पन्न किया है, परम सन्तोष प्राप्त होता है।१७-२२

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठरसम्वाद में
वृषोत्सर्ग विधान वर्णन नामक एक सौ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त।१३१।

अध्याय १३२

फाल्गुनपूर्णिमा व्रत का वर्णन

युधिष्ठर बोले—जर्नादन ! फाल्गुन मास के अंत में पूर्णिमा के दिन गाँव-गाँव में प्रत्येक घरों में जिस समय उत्सव मनाया जाता है, लड़के लोग क्यों (अश्लील शब्दो के) प्रलाप करते हैं, होली क्यों जलायी जाती है। कृष्ण ! अडाडा संज्ञा और शीतोष्णा किसे कहा जाता है। इसमें किस देव की अर्चा होती है, यह किसके द्वारा सर्वप्रथम आरम्भ हुआ है और इसमें क्या किया जाता है आदि सभी बातें विस्तार पूर्वक बताने की कृपा करें।१-३

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! पहले कृतयुग में एक रघु नामक राजा थे, जो शूर, सर्वगुण सम्पन्न, प्रियवादी और निपुण विद्वान् थे। उसने समस्त पृथ्वी को जीत कर राजाओं को अपने अधीन करते हुए औरस (सगे) पुत्रों की भाँति प्रजाओं का पालन पोषण करता था।४-५। पार्थिव ! उस राजा के शासन काल

न दुर्भिक्षं न च व्याधिर्नाकालमरणं तथा[1] । नाधर्मरुचयः पौरास्तस्मिञ्छासति[2] पार्थिव ॥६
तस्यैवं शासतो राज्यं क्षात्रधर्मरतस्य वै । पौराः सर्वे समागम्य पाहिपाहीत्यथाब्रुवन् ॥७

पौरा ऊचुः

अस्माकं हि गृहे काचिद्ढौंढा नामेति राक्षसी । दिवा रात्रौ समागम्य बालान्पीडयते बलात् ॥८
रक्षया कण्डकेनापि भेषजैर्वा नराधिप । मन्त्रज्ञैः परमाचार्यैः ता नियन्तुं न शक्यते ॥९
पौराणां वचनं श्रुत्वा रघुर्विस्मयमागतः । विस्मयाविष्टहृदयः पुरोहितमथाब्रवीत् ॥१०

रघुरुवाच

ढौंढेति राक्षसी केयं किंप्रभावा[3] द्विजोत्तम । कथमेषा नियन्तव्या मया दुष्कृतकारिणी ॥११
रक्षणात्प्रोच्यते राजा पृथिवीपालनात्पतिः । अरक्षमाणः पृथिवीं राजा भवति किल्बिषी ॥१२

वशिष्ठ उवाच

शृणु राजन् परं गुह्यं यन्नाख्यातं मया क्वचित् । ढौंढा नामेति विख्याता राक्षसी मालिनः सुता ॥१३
तया चाराधितः शम्भुरुग्रेण[4] तपसा पुरा । प्रीतस्तामाह भगवान्वरं वरय सुव्रते ॥१४
यत्ते मनोऽभिलषितं तद्ददाम्यविचारितम् । ढौंढा प्राह महादेवं यदि तुष्टं स्वयं मम ॥१५
न च वध्यां सुरादीनां मनुजानां च शङ्कर । मां कुरु त्वं त्रिलोकेश शस्त्रास्त्राणां तथैव च ॥१६

में प्रजाओं में दुर्भिक्ष, व्याधि, अकाल मरण और अधर्म रुचि कभी नहीं उत्पन्न होने पायी । किन्तु क्षत्रिय धर्म द्वारा उसके शासन काल में ही समस्त नगरनिवासी राज दरबार में पहुँच कर 'बचाओ-बचाओ' कहने लगे ।६-७

पुरवासियों ने कहा—हमारे घरों में एक ढौंढा नाम की राक्षसी दिन रात आकर बच्चों को बलात् पीड़ित करती है । नराधिप ! परम मंत्र निपुण आचार्य द्वारा अथवा अन्य रक्षा, कंडक, या ओषधि से उसको रोकना कठिन हो रहा है । पुरवासियों के ऐसे करुण क्रन्दन सुनकर राजा रघु को महान् आश्चर्य हुआ । उन्होंने उसी समय अपने पुरोहित से कहा—८-१०

रघु बोले—द्विजोत्तम् ! यह ढौण्ढा राक्षसी कौन है और मैं इस दुराचारिणीका वारण किस भाँति कर सकूँगा क्योंकि प्रजाओं की रक्षा करने से राजा और पृथ्वी के पालन करने से पति कहे जाते हैं तथा पृथिवी की रक्षा न करने में राजा किल्बिषी (नपुंसक या कायर) कहा जाता है ।११-१२

वशिष्ठ बोले—राजन् ! मैं तुम्हें एक परम गुप्त आख्यान बता रहा हूँ जिसको अभी तक कहीं प्रकाशित नहीं किया है, सुनो ! माली नामक राक्षस की विख्यात पुत्री का नाम ढौण्ढा है जिसने पहले समय में उग्र तप द्वारा शिव की आराधना की थी । प्रसन्न होने पर भगवान् शिव ने उससे कहा—सुव्रते ! अपने अभिलषित वर की याचना करो, मैं बिना विचारे ही उसे पूरा करने को प्रस्तुत हूँ । इसे सुनकर कर ढौण्ढा ने महादेव से कहा—शंकर ! यदि आप प्रसन्न हो तो मुझे देवों, मनुष्यों और शस्त्रास्त्रों की अवध्या

---

१. नृणाम् । २. वसति । ३. प्रख्याता ।

शीतोष्णवर्षासमये दिवा रात्रौ बहिर्गृहे । अभयं सर्वदा मे स्यात्त्वत्प्रसादान्महेश्वर ।।१७

शङ्कर उवाच

एवमस्त्वित्यथोक्त्वा तां पुनः प्रोवाच शूलभृत् । उन्मत्तेभ्यः शिशुभ्यश्च भयं ते सम्भविष्यति ।।
ऋतावृतौ महाभागे मा व्यथां हृदये कृथाः ।।१८
एवं दत्वा वरं तस्यै भगवान्भगनेत्रहा । स्वप्ने लब्धो यथार्थास्तत्रैवान्तर्हितोऽभवत् ।।१९
एवं लब्धवरा सा तु राक्षसी कामरूपिणी । नित्यं पीडयते बालान्संस्मृत्य हरभाषितम् ।।२०
अडाडयेति गृह्णाति सिद्धमन्त्रं कुटुम्बिनी । गृहेषु तेन सा लोके ह्यडाडेपत्यभिधीयते ।।२१
एतत्ते सर्वमाख्यातं ढौण्ढायाश्चरितं मया । साम्प्रतं कथयिष्यामि येनोपायेन हन्यते ।।२२
अद्य पञ्चदशी शुक्ला फाल्गुनस्य नराधिप । शीतकालो विनिष्क्रान्तः प्रातर्ग्रीष्मो भविष्यति ।।२३
अभयप्रदानं लोकानां दीयतां पुरुषोत्तम । यथाद्याशंकिता लोका रमन्ति च हसन्ति च ।।२४
दारुजानि च खण्डानि गृहीत्वा समरोत्सुकाः । योधा इव विनिर्यान्तु शिशवः सम्प्रहर्षिताः ।।२५
सञ्चयं शुष्ककाष्ठानामुपलानां च कारयेत् । तत्राग्निं विधिवद्धुत्वा रक्षोघ्नैर्मन्त्रविस्तरैः ।।२६
ततः किलकिलाशब्दैस्तालशब्दैर्मनोहरैः । तमग्निं त्रिः परिक्रम्य गायन्तु च हसन्तु च ।।
जल्पन्तु[1] स्वेच्छया लोका निःशंका यस्य यन्मतम् ।।२७

बनाने की कृपा करें तथा जाडा, गर्मी और वर्षा के सभी दिनों में रात दिन एवं घर बाहर सभी स्थानों में तुम्हारी कृपा से मुझे सदैव अभयदान प्राप्त रहे ।१३-१७

शंकर जी बोले—शूलधारी शिव ने उसकी बातों को 'तथास्तु' कहकर चीत्कार करते हुए पुनः उससे कहा—महाभागे ! प्रत्येक ऋतुओं में उन्मत्त की भाँति रहने वाले बालकों से तुम्हें सदैव भय बना रहेगा । अतः अपने मन में कुछ दुःख न मानना । भग नेत्र के अपहर्ता भगवान् शिव इस भाँति उसे वर प्रदान करके स्वप्न में प्राप्त धन की भाँति उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये । यथेच्छ रूप धारण करने वाली वह ढौण्ढा राक्षसी भी शिव जी की बातों के स्मरण पूर्वक नित्य बालकों को पीडित करने लगी । वह घरों में प्रवेश करते समय 'अडाऽयेति' नामक सिद्ध मन्त्र का प्रयोग करती इसीलिए लोक में अडाडया नाम से उसकी ख्याति हुई है । इस प्रकार मैंने ढौण्ढा का समस्त चरित्र बता कर अब उसके हनन का उपाय बता रहा हूँ ! सुनो ! नराधिप ! आज फाल्गुन मास की पूर्णिमा है, शीत काल की समाप्ति एवं ग्रीष्म का प्रातःकाल हो रहा है । पुरूषोत्तम ! अतः आप लोक को अभय प्रदान करें, जिससे सशंकित मानव गण पूर्व की भाँति पुनः हास्य समेत अपने जीवन व्यतीत करें । बालक वृन्द हाथ में डण्डे लिये समर के लिए लालायित योधा की भाँति हँसी खेल करते हुए बाहर जाकर सूखी लकड़ियाँ और उपले (कण्डे) को एकत्र करें तथा उसे जलायें पश्चात् राक्षस नाशक मंत्रों द्वारा सविधान उसमें आहुति डालकर हर्षोल्लास से सिंहनाद और मनोहर ताली बजाते हुए उस अग्नि की तीन परिक्रमा करें एवं सभी लोग वहाँ उपस्थित होकर निःशकं तथा यथेच्छ गायन, हास्य और अपने मनोनुकूल प्रलाप करें । क्योंकि उन्हीं शब्दों और हवन द्वारा वह पापिनी

---

१. रौद्रेण ।

तेन शब्देन सा पापा होमेन च निराकृता । अदृष्टघातैर्डिंभानां राक्षसी क्षयमेष्यति ॥२८

श्रीकृष्ण उवाच

तस्यर्षेर्वचनं श्रुत्वा स नृपः पाण्डुनन्दन । सर्वं चकार विधिवदुक्तं तेन च धीमता ॥२९
गता सा राक्षसी नाशं तेन चोग्रेण कर्मणा । ततः प्रभृति लोकेऽस्मिन्नडाडा ख्यातिमागता ॥३०
सर्वदुष्टापहो होमः सर्वरोगोपशान्तिदः । क्रियतेऽस्यां द्विजैः पार्थ तेन सा होलिका मता ॥३१
सर्वसारातिविश्वेयं पूर्वमासीद्युधिष्ठिर । सारत्वात्फल्गुरित्येषा परमानन्ददायिनी ॥३२
अस्यां निशागमे पार्थ संरक्ष्याः शिशवो गृहे । गोमयेनोपसंलिप्ते सचतुष्के गृहाङ्गणे ॥३३
आकारयेच्छिशुप्रायान्खड्गव्यग्र करान्नरान् । ते काष्ठखण्डैः संस्पृश्य गीतैर्हास्यकरैः शिशून् ॥
रक्षन्ति तेषां दातव्यं गुडं पक्वान्नमेव च ॥३४
एवं ढौंढितमात्रस्य स दोषः प्रशमं व्रजेत् । बालानां रक्षणं कार्यं तस्मात्तस्मिन्निशागमे ॥३५

युधिष्ठिर उवाच

प्रभाते किञ्जनैर्देव कर्तव्यं सुखमीप्सुभिः । प्रवृत्ते माधवे मासि प्रतिपद् भास्करोदये ॥३६

श्रीकृष्ण उवाच

कृत्वा चावश्यकार्याणि संतर्प्य पितृदेवताः । वन्दयेद्धोलिकाभूतिं सर्वदुष्टोपशान्तये ॥३७
मण्डिते चर्चिते चैव उपलिप्ते गृहाजिरे । चतुष्कं कारयेच्छ्रेष्ठं वर्णकैश्चाक्षतैः शुभैः ॥३८
तन्मध्ये स्थापयेत्पीठं शुक्लवस्त्रोत्तरच्छदम् । अग्रतः पूर्णकलशं स्थापयेत्पल्लवैर्युतम् ॥३९

अचेतन होती है। तथा बालकों के उस अदृष्ट आघातों द्वारा वह राक्षसी नष्ट हो जाती है।१८-२८

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डुनन्दन ! उन महर्षि की ऐसी बातें सुनकर राजा रघु ने उनके कथनानुसार समस्त कर्म सविधान सुसम्पन्न किया, जिससे उसी उग्र कर्म द्वारा उस राक्षसी का विनाश हो गया । पार्थ ! उसी समय से लोक में उसकी अडाडया नाम से ख्याति हुई है और इसी पूर्णिमा के दिन ब्राह्मण गण समस्त दुष्टों और रोगों के शमनार्थ हवन करते हैं । इसीलिए वह होलिका कही जाती है । युधिष्ठिर ! पहले समय में सम्पूर्ण विश्व को अतिक्रान्त करने के नाते इसमें सर्वसार सन्निहित था, किन्तु सारमय होते हुए भी निष्फल होने के नाते यह परमानन्द प्रदान करती है । पार्थ ! इस दिन रात्रि आगमन (सायंकाल) के समय घर में बालकों की रक्षा करना परमावश्यक होता है । घर के आंगन को गोबर से लीप कर उसमें बनाये हुए चबूतरे पर हाथ में तलवार लिए बालकों की मूर्ति बनाये, जो काष्ठ के टुकड़े द्वारा स्पर्श करते हुए हास्य गीतों द्वारा बालकों की रक्षा करते हैं। उन्हें गुड़ पक्वान से सुसम्मानित करना चाहिए। ऐसा करने से ढौण्ढा राक्षसी जनित समस्त पीड़ा शान्त हो जाती है। इसलिए उस दिन सायंकाल बालकों की अवश्य रक्षा करें।२९-३५

युधिष्ठिर बोले—देव ! माधव (चैत्र) मास के आरम्भ में प्रतिपदा के दिन प्रातः काल सुखेच्छुक पुरुषों को क्या करना चाहिए।३६

श्रीकृष्ण बोले—पितरों और देवों के तर्पण तथा आवश्यक कार्य करने के उपरांत समस्त दुष्टों के शान्त्यर्थ होलिका विभूति की वन्दना पूर्वक गृह आङ्गण में शुभ अक्षतों द्वारा उत्तम वर्ण का एक चबूतरा बना कर उसके मध्य में एक पीठासन स्थापित करें, जो श्वेत वस्त्र के बिछौने से भूषित किया गया हो । उसके सामने पल्लव समेत पूर्ण कलश की स्थापना करें, जो, अक्षत, सुवर्ण, श्वेत

साक्षतं सहिरण्यं च सितचन्दनचर्चितम् । कलशस्याग्रतो देया उपानहवरांशुकाः ॥४०
आसने चोपविष्टस्य ब्रह्मघोषेण भारत । चर्चयेच्चन्दनं[1] नारी अव्याङ्गांगा सुलक्षणा ॥४१
पद्मरागोत्तरपटा श्रेष्ठांशुकविभूषिता । वसुधारां शिरोग्रे च दधिदूर्वाक्षतान्विताम् ॥४२
[2]चर्चापयित्वा श्रीखण्डमायुरारोग्यवृद्धये । पश्चाच्च प्राशयेद्विद्वांश्चूतपुष्पं सचन्दनम् ॥४३
मनोभवस्य सा पूजा ऋषिभिः सम्प्रदर्शिता । ये पिबन्ति वसन्तादौ चूतपुष्पं सचन्दनम् ॥४४
सत्यं हृदिस्थकामस्य तत्पूर्तिर्जायतेऽञ्जसा । अनन्तरं द्विजेन्द्राणां सूतमागधबन्दिनाम् ॥४५
दद्याद्दानं यथा शक्त्या कामो मे प्रीयतामिति । ततो भोजनवेलायां भृतं यत्प्राक्तनेऽहनि ॥४६
प्राश्नीयात्प्रथमं चान्नं ततो भुञ्जीत कामतः । य एवं कुरुते पार्थ शास्त्रोक्तं फाल्गुनोत्सवम् ॥४७
अनायासेन सिध्यन्ति तस्य सर्वे मनोरथाः । आधयो व्याधयश्चैव यान्ति नाशं न संशयः ॥४८
पुत्रपौत्रसमायुक्तः सुखं तिष्ठति मानवः ॥४९
पुण्या पवित्रा जयदा सर्वविघ्नविनाशिनी । एषा ते कथिता पार्थ तिथीनामुत्तमा तिथिः ॥५०

वृत्ते तुषारसमये सितपञ्चदश्यां प्रातर्वसन्तसमये समुपस्थिते च ।
सम्प्राश्य चूतकुसुमं सह चन्दनेन सत्यं हि पार्थ पुरुषः ससुखं समास्ते[3] ॥५१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
फाल्गुनपूर्णिमोत्सववर्णनं नाम द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३२

चन्दन से चर्चित हो । भारत ! पश्चात् कलश के अग्रभाग में उपानह और सूक्ष्म वस्त्र रख कर एक सर्वलक्षण सम्पन्ना एवं परमसुन्दरी नारी आसन पर बैठे हुए उस पुरुष को ब्रह्म घोष पूर्वक चन्दन चर्चित करे । जो पद्मराग मणि जटित अथवा उसकी भाँति रक्तवस्त्रों से विभूषित है । दधि, दूर्वा, अक्षत युक्त वसुंधरा शिर के अग्रभाग (मस्तक) से स्पर्श किये आयु और आरोग्य के वृद्धयर्थ श्रीखण्ड का वर्द्धयन करे । पश्चात् विद्वान् को आम मञ्जरी (बौर) चन्दन समेत पान करना चाहिए । क्योकि ऋषियों ने इसे कामदेव की पूजा बतायी है । उनका कहना है कि—वसन्त के आदि काल में चन्दन समेत आम के बौर पान करने वाले प्राणी के हृदिस्थ काम की निःसन्देह पूर्ति होती है । 'कामदेव' मुझ पर प्रसन्न हों' कहते हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणों सूतमागध एवं बन्दी जनों को यथा शक्ति दान अर्पित करें । अनन्तर भोजन के समय पूर्व दिन का बना हुआ भोजन पहले कुछ खाकर पश्चात् यथेच्छ भोजन करे । पार्थ ! इस प्रकार फाल्गुन मास के इस शास्त्रीय उत्सव को सुसम्पन्न करने वाले मनुष्यों के सभी मनोरथ अनायास सफल होते हैं । शारीरिक मानसिक पीडा निःसन्देह शान्त हो जाती है । पुत्र पौत्र समेत वह मानव सुखी जीवन व्यतीत करता है । पार्थ ! इस प्रकार पुण्य, पवित्र जय प्रद और समस्त विघ्नों को शांति करने वाली इस उत्तम तिथि (पूर्णिमा) का वर्णन मैंने तुम्हें सुना दिया । पार्थ ! शीतसमय (जोड़) के व्यतीत होते वसन्त के आदि काल (फाल्गुन) पूर्णिमा के दिन होली पूजन और उसके दूसरे दिन (प्रतिपदा) में चन्दन समेत आम के बौर का प्राशन करने वाला मनुष्य सदैव सुखी रहता है ।३७-५१

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर के संवाद में
फाल्गुन पूर्णिमा उत्सव वर्णन नामक एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३२।

---

१. वर्द्धयेत्सदने नारी । २. वर्द्धापयित्वा । ३. समस्ते । ते त्वया समस्तुल्य इत्यर्थः ।

अथ त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

आन्दोलकविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

संत्यज्यालिकुलालीढकुसुमानि मृदून्यपि । दमनेन कथं लोकैः पूज्यन्ते नाकनायकाः ॥१
दोलान्दोलनमाहात्म्यं रथयात्रामहोत्सवम् । कथयस्वामलं प्राज्ञ यादवान्भोजभास्कर ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

पार्थार्थिजनसद्वृक्ष क्षान्तिधाम धरापते । यदेतद्भवता पृष्टं तच्छृणुष्व वदामि ते ॥३
पुरा सुराणामावासे मन्दरे चारुकन्दरे । गन्धाधारी कुलालीढो जातो दमनकस्तरुः ॥४
तस्य गन्धमनाघ्रेयमाघ्राय सुरयोषितः । मदनोन्मादवशगा गायन्ति च हसन्ति च ॥५
ऋषयो नियमांस्त्यक्त्वा प्राद्रवन्त गृहान्प्रति । न वेदाध्ययने ध्याने रतिस्तेषां बभूव ह ॥६
अपराधाद्विघटितं यद्बभूव प्रिये परम् । मानसं मानिनीनां तु पुनर्गन्धेन संधितम् ॥७
गन्धेनाकुलितं लोकं दृष्ट्वा ब्रह्मा तमब्रवीत् । शमनिर्मितया वाचा रोषात्प्रस्फुरिताधरः ॥८

ब्रह्मोवाच

जातस्त्वं लोकदमनान्नूनं दमनको मया । जगद्वा घूर्णसे कस्मात्कर्म नैतत्तवोचितम् ॥९

अध्याय १३३

हिंडोला झूलने की विधि का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—यादवकुल कमलभास्कर ! प्राज्ञ ! ऐसे कोमल पुष्पों को त्यागकर जिसके रसास्वादन के लिए भ्रमर वृन्द सदैव लालायित रहता है, मानवगण स्वर्ग नायक की अर्चा दमन (दौना) पुष्प द्वारा क्यों करते हैं। तथा हिंडोला झूलने का माहात्म्य और रथयात्रा महोत्सव बताने की कृपा करें। १-२

श्रीकृष्ण बोले—याचकों के सद् (कल्प) वृक्ष, क्षांति धाम, एवं धरापते पार्थ ! आपने जो कुछ पूँछा है, मैं कह रहा हूँ, सुनो ! पहले समय में मन्दराचल के उस प्राचीन एवं रमणीक गुफा में उस दमनक (दौना) नामक वृक्ष की उत्पत्ति हुई है, जो गन्धाधारी भ्रमरवृन्दों के रसास्वादन का सर्व प्रमुख स्थान रहा है। उसके अनुपम गंध के सूंघने पर देवताओं की ललनाएँ कामोन्मत्त होकर गाने और हँसने लगी। ऋषि लोग अपने नियमों को त्याग कर शीघ्रता से अपने अपने घरों की ओर दौड़ने लगे। उन लोगों की रूचि न वेदों के अध्ययन में रही और न (इष्ट देव के) ध्यान में ही। मानिनी स्त्रियों के चित्त, जो अपराध के कारण अपने प्रिय पति से सर्वथा के लिए पृथक् हो गया था, उस गंध द्वारा पुनः (पति का प्रेम) प्राप्त करने के लिए हो गया। उस गंध द्वारा समस्त लोक को आकुल देखकर ब्रह्मा ने यद्यपि रोषावेश में उनके होंठ फड़क रहे थे। तथापि शान्ति पूर्वक कहा—३-८

ब्रह्मा बोले—लोकों के दमन करने के नाते तुम मेरे द्वारा निश्चित दमनक (दमन करने वाला) ही

यत्संतस्त्वनुमन्यन्ते सर्वातिशयवर्जितम् । तत्सेवेत नरः कर्म यत्रोद्वेगो न धीमताम् ॥१०
एकस्याप्यपकारं यः करोति स नराधमः । बहूनामपकाराय सम्प्रवृत्तः किमुच्यते ॥११
दृष्टार्थबाधकं कर्म न कर्तव्यं कथञ्चन । अदृष्टं प्रति सन्देहः सोऽस्माभिरनुमीयते ॥१२
ततः स्वयं प्रभजति दैवे पित्र्ये च कर्मणि । भोगार्थे च त्रिभुवनेनिरादेयो भविष्यति ॥१३

दमनक उवाच

पुरुषादेवमारब्धं न क्रोधान्नार्थकारणात् । स्वभाव एष मे ब्रह्मन्स्त्वया सृष्टः पुरा विभो ॥१४
या यस्य जन्तोः प्रकृतिः शुभा वा यदि वेतरा । स तस्यामेव रमते दुष्कृते सुकृते तथा ॥१५
तत्स्वभावप्रवृत्तस्य यदि शापस्त्वया मम । प्रदत्तः किं करोम्येतन्न कृत्यमपराध्यति ॥१६
युक्तियुक्तं वचः श्रुत्वा दमनेन समीरितम् । प्रीतात्मा पद्मजः प्राह करोमि तव सत्प्रियम् ॥१७
वसन्ते सहकारोत्थमञ्जरीपिञ्जरे जने । पुष्पिताशोकशोभाढ्ये वने पुंस्कोकिलाकुले ॥१८
तस्मिन्काले सुरेशानां शिरांस्याक्रम्य लीलया । स्थास्यसि त्वं दिनं चैकं यद्यस्य विहितं हितम् ॥१९
ये त्वामारोपयिष्यन्ति दानमानपुरस्सराः । सुराणां ते भविष्यन्ति सदैव सुखिनो नराः ॥२०
सर्वदैव शिवस्येष्टा पुण्या पापभयापहा । प्रसिद्धिं यास्यति मधौ दमनाख्या चतुर्दशी ॥२१

उत्पन्न हुए । किस हेतु सारे संसार को पीड़ित कर रहे हो, ऐसा करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है । सज्जन उसी का आदर करते हैं, जो सर्व श्रेष्ठता से शून्य होकर साधरण मनुष्यों के सेवन करने योग्य हो और जिसके कार्य से विद्वानों को किसी प्रकार की आकुलता न उत्पन्न हो । क्योंकि एक भी अपकार करने वाला मनुष्य नराधम कहलाता है और जो बहुतों के अपकारार्थ प्रदत्त है उसे क्या कहा जा सकता है । इसलिए देखते हुए भी अर्थ बाधक कर्म कभी न करना चाहिए और उसी प्रकार अदृष्ट के प्रति संदेह भी । क्योंकि वह उसी रूप में हमें भी मान्य है । अतः तुम्हारा आज से स्वयं उत्पन्न होकर देव पितृ कार्यों में और भोगों के उपभोग करने में तुम्हारा सदैव निरादर होता रहेगा ।९-१३

दमनक (दौनवृक्ष) ने कहा——ब्रह्मन् ! मैंने अपने पुरुषार्थ वश ऐसा किया है, न कि क्रोध और अर्थ के कारण । क्योंकि पहले समय में आप ने मेरा ऐसा स्वभाव ही बनाया था । जिस जीव की शुभ अशुभ जैसी प्रकृति होती है, भले, बुरे कार्यों में वह सदैव उसे ही अपनाता है । इसलिए अपने स्वभावानुसार ऐसा कार्यों में प्रवृत्त होने पर मुझे आप ने यदि शाप दे ही दिया तो मैं क्या करूँ, इसमें मेरे अपराध नहीं है । दमनक की युक्तियुक्त बातें सुनकर कमल-जाय मान ब्रह्मा ने कहा—मैं बहुत प्रसन्न हूँ, अतः तुम्हारा एक अत्यन्त प्रिय कार्य करने जा रहा हूँ । वसन्त के समय आम के मञ्जरी (बौर) वृन्दों से भूषित होने तथा जङ्गलों में फूले हुए अशोक की समृद्ध शोभा विस्तारित होने के समय, जब कि हर्षोन्मत्त कोकिल की मधुर ध्वनि में वह वन आकुल सा हो रहा हो । उसी एक दिन देवों के शिरस्थान पर बैठकर जिसका जैसा हित एवं अभिलाषा हो, सुसम्पन्न करना । देवों के शिरस्थान पर दान मान पूर्वक तुम्हें बैठाने वाले मनुष्य सदैव सुखी रहेंगे । वसन्त समय में (चैत्र की) यह दमन चतुर्दशी के नाम से ख्याति प्राप्ति पूर्वक पुण्य स्वरूपा, पाप और भय के अपहरण करती हुई देवेश शिव की अत्यन्त प्रिय होगी । इतना कहकर ब्रह्मा चले गये और दमनक मन्दराचल पर निखिल भुवनों को अपने गंध द्वारा सुवासित

एवमुक्त्वा ययौ ब्रह्मा दमनो मन्दरे गिरौ । उवास वासिताशेषभुवनो गन्धसम्पदा ।।२२
दिव्ये गिरौ गिरिसु तादयिताधिवासे रत्नांशुकच्छुरितकाञ्चनभूमिभागे ।
शापं वरं च हृदये विनिवेश्य शम्भोस्तत्रास्थितो दमनको दमितान्तरात्मा ।।२३

श्रीकृष्ण उवाच

धर्मराज निबोधेदमान्दोलकमहोत्सवम् । प्रवृत्तनरनारीकं पञ्चमोच्चारसुन्दरम् ।।२४
सानन्दं नन्दनवने आर्द्रया सहितो यथा । विस्मयस्मेरनयनो भ्रमामोद्वान्तसौरभः ।।२५
उन्मादयन्वने पुण्ये विद्याधरगणान्बहून् । वसन्तर्तौ नृत्यमानान्सुरासुरशतार्चितः ।।२६
सन्तानपारिजातोत्थां बद्धा स माधवीलताम् । [१]कश्चिदान्दोलनं चक्रे समालिंग्य घनस्तनीम् ।।२७
गीतमान्दोलकारूढस्तद्गायन्त्यमरस्त्रियः । येन चोत्पादयन्ति स्म मन्मथस्यापि मन्मथम् ।।२८
तं दृष्ट्वाष्टापदनिभा भवानी प्राह शङ्करम् । कौतुकं मे समुत्पन्नं पश्येमाः शंकर प्रभो ।।२९
आन्दोलकं मम कृते कारयस्व स्वलंकृतम् । त्वयासहान्दोलयेयं यथा चैते त्रिलोचनः ।।३०
तद्गौरीवचनं रम्यं श्रुत्वा गोवृषभध्वजः । सद्दोलां कारयामास समाहूय महासुरान् ।।३१
स्तम्भद्वयं रोपयित्वा इष्टापूर्तमयं दृढम् । सत्यं चैवोपरिततं श्रेष्ठकाष्ठमकल्पयत् ।।३२
वासुकिं दण्डकस्थाने बद्ध्वा तान्तवसप्रभम् । तत्फणामन्तरापीठं कृतवान्मणिमण्डितम्[२] ।।३३

करने लगा। इस प्रकार उस दिव्य पर्वत पर जिस पर पार्वती जी का निवास और रत्न रूपी उत्तरीय (दुपट्टा आदि) वस्त्रों की चञ्चल प्रभा द्वारा काञ्चन मय भूमि भाग है, रहते हुए उस दमनक के जिसके हृदय का शाप प्रदान द्वारा किया गया है, भगवान् शिव के चरण में वर और शाप दोनों अर्पित कर दिया।१४-२३

श्रीकृष्ण बोले—धर्मराज ! मैं उस हिंडोला महोत्सव को, जो स्त्री पुरुषों द्वारा प्रारब्ध और उनके पञ्चम स्वर से अत्यन्त मनोहर होकर नन्दन वन में आर्द्रा के साथ आनन्द लूटने की भाँति आश्चर्य चकित नेत्रों से देखते हुए दमन की भाँति सुगन्धों को बिखेरते हुए चारों ओर घूमता रहता है, बता रहा हूँ, सुनो ! उस वसन्त ऋतु में वह अधिकांश विद्याधर गणों को उन्मत्त करते और सैकड़ों देवों एवं राक्षसों को नचाते हुए उनके द्वारा पूजित होता है। कल्प वृक्ष की शाखा में माधवी लता से आबद्ध उस हिंडोले पर बैठ कर किसी ने कठोर एवं सघन स्तन वाली अपनी स्त्री के आलिंगन पूर्वक हिंडोला झूलना शुरु कर दिया। अनन्तर उस पर बैठी हुई देव ललनाएँ इस भाँति का गीत गाना आरम्भ किया जिसे सुनने पर कामदेव के हृदय में भी काम की उत्पत्ति हो जाती थी। उसे देखकर काञ्चन वर्णा पार्वती जी ने शंकर जी से कहा—प्रभो शङ्कर ! इन स्त्रियों को देखो ! इन्हें देखकर मुझे भी इसका महान् कौतूहल उत्पन्न हो गया है अतः मेरे लिए भी एक सुसज्जित हिंडोला बनाने की कृपा करें। त्रिलोचन ! इन स्त्रियों की भाँति मैं भी आप के साथ हिंडोला झूलना चाहती हूँ।२४-३०। गौरी की ऐसी बातें सुनकर गोवृषध्वजा वाले शिव जी ने देवों को बुलाकर एक सुन्दर हिंडौला बनवाया और ईंटे की भाँति दृढ दो स्तम्भों को आधार पर सत्य का विस्तृत काष्ठ और वासुकी को रस्सी बनाकर दण्डक के स्थान पर बाँध दिया तथा उनके फणों के उस हिंडोले को

---

१. आलोचनम् । २. मणिगौक्तिकम् ।

कृमिकार्पासकौशेयवस्त्रैः सम्वेष्टितं नवैः । स्रग्दामालम्बितप्रान्तमणिमौक्तिकशेखरम् ॥३४
रचयित्वा विचित्रां तां दोलां चैलाजिनोत्तराम् । स सिद्धां सिद्धगुरवे गौरवेण न्यवेदयत् ॥३५
तत्रारूढस्तु यावत्स सौम्यसोमविभूषणः । सन्दरं दोलयामास पार्श्वस्थैः पार्षदैः सह ॥३६
वामपार्श्वे तु विजया दक्षिणेन जया भवेत् । चामराक्रान्तबाहू ते तेनाश्लिष्टे न्यवीजताम् ॥३७
आन्दोलयन्त्या पार्वत्या सहितं स गदाक्षरम् । येन देवासुरक्षणमासीदानन्दनिर्भरम् ॥३८
जुगुर्गंधर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः । उच्छलत्तालवाद्यानि वादयन्ति स्म चारणाः ॥३९
चेलुः कुलाचलाः सर्वे चुक्षुभुः सप्त सागराः । ववुर्वाताः सनिर्घाता देवे दोलां समास्थिते ॥४०
आलोक्य व्याकुलं लोकं देवाः शक्रपुरोगमाः । उपेत्य प्रणिपत्योचुः सर्वपापहरं परम् ॥४१
उपारमस्व भगवन्भवतः क्रीडयानया । जगद्व्यापाद्यते देवे चलितः सागरश्च यत् ॥४२
गीर्वाणगीर्भिः संहृष्टः शङ्करो लोकशङ्करः । समुत्पपात दोलातः प्रहर्षोत्फुल्ललोचनः ॥४३
उवाच वचनं पार्थ सुरसार्थस्य पश्यतः । सानुकम्पं सुललितं विस्फुटार्थपदाक्षरम् ॥४४

श्रीमहादेव उवाच

अद्य प्रभृति ये दोलाक्रीडां पुष्करिणीतटे । वसन्ते कारयिष्यन्ति मण्डिते त्रिदशाङ्गणे ॥४५

स्थापित किया, जो मणियों और मोतियों से अलंकृत, नवीन सूती और रेशमी वस्त्रों से आच्छन्न, उसका दोनों प्रान्त भाग रस्सियों की भाँति लम्बी मालाओं से सुशोभित एवं ऊपर शिखर भाग मणियों मोतियों से सुसज्जित था। मृगचर्म से अलंकृत उस अनोखे हिंडोले को देवों ने जो एक परम सिद्धि की भाँति था, सिद्ध गुरु भगवान् शिव को सादर समर्पित किया। सौम्य मूर्ति चन्द्रमा से अलंकृत भगावन् शिव अपने पार्षदों समेत ज्योंही उस पर सुखासीन हुए त्योंही वह झूलना आरम्भ हो गया। (पार्वती और शिव के) वाम भाग में विजया तथा दक्षिण भाग में जया दोनों हाथों में चामर लिए उनकी सेवा करने लगी। देवों और असुरों के जनक भगवान् शिव पार्वती के साथ झूलते हुए उस हिंडोले में अत्यन्त आनन्द विभोर हो गये—उनके सम्मुख प्रमुख गन्धर्व गण गान कर रहे थे, अप्सराएँ नाच रही थी, चरण वृन्द वाद्यों के ताल स्वरों के निमग्न हो रहे थे। इस भाँति भगवान् शिव के हिंडोले में सुखासीन होकर झूलते समय समस्त पर्वत गण हिलने लगे, समुद्र में लहरों के टकराने से उफान आ गया और वायु आकाश में अपनी लहरों में टकरा कर नीचे पृथिवी में आया और प्रचण्ड वेग से चलने लगा। इस प्रकार लोक को आकुल देखकर इन्द्र को आगे किये समस्त देव वृन्द निखिल पापहारी भगवान् शिव के सम्मुख खड़े होकर नमस्कार पूर्वक विनम्र याचना करने लगे—भगवन् इस आप की क्रीडा द्वारा सागर में उफान आने के कारण समस्त संसार प्राण शून्य हो रहा है अत इसके विराम करने की कृपा करें। देवों की गीर्वाण वाणी (संस्कृत भाषा) द्वारा स्तुति करने पर प्रसन्न होकर लोक के कल्याणकर्ता भगवान् शंकर ने अपने विकसित नेत्रों द्वारा अपार हर्ष सूचित करते हुए उस हिंडोले से उतर पड़े। पार्थ ! देवों के हित को ध्यान में रखकर भी महादेव जी ने उन लोगों से अनुग्रह पूर्ण, सुसलित एवं अत्यन्त स्फुट अर्थों वाले शब्दों में कहा—३१-४४

श्रीमहादेव बोले—आज से पुष्करिणी (कमल भूषित जलाशय) के तट पर सुसज्जित देवालयों के

नेत्रपट्टापटच्छन्नां पद्मरागविभूषिताम् । आतपत्रेण संयुक्तां विन्यस्तकनकाण्डकम् ।।४६
विचित्राभरणाभिराभासितदिगन्तराम् । तारकाशान्तचित्राङ्गपुष्पमालामनोरमाम् ।।४७
मालां विद्याधराक्रान्तां प्रान्तरोपितदर्पणाम् । छत्रचामरसंछन्नां यथा शक्त्याप्यलंकृताम् ।।४८
अग्निकार्यं ततः कृत्वा क्षिप्त्वा चैव दिशां बलिम् । तस्यामारोपयेद्देवमिष्टहृष्टजनावृतः ।।४९
मूलमन्त्रेण देवानां प्रोक्तं दोलाधिरोहणम् । पार्श्वस्थो ब्राह्मणो विद्वान्पठेद् मन्त्रमुत्तमम् ।।५०
गम्भीरान्तरनिर्घोषैर्ललनानां च निस्वनैः । स्तुतिमङ्गलशब्दैश्च पुष्पधूपाधिवासिताम् ।।५१
एतस्मिन्नन्तरे नारीं दोहनाय निकुट्टकाम् । प्रवेशयेत्कुंकुमाढ्यां क्रीडावर्णप्रियैः सह ।।५२
सुवर्णभृंगिणा प्रोक्तं स्मितदन्तांशुकर्बुरम् । लगमानं जलं चांगे कस्य न स्यात्सुखप्रदम् ।।५३
जलसंक्लिन्नवसनो रशनादाममण्डितः । कम्बुग्रीवोल्लसन्सर्वो बभूव गणिकागणः ।।५४
कुंकुमक्षोदताम्बूलपुष्पमालाकुलो जनः । तां विहाय जलक्रीडां नान्यस्यां विदधे मनः ।।५५
पीतशीतजलाघातताडितोऽपि जनः सुखम् । मन्यते नियतः कोऽपि प्रभावोऽयमनंगजः ।।५६
एवं ये तु गमिष्यन्ति नरा वर्त्मतया गतम् । नीरुजस्ते भविष्यन्ति सुखिताः शरदां शतम् ।।५७
पुत्रपौत्रसमायुक्ताः धनधान्यसमायुताः । विहृत्य सुखसम्पत्तौ ततो यास्यन्ति मत्पुरम् ।।५८

प्राङ्गण में हिंडोला का झूला, जो सूक्ष्म वस्त्रों से आच्छन्न, पद्मरागमणि से अलंकृत छत्रयुक्त, सुवर्ण के दण्डों से सुसज्जित उसके विचित्र आभूषणों की चञ्चल प्रभा से भासित दिगन्तर, ताराओं के शांत प्रदर्शन होने वाली रक्त वर्ण की मनोरम पुष्प मालाओं से भूषित और मालाओं में विद्याधरों की सुसज्जित मूर्ति, हिंडौला के प्रान्त भागों में दर्पण तथा छत्र चामर से विभूषित होने पर भी उसे अलंकृत करना चाहिए। अनन्तर हवन और दिक्पालों आदि की बलि प्रदान करके इष्ट मित्रों आदि समेत हिंडोला पर बैठने वाले देवमंत्रों के उच्चारण पूर्वक देव को उस पर सुखासीन करे। उस समय उनके पार्श्व भाग में ब्राह्मणों द्वारा वेद पाठ, वाद्यों के गम्भीर निर्घोष, ललनाओं के मनोहर गाने और स्तुतियों के मङ्गल शब्द होने चाहिए तथा पुष्प धूप से उसे अधिवासित करने के अनन्तर उस स्थान पर क्रीडा करने वाली पुरुष मूर्ति समेत स्त्रियाँ (सखियों) की मूर्ति सजाये जो कुंकुम से मण्डित हों। सुवर्ण भृंगी ने बताया है कि उस समय (स्त्री के) मन्द मुस्कान में दाँत में लगे हुए सुवर्ण की चमक और उनके अंगों के जल (स्वेद) किस को सुख प्रद नहीं होते। वहाँ सभी वेश्याओं को जल से भीगा वस्त्र, (कटि में) रशना (करधनी) आभूषण रूप रस्सी से भूषित होते हुए कम्बुग्रीवा (शंख के समान सुन्दर कण्ठ) से सुशोभित होना चाहिए।४५-५४। कुंकुम, अक्षोद, ताम्बूल एवं पुष्पमाला से भूषित होने पर मनुष्य का जल क्रीडा के अतिरिक्त किसी भी विषय में मन लगेगा नहीं। क्योंकि पीत शीत जल के आघात को भी मनुष्य सुख ही मानता है इसलिए यह काम देव का एक नियत प्रभाव ही है। इस भाँति इस परम्परा मार्ग से चलने वाले मनुष्य आरोग्य पूर्वक सैकड़ों वर्ष सुखी जीवन व्यतीत करते हैं। पश्चात् पुत्र पौत्र समेत धन धान्य और सुख सम्पत्ति के अनुभव के उपरांत मेरी पुरी प्राप्त करता है।५५-५८। इस प्रकार वसंत के समय देवों के लिए

प्राप्ते वसन्तसमये सुरसत्तमानामान्दोलनं सुरवराननुकुर्वते ये ।
ते प्राप्नुवन्ति भुवि जन्मतरोः फलानि दुःखार्णवात्कुलशतान्यपि तारयन्ति ।।५९

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
आन्दोलकविधिवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३३

अथ चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

दमनकान्दोलकरथयात्रामहोत्सववर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

रथयात्राविधानं ते कथयामि युधिष्ठिर । स्थिरो भूत्वा निबोधेदं त्वं हि मूर्तविदां वरः ।।१
चैत्रे त्रिनेत्रसम्भूतमलयाख्यमहागिरौ । प्रवहत्पवनध्वानप्रेंखोलितलताचये ।।२
एतस्मिन्नेव काले तु भ्रममाणो यदृच्छया । नारदः शारदाकान्ताच्छिवलोके समाययौ ।।३
दृष्ट्वापूर्वं शिवं शान्तं सुरेशैः सर्वतो वृतम् । प्रणम्योपाविशद्विप्रः पुरतः केशवेशयोः ।।४
तमुपासीनमालक्ष्य भगवान्भगनेत्रहा । पप्रच्छाच्छादितमनाः कुतश्चागम्यते पुनः ।।५

श्रीनारद उवाच

शिव कामं च तं विद्धि दग्धं मा दिबुधोत्तम । वसन्तो नाम कोऽप्येष कामस्य दयितः सखा ।।६
मलयानिलयुक्तेन तेन विश्वं वशीकृतम् । सहकारकरीन्द्रस्थं कृत्वा कोकिलडिण्डिमम् ।।७

सौन्दर्यपूर्ण एवं सुसज्जित हिंडोले को अर्पित करने वाले मनुष्य इस भूतल में अपने जन्म सफल करते हुए संसार दुःख सागर से अपने सैकड़ों पीढ़ियों का उद्धार करते हैं ।५९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर संवाद में
आन्दोलक (हिंडोला) विधि वर्णन नामक एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३३।

अध्याय १३४

दमनकान्दोलक रथयात्रा का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर ! तुम्ही सब में श्रेष्ठ हो, अतः मैं तुम्हें रथयात्रा विधान बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! चैत्रमास में शिवजनित उस मलयाचल नामक महापर्वत पर रहने वाली सभी लताएँ प्रवाहित पवन के मनोहर शब्द सुनकर पुलकित हो उठी थी । उसी समय शारदाकान्त विष्णु के लोक से घूमते हुए नारद ने शिव लोक में आगमन किया । वहाँ शिव जी को अपूर्व शांत एवं देवों से घिरे हुए देखकर प्रणाम करते हुए नारद विष्णु और शिव के सम्मुख बैठ गये । उन्हें बैठे देखकर भगनेत्रहा भगवान् शिव ने कुछ अनमने भाव से पूँछा—कहाँ से आगमन हो रहा है ।१-५

श्रीनारद ने कहा—बिबुधोत्तम (देव श्रेष्ठ, शिव ! आप काम को भस्मसात् हुआ न समझे । क्योंकि काम के परममित्र इस वसन्त ने मलय मारुत की सहायता से सम्पूर्ण विश्व अपने अधीन कर लिया

घोषयामास विजयं मन्मथस्य पुरेपुरे । शशाङ्कशेखरः कोऽयं कोऽयं शङ्खगदाधरः ॥८
कोऽयं च डिम्बो वा ब्रह्मा कामस्त्रिजगतां प्रभुः । प्रायः क्रीडारतिर्लोको वसन्तवचनात्पुनः ॥९
ऊर्ध्वबाहुस्तु नर्नीति तालदत्तपदक्रमः । व्यवसायं न गच्छन्ति ये संहृत्य वनान्तरम् ॥१०
गायन्तश्च परीहृष्टास्ते चाप्यायान्ति यान्ति च । गोप्यसीमान्तरगताः क्षेत्रस्थानस्य रक्षिणः ॥११
तेऽपि गायन्ति नृत्यन्ति हसन्ति स्मरतारकाः । करस्य ताडनेऽत्यर्थं मुरजो धुर्धरायते ॥१२
विटं पश्यन्ति कुलटाः प्रारब्धोचितपण्डिताः । सुमनांसि सुसङ्गीतनृत्यवाद्यसुवादितम् ॥१३
एवमेतत्त्रिलोकेऽस्मिन्निति व्यवसितो जनः । ललल्लम्बस्तनीं दृष्ट्वा जरायोषापि नृत्यति ॥१४
वसन्तस्य प्रभावोऽयं कोऽप्यपूर्वो विजृंभते । सरांस्यद्भुतपद्मानि प्रफुल्लाः पुष्पवाटिकाः ॥१५
वृक्षाः पक्षिशताकीर्णा विजिघ्राणमुखाः सुराः । विकम्पवसनाबालः पवनस्त्रिगुणात्मकः ॥१६
कृतः प्रत्यक्षसुमहान्वसन्तो न जगत्त्रये । अवजल्पमुखा बाला वृद्धास्तु विकलद्विजाः ॥१७
उभावपि प्रतप्येते पश्येदं कामचेष्टितम् । पक्षिणां पक्षनिक्षेपैर्नद्यस्तुंगतरंगकैः ॥१८
पादपाः पल्लवशतैर्नृत्यन्ते च प्रहर्षिणः । एतच्छ्रुत्वा तु वचनं नारदस्येन्दुशेखरः ॥१९

है। आम रूपी गजराजों के ऊपर कोकिल डिंडिभ (ढिंढोरा) द्वारा प्रत्येक नगरों आदि में घोषणा कराया कि—सर्वत्र कामदेव की ही विजय हुई है—अतः शशांकशेखर (शिव) और शंखगदाधारी विष्णु एवं बालकरूप ब्रह्मा नगण्य के समान हैं तथा ये कौन हैं कहाँ रहते हैं इसकी कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि तीनों लोकों का आधिपत्य कामदेव को ही प्राप्त है। पुनः वसन्त के आदेश से आप समस्त लोक क्रीडा रति में ही निमग्न हो रहा है—सभी लोग भुजाओं के ऊपर उठाकर हथेली के ताल बजाने के अनुसार पैर उठाते हुए नाच रहे हैं, जो कभी कुछ उद्यम नहीं करते थे वे भी गाने में हर्ष निमग्न रहकर (वने के भीतर) आते जाते हैं, खेतों के रखवारे लोग भी, जो सदैव उसी खेतों में ही उसके रक्षणार्थ रहते थे, काम विवश होकर हँसते हुए नाच गान करते हैं। हथेली के द्वारा ताडित होने पर घुरघुर गर्जन कर रहा है। आरम्भिक कार्यों में उचित निपुणता प्राप्त करने वाली कुलटायें नाचगान करने वाले कामी जनों को ही देख रही हैं, जो प्रसन्नचित्त, उत्तम संगीत, और अपने नाच गान से लोगों को मुग्ध करता हो। इसी प्रकार तीनों लोकों में सभी लोग अत्यन्त कामासक्त हो रहे हैं। लम्बे स्तनों वाली स्त्रियोंको हाव भाव पूर्ण कामासक्त देखकर वृद्धाएँ भी नाच रही हैं। इस प्रकार वसन्त का यह एक अपूर्व प्रभाव प्रसारित हो रहा है। सरोवरों के कमल विकसित होकर एक अनूठापन दिखा रहे हैं, वाटिकाएँ फूलों से अत्यन्त मनोहर हो रही हैं।६-१५। वृक्ष सैकड़ों पक्षियों से भूषित होकर मनोरञ्जन कर रहे हैं, देवगण ऊपर मुख किए किसी उत्तम सुगन्धि की खोज में दिखायी दे रहे हैं। तीनों गुण सम्पन्न (मंद, सुगन्ध और शीतल) वायु चारों ओर प्रवाहित हो रहा है। इस प्रकार इस वसन्त ने तीनों लोक में एक महान् (उपद्रव) सामने खड़ा कर दिया है—युवतियाँ (अत्यन्त काम पीड़ित होने के नाते) मौन हैं—बालक गण भी उसी भाँति मौन हैं, और बृद्ध जन विकल हो रहे हैं इसलिए काम की करतूतों से दोनों ही संतप्त हो रहे हैं। पक्षि गण अपने पंखों के फड़ फडाने, नदियों में उँची-ऊँची तरङ्गों के उठने और वृक्षों में अनेक नवीन पल्लवों की हरियाली द्वारा उनमें अत्यन्त आनन्द विभोर की नाच दिखायी देती है। नारद की ऐसी बातें सुनकर

कौतुकाकुलितः शीघ्रमारुरोह रथं स्वकम् । रथेन काञ्चनाङ्गेन पतत्रिवरकेतनः ॥२०
प्रययौ पुण्डरीकाक्षः शङ्खचक्रगदाधरः । पारावतप्रतीकाशं चतुर्वेदमयं रथम् ॥२१
आस्थाय प्रययौ हृष्टो ब्रह्मा ब्राह्मणसंस्तुतः । मुनिभिश्चाप्सरोभिश्च यक्षरक्षोमहोरगैः ॥२२
वृतो रथेन प्रययौ भास्करो वारितस्करः । शैलजोरुपताकेन रथेनादित्यवर्चसा ॥२३
कात्यायनी प्रचलिता पञ्चवक्त्रेण केतुना । लम्बोदरः करशतगृहतीकनकोत्पलः ॥२४
प्रयातः स्वरतारूढः कृतकर्णकुलाकुलः । एवं देवः परिवृतो भगवान्गोवृषध्वजः ॥२५
रथारूढैरमूढात्मा मर्त्यलोकमवातरत् । यावत्पश्यति देवेशस्तावत्सर्वं तदक्षरम् ॥२६
नारदेन यथैवोक्तस्तावत्सर्वं तदक्षरम् । नारदेन यथैवोक्तं जगदानन्दनिर्भरम् ॥२७
देवैः सार्द्धं पशुपतिर्यावत्पश्यति विस्मितः । तावत्तस्यैव हि गणाः परब्रह्मसमञ्जसम्[1] ॥२८
गायन्ति केचित्सोत्कण्ठं लुण्ठन्त्यन्ये प्रहर्षिताः । वादयन्त्यपरे तुष्टा जहसुः केचिदुल्बणम् ॥२९
वादयन्त्यन्यथा वाद्यं गायन्त्यन्यथा गणाः । अन्येन्यथा प्रनृत्यन्ति चित्रं चैत्रस्य चेष्टितम् ॥३०
नीलोत्पलाभनयनैर्विलसत्प्रान्ततारकैः । क्रीडारतिभिरारब्धमालापैश्च सुरैरपि ॥३१
सुराणां क्षोभमालक्ष्य भगवान्गोवृषध्वजः । चिन्तयामास सुमहान्कार्ययोगो ह्युपस्थितः ॥३२

चन्द्रशेखर (शिव) अत्यन्त कौतकुवश अपने रथ पर बैठकर कमलनेत्र एवं शंख, चक्र एवं गदाधारी भगवान् विष्णु के साथ जो पक्षिराज गरुडरूप ध्वज वाले वाहन अपने काञ्चनमय रथ पर सुशोभित थे, चल दिये । कबूतर की भाँति सौन्दर्य पूर्ण उस चतुर्वेदमय रथ पर बैठे एवं ब्राह्मणों संस्तुत होते हुए ब्रह्मा ने हर्ष निमग्न होकर यात्रा की । मुनियों, अप्सराओं, यक्ष, राक्षस और महान् सर्पो से आवृत्त होने वाले जल तस्कर भास्कर देव ने अपने रथ पर बैठकर यात्रा की । आदित्य के समान तेजोमय और विशाल पताका से भूषित उस अपने रथ पर बैठकर पार्वती पाँच मुख वाले ध्वज से भूषित रथ पर बैठी हुई कात्यायनी और सैंकड़ों सुवर्ण कमल हाथों में लिए लम्बोदर ने अपने रथ पर बैठे उसकी ध्वनि द्वारा (सभी के) कानों को आकुल करते प्रस्थान किया । इस प्रकार देवों से घिरे गोवृषध्वज वाले भगवान् शंकर ने और अन्य रथारूढ देवाधीश्वरों समेत इस मर्त्य लोक में पहुँच कर चारों ओर देखा तो उन देव नायक को नारद की कही हुई सभी बातें अक्षरशः सत्य हुयीं एवं अक्षुण्ण (घटनाओं का) दर्शन हुआ।१६-२६। नारद ने जैसा कहा था कि सम्पूर्ण जगत् आनन्द विभोर हो रहा है, देवों समेत भगवान् पशुपति (शंकर) आश्चर्य चकित होकर उसे देख रहे थे कि उसी समय उनके गण भी उसे परब्रह्म के आनन्द का सामञ्जस्य करते हुए उसी में तन्मय हो गये। कोई उत्कण्ठित हो कर गान कर रहा था, कोई आनन्द विभोर होकर लोट रहा था, कोई वाद्य वादन कर रहा था और अन्य कुछ लोग अट्टहास कर रहे थे । वसन्त से प्रभावित होकर वे सभी गण विपरीत ढंग से ही गाना, बजाना और नांच कर रहे थे । देवगण भी अपने नील कमल की भाँति अपने सौन्दर्य पूर्ण नेत्रों द्वारा जिसमें कनीनिका तारा अपनी चञ्चलता से उनके हाव भाव प्रकट कर रही थी, संकेत करते हुए संगीत और क्रीडारति में निमग्न हो गये।२७-३१। इस प्रकार देवों को भी उसमें आसक्त देख कर भगवान् गोवृष ध्वज (शिव) चिन्तित होकर निश्चय करने लगे कि मेरे लिए यह एक

---

१. प्रारब्धमसमञ्जसम् ।

अनर्थमुत्थितं तद्वत्तद्विघाताय ये जनाः । नयन्ते येऽतिमूर्खत्वादापदोऽभिभवन्ति तान् ।।३३
वसन्तः स्वाभिभक्तत्वान्मान्यपुष्पाकरं यदा । उन्मादाढ्यजनो रक्ष्यः कार्यं कार्यद्वयं मम ।।३४
संचिंत्यैवं समानाय्य वसन्तं प्राह शङ्करः । समानीतो मासमेकं स्थातव्यं भवता त्विह ।।३५
सितपक्षः सहायोऽयं सर्वभूतसुखप्रदः । भवत्यतिमहानन्दो विशेषेण दिवौकसाम् ।।३६
यो यथा रथमारूढः समायातः समीक्षितुम् । वर्षेवर्षे स तेनैव संस्थानेनागमिष्यति ।।३७
कारयिष्यन्ति ये मर्त्या रथयात्रामहोत्सवम् । ते दिव्यभोगभोक्तारो भविष्यन्ति निरामयाः ।।३८
एवमाभाष्य भगवान्वसन्तं च ततः सुरैः । संस्तुतोऽथ नतश्चापि स्वस्थानमगमत्ततः ।।३९

युधिष्ठिर उवाच

रथः किमात्मकः कार्यः कार्या यात्रा कथं भवेत् । आरोपयेत्कथं देवान् रथे वद जगत्पते ।।४०

श्रीकृष्ण उवाच

सुविचित्रं चित्रतनुं श्रेष्ठकाष्ठमयं रथम् । सुदृढासं दृढाबन्धं सुचक्ररथकूबरम् ।।४१
अथ वा वंशविहितं नेत्रपट्टपटावृतम् । तारकाशतचित्रांशं पुष्पमालाविभूषितम् ।।४२
सितगोयुगसंयुक्तं पञ्चबाणपताकिनम् । छत्रचामरशोभाढ्यं स्थापयेद्भवनाङ्गणे ।।४३

महान् कार्य उपस्थित हो गया है, क्योंकि इस प्रकार के महान् अनर्थ उत्पन्न होने पर उसके विघटन के लिए जो लोग तत्काल उसी का समर्थन करते हैं, उनकी उस अति मूर्खता के कारण आपदाएँ उन्हें निर्मूल कर देती हैं । इसलिए मेरे समक्ष इस समय दो कार्य उपस्थित है स्वाभाविक होने के नाते वसन्त भी सुसम्मान्य एवं पुष्प समूहों से विभूषित रहे और इन उन्मादी जनों की रक्षा हो । इस भाँति निश्चित करने के उपरांत भगवान् शंकर ने सम्मान पूर्वक वसन्त को बुलाकर कहा—कृष्ण और शुक्ल पक्ष मिलाकर पूरे एक मास तक तुम्हारी ऐसी ही स्थिति रहेगी । समस्त प्राणियों को सुखी करने वाला यह शुक्ल पक्ष तुम्हारा सहायक होगा । इसमें विशेष कर देवों महान् को आनन्द प्राप्त होगा । इस समय इसमें जितने देवगण जिस भाँति के रथ पर बैठ कर यहाँ आये हैं, वे प्रतिवर्ष इसी प्रकार आकर इस उत्सव में सम्मिलित होते रहेंगे । इसलिए मर्त्य लोक निवासी जो इस रथयात्रा महोत्सव में सम्मिलित होंगे या स्वयं करेंगे वे नीरोग रहकर दिव्य भोगों के सदैव उपभोग करते रहेंगे । इस प्रकार वसन्त से कहने के अनन्तर भगवान् शंकर विनम्र देवों द्वारा संस्तुत होते हुए अपने स्थान चले गये ।३२-३९

युधिष्ठिर बोले—जगत्पते ! किस वस्तु का रथ होना चाहिए, यात्रा किस भाँति करनी चाहिए और उस पर देव को किस भाँति आसीन करे । आदि बातें मुझे बताने की कृपा करें ।४०

श्रीकृष्ण बोले—अत्यन्त विचित्र एवं मनोरम शरीर वाले वृक्ष का सौन्दर्य पूर्ण रथ का निर्माण कराना चाहिए जिसके अक्ष (धुरा के रहने वाला काष्ठ मूड़ी) स्थान स्थान का कील बन्धन अत्यन्त दृढ़ हो, सुन्दर चक्र (पहिये) और (धुरे के ऊपर रहने वाला लम्बा काष्ठ (हरसा), जो दृढ़ होने के लिए उस स्थान पर कुछ कूबड़ा सा रहता है । अथवा वांस का सुन्दर रथ बनाकर जो सूक्ष्म वस्त्रों से सुसज्जित सैकडों ताराओं की भाँति चित्र विचित्र चमकने वाला, एवं पुष्प मालाओं से विभूषित हो । उसमें श्वेत वर्ण के दो बैल जुते हों और पंच बारह (काय) की पताका से अलंकृत हो । इस भाँति छत्र चामर से

वैश्वदेवं ततः कुर्याद्ग्रहयज्ञविधानतः । चतुश्चरणकैर्मंत्रैर्विप्र शान्तिकपौष्टिकैः ॥४४
आरोपयेद्रथे देवं मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् । वेदोक्तैरथपौराणैर्गंधधूपाधिवासिते ॥४५
रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथिः ।
अभीषूणां महिमानं पनायत मनुः पश्चादनुयच्छन्ति रश्मयः ॥४६
शङ्खदुंदुभिनिर्घोषैः काहलानां च निःस्वनैः । हस्तदीपैः प्रज्वलितैस्तालकोलाहलेन च ॥४७
दोषासुखेन रमितं प्रेषणीयपुरः सरम् । महतोत्सवभारेण भ्रामयेत्परितो रथम् ॥४८
ताम्बूलानि रथे दद्यात्पुष्पमालायुतानि च । रथवोढ्रूप्रदद्यात्तु प्रेक्षकेभ्योऽप्यवारितम् ॥४९
यस्य यस्य गृहेभ्येति प्रेरितो रथिना रथः । तस्य तस्य भवेत्पूज्यः पुष्पधूपाक्षतादिभिः ॥५०
इतरोऽपि भवेत्पूज्यः सम्प्राप्ते गृहिणां गृहे । किं पुनर्जगतां भर्ता सर्वलोकमहेश्वरः ॥५१
कदाचिदक्षभङ्गः स्याद्ध्वजभङ्गोऽथ वा भवेत् । भज्येत वा युगमध्ये नहनं त्रुटयते यदि ॥५२
ब्राह्मणांस्तत्र सम्पूज्य होमः कार्यो विजानता । तिलैराज्येन पयसा येन सम्पद्यते सुखम् ॥५३
प्रेरणीप्रेक्षणीयैश्च भ्रामयित्वा रथोत्तमम् । स्थापयेन्नगरस्यान्तस्तत्र कुर्यान्महोत्सवम् ॥५४
दोलाग्राहैश्चक्रदोलाभ्रमैर्डमरकैस्तथा । विद्याधरीणां चरितमितराभिः प्रकाश्यते ॥५५

सुशोभित उस रथ को अपने गृह के प्राङ्गण में स्थापित करने के अनन्तर ग्रहों के पूजन हवन के साथ बलि वैश्वदेव और ब्राह्मण द्वारा शान्ति पौष्टिक कर्म को समंत्रक सुसम्पन्न करे। पश्चात् उस मंत्रवेत्ता को मूल मंत्र के उच्चारण द्वारा उस रथ पर देव को सुखासीन करने चाहिएजो वेदोक्त एवं पौराणिक मंत्रों के उच्चारण पूर्वक धूप और सुगन्ध से सुवासित किया गया हो। उस कुशल सारथी की इच्छानुसार जिस मार्ग से वह जाना चाहता हो, रथ में जुते घोडों को उसी मार्ग से ले जाये। पहले उनके महत्त्व को ध्यान में रखकर उन्हें यथेच्छ गमन करने के अनन्तर उनकी (लगाम की) रस्सियों को संभालना चाहिए। उस समय शंख, दुन्दुभी (नगाड़े) और महान् डमरू आदि वाद्यों की घोर ध्वनि हाथों में लिए प्रज्वलित दीपक के प्रकाश से प्रकाशित रात्रि में ताल (झांझ) वाद्य की झनकार होनी चाहिए। इस भाँति उस रात्रि में सुखपूर्वक महोत्सव के समारम्भ में भाँति-भाँति के मनोविनोद करते हुए चारों ओर रथ का परिभ्रमण कराये। उस महोत्सव के दर्शनार्थ उपस्थित जन समूह को ताम्बूल भूषित पुष्प मालाएँ रथ पर (देव निमित्त) अर्पित करना चाहिए और उसी भाँति सम्मान पूर्वक रथ वाहकों को भी प्रदान करना चाहिए। सारथी जिस जिस के गृह द्वार से रथ को भ्रमण कराते ले चले उन घरवालों को अपने घर के सम्मुख आने पर देवकी अर्चना पुष्प, धूप और अक्षत आदि से सुसम्पन्न करनी चाहिए।४१-५०। क्योंकि गृहस्थों के घर पहुँचने पर जब इतर सामान्य व्यक्ति की भी पूजा होती है तो जगत् के पालन पोषण करने वाले महेश्वर के आने पर क्या कहा जा सकता है अर्थात् उनकी तो और विशिष्ट अर्चना की जाती है। उस महोत्सव की यात्रा में कदाचित् अक्ष (मूड़ी या जूआ), ध्वज के भंग होने और जूए की रस्सी के टूटने पर ब्राह्मणों की पूजा तथा सविधान तिल, घृत और दूध आदि के हवन करे जिससे सुख की प्राप्ति हो। सारथी और दर्शनार्थी जन समूह उस श्रेष्ठ रथ को चारों ओर घुमाकर पश्चात् नगर के मध्य स्थान में स्थापित करते हुए महोत्सव को सुसम्पन्न करें। हिंडोले को पकड़ने वाले, चक्र की भाँति गोलाकार उसके घूमते रहने, और डमरक एवं अन्य कलाओं द्वारा भी विद्याधारियों के चरित प्रकाशित किये जाते हैं।५१-५५। पार्थ ! इस भाँति

एवं यः कुरुते पार्थ सुखदं तु रथोत्सवम् । तथैव पूजयेत् पार्थ उपवासपरो नरः ।।५६
सर्वव्याधिविहीनश्च सुखी स्याच्छरदां शतम् । यः कारयित्वा सौवर्णं रौप्यं वा रथमुत्तमम् ।।५७
वर्णकैश्चित्रितं दिव्यं दारुजं वा सुशोभनम् । स्वहस्तरचितं यश्च भास्कराय निवेदयेत् ।।५८
स मर्त्यलोके सुचिरात्सुखानि च समश्नुते । पूर्वोक्तविधिना भानुं भ्रामयित्वा रथे स्थितम् ।।५९
स्थापयेत्सर्वभागे तु गेयं वाद्यपुरः सरम् । दक्षिणे तु दिशो भागे द्वितीयेऽह्नि नयेद्रथम् ।।६०
तत्रापि जागरं कुर्याद्वाद्यगीतसुमङ्गलैः । अपरायां तृतीयेऽह्नि स्थापयेद्रथमुत्तमम् ।।६१
प्रेक्षणीयविनोदेन तां रात्रिमतिवाहयेत् । स्थापयेदुत्तरस्यां तु चतुर्थे दिवसे रथम् ।।६२
महायात्रां प्रकुर्वीत तत्राप्यद्भुतचेष्टितम् । पञ्चमे दिवसे प्राप्ते नगरान्तस्थितं रविम् ।।६३
पूजयित्वा विधानेन षष्ठेऽह्नि भवनं नयेत् । रथयात्राप्रसङ्गेन कथिता रथसप्तमी ।।६४
सर्वपापहरा पुण्या किञ्चिदन्यन्निबोध मे[1] । गौरी पूज्या तृतीयायां चतुर्थ्यां विघ्ननायकः ।।६५
पञ्चम्यां पङ्कजकरां पूजयेद्वा सरस्वतीम् । षष्ठ्यां शक्तिधरं स्कन्दं सप्तम्यां तु दिवाकरम् ।।६६
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां सम्पूज्यः शशिशेखरः । नवम्यां पूजयेच्चण्डीं चामुण्डां मुण्डमालिनीम् ।।६७
दशम्यामृषयः शान्ताः सर्वे व्यासपुरस्सराः । एकादश्यां चक्रपाणिं द्वादश्यां वा समर्चयेत् ।।६८
त्रयोदश्यां त्रिनेत्रोत्थवह्निना शान्तविग्रहम् । साधारणी तु सर्वेषां पौर्णमासी तिथिः स्मृता ।।६९

सुखप्रद रथोत्सव करने वाले के समान ही उपवास परायण पुरुष पूजित होते हैं । अनन्तर उन्हें नीरोग देह और सुखी जीवन प्राप्त होता है । सुवर्ण अथवा चाँदी द्वारा बनाये गये चित्र विचित्र या काष्ठ के अत्यन्त सुन्दर और रंगों से सुशोभित उस अपने हांथ के बनाये रथ को भास्कर के लिए सादर समर्पित करने पर मनुष्यों के चिरकाल का सुखी जीवन प्राप्त होता है । इस प्रकार पूर्वोक्त विधान द्वारा रथ पर भानुदेव को सुशोभित कर चारों ओर घुमाते हुए उसे गीत वाद्य से अलंकृत करना चाहिए । दूसरे दिन दक्षिण दिशा की ओर भ्रमण कराते समय गीत, वाद्य और मांगलिक ध्वनियों से उसे अलंकृत करते हुए जागरण करना चाहिए, तीसरे दिन पश्चिम दिशा में उस रथ को रखकर वहाँ दर्शनार्थी जनता को मनोविनोद द्वारा वह रात्रि व्यतीत कर चौथे दिन उत्तर दिशा की महायात्रा करके वह रात्रि भी आश्चर्य चकित करने वाले विनोदों से व्यतीत करनी चाहिए । पुनः पाँचवें दिन नगर के मध्य में उसी भाँति रखकर छठें दिन पूजन के उपरांत देवालय में प्रवेश करे । इस प्रकार रथयात्रा के प्रसङ्ग में मैंने तुम्हें समस्त पापापहारिणी और पुण्यस्वरूपा इस रथ सप्तमी का विधान और माहात्म्य सुना दिया ।५६-६४। अब कुछ अन्य विषय बता रहा हूँ, सुनो ! तृतीया तिथि के दिन गौरी, चतुर्थी में विघ्न विनायक, पञ्चमी में कमल हस्ता लक्ष्मी और सरस्वती, षष्ठी में शक्तिधारी स्कन्द, सप्तमी में सूर्य, अष्टमी चतुर्दशी में शशिशेखर (शिव), तथा नवम में मुण्ड माला भूषित चामुण्डा चण्डी देवी की आराधना पूजन करना चाहिए । उसी भाँति दशमी में व्यास पुरस्सर शांत ऋषिगण, एकादशी द्वादशी में चक्रपाणि विष्णु और त्रयोदशी में (शिव के) तीसरे नेत्र से प्रकट हुए अग्नि द्वारा शांत मूर्ति होने वाले काम देव की पूजा करनी चाहिए । किन्तु पूर्णिमा तिथि में सभी देवों की अर्चा की जाती है ।६५-६९। हिंडोले, दमनक (दौना) का व्युत्क्रम

---

१. किञ्चिदन्यन्न विद्यते ।

आन्दोलके मदनके रथयात्रासु चैव हि । व्युत्क्रमेणापि कर्तव्या तिथीनां कार्यगौरवात् ।।
यात्रा वासन्तिकी चेयं चित्तस्वास्थ्यकरी परा ।।७०

सम्यक्सुधाधवलिते भवने सुराणामन्तस्सुवस्त्रमणिमौक्तिकदानचित्रे ।
ताम्बूलकक्रमुकवारविलासिनीभिर्यात्रां विधाय भवतीह स भारतेशः ।।७१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
दमनकान्दोलकरथयात्रामहोत्सववर्णनं नाम चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३४

अथ पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मदनमहोत्सववर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

गौरीं विवाह्य जग्राह हरः पाशुपतं व्रतम् । उमापतिः पशुपतिर्ध्यानासक्तो बभूव ह ।।१
ब्रह्मादिभिः समामन्त्र्य विबुधैः पुत्रलब्धये । गौर्या मनोभिलषितपूरणाय प्रहर्षितैः ।।२
प्रहितः क्षोभणार्थाय समर्थ इति मन्मथः । ततो मारः स्मरः कामोऽप्याजगाम तमाश्रमम् ।।३
रतिप्रीतिमदोन्मादवसन्तश्रीसहायवान् । निधानवारुणीदर्पशृङ्गारैः परिवारितः ।।४
आम्राशोकवनोत्तंसो मालतीकृतशेखरः । वीणामृदङ्गसङ्गीतकोकिलाभृङ्गदूतकः ।।५

भी किया जा सकता है । वसन्त यात्रा चित्त के लिए स्वास्थ्यप्रद होती है । इस प्रकार सुधा की भाँति भली भाँति धवल मन्दिरों में जिसका भीतरी भाग वस्त्रों, मणियों, मोतियों और चित्तों से भूषित किया गया है, सुसज्जित एवं सुगन्धित ताम्बूलों के सेवन करने वाले वेश्याओं द्वारा उस यात्रा महोत्सव को सुसम्पन्न करने वाला भारत का आधिपत्य प्राप्त करता है ।७०-७१

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर सम्वाद में
दमनकान्दोलक रथयात्रामहोत्सव वर्णन नामक एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३४।

अध्याय १३५

मदनमहोत्सव का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—गौरी के साथ पाणिग्रहण संस्कार सुसम्पन्न कर लेने के उपरांत भगवान् शिव ने पाशुपत व्रत धारण किया, उसके अनुष्ठान में पशुपति उमापति अत्यन्त ध्यान मग्न हो गये थे । उसी बीच ब्रह्मादि समस्त देवगणों ने गौरी के पुत्र प्राप्ति रूप मनोभिलाष पूरा करने के लिए उस कार्य में समर्थ काम को नियुक्त किया क्योंकि 'मन को यही चञ्चल कर सकता है' यह उन लोगों को निश्चित था । तदुपरांत कामदेव ने, जिसे स्मर तथा मार भी कहा जाता है, उस (शिव के) आश्रम में आगमन किया ।१-३। उस समय रति और प्रीति को मदोन्मादिनी बनाने वाला वसन्त अपनी भी काम की सहायता कर रहा था । विधान, वारुणी (मद्य) दर्प और शङ्कर आदि से वसन्त युक्त था । उसके (विकसित) आम तथा अशोक के वन आभूषण, मालती किरीट, वीणा, मृदङ्ग, संगीत, कोकिल, शृंगी वाद्य रूप या दूत तथा वह

झल्लरीवाद्यसंघुष्टभाण्डागारिकलेखकः । पानमत्ताङ्गनारूढो हिन्दोलाश्चर्यमन्त्रिमान् ॥६
दक्षिणानिलगन्धाढ्यः कटाक्षेक्षितवर्षवान् । महाराजाधिराजो वा स्मरः प्राप्तो हरान्तिकम् ॥७
स पुष्पचापमाकृष्यमदनोन्मादनं शरम् । चिक्षेप त्रिपुरघ्नाय समाधेर्भंगहेतवे ॥८
बुद्ध्वा तं तस्य सङ्कल्पं रुद्रः क्रोधाज्ज्वलन् रुषा । ललाटाद्वह्निमसृजत्तृतीय नयनाद्धरः ॥९
कामो विलोकितस्तेन भस्मीभूतश्च तत्क्षणात् । दग्धं दृष्ट्वा स्मरं शोकाद्रतिप्रीतिस्थिते सदा ॥१०
करुणं विलपन्त्यौ ते सर्वमन्यद्दिशं गतम् । ततः शोकार्तहृदया गौरी रुद्रमुवाच ह ॥११
भगवन्नस्मदर्थे तं कामं निर्दग्धवानसि । तेनैते पश्य नार्यौ ते कामस्य रुदितः कथम् ॥१२
कुरु प्रसादं देवेशं रतिप्रीत्यै वृषध्वज । संजीवय स्मरं शम्भो मूर्तिमन्तं पुनः कुरु ॥१३
तच्छ्रुत्वा तु महादेवो हृष्टः प्रोवाच पार्वतीम् । उपप्लुतं जगत्सर्वं मन्मथेन शरीरिणा ॥१४
मया दग्धस्य कामस्य पुनरागमनं कुतः । किं तु ते मानयन्वाक्यं करोमि सफलं प्रिये ॥१५
अस्मिन्वसन्तसमये शुक्लपक्षे त्रयोदशी । अस्यां मनोभवो देवि भविष्यति शरीरवान् ॥१६
एतेन बीजभूतेन जगद्वर्णिष्यतेऽखिलम् । एवं वरमिमं दत्त्वा मन्मथाय युधिष्ठिर ॥१७
जगाम हिमवच्छृंगं कैलासं पार्वतीप्रियः । तदेतत्सर्वमाख्यातं[1] स्मरस्य चरितं नृप ॥१८
पूजाविधानमपरं कथयामि शृणुष्व तत् । अस्यां स्नात्वा त्रयोदश्यामशोकाख्यं नगं लिखेत् ॥१९

झांझ नामक वाद्य की ध्वनि को संतुष्ट करने वाला भाण्डागारिक लेखक, पान किये मत्ताङ्गना पर आरूढ़ हिंडोला नामक आश्चर्यकारी मंत्री, दक्षिण (मलय) की सुगन्धपूर्ण वायु, कटाक्ष के रूपी वर्षा आदि अनुचरों से सांगोपांग सन्नद्ध था। इस प्रकार सुसज्जित काम ने शिव जी के समीप पहुँच कर मदनोन्मादन (कामोन्माद करने वाला) नायक वाण पुष्प धनुष कर चढ़ा कर त्रिपुरहन्ता भगवान् शिव की समाधि भंग होने के लिए छोड़ा। काम की दृढ़ प्रतिज्ञा जान कर भगवान् रुद्र ने अत्यन्त क्रोध करने के नाते प्रज्वलित सा होते हुए रोष वश भाल स्थित अपने तीसरे नेत्र द्वारा प्रचण्ड अग्नि उत्पन्न किया। उनके देखते ही काम उसी क्षण भस्मसात् हो गया। काम को दग्ध होते देख कर शोकमान रति और प्रीति करुणापूर्ण विलाप करती हुई दूसरी दिशा की ओर चली गयी। अनन्तर पार्वती जी ने शोक प्रकट करते हुए शिव जी से कहा।४-११। भगवन् ! आप ने मेरे लिए काम को दग्ध कर दिया किन्तु देखिये, उसी कारण काम की ये दोनों स्त्रियाँ किस प्रकार करुण क्रन्दन कर रही है। वृषध्वज ! देवेश ! एवं शम्भो ! अतः इन रति प्रीति पर कृपा करते हुए आप काम को पुनः मूर्तिमान करे इसे सुनकर हर्षमग्न शिव ने पार्वती से कहा—शरीर धारण करने के नाते ही इस मन्मथ ने सम्पूर्ण जगत् को पीड़ित किया है। अतः मेरे द्वारा दग्ध होने पर काम का पुनः सशरीर आगमन कैसे हो सकता है। प्रिये ! किन्तु सम्मानार्थ तुम्हारे बात अवश्य सफल करूंगा—देवि ! वसन्त के समय शुक्ल त्रयोदशी के दिन काम को शरीर की प्राप्ति होगी और उसी बीज रूप से वह सारे जगत् को पुनः अपने अधीन करेगा। युधिष्ठिर ! इस प्रकार काम को वर प्रदान कर पार्वती प्रिय शिव ने हिमालय शिखर कैलास की यात्रा की। नृप ! काम के सम्पूर्ण आख्यान बता कर अब तुम्हें पूजा विधान बता रहा हूँ, सुनो ! । इस (वसंत) की शुक्ल त्रयोदशी के दिन सिन्दूर द्वारा रति

---

१. ते समाख्यातम्।

सिन्दूरजनितैरङ्गै रतिप्रीतिसमन्वितम् । कामदेवं वसन्तं च वाजिवक्रं वृषध्वजम् ।।२०
सौवर्णं वा महाराज वार्क्षं चित्रमथापि वा । लीलाविलासगमनं गर्वितं साप्सरोगणम् ।।२१
गन्धर्वगीतवादित्रप्रेक्षणीयसनाकुलम् । नन्द्यावर्तिरतिक्रीडाप्रीतिविद्याधरैर्युतम् ।।२२
मध्याह्ने भोजयेद्भक्त्या भक्ष्यैर्धूपैःस्रगम्बरैः । मन्त्रेणानेन कौन्तेय नरो नार्या समन्वितः ।।२३
नमो वामाय कामाय देवदेवाय मूर्तये । ब्रह्मविष्णुशिवेन्द्राणां मनः क्षोभकराय वै ।।२४
कृत्वैवमर्चयित्वा तु देवदेवं मनोभवम् । ततस्तस्याग्रतो देया मोदका मुखमोदकाः ।।२५
नानाप्रकारान्भक्ष्यांश्च कामो मे प्रीयतामिति । ततो विसर्जयेद्विप्रान्दत्त्वा युग्मं सदक्षिणम् ।।२६
स्वपतिं पूजयेन्नारी वस्त्रमालाविभूषणैः । कामोऽयमिति सञ्चिंत्य प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।।२७
मन्मथायतने तस्मिन्यजमानः सुहृद्वृतः । रात्रौ जागरं कुर्यात्सुखरात्रिर्यथा भवेत् ।।२८
कर्पूरकुंकुमक्षोदगन्धताम्बूलसर्जनैः । नानाप्रकारैर्भक्ष्यैश्च कुर्याद्रात्रौ महोत्सवम् ।।२९
दीपप्रज्वालनैर्नृत्यैः प्रेक्षणैः प्रेक्षणोत्सवैः । एवं यः कुरुते पार्थ वर्षेवर्षे महोत्सवम् ।।३०
वसन्तसमये प्राप्ते हृष्टस्तुष्टो नृपः पुरे । तस्य सम्वत्सरं यावल्लोको रोगैर्विमुच्यते ।।३१
सुभिक्षं क्षेममारोग्यं यशः श्रीः सौख्यमुत्तमम् । कामवर्षी च पर्जन्यस्तस्मिन् राष्ट्रे प्रजायते ।।३२
तुष्यते तु भृशं देवो द्वादशार्द्धार्द्धलोचनः । तथा कामश्च विष्णुश्च वसन्तश्च प्रजापतिः ।।३३
चन्द्रसूर्यादिकासर्वे ग्रहा ब्रह्मर्षयस्तथा । सर्वेऽपि तस्य तुष्यन्ति यक्षगन्धर्वदानवाः ।।३४

प्रीति समेत अशोक वृक्ष की रचना पूर्वक कामदेव और वसन्त की सुवर्ण प्रतिमा बनाये जो वाजिमुख और मीनध्वज से भूषित हैं।१२-२०। महाराज ! चित्रानक्षत्र, लीला विलास प्रकट करते हुए गमन करने वाले मदोन्मत्त अप्सरागण, गन्धर्वों के गायन वाद्य देखने सुनने वाले दर्शक गण, नद्यावर्ति रतिक्रीडा प्रीति तथा विद्याधरों की चित्र रचना करने के अनन्तर स्त्री पुरुषों को समंत्रक भक्ष्य भोज्य, धूप, मालाएँ और वस्त्र द्वारा अर्चा तथा मध्याह्न काल में भोजन कराये। कौंतेय ! सुन्दर, कुटिल, देवाधिदेव, मूर्तिमान्, ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव के मनः क्षोभ करने वाले काम को मैं नमस्कार कर रहा हूँ। इस प्रकार देवेश काम की पूजा करके उनके सम्मुख मुख सुखार्थ मोदक अर्पित करे। और अनेक भाँति के भक्ष्य भोज्य समर्पित करते हुए 'काम देव मुझ पर प्रसन्न हों' ऐसा कहने के अनन्तर युग्म वस्त्र समेत दक्षिणा ब्राह्मणों को प्रदान कर वस्त्र, माला और आभूषणों द्वारा स्त्रियों को ये साक्षात् कामदेव हैं, इस भावना से आनन्द विभोर होकर अपने पति की अर्चना करनी चाहिए। पुनः मन्मथ के उस मन्दिर में मित्रों समेत रात्रि जागरण करते हुए सुखपूर्ण रात्रि व्यतीत करें, कपूर, कुंकुम चूर्ण मिश्रित जल, सुगन्ध, ताम्बूल और अनेक भाँति के भक्ष्य भोज्य प्रज्वलित दीप, नृत्य, दर्शन एवं दर्शक गण समेत रात्रि में उस महोत्सव को सुसम्पन्न करना चाहिए। पार्थ ! प्रति वर्ष इस भाँति इस महोत्सव को वसन्त के समय राजाओं को हर्षमग्न होकर सुसम्पन्न करना चाहिए। इससे प्रजाओं का वर्ष भर रोग मुक्ति प्राप्त रहती है।२१-३१। उस राजा के राष्ट्र में सुभिक्ष, कल्याण, आरोग्य, यश, श्री, सौख्य, आवश्यकतानुसार जल वरसने वाले मेघ होते हैं, देवाधिदेव महादेव कामदेव, विष्णु, वसन्त, प्रजापति, चन्द्र सूर्य, आदि ग्रहगण, और ब्रह्मर्षि गण अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। उसी प्रकार यक्ष, गन्धर्व, दानव, असुर, यातुधान, सुवर्ण, पन्नग, तथा पर्वत वृक्षादि को अपार हर्ष

असुरा यातुधानाश्च सुपर्णाः पन्नगा[1] नगाः । दुष्टाः प्रयच्छन्ति सुखं तस्य कर्तुर्न संशयः ॥३५
चैत्रोत्सवे सकललोकमनोनिवासं कामं वसन्तमलयाद्रिमरुत्सहायम् ।
रत्या सहार्च्य पुरुषः प्रवरा च योषित्सौभाग्यरूपसुतसौख्ययुता सदा स्यात् ॥३६
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
मदनमहोत्सववर्णनं नाम पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३५

अथ षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भूतमात्र्युत्सववर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

भूतमातेति संहृष्टे ग्रामेग्रामे पुरेपुरे । गायन्नृत्यहँसल्लोकः सर्वतः परिधावति ॥१
उन्मत्तवत्प्रलपति क्षितौ पतति मत्तवत् । क्रुद्धवद्धावति पुरान्मत्तवत्कर्षते बहिः ॥२
मुखाङ्गभङ्गान्कुरुते लोके वातगृहीतवत् । भूतवद्भस्मगात्रं तु कर्दमानवगाहते ॥३
किमेष शास्त्रनिर्दिष्टो मार्ग किमुतः लौकिकः । मुह्यते मे मनःकृष्ण त्वं तु वक्तुमिहार्हसि ॥४

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु पार्थ प्रवक्ष्यामि यत्ते किञ्चिन्मनोगतम् । आस्तिकः श्रद्दधानश्च भवतीति मतिर्मम ॥५

प्राप्त होता है और वे कर्ता को सब भाँति सुखी करते हैं इसमें सन्देह नहीं । इस प्रकार चैत्र मास के इस उत्सव में सभी प्राणियों के मन में निवास करने वाले कामदेव, वसन्त, मलयानिल और रति की अर्चना करने वाले पुरुष अथवा नारी को सौभाग्य, रूप सौन्दर्य सुत एवं समस्त सौख्य प्राप्त होता है ।३२-३६
श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के संवाद में
मदन महोत्सव वर्णन नामक एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३५।

अध्याय १३६

भूतमाता के उत्सव का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—भूतमाता क्या है, इनके उपलक्ष्य में प्रत्येक ग्रामों और घरों में भूतमाता का पूजन करते हुए अत्यन्त हर्षमग्न जन समूह गान, नृत्य और हास्य करते चारों ओ दौड़ता दिखायी देता है, उन्मत्त की भाँति प्रलाप करता है, मतवाले के समान पृथिवी पर गिरता है, क्रुद्ध होकर नगर से भागता है, मदोन्मत्त के समान पकड़ कर बाहर से लाया जाता है, वात (वायु) दूषित प्राणी की भाँति मुख आदि अंग भंग करने लगता है, एवं देह में भस्म लगाये भूत के समान कीचड़ में गिर जाता है । क्या यह मार्ग शास्त्र निर्दिष्ट है अथवा लौकिक ! कृष्ण इस बातों में मेरा मन सर्वथा मुग्ध है अतः इसे बताने की कृपा करें।१-४

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! मैं तुम्हारे मन की अभिलाषा अवश्य पूरी करूँगा, सावधान होकर सुनो !

---

१. पन्नगाः ।

पार्वत्या सहितः पार्थ मन्दरे चारुकन्दरे । क्रीडन्नास्ते मुदा युक्तो दिव्यक्रीडनकैर्हरः ॥६
हंसोन्नतगतिं चारुकुम्भभ्राजिकुचद्वयम् । सिञ्जत्सद्रशनां हृष्टां दृष्ट्वा गौरीं जगद्गुरुः ॥७
दग्धकामोऽपि च हरः सन्दीप्तमदनोऽभवत् । निःसृतां कामयामास महार्हशयने शिवः ॥८
रतस्थयोस्तयोर्जातं दिव्यं वर्षशतं यदा । तदा देवीसमुच्छ्रायनिरोधान्निर्गता बहिः ॥९
मूत्रोदकात्समुत्तस्थौ नारी निर्दारितोदरा । कृष्णा करालवदना पिङ्गाक्षा मुक्तमूर्द्धजा ॥१०
कपालमालाभरणा बद्धपिण्डोर्ध्वपिण्डिका । खट्वाङ्गकं कालधरा मुद्राङ्कितकरा शिवा ॥११
व्याघ्रचर्माम्बरधरा रणत्किंकिणिमेखला । डमड्डमड्डमरुका फूत्कारापूरिताम्बरा ॥१२
तस्याः पार्श्वानुजाश्चान्या गीतवाद्यलयानुगाः । उत्तालतालसबला नृत्यन्ति च हसन्ति च ॥१३
कपालखट्वाङ्गधरा गजचर्मावगुण्ठिताः । तस्या तथैव शङ्कराज्जातस्तद्रूपाभरणः पुमान् ॥१४
अनुगम्यमानो बहुभिर्भूतैरतिभयंकरैः । सिंहशार्दूलवदनै रदनोल्लिखिताम्बरैः ॥१५
एकीभूतैः क्षणेनैव तौ भवानीभवोद्भवौ । दृष्ट्वा हृष्टमना देवः प्राह देवीं सुविस्मिताम् ॥१६
कल्याणि पश्य पश्यैतौ मत्त्वदङ्गसमुद्भवौ । बीभत्साद्भुतशृङ्गारवरायुधविधारिणौ ॥१७
भ्रातृभाण्डौ यथा देवि तद्वदेतौ मतौ मम । नृनार्योरन्तरं किञ्चित्सादृश्यात्प्रतिभासयेत् ॥१८

क्योंकि 'आस्तिक श्रद्धालु होते हैं' यह मेरा निश्चिय मत है। पार्थ एक बार भगवान् हर मन्दराचल की रमणीयक गुफा में उन दिव्य साधनों समेत पार्वती के साथ क्रीडा कर रहे थे। आनन्द विभोर जगद्गुरू शिव उस समय गौरी पार्वती जी को देखकर, जो हंस की भाँति उन्नत गति, रमणीयक (जप(कला की भाँति स्तनों से भूषित, एवं मधुर ध्वनि करने वाली रशना (कटि की करधनी) से अलंकृत हो रही थी, अपने को संभाल न सके। काम को दग्ध करने पर भी उस समय वे मदन ज्वाला से संतप्त होने लगे। अनन्तर बहुमूल्य सुसज्जित शय्या पर उन्होंने उनके साथ काम क्रीड़ा आरम्भ किया। रति कर्म में प्रवृत्त उन दोनों के दिव्य सौ वर्ष बीत जाने पर समुच्छ्राय निरोध मूत्रोत्सर्ग न करने के नाते उसके ऊपरी भाग (पेडू) में सूजन होने के कारण पार्वती उठकर तदर्थ बाहर चली गई। (उनके) उस मूत्रोदक द्वारा ऐसी स्त्रियों की उत्पत्ति हुई जो विदारितोदरा, काली देह, कराल मुख, पिङ्गल नेत्र, खुले केश, कपाल (शिर) की माला से भूषित, मोटी-मोटी स्नायु (नसों) से बँधी देह विशेषकर ऊपरी भाग, हाथ में खट्वांग और कंकाल लिए मुद्रा से अंकित, अमंगलवेष, बाघम्बर पहने कोलाहल (शोर) करने वाली रशना (कटि-आभूषण) से अलंकृत तथा अपने डम, डुम, डुमरका, एवं चीत्कार शब्दों की ध्वनि से नभ मण्डल को अशान्त कर रही थी। उनके पार्श्वभाग से उनकी अनुजाएँ खड़ी थी, जो गीत वाद्य के साथ अपने लय स्वरों में मग्न हो रही थी, और ऊपर हाथ उठाये ताली बजा कर हँसती हुई नाँच रही थी। वे स्त्रियाँ भी कपाल, खट्वाङ्ग लिए गजचर्म पहने थी। उसी प्रकार शंकर द्वारा भी तद्रूप और आभूषण भूषित पुरुषों की उत्पत्ति हुई। उनके पीछे अति भयंकर असंख्य भूत गण चल रहे थे, जिनके सिंह, व्याघ्र के समान मुख और आकाश में पहुँचने वाले दाँत थे। भवानी और (शिव) के द्वारा उत्पन्न वे स्त्री पुरुष क्षण भर में आपस में मिलकर एक दल बन गये। उसे देख कर हर्षमग्न महादेव ने आश्चर्य चकित देवी से कहा।५-१६। कल्याणि! मेरे और तुम्हारे अंग से उत्पन्न हुए इन प्राणियों को देखो—किस प्रकार का वीभत्स और अद्भूत शृंगार और अस्त्रादि धारण किये है। देवि! मेरी सम्मति में भातृ भाण्ड (वेश्याओं के

भ्रातृभाण्डां भूतमाता तथैवोदकसेविका । संज्ञात्रयं तयोः कृत्वा ततः प्रादाद्वरं हरः ॥१९
भुक्त्वार्होपगतां चैतां जरत्तरुतले स्थिताम् । सेवयिष्यति ये भक्त्या जलसम्पूर्णकण्डुकैः ॥२०
चन्दनेन समालभ्य पुष्पधूपैरथार्च्य ताम् । भोजयेत्क्षिप्रदा चैव कृशरापूपपायसैः ॥२१
य एवं कुरुते देवि भक्तिभावेन भावितः । स पुत्रपशुवृद्धिं च शरीरारोग्यमाप्नुयात् ॥२२
न शाकिन्यो गृहे तस्य न पिशाचा न राक्षसाः । पीडां कुर्वन्ति शिशवो यान्ति वृद्धिं निरामयाः ॥२३

युधिष्ठिर उवाच

कदा पूजा प्रकर्तव्या भूतमातुः सुखार्थिभिः । पुरुषैः पुरुषव्याघ्र एतन्मे वक्तुमर्हसि ॥२४

श्रीकृष्ण उवाच

सर्वत्रैषा भगवती बालानां हितकारिणी । नामभेदैः क्रियाभेदैः कालभेदैश्च पूज्यते ॥२५
प्रतिपत्प्रभृति ज्येष्ठे यावत्पञ्चदशी तिथिः । तावत्पूजा प्रकर्तव्या प्रेरणैः प्रेक्षणीयकैः ॥२६
विकर्मफलनिर्देशः पाण्डवानां विडम्बनम् । प्रदृश्यन्ते हास्यपरैर्नरैरद्भुतचेष्टितैः ॥२७
विश्वास्य धनलोभेन सन्ध्यायां निहतः पथि । आरोहणं च शूलाग्रे न पश्यन्तं हि पश्यति ॥२८
दृष्टो भवद्भिः संहृष्टः परपारावमर्शकः । छित्त्वा स्वहस्तैर्यद्दत्तो विभुना मुख्यमोदकः ॥२९
शीर्णसूक्ष्मेण पत्रेण बाला मालानुमोदिताः । मुष्कभुग्रासमारूढो मुखं कृत्वा च पश्चिमे ॥३०

भडुवों) के समान ये सब दिखायी दे रहे हैं। क्योंकि इन स्त्री पुरुषों की समानता में कुछ थोडा ही अन्तर दिखायी देता है। उपरान्त भगवान् हर ने भातृ भाण्ड, भूतमाता और उदक सेविका, उनकी ये तीन संज्ञाएँ निश्चित कर उन्हें वर प्रदान किया—भोजनोपरांत पूजनीय और जीर्ण वृक्ष के नीचे स्थित इन स्त्रियों की भक्ति पूर्वक जल पूर्ण कण्डुक, चन्दन लेप, और पुष्प, धूपादि से अर्चा करके कृशरान्न (खिचड़ी) पूआ तथा खीर का भोजन अर्पित करे। देवि ! इस प्रकार भक्तिभाव पूर्ण उनकी अर्चा करने वाले मनुष्य को पुत्र पशु वृद्धि समेत नीरोग शरीर प्राप्त होता है। उसके घर में शाकिनी पिशाच और राक्षसों की पीड़ा कभी नहीं होती है। शिशुगण नीरोग रहकर वृद्धि प्राप्त करते हैं।१७-२३

युधिष्ठिर बोले—पुरुष व्याघ्र ! सुखेच्छुक पुरुषों को उस भूतमाता की अर्चा कब करनी चाहिए, बताने की कृपा करें।२४

श्रीकृष्ण बोले—बालकों को सभी भाँति हित करने वाली इस भगवती का नाम भेद, क्रियाभेद और कालभेद से सर्वत्र पूजन होता है। ज्येष्ठमास की प्रतिपदा तिथि से आरम्भ कर पूर्णिमा तक दर्शनार्थी आदि सभी मनुष्यों को उनका पूजन करना चाहिए। निन्दित कर्मों के फलों का निर्देश करना पाण्डवों के लिए व्यर्थ एक विडम्बना मात्र समझता हूँ—आश्चर्य चकित कर्म करने पर भी वे मनुष्य हास्य करते हुए दिखायी देते हैं जो धन के लोभ से विश्वास दिलाकर संध्या समय मार्ग में ही उसका प्राणान्त कर देते हैं, वे शूली पर चढ़ने के लिए उसे देखते हुए भी नहीं देखते हैं (अनदेखी करते हैं)। (कही कोई कह रहा है)—स्वामी ने अपने हांथों से तोड़कर जो मगद (लड्डू) के टुकड़े प्रदान किये हैं उसकी आलोचना करते हुए यह कितना हर्षमग्न हो रहा है, इसे आप लोगों ने देखा है। कहीं शीर्ण (फटे) और सूक्ष्म पत्तों की माला पहने बालाएँ हर्ष मग्न हो रही हैं, कहीं अण्डे का भक्षण करने वाला पुरुष गधे पर बैठा कर

हे जनाः किं न पश्यध्वं स्वामिद्रोहकरं परम् । करपत्रैर्विदार्यं तमुच्छलच्छोणितच्छटम् ॥३१
चरैः किलासैः सम्प्राप्तः सर्वोद्वेगकरः परम् । दण्डप्रहाराभिहतो नीयते दण्डपाशिकैः ॥३२
प्रेक्षकैर्वेष्टितः स्तेनो रटत्येष दिमण्डितः । संयम्य नीयतेयं तु मूर्खः क्रौर्याविलेक्षणः ॥३३
सितकेशं सितश्मश्रु सिताम्बरधरं द्विजम् । वटचेष्टाचपेटाभिर्हन्यमानं न पश्यत ॥३४
गृहान्निष्क्रम्यतां रण्डा वृद्धो भूत्वाप्यसौ स्त्रियाः । स्वस्या असौ न कुरुते मूढो भरणपोषणम् ॥३५
भैरवाभरणोत्ताला व्यालयज्ञोवीतिनः । प्रदत्त्वा ताण्डवपदान्पश्यध्वं ध्वान्तदीपकान् ॥३६
निर्वेदकोऽस्य हृदये न किंचिदपि तिष्ठति । गृहीतं यदनेनेदं बालेनापि महाव्रतम् ॥३७
रक्तदृष्टकाककृष्णांगं शबरं किं न पश्यत् । तरुकोटरान्तगतान्छित्वा च शुकशावकान् ॥३८
बहुभिः कोष्ठकीकृत्य शरौघैः शकलीकृतम् । विमुक्तढक्काहंकारसुप्रहारं निरीक्षत ॥३९
इमां कृष्णार्द्धवदनां गृहीतां सिन्दुरार्विताम् । विमुक्तकेशां नृत्यन्तीं पश्यध्वं योगिनीमिव ॥४०
गम्भीरतूर्यध्वनिना प्रबुद्धां वृत्तताण्डवाम् । एवं प्रेक्षणकं कृत्वा न येत्वृक्षतले च ताम् ॥४१
एवं कृते न दारिद्र्यं न च दुःखं भवेन्नृणाम् । ॥४२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
भूतमात्रुत्सववर्णनं नाम षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३६

पश्चिमाभिमुख खड़ा किया गया है ।२५-३०। कहीं लोग कह रहे हैं—मनुष्यों ! स्वामी से बैर करने वाले को देखो ! आरा से विदीर्ण किये जाने के नाते जिसके बदन से रक्त के फुहारे निकल रहे हैं । कहीं छल कपट करने वाले राजदूत आदि, जो सभी को अत्यन्त अशान्त करते रहते हैं, दंड पाशधारी यमदूतों के दण्डों से आहत हो रहे हैं । कहीं कुछ लोगों ने चोर को घेर लिया है और वह इधर-उधर की बातें कहने की रट लगा रहा है । कहीं क्रूद्ध द्रष्टि से देखने वाला पुरुष अपने कर्मका परिणाम भोग रहा है । श्वेतकेश, श्वेतदाढ़ी मोछ और श्वेतवस्त्र धारण किये कोई ब्राह्मण लड़कों की भाँति चपेटा (चपत) से पीड़ित हो रहा है नहीं देख रहे हो ! कहीं कोई पुरुष वृद्धावस्था में भी 'रांड को घर से निकाल दो' की धुनि में है, वह मूढ़ अपनी ही स्त्री का भरण पोषण नहीं कर रहा है । कहीं कुछ लोग स्वयं भीषणाकार होने पर भी आभूषण और सर्प की भाँति मोटे यज्ञोपवीत धारण किये दिखायी दे रहे हैं, जो अपने अपने ताण्डव गमन से दीपकों को अशान्त करते (बुझाते) रहते हैं । क्योंकि बाल्यावस्था में जिसने महाव्रत को धारण किया है, उसके कारण इनके हृदय में दुःख नामक की कोई वस्तु है ही नहीं । रक्तवर्ण नेत्र और कौवे की भाँति सर्वाङ्ग काले शबर (जंगली कोल) को नहीं देख रहे हो, जो वृक्षों के कोटरों में बैठे पक्षियों के बच्चों को मार कर बाणों द्वारा खण्डशः करके उनकी राशि बनाये हैं । ढक्का (डमरू) के त्याग पूर्वक अपने हुंकार शब्द का ही प्रहार करने वाले को भी देखो और इसे भी देखो, जिसका आधा बदन काला, गृहीत, सिन्दूर भूषित, केश खोले योगिनी की भाँति नाच रही है तथा जो गम्भीर नगाड़े की ध्वनि से प्रवृद्ध ताण्डव जैसा लग रहा हो । इस प्रकार का प्रेक्षण दर्शन बनाकर उसे वृक्ष के नीचे ले जाना चाहिए । क्योंकि ऐसा करने पर मनुष्यों को दारिद्रय और अन्य दुःख नहीं होते ।३१-४२

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवाद में
भूतमाता का उत्सव वर्णन नामक एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३६।

अथ सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

रक्षाबन्धनवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि बलिरक्षाविधिं नृप । तं शृण्वेकाग्रमनसा रसमासाद्गदितं मया ॥१
पुरा देवासुरे युद्धे दानवासुरनिर्जिताः । शुक्रं बलिं पुरः कृत्वा ययुः शुक्र उवाच तन् ॥२

शुक्र उवाच

न विषादस्त्वया कार्यः कार्याणां गतिरीदृशी । दैवाद्भवन्ति भूतानां काले जयपराजयाः ॥३
सन्धानं सह शक्रेण क्रियतामयनद्वयम् । अजेयः सर्वशत्रूणां कृतः शच्या शचीपतिः ॥४
रक्षाबन्धप्रभावेन दानवेन्द्रो जितो महान् । वर्षमेकं प्रतीक्षस्व ततः श्रेयो भविष्यति ॥५
भार्गवेणैवमुक्तास्ते दानवा विगतज्वराः । तस्थुः कालं प्रतीक्षन्तो यथोक्तं गुरुणा तथा ॥६
एष प्रभावो रक्षायाः कथितस्ते युधिष्ठिर । जयदः सुखदश्चैव पुत्रारोग्यधनप्रदः ॥७

युधिष्ठिर उवाच

क्रियते केन विधिना रक्षाबन्धः सुरोत्तम । कस्यां तिथौ कदा देव एतन्मे वक्तुमर्हसि ॥८

अध्याय १३७

रक्षाबन्धन का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—नृप ! मैं तुम्हें बलि रक्षाविधान की विस्तृत व्याख्या बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! पहले समय देवों राक्षसों के युद्ध में देवों द्वारा असुरों के पराजित होने पर वे दानवगण बलि को सामने किये शुक्र के पास पहुँचे, शुक्र ने उनसे कहा—१-२

शुक्र बोले—तुम्हे इस समय विषाद न करना चाहिए क्योंकि कार्यों की गति ऐसी ही होती है—समयानुसार प्राणियों का जय पराजय दैवगति से हुआ करती है। दोनों अयन (सूर्य के उत्तरायण और दक्षिणायन) के समय (वर्ष) तक इन्द्र के साथ सभी कार्यों की सन्धि करो, शची (इन्द्राणी) ने अपने पति को सम्पूर्ण शत्रुओं के अजेय बनाया है और उसी रक्षा बन्धनों के प्रभाव से महान् दानवेन्द्र को भी उन्होंने जीत लिया है इसलिए एक वर्ष तक प्रतीक्षा करो पश्चात् तुम्हारा कल्याण होगा। शुक्र के ऐसा कहने पर दानवों का सन्ताप दूर हुआ और वे अपने गुरु (शुक्राचार्य) के कथनानुसार एक वर्ष तक प्रतीक्षा करते अपने काल यापन करने लगे। युधिष्ठिर ! मैंने तुम्हें यह रक्षा का प्रभाव बताया है, जो जप और सुखप्रद होते हुए आरोग्य एवं धन का भी प्रदायक होता है।३-७

युधिष्ठिर बोले—सुरोत्तम ! यह रक्षाबन्धन कार्य किस विधान द्वारा किस तिथि में और किस समय सुसम्पन्न किया जाता है, यह सभी बातें बतानें की कृपा कीजिये। जैसे जैसे भगवान् अपने आश्चर्य

यथा यथा हि भगवान्विचित्राणि प्रभाषते । तथा तथा न मे तृप्तिर्बह्वर्थाः शृण्वतः कथाः ।।९

श्रीकृष्ण उवाच

घनावृतेऽम्बरे पार्थ शाद्वले धरणीतले । सम्प्राप्ते श्रावणे चैव पौर्णमास्यां दिनोदये ।।१०
स्नानं कुर्वीत मतिमाञ्श्रुतिस्मृतिविधानतः । ततो देवान्पितृंश्चैव तर्पयेत्परमाम्भसा ।।११
उपाकर्मादिवेदोक्तमृषीणां चैव तर्पणम् । कुर्युश्च ब्राह्मणाः श्राद्धं देवमुद्दिश्य शक्तितः ।।१२
शूद्राणां मन्त्रसहितं स्नानं दानं च शस्यते ।।१३
ततोपराह्णसमये रक्षापोटलिकाः शुभाः । कारयेच्चाक्षतैः शस्तैः सिद्धार्थैर्हेमभूषिताः ।।१४
वस्त्रैर्विचित्रैः कार्पासैः क्षौमैर्वा मलवर्जितैः । विचित्रतरैर्ग्रथिताः स्थापयेद्भाजनोपरि ।।१५
कार्या गृहस्य रक्षा गोमयरहितैः सुवृत्तकुण्डुकैः । दूर्वावर्णकसहितैः सकलदुष्कृतोपशान्तये ।।१६
उपलिप्तगृहमध्ये चतुष्कोपरि न्यसेच्छुभं पीठम् । तत्रोपविशेद्राजा सामात्यः सपुरोहितः ससुहृत् ।।१७
वेश्याजनेनसहितो मङ्गलशब्दैः सुहसितेश्चिह्नैः । रक्षाबन्धः कार्यः शान्तिध्वनिना नरेंद्रस्य ।।१८
देवद्विजातिशस्ता सुस्त्रीरर्घ्यैः समर्चयेत्प्रथमम् । तदनुपुरोधा नृपतिं रक्षां बध्नीत मन्त्रणे ।।१९
येन बद्धो बलीराजा दानवेन्द्रो महाबलः । तेन त्वामभिबध्नाभिः रक्षे मा चल मा चल ।।२०
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चान्यैश्च मानवैः । कर्तव्योरक्षिकाबन्धो द्विजान्सम्पूज्य भक्तितः ।।२१

चकित करने वाले प्रवचनों को सुनाते जाते हैं, जिसमें अनेक भाँति के मनोरथ को सफल करने वाली कथाएँ निहित हैं वैसे वैसे उसके सुनने पर भी मुझे तृप्ति नहीं हो रही है ।८-९

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! घनाच्छन्न आकाश और शस्य श्यामला पृथिवी जिस समय होती है, उसी सावन मास की पूर्णिमा के दिन सूर्योदय काल में स्मृति विधान द्वारा स्नान, उस परम पुनीत जल द्वारा देव पितृतर्पण, वेदविहित उपाकर्मादि कर्म, ऋषियों के तर्पण और देवोद्देश्य से श्राद्ध कर्म ब्राह्मण को यथाशक्ति सुसम्पन्न करना चाहिए, शूद्रों को भी समंत्रक स्नान दान करना प्रशस्त कहा गया । उसी दिन अपराह्ण समय में प्रशस्त अक्षत, राई और सुवर्ण भूषित नये सूती अथवा रेशमी वस्त्र की सुन्दर पोटली बनाकर, जो अत्यन्त विचित्र बनायी गयी हो, किसी पात्र के ऊपर स्थापित करे । अनन्तर समस्त दुष्कर्मों के शान्त्यर्थ गोमय (गोबर) रहित सुव्रत्त कुंडुक और दूर्वा द्वारा गृह की रक्षा करने के लिए पुते घर के प्रांगण की वेदी पर सुसज्जित एवं सुन्दर पीठासन पर अपने अमात्य पुरोहित, और मित्रों एवं वेश्याओं समेत राजा को बैठना चाहिए। तदुपरांत मांगलिक शब्दों के उच्चारण एवं शान्तध्वनि पूर्वक किसी मनोरम चिह्न (सूत्र आदि) द्वारा राजा का रक्षाबन्धन कार्य सुसम्पन्न करे। उस समय सर्वप्रथम देव और ब्राह्मण की प्रशस्त देवियों को अर्घ्य प्रदान करके पुरोधा (पुरोहित) को चाहिए राजा के (हाथ में) रक्षा बाँधते समय 'येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः । तेन त्वामभिबध्नामि रक्षे माचल माचल' जिस (सत्य) वचन द्वारा महाबली राक्षसराज बलि बाँधे गये थे, उसी से मैं भी तुम्हें बाँध रहा हूँ, रक्षे ! कभी भी चल न होना अर्थात् शिथिल बन्धन न होकर सर्वदा दृढ़ रहना। इसी भाँति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों और अन्य मानवों को भी भक्ति पूर्वक ब्राह्मणों की पूजा करने के उपरांत रक्षाबन्धन करना चाहिए।१०-२१। क्योंकि इस

अनेन विधिना यस्तु रक्षिकाबन्धमाचरेत् । स सर्वदोषरहितः सुखी सम्वत्सरं भवेत् ।।२२
यः श्रावणे स्रवति शीतजले नरेन्द्र रक्षाविधानविधिमाचरते मनुष्यः ।
आस्ते सुखेन परमेण च सर्वमेकः पुत्रप्रपौत्रसहितः ससुहृद्वृतश्च ।।२३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
श्रावणपूर्णिमारक्षाबन्धनविधिवर्णनं नाम सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३७

अथाष्टात्रिंदधिकशततमोऽध्यायः

महानवमीव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पुण्या महानवम्यस्ति तिथीनां प्रवरा तिथिः । सानुष्ठेया सुरैः सर्वैः प्रजापालैर्विशेषतः ।।१
भवानुत्थापयेत्पार्थ सम्वत्सरसुखाय वै । भूतप्रेतपिशाचानां प्रीत्यर्थं चोत्सवाय वा ।।२

युधिष्ठिर उवाच

कस्मात्कालात्प्रवृत्तेयं नवमी महशब्दयुक् । किमादावुपपन्नोऽस्ति भगवन्नदमीविधिः ।।३
यशोदागर्भसम्भूतेरुत यात्रा प्रवर्तते । उताहो पूर्वमेवासीत्कृतत्रेतायुगादिषु ।।४
यदस्यां प्राणिनः केचिन्मन्यन्ते घातयन्ति च । हतानां प्राणिनां तेषां का गतिः पारलौकिकी ।।५

विधान द्वारा रक्षा बन्धन कार्य सुसम्पन्न करने वाला सम्पूर्ण दोषों से रहित होकर वर्ष पर्यन्त सुखी रहता है । इस प्रकार नवीन मेघ के शीतल जल (वर्षा द्वारा) झड़ी लगने वाले सावन के मास में पूर्णिमा के दिन सुरेन्द्र की रक्षा विधान द्वारा रक्षा बन्धन कार्य सुसम्पन्न करने वाला पुरुष अपने पुत्र पौत्र आदि परिवार समेत समस्त सुखों का अनुभव करता है ।२२-२३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के संवाद में
श्रावणरक्षाबन्धन विधान वर्णन नामक एक सौ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३७।

अध्याय १३८

महानवमी व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पुण्यस्वरूपा उस महानवमी के दिन,जो अन्य सभी तिथियों में सर्वश्रेष्ठ, देवों तथा विशेष कर राजाओं को (दुर्गा पूजन) का अनुष्ठान अवश्य करना चाहिए । पार्थ ! वर्षपर्यन्त अपने सुखार्थ एवं भूत प्रेत पिशाचों की प्रसन्नता तथा उत्सव के व्याज से तुम्हें भी इस दिन, अनुष्ठान करना आवश्यक है ।१-२

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! यह पूजनीय नवमी तिथि का विधान आदिकाल से ही चला आ रहा है, या यशोदा जी के गर्भ से उत्पन्न होने वाली देवी की यात्रा काल अथवा सत्य त्रेता आदि युगों के आरम्भ से प्रज्वलित है ? केशव इस तिथि के दिन जिस प्राणी का बध होता है, उसकी और स्वयं बध करने वाले,

स्वयं घ्नतां घातयतामनुमोदयतां तथा । एतन्मे संशयं पूर्वं वक्तुमर्हसि केशव ॥६

श्रीकृष्ण उवाच

पार्थ या परमा शक्तिरनन्ता लोकविश्रुता । आद्या सर्वगता शुद्धा भावगम्या मनोहरा ॥७
आद्याष्टमी कलाकाली द्वितीया सर्वमङ्गला । माया कात्यायनी दुर्गा चामुण्डा शङ्करप्रिया ॥८
ध्यायन्ति यां योगरतां सा देवी परमेश्वरी । रूपभेदैर्नामभेदैर्भवानी पूज्यते शिवा ॥९
अष्टम्यां तु नवम्यां तु देवदानवराक्षसैः । गन्धर्वैरुरगैर्यज्ञैः पूज्यते किन्नरैर्नरैः ॥१०
अन्येष्वपि युगेष्वादौ सृष्टेः पूर्वं प्रदर्शिता । पूज्यतेयं पुरादेवी तेभ्यः पूर्वतरैः शुभैः ॥११
आश्वयुक्छुक्लपक्षे च याष्टमी मूलसंयुता । सा महानवमी नाम त्रैलोक्येऽपि सुदुर्लभा ॥१२
कन्यागते सवितरि शुक्लपक्षेऽष्टमी तु या । मूलनक्षत्रसंयुक्ता सा महानवमी स्मृता ॥१३
अष्टम्यां च नवम्यां च जगन्मातरमम्बिकाम् । पूजयित्वाऽश्विने मासि विशोको जयति द्विषः ॥१४
सन्तर्जयन्ती हुंकारैः खड्गादिभिरहर्निशम् । नवम्यां पूजिता देवी ददाति नवमं फलम् ॥१५
सा पुण्या सा पवित्रा च सा धर्मसुखदायिनी । तस्मात्सदा पूजनीया चामुण्डामुण्डमालिनी ॥१६
तस्यां यद्युपयुज्यन्ते प्राणिनो महिषादयः । सर्वे ते स्वर्गतिं यान्ति घ्नतां पापं न विद्यते ॥१७
न तथा बलिदानेन पुष्पधूपविलेपनैः । यथा संतुष्यते लोके महिषैर्विन्ध्यवासिनी ॥१८

कराने वाले एवं उसका अनुमोदन करने वाले प्राणी की पारलौकिक गति कैसी होती है, इन मेरे संदेहों को दूर करने की कृपा करें।३-६

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! परम शक्ति, अनन्ता एवं लोक प्रख्यात आद्या भगवती शिव का परमेश्वर, सर्वगता, शुद्धा, एकमात्र भावगम्या एवं सर्वमनोहरा है तथा आद्या, अष्टमी कला, काली सर्वमंगला, माया, कात्यायनी, दुर्गा, चामुण्डा, एवं शंकरप्रिया के नाम से पूजित हो रही है सभी लोग सदैव ध्यान पूजन करते हैं, यही नहीं, अपितु अनेक नाम रूपों द्वारा उनकी पूजा की जा रही है। अष्टमी नवमी के दिन देव, दानव, राक्षस, गन्धर्व नाग, किन्नर, नर यज्ञ द्वारा उस भवानी की सदैव पूजा करते है। इसी प्रकार अन्य युगों के प्रारम्भ में सृष्टि के पूर्वकाल इसी भाँति देवी जी विद्यमान थी और उस समय के लोगों को अत्यन्त दूर के पूर्वजों द्वारा शुभ विधान द्वारा पूजित होती रही। आश्विन मास की शुक्ल पक्ष की मूल नक्षत्र युक्त नवमी महानवमी के नाम से प्रख्यात हैं जो तीनों लोकों में अत्यन्त दुर्लभ बतायी जाती है। कन्या राशि पर सूर्य के प्रस्थान करने पर शुक्ल पक्ष की मूल नक्षत्र युक्त अष्टमी महानवमी कही गयी है। आश्विन मास की अष्टमी नवमी के दिन जगन्माता भगवती अम्बिका की आराधना करने वाले पुरुष निरातङ्क होकर शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं। और वे शत्रुगण गर्वोक्तियों एवं खड्गों आदि से नित्य संतर्जित रहते जाते हैं। नवमी के दिन अर्चा करने पर देवी नवम फल प्रदान करती है, जो अत्यन्त पुण्य स्वरूपा, पवित्रा एवं धर्म सुख प्रदान करने वाली है। इसलिए मुण्डमाला से भूषित उस चामुण्डा देवी की सदैव पूजा करनी चाहिए। भगवती चामुण्डा के लिए (बलि रूप में) उपयोग किये जाने वाले महिष आदि सभी प्राणी स्वर्ग पहुँचते है और उनके हनन करने वाले को पाप भी नहीं लगता।७-१७। विन्ध्यवासिनी चामुण्डा (काली) देवी पुष्प, धूप, विलेपन एवं अन्य बलिदान से उतना सन्तुष्ट नहीं

उद्दिश्य दुर्गां हन्यन्ते विधानाद्येऽत्र जन्तवः। स्वर्गं ते यान्ति कौन्तेय घातयन्तोऽपि भक्तितः ।।१९
भवानीप्राङ्गणे प्राणा येषां याता युधिष्ठिर। तेषां स्वर्गे ध्रुवं वासो वरास्तेऽप्सरसां प्रियाः ।।२०
मन्वन्तरेषु सर्वेषु कल्पेषु कुरुनन्दन। तेषु सर्वेषु चैवासीन्नवमीयं पुरार्चिता ।।२१
प्रसिद्धानादिनिधना वर्षेवर्षे युधिष्ठिर। भूयोभूयोऽवतारैश्च भवानी पूज्यते सुरैः ।।२२
अवतीर्णा भुवि सदा नित्यं दैत्यनिबर्हिणी। स्वर्गपातालमर्त्येषु करोति स्थितिपालनम् ।।२३
पुनश्चैषा महादेवी यशोदा गर्भसम्भवा। कंसासुरस्योत्तमाङ्गे पादं दत्त्वा गतायुषः ।।२४
ततः प्रभृतिलोकेषु यशोदानन्ददायिनीम्। विन्ध्याचले स्थापयित्वा पुनः पूजा प्रवर्तिता ।।२५
पूर्वप्रवद्धोऽपि पुनर्भगिन्या महिमा कृतः। भुवि सर्वोपकाराय सर्वोपद्रवशान्तये ।।२६
एवं विन्ध्योपवासिन्या नवरात्रोपवासिनः। एकरात्रेण नक्तेन स्वशक्त्याऽयाचितेन वा ।।२७
यजनैयाजनैर्देवाः स्थाने स्थाने पुरे पुरे। गृहे गृहे भक्तिपरैर्ग्रामे ग्रामे वने वने ।।२८
स्नातैः प्रमुदितैर्हृष्टैर्ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्नृपैः। वैश्यैः शूद्रैर्भक्तिचित्रैर्म्लेच्छैरन्यैश्च मानवैः ।।२९
स्त्रीभिश्च कुरुशार्दूल तद्विधानमिदं शृणु। जयाभिलाषी नृपतिः प्रतिपत्प्रभृतिक्रमात् ।।३०
लोहाभिहारिकं कर्म कारयेद्यावदष्टमी। प्रागुदक्प्रवणे देशे पताकाभिरलंकृतम् ।।३१
मण्डपं कारयेद्दिव्यं नवसप्तकरं वरम्। आग्नेय्यां कारयेत्कुण्डं हस्तमात्रं सुशोभनम् ।।३२

होती, जितना कि वे महिष बलि द्वारा प्रसन्न होती हैं। दुर्गा जी के उद्देश्य से भक्ति पूर्वक एवं सविधान बध करने पर भी वह प्राणी स्वर्ग पहुँचता है। युधिष्ठिर! भवानी के गृहाङ्गण में जिन जीवों का प्राणोत्सर्ग होता है वे निश्चय स्वर्ग में निवास करते हैं और अप्सराओं के प्राण प्रिय होतें हैं। कुरुनन्दन! पहले समय सभी मन्वन्तरों के कल्पों मे उस समय के समस्त प्राणियों द्वारा यह नवमी तिथि पूजित होती थी। युधिष्ठिर! देवों के प्रत्येक दिव्य वर्ष में परम प्रसिद्धा भवानी शिव की जो जन्म मरण से रहित है और यथावसर, अवतरित होती रहती हैं, देववृन्द सादर पूजा करते रहते है। दैत्यदानवादि विन्ध्यवासिनी भगवती दुर्गा इस भूतल में यथावसर अवतार धारण कर स्वर्ग एवं मर्त्य लोक की स्थिति तथा पालन किया करती है। पश्चात् यशोदा के गर्भ से उत्पन्न होने वाली इन महादेवी जैसे उस समय क्षीणायु कंस के शिर पर चरण रखकर आकाश में उड़ गयी थी, उसी समय से विन्ध्याचल में स्थापित होकर लोक में उन यशोदानन्ददायिनी की पुनः पूजा प्रचलित हुई। इस भूतल में समस्त उपद्रवों की शान्ति पूर्वक परोपकारार्थ पूर्व स्मृत उनकी महिमा को उनकी भगिनी देवी ने अत्यधिक बढ़ाया। कुरुशार्दूल! इस प्रकार विन्ध्यवासिनी देवी के निमित्त नवरात्र अथवा यथाशक्ति एक ही रात्र अयाचित अन्न का नक्त व्रत करते हुए यजन याजन करने कराने वाले देवों मनुष्यों द्वारा जो प्रत्येक स्थानों, प्रत्येक नगरों, प्रत्येक घरों प्रत्येक गावों, जंगलों में स्नान के उपरान्त अत्यन्त हर्ष मग्न ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं अन्य मनुष्यों और स्त्रियों करना चाहिए, सुसम्पन्न होने वाले विधान को मैं बता रहा हूँ, सुनो! विजयेच्छुक राजा को प्रतिपदा से अष्टमी तक लोहाभिहारिक कर्म (युद्ध यात्रा के निमित्त शस्त्रादि का नीराजन विधान) करना चाहिए।१८-३०। पूर्व उत्तर के अन्तराल भाग अर्थात् ईशान कोण के चतुष्पथ प्रदेश में सोलह हस्त का विस्तृत दिव्य मण्डप, जो पताकाओं से अत्यन्त सुसज्जित हो, और अग्नि कोण में एक हांथ का विस्तृत

मेखलात्रयसंयुक्तं योन्यश्वत्थदलाभया । राजचिह्नानि सर्वाणि शस्त्राण्यस्त्राणि यानि च ॥३३
आनीय मण्डपे तानि सर्वाण्येत्राधिवासयेत् । ततस्तु ब्राह्मणः स्नातः शुक्लाम्बरधरः शुचिः ॥३४
ॐकारपूर्वकैर्मन्त्रैस्तल्लिंगैर्जुहुयाद् घृतम् । लोहनामाभवत्पूर्वं दानवस्तु महाबलः ॥३५
स देवैः समरे क्रुद्धैर्बहुधा शकलीकृतः । तदङ्गसम्भवं लोहं यत्सर्वं दृश्यते क्षितौ ॥३६
शस्त्रास्त्रमन्त्रैर्होतव्यं पायसं घृतसंयुतम् । हुतशेषं तुरङ्गाणां गजानामुपहारयेत् ॥३७
लोहाभिहारिकं कर्म तेनैतदृषिभिः स्मृतम् । बद्धप्रतिशरव्यं च गजाश्वसमलंकृतम् ॥३८
भ्रामयेन्नगरे नित्यं नन्दि घोषपुरस्सरम् । प्रत्यहं नृपतिः स्नात्वा सम्पूज्य पितृदेवताः ॥३९
पूजयेद्राजचिह्नानि फलमाल्यानुलेपनैः । हुतशेषं प्रदातव्यमौपनायनिके द्विजे ॥४०
तस्याभिहरणाद्राज्ञो विजयः समुदाहृतः । पूजामन्त्रान्प्रवक्ष्यामि पुराणोक्त नहं तव ॥४१
यैः पूजिताः प्रयच्छन्ति कीर्तिमायुर्यशोबलम् । यथाम्बुदश्छादयति शिवायेमां वसुन्धराम् ॥४२
तथाच्छादय राजानं विजयारोग्यवृद्धये। (इति छत्रमंत्रः) गन्धर्व कुलजातस्त्वं माभूयाः कुलदूषकः ॥४३
ब्रह्मणः सत्यवाक्येन सोमस्य वरुणस्य च । प्रभावाच्च हुताशस्य वर्द्धस्व त्वं तुरङ्गम ॥४४
तेजसा चैव सूर्यस्य मुनीनां तपसा यथा । रुद्रस्य ब्रह्मचर्येण पवनस्य बलेन च ॥४५

एवं प्रति सुशोभन कुण्ड का निर्माण करना चाहिए, जो तीन मेखला और पीपल के पत्ते के आकार की योनि से सुशोभित हो। मण्डप में राजाओं के चिह्न स्वरूप सभी अस्त्रों शस्त्रों को लाकर उनके अधिवासन करना चाहिए। अनन्तर स्थान शुक्लवस्त्र धारण किये अत्यन्त पवित्रता पूर्ण किसी ब्राह्मण द्वारा ओंकार के उच्चारण समेत तल्लिगों के मंत्रों द्वारा घी की आहुति प्रदान करायें। पहले समय में लोह नामक महाबली दानव उत्पन्न हुआ था, जिसे रणाङ्गण में देवों ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अनेक टुकड़ों में काटकर अलग कर दिया था। उसी के अङ्ग से उत्पन्न ये समस्त लोहे पृथ्वी में दिखायी पड़ रहे हैं। शस्त्रास्त्र मंत्रों के उच्चारण पूर्वक घृत पूर्ण पायस (खीर) की आहुति डालने के उपरांत शेषभाग अश्वों और हांथियों को उपहार रूप में प्रदान कर देना चाहिए। इसीलिए ऋषियों ने इसे लोहाभिहारक कर्म बतलाया है। तत्पश्चात् राजा को धनुष बाण से सुसज्जित होकर हाथी घोड़े को सजाये हुए नंदिघोष पुरस्सर नगर में चारों ओर नित्य घूमना चाहिए। इसी प्रकार प्रतिदिन राजा को स्नान देव पूजन के उपरांत फल माला, विलेपन आदि द्वारा अपने राज चिह्नों (शस्त्रादिकों) का पूजन करके हवन शेष भाग यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न किसी परमोत्तम ब्राह्मण को अर्पित करना चाहिए। प्रत्यक्ष अथवा उसे चोरी रूप में उसके ले लेने पर राजा की निश्चित विजय होती है। मैं पुराणोक्त उन पूजा मंत्रों को तुम्हें बता रहा हूँ जिसके द्वारा पूजन करने पर देवता कीर्ति, आयु यश और बल प्रदान करता है। जिस प्रकार मेघ (लोक) कल्याणार्थ इस वसुन्धरा को आच्छादित करते हैं उसी भाँति विजय और आरोग्य के वृध्यर्थ (तुम) राजा को आच्छादित करो। इस मंत्र से छत्र प्रदान करे। तुरङ्गम! गन्धर्व कुल में उत्पन्न होने के नाते तुम कभी भी कुल कलङ्कित न करना। ३१-४३। ब्रह्मा के सत्य वाक्य द्वारा तथा सोम, वरुण एवं अग्नि के प्रभाव और सूर्य के तेज, मुनियों के तप, भगवान् रुद्र के ब्रह्मचर्य तथा पवनदेव के बल से सदैव वृद्धि प्राप्त करो।

स्मर त्वं राजपुत्रोऽसि कौस्तुभं च मणिं स्मर । यां गतिं ब्रह्महा गच्छेत्पितृहा मातृहा तथा ।।४६
भूम्यर्थेनृतवादी च क्षत्रियश्च पराङ्मुखः । सूर्याचन्द्रमसौ वायुः पावकश्च न यत्र वै ।।४७
व्रजेच्च तां गतिं क्षिप्रं तच्च पापं भवेत्किल । विकृतिं[1] यदि गच्छेस्त्वं युद्धेऽध्वनि तुरङ्गम ।।
रिपून्विजित्य समरे सह भर्त्रा सुखी भव ।।४८

।। (इत्यश्वमंत्रः) ।।

शक्रकेतो महावीर्य सुपर्णस्त्वय्युपस्थितः । पतत्रिराड्वैनतेयस्तथा नारायणध्वजः ।।४९
काश्यपेयोऽमृतो ज्ञेयो नागारिर्विष्णुवाहनः । अप्रमेयो दुराधर्षो देवशत्रुनिषूदनः ।।५०
गरुत्मान्मारुतगतिस्त्वयि सन्निहितः स्थितः । शस्त्रवर्मायुधान्योधान् रक्षास्मांश्च रिपून्दह ।।५१

।। (इति ध्वजमन्त्रः) ।।

कुमुदैरावणौ पद्मः पुष्पदन्तोऽथ वामनः । सुप्रतीकोऽञ्जनो नील एतेऽष्टौ देवयोनयः ।।५२
एतेषां पुत्रपौत्राश्च बलान्यष्टौ समाश्रिताः । भद्रो मन्द्रो मृगश्चैव गजः संकीर्ण एव च ।।
वनेवने प्रसूतास्ते करियोनिं महागजाः ।।५३
पांतु त्वां वसवो रुद्रा आदित्याः समरुद्गणाः । भर्तारं रक्ष नागेन्द्र समयं प्रतिपालयन् ।।५४
अवापुर्हि जयं युद्धे गमने स्वस्ति नो व्रज । श्रीस्ते सोमाद्बलं विष्णोस्तेजः सूर्याज्जवोऽनिलात् ।।
स्थैर्यं मेरोर्जयं रुद्राद्यशो देवात्पुरन्दरात् ।।५५
युद्धे रक्षन्तु नागास्त्वं दिशश्च सह दैवतैः । अश्विनौ सह गन्धर्वैः पान्तु त्वां सर्वतः सदा ।।५६

इस बात का स्मरण करो कि तुम राजपुत्र हो। उसी भाँति कौस्तुभमणि का भी स्मरण करो। तुरङ्गम्! यदि युद्ध स्थल में जाकर तुम्हारे मन में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न हो जाये, तो ब्रह्म हत्या, और पितृ मातृ की हत्या करने वाले, भूमि के लिए झूठ बोलने वाले एवं युद्ध से पराङ्मुख होने वाले क्षत्रियों की गति शीघ्र प्राप्त करो। तथा उन पापों के भागी भी हो जहाँ सूर्य, चन्द्रमा, वायु और अग्नि देव नहीं रहते। अतः समराङ्गण में विजय प्राप्त कर अपने स्वामी समेत सुख का अनुभव करो, यह अश्वमंत्र है।४४-४८। शक्रकेतो ! एवं महापराक्रमशालिन् ! तुम्हारे यहाँ पक्षिराज गरुड़ उपस्थित हैं, जो नारायण के ध्वज कश्यप के पुत्र, अमृत, नागों के शत्रु, विष्णु के वाहन हैं। मारुत गति वाले गरुत्मान् (गरुड़) जो अप्रमेय दुर्धर्ष एवं देवशत्रुओं के विनाशक हैं, तुम्हारे समीप स्थित हैं अतः शस्त्रास्त्र एवं कवच धारण करने वाले मेरे उन योधाओं की रक्षा करो। और शत्रुओं का विध्वंस करो। यह ध्वज कामंत्र है।४९-५१। कुमुद, ऐरावण, पद्म, पुष्पदन्त, वामन, सुप्रतीक, अञ्जन , और नील यह आठ प्रकार देव योनियाँ हैं। इनके पुत्रों और पौत्रों ने आठ प्रकार की सेनाएँ स्थापित की। जिनके द्वारा भद्र, मन्द, मृग, गज की उत्पत्ति हुई और उन्हीं लोगों ने प्रत्येक जंगलों में हाथी योनि वाले महागजराजों को जन्म दिया है। नागेन्द्र ! इसीलिए वसु, रुद्र, आदित्य, मरुद्गण तुम्हारी रक्षा करें और तुम अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार स्वामी की रक्षा करो। युद्ध में सदैव उन लोगों ने विजय प्राप्त की है अतः उस रथयात्रा में गमन करो जिससे मेरा और तुम्हारा दोनों का कल्याण हो। तुम्हें सोम से भी, विष्णु, बल, सूर्य से तेज, वायु से वेग, मेरे से स्थैर्य, रुद्र से जप और पुरन्दर देव को यश की प्राप्ति हो, युद्ध में नागगण और देवों समेत दिशाएँ तुम्हारी रक्षा करें।५२-५६।

---

१. किंकृतिम् ।

(इति हस्तिमन्त्रः)

हुतभुग्वसवो रुद्रा वायुः सोमो महर्षयः । नागकिन्नरगन्धर्वयक्षभूतगणाग्रहाः ॥५७
प्रमथाश्च सहादित्यैर्भूतेशोमातृभिः सह । शक्रसेनापतिः स्कन्दो वरुणश्चाश्रितास्त्वयि ॥५८
प्रदहन्तु रिपून्सर्वान्राजा विजयमृच्छतु । यानि प्रयुक्तान्यरिभिर्दूषणानि समन्ततः ॥५९
एतानि परशत्रूणां हतानि तव तेजसा । कालनेमिवधे युद्धे युद्धे त्रिपुर घातने ॥६०
हिरण्यकशिपोर्युद्धे युद्धे देवासुरे तथा । शोभितासि तथैवाद्य शोभमानास्तु भूपतेः ॥६१
नीलां श्वेतामिमां दृष्ट्वा नश्यं त्वद्य नृपारयः । व्याधिभिर्विविधैर्घोरैः शस्त्रैश्च युधि निर्जिताः ॥६२
सद्यः स्वस्था भवन्ति स्म त्वद्वातेनापमार्जिताः ॥६३
पूतना रेवती नाम्ना कालरात्रीति या स्मृता । दहन्त्वाशु रिपून्सर्वान्पताके त्वामुपागताः[1] ॥६४

(इति पताकामन्त्रः)

असिश्च रिपुहा खड्गस्तीक्ष्णकर्मा दुरासदः । श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मधारस्तथैव च ॥६५
इत्यष्टो तव नामानि स्वमुक्तानि वेधसा । नक्षत्रं कृत्तिका तुभ्यं गुरुर्देवो महेश्वरः ॥६६
हिरण्यं च शरीरं ते धाता देवो जनार्दनः । पिता पितामहो देवस्त्वं मां पालय सर्वदा ॥६७

(इति खड्गमन्त्रः)

शर्मप्रदस्त्वं समरे वर्म सर्वायसो ह्यसि । रक्ष मां रक्षणीयोऽहं तव वर्मन्नमोऽस्तु ते ॥६८

(इति वर्ममन्त्रः)

उसी भाँति गन्धर्वों समेत अश्विनी कुमार चारों ओर से तुम्हारी सदैव रक्षा करें । यह हाथी का मंत्र है । अग्नि, वसुगण, रुद्रगण, वायु, सोम, महर्षिगण, नाग, किन्नर, गन्धर्व, यक्ष, भूतगण, ग्रहगण, आदित्यों समेत प्रथम गण, मातृकाओं समेत भूतेश (शिव), इन्द्र सेनापति स्कन्द एवं वरुण तुम्हारे आश्रित रह रहे हैं, ये समस्त रिपुओं को नष्ट करें जिससे राजा को विजय प्राप्त हों एवं शत्रुओं द्वार चारों ओर प्रसारित अन्य समस्त दोष भी तुम्हारे तेज द्वारा नष्ट होते रहते हैं । कालनेमि के वध करने के समय युद्ध में और त्रिपुरासुर, हिरण्यकशिपु के हनन एवं देवासुर के संग्राम में तुम सदैव सुशोभित थे । उस भाँति आज भी सुशोभमान हों, जिससे तुम्हारे इस नील श्वेत वर्ण को देखते ही शत्रुगण नष्ट हो जाँये । अनके भाँति की व्याधियों एवं घोरशस्त्रों द्वारा युद्ध में पराजित होने वाले मेरे योद्धागण तुम्हारी वायु द्वारा अपमार्जित होने पर उसी क्षण स्वस्थ होते रहें । उस प्रकार पूतना, रेवती और कालरात्रि आदि तुम्हारे समीप रहकर शीघ्र समस्त शत्रुओं का संहार करें ।५७-६४। यह पताका का मंत्र है । असि (तलवार), शत्रुहन्ता, खड्ग, तीक्ष्णकर्मा, दुरसद, श्रीगर्भ, विजय और धर्म धार, तुम्हारे इन आठ नामों को ब्रह्मा ने स्वयं कहा है । गुरु देव महेश्वर ने तुम्हें कृत्तिका नक्षत्र प्रदान किया है । और देवाधीश जनार्दन ने हिरण्य शरीर दी है । इसलिए तुम पिता पितामह देव के रूप में मेरी सदैव रक्षा करो ।६५-६७। यह खड्गमंत्र है । वर्मदेव ! मैं तुम्हें बार बार नमस्कार कर रहा हूँ, क्योंकि संग्राम में तुम सदैव कल्याण प्रदान करते हो और सर्वाङ्ग लोह रूप हो अतः मुझ रक्षणी की रक्षा करो।६८। यह वर्ममन्त्र है। दुन्दुभे ! तुम अपनी गम्भीर ध्वनि से शत्रुओं के

---

१. त्वय्युपाश्रिताः ।

दुन्दुभे त्वं सपत्नानां घोषाद्धृदयकम्पन । भव भूमिप सैन्यानां तथा विजयवर्द्धनः ॥६९
यथा जीमूतघोषेण हृष्यन्ति वरवारणाः । तथास्तु तव शब्देन हर्षोऽस्माकं मुदावहः ॥७०
यथा जीमूतशब्देन स्त्रीणां त्रासोऽभिजायते । तथा च तव शब्देन त्रस्यन्त्वस्मद्विषो रणे ॥७१
(इति दुन्दुभिमन्त्रः)
सर्वायुध महामात्र सर्वदेवारिसूदन । चाप मां सर्वदा रक्ष साकं सायकसत्तमैः ॥७२
(इति चापमन्त्रः)
पुण्यस्त्वं शङ्ख पुण्याणां मङ्गलानां च मङ्गलम् । विष्णुना विधृतो नित्यं मनः शान्तिप्रदो भव ॥७३
(इति शङ्खमन्त्रः)
शशाङ्ककरसंकाश हिमडिण्डीरपाण्डुर । प्रोत्सारयाशु दुरितं चामरामरवल्लभ ॥७४
(इति चामरमन्त्रः)
सर्वायुधानां प्रथमा निर्मिताऽसि पिनाकिना । शूलायुधाद्विनिष्कृष्य कृत्वा मुष्टिपरिग्रहम् ॥७५
चण्डिकायाः प्रदत्तासि सर्वदुष्टनिर्बर्हिणि । तथा विस्तारिता चासि देवानां प्रतिपादिता ॥७६
सर्व सत्त्वाङ्गभूतासि सर्वाशुभनिवारिणी । छुरिके रक्ष मां नित्यं शान्तिं यच्छ नमोऽस्तु ते ॥७७
(इतिच्छुरिकामन्त्रः)
प्रोत्सारणाय दुष्टानां साधुसंग्रहणाय च । ब्रह्मणा निर्मितश्चासि व्यवहारप्रसिद्धये ॥७८
यशो देहि सुखं देहि जयदो भव भूपतेः । ताडयाशु रिपून्सर्वान्हेमदण्ड नमोस्तु ते ॥७९
(इति कनकदण्डमन्त्रः)

हृदय को सदैव कम्पित करती हो इसलिए राजसेनाओं की विजय वृद्धि अवश्य करो । जिस प्रकार मेघ के गम्भीर गर्जन करने से मत्तगजराज प्रसन्न होते हैं उस प्रकार अपने शब्दों से हमें हर्षित करो । जिस प्रकार मेघ के गर्जन करने से स्त्रियों को भय उत्पन्न होता है, उसी भाँति तुम अपनी ध्वनि से मेरे शत्रुओं को भयभीत करो ।६९-७१। यह दुंदुभि मंत्र है । समस्त आयुधों के महाअमात्य ! समस्त देव शत्रुओं का तुम विनाश करते हो अतः उत्तम साधकों समेत तुम मेरी सर्वदा रक्षा करो। यह चाप मंत्र है।७२। शङ्ख ! तुम पुण्यों के पुण्य और मंङ्गलों के मङ्गल हो भगवान् विष्णु तुम्हें नित्य धारण करते हैं अतः मुझे मनः शान्ति प्रदान करने की कृपा करें ।७३। यह शंङ्ख मंत्र है । देव वल्लभ, चामर ! चन्द्रमा की किरण समूह, हिम और समुद्र फेन की भाँति आप (उज्जवल छटा से) भूषित है अतः मेरे दुरितों का शीघ्र शमन करें।७४। यह चामर मंत्र है। समस्त आयुधों में सर्वप्रथम पिनाकी (शिव) द्वारा तुम्हारा निर्माण हुआ है। उन्होंने अपने शूल से निकाल कर एक मुठ्ठी की विस्तृत शरीर तुम्हें प्रदान की है। समस्त दुष्टों के विध्वंस करने के नाते मैंने तुम्हें भगवती चण्डी को अर्पित किया है। तुम्हारा विस्तार भी उसी भाँति हुआ है और देवों ने तुम्हारी सर्वत्र प्रशंसा की है, तुम समस्त प्राणियों के अंगभूत हो और उनके अशुभों को सदैव विनाश करती हो। इसलिए शान्ति प्रदान पूर्वक मेरी नित्य रक्षा करो। मैं तुम्हें बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ।७५-७७। यह छुरिका (कटार) मंत्र है सुवर्ण दण्ड दुष्टों के निवारण साधु सज्जनों के संग्रहार्थ एवं लोक-व्यवहार को ख्यात करने के लिए ब्रह्मा ने तुम्हारा निर्माण अतः राजा को यश, सुख और विजय प्रदान करते हुए उनके समस्त शत्रुओं की शीघ्र ताडना करो, मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ ।७८-७९। यह कनक दण्ड मंत्र है । विजय,

विजयो जयदो जेता रिपुघाती प्रियङ्करः । दुःखहा धर्मदः शान्तः सर्वारिष्टविनाशनः ।।८०
एतेऽष्टौ संनिधौ यस्मात्तव सिंहा महाबलाः । तेन सिंहासनेति त्वं विप्रैर्वेदेषु गीयसे ।।८१
त्वयि स्थितः शिवः साक्षात्त्वयि शक्रःसुरेश्वरः । त्वयि स्थितो हरिर्देवस्त्वदर्थे तप्यते तपः ।।८२
नमस्ते सर्वतो भद्र भद्रदो भव भूपते । त्रैलोक्यजयसर्वस्व सिंहासन नमोऽस्तु ते ।।८३

(इति सिंहासनमंत्रः)

लोहाभिहारिकं कर्म कृत्वेदं मन्त्रपूर्वकम् । फलनैवेद्यकुसुमैर्धूपदीपविलेपनैः ।।८४
अष्टम्यां धावनं कृत्वा पूर्वाह्णे स्नानमाचरेत् ।।८५

(अथ गद्यम्)

दुर्गां काञ्चनमूर्तिं रौप्यां वा पैत्तलीं वार्क्षीं चैत्रीं ताम्रीं वाधिभवतः कृत्वा दारुविचित्रतोरणविन्यस्तां शोभने स्थाने पुरतो विन्यस्तदृष्टां विचित्रगृहमध्यगां स्नातां कुंकुमचन्दनगन्धैश्चतुः समैश्चीर-पट्टैश्चर्चितगात्रां देवीं कुसुमैरभ्यर्च्य तां बहुभिः पूज्यमाणकीर्तिस्तैर्द्वि जननैर्जनितपारितोषै-र्दिवान्वितो नरेंद्र स्वयंप्रयच्छेत्पुरोहितैः सार्धं बिल्वपत्रेणार्चनेन मन्त्रेणानेन भगवत्यै ।।

(इति गद्यं सम्पूर्णं) ।।

जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी । दुर्गा शिवा क्षमा धात्री स्वाहा स्वधा नमोस्तु ते ।।८६
अमृतोद्भवः श्रीवृक्षो महादेवीप्रियः सदा । बिल्वपत्रं प्रयच्छामि पवित्रं ते सुरेश्वरि ।।८७

जयद, जेता, रिपुघाती, प्रियंकर, दुःख हन्ता, धर्मप्रद और सम्पूर्ण अरिष्टों का शमन करने वाला शान्त, ये आठ महाबलवान् सिंह तुम्हारे समीप सदैव रहा करते है, इसीलिए विप्रमण्डल वेदों आदि में 'सिंहासन' नाम से तुम्हारा गान करता है । तुम्हारे ऊपर साक्षात् शिव, देवाधीश इन्द्र और विष्णु सदैव स्थित रहते हैं, और तुम्हारे लिए देववृन्द तप भी कर रहे हैं । सर्वतोभद्र ! राजा के लिए कल्याणप्रदान करो, तुम्हें नमस्कार है, सिंहासन ! तुम त्रैलोक्य के विजय और सर्वस्व हो अतः तुम्हें बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ ।८०-८३। यह सिंहासन मंत्र है । इस प्रकार फल, नैवेद्य, धूप, दीप और विलेपन द्वारा मंत्रोच्चारण पूर्वक लोहाभिहारिक कर्म सुसम्पन्न करके । अष्टमी के दिन धावन के उपरांत पूर्वाह्ण काल में स्नान करे । भगवती दुर्गा जी की सुवर्ण, चाँदी, पीतल, वार्क्षी, चैत्री अथवा ताँबें की प्रतिमा किसी शोभन स्थान में स्थापित कर, जो चित्र विचित्र तोरण वन्दनवार आदि से सुसज्जित किया गया हो, मन्दिर के मध्य भाग में स्नान कराने के अनन्तर कुंकुम, चन्दन, गंध, और वस्त्र चीर से विभूषित, पुष्पों से अर्चित और अनेक ब्राह्मण विद्वानों द्वारा की गयी स्तुतियों से सन्तुष्ट होने पर उस मन्दिर में भगवती देवी जी के सम्मुख राजा को पुरोहित द्वारा मंत्रोच्चारण पूर्वक उन्हें बिल्वपत्र प्रदान करना चाहिए—आप जयंती, मङ्गला, काली, भद्रकाली, कपालिनी, दुर्गा, शिवा क्षमा, धात्री, स्वाहा और स्वधा रूप को मैं बार बार नमस्कार कर रहा हूँ।८४-८६। यह भी वृक्ष (विल्व वृक्ष) अमृत से उत्पन्न होने के भी महादेवी जी को अत्यन्त प्रिय है, सुरेश्वरि ! वही पवित्र बिल्व पत्र मैं आप को अर्पित कर रहा हूँ। अनन्तर सुरेश्वरी एवं भगवती श्री दुर्गा

दुर्गा सम्पूजनीया च तद्दिनाद्द्रोणपुष्पया[1] । सा चाभीष्टा सुरेशान्यास्तथा रूढव्रणायुतः ॥८८
ततः खड्गं नमस्कृत्य शत्रूणां मानमर्द्दनम् । इच्छेत्स्वविजयं राज्यं सुभिक्षं चात्मनो नृप ॥८९
पुनः[2] पुनः प्रणम्याथ ध्यायेच्च हृदये शिवाम् । महिषघ्नीं बहुभुजां कुमारीं सिंहवाहिनीम् ॥९०
दानवान्स्तर्जयन्तीं खड्गोद्धतकरां शुभाम् । घण्टाक्षस्रग्धरां दुर्गां[3] रणारम्भे व्यवस्थिताम् ॥९१
ततो जयजयाकारैः स्तवं कुर्यादिमं ततः ॥९२
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके । शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥९३
कुंकुमेन समालब्धे चन्दनेन विलेपिते । बिल्वपत्रकृतामाले दुर्गेऽहं शरणं गतः ॥९४
कृत्वैदमर्च्चां कौरव्य अष्टम्यां जागरं निशि । नटनर्तनगीतैश्च कारयेत्तु महोत्सवम् ॥९५
एवं हृष्टैर्निशां नीत्वा प्रभाते चारुणोदये । पातयेन्महिषान्मेषानग्रतो नतकन्धरान् ॥९६
शतं चापि शतार्धं वा तदर्द्धं वा यथेच्छया । सुरासवभृतैः कुम्भैस्तर्पयेत्परमेश्वरीम् ॥९७
कापालिकेभ्यस्तद्देयं दासीदासजनैस्तथा । विभज्य सर्वं कौन्तेय सुहृत्सम्बन्धिबन्धुषु ॥९८
ततोपराह्णसमये नवम्यां स्यन्दने स्थिताम् । भवानीं भ्रामयेद्राष्ट्रे स्वयं राजा ससैन्यवान् ॥९९
सहस्रैः पुरुषैर्वापि रथयुक्तैः सुशिक्षितैः । शनैः शनैरधिकया दीप्त्या प्रज्वलदीपकैः ॥१००

जी की अर्चा से रण के निमित्त रखे हुए मांगलिक पुष्पों द्वारा सुसम्पन्न करते हुए उनके पार्श्व भाग में व्रण रहित एक सुन्दर आसन पर स्थित अन्य देवियों की पूजा करनी चाहिए। नृप ! तत्पश्चात् राजा को चाहिए कि शत्रुओं के मान मर्दन करने वाले खड्ग और अपने राजा को सुभिक्ष होने की कामना करे। इस प्रकार महिषासुर विनाशिनी भगवती शिव (दुर्गा) का, जो अनेक भुजाओं से भूषित, कुमारी, सिंहवाहिनी, दातव्यों को तर्जित करती, हाथ में शुभ खड्ग लिए, घंटा, अक्षमाला से सुशोभित रणारम्भ के लिए प्रस्तुत दिखायी देती हैं, अपने हृदय में तन्मय ध्यान और बार-बार प्रणाम करके 'जय जय' शब्दों तथा निम्न लिखित मंत्रों उच्चारण पूर्वक उनकी अभ्यर्थना करे—शिव ! आप समस्त मङ्गल समूहों के माङ्गलितक रूप, सम्पूर्ण कामनाओं को सफल करने वाली, आर्त जनों के शरण्य (शरण देने वाली), और तीन नेत्रों से भूपित हैं अतः आप गौरी नारायणी को मैं बार बार नमस्कार कर रहा हूँ।८७-९३। कुंकुम मिश्रित चन्दन से सर्वाङ्ग चर्चित तथा बिल्व पत्र करवीर माला से सुशोभित भगवती दुर्गा की शरण में मैं उपस्थित हूँ। कौरव्य ! इस प्रकार उनकी अर्चा करके उस अष्टमी की रात्रि में नटों आदि नर्तन और गीत द्वारा जागरण करते हुए उस महोत्सव को सुसम्पन्न करे। इस भाँति प्रसन्नता पूर्ण रात्रि के व्यतीत होने पर प्रातः काल सूर्योदय होते समय देवी जी के सम्मुख सौ, पचास, पचीस अथवा यथेच्छ भैंसे और भेंडों की बलि तथा सुरा आसव पूर्ण कलशों के अर्पण द्वारा भगवती परमेश्वरी को अत्यन्त तृप्त करे। उपरान्त दासी दास एवं स्वजनों द्वारा उसके यथोचित विभाग करके कापालिक, मित्रों संबधियों एवं बन्धु वर्गों में वितरण कराये। और अपराह्ण के समय नवमी में सुसज्जित रथ के ऊपर देवी जी को बैठाकर अपने राष्ट्र में सेना समेत राजा चारो और भ्रमण कराये।९४-९९। उनके उस यात्रा में सुशिक्षित सहस्रों पुरुषों,

---

१. द्विजेन्द्रेणसुशिष्यया। २. प्रणम्यादौ चिन्तयते शिवां महिषमर्दिनीम। कुमारीं तोषयन्तीं च खण्डचन्द्रयुतां शुभाम्।

आकृष्टखड्‌गैर्वीरैश्च धातुरक्तैगजैस्तथा । नदद्भिः शङ्खपटहैर्नृत्यद्भि[1]र्वारयौवतैः ॥
अलंकृताभिर्नारीभिर्बालकैः सुविभूषितैः ॥१०१
भूतेभ्यस्तु बलिं दद्यान्मन्त्रेणानेन सामिषम् । सरक्तं सजलं सान्नं गन्धपुष्पाक्षतैर्युतम् ॥१०२
त्रींस्त्रीन्वारान्स्त्रिशूलेन दिग्विदिक्षु क्षिपेद्बलिम् । बलिं गृह्णन्त्विमं देवा आदित्या वसवस्तथा ॥१०३
मरुतोऽभाश्विनौ रुद्राः सुपर्णा पन्नगा ग्रहाः । असुरा यातुधानाश्च मातरश्च पिशाचकाः ॥१०४
शाकिन्यो यक्षवेताल योगिन्यः पूतनाः शिवाः । जृम्भकाः सिद्धगन्धर्वा व्याला विद्याधरा धराः ॥१०५
दिक्पाला लोकपालाश्च ये च विघ्नविनायकाः । जगतां शान्तिकर्तारो ब्रह्माद्याश्च महर्षयः ॥१०६
सविघ्नं मम पापं ते शाम्यन्तु परिपन्थिनः । सौम्या भवन्तु तृप्ताश्च भूताः प्रेताः सुखावहाः ॥१०७
इत्येवं भ्रामयेद्राष्ट्रे दुर्गां देवीं रथे स्थिताम् । नरयानेन वा पार्थ ततोऽविघ्नं समापयेत् ॥१०८
अथोत्पन्नेषु विघ्नेषु भूतशान्तिं समाचरेत् । येन विघ्ना न जायन्ते यात्रा सम्पूर्णतां व्रजेत् ॥१०९
एवं ये कुर्वते यात्रां राजानोऽन्येऽपि मानवाः । महानवम्यां नन्दायां पुत्रका हृष्टमानसाः ॥११०
ते सर्वे पापनिर्मुक्ता यान्ति भागवतीं पुरीम् ॥१११
न तेषां शावकोनाग्निर्न चौरा न विनायकाः । विघ्नं कुर्वन्ति राजेन्द्र येषां तुष्टा महेश्वरी ॥११२
नीरुजः सुखिनो भोगभोक्तारो भयवर्जिताः । भवन्ति भक्ताः पुरुषाः भगवत्याः किमुच्यते ॥११३

प्रज्वलित अनेक दीप, हाथ में खड्‌ग लिए योद्धागण, सुशोभित हाथियों के वृन्द, शंख, ढोल की ध्वनि, नृत्य करती हुई वेश्यागण, अन्य सुभूषित सुन्दर स्त्रियों और विभूषित बालकों को रहना चाहिए । इसके अनन्तर भूतों के लिए मंत्रोच्चारण पूर्वक सामिष बलि, जो रक्त, जल, अन्न, गन्ध, पुष्प तथा अक्षत पूर्ण हो, त्रिशूल द्वारा तीन-तीन बार प्रत्येक दिशाओं विदिशाओं में रखते समय कहना चाहिए—देववृन्द, आदित्य गण, वसुगण, मरुद्‌गण, अश्विनी कुमार, रुद्रगण, गरुड़, सर्पगण, ग्रहगण, असुर, यातुधान, पिशाच, मातृकाएँ, शाकिनियाँ, यक्ष, वेताल, योगिनी पूतना, शिवा, जम्भक गण, सिद्ध, गन्धर्व, बालाओं समेत विद्याधर गण प्रसन्नता पूर्ण इसे स्वीकार करें और दिक्‌पाल, लोकपाल, विघ्नविनायक, जगत् की शान्ति रखने वाले एवं इसके निर्माता ब्रह्मा आदि देववृन्द, महर्षिगण, पापों के शमनपूर्वक मेरी विघ्नबाधा दूर करें । भूत प्रेत (इस बलि द्वारा) तृप्त एवं सौम्य होकर मुझे सुखी बनायें । पार्थ ! इस भाँति मनुष्य वाहन रथ पर प्रतिष्ठित दुर्गा जी को सम्पूर्ण राष्ट्र में भ्रमण कराने के अनन्तर इस महोत्सव को निर्विघ्न समाप्त करें । किसी प्रकार के विघ्न उपस्थित होने पर भूत शान्ति करनी चाहिए जिससे वह यात्रा निर्विघ्न समाप्त हो जाये । इसी प्रकार की यात्रा करने वाला राजा तथा अन्य मनुष्य वृन्द, जो महानवमी के दिन पुत्रादि परिवार समेत प्रसन्नता पूर्ण उसमें तल्लीन रहते हैं, पापमुक्त होकर देवी की वह उत्तम पुरी प्राप्त करते हैं।१००-१११। राजेन्द्र ! जिस प्राणी पर भगवती महेश्वरी सन्तुष्ट रहती हैं, उसे अग्नि, चोर अथवा विनायक आदि द्वारा किसी प्रकार का विघ्न नहीं होता है, अपितु नीरोग, सुखी, भोग भोक्ता, एवं भगवती का भय रहित भक्त होता है इससे और अधिक इस विषय में क्या कहा जा सकता है। मैंने तुम्हें भगवती दुर्गा देवी का महोत्सव सुना दिया, जिसके पढ़ने अथवा सुनने वालों के समस्त अशुभ विनष्ट हो जाते हैं।

---

१. बाला विद्याधरा नराः ।

इत्येष ते समाख्यातो दुर्गादेव्या महोत्सवः। पठतां शृण्वतां चैव सर्वाशुभविनाशनः ॥११४
शूलाग्रभिन्नमहिषासुरपृष्ठविष्टामुत्खातखड्गरुचिराङ्गदबाहुदण्डाम्।
अभ्यर्च्य पञ्चवदनानुगतां नवम्यां दुर्गां सुदुर्गगहनानि तरन्ति मर्त्याः ॥११५

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
महानवमीव्रतवर्णनं नामाष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३८

अथैकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

महेन्द्रध्वजमहोत्सववर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा देवासुरे युद्धे ब्रह्माद्यैरमरैर्नृप[1]। विजयार्थं महेन्द्रस्य ध्वजयष्टिः प्रतिष्ठिता ॥१
मेरोरुपरि संस्थाप्य सिद्धविद्याधरोरगैः। सा देवी ह्यर्चिता नित्यं भूषणैर्भूषिता स्वकैः ॥२
स्वच्छघण्टापिटकैः किङ्कणीबद्धबुद्बुदैः। तां दृष्ट्वा दानवा नष्टा भयादेव रणे हताः ।
गता रसातलं दैत्या देवाश्चापि दिवि स्थिताः ॥३
ततः प्रभृति तां दिव्यामिन्द्रयष्टिं यजन्ति ते। देवाः सर्वे गणाः सर्वे हृष्टास्तुष्टा युधिष्ठिर ॥४

इस प्रकार नवमी के दिन उस भगवती दुर्गा जी की अर्चना करने से मनुष्य गण अत्यन्त दुर्गम एवं गहन परिस्थितियों को सहज ही में पार कर लेते हैं, जो शूल के अग्रभाग से छिन्न-भिन्न अंग वाले महिषासुर की पीठ पर स्थित, ऊपर उठाये हुए खड्ग की रुचि कान्ति और अंगद आभूषण से सुशोभित बाहुओं को धारण करती है तथा पाँच मुख भूषित हैं।११२-११५

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के संवाद में
महानवमी व्रत वर्णन नामक एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त।१३८।

अध्याय १३९

इन्द्रध्वजमहोत्सव का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—नृप ! पहले समय देवों और राक्षसों के युद्ध में ब्रह्मा आदि समस्त देवों ने इन्द्र के विजयार्थ ध्वज दण्ड प्रतिष्ठित किया था। सिद्ध विद्याधर एवं नागगणों ने मेरु के ऊपर उसे स्थापित कर अपने भूषणादि धनुओं द्वारा देवी जी की नित्य अर्चना आरम्भ किया था जिसमें सौन्दर्य पूर्ण छत्र, घंटा एवं छोटी-छोटी घंटियों से मुखरित पिटक (आभूषण पात्र) भी अर्पित किया गया था। देवी देखते ही दानवगण उस रणस्थल में भय वश नष्ट हो गये, शेष रसातल चले गये और देवगण पुनः स्वर्ग में विराजमान हुए।१-३। युधिष्ठिर ! उसी समय से देवगण उस दिव्य इन्द्र यष्टि की अत्यन्त प्रसन्नता से नित्य

---

१. ततः।

अतः स्वर्गं गतो राजा भूरिपुण्यवशाद्वसुः । इन्द्रलोके महाभागो वसुदेवैः सुपूजितः ॥५
तस्मै दत्ता महेन्द्रेण वसुयष्टिः प्रगृह्यताम् । पूजयित्वा महाभाग सर्वदैत्यापनुत्तये ॥६
अवतार्य वर्षासमये सर्वैर्नृपतिभिः सह । मह्यां सम्पूजयामास चक्रे चन्द्रमहं वसुः ॥७
महेन मघवा प्रीतो ददौ पुण्यं वसोर्वरम् ॥८
येषु देशेषु मनुजा भक्तिभावपुरः सराः । पूजयन्ति वर्षान्ते मया दत्तं महाध्वजम् ॥९
तेषु देशेषु मुदिताः प्रजाः रोगविवर्जिताः । प्रभूतान्ना धर्मयुक्ता वृषमेधा महोत्सवाः ॥१०
भविष्यन्ति सुवेषाश्च सुभाषाश्च सुभूषणाः ॥११
श्रुत्वैतद्वचनं राजा वसुर्वसुमतां वरः । विशेषेण ततश्चक्रे वर्षेवर्षे महोत्सवम् ॥१२
श्रवणे स्थापयेद्यष्टिं स्नानवस्त्रैः प्रपूजिताम् । दैर्ध्येण विंशतिकरां सारदारुमयीं शुभम् ॥१३
इन्द्रस्थाने पुरोद्दिष्टे इन्द्रमातृसंज्ञके । तस्मिन्यष्टिं नृपो भोक्ता स्वयं यत्नेन योजयेत् ॥१४
वस्त्रैर्विचित्रैः सम्वीतां पिटिकालंकृतां तथा । पिटिकानां महाराज क्रमं च कथयामि ते ॥१५
प्रथमं लोकपालाख्यं चतुरस्रं सकर्णिकम् । यमेन्द्रधनदैर्युक्तं वरुणेन समं ततः ॥१६
वृत्तं खण्डास्रकं रम्यं द्वितीयं रक्तचूर्णितम् । तृतीयं श्वेतकं चित्रमष्टास्रं पिटकं शुभम्[1] ॥१७
चतुर्थमिन्द्रगोपालवृत्तं मातृसमावृतम्[2] । पञ्चमं चाष्टकोणं तु शुक्लं धातुविचित्रितम्[3] ॥१८

पूजा करते हैं। इसी द्वारा अत्यन्त पुण्य प्राप्त कर राजा वसु स्वर्ग लोक चले गये। वहाँ उस दिव्य अमरावती में उस महाभाग का समस्त देवों ने अत्यन्त सम्मान किया और महेन्द्र देव ने वसु यष्टि के नाम से अपनी वह दिव्य यष्टि उन्हें प्रदान की। महाभाग ! समस्त दैत्यों के विनाशार्थ उसकी पूजा करके वर्षा काल में उसे वहाँ से लाकर पृथिवी पर स्थापित किया और समस्त राजाओं समेत उसकी सविधान अर्चना की। उससे प्रसन्न होकर इन्द्र ने वसु को पुण्य वर प्रदान किया—जिन-जिन देशों में मानवगण अत्यन्त भक्तिभाव से वर्षा काल में इस मेरे दिये हुए ध्वज की अर्चना करेंगे, उन देशों की प्रजाएँ सदैव मुदित, रोग रहित, अभूत अन्नयुक्त, धार्मिक, तीक्ष्ण बुद्धि रहकर अनेक महोत्सवों को सुसम्पन्न करते रहेगें। उनके सुन्दर वेष, प्रशस्त भाषा एवं सौन्दर्य पूर्ण भूषण होंगे। इसे सुनकर वसुश्रेष्ठ राजा वसु प्रतिवर्ष उस महोत्सव को विशेषतया सुसम्पन्न करने लगे। श्रवण नक्षत्र में उस यष्टि को स्थापित कर स्नान वस्त्र से उसकी सविधि अर्चा करे, जो बीस हांथ का विस्तृत एवं काष्ठ के सारभाग से शुभमूर्ति बनायी गयी हो। इन्द्र मातृ संज्ञक उस इन्द्र स्थान में उपभोक्ता राजा को स्वयं वह यष्टि स्थापित करनी चाहिए, जो विचित्र वस्त्र से आच्छन्न और पिटिक से अलंकृत हो। महाराज ! मैं तुम्हें पिटिकों के क्रम बता रहा हूँ।४-१५। सुनो ! लोकपाल नामक पहला पिटक बताया गया है जो कर्णिका समेत चौकोर आकार का होता है यह इन्द्र, कुबेर और वरुण उसके चारों ओर वर्तमान रहते हैं। वृत्त (गोल) खण्ड, रमणीयक एवं रक्त चूर्ण से निर्मित होने वाला दूसरा पिटक होता है श्वेत वर्ण, चित्रविचित्र, अष्टकोण का शुभ तीसरा पिटक कहा गया है। इन्द्र गोपाल नामक चौथा पिटक है, जो गोलाकार और मातृकाओं समेत रहता है। शुक्ल वर्ण,

---

१. स्मृतम्। २. मातृसमन्वितम्। ३. धातुविवर्जितम्।

कृष्णकर्णिकया षष्ठं वृत्तं बुद्बुदशोभितम् । सप्तमं चाष्टकोणं तु शुक्लं विद्याधरैर्युतम् ।।१९
अष्टमं पिटकं वृत्तं वरत्रासूत्रवेष्टितम् । नवग्रहयुतं दीप्तं नवमं सचण्डिकम् ।।२०
ब्रह्मविष्ण्वीशसहितं दशमं शिवसंस्थितम् । कृष्णमेकादशं वृत्तं यमयुक्तं युधिष्ठिर ।।२१
छात्रं द्वादशमं शुक्लं ध्वजदीर्घं[1] त्रयोदशम् । सकुशं पुष्पस्रग्दामघण्टाचामरर्चाचितम् ।।२२
बन्धयित्वा चन्द्रपादैः रज्जुभिः स्थूणिकां नरैः । शनैस्तथापयेत्पार्थ हुत्वा वैश्वानरं द्विजान् ।।२३
दक्षिणाभिश्च सम्पूज्य गुडपायसपूपकैः । कुर्यान्महोत्सवं राजा दिनानि नव सप्त वा ।।२४
प्रेक्षणीयैर्महादानैर्नटैर्गीतैः कथानकैः । चक्रदोलाधरोत्सर्गैः कर्कटैर्मल्लयोधनैः ।।२५
वेश्याङ्गनानरैर्हृष्टैर्द्यूतक्रीडामहोत्सवैः । कर्पूरवस्त्रदानैश्च सम्मानैश्च परस्परम् ।।२६
रात्रौ प्रजागरः कार्यो रक्षणाय प्रयत्नतः । काकोलूककपोतानां येन पातो न विद्यते ।।२७
काकाद्भवति दुर्भिक्षं कौशिकान्म्रियते नृपः । कपोताच्च प्रजानाशस्ततो रक्षेत्सदोद्यतः ।।२८
शैथिल्याद्गिरिभिच्छक्रः प्रमादान्नीयते यदि । तस्मिन्देशे समुत्थाननिन्द्रकेतोर्न कारयेत् ।।२९
यावत्तु नीयते स्थानादन्यस्मादैन्द्रतो ध्वजः ।।३०
इन्द्रध्वजसमुत्थानं प्रमादान्न कृतं यदि । ततो द्वादशमे वर्षे कर्तव्यं नान्तरे पुनः ।।३१
कथञ्चिद्यदि विघ्नः स्याद्विपाकं मे निबोध वै । छत्रभङ्गे छत्रभङ्गो ध्वजे राष्ट्रं विनश्यति ।।३२

अष्टकोण, धातु से (रहित) चित्र विचित्र होने वाला पाँचवां पिटक कहा गया है। उसी भाँति कृष्ण कर्णिका से सुशोभित, गोलाकार एवं बूंदों से विभूषित छठा, शुक्लवर्ण, अष्टकोण, तथा विद्याधरों से युक्त सातवाँ, वृत्त (गोलाकार) वाला सूत्र से आवेष्टित आठवाँ, नवग्रह, और चण्डिका देवी समेत दीप पिटक नवाँ कहा गया है। ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर समेत शिव (कल्याण) सम्पन्न दशवाँ, कृष्ण वर्ण, गोलाकार, यमराज युक्त ग्यारहवाँ पिटक होता है। युधिष्ठिर ! श्वेत छत्र-पिटक बारहवाँ, लम्बे ध्वज का तेरहवाँ पिटक बताया गया है। कुश, पुष्प, माला रस्सी, घंटा, चामर समेत उसे भूषित कर चन्द्रकिरण के समान श्वेत रस्सियों से आबद्ध उस स्थूणिका को हवन गुडमिश्रित खीर पूआ के भोजन और दक्षिणा से ब्राह्मणों को सुसम्मानित करके धीरे धीरे उठाये। पार्थ ! राजा को नव या सात दिन में इस महोत्सव को सुसम्पन्न करना चाहिए, जो दर्शनीय महादान, नट वर्तन, गीत, कथाओं, चक्र और ढोला (क्रीडा यंत्र) से खेल करने वाले मल्ल योधाओं, वेश्याओं, द्यूत क्रीडा (जूआ) खेलने वाले हर्षमग्न मनुष्यों से सुसमृद्ध किया जाता है ओर आपस में लो कपूर दान एवं वस्त्र दान से सुसम्मानित होते रहते हैं। उसकी रक्षा के निमित्त रात्रि में सप्रयत्न जागरण करना चाहिए। जिससे कौवे, उल्लू, और कबूतरों के पतन उस पर न हो सके। क्योंकि कौवे के पतन से राष्ट्र में दुर्भिक्ष, उलूक से राजमरण एवं कपोत पतन से प्रजानाश होता है।१६-२८। अतः उसके रक्षणार्थ सदा उद्यत रहना परमावश्यक है जहाँ प्रमाद अथवा शिथिलता वश वह टिक न सके वैसे स्थान उस इन्द्रध्वज का आरोपण करना ही नहीं चाहिए। जब तक किसी दूसरे स्थान से कोई अन्य इन्द्र ध्वज न आ जाय तब तक वहाँ उसे ही स्थिर रखना चाहिए। और यदि प्रमादवश उसका संचालन न हो सके तो पूरे बारह वर्ष में उसका संचालन करे बीच में नहीं। किसी प्रकार यदि विघ्न हो ही जाये तो उसका परिणाम मैं बता रहा हूँ, सुनो ! छत्र भंग होने

---

१. वज्रदीर्घं त्रयोदशम्।

मस्तके मन्त्रविच्छेदो मुखे मुख्यबलक्षयः । बाहुदण्डे वदेत्पीडां जठरे जाठरं भयम् ।।३३
वरत्रायां मित्रनाशः स्थूणिकासु पदातयः । क्षयं गच्छन्ति राजेन्द्र तस्माद्यत्नात्पुरन्दरम् ।।३४
उत्थाप्य पूजयेद्भक्त्या दिवारात्रमतन्द्रितः । प्रमादात्पतिते भग्ने गते चेन्द्रध्वज द्विधा ।।३५
सौवर्णं रौप्यकं कृत्वा पूर्णमुत्थापयेद् ध्वजम् । शान्तिकं पौष्टिकं कृत्वा द्विजेभ्योऽन्नं प्रदापयेत् ।।३६
त्रपुसैः कर्कटीभिश्च नालिकेरैः कपित्थकैः । बीजपूरैः मनारङ्गैर्भक्ष्यान्नैर्विविधैस्तथा[1] ।।३७
नैवेद्यादिभिरभ्यर्च्य मन्त्रेणानेन तोषयेत् । वज्रहस्त सुरारिघ्न बहुनेत्र पुरन्दर ।।
क्षेमार्थं सर्वलोकस्य पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ।।३८
श्रवणाद्भरणीं यावत्पूजां कृत्वा विधानतः । रात्रौ विसर्जयेच्छक्रं मन्त्रेणानेन पाण्डव ।।३९
सार्द्धं सुरासुरगणैः पुरन्दरशतक्रतो । उपहारं गृहीत्वैनं महेन्द्रध्वज गम्यताम् ।।४०
एवं यः कुरुते यात्रामिन्द्रकेतोर्युधिष्ठिर । पर्जन्यः कामवर्षी स्यात्तस्मिन् राष्ट्रे न संशयः ।।४१
ईतयो न प्रवर्तन्ते तस्मान्मृत्युकृतं भयम् । विजित्य शत्रून् समरे वशे कृत्वामहीतलम् ।।
भुक्त्वाराज्यं चिरन्कालमिन्द्रलोकेमहीयते ।।४२

राष्ट्रे पुरे च नगरे सुरराजकेतोर्यत्रोत्सवो नृपजनैः क्रियते समेत्य ।
दुष्टोपसर्गजनितं परचक्रजं वा तस्मिन्भयं भवति पार्थ न किञ्चिदेव ।।४३

इति श्रीभविष्ये महापुरण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
महेन्द्रध्वजमहोत्सववर्णनं नामैकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३९

पर छत्रभंग, ध्वज के भंग होने पर राष्ट्र विनाश, मस्तक पर विघ्न होने से मंत्री (अमात्य) नाश, मुख से प्रमुख सेना का नाश, बाहुदण्ड से पीड़ा, उदर से मन्दाग्नि, वस्त्र से मित्रनाश, स्थूणिका से पदाति (पैदल) सिपाही की मृत्यु होती है। अतः उसकी रक्षा अत्यावश्यक है। राजेन्द्र ! उसे उठाकर स्थापित होने पर भक्ति पूर्वक उसकी दिन रात पूजन करना चाहिए। प्रमादवश उसके गिर जाने और दो टुकड़े होने पर सुवर्ण या चाँदी से ऊपर भग्न अंश की पूर्ति कर पूर्ण रूप में उठाना चाहिए। अनन्तर शान्ति एवं पौष्टिक कर्म सम्पन्न कर ब्राह्मणों को अन्न दान करे और ककड़ी, नारियल, कैथा विजौरा नीबू, नारंगी, अनेक भाँति के भक्ष्यपान्न तथा नैवेद्य आदि से अर्चना करने के उपरांत करबद्ध प्रार्थना करे—वज्र हाथ में लिए असुरों के हन्ता एवं बहु नेत्र वाले पुरन्दर ! समस्त लोकों के कल्याणार्थ यह पूजा स्वीकार करने की कृपा करें। पाण्डव ! इस प्रकार श्रवण नक्षत्र से भरणी नक्षत्र तक अर्चना करने के उपरांत रात्रि में निम्नलिखित मंत्रों के उच्चारण करते हुए विसर्जित करे—सुर असुर गणों के साथ स्थित पुरन्दर एवं शतक्रतो ! और महेन्द्र ध्वज ! मेरे इस उपहार को सादर ग्रहण करते हुए आप गमन करें। युधिष्ठिर! इस प्रकार इन्द्रध्वज की यात्रा करने पर मेघ समयानुसार वर्षा करते हैं इसमें संशय नहीं और मृत्यु भय के अतिरिक्त किसी प्रकार की ईति भय नहीं होता। समस्त शत्रुओं पर विजय और पूरे भूमण्डल पर अपना आधिपत्य स्थापित कर चिरकाल तक राज्योपभोग करने के उपरांत उसे इन्द्रलोक प्राप्त होता है। पार्थ ! इस प्रकार राष्ट्र, पुर, तथा नगरों में राजाओं आदि द्वारा देवराज इन्द्र के ध्वज महोत्सव सुसम्पन्न होने या दुष्टों एवं परराष्ट्रों का उन्हें कुछ भी भय नहीं होता है।२९-४३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसंवाद में
महेन्द्रध्वज महोत्सव वर्णन नामक एक सौ उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३९।

---

१. पक्वान्नैः । १. कृत्वा दैत्यपतेर्दत्तमहोरात्रं पदं नृप ।

अथ चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

दीपालिकोत्सववर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा वामनरूपेण याचयित्वा धरामिमाम् । बलियज्ञे हरिः सर्वं क्रान्तवान्विक्रमैस्त्रिभिः ॥१
इन्द्राय दत्तवान्राज्यं बलिं पातालवासिनम् । कृत्वा[1] दैत्यपतेर्वासमहोरात्रं पुनर्नृप ॥२
एकमेव हि भोगार्थं बलिराज्येतिचिह्नितम् । सरहस्यं तदेतत्ते कथयामि नरोत्तम ॥३
कार्तिके कृष्णपक्षस्य पञ्चदश्यां निशागमे । यथेष्टचेष्टा दैत्यानां राज्यं तेषां महीतले ॥४

युधिष्ठिर उवाच

निःशेषेण हृषीकेश कौमुदीं ब्रूहि मे प्रभो । किमर्थं दीयते दानं तस्यां का देवता भवेत् ॥५
किंस्वित्तस्यै भवेद्देयं केभ्यो देयं जनार्दन । प्रहर्षः कोऽत्र निर्दिष्टः क्रीडा कात्र प्रकीर्तिता ॥६

श्रीकृष्ण उवाच

कार्तिके कृष्णपक्षे च चतुर्दश्यां दिनोदये । अवश्यमेव कर्तव्यं स्नानं नरकभीरुभिः ॥७
अपामार्गपल्लवान्वा भ्रामयेन्मस्तकोपरि । सीतालोष्टसमायुक्तसकंटकदलान्वितान् ॥८

अध्याय १४०

दीपावली-उत्सव का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—नृप ! पहले समय भगवान् विष्णु ने वामन रूप धारण कर राजा बलि की यज्ञ में उनसे याचना करके अपने तीन पग द्वारा इस समस्त धरामण्डल को अपने अधीन कर लिया था। पश्चात् (स्वर्ग का) राज्य इन्द्र को सौंपकर दैत्य पति राजा बलि को सदैव के लिए पातालवासी बनाया। नरोत्तम बलि राज्य का चिह्नस्वरूप केवल एक ही वस्तु दैत्यों के उपभोगार्थ उन्होंने उन्हें प्रदान किया, जिसे सरहस्य मैं तुम्हें बता रहा हूँ—कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की अमावस्या की रात्रि में इस भूतल में दैत्यों का यथेच्छ राज्य होता है उसमें अपनी इच्छाओं को भलीभाँति पूरी करते हैं। १-४

युधिष्ठिर बोले—प्रभो, हृषीकेश ! उस कौमुदी (पृथ्वी को आनन्द देने वाली) को सविस्तार बताने की कृपा करें—जनार्दन ! उस दिन किस लिए दान दिया जाता है और उसमें प्रधान देव कौन है तथा क्या दिया जाता है और किसके लिए इसमें अत्यन्त हर्ष होने का क्या कारण है, और लोग कौन सी क्रीडा करते हैं। ५-६

श्रीकृष्ण बोले—कार्तिक मास की कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के दिन प्रातः काल नरक भीरु प्राणियों को अवश्य स्नान करना चाहिए। पश्चात् अपामार्ग (चिचिडी) या पल्लव मस्तक के ऊपर भ्रमण करायें, जो हल से जोते हुए खेत की मिट्टी और कंटक दल से युक्त हो। उस समय यह कहना रहे कि—अपामार्ग !

---

१. कृत्वा दैत्यपतेर्दत्तमहोरात्रं पदं नृप।

हर पापमपामार्ग भ्राम्यमाणं पुनः पुनः । आपदं किल्बिषं चापि ममापहर सर्वशः ।।
अपामार्ग नमस्तेस्तु शरीरं मम शोधय ।।९

(इत्यपामार्गभ्रमण मन्त्रः)

ततश्च तर्पणं कार्यं धर्मराजस्य नामभिः । यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ।।
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ।।१०
नरकाय प्रदातव्यो दीपः सम्पूज्य देवताः । ततः प्रदोषसमये दीपान् दद्यान्मनोरमान् ।।११
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां भवनेषु मठेषु च । कूटागारेषु चैत्येषु सभासु च नदीषु च ।।१२
प्राकारोद्यानवापीषु प्रतोलीनिष्कुटेषु च । सिद्धार्हद्बुद्धचामुण्डाभैरवायतनेषु च ।।
मन्दुरासु विविक्तासु हस्तिशालासु चैव हि ।।१३
एवं प्रभातसमयेऽमावास्यायां नराधिप । स्नात्वा देवान्पितॄन्भक्त्या सम्पूज्याथ प्रणम्य च ।।१४
कृत्वा तु पार्वणं श्राद्धं दधिक्षीरघृतादिभिः । भोज्यैर्नानाविधैर्विप्रान्भोजयित्वा क्षमाप्य च ।।१५
ततोऽपराह्णसमये घोषयेन्नगरे नृपः । अद्य राज्यं बलेर्लोका यथेष्टं मोद्यतामिति ।।१६
लोकश्चापि परे हृष्येत्सुधाधवलिताजिरे । वृक्षचन्दनमालाढ्यैश्चर्चिते च गृहे गृहे ।।१७
द्यूतपानरतोहृष्टनरनारीमनोहरे । नृत्यवादित्रसंघुष्टे सम्प्रज्वलितदीपके ।।१८
अन्योन्यप्रीतिसंहृष्टदत्तलाभेन वै जने । ताम्बूलहृष्टे वदने कुङ्कुमक्षोदर्चचिते ।।१९
दुकूलपट्टनेपथ्ये स्वर्णमाणिक्यभूषिते । अद्भुतोद्भटभृङ्गारप्रदर्शितकुतूहले ।।२०

(मस्तक पर) बार बार भ्रमण कराने के नाते मेरे पापों के अपहरण करो । यह अपामार्ग भ्रमण मंत्र है । अपामार्ग ! मेरे समस्त पाप और आपदाओं के अपहरण पूर्वक मेरी समस्त शरीर का संशोधन करो, मैं तुम्हें बार बार नमस्कार कर रहा हूँ ।७-९। अनन्तर धर्मराज के नामोच्चारण पूर्वक उन्हें तर्पण द्वारा तृप्त करे—यम, धर्मराज, मृत्यु, अंतक, वैवस्वत, काल और समस्त प्राणियों के क्षय करनेवाले के प्रसन्नार्थ मैं यह तर्पण कर रहा हूँ । देव-पूजन के उपरांत प्रदोष के समय ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि के मन्दिरों मठों और व्यापारालय (दूकानों) चैत्य स्थानों, सभास्थलों, नदीतट, खाई, उपवन, बावली, नालियों, निष्कुट, तथा सिद्ध बुद्ध, चामुण्डा और भैरव के मन्दिरों तथा अश्व और हाथियों के रहने के स्थान में नरक के निमित्त मनोरम दीप दान करना चाहिए ।१०-१४। नराधिप ! अमावस्या के दिन प्रातः काल स्नान और देव पितृतर्पण पूजन करके भक्तिपूर्वक पार्वण श्राद्ध सुसम्पन्न करे । दही, दूध, घी आदि के बने हुए अनेक भाँति के भक्ष्य भोज्य द्वारा ब्राह्मणों को सुतृप्त करते हुए क्षमा प्रार्थना के उपरांत अपराह्ण समय में राजा को अपने नगर में 'घोषणा' करानी (ढिंढोरा पिटवानी) चाहिए 'आज बलिराज्य का दिन है अतः सभी लोग यथेच्छ आनन्द मनाओ ।१५-१६। इसे सुनकर नगर निवासी भी हर्ष मग्न होकर अपने अपने घरों को वृक्ष (गमलों) चन्दन और मालाओं द्वारा सुसज्जित करते हुए सुधाधवलित गृहाङ्गणों में सभी स्त्री पुरुष द्यूत क्रीडा (जूआ का खेल) नृत्य, गान, माङ्गलिक ध्वनियाँ और अनेक दीपों से विभूषित करें, अत्यन्त प्रसन्नता पूर्ण आपस में एक दूसरे को प्रेमोपहार का आदान प्रदान, ताम्बूल से मुख और कुंकुम से शरीर चर्चित करके सुवर्ण मणियों से भूषित एवं उत्तम वस्त्रों से सुसज्जित नाट्यशाला में आश्चर्य चकित करने वाले

युवतीजनसंकीर्णवस्त्रोज्ज्वलविहारिणी । दीपमालाकुले रम्ये विध्वस्तध्वान्तसञ्चये ॥
प्रदोषे दोषरहिते शस्तदोषागमे शुभे ॥२१
शशिपूर्णमुखाभिश्च कन्याभिः क्षिप्ततण्डुलम् । नीराजनं प्रकर्तव्यं वृक्षशाखासु दीपकैः ॥२२
भ्राम्यमाणो नतो मूर्ध्नि मनुजानां जनाधिपः । वृक्षशाखान्तदीपानां निरस्ताद्दर्शनाद्व्रजेत् ॥
नीराजनं तु तेनेह प्रोच्यते विजयप्रदम् ॥२३
तस्माज्जनेन कर्तव्यं रक्षोदोषभयापहम् । यात्राविहारसञ्चारे जयजीवेति वादिना ॥२४
क्षुद्रोपसर्गरहिते राजचौरभयोज्झिते । मित्रस्वजनसम्बन्धिसुहृत्प्रेमानुरंजिते ॥२५
ततोऽर्द्धरात्रसमये स्वयं राजा व्रजेत्पुरम् । अवलोकयितुं रम्यं पद्भ्यामेव शनैःशनैः ॥२६
महता तूर्यघोषेण ज्वलद्भिर्हस्तदीपकैः । कृतोशोभां पुरीं पश्येत्कृतरक्षां स्वकैर्नरैः ॥२७
तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यमृद्धिं चैवात्मनः शुभाम्[1] । बलिराज्यप्रमोदं च ततः स्वगृहमाव्रजेत् ॥२८
एवं गते निशार्धे तु जने निद्रार्द्रलोचने । तावन्नगरनारीभिः शूर्पडिंडिमवादनैः ॥
निष्क्राम्यते प्रहृष्टाभिरलक्ष्मीः स्वगृहांगणात् ॥२९
ततः प्रबुद्धे सकले जने जातमहोत्सवे । माल्यदीपकहस्ते च स्नेहनिर्भरलोचने ॥३०
वेश्या विलासिनी सार्धं स्वस्ति मङ्गलकारिणी । गृहाद्गृहं व्रजन्ती च पादाभ्यङ्गप्रदायिनी ॥३१
पिष्टकोद्वर्तनपरे गुरुशुश्रूषणाकुले । द्विजाभिवादनपरे सुखराज्याभिवीक्षणे ॥३२

शृंगार रस के प्रदर्शन करें। उज्ज्वल वस्त्रों आदि से विभूषित अनेक युवतियों द्वारा अनेक रम्यदीपों सुप्रकाशित उस स्थान में निशीथ (अर्द्धरात्रि) के समय पूर्ण चन्द्र मुखी कन्याओं द्वारा चावल फेंक कर वृक्ष शाखाओं में सुसज्जित दीपों द्वारा नीराजन करना चाहिए।१७-२४। उस समय राजा को नत मस्तक होकर उसी नीराजन को स्वीकार करते हुए उस दीप वृक्ष शाखा दीपों के अस्त समय का भी दर्शन करके ही जाना चाहिए। इसीलिए यह नीराजन कर्म विजयप्रद बताया गया है, राक्षस दोष आदि से सुरक्षा होने के लिए मनुष्यों को यह नीराजन कर्म अवश्य सुसम्पन्न करना चाहिए—उस आधी रात के समय, जब कि विहार यात्रा में लोगों में 'जय जीव' के नारे उठते हैं, क्षुद्र बाधाएँ नहीं होती हैं, राजा और चोर का भय नहीं रहता मित्र, स्वजन, सम्बन्धी, एवं सुहृद्गण प्रेमालाप में मग्न रहते हैं, नगर दृश्य देखने की इच्छा से राजा को अकेले पैदल निकलना चाहिए। धीरे धीरे पैदल चलते हुए भेरी मृदङ्गों आदि वाद्यों के ध्वनि कोलाहल समेत प्रज्वलित दीपों के आकाश में अपने सेवकों द्वारा सुसज्जित नगर का दृश्य देखते हुए आश्चर्य चकित करने वाली नगर की शोभा के साथ अपनी समृद्धि का भी दर्शन और बलि राज्य का प्रमोद प्राप्त कर तब कहीं उन्हें अपने महल जाना चाहिए। इस प्रकार आधी रात के समय जन समूहों के गाढ निद्रा में मग्न होने पर नगर निवासिनी स्त्रियाँ सूप का डिंडिभ वादन करती हुई अपने घरों से प्राङ्गणों से अलक्ष्मी बाहर निकालती हैं।२५-२९। पश्चात् लोगों के प्रबुद्ध होने पर उस महोत्सव के नाते माला, दीपक हाथ में लिए स्नेह भरे नेत्रों से देखती हुई वेश्या विलासिनी स्त्रियों के साथ स्वस्तिक मङ्गल कारिणी स्त्रियाँ एक घर से दूसरे घर जाती हैं और पादाभ्यग महेश्वर आदि प्रदान करती हैं, उबटन लगाती हैं, गुरुजनों की शुश्रुषा करती हैं। उस सुखीराज्य के महोत्सव दर्शन में ब्राह्मण गण अभिवादन

---

१. प्रभाम्।

सुवासिनीभ्यो दाने च दीयमाने यदृच्छया । यथाप्रभातसमये राजार्हमानयेज्जनम् ॥३३
सद्भावेनैव सन्तोष्या देवाः सत्पुरूषा द्विजाः । इतरे चान्नपानेन वाक्यप्रदानेन पण्डिताः ॥३४
वस्त्रैस्ताम्बूलदानैश्च पुष्पकर्पूरकुंकुमैः । भक्ष्यैरुच्चावचैर्भोज्यैरन्तःपुरविलासिनीः ॥३५
ग्रामैर्विषयदानैश्च सामन्तनृपतीन्धनैः । पदातीनङ्गसंलग्नान्ग्रैवेयकटकैः स्वकान् ॥३६
स्वयं राजाऽतोषयेत्स जनान्भृत्यान्पृथक्पृथक् । यथार्हं तोषयित्वा तु ततो मल्लनटान्भटान् ॥३७
वृषभान्महिषांश्चैव युध्यमानान्परैः सह । गजानश्वांश्च योधांश्च पदातीन्समलंकृतान् ॥३८
मञ्चारूढः स्वयं पश्येन्नटनर्तकचारणान् । क्रुद्धापयेदानयेच्च गोमहिष्यादिकं ततः ॥३९
दिष्ट्या कार्यं पयोज्योतिरुक्तिप्रत्युक्तिका वदेत् । ततोपराह्णसमये पूर्वस्यां दिशि भारत ॥४०
मार्गपालीं प्रबध्नीयात्तुंगस्तंभेऽथ पादपे । कुशकाशमयीं दिव्यां सम्भवे बहुभिर्वृताम् ॥४१
पूजयित्वा गजान्वाजीन्सार्धे यामत्रये गते । गावो वृषाः समहिषा मण्डिता घण्टिकोत्कटाः ॥४२
कृते होमे द्विजेन्द्रैस्तु गृह्णीयान्मार्गपालिकाम्[1] । राष्ट्रभोज्येन धाराभिः सहस्रेण शतेन वा ॥४३
स्वशक्त्यपेक्षया वापि गृह्णीयाद्वामभोजनैः । मातुः कुलं पितृकुलमात्मानं सहबन्धुभिः ॥४४
सन्तारयेत्स सकलं मार्गपालीं ददाति यः । नीराजनं च तत्रैव कार्यं राज्ञे जयप्रदम् ॥४५
मार्गपालीतलेनेत्थं हया गावो गजा वृषाः । राजानो राजपुत्राश्च ब्राह्मणाः शूद्रजातयः ॥४६

(प्रणाम आशीर्वाद) में मग्न रहते हैं, सुवासिनी स्त्रियों को यथेच्छ दान से सुसम्मानित किया जाता है। पुनः प्रातःकाल होने पर राजा पूज्य जनों की पूजा करता है तथा देवगण, सत्पुरुष ब्राह्मण आदि गण सद्भावना समेत सन्तुष्ट किये जाते हैं। उसी प्रकार इतर जनों को अन्न पान द्वारा, वाक्यदान से पण्डित वृन्द, वस्त्र, ताम्बूल, पुष्प, कपूर, कुंकुम, उत्तमोत्तम भक्ष्य भोज्य द्वारा अन्तःपुर की विलासिनी स्त्रियाँ सुसम्मानित की जाती है। ग्राम आदि पुरस्कार रूप में प्रदान कर सामन्तों, ताल्लुकदारों, धनों एवं अपने अंगो में पहने हुए हार अथवा अङ्गद (पट्टा) आदि आभूषणों द्वारा पैदल सैनिकों को सन्तुष्ट करके राजा अपने जन परिजन को पृथक्-पृथक् सम्मानित करें। अनन्तर मल्ल, नट, भट्ट, तथा युद्ध के लिए वृष (बैल) महिष (भैंस), घोड़े और हाथी सुसज्जित पदाति (पैदल वालों का) वृन्द को सम्मानित करके राजा उस मंच (ऊँचे सिंहासन) पर बैठे हुए नट, नर्तक एवं चारणों के गुणगान सुनकर उन्हें पुरस्कार से प्रसन्न करता है। युद्ध करने के नाते अत्यन्त क्रुद्ध उन भैसों बैलों के क्रोध शान्त करते हुए 'सौभाग्य से ही यह ऐसा सुसम्पन्न हो सका है, इस कथन की पुष्टि करे। भारत ! पश्चात् अपराह्ण समयमें पूर्व दिशा की ओर ऊचे स्तम्भ (खम्भे) या किसी वृक्ष में मार्ग पाली बाँधे, जो कुश काश की बनी, दिव्य एवं कई बार आवृत (कई लट) की रहती है। तीसरे पहर हाथी घोड़ों की पूजा करके गौओं, बैलों और महिषों को घण्टियों आदि से अलंकृत करे।३०-४२। अनन्तर राष्ट्रभोज्य, सहस्रधारा अथवा शतधारा तथा यथाशक्ति नाम भोजन द्वारा उसका ग्रहण करे। हवन करने के उपरांत ब्राह्मणों को भी उसका ग्रहण करना आवश्य रहता है क्योंकि मार्गपाली का प्रदान करने वाला मातृकुल पितृकुल एवं बन्धुओं समेत अपना उद्धार करता है। उसी स्थान पर जयप्रद नीराजन राजा के लिए अर्पित कर मार्गपाली के नीचे घोड़े, गौऐं, हांथी बैल

---

१. प्रयत्नात्।

मार्गपालीं समुल्लंघ्य नीरुजः स्यात्सुखी सदा । कृत्वैतत्सर्वमेवेह रात्रौ दैत्यपतेर्बलेः ॥४७
पूजां कुर्यान्नरः साक्षाद्भूमौ मण्डलके कृते । बलिमालिख्य दैत्येन्द्रं वर्णकैः पञ्चरङ्गकैः ॥४८
सर्वाभरणसम्पूर्णं विन्ध्यावल्या सहासितम् । कूष्माण्डबाणजङ्घोरुमुरदानवसम्वृतम् ॥४९
सम्पूर्णहृष्टवदनं किरीटोत्कटकुण्डलम् । द्विभुजं दैत्यराजानं कारयित्वा नृपः स्वयम् ॥५०
गृहस्य मध्ये शालायां विशालायां ततोऽर्चयेत् । भ्रातृमन्त्रिजनैः सार्द्धं सन्तुष्टो वन्दिभिः स्तुतः ॥५१
कमलैः कुमुदैः पुष्पैः कल्हारै रक्तकोत्पलैः । गन्धधूपान्ननैवेद्यैरक्षतैर्गुडपूपकैः ॥५२
मद्यमांससुरालेह्यदीपवर्त्युपहारकैः । मन्त्रेणानेन राजेन्द्र समन्त्री सपुरोहितः ॥५३
बलिराज नमस्तुभ्यं विरोचनसुत प्रभो । भविष्येन्द्रसुराराते पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥५४
एवं पूजां नृपः कृत्वा रात्रौ जागरणं ततः । कारयेत्प्रेक्षणीयादि नटक्षत्रकथानकैः ॥५५
लोकश्चापि गृहस्यान्ते शय्यायां शुक्लतण्डुलैः । संस्थाप्य बलिराजा फलैः पुष्पैश्च पूजयेत् ॥५६
बलिमुद्दिश्य दीयन्ते दानानि कुरुनन्दन । यानि तान्यक्षयाण्याहुर्मयैवं सम्प्रदर्शितम् ॥५७
यदस्यां दीयते दानं स्वल्पं वा यदि वा बहु । तदक्षयं भवेत्सर्वं विष्णोः प्रीतिकरं परम् ॥५८
विष्णुना वसुधा लब्धा प्रीतेन बलये पुनः । उपकारकरो दत्तश्चासुराणां महोत्सवः ॥५९
ततः प्रभृति राजेन्द्र प्रवृत्ता कौमुदी पुनः । सर्वोपद्रवविद्रावि सर्वविघ्नविनाशिनी ॥६०
लोकशोकहरी काम्या धनपुष्टिसुखावहा । कुशब्देन मही ज्ञेया मुदीहर्षे ततः परम् ॥६१

राजा, राजपुत्र, ब्राह्मण, तथा शूद्र, आदि सभी व्यक्ति सदैव नीरोग सुखी रहने के निमित्त उसका उल्लंघन करें। इस प्रकार उस उत्सव के दिन रात्रि के कार्यक्रम सुसम्पन्न कर दैत्यदम्पत्ति बलि की भूमि में साक्षात् प्रतिमा बनाकर पूजा करें। मण्डलाकार भूमि में सर्वाभरणभूषित विध्यावलि समेत दैत्येन्द्र बलि की प्रतिमा पाँच रङ्गों से बनाकर जो कूष्माण्ड, बाण, अस्त्रों, जंघा, उरू, अंगों एवं मुर दानव युक्त, प्रसन्न मुख, किरीट कुण्डल से अलंकृत और दो भुजाओं को धारण किये स्वयं राजा द्वारा सुरचित रहता है, घर के मध्य विशाल गृह में बन्धुओं एवं मंत्रियों समेत अर्चा करे। बन्दी गण उसके गुणगान करें। कमलकुमुद (कोटयाँ) पुष्प, रक्त कमल की कोंढ़ी, गन्ध, धूप, अन्न, नैवेद्य, अक्षत, गुड का पूआ, मद्य मांस, सुरा, चटनी आदि दीपवर्ती उपहारों से मंत्री पुरोहित समेत निम्नलिखित मंत्र द्वारा सन्तुष्ट करे। विरोचन पुत्र, प्रभो बलिराज, तुम्हें नमस्कार है, भविष्य इन्द्र के भी शत्रो ! मेरी यह पूजा स्वीकार करें। इस प्रकार पूजा करने वाले रात्रि में जागरण करते हुए नट नर्तक, वीर गाथाओं के सजग दृश्य उपस्थित करे।४३-५५। इसी भाँति सभी लोगों को चाहिए अपने घर शय्या के ऊपर शुक्ल तण्डुल पर बलिराज की स्थापना पूर्वक फल पुष्प आदि द्वारा अर्चना करे। कुरुनन्दन ! बलि के उद्देश्य से जो अक्षय दान दिये जाते है मैंने तुम्हें सब कुछ बता दिया। क्योंकि इस अमावस्या के दिन थोडा बहुत जो कुछ दान किया जाता है वह अक्षय एवं विष्णु के लिए अत्यन्त प्रिय होता है। भगवान् विष्णु ने बलि से पृथ्वी लेकर पुनः सप्रेम उनके उपकारार्थ असुरों को यह महोत्सव प्रदान किया है। राजेन्द्र ! उसी समय से यह कौमुदी महोत्सव लोक में अवतरित हुआ है। जो समस्त उपद्रवों के विनाशपूर्वक समस्त विघ्नों के शमन, लोक का शोकापहरण करने वाली कामनाओं की पूर्ति एवं धन पुष्टि समेत अत्यन्त सुखावह है। (कौमुदी) कु शब्द का अर्थ

धातुर्ज्ञैर्नैगमज्ञैश्च तेनैषा कौमुदी स्मृता । कौ मोदन्ते जना यस्यां नानाभावैः परस्परा: ।।६२
हृष्टास्तुष्टाः सुखायत्तास्तेनैषा कौमुदी स्मृता । कुमुदानि बलेर्यस्माद्दीयन्तेऽस्यां युधिष्ठिर ।।६३
अर्थार्थे पार्थ भूमौ च तेनैषा कौमुदी स्मृता । एकमेवमहोरात्रं वर्षे वर्षे विशाम्पते ।।६४
दत्तं दानवराजस्य आदर्शमिव भूतले । यः करोति नृपो राष्ट्रे तस्य व्याधिभयं कुतः ।।६५
कुत ईतिभयं तत्र नास्ति मृत्युकृतं भयम् । सुभिक्षं क्षेममारोग्यं सर्वसम्पद उत्तमाः ।।६६
नीरुजश्च जनाः सर्वे सर्वोपद्रववर्जिताः । कौमुदीकरणाद्राजन्भवतीह महीतले ।।६७
यो यादृशेन भावेन तिष्ठत्यस्यां युधिष्ठिर । हर्षदैन्यादिरूपेण तस्य वर्षं प्रयाति हि ।।६८
रुदिते रोदिति वर्षं हृष्टो वर्षं प्रहृष्यति । भुक्तौ भोक्ता भवेद्वर्षं स्वस्थः स्वस्थो भवेदिति ।।६९
तस्मात्प्रहृष्टैस्तुष्टैश्च कर्तव्या कौमुदी नरैः । वैष्णवी दानवी चेयं तिथिः पैत्री युधिष्ठिर ।।७०
उपशमितमेघनादं प्रज्वलितदशाननं रमितरामम् । रामायणमिव सुभगं दीपदिनं हरतु वो दूरितम् ।।७१
कूष्माण्डादानरम्यं कुवलयखण्डैश्च धातुकाभद्रम् । शरदिव हरिगतनिद्रं दीपदिनं हरतु वो दूरितम् ।।७२

पृथ्वी और मुद् शब्द का अर्थ हर्ष है अतः धातु प्रत्यय (शब्दशास्त्र) के वेत्ताओं ने इसे कौमुदी कहा है । पृथ्वी मण्डल में जिस तिथि में जन वृन्द परस्पर अनेक भावों द्वारा अत्यन्त हर्षित, हृष्ट, तुष्ट एवं अत्यन्त सुखी होता है उसके नाते भी इसे कौमुदी कहा गया है । युधिष्ठिर ! इस दिन जिस कारण बलि के लिए भूमि में हर्षप्रद बलि प्रदान किया जाता है । इससे भी इसे कौमुदी कहना सर्वथा उपयुक्त है । पार्थ, विशांपते ! इस प्रकार प्रतिवर्ष इस भूमण्डल में एक आरोहण दानवराज बलि को जो बलि प्रदान आदि किया जाता है, वह एक (उच्च भावों का) आदर्श होता है । इसे सुसम्पन्न करने वाले राजा के राष्ट्र में व्याधिभय और ईति भय कहाँ सम्भव हो सकता है जब कि उसमें मृत्यु का भी भय नहीं होता है । अपितु राष्ट्र में सुभिक्ष, क्षेम, आरोग्य, उत्तम समस्त सम्पदाएँ वर्तमान रहती हैं, प्रजाएँ समस्त उपद्रवों से रहित होकर नीरोग रहती हैं । राजन् ! इस महीतल में इस कौमुदी महोत्सव के सुसम्पन्न होने के ही परिणाम स्वरूप ये फल प्राप्त होते हैं । युधिष्ठिर ! इस अमावस्या के दिन जो हर्ष दैत्य आदि जिस भाव से उसे सुसम्पन्न करता है, उसका वर्ष भी उसी भाँति व्यतीत होता है—उस दिन रुदन करने पर रुदन करते ही वर्ष बीतता है और हर्षित होने पर हर्षपूर्ण अच्छे भोजन से भोक्ता स्वरूप होने से स्वस्थ होता है इसलिए मनुष्यों को अत्यन्त हर्षित और पूर्ण सन्तुष्ट होकर इस कौमुदी महोत्सव को सुसम्पन्न करना चाहिए। और वैष्णवों एवं दानवों को भी यह पैतृक तिथि है अर्थात् इस दिन पिता के उद्देश्य से उन्हें इस महोत्सव को पूरा करना चाहिए। युधिष्ठिर ! उस रामायण की भाँति, जिसमें मेघनाद ऐसे योद्धा का शान्त होना और रावण ऐसे राजा का अपने आपे (वश) में न रहकर प्रज्वलित होना वर्णित है तथा राम निरन्तर रमित हैं, यह सुभग दीपावली दिन तुम्हारे दुरितों का शमन करे।५६-७१। कूष्माण्ड दान द्वारा रम्य, कुवलय (कमल) के खंडों एवं धातुओं से भूषित शरद की भाँति जिसमें विष्णु शयन से प्रबुद्ध होते हैं, यह दीपावली दिन तुम्हारे दुरितों के शमन करे। पार्थिव ! इस प्रकार इस दीपोत्सव के दिन समस्त जनों को प्रमुदित करने वाली

दीपोत्सवे जनितसर्वजनप्रमोदां कुर्वन्ति ये सुमनसो बलिराजपूजाम्।
दानोपभोगसुखवृद्धिशताकुलानां हर्षेण वर्षमिह पार्थिव याति तेषाम्।।७३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
दीपालिकोत्सववर्णनं नाम चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः।१४०

अथैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

नवग्रहलक्षहोमविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

कथयस्व महाभाग सर्वज्ञो ह्यसि यादव। सर्वकामाप्तये कृत्यं कथं शान्तिकपौष्टिकम्।।१

श्रीकृष्ण उवाच

श्री कामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समारभेत्। दृष्टचायुः पुष्टिकामो वा तथैवाभिचरन्पुनः।।२
सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य संक्षिप्यग्रन्थविस्तरम्। ग्रहशान्तिं प्रवक्ष्यामि पुराणश्रुतिभाषितम्।।३
पुण्येऽह्नि विप्रकथिते कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्। ग्रहान्ग्रहाधिदेवांश्च स्थाप्य होमं समारभेत्।।४
ग्रहयज्ञस्त्रिधा प्रोक्तः पुराणश्रुतिकोविदैः। प्रथमोऽयुतहोमः स्याल्लक्षहोमस्ततः परम्।।५
तृतीयः कोटिहोमस्तु सर्वकामफलप्रदः। अयुतेनाहुतीनां च नवग्रहमखः स्मृतः।।६

इस बलिराज की पूजा को जो व्यक्ति सुसम्पन्न करते हैं, दान, उपभोग, एवं सैकड़ों भाँति की सुखसमृद्धि से पूर्ण उन कुलीनों का वह वर्ष अत्यन्त हर्षपूर्ण व्यतीत होता है।७२-७३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवाद में
दीपावली उत्सव वर्णन नामक एक सौ चालीसवाँ अध्याय समाप्त।१४०।

अध्याय १४१

नवग्रहलक्षहोम विधि का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—महाभाग, यादव ! आप सर्वज्ञ हैं, अतः समस्त कामनाओं की सफलता के लिए शांतिक एवं पौष्टिक कर्म किस प्रकार सुसम्पन्न किये जाते हैं, बताने की कृपा करें।१

श्रीकृष्ण बोले—लक्ष्मी प्राप्ति, शान्ति कामना, एवं आयु और पुष्टि के निमित्त ग्रहयज्ञ सुसम्पन्न करना चाहिए। सौभाग्यवश (उपरोक्त कामनाओं के सफलतार्थ) उसका अभिचार बार-बार करता रहे इसीलिए समस्त शास्त्रों के अनुक्रम से मैं ग्रन्थ का विस्तार न कर केवल संक्षेप रूप में ग्रहशांति विधान बता रहा हूँ, जो पुराणों एवं श्रुतियों में सविस्तार वर्णित है। ब्राह्मण द्वारा बताये हुए किसी पुण्य दिन ब्राह्मणों से स्वस्ति वाचन, ग्रहों और ग्रहों के अधिदेवताओं की स्थापना अर्चा के उपरांत हवन कार्य सुसम्पन्न कराना चाहिए। पुराण एवं श्रुति के वेत्ताओं ने ग्रह यज्ञ का विधान तीन प्रकार से बताया गया है—दशसहस्र संख्या की आहुति वाला प्रथम, लक्ष संख्या की आहुति द्वारा और समस्त कामनाओं को सफल करने एवं कोटि संख्या की आहुति वाला तीसरा विधान कहा गया है। दश सहस्र संख्या की आहुति वाला

तस्य तावद्विधिं वक्ष्ये पुराणश्रुतिभाषितम् । गर्तस्योत्तरपूर्वेण वितस्तिद्वयविस्तृताम् ॥७
कुर्याद्विधानतो वेदिं वितस्त्युच्छ्रयसंयुताम् । संस्थापनाय देवानां चतुरस्त्रामुदकप्लवम् ॥८
अग्निप्रणयनं कृत्वा तस्यामावाहयेत्सुरान् । देवानां तत्र संस्थाप्या विंशतिर्द्वादशाधिका ॥९
सूर्यः सोमो महीपुत्रो बुधो जीवः सितोऽर्कजः । राहुः केतुरिति प्रोक्ता ग्रहा लोकहितावहाः ॥१०
ताम्रकात्स्फटिकाद्रक्तचन्दनात्स्वर्णजावुभौ । रजतादायसाच्चैव ग्रहाः कार्याः क्रमादमी ॥११
मध्ये तु भास्करं विद्याल्लोहितं दक्षिणेन तु । उत्तरेण गुरुं विद्याद्बुधं पूर्वोत्तरेण तु ॥१२
पूर्वेण भार्गवं विद्यात्सोमं दक्षिणपूर्वके । पश्चिमोत्तरतः केतुं स्थापयेच्छुक्लतण्डुलैः ॥१३
राजामात्यान्महाराज तण्डुलैः स्थापयेदथ । भास्करस्येश्वरं विद्यादुमां च शशिनस्तथा ॥१४
स्कन्दमङ्गारकस्यापि बुधस्य च तथा हरिम् । ब्रह्माणं च गुरोर्विद्याच्छुक्रस्यापि शचीपतिम् ॥१५
शनैश्चरस्य तु यमं राहोः कालं तथैव च । केतोस्तु चित्रगुप्तं तु सर्वेषामेव देवताः ॥१६
अग्निरापः क्षितिर्विष्णुरिन्द्रः सौवर्णदेवताः । प्रजापतिश्च सूर्यश्च ब्रह्मा प्रत्यधिदेवताः ॥१७
विनायकं तथा दुर्गां वायुमाकाशमेव च । सावित्रीं च तथा लक्ष्मीमुमां च सहभर्तृकाम् ॥१८
आवाहयेद्व्याहृतिभिस्तथैवाश्विकुमारकौ । संस्मरेद्रक्तमादित्यमङ्गारकसमन्वितम् ॥१९
सोमशुक्रौ यथाश्वेतौ बुधजीवौ च पिङ्गलौ । मन्दराहू तथा कृष्णौ धूम्रं केतुगुणं विदुः ॥२०
ग्रहवर्णानि देयानि वासांसि कुसुमानि च । गन्धाश्च बलयेश्चैव धूपा गुग्गुलपूर्वकाः ॥२१
गुडौदनं रवेर्दद्यात्सोमाय घृतपायसम् । अङ्गारकाय संयावं बुधाय क्षीरषष्टिकम् ॥२२

नवग्रह यज्ञ जो बताया गया है, मैं उसी का श्रुति पुराण भाषित विधान बता रहा हूँ, सुनो ! कुण्ड के उत्तर पूर्व (ईशान कोण) में एक हाथ की विस्तृत और एक बीते की ऊँची वेदी का सविधान निर्माण करके जो चौकोर और जल से अभिषिक्त हो, अग्नि प्रणयन करके देवों का आवाहन करें । बत्तीस देवों—सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु आदि लोक हितैषी ग्रहों की स्थापना करते समय क्रमशः ताँबे, स्फटिक, रक्तचन्दन, दो सुवर्ण की, चाँदी की और लोहे की उनकी प्रतिमा स्थापित करनी चाहिए । (वेदी के) मध्य में सूर्य, दक्षिण में मंगल, उत्तर में बृहस्पति, पूर्व उत्तर (ईशान कोण) में बुध, पूर्व में शुक्र, दक्षिण पूर्व (अग्नि कोण) में चन्द्रमा, पश्चिम उत्तर (वायव्य) में श्वेत तंदुल द्वारा केतु तथा राजा और अमात्य को स्थापित एवं पूजित करे । सूर्य के अधिदेव महादेव, शनि के उमादेवी, मङ्गल के स्कन्द, बुध के हरि, बृहस्पति के व्रह्मा शुक्र के शचीपति ! इन्द्र, शनिश्चर के यम, राहु के काल और केतु के चित्रगुप्त अधि देवता हैं । उसीभाँति अग्नि, जल (वरुण), पृथिवी, विष्णु, इन्द्र, सौवर्ण, प्रजापति, सूर्य, तथा व्रह्मा प्रत्यधि देवता हैं ।२-१७। इन देवों के आवाहन के उपरांत विनायक, दुर्गा, वायु, आकाश, सावित्री, लक्ष्मी, शिवसमेत उमा, व्याहृतियाँ एवं अश्विनी कुमार के आवाहन पूजन करना चाहिए । सूर्य, मंगल का रक्त वर्ण, चन्द्र-शुक्र श्वेत वर्ण, बुध हरित वर्ण, बृहस्पति पिङ्गल (पीत) वर्ण, शनि, राहु कृष्णवर्ण और केतु धूम्र वर्ण बताया गया है। पूजा करते समय ग्रहों के वर्णानुसार उन्हें वस्त्र, पुष्प से अलंकृत करे गंध, बलि, धूप, गुग्गुल से अर्चना सुसम्पन्न करें—गुडौदन (मीठाभात) से सूर्य, घृतपूर्ण खीर से चन्द्रमा, संयवा (लपसी) से मङ्गल, क्षीर पाष्टिक (साठी चावल की खीर) से बुध, दही भात से बृहस्पति, घृत भात से

दध्यन्नं गुरवे दद्याच्छुक्राय तु घृतौदनम् । शनैश्चराय कृशरं मेषमांसं तु राहवे ॥२३
चित्रौदनं केतवे च सर्वान्भक्ष्यैरथार्चयेत् । प्रागुत्तरेण तस्माच्च दध्यक्षतविभूषितम् ॥२४
चूतपल्लवसम्पन्नं फलवस्त्रयुगान्वितम् । पञ्चरत्नसमायुक्तं पञ्चभङ्गयुतं तथा ॥२५
स्थापयेदव्रणं कुम्भं वरुणं तत्र विन्यसेत् । गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः समुद्राश्च सरांसि च ॥२६
गजाश्वरथ्यावल्मीकात्सङ्गमाद्ध्रदगोकुलात् । मृदमानीय राजेन्द्र सर्वौषधिजलान्विताम् ॥२७
स्नानार्थं विन्यसेत्तत्र यजमानस्य धर्मवित् । सर्वे समुद्राः सरितः सरः प्रस्रवणानि च ॥२८
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः । एवमावाहयित्वा तान्सर्वान्नृपतिसत्तम ॥२९
होमं समारभेत्सर्पिर्यवव्रीहितिलादिना । अर्कः पलाशखदिरौ ह्यपामार्गोऽथ पिप्पलः ॥३०
उदुम्बर शमीदूर्वाकुशाश्च समिधः क्रमात् । एकैकस्य चाष्टशतमष्टाविंशति वा पुनः ॥३१
होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना वा पायसेन वा ! प्रादेशमात्रा ऋजवो विशाखा विफलाः शुभाः ॥३२
कल्प्यन्ते समिधः प्राज्ञैः सर्वकर्मसु सर्वदा । देवानामपि सर्वेषामुपांशुपरमार्थवित् ॥३३
स्वेन स्वेनैव मन्त्रेण होतव्याः समिधः पृथक् । आकृष्णेन इमं देवा अग्निमूर्द्धा दिवः क्रमात् ॥३४
उद्बुध्यस्वेति बोध्यश्च यथासंख्यमुदाहृताः । बृहस्पते अतियदर्यस्तिथैवान्नात्परिस्रुतः ॥३५
शन्नोदेवीति च कया केतुं कृण्वन्निताीति च । होतव्यं यद्वदाज्यं चरुं भक्ष्याणि वा पुनः ॥३६
मन्त्रैर्दशाहुतीर्दत्त्वा होमो व्याहृतिभिस्ततः । उदङ्मुखाः प्राङ्मुखाश्च कुर्युर्ब्राह्मणपुङ्गवाः ॥३७

शुक्र, खिचड़ी से शनि, भेंड के मांस से राहु, चित्रौदन से केतु को तृप्त करते हुए शेष सभी देवों को उत्तम भक्ष्य द्वारा सुतृप्त करे। अनन्तर उत्तर की ओर से व्रणरहित एक सौन्दर्यपूर्ण कलश की प्रतिष्ठा कर, जो दही अक्षत भूषित, आम के पल्लव, फल, वस्त्र भूषित पाँच रत्नों से युक्त और पञ्चगव्य समन्वित हो, उस पर वरुण देव को प्रतिष्ठि करे। राजेन्द्र ! गङ्गा आदि समस्त नदियाँ समुद्र और सरोवरों के स्थापन पूर्वक उनके जल, हार्थी, घोड़े चौराहे, वल्मीक (विभौर), संगम, तालाब, गोशाला, की मिट्टी, समस्त औषधों समेत जल की स्थापना भी वहाँ यजमान के स्नानार्थ कराना चाहिए। नृपसत्तम ! समस्त समुद्र, सरिताएँ, सरोवरों और झरने आदि जलाशय यजमान के पापक्षयार्थ यहाँ आने की कृपा करें इस प्रकार उपरोक्त जलाशयों के आवाहन पूजन करके घी जवा, व्रीहि और तिलादि की आहुति प्रदान करते समय सर्वप्रथम—मदार, पलाश, खैर, खिचिड़ी, पीपल, गूलर, शमी, दूर्वा और कुश की समिधाएँ। क्रमशः ग्रहों के निमित्त एक-एक समिधा की सौ-सौ अथवा अठ्ठाईस-अठ्ठाईस आहुति प्रदान करें। अनन्तर मधु, घी, अथवा दही या पायस की आहुति भी समर्पित करनी चाहिए। प्रादेश मात्र ऋजु और विपल विशाखा शुभ बताया गया है।१८-३२। इस प्रकार विशेषज्ञों ने सभी कर्मों के अनुष्ठानों में सर्वदा ऐसी ही समिधाओं की कल्पना की है। परमार्थवेत्ता विद्वान् को चाहिए सभी देवों के पृथक् पृथक् उनके निजी मंत्रों के 'आकृष्णेन इमं देवा' 'अग्निमूर्ध्या दिवः' 'उद्बुध्य स्वेति' 'बृहस्पते प्रतिपदः' अन्नात्परिश्रुतः' 'शन्नोदेवीति' और कया, केतु कृण्वन्निति च' उच्चारणपूर्व समिधाओं की आहुति अर्पित कर उसी भाँति घी, चरु एवं अन्य भक्ष्य पदार्थ की समंत्रक दश आहुति समर्पित करे और पीछे व्यावृत्तियों द्वारा समस्त हवन को सुसम्पन्न करे। उस कर्म में प्रवृत्त श्रेष्ठ ब्राह्मण वृन्दों को उत्तराभिमुख या पूर्वाभिमुख बैठ कर

मन्त्रवन्तस्तु कर्तव्याश्चरवः प्रतिदैवतम् । अयोराजेति रुद्रस्य बलिहोमं समारभेत् ।।३८
आपो हिष्टेत्युमायास्त श्येनेति स्वामिनस्तथा। विष्णोरिदं विष्णुरिति स्वमिच्छेति स्वयंभुवः ।।३९
इन्द्रादिदेवतानां तु इन्द्राय जुहुयात्पुनः । नवा यमस्यायं गौश्चेत्येवं होमः प्रकीर्तितः ।।४०
कालस्य ब्रह्मजज्ञानमिति मन्त्रः प्रशस्यते । चित्रगुप्तस्य दा जात पौराणिकाविदुर्बुधाः ।।४१
"अग्निं दूतंवृणीमहे" इति वह्नेरुदाहृतः । इन्द्रं यनं वरुणमित्ययं मन्त्रः प्रकीर्तितः ।।४२
भूमेः पृथिव्यन्तरिक्षमिति वेदेषु पठचते । "सहस्रशीर्षा पुरुष" इति विष्णोरुदाहृतः ।।४३
वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः । ब्रह्मणा सहितः शेषो दिक्पालाः पान्तु ते सदा ।।४४
कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधाः पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः । बुद्धिर्लज्जा शान्तिपुष्टी कान्तिस्तुष्टिश्चमातरः।।४५
एतास्त्वामभिषिंचन्तु धर्मपत्न्यः समागताः । आदित्यचन्द्रमा भौमो बुधजीवसितार्कजाः ।।४६
ग्रहास्त्वामभिषिंचन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः । देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ।।४७
ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च । देवपत्न्यो द्रुमा नागा दैत्याश्चाप्सरसां गणाः ।।४८
अस्त्राणि सर्वशस्त्राणि राजानो वाहनानि च । औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये ।।४९
सरितः सागराः शैलस्तीर्थानि जलदानदाः । एते त्वामभिषिचन्तु सर्वकामार्थसिद्धये ।।५०
ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः । सर्वगन्धसमायुक्तः स्नातः श्रद्धासमन्वितः ।।५१
यजमानः सपत्नीकान्सिद्धिदान्स्तान्समाहितान् । दक्षिणाभिः प्रयत्नेन पूजयेद्गतविस्मयः ।।५२
सूर्याय कपिलां धेनुं दद्याच्छंखं तथेन्दवे । रक्तं धुरन्धरं दद्याद्भौमाय ककुदाधिकम् ।।५३

मंत्रों के उच्चारण करना चाहिए और चरु की आहुति देवों के प्रति अर्पित करनी चाहिए । 'अयोराजेति' मंत्र द्वारा रुद्र के लिए बलि और हवन सुसम्पन्न करे उसी भाँति 'आपोहिष्ठेति' मंत्र से उमा के लिए, 'श्नेनेति' मंत्र से 'स्वामिकार्तिकेय' 'विष्णोरिदं' से विष्णु, 'स्वामिच्छेति' से स्वयम्भू (ब्रह्मा), और इन्द्रादि देवों के लिए 'इन्द्राय आदि' मंत्रों से आहुति प्रदान करनी चाहिए। 'अपं गौश्चेति' यम, 'ब्रह्मजज्ञानमिति' से काल, तथा चित्रगुप्त के लिए विद्वानों को पौराणिक मंत्रों द्वारा आहुति प्रदान करना चाहिए । उसी 'अग्नि' दूत वृणीमहे इति' से अग्नि 'इन्द्र यमं वरुमिति' मंत्र और 'सहस्र शीर्षा पुरुष' यह मंत्र विष्णु के लिए कहा गया है । अनन्तर वरुण, पवन, धनाध्यक्ष (कुबेर), शिव, ब्रह्मा समेत शेष एवं दिक्पाल तुम्हारी सदैव रक्षा करें । कीर्ति लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा,। क्रिया, मति, बुद्धि, लज्जा, शांति, पुष्टि, कान्ति और तुष्टि मातायें धर्मपत्नियाँ तुम्हारा अभिषेचन करे । सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु, तथा भली भाँति तृप्त किये गये देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पन्नग (सर्प), ऋषिगण, मुनिवृन्द, गौएँ, देवमाताएँ, देवपत्नियाँ, वलक्ष, नाग, दैत्य, अप्सरायें, समस्त अस्त्र-शस्त्र, राजवृन्द, वाहन गण, औषध समूह, समस्त रत्न, कल के सभी भेद (वर्षभास आदि), सरिताएँ, सागर, शैल, तीर्थ, वृन्द, मेघ और नद समूह समस्त कामनाओं के सिद्धर्थ्य तुम्हारा अभिषेक करे पश्चात् शुक्लाम्बरधारी, शुक्लगन्ध का अनुलेपन, सम्पूर्ण गन्ध पूर्ण जलस्नान करके श्रद्धा भक्ति समेत यजमान सपत्नीक उन सिद्धि प्रदान करने वाले देवों की सदक्षिणा प्रयत्न पूर्वक अर्चना करे।३३-५२। और सावधान होकर सूर्य के लिए कपिला गौ, चन्द्रमा के लिए शंख, भीम के लिए महान् डिल्ल वाला रक्तवर्ण का वृषभ,

बुधाय जातरूपं च गुरवे पीतवाससी । श्वेताश्वं दैत्यगुरवे कृष्णाङ्गामर्कसूनवे ।।५४
आयसं राहवे दद्यात्केतवे च्छागमुत्तमम् । सुवर्णेन समा कार्या यजमानेन दक्षिणा ।।५५
सर्वेषामथवा दद्याद्गुरुर्वा येन तुष्यति । सुमन्त्रेण प्रदातव्याः सर्वाः सर्वार्थदक्षिणाः ।।५६
कपिले सर्वदेवानां पूजनीयासि रोहिणी । तीर्थदेवमयी यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।।५७
पुण्यस्त्वं शङ्ख पुण्यानां मङ्गलानां च मङ्गलम् । विष्णुना विधृतो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।।५८
धर्म त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारकः । अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।।५९
हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेम बीजं विभावसोः । अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।।६०
पीतवस्त्रयुगं दद्याद्वासुदेवस्य वल्लभम् । प्रदानात्तस्य मे विष्णुरतः शान्तिं प्रयच्छतु ।।६१
कपिलस्त्वश्वरूपेण यस्मादमृतसम्भवः । चन्द्रार्कवाहनो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।।६२
यस्मात्त्वं पृथिवी सर्वा धेनो वै कृष्णसंज्ञिता । सर्वपापहरा नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।।६३
यस्मादायस कर्माणि तवाधीनानि सर्वदा । लाङ्गलान्यायुधादीनि तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे ।।६४
यस्मात्त्वं छाग यज्ञानामङ्गत्वेन व्यवस्थितः । योनिर्विभावसोर्नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।।६५
गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश । यस्मात्तस्माच्छिवं मे स्यादिह लोके परत्र च ।।६६
यस्मादशून्यं शयनं केशवस्य शिवस्य च । शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनि जन्मनि ।।६७
यथा रत्नेषु सर्वेषु सर्वे देवा व्यवस्थिताः । तथा शान्तिं प्रयच्छन्तु रत्नदानेन मे सुराः ।।६८

बुध के लिए जातरूप 'सुवर्ण', बृहस्पति के लिए दो पीताम्बर, शुक्र के लिए श्वेत अश्व, शनि के लिए कृष्णा गौ, राहु के लिए लोहे, और केतु के लिए छाग (बकरी) सुवर्ण की दक्षिणा समेत अर्पित करे। सब के दान करने में असमर्थ होने पर जिस वस्तु से गुरु आचार्य विशेष प्रसन्न हो सके उसका अवश्य दान करना चाहिए। समंत्रक दक्षिणा प्रदान करने के अनन्तर क्षमा याचना करे—कपिले ! तुम समस्त देवों की पूजनीया रोहिणी हो, तीर्थों की देवमयी हो, पुनः मुझे शांति प्रदान करने की कृपा करें। शंख ! तुम पुष्पों के पुष्प और मङ्गलों के मङ्गल हो, इसीलिए विष्णु तुम्हें नित्य धारण करते हैं, मुझे शांति प्रदान करने की कृपा करें।५३-५८। धर्म ! तुम वृष (वैल) रूप धारण कर सारे संसार को आनन्द प्रदान करते हो और अष्ट मूर्ति (शिव) जी के अधिष्ठान भी हैं, मुझे शान्ति प्रदान करें। हिरण्यगर्भ में स्थित, अग्नि के हेमबीज और अनन्तपुण्यफलदायक होने के नाते मुझे शान्ति प्रदान करें। भगवान् वासुदेव को चार पीताम्बर (वस्त्र) प्रदान किया जात है, पुनः उससे प्रसन्न होकर विष्णु देव मुझे शान्ति प्रदान करें। कपिल देव अश्व रूप धारण कर, जिनसे अमृत उत्पन्न हुआ है, चन्द्रमा और सूर्य के वाहन हुए हैं, वे नित्य मुझे शान्ति प्रदान करें। धेनो ! तुम समस्त पृथिवी का रूप हो, कृष्णा तुम्हारा नाम है, सम्पूर्ण पापों के अपहरण करती हो, अतः मुझे नित्य शांति प्रदान करने की कृपा करो। लोह से होने वाले जितने कर्म हैं वे सर्वदा तुम्हारे ही अधीन रहते हैं और लाङ्गल (हल में रहने वाले फल) से लेकर सम्पूर्ण अस्त्रादि भी तुम्हीं से बनते हैं मुझे शान्ति प्रदान करो। छागयज्ञ (बकरी) बलि के तुम अङ्ग हो और अग्नि के योनि (कारण) होने के नाते मुझे शान्ति प्रदान करो।५९-६५। गौओं के अङ्गों में चौदह लोक प्रतिष्ठित हैं इसलिए लोक परलोक के कल्याण मुझे अवश्य प्राप्त हों। जिसके कारण भगवान् केशव और शिव की शय्या सदैव अशून्य रहती है उसी भाँति प्रत्येक जन्म में मेरी भी शय्या सर्वदा अशून्य रहे। रत्नों में समस्त देवगण सदैव व्यवस्थित रहते हैं

यथा भूमिप्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्। दानान्यन्यानि मे शान्तिं भूमि दानाद्भवत्यपि ॥६९
एवं सम्पूजयेद्भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः । वस्त्रकाञ्चनरत्नौघैर्माल्यगन्धानुलेपनैः ॥७०
ग्रहस्वरूपमतुलं कथ्यमानं निबोध मे । भक्तिभावप्रपन्नस्य कथ्यमानं विराजते ॥
पद्मासनः पद्मकरः पद्मगर्भसमद्युतिः । सप्ताश्वः सप्तरज्जुश्च द्विभुजः स्यात्सदा रविः ॥७१
श्वेतः श्वेताम्बरधरो दशाश्वः श्वेतभूषणः । गदापाणिर्द्विबाहुश्च कर्तव्यो वरदः शशी ॥७२
रक्तमाल्याम्बरधरः कर्णिकारसमद्युतिः । खड्गचर्मगदापाणिर्विधेयो भूमिनन्दनः ॥७३
पीतमाल्याम्बरधरः पीतगन्धानुलेपनः । काञ्चने च रथे दिव्ये शोभमानो बुधः सदा ॥७४
देवदैत्यगुरू तद्वत्पीतश्वेतौ चतुर्भुजौ । दण्डिनौ वरदौ कार्यौ साक्षसूत्रकमण्डलू ॥७५
इन्द्रनीलद्युतिः शूली वरदो गृध्रवाहनः । बाणबाणासनधरः कर्तव्योऽर्कसुतः सदा ॥७६
शार्दूलवदनः खड्गी चर्मी शूली वरप्रदः । नीलसिंहासनस्थश्च राहुरत्र प्रशस्यते ॥७७
धूम्रा द्विबाहवः सर्वे गदिनो विकृताननाः । गृध्रासनरता नित्यं केतवः स्युर्वरप्रदाः ॥७८
सर्वे किरीटिनः कार्या ग्रहा लोकहितावहाः । स्वाङ्गुलेनोच्छ्रिताः सर्वे शतमष्टोत्तरं तदा ॥७९
ग्रहस्वरूपमेतत्ते व्याख्यातं पाण्डुनन्दन । एतज्ज्ञात्वा प्रयत्नेन पूजा कार्या विचक्षणैः ॥८०
विधिना ग्रहपूजां योऽनेन त्वारभते नरः । सर्वान्कामानवाप्नोति प्रेत्य स्वर्गे महीयते ॥८१

अतः उन्हीं रत्नों के दान करने के नाते प्रसन्न देववृन्द मुझे शान्ति प्रदान करें। भूमिदान की सोलहवी कला की भी समानता अन्य दान नहीं कर सकते हैं अतः वह भूमिदान मेरे लिए शान्तिदायक हो। इस प्रकार वित्त शाठ्य (कृपणता) दोष रहित होकर भक्तिपूर्वक वस्त्र, सुवर्ण, रत्नों के समूह, माला, गंध और विलेप द्वारा पूजन करना चाहिए। इसके उपरांत मैं तुम्हें ग्रहों के अतुलनीय स्वरूप बता रहा हूँ, सुनो! क्योंकि भक्तिभाव से शरणागत प्राणियों के लिए यह कहना सुशोभित भी होता है। पद्मासन, पद्मकर, पद्मगर्भ के समान कान्ति, सात घोड़े सात रज्जु (रस्सी) एवं दो भुजाएँ सूर्य का स्वरूप बताया गया है। श्वेत वर्ण, श्वेत वस्त्र धारण किये, दश घोड़े श्वेतभूषण भूषित, हाथ में गदा लिए वरदायक चन्द्रमा का स्वरूप कहा गया है। रक्त माला एवं वस्त्र, कर्णिकार के समान कान्ति, खड्ग, चर्म, तथा गदा लिए भूमि नन्दन मङ्गल का स्वरूप बताया गया है। पीतवर्ण की माला और वस्त्र, पीत गंध का अनुलेपन तथा दिव्य काञ्चन रथ पर सुशोभित होने वाले बुध का स्वरूप कहा गया है।६६-७६। देव गुरु बृहस्पति और दैत्य गुरु शुक्राचार्य की पीत तथा श्वेत वर्ण की भुजाएँ, दण्ड, यज्ञोपवीत एवं कमण्डलु धारण करना कहा गया है। इन्द्र नील मणि की भाँति, प्रभा, शूललिए वरद, गृघ्र वाहन और धनुष बाण धारण किये सूर्य पुत्र शनि का रूप बताया गया है। व्याघ्र मुख, खड्ग चर्म (कवच), शूल धारण किये वरदायक, नील सिंहासन पर स्थित राहु का वर्णन किया गया है। उसी प्रकार धूम्र, वर्ण, दो बाहू, गदाधारी, विकृत वदन, गृधासन पर प्रतिष्ठित वरप्रद केतु का रूप बताया गया है। पाण्डुनन्दन! लोक हितैषी सभी ग्रहों को किरीट से भूषित और अपने अंगुल से एक सौ आठ अंगुल ऊँचे ग्रहों का स्वरूप बनाना चाहिए। इस प्रकार तुम्हें ग्रहों का स्वरूप बता दिया गया है। इसलिए बुद्धिमानों को ऐसा जानकर ग्रहों की सप्रयत्न पूजा करनी चाहिए क्योंकि कि इस विधान द्वारा ग्रहों की अर्चा सुसम्पन्न करने वाले प्राणी समस्त कामनाओं की सफलतापूर्वक अंत में स्वर्ग पहुँच कर पूजित होते हैं। (अरिष्ट स्थान में आ जाने से)

यस्तु पीडाकरो नित्यं माल्यवित्तस्य वा ग्रहः । तं तु यत्नेन सम्पूज्य शेषानप्यर्चयेद्बुधः ॥८२
ग्रहा गावो नरेन्द्राश्च ब्राह्मणाश्च विशेषतः । पूजिताः पूजयन्त्येते निर्दहन्त्यवमानिताः ॥८३
तस्मान्न दक्षिणाहीनं कर्तव्या भूतिमिच्छता । सम्पूर्णायां दक्षिणायां यस्मादेकोऽपि तुष्यति ॥८४
सदैवाऽयुतहोमोऽयं नवग्रहमखः स्मृतः ॥८५
विवाहोत्सवयज्ञेषु प्रतिष्ठादिषु कर्मसु । निर्विघ्नार्थं महाराज तथोद्वेगाद्भुतेषु च ॥८६
कथितोऽयुतहोमोऽयं लक्षहोममतः शृणु । सर्वकामाप्तये यस्माल्लक्षहोमं विदुर्बुधाः ॥८७
पितॄणां वल्लभो यस्माद्भुक्तिमुक्तफलप्रदः । ग्रहताराबलं लब्ध्वा कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ॥८८
गृहस्योत्तरपूर्वेण मण्डपं कारयेद्बुधः । रुद्रायतनभूमौ वा चतुरस्रमुदङ्मुखम् ॥८९
दशहस्तमथाष्टौ वा हस्तान्कुर्याद्विधानतः । प्रागुदक्प्रवणां भूमिं कारयेद्यत्नतो नरः ॥९०
प्रागुत्तरं समासाद्य प्रदेशं मण्डपस्य तु । शोभनं कारयेत्कुण्डं यथावल्लक्षणान्वितम् ॥९१
मानहीनं चाप्रशस्तमनेकभयदं भवेत् । यस्मात्तस्मात्सुसम्पूर्णं शान्तिकुण्डं विधीयते ॥९२
अस्माद्दशगुणः प्रोक्तो लक्षहोमे स्वयंभुवा । आहुतिभिः प्रयत्नेन दक्षिणाभिस्तथैव च ॥९३
द्विहस्तविस्तृतं तद्वच्चतुर्हस्तायतं पुनः । लक्षहोमे भवेत्कुण्डं योनिवक्त्रं त्रिमेखलम् ॥९४
संस्थापनाय देवानां वप्रत्रयसमावृतम् । द्विरङ्गुलोच्छ्रितो वप्रः प्रथमः समुदाहृतः ॥९५

पीड़ित करने वाले ग्रह की अर्चना अपने वित्तानुसार माला आदि सामग्रियों से सुसम्पन्न कर पश्चात् शेष ग्रहों की भी अर्चना करनी चाहिए। क्योंकि ग्रह, गौ, नरेन्द्र, और विशेषकर ब्राह्मण पूजित होने पर उसे पूजनीय बनाते हैं तथा अपमानित होने से दग्ध कर देते हैं। इसलिए ऐश्वर्य की कामना वाले को दक्षिणा-हीन यज्ञ नहीं करना चाहिए। सम्पूर्ण दक्षिणा प्रदान करने पर जिस कारण वह एक भी (ग्रह) प्रसन्न होता है वह दैव (गृह) का अयुत (दशसहस्र) आहुति वाला यज्ञ नवग्रह मख कहा गया है। विवाह, उत्सव, यज्ञ, और प्रतिष्ठा आदि सभी कर्मों में निर्विघ्न सफलता एवं उद्वेग होम अवश्य सुसम्पन्न करना चाहिए। इसके उपरान्त मैं तुमहें लक्ष संख्या की आहुति का हवन बता रहा हूँ, सुनो! विद्वानों ने समस्त कामनाओं की सफलता के लिए उसे (लक्षहोम को) सुसम्पन्न करना परमावश्यक बताया है।७७-८७। क्योंकि वह यज्ञ पितर गणों को प्रयत्न प्रिय एवं भुक्ति मुक्ति फलप्रदायक है। ग्रहबल और ताराबल के सबल रहने पर ब्राह्मण द्वारा स्वस्तिवाचन के अनन्तर गृह के उत्तरपूर्व (ईशान कोण) की ओर अथवा रुद्रायतन भूमि में सौन्दर्य पूर्ण मण्डप बनवाना चाहिए, जो चौकोर, उत्तराभिमुख, दश या आठ हाथ का सविधान विस्तृत किया गया हो। उस मण्डप की भूमि उत्तर की ओर कुछ ढालू होनी चाहिए। और उस शोभन स्थान के कुछ उत्तर प्रदेश में लक्षण भूषित एक उत्तम कुण्ड का निर्माण करना चाहिए क्योंकि मान (नाप) हीन कुण्ड अप्रशस्त और अनेक भय प्रदान करता है अतः सर्वलक्षण सम्पन्न शान्ति कुण्ड का निर्माण होना चाहिए। भगवान् स्वयम्भू (ब्रह्मा) ने इससे दश गुना लक्ष होम बताया है। जो आहुतियों में अधिक होने पर भी दक्षिणा में भी अधिक होता है। अतः दो हांथ का विस्तृत और चार हाथ का लम्बा, योनि मुख, तीन मेखला से भूषित लक्ष होम का कुण्ड बनाया जाता है। देवों के संस्थापनार्थ तीन वप्र का निर्माण होना चाहिए। जिसमें दो अंङ्गुल का ऊँचा पहला, और शेष दो वप्र एक-एक अङ्गुल की ऊँचाई के

अङ्गुलोच्छ्रयसंयुक्तं वप्रद्वयमथोपरि । द्व्यङ्गुलस्तत्र विस्तारः सर्वेषां कथ्यते बुधैः ॥९६
दशाङ्गुलोच्छ्रिता भित्तिः स्थण्डिलस्य तथोपरि । तस्मिन्नावाहयेद्देवान्पूर्ववत्पुष्पतण्डुलैः ॥९७
आदित्याभिमुखाः सर्वाः स्थाप्याः प्रत्यधिदेवताः । स्थापनीया मुनिश्रेष्ठा नान्तरेण पराङ्मुखाः ॥९८
गरुत्मानधिकस्तत्र सम्पूज्यः श्रियमिच्छता । समपीनशरीरस्तु वाहनं परमेष्ठिनः ॥९९
विषपापहरो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे । पूर्ववत्कुम्भमामन्त्र्य तद्वद्धोमं समाचरेत् ॥१००
सहस्राणां शतं हुत्वा समित्संख्यादिकं पुनः । औदुम्बरीमथार्द्रां च वक्रकोटरवर्जिताम् ॥१०१
बाहुमात्रां स्रुचं कृत्वा ततः स्तम्भद्वयोपरि । घृतधारां तथा सम्यगग्नेरुपरि पातयेत् ॥१०२
पाठयेत्सूक्तमाग्नेयं वैष्णवं रौद्रमैंदवम् । महावैश्वानरं साम ज्येष्ठसाम च पाठयेत्[1] ॥१०३
स्नानं तु यजमानस्य पूर्ववन्मन्त्रवाचनम् । दातव्या यजमानेन पूर्ववद्दक्षिणा पृथक् ॥१०४
कामक्रोधविहीनेन ऋत्विग्भ्यः शान्तचेतसः । नवग्रहमखे विप्राश्चत्वारो वेदवेदिनः ॥१०५
अथ वा ऋत्विजौ शान्तौ द्वावेव त्वतिकोविदौ । कार्यावयुतहोमे तु न प्रसज्येत विस्तरे ॥१०६
तद्वच्च दश चाष्टौ वा लक्षहोमेऽपि ऋत्विजः । कर्तव्याः शक्तिस्तद्वच्चत्वारो वा विमत्सराः ॥१०७
नवग्रहमखे सर्वं लक्षहोमे दशोत्तरम् । दद्याच्च पाण्डवश्रेष्ठ भूषणान्यपि शक्तितः ॥१०८

होते हैं।८८-९४। विद्वानों ने उन सभी के दो अंगुल का विस्तार बताया है। उस स्थण्डिल (वेदी) की भूमि भित्ति (दीवाल) दश अङ्गुल की ऊँची होती है, जिसके ऊपर पुष्प और चावल (अक्षत) लेकर देवों के पूर्व की भाँति आवाहन किये जाते हैं। मुनिश्रेष्ठ ! समस्त प्रत्यधिदेवताओं को सूर्य के सम्मुख ही स्थापित करना चाहिए। न कि पराङ्मुख होने के लिए बीच में। श्री की इच्छुक को गरुत्मान् (गरुड) की अर्चना करनी चाहिए, क्योंकि समान रूप से पीत (स्थूल) शरीर वाले वे (हंस रूप से) परमेष्ठी (पितामह) के भी वाहन हैं। आप विष और पाप के अपहरण करते हैं अतः मुझे शान्ति प्रदान करने की कृपा करें। पूर्व की भाँति कलश स्थापन पूजन के उपरान्त सौ सहस्र (एक लक्ष) आहुति प्रदान कर गूलर के उस आर्द्र (गीले) काष्ठ के बने हुए स्रुच नामक यज्ञीय पात्र द्वारा, जो वक्र (टेढ़ापन) और कोटर (लघु च्छिद्र) रहित बाहुमात्र (एकहाथ) का लम्बा और चौड़े मुख का बना रहता है, दोनों स्तम्भ (यज्ञीय) खम्भे के सहारे से अग्नि में घृत धारा की वसुधारा प्रदान करे। उस समय अग्नि, विष्णु, रुद्र, चन्द्र के सूक्तों और महावैश्वानर साम तथा ज्येष्ठ साम का पाठ होना चाहिए। यजमान का स्नान, मन्त्र वाचन, और यजमान द्वारा शान्ति पूर्वक तथा काम-क्रोध से रहित होकर ऋत्विजों की पृथक् पृथक् दक्षिणा दान पूर्व की भाँति ही होना चाहिए। नवग्रह के यज्ञ में वेदवादी चार विद्वान् होने चाहिए अथवा शान्ति प्रकृति के दो ही निपुण विद्वानों को ऋत्विज पद अर्पित करें क्योंकि अयुत (दश सहस्र) आहुति के हवन कार्य में अधिक संख्या बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं बतायी गयी है।९५-१०६। उसी प्रकार लक्ष आहुति हवन में दश या आठ विद्वान् ऋत्विज स्थान पर नियुक्त करना चाहिए अथवा यथाशक्ति मत्सर आदि दोष हीन चार ही विद्वान् रखे इस प्रकार नवग्रह यज्ञ में सब एक लक्ष दश आहुति प्रदान करनी चाहिए। पाण्डव श्रेष्ठ !

---

१. श्रावयेत्।

शयनानि च वस्त्राणि हैमादि कटकानि च । कर्णाङ्गुलीपवित्राणि भक्तिमान्प्रतिपादयेत्[1] ।।१०९
न कुर्याद्दक्षिणाहीनं वित्तशाठ्येन मानवः । अददल्लोभमोहाभ्यां कुलक्षयमवाप्नुयात् ।।११०
अन्नदानं यथा शक्त्या दातव्यं भूतिमिच्छता । अन्नहीनं व्रतं यस्माद्दुर्भिक्षफलदं भवेत् ।।१११
राष्ट्रं हन्यादङ्गहीनो मन्त्रहीनस्तु ऋत्विजः । अदक्षिणो यजमानं नास्ति यज्ञसमो रिपुः ।।११२
न चाप्यल्पधनः कुर्याल्लक्षहोमं नरः क्वचित् । तस्मात्पीडाकरो नित्यं य[2] एव भवति ग्रहः ।।११३
तमेव पूजयेद्भक्त्या द्वौ वा त्रीन्वा यथाविधि । एकमप्यर्चयेद्भक्त्या ब्राह्मणं वेदपारगम् ।।११४
दक्षिणाभिः प्रयत्नेन[3] बहून्वा बहुवित्तवान् । लक्षहोमस्तु कर्तव्यो यदि वित्तं गृहे गृहे ।।११५
यतः[4] सर्वानवाप्नोति कुर्वन्कामान्विधानतः । पूज्यते शिवलोके च वस्वादित्यमरुद्गणैः ।।११६
यावत्कल्पशतान्यष्टावथ मोक्षमवाप्नुयात् । सकामो यस्त्विमं कुर्याल्लक्षहोमं यथाविधि ।।११७
स तं काममवाप्नोति पदं चानन्त्यमश्नुते । पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ।।११८
भार्यार्थी शोभनां भार्यां कुमारी च शुभं पतिम् । भ्रष्टराज्यस्तथा राज्यं श्रीकामः श्रियमाप्नुयात् ।।११९
यं यं प्रार्थयते कामं तं तमाप्नोति पुष्कलम् । निष्कामः कुरुते यस्तु परं ब्रह्म स गच्छति ।।१२०

उस यज्ञ में यजमान को यथाशक्ति भूषण, सुसज्जित शय्या, वस्त्र, सुवर्ण के कटक (अङ्गद), कुण्डल और अंगूठी का भी दान करना चाहिए। मनुष्य को ऐसे अवसर पर कभी भी कृपणता न करनी चाहिए, क्योंकि लोभ-मोह वश उचित दान न करने पर कुल का क्षय होने लगता है। ऐश्वर्येच्छुक को यथाशक्ति अन्नदान भी करना चाहिए, क्योंकि अन्नदान हीन व्रत दुर्भिक्ष का फल प्रदान करता है। ऐसा शास्त्रों का सम्मत है कि—अङ्गहीन यज्ञ राष्ट्र का नाश, मंत्रहीन होने से यज्ञ ऋत्विक का नाश और दक्षिणा हीन होने से यजमान का विनाश करता है अतः यज्ञ के समान कोई अन्य शत्रु नहीं है। अल्प वित्त वाले मानव को लक्ष होम यज्ञ का अनुष्ठान कभी नहीं सुसम्पन्न करना चाहिए। इसलिए केवल पीड़ित करने वाले ग्रह की अवश्य अर्चना करे, कुछ समर्थ होने पर दो या तीन ग्रहों की अर्चना कर सकता है। उस अनुष्ठान में भक्ति पूर्वक एक ही वेद निष्णात ब्राह्मण विद्वान् की अर्चना को किन्तु धनाढ्यों को उचित दक्षिणा द्वारा उसी प्रकार के अनेक विद्वान् सुसम्मानित करने चाहिए। घर में पूर्ण धन होने पर उसे लक्ष होम का अनुष्ठान अवश्य सुसम्पन्न करना चाहिए, क्योंकि सविधान उसे सुसम्पन्न करने पर मनुष्य की समस्त कामनाएँ सफल होती हैं तथा शिव लोक में वसु आदित्य एवं मरुद्गण आदि देवों द्वारा वह सुसम्मानित होता है। इस प्रकार आठ सौ कल्प पर्यन्त सुखानुभूति करने उपरान्त उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। किसी कामना वश लक्ष होम यथा विधान सुसम्पन्न करने पर उसकी सफलता तो मिलती है किन्तु अनन्त पद (विष्णु लोक) कर भी सुख प्राप्त होता है पुत्रार्थी को पुत्र, धनार्थी को धन, भार्या के इच्छुक को सुन्दरी भार्या कुमारी को कल्याणमूर्ति पति, भ्रष्ट राज्य लोक वाले को राज्य, श्री की प्राप्ति होती है इस प्रकार जिन-जिन कामनाओं के वश उसका अनुष्ठान किया जाता है वे सभी कामनाएँ निश्चित सफल होती हैं। निष्काम प्राणी को इसे सुसम्पन्न करने पर ब्रह्म की प्राप्ति होती है ।१०७-१२०। जो सर्वथा

---

१. शक्तिमान् । २. भवति ग्रहपूजने । ३. दयाधापिरो नित्यं क्षमावान्बहुवित्तवान् । ४. पातकं समवाप्नोति यत्कुर्वन्नविधानतः ।

शान्तिं नवग्रहमयीं दुरितोपशान्तिं राजन्करोति बहुना विधिवद्द्विजेन्द्रैः।
क्षेमं सुभिक्षमतुलं कुलवृद्धिसम्पत्तत्रास्ति यत्र कुरुते बत लक्षहोमम्।१२१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
नवग्रहलक्षहोमविधिवर्णनं नामैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः।१४१

अथ द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कोटिहोमविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

राजा सम्वरणः पूर्वं प्रतिष्ठाने पुरोत्तमे। बभूव स महाभागः शास्त्रार्थकुशलो बली॥१
ब्रह्मण्यः पितृभक्तश्च देवब्राह्मणपूजकः तस्याथ। कुर्वतो राज्यं सम्यक्पालयतः प्रजाः॥२
आजगाम महायोगी सनको ब्राह्मणः सुतः। दत्वा तस्यासनं राजा प्रणम्य शिरसा तथा॥३
पूजियत्वार्घ्यपाद्याद्यैरात्मानं विनिवेद्य च। इतिहासपुराणोक्ताश्चकार विविधाः कथाः॥४
राजर्षीणां पुराणां च चरितानि यथार्थवित्। ततः कथान्तरे राजा कार्यं मनसि संस्थितम्॥५
हिताय पृथिवीशानां जगताश्चात्मनस्तथा। पप्रच्छ विनयोपेतो योगाचार्यं महामतिः॥६

सम्वरण उवाच

भगवन्महदुत्पातसम्भवे भूप्रकम्पने। निर्घाते पांशुवर्षे च गृहभंगे तथैव च॥७

पापों के शमन करती है और जिसमें और लक्ष संख्या की आहुति अर्पित की जाती है, सुसम्पन्न करने पर उस को अतुल क्षेम, सुभिक्ष, कुलवृद्धि एवं अभूत सम्पत्ति प्राप्त होती है।१२१

श्री भविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के संवाद में
नवग्रह लक्ष होम विधि वर्णन नामक एक सौ एकतालिसवाँ अध्याय समाप्त।१४१।

अध्याय १४२

कोटिहोमविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—नगर श्रेष्ठ प्रतिष्ठानपुर में सवरण नाम का महापुण्यात्मा राजा रहता था, जो शास्त्रों का अर्थकुशल एवं महाबली था। ब्रह्मण्य, पितृभक्त, देव ब्राह्मण पूजन एवं प्रजाओं के भलीभाँति पालन करने वाले उस राजा के यहाँ एक बार महायोगी, एवं ब्रह्मपुत्र सनक जी का आगमन हुआ। राजा ने शिर से प्रणाम करते हुए आसन पर सुशोभित कर अर्घ्य-पाद्यादि के प्रदान पूर्वक उनकी पूजा की और कुशल मङ्गल पूछने के अनन्तर इतिहास पुराण प्रसिद्ध पूर्व कालीन राजर्षियों के चरितों की चर्चा की। पश्चात् यथार्थ वेत्ता उस राजा ने उनसे अपना मानसिक अभिप्राय प्रकट किया, जो भूपालों, सम्पूर्ण जगत् एवं अपने लिए परम हितकर था। विनय विनम्र महाबुद्धिमान् राजा ने उन योगाचार्य से पूँछा—१-६

सम्वरण बोले—भगवान्! महान् उत्पात के सम्भव होने, भूकम्प, निर्यात, धूलिवर्षा, गृह के नष्ट

जन्मनक्षत्रपीडासु अनावृष्टिभयेषु च । ज्वरेषु ग्रहपीडासु दुर्भिक्षे राष्ट्रविग्रहे[1] ॥८
व्याधीनां सम्भवे जाते शरीरे चातिपीडिते । क्लेशे महति चोत्पन्ने किङ्कर्तव्यं नरोत्तमैः[2] ॥९
स्वर्गस्य साधनं यच्च कीर्तिदं धनदं तथा । प्रब्रूहि मे द्विजश्रेष्ठ तथारोग्यप्रदं नृणाम् ॥१०

सनत्कुमार उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि शान्तिकर्म ह्यनुत्तमम् । कोटिहोमाख्यमतुलं सर्वकामफलप्रदम् ॥११
ब्रह्महत्यादिपापानि येन नश्यन्ति तत्क्षणात् । उत्पाताः प्रशमं यान्ति महत्सम्पद्यते सुखम् ॥१२
विधानं तस्य वक्ष्यामि शृणुष्वैकमना भव । देवागारे[3] नदीतीरे वने वा भवनेऽपि वा ॥१३
पर्वते वापि कुर्वीत य इच्छेत्क्षेममात्मनः । शुभनक्षत्रयोगे च वारे पूर्वगुणान्विते ॥१४
यजमानस्यानुकूल्ये कोटिहोमं समाचरेत्[4] । पूजयित्वा प्रयत्नेन ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥१५
वस्त्रैर्विभूषणैश्चैव गन्धमाल्यानुलेपनैः । प्रणम्य विधिवत्तस्मै आत्मानं विनिवेदयेत् ॥१६
त्वं नो गतिः पिता माता त्वं गतिस्त्वं परायणः । त्वत्प्रसदने विप्रर्षे सर्वं मे स्यान्मनोगतम् ॥१७
आपद्विमोक्षाय च मे कुरु यज्ञमनुत्तमम् । कोटिहोमार्थमतुलं शान्त्यर्थं सार्वकामिकम् ॥१८
पुरोहितस्ततः प्राज्ञः शुक्लाम्बरधरः शुचिः । ब्राह्मणैर्वेदसम्वृत्तैः[5] पुण्यैर्युक्तः समाहितैः ॥१९

होने जन्म नक्षत्र पीड़ा, अनावृष्टि भय, ज्वरपीड़ा, ग्रहपीड़ा, दुर्भिक्ष, राष्ट्र विप्लव, रोग के उत्पन्न होने, शरीर के प्रति पीड़ित होने, महान् क्लेश के उपस्थित होने पर राजाओं का क्या कर्तव्य होता है। द्विजश्रेष्ठ ! उस प्रकार का उपाय बताने की कृपा कीजिये, जो स्वर्ग का साधन, और कीर्ति समेत मनुष्यों को आरोग्य भी प्रदान करे।७-१०

सनत्कुमार बोले—राजन् ! मैं तुम्हें एक परमोत्तम शांति कर्म बता रहा हूँ, जो कोटिहोम (कोटिसंख्या की आहुति वाला होम) अनुपम एवं समस्त कामनाओं को सफल करता है, सुनो ! उससे ब्रह्म हत्या आदि पाप क्षण मात्र में विनष्ट होते है, उत्पातों का प्रशमन होता है और महान् सुख की प्राप्ति होती है, उसका विधान बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! कल्याणेच्छुक मनुष्य का किसी देवालय, नदी, तीर, वन, गृह अथवा पर्वत के ऊपर इसका अनुष्ठान आरम्भ करना चाहिए। शुभ नक्षत्र, योग आदि गुण युक्त दिवस में ग्रहों के अनुकूल रहने पर यजमान को अपने कोटि होम नामक अनुष्ठान के आरम्भ में वस्त्र, आभूषण, गंध, माला आदि द्वारा वेदनिष्णात् विद्वान् ब्राह्मण की सप्रयत्न अर्चा सविधान सुसम्पन्न कर आत्मनिवेदन करना चाहिए। तुम्हीं मेरी गति, माता पिता, तथा गति परायण हो। विप्रर्षे ! तुम्हारे प्रसाद से मेरा मनोनीत मनोरथ सफल हो। मुझे आपत्तियों से मुक्त करने हेतु कोटि होम नामक इस परमोत्तम यज्ञ को सुसम्पन्न कराने की कृपा करें, जो समस्त कामनाओं की सफलता पूर्वक अत्यन्त शान्ति प्रदान करता है। तदुपरान्त प्राज्ञ पुरोहित शुक्लाम्बरधारण एवं पूतात्माहोकर वेदसंपृक्त, पुण्यात्मा तथा सावधान रहने वाले ब्राह्मणों समेत किसी शुद्ध एवं अभिषिक्त भू भाग में

---

१. राजविप्लवे। २. नृपोत्तमैः। ३. देवागारे च भवने तीर्थे वा शिवसंनिधौ। ४. समारभेत्। ५. सर्वतः पुण्यः संयुक्तः सुसमाहितैः।

भूमिभागे समे शुद्धे प्रागुदक्प्रवणे तथा । पुण्याहं वाचयेत्पूर्वं कृत्वा विप्रान्सुपूजितान् ॥२०
ततस्तु [1]महितैर्विप्रः सूत्रयेन्मण्डपं शुभम् । उत्तमं शतहस्तं तु तदर्धेन तु मध्यमम् ॥
जघन्यं तु तदर्द्धेन शक्तिकालाद्यपेक्षया ॥२१
मध्ये तु मण्डपस्यापि कुण्डं कुर्याद्विचक्षणः । अष्टहस्तप्रमाणेन[2] आयामेन तथैव च ॥२२
मेखलात्रितयं तस्य द्वादशाङ्गुलविस्तृतम् । तत्प्रमाणं तथा योनिं कुर्वीत सुसमाहितः ॥२३
कुण्डस्य पूर्वभागे तु वेदिं कुर्याद्विचक्षणः । चर्तुहस्तां समां चैव हस्तमात्रोच्छ्रितः नृप ॥२४
स्थानं तत्सर्वभूतानां [3] कुर्याद्यत्नेन बुद्धिमान् ॥२५
उपलिप्य ततो भूमिं मण्डपस्य समीपतः । निन्यसेत्कलशान्स्तत्र जलपूर्णाश्चतुर्दश ॥२६
अश्वत्थप्लक्षचूताद्यैः पल्लवैरुपशोभितान् । वितानमुपरिष्टाच्च मण्डपस्य प्रकल्पयेत् ॥२७
स्थापयेद्दिक्षु सर्वासु तोरणान विचक्षणः । एवं सम्भृतसम्भारैः पुरोधाः सुसमाहितः ॥२८
पुण्याहजयघोषेण होमकर्म समारभेत[4] । स्थापयित्वा सुरान्वेद्यां वक्ष्यमाणानरिन्दम ॥२९
ब्राह्मणं पूर्वभागे तु मध्ये देवं जनार्दनम् । पश्चिमे तु तथा रुद्रं वसूनुत्तरतस्तथा ॥३०
ऐशान्यां च ग्रहान्सर्वानाग्नेय्यां मरुतस्तथा । वायुं सौम्यां तथैशान्यां लोकपालान्क्रमेण तु ॥३१
एवं संस्थाप्य विबुधान्यथास्थानं नृपोत्तम । पूजयेद्विधिवद्वस्त्रगन्धमाल्यानुलेपनैः ॥३२
वेदोक्तमन्त्रैस्तल्लिङ्गैः पुराणोक्तैः पृथक्पृथक् । आदित्या वसवो रुद्रा लोकपालास्तथा ग्रहाः ॥३३

पुण्याहवाचन तथा ब्राह्मण पूजन कराये ।११-२०। अनन्तर उन्हीं ब्राह्मणों समेत एक उत्तम मण्डप के निर्माण कार्य का आरम्भ करे, जो सौ हाथ का विस्तृत हो । क्योंकि उसके आधे (पचास) हाथ विस्तृत वाले को मध्यम और शक्ति काल आदि की अपेक्षा बने हुए उसके आधे (पच्चीस) हाथ वाले मण्डप को जघन्य मण्डप कहते हैं किन्तु यथावसर किसी का भी उपयोग किया जा सकता है । विद्वान् को उस मण्डप के मध्य भाग में आठ हाथ का विस्तृत एक उत्तम कुण्ड का निर्माण कराना चाहिए, जो द्वादश अङ्गुल की विस्तृत तीन मेखलाओं से सुसज्जित हो तथा उसी प्रमाण की योनि भी कुण्ड पर सुरचित होनी चाहिए । नृप ! उसी प्रकार बुद्धिमान् को कुण्ड के पूर्व भाग में चार हाथ की विस्तृत और एक हाथ की ऊँची वेदी की रचना समस्त देवों के स्थापनार्थ करनी चाहिए । उपरान्त मण्डप के समीप (गोबर) से लिपी हुई भूमि पर जल पूर्ण चौदह कलशों को स्थापित करे, जो पीपो, पाकडि, आम, गूलर और बरगद के पल्लवों से सुशोभित हों । मण्डप के (भीतर) ऊपरी भाग में वितान (चँदोबा) लगाकर सभी दिशाओं में तोरण से सुसज्जित करे । इस प्रकार (यज्ञार्थ) एकत्र किये गये वृहत् संभार से युक्त पुरोधा पुण्याहवाचन एवं जय घोष के साथ होम कर्मानुष्ठान प्रारम्भ करे । अरिन्दम ! वेदी में स्थापित किये जाने वाले देवों को मैं बता रहा हूँ—(वेदी के) पूर्व भाग में ब्रह्मा, मध्य में जनार्दन देव, पश्चिम में रुद्र, उत्तर में वसुगण, ऐशान्य में समस्त ग्रह, आग्नेय में मरुत (देवगण) वायव्य में वायु, ईशान आदि में क्रमशः लोक पालों को स्थापित करना चाहिए। नृपोत्तम ! इस भाँति देवों को यथास्थान स्थापित कर विविध भाँति के वस्त्र, गन्ध, माला आदि वस्तुओं द्वारा पुराणोक्त एवं पृथक् पृथक् मंत्रों के उच्चारण करते हुए पूजन करे ।२१-३३।

---

१. प्रहितैः । २. चतुर्हस्तप्रमाणेन, पाठस्त्वशुद्धः । कुण्डसिद्धिग्रन्थे—"ककुद्भिर्वा कोटौ नृपकारमपि प्राहुरपरे"—इत्युक्तेः कोटिहोमेऽष्टकरपरिमितकुण्डस्योदितत्वात् । ३. सर्वदेवानाम् । ४. समाचरेत् ।

ब्रह्मा जनार्दनश्चैव शूलपाणिर्भगाक्षिहा[1] । अत्र संनिहिताः सर्वे भवन्तु सुखभागिनः ॥३४
पूजां गृह्णन्तु सर्वेऽत्र मया भक्त्योपपादिताम् । कुर्वन्तु च शुभं सर्वे यज्ञकर्म समाहिताः ॥३५
एवं सम्पूजयित्वा तान्देवान्यत्नेन शुद्धधीः । नैवेद्यैर्विविधैर्भक्ष्यैः फलैः पत्रैस्तथैव[2] च ॥३६
ततस्तु तैर्द्विजैः सार्द्धं कुण्डस्य विधिपूर्वकम् । कुर्यात्संस्कारकरणं यथोक्तं वेदचिन्तकैः ॥३७
ततः समाह्वयेद्वह्निं[3] नाम्ना ख्यातं घृतार्चिषम् । नियोजयेद्द्विजास्तत्र शतसंख्यान्नृपोत्तम ॥
अलाभे तु बहूनां च यथालाभं नियोजयेत् ॥३८
विद्यावृद्धान्वयोवृद्धान्गृहस्थान्संयतेन्द्रियान् । स्वकर्मनियताञ्ज्ञानशीलाञ्छान्तान्द्विजोत्तमान् ॥३९
चिन्तयेत्तत्र देवेशं पञ्चास्यं नृप पावकम् । मुखानि तस्य चत्वारि सप्त जिह्वाश्च पार्थिव ॥४०
एकजिह्वमथैकं तु तत्स्मृतं सर्वकामदम् । धूमायमानेन वृथा होतव्यं ज्वलितेऽनले ॥४१
ऋग्भिः पूर्वामुखैर्होमो यजुर्भिश्चोत्तरामुखैः । सामभिः पश्चिमे कार्योऽथर्वभिर्दक्षिणामुखैः ॥४२
आधारावाज्य भागौ तु पूर्वं हुत्वा[4] विचक्षणः । परितोऽथ परिस्तीर्णे कल्पिते च तथासने ॥४३
ब्रह्माणं पूर्वमप्येतत्सर्वं पश्चात्समाचरेत् । होमो व्याहृतिभिश्चैव सर्वस्तत्र विधीयते ॥४४
प्रणवादिभिस्तल्लिंगैः स्वाहाकारान्तयोजितैः । जुहुयात्सर्वदेवानां वेद्यां ये चोपकल्पिताः ॥४५
एवं प्रकल्पयेद्यज्ञं कोटिहोमाख्यमुत्तमम् । तिलाः कृष्णा घृताभ्यक्ताः किञ्चिद्यवसमन्विताः ॥४६

आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, लोकपाल, समस्त ग्रहगण, ब्रह्मा, जनार्दन, शूलपाणि शिव आदि देवगण सुखपूर्वक इस यज्ञ वेदी पर सन्निहित होकर भक्तिपूर्वक मेरे द्वारा की गयी पूजा स्वीकार करें और मेरे इस यज्ञ सम्बन्धी शुभ कर्म को सफल बनाने की कृपा भी करें। इस प्रकार विशुद्ध मन से देवों की अर्चा नैवेद्य, अनेक भाँति के भक्ष्य फल आदि द्वारा सुसम्पन्न कर यजमान ब्राह्मणों द्वारा कुण्ड का वेदोक्त विधान द्वारा संस्कार और प्रख्यात घृतार्चि नामक अग्नि की स्थापना कराये। नृपोत्तम ! उस समय उस हवन कर्म के सम्पन्नार्थ यजमान सौ अथवा बहुत या प्रलाभ में जो कुछ ब्राह्मण मिल जाँय, नियुक्त करे, जो विद्या के निपुण विद्वान्, वयोवृद्ध, गृहस्थ, इन्द्रिय संयमी, स्वकर्म में नियत, ज्ञानशील, शान्त एवं ब्राह्मण श्रेष्ठ हों। नृप ! पुनः पाँच मुख वाले देवेश पावक का ध्यान करे, जो चार मुख, सात जिह्वा से सुशोभित रहते हैं। पार्थिव ! इनकी एक जिह्वा समस्त कामनाओं को सफल करने वाली बतायी गयी है। धूएँ से आच्छादित प्रज्वलित अग्नि में आहुति डालना व्यर्थ कहा गया है। हवन के समय ऋग्वेदी को पूर्वाभिमुख, यजुर्वेदी को उत्तराभिमुख, सामवेदी, को पश्चिमाभिमुख और अथर्व वेदी को दक्षिणाभिमुख आहुति प्रदान करनी चाहिए।३४-४२। सर्वप्रथम आधार और आज्य भाग की आहुति डालकर (कुण्ड के) चारों ओर कल्पित कुशासन पर बैठे ब्रह्मा के सम्मुख व्याहृतियों द्वारा समस्त आहुति प्रदान करे। पश्चात् प्रणव (ओंकार) पूर्वक देवों के पृथक् पृथक् मंत्रों के अन्त में स्वाहा शब्द के उच्चारण पूर्वक समस्त देवों के निमित्त आहुति प्रदान करे, जो वेदी पर स्थापित किये गये हों। इस प्रकार कल्पित उस कोटि होम नामक अनुपम यज्ञ में काले तिल, अल्पमात्रा में मिले हुए जवा को घृतप्लुत करके पलाश की प्रज्वलित अग्नि में उसकी आहुति

---

१. महेश्वरः। २. चैव सुशोभने। ३. प्राज्वालयेत्। ४. कृत्वा।

होतव्याः कोटिहोमे तु समिधश्च पलाशजाः । पूर्णे पूर्णे सहस्रे तु दद्यात्पूर्णाहुतिं शुभाम् ॥
पञ्चमे तन्मुखे राजन्सर्वकामार्थसिद्धये ॥४७
पूर्णाहुत्यः समाख्याताः कोटिहोमे नराधिप । सहस्राणि नृपश्रेष्ठ दश शास्त्रविशारदैः ॥४८
प्रारम्भदिनमारभ्य ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः[1] । भाव्यं सयजमानैस्तु अथवा सपुरोहितैः ॥४९
क्रोधलोभादयो दोषा वर्जनीयाः प्रयत्नतः । यजमानेन राजेन्द्र सर्वान्कामानभीप्सितान् ॥५०

सम्वरण उवाच

बहुत्वात्कर्मणो ब्रह्मन्कोटिहोमः सुदुष्करः । कालेन महता चैव शक्यः प्राप्तुं कथञ्चन ॥५१
नियमाद्ब्रह्मचर्याद्वा दुष्करो हीति मे मतिः । निरोधोऽत्र ब्राह्मणानां भूशय्यादिषु दुष्करः ॥५२
कार्याद्गुरुतया यस्मात्पर्वकालाद्यपेक्षया । एतद्विज्ञायते ब्रह्मन्यदि शास्त्रेषु कथ्यते ॥
कोटिहोमस्य संक्षेपं वद मे ब्रह्म सम्भव ॥५३

सनत्कुमार उवाच

शताननो दशमुखो द्विमुखैकमुखस्तथा । चतुर्विधो महाराज कोटिहोमो विधीयते ॥५४
कार्यस्य गुरुतां ज्ञात्वा नैव[2] कुर्यादपर्वणि । यथा संक्षेपतः कार्यः कोटिहोमस्तथा शृणु ॥५५
कृत्वा कुण्डशतं दिव्यं यथोक्तं हस्तसम्मितम् । एकैकस्मिंस्ततः कुण्डे शतं विप्रान्नियोजयेत् ॥५६
सद्यःपक्षे तु विप्राणां सहस्रं परिकीर्तितम् । एकस्थानप्रणीतेऽग्नौ सर्वतः परिभाविते ॥५७

अर्पित करते हुए प्रत्येक सहस्राहुति पर पूर्णाहुति अर्पित करता रहे । राजन् समस्त कामनाओं की सफलता के लिए अग्नि के पाँचवे मुख में सभी पूर्णाहूतियों को समर्पित करना बताया गया है । नृपश्रेष्ठ ! कोटि होम के अनुष्ठान में दशसहस्र ब्राह्मणों, का जो शास्त्रकुशल एवं ब्रह्मवादी हों, वरण होना चाहिए । अनुष्ठान के आरम्भ दिन से समाप्ति पर्यन्त उन ब्राह्मणों समेत पुरोहितों एवं यजमानों को सदैव क्रोध लोभ आदि दोष रहित रहना चाहिए । क्योंकि तभी उनकी समस्त कामनाओं की अभीष्ट सिद्धि सम्भव होगी ।४३-५०

सम्वरण बोले—ब्रह्मन् ! कर्मों के बाहुल्य और इतने महान् काल की अपेक्षा होने से यह कोटि होम सभी को कैसे सुलभ हो सकता है, तथा (उसके) नियम, ब्रह्मचर्य के पालन, ब्राह्मणों के लिए भू शय्या आदि का निरोध होने के नाते मेरी सम्मति में यह कोटि होम इस रूप में अत्यन्त दुष्कर है और पर्व काल आदि की अपेक्षा रखने से गुरु भी है । ब्रह्मसंभव, ब्रह्मन् इन सभी कारणों के नाते इस कोटिहोम का शास्त्रीय संक्षिप्त विधान बताने की कृपा करें ।५१-५३

सनत्कुमार बोले—महाराज ! कोटिहोम का विधान शतमुख, दशमुख, द्विमुख और एकमुख चार प्रकार का बताया गया है । कार्य गुरु होने के नाते भी इसे किसी पर्वहीन दिवस में नहीं आरम्भ करना चाहिए । मैं संक्षेपतः इसका विधान बता रहा हूँ, सुनो ! दिव्य सौ कुण्डों के पूर्वोक्त हाथों की लम्बाई चौड़ाई के निर्माण करके प्रत्येक कुण्डों के लिए सौ-सौ ब्राह्मणों के वरण होने चाहिए । तत्काल समाप्ति होने के पक्ष में (प्रत्येक कुण्डों के लिए) सहस्र-सहस्र ब्राह्मणों के एक ही स्थान पर के स्थापन पूजन करके

---

१. ब्रह्मचारिभिः । २. नैष्कर्म्यमथ कर्मणः ।

होमं कुर्युर्द्विजाः सर्वे कुण्डे कुण्डे यथोदितम् । यथा कुण्डबहुत्वेऽपि राजसूये महाक्रतौ ।।५८
न च वह्निबहुत्वं स्यात्तत्र यज्ञे विधीयते । तथा कुण्डशतेऽप्यत्र घृतार्चिषि वितानिते ।।५९
एक एव भवेद्यज्ञः कोटिहोमो न संशयः । एवं यत्क्रियते क्षिप्रं व्याकुलैः कार्यगौरवात् ।।
शताननः सविज्ञेयः कोटिहोमो न संशयः ।।६०
स्वल्पैरहोभिः कार्यः स्याद्वर्षाकालादिकेऽपि वा । तदा दशगुणः कार्यः कोटिहोमो विजानता ।।६१
विप्राणां द्वे शते तत्र सुविभज्य[1] नियोजयेत् । तेऽपि विज्ञानशीलाः स्युर्व्रतवन्तो जितेन्द्रियाः ।।६२
भूप कुण्डद्वयं कृत्वा विभज्य च विभावसुम् । होमं कुर्युर्द्विजा भूयः संस्कृत्य विधिपूर्वकम् ।।६३
शतं तत्र नियोज्यं स्याद्विप्राणां प्रविभज्य वै । मासे वाथ द्विमासे वा यथाकाले ह्युपस्थिते ।।६४
एवं च द्विमुखं कार्यः कोटिहोमो विचक्षणैः ।।६५
यदा तु स्वेच्छया यज्ञं यजमानः समापयेत् । कालेन बहुधा राजन्स्तदा चैकमुखो भवेत् ।।६६
एककुण्डस्थितो वह्निरेकचित्तैः समाहितैः । यथालाभं स्थितैर्विप्रैर्ज्ञानशीलैर्विचक्षणैः ।।६७
न संख्यानियमश्चात्र ब्राह्मणानां नरोत्तम । न कालनियमश्चैव स्वेच्छायज्ञः स उच्यते ।।६८
आवृत्त्या सर्वकामस्य चातुर्मास्यानुकर्मवत् । तदप्रसक्तौ कर्तव्यो यज्ञोऽयं सार्वकालिकः ।।६९

उसी अग्नि द्वारा क्रमशः सभी कुण्डों की प्रज्वलित अग्नि में सभी ब्राह्मणों को तदनुसार हवन करना चाहिए । यह उसी भाँति बताया गया है जिस प्रकार राजसूय महायज्ञ में कुण्ड की अधिकता होने पर भी अग्नि बाहुल्य नहीं होता है । इसीलिए इस कोटिहोम यज्ञ में भी सौ कुण्डों के होने पर भी जो घृतार्चि नामक अग्नि द्वारा प्रज्वलित रहते हैं, एक ही यज्ञ कहा जाता है इसमें संशय नहीं । इस प्रकार कार्यगौरव वश व्याकुल होकर जो इसे शीघ्र सुसम्पन्न करता है वह शतानन कोटि होम कहा जाता है ।५४-६०। वर्षा काल आदि अथवा अन्य किसी समय अल्प दिनों में ही इस अनुष्ठान को सुसम्पन्न करना चाहें तो कोटि होम के विधानवेत्ता को उचित है कि वह दशगुने अधिक (दशमुख) का निर्माण करे । दो सौ ब्राह्मणों को विभागपूर्वक सभी स्थान नियुक्त करे जो विज्ञानी, व्रत परायण और इन्द्रिय संयमी हों। और जिस स्थान पर दो कुण्डों के निर्माण पूर्वक अग्नि का विभाजन कर सविधि संस्कार एवं हवन किया जाता है वहाँ तीन सौ ब्राह्मणों को यथाविभाग द्वारा नियुक्त करे और उसे एक या दो मास में सुसम्पन्न करे उसे कोटि होम के वेत्ता ने द्विमुख कोटि होम बताया है ।६१-६५। राजन् ! जिस समय यजमान स्वेच्छया अधिक काल में उसे समाप्त करना चाहता है, उसे सावधान होकर एक ही कुण्ड का निर्माण एवं उसी में बह्नि के स्थापन पूजन पूर्वक ज्ञानशील समेत विद्वान् जितने भी ब्राह्मण मिल जायें सभी को उसमें नियुक्त कर लेना चाहिए ।६६-६९। नरोत्तम ! इसलिए कि उसमें ब्राह्मणों की संख्या का नियम और काल नियम नहीं है वह स्वेच्छा यज्ञ कहा जाता है । चातुर्मास्य (चौमासे के) कर्मों की भाँति उसमें सभी कर्मों की आवृत्ति होनी चाहिए और चातुर्मास्य के रहने पर इसे अन्य सभी यज्ञों की भाँति सभी समय सुसम्पन्न करना चाहिए। राजन् ! यह एक मुख नामक कोटि होम यज्ञ द्वारा अधिक काल में ही सुसम्पन्न होता है और उतने विस्तृत काल में अनेक विघ्नों का सम्भव होना स्वाभाविक हो जाता है अतः संक्षिप्त विधान द्वारा ही इसे सुसम्पन्न करना

---

१. सुविभाव्यवियोजयेत् ।

अयमेकमुखो राजन्कालेन बहुना भवेत् । बहुविघ्नश्च कालेन तस्मात्संक्षेपमाचरेत् ॥७०
ततः समाप्ते यज्ञे तु कारयेत्सुमहोत्सवम् । शङ्खतूर्यनिनादेन ब्रह्मघोषस्वनेन च ॥७१
ततस्तु दीक्षयेद्विप्रान्होतॄंश्च श्रद्धयान्वितः । निष्कैश्च कङ्कणैश्चैव कुण्डलैर्विविधैर्नृप ॥७२
गोशतं चैव दातव्यमश्वानां च शतं तदा । सहस्रं च सुवर्णस्य सर्वेषामपि दापयेत् ॥७३
ग्रामैर्गजै रथैरश्वैः पूजयेच्च पुरोहितम् । दीनान्धकृपणान्सर्वान्वस्त्राद्यैश्चापि पूजयेत् ॥७४
ततश्चावभृथं स्नायात्तैर्घटैः पूर्वकल्पितैः । लक्षहोमोक्तमन्त्रेण सदा विजयकारिणा ॥७५
एवं समापयेद्यस्तु कोटिहोममखं शुभम् । तस्यारोग्यं वित्तपुत्रराष्ट्रवृद्धिस्तथैव च ॥७६
सर्वपापक्षयश्चैव जायते नृपसत्तम । अनावृष्टिभयं चैव उत्पातभयमेव च ॥७७
दुर्भिक्षं ग्रहपीडा च प्रशमं याति भूतले । एतत्पुण्यं पापहरं सर्वकामफलप्रदम् ॥
सनत्कुमारमुनिना पार्थिवाय निवेदितम् ॥७८

सर्वोपसर्गशमनं भवने वने वा ये कारयन्ति मनुजा नृपोकोटिहोमम् ।
भोगानवाप्य मनसोभिमतान्प्रकामं ते यान्ति शक्रसदनं सुविशुद्धसत्त्वाः ॥७९

इति श्रीभविष्य महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कोटिहोमविधिवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४२

चाहिए। मनुष्यों के चित्त, वित्त एवं आयु के स्थिर न रहने के कारण भी इस धार्मिक कार्य को संक्षिप्त ही करना चाहिए। अनन्तर यज्ञ के समाप्त होने पर महोत्सव आरम्भ कर शंख, तुरुही आदि मांगलिक वाद्यों के निनाद और ब्रह्मघोष एवं जयघोष द्वारा उसे अलंकृत करे। नृप ! तदुपरांत श्रद्धासमेत होताओं को सुवर्ण के कंकड, कुण्डल से सुप्रसन्न करते हुए सभी सौ गौ, सौ सौ घोड़े, एवं सहस्रसुवर्ण के पदक से सभी आवृत ब्राह्मणों को सुसम्मानित करे। गाँवों, हाथियों, रथों और घोड़ों के अर्पण द्वारा पुरोहित की पूजा के पश्चात् दीनों, अन्धों, तथा कृपणों आदि व्यक्तियों को वस्त्र आदि से सन्तुष्ट कर राजा लक्षहोम के मंत्रों की ध्वनि के बीच पूर्वकल्पित घटों के जल से अपना अभिषेचन कराये। विजयेच्छुक राजा के कोटि होम यज्ञ इस भाँति सुसम्पन्न करने पर आरोग्या धन, पुत्र एवं राष्ट्रवृद्धि के साथ उसके सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं। नृपसत्तम ! भूतल की अनावृष्टि, उत्पात, दुर्भिक्ष, ग्रहपीडा आदि सभी बाधाएँ शान्त हो जाती हैं। यह यज्ञ पुण्य, पापहारी, समस्त कामनाओं को सफल करता है, ऐसा सनत्कुमार महर्षि ने राजा से निवेदन किया था। नृप ! इस प्रकार अपने भवन अथवा वन आदि किसी प्रशस्त स्थान में समस्त उपद्रवों को शान्ति करने वाले इस कोटि होम यज्ञ को सविधान सम्पन्न करने पर उन विशुद्ध मनुष्यों को यथेच्छ भोगों के उपभोग समेत इन्द्रपुरी प्राप्त होती है।७०-७९

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठर के सम्वाद में
कोटिहोमविधि वर्णन नामक एक सौ बयालीसवाँ अध्याय समाप्त।१४२।

अथ त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

महाशान्तिविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

महाशान्तिं प्रवक्ष्यामि महादेवेन भाषितम् । पार्थिवानां हितार्थाय महादुस्तरतारिणीम् ॥१
नृपाभिषेके सा कार्या यात्राकाले नृपस्य तु । दुःस्वप्ने दुर्निमित्ते च ग्रहवैगुण्यसम्भवे ॥२
विद्युदुल्कानिपाते च जन्मर्क्षे ग्रहदैवते । केतूदयेऽथ सञ्जाते निर्घातक्षितिकम्पने ॥३
प्रसूतौ मूलगण्डान्ते यमलस्य तु सम्भवे । छात्राणां च[1] ध्वजानां च स्वस्थानात्पतने भुवि ॥
काकोलूककपोतानां प्रवेशे वेश्मनस्तथा ॥४
क्रूरग्रहाणां वक्रत्वे जन्मादिषु विशेषतः । जन्मनि द्वादशे चैव चतुर्थे वाष्टमे तथा ॥५
यदा स्युर्गुरुमन्दाऽऽराः सूर्यश्चैव विशेषतः । युद्धे ग्रहाणां सर्वेषां सूर्यशीतांशुकीलके ॥६
वस्त्रायुधगवाश्वेषु मणिकेशविनाशने । यद्यग्रे परिदृश्येत रात्राविंद्रधनुस्तथा ॥७
वेश्मनश्च तुलाभङ्गे गर्भेष्वश्वतरीषु च । रवीन्द्वोरुपरागेषु महाशान्तिः प्रशस्यते ॥८
सर्वाणि दुर्निमित्तानि प्रशमं यान्ति सर्वथा । तां कुर्युर्ब्राह्मणाः पञ्च कुलशीलसमन्विताः ॥९
चतुर्वेदास्त्रिवेदाश्च द्विवेदाश्चापि पाण्डव । आथर्वणा विशेषेण बह्वृचा यजसंयुताः ॥१०
शुचयः श्रुतसम्पन्ना जपहोमपरायणाः । कृच्छ्रपाराकनक्ताद्यैः कृतकाय विशोधनाः ॥११

अध्याय १४३

महाशान्तिविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं महादेव जी की बतायी हुई उस महाशान्ति को बता रहा हूँ जिसमे पार्थिवों के विशेष हित निहित हैं और महादुऽस्तर दुरित से वह पार करती है। राज्याभिषेक राजा की विजय यात्रा दुःस्वप्न दुर्निमित्त, ग्रहों के विगुण (अरिष्ट) होने विद्युत उल्का आदि के गिरने, जन्म नक्षत्र के ग्रहाधीश्वर के समय, केतु के उदय, निर्घात, भूकम्प, मूल गण्डान्त में प्रसव होने, यमल (जुडवाँ) के उत्पन्न होने छत्र, चामर ध्वजादि के अपने स्थान से भूतल पर गिरने, घर में कौवा उल्लूक (उल्लु), कपोत (कबूतर) के प्रवेश करने, जन्म आदि स्थानों में क्रूर ग्रहों के वक्री होने, जन्म, बारहवें, चौथे अथवा आठवें स्थान में बृहस्पति, शनि, और सूर्य के स्थित होने, युद्ध में सूर्य, चन्द्र, आदि सभी ग्रहों के कीलित होने, वस्त्र, आयुध, गौ, अश्व के मणि पर केश के विनष्ट होने, रात्रि में सर्वप्रथम इन्द्र धनुष के दिखायी देने पर गृह एवं तुला (तराजू) के भंग होने, घोड़ी के सगर्भा होने पर तथा सूर्य चन्द्र के ग्रहण होने पर यह महाशान्ति विधान सुसम्पन्न किया जाता है जिससे समस्त दुर्निमित्तों के प्रशमन हो जाते हैं। पाण्डव! इस विधान को कुलशील सम्पन्न पाँच ब्राह्मण विद्वान् सुसम्पन्न करें। १-९। जो चतुर्वेद, त्रिवेद, द्विवेद एवं अथर्व वेद के अध्ययन तथा यजुर्वेद समेत अनेक ऋचों के निपुण विद्वान् पूतात्मा, श्रुतिसम्पन्न, जपहोमपरायण हों और कच्छ

---

१. चामराणां च।

पूर्वमाराध्य मन्त्रैस्तु प्रारभेत क्रियां ततः । दशद्वादशहस्तं वा मण्डपं कारयेच्छुभम् ॥१२
तन्मध्ये वेदिकां कुर्याच्चतुर्हस्तप्रमाणतः । आग्नेय्यां कारयेत्कुण्डं हस्तमात्रं सुशोभनम् ॥१३
मेखलात्रयसंयुक्तं योन्या चापि विभूषितम् । बद्धचन्दनमालं च तोरणालंकृतं तथा ॥१४
गोमयेनोपलिप्ते च मण्डपे तु द्विजातयः । शुक्लाम्बरधराः स्नाताः शुक्लमाल्यानुलेपनाः ॥१५
ततश्च पञ्च कलशान्स्तस्यां वेद्यां नियोजयेत् । आग्नेयादिषु कोणेषु पञ्चमं मध्यतस्तथा ॥१६
अष्टाब्जलंकृते पद्मे चूतपल्लवशोभिते । ब्रह्मकूर्चविधानेन पञ्चगव्यं तु कारयेत् ॥१७
औषधीः पञ्चरत्नानि रोचनां चन्दनं तथा । सिद्धार्थकाञ्छमीदूर्वाः कुशान्व्रीहियवांस्तथा ॥१८
अपामार्गं फलवतीं न्यग्रोधोदुम्बरी तथा । प्लाक्षाश्वत्थकपित्थांश्च प्रियङ्गुचूतपल्लवान् ॥१९
हस्तिदन्तमृदं चैव कोणकुम्भेषु निक्षिपेत् । पुण्यतीर्थोदकान्नं च धान्यं गव्यं च मध्यमे ॥२०
कूर्चं वाचमितीदं च वह्निकुम्भाभिमन्त्रणम् । आशुः शिशानोमन्त्रेण मन्त्रेण वायुगोचरे ॥२१
ईशावास्यं चतुर्थस्य कुम्भस्य चाभिमन्त्रणम् । मध्ये जपितव्यास्तु रुद्रकुम्भे भवोद्भवाः ॥२२
गन्धपुष्पाक्षतैर्वस्त्रैर्नैवेद्यैर्घृतपाचितैः । फलैश्च नारिकेलाद्यैर्दीपकैः कुम्भपूजनम् ॥२३
स्वस्तिवाचनकं चैव कारयेत्तदनन्तरम् । क्रमेणानेन शनकैरग्निकार्यं प्रयोजयेत् ॥२४
अग्निं दूतमिति ह्यग्निं पूर्वमेव निधापयेत् । हिरण्यगर्भः समिति ब्रह्मासननियोजनम् ॥२५
कपोतसुप्रणीतेन मन्त्रेण विनिशेषयेत् । कृत्वा चावरणं वह्नेराज्यसंस्कारमेव च ॥२६

आदि के पारंगत एवं नक्त व्रतादि से अपनी शरीर का शोधन किये हों। सर्वप्रथम मंत्रों द्वारा आराधना करने के अनन्तर क्रियाओं को प्रारम्भ करना चाहिए। दश या बारह हाथ का रम्य मण्डप निर्माण करके उसमें चार हाथ की वेदी और उसे अग्नि कोण में एक हाथ का विस्तृत कुण्ड बनाना चाहिए जो तीन मेखला और योनि मुद्रा से विभूषित हो। चन्दन, माला एवं तोरण से अलंकृत उस मण्डप के भीतर भूमि में गोबर से लीप कर स्नानोपरान्त शुक्लवस्त्र, श्वेतमाला एवं विलेपन से भूषित ब्राह्मणगण वहाँ सुशोभित हों। और उस वेदी अग्नि आदि कोण में चार कलश तथा पाँचवा कलश मध्य स्थल में स्थापित करें, जो अष्टदल कमल एवं आम के पल्लव से भूषित हों। अनन्तर ब्रह्मकूर्च[1] विधान द्वारा पञ्चगव्य बनाए।१०-१७। सभी औषध, पाँचो रत्न, गोरोचन, चन्दन, राई, शमी, दूर्वा, कुश, धान्य, जवा, फल युक्ता अपामार्ग (चिचिड़ी), बरगद, गूलर, पाकडि, पीपल, कैथा, प्रियगुं (कांगुनी आदि), और आम के पल्लव समेत हाथी के दाँत एवं मिट्टी कोने में स्थापित कलश में डालनी चाहिए। पुण्य तीर्थों के जल तथा उनके द्वारा उत्पन्न अन्न, धान्य, गव्य मध्य कलश में डालकर 'कूर्च वाचमिति' से अग्नि कलश का अभिमंत्रण, आशुः शिशानों, से वायव्यवस्थित कलश का अभिमंत्रण, 'ईशावास्यमिति' मंत्र से चौथे कलश का अभिमंत्रण; 'रुद्रकुंभेभवोद्भवा' मंत्र से मध्य में स्थित पाँचवें का अभिमंत्रण करना चाहिए। अनन्तर गंध, पुष्प, अक्षत, वस्त्र, घृतप्लुत, नैवेद्य, फल, नारियल और दीपक आदि द्वारा कलश पूजन करके स्वस्तिवाचन कराये तथा उसके पश्चात् हवन कार्य करना चाहिए।१८-२४। 'अग्नि दूतं' इस मंत्र से सर्वप्रथम अग्निस्थापन 'हिरण्य गर्भः' से ब्रह्मासन, और 'कपोत सुप्रणीतेनेति' मंत्र से अग्नि का विनिवेश करने के

---

१. अहोरात्रोषितोभूत्वा पौर्णमास्यां विशेषतः । पञ्चगव्य पिवेत्प्रातः ब्रह्मकूर्चमितिस्तमृतम् ॥

अथ चासादयेद्द्रव्यं यथावत्सप्रयोजनम्[1] । ततः पुरुषसूक्तेन पायसश्रपणं भवेत् ।।२७
अभिघार्याथ संसिद्धं तथा संस्थापयेद्भुवि । अष्टादशप्रमाणेध्मान्दद्यादथ शमीमयान् ।।२८
पालाशीः समिधः सप्त तथा सप्तेति दापयेत् । आघारावाज्यभागौ तु हुत्वा पूर्वक्रमेण तु ।।२९
जुहुयादाहुतीः सप्त जातवेदस इत्यृचा । स्थालीपाकस्य जुहुयात्पुनर्वै जातवेदसा ।।३०
तरत्समन्दीसूक्तेन चतस्रो जुहुयात्ततः[2] । यमायेति च सप्तान्याः स्वाहान्ता जुहुयात्ततः ।।३१
इदं विष्णुस्तत सप्त जुहुयादाहुतीर्नृप । नक्षत्रेभ्यस्ततः स्वाहा सप्तविंशदथाहुतीः ।।३२
यत्कर्मणेति जुहुयात्ततः स्विष्टकृतं पुनः । ग्रहहोमस्ततः कार्यस्तिलैराज्यपरिप्लुप्तैः ।।३३
प्रायश्चित्तं ततो हुत्वा होमकर्म समापयेत् । ततस्तु तूर्यनिर्घोषैः काहलाशङ्खनिःस्वनैः ।।३४
यजमानस्य कर्तव्यो ह्यभिषको[3] द्विजोत्तमैः । काश्मर्यवृक्षसम्भूते भद्रे भद्रासने स्थितम् ।।३५
वेदिमध्यगतं कृत्वा दुर्निमित्तप्रशान्तये । पञ्चभिःकलशैः पूर्णैर्मन्त्रैरेभिर्यथाक्रमम् ।।३६
सहस्राक्षेण प्रथमं ततश्चैव शतायुषा । सजोषसा च इन्द्रेति विशश्वनीत्यृग्भिरेव च ।।३७
ऋतमस्त्विवति च ततः स्नापयेयुः समाहिताः । ततो दिशां बलिं दद्याद्विचित्रान्न समायुतम् ।।३८
नमोस्तु सर्वभूतेभ्य इति मन्त्रमुदाहरन् । स्नातस्य ब्राह्मणाः सर्वे पठेयुःशान्तिमुत्तमाम् ।।३९
शान्तितोयेन धारां च पातयित्वा समन्ततः[4] । पुण्याहवाचनं कृत्वा शान्तिकर्म समापयेत् ।।४०
क्षितिं हिरण्यं वासांसि शयनान्यासनानि च । विप्रेभ्यो दक्षिणां दद्याद्यथा शक्त्या विमत्सरः ।।४१

अनन्तर अग्नि का आवरण, आज्यसंस्कार, द्रव्यासदन कर्म करके पुरुष सूक्त द्वारा पायस बनाये और अभिधार्य संस्कार में सिद्ध होने पर उसे पृथ्वी पर रखे। अठारह समिधाओं के प्रमाण पक्ष में शुद्ध शमी, और चौदह पलाश की समिधा होना चाहिए! आघार आज्यभाग की आहुति क्रमशः अर्पित कर 'जातवेदसे' इस ऋचा से सात आहुति प्रदान करें। पुनः 'जातवेदसे' इस ऋचा आहुति प्रदान करने के अनन्तर 'यमायेति' स्वाहातमंत्र से अन्य सात आहुति प्रदान करे।२५-३१। नृप! पश्चात् इदं विष्णुरिति' ऋचा से सात आहुति, नक्षत्रों के लिए सत्ताईस आहुति, 'यत्कर्मणेति' मंत्र से स्विष्टकृत आहुति प्रदान करने के उपरांत घृतप्लुत तिलों द्वारा ग्रहों के निमित्त आहुति प्रदान करे और प्रायश्चित हवन की आहुति अर्पित कर होम कर्म समाप्त करे। अनन्तर ब्राह्मणों को तुरुही, डमरु शंख आदि की मांगलिक ध्वनियों समेत काश्मर्य (पलाश) के भद्रपीठ पर वेदी के मध्य में स्थित यजमान का अभिषेक उसके निमित्त शान्ति के लिए करना चाहिए। पाँचों पूर्ण कलशों के जलों से क्रमशः सर्वप्रथम 'सहस्राक्षेणेति' मंत्र से प्रथम, 'शतायुषोति' मंत्र से द्वितीय, 'सजोषसा च इन्द्रेति' से तृतीय, 'विश्वानीति' मंत्र से चौथा और 'ऋतवस्तित्वति चेति' पाँचवें कलश के जल से समाहित मन से स्नान करावे। अनन्तर 'नमोऽस्तु सर्व भूतेभ्य इति' मंत्र के उच्चारण पूर्वक विचित्र अन्न समेत दिशाओं में बलि प्रदान करे।३२-३८। यजमान के स्नानोपरांत ब्राह्मणवृन्द परमोत्तम शान्ति पाठ करते हुए चारों ओर शान्ति जल की धारा प्रवाहित करें पुण्याहवाचन करके शान्तिकर्म के समाप्ति करें। तदुपरांत पृथिवी, हिरण्य (सुवर्ण), वस्त्र, शय्या, आसन आदि वस्तु यथाशक्ति प्रदान करते समय मत्सर आदि दोषहीन रहे। दीन, अनाथ, समेत श्रोत्रिय

---

१. येन यत्सप्रयोजनम्। २. पुनः। ३. शुभैर्जलैः। ४. समाहिताः।

दीनानाथविशिष्टेभ्यः श्रोत्रियेभ्यश्च[1] दापयेत् । भोजनं शोभनं दत्त्वा ततः सर्वं प्रसिद्ध्यति ।।४२
आयुश्च लभते दीर्घं शत्रून्विजयते क्षणात् । दुर्गाणि चास्य सिद्ध्यन्ति पुत्रांश्च लभते शुभान् ।।४३
यथाशस्त्रप्रहाराणां कवचं वारणं भवेत् । तथा दैवोपघातानां शान्तिर्भवति वारणम् ।।४४
अहिंसकस्य दान्तस्य धर्मार्जितधनस्य च । दयादाक्षिण्ययुक्तस्य[2] सर्वे सानुग्रहा ग्रहाः ।।४५
अर्थान्समर्थयतिवर्द्धयते च धर्मं कामं प्रसाधयति तस्य पिनष्टि पापम् ।
यः कारयेत्सकलदोषहरां समर्थां शान्तिं प्रशान्तहृदयः पुरुषः सदैव ।।४६
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
महाशान्तिविधिवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४३।

अथ चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

गणनाथशान्तिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

शान्तिं कथय देवेश गणनाथस्य मे विभो । यां कृत्वा सर्वदुर्गाणि तरते मानवोऽखिलः ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

शान्तिं वक्ष्यामि राजेन्द्र गणनाथप्रियां पराम् । यस्या आचरणेनैव सर्वारिष्टक्षयो भवेत् ।।२

(वैदिक) ब्राह्मणों को मनोरम भोजन संतृप्त कराने से ही समस्त उत्तम वस्तुओं की प्राप्ति होती है दीर्घायु, तत्क्षण शत्रु विजय, और दुर्गसिद्धि समेत कल्याण भाजन पुत्रों की प्राप्ति होती है । जिस प्रकार शस्त्रों के प्रहारों को कवच रोकता है, उसी भाँति दैवि आपत्तियों को शान्ति निवारण करती है । अहिंसक, शुद्ध, धर्म द्वारा अर्जित धन, एवं दया दाक्षिण्ययुक्त पुरुष के सभी ग्रह सानुकूल हो जाते हैं । इस प्रकार सफल दोषापहरण में समर्थ इस शान्त कर्म को सुसम्पन्न करने के नाते अशान्त हृदय प्राणी के इसके द्वारा सदैव अर्थ धर्म की वृद्धि, कामनाएँ सफल, और पाप विनष्ट होते हैं ।३९-४६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
महाशान्तिविधि वर्णन नामक एक सौ तैंतालिसवाँ अध्याय समाप्त ।१४३।

अध्याय १४४

गणनाथशान्तिविधि का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—देवेश ! विभो ! मुझे गणनाथ की शान्ति बताने की कृपा कीजिये जिससे मानव गण अखिल दुर्गों को पार करते हैं ।१

श्रीकृष्ण बोले—राजेन्द्र ! मैं तुम्हें गणनाथ की उस परमप्रिय शान्ति का विधान बता रहा हूँ, जिसे सुसम्पन्न करने पर समस्त अरिष्टों का शमन हो जाता है। निर्विघ्न सिद्ध्यर्थ उस विनायक कर्म को सुनो।२।

---

१. दद्याच्चैव युधिष्ठिर । २. दयामाणिक्ययुक्तस्य ।

विनायकं कर्मविघ्नसिद्ध्यर्थं विनिबोधत । स्वप्नेऽवगाहतेऽत्यर्थं जलं मुंडांश्च पश्यति ।।३
काषायवाससश्चैव क्रव्यादानाधिरोहति । अपमूर्धैः शवै रुद्रैः सहैकत्र च तिष्ठति ।।४
व्रजन्नपि तथात्मानं मन्यतेनुगतं परैः । विमना विफलारम्भः संसीदत्यनिमित्ततः ।।५
तेनोपसृष्टो लभते न राज्यं राजनन्दनः । कुमारी न च भर्तारमपत्यं गर्भिणी तथा ।।६
आचार्यत्वं श्रोत्रियश्च न शिष्योऽध्ययनं तथा । वणिग्लाभं न चाप्नोति न कृषिं च कृषीवलः ।।७
स्नपनं तस्य कर्तव्यं पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम् । गौरसर्षपकल्केन साज्येनोत्सादितस्य तु ।।८
सुगन्धकुंकुमालिप्तशरीरशिरसस्तथा । भद्रासनोपविष्टस्य स्वस्ति वाच्य द्विजाञ्छुभान् ।।९
अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात्सङ्गमाद्ध्रदात् । मृत्तिकां रोचनां गन्धान्गुग्गुलं चाप्सु निक्षिपेत् ।।१०
यदा हृता ह्येकवर्णैर्मनुभिः कलशैर्ह्रदात् । चर्मण्यानडुहे रक्ते स्थाप्य भद्रासनं तथा ।।११
सहस्राक्षं सतधारमृषिणा वचनं कृतम् । ते नत्वामभिषिंचामि पावमान्यः पुनन्तु ते ।।१२
भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः । भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः ।।१३
यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि । ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद्घ्नन्तु ते सदा ।।१४
स्नातस्य सार्षपं तैलं स्रुवेणौदुम्बरेण च । जुहुयान्मूर्द्धनिकुशान्सव्येन परिगृह्य च ।।१५
मिताश्च संमितश्चैव तथा सालकटं कटौ । कूष्माण्डो राजपुत्रश्च अन्ते स्वाहासमन्वितैः ।।१६
नामभिर्बलिमन्त्रैश्च नमस्कारसमन्वितैः । दद्याच्चतुष्पथे शूर्पे कुशानास्तीर्य सर्वशः ।।१७

जिसके सुसम्पन्न न करने पर स्वप्न में अगाध जलावगाहन, मुण्डा दर्शन, काषाय (गेरुआ) वस्त्रधारी क्रव्याद (राक्षस) पर अधिरोहण, शिर विहीन एवं भीषण शवों के बीच रहना, (अकेले) चलते हुए पीछे से कुछ लोगों के आने का संदेह होने लगता है, प्राणी अन्यमनस्क रहता है, उसके सभी प्रारम्भ निष्फल होते रहते हैं, अकारण कष्ट का अनुभव करता है। राजपुत्र राज्य कुमारी पति, गर्भिणी सन्तान, वेदपाठी आचार्य की उपाधि, शिष्य अध्यापन, व्यापारी (वैश्य) लाभ और किसान की कृषी की सफोता नहीं प्राप्त करते हैं। अतः किसी पुण्य दिवस में श्वेत राई की खली समेत सविधान स्नान करके राज्य च्युत राजा सुगन्ध, कुंकुम अपने शिर शरीर में लगाकर भद्रासन पर बैठे और पूतात्मा ब्राह्मणों द्वारा स्वस्ति वाचन कराये। घोड़े, हाथी के स्थान, बल्मीक, संगम, सरोवर की मृत्तिका, गोरोचन, गंध, गुग्गुल जलवर्ण कलशों में डालकर।३-१०। जो एक वर्ण के मनोहर बने हों, रक्त वर्ण के चर्मासन पर राजा को बैठाकर उन कलश जलों से स्नान कराते समय मंत्रोच्चारण करे—जो शतधार से सहस्राक्ष इन्द्र को पूत किया और ऋषि की वाणी सत्य की उसी जल से मैं तुम्हारा अभिषेचन कर रहा हूँ, वह पवित्र जल तुम्हें पूतात्मा बनाये। राजा वरुण तुम्हें तेज प्रदान करें, सूर्य, बृहस्पति तेज प्रदान करें, इन्द्र और वायु तेज प्रदान करें, उसी भाँति सप्तर्षि गण भी तेज प्रदान करें। तुम्हारे केशों, ललाट, शिर, कानों और नेत्रों में जो कुछ दुर्भाग्य हो, यह पवित्र जल उसे शीघ्र विनष्ट करे। स्नान किये राजा के शिर पर गूलर के स्रुवा द्वारा कडुवातेल का मार्जन करते समय दाहिने हाथ में कुश भी लिए रहना चाहिए। मित, संमित, साल, कटंकट, और कूष्भांड की बलि उनके नाम मंत्र के उच्चारण पूर्वक अन्त में स्वाहा कहकर नमस्कार करते हुए अर्पित करना चाहिए। पश्चात् चौराहे पर कुश बिछा कर बलि निमित्त एक सूप का पात्र रखे।११-१७। जिसमें

कृता कृतान्स्तण्डुलांश्च पललौदनमेद च । मत्स्यान्पक्वान्स्तथैवामान्मांसमेतावदेवतु ।।१८
पुष्पं चित्रं सुगन्धं च सुरां च त्रिविधामपि । मूलकं पूरिकापूपं तथैवोन्डेरकस्त्रजम् ।।१९
दूर्वां सर्वप्रपुष्पाणां दत्त्वार्घ्यं पूर्णमण्डलाम् । विनायकस्य जननीमुपतिष्ठेत्ततोऽम्बिकाम् ।।२०
रूपं देहि यशो देहि भगं भवति देहि मे । पुत्रान्देहि धनं देहि सर्वकामांश्चदेहि मे ।।२१
ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः । भोजयेद्ब्राह्मणान्दद्याद्वस्त्रयुग्मं गुरोरपि ।।२२
एवं विनायकं पूज्य ग्रहांश्चैव विधानतः । कर्मणां फलमाप्नोति श्रियमाप्नोति चोत्तमाम् ।।२३
आदित्यस्य तथा पूजां तिलकं स्वामिनस्तथा । महागणपतेश्चैव कुर्वन्सिद्धिमवाप्नुयात् ।।२४
श्वेतार्कस्य तु यो मूले महागणपतिः कृतः । सर्वलक्षणसम्पूर्णः सोऽपि सिद्धिकरः स्मृतः ।।२५
सञ्जप्यते शुचौ देशे विघ्नं नात्र हि देहिनः । परमं पूजयेन्नित्यं गन्धमाल्यस्रगादिभिः ।।२६
क्षीणभाग्योऽपि पुरुषः पूजितश्च नरेश्वरः । सर्वसिद्धिमवाप्नोति जयी भवति सर्वदा ।।२७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसंवादे
गणनाथशान्तिवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय ।१४४

कच्चे पक्के चावल, मांस, भात, कच्ची पक्की मछली का मांस हेतु । चित्र विचित्र पुष्प, सुगंध, तीनों सुरा (शराब), मूली, पूरी, पूआ, कुण्डेरक की माला, दूर्वा समस्त पुष्पों समेत अर्घ्य प्रदान करके विनायक की जननी भगवती अम्बिका के सम्मुख जाकर विनय विनम्र याचना करे—भगवति ! रूप, यश, तेज, पुत्र, धन समेत सभी कामनाएँ सफल करें । अनन्तर शुक्ल वस्त्र, श्वेत वर्ण की माला एवं अनुलेपन से भूषित होने पर ब्राह्मण भोजन कराये और गुरु के लिए युग्म वस्त्र अर्पित करे । इस प्रकार विनायक की पूजा करके सविधान ग्रहों की अर्चा सुसम्पन्न करने पर कर्मों के फलों समेत परमोत्तम की प्राप्ति होती है । इसी प्रकार सूर्य की पूजा, स्वामि कार्तिकेय एवं महागणपति को तिलक से भूषित करने पर सिद्धि की प्राप्ति होती है । श्वेत मदार के मूल भाग में समस्त लक्षण युत महागणपति की प्रतिमा निर्माण करने से भी सिद्धि प्राप्त होती है । पवित्र स्थान में जप करने से प्राणी को किसी प्रकार का विघ्न नहीं होता है । गंध, माला, पुष्प आदि द्वारा नित्य उत्तम विधान द्वारा पूजन करने से हतभागी पुरुष भी पूजित होता है और नराधीश राजा समस्त सिद्धि समेत सदैव विजयी होता है ।१८-२७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्री कृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
गणनाथशांति वर्णन नामक एक सौ चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ।१४४।

अथ पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

नक्षत्रहोमविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अग्निहोत्रे सुखासीनं गर्गः पृच्छति कौशिकम् । बन्धने सन्निरोधेऽङ्ग व्याधीनां सम्प्रपीडने ॥१
कथं मोक्षो भवेत्तस्य साध्यासाध्यं ब्रवीहि मे । गर्गेण कौशिकः पृष्ट इदं वचनमब्रवीत् ॥२
आधाने जन्मनक्षत्रे नैधनप्रत्ययेषु च । व्याधिरुत्पद्यते यस्य क्लेशाय मरणाय च ॥३
कृत्तिकासु यदा कश्चिद्व्याधिं सम्प्रतिपद्यते । नवरात्रं भवेत्पीडा त्रिरात्रं रोहिणीषु च ॥४
मृगशीर्षे पञ्चरात्रमार्द्रा प्राणवियोजिनी । पुनर्वसौ च पुष्ये च सप्तरात्रं विधीयते ॥५
नवरात्रं तथाश्लेषा श्मशानान्तं मघासु च । द्वौ मासौ फाल्गुनी चैव उत्तरासु त्रिपक्षकम् ॥६
हस्ते च तनु दृश्येत चित्रायां त्वर्द्धमासकम् ॥७
मासद्वयं तथा स्वातौ विशाखा विंशतिर्दिनाः । मैत्रे चैव दशाहं तु ज्येष्ठा चैवार्द्धमासिका ॥८
मूलेन जायते मोक्षश्चाषाढासु त्रिपञ्चकम् । उत्तरादिनविंशत्या द्वौ मासौ श्रवणेन तु ॥९
धनिष्ठायामर्द्धमासं वारुणे तु दशाहकैः । नव भाद्रपदाऋक्ष उत्तरासु त्रिपञ्चकम् ॥१०
रेवती दशरात्रं तु अहोरात्रं तथाश्विनी । प्राणैर्वियोजयेन्नित्यं गर्ग नास्त्यत्र संशयः ॥११
कौशिकेन समादिष्टो नक्षत्रव्याधिसम्भवः । दैवज्ञेनापि ज्ञातव्यं नक्षत्रमथ जन्मना ॥१२

अध्याय १४५

नक्षत्रहोमविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—अंग ! अग्निहोत्र कर्म में सुखासीन कौशिक महर्षि से गर्ग ने पूछा—बन्धन, सन्निरोध, और व्याधि जनित महापीड़ा के उत्पन्न होने पर उससे किस प्रकार मोक्ष प्राप्त होता है। उसके साध्यासाध्य विधान मुझे बताने की कृपा करें। इस प्रकार गर्ग मुनि के पूँछने पर कौशिक जी ने कहा—गर्भाधान नक्षत्र, जन्मनक्षत्र, मरणनक्षत्र और प्रत्यय में व्याधिउत्पन्न होने से अत्यन्त पीडा एवं मरणफल प्राप्त होता है। कृत्तिका नक्षत्र में कोई व्याधि उत्पन्न होने पर नवदिन तक पीड़ा होती है, रोहिणी में तीन रात्र, मृगाशिरा में पाँच रात तक पीडा होती है और आर्द्रा में प्राण वियोग (मरण) होता है। पुनर्वसु और पुष्य में रोग उत्पन्न होने पर सात रात्रि।१-५। श्लेषा में नवरात्रि तक तथा मघा में शमशान पहुँचने तक भी पीडा होती रहती है। पूर्वा फाल्गुनी में दो मास, उत्तरा में डेढ़मास, हस्त में एकमास, चित्रा में एक पक्ष (पन्द्र दिन), स्वाती में दो मास, विशाखा में बीस दिन, अनुराधा में दशदिन, ज्येष्ठा में पन्द्रह दिन, मूल में सदैव रोगी, पूर्वाषाढ़ में पन्द्रह दिन, उत्तराषाढ़ा में बीस दिन, श्रवण में दो मास घनिष्ठा में आधामास, शतभिषा में दश दिन, पूर्वाभाद्र में नवदिन, उत्तराभाद्र में पन्द्रह दिन।६-१०। रेवती में दश दिन, अश्विनी में दिनरात के भीतर प्राण वियोग हो जाता है इसमें संशय नहीं। कौशिक द्वारा बताये गये व्याधि जनक नक्षत्रों का ज्ञान दैवज्ञ (ज्योतिषी) को भी प्राप्त करना चाहिए।११-१२। जन्म नक्षत्र में रोग

क्षीरदृक्षस्य समिधो जुहुयादश्वदैवते । तिलान्मधुप्लुतान्याम्ये यवमेवाग्निदैवते ॥१३
प्राजापत्ये तु जुहुयाद्भोग्यबीजकरं बकम् । सौम्ये प्रियङ्गवो रौद्रे सर्प्पिर्मांससमन्वितम् ॥१४
आदित्ये च प्रयत्नेन घृताक्ताः सिततण्डुलाः । पयसा सर्पिषा साकं बृहस्पत्यधिदैवते ॥१५
ग्राम्योषधैर्दटपत्रैः सर्पिः सर्पाधिदैवते । होमः प्रोक्ताः प्रियङ्गूनां नक्षत्रे यामदैवते ॥१६
सावित्रे दधिहोमोऽत्र त्वाष्ट्रे चित्रौदनं हविः ॥१७
यवान्सहाज्येन हुनेद्रौदेऽग्नौ तु पयोदनम् । मैत्रेणाथ तु मन्त्रेण मैत्रे कटकमिश्रितम् ॥१८
नैर्ऋत्ये तिलहोमः स्यादव्यक्ते च हुताशने । अब्दैवत्ये शालिबीजैर्वैश्वदेवं तु कारयेत् ॥१९
रक्ताश्वतण्डुलाश्चैव होतव्या विष्णुदैवते । वारुणे पारिजातानां पुष्पाणां होम इष्यते ॥२०
अजैकपादे नक्षत्रे प्राजापत्ये न तत्समम् । आहिर्बुध्न्ये तु नक्षत्रे वैश्वदेवं तु कारयेत् ॥२१
रक्ताश्व तण्डुलाश्चैव होतव्या विष्णुदैवते । पौषे फलान्यखण्डानि जुहुयादष्टोत्तरं शतम् ॥२२
सावित्री होममेकं तु ब्रह्माभिहतवान्पुरा । सर्वज्वरप्रशमनं सद्यो ज्वरहरं परम् ॥२३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
नक्षत्रहोमविधिवर्णनं नाम पंचचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४५

उत्पन्न होने पर अश्व देवता प्रधान हों तो गूलर की समिधा की आहुति, याम्य देवता में, मधुप्लुत तिल की आहुति अग्नि देवता में जवा, प्रजापत्य देवता में भोग्य बीज करम्बक सौम्य (बुध) प्रधान देवता में प्रियंगु (राई आदि), रौद्र में घृतप्लुत मांस, आदित्य देव में घृतप्लुत श्वेत तण्डुल, बृहस्पति के अधिदेव रहने पर घृतप्लुत खीर, सर्वाधिदेव में गाँव की औषधियों समेत बरगद के पत्तियों की आहुति और यामदेव में प्रियंगु (कांगुनी) आदि की आहुति देनी चाहिए। सविता देव में दधि की आहुति, त्वष्ट्रा देव में विचित्रविचित्र चावल की हवि, रौद्र में घृतप्लुत जवा, पायस, अनुराधा नक्षत्र मे अधिदेव में उसके मंत्र द्वार कंटक मिश्रित, नैऋत्य में तिल की आहुति अग्नि में अर्पित करनी चाहिए। शालि (साठी) चावल से वैश्वदेव की आहुति प्रदान करनी चाहिए। इसी प्रकार विष्णुदेव की प्रधानता में रक्ततण्डुल की आहुति, शतभिषा के अधिदेव में पारिजात पुष्पों की आहुति देनी चाहिए। अजैकपादनक्षत्र में प्राजापत्य देव के समान आहुति, अहिर्बुध नक्षत्र में वैश्वदेव करना चाहिए। विष्णुदेव की प्रधानता में रक्त तण्डुल और पौष में अखण्ड एक सौ आठ फलों की आहुति देनी चाहिए। इस प्रकार ब्रह्मा ने पूर्वकाल में एक सावित्री हवन बताया है, जो उसी क्षण समस्त ज्वरों का शमन करता है।१३-२३

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
नक्षत्रहोमविविधि वर्णन नामक एक सौ पैंतालिसवाँ अध्यय समाप्त।१४५।

अथ षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अपराधशतव्रतवर्णनम्

श्रीवसिष्ठ उवाच

अथान्यदपि ते वच्मि व्रतं राजन्महाफलम् । अपराधशतं येन क्षयं याति शृणुष्व तत् ॥१

इक्ष्वाकुरुवाच

किं व्रतं तन्ममाचक्ष्व कोऽपराधस्तु तं वद । कः पूज्यते च वै तस्मिन्कदा वा क्रियते नरैः ॥२

श्रीवसिष्ठ उवाच

शृणु राजन् महाबाहो अपराधशतव्रतम् । येनानुष्ठितमात्रेण काममोक्षौ लभेत ना ॥३
प्रायश्चितान्यशेषाणि सर्वपापापनुत्तये । कृतान्यप्यकृतानि स्युरिति होवाच पद्मजः ॥४
पापं गुरुतरं चापि दह्यते तूलराशिवत् । अपराधशतं राजञ्छृणुष्व गदतो मम ॥५
न करोति नरो मोहाद्व्रतमेतद्दिने दिने । अनाश्रमित्वं प्रथमोऽनग्निता व्रतहीनता ॥६
तदातृत्वमशौचं च निर्दयत्वं स्पृहालुता । अक्षान्तिर्जनपीडा च मायित्वप्यमङ्गलम् ॥७
क्षतव्रतत्वं नास्तिक्यं वेदनिन्दा कठोरता । असत्यता हिंसकत्वं स्तैन्यमिन्द्रियविप्लवः ॥८
मनसोऽनिग्रहश्चैव क्रोध ईर्ष्याथ मत्सरः । दम्भः शाठ्यं च धौर्त्यं च कटुकोक्तिः प्रमादता ॥९

अध्याय १४६

सैकड़ों अपराधों को नष्ट करने वाले व्रत का वर्णन

वसिष्ठ बोले—राजन् ! इसके अनन्तर मैं तुम्हें एक महाफल व्रत बता रहा हूँ, जो सैकड़ों अपराधों को शीघ्र विनष्ट कर देता है, सुनो ! १

इक्ष्वाकु बोले—मुझे वह कौन व्रत है, उसे और उसके शान्त होने वाले अपराधों को बताने की कृपा कीजिये । उसमें किस देव की पूजा करनी चाहिए और किस समय ? २

वसिष्ठ बोले—राजन् ! महाबाहो ! मैं तुम्हें अपराधशतव्रत बता रहा हूँ, जिसके अनुष्ठान मात्र से मनुष्यों को कामनाओं की सफलता और मोक्ष प्राप्त होता है । ब्रह्मा ने यह भी बताया है कि समस्त पापों के प्रक्षालन के लिए यद्यपि अनेक प्रायश्चित बताये गयें हैं तथापि इस अनुष्ठान के समक्ष वे सुसम्पन्न करने पर भी न करने के समान ही हैं । राजन् ! अतः इस अपराध शतव्रत को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! क्योंकि इसके द्वारा तूल राशि के समान गुरुतर भी पाप शीघ्र दग्ध हो जाता है । मनुष्य के मोहवश इस व्रत को यथवासर सुसम्पन्न करने पर उसे आश्रमहीनता, अनग्निता (अग्निहोत्र कर्महीनता), व्रतहीनता, अपदातृव्य, अशौच, निर्दयता, स्पृहणीयता, असहिष्णुता, जनपीड़ा, मायावी, अमंगल, व्रतभंग, नास्तिकता, कठोर वेदनिंदक, असत्यता, हिंसकत्व, चोरी, इन्द्रिय दोष का भागी होना पड़ता है। ३-८। उसी भाँति उसके मन का अनिग्रह क्रोधी, ईष्या, मत्सर, दम्भ शाठ्य, धूर्तता समेत वह कटुभाषी,

भार्यामातृसुतादीनां त्यागश्चापूज्य पूजनम् । श्राद्धहानिर्जपत्यागः पञ्चयज्ञविवर्जनम् ॥१०
सन्ध्यातर्पणहोमानां हानिरग्नेः प्रणाशनम् । अनृतौ मैथुनं पार्थ पर्वण्यपि च मैथुनम् ॥११
पैशुन्यं परदारेषु दानं वेश्याभिगामिता । अपात्रदानं चाल्पं च मूलिकाकुलिभक्षणम् ॥१२
अन्त्यजागमनं मातृत्यागः पितृविवर्जनम् । पित्रोरभक्तिर्वादश्च पुराणस्मृतिवर्जनम् ॥१३
अभक्ष्यभोजनं चापि पतिद्रोहोऽविचारता । कृषिकर्मक्रियावाह्यं भार्यासंग्रहकारिता ॥१४
इन्द्रियाजयमायित्वं विद्याविस्मरणं तथा । शास्त्रत्यागं ऋणं चित्रकर्म चानङ्गधावनम् ॥१५
भार्यापुत्रसुतादीनां विक्रयः पशुमैथुनम् । इन्धनार्थं द्रुमच्छेदो बिले वार्यादिपूरणम् ॥१६
तडागागमने वृत्तं विद्याविक्रयकारिता । वृत्तिलोपो महीपाल याचकत्वं कुमित्रता ॥१७
स्त्रीवधो गोवधश्चैव पौरोहित्यं सुहृद्वधः । भ्रूणहत्या परान्नं च शूद्रान्नस्य निषेवणम् ॥१८
शूद्रस्य चाग्निकर्मत्वमविधित्वं कुपुत्रता । विद्वद्भ्यो याचकत्वं हि वाचाटत्वं प्रतिग्रहः ॥१९
श्रौतसंस्कार हीनत्वमार्तत्राणविवर्जनम् । ब्रह्महत्यासुरापानं रुक्मस्तैन्यमतः परम् ॥२०
गुरुदाराभिगामित्वं संयोगश्चापि तैः सह । अपराधशतं त्वेतत्कथितं ते मयानघ ॥२१
अन्येऽपि विविधाः सन्ति प्रोक्ताः प्राधान्यतस्त्वमी । यदि वक्त्रसहस्राणि वक्त्रे जिह्वाशतानि च ॥२२
तथाप्येते न शक्यन्ते वक्तुं यस्मादनन्तकाः । अपराधसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च ॥२३
नश्यन्ति तत्क्षणान्नूनं सत्येशस्यानुपूजनात् । पूज्यते भगवानत्र व्रतकृत्ये पराजिते ॥२४
ध्वजे सत्ये स्थितश्चायं लक्ष्म्यां सह जगत्पतिः । वामदेवस्ततः पूर्वं नृसिंहो दक्षिणे स्थितः ॥२५

प्रमादी, स्त्री, माता, और पुत्रों आदि के त्याग, अपूज्य का पूजन, श्राद्धहीनता, जप त्याग एवं पाचों यज्ञों के न करने का दोषभागी होता है। उसके संध्या, तर्पण, होम की हानि, अग्निप्रणाशन, ऋतुहीन मैथुन और पूर्वसमय में मैथुन, पिशुनता (चुगुली), परस्त्री मैथुन, वेश्यागमन, अपात्र में दान, अल्पता, मूलिका, कुलिभक्षण, शूद्रागमन, मातृत्याग, पितृहीनता, माता की अभक्ति, और उनसे वाद विवाद करना पुराण और स्मृति के त्याग, अभक्ष्य भोजन पतिद्रोह विचार हीनता, कृषी करना, स्त्री संग्रह, इन्द्रिय का अजेता, मायावी, विद्या विस्मरण, शास्त्रों के त्याग, ऋण, चित्रकारी, कामुकता। कामुकता, भार्या, पुत्र, कन्या का विक्रय, पशुओं से मैथुन, जलाने के लिए वृक्ष काटने, विल में पानी डालना, तालाब में स्नान करना, विद्या विक्रय का अपराध उसे होता है। महीपाल ! वृत्तिलोप, याचकता, कुमित्रता, स्त्रीवध, गोवध, पुरोहित के कार्य, मित्रवध, भ्रूण हत्या, परान्न, और शूद्रान्न के सेवन, शूद्र द्वारा अग्नि कर्म, अविधि, कुपुत्रता, विद्वानों से याचना करना, वाचालत्व, प्रतिग्रह (दान लेना), वैदिक संस्कार हीनता, आर्तों की रक्षा न करने, ब्रह्म हत्या, सुरापान, सुवर्ण चोरी, गुरुपत्नी गमन आदि दोष भागी होता है अनघ ! इस प्रकार मैंने तुम्हें सौ अपराधों को सुना दी।९-२१। अन्य भी विविध भाँति के इतने प्राधान्य अपराध है जिनकी गणना के लिए सहस्र मुख और उनमें सैकड़ों जिह्वा हों, किन्तु फिर भी असमर्थ रहेंगे क्योंकि अपराध अनन्त हैं। इस व्रत में भगवान् सत्येश की अर्चा होती है, जिससे सहस्र, लक्ष एवं कोटि अपराध उसी क्षण निश्चय विनष्ट हो जाते हैं। इनकी ध्वजा में सत्य, लक्ष्मी समेत विष्णु स्थित रहते हैं, बायें वामदेव, दक्षिण में

कपिलः पश्चिमास्येतु वाराहश्चोत्तरे स्थितः । ऊर्ध्ववक्त्रोऽच्युतो ज्ञेय एतद्वै ब्रह्मपञ्चकम् ॥२६
तं सत्येशं स्थितं राजन्पूजयेच्च सदैव हि । क्षीरोदयार्धचन्द्रस्थपद्मकर्णिकसंस्थितम् ॥२७
पद्मकौमोदकीशङ्खचक्रायुधविधारणम् । वामे चाधस्तथा दक्षे ऊर्ध्वे पश्चादधो नृप ॥२८
पादाधस्ताद्विनिष्क्रान्ता गङ्गा पूता सदा नृभिः । शक्त्यष्टकं तथा चान्यत्तन्नामानि च मे शृणु ॥२९
जया च विजया चैव जयन्ती पापनाशिनी । उन्मीलनी वन्जुली च त्रिस्पशाथ विवर्द्धना ॥३०
एताभिः शक्तिभिर्युक्तं लोकदिक्पालवर्जितम् । शुक्लाम्बरधरं सौम्यं प्रहृष्टवदनं शिवम् ॥३१
सर्वाभरणशोभाढ्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं हरिम् । पूजयेच्च प्रयत्नेन विधिना येन तं शृणु ॥३२
मार्गशीर्षादिमासेषु द्वादशस्वपि सर्वदा । द्वादश्यामयमायां वा अष्टम्यां च सितासिते ॥३३
कृतोपवासः शुद्धात्मा कुर्याद्व्रतमतन्द्रितः । पक्षयोरुभयोरेवं पूजयेऽहं जनार्दनम् ॥३४
एवं तु नियमं कृत्वा दन्तधावनपूर्वकम् । गच्छेत्ततस्तडागे वा पुष्करिण्यां गृहेऽपि वा ॥३५
स्नात्वा तु नैत्यकं कर्म कृत्वा नैमित्तिकं ततः । कुर्यात्सर्वं प्रयत्नेन यथावदनपूर्वशः ॥३६
सौवर्णं कारयेद्देवं पूर्वोक्तं सत्यरूपिणम् । शक्त्यष्टकयुतं लक्ष्म्यां युक्तं पद्मासनस्थया ॥३७
सुवर्णपलमानेन कार्यमेतत्सविस्तरम् । दुग्धकुम्भोपरिष्टात्तु स्वर्णपद्मं प्रकल्पयेत् ॥३८
तत्कर्णिकागतं देवं शक्तिवृन्दसमन्वितम् । पूजयेद्विधिवत्पश्चाद्गुरुमन्त्रप्रचोदितः ॥३९
शुद्धशुक्लाम्बरधरो मन्त्रसम्भारसंसितः । देवीक्षीरसमुद्रेऽस्मिन्वृत्ते चन्द्रे च पुष्करे ॥

नृसिंह, पश्चिम मुख की ओर कपिल, उत्तर में बाराह (मेघ), भगवान् अच्युत का उर्ध्व मुख भी है इन्हीं को ब्रह्म पञ्चक कहते है । राजन् ! उन सत्येश भगवान की सदैव अर्चना करनी चाहिए, जो क्षीर सागर से निकले चन्द्रमा के आधे भाग में स्थित कमल की कर्णिका में स्थित हैं । नृप ! वे अपने बायें हांथ में नीचे, दाहिने, ऊपर वाले और पीछे वाले के नीचे हाथों में क्रमशः पद्म, कौमोदकी गदा, शंख और चक्रास्त्र धारण किये हैं । उनके चरण तल से परमपूता गंगा का निष्क्रमण हुआ है, जो मनुष्यों को सदैव पवित्र करती है । उनके आठ शक्तियाँ हैं । उनके नाम मैं बता रहा हूँ, सुनो ! जया, विजया, पापनाशिनी जयंती, उन्मीलिनी, वंजुली, त्रिस्पृशा, अक्ष विवर्द्धना । लोक दिक्पाल से रहित इन्हीं शक्तियों समेत शुक्लाम्बर धारी, सौम्यमूर्त्ति, कल्याण स्वरूप, प्रसन्न मुख, समस्त आभूषणों से सुसज्जित होने के नाते शोभा की राशि और भुक्ति मुक्ति प्रदान करने वाले भगवान् विष्णु की अर्चना सप्रयत्न सुसम्पन्न करनी चाहिए, वह विधान मैं बता रहा हूँ सुनो ! २२-३२। मार्गशीर्ष आदि बारहों मासों में कृष्णशुक्ल द्वादशी अमावास्या और अष्टमी के दिन उपवास पूर्वक शुद्धात्मा और आलस्य रहित होकर भगवान् जनार्दन की दोनों पक्षों में सप्रेम अर्चना करूँगी । इस प्रकार नियम करके दंत धावन (दातून) करके किसी तालाब, बावली या गृह में ही स्नान एवं नित्य कर्म करने के अनन्तर यह नैमित्तिक सप्रयत्न पूरा करे । एक पल सुवर्ण की सत्यरूपी भगवान् जनार्दन की प्रतिमा का निर्माण कराकर आठों शक्ति और लक्ष्मी समेत उन्हें उस कमल दल के आसन पर सुशोभित करे, जो दुग्धपूर्ण कलश के उपर सुवर्ण द्वारा निर्मित हो । उस कमल की कर्णिका में शक्ति समेत सुशोभित सत्येश की सविधान अर्चा करके गुरु मंत्र द्वारा प्रार्थना करे—शुद्ध शुक्लाम्बर धारण किये मंत्रोच्चारण पूर्वक कहे—सत्येश ! देव ! क्षीर सागर में जो चन्द्र कमल से

तत्र त्वं सत्यया सार्द्धं सत्येश भव सन्निधौ ॥४०
ॐ क्षीरसागरकल्लोले स्नाहि पापनिषूदन । अनेन भूतभव्येन दत्तेन जलबिन्दुना ॥४१
हरस्व सर्वं दुरितं ममनाथ जनार्दन । वस्त्रदानेन शुभ्रेण सत्येश कुरु मे शुभम् ॥४२
यज्ञे योगे तथा सांख्ये पवित्रस्त्वं सदोच्यसे । यज्ञोपवीतदानेन कुरु मां सर्वपावनम् ॥४३
विलिप्तं कर्मणा सर्वं सत्यं सत्यं न केनचित् । मम चन्दनलिप्ताङ्गः सर्वलेपापहो भव ॥४४
सत्यनाथ नमस्तुभ्यं मूर्तामूर्तस्वरूपिणे । वासुदेव नृसिंहाख्य कपिलादिव्यभूधर ॥४५
वाराहाच्युत यज्ञेश लक्ष्मीकान्त नृपेश्वर । पशुं पुत्रं च मे देहि पापशत्रो निरञ्जन ॥४६
संकर्षण महावीर्य सर्वेशामितविक्रम । अनिरुद्धेन्द्र गोविन्द धृतचक्र नमोऽस्तु ते ॥४७
(इति पूजामन्त्रः)
कृष्णकृष्ण प्रभो रामराम कृष्ण विभो हरे । त्राहि मां सर्वदुःखेभ्यो रमया सह माधव ॥४८
पूजा चेयं मया दत्ता पितामहजगद्गुरो । गृहाण जगदीशान नारायण नमोऽस्तु ते ॥४९
धनं गुप्तं महीपाल सर्वपापानुपत्तये । एकस्यैवतु विप्रस्य यावद्वर्षं समर्पयेत् ॥५०
दानं दद्यान्महाराज ह्यशक्तौ तदभावतः । पक्षेपक्षे प्रकर्तव्यं व्रतमेतन्महत्तरम् ॥५१
सम्वत्सरे ततः पूर्णे कुर्यादुद्यापनं बुधः । पूर्ववत्पूजयेद्देवं बहुसम्भारविस्तरैः ॥५२
अनुज्ञां प्रार्थयेद्विप्रान्पापध्वंसो ममास्तु वै । पापध्वंसोऽस्तु सततं तवेति च द्विजो वदेत् ॥५३

भूषित है, अपनी सत्या समेत सदैव वर्तमान रहते हों, यहाँ आने की कृपा करें । पापनिषूदन ! आप क्षीर सागर की गम्भीर तरङ्गों में स्नान करते हैं अतः मेरे द्वारा दिये गये इस जल बिन्दु को स्वीकार करते हुए मेरे समस्त दुरितों के शमन करे क्योंकि आप मेरे स्वामी हैं । जनार्दन सत्येश ! मेरे इस शुभ्र वस्त्र दान द्वारा आप मेरा कल्याण करने की कृपा करें । आप यज्ञ, योगशास्त्र एवं सांख्य में सदैव पूर्ण पवित्र बताये गये हैं अतः इस यज्ञोपवीत दान द्वारा मेरा समस्त पवित्र करने की कृपा करें । मैं सत्य एवं दृढ़ सत्य कह रहा हूँ (आप के अतिरिक्त) अन्य कोई भी कर्म लोप नहीं कर सकता है अतः मेरे द्वारा किये गये चन्दन लेप से समस्त कर्म लेपन का आप अपहरण करें ।३३-४४। सत्यनाथ ! मैं आप को नमस्कार कर रहा हूँ आप मूर्ति धारी और अर्मूत (निराकार) हैं । वसुदेव, नृसिंह, कपिल, दिव्य, भूधर, वाराह, अच्युत, यज्ञेश, लक्ष्मी कांत, और नृपेश्वर नाम से आप विख्यात हैं पापशत्रो, निरंजन ! मुझे पशु एवं पुत्र देने की कृपा करें । संकर्षण, महापराक्रमी, सर्वेश, अति विक्रम, अनिरुद्ध इन्द्र, गोविन्द एवं चक्रदारी को मैं नमस्कार करता हूँ । पूजामंत्र कृष, कृष्ण, प्रभो, राम, राम, कृष्ण, विभो हरे, लक्ष्मी समेत माधव ! समस्त दुःखों से मेरी रक्षा करो । पितामह, जगद्गुरो ! मैंने यह पूजा आप को अर्पित की है, जगदीश, ईशान नारायाण ! मैं आप को नमस्कार कर रहा हूँ, स्वीकार करने की कृपा करें ।४५-४९। महीपाल ! अपना गुप्त धन समस्त पाप प्रक्षालनार्थ वर्ष पर्यन्त किसी एक ही ब्राह्मण को अर्पित करते रहना चाहिए । महाराज ! धन रहने पर उचित दान करना चाहिए । समर्थ होने पर प्रतिपक्ष में इस महत्तर च्युत को सुसम्पन्न करता रहे और वर्ष के अन्त में उद्यापन करे । इस प्रकार पूर्वोक्त विधान द्वारा बहुसंभारयुक्त होकर उनकी अर्चना करने के अनन्तर ब्राह्मणों की आज्ञापूर्वक प्रार्थना करे—मेरे सम्पूर्ण पाप नष्ट हों पश्चात् निरन्तर तुम्हारे पाप

ततः सर्वं ब्राह्मणाय समर्प्य च क्षमापयेत् । अस्मिन् व्रते कृते राजन् वदेद्बहुफलोदयः ।।५४
यत्फलं सर्ववेदेषु सर्वतीर्थेषु यत्फलम् । तत्फलं कोटिगुणितं व्रतस्यास्य निषेवणात् ।।५५
इह लोके धनं धान्यं पुत्रमित्रसुखादिकम् । प्राप्नोति पुरुषः सम्यग्विद्यारोग्यकलायुधम् ।।५६
धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं च नृपसत्तम । लभते नात्र सन्देहो ब्रह्मणो वचनं यथा ।।५७
यः पठेच्छृणुयाद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते । यः कुर्यात्पुनरेतद्धि सोऽनन्तफलभाग्भवेत् ।।५८
अशक्तस्तु तथा शक्तो वित्तशाठ्यविवर्जितः । व्रतं कुर्वन्नरो भक्त्या लभते शाश्वतं पदम् ।।५९
कृते वै क्रियमाणे तु कर्ता फलमवाप्नुयात् । अपराधताघौघं व्रतेनानेन नाशयेत् ।।६०

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
अपराधशतव्रतवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४६

अथ सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

काञ्चनव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

श्वेतद्वीपे सुखासीनं देवदेवं जगत्प्रभुम् । वासुदेवं जगन्नाथं स्थितिसंयमकारकम् ।।१

का नाश हो ऐसा ब्राह्मण कहे । अनन्तर वह समस्त सामग्री ब्राह्मण को अर्पित कर क्षमा प्रार्थना करे । राजन् ! इस व्रत के अनुष्ठान को सुसम्पन्न करने पर अनेक फलों की प्राप्ति होती है । समस्त वेदों के फल, समस्त तीर्थों के फल, जितनी संख्या में हो उनके कोटिगुणे अधिक फल इस व्रत को सम्पन्न करने पर प्राप्त होते हैं । इस लोक में मनुष्य को धन, धान्य, पुत्र मित्र आदि के सुख समेत समस्त विद्या, आरोग्य, आयुध कला की प्राप्ति होती है । नृपसत्तम ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति ब्रह्मा के वचनानुसार निःसंदेह होती है । इसके पढने और सुनने वाले भी समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं तथा जो इसे सुसम्पन्न करता है उसे अनन्त फल की प्राप्ति होती है । अशक्त को भी सम्पन्न करने पर वैसे ही फल की प्राप्ति होती है । समर्थ को कभी भी उस समय कृपण न होना चाहिए । भक्तिपूर्वक सम्पन्न करने वाले प्राणी को शाश्वत पद की प्राप्ति होती है । इस व्रत के करने अथवा करने के लिए उद्यत होने वाले को वे सम्पूर्ण फल प्राप्त होते हैं । क्योंकि बताया गया है । इस व्रत द्वारा सैकड़ों अपराधों की राशि विनष्ट होती है ।५०-६०

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवाद में
अपराधशतवर्णन नामक एक सौ छियालिसवाँ अध्याय समाप्त ।१४६।

अध्याय १४७

काञ्चनव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—राजेन्द्र ! श्वेतद्वीप (क्षीर सागर) में सुखासीन वासुदेव जगन्नाथ जी से जो देवाधिदेव, जगत्स्वामी, एवं उसकी स्थिति और संयम करने वाले ।१। महान् स्रष्टा, पुराण (प्राचीन) रूप,

परावराणां स्रष्टारं पुराणं परमव्ययम् । आदिदेवं जगन्नाथं जगतः कारणात्मकम् ॥२
प्रणिपत्य महादेवं चराचरगुरुं हरिम् । लक्ष्मीः प्रोवाच राजेन्द्र पादसम्वाहने स्थिता ॥३
भगवन्देवदेवेश भक्तानामनुकम्पक । प्रष्टव्यं किञ्चिदिच्छामि प्रष्टुं प्रश्नविदां वर ॥४
प्रकुरुष्व महाभाग दयां कृत्वा ममोपरि । व्रतं किञ्चित्कथय मे रूपसौभाग्यदायकम् ॥५
उत्तमं सर्ववर्णानां व्रतानामपि चोत्तमम् । कृतेन येन देवेश सर्वतीर्थफलं भवेत् ॥६

विष्णुरुवाच

गृहस्थश्चाश्रमाणां च वर्णानां ब्राह्मणो यथा । यथा नदीषु सर्वासु जाह्नवी लोकविश्रुता ॥७
ह्रदानामुदधिः श्रेष्ठो देवानां विष्णुरुत्तमः । स्त्रीणां देवी यथा लक्ष्मीस्तथेदं व्रतमुत्तमम् ॥८
न गङ्गा न कुरुक्षेत्रं न काशी न च पुष्करम् । पावनानि महाभागे यथेदं व्रतमुत्तमम् ॥९
गौर्या देव्या कृतं पूर्वं शङ्करेण महात्मना । रागेण सीतया सार्द्धं राज्यं प्राप्य कृतं पुरा ॥१०
दमयन्तीवियोगेन नलेन तु तथा कृतम् । कृष्णया सहितैः पार्थ पाण्डवैर्वनवासिभिः ॥११
कृतमेतद्व्रतं भद्रे स्वर्गमोक्षप्रदायकम् । रम्भया मेनया वापि पौलोम्या सत्यभामया ॥१२
शाण्डिल्या चाप्यरुन्धत्या उर्वश्या देवदत्तया । कृतं व्रतमिदं भद्रं सौभाग्यसुखकाम्यया ॥१३
पाताले नागकन्याभिः कृतमेतत्सुशोभनम् । गायत्र्या च सरस्वत्या सावित्र्या ब्रह्मभार्यया ॥१४
अन्याभिः सर्वनारीभिः सर्वकामफलेप्सुभिः । तस्मात्तेऽहं प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनम् ॥१५
वसुप्रीतिकरं रम्यं व्रतानां परमं शृणु । ब्रह्महा मुच्यते पापात्सुरापो वसुहारकः ॥१६
गुरुभार्याभिगामी च ह्येतेषां सङ्गमी च यः । मानकूटं तुलाकूटं कन्यावृत्तिर्गवां व्रती ॥१७

परमाख्य, आदि देव, जगत् के स्वामी, कारण, चराचर गुरु, महादेव, एवं हरिरूप हैं, पादसंवाहन करती हुई लक्ष्मी जी ने कहा—भगवन् देवाधिदेव, भक्तों पर अनुकम्पा रखने वाले आप प्रश्नवेत्ताओं में श्रेष्ठ हैं अतः मैं आप से कुछ पूँछना चाहती हूँ । महाभाग ! मेरे ऊपर कृपाकर, आप उसे बताने की कृपा करें—देवेश ! मुझे रूपसौभाग्यदायक एक ऐसा व्रत बताने की कृपा करें, जो समस्त वर्णों और व्रतों में परमोत्तम हो और जिसने अनुष्ठान से समस्त तीर्थों के फल प्राप्त हों ।२-६

विष्णु बोले—जिस भाँति आश्रमों में गृहस्थ, वर्णों में ब्राह्मण, समस्त नदियों में जाह्नवी गंगा लोकविख्यात हैं, जलाशयों में समुद्र, देवों में विष्णु और स्त्रियों में देवी लक्ष्मी परमोत्तम है उसी भाँति यह व्रत परमोत्तम है । महाभागे ! इस व्रत के सम्मान गंगा, कुरुक्षेत्र, काशी, और पुष्कर पवित्र नहीं है । इसे सर्वप्रथम गौरी समेत शिव, राज्य प्राप्ति के अनन्तर सीता समेत रामचन्द्र ने सुसम्पन्न किया था । पार्थ ! उसी भाँति दमयन्ती के वियोग में नल, कृष्ण (द्रौपदी) समेत वनवासी पाण्डवों ने स्वर्ग मोक्ष प्रदायक इस व्रत सुसम्पन्न किया है । रम्भा, मेना, पौलोभी, सत्यभामा, शाण्डिली, अरुन्धती, उर्वशी, देवदत्ता आदि ने सौभाग्य सुख की कामना से इसे पूरा किया है ।७-१३। पातालवासिनी नाग कन्याओं ने भी इसे सुसम्पन्न किया है । गायत्री, सरस्वती, ब्रह्मभार्या सावित्री और अन्य अनेक स्त्रियों ने भी । समस्त कामनाओं के सिद्धयर्थ इसका अनुष्ठान किया है । अतः समस्तपाप विनाशक इस व्रत को मैं तुम्हें बता रहा हूँ, जो वसुप्रीतिकारी एवं व्रतों में परमोत्तम है सुनो ! इस व्रत के प्रभाव से ब्रह्महत्या, सुरापान, धनापहारी, गुरुपत्नी गमन, उनके साथी, श्रीमान कूट, तुलाकूट, कन्या द्वारा जीवन यापन, गोविक्रय,

अगम्यागमनो यस्तु मांसाशी वृषलीपतिः । कुण्डाग्निभोजी यस्तु स्याद्भूमिहर्ता तथैव च ।।१८
एभिः सर्वैर्महापापैर्मुच्यते नात्र संशयः । एभिः स्यान्नरनारीभिः कर्तव्यं व्रतमुत्तमम् ।।१९
अतस्तेऽहं विधिं वक्ष्ये विधानमवधारय । काञ्चनाख्या पुरीनाम व्रतं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।।२०
यः करोति नरो देवि नारी वा भक्तिसंयुता । तस्य पुत्राश्च पौत्राश्च जायते विपुलं धनम् ।।२१
तस्मिन्मासे च कर्तव्यं व्रतमेतच्च सुन्दरि । तस्मिन्मासे च कर्तव्या काञ्चनाख्या पुरी शुभा ।।२२
शुक्लकृष्णतृतीयायामेकादश्यां च पूर्णिमा । संक्रान्तिर्वा महाभागे कुहूर्वा चाष्टमी तिथिः ।।२३
पर्वस्वन्येषु सर्वेषु दातव्या काञ्चनी पुरी । व्रती स्नात्वा तु पूर्वाह्णे नद्यादौ विमले जले ।।२४
मृत्तिकालम्भनं कार्यं मन्त्रेणानेन सुव्रते । उद्धृतासि यथापूर्वं विष्णुना क्रोडरूपिणा ।।२५
लोकानामुपकारार्थं वन्दनात्सिद्धिकामदा । तस्मात्त्वं वन्दिता पापं हर मेऽनेकजन्मजम् ।।२६

(इति मृत्तिका मन्त्रः)

आपस्तु विश्वयोनिर्हि विष्णुना निर्मिताः स्वयम् । सान्निध्यं तीर्थसहितं कर्तव्यं मम साम्प्रतम् ।।२७

(इत्यम्मन्त्र)

अनेन विधिना स्नात्वा यजमानः समाहितः । गृहमागम्य शुद्धात्मा नालपन्पिशुनान्स्त्वरात् ।।२८
पाखण्डिनो विकर्मस्थान्धूर्तांश्च कितवाञ्छठान् । प्रक्षाल्य पाणिवदनं कुर्यात्त्वाचमनं ततः ।।२९
उपवासस्य नियमं कुर्यान्नक्तस्य वा पुनः । शङ्खप्रवरामादाय हेमयुक्तं जलैर्भृतम् ।।३०
द्वादशाक्षरमन्त्रेण तज्जलं चाभिमन्त्रयेत् । पिबेत्तोऽयं गृहे गत्वा हरिरित्यक्षरं जपेत् ।।३१

अगम्यागमन, मांसभोजी, वृषली पति कुण्ड के अग्नि से भोजन का बनाने, भूमिहरण, आदि महापातकों से प्राणी मुक्त होता है ! इस उत्तम व्रत का विधान स्त्री पुरुष सभी को सप्रेम सुसम्पन्न करना चाहिए। अतः इस का विधान मैं तुम्हें बता रहा हूँ सावधान होकर सुनो ! देवि ! त्रैलोक्यप्रख्यात काञ्चनी पुरी नामक व्रत को भक्ति पूर्वक सविधान पूरा करने वाले स्त्री पुरुष को पुत्र पौत्र एवं धन की प्राप्ति होती है। सुन्दरि ! उसी मास में काञ्चनपुरी का दान और व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए। महाभागे ! शुक्ल, कृष्ण की तृतीया, एकादशी, पूर्णिमा, संक्रान्ति दिन, अमावस्या, अष्टमी और पर्व तिथियाँ के दिन, पूर्वाह्ण के समय किसी नदी आदि में विमल जल में स्नान और निम्नलिखित मंत्र द्वारा मृत्तिका का लेप सर्वाङ्ग में करे—बाराह रूपधारी विष्णु ने पूर्वकाल में लोकोपकारार्थ तुम्हारा उद्धार किया है और वंदना करने मात्र से तुम सदैव कामनाएँ सिद्ध करती हो इसीलिए मैं तुम्हारी वंदना करता हूँ, मेरे अनेक जन्मों के पाप का अपहरण करो।१४-२६। भगवान् विष्णु ने विश्व योनि (कारण) रूप में जल का स्वयं निर्माण किया है इस समय तीर्थ समेत आप का सन्निधान मुझे प्राप्त हो। (जलमंत्र) इस विधान से स्नान कर शुद्धात्मा यजमान अपने गृह पहुँच कर किसी चुगुलखोर, पाखण्डी, कर्मच्युत, धूर्त, कितव, शठ आदि दुराचारियों से किसी प्रकार की बातचीत न करे अपने कर चरण का प्रक्षालन करे। आचमन के उपरांत उपवास नियम या नक्त नियम का पालन करते हुए सुवर्ण युक्त किसी शंख प्रवर में जल रखकर उसे द्वादशाक्षर मंत्र द्वारा अभिमंत्रित करे और उसके पान करने के अनन्तर भगवान् के हरि नाम का जप करे।२७-३१। चार हाथ की

शमीवृक्षमया वेदी चतुःस्तम्भसमन्विता । चतुर्हस्तप्रमाणेन कार्य्या चैव सुशोभना ।।३२
वस्त्रेणावेष्टिताः स्तम्भावितानवरमण्डिताः । पुष्पमालान्विताः कार्या दिव्यधूपाधिवासिताः ।।३३
मध्ये तु मण्डलं कार्यं पद्माख्यं वर्णकैः शुभैः । येन दृष्टेन देवेशि सर्वपापक्षयो भवेत् ।।
मण्डलस्य तु मध्ये वै भद्रपीठं सुशोभनम् ।।३४
आसनं तत्र विन्यस्य कोमलं वस्त्रवेष्टितम् ! तस्योपरि न्यसेद्देवं लक्ष्म्या युक्तं जनार्दनम् ।।३५
अग्रे तु कलशः कार्यो जलपूर्णः सुशोभनः । क्षीरसागरनामा स कल्पितव्यः प्रयत्नतः ।।३६
पञ्चरत्नसमायुक्तं वस्त्रेणावेष्टयेद्घनम् । कुम्भं प्रपूर्णमुदकैस्तस्योपरि न्यसेद्बुधः ।।३७
तस्योपरिष्टात्संस्थाय काञ्चनाख्यां पुरीं शुभाम् । चतुष्पला ह्युत्तमा स्याद् द्विपला मध्यमा स्मृता ।।३८
सामान्यैकपला कार्या कलशैस्तु समन्विता । मोदकान्स्थापयेद्दिव्यान्समन्तात्सुन्दरीकृतीन् ।।३९
तदग्रे कदलीस्तम्भैस्तोरणं परिकल्पयेत् । चातुश्चरणिकास्तत्र विप्रानावाह्य सुन्दरि ।।४०
प्रतिष्ठां कारयेत्तस्य वेदमन्त्रैः सुशोभनैः । तस्या मध्ये न्यसेद्विष्णुं हैमं लक्ष्म्या समन्वितम् ।।४१
नेत्रे रत्नमये कार्ये दशना वज्रभूषिताः । मुक्ताफलमयं तस्य भूषणं परिकल्पयेत् ।।४२
अङ्गं स्वर्णमयं कार्यं शङ्खचक्रगदायुधम् । पञ्चामृतेन देवेशं स्नाप्य नारायणं विभुम् ।।४३
तमेव गन्धपुष्पाद्यैर्मन्त्रमुच्चार्य पूजयेत् । ब्राह्मणान् वैदिकैर्मन्त्रैः पूजयेन्मधुसूदनम् ।।४४
शेषा वर्णाः पुराणोक्तैस्ताञ्छृणुष्व मम प्रिये । वासुदेवाय पादौ तु गुल्फौ संकर्षणाय च ।।४५
त्रैलोक्यजनकायेत जानुनी पूजयेद्धरेः । त्रैलोक्यनाथाय गुह्ये ज्ञानमयाय वै कटिम् ।।४६

सुन्दर वेदी का निर्माण कर, जो शमी वृक्षमय एवं चार स्तम्भों से युक्त हो। वस्त्रों से स्तम्भों को आवेष्टित करके परमोत्तम वितान (चँदोबा) और पुष्पमाला से भूषित करते हुए दिव्य धूप से अधिवासित करे। देवेशि मध्या भाग में शुभ (रंगों) से पद्म नामक मण्डल की रचना करनी चाहिए, जो दर्शन मात्र से पाप विनष्ट करता है। मण्डल के मध्य में एक सौन्दर्यपूर्ण भद्रपीठ (आसन) स्थापित कर उसके ऊपर कोमल वस्त्रवेष्टित एक आसन रखे और उस पर लक्ष्मी समेत जनार्दन भगवान् को सुशोभित करे। अजेय सम्मुख क्षीर सागर नामक एक सुन्दर जलपूर्ण कलश स्थापित कर उसे पञ्चरत्न, वस्त्र के वेष्टन से अलंकृत कर उसके ऊपर एक अन्य जलपूर्ण कलश रखे और उसी के ऊपर काञ्चन पुरी को स्थापित कर, जो सुवर्ण के चार पल की सर्वोत्त, दो पल की मध्यम, या एक बी की सामान्य रूप में बनी हो। उसके चारों ओर सुन्दर ढंग के बने हुए मोदकों को रखे और उसके सम्मुख कदली स्तम्भों द्वारा तोरण की कल्पना करे। सुन्दरि ! धर्म के सत्य आदि चार चरणों से युक्त ब्राह्मणों के आवाहन पूर्वक वेदमंत्रों के उच्चारण द्वारा वेदी पर उनकी प्रतिष्ठा करे। पुनः वेदी के मध्य भाग में लक्ष्मी समेत विष्णु की सुवर्ण प्रतिमा स्थापित करे, जिसके रत्नमय नेत्र, वज्रभूषित दाँत, मोतियों के आभूषण, शेष अंग स्वर्णमय एवं शंख, चक्र, गदा से विभूषित हों।३२-४२। देवेश एवं विभु नारायण को पञ्चामृत से स्नान वैदिकमंत्रोंच्चारण पूर्वक गंध पुष्प की पूजा अर्पित करें। प्रिये ! भगवान् मधुसूदन के शेष अंग पुराण के मंत्रों द्वारा पूजित करना चाहिए। 'वासुदेव को नमस्कार है' से चरण, 'संकर्षण को नमस्कार है, से गुल्फ (एड़ी), 'त्रैलोक्य जनक को नमस्कार है, जाननु (घुटने)' 'त्रैलोक्य नाथ को नमस्कार है' से गुह्य स्थान, 'ज्ञानमय को नमस्कार है, से कटि, 'दामोदर को नमस्कार है' से उदर 'विश्वरूपी को नमस्कार है' से

दामोदरायेत्युदरं हृदयं विश्वरूपिणे । नित्यं हि पूजयेद्देवि उरः श्रीवत्सधारिणे ॥४७
कण्ठं कौस्तुभनाथाय अस्यां यज्ञमुखाय च । दैत्यान्तकारिणे बाहू स्वैर्नामभिरायुधानि[1] च ॥४८
शिरः सर्वात्मने देवि देवदेवस्य पूजयेत् । श्रियं प्रपूजयेद्देवीं देव्या मन्त्रैः पृथग्विधैः ॥४९
इन्द्रादिलोकपालानां पूजा कार्या यथाक्रमम् । नवग्रहाणां होमश्च कर्तव्यो विघ्ननाशनः ॥५०
पूजा गणपतेः कार्या तथा होमो विधानतः । अग्रे नैवेद्यमतुलं दापयेद् घृतपाचितम् ॥५१
पायसं घृतपरांश्च मोदकान्पूरिकास्तथा । सोहालिकादिनैवेद्यं फेणिकाः शर्करास्तथा ॥५२
देशकालोद्भवान्येव फलानि विनिवेदयेत् । दीपान्दश दिशो दद्यात्पार्थिवान्रक्तवर्तिकान् ॥५३
एतेन तु विशालाक्षि मूलमन्त्रेण दापयेत् । पुष्पमालान्वितान्कृत्वा चन्दनेन विभूषितान् ॥५४
अभिमन्त्र्य प्रयत्नेन विष्णुस्तवकवाचकैः । सहस्रशीर्षादिभिर्मन्त्रैर्जपद्भिर्ब्राह्मणोत्तमैः ॥५५
षोडशाथ सपत्नीकान्पूजयेच्च यथाविधि । भूषयेच्च शुभैर्वस्त्रैस्तथालङ्करणादिभिः ॥५६
विष्णुं मत्वा द्विजः पूज्यो लक्ष्मीं मत्वा च ब्राह्मणीम् । छत्रं चोपानहौ चैव अङ्गुल्याभरणं तथा ॥५७
फलानि सप्त धान्यानि भोजनं च यदीप्सितम् । दातव्यं च सभार्याय कृष्णो मे प्रीयतामिति ॥५८
शय्यां सोपस्करां चैव वस्त्रेणाच्छाद्य यत्नतः । तथा प्रकल्पयेद्वित्तशक्त्या च सुन्दरी यथा ॥५९
व्रते पूर्णे च गोर्देया सर्वोपस्करसंयुता । पुरीं घटापयेत्पूर्वं वस्त्रेणाच्छाद्य यत्नतः ॥
यथा कुर्यात्प्रयासेन यथा कर्ता न पश्यति ॥६०
दीपांस्तु दीपितांस्तत्र आनयेद्यज्ञमण्डपम् । श्वेतवस्त्रेण नेत्रे तु यजमानस्य च प्रिये ॥६१
श्रुतवाञ्छास्त्रवित्प्राज्ञः कृतसर्वाघसंक्षयः । आबध्य नेत्रे सुप्राज्ञे आचार्यस्तमिदं वदेत् ॥६२

हृदय' की वत्सधारी को नमस्कार है, से उनके उर की पूजा करनी चाहिए। देवि ! कौस्तुभनाथ को नमस्कार है' से उनके कंठ' 'यज्ञमुख को नमस्कार है' से मुख' 'दैत्यानाशक को नमस्कार है' से भुजाएँ, 'आयुधों के नामोच्चारण पूर्वक आयुधों की पूजा करनी चाहिए। देवि ! 'सर्वात्मा को नमस्कार है' से उनके शिर की पूजा और देवी (लक्ष्मी) के पृथक् पृथक् मंत्रों द्वारा उनकी अर्चना करे। उसी भाँति क्रमशः इन्द्र आदि लोकपालों की पूजा, नवग्रहों का हवन और विघ्न विनाशार्थ गणपति की सविधान अर्चा अवश्य करनी चाहिए।४३-५१। अनन्तर उनके सोहाल, पेडा, बर्फी, सामयिक फल, रक्तवर्ण की पत्तियों से भूषित मृत्तिका के दश दीपक अर्पित करे। विशालाक्ष ! मूल मंत्र द्वारा पुष्प माले अर्पित करते हुए उन्हें चन्दन भूषित करें। पश्चात् स्तुति पाठ करने वाले ब्राह्मणों द्वारा ब्राह्मण पूजनोपरांत 'सहस्रशीर्ष' आदि मंत्रों से (विष्णु की) आराधना होनी चाहिए। यथा विधान सोलह सपत्नियों को अर्चना के उपरांत वस्त्र अलंकार आदि से भूषित करें। विष्णु की भावना से ब्राह्मण और लक्ष्मी भावना से ब्राह्मणी को पूजित करके छत्र, उपानह, अंगूठी, फल, सप्तधान्य, यथेच्छ भोजन अर्पित करते हुए 'कृष्ण मुझ पर प्रसन्न हों' कहें। सुन्दरि ! सुसज्जित शय्या का दान कर व्रत की समाप्ति में उपस्कर समेत गोदान अवश्यक करना चाहिए। (काञ्चनपुरी) को वस्त्रों से इस भाँति आच्छादित करे, जिससे कर्ता उसे देख न सके।५२-६०। प्रिये ! प्रज्वलित दीपक मण्डप में लाकर शास्त्रवेत्ता आचार्य श्वेत वस्त्र से यजमान के नेत्र आवृत्त कर

---

१. आर्षमेतत् ।

सर्वकामप्रदां पश्य काञ्चनाख्यां पुरीमिमाम् । दरवस्त्रयुतां रम्यां दुःखदौर्भाग्यनाशिनीम् ।।६३
एवमुक्तो महाभाग पटमुन्मुच्य नेत्रयोः । पुष्पाञ्जलिं गुरौ क्षिप्त्वा स पश्येत्तां पुरीं शुभाम् ।।६४
दृष्ट्वा तां नगरीं देवि यजमानः समाहितः । सौवर्णं पात्रमादाय रौप्यं ताम्रमथापि वा ।।६५
अथ वा शङ्खमादाय पात्रालाभे तु सुन्दरि । पञ्चरत्नं क्षिपेत्पात्रे जलं गाङ्गं तथा फलम् ।।६६
सिद्धार्थमक्षताः पूर्वं रोचना दधि वा पुनः । ततश्चार्घ्यं प्रदातव्यं कृष्णाय प्रभविष्णवे ।।६७
लक्ष्मीनारायणौ देवौ सर्वकामफलप्रदौ । रुक्मपुर्याः प्रदानेन यच्छेतां वांछितं मन ।।६८
नारायण हृषीकेश ज्ञानज्ञेय निरंजन । लक्ष्मीकान्त जगन्नाथ गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते ।।६९
(इत्यर्घ्यमन्त्रः)
एवमर्घ्यं ततो दत्त्वा विष्णवे प्रभविष्णवे । देव्यास्त्वर्घ्यं प्रदातव्यं भक्तियुक्तेन चेतसा ।।७०
जानुभ्यामवनिं गत्वा मन्त्रमेतमुदीरयेत् । ब्रह्मणा पूजिता देवी विष्णुना शङ्करेण च ।।७१
पार्वत्या पूजिता लक्ष्मीः स्कन्दवैश्रवणेन च । मया च पूजिता देवि धर्मस्य विजिगीषया ।।७२
सौभाग्यं देहि मे पुत्रान्धनं पौत्रान्श्च पूजितान् । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं देवि सौख्यं प्रयच्छ मे ।।७३
स एवं पुरतो दत्त्वा पूर्वोक्तविधिना तव । रात्रौ जागरणं कुर्याद्भक्तियुक्तेन चेतसा ।।७४
गीतनृत्यविनोदेन उपाख्यानैश्च वैष्णवैः । येन केन विनोदेन निद्रा नैव प्रजायते ।।७५
उन्निद्रो जागृयाद्यस्तु शतयज्ञफलं लभेत् । प्रभाते विमले स्नात्वा सम्पूज्य पितृदेवताः ।।७६

उससे कहलाये—समस्त कामनआओं को सफल करने वाली इस काञ्चनी पुरी को देखो जो सुन्दर वस्त्रों से भूषित, शय्या एवं दुःख दुर्भाग्य को विनष्ट करती है । महभाग ! ऐसा कहकर वस्त्र हटा लेने के अनन्तर यजमान गुरु चरण में पुष्पाञ्जलि अर्पित करते हुए उस शुभ काञ्चनपुरी का दर्शन करे । देवि ! समाहित मन से उस नगरी को देखने पर यजमान सुवर्ण, चाँदी, ताँबें, शंख अथवा किसी अन्य पात्र में गङ्गा जल डालकर पञ्चरत्न डाले । पुनः उसके समेत फल, राई, अक्षत, गोरोचन, और दही मिश्रित अर्घ्य प्रभावशाली भगवान् कृष्ण को अर्पित करते हुए— लक्ष्मीनारायणदेव समस्त कामनाओं को सफल करते हैं, अहा इस काञ्चनपुरी के प्रदान करने के नाते मेरे मनोरथ सफल करें । नारायण, हृषीकेश, ज्ञानज्ञेय, निरञ्जन, लक्ष्मीकान्त, एवं जगन्नाथ, मेरे इस अर्घ्य को स्वीकार करे ।६१-६९। मैं उन्हें नमस्कार कर रहा हूँ । इस प्रकार उत्पन्न होने वाले विष्णु को अर्घ्य अर्पित कर सावधान मन से भक्तिपूर्वक श्री लक्ष्मी के निमित्त अर्घ्य प्रदान करें । घुटने के बल पृथिवी में बैठकर मंत्रोच्चारण करे—देवी की पूजा ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव ने की है, पार्वती स्कन्द और वैश्रावण (कुबेर) ने की है उस भाँति धार्मिक भावना से मैंने आप की पूजा की है । मुझे सौमाग्य समेत पुत्र, धन और उत्तम पौत्र प्रदान करने की कृपा करें। देवि ! मेरे द्वारा दिये गये अर्घ्य दान स्वीकार कर मुझे सौख्य प्रदान करें। इस प्रकार पूर्वोक्त विधान द्वारा तुम्हारे सम्मुख अर्घ्य अर्पित कर भक्तिश्रद्धा समेत गीत, नृत्य, या वैष्णव उपाख्यान द्वारा रात्रि जागरण करे। अथवा जिस किसी भाँति उस दिन जागरण करता है रहे, निद्रारत न होने पाये ।७०-७५। क्योंकि विनिद्र जागरण करने से यज्ञफल की प्राप्ति होती है। पुनः विमल प्रातःकाल पितृदेव पूजन के उपरांत सपत्नीक ब्राह्मणों को सुसज्जित कर भोजन से तृप्त करे और

ब्राह्मणांश्च सपत्नीकान्परिधाप्यनुभोजयेत् । दक्षिणाश्च यथाशक्त्या प्रदाय च क्षमापयेत् ।।७७
दीनान्धबधिरान्पङ्गून्सर्वांस्तान्परितोषयेत् । पश्चात्पारणकं कार्यमुपवासी भवेद्यदि ।।७८
मधुरं पयसा युक्तं सुहृद्भिर्बान्धवैः सह । एवमेतद्व्रतं कार्यमेकादश्यां शुचिस्मिते ।।७९
शुक्लायामथ कृष्णायां तृतीयायां तथा तिथौ । संक्रान्तिवासरे वापि व्यतीपाते च वैधृतौ ।।८०
यदा वा जायते वित्तं चित्तं च वरवर्णिनी । गौरानीय प्रदातव्या कृष्णो मे प्रीयतामिति ।।८१
एवं कृते च यत्पुण्यं तन्न शक्यं निवेदितुम् । अपि वर्षसहस्रेण कुललक्षशतैरपि ।।८२
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च । ब्रह्मलोकं समासाद्य ब्रह्मणा प्रतिमोद्यते ।।८३
ब्रह्मलोकाद्रुद्रलोकं तत्परं विष्णुसंनिधौ । इन्द्रादिलोकपालानां व्रती लोकमवाप्नुयात् ।।८४
ततो भुक्त्वा शुचिः श्रीमान्भोगान्स्त्रैलोक्यसुन्दरि । चक्रवर्ती भवेद्भूमौ ब्रह्मण्यो वैष्णवस्तथा ।।८५
य इदं शृणुयान्नित्यं वाच्यमानं समन्ततः । कुलसप्तकमुद्धृत्य वैष्णवं लोकमाप्नुयात् ।।८६
त्वयाकाञ्चनपुर्याख्यं व्रतमेतत्कृतं पुरा । तेन पुण्येन लब्धोऽहं भर्ता त्रैलोक्यपूजितः ।।८७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीलक्ष्मीविष्णुसंवादे
काञ्चनपुरीव्रतवर्णनं नामसप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४७

यथाशक्ति दक्षिणा से सन्तुष्ट करते हुए क्षमा याचना करे—दीनों, अन्धों, बधिरों, एवं पंगु आदि को सन्तुष्ट कर उपवासी यदि हो तो पारण करे—मित्रो, बान्धवों समेत मधुर पायस युक्त भोजन करे । हे शुचिस्मिते ! एकादशी तिथि के दिन यह व्रतानुष्ठान करना चाहिए अथवा शुक्ल कृष्ण की तृतीया, संक्रान्ति वासर, व्यतीपात, वैधृति योग अथवा जिस दिन चित्त एवं वित्त पूर्ण हो । वरवर्णिनि ! गाय प्रदान करते समय 'कृष्ण मेरे उपर प्रसन्न हों, कहे । इस प्रकार इसे सुसम्पन्न करने पर जितने पुण्य की प्राप्ति होती, वर्णन करना असम्भव है । सहस्रों वर्षों तक उसकी सैकड़ों लाखों पीढियाँ कोटि सहस्र एवं कोटि शत कल्प तक ब्रह्मलोक में ब्रह्म के साथ आमोद प्रमोद करती है । पुनः ब्रह्मलोक से रुद्र लोक उससे विष्णु लोक और इन्द्रादि लोकपालों के लोक की प्राप्ति उसे होती है । त्रैलोक्यसुन्दरि ! वह पूतात्मा एवं श्रीमान् प्राणी अतुल भोगों के उपभोग करने के अनन्तर इस भूतल में ब्रह्मण्य, एवं वैष्णव चक्रवर्ती राजा होता है । इसके आख्यान सुनने वाले भी अपने सात कुलों के उद्धार पूर्वक वैष्णव लोक प्राप्त करते हैं । तुमने भी पूर्वकाल में इस काञ्चन व्रत को सुसम्पन्न किया है, जिससे तुम्हें त्रैलोक्यपूजित मैं धर्तारूप में प्राप्त हुआ है ।७६-८७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में विष्णुलक्ष्मी के सम्वाद में
काञ्चनपुरी व्रत वर्णन नामन एक सौ सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।१४७।

अथाष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कन्याप्रदानवर्णनम् (अथ कन्यादानम्)

श्रीकृष्ण उवाच

ब्रह्मदेयां तु यः कन्यामलङ्कृत्य प्रयच्छति । सप्तपूर्वान्भविष्यांश्च स्वकुले सप्तमानवान् ।।१
तेन कन्याप्रदानेन स तारयत्संशयम् । लोकानाप्नोति च तथा दक्षस्यैव प्रजापतेः ।।२
प्राजापत्येन विधिना आत्मानं च समुद्धरेत् । महत्पुण्यमवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति ।।३
भूगवाश्वप्रदानानि गजदानं तथैव च । दत्त्वा तु वर्णहीनाय घोरे तमसि मज्जति ।।४
बहुवर्षसहस्राणि पुरीषं काकमश्नुते । शुल्केन दत्त्वा कन्यां च घोरं नरकमाप्नुयात् ।।५
बहून्यब्दसहस्राणि तथा अशुचिभुङ्गुरः । सवर्णां च सवर्णेभ्यो दद्यात्कन्यां यथाविधिः ।।६
दत्त्वा चाधिकवर्णाय द्विगुणं निर्गुणं तथा । द्विजपुत्रमनाथं वा संस्कुर्याद्यश्च कर्मभिः ।।७
चूडोपनयनाद्यैश्च सोऽश्वमेधफलं लभेत् । अनाथां कन्यकां दत्त्वा नाकलोके महीयते ।।८
कन्यया सह दत्तं च सुवर्णं वह्निमूलकम् । सकलं द्विगुणं तस्य फलमुक्तं पुरातनैः ।।९
कन्यादानादवाप्नोति दक्षलोकं नरोत्तम । विष्णुपूजासमं पुण्यं तत्कन्यापूजया भवेत् ।।१०

विमानमाहृत्य मनोभिरामं सुराङ्गनागीतविलासहृद्यम् ।
प्राप्नोति लोकं त्रिदशोत्तमानां कन्याप्रदानान्न विचारणेति ।।११

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कन्याप्रदानवर्णनं नामाष्टाचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४८

अध्याय १४८

कन्यादान का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—ब्राह्मण को देने योग्य कन्या अलंकृत कर दान करने वाले प्राणी अपने कुल के सात पीढ़ी पूर्व की और सात भविष्य की पीढ़ियों का उद्धार करता है। इसीलिए उसी कन्या दान के द्वारा उसे दक्ष प्रजापति के लोक प्राप्त होते हैं। प्राजापत्य विधान द्वारा दान करने पर अपने उद्धार समेत महान् पुण्य एवं स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है। पृथिवी, गौ, अश्व, एवं हाथी दान किसी वर्ण हीन को अर्पित करने पर घोरतम नरक प्राप्त होता है। कौवा होकर अनेक वर्षों तक पुरीष (मल) भोगी होता है। शुल्क लेकर कन्या दान से घोर नरक प्राप्त होता है और अनेक वर्षों तक अशुचि भोग भी होता है। इसलिए सविधान सवर्णा कन्या किसी सवर्ण अथवा ऊँचे कुल में सौंपना चाहिए। किसी अनाथ ब्राह्मण बालक का चूड़ा कर्म (मुण्डन) यज्ञोपवीत आदि संस्कार करने से अश्वमेध फल प्राप्त होता है, उसे अनाथ कन्या का दान करने स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है। कन्या दान समेत सुवर्ण दान करने से प्राचीनों ने दुगुने फल की प्राप्ति बताया है। नरोत्तम ! कन्या दान द्वारा उसे दक्ष स्वर्ग लोक प्राप्त होता है। कन्या की पूजा करने से विष्णु पूजा का फल प्राप्त होता है। कन्या प्रदान द्वारा एक मनोरम विमान में सुखासीन होकर, जो देवङ्गनाओं की गीतों से मुखरित रहता है उत्तम लोक की प्राप्ति होती है।१-११

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
कन्याप्रदान वर्णन नामक एक अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त।१४८।

अथैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्राह्मणशुश्रूषाविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

ब्राह्मणा दैवतं भूमौ ब्राह्मणा दिवि दैवतम् । ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति नास्ति भूतं जगत्त्रये ॥१
अदेवं दैवतं कुर्युः कुर्युर्देवमदैवतम् । ब्राह्मणा हि महाभागाः पूज्यन्ते सततं द्विजाः ॥२
ब्राह्मणेभ्यः समुत्पन्ना देवाः पूर्वमिति स्मृतिः । ब्राह्मणेभ्यो जगत्सर्वं तस्मात्पूज्यतमा द्विजाः ॥३
येषामश्नंति वक्त्रेण देवताः पितरस्तथा । ऋषयश्च तथा नागाः किं भूतमधिकन्ततः ॥४
यदैव मनुजो भक्त्या ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति । तदैवाप्नोति धर्मज्ञ बहुजन्मानि जन्मनि ॥५
तालवृन्तानिलेनैव श्रान्तसम्वाहनेन च । उत्सादनेन गात्राणां तथा व्यञ्जनकर्मणा ॥६
पादशौचप्रदानेन पादयोः सेचनेन च । परिचर्य यथा काममेकेनैव द्विजोत्तम ॥७
अनिष्ट्वापि समाप्नोति स्वर्गलोकं च शाश्वतम् । ब्राह्मणानां शुभं कृत्वा नाकलोके महीयते ॥८

यद्ब्राह्मणास्तुष्टिमन्तो वदन्ति प्रत्यक्षदेवेषु परोक्षदेवाः ।
तद्वै शुभं तस्य नरस्य नूनं भवेदतस्तान्सततं निषेवेत् ॥९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
ब्राह्मणशुश्रूषाविधिवर्णनं नामैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१४९।

अध्याय १४९

ब्राह्मण की सेवाविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—इस भूतल में ब्राह्मण ही देव और स्वर्ग के भी देव हैं क्योंकि इस तीनों जगत् में ब्राह्मणों से पृथक् अन्य कोई श्रेष्ठ वस्तु है ही नहीं। अदेव को देव, अदेव को बनाने में महाभाग (पुण्यात्मा) ब्राह्मण गण ही समर्थ होते हैं इसी लिए ब्राह्मण सतत पूजित होते हैं। स्मृतियों का कथन है कि ब्राह्मण द्वारा सर्वप्रथम देवों की सृष्टि हुई और अनन्तर सम्पूर्ण जगत् की। इसीलिए ब्राह्मण पूज्यतम बताये गये हैं। जिनके मुख द्वारा देवता, पितर, ऋषिगण एवं नागगण भोजन तृप्त होते हैं इससे अधिक क्या कहा जा सकता है। भक्ति पूर्वक मनुष्य जिस समय ब्राह्मण को देता है उसी समय उसे अनेक जन्म जन्मान्तरों के लिए प्राप्त हो जाता है।१-५। ब्राह्मण के पंखा झलने, चरण दाबने, शरीरांगों के क्रम दूर करने, भोजन, पाद प्रक्षालनार्थ जल दान अथवा पाद प्रक्षालन का अन्य कोई परिचर्या करने से चाहे एक ही ब्राह्मण हो, अनेक अनिष्ट रहते हुए भी उसे स्वर्ग लोक अवश्य प्राप्त होता है। ब्राह्मणों के निमित्त शुभ कर्म करने से स्वर्ग लोक में पूजित होता है क्योंकि ब्राह्मण प्रसन्न होने पर प्रत्यक्ष कहता है और देवगण परोक्ष में। उस समय उस मनुष्य के लिए जो कुछ शुभ वाणी कहता है, वह निश्चय सम्पन्न होती है, इसीलिए ब्राह्मण सेवा निरन्तर करनी चाहिए।६-९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
ब्राह्मणशुश्रूषाविधिवर्णन नामक एक उन्चासवाँ अध्याय समाप्त।१४९।

अथ पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः
वृषदानविधिवर्णनम्
श्रीकृष्ण उवाच

युष्मद्वाक्यामृतमिदं ह्यहं शृण्वञ्जनार्दन । न तृप्तिमधिगच्छामि जातं कौतूहलं हि मे ॥१
गोपतिः किल गोविन्दस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः । गोवृषस्य प्रदानेन त्रैलोक्यमभिनन्दति ॥२
तस्माद् गोवृषकल्पस्य विधानं कथयाच्युत ॥३

श्रीकृष्ण उवाच

वृषदानफलं पुण्यं शृणुष्व कथयामि ते । पवित्रं पावनं चैव सर्वदानोत्तमं तथा ॥४
दशधेनुसमोनड्वानेकश्चैव धुरंधरः । दशधेनुप्रदानाद्धि स एवैको विशिष्यते ॥५
वोढा च चारुपृष्ठाङ्गो ह्यरोगः पाण्डुनन्दन । युवा भद्रः सुशीलश्च सर्वदोषविवर्जितः ॥६
धुरन्धरः स्थापयते एक एवं कुलं महत् । त्राता भवति संसारान्नात्र कार्या विचारणा ॥७
अलंकृत्य वृषं शान्तं पुण्येह्नि समुपस्थिते । रौप्यालङ्गूलसंयुक्तं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥८
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र तं शृणुष्व वदामि ते । धर्मस्त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारक ॥९
अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः पाहि सनातन । दत्वैवं दक्षिणायुक्तं प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥१०
सप्तजन्मकृतं पापं वाङ्मनः कायकर्मजम् । तत्सर्वं विलयं याति गोदानसुकृतेन च ॥११

अध्याय १५०
वृषदानविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—जनार्दन! मैं आपकी अमृतवर्षा करने वाली वाणी सुनते ही मुझे तृप्ति नहीं हो रही है यह महान् कौतूहल हो रहा है। गोविन्द गोपालक हैं ऐसा तीनों लोकों में प्रख्यात है इसीलिए गो वृष के दान करने से त्रैलोक्य सुखी होता है। अच्युत! अतः गोवृष कल्प का विधान बताने की कृपा करें। १-३

श्रीकृष्ण बोले—वृषदान का पुण्य फल जो अत्यन्त पावन एवं सर्वोत्तम है, मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो! दश धेनु के समान एक धुरंधर वृष होता है। पाण्डुनन्दन! दशधेनु प्रदान करने की अपेक्षा एक वृष दान कहीं अधिक प्रशस्त कहा गया है। क्योंकि सुन्दर पृष्ठवाला, नीरोग वृष नहीं समर्थ वोढ़ा बताया गया है। युवा, भद्राकृति, सुशील और समस्त दोषहीन एक ही धुरंधर महान् कुल की स्थापना करता है एवं संसार में वही त्राता (रक्षक) होता इसमें संदेह नहीं। किसी पुण्य दिन शांत वृष को अलंकृत करके जिसे चाँदी के लांगुल (पूंछ) से भूषित किया गया हो, ब्राह्मण को अर्पित करे। राजेन्द्र! उस समय जिस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए मैं बता रहा हूँ, सुनो! धर्म! तुम वृष (वैल) रूप से सम्पूर्ण जगत् के आनन्दित करते हो। सनातन देव! तुम्हारा अधिष्ठान अष्टमूर्ति है, अतः मेरी रक्षा करो। इसे कहते हुए दक्षिणा समेत वृष उन्हें अर्पित करके नमस्कार पूर्वक विसर्जन करे। वाणी मन और शरीर जन्य सात जन्म के समस्त पातक गोदान करने से विलीन हो जाते हैं।४-११। वृष (बैल) जुते हुए देदीप्यमान एवं

यानं दृषभसंयुक्तं दीप्यमानं सुशोभितम् । आरुह्य कामगं दिव्यं स्वर्लोकमधिरोहति ।।१२
यावन्ति तस्य रोमाणि गोवृषस्य महीपते । तावद्वर्षसहस्राणि गवां लोके महीयते ।।१३
गोलोकादवतीर्णस्तु इहलोके द्विजोत्तमः । यज्ञयाजी महातेजाः सर्वब्राह्मणपूजितः ।।१४
तवोक्तं वै महाराज कस्य देयो वृषोत्तमः । तदप्यहं ते वक्ष्यामि पात्रं त्राणपदं नृणाम् ।।१५

येषां सदा वै श्रुतिपूर्णकर्णा जितेन्द्रियाः प्राणिवधे निवृत्ताः ।
प्रतिग्रहे संकुचिता गृहस्थास्ते ब्राह्मणास्तारयितुं समर्थाः ।।१६
गात्रे दृढं भारसहं सुपुष्टं सुशृङ्गिणं सर्वगुणोपपन्नम् ।
दत्त्वर्षभं गोदशकेन तुल्यं सत्यं भवन्ति भुवि तत्फलभागिनस्ते ।।१७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
वृषदानविधिवर्णनं नाम पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५०

अथैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

प्रत्यक्षधेनुदानव्रतविधिवर्णनम् (अथ विविधदानानि)

युधिष्ठिर उवाच

श्रुतः पुराणविषयस्त्वत्प्रसादान्मयाच्युत । संसारासारतां ज्ञात्वा श्रुतश्च व्रतविस्तरः ।।१
भूयश्च श्रोतुमिच्छामि दानमाहात्म्यमुत्तमम् । किं दीयते कदा कृष्ण केनोपायेन शंस मे ।।२

सुशोभित यान (बैलगाड़ी) पर बैठकर उसे दिव्य स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है । महीपते ! उसके शरीर में स्थित लोम संख्या के अनुसार उतने वर्ष गो लोक में वह पूजित होता है । पुनः गोलोक से इस धरातल पर श्रेष्ठब्राह्मण कुल में जन्म ग्रहण कर यज्ञयाजी, महातेजस्वी, समस्त ब्राह्मणों के पूज्य होता है । महाराज ! आप ने जो पूछा कि ऐसा परमोत्तम वृष दान रूप में किसे अर्पित किया जाय, मैं उसे बता रहा हूँ, जो उसका पात्र एवं मनुष्य मात्र का त्राता होता है । जिनके कर्ण विवर सदैव वेद शब्दों से पूर्ण हों, जितेन्द्रिय, हिंसवृत्ति रहित, प्रतिग्रह (दान) लेने में संकोच हो, वे ही गृहस्थ मानव उद्धार करने में समर्थ होते हैं शरीरदृढ़ भार वहन करने में क्षम, सुप्रष्ट, सुन्दर सींग, समस्त गुणों से युक्त वृष के जो दश गौ के समान होता है, दान करने वाले इस भूतल में उस फल के भागी होते हैं यह सत्य है ।१२-१७

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के संवाद में
वृषदान विधि वर्णन नामक एक सौ पचासवाँ अध्याय समाप्त ।१५०।

अध्याय १५१

प्रत्यक्षधेनुदानविधि का वर्णन (विविध-दान)

युधिष्ठिर बोले—अच्युत देव ! आपकी कृपा से मैंने इस संसार को असार जानते हुए पुराण विषयों को भली भाँति सुन लिया, जिसमें व्रतों की व्याख्या विस्तार रूप से की गयी है । कृष्ण ! किन्तु फिर भी मुझे दान माहात्म्य सुनने की विशेष इच्छा है—किस समय किस विधान द्वारा किसका दान करना चाहिए,

नहि दानात्परतरमन्यदस्तीति मे मतिः । धनं धनवतां किञ्चिदहार्यं राजतस्करैः ॥३

श्रीकृष्ण उवाच

अनिश्चितं निधानं यदप्रयुक्तं च वर्द्धते । अनीतं याति चाध्वानं धनं विप्रकरार्पितम् ॥४
किं कायेन सुपुष्टेन बलिना चिरजीविना । यन्नसत्त्वोपकाराय तज्जीवितमनर्थकम् ॥५
ग्रासादर्द्धमपि ग्रासमर्थिभ्यः किन्न दीयते । इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति ॥६
एकस्मिन्नप्यतिक्रान्ते दिने दानविवर्जिते । दस्युभिर्मुषितश्चैव दिवारात्रौ[1] च शोचति ॥७
यस्य त्रिवर्गशून्यानि[2] दिनान्यायान्ति यान्ति च । सलोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ॥८
यैर्नदत्तं न च हुतं न तीर्थे मरणं कृतम् । हिरण्यमन्नमुदकं ब्राह्मणेभ्यो न चार्पितम् ॥९
दीना निरशन रूक्षाः कपालाङ्कितपाणयः । ते दृश्यन्ते महाराज जायमानाः पुनः पुनः ॥१०
आयासशतलब्धस्य प्राणेभ्योऽपि गरीयसः । गतिरेकैव वित्तस्य दानमन्या विपत्तयः ॥११
नोपभोगैः क्षयं यान्ति न प्रदानैः समृद्धयः । पूर्वार्जितानामन्यत्र[3] सुकृतानां परिक्षयात् ॥१२
अदृष्टपरतत्त्वोऽपि पात्रेभ्यो विसृज्येद्धनम् । यस्मान्मृतस्य तन्नास्ति तस्मात्सांशयिकं वरम् ॥१३

बताने की कृपा करें। क्योंकि सम्मति से दान से उत्तम कोई पुण्य वस्तु नहीं है, धनवानों के ऐसे धन का चोर कभी अपहरण नहीं कर सकता।१-३

श्रीकृष्ण बोले—ब्राह्मणों के हांथ अर्पित किया हुआ धन एक अनिश्चित निधान होता है जिसका कोई अनुमान नहीं किया जा सकता क्योंकि वह अप्रयुक्त हीं बढ़ता रहता है, और (परलोक) मार्ग में यथावसर प्राप्त होता है। अत्यन्त पुष्ट शरीर वाले बली एवं चिरजीवी उस प्राणी का जन्म व्यर्थ है जिसने किसी प्राणी का उपकार नहीं किया। (समय पर) एक ग्रास मात्र या उसका अर्धभाग ही याचक को क्यों न दिया जाय जब कि इच्छानुरूप समृद्धि किसी के कभी हुई ही नहीं। किसी दिन के दान करने से खाली निकलने पर (संयोगवश) उस दिन चोर द्वारा उस धन अपहृत हो जाने पर प्राणी उसके लिए दिन रात शोक करता रहता है। जिस प्राणी के तीनों वर्ग (धर्म, अर्थ, काम) से विहीन दिन आते जाते (व्यर्थ निकलते) रहते हैं, लोहार की भट्टी की भाँति वह श्वास लेने पर भी जीवित नहीं कहा जाता है। जिसने दान नहीं दिया, न यज्ञ किया, न तीर्थ में प्राणोत्सर्ग किया और न ब्राह्मणों को हिरण्य एवं अन्न जल (भोजन) ही अर्पित किया, केवल दीन हीन स्वभाव एवं भूखे रहकर रूखा वेष किये हाथ में कपाल लिये अपने दिन व्यतीत किये प्राणी एसे ही बार-बार जन्मग्रहण करते देखे गये हैं। महाराज ! सैकड़ों बार के प्रयत्न एवं परिश्रम से प्राप्त होने के नाते प्राण से भी अधिक प्रिय उस धन की केवल दान करना ही एक गति है और अन्य विपत्ति रूप बताये गये हैं। उपभोग और दान करने से पुण्यात्माओं की पूर्व जन्मार्जित सम्पत्ति कभी क्षीण नहीं होती है, यद्यपि अन्यत्र उपयोग करने से उसका नष्ट होना बताया गया है। प्राणी के निधन होने पर वह धन उसका नहीं रह जाता है, अतः सौभाग्यवश (प्राणी को अपने जीवित काल में ही) अपना वह धन किसी सुपात्र को अर्पित (दान) कर देना चाहिए। अनघ ! यद्यपि

---

१. युक्तमाक्रन्दितुं चिरम्। २. त्रिवर्गशून्यस्य। ३. धनस्योत्पत्तिकरणे।

दानानि[1] बहुरूपाणि कथयाम तवानघ । व्यासवाल्मीकिमन्वाद्यैः कथितानि पुरा मम ॥१४
किञ्चिद्व्रतं[2] यत्क्रियते पूज्यते च त्रिलोचनः । दीयते यच्च विप्रेभ्य एतज्जन्मतरोः फलम् ॥१५

युधिष्ठिर उवाच

ब्राह्मणप्रीणनार्थाय केशवस्य शिवस्य च । यानि दानानि देयानि तान्वचक्ष्व यदूत्तम ॥१६
येन चैव विधानेन दानं पुण्यसुखावहम्[3] । ऐहिकामुष्मिकावाप्तिं करोति नहि हन्यते ॥१७

श्रीकृष्ण उवाच

त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती । आसप्तमं पुनन्त्येते दोहवाहनवेदनैः ॥१८
गोदानमादौ वक्ष्यामि प्रत्यक्षक्रमयोगतः । येन[4] चैव विधानेन अन्यूनाधिकविस्तरम् ॥१९

युधिष्ठिर उवाच

देयाः किंलक्षणा गावः काश्च राजन्विवर्जिताः । कीदृशाय प्रदातव्या न देयाः कीदृशाय वै ॥२०

श्रीकृष्ण उवाच

तरुणी रूपसपन्ना सुशीला च पयस्विनी । न्यायार्जिता सवत्सा च प्रदेया श्रोत्रियाय गौः ॥२१
वृद्धा सरोगा हीनाङ्गी वन्ध्या दुष्टा मृतप्रजा । दूरस्थाऽन्यायलब्धा च देया गौर्न कथञ्चन ॥२२

दान का अनेक रूप बताया गया है, तथापि व्यास, वाल्मीक, एवं मनु आदि ने (इसके विषय में) मुझसे जो कुछ कहा है, मैं वहीं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ! मनुष्य जो कोई व्रत त्रिलोचन शंकर की आराधना तथा ब्राह्मणों को दान रूप में जो कुछ अर्पित करता है वहीं उस जन्म रूपी वृक्ष का फल कहा गया है ।४-१५

युधिष्ठिर बोले—यदूत्तम ! केशव, शिव और ब्राह्मण के प्रसन्नार्थ देने योग्य दान मुझे बताने की कृपा करें और जिस विधान द्वारा वह दान पुण्य रूप एवं सुखावह हो—लोक परलोक की प्राप्ति करा सके न कि हनन अतः वह विधान भी मुझे बतायें ।१६-१७

श्रीकृष्ण बोले—गौ, पृथ्वी और सरस्वती का दान अतिदान कहा गया है, (प्रतिग्रहीता) के गौ दुहने पृथ्वी जोतने और सरस्वती (विद्या) के ज्ञान होने पर ये सभी (दान) उसके दान को सात पीढ़ी का उद्धार करते हैं । अतः प्रत्यक्ष क्रमानुसार मैं तुम्हें गोदान और न्यूनाधिक विस्तार न होने वाला विधान भी बता रहा हूँ ।१८-१९

युधिष्ठिर बोले—राजन् ! किस प्रकार की गौ का दान करना चाहिए उसे किन-किन लक्षणों से भूषित होने चाहिए और किन लक्षणों से रहित । ऐसी गौ किस प्रकार के पुरुष को अर्पित करनी चाहिए तथा किसे नही ?।२०

श्रीकृष्ण बोले—तरुणी, रूपवती, सुशीला, पयस्विनी (धेनु) और न्यायोपार्जित हो, ऐसी सवत्सरनी चाहिए । उसी प्रकार वृद्धा, रोगयुक्ता, अंगहीना, वंध्या, दुष्टा, मृत वत्सा (जिसके बच्चे मर जाते हैं), दूर रहने वाली और अन्याय द्वारा प्राप्त गौ का दान कभी भी न करना चाहिए । पूर्वोक्त लक्षण

---

१. दानमेव प्रकर्त्तव्यम् । २. हुतम् । ३. पुन्सः । ४. तेन ।

सा दत्तैव हरेत्पापं श्रोत्रियायाहिताग्नये । अतिथिप्रियाय दान्ताय धेनुं दद्याद्गुणाधिके ।।२३
अकुलीनाय मूर्खाय लुब्धाय पिशुनाय च । हव्यकव्यव्यपेताय न देया गौः कथञ्चन ।।२४

श्रीकृष्ण उवाच

पुण्यं दिनमथासाद्य स्नात्वातर्प्य पितॄंस्तथा । घृतक्षीराभिषेकं च कृत्वा विष्णोः शिवस्य च ।।२५
समभ्यर्च्य यथान्यायं पुष्पादिभिरनुक्रमात् । उदङ्मुखीं प्राङ्मुखीं वा गृष्टिं कृत्वा पयस्विनीम् ।।२६
सवत्सां वस्त्रसम्वीतां सितयज्ञोपवीतिनीम् । स्वर्णभृङ्गीं रौप्यखुरां कांस्यदोहनकान्विताम् ।।२७
शक्तितो दक्षिणायुक्तां ब्राह्मणाय निवेदयेत् । पुच्छे कृष्णाजिनं देयं गां पुच्छे करिणं करे ।।२८
अश्वं सदा सुकर्णे वा दासीं शिरसि दापयेत् । गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।।२९
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् । प्रदक्षिणां ततः कृत्वा धेनुं द्विजवराय ताम् ।।३०
इमां च प्रतिगृह्णीष्व धेनुर्दत्ता मया तव । एवमुच्चार्य तं विप्रं देवेशं परिकल्पयेत् ।।३१
अनुव्रजेच्च गच्छन्तं पदान्यष्टौ नराधिप । अनेन विधिना धेनुं यो विप्राय प्रयच्छति ।।३२
सर्वकामसमृद्धात्मा स्वर्गलोकं स गच्छति । सप्त पूर्वान्सप्त परानात्मानं चैव मानवः ।।३३
सप्त जन्मकृतात्पापान्मोचयत्यवनीपते । पदे पदेऽश्वमेधस्य गोशतस्य च मानवः ।।३४
फलमाप्नोति राजेन्द्र दक्षायैवं जगौहरिः । सर्वकामप्रदा सा स्यात्सर्वकालेषु पार्थिव ।।३५

सम्पन्न गौ श्रोत्रिय आदिताग्नि ब्राह्मण को अर्पित करनेपर वह समस्त पापों का नाश करती है । क्योंकि अतिथि प्रिय, शुद्ध एवं गुणाधिक्य ब्राह्मण को धेनु दान अर्पित करना चाहिए । कुलहीन, मूर्ख, लोभी, पिशुन (चुगुलखोर) और हव्य कव्यहीन ब्राह्मण को कभी नहीं ।२१-२४

श्रीकृष्ण बोले—किसी पुण्य दिन स्नान पितर तर्पण के उपरान्त भगवान् विष्णु और शिव घृत पूर्ण क्षीर से अभिषेक और न्याय प्राप्त पुष्पादि द्वारा क्रमशः अर्चा करे । पश्चात् उत्तराभिमुख या पूर्वाभिमुख उस गौ को प्रतिष्ठित कर, जो गृष्टि (एक बार प्रसव की हुई), पयस्विनी (धेनु), सवत्सा, वस्त्राच्छन्ना । श्वेत यज्ञोपवीत से भूषित, सींगों में सुवर्ण, खुरों में चाँदी जड़ी हो, और कांसे की दोहनी से युक्त हो, यथाशक्ति दक्षिणा समेत ब्राह्मण को अर्पित करे । कृष्णमृग और गौ का दान पूँछ ग्रहण कर देना चाहिए । उसी भाँति हाथी के कर (सूंड), घोड़े का कान और दासी का शिर ग्रहण कर दान देना चाहिए । मेरे सम्मुखी पीठ की ओर एवं हृदय में गौएँ स्थित है अतः गौवों के मध्य में मैं निवास कर रहा हूँ । अनन्तर उस ब्राह्मण श्रेष्ठ तथा उस गौ की प्रदक्षिणा करके कहे कि मैंने यह गौ आप को अर्पित किया है अतः आप इसका ग्रहण करे—ऐसा कहकर इस विप्र और देवेश (विष्णु) को अर्पित करे ।२५-३१। नराधिप ! विदा के समय आठ पग उनके पीछे चलना चाहिए । इस विधान द्वारा जो मनुष्य धेनु दान ब्राह्मण को सादर समर्पित करता है वह अपनी समस्त कामनाओं की सफलता पूर्वक समृद्धात्मा होकर स्वर्ग लोक की प्राप्ति करता है । अवनीपते ! वह मनुष्य अपनी सात पीढ़ी पूर्व तथा सात पीढ़ी पर (भविष्य) की के उद्धार पूर्वक अपने सात जन्मों के पाप विनष्ट करता है । राजेन्द्र ! उसे पग पग पर अश्वमेध और गोशत दान का फल प्राप्त होता है इसी प्रकार विष्णु ने दक्ष से बताया था । पार्थिव ! सभी

भवत्यसौ पापहरा यावदिंद्राश्चतुर्दश[१] । सर्वेषामेव पापानां कृतानामपि जानता ॥३६
प्रायश्चित्तमिदं प्रोक्तमनुतापोपबृंहितम् । सर्वेषामेव दानानामेकजन्मानुगं[२] फलम् ॥३७
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चान्यैश्च मानवैः । लोकाः कामगमाः[३] प्राप्त दत्त्वैतद्विधिना नृप ॥३८
गोभ्योधिकं जगति नापरमस्तिकिञ्चद्दानं[४] पवित्रमिति शास्त्रविदो वदन्ति ।
तत्सम्पदः सुरसदश्च समीहमानैर्देयाःसदैव विधिना द्विजपुङ्गवाय ॥३९
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
प्रत्यक्षधेनुदानव्रतविधिवर्णनं नामैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५१

अथ द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

धेनुदानव्रतविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि धेनूनां कल्पना नृप । विशेषविधिना याश्च देयाः कामानमीप्सुभिः ॥१
कामं यद्दीयते दानं समग्रं तत्सुखावहम् । असमग्रं तु दोषाय भवतीह परत्र च ॥२
तस्मान्न दक्षिणाहीनं विधानविकलं तथा । देयं दानं महाराज समग्रफलकाम्यया ॥३

समय यह गौ समस्त कामनाओं को सफल करती है । वह मानव भी चौदह इन्द्र के समय तक निष्पाप का यह ताप हीन प्रायश्चित बताया गया है । समस्त दानों में यह (गो दान इसलिए श्रेष्ठ है कि यह इसी जन्म में पल प्रदान करने लगता है । नृप ! इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र एवं अन्य मनुष्य भी इस विधान से (गोदान द्वारा) अपने लोक परलोक सुखप्रद बना सकते हैं । क्योंकि शास्त्रवेत्ताओं के कथनानुसार गोदान से श्रेष्ठ एवं पवित्र कोई, अन्य दान नहीं है अतः देव सम्पत्ति के इच्छुकों को सविधान गोदान किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ को अवश्य अर्पित करना चाहिए ।३२-३९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवाद में
प्रत्यक्षधेनुदान व्रत विधान वर्णन नाम एक सौ इक्यावनाँ अध्याय समाप्त ।१५१।

अध्याय १५२

धेनुदानव्रतविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—नृप ! मैं तुम्हें धेनुकल्प और उसका विशेष विधान बता रहा हूँ, जिसके द्वारा कामनाओं को सफल करने वाले मनुष्य धेनुदान करते हैं। दक्षिणापूर्वक यथेच्छ दान करना पूर्णदान कहलाता है वही लोक परलोक में सुख प्रदान करता है और असम्पूर्ण (दक्षिणा हीन) दान लोक परलोक दोनों दूषित कर देता है।१-२। महाराज ! इसलिए दक्षिणा हीन दान, विधान को भंग कर देता है कभी न

---

१. जन्म चतुर्दश । २. देवानामेतज्जन्मांतरं फलम् । ३. कामदुघाः । ४. पुण्यम् ।

अन्यथा दीयमानं तदहंकाराय केवलम् । प्रत्यक्षं चार्थहानिः स्यान्न वा तत्फलदं भवेत् ॥४
तिलधेनुं प्रवक्ष्यामि शृणु पार्थिवसत्तम । वाराहेण पुरा प्रोक्तां महापातकनाशिनीम् ॥५
यां दत्त्वा ब्रह्महा गोघ्नः पितृहा गुरुतल्पगः । अगारदाही गरदः सर्वपापरतोऽपि[1] वा ॥६
महापातकयुक्तश्च संयुक्तश्चोपपातकैः । मुच्यते ह्यखिलः पापैः स्वर्गलोकं च[2] गच्छति ॥७
अनुलिप्ते महीपृष्ठे कृष्णाजिनसमावृते[3] । धेनुं तिलमयीं कृत्वा दर्भानास्तीर्य सर्वतः ॥८
तिलाः श्वेतास्तिलाः कृष्णास्तिला गोमूत्रवर्णकाः[4] । तिलानां च विचित्राणां धेनुं सर्वां च कारयेत् ॥९
द्रोणस्य वत्सकं कुर्याच्चतुराढकिकां च गाम् । स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां गन्धवर्णवतीं तथा ॥१०
कार्या शर्करया जिह्वा गुडेनास्यं च कम्बलः । इक्षुपादां ताम्रपृष्ठीं शुक्तिमुक्ताफलेक्षणाम्[5] ॥११
प्रशस्तपत्रश्रवणां फलदन्तवतीं शुभाम् । स्रग्दामपुच्छां कुर्वीत नवनीतस्तनान्विताम् ॥१२
सितवस्त्रशिरालम्बां सितसर्षपरोमिकाम् ॥ फलैर्मनोहरै रत्नैर्मणिमुक्ताफलान्विताम् ॥१३
ईदृक्संस्थानसम्पन्नां कृत्वा श्रद्धासमन्वितः । कांस्योपदोहनां दद्यात्पर्वकाले समागते ॥१४
या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या वै देवेष्ववस्थिता । धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥१५
ततः प्रदक्षिणां कृत्वा पूजयित्वा प्रणम्य च । सदक्षिणा मया तुभ्यं दत्तेत्युक्त्वा विसर्जयेत् ॥१६

करना चाहिए। समस्त फल की कामना से अवश्य सविधान दान करना चाहिए। अन्यथा वह दान केवल उसी अहंभाव की वृद्धि करता है क्योंकि प्रत्यक्ष में उससे अर्थ हानि होती है और उपरोक्त फल की प्राप्ति तो कभी नहीं। पार्थिवसत्तम ! मैं तुम्हें तिलधेनु का विधान बता रहा हूँ जिस महापातक नाशिनी (तिलधेनु) को पूर्वकाल में बाराह (भगवान्) ने बताया था तथा जिसके दान करने से ब्राह्मण, गौ और पिता आदि की हत्या करने वाले, गुरुपत्नीगामी, घर को जलाने वाले, विष देने वाले, समस्त पाप कर्म करने वाले, महापातक तथा उपपातक युक्त मनुष्य अपने समस्त पापों से मुक्त होकर स्वर्ग लोक पहुँच जाते हैं। सुनो ! गोबर से भूमि को लीप कर कृष्णमृगचर्म बिछाये और उस पर चारों ओर कुश रखकर तिलमयी धेनु की स्थापना करे—श्वेत, कृष्ण और गोमूत्र वर्ण के एवं जितने भी विचित्र वर्ण के तिल होते हैं उन सब भाँति के तिलों द्वारा धेनु गौ की कल्पना करनी चाहिए।३-९। एक द्रोण परिमाण तिल द्वारा वत्स (उसके बच्चे) का और चार आढक तिल की गौ निर्मित होनी चाहिए जिसके सींग में सुवर्ण, खुरों में चाँदी, गंधवर्ण, शक्कर की जिह्वा, शूद्र से मुख और कम्बल (गले के नीचे लटकने वाला मांस), ऊख के चरण, ताँबे की पीठ, सुतुही या मोती की आँखे प्रशस्त पत्र के कान और फलों से शुभ दाँत बने हों। उसी प्रकार माला की पूँछ, नवनीत (मक्खन) का स्तन, श्वेत वस्त्र का शिर, श्वेत राई के लोम बनाये। इस भाँति मनोहर फलों, अन्न एवं मोतियों और मणियों से शेष अंग अलंकृत उस धेनु का श्रद्धा सम्पन्न होकर कांसे की दोहनी समेत किसी पुण्य समय पर दान करें। जो लक्ष्मी समस्त भूतों की है और समस्त देवों में अवस्थित है वही देवी इस धेनुरूप से मेरे पापों को विनष्ट करे—उस समय ऐसा कहकर प्रदक्षिणा पूर्वक पूजा और प्रणाम करे। अनन्तर 'दक्षिणा समेत यह धेनु, मैंने तुम्हें दिया, ऐसा कहकर उसका विसर्जन

---

१. सर्वपापकरोऽपि वा । २. सः । ३. वस्त्राजिनसमावृत्ते । ४. गोमूत्रसंभवाः । ५. शुचिमुक्ताफलेक्षणाम्।

अनेन विधिना दत्त्वा तिलधेनुं नराधिप । सर्वपापविनिर्मुक्तो परं ब्रह्माधिगच्छति ।।१७
यश्च गृह्णाति विधिवद्दीयमानां प्रमोदते । दीयमानां प्रशंसन्ति ये च संहृष्टमानसाः ।।१८
तेऽपि दोषविनिर्मुक्ता ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते । प्रशान्ताय सुशीलाय वेदव्रतरताय च[१] ।।१९
धेनुं तिलमयीं दत्त्वा न शोचति कृताकृते । त्रिरात्रं यस्तिलाहारस्तिलधेनुप्रदो भवेत् ।।२०
एकाहमथ वा राजन्न युच्छेदन्तरात्मना[२] । दानाद्विशुद्धिः पापस्य तस्य पुण्यवतो नृप ।।२१
चान्द्रायणादभ्यधिकं कथितं तिलभक्षणम् । बालत्वे चैव यत्पापं यौवने वार्द्धके तथा ।।२२
वाचा कृतं तु मनसा कर्मणा यच्च संचितम् । उदकष्ठीवने चैव नग्नस्नानेन यद्भवेत् ।।२३
मुशलेनोद्यते नापि लम्बिते ब्राह्मणे तथा । वृषलीगमने चैव गुरुदाराभिगामिनि ।।२४
सुरापानेन यत्पापमभक्ष्यस्य च भक्षणात् । तत्सर्वं विलयं याति तिलधेनुप्रदायिनाम् ।।२५
यममार्गे महाघोरे नदी वैतरणी स्मृता । बालुकायाः स्थलं चैव पच्यन्ते यत्र पापिनः ।।२६
यत्र लोहमुखाः काका यत्र श्वानो भयावहाः । निकृत्य पापिनां मांसं भक्षयन्ति बुभुक्षिताः ।।२७
असिपत्रवनं चैव लोहकण्टकशाल्मलीम् । एतान्सर्वानतिक्रम्य ततो यमपुरं व्रजेत् ।।२८
विमाने काञ्चने दिव्ये मणिरत्नविभूषिते । तत्रारुह्य नरश्रेष्ठो गच्छते परमाङ्गतिम् ।।२९
गुणहीने न दातव्या न दातव्या धनेश्वरे । कुण्डे गोले च लुब्धे च न च देया कदापि सा ।।३०

करे ।१०-१६। नराधिप ! इस विद्वान द्वारा जो तिलधेनु का दान करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर परब्रह्म की प्राप्ति करता है । सविधान अर्पित की हुई उस तिल धेनु का प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करने वाला मुक्त कण्ठ से उसकी प्रशंसा करने वाला ये दोनों भी दोषमुक्त होकर परब्रह्म की प्राप्ति करते हैं। किसी प्रशांत सुशील, वेदवती एवं वेदानुरागी ब्राह्मण को उपरोक्त तिलमयी धेनु अर्पित करने पर दाता को अपने कर्तव्य पर किसी प्रकार शोक नहीं होता है । राजन् ! तीन अथवा एक ही अहोरात्र प्रमादहीन तिलाहार करने पर उसे तिलधेनु के दान का फल प्राप्त होता है । नृप ! दान करने से शरीर की शुद्धि हो जाती है इसलिए इस (तिल भक्षण करने वाले) उस पुण्यात्मा का तिल भक्षण करना चान्द्रायण व्रत से अधिक पुण्य प्रद होता है। तिलधेनु के दान करने वाला भी शिशु अवस्था युवावस्था एवं वृद्धावस्था के कायिक, वाचिक तथा मानसिक समस्त सञ्चित पाप, जल में थूकने, नग्न स्नान करने, किसी ब्राह्मण के ऊपर मुशल प्रहार करने के लिए उद्यत होने, वृषली (शूद्रा) गमन, गुरुपत्नी गमन करने, सुरापान, और अभक्ष्य के भक्षण करने के समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं ।१७-२५। इस महाघोर यम के मार्ग में जहाँ वैतरणी नदी और तप्त बालू का स्थान जिसमें पापी लोग पकते रहते हैं तथा जहाँ लोह मुख वाले कौवे एवं भीषण कुत्ते हैं जो अत्यन्त बुभुक्षित होकर पापियों के मांस नोच नोचकर खाते रहते हैं । उसी प्रकार वहाँ असिपत्र (तलवार के समान पत्ते वाले) वन और लोहे की कील के समान सेमर का वृक्ष है (तिल धेनु प्रदाता) इन सभी दुर्गम कर्मों को पार कर यमपुरी में पहुँचता है।२६-२८। पश्चात् मणिस्थल भूषित दिव्य सुवर्ण विमान पर प्रतिष्ठित होकर वह नरश्रेष्ठ उत्तम गति प्राप्त करता है। ऐसी धेनु का दान किसी गुण हीन व्यक्ति अथवा धनवान् या कुण्ड गोल और

---

१. अशेषशोक निर्मुक्ताः प्रयान्ति परमां गतिम् । २. वेदव्रतधराय च । ३. न युच्छेन्न प्रमाददित्यर्थः 'युच्छ' प्रमादे धातुः ।

एका एकस्य दातव्या मुनिभिः कथितं पुरा । अरण्ये नैमिषे पार्थ नारदेन निवेदितम् ॥३१
ततेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि सम्यक्फलसहस्रदम् । इदं पुण्यं पवित्रं च माङ्गल्यं कीर्तिवर्धनम् ॥३२
विप्राणां श्रावयेच्छ्राद्धे अनन्तफलमश्नुते । बहुभ्यो न प्रदेयानि गौर्गृहं शयनं स्त्रियः ॥३३
विभज्यमानान्येतानि दातारं पातयन्त्यधः । सा तु विक्रयमापन्ना दहत्यासप्तमं कुलम् ॥३४
अस्याः दानप्रभावेन विमानं सर्वकामिकम् । समारुह्य नरो याति यत्र देवो हरिः स्वयम् ॥३५
एषा चैव प्रदातव्या प्रयत्नेनान्तरात्मना । पौर्णमास्यां माघस्य कार्तिक्यां चैव भारत ।३६
चन्द्रसूर्योपरागे तु विषुवे अयने तथा । षडशीतिमुखे चैव व्यतीपाते तु सर्वदा ॥३७
वैशाख्यां मार्गशीर्ष्यां या गजच्छायासु चैव हि । एषा ते कथिता पार्थ तिलधेनुर्मयानघ ॥३८
यावन्ति धेनो रोमाणि गात्रेषु नृपपुङ्गव । तावद्वर्षसहस्राणि तदा स्वर्गे महीयते ॥३९
यश्च गृह्णाति विधिवद्दीयमानां च पश्यति । अनुमोदयते चैव ते सर्वे स्वर्गगामिनः ॥४०

धेनुं धनाधिपतयो मगधोद्भवेन मानेन ये तिलमयी चतुराढकेन ।
कृत्वा यथोक्तरचनां कृतचारुवत्सां यच्छन्ति ते भुवि भवन्ति विमुक्तपापाः ॥४१

प्रतिगृह्णामि देवि त्वां कुटुम्बभरणाय च । कामं देया दयास्मभ्यं धेनो त्वं सर्वदा ह्यसि ॥४२

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
तिलधेनुदानव्रतविधिवर्णनं नाम द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५२।

लोभी को कदापि न देना चाहिए । पूर्वकाल में मुनियों के कथनानुसार एक गौ एक ही व्यक्ति को अर्पित करना चाहिए । पार्थ ! नैमिषारण्य में नारद ने जो कुछ कहा था उस सहस्र गुने फल प्रदान करने वाले को मैं तुम्हें बता रहा हूँ । इस पवित्र आख्यान को जो मंगल विधान एकं कीर्ति वर्द्धक है ब्राह्मणों के श्राद्ध में सुनने से अनन्त फल की प्राप्ति होती है । गौ, गृह, शय्या, एवं स्त्री का दान विभाग पूर्वक अनेक को देने से दाता की अधोगति (नरक) होती है । क्योंकि विक्रय करने पर वे दान सात पीढ़ी तक का विनाश करते हैं । इस दान के प्रभाव से मनुष्य समस्त कामनाओं को सफल करने वाले विमान पर सुशोभित होकर जहाँ स्वयं विष्णु भगवान् रहते हैं वहाँ पहुँचता है । भारत ! आत्मसंयम पूर्वक मनुष्य को माघ, कार्तिक की पूर्णिमा, चन्द्र सूर्य ग्रहण के समय, विषुव, अयन (उत्तरायण-दक्षिणायन), संक्रान्ति दिन, व्यतीपात, वैशाख, मार्गशीर्ष (अगहन) मास अथवा गजच्छाया में तिलधेनु का दान अवश्य करना चाहिए ।२९-३८। अनघ, पार्थ ! इस प्रकार मैंने तिलधेनु की व्याख्या तुम्हें सुना दिया । नृपपुङ्गव ! उस धेनु के शरीर में जितने लोम होते हैं, उसके सहस्रवर्ष वह (प्रदाता) स्वर्ग में पूजित होता है । सविधान दान करने पर इसके प्रतिग्रहीता, तथा देखने एवं अनुमोदन करने वाले मनुष्य भी स्वर्गगामी होते हैं । इस प्रकार मगधोद्भव के अनुसार चार आढ़क तिल की सौन्दर्य पूर्ण धेनु वत्स समेत निर्माण कर सविधान दान देने वाले धनाधीश्वर गण पापमुक्त होकर भूमि सुख का अनुभव करते हैं । धेनो ! देवि ! मैं अपने परिवार के पालन पोषणार्थ तुम्हारा ग्रहण कर रहा हूँ अतः मेरी इस कामना की सफलतापूर्वक मेरे उपर सदैव दया करती रहना ।३९-४२

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवाद में
तिलधेनुदानव्रत विधि वर्णन नामक एक सौ बावनवाँ अध्याय समाप्त ।१५२।

अथ त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

जलधेनुदानव्रतविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

जलधेनुं प्रवक्ष्यामि प्रीयते दत्तया यया । देवदेवो हृषीकेशः पूजितः[1] सर्वभावनः ।।१
जलकुम्भं नरव्याघ्र स्थापयित्वा सुपूजितम् । रत्नगर्भं तु तं कृत्वा ग्राम्यैर्धान्यै समन्वितम् ।।२
सितवस्त्रयुगच्छन्नं दूर्वापल्लवशोभितम् । कुष्ठमांसीपुरोशीरवालकामलकीयुतम्[2] ।।३
प्रियङ्गुपत्रसहितं सितयज्ञोपवीतिनम् । सोपानत्कं च सच्छन्नं दर्भविष्टरसंस्थितम् ।।४
चतुर्भिः संयुतं रौप्यं तिलपात्रैश्चतुर्दिशम् । स्थगितं दधिपात्रेण घृतक्षौद्रवता मुखम् ।।५
सवत्सां च प्रतिष्ठाप्य गोमयेनोपशोभिताम् । स्रग्दामपुच्छीं कुर्वीत ताम्रदोहनकान्विताम् ।।६
ततः समभ्यर्च्य विभुं वासुदेवं सनातनम् । पुष्पधूपोपहारैश्च यथाविभवमात्मनः ।।७
सङ्कल्प्य जलधेनुं च कुम्भं तमभिमन्त्र्य च । विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसोः ।।
सोमशक्रार्कशक्तिर्या धेनुरूपेण सास्तु मे ।।८
एवमामन्त्र्य विधिवत्सफलां वत्सकान्विताम् । भक्त्या सम्पूज्य गोविन्दं जलशायिनमच्युतम् ।।९
सितवस्त्रधरः[3] शान्तो वीतरागो विमत्सरः । दद्याद्विप्राय राजेन्द्र प्रीत्यर्थं जलशायिनः ।।१०

अध्याय १५३

जलधेनुदानव्रतविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—नरव्याघ्र ! मैं तुम्हें जलधेनु की व्याख्या बता रहा हूँ, जिसके दान करनेपर देवाधिदेव सर्वभावन भगवान हृषीकेश पूजित होते हैं । जलपूर्ण कलश को स्थापित कर पूजित करे, जो रत्न गर्भित, धन धान्य युक्त, श्वेत वस्त्र से आच्छन्न, दूर्वा एवं पल्लव से भूषित, कूट, जटामांसी, उशीर खश, नालक, आमलक, प्रियङ्गु (ककुनी) के पत्ते, श्वेत यज्ञोपवीत से सुशोभित हो और छत्र, उपानह समेत कुशाशन पर स्थित हो । चारों चरण चाँदी से भूषित, चारों दिशाओं में तिलपात्र, और घृत, मधु मिश्रित दधिपात्र से उसका मुख सुशोभित हो । इस प्रकार की सवत्सा गौ की प्रतिष्ठा करके, जो गोमय भूषित, माला की पूँछ और ताँबें के दोहनक से युक्त हो, अपने विभवानुरूप पुष्प, धूप आदि उपहार से विभु एवं सनातन वासुदेव की अर्चा करे अनन्तर जल धेनु के संकल्प और उस कलश को अभिमंत्रित करने के उपरांत विष्णु भगवान् के वक्षःस्थल पर सुशोभित होने वाली लक्ष्मी, अग्नि की स्वाहा, एवं सोम, इन्द्र और सूर्य की शक्ति रूप है वही धेनु रूप से मेरी भी हो अर्थात् मेरी धेनु हो । राजेन्द्र ! फलयुक्त उस सवत्सा गौ को इस भाँति अभिमंत्रित कर जलशायी गोविन्द अच्युत भगवान् की भक्तिपूर्वक अर्चा करे । अनन्तर श्वेत वस्त्र धारण कर शांत, वीतराग एवं मत्सरहीन होकर जलशायी भगवान केशव के प्रीत्यर्थ उसे किसी ब्राह्मण को अर्पित करे ।१-१०। शेषरूपी शय्या पर शयन करने वाले, श्रीमान्, शार्ङ्ग

---

१. सर्वेशः । २. कुष्ठमांसीपुरोशीरनालकैर्विल्वसंयुतम्, सितवस्त्रेण संवीतो वीतरागः ।

शेषपर्यङ्कशयनः श्रीमाञ्छार्ङ्गविभूषितः । जलशायी जगद्योनिः प्रीयतां मम केशवः ॥११
इत्युच्चार्य जगन्नाथं विप्राय प्रतिपाद्यताम् । तद्दिनं गोव्रतस्तिष्ठेच्छ्रद्धया परया युतः ॥१२
अनेन विधिना दत्त्वा जलधेनुं जनाधिप । सर्वभोगानवाप्नोति ये दिव्या ये च मानुषाः ॥१३
शरीरारोग्यमतुलं प्रशमः सर्वकालिकः । नृणां भवन्ति दत्तायां सर्वे कामा न संशयः ॥१४
अत्रापि श्रूयते भूप मुद्गलेन महात्मना । जातिस्मरेण यद्गीतमिहाभ्येत्य पुराकिल ॥१५
स मुद्गलः पुरा विप्रो यमलोकगतो मुनिः । ददर्श यातनानेकाः पापकर्मकृतां नृणाम् ॥१६
दीप्ताग्नितीक्ष्णयन्त्रस्थाः क्वाथतैलमयास्तथा । उष्णक्षारनदीपाता भैरवाः पुरुषर्षभ ॥१७
व्रणक्षारनिपातोऽथ कुम्भीपाकमहालयाः । ता दृष्ट्वा यातना विप्रश्चकार परमां कृपाम् ॥१८
आह्लादं ते तदा जग्मुः पापास्तदनुकम्पया । तं दृष्ट्वा नारकाः केचित्स्थित्वा तदवलोकिनः ॥१९
तदवस्थं विलोक्याथ मुनिर्नारकमण्डलम् । धर्मराजं स पप्रच्छ तेषां प्रशमकारणम् ॥२०
तस्मै चाचष्ट राजेन्द्र तदा वैवस्वतो यमः । आह्लादहेतुमधिकं नारकाणां नरोत्तम ॥२१
दानानुभावात्सर्वेषां नारकाणां द्विजोत्तम । सम्प्रवृत्तोऽयमाह्लादः कारणं तच्छृणुष्व मे ॥२२
त्वयाभ्यर्च्य जगन्नाथं सर्वेशं जलशायिनम् । जलधेनुः पुरा दत्ता विधिवद्द्विजपुङ्गव ॥२३

(धनुष) भूषित, जलशायी एवं जगत् के एकमात्र कारण भगवान् केशव मेरे ऊपर प्रसन्न हो—इस प्रकार भगवान् जगन्नाथ जी की प्रार्थना करके वह गौ ब्राह्मण को समर्पित करे और उस दिन अत्यन्त श्रद्धापूर्वक गोव्रत का पालन भी करे। जनाधिप ! इस विधान द्वारा जलधेनु के दान करने पर दिव्य एवं मानुषिक समस्त भोगों के उपभोग प्राप्त होते हैं। अतुल नीरोग शरीर तथा सभी समय अत्यन्त शान्ति रहती है। यहाँ तक कि उसके दान करने पर मनुष्यों के सभी मनोरथ सफल होते हैं इसमें संदेह नहीं। ११-१४। भूप ! इस विषय में सुना जाता है कि महात्मा मुद्गल ने जिन्हें (जन्मान्तरीय) जाति स्मरण सदैव बना रहा है, पूर्वकाल में यहाँ आकर उपरोक्त सभी बातें बतायी है। पूर्व जन्म में मुद्गल मुनि ब्राह्मणकुल में उत्पन्न थे। उन्होंने यमलोक में जाकर पापी मनुष्यों की अनेक भाँति का यातनाएँ देखी कोई प्रदीप्त अग्नि कुण्ड में पकाये जा रहे हैं कोई तीक्ष्ण यन्त्र (मशीन आदि) उत्पीड़ित हो रहा है, कोई खौलते हुए गरम तेल में पक रहा है और कोई गरम और खारे जलवाली नदी में डूब रहा है। पुरुषर्षभ ! कोई व्रण (घाव) वाले क्षार कुण्ड में पड़ा है तथा कोई कुम्भी पाक नामक महानरक में पड़ा है। नारकीयों की ऐसी भीषण यातनाओं को देखकर मुनि ने उन लोगों के ऊपर अत्यन्त कृपा की—उनकी अनुकम्पा से उसी समय पापियों को अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। उन मुनि को देखकर कुछ नारकीय प्राणी अपनी दुःखी अवस्था में ही रह कर उन्हें बार बार देख रहे थे। अनन्तर मुनि ने उस नरक मण्डल को देख कर धर्मराज से उनकी दुःख निवृत्ति का कारण पूँछा। राजेन्द्र ! नरोत्तम ! उसे सुनकर विवस्वान (सूर्य) पुत्र यम ने नारकीयों के प्रसन्नार्थ मुनि से उस कारण को बताया—उन्होंने कहा—द्विजोत्तम ! इस दान के प्रभाव से सभी नारकियों को अत्यन्त आह्लाद (हर्ष) की प्राप्ति होगी, उसे मैं बता रहा हूँ, सुनो ! द्विजपुङ्गव ! तुमने भी पूर्व जन्म में जलशायी, एवं सर्वाधीश्वर जगन्नाथ जी अर्चना करने के उपरान्त सविधान जल धेनु का दान

तस्मात्वज्जन्मनोऽतीते तृतीये द्विजजन्मनि । तस्य दानस्य ते व्युष्टिरियमाह्लाददायिनी[1] ॥२४
ये त्वां पश्यन्ति शृण्वन्ति ये च ध्यायन्ति मानवाः । शृणोषि यांश्च विप्रेन्द्र यांश्च ध्यायसि पश्यसि ॥२५
निवृत्तिः परमा तेषां सर्वाह्लादप्रदायिनी । सद्यो भवति मात्र त्वं द्विजाते कुरु विस्मयम् ॥२६
आह्लादहेतुजननं नास्ति विप्रेन्द्र तादृशम् । जलधेनुर्यथा नृणां जन्मान्येकोनविंशतिम् ॥२७
न दोषो न ज्वरो नार्तिर्न क्लमो द्विज जायते । अपि जन्मसहस्रेऽपि जलधेनुप्रदायिनाम् ॥२८
स त्वं गच्छ गृहीत्वार्घमस्मतो द्विजसत्तम । येषां समाश्रयः कृष्णे न नियम्या हि ते मया ॥२९
कृष्णस्तु पूजितो यस्तु[2] ये कृष्णार्थमुपोषिताः । यैश्च[3] नित्यं स्मृतः कृष्णो न ते मद्विषयोपगाः ॥३०
नमः कृष्णाच्युतानन्त वासुदेवेत्युदीरितम् । यैर्भावभावितैर्विप्र न ते मद्विषयोपगाः ॥३१
दानं ददभिर्यैरुक्तमच्युतः प्रीयतामिति । श्रद्धापुरःसरैर्विप्र न ते मद्विषयोपगाः ॥३२
स एव नाथः सर्वस्य तन्नियोगकरा वयम् । जनसंयमनश्चाहमस्मत्यसंयमनो हरिः ॥३३
इत्थं निशम्य वचनं यमस्य वदतोऽखिलम् । ऊचुस्ते नारकाः सर्वे वह्निशस्त्रार्कभीरवः ॥३४
नमः कृष्णाय हरये विष्णवे जिष्णवे नमः । हृषीकेशाय केशाय जगद्धात्रेऽच्युताय च ॥३५
नमः पङ्कजनेत्राय नमः पङ्कजनाभये । जनार्दनाय श्रीशाय श्रीभर्त्रे पीतवाससे ॥३६
गोविन्दाय नमो नित्यं नमश्चोदधिशायिने[4] । नमः कमलनेत्राय नृसिंहाय निनादिने ॥३७

किया है।१५-२३। जिससे इस तीसरे ब्राह्मण जन्म में उस दान के प्रभाव से तुम्हें उसका अत्यन्त आह्लाद फल प्राप्त हुआ है। विप्रेन्द्र ! तुम्हें देखने, सुनने एवं ध्यान करने वाले मनुष्यों को और जिन लोगों को तुम सुनोगे ! ध्यान करोगे तथा देखोगे उन्हें सब भाँति का आह्लाद प्रदान करने वाली परम निर्वृत्ति (सुख) सद्यः (तुरन्त) प्राप्त होगा इसमें संदेह नहीं ! विप्रेन्द्र ! जलधेनु के समान मनुष्यों को उन्तीस जन्म तक आह्लादप्रद अन्य कोई है ही नहीं। क्योंकि जलधेनु के दान करने वाले मनुष्यों के सहस्रों जन्म तक कोई दोष—ज्वर, पीड़ा एवं क्लम आदि कुछ होता ही नहीं। द्विजसत्तम ! अतः मेरे दिये हुए अर्घ्य को ग्रहण कर तुम (सादर) अपने स्थान जाओ, क्योंकि कृष्ण के आश्रित रहने वाले मनुष्य पर मेरा शासनाधिकार कुछ भी नहीं है।२४-२९। जिसने कृष्ण की पूजा की अथवा कृष्ण के निमित्त उपवास किया या कृष्ण का नित्य स्मरण करते हैं वे हमारे यहाँ के शासन नियम भाजन नहीं है। विप्र ! अत्यन्त प्रेम विह्वल होकर जिसने कृष्ण, अच्युत, एवं अनन्त वासुदेव को नमस्कार है, कहा है, वह हमारे शासन से बाहर है। विप्र ! अत्यन्त श्रद्धालु होकर जिसने दान देते समय 'भगवान् अच्युत प्रसन्न हों, कहा है वह भी हमारे शासनाधिकार में नहीं है। क्योंकि वही (अच्युत) सब के नाथ हैं और हम लोग उनके आदेश के पालक हैं और मैं मनुष्यों का संयमन करता (नियामक) हूँ और भगवान् हरि हमारे नियामक हैं। यमराज के इस प्रकार कहने पर उनकी समस्त बातें सुनकर समस्त नारकीय प्राणी, जिन्हें वहाँ अग्नि, शास्त्र एवं अर्क (सूर्य) का अत्यन्त भय था, कहने लगे—भगवान् हरि कृष्ण को नमस्कार है, विष्णु (जय शील) विष्णु को नमस्कार है, हृषीकेश, केशव, जगद्धाता, अच्युत को नमस्कार है, कमलनेत्र, कमलनाभि, जनार्दन, श्रीश, एवं पीताम्बरधारी लक्ष्मीपति को नमस्कार है।३०-३६। गोविन्द को नमस्कार है, जलशायी को नित्य नमस्कार

---

१. व्युष्टिः फलमित्यर्थः । २. यैः कृष्णार्थमुपोषितम् । ३. यस्तु । ४. उदकशायिने ।

शार्ङ्गिणे शितखड्गाय शङ्खचक्रगदाभृते । नमो वामनरूपाय क्रान्तलोकत्रयाय च ॥३८
वराहरूपाय तथा नमो यज्ञाङ्गधारिणे । व्याप्ताशेषदिगन्तायानन्ताय[1] परमात्मने ॥३९
वासुदेव नमस्तुभ्यं नमः कैटभसूदिने । केशवाय नमो राम[2] नमस्तेस्तु महीधर ॥४०
नमोऽस्तु वासुदेवाय ह्येवमुच्चारिते च तैः । शस्त्राणि कुण्ठतां जग्मुरनलश्चापि शीतताम्[3] ॥४१
समभज्यन्त वस्त्राणि समुत्पेतुरयोमुखाः । संशुष्काः क्षारसरितः पतितः शाल्मलिद्रुमः ॥४२
प्रकाशस्तमसो जज्ञे नरकाद्भानुभिः सह । ववौ च युजन्पवनोऽप्यसिपत्रवने ततः ॥४३
निरुत्साहा जडधियो बभूवुर्यमकिंकराः । जातागङ्गाम्बुवाहिन्यः पूयशोणितनिम्नगाः ॥४४
दिव्यः सुगन्धिः पवनो मनः प्रीतिकरस्तथा । वेणुवीणास्वनयुताः शब्दाश्चासन्मनोरमाः ॥४५
तं तादृशमथालक्ष्य तदा वैवस्वतो यमः । क्षीणपापत्रयांस्तांस्तु पाद्यार्घ्यैः समपूजयत् ॥४६
पूजयित्वा च तानाह कृष्णाय स कृताञ्जलिः । समाहितमतिर्भूत्वा धर्मराजो नरेश्वर ॥४७
विष्णो देव जगद्धातर्जनार्दन जगत्पते । प्रणामं येऽपि कुर्वन्ति तेषामपि नमोनमः ॥४८
अच्युतायाप्रमेयाय मायावामनरूपिणे । प्रणामं येऽपि कुर्वन्ति तेषामपि नमो नमः ॥४९
नमस्ते वासुदेवाय धीमते पुण्यकीर्तये । प्रणामं ये च कुर्वन्ति तेषामपि नमो नमः ॥५०
तस्य यज्ञवराहस्य विष्णोरमिततेजसः ॥५१

है, कमलनेत्र नृसिंह तथा गंभीर नाद करने वाले को नमस्कार है, धनुर्धारी, तीक्ष्ण खड्ग, शंख, चक्र गदाधारी और तीनों लोक को आक्रान्त करने वाले वामन रूप को नमस्कार है, यज्ञाङ्गधारी वाराह रूप को नमस्कार है, समस्त दिग्दिगन्त में व्याप्त होने वाले अनन्त परमात्मा को नमस्कार है, वासुदेव को नमस्कार है, कैटभहन्ता को नमस्कार है, केशव को नमस्कार है, महीधर राम को नमस्कार है एवं वासुदेव को नमस्कार है। इस भाँति उनलोगों के उच्चारण करने पर (उन्हें पीड़ित करने वाले) शास्त्र कुण्ठित हो गये और अग्नि शीतल हो गया। (नरक के आवरण) वस्त्र सर्वथा नष्ट हो गये, अधोमुख (लोहमुख) वाले एक साथ ही उड़ गये, क्षार नदी (वैतरणी) सूख गयी। शाल्मली (सेमर) का वृक्ष गिर गया और उस नरक कुण्ड में उस अंधेरे से सूर्य के साथ प्रकाश का उदय हुआ एवं उस असि (तलवार) केसमान तीक्ष्ण पत्र वाले वन में (उन पत्रों को एक में मिलाते हुए) वायु चलने लगा। यमराज के जड़ बुद्धि वाले किङ्कर (सेवक) वर्ग हतोत्साह होगये, धूप (पीव) और शोणिक प्रवाहित होने वाली नदियाँ गङ्गा जल की भाँति प्रवाहित होने लगी। दिव्य एवं सुगन्ध पूर्ण वायु मन को प्रसन्न करने लगा वेणु (बाँस) की वीणा के समान उसके शब्द मनोरम हो गये। इस दृश्य को देखकर उस समय वैवस्वत यम ने पाप के क्षीण होने पर उन तीनों की अर्घ्य पाद्य द्वारा अर्चा की। ३७-४६। नरेश्वर ! अनन्तर धर्मराज कृष्ण के लिए हांथ जोड़कर ध्यान पूर्वक कहने लगे—विष्णुदेव , को जो जगत् के धाता, जनार्दन एवं जगत् के पति है तथा उन्हें प्रणाम करने वाले को भी बार-बार नमस्कार है। अप्रमेय अच्युत को नमस्कार है, जो माया से वामन रूप धारण किये हैं, और उन्हें प्रणाम करने वाले को भी नमस्कार है। धीमान् एवं पुण्य कीर्ति वाले वासुदेव को तथा उन्हें प्रणाम करने वाले को भी नमस्कार है।४७-५०। इस प्रकार अमेय तेजधारी एवं यज्ञवाराह रूप धारण

---

१. शांताय । २. व्यापिनमस्तेऽस्तु महीभृते । ३. शीतलः ।

एवं स्तुत्वा हृषीकेशं धर्मराजस्य पश्यतः । विमानवरमारुह्य नारकास्त्रिदिवं ययुः ।।५२
मुद्गलोऽपि महाबुद्धिर्दृष्टैतदखिलं नृप । जातिस्मरो भवेद्विप्रः कण्वगोत्रे महामुनिः ।।५३
संस्मृत्य यमवाक्यानि विष्णोर्माहात्म्यमेव च । जलधेनोस्तु माहात्म्यं संस्मृत्येदमगायत ।।५४
अहोसुदुस्तरा विष्णोर्मायेमतिगह्वरी । यया मोहितचित्तस्तु न वेत्ति परमेश्वरम् ।।५५
जीवो गच्छति कीटत्वं यूकामत्कुणयोनिताम् । तस्माद्द्रुमलता दीनां योनिं तस्माच्च पक्षिणाम् ।।५६
ततश्च पशुतां प्राप्य नरत्वमभिवांछति । ततो मनुष्यतां प्राप्य नरो योनिं कृतात्मनाम् ।।
तां प्राप्य च श्रियं परां नरो मायाविमोहितः ।।५७
दुस्तरापि सुसाध्या सा माया कृष्णस्य मोहिनी । विद्यते सा मनोन्यस्ता मुधैव[1] मधुसूदने ।।५८
अवाप्यैवं च गार्हस्थ्यमवाप्यैवं च तत्परम् । छिनत्ति वैष्णवीं मायां केशवार्पितमानसः ।।५९
अविरोधेन विषयान्भुञ्जन्विष्णुं समाश्रयेत् । भुक्त्वा नरस्तरत्येनां विष्णोर्मायां सुदुस्तराम् ।।६०
ईदृग्बहुफला भक्तिः सर्वधातरि केशवे । मायया तस्य देवस्य तां न कुर्वन्ति मोहिताः ।।६१
मुधैवोक्तं सुधापानं मुधा तद्धि विचेष्टितम् । मुधैव जन्म तन्नष्टं यत्र नाराधितो हरिः ।।६२
आराधितो हि यः पुंसामैहिकामुष्मिकं फलम् । ददाति भगवान्देवः कस्तं न प्रतिपूजयेत् ।।६३
सम्वत्सरास्तथा मासा विफला दिवसाश्च ते । नराणां विषयांधानां यैस्तु नाराधितो हरिः ।।६४

करने वाले विष्णु हृषीकेश की स्तुति करके वे नारकीय प्राणी धर्मराज के देखते-देखते सुन्दर विमान द्वारा स्वर्ग चले गये । नृप ! इस समस्त कौतूहल को देखकर महाबुद्धिमान् मुद्गल भी कण्व ऋषि के कुल में जन्मान्तरीय के स्मरण करने वाले महामुनि ब्राह्मण हुए । उन्होंने यम के वाक्य, विष्णु का माहात्म्य और जलधेनु का महत्व भली भाँति समझकर यह गाथा गाया कि—अहो ! भगवान् विष्णु की यह माया कितनी कठिन है, जिसके द्वारा मोहित होने पर प्राणी परमेश्वर का ज्ञान (कुछ भी) नहीं कर पाता । यह जव (मोहित होने पर नाते परमेश्वर को भूल जाने पर) कीट, यूका (जूँ) खटमल की योनि से वृक्ष लता की योनि में पहुँचता है और उससे पक्षी, पक्षी से पशु एवं उससे मनुष्यत्व प्राप्ति की कामना करने पर मनुष्य योनि की प्राप्ति करता है अनन्तर कृतज्ञता प्राप्त कर माया मोहित पुरुष उत्तम श्री प्राप्ति करता है । यद्यपि भगवान् कृष्ण की मोहिनी माया अत्यन्त दुस्तर है तथापि मधूसूदन में अनन्य भाव रखने पर वह बिना प्रयास के ही सुसाध्य हो जाती है । क्योंकि भगवान् केशव में तन्मय होने वाले प्राणी गृहस्थ धर्म के उपरान्त एवं संन्यास धर्म सुसम्पन्न करते हुए वैष्णवी माया से मुक्त हो जाते हैं ।५१-५९। भगवान् विष्णु के आश्रित रहकर मनुष्य अविरोधेन विषयों के उपभोग करते हुए भी विष्णु की उस सुदुस्तर माया को पार कर जाते हैं । इस प्रकार अनेक फलदायिनी सर्वधाता भगवान् केशव की भक्ति देवमाया से मोहित होने वाले प्राणी नही प्राप्त कर सकते हैं । जिसने हरि विष्णु की आराधना नहीं की उसका सुधापान एवं चेष्टित कर्म और इतना ही नहीं अपितु उसका वह जन्म नष्ट है क्योंकि जिसने उनकी आराधना की है उसे भगवान् कृष्ण देवलोक परलोक के सभी फल प्रदान करते हैं अतः किसे नहीं उनकी अर्चा करनी चाहिए ।६०-६३। जिन मनुष्यों ने, जो दिनरात विषयों में ही अन्धे होकर लिप्त हैं भगवान् हरि की उपासना नहीं

---

१. तत्रैव ।

यो न वित्तर्द्धिविभवैर्न वासोभिर्न भूषणैः । तुष्यते हृदयेनैव कस्तमीशं न पूजयेत् ॥६५
जलधेनोस्तु माहात्म्यं निशम्येदमिदं नराः । नात्र यच्छन्ति तेषां वै विवेकः कुत्र तिष्ठति ॥६६
कर्मभूमौ हि मानुष्यं जन्मनामयुतैरपि । स्वर्गापवर्गफलदं कदाचित्प्राप्यते नरैः ॥६७
सम्प्राप्य च न यैर्विष्णुस्तोषितो जलधेनुना । ते जना [1]भ्रष्टजन्मानो वंचितास्तस्य मायया ॥६८
ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष दृष्टलोकद्वयोऽस्मि भोः । आराधयध्वं गोविन्दं जलधेनुं प्रयच्छत ॥६९
दुःसहो नारको वह्निरविषह्या च यातनाः । ज्ञातं मयैतदालम्ब्य कृष्णं भवति निश्चलः ॥७०
आदेशिको देशिको हि यममार्गे सुदुस्तरे । विचिन्त्य तत्सत्यमेतन्मनः कृष्णे निवेश्यताम् ॥७१

इष्टेन किं क्रतुशतेन सुदुष्करेण क्लेशाधिकेन सुकृतैर्नियमैर्व्रतैश्च ।
दत्ता द्विजाय पितृराज्यगृहं गतस्य ह्येकाऽपि गौर्जलमयी सुखमातनोति ॥७२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसंवादे
जलधेनुदानव्रतविधिवर्णनं नाम त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५३

की उनके वर्ष, मास एवं दिन निष्फल हैं। वित्त, ऋद्धि आदि विभव तथा वस्त्रों एवं आभूषणों (के प्रदान) द्वारा प्रसन्न होकर केवल हार्दिक प्रेम से प्रसन्न होता है ऐसे भगवान् की आराधना किसे नहीं करनी चाहिए। इस भाँति जल धेनु के इस (अपूर्व) माहात्म्य को सुनकर मानववृन्द यदि जल धेनु का प्रदान नहीं करते हैं तो उनमें विवेक के रहने का स्थान ही कहाँ मिलेगा क्योंकि उस कर्म क्षेत्र में अनेक जन्मों के उपरान्त जीव उस मनुष्यत्व को प्राप्ति करता है, जिसके द्वारा स्वर्ग, मोक्ष आदि फल प्राप्त होते हैं। उसे प्राप्त करने पर भी जिन लोगों के जल धेनु के दान द्वारा भगवान् विष्णु को प्रसन्न नहीं किया, उनके जन्म निरर्थक हो गये और भगवान् की माया द्वारा (मोहित होने के नाते) वे (उस लाभ से) वंचित ही रह गये। इसीलिए मैं दोनों लोकों को देखकर ऊर्ध्वबाहु होकर उन्हें कह रहा हूँ, कि सभी लोग गोविन्द की आराधना एवं जल धेनु का दान करो। क्योंकि नरक की अग्नि अत्यन्त दुःसह और उनकी यातना अतीव असह्य है किन्तु मुझे इसका भली भाँति ज्ञान है कि कृष्ण के आश्रित रहने पर प्राणी निश्चल होता है। उस सुदुत्तर यम मार्ग के पथिक आदि सभी को इसकी सत्यता पर विचार कर अपना मन भगवान् कृष्ण में लगाना चाहिए। इस प्रकार सैकड़ों सुदुष्कर यज्ञ करने पर जिसमें क्लेशाधिक्य रहता है, और नियम संयम वाले सुकृत व्रत आदि कर्म करने से क्या लाभ जबकि पितृ लोक गये हुए प्राणी के निमित्त किसी ब्राह्मणो को सादर समर्पित की हुई जल धेनु उसको विस्तृत सुख प्रदान करती है।६४-७२

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के संवाद में
जल धेनुदान व्रत विधि वर्णन नामक एक सौ तिरपनवाँ अध्याय समाप्त।१५३।

---

१. गव्यस्य सर्पिषः कुम्भं गन्धमाल्यविभूषितम्। कांस्योपधानसंयुक्तं सितवस्त्रावगुण्ठितम्।

अथ चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

घृतधेनुदानव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

घृतधेनुं प्रवक्ष्यामि तां शृणुष्व नरोत्तम । दीयते येन विधिना यादृग्रूपां च कारयेत् ।।१
गव्यस्य[1] सर्पिषः कुम्भान्गन्धमाल्यविभूषितान् । कांस्योपदोहनसंयुक्तान्सितवस्त्रावगुण्ठितान् ।।२
इक्षुयष्टिमयाः पादाः खुरा रौप्यमयास्तथा । सौवर्णे चाक्षिणी कार्ये[2] शृंगे चागुरुकाष्ठके ।।३
सप्तधान्यमये पार्श्वे पटोर्णेन च कम्बलम् । कुर्यात्तुरुष्ककर्पूरैर्घ्राणं फलमयांस्तनान् ।।४
तद्वच्छर्करया जिह्वां गुडक्षीरमयं मुखम् । क्षौमसूत्रेण लाङ्गूलं रोमाणि सितसर्षपैः ।।५
ताम्रपात्रमयं पृष्ठं कुर्याच्छ्रद्धासमन्वितः । ईदृग्रूपां तु सङ्कल्प्य घृतधेनुं नराधिप ।।६
तद्वत्कल्पनया धेनोर्वत्सं च परिकल्पयेत् । मन्त्रेणानेन राजेन्द्र तां समभ्यर्च्य बुद्धिमान् ।।७
आज्यं तेजः समुद्दिष्टमाज्यं पापहरं परम् । आज्यं सुराणामाहारः सर्वमाज्ये प्रतिष्ठितम् ।।८
त्वं चैवाज्यमयी देवि कल्पितासि मया किल[3] । सर्वपापापनोदाय सुखाय भव भामिनि ।।९
तं च विप्रं महाभाग मनसैव घृतार्चिषा । कल्पयित्वा ततस्तस्मै प्रयतः प्रतिपादयेत् ।।१०
दक्षिणासहिता धेनुः कल्पिताज्यमयी शुभा । एतां ममोपकाराय गृहाण त्वं द्विजोत्तम ।।११

अध्याय १५४

घृतधेनुदानव्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—नरोत्तम ! मैं तुम्हें घृत धेनु का विधान और उसका रूप बता रहा हूँ, सुनो ! गौ के घृत से पूर्ण कलश, जो गंध माल्य विभूषित, कांसे की दोहनी युक्त, एवं श्वेत वस्त्र से अवगुण्ठित हो, स्थापित करते हुए गौ को प्रतिष्ठित करे, ऊख, यष्टि (दण्ड) से जिसके चरण, चाँदी के खुर, सुवर्ण के नेत्र, अगुरु काष्ठ की सींग, सप्त धान्य के पार्श्व भाग, ऊन वस्त्र के कम्बल (गले के नीचे लटकने वाले अंग), शिला रस लोहबान और कपूर की घ्रार (नाक), फलों के स्तन, शक्कर की जिह्वा, गुड़ क्षीर का मुख, रेशमी सूत्र से लाङ्गूल (पूंछ) श्वेत राई से लोम और ताँबें के पात्र की पृष्ठ (पीठ), बनी हो। नराधिप ! इस प्रकार श्रद्धा समेत घृत धेनु की कल्पना करके उसके वत्स (बच्चे) की भी कल्पना करें। राजेन्द्र ! बुद्धिमान् को चाहिए उसे इस मंत्र द्वारा पूजित कर—घृत तेज रूप है, अत्यन्त पापापहारी है और वह देवताओं का आहार है इसीलिए सभी कुछ घृत में प्रतिष्ठित हैं देवि ! इसी हेतु मैंने तुम्हारी कल्पना (निर्माण) घृतमयी की है, भामिनी ! अतः मेरे समस्त पापों के अपहरण पूर्वक सुख प्रदान करो। महाभाग ! घृतार्चि द्वारा उस ब्राह्मण की भी मानसिक कल्पना करके (गोदान के समय) ऐसा कहे। १-१०। द्विजोत्तम ! दक्षिणा समेत यह घृतमयी धेनु मेरे उपकारार्थ ग्रहण करने की कृपा करें। अनन्तर वह

---

१. कुर्यात् । २. शुभे । ३. अतुलाऽधिकवर्जिताम् ।

इत्युदाहृत्य विप्राय तां गां तु प्रतिपादयेत् । दत्त्वैकरात्रं स्थित्वा च घृताहारो यतव्रतः ॥१२
अनेन च विधानेन नवनीतमयी शुभा । दातव्या नृपते धेनुर्न्यूनाधिकविवर्जिता[1] ॥१३
शृणु पार्थ महाबाहो[2] प्रदानफलमुत्तमम् । घृतक्षीरमहानद्यो यत्र पायसकर्दमाः ॥१४
घृतधेनुप्रदा यान्ति तत्र कामैः[3] सुपूरिताः । पितुरूर्ध्वं च ये सप्त पुरुषास्तस्य येऽप्यधः ॥१५
तांस्तेषु नृप लोकेषु स न यस्त्यक्तकल्मषान्[4] । सकामानमियं व्युष्टिः कथिता नृपसत्तम ॥१६
निष्किल्बिषं पदं यान्ति निष्कामा घृतधेनुदाः । घृतमग्निर्घृतं सोमस्तन्मयाः सर्वदेवताः ॥१७
घृतं प्रयच्छतां भीताः भवन्त्यखिलदेवताः ॥१८

मायाजलं सुतकलत्रमहोर्मिमालं लोमोग्रनक्रविषमं बहुपुण्यभाजः ।
लग्ना निमग्नवपुषो घृतधेनुपुच्छे संसारसागरमपारमहो तरन्ति ॥१९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तपर्वणि श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसंवादे
घृतधेनुदानव्रतविधिवर्णनं नाम चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५४

गौ ब्राह्मण को अर्पित कर संयम पूर्वक रात्रि घृताहार पूर्वक व्यतीत करे ! नृपते ! इस विधान द्वारा यह नवनीत (मक्खन) मयी धेनु, जिसमें न्यूनाधिक सम्भव न हो, सभी को दान देना चाहिए । महाबाहो, पार्थ ! उसके दान का महान् एवं उत्तम फल बताया गया है—घृत धेनु के प्रदाता अपनी समस्त कामनाओं की सफलतापूर्वक ऐसे लोक की प्राप्ति करते हैं जहाँ घृत और क्षीर की महानदी प्रवाहित होती है तथा उसमें पायस का कर्दम (कीचड़) भरा पड़ा है । नृप ! उसकी सात पीढ़ी पूर्व की ओर सात पीढ़ी पर की पापरहित होकर उस लोक में पहुँचते हैं । नृपसत्तम ! सकाम प्राणियों के लिए मैंने यह उत्तम फल बता दिया ! घृतधेनु प्रदान करने वाले प्राणी कामना रहित पुण्यपद की प्राप्ति करते हैं । क्योंकि घृत अग्नि रूप है, घृत ही सोम है और घृतमय (सभी देवता) हैं इसीलिए घृतदान करने वाले से समस्त देवगण भयभीत रहते हैं । इस प्रकार इस अपार संसार सागर को, जिसमें माया रूपी जल, सुत एवं स्त्री आदि (परिवार) भीषण तरङ्ग समूह, और लोमरूपी विषय एवं उग्र नक्र (मगर) है, घृत धेनु का दानी अत्यन्त पुण्य पात्र होने के नाते समस्त शरीर के उसमें निमग्न रहने पर घृतधेनु की पूँछ के सहारे पार कर जाता है ।११-१९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
घृतधेनुदानव्रतविधि वर्णन नामक एक सौ चौवनवाँ अध्याय समाप्त ।१५४।

---

१. अतुलाऽधिकवर्जिताम् । २. महाभाग । ३. प्रपूजिताः । प्रपूरिताः । ४. अपकल्मषम् ।

अथ पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

लवणधेनुदानव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

कृष्ण कृष्ण महाबाहो सर्वशास्त्रविशारद । कथयस्वेह दानानामुत्तमं यत्प्रकीर्तितम् ॥१
येन दत्तेन दानानि सर्वाण्येव भवन्त्युत । सर्वकामसमृद्धिश्च सर्वपापक्षयो भवेत् ॥२
प्रायश्चित्तविशुद्धिश्च तन्मे कथय सुव्रत ॥

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि दानानामुत्तमोत्तमम् ॥३
ख्यातं लवणधेन्वाख्यं सर्वकामप्रदं नृणाम् । यां दत्त्वा ब्रह्महा गोघ्नः पितृहा गुरुतल्पगः ॥४
विश्वासघाती क्रूरात्मा सर्वपापरतोऽपि वा । मुच्यते नात्र सन्देहः शिवलोकं स गच्छति ॥५
सुभगो धनसम्पन्नो दीर्घायुरपराजितः । जायते पुरुषो लोके सर्वकामसमन्वितः ॥६
विधिं वक्ष्यामि राजेन्द्र लवणस्येह कल्पनम् । गोमयेनोपलिप्तेन दर्भसंस्तरसंस्थितम् ॥७
आविकं चर्म विन्यस्य पूर्वाशाभिमुखं स्थितम् । वस्त्रेणाच्छादितं कृत्वा धेनुं कुर्वीत बुद्धिमान् ॥८
आढकेनैव कुर्वीत बहुवित्तोऽल्पवित्तवान् । स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरामिक्षुपादां फलस्तनीम्[1] ॥९

अध्याय १५५

लवणधेनुदानव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—कृष्ण, कृष्ण, महाबाहो, एवं समस्त शास्त्रों के विशारद ! मुझे इस भाँति का उत्तम दान बताने की कृपा कीजिये, जिसके दान करने से समस्त का दान हो जाये और समस्त कामनाओंकी सफलता पूर्वक सम्पूर्ण पाप विनष्ट हो जांय । सुव्रत ! प्रायश्चित की विशुद्धि भी बताने की कृपा करें ।१-२

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! लवणधेनु नामक परमोत्तम दान में तुहें बता रहा हूँ, जो मनुष्यों की समस्त कामनाएँ सफल करता है और जिसके दान करने पर ब्राह्मण गौ एवं पिता आदि की हत्या करने वाला, गुरु शय्यागामी, विश्वासघाती, क्रूरात्मा, एवं सम्पूर्ण पाप करने वाला प्राणी पापों से मुक्त होकर शिव लोक की प्राप्ति करता है, इसमें संदेह नहीं । पुनः इस लोक में जन्मग्रहण करने पर वह प्राणी, सुभग, धनवान, दीर्घायु, अजेय होकर समस्त कामनाओं को सफल करता है । राजेन्द्र ! मैं उस लवण धेनु का विधान बता रहा हूँ, (सुनो) ! गोबर से लिपी हुई भूमि में कुश बिछाकर उसी पर पूर्वाभिमुख भेंड चर्म के ऊपर वस्त्राच्छन्न गौ का निर्माण करें ।३-८। धनी या निर्धन बुद्धिमान् को चाहिए कि आढक प्रमाण द्वारा गौ की रचना करते हुए सुवर्ण की सींग, चाँदी की खुर, ऊख के चरण, फलों के स्तन, शक्कर की

---

१. घृतस्तनीम् ।

कार्या शर्करया जिह्वा गन्धघ्राणवती तथा । समुद्रोदरजे शुक्ती कर्णौ तस्याः प्रकल्पयेत् ।।१०
कम्बलं पट्टसूत्रेण ग्रीवायां घण्टिकां तथा । शृङ्गे चन्दनकाष्ठाभ्यां मौक्तिके चाक्षिणी उभे ।।११
कपोलौ सक्तुपिण्डाभ्यां यवानास्ये प्रदापयेत् । तिलान्पार्श्वे प्रकुर्वीत गोधूमांश्चैव भक्तितः ।।१२
एवं वै सप्तधान्यानि यथालाभं प्रकल्पयेत् । पृष्ठे वै ताम्रपात्रं तु अपाने गुडपिण्डिकाम् ।।१३
लाङ्गूले कम्बलं दद्याद्द्राक्षां[1] क्षीरप्रदेशतः । योनिप्रदेशे च मधु सर्ववस्तुफलान्वितम् ।।१४
एवं सम्यक्परिस्थाप्य रसरस्यमयीं च गाम् । स्थापयेद्वत्समेकं च चतुर्भागेन मानवः ।।१५
एवं धेनुं समभ्यर्च्य माल्यवस्त्रविभूषणैः । स्नात्वा देवार्चनं कृत्वा ब्राह्मणानभिपूज्य च ।।
कृत्वा प्रदक्षिणां गां तु पुत्रभार्यासमन्वितः ।।१६
ब्राह्मणाय सुशीलाय वृत्तयुक्ताय वै नृप । दद्यात्पर्वसु सर्वेषु मन्त्रपूर्वं सुभक्तितः ।।१७
लवणे वै रसाः सर्वे लवणे सर्वदेवताः । सर्वदेवमये देवि लवणाख्ये नमोस्तु ते ।।१८
एवमुच्चार्य मन्त्रां ते विप्राय प्रतिपादयेत् । सम्यक्प्रदक्षिणां कृत्वा दक्षिणासहितां नृप ।।१९
प्रदक्षिणा मही तेन कृतं भवति भारत । सर्वदानानि दत्तानि सर्वक्रतुफलानि च ।।२०
सर्वे रसाः सर्वमन्नं सर्वं च सचराचरम् । सौभाग्यं परमाबुद्धिरारोग्यं सर्वसम्पदः ।।२१
भवति दत्त्वा नृणां तु रसधेनुं न संशयः । स्वर्गे च नियता वासो यावदाभूतसम्प्लवम् ।।२२

जिह्वा गन्ध का घ्राण (नाक), समुद्र में उत्पन्न होने वाली सीप के कान, यह सूत्र का (गले के नीचे) वाला कम्बल, गले में घण्टी, सीगों में चन्दन काष्ठ, दोनों नेत्र में मोती लगानी चाहिए। सत्तू के पिण्ड से कपोल, मुख में जवा, पार्श्व भाग में तिल और गेंहू रखना चाहिए। इन्हीं सप्तधान्यों को यथा स्थान स्थापित करते हुए भक्ति पूर्वक गौ की रचना करनी चाहिए। उसी भाँति पृष्ठ भाग में ताँबा का पत्र, प्रदान (गुदा) भाग में गुड़ की पिंडी, लांङ्गूल (पूंछ) में कम्बल और स्तन के स्थान पर द्राक्षा (किसमिस) रखनी चाहिए। तथा योनि प्रदेश सर्ववस्तु एवं फल मिश्रित मधु रखना चाहिए। इस प्रकार लवण धेनु के निर्माण हो जाने पर मनुष्य को चौथाई भाग द्वारा एक वत्स (बच्चे) का निर्माण करना चाहिए। पश्चात् स्त्री पुत्र समेत स्नानोपरांत माला, वस्त्र एवं आभूषण भूषित गौ की अर्चा देव तथा ब्राह्मण की पूजा सुसम्पन्न कर गौ की प्रदक्षिणा करे।९-१६। नृप ! भक्तिपूर्वक किसी सुशील एवं वृत्तयुक्त ब्राह्मण को मन्त्र पूर्वक सभी पर्वो के अवसर पर प्रदान करते हुए—देवि ! लवण में सभी रस, समस्त देवता स्थित है अतः सर्वदेवमयी लवण नामक धेनु को मैं बार बार नमस्कार कर रहा हूँ। इस प्रकार मंत्र को उच्चारण करते हुए प्रदक्षिणा करने के उपरांत दक्षिणा समेत वह गौ ब्राह्मण को अर्पित करे। नृप, भारत ! प्रदक्षिणा करके लवण धेनु के दान करने पर समस्त पृथिवी की प्रदक्षिणा, समस्त दान, और समस्त यज्ञों के फल, सब रस, सम्पूर्ण अन्न, सौभाग्य, परमोत्तम बुद्धि, आरोग्य और समस्त सम्पत्ति प्राप्त होती है इसमें संदेह नहीं। उसी प्रकार उसका स्वर्गलोक में महाप्रलय पर्यन्त निवास होता है।१७-२२। इस

---

१. रसं क्षारप्रदेशतः ।

पर्णौर्णकम्बलगलां लवणाढकेन कृत्वा फलस्तनवतीमपि लावणाख्याम्।
दत्त्वा द्विजाय विधिवद्रसधेनुमेनां लोकं गवां सकलसौख्ययुतो विशेत्सः ॥२३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
लवणधेनुदानव्रतविधिवर्णनं नाम पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५५

अथ षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सुवर्णधेनुदानव्रतवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि राजन्काञ्चनधेनुकाम् । यां दत्त्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥१
सुरापी ब्रह्महा गोघ्नो भीरुर्भग्नव्रतोऽपि वा । गुरुघाती स्वसृगामी परदाररतश्च यः ॥२
मुच्यते पातकैः सर्वैर्दत्त्वा काञ्चनधेनुकाम् । संशुद्धस्य सुवर्णस्य पञ्चाशत्पलिकां शुभाम् ॥३
अर्द्धेन[1] वा प्रकुर्वीत शक्त्या वा नृपसत्तम । उक्तां पश्चिमभागे तु दृष्टकुक्षिपयोधराम् ॥४
विभक्ताङ्गीं सुजघनां सुमनोहरकर्णिकाम् । सर्वरत्नविचित्राङ्गीं कारयेत्कपिलां शुभाम् ॥५
चतुर्थेन तु भागेन वत्सं तस्याः प्रकल्पयेत् । रौप्यघण्टां च दत्त्वा तु कौशेयपरिवारिताम् ॥६

भाँति ब्राह्मण को सविधान लवण धेनु के दान करने पर जिसके ऊन द्वारा गले का कम्बल, आढक प्रमाण लवण द्वारा अन्य अंग और फल के स्तन निर्मित रहते हैं, सकल सौख्य समेत उसे गो लोक की प्राप्ति होती है ।२३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
लवणधेनुदानव्रतविधि वर्णन नामक एक सौ पचपनवाँ अध्याय समाप्त ।१५५।

अध्याय १५६

सुवर्णधेनुदान-व्रत का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—राजन् मैं तुम्हें काञ्चनधेनु बता रहा हूँ, जिसके दान करने पर प्राणी समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं इसमें संशय नहीं। मद्यपान करने वाला, ब्राह्मण, गौ की हत्या करने वाला, भीरु, व्रत के भङ्ग होने पर, गुरुहन्ता, भगिनीभोगी, और पर स्त्रीगामी आदि सभी के पातक काञ्चन धेनु के दान करने पर विनष्ट हो जाते हैं। नृप सत्तम ! विशुद्ध सुवर्ण के पचास पल अथवा पच्चीस पल या यथा शक्ति सुवर्ण, द्वारा एक शुभ कपिला गौ का निर्माण कर जिसके पीछे के भाग कुक्षि और पयोधर (स्तन) आदि अंग विभक्त हों, उत्तम जघन भाग, मनोहर कान एवं श्रेष्ठ अंग सम्पूर्ण रत्नों से विचित्र बने हों। उसी प्रकार (सुवर्ण) के चौथाई भाग द्वारा उसके बच्चे की रचना करके गौ के गले में चाँदी के घंटा, रेशमी

---

१. तदर्धेन।

ताम्रशृङ्गी तथा कुर्याद्वैडूर्यमयकम्बलाम् । मुक्ताफलमये नेत्रे वैद्रुमी रसना तथा ॥७
कृष्णाजिने गुडप्रस्थं तत्रस्थां कारयेच्छुभाम् । कुम्भाष्टकसमोपेतां नानाफलसमन्विताम् ॥८
तथाष्टादश धान्यातपत्रोपानद्युगान्विताम् । भाजनं वसनं चैव ताम्रदोहनकं तथा ॥९
दीपकान्नादिलवणशर्कराधान्यकान्विताम् । प्रदद्याद्ब्राह्मणं पूज्य वस्त्रैराभरणैः शुभैः ॥१०
स्नातः प्रदक्षिणीकृत्य धेनुं सर्वाङ्गसंयुताम् । गुडधेनूक्तमन्त्रैश्च आवाह्य प्रतिपूज्य च ॥११

त्वं[1] सर्वदेवगणमन्दिरभूषणासि विश्वेश्वरत्रिपथगोदधिपर्वतानाम् ।
श्रद्धाम्बुतीक्ष्णशकलीकृतपातकौघः प्राप्नोति निवृतिमतीव परां नमामि ॥१२
लोके यथेप्सितफलार्थविधायिनीं त्वामासाद्य को हि भयभागभवतीह मर्त्यः ।
संसारदुःखशमनाय यतस्त्वाकामास्त्वां कामधेनुमिति वेदविदो वदन्ति ॥१३

एवमामन्त्र्य तां धेनुं विप्राय प्रतिपादयेत् । सदक्षिणोपस्करां च प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥१४
दानकाले तु ये देवास्तीर्थानि मनवस्तथा । शरीरे निवसन्त्यस्यास्तान्छृणुष्व नराधिप ॥१५
नेत्रयोः सूर्यशशिनौ जिह्वायां तु सरस्वती । दन्तेषु मरुतो देवाः कर्णयोश्च तथाश्विनौ ॥१६
शृङ्गाग्रगौ सदा चास्या देवौ रुद्रपितामहौ । गन्धर्वाप्सरसश्चैव ककुद्देशं प्रतिष्ठिताः ॥
कुक्षौ समुद्राश्चत्वारो योनौ त्रिपथगामिनी ॥१७
ऋषयो रोमकूपेषु अपाने वसुधा स्थिता । अन्त्रेषु नागा विज्ञेयाः पर्वताश्चास्थिषु[2] स्थिताः ॥१८

वस्त्र से सर्वाङ्ग आच्छन्न, ताँबें की सींग, वैदूर्यमणि द्वारा उसके गले के नीचे लटकने वाला कम्बल, मोती के नेत्र, विद्रुम की जिह्वा बनाये ।१-७। काले मृग चर्म पर एक अस्थ गुड रखकर उसी मृग चर्म पर उपरोक्त गौ का निर्माण करे, जो आठ कलशों से युक्त और भाँति भाँति के फल, अष्टादश धान्य, छत्र, उपानह, (भोजन दस्त्र), वस्त्र और तांबें का दोहनक, दीपक, अन्नादि, लवण, शक्कर और धान्य युक्त हो। वस्त्राभरण द्वारा ब्राह्मण की पूजा के उपरान्त प्रदक्षिणा पूर्वक सर्वाङ्गयुक्त वह काञ्चनधेनु गुडधेनु के मंत्रों द्वारा आवाहन पूजा करके ब्राह्मण को अर्पित करे। प्रदान करते समय—तू विश्वेश्वर (विष्णु) की गंगा, समुद्र और पर्वतों के निवासी समस्त देवगणों के मन्दिर की आभूषण हो, (तुम्हारा दान करने पर), श्रद्धारूपी जल की तीक्ष्णता से उसके समस्त पाप विनष्ट होने पर प्राणी अत्यन्त उत्तम निवृत्ति (शांति) प्राप्त करता है, अतः मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ। इस लोक में यथेच्छ फल प्रदान करने वाली तुम्हें प्राप्त कर कौन मनुष्य निर्भय भाग्यवान् नहीं होताहै और संसार दुःख के शमनार्थ निष्काम वेद के निष्णात विद्वान् तुम्हें कामधेनु कहते हैं—कहना चाहिए। इस प्रकार आमन्त्रित कर दक्षिणा एवं सामग्री समेत वह गौ ब्राह्मण को नमस्कार पूर्वक अर्पित करे। नराधिप ! दान के समय उस गौ के शरीर में जितने देवगण, तीर्थ, मनु आदि निवास करते हैं मैं उन्हें बता रहा हूँ, सुनो ! ८-१५। सूर्य चन्द्रमा दोनों नेत्र में जिह्वा में सरस्वती, दाँतों में मरु देव, कानों में अश्विनी कुमार, सीगों के अग्रभाग में रुद्र और पितामह, ककुद्देश (डिल्ल) में गन्धर्व, अप्सराएँ, कुक्षि में चारो समुद्र, योनि में गंगा, रोमकूप में ऋषिगण, अपान (गुदा) में वसुधा, आँतियों में नागगण, अस्थियों में पर्वत, चरणों में अर्थ काम और मोक्ष हुंकार में चारों

---

१. त्वं सर्वदेवगणमन्दिरसंघभूता, त्वं सर्वदेवगणमन्दिशोभितासि । २. अस्थिसंधिषु ।

धर्मकामार्थमोक्षास्तु पादेषु परिसंस्थिताः । हुङ्कारे च चतुर्वेदाः कण्ठे[1] रुद्राः प्रतिष्ठिताः ॥१९
पृष्ठभागे स्थितो मेरुर्विष्णुः सर्वशरीरगः । एवं सर्वमयी देवी पावनी विश्वरूपिणी[2] ॥२०
काञ्चनेन कृता धेनुः सर्वदेवमयी स्मृता । यो दद्यात्तादृशीं धेनुं सर्वदानप्रदो हि सः ॥२१
कर्मभूमौ हि मर्त्यानां दानमेतत्सुदुर्लभम् । तस्माद्देयमिदं शक्त्यां[3] सर्वकल्मषनाशनम् ॥२२
पावनं तारणं चैव कीर्तिदं शान्तिदं तथा । वर्षकोटिशतं साग्रं स्वर्गलोके गतो नरः ॥२३
नारी वा पूज्यते देवैर्विमानवरमास्थिता । गन्धर्वैर्गीयमानस्तु पुष्पैर्मालाविभूषितैः ॥२४
सर्वाभरणसम्पन्नः सर्वद्वंद्वविवर्जितः[4] । स्वर्गे स्थित्वा चिरं कालं ततो मर्त्येऽभिजायते ॥२५
आधिव्याधिविनिर्मुक्तो रूपवान्प्रियदर्शनः । एवं नरो वा नारी वा दत्त्वा दानमिदं भुवि ॥
सर्वान्कामानवाप्नोति जायमानः पुनः पुनः ॥२६

आमन्त्र्य साधुकुलशीलगुणान्विताय विप्राय यः कनकधेनुमिमां प्रदद्यात् ।
प्राप्नोति सिद्धमुनिकिन्नरदेवजुष्टं कन्याशतैः परिवृतं पदमिन्दुमौलेः ॥२७

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
सुवर्णधेनुव्रतविधिवर्णनं नाम षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५६

वेद, कण्ठ में रुद्रदेव, पृष्ठभाग में मेरु और सर्वाङ्ग में विष्णु स्थित रहते हैं । इस प्रकार सर्वदेवमयी, पावनी एवं विश्वरूपवाली इस काञ्चनधेनु का जो दान करता है उसने सब कुछ कर दिया ।१६-२१। यद्यपि इस कर्म भूमि में यह दान अत्यन्त दुलर्भ है तथापि यथाशक्ति इसका दान समस्त पापों के विनाशार्थ करना ही चाहिए । यह दान अत्यन्त पावन (संसार) कारण कीर्ति और शान्तिप्रद है और स्वर्ग लोक के उत्तम स्थान में उस प्रदाता को निवास प्राप्त होता है । दान करने वाली स्त्री भी उत्तम विमान या सुशोभित होकर पुष्प माला भूषित देवों, गन्धर्वों द्वारा पूजित होती है । सर्वाभूषणभूषित, समस्तदुःखरहित वह प्राणी चिरकाल तक स्वर्ग में रहकर पुनः मर्त्यलोक में आधिव्याधिहीन, रूपवान प्रियदर्शी मनुष्य होता है । इस प्रकार इस दान के प्रभाव से स्त्री पुरूष इस भूतल में बार-बार जन्म ग्रहण करने पर अपनी समस्त कामनाएँ सफल करते हैं । इस प्रकार साधु, कुलशील एवं गुणयुक्त किसी विप्र को काञ्चनधेनु अर्पित करने पर वह प्राणी सिद्ध, मुनि, किन्नर, देवों से सेवित और सैकड़ों कन्याओं से सुखी होकर इन्द्र मौलि (शिव) का लोक प्राप्त करता है ।२२-२७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व के श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसम्वाद के सुवर्णधेनुदानव्रत
विधि वर्णन नामक एक सौ छप्पनवाँ अध्याय समाप्त।१५६।

---

१. पुच्छे रुद्रो व्यवस्थितः । २. विश्वधारिणी । ३. भक्त्या । ४. सर्वगन्धविवर्जितः । 'गंधो गन्धक आमोदे लेशे संबंधगवयोः' इति विश्वः ।

अथ सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

रत्नधेनुदानव्रतविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि दानमन्यत्सुदुर्लभम् । रत्नधेन्विति विख्यातं गोलोकफलदं नृणाम् ॥१
पुण्यं दिनमथासाद्य गोमयेनोपलेपनम् । कृत्वा भूमौ महाराज तत्र धेनुं प्रकल्पयेत् ॥२
धेनुं रत्नमयीं कुर्यात्तत्तत्संकल्पपूर्विकाम् । स्थापयेत्पद्मरागाणामेकाशीतिं मुखे बुधः ॥३
पुष्परागशतं धेनोः पादयोः परिकल्पयेत् । ललाटे हेमतिलकं मुक्ताफलशतं दृशोः ॥४
भ्रूयुगे विद्रुमशतं शुक्ती कर्णद्वये स्मृते । काञ्चनानि च शृङ्गाणि शिरोवज्रशतात्मकम् ॥५
ग्रीवायां नेत्रपुटके गोमेदकशतं तथा । इन्द्रनीलशतं पृष्ठे वैदूर्यशतं पार्श्वके ॥६
स्फाटिकैरुदरं कार्यं सौगन्धिकशतं कटौ । खुरा हेममयाः कार्याः पुच्छं मुक्तावलीमयम् ॥७
सूर्यकान्तेन्दुकान्तौ च घ्राणे कर्पूरचन्दनैः । कुंकुमेन च रोमाणि रौप्यं नाभिं च कारयेत् ॥८
गारुत्मतशतं तद्वदपाने परिकल्पयेत् । तथान्यानि च रत्नानि स्थापयेत्सर्वसंधिषु ॥९
कुर्याच्छर्करया जिह्वां गोमयं च गुडात्मकम् । गोमूत्रमाज्येन तथा दधिदुग्धस्वरूपतः ॥१०
पुच्छाग्रे चामरं दद्यात्स्तनयोस्ताम्रदोहनम् । कारयेदेवमेवं तु चतुर्थांशेन वत्सकम् ॥११
नानाफलानि पार्श्वेषु कृत्वा पूजां प्रयत्नतः । गुडधेनुवदावाह्य इदं चोदाहरेत्ततः ॥१२

अध्याय १५७

रत्नधेनुदानव्रत विधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें एक अन्य सुदुर्लभ रत्नधेनु का दान बता रहा हूँ, जो मनुष्यों को गोलोक फल प्रदान करता है। महाराज ! किसी पुण्य दिन गोबर से लिपी हुई भूमि में उस धेनु की रचना करनी चाहिए।१-२। विद्वान् को चाहिए कि संकल्प पूर्वक उसके प्रत्येक अंग की रचना करते हुए इक्यासी पद्मराग मणि द्वारा उसके मुख, सौ पुष्पराग से चरण, सुवर्ण तिलक से भाल सौ मोतियों से दोनों नेत्र, सौ विद्रुम से दोनों भौंह, सीप से दोनों कान, काञ्चन की सींग, सौ वज्र (हीरा) से शिर, सौ गोमेदक से ग्रीवा और नेत्र पुट (पलक) सौ इन्द्र नील से पृष्ठ भाग, सौ वैदूर्य से पार्श्व भाग स्फटिक से उदर, सौ सौगन्धिक से कटि, सुवर्ण की खुर, मोतियों की पूँछ, सूर्यकान्ता और चन्द्रकान्ता मणि तथा कपूर चन्दनसे घ्राण (नाक), कुंकुम के लोम, चाँदी की नाभि, सौ गारुत्मत से अपान (गुदा) भाग, और रत्नों द्वारा समस्त संधियों (गाठों) की रचना करनी चाहिए। उसी प्रकार शक्कर की जिह्वा, गुड का गोबर, घृत दधि दुग्ध स्वरूप का गोमूत्र, चामर से पूँछ ताँबें का स्तन निर्माण करके चतुर्थांश (चौथाई) भाग से उसके वत्स (बच्चे) की रचना करनी चाहिए।३-११। उसके पार्श्व भाग में अनेक फल से भूषित कर गुडधेनु के मंत्रों द्वारा आवाहन पूजन

त्वां सर्वदेवगणवासमिति[1] स्तुवन्ति रुद्रेन्द्रचन्द्रकमलासनवासुदेवाः ।
तस्मात्समस्तभुवनत्रयदेहयुक्तां मां पाहि देवि भवसागर मग्नमाशु[2] ॥१३
एवमामन्त्र्य तां धेनुं विप्राय प्रतिपादयेत् । सम्पूज्य वस्त्राभरणैर्विधिज्ञं वेदपारगम् ॥१४
ततश्च दक्षिणां दत्त्वा प्रणिपत्य क्षमापयेत् । एवं यः कुरुते पार्थ तस्य पुण्यफलं शृणु ॥१५
कल्पकोटिशतं साग्रं शिवलोके सुखं[3] वसेत् । ततः काले बहुतिथे राजराजो भवेदिह ॥१६
सर्वकामसमृद्धश्च शत्रुपक्षक्षयंकरः ॥१७
इति सकलविधिज्ञो रत्नधेनुप्रदानं वितरति स विमानं प्राप्य देदीप्यमानम् ।
सकल कलुषमुक्तो बन्धुभिः पुत्रपौत्रैः स हि मदसरूपः स्थानमभ्येति शम्भोः ॥१८
इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
रत्नधेनुदानव्रतविधिवर्णनं नाम सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५७

अथाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

उभयमुखीगोदानव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

प्रसूयमाना दातव्या धेनुर्ब्राह्मणपुङ्गवे । विधिना केन धर्मज्ञ[4] दाने तस्याश्च किं फलम् ॥१

करने के अनन्तर रुद्र, इन्द्र, चन्द्र, ब्रह्मा एवं भगवान् वासुदेव समस्त देवगणों का निवास स्थान कहकर तुम्हारी स्तुति करते हैं अतः समस्त भुवनों की देह स्वरूप तुम मेरी शीघ्र रक्षा करो। क्योंकि मैं भवसागर में डूब रहा हूँ। ऐसा कहकर वह धेनु सादर ब्राह्मण को अर्पित करे। पुनः वस्त्राभरण द्वारा उस विधानवेत्ता एवं वेदनिष्णात ब्राह्मण की अर्चा और दक्षिणा प्रदान करके नमस्कार पूर्वक क्षमा प्रार्थना करे। पार्थ! इस भाँति उसके दान करने पर जिन फलों की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो! कोटि कल्प तक शिवलोक के उत्तम स्थान में अनेक काल तक सुखानुभव करने के अनन्तर इस लोक में महाराज होता है, जो समस्त कामनाओं से समृद्ध शत्रुपक्ष का हन्ता होता है। इस प्रकार रत्नधेनु का दान करने पर उस समस्त विधान वेत्ता को देदीप्यमान विमान की प्राप्ति पूर्वक पाप मुक्त होने के नाते पुत्र पौत्र एवं बान्धवों समेत मदन सौन्दर्य तथा शम्भु का परमपद प्राप्त होता है।१२-१८

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
रत्नधेनुदान व्रत विधि वर्णन नामक एक सौ सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त।१५७।

अध्याय १५८

उभयमुखी (गर्भिणी) गोदानव्रत का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—धर्मज्ञ! आपने बताया है कि प्रसव करने वाली ही गौ ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करनी चाहिए अतः उसका विधान और उसके दान का फल बताने की कृपा कीजिये।१

---

१. त्वां सर्वदेवगणधामनिधि विरिंचिरुद्रेन्द्रविष्णुकमलासनवासुदेवाः। २. भवसागरपीडच-मानम्। ३. सुखी भवेत्। ४. कर्मश।

श्रीकृष्ण उवाच

प्रसूयमानातिपुण्यैः प्राप्यते गौर्नृपोत्तम । प्राप्नुवन्ति नराः केचित्पुण्यसम्भारविस्तराः ॥२
यावत्पादौ योनिगतौ शिरश्चैव प्रदृश्यते । तावद् गौं पृथिवी ज्ञेया यावद्गर्भं न मुञ्चति ॥३
गौर्यावद्द्विमुखी चैव यदा भवति भारत । तदासौ पृथिवी ज्ञेया सशैलवनकानना ॥४
दत्त्वोभयमुखीं राजन्यत्पुण्यं प्राप्यते नृभिः । न तद्वर्णयितुं याति मुखेनैकेन केनचित् ॥५
किमिष्टैर्बहुभिर्यज्ञैर्दानैर्दत्तैश्च सत्तम । प्रसूयमानां गामेकां देहि किं बहुना तव ॥६
एकैव पाति नरकात्सुखमेकैव कारयेत् । एकापि द्विमुखी दत्ता गौर्गौर्भवति भारत ॥७
स्वर्णश्रृङ्गीं रौप्यखुरां मुक्तालङ्गूलभूषिताम्[१] । कांस्योपदोहनां राजन्नलंकृत्य द्विजोत्तमे ॥
प्रसूयमानां गां दत्त्वा महत्पुण्यफलं लभेत् ॥८
यावन्ति धेनुरोमाणि वत्सस्यापि नराधिप । तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥९
पितॄन्पितामहांश्चैव तथावै प्रपितामहान् । समुद्धरत्यसंदिग्धं नरकाद्भूरिदक्षिणः ॥१०
घृतक्षीरवहा नद्यो दधिपायसकर्दमाः । तत्र ते यान्ति यत्रास्ति द्रुमाचेप्सितकामदः ॥११
यो ददाति सुवर्णेन बहुना सह भाविनीम् । गोलोकः सुलभस्तस्य ब्रह्मलोकश्च पार्थिव ॥१२
न देया दुर्बला राजन्धेनुर्नैवाल्पदक्षिणा । काम्योऽयं विधिरुद्दिष्टः फलदो विधिना कृतः ॥१३

श्रीकृष्ण बोले—नृपोत्तम ! अत्यन्त पुण्य द्वारा प्रसव करने वाली गौ की प्राप्ति होती है अतः पुण्य संभार पूर्ण मनुष्य ही उसे प्राप्त कर सकते हैं अन्य नहीं। प्रसवावस्था में जब तक बच्चे (बछड़े) का चरण योनि के भीतर ही और बाहर के बल शिर ही दिखायी पड़े उस समय गर्भ मुक्त न होने तक वह गौ पृथिवी कही जाती है। भारत ! गौ जब द्विमुखी (गर्भिणी) होती है उस समय पर्वत वन आदि मुक्त पृथिवी जानना चाहिए। राजन् ! इसलिए दो मुखी (गर्भिणी) गौ के दान करने पर जिस पुण्य की प्राप्ति होती है एक मुख से उसके वर्णन करना असम्भव है।२-५। सत्तम ! अनेक अभीष्ट यज्ञ और अन्य दान सुसम्पन्न न करके तुम एक ही प्रसदिनी गौ का दान करो क्योंकि एक ही गौ नरक से रक्षा करती हुई सुख प्रदान करती है। भारत ! यहाँ तक कि द्विमुखी एक ही गौ का दानकरने पर वही गौ कहलाती है। राजन् ! सुवर्ण द्वारा सींग, चाँदी से खुर और मोतियों से लांङ्गूल (पूँछ) भूपित करने पर कांसे की दोहनी समेत उसे किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करना चाहिए क्योंकि प्रसव करने वाली गौ के दान करने से महान् पुण्य फल की प्राप्ति होती है। नराधिप ! उस धेनु और उसके बच्चे के जितने लोम रहते हैं उतने सहस्र वर्ष उसका प्रदाता प्राणी स्वर्ग लोक में पूजित होता है।६-९। (गौ के साथ) अधिक दक्षिणा देने वाला वह प्राणी अपने पिता, पितामह, और प्रपितामह आदि पीढ़ियों का नरक से उद्धार करता है इसमें संदेह नहीं। जिस लोक में घृत और क्षीर की नदियाँ प्रवाहित होती है और दधि एवं पायस (खीर) जिनमें कीचड़ रूप है तथा कल्प वृक्ष जहाँ भूषित है वहाँ का उत्तम स्थान इसका प्रदाता प्राप्त करता है। पार्थिव ! सुवर्ण समेत उस प्रसवकारिणी गौ के दान करने पर उसे गोलोक और ब्रह्मलोक सुलभ हो जाते हैं। राजन् ! कभी कभी दुर्बल गौ और अल्प दक्षिणा का दान न करना चाहिए क्योंकि यह फलप्रद काम्य

---

१. रक्तलाङ्गूलभूषिताम्।

स्त्रियश्च तं चन्द्रसमानवक्त्राः प्रतप्तजाम्बूनदतुल्यवर्णाः ।
महानितम्बास्तनुवृत्तमध्याः सेवन्त्यजस्रं नलिनाभिनेत्राः ॥१४

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
उभयमुखीगोदानव्रतविधिवर्णनं नामाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।१५८

अथैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

गोसहस्रप्रदानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

गोसहस्रविधानं च कथयस्व जनार्दन । कस्मिन्काले प्रदातव्यं कथं देयं च तद्भवेत् ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

गावः पवित्रा लोकानां गाव एव परायणम् । ब्रह्मणा सृजता लोकान्वृत्तिहेतोः प्रजेश्वर ॥
गावः प्रथमतः सृष्टास्त्रैलोक्य हितकाम्यया ॥२
यासां मूत्रपूरीषेण देवतायतनान्यपि । शुचीनि समजायन्त किंभूतमधिकं ततः ॥३
मूलं यज्ञस्य काम्यस्य सर्वदेवमयाः शुभाः । गोमये वसते लक्ष्मीः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥४
ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम् । एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरन्यत्र तिष्ठति ॥५

विधान ब्रह्मा का ही बनाया हुआ है । इस प्रकार ऐसे दानी की सेवा ऐसी स्त्रियाँ निरन्तर करती हैं, **चन्द्रमा के समान जिनके** मुख, तपाये हुए सुवर्ण के समान देह, महान् नितम्ब, मध्य भाग (कटि) सर्वथा **क्षीण (पतला)**, और कमल की भाँति विशाल नेत्र हैं ।१०-१४

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठर के **सम्वाद में**
उभयमुखी गोदान व्रतविधिवर्णन नामक एक सौ अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त ।१५८।

अध्याय १५९

गोसहस्रदानविधि का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—जनार्दन ! गोसहस्र का विधान तथा वह किस समय और किसे दिया जाता है (ये सभी बातें) मुझे बताने की कृपा कीजिये ।१

श्रीकृष्ण बोले—अजेश्वर ! लोक में गौ सर्वत्र पवित्र और पारायण करने योग्य हैं? इसीलिए ब्रह्मा ने अपने वृत्तार्थ लोक सर्जन करते हुए सर्वप्रथम तीनों लोकों के हितार्थ गौओं की ही सृष्टि की । क्योंकि जिसके मूत्र व पुरीष (गोबर) से देवालय भी पवित्र होते हैं उसके विषय में इससे अधिक और क्या कहा जा सकता है । गौएँ काम्य यज्ञों के मूलकारण हैं क्योंकि वे समस्त देवमय एवं शुभात्मक होती हैं । उनके गोमय (गोबर) में लक्ष्मी का निवास रहता है यही उसके लिए पर्याप्त निदर्शन है ।२-४। ब्राह्मण और गौ का कुल एक ही उसे दो भागों में विभक्त कर दिया गया है, जिसमें ब्राह्मणों के अधीन मंत्र और गौओं के अधीन

यासां पुत्रैर्धृता लोका धारिताः सर्वदेवताः । तासां दानविधानं च शृणु तत्पृथिवीपते ।।६
एकाऽपि गौर्गुणोपेता कृत्स्नं तारयते कुलम् । सुरूपा शीलसम्पन्ना युवतिः सुपयस्विनी ।।७
सुवत्सा सुदुहा चैव पापरोगविवर्जिता । विधिवत्तादृशा दत्ता कृत्स्नं तारयते कुलम् ।।८
किं पुनर्दश यो दद्याच्छतं वा विधिपूर्वकम् । सहस्रं तु पुनर्दद्यात्तस्य वै किमिहोच्यते ।।९
गोसहस्रं पुरा दत्तं नहुषेण महीभृता । स गतो ब्रह्मणः स्थानं ययातिश्च महामतिः ।।१०
गङ्गातीरे महद्दत्तमादित्या पुत्रकाम्यया । लेभे पुत्रं त्रिलोकेशं नारायणमकल्मषम् ।।११
श्रूयन्ते पितृभिर्गीता गाथास्ताः शृणु भूपते ।।१२
यदि कश्चित्कुलेऽस्माकं गोसहस्रं प्रदापयेत् । यास्यामः परमां सिद्धिं कारितां पुण्यकर्मणा ।।१३
दुहिता वा कुले काचिद्गोसहस्रप्रदायिनी । सोपानः सुगतिर्दत्तो भविष्यति न संशयः ।।१४
अतः परं प्रवक्ष्यामि यज्ञं वै सर्वकामिकम् । गोसहस्रं तदा दद्याच्छास्त्रोक्तविधिवन्नरः ।।१५
तीर्थे गोष्ठे गृहे वापि मण्डपं कारयेच्छुभम् , दशद्वादशहस्तं वा चतुर्वक्त्र सतोरणम् ।।१६
तन्मध्ये कारयेद्वेदिं चतुर्हस्तामनूपमाम् । हस्तमात्रप्रमाणेन हस्तेन समलंकृताम् ।।१७
पूर्वोत्तरेऽथदिग्भागे ग्रहवेदिं प्रकल्पयेत् । ग्रहयज्ञविधानेन ग्रहांस्तत्र क्रमाद्यजेत् ।।१८
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च पूज्याः प्रथममेव हि । ऋत्विजः परिकर्तव्या षोडशाष्टौ च शोभनाः ।।१९
चत्वारो वा महाराज उपाध्यायश्च पंचमः । सर्वाभरणसम्पन्ना कर्णवेष्टाङ्गुलीयकैः ।।२०

हवि रहती है ।५। पृथ्वीपते ! जिनके पुत्रों ने समस्त लोक और देवों को धारण किया है, उन्हीं का दान विधान मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ! गुणयुक्त सुरूप, शीलपूर्ण और प्रति पयस्विनी एक ही गौ (दान करने पर) समस्त कुल का उद्धार करने में समर्थ होती है । सुन्दर बच्चे वाली, सुदुहा एवं पापरोग रहित पूर्वोक्त भाँति की एक ही गौ सविधान दान करने पर सम्पूर्ण कुल का उद्धार करती है जिसने सविधान दश, सौ या सहस्र गौओं का दान किया है उसके लिए कहाँ तक कहा जा सकता है । पूर्वकाल में राजा नहुष और महाबुद्धिमान् ययाति ने गो सहस्र का दान किया था जिससे उन्हें ब्रह्मलोक की प्राप्ति हुई । उसी भाँति गङ्गा तट पर अदिति ने पुत्र की कामना से उसका दान किया था जिससे उन्हें त्रिलोक अधिपति, कल्मषहीन भगवान् नारायण पुत्र रूप में प्राप्त हुए । भूपते ! पितर लोगों का गान सुना जाता है मैं उस गाथा को बता रहा हूँ, सुनो ! ६-१२। यदि हमारे कुल में कोई गोसहस्र का दान करता है तो उस पुण्य कर्म द्वारा हमें परम सिद्धि की प्राप्ति अवश्य होगी । यदि किसी कन्या ने ही कुल में गो सहस्र का दान किया तो हमारे लिए स्वर्ग सोपान समेत उसने सुगति भी प्रदान किया इसके संदेह नहीं । इसके अनन्तर मैं तुम्हें समस्त कामनाओं को सफल करने वाला गो सहस्र नामक यज्ञ का शास्त्रोक्त विधान बता रहा हूँ, जिसके द्वारा मनुष्य को यह दान अवश्य करना चाहिए । किसी तीर्थ, गोशाला अथवा गृह में दश या बारह हाथ का चौमुख और तोरण समेत शुभ मण्डप की रचना कर उसके मध्य भाग में चार हाथ की विस्तृत एवं अनुपम वेदी का निर्माण कर जो हस्त मात्र के प्रमाण से हस्त द्वारा ही अलंकृत की गयी हो। उसके पूर्वोक्त (ईशान) कोण में गृह वेद, का निर्माण कर उसमें गृह यज्ञ के विधान द्वारा ग्रहों का स्थापन पूजन करे ।१३-१८। महाराज सर्वप्रथम ब्रह्मा, विष्णु रुद्र की अर्चना करके सुशोभन करके सोलह, आठ या चार ऋत्विज और पाँचवें एक उपाध्याय का चरण स्पर्श करे, जो कुण्ड तथा मुद्रिका (अंगूठी) आदि समस्त

शोभिताश्छत्रसम्पन्नास्ताम्रपात्रद्वयान्विताः । ग्रहयज्ञोक्तविधिना होमं हव्यं समाचरेत् ।।२१
वेद्याः पूर्वोत्तरे भागे शिवकुण्डं नियोजयेत् । कुम्भद्वयं च द्वारेषु पंचरत्नं सपल्लवम् ।।२२
कार्यं कुरुकुलश्रेष्ठ ततो होमं समारभेत् । लोकपालबलिं दद्यात्तुलापुरुषदानवत् ।।२३
गोसहस्राद्विनिष्क्रष्य सवत्सं दशकं गवाम् । गोसहस्राद्बहिष्कुर्याद्वस्त्रमाल्यविभूषणम् ।।
अंतःप्रवेश्य दशकं वस्त्रैर्माल्यैश्च पूजयेत् ।।२४
सुवर्णघण्टिकायुक्तं ताम्रद्रोहनकान्वितम् । सुवर्णातिलकोपेतं खुरै रौप्यैरलंकृतैः ।।
हेमरत्नमयैः शृङ्गैश्चामरै श्चोपशोभितम् ।।२५
मुनयः केचिदिच्छन्ति काञ्चनं नन्दिकेश्वरम् । लवणद्रोणशिखरे भक्त्या तामपि कारयेत् ।।२६
एका प्रत्यक्षऋषभे केषांचिद्दानमिष्यते । ग्रहान्सुरांश्च सम्पूज्य माल्यवस्त्रफलाक्षतैः ।।२७
पताकाभिरलंकृत्य दैवतायतनानि च । गोशतेऽपि दशांशेन सर्वमेतत्प्रकल्पयेत् ।।२८
यदि सर्वा न विद्यन्ते गावः सर्वगुणोत्तमाः । दशकं पूज्य यत्नेन इतरः परिकल्पयेत् ।।२९
पुण्यकालमथो वाद्यगीतमङ्गलनिस्वनैः । सर्वौषध्युदकस्नातः स्नापितो द्विजपुंगवैः ।।
इममुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः ।।३०
नमो वो विश्वमूर्तिभ्यो विश्वमातृभ्य एव च । लोकाधिवासिनीभ्यस्तु रोहिणीभ्यो नमोनमः ।।३१
गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनान्येकविंशतिः । ब्रह्मादयस्तथा देवा रोहिण्यः पान्तु मातरः ।।३२
गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः । गावो मे सर्वतः सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ।।३३

आभूषणों से भूषित, छत्रयुक्त और दो ताम्र पात्रों से युक्त हों, उन्हें ग्रह यज्ञ के विधान द्वारा हव्य का हवन सुसम्पन्न करना चाहिए। कुरुकुलश्रेष्ठ ! वेदी के पूर्वोत्तर भाग में शिवकुण्ड का निर्माण और प्रत्येक द्वार पर पञ्चरत्न और पल्लवभूषित दो कलश की प्रतिष्ठा करके अनन्तर हवन कार्य तुलापुरुष के दान की भाँति लोकपालों की बलि अर्पित करनी चाहिए। जो सहस्र भैंसे वत्स (बच्चे) समेत दश गौ पृथक् कर पुनः वस्त्र माला आदि से सुशोभित करने के अनन्तर उन्हें सुवर्ण की घंटियों, ताँबें का दोहनक, (भालमें) सुवर्ण का तिलक, चाँदी से अलंकृत खुर, सुवर्ण रत्नमय सींग, और चामर से विभूषित करे। कुछ मुनिगणों की सम्मति है कि सुवर्ण द्वारा एकनन्दिकेश्वर का भी निर्माण कर उसे भक्तिपूर्वक उसी लवण द्रोण के शिखर पर स्थापित करना चाहिए। प्रत्यक्ष ऋषभ (वृष) के रहते हुए एक ही गौ का दान करना चाहिए, यह भी कुछ लोगों की सम्मति है। माला, वस्त्र, फल, अक्षतादि द्वारा ग्रहों और देवों की अर्चा करते हुए देवालयों को भी पताकाओं से अलंकृत करे। इसी भाँति गोशत के दान में भी उसके दशांश (दश) गौ द्वारा ही दान विधान की कल्पना करनी चाहिए। यदि सभी गौएँ सर्वगुणयुक्त न हो तो दश की ही सर्वप्रथम अर्चा करके इतर की कल्पना करें। पुण्य काल के समय भी (उस दान के अवसर पर) वाद्य, गीत, मांगलिक ध्वनि समेत समस्त औषध मिश्रित उदक स्नान द्विजपुङ्गवों के मंत्रोच्चारण पूर्वक सुसम्पन्न कराकर पुष्पाञ्जलि लेकर इस मंत्र का उच्चारण करें।१९-३०। विश्वमूर्ति तथा विश्व माता को नमस्कार है, लोकाधिवासिनी एवं रोहिणी रूप आप को नमस्कार है। गौओं के अंगों में इक्कीस भुवन और ब्रह्मादि देवगण प्रतिष्ठित हैं अतः रोहिणी माताएँ मेरी रक्षा करें। क्योंकि गौएँ मेरे सम्मुख, पृष्ठ भाग एवं चारों ओर स्थित हैं, इसलिए में गौओं के मध्य में ही निवास करता हूँ। यतः वृष रूप धारण कर

यस्मात्त्वं वृषरूपेण धर्मश्चैव सनातनः । अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः पाहि सनातनः ॥३४
इत्यामन्त्र्य ततो दद्याद्गुरवे नन्दिकेश्वरम् । सर्वोपस्करणोपेतं गोयुतं च विशेषतः ॥३५
गवां शतमथैकैकं तदर्धं चापि विंशतिः । दशपञ्चशतं दद्याद्बहुभ्यस्तदनुज्ञया ॥३६
नैका बहुभ्यो दातव्या दाता दोषकरो भवेत् । बह्वचस्त्वेकस्य दातव्याः श्रीमदारोग्यवृद्धये ॥३७
पयोव्रतस्ततस्तिष्ठेदेकाहं गोसहस्रदः । तथैव ब्रह्मचारी स्याद्य इच्छेद्विपुलां श्रियम् ॥३८
न देया दुर्बला धेनुर्नाल्पक्षीरा न रोगिणी । न जीर्णा जीर्णवस्त्रा वा नापत्यगतचेतना ॥३९
अनेन विधिना यस्तु गोसहस्रप्रदो भवेत् । सर्वपापविनिर्मुक्तः सिद्धचारणसेवितः ॥४०
विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना । सर्वेषां लोकपालानां लोके सम्पूज्यते सुरैः ॥४१
सप्तावरान्सप्त परान्सप्त चैव परावरान् । पुरुषानुद्धरेद्दत्त्वा गोसहस्रं विधानतः ॥४२
स्वर्गलोकाच्च्युतो वाथ नारी वा सत्यपरायणा । सप्त जन्मानि राज्ञी स्यात्स्तूयमाना पुनः पुनः ॥४३

न त्वेवेदं दानमात्रं प्रशस्तं पात्रं कालो गोविशेषो विधिश्च ।
तस्मादेताः सर्वभूषासमेताः पात्रे काले क्षीरवत्यो विधानात् ॥४४
एकापि गोर्बहुगुणा गुणिने प्रदत्ता दातुः कुलं त्रिपुरुषं विधिवत्पुनाति ।
यः श्रद्धया वितरतीह गवां सहस्रं शक्यं फलं न नृप तेऽस्य मयाभिधातुम् ॥४५

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
गोसहस्रप्रदानविधिव्रतवर्णनं नामैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१५९

तुम सनातन धर्म हो और अष्ट मूर्ति (शिव) का अधिष्ठान हो अतः सनातन रूप आप मेरी रक्षा करें। इस प्रकार आमन्त्रित करके गौ के साथ वह नन्दिकेश्वर को भी गुरुचरण में अर्पित करे। अन्तर प्रत्येक ब्राह्मण को सौ सौ गौ, उसका आधा भाग रहने पर भी, दश या पाँच सौ तक भी उन (गुरु) की आज्ञा से अनेकों में विभक्त कर देना चाहिए। एक सौ अनेकों को अर्पित करने से दाता दोषभागी होता है। किन्तु श्रीमान् होने और आरोग्य वृद्धयर्थ एक व्यक्ति को अनेक गौएँ समर्पित करनी चाहिए। तदुपरांत वह गोसहस्र का दानी व्यक्ति विपुल श्री की कामना वश वह दिन पयपान और ब्रह्मचारी रहकर व्यतीत करे। दुर्बल, अल्प दूध देने वाली, रोगिणी, वृद्धा, जीर्ण वस्त्र धारण करने वाली, और जिसके बच्चे जीवित न रहते हों, ऐसी गौ का दान कभी न करें। इस विधान द्वारा गो सहस्र का प्रदाता समस्त पापों से मुक्त, सिद्ध चारणों से सेवित होते हुए किंकड़ी जल (छोटी-छोटी घंटियों) से भूषित तथा सूर्य के समान प्रकाशित विमान द्वारा सभी लोकपालों के लोक में पहुँचने पर देवों द्वारा पूजित होता है। सविधान गोसहस्र का दान करने पर वह प्राणी पूर्व की सात पीढ़ी पर की सात पीढ़ी और उससे आगे की सात पीढ़ी का उद्धार करता है। स्वर्ग लोक से कभी च्युत होने पर पुनः राजा होता है और स्त्री होने पर वह सात जन्म तक पतिव्रता रानी होती है जिनकी लोग सदैव स्तुति करते रहते हैं। इस प्रकार न केवल दान मात्र की ही प्रशंसा है अपितु पात्र, काल, गोविशेष (उत्तम गौ) और वह विधान की भी वैसी ही प्रशंसा है अतः सुअवसर पर सर्वाभरण भूषित धेनु गौ का दान सविधान किसी सुपात्र को करना चाहिए। नृप ! सविधान अनेक गुण सम्पन्न एक ही गौ किसी गुणी ब्राह्मण को अर्पित करने पर दाता के तीन पीढ़ी को पवित्र करतो है और जिसने श्रद्धा समेत गो सहस्र का दान करता है उसका फल वर्णन करने में मैं असमर्थ हूँ।३१-४५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
गोसहस्रप्रदानविधि व्रत वर्णन नामक एक सौ उन्सठवाँ अध्याय समाप्त।१५९।

अथ षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

वृषभदानव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

युष्मद्वाक्यामृतमिदं शृण्वानोऽहं जनार्दन । न तृप्तिमधिगच्छामि जातं कौतूहलं हि मे ॥१
गोपतिः किल गोविन्दस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः । गोवृषस्य प्रदानेन त्रैलोक्यमभिनंदति ॥२
तद्गोवृषभदानस्य फलं मे कथयाच्युत ॥

श्रीकृष्ण उवाच

वृषदानफलं पुण्यं[1] शृणुष्व कथयामि ते ॥३
पवित्रं पावनं चैव सर्वदानोत्तमोत्तमम् । दशधेनुसमोऽनड्वानेकश्चैकधुरंधरः ॥
दशधेनुप्रदानाद्धि स एवैको विशिष्यते ॥४
यो हृष्टश्चातिपुष्टाङ्गो ह्यरोगः[2] पाण्डुनन्दन । युवा भद्रः सुशीलश्च सर्वदोषविवर्जितः ॥५
धुरन्धरः स्थापयते एक एव कुलं महत् । त्राता भवति संसारे नात्र कार्या विचारणा ॥६
अलंकृत्य वृषं शान्तं पुण्यकाल उपस्थिते । रौप्यलांगूलसंयुक्तं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥७
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र तं शृणुष्व वदामि ते ॥८
धर्मस्त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारकः । अष्टमूर्तेरधिष्ठानमत[3] पाहि सनातन ॥९

अध्याय १६०

वृषभ (साँड़) दान का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—जनार्दन ! आप की अमृतवाणी सुनते हुए मुझे तृप्ति नहीं हो रही है प्रत्युत कौतूहल उत्पन्न होता है । अच्युत ! गोपति गोविन्द ही हैं यह तीनों लोकों में प्रख्यात है और गोवृष के दान करने पर तीनों लोक को हर्ष प्राप्त होता है अतः उस गोवृष (बैल) के दान का फल बताने की कृपा कीजिये ।१-२

श्रीकृष्ण बोले—वृषदान का वह पुण्य फल मैं तुम्हें बता रहा हूँ, जो अत्यन्त पावन एवं परमोत्तम दान है, सुनो ! एक धुरन्धर अनड्वान् (वृष) दश धेनु के समान माना जाता है अतः दश धेनु के प्रदान से वह एक ही विशिष्ट कहा गया है । पाण्डुनन्दन ! हृष्ट, पुष्ट, नीरोग, युवा, भद्र रूप, सुशील, सर्वदोष रहित एक ही धुरंधर संसार में महान् कुल की स्थापना करता है और रक्षक होता है यह निर्विवाद है । किसी पुण्य अवसर पर शांत वृष को अलंकृत कर, जो चाँदी भूषित पुच्छ युक्त हो, जिस मंत्र से ब्राह्मण को अर्पित करना चाहिए । मैं बता रहा हूँ सुनो ! राजेन्द्र ! उस समय ऐसा कहे वृष रूप से तुम धर्म मूर्ति हो, जगत् को आनन्द देने वाले एवं शिव का सनातन अधिष्ठान हो अतः मेरी रक्षा करो ।३-९। इस प्रकार

---

१. दिव्यम् । २. अरोषः । ३. ततः ।

दत्त्वैवं दक्षिणायुक्तं प्रणिपत्य विसर्जयेत् । सप्तजन्मकृतं पापं वाङ्मनः कायकर्मणाम् ॥
तत्सर्वं विलयं याति गोदानसुकृतेन च ॥१०
यानं वृषभसंयुक्तं दीप्यमानं सुशोभनम्[1] । आरुह्य कामगं दिव्यं स्वर्लोकमधिरोहति ॥११
यावन्ति तस्य रोमाणि गोवृषस्य महीपते । तावद्वर्षसहस्राणि गवां लोके महीयते ॥१२
गोलोकादवतीर्णस्तु इह लोके द्विजो भवेत् । यज्ञयाजी महातेजाः सर्वब्राह्मणपूजितः ॥१३
यथोक्तं ते महाराज कस्य देयो वृषोत्तमः । तदहं[2] ते प्रवक्ष्यामि पात्रं त्राणपदं नृणाम् ॥१४

ये क्षान्तदान्ताः श्रुतिपूर्णकर्णा जितेंद्रियाः प्राणिवधान्निवृताः ।
प्रतिग्रहे संकुचिता गृहस्थास्ते ब्राह्मणास्तारयितुं समर्थाः ॥१५
ऊर्जस्विनं भरसहं दृढकन्धरं[3] च यच्छन्ति ये वृषमशेषगुणोपपन्नम् ।
दत्तेन यद्भवति गोदशकेन पुण्यं सत्यं भवन्ति भुवि तत्फलभागिनस्ते ॥१६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
वृषभदानव्रतवर्णनं नाम षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६०।

अथैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

कपिलादानमाहात्म्यवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

कपिलादानमाहात्म्यं कथयस्व जगत्पते । पुण्यं यत् सर्वदानानां सर्वपातकनाशनम् ॥१

दक्षिणा समेत दान करते हुए नमस्कार पूर्वक उसका विसर्जन करे। मन, वाणी और शरीर द्वारा किये गये सात जन्मों के पाप गोदान के पुण्य द्वारा विनष्ट हो जाते हैं। वृषयुक्त उस देदीप्यमान, सुशोभन, कामप्रद, एवं दिव्य विमान द्वारा स्वर्ग लोक प्राप्त करता है। महीपते ! उस गोवृष के शरीर में जितने लोम रहते हैं उतने सहस्र वर्ष वह गो लोक में पूजित होता है और गो लोक से यहाँ आने पर ब्राह्मण कुल में जन्म ग्रहण करता है, जो यज्ञयाजी, महातेजस्वी और समस्त ब्राह्मणों का पूज्य रहता है, महाराज ! तुमने जो कहा कि वह उत्तम वृष किसे अर्पित करना चाहिए। मनुष्यों के त्राता उस पात्र को भी मैं बता रहा हूँ—जो सहनशील, शुद्ध वेदाध्यायी, संयमी, हिंसा रहित, और प्रतिग्रह (दान) ग्रहण करने में संकोच करता तो वही गृहस्थ ब्राह्मण उद्धार करने में समर्थ होता है। बली भार सहन सकने वाला, दृढ़ कंधा, समस्त गुण सम्पन्न वृष का दान करने वाला प्राणी दशगोदान के पुण्य फल का भागी होता है यह सत्य है।१०-१६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
वृषभदान व्रत वर्णन नामक एक सौ साठवाँ अध्याय समाप्त ।१६०।

अध्याय १६१

कपिलादानमाहात्म्य का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—जगत्पते ! आप मुझे कपिला दान का माहात्म्य बताने की कृपा कीजिये, जो समस्त दानों में पुण्य रूप एवं सम्पूर्ण पातकों का नाशक हैं।१

---

१. सुशोभितम् । २. तदप्यहं ते वक्ष्यामि । ३. दृढ़बन्धनम् ।

श्रीकृष्ण उवाच

तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि विनताश्वेन यत्पुरा । कथितं कपिलादानं तच्छृणुष्व महामते ॥२

विनताश्व उवाच

अतः परं महाराजो भयमुख्याः समासतः । विधानं यद्वराहेण धरण्यै कथितं पुरा ॥३
तदहं सम्प्रवक्ष्यामि नवपुण्यफलं च यत् ॥

धरण्युवाच

यत्त्वया कपिला नाम पूर्वमुत्पाविता प्रभो ॥४
होमधेनुः सदा पुण्या धेनुर्यज्ञावतारभूः । सा कथं ब्राह्मणेभ्यो हि देया कस्मिन्दिनेऽपि च ॥५
कीदृशाय च विप्राय ज्ञातव्या पुण्यलक्षणा । कति वा कपिलाः प्रोक्ताः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥६
तासां प्रयत्नाद्दानेन किं पुण्यं स्याच्च माधव । एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरान्मधुसूदन ॥७

वराह उवाच

शृणुष्व भद्रे तत्त्वेन पवित्रं पापनाशनम् । कृत्वा यत्सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥८
कपिला अग्निहोत्रार्थं यज्ञार्थे च वरानने । उद्धृत्य सर्वतेजांसि ब्रह्मणा निर्मिता पुरा ॥९
पवित्राणां पवित्रं च मङ्गलानां च मङ्गलम् । पुण्यानां परमं पुण्यं कपिला च वरानने ॥१०
तपसस्तप एवाग्र्यं व्रतानामुत्तमं व्रतम् । दानानामुत्तमं दानं विधिना ह्येतदक्षयम् ॥११
पृथिव्यां यानि तीर्थानि गुह्यान्यायतनानि च । पवित्राणि च पुण्यानि सर्वलोके वसुन्धरे ॥१२

श्रीकृष्ण बोले—महामते ! पूर्वकाल में विनताश्व ने (इस विषय में) जो कुछ कहा था, मैं वही कपिला दान का महत्व बता रहा हूँ, सुनो ! २

विनताश्व बोले—महाराज ! पहले समय में भी वराह जी ने विवेचन पूर्वक कपिला दान का जैसा विधान धरणी को सुनाया है, वह नवीन पुण्य फल प्रदान करता है अतः वही विधान मैं तुम्हें बता रहा हूँ । ३

धरणी बोली—प्रभो ! आप ने सर्वप्रथम जो कपिला नाम पवित्र किया है, वह धेनु होम का साधन, पुण्य और यज्ञ का अवतार स्थल है, वह किस दिन और किस विधान द्वारा ब्राह्मण को अर्पित करना चाहिए तथा जिसे स्वयं ब्रह्मा ने अत्यन्त प्रशस्त बताया है उस पुण्य लक्षणा कपिला के कितने भेद बताये गये हैं। माधव, मधुसूदन ! सप्रयत्न उन कपिला धेनुओं के दान करने पर कौन फल प्राप्त होता है, मुझे सुनने की इच्छा हैं अतः विस्तार पूर्वक बताने की कृपा करें।४-७

वराह बोले—भद्रे ! मैं तुम्हें तत्त्व समेत उस पवित्र एवं पापनाशक माहात्म्य को बता रहा हूँ, जिसे सुसम्पन्न करने पर प्राणी समस्त पापों से मुक्त होता है इसमें संशय नहीं सुनो ! वरानने ! आदि काल में ब्रह्मा ने समस्त तेजों को एकत्र कर उसी से अग्नि होत्र तथा यज्ञार्थ कपिला का निर्माण किया है। वरानने ! इसीलिए वह कपिलाधेनु पवित्रों में पवित्र, मंङ्गलों में मङ्गल, और पुण्यों में परम पुण्य रूपा है। उसी प्रकार सविधान देने पर वह तपस्या में उत्तम तप, व्रतों में उत्तम व्रत, दानों में उत्तम दान और अक्ष रूप है। वसुंधरे ! समस्त लोकों में गुप्त एवं विस्तृत तीर्थ, मन्दिर है इसी कारण वे अत्यन्त पुण्य रूप और

होतव्यान्यग्निहोत्राणि सायं प्रतिद्विजातिभिः । कपिलाया घृतेनेह दध्ना क्षीरेण वा पुनः ॥१३
यजन्ते येऽग्निहोत्राणि अन्नैश्च विविधैः सदा । पूजयन्त्यतिथिंश्चैव परां भक्तिमुपागताः ॥१४
तेषां त्वादित्यवर्णैश्च विमानैर्जायते गतिः । सूर्यमण्डलमध्ये च ब्रह्मणा निर्मिता पुरा ॥१५
कपिलायाः शिरो ग्रीवां सर्वतीर्थानि भामिनी । पितामहनियोगाच्च निवसन्ति हि नित्यशः ॥१६
प्रातरुत्थाय गो मर्त्यः कपिला गलमस्तकात् । च्युतं तु भक्त्या पानीयं शिरसा धारयेन्नरः ॥१७
स तेन पुण्येनोपेतस्तत्क्षणाद्गतकिल्बिषः । त्रिंशद्वर्षकृतं पापं दहत्यग्निरिवेन्धनम् ॥१८
कल्प उत्थाय यो मर्त्यः कुर्यात्तासां प्रदक्षिणाम् । प्रदक्षिणीकृता तेन पृथिवी स्याद्वसुन्धरे ॥१९
प्रदक्षिणायां चैकायां कृतायां च वसुन्धरे । दशवर्षकृतं पापं नश्यते नात्र संशयः ॥२०
कपिलायास्तु मूत्रेण स्नायाद्वै यः शुचिव्रतः । स गङ्गाद्येषु तीर्थेषु स्नातो भवति मानवः ॥२१
येन स्नानेन चैकेन भवमुक्तो भवेन्नरः । यावज्जीवकृतात्पापात्तत्क्षणादेव मुच्यते ॥२२
गोसहस्रं च यो दद्यादेकां वा कपिलां नरः । सममेतत्पुरा प्राह ब्रह्मलोके पितामहः ॥२३
यश्चैकां कपिलां हन्यान्नरो रज्जुकरो यदि । गोसहस्रं हतं तेन भवतीह न संशयः ॥२४
गवां स्थितिं कल्पयेत घृतं गव्यं न दूषयेत् । यावद्धि वर्द्धते गव्यं तावत्पापैस्तु पूयते ॥२५
गवां कण्डूयनं श्रेष्ठं तथा च प्रतिपालनम् । तुल्यं गोघृतदानस्य भयरोगादिपालनम् ॥२६

पवित्र हैं। कपिला धेनु के घृत, दही और दूध द्वारा ब्राह्मणगण सायं प्रातः अग्निहोत्र कर्म करते हैं। विविध भाँति के अन्नों द्वारा सदैव अग्निहोत्र कर्म सुसम्पन्न करने और अत्यन्त भक्तिपूर्वक अतिथियों की अर्चा करने वाले प्राणी की सूर्य के समान प्रकाशित विमानों द्वारा सूर्य मण्डल के मध्य में उत्तम गति होती है इसीलिए पूर्वकाल में ब्रह्मा ने कपिला धेनु का निर्माण किया है। भामिनि ! पितामह (ब्रह्मा) के आदेशवश समस्त तीर्थ कपिला गौ के शिर और ग्रीवा में नित्य निवास करते हैं। कपिला गौ के गले और मस्तक से गिरते हुए जल को भक्तिपूर्वक अपने शिर से धारण करने वाले पुरुष उस पुण्य के प्रभाव से उसी समय क्षीण पाप हो जाते हैं और उनके तीस वर्षों के पापों को, ईंधन (लकड़ी) को अग्नि की भाँति दग्ध कर देता है। वसुन्धरे ! प्रातः काल उठकर उन (कपिला गौओं) की प्रदक्षिणा करने वाला मनुष्य समस्त पृथिवी की प्रदक्षिणा करता है। वसुन्धरे ! एक बार भी प्रदक्षिणा करने पर उसके दश वर्ष के पाप विनष्ट होते हैं इसमें संदेह नहीं ।८-२०। कपिला गौ के मूत्र से स्नान करने वाला पवित्र व्रती मनुष्य गङ्गा आदि तीर्थों में स्नान किया ऐसा निश्चित माना जाता है। क्योंकि (गोमूत्र से) एक बार भी स्नान करने से मनुष्य संसार से मुक्त हो जाता है। और उसके आजीवन के पाप समूह उसी समय नष्ट हो जाते हैं। गो सहस्र का प्रदाता और एक कपिला गौ का दान करने वाला प्राणी फल भागी होते हैं, इसे ब्रह्म लोक में पितामह ने पहले ही बताया था। उसी भाँति यदि मनुष्य हाथ में रस्सी लिए एक कपिला गौ की हत्या करता है, तो उसने सहस्र गौ की हत्या की इसमें संशय नहीं ।२१-२४। इसलिए गौओं की स्थिति की सुन्दर कल्पना करनी चाहिए जिससे घृत दुग्ध उसके दूषित न हों, क्योंकि जब तक वह घृत घट आदि में वर्तमान रहता है पापों से मुक्त कर पवित्र करता रहता है। गौओं के अंगों को खुजलाना और उनका पालन पोषण करना परम श्रेष्ठ बताया गया है तथा भय रोग आदि से उनकी रक्षा करना गोघृत के दान के समान कहा गया है। गौओं

तृणादिभक्षणार्थं च गवां दद्याद्धरादिकम् । स्वर्गवासफलं दिव्यं लभते मानवोत्तमः ।।२७
दशेह कपिलाः प्रोक्ताः स्वयमेव स्वयंभुवा । यो दद्याच्छ्रोत्रियस्यैव स्वर्गं गत्वा स मानवः ।।२८
विमानैर्विविधैर्दिव्यैकन्याभिरर्चितः । सेव्यमानस्तु गन्धर्वैर्दीप्यमाना यथाग्नयः ।।२९
सुवर्णकपिला पूर्वा द्वितीया गौरपिङ्गला । आशा चैव तृतीया स्यादग्निज्वाला चतुर्थिका ।।३०
पञ्चमी जुहुवर्णा स्यात्षष्ठी तु घृतपिङ्गला । सप्तमी श्वेतपिङ्गा स्यादष्टमी क्षीरपिङ्गला ।।३१
नवमी पाटला ज्ञेया दशमी पुष्पपिङ्गला । एता दश समाख्याताः कपिलाश्च वसुन्धरे ।।३२
सर्वा ह्येता महाभागान् स्तारयन्ति न संशयः । सङ्गमेषु प्रशस्ताश्च सर्वपापप्रणाशनाः ।।३३
एवमेतास्तु कपिलाः पापघ्न्यश्च वसुन्धरे । आशा चैव तु या प्रोक्ता अग्निगर्भानलप्रभा ।।३४
अग्निज्वालोज्ज्वलैः शृङ्गैः प्रदीप्ताङ्गारलोचना । अग्निपुष्पा अग्निलोमा तथान्या चानलप्रभा ।।३५
तामाग्नेय्यां सदा दद्याद्ब्राह्मणायेतरैः सदा । गृहीत्वा कपिलां शूद्रः कामतस्तत्पयः पिबेत् ।।३६
पतितश्च भवेन्नित्यं चण्डालसदृशः पुमान् । तस्मान्न प्रतिगृह्णीयाच्छबलां गां कथञ्चन ।।३७
द्वारान्ते परिहर्तव्या कपिला गोर्द्विजेतरैः । लोकेषु ते मूढतमाः कपिलाक्षीरभोजनाः ।।३८
असम्भाष्याश्च पतिताः शूद्रास्ते पापकर्मिणः । पिबन्ति यावत्कपिलां तावत्तेषां पितामहाः ।।
अमेध्यं भुञ्जतेऽतस्तां नोपजीवेद्द्विजेतरः ।।३९
तासां घृतं च क्षीरं वा नवनीतमथापि वा । उपजीवन्ति ये शूद्रास्ते प्रयान्ति यमालयम् ।।४०

को हरियाली घास खिलाने से उस मानव श्रेष्ठ को दिव्य स्वर्गवास फल प्राप्त होता है । स्वयमेव स्वयम्भू (ब्रह्मा) ने कपिला के दश भेद बताये हैं जिनके दान श्रोत्रिय ब्राह्मण को अर्पित करने पर उस मनुष्य को स्वर्ग प्राप्त होता है और विविध भाँति के दिव्य विमानों द्वारा वह वहाँ पहुँच कर दिव्य कन्याओं से अर्पित एवं प्रदीप्त अग्नि की भाँति गन्धर्वों से सुसेवित होता है । पहली सुवर्ण कपिला दूसरी गौर पिङ्गला, तीसरी आशा, चौथी अग्नि ज्वाला । पाँचवी, जुहुवर्णा, छठीं घृत पिङ्गला, सातवीं श्वेत पिङ्गला, आठवीं क्षीरपिङ्गला, नवीं पाटला (रक्तवर्णा) और दशवीं पुष्प पिङ्गला होती है । वसुन्धरे ! यही दश भेद कपिला गौ के होते हैं।२५-३२। ये सभी पुण्यात्मा वाली गौएँ मनुष्यों को उद्धार करती हैं इसमें संशय नहीं । वसुन्धरे ! सभी गौओं में ये कपिला गौ प्रशस्त और समस्त पापों की विनाशिनी बतायी गयी हैं । तीसरी आशा नामक कपिला गौ, अग्निगर्भा, अग्नि की भाँति प्रभापूर्ण होती है अग्निज्वाला उज्ज्वल सीगों से युक्त, प्रदीप्त अग्नि की भाँति नेत्र वाली होती है और अन्य अग्निपुष्पा अग्नि लोमा एवं अग्नि की भाँति प्रभापूर्ण होती है । अतः उस आशा नामक कपिला गौ, जो अग्निमयी होती है अन्य लोगों को चाहिए ब्राह्मण को सादर अर्पित करें । कपिला गौ अपने घर रखकर कोई शूद्र स्वेच्छया उसका पयपान करता है, वह पुरुष चाण्डाल की भाँति पतित होता है इसलिए उसे शबला (कपिला) गौ का ग्रहण कभी नहीं करना चाहिए । द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) से इतर (शूद्र) व्यक्ति को अपने दरवाजे से ही कपिला को हटा देना चाहिए । लोक में कपिला क्षीर का भोजन करने वाला शूद्र मूढतम कहा गया है । वह पापकर्मी शूद्र पतित होने के नाते सम्भाषण करने के योग्य नहीं होता है । शूद्र जितने दिन कपिला गौ का पयपान करता है उतने दिन उसके पितामहगण, अमेध्य भोजन करते हैं अतः शूद्रको उससे अपना जीवन निर्वाह नहीं करना चाहिए । उनके घृत, दूध, अथवा नवनीत (मक्खन) भक्षण करने वाले शूद्र को

कपिलाजीविनः शूद्राः सर्वे गच्छन्ति रौरवम् । रौरवे भुञ्जते दुःखं वर्षकोटिशतोषिताः ।।४१
ततो विमुक्ताः कालेन जायन्ते श्वानयोनिषु । श्वानयोनेर्विमुक्तास्ते विष्ठायां कृमियोनिगाः ।।४२
विष्ठारुदेद च पापिष्टा दुर्गंधेषु च नित्यशः । भूयोऽपि जायमानास्ते तत्रोत्तारो न विद्यते ।।४३
ब्राह्मणश्चैव यो देवि कुर्यात्तेषांप्रतिग्रहम्[1] । ततः प्रभृत्यमेध्यायां पितरस्तस्य शेरते ।।४४
तं विप्रं नानुभाषेत प्रायश्चित्ती भवेद्द्विजः । एकस्य गोप्रदानस्य सहस्रांशो न पूर्यते ।।४५
किमन्यैर्बुहुभिर्दानैः कोटिसंख्यार्तविस्तरैः ।।४६
श्रोत्रियाय दरिद्राय सुवृत्तायाहिताग्नये । दत्त्वैकां कपिलां धेनुं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।४७
मासे प्रसविनीं धेनुं दानार्थी प्रतिपालयेत् । आत्मार्थे न प्रपाल्या हि सदा नरकभीरुभिः ।।४८
कपिलाऽर्धप्रसूता च दातव्या हि द्विजन्मने । जायमानस्य वत्सस्य मुखं योन्यां प्रदृश्यते ।।४९
तावत्सा पृथिवी ज्ञेया यावद्गर्भं न मुञ्चति ।।५०
धेनोर्यावन्ति रोमाणि सवत्साया वसुन्धरे । भूम्यां तु पांसवो यावद्यावन्नक्षत्रतारकाः ।।५१
तावद्वर्षसहस्राणि ब्रह्मेशादिभिरर्चितः । ब्रह्मलोके निवसति यश्चैककपिलाप्रदः ।।५२
सुवर्णशृङ्गीं यः कृत्वा खुरै रौप्यैः समर्चिताम् । ब्राह्मणस्य करे दत्त्वा सुवर्णं रौप्यमेव च ।।५३

यमपुरी जाना पड़ता है ।३३-४०। कपिला से जीवन निर्वाह करने वाले शूद्र रौरव नरक में पहुँच कर सौ कोटि वर्ष तक दुःख का अनुभव करते हैं । अनन्तर यथावसर वहाँ से मुक्त होने पर श्वान (कुत्ते) की योनि में उत्पन्न होते हैं और यहाँ से पुनः विष्ठा (मल) के कीड़े होते हैं । इस प्रकार वे पापी गण दुर्गन्ध विष्ठा में ही नित्य उत्पन्न और मरते रहते हैं, जिनका उद्धार किसी भाँति होता ही नहीं । देवी ! गौ के अतिरिक्त उन शूद्रों के धान्य आदि का प्रतिग्रह (दान) ग्रहण करने वाला ब्राह्मण भी अधम कहलाता है इसके भी पितर गण उसी दिन से अमेध्य शयन करते हैं इसलिए उससे न भाषण करना चाहिए और न एक आसन पर बैठाना चाहिए उसे दूर से सदैव के लिए त्याग दे । क्योंकि उसके साथ भाषण करने वाला ब्राह्मण प्रायश्चित का भागी होता है । एक ही गोदान का सहस्रांश नहीं पूरा हो सकता है, तो अन्य कोटि संख्या के विस्तृत दान से क्या लाभ हो सकता है । किसी श्रामिण, दरिद्र, सुवृत्त एवं अग्निहोत्र ब्राह्म को एक ही कपिला गौ अर्पित करने वाला प्राणी समस्त पापों से मुक्त होता है ! प्रसव होने वाले (अन्तिम) मास में दानी को दानार्थ उसका प्रतिपाल अवश्य करना चाहिए आत्मार्थ नहीं क्योंकि वैसा करने से नरक की प्राप्ति होती है । अर्ध प्रसव के समय यह कपिला गौ ब्राह्मण को अर्पित करना चाहिए जब तक योनि में बच्चे का मुख दिखायी देता है ।४१-५०। क्योंकि उस समय जब तक वह गर्भ से मुक्त नहीं होती तब तक उसे पृथिवी जानना चाहिए । वसुन्धरे ! सवत्सा उस धेनु के जितने लोम, भूमि में रजकण (धूलि और जितने नक्षत्र तारागण हैं उतने सहस्र वर्ष ब्रह्मलोक में वह उस एक कपिला गौ का प्रदाता ब्रह्मा विष्णु देवों से पूजित होकर निवास करता है । जिसने ब्राह्मण के हाथ में सुवर्ण अथवा चाँदी समेत ऐसी गौ अर्पित किया, जिसके सींगों में सुवर्ण और खुरों में चाँदी सुशोभित रहती हैं, उसी समय कपिला का पुत्र भी ब्राह्मण

---

१. शूद्राणां गोव्यतिरिक्तधान्यद्रव्यादिप्रतिग्रहमित्यर्थः ।

कपिलायास्तदा पुत्रं ब्राह्मणस्य करे न्यसेत् । उदकं च करे दत्त्वा वाचयेत् स्वशक्तितः ॥५४
सुवर्णैस्तु चर्तुभिश्च त्रिभिर्द्वाभ्यामथापि वा । एकहीना न दातव्या यदीच्छेच्छुभमात्मनः ॥५५
स समुद्रवनोपेता सशैलवनकानना । रत्नपूर्णा भवेद्दत्ता पृथिवी नात्र संशयः ॥५६
पृथिवीदानतुल्येन दानेनैतेन वै नरः । तारितो याति पितृभिर्वैष्णवं यत्पदं परम् ॥५७
ब्रह्मस्वहरणो गोघ्नो भ्रूणहा ब्रह्मघातकः । पापकृच्चोभयमुखीं दद्यात्सत्कनकान्विताम् ॥५८
तद्दिनं च पयोभोजी संयतश्चातिवाहयेत् ॥५९
गोमयेनोपलिप्याथ मण्डलं विधिपूर्वकम् । स्वशाखोक्तेन मन्त्रेण होमयेत्तु विचक्षणः ॥६०
व्याहृत्या होमयेत्पूर्वं पञ्चवारुणकं तथा । इरावती धेनुमती देवस्य त्वेति वा पुनः ॥६१
स्योना पृथिवि मन्त्रेण गौर्वत्ससहिता नवा । निष्कामफलदा धेनुः सा स्यात्सुरभिनन्दिनी ॥६२
या ते सरस्वती देवी विष्णुना च तथा मही । गौरीविष्णुपदं चोक्त्वा शान्तिकर्मणि वाचयेत् ॥६३
यावद्वत्सस्य द्वौ पादौ शिरश्चैव प्रदृश्यते । तावद्वै पृथिवी ज्ञेया यावद्गर्भं न मुञ्चति ॥
तस्मिन्काले प्रदातव्या ब्राह्मणाय वसुन्धरे ॥६४
सुवर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां कांस्यदोहां सताम्रकाम् । सवस्त्रघण्टाभरणां गन्धपुष्पैरलंकृताम् ॥
वस्त्राक्षतैः समभ्यर्च्य ब्राह्मणाय समर्पयेत् ॥६५
सुवर्णस्य सहस्रेण तदर्धेनापि भामिनि । तस्याप्यर्धेन शक्त्याऽथ तस्याप्यर्द्धेन वा पुनः ॥६६

के हाथ में अर्पित करना चाहिए। पश्चात् हाथ में जल प्रदान कर यथाशक्ति संकल्प करे। उस समय चार, तीन या दो सुवर्ण पदक अवश्य रहे नहीं तो एक से न्यून कभी होना ही नहीं चाहिए क्योंकि वैसा न करने से अपने कल्याण में बाधा पहुँचती है। अनन्तर उसके दान करने पर उस दाता ने समुद्र वन, पर्वतादि दुर्ग समेत एवं रत्नपूर्ण समस्त पृथिवी का दान किया ऐसा माना जाता है इसमें संशय नहीं। पृथिवी दान के तुल्य इस दान के प्रभाव से दाता के पितरगण मुक्त होकर उस वैष्णव परमपद को प्राप्त करते हैं। ब्राह्मण वृत्ति का अपहारी, गोहत्या, भ्रूण हत्या और ब्राह्मण हत्या करने वाले मनुष्य को सुवर्ण समेत उस उभयमुखी का दान अवश्य करना चाहिए और यह दिन संयम पूर्वक पयोव्रत द्वारा व्यतीत करें। गोबर से लिपी हुई भूमि में सविधान मण्डल निर्माण कर अपने शाखोक्त मंत्रों द्वारा बुद्धिमान् को हवन भी सुसम्पन्न करना चाहिए। सर्वप्रथम व्याहृतियों द्वारा पंच वारुणी हवन करने 'इरावती' धेनुमती, देवस्य त्वा, स्योना पृथिविनो, का पाठ करते हुए सवत्सा यह गौ जो सुरभि नन्दिनी धेनु कहलाती है निष्काम फल प्रदान होवे। अनन्तर शान्त्यर्थ सरस्वती देवी, विष्णु महीं, गौरी एवं विष्णु पद का वाचन कराये। क्योंकि वत्स (बच्चे) के दोनों चरण और शिर जब तक (योनि में) दिखायी पड़े तथा वह जब तक गर्भ त्याग न करे तब तक उसे पृथिवी रूप जानना चाहिए और उसी समय वह ब्राह्मण को दानरूप में अर्पित भी करना चाहिए।५१-६५। सुवर्ण से सींग, चाँदी से खुर, कांसे की दोहनी से भूषित एवं वस्त्र, घंटा आभूषण तथा गन्ध पुष्पों से अलंकृत एवं पूजित कर ब्राह्मण को अर्पित करना चाहिए। भामिनि ! सहस्र या उसका आधाभाग, तदर्ध भाग अथवा यथाशक्ति उसका भी आधा भाग सुवर्ण उस (ब्राह्मण) के हाथ में रखते समय कृपणता दोष न आने देना चाहिए। और सुवर्ण के प्रभाव में चाँदी ही

यथा शक्त्या प्रदातव्या वित्तशाठ्यविवर्जितैः । करे दत्त्वा सुवर्णं च अथवा रूप्यमेव च ।।६७
गृहाणेमां महाधेनुं भव भ्राता ममाशु वै । सर्वपापक्षयं कृत्वा सदा स्वस्तिकरो भव ।।६८
इरावती धेनुमती जाह्नवी तदनन्तरम् । प्रतिदास्यामि ते धेनुं कुटुम्बार्थे विशेषतः ।।६९
भवतात्स्वस्ति मे नित्यं सुखं चानुत्तमं तथा । दत्ता तु पृथिवी देवी त्वयेयं प्रतिगृह्यताम् ।।७०
कोऽदादिति च वै मन्त्रो जपितव्यो द्विजेन च । विसृज्य ब्राह्मणं सोऽपि तां धेनुं स्वगृहं नयेत् ।।७१
एवं प्रसूयमानां गां यो ददाति वसुन्धरे । सा समुद्रवनोपेता सशैलवनकानना ।।
रत्नपूर्णा भवेद्दत्ता पृथिवी नात्र संशयः ।।७२

सन्तप्तजाम्बूनदतुल्यवर्णां महानितम्बां तनुवृत्तमध्याम् ।
अर्द्धप्रसूतां द्विमुखीं सुशीलां सेवन्त्यजस्रं कपिलां हि देवाः ।।७३

प्रातरुत्थाय यो भक्त्या धेनुकल्पं नरो भुवि । जितेन्द्रियः शुचिर्भूत्वा पठेद्भक्त्या समन्वितः ।।७४
त्रिकालं पठते यस्तु पापं वर्षशतोद्भवम् । नश्यत्येकक्षणादेव वायुना पांसवो यथा ।।७५
श्राद्धकाले पठेद्यस्तु इदं पावनमुत्तमम् । तदन्नं संस्कृतं तद्वै पितरोऽश्नन्ति धीमतः ।।७६
अमावस्यां च यो विद्वान्द्विजानामग्रतः पठेत् । पितरस्तस्य तुष्यन्ति वर्षाणां शतमेव च ।।७७
यश्चैतच्छृणुयात्पुण्यं तद्गतेनान्तरात्मना सम्वत्सरकृतात्पापात्तत्क्षणादेव मुच्यते ।।७८
इदं रहस्यं राजेन्द्र वराहमुखनिर्गतम् । धरण्यै कथितं पूर्वं सर्वपापप्रणाशनम् ।।७९

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कपिलादानमाहात्म्यवर्णनं नामैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६१

रख कर गोदान करना चाहिए किन्तु उस समय यह कहता रहे कि—इस महाधेनु को शीघ्र स्वीकार करते हुए आप मेरा भाई होकर समस्त पापों के विनाश पूर्वक कल्याण करने की कृपा करें। तदनन्तर इरावती और धेनुमती जाह्नवी गौ मैं विशेषकर आप के कुटुम्बार्थ अर्पित करूँगा। आप मुझे नित्य परमोत्तम सुख प्रदान करते रहें और मैं यह पृथिवी रूप गौ को अर्पित कर रहा हूँ उसे स्वीकार करने की कृपा करें। उस समय ब्राह्मण को भी 'कोऽदादिति' मंत्र का जप करना चाहिए। प्रदाता भी ब्राह्मण के त्यागपूर्वक उस धेनु को अपने घर ले जाये। वसुन्धरे ! इस प्रकार प्रसूयमान गौ का जिसने दान किया, उसने समुद्र, वन और पर्वत आदि वन दुर्ग समेत रत्नपूर्णा पृथिवी का दान किया है। ऐसा माना जाता है इसमें संशय नहीं।६६-७२। भलीभाँति संतप्त किये गये जम्बूनद (सुवर्ण) के समान वर्ण, महान् नितम्ब (पिछला भाग), मध्य भाग (कटि) सूक्ष्म, अर्द्ध प्रसव युक्ता, दो मुखी और सुशीला कपिला गौ की सेवा देवगण सदैव करते हैं। प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य भक्ति पूर्वक संयम एवं पवित्रता पूर्ण होकर इस पावनोत्तम धेनुकल्प का पाठ करते हैं उसके संसार में किये (पकाये) गये अन्न का भोजन धीमान् पितर गण सादर स्वीकार करते रहते हैं। इसी भाँति अमावस्या के दिन जो विद्वान् द्विजों के सम्मुख इसका पाठ करता है उसके पितर गण सौ वर्ष तक सुखानुभव करते हुए संतुष्ट रहते हैं। और ध्यानमग्न होकर इसके पाठ का श्रवण करने वाले व्यक्ति का वर्ष पर्यन्त का पाप उसी क्षण विनष्ट हो जाताहै। राजेन्द्र ! इस प्रकार पूर्वसमय पृथिवी के लिए वराह के मुख से निकले हुए इस रहस्य को मैंने तुम्हें सुना दिया, जो समस्त पापों को विनष्ट करता है।७३-७९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
कपिलादान-माहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ इकसठवाँ अध्याय समाप्त।१६१।

अथ द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

महिषीदानव्रतविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

महिषीदानमाहात्म्यं कथयामि युधिष्ठिर ! पुण्यं[1] पापविनाशं च आयुष्यं सर्वकामदम् ।।१
चन्द्रसूर्यग्रहे पुण्ये कार्त्तिक्यामयने तथा । शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां सूर्यसंक्रान्तिवासरे ।।२
यदा वा जायते चित्तं वित्तं च कुरुनन्दन । तदैव देया महिषी संसारभयभीरुणा ।।३
सुपयोधरशोभाढ्या सुशृङ्गी सुखुरा तथा । प्रथमप्रसूता तरुणी सुशीला दोषवर्जिता ।।४
सुवर्णशृङ्गतिलका घण्टाभरणभूषिता । रक्तवस्त्रावृता रम्या कांस्यदोहनकान्विता ।।५
पिण्याकपिटिकोपेता सहिरण्या च शक्तितः । सप्तधान्ययुता देया ब्राह्मणे वेदपारगे ।।६
पुराणपाठके तद्वज्ज्योतिः शास्त्रविदे तथा । देया न वेदरहिते न च कुव्रतिने क्वचित् ।।७
द्रव्यैरेभिः समायुक्तां पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम् । दद्यान्मन्त्रेण राजेन्द्र पुराणपठितेन तु ।।८
इन्द्रादिलोकपालानां या राजमहिषी शुभा । महिषी दानमाहात्म्यात्सास्तु मे सर्वकामदा ।।९
धर्मराजस्य साहाय्ये यस्याः पुत्रः प्रतिष्ठितः । महिषासुरस्य जननी या सास्तु वरदा मम ।।१०

(इति दानमंत्रः)

अध्याय १६२

महिषीदानव्रतविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर ! मैं तुम्हें महिषी (भैंस) दान का माहात्म्य बता रहा हूँ, जो पुण्य, पापविनाशक, आयु समेत समस्त कामनाओं को सफल करता है। कुरुनन्दन ! चन्द्र सूर्य के ग्रहण, पुण्य अवसर, कार्तिक पूर्णिमा, अयन, शुक्लपक्ष की चतुर्दशी, सूर्य की संक्रान्ति अथवा जब कभी उसके दान करने का विचार मन में उत्पन्न हो, उसी समय संसार के भय से भीरु होने वाले उस पुरुष को महिषी का दान अवश्य करना चाहिए। सुन्दर पयोधर से सुशोभित, सींग और खुर अत्यन्त सुशोभन हों, प्रथम प्रसूता, तरूणी, सुशीला, दोष रहिता, सुवर्ण सींग की तिलक से भूषित, घंटा आभूषण से अलंकृत, रक्त वस्त्र से आच्छन्न, रम्याकृति, कांसे का दोहन युक्त, पिण्याक पिटिक (खली आदि उसके खाने की सामग्री) यथाशक्ति सुवर्ण, और सप्त धान्य समेत वह महिषी किसी वेदपाठी ब्राह्मण विद्वान् को अर्पित करना चाहिए।१-६। पुराण पाठी, ज्योतिषी, आदि विद्वान् ब्राह्मणों के अतिरिक्त वेदाध्ययन शून्य और निन्दित व्रती को कभी भी दान अर्पित नहीं करना चाहिए। राजेन्द्र ! उपरोक्त द्रव्यों से युक्त महिषी का दान किसी पुण्य अवसर पर सविधान एवं पुराण पाठ पूर्वक प्रदान करते समय कहे कि—इन्द्र आदि लोकपालों की वह राजमहिषी महिषी दान माहात्म्य के प्रभाव से इस रूप यहाँ सुशोभित होकर मेरी समस्त कामनाएँ सफल करें। जिसका पुत्र धर्मराज की सहायता के लिए प्रतिष्ठित किया गया है, तथा जो महिषासुर की

---

१. पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वकामफलप्रदम्। २. च।

दद्यात्प्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणे तां पयस्विनीम् । प्रतिग्रहः स्मृतस्तस्याः पृष्ठदेशे स्वयंभुवा ॥११
एवं दत्त्वा विधानेन ब्राह्मणस्य गृहं नयेत् । वस्त्रैराभरणैः पूज्या भक्त्या च कुरुनन्दन ॥१२
सम्पादिता मया तुभ्यं सन्तुष्टो मे भव द्विज ॥१३
अनेन विधिना दत्त्वा महिषीं द्विजपुङ्गवे । सर्वान्कामानवाप्नोति इह लोके परत्र च ॥१४
या सा ददाति महिषीं सा राजमहिषी भवेत् । महाराजः पुमान् राजन्व्यासस्य वचनं यथा ॥१५
यज्ञयाजी भवेद्विप्रः क्षत्रियः विजयी भवेत् । भवेद्वैश्यस्तु धनवाञ्छूद्रः सर्वार्थसंयुतः[1] ॥१६
तस्मान्नरेण दातव्या महिषी विभवे सति । पुत्रपौत्रप्रपौत्रार्थमात्मनः शुभमिच्छता ॥१७
दशधेनुसमां राजन्महिषीं नारदोऽब्रवीत् । विंशतिगोसमां व्यासः सर्वदानोत्तमं रविः ॥१८
सगरेण ककुत्स्थेन धुन्धुमारेण गाधिना । दत्ताः सम्पूज्य विप्रेभ्यो महिष्यः सर्वकामदाः ॥१९
महिषीदानमाहात्म्यं यः शृणोति सदा नरः । स सर्वपापनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥२०

दुग्धाधिकां हि महिषीं जलमेघवर्णां सम्पुष्टपट्टकवतीं जघनाभिरामाम्[2] ।
दत्त्वा सुवर्णतिलकां द्विजपुङ्गवाय लोकद्वयं विजयते किमु तत्र चित्रम् ॥२१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
महिषीदानव्रतविधिवर्णनं नाम द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६२

जननी है वह इसरूप में यहाँ स्थित होकर मेरे लिए वर प्रदान करे।७-१०। इस भाँति इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक वह पयस्विनी को ब्राह्मण को समर्पित करे। स्वयम्भू (ब्रह्मा) ने उसका प्रतिग्रह स्वीकार करने के समय उसके पृष्ठ देश का स्पर्श करना बताया है । कुरुनन्दन ! इस प्रकार भक्तिपूर्वक वस्त्राभरण से अलंकृत कर सविधान उसे प्रदान करके ब्राह्मण के घर पहुँचा देना चाहिए । द्विज ! मैंने यह महिषी तुम्हें अर्पित किया है अतः इससे सन्तुष्ट होने की कृपा करें। इस विधान द्वारा किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को महिषी अर्पित करने से लोक परलोक की उसकी सभी कामनाएँ सफल होती हैं । राजन् ! व्यास के कथनानुसार महिषी दान करने वाली स्त्री राजमहिषी और पुरुष महाराज होता है । उसी प्रकार ब्राह्मण यज्ञ करने वाला, क्षत्रिय विजयी, वैश्य धनी और शूद्र अपनी सभी कामनाएँ प्राप्त करता है ।११-१७। अतः पुत्र पौत्र एवं प्रपौत्र तथा अपने कल्याणार्थ मनुष्य को विभव रहने पर महिषी दान अवश्य करना चाहिए । राजन् ! नारद ने दश धेनु के समान एक महिषी दान बताया है, व्यास ने बीस गौ के समान कहा है और रवि ने समस्त दानों से उत्तम बताया है । पूर्वकाल में राजा सगर, ककुत्स्थ, धुंधुमार और गाधि ने पूजन पूर्वक ब्राह्मण को समस्त कामनाओं को सफल करनेवाली महिषीयों का दान किया है । महिषीदान माहात्म्य को सुनने वाला पुरुष समस्त पापों से मुक्त होकर शिवलोक में पूजित होता है । अधिक दुग्ध देने वाली, जलपूर्णमेघ के समान वर्ण, संपुष्ट पदक युक्त, और सुन्दर जघन भाग वाली महिषी, जो सुवर्ण तिलक से भूषित हो, किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करने से उसकी दोनों लोकों में विजय होती है इसमें क्या आश्चर्य है ।१८-२१

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरभाग में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
महिषीदान-व्रतविधि-वर्णन नामक एक सौ बासठवाँ अध्याय समाप्त ।१६२।

---

१. तु बहुपुत्रवान् । २. नयनाभिरामाम् ।

अथ त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

अविदानव्रतविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु पार्थ परं दानं सर्वकिल्बिषनाशनम् । यद्दत्त्वा त्रिविधं पापं सद्यो विलयमृच्छति ।।१
सुवर्णरोमां सौवर्णीं प्रत्यक्षं वा सुशोभनाम् । सुवर्णतिलकोपेतां सर्वालङ्कारभूषिताम् ।।२
कौशेयपरिधानां च दिव्यचन्दनभूषिताम् । दिव्यपुष्पोपहारां च सर्वधातुरसैर्युताम् ।।
सप्तधान्यसमायुक्तां फलपुष्पवतीं तथा ।।३
शतेन कारयेत्तां च सुवर्णस्य प्रयत्नतः । यथा शक्त्याथ वा कुर्याद्वित्तशाठ्यं न कारयेत् ।।४
अयने विषुवे चैव ग्रहणे शशिसूर्ययोः । दुःस्वप्नदर्शने[१] चैव जन्मर्क्षे पितृसंक्षये ।।५
यदा वा जायते वित्तं चित्तं श्रद्धासमन्वितम् । तदैव दानकालः स्याद्यतोऽनित्यं हि जीवितम् ।।६
दद्यात्तीर्थे गृहे वापि यत्र वा रमते मनः ।।७
तत्र संस्थाप्य देवेशमुमया सह शङ्करम् । ब्राह्मणं सह गायत्र्या सश्रीकं श्रीधरं तथा ।।८
रत्या सह तथानङ्गं लोकपालान्ग्रहानपि । सम्पूज्य च विधानेन गन्धपुष्पनिवेदनैः ।।९
तदग्रे कारयेद्धोमं तिलाज्येन महीपते । अलंकृत्य द्विजं शान्तं वासोभिः प्रतिपूज्य च ।।१०
तल्लिङ्गमन्त्रैर्होमश्च कर्तव्यो ज्वलितेऽनले । ततस्तां तिलकुम्भस्थां लवणान्तमुपस्थिताम् ।।११
पूजयित्वा विधानेन मन्त्रमेतमुदीरयेत् । रोमत्वङ्मांसमज्जाद्यैः सर्वोपकरणैः सदा ।।

अध्याय १६३

अविदानव्रतविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! मैं तुम्हें एक परमोत्तम दान बता रहा हूँ, जो समस्त पातकों का नाशक और उसी क्षण त्रिविध पापों को विनष्ट करता है, सुनो ! सुवर्ण के समान रोम और वर्ण वाली भेंड, प्रत्यक्ष हो या उसकी प्रतिमा हो, जो सुवर्ण तिलक सर्वाभरण भूषित, कौशेय (रेशमी) वस्त्राच्छन्न, दिव्य चन्दन, दिव्यपुष्पोहार अलंकृत समस्त धातु रसों से युक्त, सप्तधान्य तथा फल पुष्प सम्पन्न हो सादर ब्राह्मण को अर्पित करें। सुवर्ण के सौ तोले या यथाशक्ति द्वारा उसका निर्माण करते समय वित्तशाठ्य (कृपणता) दोष न आने देना चाहिए। अयन, विष्णु, चन्द्र-सूर्य ग्रहण, दुःस्वप्न, जन्मनक्षत्र पितृक्षीणतिथि अथवा जब कभी उसके दान के लिए चित्त में विचार उत्पन्न हो, श्रद्धा समेत उसी समय मेष (भेंड़) दान करना चाहिए क्योंकि जीवन अनित्य है। १-६। किसी तीर्थ, अपने गृह या जहाँ कहीं इच्छा हो उसी स्थान उमा समेत शंकर, गायत्री समेत ब्रह्मा, श्रीसमेत श्रीधर (विष्णु), रति और काम देव तथा लोकपाल समेत ग्रहों को प्रतिष्ठित कर गंध पुष्प आदि द्वारा सविधान पूजन करने के अनन्तर तिल घृत से हवन करे। महीपते ! किसी शांत ब्राह्मण को वस्त्र द्वारा पूजित कर उसी के मंत्रोच्चारण द्वारा उस प्रज्वलित अग्नि में आहुति प्रदान करे। अनन्तर तिल कुम्भ में स्थित और लवणान्त में उपस्थित उस प्रतिमा के सविधान अर्चनोपरांत इस मंत्र से प्रार्थना करे—अपने

---

१. दुःस्वप्ने पुत्रजनने ।

जगतः सम्प्रवृद्धासि[१] त्वामतः प्रार्थये स्थिताम् ॥१२

वाङ्मनः कायजनितं यत्किञ्चिन्मम दुष्कृतम् । तत्सर्वं विलयं यातु तव दानात्प्रसेवितम् ॥१३

एवमुच्चार्य तां दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने । नाभिभाषेत तं दत्त्वा मुखं च नावलोकयेत् ॥१४

दुष्टप्रतिग्रहहतो विप्रो भवति पातकी[२] ॥१५

नो दद्याद्दक्षिणाहीनां दातव्या सा विधानतः । दक्षिणाविधिना हीना दुःखशोकावहा भवेत् ॥१६

पुरा दत्तमिदं दानं गौर्या शङ्करकाम्यया[३] । तेन शम्भुः पतिर्लब्धः सर्वदेवनमस्कृतः ॥१७

इन्द्राण्या स्वर्णरोमाणां शतं दत्तं विधानतः । सर्वदेवपतिं प्राप्य पतिं साद्यापि मोदते ॥१८

नलेन दत्तमेतद्धि राज्यं कृत्वां[४] दिवं गतः । रुक्मिण्याहं पतिर्लब्धः सौभाग्यमतुलं तथा ॥१९

दानस्यास्य प्रभावेण पुत्रा बहुबलान्विताः । अपुत्रो लभते पुत्रमधनो लभते धनम् ॥२०

दत्त्वा दानं शुभां कान्तिं विपुलां च तथा श्रियम् । य इमं शृणुयान्नित्यं दानकल्पमनुत्तमम् ॥

अहोरात्रकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥२१

मेषी विशेषकलुषापहरातिशस्तादाने सदैव रसधातुयुता सधान्या ।
तामादरेण कुरुनन्दन देहि दत्वा येनास्तपापतिमिरः सवितेव भासि ॥२२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे-
ऽविदानव्रतविधिवर्णनं नाम त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६३।

रोम, चर्म, मांस और मज्जा आदि समस्त उपकरणों द्वारा तुम इस सारे संसार का उपकार करती हो अतः मैं तुम्हारी प्रार्थना कर रहा हूँ।७-१२। वाणी, मन और शरीर जनित मेरे सभी दुष्कृत तुम्हारे इस दान और सेवन द्वारा सद्यः नष्ट हो जायें। ऐसा कहकर उसे किसी कुटुम्बी ब्राह्मण को अर्पित करे और उस समय न उससे भाषण करे तथा न उसके मुख का दर्शन ही करे। क्योंकि दुष्ट प्रतिग्रह से हत हुआ ब्राह्मण पातक कहा जाता है। दक्षिणाहीन उसका दान कभी न करे और अविधि न होने पाये। क्योंकि दक्षिणा तथा विधि हीन भेंड दान दुःख और शोक का कारण होता है। पूर्वकाल में शंकर जी को पतिरूप में प्राप्त करने की इच्छा से गौरी ने इस दान को सुसम्पन्न किया था, जिससे समस्त देवों के वन्दनीय शम्भु पति रूप में उन्हें प्राप्त हुए। इन्द्राणी ने सुवर्ण रोम वाली सौ भेड़ों का सविधान दान किया था, जिससे उन्हें समस्त देवों के पति इन्द्र रूप में प्राप्त हुए उनके साथ आज भी वे आनन्दमग्ना रहती है। राजा नल ने इसके प्रभाव से राज्य सुख का अनुभव स्वर्ग प्राप्त किया। उसी प्रकार रुक्मिणी ने इसके प्रभाव से मुझे पतिरूप में प्राप्त किया और अनुपम सौभाग्य भी इस दान के प्रभाव से पुत्रार्थी अनेक सबल, पुत्र, निर्धनी धन, मनोरम कांति एवं विपुल लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। इस कल्प कथा का श्रवण करने वाला प्राणी अपने दिन रात के पाप उसी समय विनष्ट करता है। कुरुनन्दन ! इस प्रकार इस धातु युक्त और सप्त धान्य समेत उस भेंड का दान अवश्य करो क्योंकि वह समस्त पापों का विनाश करती है और प्रति प्रशस्त बतायी गयी है अतः सादर उसका दान करने पर मनुष्य अंधकार नष्ट करने वाले सूर्य की भाँति पाप मुक्त होकर सुशोभित होता है।१३-२२

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
भेंड दानव्रतविधिवर्णन नामक एक सौ तिरसठवाँ अध्याय समाप्त ।१६३।

---

१. संप्रवृत्तासि । २. किल्विषी । ३. दक्षगृहस्थया । ४. विधानतः पाठो युक्तः ।

अथ चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

भूमिदानवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

भूमिदानमतो वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशनम् । ये प्रयच्छन्ति विप्रेभ्यो भूमिदानं सदक्षिणाम् ॥१
श्रोत्रियाय दरिद्राय अग्निहोत्ररताय च । स सर्वकामतृप्तात्मा सर्वरत्नैर्विभूषितः ॥२
सर्वपापविनिर्मुक्तो दीप्यमानो रविर्यथा । बालसूर्यप्रभाभासैर्वादित्रध्वजशोभितैः ॥३
विमानैर्भास्वरैर्दिव्यैर्विष्णुलोकं स गच्छति ॥४
तत्र दिव्याङ्गनाभिश्च सेव्यमानो यथासुखम् । कामगः कामरूपी च क्रीडत्यानन्दमक्षयम् ॥५
यावद्धा[1]रयते लोकान्भूरंकुरसमुद्भवा । तावद्भूमिप्रदः कामं विष्णुलोके महीयते ॥६
नहि भूमिप्रदानाद्वै दानमन्यद्विशिष्यते । दिशो दशानुगृह्णाति हर्ता ता दश हन्ति च ॥७
दानान्यन्यानि क्षीयन्ते कालेन पुरुषर्षभ । भूमिप्रदानपुण्यस्य क्षयो नैवोपपद्यते ॥८
सर्वपापानि क्षीयन्ते कालयोगक्रमेण तु । भूमिहर्तुश्च राजेंद्र दुःखस्यान्तो न विद्यते ॥९
ब्राह्मणाय सुशीलाय[2] भूमिं दत्त्वा तु यो नरः । न हि तामुपजोवेद्यः स महत्पुण्यमाप्नुयात्[3] ॥१०

अध्याय १६४

भूमिदान का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें भूमि दान का विधान बता रहा हूँ, जो समस्त पापों को विनष्ट करता है। दक्षिणा समेत भूमि दान ब्राह्मण को अर्पित करने पर विशेष कर श्रोत्रिय, दरिद्र, एवं अग्निहोत्री ब्राह्मण को अर्पित करने पर वह पुरुष समस्त कामनाओं से तृप्त होकर सर्व रत्नों से भूषित होता है। समस्त पापों से मुक्त होकर सूर्य की भाँति प्रकाशित होता है और अन्त में दिव्य विमान द्वारा, जो बाल सूर्य की प्रभा भूषित, वाद्य, ध्वज अलंकृत एवं देदीप्यमान रहता है, विष्णु लोक प्राप्त करता है।१-४। वहाँ दिव्याङ्गनाओं से सुसेवित होने पर यथेच्छ सुखानुभव करते हुए कामचारी एवं कामरूपी होकर क्रीड़ा करताहै और अक्षय आनन्द प्राप्त करता है। यह भूमि जब तक लोकों को धारण करतीहै उतने समय तक भूमि का प्रदाता विष्णु लोक में सुसम्मानित होता है। क्योंकि भूमि प्रदान के समान कोई अन्य दान विशिष्ट नहीं कहा गया है अतः उसका दानी दशदिशाओं का ग्रहण करता है और उसका अपहर्ता दश दिशाओं का हनन करता है। पुरुषर्भ! यथावसर अन्य दान (का फल) नष्ट हो जाता है किन्तु भूमि दान (का पुण्य) कभी नहीं विनष्ट होता है। राजेन्द्र कालयोग के क्रमानुसार सभी पापक्षीण हो जाते हैं, पर, भूमि अपहरण करने वाले प्राणी के दुःख का अन्त होता ही नहीं। किसी सुशील ब्राह्मण को भूमि अर्पित कर पुनः उसका उपयोग नहीं करता है, वह महान् पुण्य प्राप्त करता है।५-१०। भूमि जोतने के पीछे उसमें बीज

---

१. यावद्धारयते लोको भूमिं कुरुकुलोद्भव। २. सुकृष्टां तु। ३. फलम्।

हलकृष्टां[1] महीं कृत्वा सबीजां सस्यनालिनीम् । यावत्सूर्यकृतालोकस्तावत्स्वर्गे महीयते ॥११
धनं धान्यं हिरण्यं च रत्नान्याभरणानि च । सर्वदानानि राजेन्द्र ददाति वसुधां ददत् ॥१२
सागरान्सरितः शैलान्समानि विषमाणि च । सर्वगन्धरसान्स्नेहान्ददाति वसुधां ददत् ॥१३
ओषधीः क्षीरसम्पन्ना नानापुष्पफलोपगाः[2] । कमलोत्पलखण्डांश्च ददाति वसुधां ददत् ॥१४
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैर्ये यजन्ति सदक्षिणैः । प्राप्नुवन्ति च तत्पुण्यं भूमिदानाद्यवाप्यते ॥१५
श्रोत्रियाय महीं दत्त्वा ये हरन्ति[3] न मानवाः । तावत्तेषां भवेत्स्वर्गो यावल्लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥१६
सस्यपूर्णां महीं यस्तु श्रोत्रियाय प्रयच्छति । पितरस्तस्य तुष्यन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥१७
यत्किंचित्कुरुते पापं पुरुषो वृत्तिकर्शितः । अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन शुध्यति ॥१८
सुवर्णानां सहस्रेण यत्पुण्यं समुदाहृतम् । भूमि गोचर्ममात्रेण तत्फलं प्राप्नुयान्नरः[4] ॥१९
कपिलानां सहस्रेभ्यो यद्दत्तेऽन्नं नरोत्तम । भूमिगोचर्ममात्रेण तत्फलं लभते नरः ॥२०
मध्यमस्य मनुष्यस्य व्यासेन परिसंख्यया । त्रिंशद्दंडांश्च गोचर्म दत्त्वा स्वर्गे महीयते ॥२१
बहुभिर्वसुधा भुक्ता राजभिः सगरादिभिः । यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्यतस्य तदा फलम् ॥२२
किंकरा मृत्युदण्डाश्च असिपत्रवनादयः । घोराश्च दारुणाः पाशा नोपसर्पन्ति भूमिदम् ॥२३

डाल कर हरियाली होने पर उस हरे भरे खेत का दान करने वाला मनुष्य सूर्य प्रकाश के समान काल तक स्वर्ग में पूजित होता है । राजेन्द्र ! वसुधा दान करने वाला मनुष्य धन धान्य, हिरण्य एवं रत्नों के आभूषण आदि समस्त का दान करता है । सभी समुद्र, सरितायें, समविषम पर्वतों और समस्त गंध समेत रसों का दान करता है । उसी भाँति क्षीर पूर्ण समस्त ओषधियाँ जो अनके भाँति के पुष्प और फलों से सुसम्पन्न रहती हैं, तथा रक्तकमल एवं नील कमल खंड का दान करता है । भूमि दान करने से उस पुण्य की प्राप्ति होती है जो अधिक दक्षिणा समेत अति संभार सम्पन्न अग्निष्टोमादि नामक यज्ञों को सुसम्पन्न करने से प्राप्त होती है । किसी श्रोत्रिय ब्राह्मण को भूमि दान अर्पित कर पुनः उसे न लौटाने पर वह महाप्रलय पर्यन्त स्वर्ग में प्रतिष्ठित रहता है । उसी प्रकार सस्य श्यामला (हरियाली) भूमि श्रोत्रिय ब्राह्मण को अर्पित करने पर उसके पितरगण महाप्रलय पर्यन्त सन्तुष्ट रहते हैं । अपनी आजीविका से दुःखी होकर मनुष्य जो कुछ पाप करता है वह गोचर्म के तुल्य भी भूमि दान करने से नष्ट हो जाता है । सुवर्ण के सहस्र मुद्राओं द्वारा जितनी पुण्य की प्राप्ति होती है वह सभी फल गोचर्म के तुल्य भी भूमि दान करने वाले को प्राप्त होता है ।११-१९। नरोत्तम ! सहस्र कपिला गौओं को नित्य पुत्र दान करने से जो फल प्राप्त होता है वह गोचर्म के समान भी भूमि दान करने से प्राप्त होता है । व्यास के कथनानुसार तीस दण्डे के (समान विस्तृत) एक गोचर्म कहा गया है अतः उतनी भी भूमि प्रदान करने से यह मध्यम श्रेणी का मनुष्य स्वर्ग में पूजित होता है । सगर आदि अनेक राजाओं ने इस वसुधा का उपभोग किया अतः यह भूमि जब जब जिसकी रही है उसे उस समय फल प्राप्त हुआ है । (यमराज) के किंकर गण, मृत्यु दण्ड, असिपत्र आदि वन और वरुण का वह घोर पाश भूमि दानी का स्पर्श नहीं करते हैं ।२०-२३। रौरवादि नरक वह

---

१. फालकृष्टाम् । २. नगान्पुष्पफलोपगान् । ३. न हिसन्ति । ४. लभते हि सः ।

निरया रौरवाद्याश्च कुम्भीपाकः सुदुःसहः । तथा च यातनाः कष्टा नोपसर्पन्ति भूमिदम् ॥२४
चित्रगुप्तश्च कालश्च कृतान्तो मृत्युरेव च । यमश्चापि स्वयं राजा सम्पूजयति भूमिदम् ॥२५
रुद्रः प्रजापतिः शक्रो[१] देवासुरगणास्तथा । अहं च परमप्रीत्या पूजयामीह भूमिदम् ॥२६
षट्कर्मकृत्सुवृत्ताय कृशाय च प्रियार्थिने । भूमिर्देया नरव्याघ्र सन्निधिश्चाक्षयो भवेत् ॥२७
सीदमानकुटुम्बाय श्रोत्रियायाहिताग्नये । वृत्तस्थाय दरिद्राय भूमिर्देया नरेश्वर ॥२८
यथा जनित्री क्षीरेण पुत्रं सम्वर्द्धयेत्सदा । तथा भूमिप्रदं भूमिः सर्वकामैस्तु तर्पति ॥२९
यथा गौर्भरते वत्सं क्षीरेण क्षीरमुत्सृजेत् । तथा सर्वरसोपेता भूमिर्भरति भूमिदम् ॥३०
यथा बीजानि रोहन्ति जलसिक्तानि भूतले । तथा कामाः प्ररोहन्ति भूमिदस्य दिनेदिने ॥३१
यथोदयन्सहस्रांशुस्तमः सर्वं व्यपोहति । तथा भूमिप्रदानं तु सर्वपापं व्यपोहति ॥३२
परदत्तां तु यो भूमिमुपहिंसेत्कदाचन । स बद्धो वारुणैः पाशैः क्षिप्यते पूयशोणिते ॥३३
स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धराम् । स नरो नरके घोरे क्लिश्यत्याप्रलयान्तिकम् ॥३४
रुदतां वृत्तिनाशेन[२] ये पतंत्यश्रुबिंदवः । तावद्वर्षसहस्राणि नरके पच्यते तु सः ॥३५
ब्राह्मणानां हृते[३] क्षेत्रे हर्तुस्त्रिपुरुषं कुलम् । दत्त्वा भूमिं तु विप्राय उपहिंसेद्यदा पुनः ॥

दुःसह कुम्भी पाक तथा वहाँ की अनेक भाँति की कष्टप्रद यातनाएँ भूमिदानी के समीप नहीं जाती हैं। चित्रगुप्त, काल, कृतान्त, मृत्यु और स्वयं राजा यम भूमिदानी की पूजा करते हैं। उसी प्रकार रुद्र, अजगपति, इन्द्र, समस्त देवगण, तथा मैं भी परम प्रेम मग्न होकर भूमिदानी की पूजा करता हूँ! नरव्याघ्र! अपने जातीय षट्कर्म सुसम्पन्न करने वाले, सुवृत्त, (उत्तमवृत्ति) कृश, एवं प्रिय याचक ब्राह्मण को भूमि दान करना चाहिए जिससे उसका सान्निध्य और अक्षय फल प्राप्त हों। नरेश्वर दरिद्र कुटुम्बी, वेदपाठी, अग्निहोत्री एवं अपनी उत्तम वृत्ति से आजीविका निर्वाह करने वाला ब्राह्मण को भूमिदान अर्पित करना चाहिए। जिस प्रकार जन्म देने वाली माता अपने पुत्र का क्षीर द्वारा पालन पोषण करती है उसी भाँति यह भूमि दानी को समस्त कामनाओं की सफलता द्वारा प्रसन्न रखती है। अपने क्षीर द्वारा वत्स (बच्चे) को भरण पोषण करने वाली गौ की भाँति समस्त रसों से युक्त यह भूमि भी भूमि दानी का भरण पोषण करती है। इस भूतल में जिस भाँति जलसिक्त बीज अंकुर रूप में समृद्ध होते हैं उसी भाँति भूमि प्रदाता की समस्त कामनाएँ उत्तरोत्तर समृद्ध होती रहती हैं।२४-३१। उदय होते ही सूर्य जिस प्रकार सम्पूर्ण अन्धकार को नष्ट कर देता है उसी भाँति भूमि दान (प्रदाता) के समस्त पापों को विनष्ट करता है। दूसरे द्वारा दान की हुई भूमि का जो अपहरण पाप नष्ट भ्रष्ट करता है वह वरुण के पाश से आबद्ध होकर पूव (पीव) और शोणित (रक्त) के कुण्ड में डाल दिया जाता है। अपने द्वारा या दूसरे के द्वारा दी गयी पृथिवी का जो अपहरण करता है वह घोर नरक में प्रलय पर्यन्त पड़ा रहता है। वृत्ति (जीविका) का अपहरण नाश करने वाला मनुष्य उसके रुदन करते समय गिरे हुए अश्रु बिंदुओं की संख्या के सहस्र गुने वर्ष नरक में दुःख का अनुभव करता है। ब्राह्मणों के खेत का अपहरण करने वाला

---

१. शुक्रः। २. वृत्तिलोपेन। ३. हरेत्क्षेत्रं हन्यात्।

अधोमुखश्च दुष्टात्मा कुम्भीपाके स पच्यते ॥३६
दिव्यवर्षसहस्रान्ते कुम्भीपाकाद्विनिःसृतः । इह लोके भवेत्श्वा वै सप्त[1] जन्मानि पार्थिव ॥३७
स्वदत्तां परदत्तां वा यत्नाद्रक्षेद्युधिष्ठिर । महीं महीभृतां श्रेष्ठदानच्छ्रेयोनुपालनम् ॥३८
तोयहीनेष्वरण्येषु शुष्ककोटरवासिनः । कृष्णाहयोभिजायन्ते नरा ब्रह्मस्वहारिणः ॥३९
एव दत्वा महीं राजन्प्रहृष्टेनान्तरात्मना । सर्वान्कामानवाप्नोति मनसा चिंतितान्नरः ॥४०
भूमिदानात्परं नास्ति सुखं वामुष्मिकं महत् । न चापि भूमिहरणादन्यत्पातक मुच्यते ॥४१
यच्छन्ति ये द्विजवराय महीं सुकृष्टां[2] ते यान्ति शक्रसदनं सुविशुद्धदेहाः ।
ये लोपयन्त्यतिबलादथ[3] कामलोभात्ते रौरवादितिगहनान्न समुत्तरन्ति ॥४२

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
भूमिदानमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६४

अथ पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

पृथिवीदानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

भूमिदानं क्षत्रियाणां नान्येषामुपपद्यते । ते ह्युपार्जयितुं शक्तदातुं पालयितुं यथा[4] ॥१

अपने तीन पीढ़ियों का नाश करता है और ब्राह्मण को भूमिदान अर्पित करने पर पुनः उसे नष्ट करने वाला वह दुष्टात्मा कुम्भी पाक नरक में अधोमुख होकर पचता रहता है। पार्थिव ! कुम्भीपाक से यथावसर निकलने पर वह प्राणी इसलोक में सात जन्म तक बार-बार श्वान अथवा चाण्डाल योनि प्राप्त करता है। युधिष्ठर ! अपनी या पराये की दी हुई भूमि की सप्रयत्न रक्षा करनी चाहिए क्योंकि राजाओं को श्रेष्ठ दान की अपेक्षा उसकी रक्षा करना अधिक श्रेयस्कर बताया गया है। ब्राह्मण धन (जीविका) का अपहरण करने वाला पुरुष जलहीन जंगलों के सूखे हुए वृक्षों के कोटरों में कृष्ण सर्प होकर निवास करते हैं। राजन् ! प्रसन्न चित्त होकर पृथिवी दान करने से मनुष्य की सभी कामनाएँ यथेच्छ सकल होती हैं। लोक परलोक में भूमि दान के समान सुखप्रद अन्य वस्तु नहीं है उसी भाँति भूमिहरण केसमान अन्य पातक भी नहीं है। भली भाँति जोताई आदि करके वह सस्य श्यामला भूमि किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को अर्पित करने वाला विशुद्धात्मा होकर इन्द्र लोक प्राप्त करता है और काम, लोभ या बलात् उसका नाश करने वाला प्राणी प्रतिग्रहण रौरवादि नरक से भी मुक्त नहीं होता है।३२-४२

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठर के सम्वाद में
भूमिदान माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ चौसठवाँ अध्याय समाप्त।१६४।

अध्याय १६५

पृथ्वीदान का वर्णन

युधिष्ठर बोले—यादव ! भूमि दान क्षत्रियों, को ही सुलभ हो सकता है क्योंकि उसके उपार्जन,

---

१. सप्तजन्म पुनःपुनः। २. परम्। ३. स्वकृष्टाम्। सुमृष्टाम्। ४. अपि।

भूमिदानसमं किञ्चिदन्यत्कथय[१] यादव । सम्प्राप्तवित्तैर्यच्छक्यं संसारभयभीरवः ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

सौवर्णीं विधिवत्कृत्वा साद्रद्रुमवतीं शुभाम् । महीं प्रयच्छ विप्राणां तत्तुल्या सा निगद्यते ॥३
शृणुष्वैकमना भूत्वा महादानं नरोत्तम । सविधानं प्रवक्ष्यामि फलं यत्नेन[२] यद्भवेत् ॥४
चन्द्रसूर्योपरागे च जन्मर्क्षे विषुवे तथा । युगादिषु च दातव्यमयने च[३] विधानतः ॥५
अन्येष्वपि च कालेषु प्रशस्ते धनसञ्चये । पापक्षयाय दातव्यं यशोऽर्थे वा नरैर्भुवि ॥६
हेम्नतः पलशतेनोक्ता तदर्धेनापि शक्तितः । कुर्यात्पञ्चपलादूर्ध्वमसमर्थोऽपि भक्तिमान्[४] ॥७
कारयेत्पृथिवीं हैमीं जम्बुद्वीपानुकारिणीम् । मर्यादापर्वतवतीं मध्ये मेरुसमन्विताम् ॥८
लोकपालाष्टकोपेतां ब्रह्मविश्वेशसंयुताम् । नानापर्वतपूर्णां च रत्नाभरणभूषिताम् ॥९
सर्वसस्यविचित्राङ्गीं सर्वगन्धाधिवासिताम् । ईदृशीं तु महीं कृत्वा कारयेन्मण्डपं ततः ॥१०
दशद्वादशहस्तं च चतुर्वक्त्रं[५] सतोरणम् । मध्ये च वेदिकां कुर्याद्धनुर्हस्तां[६] प्रमाणतः ॥११
ऐशान्यां सुरसंस्थानमाग्नेय्यां कुण्डमेव च । पताकाभिरलङ्कृत्य देवतायतनान्यथ ॥१२
लोकपालाग्रहाश्चैव पूज्या माल्यविलेपनैः । होमं कुर्युर्द्विजाः शान्ताश्चातुश्चरणिकाः शुभाः ॥१३
सालङ्काराः सवस्त्राश्च माल्यचन्दनभूषिताः । अग्निसंस्थापनं तत्र कृत्वा पूर्वं ततो महीम् ॥१४

दान और पालन पोषण में वही समर्थ होते हैं पुनः भूमि दान के समान कोई अन्य दान बताने की कृपा कीजिये, जिससे संसार भय से भीरु धनवान् प्राणी भी अपने उस धन द्वारा उसे सुसम्पन्न कर सके। १-२

श्रीकृष्ण बोले—पृथ्वी की शुभसुवर्ण प्रतिमा बनाकर जिसमें पर्वत वनादि सभी निर्मित रहें, ब्राह्मणों को अर्पित करना उसके समान कहलाता है। नरोत्तम! इसलिए उस महादान का विधान और फल समेत वर्णन मैं कर रहा हूँ, सावधान होकर सुनो! चन्द्र सूर्य के ग्रहण समय, जन्म नक्षत्र, विषुव, युगादि के दिन, और अयन के समय सविधान उसका दान करना चाहिए। अपने पास धन संचय रहने पर अन्य समय भी पापक्षयार्थ और यश प्राप्ति के लिए मनुष्यों को इस भूतल पर यह दान सुसम्पन्न करना चाहिए। सुवर्ण के सौ पल या यथा शक्ति तदर्ध भाग से उसका निर्माण करना चाहिए किन्तु असमर्थ होने पर भी भक्तिमान् पुरुष को पाँच पल से अधिक सुवर्ण द्वारा ही उसका निर्माण करना चाहिए। उस सुवर्ण पृथ्वी के निर्माण जम्बू द्वीप के अनुकरण पूर्वक होना चाहिए। जिसमें उसकी मर्यादा, पर्वत, मध्य भाग में मेरुपर्वत, आठों लोकपाल समेत ब्रह्मा, शंकरादि, संयुत, अनेक पर्वतों से पूर्ण, रत्नाभरणभूषित, समस्त धान्यों से विचित्र अंगों वाली और समस्त गंधों से अधिवासित हो। इस प्रकार की भूमि का निर्माण करके दश या द्वादश हाथ का विस्तृत, चतुर्मुख और तोरण समेत मण्डप का निर्माण करे। उसके मध्य भाग में धनुर्हस्त प्रमाण की वेदी की रचना करे जिसके ईशान कोण में देवों के स्थान और अग्निकोण में कुण्ड के निर्माण पूर्वक पताकाओं से अलंकृत देवमन्दिरों लोकपालों और ग्रहों के स्थापन करे। माला विलेपन आदि द्वारा देवों की अर्चना करके शांत एवं चार चरण वाले ब्राह्मणों को हवन करना चाहिए। ३-१३।

---

१. दानम्। २. दत्तं च। ३. वा। ४. शक्तितः। ५. वा। ६. चतुर्हस्ताम्।

आनयेयुर्द्विजा राजन् ब्रह्मघोषपुरःसरम् । शङ्खतूर्यनिनादैश्च गेयमङ्गलनिस्वनैः ॥१५
तिलैः प्रच्छादितां वेदिं कृत्वा तत्राधिवासयेत् । अथाष्टादशधान्यानि रसांश्च लवणादिकान् ॥१६
तथाष्टौ पूर्णकलशान्समन्तात्स्थापयेच्छुभान् । वितानकं च कौशेयं फलानि विविधानि च ॥१७
अंशुकानि विचित्राणि श्रीखण्डशकलानि[1] च । इत्येवं रचयित्वा तामधिवासनपूर्वकम् ॥१८
ततो होमावसानेषु निष्पन्ने सर्वशान्तिके । शुक्लमाल्याम्बरधरो यजमानः स्वयं ततः ॥१९
कृत्वा प्रदक्षिणं पृथ्वीं गृहीत्वा कुसुमाञ्जलिम् । पुण्यकालमथासाद्य मन्त्रानेतानुदीरयेत्[2] ॥२०
नमस्ते सर्वदेवानां त्वमेव भवनं यतः । धात्री त्वमसि भूतानामतः पाहि वसुन्धरे ॥२१
वसु धारयसे यस्मात्सर्वसौख्यप्रदायकम् । वसुन्धरा ततो जाता तस्मात्पाहि भयादलम् ॥२२
चतुर्मुखोऽपि नो गच्छेद्यस्मादन्तं तवाचले । अनन्तायै नमस्तुभ्यं[3] पाहि संसारकर्दमात्[4] ॥२३
त्वमेव लक्ष्मीर्गोविन्दे शिवे गौरीति संस्थिता । गायत्री ब्रह्मणः पार्श्वे ज्योत्स्ना चन्द्रे रवौ प्रभा ॥२४
बुद्धिर्बृहस्पतौ ख्याता मेधा मुनिषु संस्थिता । विश्वं प्राप्य स्थिता यस्मात्ततो विश्वम्भरा मता ॥२५
धृतिः क्षितिः क्षमा क्षोणी पृथिवी वसुधा मही । एताभिर्मूर्तिभिः पाहि देवि संसारसागरात् ॥२६
एवमुच्चार्य[5] तां देवीं ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् । धरार्द्धं वा चतुर्भागं गुरवे प्रतिपादयेत् ॥२७
अनेन विधिना यस्तु दद्याद्देवीं धरां बुधः । पुण्यकाले च सम्प्राप्ते स पदं याति वैष्णवम् ॥२८

अलंकार, वस्त्र, माला चन्दन आदि से भूषित ब्राह्मणों को सर्वप्रथम अग्नि संस्थापन करके पश्चात् ब्रह्मघोष (वेदपाठादि), शंख, तुरुही की मांगलिक ध्वनि और मंगल गान द्वारा पृथ्वी की उस प्रतिमा को वहाँ लाकर तिल से आच्छन्न वेदी पर उसका अधिवासन करे। अनन्तर अठ्ठारह प्रकार के धान्य, समस्त रस, और लवणादि समेत चारों ओर पूर्ण कलश की स्थापना करते हुए रेशमी वितान (चँदोवा), अनेक भाँति के फलब चित्रविचित्र वस्त्र तथा श्रीखण्ड (चन्दन) के टुकड़े से उसे सुशोभित करे। इस प्रकार की रचना के अनन्तर उस प्रतिमा के अधिवासन पूर्वक हवन और शांति कर्म सुसम्पन्न होने पर स्वयं यजमान श्वेत वस्त्र और माला धारण कर पुष्पाञ्जलि लिए पृथिवी की प्रदक्षिणा करे और उस पुण्य अवसर पर निम्नलिखित मंत्रों द्वारा प्रार्थना करें—वसुन्धरे! समस्त देवों का भवन तुम्हीं हो अतः तुम्हें बार बार नमस्कार है और समस्त जीवों की धात्री हो अतः मेरी रक्षा करो।१४-२२। समस्त सौख्यप्रद वसु तुम धारण करती हो इसीलिए तुम्हें वसुन्धरा कहा जाता है, निर्भीक होकर मेरी रक्षा करो—अचले! चतुर्मुख ब्रह्मा भी तुम्हारे अंत का पता नहीं लगा सके अतः तुम अनन्ता हो इस संसार कीचड़ से मेरी रक्षा करो मैं तुम्हें बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ। तुम्हीं गोविन्द की लक्ष्मी, शिव की गौरी, ब्रह्मा के पार्श्व में गायत्री, चन्द्र की ज्योत्स्ना एवं रवि की प्रभा हो। उसी भाँति बृहस्पति में बुद्धि मुनिगणों में मेधा होकर स्थित हो। विश्व का भरण पोषण करने के नाते तुम्हें विश्वम्भर कहा जाता है। देवि! धृति, क्षिति, क्षमा, क्षोणी, पृथिवी, वसुधा महीं आदि अपनी मूर्तियों द्वारा इस संसार सागर से मेरी रक्षा करो।२३-२६। इस प्रकार प्रार्थना करने के उपरांत उसे (मूर्ति को) ब्राह्मणों को अर्पित करते हुए और पृथ्वी का आधा या चौथा भाग गुरु को अर्पित करे। इस विधान द्वारा पृथ्वी देवी का दान करने वाला विद्वान् मनुष्य पुण्य

---

१. श्रीखण्डशकटानि च। २. उदाहरेत्। ३. तस्मात्। ४. संसारसागरात्। ५. सधार्य।

यदि कर्तुं न शक्नोति[1] पुण्येह्नि बहुविस्तरम् । संस्थाप्य शोभने स्थाने महीमेव प्रदापयेत् ।।२९
विमानेनार्कवर्णेन किंकिणीजालमालिना । नारायणपुरं गत्वा कल्पत्रयमथावसेत् ।।३०
क्षीणपुण्य इहाभ्येत्य राजा भवति धार्मिकः । विजयी शत्रुदमनो बहुभृत्यपरिच्छदः[2] ।।३१
शतकोट्यधिपः[3] शूरश्चक्रवर्ती महाबलः । सप्त जन्मानि दानस्य माहात्म्याद्राज्यमाप्नुयात् ।।३२
द्वीपाविकर्षविषमां विधिवद्विधाय हैमीं महीं सुरमहीमिव विन्ध्यमध्याम् ।
लोकेशशम्भुशिवकेशवसंयुतां च प्रायच्छ पार्थ तव किं बहुनोदितेन ।।३३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
पृथिवीदानविधिवर्णनं नाम पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६५

अथ षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

हलपंक्तिदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अतः **परं प्रवक्ष्यामि दानमत्यद्भुतं तव[4] । येन दत्तेन राजेन्द्र सर्वदानप्रदो भवेत् ।।१**
सर्वपापप्रशमनं सर्वसौख्यप्रदायकम् । प्रयुक्तं हलपंक्त्या च सर्वदानफलप्रदम् ।।२
पंक्तिर्दशहला प्रोक्ता हलं स्यात्तु चतुर्गवम् । सारदारुमयान्याहुर्हलानि[5] दश पण्डिताः ।।३

अवसर पर वैष्णव पद (विष्णुलोक) प्राप्त करता है । यदि पुण्य अवसर पर बहुविस्तार समेत पृथिवी दान करने में असमर्थ हो तो किसी शोभन स्थान पर केवल पृथिवी का ही दान करे । सूर्य के समान प्रकाशित और किंकड़ी जाल भूषित विमान द्वारा नारायणपुरी में तीन कल्प तक निवास प्राप्त होता है । पश्चात् पुण्य क्षीण होने इस लोक में धार्मिक राजा होता है, जो विजयो, शत्रुओं का दमन करने वाला एवं अनेक सेवकों से युक्त रहता है । सौ कोटि का अधिप, शूर, चक्रवर्ती और महाबलवान् राजा होकर सात जन्म तक उस दान के प्रभाव से वैसा ही राज्य प्राप्त करता रहता है । पार्थ ! सविधान सुवर्ण मूर्ति उस पृथिवी का अवश्य दान करो । अधिक कहने से क्या लाभ । जो द्विपादि युक्त रहने से मध्य में विन्ध्य, लोकपाल, शिव, केशव आदि देवों से युक्त हो ।२७-३३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
पृथिवीदानविधि वर्णन नामक एक सौ पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ।१६५।

अध्याय १६६

हलपंक्तिदान का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—राजेन्द्र ! मैं तुम्हें एक अद्भुत दान बता रहा हूँ, जिसके प्रदान करने से समस्त दान का प्रदान हो जाता है । वह हल पंक्ति का दान समस्त पापों के विनाश पूर्वक समस्त सौख्य और सम्पूर्ण दान का फल प्रदान करता है।१-२। पण्डित वृन्दों ने काष्ठों के सारभाग का हल बनाना बताया है, ऐसे दश

---

१. पुण्यैश्च । २. बहुवित्तपरिच्छदः । बहुवृत्तपरिच्छदः । ३. शतकोशधिपः । ४. परम । ५. सारदारुमयान्कृत्वा हलान्दश विचक्षणः ।

सौवर्णपट्टसंनद्धरत्नवन्ति शुभानि च । यूनश्च बलिनो भव्यान्व्यङ्गहीनान्स्वलंकृतान् ॥४
वस्त्रकाञ्चनपुष्पैश्च चन्दनैर्दिग्धमस्तकान् । अभग्नान्योजयेत्तेषु लांगलेषु वृषाञ्छुभान् ॥५
योक्त्राणि युगलग्नानि[1] सद्वृषाणि च कारयेत् । प्रतोदकीलकाबन्धसर्वोपकरणान्विताम् ॥६
एवं विधहलैः कुर्यात्संयुक्तां हलपंक्तिकाम् । कर्वटं खेटकं चापि ग्रामं वा सस्यमालिनम् ॥७
निवर्तनशतं वापि तदर्द्धं वा प्रकल्पयेत् । एवंविधां पर्वकाले दद्यात्प्रयतमानसः ॥८
कार्तिक्यां चाथ वैशाख्यामुत्तरे वाऽयने तथा । जन्मर्क्षे ग्रहणे वापि विषुवे वा प्रदापयेत् ॥९
ब्राह्मणान्वेदसम्पन्नान्व्यंगहीनानलंकृतान्[2] । श्रोत्रियांश्च विनीतांश्च हलसंख्यान्निमन्त्रयेत् ॥१०
दशहस्तप्रमाणेन मण्डपं कारयेद्बुधः । पूर्वे[3] द्विकुण्डमेकं वा हस्तमात्रं सुशोभनम् ॥११
तत्र व्याहृतिभिर्होमं कुर्युस्ते द्विजसत्तमाः । पर्जन्यादित्यरुद्रेभ्यः पायसेन यजेद्बुधः ॥१२
पालाश्यः समिधस्तत्र ह्याज्यं कृष्णास्तिलास्तथा । अधिवास्य च तां पंक्तिं धान्यमध्यगतां[4] शुभाम् ॥१३
ततः सर्वसमीपे तु स्नातः शुक्लाम्बरः शुचिः । हलपंक्तिं योजयित्वा यजमानः समाहिताः ॥१४
तूर्यशङ्खनिनादैश्च ब्रह्मघोषैः सुपुष्कलैः । इममुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥१५
यस्माद्देवगणाः सर्वे हले तिष्ठन्ति सर्वदा । वृषस्कन्धे संनिहितास्तस्माद्भक्तिः शिवेस्तु मे ॥१६
यस्माच्च भूमिदानस्य[5] कलां नार्हन्ति षोडशीम् । दानान्यन्यानि मे भक्तिर्धर्मे चास्तु दृढा सदा ॥१७
एवमुक्ते ततः पंक्तिं प्रेरयेयुर्द्विजोत्तमाः । बीजानि सर्वरत्नानि सुवर्णं रजतं तथा ॥१८

हल की एक पंक्ति होती है और चार गो (बैल) जिसमें जोते जाँगे उसे हल कहा जाता है । सुवर्ण के पट्टा लगा कर जो रत्न भूषित और शुभ रहता है उसमें युवा और बली बैल जोतना चाहिए, जो दोष हीन अलंकृत, वस्त्र, काञ्चन, पुष्प और चन्दन से चर्चित मस्तक हो । उन शुभ बैलों को हल के पास लाकर जूआ उनके कन्धे पर रखे और पवित्र (जूए और हल में बाँधने की) रस्सी से दृढ़ बन्धन करे । जो प्रतोद (चाबुक) और कील बंधन आदि साधनों से मुक्त हो । इस प्रकार के हलों द्वारा हल की पंक्ति बनाते हुए उसे समेत कर्कट, खेटक अथवा हरे भरे धान्यों समेत गाँव में किसी पर्व काल में अर्पित करे । कार्तिक पूर्णिमा, वैशाख की पूर्णिमा, उत्तरायण सूर्य जन्म नक्षत्र, ग्रहण, और विषुव काल में हल की संख्या के अनुसार वैदिक विद्वान् ब्राह्मणों को, जो व्यंगहीन, अलङ्कार शून्य, श्रोत्रिय, और विनीत हों, निमंत्रित करे । दश हाथका विस्तृत मण्डप का निर्माण कर उसके पूर्व दिशा की ओर दो या एक एक हाथ का शोभन कुण्ड बताये, जिसमें मेध, आदित्य और रुद्र के लिए पायस की आहुति प्रदान करे । पलाश की समिधा, घृत और कृष्ण तिल के हवन के अनन्तर उस शुभ पंक्ति को धान्य के मध्य में अधिवासित करे ।३-१३। पश्चात् स्नान कर श्वेत वस्त्र धारण किये पवित्रता पूर्ण यजमान सर्व के समीप जाकर हल पंक्ति को एक में आबद्ध करे । और तुरूही, शंख की ध्वनि, ब्रह्मघोष, पूर्ण इन मंत्रों का पुष्पांजलि लिए उच्चारण करे—जिस कारण समस्त देवगण हल में निवास करते हैं और बैल के स्कन्ध में सन्निहित रहते हैं उसी नाते शिव की भक्ति मुझमें स्थायी हो । जिस कारण भूमि दान की सोलहवीं कला के समान भी अन्य दान नहीं है उसी नाते मुझमें भी धर्मभक्ति सदैव के लिए दृढ़ हो ।१४-१७। इस प्रकार कहने के उपरान्त द्विजगण उस पंक्ति

---

१. धूपलग्नानि । २. स्वलंकृतान् । ३. कारयेत्कुण्डम् । ४. धनमध्यगतं शुभाम् । ५. कृषिदानस्य ।

स्वयं पश्चाद्धले लग्नो विप्रहस्तेषु निर्वपेत् । यायान्निवर्तनं यावत्ततस्तु विरमेद्बुधः ॥१९
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा विप्राणां प्रतिपाद्य च । सदक्षिणां विधानेन प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥२०
अनेन विधिना यस्तु दानमेतत्प्रयच्छति । एकविंशत्कुलोपेतः स्वर्गलोके महीयते ॥२१
सप्तजन्मसु दारिद्र्यंदौर्भाग्यं व्याधयस्तथा । न पश्यति च भूमेस्तु तथैवाधिपतिर्भवेत् ॥२२
दृष्ट्वा तद्दीयमानं तु दानमेतद्युधिष्ठिर । आजन्मनः कृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥२३
दानमेतत्प्रदत्तं हि दिलीपेन ययातिना । शिबिना निमिना चैव भरतेन च धीमता ॥२४
तेऽद्यापि दिवि मोदन्ते दानस्यास्य प्रभावतः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दानमेतन्नृपोत्तम ॥२५
दातव्यं भक्तियुक्तेन स्त्रिया वा पुरुषेण वा । यदि पंक्तिर्न विद्येत पञ्च वा चतुरोऽथ वा ॥२६
एकमप्युक्तविधिना हलं देयं विचक्षणैः ॥२७

ये सन्ति लाङ्गलमुखोत्थरजोविकारा यावन्ति तद्गतधुरन्धर रोमकाणि ।
तावन्ति शङ्करपुरे त्रियुगानि तिष्ठेत्पंक्तिप्रदानमिह यत्कुरुते मनुष्यः ॥२८
युक्तां वृषैरतिबलैर्हैलपंक्तिनेतां पुण्येह्नि भक्तिसहितान्द्विजपुङ्गवेभ्यः ।
यच्छन्ति ये सुकृतिनो वसुधासमेतां ते भूभुजो भुवमुपेत्य[१] भवन्ति भव्याः ॥२९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
हलपंक्तिदानविधिवर्णनं नाम षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६६

बीज, समस्त रत्न, सुवर्ण का संचालन करते हुए हल के पीछे चलकर ब्राह्मणों के हाथों द्वारा बीज वपन करें और जब तक उसका निवर्तन होता रहे, तब तक विराम किये रहे । अनन्तर प्रदक्षिणा करके दक्षिणा समेत उसे सविधि ब्राह्मणों को अर्पित कर नमस्कारपूर्वक विसर्जन करे । इस विधान द्वारा इसका दान करने वाला प्राणी अपनी इक्कीस पीढ़ी समेत स्वर्ग लोक में पूजित होता है । सात जन्म तक उसे दारिद्र्य दुर्भाग्य और व्याधि उत्पन्न नहीं होती है अपितु भूमि का अधिति होता है । युधिष्ठिर ! दान देते समय इसे देखने वाला भी पुरुष आजन्म के पाप से मुक्त हो जाता है इसमें संदेह नहीं ।१८-२३। राजादिलीप, ययाति, शिवि, निमि, और बुद्धिमान राज भरत ने इस दान कर्म को सुसम्पन्न किया था, जिसके प्रभाव से वे सब आज भी स्वर्ग में आनन्द मग्न हो रहे हैं । नृपोत्तम ! इस लिए स्त्री, पुरुष सभी को भक्ति पूर्वक इसका दान अवश्य करना चाहिए । यदि पंक्ति दान किसी कारण वश न कर सके तो पाँच, चार या एक हल का ही दान अवश्य करे । हल के मुख (फल) द्वारा निकली हुई मिट्टी के रजकण और धुरंधर बैलों के लोम संख्या के समान वर्ष तीन युग तक शंकर पुरी में वह पंक्ति का दानी मनुष्य निवास करता है । इस प्रकार अत्यन्त बलवान् बैलों से युक्त उस हल पंक्ति पृथ्वी समेत का दान पुण्य अवसर पर भक्ति समेत श्रेष्ठ ब्राह्मणों को अर्पित करने वाला पुण्यात्मा मनुष्य इस भूतल में भव्य राजा होता है ।२४-२९

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के संवाद में
हलपंक्ति दान विधिवर्णन नामक एक सौ छाछठवाँ अध्याय समाप्त ।१६६।

---

१. भुवि भवन्ति समेत्य भव्याः ।

अथ सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

आपाकदानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

तन्मे कथय देवेश येन दत्तेन मानवः । बहुपुत्रो बहुधनो बहुभृत्यश्च जायते ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा भारत वंशेऽस्मिन् राजासीद्धव्यवाहनः । पितृपैतामहं तेन प्राप्तं राज्यमकण्टकम् ॥२
न तस्य राज्ये विध्वंसी न वैरिजनितं भयम् । शरीरोत्थमहाव्याधिर्नैवान्तरदायकः ॥३
तस्यैवं कुर्वतो राज्यं पूर्वकर्मार्जिताशुभात् । नास्ति भृत्यो भारसहः सर्वराज्यधुरन्धरः ॥४
न पुत्रः प्रियकृत्कश्चिन्न मन्त्री मधुराक्षरः । न मित्रं कार्यकरणे समर्थो न सुहृत्तथा ॥५
न भोज्यसमये प्राप्ते भोजनं सार्वकामिकम् । न पूगफलसंयुक्तं ताम्बूलं[1] वसनानि च ॥६
न धनं जनसम्बन्धकारको रत्नसंचयः । तस्यैवं कुर्वतो राज्यमव्याहतमचेष्टितम्[2] ॥७
अथैकस्मिन्दिने विप्रः पिप्पलादोऽतिविश्रुतः । आजगाम महायोगी यज्ञः पार्श्वे महाद्युतिः ॥८
तमागतं मुनिं दृष्ट्वा राजपत्नी[3] शुभावती । पाद्यार्घ्यासनदानेन सर्वथा तमपूजयत् ॥९

अध्याय १६७

आपाक (मृत्तिका-भाण्ड) दानविधि का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—देवेश ! मुझे वह दान बताने की कृपा कीजिये, जिसके दान करने से मनुष्य बहुपुत्र अतुल सम्पत्ति, और अनेक सेवक गण प्राप्त करता है ।१

श्रीकृष्ण बोले—भारत् ! प्राचीन समय में इस वंश में हव्यवाहन नामक राजा था, जो पितृ-परम्परा प्राप्त निष्कण्टक राज्य का उपभोगी हुआ था । उसके राज्य काल में प्रजाओं आदि में न किसी वस्तु का विध्वंस होना देखा जाता था, न वैरजनित भय था, और न शरीर में किसी प्रकार की व्याधि ही कभी हुई थी । किन्तु इस प्रकार राज्य का उपभोग करते हुए भी जन्मान्तरीय अशुभ कर्मों के कारण उनके कोई भारक्षम सेवक नहीं जो समस्त राज्य के भार को अपनाये सहयोग दे सके, प्रिय कर्म करने वाला पुत्र भी नहीं, मधुराक्षर (मंत्रपद) वाला कोई मंत्री नहीं था । उसी प्रकार कार्य कुशल कोई मित्र हितैषी भी नहीं था । भोजन के समय उन्हें यथारुचि का भोजन भी नहीं मिल रहा था, पूंगीफल (सुपाड़ी) आदि युक्त उत्तम ताम्बूल, वसन, मनुष्यों में भले जोग रखने का मुख्य कारण रत्न संचय भी नहीं था । उनके इस प्रकार की अनिच्छा पूर्वक राज्य करते हुए एक दिन पिप्लाद नामक प्रख्यात एवं महायोगी तथा महाद्युति तेजस्वी ब्राह्मण का राजा के यहाँ आगमन हुआ । उन्हें पाये हुए देखकर शुभाती नामक उनकी रानी ने अर्घ्य, पाद्य आसन आदि के प्रदान द्वारा उनकी अर्चा की ।२-९। पश्चात् कथा के समाप्त होने पर रानी ने मुनि से कहा—भगवन् ! द्विज यद्यपि मेरे राज्य में

---

१. ताम्बूलसेवनम् । २. तथा । ४. अव्याहतविचेष्टितम् ।

ततः कथां ते कस्मिंश्चित्तमुवाच शुभावती । भगवन् राज्यमेतन्नः सर्वबाधाविवर्जितम् ।।१०
कस्मान्नभृत्याः पुत्रा वा मन्त्रिमित्रादिकं द्विज । भोगावाप्तिर्न च तथा सर्वलोकातिशायिनी ।।११

पिप्पलाद उवाच

यद्येन पूर्वविहितं तदसौ[1] प्राप्नुते फलम् । कर्मभूमिरियं राज्ञि नातः शोचितुमर्हसि ।।१२
न तत्कुर्वन्ति राजानो न दायादा न शत्रवः । न बान्धवा न मित्राणि यद्येन न पुरा कृतम् ।।१३
तस्माद्भवद्भिर्यद्दत्तं प्राप्तं तद्राज्यमुत्तमम् । भृत्यमित्रादिसम्बन्धो न दत्तः प्राप्यते कुतः ।।१४

शुभावत्युवाच[2]

इदानीमेव विप्रर्षे कस्मात्तन्नोपदिश्यते । येन मे बहवः पुत्रा धनं भृत्या भवन्ति वै ।।१५
मन्त्रो वा सिद्धयोगो वा व्रतं दानमुपोषितम् । कथयस्वामलमते येन सम्पद्यते सुखम्[3] ।।१६
ततः स कथयामास पिप्पलादो द्विजोत्तमः । आपाकाख्यं महादानं सर्वसम्पत्प्रदायकम् ।।१७
श्रद्धया कुरुशार्दूल नारी वाप्यथ वा पुमान् । येन दत्तेन भाग्यानां बहूनां भाजनं भवेत् ।।१८
तच्छ्रुत्वा स ददौ राजाऽऽपाकाख्यं दानमुत्तमम् । लेभे पुत्रान्पशून्भृत्यान्मन्त्रिमित्रसुहृज्जनान् ।।१९

श्रीकृष्ण उवाच

आपाकाख्यं महादानं कथयामि युधिष्ठिर । दत्तेन येन कामानां पुमान्भवति भाजनम् ।।२०
ग्रहताराबलं लब्ध्वा भार्गवं[4] पूजयेच्छुभम् । वासोभिर्भूषणैश्चैव पुष्पैरगरुचन्दनैः ।।२१

किसी प्रकार की बाधा नहीं है तथापि न जाने क्यों सेवक गण, पुत्र, मंत्री एवं मित्रादि कोई नहीं है और हमलोगों का राज्योपभोग भी अत्यन्त प्रशस्त नहीं है ।१०-११

पिप्पलाद बोले—रानी ! पूर्वजन्म में जिसने जैसा किया है वही फल उसे प्राप्त होते हैं, क्योंकि यह कर्म भूमि है अतः इस विषय में किसी प्रकार का शोक न करना चाहिए । जिसने पूर्व जन्म में जो कुछ नहीं किया है, राजा, उस बान्धव, शत्रु और मित्र उसे पूँछा नहीं कर सकते । इसलिए आप लोगों से पूर्वजन्म में जो दिया उसका फल यह उत्तम राज्य प्राप्त हुआ है और सेवकादि दिया नहीं तो वह कहाँ से मिल सकता है ।१२-१४

शुभावती बोली—विप्रर्षे ! इस समय आप उसका उपदेश हमें क्यों नहीं दे रहे हैं जिसके द्वारा हमें अनेक पुत्रों समेत अतुल धन सेवाकादि की प्राप्ति हो सकती है । अमलमते ! मंत्र, सिद्ध योग, व्रत दान या उपवास आदि कोई हो, जिससे सुख प्राप्त हो सके, बताने की कृपा करें । तदुपरांत द्विजोत्तम पिप्पलाद ने उन्हें एक आपाक नामक महादान बताया, जो समस्त भाँति की समृद्धि प्रदान करता है । कुरुशार्दूल ! स्त्री पुरुष कोई भी भक्ति श्रद्धा पूर्वक जिसके सुसम्पन्न करने पर अनेक प्रकार की भाग्यों का वह भाजन होता है । उसे सुनकर राजा ने उस आपाक नामक परमोत्तम दान को सुसम्पन्न किया, जिससे उन्हें पुत्र, पशु, सेवकगण, मंत्री मित्र एवं हितैषी आदि की प्राप्ति हुई ।१५-१९

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर ! मैं तुम्हें उस आपाक नामक महादान को बता रहा हूँ जिसके प्रदान करने से मनुष्य कामनाओं (की सफलता) का भाजन होता है । अपने गृह, तारा आदि का बल भली

---

१. हि । २. अस्मै । ३. भानुमत्युवाच । ४. मुनेः । ५. कुलालभित्यर्थः ।

कुर्यात्तथैव सम्मानं यथा तुष्टोऽभिजायते । कुरुष्व त्वं मे भाण्डानि गुरूणि च लघूनि च ॥२२
मणिकादीनि शुभ्राणि स्थाल्यश्च सुमनोहराः । घटकाः करकाश्चैव गलंत्यः कुण्डलानि च ॥२३
शरावादीनि पात्राणि भाण्डमुच्चावचं बहु । सम्पादय महाभाग विश्वकर्मा त्वमेव हि ॥२४
भार्गवोऽपि प्रयत्नेन नानाभाण्डान्वितं शुभम् । आपाकं कल्पयेद्दिव्यं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥२५
सहस्रमेकं भाण्डानां स्थापयित्वा विचक्षणः । सन्ध्याकाले ज्वलित्वा[१] तु दद्याच्चापि हुताशनम् ॥२६
रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतमङ्गलनिस्वनैः । ततः प्रभाते विमले ज्ञात्वा निर्वापितं शनैः[२] ॥२७
रक्तवस्त्रैः समाच्छाद्य[३] पुष्पमालाभिरर्चयेत् । यजमानस्ततः स्नात्वा शुक्लाम्बरधरः शुचिः ॥२८
हेमरौप्याणि भाण्डानि ताम्रलोहमयानि च । परितः स्थापयित्वा च स्वशक्त्या तानि षोडश ॥२९
पूजयित्वा प्रयत्नेन कृत्वा चारु प्रदक्षिणाम् । ब्राह्मणान्पूजयित्वा च भार्गवं पूज्य यत्नतः ॥३०
नार्यश्चाविधवास्तत्र समानीय प्रपूज्य च । प्रदक्षिणं ततः कृत्वा मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥३१
आपाकब्रह्मरूपोऽसि भाण्डानीमानि जन्तवः । प्रदानात्ते प्रजापुष्टिः[४] स्वर्गश्चास्तु ममाक्षयः[५] ॥३२
भाण्डरूपाणि यान्यत्र कल्पितानि मया किल । भूत्वा सत्पात्ररूपाणि उपतिष्ठन्तु तानि मे ॥३३

(इति दानमंत्रः)

या च यद्भाण्डमादत्ते तस्यैतद्दापयेत्ततः । स्वेच्छया चैव गृह्णातु न निवार्यास्तु काश्चन ॥३४
अनेन विधिना यस्तु दानमेतत्प्रयच्छति । विश्वकर्मा भवेत्तुष्टस्तस्य जन्मत्रयं नृप ॥३५

भाँति देखकर शुभ मुहुर्त में वस्त्र, आभूषण, पुष्प, अगुरु, चन्दनादि द्वारा सम्मान पूर्वक उसकी अर्चना करे जिससे वह हर्ष से गद्गद हो जाये । अनन्तर कहे कि—मेरे लिए तू छोटे बड़े मिट्टी के पात्र—स्वच्छ, मणिक, सुमनोहर स्थाली घटक, करक, गलत्, शराव (कोरा), आदि पात्र समेत अनेक छोटे बड़े पात्र बनाने की कृपा करो । महाभाग ! तुम विश्वकर्मा हो, अतः इस काम का सम्पादन अवश्य करो । कुम्हार को भी चाहिए तदनन्तर प्रयत्न पूर्वक अनेक भाँति के शुभ पात्र, जो दिव्य आपाक होता है, सविधि और कुशलता पूर्ण बनाये वह बुद्धिमात् (कुम्हार) दिन में एक सहस्र पात्रों के निर्माण के उपरांत संध्या समय उसमें अग्नि प्रदान करे । गीत एवं मांगलिक ध्वनि द्वारा रात्रि व्यतीत करने पर निर्मल प्रभात के समय उसे पका और अग्नि को शांत समझ कर रक्त वस्त्र से आच्छादित करते हुए पुष्प माला आदि से अर्चा करे । पश्चात् यजमान स्नान, श्वेत वस्त्र धारण किये पवित्रता पूर्ण सुवर्ण, चाँदी, ताँबें, लोहें आदि के यथाशक्ति बनाये हुए उन सोलह पात्रों को चारों ओर स्थापित कर पूजनोपरांत प्रदक्षिणा पूर्वक ब्राह्मणों और उस कुम्हार की पूजा करे । उसमें सधवा स्त्रियों को भी लाकर पूजा करना चाहिए । प्रदक्षिणा पूर्वक इस मंत्र द्वारा उसकी असमर्थता करे—आपाक ! तुम ब्रह्मरूप हो, जन्तुगण भांड (पात्र) रूप हैं, तुम्हारे दान करने प्रजा (संतान) पुष्टि पूर्वक मुझे अक्षय स्वर्ग प्राप्त हो । मैंने जिन भाण्डों की कल्पना की है वे सत्पात्र रूप में मुझे प्राप्त हों ।२०-३३। अनन्तर जो स्त्री जिस पात्र को लेना चाहे उसे वही देना चाहिए विशेषतः निर्वाध रूप से सभी स्त्रियों को उसे लेने देवे । नृप ! इस विधान द्वारा जो यह दान सुसम्पन्न करता है उस पर विश्वकर्मा सन्तुष्ट होते है जिससे तीन जन्म तक वह स्त्री अतुल सौभाग्य, ग्रह, समस्त गुण युक्त

---

१. जपित्वातु, स्वपित्वा तु । २. स्वनैः । ३. समासाद्य । ४. तेजसापुष्टिः । ५. तथा सदा ।

नारी च दत्त्वासौभाग्यमतुलं प्रतिपद्यते । गृहं सर्वगुणोपेतं[1] भृत्यमित्रजनैर्वृतम् ॥३६
अवियोगं[2] सदा भर्त्रा रूपं चानुत्तमं लभेत् । भूदानमेतन्निर्दिष्टं प्रकारेण तवानघ ॥
भिद्यतेबहुभिर्भेदै र्भूमिरेषा[3] नरेश्वर ॥३७

निष्पाद्य भाण्डनिचयोच्चतरं प्रयत्नादापाकदानमिह या कुरुते वरस्त्री[4] ।
सा पुत्रपौत्रपशुवृद्धिसुखानि भुक्त्वा प्रेत्य स्वभर्तृसहिता सुखिनी सदास्ते ॥३८

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
आपाकदानविधिवर्णनं नाम सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६७

अथाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

गृहदानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ ज्ञानविज्ञानपारग । गृहदानस्य माहात्म्यं विधिं वद[5] विदांवर ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

न गार्हस्थ्यात्परो धर्मो नास्ति दानं गृहात्परम् । नानृतादधिकं पापं न पूज्यो ब्राह्मणात्परः ॥२
धनधान्यसमायुक्तं कलत्रापत्यसंकुलम् ॥३
गोगजाश्वगणाकीर्णं गृहं स्वर्गाद्विशिष्यते । यथामातरमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः ॥४

सेवक, और मित्र आदि अनेक हितैषी प्राप्त करती है। उसे पति का सदा संयोग और उत्तम गति की प्राप्ति होती है। अनघ, नरेश्वर ! प्रकारान्तर से मैंने तुम्हें यह भूमि दान बता दिया क्योंकि इसका अनेक भेद बताया गया है। इस प्रकार भाण्ड समूहों को सप्रयत्न बनाकर आपाक दान करने वाली स्त्री पुत्र, पौत्र, पशु वृद्धि, आदि सुखों के अनुभव करती हुई, अपने पति के सहित सदैव सुखिनी रहती है।३४-३८

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के संवाद में
आपाक दान विधि वर्णन नामक एक सौ सरसठवाँ अध्याय समाप्त।१६७।

अध्याय १६८

गृहदानविधि का वर्णन

युधिष्ठर बोले—ज्ञानीप्रवर ! आप समस्त शास्त्रों के अर्थतत्त्वों को भली भाँति जानते है, और ज्ञानविज्ञान के पारगामी हैं, अतः मुझे गृह प्रदान का महत्त्व बताने की कृपा करें।१

श्रीकृष्ण बोले—गृहस्थी के गार्हस्थ्य (धर्म) से बढ़कर कोई धर्म, गृहदान से श्रेष्ठ कोई अन्य दान, असत्य बोलने से अधिक अन्य कोई पाप और ब्राह्मण से अन्य कोई पूज्य नहीं है। क्योंकि धन धान्य पूर्ण, पुत्रादि परिवार से भूषित, और गौ, गजराज, एवं घोड़े से व्याप्त रहने वाला गृह स्वर्ग से अधिक

---

१. सर्वजनोपेतं भृत्यमन्त्रिजनैर्वृतम्। २. अवियोगं च पत्युर्वा रूपं चानुत्तमं लघु। ३. चेह विविधैः। ४. च साध्वी। ५. विधविदाम्वर।

एवं गृहस्थमाश्रित्य वर्तयन्तीतराश्रमाः[१] । धर्मश्चार्थश्च कामश्च मित्राणि प्रथितं यशः ॥५
प्राप्तकामैर्नरैः पार्थ सदा सेव्यो गृहाश्रमः[२] । न गृहेण विना धर्मो नार्थकामौ सुखं न च ॥६
न लोके पंक्तिर्न यशः प्राप्यते त्रिदशैरपि । न तत्स्वर्गे नापवर्गे न तत्केनोपमीयते ॥७
प्रसार्य पादौ यद्रात्रौ स्वगृहे स्वपतां सुखम् । दिनानि नास्य गण्यन्ते नैनमाहुर्महाशनम् ॥८
अपि शाकं पचानस्य स्वगृहे परमं सुखम् । इति मत्वा महाराज कारयित्वा सुशोभनम् ॥९
भवनं[३] ब्राह्मणे देयं भव्यभूतिमभीप्सता[४] । कारयित्वा दृढस्तम्भं शुभपक्वेष्टकामयम्[५] ॥१०
शुभं कमठपृष्ठाभं भाभासितदिगन्तरम् । सुधानुलिप्तं गुप्तं च सुखशालाविराजितम् ॥११
दद्यादनन्तफलदं[६] शैववैष्णवयोगिनाम् । प्रतिश्रये तु विस्तीर्णे कारिते सजले घने ॥१२
दीनानाथजलार्थाय कृतं किं नकृतं भवेत् । कारयित्वा गृहान्पश्चादृत्विग्रुद्रार्कसंख्यया ॥१३
कुडयस्तम्भगवाक्षाढयान्विचित्रान्बहुभूमिकान् । सप्राकारप्रतोलीकान्पाटार्गलयन्त्रितान् ॥१४
सुधाधवलितान् रम्यान्विस्तीर्णांगणवाटिकान् । प्रवेशनिर्गमयुतान्समासन्नजलाशयान् ॥१५
लोहोपस्करसम्पूर्णांस्ताम्रोपस्करसंयुतान् । स्वर्णोपस्करशोभाढयान् रौप्योपस्करसंकुलान्[७] ॥१६

महत्त्वपूर्ण होता है । जिस प्रकार माता के आश्रित रहकर सभी जीव जीवित रहते हैं, उसी भाँति गृहस्थ आश्रम के आश्रित रहकर अन्य सभी आश्रम सजीव बने रहते हैं । पार्थ ! गृह में रहकर मनुष्य धर्म, अर्थ, काम, मित्र और प्रख्यात यश की प्राप्ति करता है, अतः कामनाओं की सफलता वाले मनुष्य को गृहस्थाश्रम में सदैव बने रहना चाहिए । क्योंकि बिना गृह के धर्म अर्थ काम, सुख, लोक पंक्ति, और यश की प्राप्ति देवों को भी नही हो सकती । इसलिए स्वर्ग और मोक्ष में उसकी कोई उपमा नहीं है । रात्रि समय अपने घर में पैर फैलाकर शयन करने वालों को जिस सुख की प्राप्ति होती है, वह अन्य आश्रमी को कभी नहीं प्राप्त हो सकता । इस आश्रम के (सुख के) दिन भी नहीं गिने जा सकते । और इसे (गृह को) महाशन (महाभोजी) भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि अपने घर में शाक पका कर खाने वाले को परम सुख की प्राप्ति होती है । महाराज ! अतः ऐसा समझ कर भव्य ऐश्वर्य के इच्छुक को एक सुन्दर भवन का निर्माण करा कर उसे ब्राह्मण को समर्पित करना चाहिए, जो दृढ़ स्तम्भों और शुभ तथा पकी हुई ईटों द्वारा निर्मित हो ।२-१०। शुभ, कछुए की पीठ के समान, उसकी आत्मा से दिग्दिगन्त सुशोभित हो, सुधा धवलित (चूना से पुता हुआ), गुप्त, और सुख शाला (आराम वन) भूषित गृह दान करने पर शैव, वैष्णव और योगियों को अनन्त फल प्राप्त होता है । नूतन मेघ (की धारा) से सुरक्षित रहने के लिए उन दीन अनाथों के हितार्थ विस्तीर्ण कमरे का गृह बनाना चाहिए । ऋत्विजों के दानार्थ रुद्र (११) और अर्क सूर्य (१२) की संख्यानुसार उस प्रकार के गृहों का निर्माण कराकर जिसमें दीवाल, स्तम्भ, गवाक्ष (झरोखे) खिडकियाँ की रचना विचित्र ढंग से की गई हो, भूमिका अधिक भाग (मैदान के रूप) में हो, सुन्दर आकार (खांई, चहार दीवारी,) गली और सुन्दर मार्ग, कपाट (किवाड), अगर्ल (किनांड़ रोकने के लिए उसके पीछे लगा हुआ काष्ठ) से नियंत्रित, सुधाधवलित, रम्य, विस्तृत प्रांगण और उपवाटिका से भूषित, प्रवेश करने निकलने की सुगमता, बावली, कूप आदि से युक्त, लोहे की वस्तुओं से पूर्ण ताँबें के

---

१. आसाद्य । २. वर्तयन्ते तथाश्रमाः । ३. गृहाश्रमी । ४. गृहं सुब्राह्मणे । ५. भार्यां भूमिमभीप्सिता । ६. पक्वेष्टकामयं नवम् । ७. दानं तत्फलदम् ।

रत्नोपस्करसंयुक्तान्कांस्योपस्करमण्डितान् । आरकूटत्रपुसीसदा नोपस्करवर्जितान् ॥१७
वंशोपस्करसकीर्णान्काष्टोपस्कर[1] बृंहितान् । मृण्मयोपस्कराकीर्णान्वस्त्रोपकरणान्वितान् ॥१८
धर्मोपस्करसम्भारशरणवल्कलराजितान्[2] । राजितांस्तृणपाषाणैः सर्वोपस्करभूषितान्[3] ॥१९
सप्तधातुमयं भाण्डं यत्तद्रत्नसमुद्भवम् । चर्मकाष्ठमहा[4]भाण्डं नववस्तुमयं तथा ॥२०
गोमहिष्यश्ववृषभप्रेष्यवेश्यागणान्वितान् । क्षेत्रारामजलासन्नान्काम्यान्हर्म्यवराञ्छुभान् ॥२१
सम्पूर्णान्स[5]र्वधान्यैस्तु घृततैलगुडादिभिः । तिलतन्दुलशालीक्षुमुद्गगोधूमसर्षपैः ॥२२
निष्पावाढक्यचणककुलत्थाणुमसूरकैः । कंगुमाषयवाढ्याञ्छाकवृताकपूरितान् ॥२३
लवणार्द्रकखर्जूरद्राक्षाजीरकधान्यकैः । हिंगुकुंकुमकर्पूरस्नानद्रव्यैः सचन्दनैः ॥२४
धूपोपस्करपर्युप्ततूलीगण्डोपधानकैः । चुल्लीच्छेदनमन्थानभद्रासनकगुच्छकैः[6] ॥२५
पिठरोलूखलस्थालीशूर्पदर्पणपत्रकैः[7] । मुशलासिकृपाणीषुदण्डकोदण्डमुद्गरैः ॥२६
गुहाटवाटकादर्वीट्टपल्लोष्टकहस्तकैः । चात्रकांशुकलोहादिदीप्तमन्थनिकादिभिः ॥२७
कण्डणी पेषणी चुल्ली उदकुम्भी प्रमार्जनी । मञ्जूषाकोष्ठका सन्दीकम्बलैस्तन्तुरान्कवैः ॥२८
इत्येवमादिभिः पूर्णान्गृहान्दद्याद्द्विजातिषु । कर्तुश्चन्द्रबलोपेते स्थिरनक्षत्रसंयुते ॥२९
शुभेऽह्नि विप्रकथिते दानकालः प्रशस्यते । एवं सम्भृतसम्भारो यजमानः स्वयं द्विजान् ॥३०

साधनों से युक्त, सुवर्ण के साधनों से सुशोभित, चाँदी के साधनों से मण्डित, रत्नों के साधनों से संयुत, काँसे के साधनों से अलंकृत, पीतल, रांगा एवं सीसे के साधनों से रहित, कहीं-कहीं बाँस के साधनों से युक्त, काष्ठ के साधनों से परिवर्द्धित, मृत्तिका के साधनों से संकीर्ण, वस्त्र साधनों से पूर्ण, धर्म के साधन भारों की रस्सियाँ, तृण और पाषाणों से रजित तथा समस्त साधनों से युक्त हो और जिसमें सातों धातुओं के पात्र, रत्नादिपात्र, चर्म, काष्ठ के पात्र और नूतन वस्तुएँ परिपूर्ण रहें। गौ, भैंस, अश्व, वृष (बैल), दूत तथा वेश्यागणों से भूषित, क्षेत्र (खेत), बगीचे जलाशय, रमणीय श्रेष्ठ कमरे, सभी भाँति, धान्य, घृत, तेल, गुड़, तिल, चावल, सवि चावल, ऊंख, मूंग, गेहूँ, सरसों से सम्पूर्ण, सूपादि, अरहर, चना, कुलथी, आणु, मसूर, कंगु (काकुनि), माष (उरदी), जवा आदि, शाक, भाँटा आदि से युत, नमक, आदि, खजूर, द्राक्षा (किसमिस), जीरा, धनियाँ, हींग, कुंकुम, कपूर, चन्द आदि स्दान पदार्थ से संयुक्त, धूप, गद्दा तकिया, चुल्ली (चूल्हा) छेदन (साग बनाने के लिए चाकू, पहसुल आदि), मथानी, सौन्दर्य पूर्ण एवं कल्याण मूर्ति आसन, गुच्छ, पिठर, ओखली, बटुली, सूप, दर्पण, मुसल, तलवार, छुरी, (कपट), धनुष-बाण, दंड मुद्गर, गृह वाटिका, दर्वी (करछी) पत्थर की सिल बट्टा, अंशुक लोहादि से दीप्त मथानी आदि, कडणी (कापी), चक्की, चूल्हा, चलघय और उसका चबूतरे की भाँति स्थान, झाड़, मंजूषा (सन्दूक), और कमरे के भीतरी भाग, कुर्सियों और ऊनी कम्बलों से युक्त हों इस प्रकार के साधनों से सम्पन्न गृहों को ब्राह्मणों के लिए अर्पित करना चाहिए।११-२८। दानी को अपने चन्द्रबल समेत स्थिरनक्षत्र युक्त किसी शुभ पुण्य

---

१. वंशोपस्करसम्पूर्णाकाष्ठोपस्करसंहिताम्। २. धर्मोपस्करसंयुक्तान्। ३. सुवर्णोपस्करान्वितान्। ४. चर्यकाष्ठमहीभारं दत्तं वस्त्रमयं तथा। ५. सप्तधान्यैस्तु। ६. चुल्लीच्छेदनमन्थानभद्रासनकुकुच्छकैः। ७. पिठरोलूखलस्थालीशर्पदर्पणन्नगैः।

कुलशीलसमायुक्तान्गृहसंख्यान्निमन्त्रयेत् । अधीतवेदाञ्छास्त्रज्ञान्पुराणस्मृतिपारगान् ॥३१
गृहस्थधर्मनिरताञ्छान्तान्दान्ताञ्जितेन्द्रियान् । अलंकृत्य सपत्नीकान्वासोभिरथ पूजयेत् ॥३२
सुगन्धिस्रग्धरान्कृत्वा शान्तिकर्मणि योजयेत् । गृहाङ्गणे कारयित्वा कुण्डमेकं समेखलम् ॥३३
ग्रहयज्ञः प्रकर्तव्यस्तुष्टिपुष्टिकरः सदा । रक्षोघ्नानि च सूक्तानि पठेयुर्ब्राह्मणास्ततः ॥३४
वास्तुपूजा प्रकर्तव्या दिक्षु भूतबलिं क्षिपेत् । ततः[१] पुण्याहघोषेण ब्राह्मणांस्तेषु वेश्मसु ॥३५
प्रवेशयित्वा शय्यासु सभार्यानुपवेशयेत् । यजमानस्ततः प्राज्ञः शुक्लाम्बरधरः शुचिः ॥३६
यद्यस्य विहितं पूर्वं तत्तस्य प्रतिपादयेत् । इदं गृहं गृहाणत्वं सर्वोपस्करसंयुतम् ॥३७
तव विप्रप्रसादेन ममास्त्वभिमतं फलम् । एवमेकैकशो दत्त्वा[२] प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥३८
स्वस्तीति ब्राह्मणैर्वाच्यं कोऽदादिति च पूजितैः । गृहोपकरणैस्तुल्या दक्षिणा भवनं विना ॥३९
उपदेष्टारमापृच्छ्येत्तन्मूलत्वान्महर्षयः । स्वयं तान्पूजयित्वा तु ततः स्वभवनं व्रजेत् ॥४०
दद्यादनेन विधिना गृहमेकं बहूनपि । न संख्यानियमः कार्यः शक्तिरत्र नियामिका ॥४१
शीतवातातपहरं दत्त्वा तृणकुटीरकम् । इष्टान्कामानवाप्नोति प्रेत्य स्वर्गे महीपते ॥४२
किं पुनर्बहुनोक्तेन सर्वोपस्करभूषिताम् । अत्यन्तसुखलुब्धेन दत्त्वा ब्रह्मपुरीं प्रियाम् ॥४३

इतने महान् संभार से संयुक्त होकर यजमान् स्वयं गृह संख्या के समान ब्राह्मणों को निम्नलिखित कर, जो कुश-शील सम्पन्न वेदपाठी, शास्त्र मर्मज्ञ, पुराण-स्मृति के पारदर्शी, गृहस्थ धर्म में निरत, शांत पवित्रतापूर्ण और संयमी हों। इस भाँति के सपत्नीक ब्राह्मणों की सर्वप्रथम वस्त्रों से पूजित और सुगन्ध, माला आदि से भूषित कर शांति कर्म के लिए नियुक्त करे। तथा अपने गृहाङ्गण में मेखला समेत एक कुण्ड का निर्माण भी करे। इस प्रकार पुष्टिप्रद इस गृहयज्ञ को सदैव सुसम्पन्न करना चाहिए। उस समय ब्राह्मणों को राक्षसादिविनाशक सूक्तों के पाठ करना चाहिए। वास्तु-पूजा, दिशाओं में भूतों के लिए बलि अर्पित करके पश्चात् पुण्याहवाचन, मांगलिक घोष पूर्वक सपत्नीक उन ब्राह्मणों के साथ उस गृह में प्रवेश कराकर शय्या पर बैठाये। अनन्तर प्राज्ञ यजमान श्वेत वस्त्र धारण कर पवित्रता पूर्ण, उन्हें जिसके लिए जो गृह बना हो, अर्पित कर क्षमा प्रार्थना करे। २९-३८। विप्र ! समस्त साधनसम्पन्न इस गृह को आप स्वीकार करें, जिससे आप की प्रसन्नता वश मेरा मनोरथ सफल हो। इस प्रकार प्रत्येक ब्राह्मणों से दान अर्पित करते हुए यजमान के क्षमा प्रार्थना करने पर उन ब्राह्मणों को जो कोऽदादिति मंत्रों द्वारा पूजित हुए हैं, 'स्वस्ति' कहना चाहिए। गृहोपकरणै, उपदेष्टा और तन्मूलक महर्षियों की स्वयं अर्चा करके पश्चात् अपने घर का गमन करे। इसी विधान द्वारा एक या अनेक भवनों को अर्पित करना चाहिए, इसमें संख्या नियम न होकर केवल अपनी शक्ति ही नियामिका है। ३९-४१। शीत, वायु, धूप आदि के अपहरण करने वाली छप्पर की कुटिया ही दान करने से कामनाओं की सफलता पूर्वक स्वर्ग में पूजित होता है तो समस्त साधन सम्पन्न उस प्रिय ब्राह्मण पुरी को अत्यन्त सुखार्थ दान करने वाले के प्राप्त होने वाले वैभव का अधिक क्या वर्णन किया जा सकता है। कौंतेय ! गौ, भूमि एवं हिरण्य के दान, यम नियमादि सभी गृहदान की सोलहवीं कला की भी समता नहीं कर सकते। इस प्रकार उन ब्राह्मणों की पुरियों को जो दृढ कमरों से

---

१. स्वस्तीति ब्राह्मणैर्वाच्यम्। २. दद्यात्।

गो भूहिरण्यदानानि यमाः सनियमास्तथा । गृहदानस्य कौन्तेय कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥४४
यः कारयेत्सुदृढहर्म्यवतीं महार्हां[1] सत्सेवितां द्विजपुरीं सुजनोपभोग्याम् ।
दिव्याप्सरोभिरभिनन्दितचित्तवृत्तिः प्राप्नोत्यसावनवमं पदमिंदुमौलेः ॥४५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
गृहदानविधिवर्णनं नामाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६८

अथैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

अन्नदानमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अन्नदानस्य माहात्म्यं कथयामि तवानघ । यत्प्रोक्तमृषिभिः पूर्वं तदिहैकमनाः शृणु ॥१
ददस्वान्नं ददस्वान्नं ददस्वान्नं युधिष्ठिर । सद्यस्तुष्टिकरं लोके किं दत्तेन परेण[2] ते ॥२
रामेण दाशरथिना वनस्थे निजानुजः । निर्वेदाद्यत्पुरा प्रोक्तस्तदहं[3] प्रब्रवीमि ते ॥३
पृथिव्यामन्नपूर्णायां वयमन्नस्य कांक्षिणः । सौमित्रे नूनमस्माभिर्न ब्राह्मणमुखे हुतम् ॥४
यदुच्यते कर्मबीजं तस्यावश्यं फलं नरैः । प्राप्यते लक्ष्मणास्मानिर्नान्नं विप्रमुखे हुतम् ॥५

युक्त बहुमूल्य के योग्य, सज्जनों से सेवित और सुजनों के उपभोग्य रहती है, बनवाने वाला दिव्य अप्सराओं के बीच आनन्द मग्न रहकर चन्द्रमौलि का वह शाश्वत पद प्राप्त करता है ।४२-४५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
गृहदानविधिवर्णन नामक एक सौ अड़सठवाँ अध्याय समाप्त ।१६८।

अध्याय १६९

अन्नदान माहात्म्य का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—अनघ ! मैं तुम्हें अन्न दान का माहात्म्य बता रहा हूँ, जिसे ऋषियों ने पूर्वकाल में कहा था, सावधान होकर सुनो ! युधिष्ठिर ! अन्न दान करने से क्या लाभ, इसलिए अन्नदान करो, और अवश्य अन्न दान करो मैं तीन बार कह रहा हूँ, क्योंकि लोक में यह दान सद्यः प्रसन्न करता है । दशरथ पुत्र राम ने वनवास करते समय अपने अनुज से जो बात पहले कहा है मैं वहीं तुमसे बता रहा हूँ—सौमित्रे ! इस अन्नपूर्णा पृथिवी में रहकर हम लोग अन्न की इच्छा करते हैं इससे निश्चित है कि हम लोगों ने (पूर्वकाल) में ब्राह्मण भोजन नहीं कराया था । लक्ष्मण ! जो कहा गया है कि यह कर्म बीज रूप है उसका फल मनुष्यों को अवश्य भोगना पड़ता है, इसलिए हम लोग भी कभी ब्राह्मण मुख की आहुति नहीं अर्पित की है अर्थात् ब्राह्मण भोजन नहीं कराया।१-५। जो नहीं प्राप्त कर सका वह विद्या या पौरुष के

---

१. महाघोम् । २. अपरेण । ३. तच्चापि कथयामि ते ।

यन्न प्राप्यं तदप्राप्यं विद्यया पौरुषेण वा । सत्यो लोकप्रवादोऽयं नादत्तमुपतिष्ठति ॥६
भक्षोपयोगादन्नस्य दानं श्रेयस्करं परम्[१] ॥७
प्रकारान्तरभोज्यानि दानान्य[२] न्यानि भारत । अन्नमेव परं दानं सत्यवाक्यं परं पदम् ॥८
बुद्धिश्चार्थात्परो लोभः सन्तोषः परमं सुखम् । स्नातानामनुलिप्तानां भूषितानां च भूषणैः ॥९
न सुखं न च सन्तोषो भवेदन्नादृते नृणाम् । श्वेतो नाम महीपालः सार्वभौमोऽभवत्पुरा ॥१०
तेनेष्टं बहुभिर्यज्ञैः संग्रामा[३] बहवो जिताः । दानानि च प्रदत्तानि धर्मतः पालिता मही ॥११
भुक्ता भोगाः सुविपुलाः शत्रूणां मूर्धनि स्थितन् । वानप्रस्थेन विधिना त्यक्त्वा राजश्रियं नृप ॥१२
स्वर्गं जगाम भुक्त्वा तु पूज्यमानो मरुद्गणैः । विमानमर्कप्रतिमं प्रतिपेदे मुदा युतः ॥१३
तत्रास्ते रममाणोऽसौ साकं विद्याधरैः सुखम् । प्रसिद्धैः स्तूयते सिद्धैः सेव्यतेऽप्यप्सरसां गणैः ॥१४
गन्धर्वैर्गीयते हृष्टैः शक्रेणाप्यनुगम्यते[४] । दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्याभरणभूषितः ॥१५
स च नित्यं वितानाग्र्यादवतीर्य महीतलम् । स्वमांसान्यत्ति कौन्तेय पूर्वं त्यक्त्वा कलेवरम् ॥१६
तच्छरीरं तथैवास्ते रक्षितं पूर्वकर्मभिः । स कदाचित्सुरेशानं ब्रह्माणं समुपस्थितः ॥१७
प्रणम्य प्राञ्जलिर्भूत्वा निर्वेदादिदमब्रवीत् । भगवन्तस्त्वत्प्रसादेन प्राप्तं स्वर्गसुखं मया ॥१८
सर्वेषामपि सम्पूज्यः सुराणां सुरपुङ्गव । किं तु क्षुद्बाधतेऽत्यर्थं स्वर्गस्थस्यापि मे प्रभो ॥१९

द्वारा प्राप्त नहीं हो सकता, इसलिए यह लोकप्रवाद सत्य है—'जो नहीं दिया गया है वह नहीं मिलता है।' भक्षण के उपभोगी होने के नाते अन्न दान श्रेयस्कर माना गया है। भारत ! यद्यपि अन्य दान भी प्रकारान्तर से भोज्य है तथापि 'अन्नदान ही श्रेष्ठ है' यही सत्यवाक्य और परम पद है। बुद्धि द्वारा उत्पन्न अर्थ में लोभ अधिक होता है किन्तु सन्तोष ही परम सुख माना गया है। स्नान, लेपन एवं भूषण से भूषित मनुष्यों को बिना अन्न के कोई सुख और सन्तोष नहीं होता है। पूर्वकाल में एक श्वेत नामक सार्वभौम राजा था, जिसने अनेक यज्ञों को सुसम्पन्न किया, अनेक संग्रामों में विजय प्राप्त की, अनेक दान दिये, धर्मानुसार पृथ्वी का पालन पोषण किया, विपुल भोगों को उपभोग किया और शत्रुओं के शिर पर सदैव स्थित किया था। नृप ! (अन्त समय) वानप्रस्थ के नियमानुसार उन्होंने राज्यलक्ष्मी के त्याग पूर्वक स्वर्ग की यात्रा की। सूर्य के समान प्रकाशित विमान द्वारा सहर्ष वहाँ पहुँच कर मरुद्गणों द्वारा पूजित हुए वहाँ रमण करते हुए उन्हें विद्याधरों द्वारा सुख प्राप्त हुआ। प्रसिद्ध सिद्धों ने स्तुति तथा अप्सराओं ने भलीभाँति सेवा की। प्रसन्नतापूर्ण गन्धर्वों ने मान द्वारा उन्हें सन्तुष्ट किया, इन्द्र उनके अनुगामी हुए। दिव्य माला, दिव्य वस्त्र और दिव्याभरण से भूषित होने पर भी वह राजा विमान द्वारा नित्य इस भूतल में आकर अपनी त्यांग की हुई पूर्व शरीर के मांस का भक्षण करता था।६-१६। क्योंकि पूर्व कर्मानुसार उनकी शरीर वैसी ही सुरक्षित की गयी थी। एक बार कभी उन्होंने देवेश ब्रह्मा के यहाँ जाकर उनसे अञ्जली बाँधे नमस्कार पूर्वक दुःख प्रकट करते हुए कहा—भगवन् ! आप के प्रसाद से मैनें स्वर्ग सुख प्राप्त किया और समस्त देवों का पूज्य हुआ। किन्तु सुरपुङ्गव, प्रभो ! स्वर्ग में निवास करते

---

१. श्रेयःफलम्। २. नानाविधानि। ३. संग्रामात्। ४. अनुगीयते।

यया मांसान्यहं स्वस्य भक्ष्ययाम्यशनं विना ॥

ब्रह्मोवाच

श्वेताभिजनसम्पन्न श्वेत शृणु वचो मम ॥२०
त्वयाधीतं हुतं दत्तं गुरवः परितोषिताः । नाशनं भवता दत्तं यद्द्विजेभ्यो नराधिप ॥२१
अन्नदानस्य फलं त्वयेदमुपभुज्यते । तह्यन्नदानतो नान्यच्छरीरारोग्यकारकम् ॥२२
नान्यदन्नादृते पुंसां किञ्चित्सञ्जीवनौषधम् । महींगत्वा महाराज कुरुष्व वचनं मम ॥२३
तपः स्वाध्यायसम्पन्ने शास्त्रज्ञे संजितेन्द्रिये । ये सम्पद्यते तृप्तिरक्षया क्षमापते[1] तव ॥२४
विरिंचेर्वचनाद्गत्वा त्वरायुक्तो महीतलम् । अगस्त्यं भोजयामास भक्त्या भरतसत्तम ॥२५
भोजयित्वा ततः प्रादाद्दक्षिणां क्षीणकल्मषः । एकावलिं स्वकात्कण्ठात्समुत्तार्य समुज्ज्वलाम् ॥२६
ततो दुन्दुभिघोषेण पूजितः सुरसत्तमैः । श्वेतस्तृप्तो गतः स्वर्गं दत्त्वान्नं दक्षिणायुतम् ॥२७
पौलस्त्ये निहते पश्चाद्देवदानवसंकटे । रामायैकावलिं प्रादादगस्त्यः परया मुदा ॥२८
एतदन्नस्य माहात्म्यं कथयाम्यपरं च ते । न चान्नादपरं किञ्चित्सत्यं तव मयोदितम् ॥२९
अन्नं वै प्राणिनां[2] प्राणा अन्नभोजो बलं सुखम् । एतस्मात्कारणात्सद्भिरन्नदः प्राणदः स्मृतः ॥३०

हुए भी मुझे क्षुधा अत्यन्त पीड़ित कर रही है। जिसके कारण मैं अपना मांस भक्षण करता हूँ।१७-१९।

ब्रह्मा बोले—श्वेत कुल में उत्पन्न श्वेत ! (इसका कारण) मैं बता रहा हूँ, सुनो ! तुमने वेदाध्ययन, यज्ञ कर्म, दान और गुरु को सन्तुष्ट रखना आदि सभी कर्म सुसम्पन्न किया। किन्तु ब्राह्मणों को भोजन दान नहीं दिया। नराधिप ! उसी अन्न दान न देने का यह दुष्परिणाम तुम भोग रहे हो। इसलिए अन्न दान से अन्य कोई शरीर को आरोग्य बनाने वाला नहीं है, (इतना ही नहीं प्रत्युत) मनुष्यों के लिए संजीवनी औषध (अन्न के अतिरिक्त) अन्य कोई नहीं है। महाराज् ! क्षमापते इसलिए आप मेरी बात स्वीकार कर भूतल में जायें और किसी तपस्वी, वेदाध्ययन सम्पन्न, शास्त्रमर्मज्ञ और इन्द्रिय संयमी ब्राह्मण को (भोजन द्वारा) सुतृप्त करें, जिससे तुम्हें अक्षय तृप्ति प्राप्त हो। भगवान् विरिंच की आज्ञानुसार राजा ने इस महीतल में शीघ्र आगमन कर मुनि अगस्त्य जी को भोजन कराया।२०-२५। भारत सत्तम ! तदुपरान्त निष्पाप राजा ने अपने कण्ठ से उस समुज्ज्वल एकावली को उतार कर मुनि को दक्षिणा रूप में अर्पित किया। उसे देखकर सुरवृन्दों ने दुन्दुभि घोष करते हुए उनकी अर्चा की और राजा श्वेत दक्षिणा समेत अन्न दान करने के नाते तृप्त होकर स्वर्ग चले गये। पुलस्त्य कुल में उत्पन्न एवं देव दानवों का संकट रूप उस रावण के राम द्वारा निधन होने पर प्रसन्न मुनि अगस्त्य ने वहीं एकावली (हार) राम को प्रसन्नता के उपहार में प्रदान किया था।२६-२८। इसके अनन्तर भी मैं तुम्हें अन्न का अन्य माहात्म्य बता रहा हूँ क्योंकि मैंने यह सत्य ही कहा है कि—अन्न से अपर कोई भी दान श्रेष्ठ नहीं है। अन्न प्राणियों का प्राण, ओज, बल और सुख रूप है इसीलिए सज्जनों का कहना है कि—'अन्न का दाता प्राण का

---

१. जायते। २. प्राणिनः।

सुदूरादाशया यस्य गृहं प्राप्ता बुभुक्षिताः । तृप्ताः प्रतिनिवर्तन्ते कोऽन्येस्तत्सदृशः पुमान् ॥३१
दीक्षितः कपिला सत्री राजा भिक्षुर्महोदधिः । दृष्टमात्रा पुनंत्येते तस्मात्पश्यन्ति नित्यशः ॥३२
एकस्याप्यतिथेरन्नं यः प्रदातुमशक्तिमान् । तयाऽऽरम्भैः परिक्लेशैर्वसतः किं फलं गृहे ॥३३
शक्यते दुष्करेऽप्यर्थे चिररात्राय जीवितुम् । नत्वाहारविहीनेन शक्यं वर्तयितुं चिरम् ॥३४
भुक्त्वा गृहे गृहस्थस्य मैथुनं यश्च सेवते । यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा इति प्राहुर्मनीषिणः ॥३५
दुष्कृतं हि मनुष्याणामन्नमाश्रित्य तिष्ठति । यो यस्यान्नं समश्नाति स तस्याश्नाति दुष्कृतम् ॥३६
वनस्पतिगते सोमे परान्नं यस्तु भुञ्जति । तस्य मासकृतं पुण्यं दातारमुपगच्छति ॥३७
कस्मान्न दीयते नित्यं कस्मादन्नं न दीयते । यस्येदृशी फलावप्तिः कथिता पूर्वसूरिभिः ॥३८
भिक्षां वा पुष्कलां वापि हंतकारं द्विजातये । भोजनं दः यथालाभमदत्त्वाश्नाति किल्बिषम् ॥३९
येनायुतं सहस्रं वा भोजितं स्याद्द्विजन्मनाम् । तेन ब्रह्मगृहासन्नं नूनं बद्धं कुटीरकम् ॥४०
वाराणस्यां पुरा पार्थ वणिगापणजीवनः । धनेश्वर इति ख्यातो देवब्राह्मणपूजकः ॥४१
तस्यापणैकदेशे तु मुक्त्वाण्डं पाण्डुरच्छवि । ससर्प सर्पस्तद्देशाद्वणिग्दृष्ट्या विशंकितः ॥४२
तदण्डं वणिजा तेन दृष्टं कारुण्यबुद्धिना । ततः प्रभृत्यनुदिनं ररक्ष च पुपोष च ॥४३

प्रदाता है'। अत्यन्त सुदूर से आशा लगाये क्षुधा पीड़ित प्राणी जिसके घर आकर तृप्त होकर चले जाते हैं उसके समान अन्य कौन पुरुष हो सकता है। दीक्षित, कपिला, यज्ञ करने वाला, राजा, भिक्षुक और समुद्र दर्शन मात्र से पवित्र करते हैं इसीलिए ये सदैव देखते रहते हैं। द्वार पर आये हुए एक अतिथि को अन्न दान द्वारा जो तृप्त नहीं कर सकता है, उसको गृहस्थाश्रम में रहने से कौन फल हो सकता है, और इसीलिए गृहस्थी के उसके सभी आरम्भ भी केवल दुःखदायी हैं। किसी अत्यन्त दुष्कर अयोजन के सफल न होने पर भी प्राणी अधिक सजीवित नहीं प्राप्त कर सकता है। गृहस्थों के यहाँ भोजनोपरान्त कोई अभ्यागत मैथुन भी करता है तो उससे सन्तान उत्पन्न होने पर वह सन्तान गृहस्वामी का ही कहा जायेगा क्योंकि अन्न उसी का था ऐसा मनीषियों ने कहा है।२९-३५। मनुष्यों के दुष्कृत अन्न में ही रहते हैं अतः जो जिसका अन्न भक्षण करता है वह उसका दुष्कृत भक्षण करता है। सोम के वनस्पति प्राप्त होने पर परान्न भोजी प्राणी का एक मास का पुण्य उसके दाता को प्राप्त होता है। इसलिए पूर्व के मनीषियों के कथनानुसार जिसके दान से इस भाँति के फल प्राप्त होते हैं उस अन्न दान को नित्य क्यों नहीं सुसम्पन्न करते हो। द्विजातियों को पूर्ण भिक्षा, जो देने योग्य हो, अथवा यथालाभ भोजन न देकर जो भोजन करता है वह पाप भोजन करता है। जिसके दश सहस्र या सहस्र ब्राह्मणों को भोजन द्वारा तृप्त किया है उसने निश्चित ब्रह्मा के भवन के निकट अपनी कुटिया बना ली है। पार्थ ! वाराणसी पुरी में धनेश्वर नामक एक प्रख्यात एवं कुशल व्यापारी वैश्य रहता था, जो देवों और ब्राह्मणों की सदैव अर्चना किया करता था। उसकी दूकान के किसी भाग में पाण्डुर वर्ण के अण्डे को रखकर कोई सर्प वहाँ से जा रहा था। वणिक् ने उसे सशंकित दृष्टि से देखा अनन्तर उस वैश्य ने उस अण्डे को भी कारूणिक हृदय होकर देखा और उसी दिन से प्रतिदिन उसकी रक्षा तथा पालन पोषण करना आरम्भ किया।३६-४३। कुछ दिन के अनन्तर उस अण्डे को फोड़कर सर्प का बच्चा निकला। क्षीर पान आदि उपचारों द्वारा उस वैश्य ने

निर्जगाम दिनैः कैश्चिद्भित्त्वाण्डं सर्पपोतकः । तं वणिक्क्षीरपानाद्यैरुपचारैरवर्धयत् ॥४४
लिलिहे घृतभाण्डानि जिघ्रे च गन्धसंचयान् । लुलोठ पांसुप्रकरे चचार वारिमध्यगः ॥४५
वणिजा रक्ष्यमाणः स स्नेहाच्चाहरहः पुनः । जगाम सुमहान्कालोऽभवदेष भयंकरः ॥४६
अथैकस्मिन्दिने गङ्गा गतः स्नातुं त्रिलोकगाम् । वाणिगापणे पण्यविदं स्थापयित्वा सुतं मतम् ॥४७
व्यवहर्तुं[१] समारब्धं वणिक्पुत्रेण धीमता । ददाति प्रतिगृह्णाति घृततैलयवेक्षवम ॥४८
व्यवहाराकुलतया पादयोरंतरेण सः । सर्पश्चचाल चाप्लयाद्वणिग्विक्षेपमभ्यगात् ॥४९
जानन्नपि तद्वृत्तातं निदाने नियतेर्वशात् । त्रासात्सन्तर्जयामास बलेन[२] पदचारिणम् ॥५०
स महीतः समुत्थाय मूर्द्धानमवरुह्य[३] च । उवाच दारुणतरं[४] वचनं पन्नगाधमः ॥५१
शरणागतं पोषितं च तव पित्रा प्रियङ्करम् । कस्मान्मां हंसि दुष्टात्मन्कथं जीवन्विमोक्ष्यसे ॥५२
अनन्तरं कलकलः सञ्जातो रोदतां[५] नृणाम् । धनेश्वरसुतो दष्टः सर्पेणापि भृशाकुलः ॥५३
अच्युतत्तानन्त गोविन्द कृष्णकृष्णेत्युदीरयन् । धनेश्वरोप्यनुप्राप्तः प्रोवाचाकुलया गिरा ॥५४
किं कृतं मम पुत्रेण तव पन्नग विप्रियम् । यदयं भवता मूर्ध्नि स्वभोगेनाभिवेष्टितः ॥५५
मूर्खं मित्रं सुसम्बन्धं हीनजातिजनो हि यः । यः करोत्यबुधोंगारान्स स्वहस्तेन[६] कर्षति ॥५६
तमुवाच च सर्पोऽसौ बाष्पगद्गदया गिरा । निरपराधो भवतः पुत्रेणाहं समाहतः ॥५७

उसकी भी रक्षा करना प्रारम्भ किया । वह छोटा बच्चा घृत पूर्ण पात्रों का आस्वाद लेने लगा, संचित सुगन्धों को सूंघने लगा, धूलियों में लोटने और जल के मध्य चलने लगा था । किन्तु उस वैश्य के द्वारा स्नेह वश रक्षित रहने के नाते वह प्रतिदिन बढ़ने लगा और थोड़े ही दिन में वह भयंकर सर्प हो गया । एक दिन वह वैश्य अपनी दूकान में अपने पुत्र को बैठाकर स्वयं त्रिलोक में विचरण करने वाली गङ्गा में स्नान करने के लिए चला गया । उस वैश्य पुत्र ने दुकान में बैठकर घृत, तेल, जवा और गुड़ आदि का क्रय विक्रय करना लोगों से आरम्भ किया । (भीड के नाते) लेन देन के व्यवहार में तन्मय होने पर (चलते फिरते) उसके पैर के बीच से चञ्चलतावश वह सर्प निकल गया । उसके वृत्तान्त को जानते हुए भी (भाग्य वश वह वैश्य) विक्षिप्त हो गया और भय के मारे बल पूर्वक उसे कुचल दिया । पश्चात् उस अधम सर्प ने पृथ्वी से उठकर अपने फण से उसके शिर को घेर लिया और कड़े शब्दों में उससे कहा—तुम्हारे पिता ने मुझ शरणागत का भली भाँति एवं स्नेहपूर्ण पालन पोषण किया है इसलिए दुष्ट तूँ मुझे क्यों मार रहा है क्यों अपने जीवन का त्याग करना चाहता है ।४४-५२। अनन्तर रुदन करने वाले मनुष्यों का अत्यन्त कोलाहल (शोर) होने लगा । लोग कह रहे थे—धनेश्वर ! के पुत्र को सर्प ने काट लिया है जिससे वह अत्यन्त मूर्च्छित हो गया है । उसी बीच धनेश्वर भी 'अच्युत', अनन्त, गोविंद और कृष्ण, कृष्ण नाम का उच्चारण करते हुए वहाँ आये और व्याकुल होकर कहने लगे—पन्नग ! मेरे पुत्र ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जिससे तुम उसके शिर में लिपटे पड़े हो । हीन जाति में उत्पन्न होने वाला प्राणी किसी मूर्ख के साथ अपनी मित्रता का संबन्ध स्थापित करता है वह अज्ञानी अपने हांथों (अग्निके) अंगार उठाता है ।५३-५६।

---

१. व्यवहरः समारब्धः । २. फलेन फलभोजिनम् । ३. अधिगच्छति । ४. दारुणतमं स्वामिनम् । ५. रोषणः । ६. स्वहतेनापि कर्षति ।

तदहं पश्यतस्तेऽद्य दंशाम्येनं नराधिप । यथा न भूयो भूतां भवेदस्मात्क्वचिद्भयम् ॥५८

धनेश्वर उवाच

उपकारं व्रतं भक्त्या स्नेहपाशो न यस्य च । सतां मार्गमपाक्रम्य प्रयातः केन वार्यते ॥५९
क्षणमात्रं प्रतीक्षस्व यावदेव शिशुर्मम । और्ध्वदेहिककर्माणि करोति स्वयमात्मनः ॥६०
एवमुक्त्वा गृहं गत्वा[1] यतीनां ब्रह्मचारिणाम् । सहस्रं भोजयामास घृतपायसभोजनैः ॥६१
समुत्थाय ततः सर्वे ब्राह्मणा हृष्टमानसाः । वणिक्पुत्रस्योत्तमाङ्गे चिक्षिपुः कुसुमाक्षतान् ॥६२
वणिक्पुत्र चिरं जीव नश्यन्तु तव शत्रवः । अभीष्टकसंसिद्धिरस्तु ते ब्राह्मणाज्ञया ॥६३
ततः स[2] दुष्टप्रकृतिर्विप्र वाग्वज्रताडितः । पन्नगो नगसंकाशः पपात च ममार च ॥६४
विपन्नं पन्नगं दृष्ट्वा त्रस्तचक्षुर्धनेश्वरः । आः किमेतदिति प्रोच्य विषादमगमत्परम् ॥६५
पोषितोऽयं मया बालः पालितो लालितस्तथा । ममापचारात्पञ्चत्वमापन्नः[3] पवनाशन ॥६६
उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः । अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरिष्यते ॥६७
इत्येवमवधार्यासौ[4] दुःखसंतप्तमानसः । बुभुजे नाकुलतया न च सुष्वाप तां निशाम् ॥६८
ततः प्रभाते गङ्गायां स्नात्वा सन्तर्प्य देवताः। सहस्रं भोजयामास पुनरेव द्विजन्मनाम् ॥६९

पश्चात् आँसू भरे कण्ठ से गद्‌गद वाणी द्वारा सर्प ने उससे कहा आप के पुत्र ने मुझ निरपराध को मारा है अतः तुम्हारे सामने ही मैं इसे काटता हूँ' जिससे जीवों को आकस्मिक भय न हो सके ।५७-५८

धनेश्वर बोले—भक्तिपूर्वक जिसने (किसी का) उपकार और व्रतादि का पालन नहीं किया तथा जिसके स्नेह रूप पाश नहीं है वे यदि सज्जनों के मार्ग को छोड़ कर अन्य मार्ग से जाना चाहेंगे तो उन्हें कौन रोक सकता है। इसलिए तू क्षण मात्र ठहर जाओ और तब तक प्रत्याशा करो जब तक यह मेरा पुत्र अपना और्ध्व देहिक कर्म स्वयं नहीं कर लेता है। ऐसा कहकर उस वैश्य ने अपने घर जाकर सहस्रों यतियों और ब्रह्मचारियों को घृत मिश्रित पायस के भोजनों द्वारा तृप्त किया। पश्चात् प्रसन्न चित्त होकर वे सभी ब्राह्मण उस वैश्य पुत्र के शिर पर पुष्पाक्षत डालते हुए कहने लगे—यह वैश्य पुत्र चिरजीवी हो और इसके शत्रु वर्ग नष्ट हो जायं। ब्राह्मणों की आज्ञानुसार तुम्हारे अभीष्ट फल संसिद्धि हो। तदुपरांत ब्राह्मणों के इस प्रकार वाग्व्रज द्वारा ताड़ित होने पर वह दुष्ट प्रकृति वाला पन्नग (सूर्य), जो पर्वत की भाँति भीषणाकार दिखायी देता था गिरा और मर गया। उसे जीवन हीन देखकर अपनी आँखों से समय करुण प्रकट करते हुए धनेश्वर ने 'हा', यह क्या हो गया ।५९-६५। ऐसा कह कर अत्यन्त विषाद प्रकट किया। और कहा भी—इसको मैंने बालपन से पाला पोषा था किन्तु यह वायु भोजी (सर्प) मेरे ही अपकार द्वारा मारा गया। उपकार करने वालों के कोई अपने साधुगणों को प्रकट करता है तो उसके साधुत्व गुण का कोई मूल्य नहीं हो सकता, क्योंकि अपकार करने वाले प्राणियों के साथ ही साधु गुण प्रकट करने वाले ही साधु कहे जाते हैं, ऐसा सज्जनों का कहना है। इस प्रकार विचारमान एवं दुःख ऐसे संतप्त होने के नाते वह वैश्य ने उस रात्रि न भोजन किया और न शयन ! ही किया। अनन्तर प्रातः समय उठकर स्नान एवं देव पितृ तर्पण करके पुनः एक सहस्र ब्राह्मणों को मधुर भोजन कराया।६६-६९। यथेच्छ भोजन से सन्तुष्ट हो कर

---

१. दत्त्वा। २. सुहृष्टप्रकृतिः। ३. अपकारात्। ४. सम्प्रधार्य।

तैर्भुक्तैरिष्टसंसिद्धैर्ब्राह्मणैरनुमोदितः । वणिक्प्राह ममाभीष्टं संजीवत्वेष पन्नगः ॥७०
ततो द्विजवरोन्मुक्तैरम्बुभिः परिषिंचितः । उदतिष्ठदहीनांगः सहसा हि महाकुलः ॥७१
प्रहर्षमतुलं लेभे दृष्ट्वा तं पुरतः स्थितम् । प्रत्यग्रावयवं दृष्ट्वासृक्किणीपरिलेलिहम्[1] ॥७२
साधुवादो महाञ्जातः प्रशशंसुर्धनेश्वरम् । पुरीनिवासिनः सर्वे विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥७३
सहस्रभोज्यमाहात्म्यं कथितं ते युधिष्ठिर । सम्यक्छ्रद्धाप्रयुक्तस्य किमन्यत्कथयामि ते ॥७४

यच्छन्ति येऽनुदिवसं द्विजपुङ्गवानामन्नं विशुद्धमनसो भृशमागतानाम् ।
मर्त्ये विहृत्य सुचिरं ससुहृज्जनास्ते प्रेत्य प्रयान्ति[2] भवनं मुदिता मुरारेः ॥७५

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
अन्नदानमाहात्म्यवर्णनं[3] नामैकोसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१६९

अथ सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

स्थालीदानवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

अन्नदानप्रसंगेन ममापि स्मृतिमागतम् । तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि श्रुतं दृष्टं च यन्मया ॥१
अक्षद्यूतेन भगवन्धनं राज्यं च नोहृतम् । आहूय निष्कृतिप्राज्ञैः कितवैरक्षकोविदैः ॥२

ब्राह्मणों ने वैश्य से अपना मनोरथ प्रकट करने का अनुमोदन किया । वणिक ने कहा—यह सर्प जीवित हो जाये यही मेरी अभिलाषा है । इसे सुनकर ब्राह्मणों ने अभिमंत्रित जल उसके ऊपर डाल दिया, जिससे वह सर्प सहसा अपना अपने नष्ट पुष्प अंगों समेत पुनः जीवित हो गया । अपनी जिह्वा का बार-बार स्वाद लेने वाले उस सर्प को सम्पूर्ण अंगों से स्वस्थ देखकर वैश्य को महान् हर्ष प्राप्त हुआ, जनता में साधु साधु साधु का शब्द गूँजने लगा और धनेश्वर की अत्यन्त प्रशंसा होने लगी एवं सभी ग्रामवासी अत्यन्त आश्चर्य चकित हो गये । युधिष्ठिर ! तुम्हारी श्रद्धा के वशीभूत होकर मैंने सहस्र भोज्य का माहात्म्य तुम्हें सुना दिया, अब इससे अन्य और क्या कहूँ । विशुद्ध चित्त होकर प्रतिदिन अतिथिरूप में आये हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणों को अन्न दान से संतृप्त करने वाले सज्जन वृन्द इस भूतल में चिरकाल तक बिहार सुख प्राप्त करने के अनन्तर मुरारि कृष्ण का भवन प्राप्त करते हैं ।७०-७७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसंवाद में
अन्नदानमाहात्म्य वर्णन नामक एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।१६९।

अध्याय १७०

स्थालीदान का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! इस अन्न दान के माहात्म्य की कथा के प्रसंग में मुझे भी कुछ स्मरण हो रहा है, उसे मैंने जिस भाँति देखा, सुना है, आप से कह रहा हूँ, सुनने की कृपा करें । द्यूत कर्म (जूए

---

१. किंकिणीपरिलेलिहम् । २. प्रेत्येह । ३. सदाव्रतवर्णनम् ।

**वनं प्रस्थापिताः सर्वे वल्कलाजिनवाससः । द्रौपद्या सहिताः कृष्ण कर्णदुर्योधनादिभिः ॥३
ज्ञात्वा वनगतानस्मान्ब्राह्मणाः संजितेन्द्रियाः । द्रष्टुमभ्याययुःसर्वे पौराश्चाप्यनुजग्मिरे ॥४
अस्मान् स्नेहात्क्लिश्यमानान्दृष्ट्वा ब्राह्मणसत्तमाः । पौरान्कर्मकरांश्चैव निर्वेदादिदमब्रुवन् ॥५
जीवतो यस्य जीवन्ति विप्रा मित्राणि बान्धवाः । जीवनं[1] तस्य सफलमात्मार्थे को न जीवति ॥६
अभ्यागतं सुहृद्वर्गं कुटुम्बमपहाय च । जीवन्नपि मृतः पापः केवलं स्वोदरम्भरिः ॥७
इत्येवमवधार्याहं तानृषीन्पुनरब्रुवम् । भवन्तः सर्व एवात्र त्रिकालज्ञा महर्षयः ॥८
समागताः मत्प्रियार्थं ज्ञानविज्ञानपारगाः । बत कंचिदुपायं मे भवन्तोभिजनं[2] प्रति ॥९
भवद्भिः सहिताः सर्वे भृत्यैर्भ्रातृभिरेवच । निर्गच्छेयं[3] वने शून्ये द्वादशेमाः समा यथा ॥१०
मामुवाचाथ[4] मैत्रेयः शृणु कौन्तेय मद्वचः । पूर्ववृत्तं प्रवक्ष्यामि दृष्टं दिव्येन चक्षुषा ॥११
आसीत्तपोवने काचिद्ब्राह्मणी ब्रह्मचारिणी । दुर्भगा दुर्गता[5] दुःखादाराधयति सा द्विजान् ॥१२
शौचेन तुष्टा मुनयः प्रश्रयेण दमेन च । प्रोचुर्वद विशालाक्षि किं कुर्मस्तव सुव्रते ॥१३
सा तानुवाच किं तन्मे व्रतं दानमथापि वा । कथयध्वं भवेयं[6] वै येन श्रीसुखभागिनी ॥१४**

खेलने) में निपुण व्यक्तियों को बुलाकर कर्ण दुर्योधनादि व्यक्तियों ने द्यूत द्वार। हमारे धन और राज्य के अपहरण कर लेने के उपरांत द्रौपदी समेत हमलोगों ने बल्कल और मृगचर्म धारण कराकर जंगल निवास करने केलिए भेज दिया। कृष्ण ! हमें वनवासी होना जानकर संयमी ब्राह्मण वर्ग दर्शनार्थ वहाँ आये और प्रवासी गण भी साथ-साथ आ गये। हमारे स्नेह वश वहाँ आये हुए ग्रामीणों को दुःखी देखकर ब्राह्मणों ने मुझसे कहा—जिसके जीवित रहने से ब्राह्मण, मित्र और बन्धु वर्ग जीवित रहते हैं, उसी का जीवन सफल है योतो अपने लिए कौन नहीं जीवित रहता है। अभ्यागत, मित्र वर्ग, एवं कुटुम्ब के त्याग पूर्वक केवल अपना ही पेट पालने वाला पापी जीवित रहते हुए भी मृतक के समान है। इसे सुनकर मैंने उन महर्षियों से कहा—आप सभी लोग त्रिकालज्ञ महर्षि हैं एवं ज्ञान विज्ञान के पारगामी विद्वान् हैं केवल मेरे हितार्थ आप लोगों ने मुझे दर्शन दिया है, इसलिए इन सब के भोजनादि सुखार्थ कोई उपाय आप लोग बताने की कृपा करें। जिससे आप लोगों, सेवकों एवं बान्धवों समेत इस शून्य (निर्जन) वन में मेरे बारह वर्ष के समय व्यतीत हो जाँय। उपरान्त मैत्रेय जी ने मुझसे कहा—कौंतेय ! मैं कुछ कह रहा हूँ, उसे सावधान होकर सुनो ! मैं वहीं बात कहना चाहता हूँ जिसे मैंने पूर्वकाल में अपनी दिव्य दृष्टि से देखा है।१-११। इस तपोवन में कोई ब्रह्मचारिणी ब्राह्मणी रहती थी, जो दुर्भगा एवं दुर्गति से पीड़ित थी। वह महान् दुःखों का अनुभव करती हुई भी किसी प्रकार ब्राह्मणों की सेवा करती थी। उसकी पवित्रता, प्रेम और संयम से सन्तुष्ट होकर मुनियों ने उससे कहा—विशालाक्षि ! सुव्रते ! हमलोग तुम्हारा कौन प्रिय उपकार करें। इसे सुनकर उसने कहा—व्रत दान की बातें न कहकर मुझे वही बताने की कृपा करें, जिससे मैं भी समेत सुख भागिनी बन सकूँ तथा प्राणियों (सेवकों आदि) का आधार (स्वामिनी), अनेक

---

१. सफतलं जीवितं तस्य। २. भोजनम्। ३. निर्दहेयम्, निगृहेयम्। ४. अत्र—मैत्रेय उवाच—शृणु कौंतेय मद्वाक्यमवधानेन यत्नतः"—इति पाठो दृश्यते—स च मूलस्थपाठेनैव गतार्थः। ५. दुर्गतिग्रस्ता देवतार्चनतत्परा। ६. पुरा दृष्टठ व्रत दानमथापि वा।

आधारभूता भूतानां बह्वपत्या पतिप्रिया । स्पृहणीया त्रिजगतं त्रिवर्गफलभागिनी ॥१५
वसिष्ठस्तामुवाचाथ शृणुष्व कथयामि ते । दानं मानकरं[1] पुंसां सर्वकामप्रदायकम् ॥१६
कृत्वा ताम्रमयीं स्थालीं पलानां पञ्चभिः शतैः । अशक्तस्तु तदर्द्धेन चतुर्थांशेन वा पुनः ॥१७
सर्वशक्तिविहीनस्तु मृण्मयीमपि[2] कारयेत् । सुगम्भीरोदरदरीदृढपण्डकुटुम्बकाम् ॥१८
मुद्गतन्दुलनिष्पन्नसुविस्रक्षिप्रपूरिताम् । उपदंशोदकयुतां घृतपात्रसमन्विताम् ॥१९
धौतपार्श्वां धौतकर्णां चर्चितां चन्दनेन च । स्थाप्य मण्डलके वस्त्रैः पुष्पधूपैरथार्चयेत् ॥२०
आदित्येऽहनि संक्रान्तौ चतुर्दश्यष्टमीषु वा । एकादश्यां तृतीयायां विप्राय प्रतिपादयेत् ॥२१
ज्वलज्ज्वलनपार्श्वस्थैस्तुण्डलैः सजलैरपि । भवेद्भोज्यसंसिद्धिर्भूतानां पिठरीं विना ॥२२
त्वं सिद्धिं सिद्धिकामानं त्वं पुष्टिः पुष्टिमिच्छताम् । अतस्त्वां प्रणमाम्याशु सत्यं कुरु वचो मम ॥२३
ज्ञातिबन्धुसुहृद्वर्गे विप्रे प्रेष्यजने तथा । अभुक्तवति नाश्नीयात्तथा भव वरप्रदा ॥२४
इत्युच्चार्य प्रदातव्या हण्डिका द्विजपुङ्गवे । तुष्टिपुष्टिप्रदा पुंसां सर्वान्मानमभीप्सता ॥२५
वसिष्ठवचनं श्रुत्वा सा चकार तथैव तु । प्रादात्स्थालीं ब्राह्मणाय बहूनां बहुदक्षिणाम् ॥२६
सा चैषा द्रौपदी पार्थ भवद्भार्याऽभवत्प्रिया । तेन दानप्रभावेण भविताऽशून्यपाणिका ॥२७
एषा सती शची स्वाहा सावित्री भूररुन्धती । श्रीरेषा यत्र वसति न किंचित्तत्र दुर्लभम् ॥२८

सन्तान, पति प्रेयसी, तीनों लोकों की स्पृहणीयता और त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ एवं काम) का सुखानुभव प्राप्त हो सके। वशिष्ठ ने उससे कहा—मैं तुम्हें वह दान बता रहा हूँ, जो प्राणियों के लिए मानप्रद तथा समस्त कामनाओं को सफल करता है, सुनो। पाँच, सौ अथवा अशक्त होने पर तदर्ध या चौथाई पल प्रमाण के ताँबें की और सब भाँति शक्ति हीन होने पर मृत्तिका (मिट्टी) की ही गंभीर, दृढ़दण्ड युक्त स्थाली (बटुलोई) को मूंग, चावल की खिचड़ी से पूर्ण कर मूली आदि और घृत समेत उसे, जिसका पार्श्व भाग और कर्ण (पकड़ने वाला चुल्ला आदि) धौत स्वच्छ हों, चन्दन, चर्चित करते हुए मण्डल में स्थापित और वस्त्र, पुष्प धूपादि से पूजित करे। अनन्तर उस रविवार, संक्रान्ति, चतुर्दश, अष्टमी, एकादशी या तृतीया के दिन ब्राह्मणों को समर्पित करे।१२-२१। क्योंकि प्रज्वलित अग्नि, जल समेत चावल के रहते हुए भी प्राणियों की भोजन सिद्धि बिना बटुलोई के नहीं हो सकती है। सिद्धि के इच्छुकों की सिद्धि हो, पुष्टि चाहने वालों की पुष्टि हो, अतः तुम्हें प्रणाम करता हूँ, मेरी बातें सत्य करो। बन्धु वर्ग, सुहृद्वर्ग, ब्राह्मण, एवं सेवकों में भी कोई बिना भोजन किये न रहे ऐसा वर प्रदान करो। ऐसा कहते हुए वह दण्डी किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करे जो मनुष्यों की तुष्टि पुष्टि समेत सभी कामनाएँ सफल करती हैं। वसिष्ठ की ऐसी बातें सुनकर उसने उसी प्रकार अधिक दक्षिणा समेत एक स्थाली (बटुलोई) एक ब्राह्मण को अर्पित किया। पार्थ! उसी दान के प्रभाव से द्रौपदी तुम्हारी प्रिय पत्नी हुई है जिनका हाथ कभी भी (पुत्र से) शून्य नहीं रहता है। यही सती इन्द्राणी, स्वाहा, सावित्री, भू और अरुन्धती है यह भी रूप जहाँ निवास करती है वहाँ किसी वस्तु की कमी नहीं रहती है।२२-२८। कौंतेय (द्रौपदी) स्थाली (बटुली) को

---

१. मानप्रदम्। २. वाऽपि।

अनया या भृता स्थाली तया सर्वमिदं जगत् । भोजयिष्यसि कौन्तेय किमतो ब्राह्मणा अमी ॥२९
मैत्रेयात्तदुपश्रुत्य[1] तत्र संहृष्टमानसः । पूर्वं भोजितवानस्मि ब्रहुविप्रजनान्वने ॥३०
अन्नदानप्रसंगेन स्थालीदानमिदं मया । कथितं पुण्डरीकाक्ष क्षन्तव्यमनसूयया ॥३१
स्थालीं विशालवदनां च सतण्डुलां च यच्छन्ति ये मधुरशूल्बमयीं द्विजेभ्यः ।
तेषां सुहृत्स्वजनविप्रजनेन भोज्यं सम्भुज्यमानमपि कृष्ण न याति नाशम् ॥३२
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
स्थालीदानविधिवर्णनं नाम सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७०

अथैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

दासीदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

दासीदानमहं तेऽद्य प्रवक्ष्याम्यरिसूदन । भवत्या स्नेहाच्च भवतो यन्नोक्तं केनचित्क्वचित् ॥१
चतुर्णामाश्रमाणां हि गृहस्थः श्रेष्ठ उच्यते । गृहस्थाच्च गृहं श्रेष्ठं गृहाच्छ्रेष्ठा वराः स्त्रियः ॥२
पूर्णेन्दुविम्बवदनाः[2] पीनोन्नतपयोधराः । तद्गृहं यत्र दृश्यन्ते योषितः शीलमण्डनाः ॥३

अन्नादि से परिपूर्ण किया है उसी से यह सारा संसार तृप्त हो सकता । इन ब्राह्मणों की कौन सी बात हैं । मैत्रेय (वसिष्ठ) जी की बातें सुनकर मैं ने उस जंगल में अनेक ब्राह्मणों को भोजन कराया था । पुण्डरीकाक्ष ! इस अन्न-दान के प्रसङ्ग में मैंने इस स्थाली (बटुली) दान का भी वर्णन किया अतः इसे क्षमा करेंगे । कृष्ण इस प्रकार विशाल आकार की बनी हुई बटुली (या हंडी) जो तांबे द्वारा सौन्दर्य पूर्ण निर्मित और चावल से पूरिपूर्ण हो, ब्राह्मणों को अर्पित करने वाले पुरुष के यहाँ मित्र, बन्धु वर्ग और ब्राह्मण वृन्दों के भोजन करने पर भी वह कभी रिक्त (खाली) नहीं होती है ।२९-३२

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्वाद में
स्थाली दान विधि वर्णन नामक एक सौ सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।१७०।

अध्याय १७१

दासीदान का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—अरिसूदन ! तुम्हारी भक्ति और स्नेह वश मैं तुम्हें दासी दान बता रहा हूँ, जिसे कहीं कोई जानता ही नहीं । चारो आश्रमों में गृहस्थाश्रम सर्वश्रेष्ठ कहा गया है, गृहस्थ से गृह श्रेष्ठ और गृह से उत्तम स्त्रियाँ श्रेष्ठ कही गयी हैं । क्योंकि गृह वही कहा जाता है जिसमें पूर्ण चन्द्र के समान मुख, पीत और उन्नत पयोधर एवं शील भूषित स्त्रियाँ निवास करती हैं ।१-३। कुलस्त्रियों की अर्चना (पूर्ण रीति से पालन पोषण) जिस घर में सुसम्पन्न होती है । देवता भी उसी घर में आनन्द मग्न रहकर निवास करते

---

१. मैत्रेयादुपश्रुत्याहमेतद्वृत्तान्तमुत्तमम् । सर्वान्भोजितवानस्मि । २. हिमांशुबिम्बवदनाः ।

जामयो यत्र पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः । यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते विनंक्ष्यत्याशु तद्गृहम् ॥४
जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः । तानि कृत्याहतानीव सद्यो यान्ति पराभवम् ॥५
अमृतस्येव कुण्डानि सुखानामिवराशयः । रतेरिव निधानानि योषितः केन निर्मिताः ॥६
श्यामा मन्थरगामिन्यः पीनोन्नतपयोधराः । महिष्यो वरनार्यश्च न भवन्ति गृहेगृहे ॥७
अहिरण्यमदासीकल्पान्नाज्यमगोरसम् । गृहं कृपणवृत्तीनां नरकस्यापरो विधिः ॥८
अदण्डपाशिकं ग्राममदासीकं च यद्गृहम् । अनाज्यं भोजनं यच्च वृथा तदिति मे मतिः ॥९
विभवाभरणा दास्यो यद्गृहं समुपासते । तत्रास्ते पंकजकरा लक्ष्मीः क्षीरोदवासिनी ॥१०
न यत्रास्ति गृहे शौचं न सुखं व्यवहारजम् । यत्र वा नास्तिदास्येका तत्सदैवानवस्थितम् ॥११
यत्र कर्मकरी नास्ति सर्वकर्मकरी सदा । न तच्छान्तं किङ्कराणां करोति शुभतामपि ॥१२
यदेका कुरुते दासी गृहस्थेन भृता हि सा । बहुलोकाकुलो ग्रामो दासीदासाकुलं गृहम् ॥१३
बुद्धिर्धर्माकुला यस्य तस्य चेतः किमाकुलम् । यत्र भार्यागृहे दक्षा दास्यकर्मण्यनुव्रताः ॥१४
भृत्याः सदोद्यमपरास्त्रिवर्गस्तत्र दृश्यते[1] । यद्यदिष्टतमं लोके तत्तद्देयमिति श्रुतिः ॥१५

हैं और जिस घर में उनका सम्मान नहीं होता वह अत्यन्त शीघ्र विनष्ट हो जाता है । क्योंकि जिस घर में असम्मानित होकर कुलस्त्रियाँ उसे शाप देती है वह पर कृत्या द्वारा विनष्ट होने की भाँति सद्यः नष्ट हो जाता है । इसलिए कि स्त्रियाँ अमृत का कुण्ड, सुखों की राशि और रतिका विधान रूप होती हैं अतः आश्चर्य होता है कि इनका निर्माण कर्ता कौन है । श्यामा[1] (षोडशवर्षीया), (स्थूल नितम्ब के नाते) मन्थर गमन करने वाली और पीन उन्नत पयोधर वाली परमोत्तम नारियाँ और भैसें प्रत्येक गृहस्थों के यहाँ नहीं होती हैं ।४-७। जिस कृपण (कार्पण्य) वृत्तिवाले पुरुष के घर में हिरण्य (सोना चाँदी), दासी, (नौकरानी), गोरस न हो और पुत्र घृत पर्याप्त न होता हो वह दूसरा नरक ही है । दण्ड पाशधारी सेवक (द्वारपाल) रहित ग्राम, दासीहीन गृह, घृत हीन भोजन, मेरी सम्मति से ये सभी व्यर्थ हैं । अनेक भाँति के आभूषणों से सुशोभित दासी जिस घर में सेवा करती है, उस घर में क्षीर सागर निवासिनी लक्ष्मी हाथ में सुशोभित कमल पुष्प लिए सदैव निवास करती है । जिस घर में पवित्रता, व्यावहारिक सुख और एक भी दासी नहीं रहती है वह घर सदैव अनवस्थित रहता है । उसी भाँति जिस घर में समस्त कार्यों को सुसम्पन्न करने वाली दासी नहीं रहती है उसमें सैकड़ों सेवकों के रहते हुए भी वह शुभ कार्य नहीं हो पाता है, जो स्वामी द्वारा पाली पोषी जाने वाली एक शुभ लक्षणा एवं परिश्रम शीला दासी सुसम्पन्न करती है । जिसके ग्राम में जन संख्या परिपूर्ण हो, घरमें अनेक दास-दासियाँ वर्तमान हों और बुद्धि सदैव धर्मकार्यों में व्यस्त रहती है, क्या उस पुरुष (गृह स्वामी) का चित्त कभी आकुल हो सकता है ।८-१३½। जिस घर में स्त्री (गृहस्वामिनी) अत्यन्त दक्ष (चतुर) कर्मठ दासी और सेवक वर्ग सदैव उद्यम परायण रहते हैं वहाँ तीनों वर्गों (धर्म, अर्थ और काम) की सफलता सदैव दिखायी देती है । मर्त्य लोक में रहकर जो अपना अत्यन्त अभीष्ट वस्तु हो उसका दान, अवश्य करना चाहिए, ऐसा श्रुति का कथन है, इसलिए

१. तिष्ठति । २. शोभने शशलांछने ।

१. श्यामा श्यामवर्णा च श्यामा षोडशवार्षिकी । शीतकाले भवेदुष्णा ग्रीष्मे च सुखशीतला ॥

एतद्विचार्य हृदये देया दासी द्विजातये । स्थिरनक्षत्रसंयुक्ते सोमे[1] सौम्यग्रहान्विते ॥१६
दानकालं प्रशंसन्ति सन्तः पर्वणि वा पुनः । अलङ्कृत्य यथाशक्त्या वासोभिर्भूषणैस्तथा ॥१७
ब्राह्मणाय प्रदातव्या मन्त्रेणानेन कौरव[2] । इयं दासी मया तुभ्यं भगवन्प्रतिपादिता ॥१८
कर्मोपयोज्या भोज्या वा यथेष्टं भद्रमस्तु[3] ते । दत्त्वा क्षमापयेत्पश्चाद्ब्राह्मणं काञ्चनेन तम् ॥१९
अनुव्रज्य गृहद्वारं यावत्पश्चाद्विसर्जयेत् । अनेन विधिना दद्यादंकस्त्वा सुरालये ॥२०
मखे चापि महाराज प्रसिद्धे वा प्रतिश्रये । सर्वकर्मकरीं दत्त्वा तरुणीं रूपशालिनीम् ॥२१
प्राप्यते यत्फलं पुंभिःपार्थ तत्केन वर्ण्यते ॥२२

दासीं समीक्ष्य बहुशो गृहकर्मदक्षां यो ब्राह्मणाय कुलशीलवते ददाति ।
विद्याधराधिपशतैरपि पूजितोऽसौ लोकात्रिलोकरमयाप्सरसां प्रयाति ॥२३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
दासीदानविधिवर्णनं नामैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७१

अपने हृदय में इन बातों पर विचार विमर्श करके दासी दान ब्राह्मण को अवश्य अर्पित करना चाहिए । स्थिर नक्षत्र, सौम्यग्रह युक्त चन्द्रमा (सोम) का दिन या पर्व दिवस प्रशस्त दान काल बताया गया है । कौरव ! इसलिए यथा शक्ति वस्त्राभूषण से सुशोभित दासी का दान इस मंत्र द्वारा ब्राह्मणों को अर्पित करना चाहिए—भगवन् ! मैंने यह दासी आप की सेवा में अर्पित की है अतः आप के यथेष्ट कार्यों को यह सुसम्पन्न करती रहेगी । यह कहकर काञ्चन समेत दासी ब्राह्मण को अर्पित करते हुए गृह के दरवाजे तक अनुगमन करके विसर्जित करे । महराज ! इस विधान द्वारा देवालय, यज्ञ, अथवा किसी प्रसिद्ध स्थान में समस्त कार्यों को सुसम्पन्न करने वाली दासी, जो तरुणी एवं रूप सौन्दर्य सम्पन्न हो, ब्राह्मण को अर्पित करने में कौन समर्थ हो सकता है । इस प्रकार गृह कर्म में अत्यन्त निपुण दासी किसी कुलशील वाले ब्राह्मण की सेवा में अर्पित करने वाला मनुष्य विद्याधरों के सैकड़ों अधिनायकों द्वारा पूजित होकर लोक में त्रिलोक सुन्दरी अप्सराओं से नित्य सुसेवित होता है ।१४-२३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
दासीदानविधानवर्णन नामक एक सौ एकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।१७१।

---

१. शोभने शशलांछने । २. गौरिव । ३. अश्नुते । ४. कस्याः ।

अथ द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रपादानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

प्रपादानस्य माहात्म्यं वद देवकिनन्दन । कथं देया कदा देया दाने तस्याश्च[1] किं फलम् ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

अतीते फाल्गुने मासि प्राप्ते चैत्रे महोत्सवे । पुण्येऽह्नि विप्रकथिते ग्रहचन्द्रबलान्विते ॥२
मण्डपं कारयेद्विद्वान्घनच्छायं मनोरमम् । पुरस्य मध्ये पथि वा कान्तारे तोयवर्जिते ॥३
देवतायतने वापि चैत्यवृक्षतलेऽपि[2] वा । सुशीतलं च रम्यं च विचित्रासनसंयुतम् ॥४
कारयेन्मण्डपं भव्यं शीतवातसहं[3] दृढम् । तन्मध्ये स्थापयेद्भक्त्या मणीन्कुम्भांश्च शोभनान् ॥५
अकालमूलान्करकान्वस्त्रैरावेष्टितानथ । ब्राह्मणः शीलसम्पन्नो वृत्तिं[4] दत्त्वा यथोचिताम् ॥६
प्रपापालः प्रकर्तव्यो[5] बहुपुत्रपरिच्छदः । पानीयपानेनाश्रान्तान्यः कारयति मानवान् ॥७
एवंविधां प्रपां कृत्वा शुभेऽह्नि विधिपूर्वकम् । यथा शक्त्या नरश्रेष्ठ प्रारम्भे भोजयेद्द्विजान् ॥८
ततश्चोत्सर्जयेद्विप्रान्मन्त्रेणानेन मानवः । प्रपेयं सर्वसामान्या भूतेभ्यः प्रतिपादिता[6] ॥९
अस्याः प्रदानात्पितरस्तृप्यन्तु च पितामहाः । अनिवार्यं ततो देयं जलं मासचतुष्टम् ॥१०

अध्याय १७२

प्रपादान (प्याऊ) विधि का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—देवकिनन्दन ! मुझे (प्याऊ) दान का महत्त्व बताने की कृपा करें, वह दान किस विधान द्वारा और किस समय दिया जाता है एवं उस दान का फल क्या है ।१

श्रीकृष्ण बोले—फाल्गुन मास के व्यतीत होने के अनन्तर चैत्रमास के उस महोत्सव के समय, जो ग्रहबल और चन्द्रबल समेत पुण्य अवसर कहलाता है, घने छाया वाले एक मनोरम मण्डप का निर्माण करे जो गाँव के मध्य, किसी मार्ग, जल विहीन, देवालय, या चैत्य वृक्ष की छाया में निश्चित हो और सुशीतल, रमणीयक, विचित्र आसन युक्त, भव्या भाग में मृत्तिका के सुन्दर और दृढ़ घड़े और पानी पिलाने के लिए 'करवा' रखे तथा इन्हें वस्त्राच्छादित किये रहे । किसी शील सम्पन्न ब्राह्मण को जिसके अनेक पुत्र हों, उचित वेतन द्वारा वैतनिक रूप में वहाँ उस कार्य के लिए नियुक्त करे । जो श्रान्त प्राणियों को जलपान द्वारा प्रभान्त (सुखी) बनाने की चेष्टा करता रहे। नरश्रेष्ठ ! इस प्रकार किसी शुभ अवसर पर सविधान उस प्रपा (प्यऊ) को स्थापित कर यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन भी उसके आरम्भ में सम्पन्न करे ।२-८। और उसके अनन्तर इस मन्त्र द्वारा उसका उत्सर्जन करे सभी प्राणियों के (जलपान करानेके) निमित्त सर्वसाधरण प्याऊ मैंने प्रारम्भ कर दिया है, जिसके प्रदान से पितृपितामहगण भली भाँति तृप्त हों।

---

१. कस्याः । २. अथ वा, तथा । ३. शीतवातमहम्—इति पाठे शीतवाताभ्यं मह उत्सवो यस्मिंत्तमित्यर्थः । ४. भृतिम् । ५. तु कर्तव्यः । ६. प्रतिपादये ।

त्रिपक्षं वा महाराज जीवानां[1] जीवनं परम् । गन्धाढ्यं सुरसं शीतं शोभने भाजने स्थितम् ।।११
प्रदद्यादप्रतिहतं मुखं चानवलोकयन्[2] । प्रत्यहं कारयेत्तस्यां शक्तितो द्विजभोजनम् ।।१२
अनेन विधिना यस्तु ग्रीष्मोष्मशोषनाशनम् । पानीयमुत्तमं दद्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु ।।१३
सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु च यत्फलम् । तत्पुण्यफलमाप्नोति सर्वदेवैः सुपूजितः ।।१४
पूर्णचन्द्रप्रतीकाशं[3] विमानं सोधिरुह्य च । याति देवेन्द्र नगरे पूज्यमानोऽप्सरोगणैः ।।१५
विंशत्कोटयो हि वर्षाणां यक्षगन्धर्वसेवितः । पुण्यक्षयादिहागत्य चतुर्वेदी द्विजो भवेत् ।।१६
ततः परं पदं याति पुनरावृत्तिदुर्लभम् । प्रपादानसमर्थेन विशेषाद्धर्ममीप्सता ।।१७
प्रत्यहं धर्मघटकः कर्पटावेष्टिताननः । ब्राह्मणस्य गृहे नेयः शीतामलजलः शुचिः ।।१८
तस्यैवोद्यापनं कार्यं मासिमासि नरोत्तम । मण्डकावेष्टिकाभिश्च पक्वान्नैः सार्वकामिकैः ।।१९
उद्दिश्य शङ्करं विष्णुं ब्राह्मणं कुरुनन्दन । सलिलं प्रोक्षयित्वा तु मन्त्रेणानेन मानवः ।।२०
एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः । अस्य प्रदानात्सफला मम सन्तु मनोरथाः ।।२१

(इति धर्मघटदानमंत्रः)

अनेन विधिना यस्तु धर्मकुम्भं प्रयच्छति । प्रपादानफलं सोऽपि प्राप्नोतीह न संशयः ।।२२
धर्मकुम्भप्रदानेऽपि यद्यशक्तः पुमान्भवेत् । तेनाश्वत्थतरोर्मूलं सेच्यं नित्यं[4] जितात्मना ।।२३

पश्चात् चार मास तक अनिवार्य वह (प्याऊ का कार्य) चलाता रहे। महाराज ! जीवों के जीवन रूप यह जल दान जो सुगन्धित, सुरस (स्वादिष्ट) और शीतल रूप में किसी शोभन पात्र में रखा रहे, (कम से कम) तीन पक्ष (डेढ़ मास) तक अवश्य सुसम्पन्न करे। पानी पिलाते समय पीने वाले का मुख न देखकर यह कार्य व्यापार अवतिहत अनिवार्य रूप से किया करें इस विधान द्वारा ग्रीष्म की उष्णता का अपहरण करने में समर्थ इस उत्तम जल दान से जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है मैं बता रहा हूँ, सुनो! समस्त तीर्थों और सम्पूर्ण दानों द्वारा जिन फलों की प्राप्ति होती है वे सभी इसके द्वारा प्राप्त होते हैं और अन्त में समस्त देवों से पूजित होकर पूर्व चन्द्रमा के समान विमान पर सुशोभित तथा अप्सरागणों से सुसेवित होते हुए वह भी देवेन्द्र नगर (स्वर्ग) पहुँचता है। वहाँ यक्ष गन्धर्वों द्वारा बीस कोटि वर्षों तक सुखानुभव करने के उपरान्त क्षीण पुण्य के समय इसलोक में चतुर्वेदी ब्राह्मण होता है।९-१६। पुनः अन्त में निधन होने पर वहाँ से वह पद प्राप्त करता है जहाँ से इस लोक में आना अत्यन्त दुर्लभ रहता है। धर्म का विशेष इच्छा वश प्रपा दान (प्याऊ) की असमर्थता में मनुष्य को पवित्र प्रमल जल पूर्ण एक घड़े वस्त्राच्छन्न करके प्रतिदिन ब्राह्मण के घर अर्पित करना चाहिए। नरोत्तम ! प्रतिमास भाँति-भाँति के पक्वान्नों समेत वस्त्राच्छन्न जल-कलश द्वारा उद्यापन कार्य सुसम्पन्न करे। कुरुनन्दन ! शङ्कर, विष्णु और ब्रह्मा के उद्देश्य से मनुष्य को इस मंत्र द्वारा जल प्रोक्षण करना चाहिए। ब्रह्मा, विष्णु और शिवात्मक यह धर्म घट मैंने अर्पित किया है अतः इसके प्रदान द्वारा मेरे सभी मनोरथ सफल हों—ऐसा कहकर अर्पित करे।१७-२१। इस विधान द्वारा धर्म कलश का दान करने वाला मनुष्य निस्सन्देह प्रपा (प्याउ) दान का फल प्राप्त करता है। इस भाँति के धर्म घर के दान करने में भी असमर्थ रहने वाले मनुष्य को सयंम पूर्वक प्रतिदिन पीपल

---

१. जीविनाम्। २. वा न विलोकयेत्। ३. स्वर्णकुंभप्रतीकाशम्। ४. ब्रह्मघटः।

अश्वत्थरूपी भगवान्प्रीयतां मे जनार्दनः । इत्युच्चार्य नमस्कृत्य प्रत्यहं पापनाशनम् ॥२४
यः करोति तरोर्मूले सेकं मासचतुष्टयम् । सोपि तत्फलमाप्नोति श्रुतिरेषा सनातनी ॥२५
सुस्वादुशीतसलिला क्लमनाशिनी च प्रान्ते पुरस्य पथि पान्थसमाजभूमौ ।
यस्य प्रपा भवति सर्वजनोपभोग्या धर्मोत्तरः स खलु जीवति जीवलोके ॥२६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
प्रपादानविधिवर्णनं नाम द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७२

अथ त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

अग्नीष्टिकादानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

अग्नीष्टिका कथं देया शिशिरे शीतभीरुभिः । सर्वसत्त्वोपकाराय करुणीकृतमानसैः ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

अग्नीष्टिकामहं पार्थ कथयामि निबोध ताम् । यथा येन विधानेन सर्वस्त्वसुखप्रदाम् ॥२
आदौ मार्गशिरे मासि शोभने दिवसे शुभाम् । अग्नीष्टिकां कारयित्वा[1] सुखासनवतीं शुभाम्[2] ॥३

वृक्ष के मूल भाग सेचन करना चाहिए। 'अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष रूपी भगवान् जनार्दन मेरे ऊपर प्रसन्न हों' ऐसा कहते हुए उन पापनाशक को प्रतिदिन नमस्कार करे। इस प्रकार निरन्तर चार मास तक पीपल वृक्ष के मूल भाग (जड़) का सेचन करने वाला प्राणी भी वही फल प्राप्त करता है, ऐसा सनातनी श्रुति (वेदों) का कथन है। इस भाँति सुस्वादु, शीतल जल पूर्ण। खेदनाशिनी अपा (प्याऊ) का दान जिससे समस्त जन सुखी हों अपने नगर गाँव के समीप या किसी चौराहे पर नित्य करने वाला मनुष्य धर्म मूर्ति के रूप में इसलोक में वही जीवित कहा जाता है।२२-२६

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
प्रपादान विधि वर्णन नामक एक सौ बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।१७२।

अध्याय १७३

अग्नीष्टिका (अंगीठी) दान का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—शिशिर ऋतु में शीत भीरु प्राणियों द्वारा जो अत्यन्त कारुणिक होते हैं, समस्त प्राणियों के उपकारार्थ अग्नीष्टिका (अंगीठी) का दान किस भाँति किया जाता है।१

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ! मैं तुम्हें अग्नीष्टिका (अंगीठी) का विधान बता रहा हूँ, जिससे वह समस्त प्राणियों के लिए सुखप्रद होती है, सुनो! मार्गशीर्ष (अगहन) मास के प्रारम्भ में किसी शुभ

---

१. कारयेत्तु। २. दृढ़ाम्।

देवाङ्गणे पथे गेहे विस्तीर्णे चत्वरेऽथ वा । उभयोः सन्ध्ययोः कृत्वा संशुष्कं काष्ठसञ्चयम् ।।४
ततः प्रज्वालयेदग्निं हुत्वा व्याहृतिभिः क्रमात् । अनेन विधिना हुत्वा प्रत्यहं ज्वालयेत्ततः ।।५
यदि कश्चित्क्षुधार्थी स्याद्भोज्यं तस्मै[1] प्रकल्पयेत् । सुखासीनो जनस्तत्र विशीतो विज्वरस्तथा ।।६
यः करोति कथाः पार्थ न ताः शक्या मयोदितुम् । राजवार्ता जनवार्ता यदि कश्चिन्निजेच्छया ।।७
वदेल्लोकः सुखासीनो न केनापि निवार्यते । अनेन विधिना यस्तु दद्यादग्नीष्टिकां नरः ।।८
तस्य पुण्यफलं राजन् कथ्यमानं निबोध मे । विमाने चार्कसंकाशे समारूढो महाधने ।।९
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च । हर्षितोऽत्यन्तसुखितो ब्रह्मलोके महीयते ।।१०
इह लोकेवतीर्णश्च चतुर्वेदो द्विजो भवेत् । नीरुजः सत्रयाजी च अग्निवत्तेजसान्वितः ।।११

चैत्येसुराङ्गणसभावसथे सुभव्यां येऽग्नीष्टिकां प्रचुरकाष्ठवतीं प्रदद्युः ।
हेमन्तशैशिरऋतौ सुखदा जनानां कायाग्निदीपनमलं पुनराप्नुवन्ति ।।१२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
अग्नीष्टिकादानविधिवर्णनं नाम त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७३

दिवस सुन्दर शुभासन युक्त अंगीठी बनाकर देवालय के प्राङ्गण, मार्ग, गृह या विस्तृत चौराहे पर दोनों संध्या समय रखकर उसमें सूखे काष्ठ का संचय करते हुए उसी प्रज्वलित अग्नि में सर्वप्रथम व्याहृतियों के उच्चारण पूर्वक आहुति डालना चाहिए । उसी भाँति प्रतिदिन हवन पूर्वक उसे प्रज्वलित रखना बताया गया है । यदि उस समय कोई क्षुधा पीड़ित प्राणी आ जाता है तो उसके लिए भोजन की भी व्यवस्था करे जिससे वहाँ का जन वर्ग सुखपूर्वक अपने गीत का अपना कर सके । पार्थ ! वहाँ स्थित मनुष्यों की आपस में जो कथाएँ आदि होती रहती हैं उसे बताने में असमर्थ हूँ क्योंकि कोई राजचर्चा, कोई जनवार्ता करता रहता है और यदि कोई स्वेच्छया कुछ भी कहता है तो उसे कौन रोक सकता है । राजन् ! इस विधान द्वारा अंगीठी दान करने वाले मनुष्य को जिस फल की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! सूर्य सन्निभ विमान पर जो अत्यन्त धनपूर्ण रहता है, बैठकर अत्यन्त सुख पूर्वक ब्रह्मलोक में पहुँचने पर वह मनुष्य वहाँ साठ सहस्र और साठ वर्ष तक पूजित होता है ।२-१०। पुनः कभी इस लोक में आने पर वह चतुर्वेदी ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होता है और अग्नि के समान तेजस्वी रहकर वह सदैव नीरोग और याज्ञिक होता है । इस प्रकार चैत्य, देवालय प्राङ्गण, सभा, या चौराहे पर हेमंत शिशिर के दिनों में प्रचुर काष्ठों की अंगीठी का जो अत्यन्त सुन्दर और मनुष्यों को सुखप्रदा होती है, दान करने वाले शरीरादि दान फल प्राप्त करते हैं ।११-१२

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्वाद में
अग्नीष्टिका दान विधि वर्णन नामक एक सौ तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।१७३।

---

१. तस्य ।

अथ चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

विद्यादानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

बहुप्रदानं गोदानं त्वत्तो विद्वञ्छ्रुतं मया । भूमिदानस्य माहात्म्यं विधिश्चैवावधारितः ॥१
साम्प्रतं यदुशार्दूल विद्यादानस्य यो विधिः । तमहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व जनार्दन ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

विद्यादानविधिं वक्ष्ये याथातथ्येन तेऽधुना । यथादेयं फलं यच्च दत्तेन कुरुनन्दन ॥३
शुभेऽह्नि विप्रकथिते गोमयेन सुशोभनम् । कारयेन्मण्डलं[1] दिव्यं चतुरस्रं समन्ततः ॥४
पुष्पप्रकरसञ्छन्नं स्वस्तिकाद्विविभूषितम् । पुस्तकं तत्र संस्थाप्य गन्धपुष्पैः समर्च्चयेत् ॥५
सौवर्णी लेखनी कार्या रौप्यं च मषिभाजनम् । लेखकं पूजयित्वा तु आरम्भं[2] कारयेत्सुधीः ॥६
विनीतश्चाप्रमत्तश्च ततः प्रभृति लेखकः । मात्रानुस्वारसंयुक्तं पदच्छेदसमन्वितम्[3] ॥७
समानि समशीर्षाणि वर्तुलानि घनानि च । लेखयेदक्षराणीह तद्गतेनान्तरात्मना ॥८
निष्पादयित्वा तच्छास्त्रं शैवं वाप्यथ वैष्णवम् । निष्पादिते ततः पूज्यो लेखको वस्त्रभूषणैः ॥९
सम्पूजयित्वा तच्छास्त्रं देयं गुणवते तदा[4] । शास्त्रसद्भावविदुषे वाचके च प्रियम्वदे ॥१०

अध्याय १७४

विद्यादान का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—विद्वन् ! मैंने आप के द्वारा अनेक दान समेत गोदान विधि और भूमि दान का माहात्म्य भली भाँति श्रवण कर लिया है । यदुशार्दूल, जनार्दन ! अब मुझे विद्यादान का विधान सुनने की इच्छा है, बताने की कृपा करें ।१-२

श्रीकृष्ण बोले—कुरुनन्दन ! मैं तुम्हें विद्यादान का विधान, जिससे वह दान दिया जाता है और उसके जो फल प्राप्त होते हैं, बता रहा हूँ, सुनो ! ब्राह्मण द्वारा निश्चित किये गये किसी शुभ अवसर पर गोमय (गोबर) से लिपी हुई भूमि में एक दिव्य, सुशोभन और चौकर मण्डप का, जो पुष्पों से चारों ओर आच्छन्न स्वस्तिका आदि शुभ चिन्हों से भूषित हो, निर्माण करके उसमें पुस्तक का स्थापन और गन्ध-पुष्प द्वारा उसकी अर्चना करे । उसके साथ सुवर्ण की लेखनी और चाँदी की मसीपात्र (दवात) भी आरम्भ के समय रखना चाहिए । अनन्तर विनय विनम्र और आलस्य हीन होकर लेखक को उसी दिन से मात्रा, अनुस्वार पदच्छेद और समान समशीर्षक की (सीधीलाईन) समेत अक्षरों का लिखना आरम्भ करना चाहिए, जो गोलाकार और घने हों ।३-७। इस प्रकार तन्मयता से शैव या वैष्णव शास्त्र को लेखबद्ध करदेने के उपरान्त वस्त्राभूषण द्वारा लेखक की अर्चना करनी चाहिए और शास्त्र भी सविधि अर्चा करके उसे किसी गुणी पुरुष को अर्पित करे, जो सद्भावना पूर्ण शास्त्र मर्मज्ञ और मधुर भाषी एवं

---

१. मण्डम् । २. विप्रमाकारयेत् । ३. पदबन्धसमन्वितम् । ४. सदा ।

वस्त्रयुग्मेन सम्वीतं पुस्तकं प्रतिपादयेत् । सामान्यं सर्वलोकानां स्थापयेदथ वा मठे ।।११
अनेन विधिना दत्त्वा यत्फलं प्राप्नुयान्नरः । तदहं ते प्रवक्ष्यामि युधिष्ठिर निबोध तत् ।।१२
यत्पुण्यं तीर्थयात्रायां यत्पुण्यं यज्वनां[1] तथा । तत्पुण्यं कोटिगुणितं विद्यादानाल्लभेन्नरः ।।१३
कपिलानां सहस्रेण सम्यग्दत्तेन यत्फलम् । तत्फलं समवाप्नोति पुस्तकस्य[2] प्रदायकः ।।१४
पुराणं भारतं वापि रामायणमथापि वा । दत्त्वा यत्फलमाप्नोति पार्थ तत्केन वर्ण्यते ।।१५
प्रातरुत्थाय यः शिष्यानध्यापयति यत्नतः[3] । वेदं शास्त्रं नृत्यगीतं कस्तेन सदृशः कृती ।।१६
उपाध्यायस्य यो वृत्तिं दत्वाऽध्यापयते जनः । किं न दत्तं भवेत्तेन धर्मकामार्थदर्शिना ।।१७
छात्राणां भोजनाभ्यंगं वस्त्रं भिक्षामथापि वा । दत्त्वा प्राप्नोति पुरुषः[4] सर्वकामान्न संशयः ।।१८
विवेको जीवितं दीर्घं धर्मकामार्थसम्पदः । सर्वं तेन भवेद्दत्तं छात्राणां पोषणे कृते ।।१९
शास्त्रं शस्त्रकलाशिल्पं यो यदिच्छेदुपार्जितुम् । तस्योपकारकरणे पार्थ कार्यं सदा मनः ।।२०
वाजपेयसहस्रस्य सम्यगिष्टस्य यत्फलम् । तत्फलं समवाप्नोति विद्यादानान्न संशयः ।।२१
शिवालये विष्णुगृहे सूर्यस्य भवनेऽथ वा । यः कारयति धर्मात्मा सदा पुस्तकवाचनम् ।।२२
गोभूहिरण्यवासांसि शयनान्यासनानि च । प्रत्यहं तेन दत्तानि भवन्ति भरतर्षभ ।।२३

वाचक (व्यास) हो, अथवा युग्म वस्त्र से आच्छादित उस पुस्तक को समस्त जनों के हितार्थ किसी मठ में स्थापित करे। युधिष्ठिर ! इस विधान द्वारा इसके दान करने से जिन फलों की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! तीर्थ यात्रा के समस्त पुण्य और यज्ञानुष्ठान द्वारा जितने पुण्य की प्राप्ति होती है, उतने कोटि गुना पुण्यफल मनुष्यों को विद्या दान द्वारा प्राप्त होते हैं। सहस्र कपिलाओं के सविधि दान करने पर जिस फल की प्राप्ति होती है वह फल पुस्तक प्रदाता को अवश्य प्राप्त होता है। पार्थ ! पुराण, महाभारत, अथवा रामायण आदि के दान द्वारा जिन फलों की प्राप्ति होती है, उसका वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है।८-१५। प्रातः उठ कर नित्य कर्म के अनन्तर जो सप्रयत्न शिष्यों को वेदशास्त्र का या नृत्य गान का अध्ययन कराता है उस सुकृती के समान अन्य कौन हो सकता है। जिसके (वृत्ति) वेतन प्रदान द्वारा उपाध्याय (अध्यापक) नियुक्त कर अध्ययन का कार्य कराता है तो उस धमार्थ दर्शी पुरुष ने कौन दान नहीं किया। क्योंकि छात्रों को भोजन, अभ्यंग, वस्त्र, और भिक्षा प्रदान करने वाला पुरुष अपनी समस्त काननाओं को सफल करता है इसमें संशय नहीं।१६-२१। छात्र वृन्दों के पालन-पोषण करने के नाते उस पुरुष ने विवेक, दीर्घ जीवन और धर्म, अर्थ काम आदि समस्त का दान किया इसमें संदेह नहीं। पार्थ जिसके विद्यालय में शास्त्रों के अध्ययन, शास्त्रों की कलाएँ, शिल्पी (कारीगरी) आदि का यथेच्छ छात्र वृन्द करते हैं मैं उसके उपकार की बातें सदैव सोचा करता हूँ। सहस्र वाजपेय के सविधान सुसम्पन्न करने पर जिन फलों की प्राप्ति होती है वे समस्त फल विद्यादान द्वारा प्राप्त होते हैं इसमें संदेह नहीं। भारतर्षभ ! शिवालय, विष्णु मन्दिर सूर्य भवन आदि कहीं भी पुस्तक वाचन कराने वाला धर्मात्मा गौ, पृथिवी, हिरण्य, वस्त्र, शयनासन आदि के दान प्रतिदिन करता है इसमें संदेह नहीं। विद्याहीन पुरुष के धर्माधर्म का ज्ञान नहीं रहता है अतः धर्मात्मा

---

१. यज्ञयाजिनाम्। २. पुस्तकैकप्रदायकः। ३. पंक्तितः। ४. जनम्।

धर्माधर्मं न जानाति विद्यया रहितः पुमान् । तस्मात्सदैव धर्मात्मा विद्यादानरतो भवेत् ॥२४
त्रैलोक्यं चतुरो वर्णाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् । ब्रह्माद्या देवताः सर्वा विद्यादाने प्रतिष्ठिताः ॥२५
चतुर्युगानि राजेन्द्र एकसप्ततिसंख्यया । कल्पं विष्णुपुरे तिष्ठेत्पूज्यमानः सुरोत्तमैः ॥२६
क्षितिं यो पेत्य[1] कालान्ते राजा भवति धार्मिकः । हस्त्यश्वरथदानाढ्यो दाता भोक्ता विमत्सरी ॥२७
रूपसौभाग्यसम्पन्नो दीर्घायुर्नीरुजो भवेत् । पुत्रैः पौत्रैः परिवृतो जीवेच्च शरदां शतम् ॥२८

दानं विशेषफलदं जगतीह[2] नान्याद्विद्यां विहाय वदनाब्जकृताधिवासाम् ।
गोभूहिरण्यगजवाजिरथादिसर्वं तां यच्छतां किमिह पार्थ भवेन्न दत्तम् ॥२९

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
विद्यादानविधिवर्णनं नाम चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः १७४

अथ पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

तुलापुरुषदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा प्रियव्रतो राजा पुत्रः स्वायंभुवस्य तु । पालयामास वसुधां प्रजापतिरिवापरः ॥१
त्रिंशद्वर्षसहस्राणि पालयित्वा महीमिमान् । सप्तद्वीपान्विभज्यासौ पुत्रेभ्यः प्रददौ विभुः ॥२

पुरुष को सदैव विद्या दान करने में ही निरत (तन्मय) रहना चाहिए । तीनों लोक चारो वर्ण, चारों आश्रम और ब्रह्मा आदि समस्त देवगण विद्यादान में सदैव प्रतिष्ठित रहते हैं । राजेन्द्र ! वह विद्या दानी धर्मात्मा इकहत्तर कल्प तक चारो युग के समय विष्णु लोक में सुरासुर द्वारा पूजित होता रहता है । अनन्तर इस भूतल में कभी आने पर धार्मिक राजा होता है, जो हाथी, घोड़े, और रथ का दान करते हुए दाता और मत्सरहीन भोक्ता रहता है । रूप सौन्दर्य और सौभाग्य से सम्पन्न होकर दीर्घायु, नीरोग रहते हुए पुत्र पौत्रों समेत सौ वर्ष का जीवन प्राप्त करता है । पार्थ ! मुख कमल में अधिवास करने वाली विद्या के अतिरिक्त अन्य दान इसभूतल में विशेष फल दायक नहीं अतः उसके दान करने वाले पुरुष ने गौ, भूमि, हिरण्य (सुवर्ण, चाँदी), गज, अश्व एवं रथ आदि सभी नहीं किया क्या ।२२-२९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्वाद में
विद्यादान विधि वर्णन नामक एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।१७४।

अध्याय १७५

तुलापुरुषदान का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—प्राचीन काल में स्वायम्भुव पुत्र राजा प्रियव्रत ने (अपने राज्यकाल में) इस वसुधा का पालन पोषण एक अपर प्रजापति की भाँति किया था । उस विभु राजा ने तीस सहस्र वर्ष तक इस पृथ्वी का भली भाँति पालन पोषण करके सातों द्वीपों को अपने पुत्रों में विभक्त कर दिया ।१-२। अनन्तर अपने

---

१. पुरुषर्षभ । २. विद्याविरहितः । ३. सुरैर्नरैः । ४. वाऽऽगत्य । ५. शरदः । ६. भवति ।

राज्ये निक्षिप्य तनयान्सप्तद्वीपेषु सप्त सः । विषयानुपसंहृत्य जगाम तपसे वनम् ॥३
तपोवनगतं श्रुत्वा राजानं परमद्युतिम् । समाजग्मुर्महात्मान ऋषयस्तं दिदृक्षवः[1] ॥४
तानागतानृषीन्दृष्ट्वा तपोनिर्धूतकल्मषान् । पूजयामास मेधावी विधिदृष्टेन कर्मणा ॥५
पाद्यार्घ्याचमनीयेन प्रियप्रश्नोत्तरेण च । अथ तेषूपविष्टेषु ब्राह्मणेषु महात्मसु ॥६
आजगाम महातेजाः पुलस्त्यो ब्राह्मणः सुतः । दीप्यमानो महातेजा द्वितीय इव भास्करः[2] ॥७
तं दृष्ट्वा मुनयः सर्वे स च राजा महारथः । उत्तस्थुर्विस्मिताः सर्वे प्रोत्फुल्लनयनास्ततः ॥८
कृत्वा तु सम्विदं तेन यथायोग्यं विधानतः । विष्टरं च ददुस्तस्मै पाद्यार्घ्याचमनादिकम् ॥९
ततस्तु मुनयः सर्वे समासीन यथासुखम् । चक्रुः कथा मुदायुक्ता वेदोक्तविविधाश्रयाः ॥१०
ततः कथान्ते कस्मिश्चिन्मुनयस्ते सराजकाः । पप्रच्छुर्ब्रह्मतनयं लोकानां हितकाम्यया ॥११

ऋषय ऊचुः

भगवन्केन दानेन व्रतेन नियमेन वा । प्राप्यते सद्गतिः पुम्भिः स्त्रीभिश्च मुनिसत्तम ॥१२
इच्छामः श्रोतुमेतत्ते राजा चायं यतव्रतः

पुलस्त्य उवाच

शृणध्वं मुनयः सर्वे रहस्यं पापनाशनम् ॥१३
उत्तमं सर्वदानानां समवायं[3] वदामि वः । यद्दत्त्वा ब्रह्महा गोघ्नः पितृघ्नो गुरुतल्पगः ॥१४

सातों पुत्रों को अपने अपने राज्य सिंहासनों पर सुखासीन करके राजा ने संयम द्वारा विषयों से अपनी इन्द्रियों को विमुख और संयत करते हुए तप करने के लिए जंगल को प्रस्थान किया । उस परम तेजस्वी राजा का वन गमन सुनकर ऋषि महात्मागण उनके दर्शनार्थ वहाँ उपस्थित हुए । मेधावी राजा ने अपने यहाँ उन ऋषियों का, जो अपने नैष्ठिक तप द्वारा पापों को विनष्ट कर दिये हैं, आगमन देखकर उनकी सविधि अर्चना की—पाद्य अर्घ्य और आचमनीयं जल दान आदि तथा मधुर प्रश्नोत्तर द्वारा सुखी बनाया अनन्तर उन ब्राह्मण महात्माओं के शांतचित्त सुखासीन होने पर ब्रह्मपुत्र महातेजस्वी पुलस्त्य जी का आगमन हुआ जो तेज से देदीप्यमान होने के नाते दूसरे भास्कर की भाँति दिखायी दे रहे थे । उन्हें देखकर महारथी राजा और समस्त मुनिगणों ने अपने विस्फारित नेत्रों से आश्चर्य प्रकट करते हुए अपने आसनों पर उठकर उनका स्वागत किया । यथायोग्य एवं सविधान कुशल वार्ता के उपरान्त राजा ने आसन पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय जलादि द्वारा उनकी अर्चना की । पश्चात् सभी महर्षि गण सुखासीन रहकर वेद सम्बन्धी विविध कथाओं की प्रसन्नमुखमुद्रा में चर्चा करने लगे । कथाओं की सम्मत्ति होने पर राजा समेत मुनियों ने लोक हितार्थ ब्रह्मपुत्र पुलस्त्य से पूँछा—३-११

ऋषियों ने कहा—भगवन् ! मुनिसत्तम किस दान, व्रत अथवा नियम द्वारा सभी पुरुषों को सद्गति प्राप्त होती है, इसे जानने के लिए हम लोग और यतव्रती राजा भी समुत्सुक हैं ।१२

पुलस्त्य बोले—मुनिवृन्द ! मैं उस पापनाशक का रहस्य, जो सर्वश्रेष्ठ, और समस्त दानों से समन्वित हैं, बता रहा हूँ, सुनो ! उसके दान करने से ब्राह्मण, गौ और पिता आदि की हत्या करने वाला, गुरुपत्नीगामी ।१३-१४

---

१. गोभूहिरण्यतिलवस्त्रगजाश्वमध्ये विद्याप्रदां किमिह पार्थ भवेन्न वेद । २. तद्दिदृक्षया । ३. पावकः ।

कृतघ्नः कूटसाक्षी च मुच्यते पातकान्नरः । सद्यो दिव्यतनुश्चैव जायते स्त्री तथैव च ॥१५
कृच्छ्रचान्द्रायणाद्यैश्च तुलापुरुषसंज्ञितैः । व्रतैश्च पाचयेद्देहमाकाङ्क्षन्ब्रह्मणः[१] पदम् ॥१६
कृच्छ्राचान्द्रायणादीनि व्रतानि मुनिसत्तमाः । ब्राह्मणानां वनस्थानां भिक्षो रण्डाजनस्य च ॥१७
कायक्लेशेन सिध्यन्ति गृहस्थेषु न तानि वै । महाधनाश्च ये लोका राजानो[२] रत्नभागिनः ॥१८
न तेषां कृच्छ्रासाध्योऽपि क्वचिद्धर्मः प्रशस्यते । यदेतद्द्रविणं नाम प्राणाश्चैते बहिश्चराः ॥१९
तस्माद्बहिश्चरैः प्राणैरात्मा[३] योज्यः सदा बुधैः । द्रव्याणामुत्तमं लोके काञ्चनं सार्वकामिकम् ॥२०
अपत्यं सुरमुख्यस्य ज्येष्ठं चैव[४] विभावसोः । तेन सार्द्धं य आत्मानं तोलयेत्प्रयतो बुधः ॥२१
विधूय सर्वपापानि सद्यो दिव्यतनुर्भवेत् । एतत्पुलस्त्यमुनिना ऋषीणां पार्थिवस्य च ॥२२
समाख्यातं नृपश्रेष्ठ तेभ्यश्च तन्मया श्रुतम् ॥

युधिष्ठिर उवाच

तुलापुरुषदानस्य विधानं परमेश्वर[५] ॥२३
कथयस्व महाभाग मम भक्तानुकम्पया[६] ॥

श्रीकृष्ण उवाच

शृणुष्वावहितो राजन्विधानं गदता मम ॥२४

कृतघ्नी और कूटसाक्षी (झूठी गवाही) देनेवाला अपने पापों से मुक्त हो जाता है। चाहे स्त्री ही क्यों न हो, उसकी भी उसी समय दिव्य देह हो जाती है। ब्रह्मपदाभिलाषी पुरुषों को तुलापुरुष वाले कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रतों के अनुष्ठान द्वारा शरीर का शोषण करना चाहिए। क्योंकि वनस्थित तपस्वी ब्राह्मण, भिक्षुक (संन्यसी) और रण्डा पुरुषों सन्तान हीन (अविवाहित) प्राणियों की सिद्धि चान्द्रायण आदि व्रतों के अनुष्ठान कायक्लेश करने से ही होती है किन्तु गृहस्थों को उनका उपयोग न करना चाहिए। महाधनवान तथा रत्नभोगी राजा आदि के लिए कृच्छ्र (अत्यन्त कष्ट) साध्य को भी धर्म प्रशस्त नहीं बताया गया है। क्योंकि (यह देह) द्रविण (धन) रूप है और प्राण उससे बाहर (पृथक्) की वस्तु है इसलिए प्राणों का आत्मयोग होना परमावश्यक कहा गया है। लोक में काञ्चन (सुवर्ण) समस्त द्रव्यों में श्रेष्ठ और पूर्ण कामनाप्रद होता है, क्योंकि उसे देव प्रमुख अग्नि देव का ज्येष्ठ पुत्र बताया गया है। इसलिए जो विद्वान् उससे अपने को तौलता है अर्थात् तुलादान करता है वह सद्यः अपने पापों को नष्ट कर दिव्यतनु हो जाता है। नृपश्रेष्ठ ! पार्थिव पुलस्य महर्षि द्वारा ऋषियों ने सुना है और ऋषियों से मुझे प्राप्त हुआ है।१५-२२

युधिष्ठिर बोले—महाभाग, परेमश्वर ! मुझ भक्त पर कृपा करते हुए आप तुला पुरुष दान का माहात्म्य बतायें।२३

श्रीकृष्ण बोले—राजन् नृपोत्तम ! मैं तुला पुरुष दान का विधान बता रहा हूँ, सुनो ! नृपसत्तम !

---

१. यापयेत्। २. यजमानोऽपि रत्नभाक्। ३. आत्मा शोध्यः सदा बुधैः, मनो योज्यं सदा बुधैः। ४. तत्तु, तद्धि, ५. पुरुषोत्तम। ६. भक्त्या।

तुलापुरुषसंज्ञस्य[1] दानवस्येह नृपोत्तम । व्यतीपातेऽयने चैव कार्तिक्यां विषुवे तथा ।।२५
चन्द्रसूर्यग्रहे यद्वा[2] माघ्यां वा नृपसत्तम । जन्मर्क्षे ग्रहपीडासु तथा दुःस्वप्नदर्शने ।।२६
यदा वा जायते वित्तं तदा देयमिदं भवेत् । अनित्यं जीवितं यस्मादपुश्चातीवचञ्चलम् ।।२७
केशेषु च गृहीतः सन्मृत्युना धर्ममाचरेत् । तस्माद्यदैव जायते श्रद्धा दानं प्रति प्रभो ।।२८
तदैव दानकालः स्यात्कारणं हि यतो मम । तीर्थे वायतने गोष्ठेष्व[3] वा भवनाङ्गणे ।।
मण्डपं कारयेद्विद्वान्श्चतुर्भद्राननं[4] बुधः ।।२९
आर्द्रशाखान्वितं दिव्यं प्रागुदक्प्रवणं दृढम् । षोडशारत्निमात्रं च पताकाभिरलंकृतम् ।।३०
तन्मध्ये कारयेद्वेदिं हस्तमात्रोच्छ्रितां[5] शुभाम् । चतुरस्रां समन्ताच्च सप्तहस्तां सुशोभनाम् ।।३१
तस्यां मध्ये तुलां दिव्यां स्थापयेद्विधिपूर्वकम् । हस्तद्वयं च निखनेच्चतुर्हस्तोच्छ्रितां बुधः ।।३२
स्तम्भद्वयं महाराज स्थापयेत्सुदृढं नवम् । चन्दनः खदिरो बिल्वः शाकश्चैवेङ्गुदस्तथा ।।३३
तिन्दुको देवदारुश्च श्रीपर्णश्चाष्टमः स्मृतः ।।३४
इत्यष्टौ वृक्षजातीयाः स्तम्भास्ते परिकीर्तिताः । अन्यश्चापि भवेद्वृक्षः सारज्ञो याज्ञिकस्तथा ।।३५
सुनिश्चलं ततः कृत्वा तिर्यक्काष्टमथोपरि । न्यसेत्तद्वृक्षजातीयं चतुर्हस्तं प्रमाणतः ।।३६
समानजातिं तु तुला तन्मध्ये योजयेद्दृढम् । षण्णवत्यङ्गुला दिव्या समग्रा लोहपाशिका ।।३७
कृष्णलोमहमयौ तस्यां[6] कर्णौ चापि प्रकल्पयेत् । तुलापुरुषसंज्ञस्तु मध्ये कार्यः पुमान्भवेत् ।।३८

व्यतीपात, अयन, कार्तिक पूर्णिमा, विषुव, चन्द्र, सूर्यग्रहण, और माघ पूर्णिमा तथा जल नक्षत्र पर स्थित (अनिष्ट) ग्रह द्वारा पीड़ित होने या दुःस्वप्न के देखने पर अथवा जिस समय (अभूत) धनागम होता, उसी समय यह दान अवश्य करना चाहिए । क्योंकि जीवन अनित्य होने के नाते यह शरीर अत्यन्त अस्थिर है और मृत्यु (जन्मतः) शिर की चोटी पकड़े हुए है इस लिए (दूसरे दिन का वाद न कर) आज ही इस दान के प्रति श्रद्धा होनी चाहिए । उसे ही दान का काल समझ कर मेरे निमित्त दान करने के लिए किसी तीर्थ, विशाल गोशाला या अपने गृहप्राङ्गण में चार भद्रमुख वाले मण्डप का निर्माण करके, जो (वृक्ष की) हरी शाखाओं से युक्त, दिव्य, पूर्व उत्तर की ओर ढालू, दृढ़, सोलह हाथ का विस्तृत और पताकाओं से विभूषित हो, उसके मध्य में सात हाथ की विस्तृत, एक हाथ की ऊँची, चौकोर और सुशोभन एक वेदी की रचना करे और उसके मध्य भाग में सविधान दिव्य तुला की स्थापना करे । महाराज ! दो हांथ के विस्तृत चार हाथ की भी नीचाई वाले गद्ढे में दो स्तम्भ (खम्भे) की स्थापना करे, जो दृढ़ एवं नवीन हो । चन्दन, खैर, बैल, शक्ति, इङ्गुदी, तिन्दु क, देवदारु, और श्रीपर्ण, यही आठ प्रकार के वृक्ष (शुभ कार्य के लिए) स्तम्भ के लिए बताये गये हैं और अन्य भी वृक्ष हैं जो सारज्ञ और यज्ञ के काम आते हैं ।२४-३५। इस प्रकार उस निश्चल स्तम्भ के ऊपर चार हांथ की उपरोक्त वृक्ष की एक टेढ़ी लकड़ी रखकर उसके मध्य में उसी वृक्ष की बनी हुई तुला स्थापित करे, जो दृढ़, छानवे, अङ्गुल की विस्तृत, दिव्य और चारों कर्ण (कान) काले रङ्ग और लोह का होने चाहिए । तथा उसके मध्य तुला पुरुष नामक पुरुष रहे । इस प्रकार अनेक रत्नों से भूषित, चन्दन से अनुलिप्त और वस्त्राभूषण से सुशोभित उस तुला के

---

१. तुलापुरुषदानस्य उत्तमस्य । २. वाथ । ३. धोषेषु । ४. चतुर्भद्रासनम् । ५. हस्तमात्रोच्छ्रयाम् । ६. दिव्यौ ।

एवंविधां तुलां कृत्वा नानारत्नैर्विभूषिताम् । चन्दनेनानुलिप्ताङ्गीं वस्त्रालङ्कारविग्रहाम् ॥३९
स्तम्भौ च वस्त्रसंयुक्तौ पुष्पमालावलम्बिनौ । चन्देनानुलिप्ताङ्गौ नानारत्नैरलङ्कृतौ ॥४०
कुण्डानि चात्र चत्वारि योनियुक्तानि कारयेत् । हस्तमात्रप्रमाणानि मेखलात्रयवन्ति च ॥४१
पूर्वोत्तरे हस्तमिता[१] वेदिः कार्या सुशोभना । लोकपालग्रहाणां च पूजा तत्र विधीयते ॥४२
अर्चार्चनं[२] च तत्रैव विरिंच्युच्युतयोर्नृप । शङ्करस्य भवेत्कार्यं माल्यवस्त्रफलाक्षतैः ॥४३
तोरणानि च कार्याणि[३] क्षीरवृक्षोद्भवानि च । चतुर्द्वारेषु संस्थाप्याः कुम्भाः स्रक्पल्लवाननाः ॥४४
पञ्चरत्नसमायुक्ताः सप्तधान्योपरिस्थिताः । ऋग्वेदपाठकौ द्वौ च पूर्वकुण्डे नियोजयेत् ॥४५
यजुर्वेदविदौ याम्ये पश्चिमे सामवेदिनौ । अथर्वणावुत्तरतो नवमो धर्मदेशकः ॥४६
अत्रैव केचिदिच्छन्ति ऋषयः षोडशर्त्विजः । ताम्रपात्रद्वयं देयमेकैकस्मै तथासनम् ॥४७
होमद्रव्याणि सर्वाणि तिलाज्यं समिधस्तथा । स्रुवाः स्रुचश्च शस्त्राणि विष्टरः कुसुमानि च ॥४८
लोकपालाः सुवर्णास्तु पताकाः परितः शुभाः । महाध्वजं च बध्नीयात्पञ्चवर्णं वितानकम् ॥४९
एतत्सर्वं समाहृत्य पुण्येऽहनि विचक्षणः । वर्द्धकिर्ब्राह्मणैः सार्द्धं सर्वशिल्पविशारदः ॥५०
सम्पूर्णं यजमानाय दर्शयेद्यज्ञमण्डपम्[४] । यजमानस्ततः प्राज्ञः शुक्लाम्बरधरः शुचिः ॥५१
शङ्खतूर्यनिनादेन वेदध्वनिरवेण च । प्रक्षिपेल्लोकपालानामेभिर्मंत्रैः शुभैर्बलिम् ॥५२

दोनों स्तम्भ वस्त्राच्छन्न, लम्बी पुष्प माला से आबद्ध चन्दन से अनुलिप्त, एवं अनेक भाँति के रत्नों से अलंकृत करना चाहिए। अनन्तर योनि युक्त चार कुण्डों के निर्माणपूर्वक, जो एक हाथ के विस्तृत और तीन मेखलाओं से युक्त हो उसके पूर्वोतर भाग (ईशानकोण) में एक हांथ की सुशोभन वेदी बना कर उस पर लोकपाल समेत ग्रहों की स्थापना तथा अर्चा करें।३६-४२। नृप ! उसी वेदी पर माला, वस्त्र, फल एवं अक्षतादि द्वारा ब्रह्मा, विष्णु और शङ्कर की अर्चना करे। क्षीर वृक्ष के तोरण से भूषित उन चारों द्वार पर माला पल्लव से सुशोभित कलश की स्थापना करे, जो पंचरत्न युक्त और सप्त धान्य के ऊपर स्थित हों, पूर्व के कुण्ड की बैर से ऋग्वेद पाठी को यजुर्वेद पाठी दक्षिण, दो साम वेदपाठी पश्तिचम और दो अथर्व वेदपाठी ब्राह्मणों को उत्तर की ओर सुसम्मान करते हुए नवें धर्म देशी का वरण करें। यहाँ पर कुछ ऋषियों की सम्मति है कि सोलह ऋत्विक् रहने चाहिए। उपरोक्त सभी ब्राह्मणों को दो ताम्रपात्र एक आसन प्रत्येक व्यक्ति को अर्पित कर होम द्रव्य तिल, घृत, समिधा, (लकड़ी) सुव्रा, सुक्र, शस्त्र, विष्ठर (कुशासन) और पुष्प—सुवर्णभूषित लोकपाल तथा चारों ओर वह स्थान पताका से भूषित करे। महाध्वज को बाँधते हुए पाँच रङ्ग की चांदनी (चंदोबा) बाँधे। इस भाँति इस महान् संभार से सम्पन्न होने पर वह यज्ञ मण्डप किसी पुण्य अवसर पर ब्राह्मणों समेत यजमान को समस्त शिल्प वेत्ता एवं बुद्धिमान् वर्द्धकि (राजगीर) दिखाये।४३-५०। अनन्तर शुक्ल वस्त्र धारण कर पवित्रता पूर्ण वह प्राज्ञ यजमान शंख, तुरूही की ध्वनि, और वेदघोष पूर्वक वहाँ लोकपालों के निमित्त मंत्रोच्चारण करते हुए बलि अर्पित

---

१. हस्तमात्रा, पुस्तकद्वये। २. अर्घार्चनम्। ३. दिव्यानि। ४. यज्ञमण्डलम्।

एह्येहि सर्वामरसिद्धसाध्यैरभिष्टुतो वज्रधरामरेश[1] ।
सम्वीज्यमानोप्सरसां गणेन रक्षाध्वरं नो भगवन्ननस्ते ।।५३
(ॐ इन्द्राय नमः)
एह्येहि सर्वामरहव्यवाह मुनिप्रवीरै रभिहूव्टमानसः ।
तेजोवता लोकगणेन सार्द्धं ममाध्वरं रक्ष कवे नमस्ते ।।५४
(ॐ अग्नये नमः)
एह्येहि वैवस्वतधर्मराज सर्वामरै रर्चितदिव्यमूर्ते ।
शुभाशुभानन्दकृतामधीशरक्षाध्वरं मे भगवन्नमस्ते ।।५५
(ॐ यमाय नमः)
एह्येहि रक्षोगणनायकस्त्वं विशालवेतालपिशाचसङ्घैः ।
ममाध्वरं पाहि पिशाचनाथ लोकेश्वरस्त्वं भगवन्ननस्ते ।।५६
एह्येहि यादोगणवारिधीनां गणेन पर्जन्यसहाप्सरोभि[2]: ।
विद्याधरेन्द्रामरगीयमान पाहि त्वमस्मान्भगवन्नमस्ते ।।५७
(ॐ वरुणायनमः)
एह्येहि यज्ञे मम रक्षणाय मृगाधिरूढः सह सिद्धसन्धैः ।
प्राणाधिपः कालकवे[3] सहायो गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ।।५८
(ॐ वायवे नमः)

करे ।५१-५२।भगवन्, वज्रधारी अमरेश ! मेरे इस यज्ञ में आकर यह बलि स्वीकार करने की कृपा करें। समस्त देव, सिद्ध साध्यगण आप की सदैव स्तुति करते है और अप्सराएँ पंखा झलती रहती हैं। आप मेरे यज्ञ की रक्षा करें अतः मैं बार-बार आप को नमस्कार कर रहा हूँ इस मंत्र से इन्द्र को बलि प्रदान करे।५३। समस्त देवों के हव्यवाहक अग्नि देव ! मुनिगण सदैव आप को सदैव प्रसन्न रखते हैं। आप तेजस्वी लोकगण समेत यहाँ आकर यह बलि उपहार ग्रहण करते हुए मेरे इस यज्ञ की रक्षा करें मैं आप को नमस्कार कर रहा हूँ—इस मंत्र से अग्नि को बलि प्रदान करें ।५४। समस्त देवगणों द्वारा अर्चित होने के नाते दिव्य मूर्ति धारण करने वाले सूर्य पुत्र धर्म राज ! आप शुभाशुभ कर्म करने वालों के अधीश्वर हैं इस मेरे यज्ञ की रक्षा करें। मैं आप को नमस्कार कर रहा हूँ। इस मंत्र से यम को बलि प्रदान करें।५५। भगवन्, पिशाचनाथ ! आप राक्षसगण के नायक और लोकेश्वर हैं अतः वेताल पिशाच के विशाल समूह समेत मेरे यज्ञ की रक्षा करें। मैं आप को नमस्कार कर रहा हूँ इस मंत्र से निऋति को बलि अर्पित करें। विद्याधरेन्द्र आदि देवों द्वारा गीयमान वरुण देव ! आप जल जन्तु और वारिधिगण मेघ तथा अप्सराओं से सदैव स्तुत होते रहते हैं आप को नमस्कार कर रहा हूँ इस मेरे यज्ञ की रक्षा करने की कृपा करें । इस मंत्र से वरुण को बलि अर्पित करें ।५६-५७। भगवान् ! वायुदेव ! आप सिद्धों के साथ सदैव मृग आरूढ रहते हैं, प्राणों के अधीश्वर और कालविधि के सहायक हैं मेरी इस पूजा को ग्रहण करने की कृपा करें में आप को नमस्कार कर रहा हूँ, इस

---

१. अप्रमेय । २. सदाप्सरोभिः । ३. कालविधेः सहायः ।

एह्येहि[1] यज्ञेश्वर यज्ञरक्षां विधत्स्व नक्षत्रगणेन सार्द्धम्।
सर्वौषधीभिः पितृभिः सहैव गृहाण पूजा भगवन्नमस्ते॥५९
(ॐ सोमाय नमः)
एह्येहि विश्वेश्वर विश्वमूर्ते त्रिशूलखट्वाङ्गधरेण सार्द्धम्।
लोकेन भूतेश्वर यज्ञसिद्ध्यै गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते॥६०
(ईशानाय नमः)
एह्येहि पातालधराधरेन्द्र नागाङ्गनाकिन्नरगीयमान्।
यक्षोरगेन्द्रामरलोकसंघैरनन्त[2] रक्षाध्वरमस्मदीयम्॥६१
(ॐ अनन्ताय नमः)
एह्येहि विश्वाधिपते मुनींद्र लोकेश[3] सार्द्धं पितृदेवताभिः।
विश्वाध्वरान्तं सततं शिवाय पितामहस्त्वं सततं नमस्ते॥६२
(ॐ ब्रह्मणे नमः)
त्रैलोक्यं यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्द्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे॥६३
देवदानवगन्धर्वाः यक्षराक्षसपन्नगाः। ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च॥६४
सर्वे ममान्वरे[4] रक्षां प्रकुर्वन्तु मुदान्विताः। इत्यावाह्य सुरान्दद्यादृत्विग्भ्यः कण्ठभूषणम्॥६५

मंत्र से वायु को बलि प्रदान करे।५८। भगवान्, यज्ञेश्वर! नक्षत्र गण समेत आप इस यज्ञ की रक्षा करते हुए सम्पूर्ण ओषधि और पितरों सहित उसे पूजा को ग्रहण करें मैं आप को नमस्कार कर रहा हूँ, इस मंत्र से सोम को बलि अर्पित करे।५९। भगवान् विश्वमूर्ते विश्वेश्वर! त्रिशूल, खट्वाङ्गधारी लोगों के साथ आप यज्ञ सिद्धयर्थ यह पूजा ग्रहण करें। भूतेश्वर! मैं आप को बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ, इस मंत्र से ईशान (शिव) को बलि प्रदान करे।६०। पातालधराधरेन्द्र, अनन्तदेव! नागों की स्त्रियाँ और किन्नरगण आप का सदैव यशोगान करते हैं आप यक्ष और सर्वाधीश्वर वृन्तों समेत मेरे यज्ञ की रक्षा करने की कृपा करें इस मंत्र से अनन्त को बलि प्रदान करे।६१। विश्वाधिपते, मुनीन्द्र, एवं लोकेश! पितृ-देवताओं समेत आप कल्याणार्थ इस यज्ञ के अन्तःस्थल में प्रवेश करने की कृपा करें।६२। आप पितामह हैं अतः आपको मैं बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ, इस मंत्र से ब्रह्मा को बलि अर्पित करें।६३। तीनों लोक में विचरण करने वाले समस्त चर-अचर प्राणी ब्रह्मा, विष्णु और शिव समेत मेरी रक्षा करने की कृपा करें। उसी भाँति देव, दानव, गन्धर्वगण, यक्ष, राक्षस पन्नग, सूर्य, ऋषिगण, मनु गौएँ और देवमाताएँ सहर्ष मेरे यज्ञ की रक्षा करें—इस प्रकार देवों के आवाहन करने के अनन्तर ऋत्विजों को सुवर्ण माला, कुण्डल, सुवर्ण सूत्र,

---

१. ऐह्यिहि यज्ञेश्वर शूलपाणे ईशान चापासिधर प्रवीर। वृषाधिरूढः सगणः सहायो ममाध्वरं पाहि नमोनमस्ते। अत्रापि 'यज्ञेश्वर' इत्यस्य स्थाने पुस्तकान्तरे 'सर्वेश्वर' इति पाठ उपलभ्यते। २. रक्षोनगेन्द्रामरलोकसार्द्धम्। ३. लोकेन। ४. सर्वेमारवाश्च मे।

कुण्डलानि च हैमानि सूत्राणि कटकानि च। तथाङ्गुलिपवित्राणि वासांसि कुसुमानि च ॥६६
द्विगुणं गुरवे दद्याद् भूषणाच्छादनादिकम्। आधारावाज्यभागौ तु पूर्वं हुत्वा विचक्षणः ॥६७
प्रणवादिस्वनाम्ना च स्वाहान्तो होम उच्यते। होमः सुराणां कर्तव्यो ये चैवात्र प्रतिष्ठिताः ॥६८
ग्रहाणां लोकपालानां शिवकेशवयोस्तथा। वनस्पतिभ्यो ब्रह्मणे होमः कार्यो यथेच्छया ॥६९
ततो मङ्गलशब्देन स्थापितो वेदमङ्गलैः[1]। त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥७०
शुक्लमाल्याम्बरो[2] भूत्वा तां तुलामभिमन्त्रयेत्। नमस्ते सर्वदेवानां शक्तिस्त्वं सत्यमास्थिता[3] ॥७१
साक्षिभूता जगद्धात्रि निर्मिता विश्वयोनिना। एकतः सर्वसत्यानि[4] तथानृतशतानि च ॥७२
धर्माधर्मभृतां[5] मध्ये स्थापितासि जगद्धिते। त्वं तुले सर्वभूतानां[6] प्रमाणमिह कीर्तिता ॥७३
मां तोलयन्ती संसारादुद्धरात्र नमोस्तुते। योऽसौ तत्त्वाधिपो देवः पुरुषः पञ्चविंशकः ॥७४
स एकोऽधिष्ठितो देवि त्वयि तस्मान्नमो नमः। नमो नमस्ते गोविन्द तुलापुरुषसंज्ञक ॥७५
त्वं हरे तारयस्वास्मानस्मात्संसारसागरात्[7]। पुण्यकालमथासाद्य कृत्वैवमधिवासनम् ॥७६
प्रणम्य परया भक्त्या तां तुलामारुहेद्बुधः। स खड्गचर्मकवची सर्वाभरणभूषितः ॥७७
धर्मराजमथादाय[8] हैमसूर्येण संयुतम्। कराभ्यां बद्धमुष्टिभ्यामास्ते पश्यन्हरेर्मुखम् ॥७८
वामे यमं तथा गृह्य दक्षिणे च रविं तथा। ततोऽपरे तुलाभागे न्यसेयुर्द्विजपुङ्गवाः ॥

अङ्गद, अंगूठी, वस्त्र और पुष्पों से भूषित करते हुए गुरु को भूषण वस्त्रादि दुगुने अर्पित करे। सर्वप्रथम 'आज्यभाग आधार' (घृत की आहुति) प्रदान करते हुए 'ओंकार पूर्वक नामों के अन्त में स्वाहापद जोड़ कर वहाँ प्रतिष्ठित देवों के निमित्त हवन करें। तदुपरान्त गृह, लोकपाल, शिव, विष्णु, वनस्पतिगण, और ब्रह्मा को यथेच्छ आहुति अर्पित करें। पश्चात् पुष्पाञ्जलि समेत शुक्ल वस्त्र, माला धारण किये यजमान मांगलिक शब्दों (वेदमंत्रों के उच्चारण पूर्वक तीन प्रदक्षिणा के उपरांत तुला अभिमन्त्रित करे। जगद्धात्रि! तुम्हें नमस्कार है, तू समस्त देवों की शक्ति हो, सत्य में ही तुम्हारी स्थिति है, साक्षी रूप, हो, उसी हेतु विश्वयोनि ब्रह्मा ने तुम्हारा निर्माण किया है, तुम्हारे एक ओर सर्वसत्य और दूसरी ओर सैकड़ों असत्य रहते हैं इस लिए धर्माधर्म के मध्य तुम्हारी स्थिति होती है। जगद्धिते! तुले! तू समस्त प्राणियों के प्रमाण रूप हो मुझे तौलती हुई तू इस संसार से मेरा उद्धार करो, मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ, क्योंकि पच्चीस तत्व में अधिष्ठित रहने वाला यही एक पुरुष देव तुम्हारे ऊपर स्थित है, अतः तुम्हें बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ। तुला पुरुष नामक गोविन्द! तुम्हें बार-बार नमस्कार है, इस संसार सागर से मुझे तारने की कृपा करें। इस प्रकार किसी पुण्य काल में भक्तिपूर्वक अधिवासन करने के अनन्तर प्रणाम पूर्वक विद्वान् को तुलारोहण करना चाहिए। जो खड्ग, चर्म, और कवच धारण किये सर्वाभरण भूषित हो। सुवर्ण की सूर्य प्रतिमा समेत धर्मराज को लिए दोनों हाथों की मुठ्ठियाँ बाँधे सम्मुख विष्णु मुख का दर्शन करते हुए उस पर आसीन होना चाहिए।६४-७८। द्विजपुङ्गवों को चाहिए कि बायें

---

१. देवमङ्गलैः, वेदपुङ्गवैः। २. शुक्लमाल्यधरो भूत्वा। ३. सर्वम्। ४. सर्वसत्त्वानि। ५. धर्माधर्मकृतमा्। ६. सर्वदेवानाम्। ७. संसारकर्दमात्। ८. समादाय।

साम्यादभ्यधिकं यावत्कांञ्चनं चातिनिर्लम् ॥७९
पुष्टिकामस्तु कुर्वीत भूमिसंस्थं नरेश्वर । क्षणमात्रं ततः स्थित्वा पुनरेतदुदीरयेत् ॥८०
नमस्ते सर्वभूतानां साक्षिभूते सनातने । पितामहेन देवि त्वं निर्मिता परमेष्ठिना ॥८१
त्वयोद्धृतं[१] जगत्सर्वं सहस्थावरजङ्गमम् । सर्वभूतात्मभूतस्थे नमस्ते विश्वधारिणि ॥८२
ततोऽवतीर्य गुरवे सर्वमर्द्धं निवेदयेत् । ऋत्विगभ्योऽपरमर्द्धं च दद्यादुदकपूर्वकम् ॥८३
प्राप्त तेषामनुज्ञां वा तथान्येभ्योऽपि दापयेत् । दीनानाथविशिष्टादीन्पूरयेद्ब्राह्मणैः सह ॥८४
न चिरं धारयेद्गेहे हेमसम्प्रोक्षितं[२] बुधः । तिष्ठद्भयावहं यस्मात्कष्टव्याधिकरं[३] भवेत् ॥८५
शीघ्रं परस्वीकरणाच्छ्रियं प्राप्नोत्यनुत्तमाम् । अनेनैव विधानेन केचिद्रौप्यमयं तथा ॥८६
कर्पूरेण तथेच्छन्ति केचिद्ब्राह्मणपुङ्गवाः । तथासिततृतीयायां नार्यः सौभाग्यवर्धिताः[४] ॥८७
कुंकुमेन प्रयच्छन्ति लवणेन गुडेन च । तत्र मन्त्रा न होमो वा एवमेव प्रदापयेत् ॥८८
विधिनानेन यो दद्याद्दानमेतत्समाहितः । तस्य पुण्यफलं राजञ्छृणुष्व गदतो मम ॥८९
विमानवरमास्थाय नारी वा पुरुषोऽपि वा । अप्सरोगणसंकीर्णं गन्धर्वनगरोपमम् ॥९०
नानावृक्षाकुलं रम्यं नानागन्धाधिवासितम् । अनेकरत्नविद्धांगं मुक्तादामावलम्बितम् ॥९१

ओर यम और दाहिनी ओर सूर्य को रखते हुए तुला के अपरभाग में समता से अधिक भाग निर्मल सुवर्ण रखें। नरेश्वर! पुष्टि कामनया उस सुवर्ण वाले तुला को भूमिस्थ ही रखना चाहिए। पुनः उस पर क्षण मात्र स्थित रहकर इस प्रकार अभ्यर्थना करे—देवि! तुम समस्त प्राणियों की साक्षी रूप और सनातन हो। परमेष्ठी पितामह ने तुम्हारा निर्माण किया है अतः तुम्हें नमस्कार है। स्थावर जङ्गम (चराचर) समस्त जगत् का तुमने उद्धार किया है। विश्वधारिणी! तू समस्त प्राणियों को आत्मा में सदैव स्थित रहती हो अतः तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ। पश्चात् उस घर से उतर कर समस्त का अर्द्ध भाग गुरु को और शेष अर्द्ध भाग जल समेत ऋत्विजों को भी दिया जा सकता है। दीन, अनाथ आदि की भी ब्राह्मणों के साथ पूजा (सुसम्पन्न) करनी चाहिए। विद्वान् को चाहिए कि उस समस्त सुवर्ण दान चिरकाल तक अपने घर में न रखें क्योंकि उसके रखने से भय, कष्ट आदि व्याधियाँ उत्पन्न होने लगती हैं। इसलिए उस पराये धन को शीघ्र ही उसके स्वामी को अर्पित करना चाहिए। इससे उसे उत्तम श्री प्राप्त होती है। किन्हीं ब्राह्मणों का मत है कि इस विधान द्वारा चाँदी या कपूर का भी तुलादान करें। कृष्ण पक्ष की तृतीया में दान करने वाली स्त्रियों का सौभाग्यवर्द्धन होता है।७९-८७। कुंकुम लवण या गुड का तुला दान करते समय मंत्र और हवन कर्म की आवश्यकता नहीं होती है। राजन्! इस विधान द्वारा इस दान कर्म के सुसम्पन्न करने जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो! दानी स्त्री या पुरुष ऐसे उत्तम विमान पर सुशोभित होकर, जो गन्धर्व नगर के समान अप्सराओं से आच्छन्न रहता है, अनेक भाँति के रमणीयक वृक्ष समूहों से भूषित, अनेक गंधों से अधिवासित रहता है, उसके प्रत्येक अंगों में अनेक भाँति के रत्न विभूषित रहते हैं, मोतियों के गुच्छे लटकते रहते हैं, संकीर्ण शयनासन और पताकाओं से

---

१. धृतम्। २. समस्तं प्रोक्षितं बुधः। ३. क्षोभव्याधिकरं भवेत्। ४. सौभाग्यदर्शिताः।

शयनासनसंकीर्णं पताकाभिरलंकृतम् । घण्टाशतरवोद्घुष्टं चामरव्यजनान्वितम् ।।९२
सर्वर्तुसुखदं[१] रम्यं सर्वदुःखविवर्जितम् । इत्थं विमानमारुह्य गच्छेत्सूर्यसलोकताम् ।।९३
[२]मित्वा तत्र राजेन्द्र कल्पमेकं निरामयः[३] । विष्णुलोके तथा कल्पं शिवलोके[४] तथैव च ।।९४
विश्वेषां चैव देवानां देवराजपुरे तथा । पुरे च[५] धर्मराजस्य वरुणस्य तथैव च ।।९५
धनदस्य पुरे स्थित्वा कल्पकोटिशतं नरः । पुनर्मानुषमभ्येत्य[६] राजा भवति धार्मिकः ।।९६
यज्वादानपतिर्धीमाञ्छत्रुपक्षक्षयंकरः[७] । यश्चैतच्छृणुयाद्भक्त्या महादानानुकीर्तनम् ।।९७
सोऽपि मुच्येत पापेन त्रिविधेन न संशयः ।।९८

ब्रह्मेशकेशवपरोऽस्ति न पूजनीयो नैवाश्वमेधसदृशः क्रतुरस्ति कश्चित् ।
गङ्गासमं त्रिभुवनेऽपि न तीर्थमस्ति दानं तुला पुरुषतुल्यमिहास्ति नान्यत् ।।९९

इति श्रीभविष्ये[८]उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
तुलापुरुषदानविधिवर्णनं नाम पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७५

अलंकृत रहता है, इसमें सैकड़ों घंटों की ध्वनि होती रहती है, चामर, व्यञ्जन चलते रहते हैं, समस्त ऋतुओं में सुखप्रद रम्य और समस्त दुःखों से वर्जित रहता है। (ऐसे उत्तम विमान द्वारा) सूर्य लोक की यात्रा करता है। राजेन्द्र! नीरोग रहकर कल्प पर्यन्त वहाँ रमण करने के अनन्तर विष्णु शिव के लोक में भी कल्प पर्यन्त निवास करता है। अनन्तर विश्वेदेव, इन्द्रलोक, धर्मराज की पुरी, वरुण तथा कुबेर के लोक में सौ कोटि कल्प सुखानुभव करने के उपरान्त पुनः मानुषकुल में जन्म ग्रहण कर परम धार्मिक राजा होता है, जो यज्ञकर्ता, दानपति, धीमान् और शत्रुओं का विनाशक होता है। इस महादान के आख्यान को भक्तिपूर्वक सुनने वाला भी अपने त्रिविध पापों से मुक्त होता है इसमें संशय नहीं। क्योंकि तीनो लोक में ब्रह्मा, शिव और विष्णु से अन्य कोई पूजनीय नहीं है, अश्वमेध के समान कोई यज्ञ नहीं है, गङ्गा के समान कोई तीर्थ और तुला पुरुष दान के समान कोई दान नहीं है।८८-९९

श्रीभविष्य महापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
तुलापुरुष दानविधि वर्णन नामक एक सौ पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।१७५।

---

१. सर्वदासु खदम्। २. गमित्वा। ३. निरामयम्। ४. वसूनां भवनेऽप्यथ। ५. वै। ६. अप्येत्य। ७. यज्ञादानपतिर्धीमान्। ८. इति श्रीभविष्ये आदित्यवारकल्पे।

अथ षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

हिरण्यगर्भदानव्रतवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

भगवन्सर्वभूतेश[१] सर्वभूतनमस्कृत । अनुग्रहाय लोकानां कथयस्व[२] ममापरम् ।।१
त्वत्तुल्यो जायते येन आयुषा यशसा[३] श्रिया । तन्मे कथय देवेश दानं व्रतमथापि वा ।।२

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि तव लोकहितेच्छया । येनोपायेन जायन्ते मत्तुल्या मानवा भुवि ।।३
न व्रतैर्नोपवासैश्च[४] न तीर्थगमनैरपि । महापथा[५]दिमरणैर्न यज्ञैर्न श्रुतेन च ।।४
प्राप्यते मम लोकोऽयं दुष्प्राप्यस्त्रिदशैरपि । पार्थस्नेहान्महाभाग प्रवक्ष्यामि हितं तव ।।५
गोब्राह्मणार्थे मरणं प्राप्तं येन सुमेधसा । प्रयागेऽनशनं वापि पूजितो[६] वाथ शङ्करः ।।६
प्रयाति [७]ब्रह्मसालोक्यं श्रुतिरेषा सनातनी । येन मत्समतां याति तत्ते वक्ष्याम्यतः परम् ।।७
दानं हिरण्यगर्भाख्यं कथ्यमानं निबोध[८] मे । अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णमिह पठ्यते[९] ।।८
पवित्रं सर्वभूतानां[१०] पावनं परमं महत् । पर्यायनाम तस्योक्तं हिरण्यं सार्वलौकिकम्[११] ।।९

अध्याय १७६

सुवर्णदान का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! आप समस्त प्राणियों के अधीश्वर हैं सम्पूर्ण प्राणी आप को नमस्कार करते हैं अतः लोगों के अनुग्रहार्थ आप कोई अन्य विषय बताने की कृपा करें। देवेश ! जिस दान अथवा व्रत द्वारा आयु, यश और श्री में आप के समान प्राणी बन सके वह मुझे बतायें।१-२

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! जिस उपाय द्वारा इस भूतल में मनुष्य मेरे समान हो सकता है, मैं उसे लोकहितार्थ तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ! महाभाग पार्थ ! व्रत, उपवास, तीर्थ यात्रा, महापथादि (महातीर्थादि) में मरण, यज्ञ एवं वेदाध्ययन द्वारा मेरे लोक की प्राप्ति नहीं हो सकती है और वह देवों के लिए दुर्लभ है, किन्तु तुम्हारे स्नेह वश मैं उसे बता रहा हूँ। यद्यपि गौ, ब्राह्मण के उपकारार्थ मरण, प्रयाग में अनशन या शंकर जी अर्चना जिस विद्वान् ने की है, उसे ब्रह्मसालोक्य मुक्ति प्राप्ति होती है, ऐसा सनातनी श्रुति का कथन है तथापि जिससे मेरी समता प्राप्त होती है वह अन्य हैं, उसे बता रहा हूँ। हिरण्य नामक दान की व्याख्या मैं कर रहा हूँ सुनो ! अग्नि का सर्व प्रथम सन्तान सुवर्ण कहा जाता है, जो समस्त प्राणियों में महान् परमपवित्र है। उसका दूसरा सार्वलौकिक नाम हिरण्य है।३-९। वही जल के गर्भ

---

१. सर्वलोकेश सर्वलोकनमस्कृत । २. कथय त्वं ममाग्रतः। ३. वपुषा। ४. तु। ५. महातीर्थादिमरणैः। ६. पूज्यते । ७. सब्रह्मलोकम् । ८. मया शृणु । ९. पश्यति—इत्यशुद्धः । १०. सर्वधातूनाम् । ११. सार्वकामिकम् ।

तदपां गर्भमाविश्य पुनर्जातं तु भूतले । यश्च तद्ब्राह्मणे दद्यान्मतुल्यो जायते हि सः ॥१०

युधिष्ठिर उवाच

विधानं तस्य देवेश कथयस्व सनातन । यत्प्रमाणं यथाचैतद्दातव्यं[1] परमेश्वर ॥११

श्रीकृष्ण उवाच

पर्वकाले[2] प्रदातव्यं दानमेतन्महामते । अयने विषुवे चैव ग्रहणे शशिसूर्ययोः ॥१२
व्यतीपातेऽथ कार्तिक्यां जन्मर्क्षे वा नरोत्तम । दुःस्वप्नदर्शने चैव ग्रहपीडासु चैव हि ॥१३
प्रयागे नैमिषे चैव कुरुक्षेत्रे तथार्बुदे । गङ्गायां यमुनायां च सिन्धुसागरसङ्गमे ॥१४
पुण्यनद्यश्च दानेऽस्मिन्प्रशस्ताः स्युर्न संशयः । यत्र वा रोचते राजन्गृहे देवकुलेऽथवा ॥१५
आरामे वा तडागे वा शुचौ देशे विधानतः । तत्र भूषोधनं कुर्यात्प्रागुदक्प्रवणं शुभम् ॥१६
हस्ताद्द्वादशकर्तव्यं मण्डपं तु सुशोभनम् । स्तम्भैर्मनोहरैर्युक्तमार्द्रशाखाभिरन्वितम् ॥१७
तन्मध्ये कुर्यात्पञ्चहस्तामलंकृतम् । वितानमुपरिष्टाच्च पुष्पमालावलम्बितम् ॥१८
हिरण्यगर्भं तन्मध्ये प्रथमेऽहनि कल्पयेत् । तस्य प्रमाणं वक्ष्यामि रूपं वै स्थण्डिलोद्भवम् ॥१९
शिल्पिनं पूजयेत्पूर्वं वासोभिर्भूषणैस्तथा । ब्राह्मणान्वाचयेत्पश्चात्ततः कर्मसमारभेत्[3] ॥२०
सुवर्णेन सुशुद्धेन[4] शक्तितः कारयेद्बुधः । अंगुलानि चतुःषष्टिर्दैर्घ्यं च परिकीर्तितम्[5] ॥२१

में प्रविष्ट होकर पुनः भूतल पर (सुवर्ण रूप में) उत्पन्न हुआ है उसे ब्राह्मण को अर्पित करने वाला मनुष्य मेरे तुल्य होता है ।१०

युधिष्ठिर बोले—देवेश, सनातन एवं परमेश्वर ! उसका विधान और जितने प्रमाण में वह दान किया जाता हो, बताने की कृपा करें ।११

श्रीकृष्ण बोले—महामते ! यह दान किसी पर्वकाल, अयन (उत्तरायण-दक्षिणायन), विषुव, चन्द्र सूर्य ग्रहण, व्यतीपात, कार्तिकी पूर्णिमा, जनम नक्षत्र, दुःस्वप्न दर्शन अथवा ग्रह पीड़ित होने पर प्रयाग, नैमिष, कुरुक्षेत्र, अर्बुद, गंगा, यमुना या सिंधु सागर संगम स्थल में करना चाहिए । इसी के दान द्वारा ये पुण्य नदियाँ प्रशस्त हुई हैं इसमें संदेह नहीं । राजन् ! अपने घर, देवालय उपवन, सरोवर अथवा जहाँ कहीं रुचिकर हो, उसी पवित्र देश में सविधान प्रथम भूमिशोधन करके बारह हाथ का सुशोभन मण्डप बनाये, जो पूर्वोत्तर की ओर निम्न मनोहर स्तम्भों तथा हरी शाखाओं से विभूषित हो उसके मध्य में पाँच हाथ की अलंकृत वेदी का निर्माण करके उसके ऊपर बितान (चँदोवा) लगाये और पुरुष महात्माओं से विभूषित करे । प्रथम दिन उसके मध्य भाग में हिरण्यगर्भ की कल्पना करें । मैं उनका प्रमाण और रूप बता रहा हूँ, जो स्थण्डिल (ऊँची भूमि) से उत्पन्न हुए हैं । सर्वप्रथम यजमान को चाहिए वस्त्राभूषणों द्वारा शिल्पी (राजगीर) की अर्चना करके ब्राह्मण द्वारा स्वस्तिवाचन कराये अनन्तर यज्ञारम्भ करें । विद्वान् को चाहिए यथाशक्ति सुशुद्ध सुवर्ण द्वारा चौंसठ अङ्गुल की प्रतिमा बनाये ।१२-२१। उसके चौथाई भाग

---

१. च दातव्यं कथ्यताम् । २. सर्वकाले । ३. यज्ञम् । ४. सुसिद्धेन । ५. परिकल्पयेत् ।

त्रिभागहीनं वदने मूले तस्यार्द्धविस्तरम् । वर्तुलं कर्णिकाकारं चारुग्रन्थिविवर्जितम् ॥२२
पिधानमुपरिष्टाच्च कर्तव्यं चांगुलाधिकम्[१] । [२]अस्त्राणि दश कुर्वीत नालं सूर्यं च काञ्चनम् ॥२३
दात्रं सपट्टिकं चैव सर्वोपस्करणान्वितम्[३] । सूचीक्षुरश्च हैमानि तत्सर्वं परिकल्पयेत् ॥२४
पार्श्वतः स्थापयेत्तस्य हेमदण्डकमण्डलू । छत्रिकापादुकायुग्मं वज्रवैडूर्यमण्डितम् ॥२५
एवं लक्षणसंयुक्तं कृत्वा गर्भं विचक्षणः । ब्रह्मघोषेण महता शङ्खतूर्यरवेण च ॥२६
हस्तिना शकटेनाथ राजन्ब्रह्मरथेन वा । आनयेन्मण्डपं कृत्वा प्रदक्षिणमतन्द्रितः ॥२७
तिलद्रोणोपरिगतं वेदीमध्येऽधिवासयेत् । समालभ्य पुनः सर्वं कुंकुमेन सुगन्धिना ॥२८
कौशेयवाससी शुभ्रे ततस्तं परिधापयेत् । समन्तात्पुष्पमालाभिः पूजयेद्भक्तितः सुधीः ॥२९
धूपैं सुधूपितं[४] कृत्वा मन्त्रमेतमुदीरयेत् । भूर्लोकप्रमुखालोकास्तव गर्भे व्यवस्थिताः ॥३०
ब्रह्मादयस्तथा देवा नमस्ते भुवनोद्भव । नमस्ते भुवनाधार नमस्ते[५] भुवनेश्वर ॥३१
नमो हिरण्यगर्भाय गर्भे यस्य पितामहः । एवं सम्पूजयित्वा तु गतां[६] रात्रिमधिवासयेत् ॥३२
वेद्याश्चतुर्दिशं चैव कुण्डानि परिकल्पयेत् । चत्वारि चतुरस्राणि तेषु होमो विधीयते ॥३३
चतुश्चारणिकास्तत्र ब्राह्मणा मन्त्रपारगाः । होमं कुर्युर्जितात्मनो[७] मौनिनः सर्व एव ते ॥३४
सर्वाभरणसम्पन्नाः सर्वे चाहत वाससः । ताम्रपात्रद्वयोपेता गन्धपुष्पादिपूजिताः ॥३५

से वदन (मुख) की रचना करे, जो मूल भाग के अर्द्ध भाग में विस्तृत वर्तुल (गोलाकार) हो। कर्णिका कार और चारु ग्रन्थियों से रहित उस (प्रतिमा) को ढाँकने के लिए दो अङ्गुल अधिक प्रमाण का एक विधान बना कर दश अस्त्रों—नाल, सूर्य, कांचन, पट्टी और समस्त साधनों समेत दान, सूची (सूई), छुरा का सुवर्ण द्वारा निर्माण कराये। उसके पार्श्व भाग में हेमदण्ड कमण्डलु, और छत्र वज्र वैदूर्य भूषित चरण पादुका स्थापित करे। राजन्! इस प्रकार के लक्षण युक्त उस गर्भ को प्रदक्षिणा पूर्वक उच्चस्वरेण ब्रह्म घोष, शंख, तुरुही की ध्वनि करते हुए हांथी, गाड़ी अथवा ब्राह्म रथ द्वारा मण्डप में लाये। द्रोण प्रमाण तिल के उपर वेदी के मध्भाग में अधिवास कराते हुए कुंकुम और सुगन्ध के लेप करके स्वच्छ दो रेशमी वस्त्र से ढाँक दे उसके चारों ओर पुष्प माला से भूषित करते हुए भक्तिपूर्वक धूप से धूपित करने के अनन्तर निम्नलिखित मंत्रों से अभ्यर्चन करे—भुवनोद्भव! भूलोक आदि प्रमुख लोक और ब्रह्मादि देवगण तुम्हारे ही भीतर सुव्यवस्थित हैं अतः आप को नमस्कार है, भुवनाधार को नमस्कार है, अतः आप को नमस्कार है।२२-३१। जिसके गर्भ में पितामह (ब्रह्मा) स्थित हैं उन हिरण्यगर्भ को नमस्कार है, इस भाँति पूजन पूर्वक उस रात्रि अधिवास कराये। वेदी के चारों ओर चार चौकोर कुण्ड का निर्माण कर उसमें हवन करे। चार चारणिक ब्राह्मण जो मंत्र पारगामी और पूज्य संयमी हों, मौन होकर हवन कार्य सम्पन्न करें। उन सभी ब्राह्मणों को सर्वाभरण भूषित और नवीन वस्त्र से सुसज्जित रहना चाहिए। गंध पुष्पादि से पूजित करते हुए उन्हें दो-दो ताम्र पात्र भी अर्पित करना चाहए।३२-३५। वेदी के पूर्व उत्तर

---

१. ह्यङ्गुलाधिकम्, द्वयङ्गुलाधिकम्। २. अन्त्राणि। ३. सर्वोपकरणानि च। ४. संपूजितं राजन्। ५. समस्तभुवनेश्वर। ६. रात्रौ तमधिवासयेत्। ७. यतात्मानः।

वेद्याः पूर्वोत्तरे भागे ग्रहवेदिं प्रकल्पयेत् । तत्र ग्रहांल्लोकपालान्ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥३६
पूजयेत्स्वर्णघटितान्पुष्पधूपविलेपनैः[1] । पताकाभिरलंकृत्य मण्डपं तोरणैस्तथा ॥३७
कुम्भद्वयं च द्वारेषु स्थापयेद्रत्नसंयुतम् । तुलापुरुषमन्त्रैश्च लोकपालबलिं क्षिपेत् ॥३८
पालाश्यः समिधस्तत्र प्रशस्ता होमकर्मणि[2] । चरुश्चैवेन्द्रदैव्यस्तिला गव्यं घृतं तथा ॥३९
स्वलिंगैर्होमयेत्पूर्वं मन्त्रैर्व्याहृतिभिः पुमान् । अयुते द्वे च होमस्य संख्यामाहुर्मनीषिणः ॥४०
यजमानस्ततः स्नात्वा शुक्लाम्बरधरः शुचिः । भक्त्या हिरण्यगर्भं च पर्वकाले समर्चयेत् ॥४१
नमो हिरण्यगर्भाय विश्वगर्भाय[3] वै नमः । चराचरस्य जगतो गृहभूताय ते नमः ॥४२
मात्राहं जनितः पूर्वं मत्यधर्मासुरोत्तम । त्वद्गर्भसम्भवादद्य दिव्यदेहो भवाम्यहम् ॥४३
इत्युच्चार्य स्वयंभक्त्या कृत्वा चैव प्रदक्षिणाम् । क्षीराज्यदधिसम्पूर्णं तद्गर्भं प्रविशेद्बुधः ॥४४
सौवर्णं धर्मराजं तु सव्ये कृत्वा करे ततः । भास्करं दक्षिणे चैव[4] मुष्टिं बद्ध्वा प्रयत्नतः ॥४५
जान्वोरन्तरतश्चैव शिरः कृत्वा समाहितः । उच्छ्वासपञ्चकं तिष्ठेच्चेतसा चिंतयञ्छिवम् ॥४६
गर्भाधानं पुंसवनंसीमन्तोन्नयनं तथा । कुर्युर्हिरण्यगर्भस्य ततस्ते द्विजपुङ्गवाः ॥४७
जातकर्मादिकाः कुर्युः क्रियाः षोडश चापराः । तत उत्थाय निःसृत्य पुनः कुर्यात्प्रदक्षिणाम् ॥४८
तावन्मुखं न पश्येत कस्यचिन्नृपसत्तम । सौवर्णा पृथिवी[5] वायन्नदृष्टा स्पष्टचक्षुषा[6] ॥४९
ततः स्नानं प्रकुर्वीत ब्रह्मघोषपुरःसरम् । अष्टौ द्विजाः सुवर्णांगा सौवर्णैः कलशैः शुभैः ॥५०

(ईशान कोण) में ग्रहों की बनाकर उस पर ग्रहगण, लोकपाल, ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की सुवर्ण प्रतिमा की अर्चना पुष्प, धूप एवं अनुलेपादि द्वारा सुसम्पन्न करते हुए पताकाओं और तोरणों से अलङ्कृत उस मण्डप में प्रत्येक द्वार पर रत्नगर्भित दोदो कलशों की स्थापना करे। तुला पुरुष के मंत्रों द्वारा लोक पालों को बलि प्रदान करने के अनन्तर उस हवन कर्म में प्रशस्त पलाश की समिधा, इन्द्र देवता वाली चरु, तिल, गो घृत को एकत्र कर प्रथम नामलिंगात्मक मंत्र और व्याहृतियों द्वारा आहुति प्रदान करें। मनीषियों ने बीस सहस्र संख्या की आहुति इस हवन कर्म में समर्पित करना बताया है। अनन्तर यजमान पर्व काल में भक्तिपूर्वक स्नान, शुक्लाम्बर—हिरण्यगर्भ को नमस्कार है, विश्वगर्भ को नमस्कार है और चराचर जगत् के गृह भूत को नमस्कार है। सुरोत्तम ! सर्वप्रथम माता द्वारा मैं मनुष्यधर्मा होकर उत्पन्न हुआ था किन्तु आज पुनः तुम्हारे गर्भ से सम्भूत होकर मैं दिव्य देह हो रहा हूँ। ऐसा कहते हुए भक्ति श्रद्धा सम्पन्न यजमान प्रदक्षिणा पूर्वक दूध, दही, घी पूर्ण उस गर्भ में प्रवेश करे।३६-४४। धर्मराज की सुवर्ण प्रतिमा बायें हांथ और सूर्य की सुवर्ण प्रतिमा दाहिने हाथ में मुट्ठी बांधे, जानु (घुटने) के भीतर शिर गले और पाँचश्वास तक शिव (कल्याण) चिंतन करते हुए ठहरा रहे। अनन्तर श्रेष्ठ ब्राह्मणों को हिरण्यगर्भ का गर्भाधान, पुंसवन, सीमनोत्पन्नादि स्नेह संस्कार सुसम्पन्न करना चाहिए। नृपसत्तम ! अनन्तर उठकर उसमें से निकलकर प्रदक्षिणा करे।४५-४९। और जब तक दक्षिणा की सुवर्ण प्रतिमा का स्पष्ट दर्शन न हो तब तक किसी का मुख न देखे। पश्चात् ब्रह्मघोष पूर्वक स्नान करने के अनन्तर आठ ब्राह्मण, जो सुवर्ण

---

१. पुष्पवस्त्रानुलेपनैः। २. यज्ञकर्मणि। ३. ब्रह्मगर्भाय। ४. भागे। ५. सूर्यकिरणसंपर्कादापीतवर्णा पृथिवी सौवर्णा—सुवर्णमयी च। ६. स्पष्टचेतसा।

रौप्यैरोदुम्बरैर्वापि[१] मृण्मयैर्वा सुशोभनेः । दध्यक्षतविचित्राङ्गैराम्रपल्लवशोभितैः ।।५१
पुष्पैरावेष्टितग्रीवैरव्रणैः कलशैर्दृढैः[२] । चतुष्कमध्ये संस्थाप्य पीठमव्रणमुत्तमम् ।।५२
तत्र स्थाप्य महाभाग यजमानं द्विजोत्तमाः । देवस्य त्वेति मन्त्रेण कुर्युरस्याभिषेचनम् ।।५३
अद्य जातस्य तेऽङ्गानि[३] अभिषेक्ष्यामहे वयम् । दिव्येनानेन वपुषा चिरंजीवसुखी[४] भव ।।५४
एवं कृताभिषेकस्तु यजमानः समाहितः । दद्याद्धिरण्यगर्भं तं सोदकेनैव पाणिना ।।५५
तान्सम्पूज्य च भावेन बहुभ्यो वा तदाज्ञया । यज्ञोपकरणं सर्वं गुरवे विनिवेदयेत् ।।५६
पादुकोपानहौ चैव च्छत्रचामरभाजनम् । अन्येषां चैव विप्राणां ये च तत्र सभासदः ।।५७
तेषां चैव प्रदातव्यं दानं चात्र विशेषतः । दीनांधकृपणानां च दातव्यं सार्वकामिकम् ।।५८
अन्नसत्रं च कर्तव्यं यावद्दानपरिग्रहः । अनेन विधिना यस्तु दानमेतत्प्रयच्छति ।।५९
स कुलं तारयेत्सर्वं देवलोकं स गच्छति । विमानवरमारुह्य पञ्चयोजनविस्तृतम् ।।६०
वापीकूपतडागाद्यैर्जलस्थानैरलंकृतम् । उद्यानशतसंस्थानं पद्माकरनिषेवितम् ।।६१
प्रासादशतसंकीर्णं वरस्त्रीशतसेवितम् । वीणावेणुमृदङ्गानां शब्दैरापूरितं महत् ।।६२
भूमयो यत्र राजेन्द्र दिव्या मणिमयाः शुभाः । वेदिकाभिर्विचित्राभिः शोभितं भास्करप्रभम् ।।६३
धृतं स्तम्भसहस्रेण सुकृतं विश्वकर्मणा । पताकाभिर्विचित्राभिर्वज्रैश्च समलंकृतम् ।।६४
तदारुह्य विमानग्र्यं विद्याधरगणैर्युतम् । स याति लोकं शक्रस्य शक्रेण सह मोदते ।।६५

भूषित हों, सुवर्ण, चाँदी, ताँबा ये मिट्टी के कलशों द्वारा, जो दधि, अक्षत से चित्र विचित्र, आम के पल्लव से भूषित, कण्ठ में पुष्प माला, व्रण रहित एवं दृढ़ हो चतुष्क के मध्य व्रण रहित पीठासन पर स्थित यजमान का 'देवस्य त्वेति' मंत्रोच्चार पूर्वक अभिषेक करते हुए कहें कि—उत्पन्न हुए तुम्हारे अंगों का हम लोग अभिषेक कर रहे हैं अतः इस दिव्य शरीर द्वारा चिरजीवन प्राप्त करते हुए सुखी रहो । इस भाँति ध्यान मग्न यजमान के अभिषेक हो जाने पर यजमान जलपूर्ण पाणि द्वारा हिरण्यगर्भ का दान करे । उन ऋत्विजों की प्रेमार्चा करते हुए उन्हें या उनकी आज्ञा से अनेकों को वितरण अथवा यज्ञ का समस्त साधन गुरु को सादर समर्पित करे।५०-५६। चरणपादुका, उपानह्, छाता, चामर, पात्र, अन्य विप्र या सभासदों को अर्पित करें । पुनः विशेषदान दीन, अंधे, कृपण आदि व्यक्तियों को यथेच्छ अन्न दान यज्ञ समाप्ति करता रहे । इस विधान द्वारा दान करने वाला मनुष्य समस्त कुल को तारते हुए पाँच योजन के विस्तृत एवं परमोत्तम विमान द्वारा उस देवलोक की यात्रा करता है, जो बावली, कूप, सरोवर आदि जलाशयों से अलंकृत, सैकड़ों उपवन और पद्माकर से सेवित, सैकड़ों प्रासाद (महलों के कोठे) से आच्छन्न है एवं जहाँ सैकड़ों दिव्याङ्गनाएँ सेवा करने के लालायित रहती है, वीणा, वेणु, मृदङ्ग, की ध्वनियों का महान् कोलाहल आरम्भ रहता है । राजेन्द्र ! उसकी भूमि मणिमय, दिव्य एवं शुभ होती है, विचित्र वेदियों से सुशोभित तथा भास्कर के समान उसकी प्रभा है । विश्वकर्मा ने निर्माण के समय उसमें सैकड़ों स्तम्भ लगाये हैं, विचित्र पताकाओं और वज्रों से वह नितान्त विभूषित है । ऐसे परमोत्तम विमान पर बैठ कर विद्याधरगणों समेत इन्द्र लोक पहुँच कर इन्द्र के साथ वह आनन्दानुभव करता है।५७-६५। सौ मन्वन्तरों के

---

१. ताम्रमयैरित्यर्थः । २. गौरवर्णैर्नवैर्दृढैः । ३. मूर्ध्नि । ४. चिरञ्जीवी ।

मन्वन्तरशते जाते कर्मभूमौ प्रजायते । जम्बूद्वीपमशेषं[1] तु भुंक्ते दिव्यपराक्रमः ।।६६
धार्मिकः सत्यशीलश्च ब्रह्मण्यो गुरुवत्सलः । दश जन्मान्यसौ राजा जायते रोगवर्जितः[2] ।।६७
यस्त्विदं शृणुयाद्भक्त्या रहस्यं पापनाशनम् । सोऽपि वर्षशतं साग्रं सुरलोके महीयते ।।६८
गर्भं हिरण्यरचितं विधिवत्प्रविश्य संस्कारसंस्कृततनु पुनरेवतस्मात् ।
निःसृत्य[3] तद्द्विजवराय निवेद्य भक्त्या मार्तण्डवद्दिवि विराजति दिव्यदेहः ।।६९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
हिरण्यगर्भदानविधिवर्णनं नाम षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७६

अथ सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्माण्डदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अगस्त्येन पुरा गीतो दानानां विधिरुत्तमः । शृणु त्वं राजशार्दूल कथ्यमानं मयाधुना ।।१
येन दत्तेन राजेन्द्र सर्वं पापं व्यपोहति । मानसं वाचिकं वापि कायिकं च सुदुस्तरम् ।।२
मङ्गल्यं मङ्गलं पुण्यं सर्वदानेषु चोत्तमम् । धन्यं यशस्यमायुष्यं परलोकभयापहम्[4] ।।
ब्रह्माण्डं काञ्चनं कृत्वा सर्वलक्षणसंयुताम् ।।३

समान तक वहाँ सुखानुभव करने के पश्चात् वह इस कर्म भूमि में जन्म ग्रहण कर अपने दिव्य पराक्रम द्वारा निखिल जम्बूद्वीप का उपभोग करता है। दश जन्म तक धार्मिक सत्यशील, ब्रह्मतेजा, गुरु वत्सल एवं नीरोग राजा होता है। भक्तिपूर्वक इस रहस्य का श्रवण करने वाला भी पाप विनाश पूर्वक सौ वर्ष तक सुरलोक में पूजित होता है। इस प्रकार हिरण्य (सुवर्ण) रचित गर्भ में प्रविष्ट होकर पुनः (गर्भाधानादि) संस्कार सम्पन्न होकर निकलने पर वह मनुष्य भक्तिपूर्वक श्रेष्ठ ब्राह्मण को उसे अर्पित करने पर सूर्य की भाँति दिव्य देह प्राप्त कर सुशोभित होता है।६६-६९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
हिरण्यगर्भदान विधि वर्णन नामक एक सौ छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।१७६।

अध्याय १७७

सुवर्णनिर्मित ब्रह्माण्डदान का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—नृपशार्दूल! प्राचीन काल में अगस्त्य जी ने दानों का परमोत्तम विधान बताया है, मैं तुम्हें वही बता रहा हूँ, सुनो! राजन्! जिस विधान द्वारा दान देने पर कायिक, वाचिक और मानसिक तीनों भाँति के पाप विनष्ट होते हैं तथा मंगलों में परम मङ्गल, समस्त दानों में वह परमोत्तम धन्य, यश और आयुवर्द्धक तथा शत्रुओं को भयप्रद हैं। ब्रह्माण्ड की सर्वलक्षण सम्पन्न काञ्चन प्रतिमा

---

१. च। २. पापवर्जितः। ३. निर्गत्य। ४. परलोकभयावहम्, पाठे परलोकः शत्रुजनो बोध्यः।

देवासुरमनुष्यैश्च गन्धर्वोरगराक्षसैः । संयुक्तं च नदीभिश्च समुद्रैः पर्वतैस्तथा ।
विमानशतकोटीभिर्भूषितं चाप्सरोवरैः[1] ॥४
दिग्गाष्टकसंयुक्तं मध्यस्थितचतुर्मुखम् । शिवाच्युतार्कशिखरमुमालक्ष्मीसमन्वितम् ॥५
तस्यांगे कल्पयेद्राजन्भुवनानि चतुर्दश । वितस्तेरङ्गुलशतं यावदायामविस्तरम् ॥६
कुर्याद्विंशत्पलादूर्ध्वमासहस्राच्च भक्तितः । शकलद्वयसंयुक्तं पुटाकारं सुसंहितम् ॥७
शिल्पिना विहितं यस्माद्ब्राह्मणां सर्वकामदम् । अयने विषुवे चैव चन्द्रादित्यग्रहे तथा ॥८
अन्येष्वपि तु कालेषु श्रद्धावित्तसमन्वितः । पुष्पमण्डपिकां कृत्वा तत्र संस्थापयेद्बुधः ॥९
तिलद्रोणोपरिगतं कुङ्कुमक्षोदर्चर्चितम् । वासो युग्मेन संच्छाद्य पुष्पगन्धाधिवासितम् ॥१०
तस्य दिक्षु च सर्वासु पूर्णकुम्भांश्च विन्यसेत् । अष्टादशैव धान्यानि द्रोणमात्राण्यथाहरेत् ॥११
गृहे वा मण्डपे वापि स्थापयेत्तद्विचक्षणः । पादुकोपानहच्छत्रभाजनासनदर्पणैः ॥१२
संयुक्तं कारयेत्तत्र पयस्विन्या तथैव च । कारयेत्कुण्डमेकं तु हस्तमात्रं विधानतः ॥१३
चतुश्चारणिकास्तत्र होमं कुर्युर्द्विजोत्तमाः । सर्वाभरणसम्पन्नाः सुस्नाताहतवाससः ॥१४
प्रचरेयुर्द्विजास्तत्र उपाध्यायसमन्विताः । तथा पुरोहितश्चैव राजा षष्ठो विधीयते ॥१५
इतरेषां तु पञ्चैव कुपुर्यज्ञमतंद्रिताः । ग्रहयज्ञविधानेन ग्रहाणां यज्ञ इष्यते[2] ॥१६
ब्रह्मविष्णुशिवानां च तन्नाम्नी[3] जहुयात्तिलान् । अयुतं होमयेत्पश्चान्महाव्याहृतिभिर्नृप[4] ॥१७
रुद्रजापस्तु कर्तव्यस्तस्यैवानन्तरे द्विजैः । ततः सर्वसमाप्तौ तु स्नात्वा शुक्लाम्बरः शुचिः ॥१८

बनाये ।१-३। जिसमें देव, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, नदी, समुद्र, पर्वत, सैकड़ों उत्तम विमान, अप्सराएँ आठों दिग्गज, मध्य में ब्रह्मा, शिव, विष्णु, सूर्य शिखर में और उमालक्ष्मी आदि स्थित हों । राजन् ! उसके अंग में चौदहों भुवन की रचना करे । वह सौ अंगुल का लम्बा चौड़ा हो । उसकी रचना कम से कम बीस पल से सहस्र पल सुवर्ण तक की करनी चाहिए । उसके दो खण्ड (भाग) बनाते समय उसे उठाकर (गोलाकार) बनाये । इस भाँति शिल्पी द्वारा उस ब्रह्माण्ड की रचना कराये, जो समस्त कामनाओं को सफल करता है । पुनः किसी अयन, विषुप, चन्द्र सूर्य ग्रहण, या अन्य किसी पुण्य अवसर पर श्रद्धा भक्ति समेत उसे पुष्प मण्डप में स्थापित कर द्रोण प्रमाण तिल के ऊपर रखकर कुंकुम चन्दन चर्चित करे । दो वस्त्र से आच्छन्न कर पुष्प गन्ध से अधिवासित करते हुए उसके सभी दिशाओं में पूर्ण कलशों की स्थापना करे द्रोण प्रमाण अट्ठारह प्रकार के धान्यों को एकत्र कर घर या मण्डप में उस मूर्ति की स्थापना करे ।४-११½। चरणपादुका, उपानह, छत्र, पात्र, आसन, दर्पण, पयस्विनी गौ आदि के दान पूर्वक उसमें एक हाथ का विस्तृत कुण्ड बनाये, जिसमें चार चारणिक श्रेष्ठ ब्राह्मण समस्त भूषित एवं नवीन वस्त्र धारण कर हवन कार्य सम्पन्न करें। उस यज्ञ में उपाध्याय समेत चार अन्य ब्राह्मण, पुरोहित और छठां राजा रहता है। किन्तु पुत्र यज्ञ में पाँच ही यज्ञ कार्य करते हैं। ग्रहयज्ञ के विधान द्वारा ग्रहों की आहुति प्रदान करके ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव के लिए उनके नामों के उच्चारण करते हुए तिल की आहुति देनी चाहिए ।१२-१६½। नृप ! पश्चात् महाव्याहृतियों द्वारा दश सहस्र संख्या की आहुति अर्पित करते हुए बीच-बीच में

---

१. चाप्सरोवरैः । २. उच्यते । ३. तत्राज्यम् । ४. महाव्याधिहृतिर्भवेत् ।

ब्रह्माण्डं पूजयेद्भक्त्या गृहीतकुसुमाञ्जलिः । नमो जगत्प्रतिष्ठाय विश्वधाम्ने नमोऽस्तु ते ।।१९
वाङ्मयान्त निमग्नाय ब्रह्माण्ड शुभकृद्भव । ब्रह्माण्डोदरवर्तीनि यानि सत्त्वानि कानिचित् ।।२०
तानि सर्वाणि मे तुष्टिं प्रयच्छन्त्वतुलां[1] सदा । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च लोकपालास्तथा ग्रहाः ।।२१
नक्षत्राणि तथा नागा ऋषयो मरुतस्तथा । सर्वे भवन्तु सन्तुष्टाः[2] सप्तजन्मान्तराणि मे ।।२२
इत्युच्चार्य ततो दद्याद्ब्रह्माणं सर्वकामदम् । सदक्षिणं च तं कृत्वा वसु सम्पादयेद्द्विजान्[3] ।।२३
अनेन विधिना दत्त्वा यत्पुण्यं स्यान्नरोत्तम । तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि शृणुष्व वदतो मम[4] ।।२४
आसीदादियुगे राजा सुद्युम्नो[5] नाम भारत । नागायुतबलः श्रीमान्बहुभृत्यपरिच्छदः ।।२५
त्रिंशद्वर्षसहस्राणि[6] कृत्वा राज्यमकण्टकम् । ततः संस्थाप्य तनयं राजा राज्ये वनं ययौ ।।२६
प्रविश्य च वनं घोरं तपस्तीव्रं चचार ह । अध्यात्मगतितत्त्वज्ञः कर्मकाण्डं विसृज्य च ।।२७
कालेन महता राजा दिष्टान्तमगमत्पुरा । दिव्यं विमानमारुह्य नानावाद्यरवाकुलम्[7] ।।२८
अतीत्य शक्रलोकादीन्ब्रह्मलोकमितो गतः । तस्यासनं दिदेशाथ ब्रह्मासुरगणैर्वृतः[8] ।।२९
दिव्यं कनकचित्राङ्गं रत्नालंकृतविग्रहम् । एवं लोकवरे तस्मिन्रममाणो नृपोत्तम ।।३०
आस्ते चानुदिनं सोऽथ दिव्यभोगविवर्जितः । वसतस्तस्य राज्ञस्तु शरीरं परितप्यते ।।३१

ब्राह्मणों द्वारा रुद्र जाप होना चाहिए । सर्व की समाप्ति होने पर स्नान-शुक्लाम्बर धारण एवं पवित्रता पूर्ण यजमान भक्ति पूर्वक पुष्पाञ्जलि लेकर ब्रह्माण्ड की अर्चा करे—(अपने में) जगत् स्थापित करने वाले को नमस्कार है, विश्व गृह को नमस्कार है । ब्रह्माण्ड ! आप वाङ्मय के भीतर निमग्न हैं एवं आप का जन्म शुभ कारक है । और ब्रह्माण्ड के उदर में जितने सत्व हैं उसे समेत मुझे अतुलनीय तुष्टिप्रदान करने की कृपा करें । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, लोकपाल, ग्रह, नक्षत्र, नाग, ऋषि और मरुत गण आदि मेरे सात जन्म तक सन्तुष्ट रहें । इस प्रकार कहते हुए समस्त कामनाओं को सफलप्रद वह ब्रह्माण्ड धन दक्षिणा समेत किसी ब्राह्मण को अर्पित करे । नरोत्तम ! इस विधान द्वारा उसके दान करने जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, उस मैं बता रहा हूँ, सुनो ! १७-२४। भारत ! आदि युग में सुद्युम्न नामक एक राजा था, जो दश सहस्र हाथी के समान बलवान, श्रीमान्, एवं अनेक सेवक गणों से सम्पन्न था । तीस सहस्र वर्ष निष्कण्टक राज्य का सुखानुभव करने के उपरान्त राजा राज सिंहासन पर अपने पुत्र को प्रतिष्ठित कर स्वयं जंगल चले गये । वहाँ घोर वन में पहुँच कर राजा ने कठिन तप करना आरम्भ किया । अध्यात्म गति के तत्त्व का निपुण वेत्ता उस राजा ने कर्म—काण्ड का विसर्जन करते हुए बहुत दिनों के अनन्तर इस लोक का त्याग किया । अनेक भाँति के वाद्य ध्वनियों से भूषित उस उत्तम विमान पर बैठकर वह राजा इन्द्र लोक के ऊपर ब्रह्म लोक चला गया । वहाँ देवगणों समेत ब्रह्मा ने आसन प्रदान पूर्वक उस का स्वागत किया, जो दिव्य, सुवर्ण से चित्र विचित्र और रत्नों से अलंकृत था । नृपोत्तम ! इस प्रकार के उत्तम लोक में रमण करते हुए वह राजा अनुदिन दिव्य भोग से वञ्चित होने लागा । वहाँ रहते हुए भी राजा की शरीर संतप्त होने लगी ।२५-३१। नरश्रेष्ठ ! भूख और प्यास से व्याकुल होने पर उसने हाथ जोड़ कर ब्रह्मा से

---

१. आत्मना । २. सुप्रीताः । ३. दिक्संख्यान्वाचयेद्विजान् । ४. वदतो मम । ५. प्रद्युम्नो नाम वीर्यवान् । ६. विंशद्वर्षसहस्राणि । ७. विद्याधराकुलम् । ८. सह ।

बुभुक्षया नरश्रेष्ठ तथात्यन्तपिपासया । स पीडयमानो ब्रह्माणं कृताञ्जलिरभाषत ॥३२
भगवन्ब्रह्मलोकोऽयं सर्वदोषविवर्जितः । अत्र स्थितं च मां देव क्षुत्तृष्णा च प्रबाधते ॥३३
केन कर्म विपाकेन क्षुधा मे नापसर्पति । ब्रह्मलोक गतस्यापि संशयं छेत्तुमर्हसि ॥३४

ब्रह्मोवाच[1]

त्वया हि कुर्वता राज्यं पुष्टान्यङ्गानि पार्थिव । नैव दत्तं तु बहुलमात्मवादरतेन वै ॥३५
दानं बन्धात्मकं मत्वा तस्माद्दत्तं त्वया न हि । ज्ञानाद्ब्रह्मपदं प्राप्तनदानात्क्षुत्प्रबाधते ॥३६

राजोवाच

भगवन्स्तृषापनुत्तिः स्यात्कथं मे परमेश्वर । उपदेशप्रदानेन प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥३७

ब्रह्मोवाच

भूयो गत्वा महीं राजन्ब्रह्माण्डं सार्वकामिकम् । प्रयच्छ द्विजमुख्यानां[2] तेन तृप्तिमवाप्स्यसि ॥३८
इत्युक्तः सम्यगागत्य मर्त्यलोकं[3] महीपतिः । ब्रह्माण्डं तु विधानेन ब्राह्मणेभ्यः प्रदत्तवान् ॥३९
स जगाम पुनः स्वर्गं लेभे तृप्तिं च शाश्वतीम् । एतत्ते सर्वमाख्यातं महादानस्य यत्फलम् ॥४०
ब्रह्माण्डं यः प्रयच्छेत तेन दत्तं चराचरम् । सप्तावरान्सप्त परान्सप्त चैव परावरान् ॥४१
तारयेत्कुलजान्दत्त्वा भविष्यांश्च न संशयः । मन्वन्तराणि षट्त्रिंशद्ब्रह्मलोके महीयते ॥४२
पुनर्मानुष्यमभ्येत्य[4] धार्मिको जायते कुले । न दारिद्र्यं न च व्याधिं वियोगं नैव[5] पश्यति ॥४३

कहा—भगवन् ! यह ब्रह्म लोक समस्त दोषों से रहित है किन्तु यहाँ रहते हुए भी मुझे भूख-प्यास की बाधा हो रही है, देव ! ब्रह्म लोक पहुँचने पर भी मेरे किस कर्म के दुष्परिणाम स्वरूप यह क्षुधा निवृत्त नहीं हो रही है, यह संशय दूर करने की कृपा करें ।३२-३४

ब्रह्मा बोले—पार्थिव ! राज्य करते हुए तुमने अपने शरीराङ्गों को ही पुष्ट किया अध्यात्मवादी होने के नाते कोई महान् दान नहीं किया । दान को बन्धन समझ कर उसे सम्पन्न नहीं किया इसलिए केवल ज्ञान द्वारा तुम्हें ब्रह्म पद प्राप्त हुआ है और दान न करने से क्षुधा ।३५-३६

राजा बोले—भगवन्, परमेश्वर ! मेरी तृषा का अपहरण किस प्रकार होगा, उपदेश द्वारा बताने की कृपा करें ।३७

ब्रह्मा बोले—राजन् ! पुनः पृथ्वी पर जाकर सर्वकामप्रद ब्रह्माण्ड दान किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को अर्पित करो, उससे तुम्हें तृप्ति होगी । उनके ऐसा कहने पर राजा मर्त्य लोक में आकर सविधान ब्रह्माण्ड का दान ब्राह्मणों को अर्पित किया, जिससे स्वर्ग जाने पर उसे शाश्वती तृप्ति हुई । इस भाँति इस महादान का जो फल होता है मैंने वह तुम्हें सुना दिया । ब्रह्माण्ड का दान करने वाला चराचर जगत् का दान किया इसमें संदेह नहीं । पूर्व और पर की सात सात पीढ़ियों का वह उद्धार करता है । इस दान के

---

१. कृष्ण उवाच, विष्णुरुवाच । २. द्विजमुख्याय । ३. ब्रह्मलोकात् । ४. आसाद्य । ५. न वै विपत् ।

नारी वा पुरुषो वापि दानस्यास्य प्रभावतः । यश्चैतच्छृणुयाद्भक्त्या भक्तानां श्रावयेच्च यः ।।४४
सोऽपि सद्गतिमाप्नोति किं पुनर्यः प्रयच्छति ।।४५

ब्रह्माण्डखण्डयुगलं सकुलाचलं च दिग्भागसागरसरोवरसिद्धजुष्टम् ।
दिक्संख्यया गुणवतां द्विजसत्तमानां दत्त्वा पुमान्पदमुपैति पितामहस्य ।।४६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
ब्रह्माण्डदानविधिवर्णनं नाम सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१७७

अथाष्टासप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

कल्पवृक्षदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

भगवाञ्छंकरः पूर्वं कृतोद्वाहोमया[1] सह । रममाणस्तया सार्द्धं बहुवर्षगणास्थितः ।।१
ततः सुरगणाः सर्वे परं त्रासमुपागताः । तयोरपत्यस्य भयात्तमेव शरणं गताः ।।२
वैश्वानरमुखा देवा महादेवं[2] त्रिलोचनम् । प्रसन्नश्चाभवत्तेषां विबुधानां त्रिलोचनः ।।३

प्रभाव से स्त्री पुरुष छत्तीस मन्वन्तरों के समय तक वहाँ (ब्रह्मलोक में) सुखानुभव करके पुनः धार्मिक मनुष्य कुल में जन्म ग्रहण करता है। दरिद्र, व्याधि, और वियोग दुःख उसे कभी नहीं होता है।३८-४३। भक्तिपूर्वक भक्तों को इसे सुनने सुनाने वाला भी सद्गति प्राप्त करता है तो दान करने वाले को क्या कहा जाये। इस प्रकार ब्रह्माण्ड के सुवर्ण निर्मित दो खण्ड बनाकर, जिसमें समस्त पर्वत, दिशाएँ, सागर, सरोवर आदि बने रहते हैं, गुणी एवं श्रेष्ठ दश ब्राह्मणों को अर्पित करने वाले को ब्रह्मपद प्राप्त होता है।४४-४६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
ब्रह्माण्डदानविधि वर्णन नामक एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।१७७।

अध्याय १७८

सुवर्णनिर्मित कल्पवृक्ष दान का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पूर्वकाल में भगवान् शङ्कर ने उमा देवी के साथ पाणिग्रहण करके अनेक वर्षों तक रमण किया। अनन्तर समस्त देवगण उनदोनों से उत्पन्न होने वाली सन्तान के भय से त्रस्त होकर उनके शरण में गये। वैश्वानर (अग्नि) आदि समस्त देवताओं ने त्रिनेत्र महादेव के पास पहुँचकर उन्हें प्रसन्न किया।१-३

---

१. सन्धिरार्षः कृतोद्वाहा उमया सहेति पदच्छेदः । यद्वा—कृतोवाहया उमया सहेति योजनानुसंधया । २. देवदेवम् ।

ईश्वर उवाच

किं भीतास्त्रिदशः सर्वे कं वरं च ददामि वः । मयि प्रसन्ने विबुधा दुर्लभं हि न किंचन ॥४

देवा ऊचुः

भगवन्स्तव संयोगात्पार्वत्या सह शङ्कर । मोघो भवतु देवेश भीताः स्म तनयस्य ते ॥५
अनपत्यश्च देवेश भव भूतपते सदा । अशक्ताः स्म वयं सर्वे भवदोजो विधारणे ॥६

श्रीभगवानुवाच

अतः प्रभृत्यहं देवा ऊर्ध्वरेता व्यवस्थितः । स्थाणुवच्च स्थितश्चास्मि नाम चैतद्भविष्यति ॥७
ततः क्रुद्धा उमा तेषां देवानां वाक्यमब्रवीत् वितथं पुत्रजं सौख्यं भवद्भिर्मे कृतं सुराः ॥८
यस्मात्तस्माद्भवन्तोऽपि न पुत्राञ्जनयिष्यथ । ततः प्रभृति वै देवाः प्रसूयन्ते न भूपते ॥९
दत्त्वा शापं ततो देवी देवानामाह शङ्करम् । पुत्रजन्म मया प्राप्तं न तावज्जगतः पते ॥१०
अपुत्रस्य गतिर्नास्ति इतीयं श्रूयते श्रुतिः । तदादिश महाभाग लोकद्वयहितं प्रभो ॥११

भगवानुवाच

अपुत्रः पुरुषो यश्च नारी वा पर्वतात्मजे । सौवर्णस्तेन दातव्यः कल्पवृक्षो गुणान्वितः ॥१२
कृत्रिमं वापि गृह्णीयाद्वृक्षं वा स्थावरादिकम् । [1]जातपुत्रोऽथ वा पुत्रः पुत्रत्वे परिकल्पयेत् ॥१३
तेन पुत्रवतां लोका देवि तस्य न संशयः । कल्पवृक्षस्तु कर्तव्यः शुद्धाकाञ्चनसम्भवः ॥१४

ईश्वर बोले—देवगण ! क्या आप लोग भयभीत हो रहे हैं ? कौन वर तुम्हें प्रदान करूँ, क्योंकि मेरे प्रसन्न होने पर कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है ।४

देवों ने कहा—देवेश, भगवन्, शंकर, ! पार्वती के साथ किया हुआ तुम्हारा भोग निष्फल हो जाये हम लोग तुम्हारे पुत्र से भयभीत हो रहे हैं । देवेश, भूतपते ! आप सदैव सन्तान हीन रहें क्योंकि आप के तेजों को धारण करने में हम सभी असमर्थ हैं ।५-६

श्रीभगवान् बोले—देवगण ! आज से मैं अब उर्ध्वरेता रहकर स्थाणु की भाँति स्थित रहूँगा, जिसे 'स्थाणु' भी मेरा नाम हो । तदुपरान्त उमा ने क्रुद्ध होकर देवताओं से कहा—देवगण ! तुम लोगों ने मेरा पुत्र-जन्य सौख्य निष्फल कर दिया है, इसलिए तुम लोग भी पुत्र उत्पन्न न कर सकोगे ! भूपते ! उसी समय से देवों के कोई प्रसव न हो सका । इस भाँति देवों को शाप देने के अनन्तर देवी ने शंकर जी से कहा—जगतपते ! महाभाग ! मुझे पुर्नजन्म का सुख प्रदान हो सका, और श्रुति भी कहती कि पुत्रहीन की गति नहीं होती है, अतःदोनों लोकों का हित करने वाली कोई आज्ञा प्रदान करने की कृपा करें ।७-११

भगवान् बोले—पर्वतात्मजे ! पुत्र हीन स्त्री या पुरुष को सुवर्ण का सुरचित कल्पवृक्ष दान करना चाहिए । देवि ! इस प्रकार कृत्रिम, या स्थवरादि वृक्ष अथवा उत्पन्न पुत्र में प्रभुत्व की कल्पना करने से लोक पुत्रवान् कहा जाता है इसमें संशय नहीं शुद्धस्वर्ण द्वारा एक कल्पवृक्ष का निर्माण करें ।१२-१४

---

१. प्रजाम् ।

बहुशाखः सुवर्णांगोप्यनेककुसुमान्वितः । महास्कंधस्वरूपश्च रत्नालंकृतविग्रहः ॥१५
फलानि तस्य दिव्यानि सौवर्णानि प्रकल्पयेत् । कुर्याविंशत्पलादूर्द्धं शक्त्या वा नृप सत्तम ॥१६
दानमेतत्प्रदातव्यं राजतं चैवमुत्तमम् । प्रवालांकुरसंछन्नं मुक्तादामावलम्बितम् ॥१७
चतुष्कोणेषु कुर्वीत चतुरः काञ्चनद्रुमान् । सुवर्णस्य प्रमाणं च कथयामि वरानने ॥१८
सहस्रेण तदर्द्धेन तस्याप्यर्द्धेन वा पुनः । नद्यास्तीरे गृहे वापि[1] देवतायतने तथा ॥१९
प्रागुदक्प्रवणे देशे मण्डपं तत्र कारयेत् । दशहस्तप्रमाणेन दशहस्ताश्च वेदिका ॥२०
हस्तमात्रप्रमाणेन कुण्डमेकं सुशोभनम् । आग्नेय्यां कारयेद्राजन्मेखलामुपलेपनम् ॥२१
तत्र वै ब्राह्मणा योज्या ऋग्यजुः[2] सामपाठकाः । उपदेष्टा च तत्रैव तृतीयः[3] पञ्चमोऽथ वा ॥२२
सर्वाभरणसम्पन्नास्ताम्रपत्रद्वयान्विताः । अनुलिप्ताश्चन्दनेन वस्त्रमाल्यादिभूषिताः ॥२३
गुडप्रस्थोपरिष्टाच्च स्थापयेत्कल्पपादपम् । ब्रह्मविष्णुशिवोपेतं पञ्चशाखं सभास्करम् ॥२४
कामदेवमधस्ताच्च सकलत्रं[4] प्रयोजयेत् । सन्तानं सह गायत्र्या पूर्वतो लवणोपरि ॥२५
मन्दारं दक्षिणे पार्श्वे श्रिया सह तथा घृते[5] । पश्चिमे पारिजातं तु उमया सह पादपम् ॥२६
सुरभीसंयुतं तद्वत्तिलेषु हरिचन्दनम् । कौशेयवस्त्रसंयुक्तानिक्षुमाल्यफलान्वितान् ॥२७
तथाष्टौ पूर्णकलशान्समन्तात्परिकल्पयेत् । अग्निप्रणयनं कृत्वा अधिवास्य च पादपान् ॥२८

जो बहुत शाखाओं से आच्छन्न, सुवर्णाङ्ग होते हुए अनेक पुष्पों से भूषित, महान् स्कंध और उसकी समस्त शरीर रत्न से अलंकृत हो। उसके दिव्य फल भी सुवर्ण निर्मित ही होने चाहिए। नृपसत्तम ! बीस पल से अधिक सुवर्ण या चाँदी का यह उत्तम दान करना चाहिए। जो प्रवाल के अंकुरों से आच्छन्न और मोती की मालायें आबद्ध होकर लटकी हों। उसके चारों कोण पर चार सुवर्ण वृक्ष होने चाहिए। वरानने ! मैं सुवर्ण प्रभाव तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ! सहस्र या तदर्द्ध अथवा उसके भी आधे भाग से उसका निर्माण करके नदी, गृह या देवालय के प्रदेश में पूर्वोत्तर (ईशान) की ओर निम्न एक मण्डप की रचना करे, जो दश हाथ का विस्तृत हो और उसकी वेदी भी दशहाथ की विस्तृत हो। उसके अग्नि कोण में एक हांथ का विस्तृत कुण्ड बनाकर उसे मेखलाओं से भूषित करे।१५-२१। उसके चारों ओर ऋग् वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद के मर्मज्ञ विद्वानों को सादर नियत करे, जो उपदेष्टा समेत तीन या पाँच की संख्या में हों। उन्हें समस्ताभरणभूषित, दो ताम्रपात्रों से युक्त, चन्दन से आहुति से अनुलिप्त और वस्त्र-माला आदि से अलंकृत करने के उपरान्त एक सेर गुड़ के ऊपर वह कल्पवृक्ष स्थापित करे जो ब्रह्मा, विष्णु, शिव से युक्त, पाँच शाखाओं से अन्वित एवं भास्कर समेत हों। उसके नीचें रति समेत कामदेव, पूर्वक की ओर लवण के ऊपर संतान समेत गायत्री, दाहिने पार्श्व में घृत पर श्री समेत मन्दार, पश्चिम में उमासमेत पारिजात वृक्ष, तिल के ऊपर सुरभी समेत हरिचन्दन की स्थापना करते हुए चारों ओर रेशमी वस्त्र भूषित और ऊख, माला, फल आदि समेत आठ पूर्ण कलश स्थापित करे। अग्नि स्थापन पूजन और वृक्षों के अधिवासन करके चारों ओर समस्त धान्यों की कल्पना करे।२२-२८।

---

१. पार्श्वे। २. ऋग्यजुः सामयाजकाः। ३. द्वितीयः। ४. सङ्कल्पेन। ५. वृत्तेन।

धान्यानि चैव सर्वाणि समन्तात्परिकल्पयेत् । नाना भक्ष्याणि नैवेद्यं सर्वं तत्र नियोजयेत् ।।२९
दीपमाला विचित्राश्च ज्वालयेत समन्ततः । मन्त्रेण योजयित्वा ता मयोक्तेन वरानने ।।३०
कामदस्त्वं हि देवानां कामवृक्षस्ततः स्मृतः । मया सम्पूजितो भक्त्या पूरयस्व मनोरथान् ।।३१
एवं सम्पूज्य विधिना जागरं तत्र कारयेत् । शङ्खवादित्रनिर्घोषैर्वेदध्वनिविनिश्रितैः ।।३२
होमं च ब्राह्मणं कुर्युर्मद्गतेनान्तरात्मना । आधारावाज्यभागौ तु पूर्वं हुत्वा विचक्षणः ।।३३
तल्लिङ्गैः स्थापितान्देवान्होमेनाप्याययेत्ततः । महाव्याहृतिभिश्चैव होमं कुर्युस्ततः परम् ।।३४
अयुतेन भवेत्सिद्धिर्यज्ञस्यवरवर्णिनि । ततः प्रभाते चोत्थाय स्नात्वा शुक्लाम्बरः शुचिः ।।३५
दद्यात्पर्वसमीपे तु कल्पवृक्षं सदक्षिणम् । त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य मन्त्रमेतदुदीरयेत् ।।३६
नमस्ते कल्पवृक्षाय विततार्थप्रदाय च । विश्वंभराय देवाय नमस्ते विश्वमूर्तये ।।३७
यस्मात्त्वमेव विश्वात्मा ब्रह्मस्थाणुदिवाकराः । मूर्तामूर्तपरं बीजमतः पाहि सनातन ।।३८
एवमामन्त्र्य तं दृष्ट्वा गुरवे कल्पपादपम् । चतुर्भ्यश्चापि ऋत्विगभ्यः सामन्तादीन्प्रकल्पयेत् ।।३९
अनेन विधिना यस्तु दानमेतत्प्रयच्छति । तस्य पुण्यफलं देवि शृणुष्व गदतो मम ।।४०
विमानवरमारुह्य सूर्यतेजः समप्रभम् । अप्सरोगणसंकीर्णं किंकिणीजालमालितम्[1] ।।४१
याति लोकं सुरेशस्य सर्वबाधाविवर्जितम् । पुनः कर्मक्षितावेत्य जायते श्रोत्रिये कुले ।।४२

जहाँ अनेक भाँति के भक्ष्यपदार्थ एवं नैवेद्य सुसज्जित हों। वहाँ दीपमालाएँ प्रज्वलित कर, जो चित्र विचित्र शोभित होती हों। वरानने! इस प्रकार उनका आयोजन करके मेरे कहे हुए मंत्र द्वारा उनकी अर्चना करें—देवों की समस्त कामनाओं को सफल करने के नाते तुम्हें कामवृक्ष कहा जाता है इसलिए मैंने भी भक्तिपूर्वक आपकी अर्चना की है मेरे मनोरथों को सफल करने की कृपा करें। इस भाँति उनकी पूजा के उपरान्त रात्रि में जागरण करें। सारी रात शंख तुरुही आदि की ध्वनि, जयघोष, एवं वेदध्वनि होती रहती रहे। अनन्तर मेरे स्मरणपूर्वक ब्राह्मणों को हवन कार्य सुसम्पन्न करना चाहिए। सर्वप्रथम आज्यभाग आधार की आहुति प्रदान करते हुए स्थापित देवों के निमित्त उनके लिंग द्वारा आहुति अन्य महाव्याहृतियों के उच्चारण पूर्वक यज्ञ की दशसहस्र संख्या की आहुति की पूर्ति करे।२९-३४। वरवर्णिने! इस प्रकार यज्ञ सिद्धि होने के अनन्तर प्रातःकाल स्नान, शुक्लाम्बर धारण कर पवित्रता पूर्ण उस पर्व के समय उसकी तीन प्रदक्षिणा करते हुए दक्षिणा समेत वह कल्पवृक्ष वाहनगण को अर्पित करे—विस्तृत अर्थ प्रदान करने वाले कल्प वृक्ष को नमस्कार है, विश्वमूर्ति स्वरूप उस विधान विश्वम्भर देव को नमस्कार है। तुम्हारीं विश्वात्मा, ब्रह्मा, स्थाणु (शिव) एवं सूर्य हो, तथा मूर्त अर्मूत के परम बीज और सनातन अतः मेरी रक्षा करो। देवि! इस विधान द्वारा इसके दान करने पर जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है उसे मैं बता रहा हूँ, सुनो! सूर्य के समान तेजस्वी विमान पर बैठकर, जो अप्सरागणों से आच्छन्न और किंकड़ी जालों से भूषित रहता है, इन्द्र के उस सर्वबाधा रहित लोक में जाता है।३५-४१। पुनः कभी इस कर्म क्षेत्र

---

१. किङ्किणीजालमण्डितम्।

यज्वा शूरोऽपि विद्वांश्च भवति धार्मिकः। पुनरन्ते प्राप्नुयाद्वै लोकं देवस्य शार्ङ्गिणः ॥४३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कल्पवृक्षदानविधिवर्णनं नामाष्टसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः।१७८

अथैकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

कल्पलतादानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

भगवन्तर्वभूतेश सर्वलोकनमस्कृत। अनुग्रहाय लोकानां कथयस्व ममापरम् ॥१
निष्पापो जायते येन आयुषा यशसा श्रिया। तन्मे कथय देवेश दानं व्रतमथापि वा ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि तत्[1] लोकहितेप्सया। येनोपायेन जायन्ते सभाग्या मानवा भुवि ॥३
न व्रतैर्नोपवासैश्च न तीर्थगमनैरपि। महापथादिमरणैर्न यमैर्न श्रुतेन च ॥४
प्राप्यते मम लोकोऽयं दुष्प्राप्यस्त्रिदशैरपि। पार्थं स्नेहान्महाभाग प्रवक्ष्यामि हितं तव ॥५
वक्ष्ये कल्पलता दानं शोभनं विधिपूर्वकम्। सर्वं पूर्वविधानं च तत्र तन्त्रे प्रकल्पयेत् ॥६
दिक्पालेभ्यो बलिं तत्र क्षिपेद्वै विधिपूर्वकम्। आधारावाज्यभागौ तु पूर्वं हुत्वा विचक्षणः ॥७

(भूतल) में आने पर श्रोत्रिय (वेदाध्यायी) कुल में जन्म ग्रहण करता है, जो याज्ञिक, शूर, विद्वान्, और परम धार्मिक होता है और पुनः अन्त में उसे विष्णु लोक की प्राप्ति होती है।४२-४३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिरकेसम्वाद में
कल्पवृक्षदानविधिवर्णन नामक एक सौ अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।१७८।

अध्याय १७९

कल्पलता-दान का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—भगवन्! आप समस्त प्राणियों के स्वामी हैं समस्त लोक आपको नमस्कार करता है अतः लोक हितार्थ कोई अन्य बात बताने की कृपा करें। देवेश! जिस दान, व्रत या अन्य उपाय द्वारा प्राणी पापरहित और आयु, यश एवं श्री सम्पन्न होता है, उसे बताने की कृपा करें।१-२

श्रीकृष्ण बोले—राजन्! जिस उपाय द्वारा मनुष्य इस भूतल में भाग्यवान् होता है, वह लोकहितार्थ तुम्हें बता रहा हूँ, व्रत, उपवास, तीर्थयात्रा, महातीर्थादिमरण, यज्ञ और वेदपाठ द्वारा मेरा लोक प्राप्त नहीं होता है, वह देवों के लिए भी दुर्लभ है। महाभाग, पार्थ! किन्तु तुम्हारे स्नेहवश मैं तुम्हें बता रहा रहा हूँ। वह कल्पलता दान अत्यन्त सुशोभन है अतः उसे सविधि सुसम्पन्न करना चाहिए। उस तन्त्र में पूर्व की भाँति ही सब विधान कहा गया है। सविधान दिक्पालों के लिए बलि प्रदान, आज्य

---

१. तावत्।

ततो ग्रहमखं कुर्याद्धोमं व्याहृतिभिस्ततः । अयुतेनैव होमस्य समाप्तिरिह कथ्यते ॥८
ततः सर्वसमीपे तु स्नातः शुक्लाम्बरः शुचिः । पुष्पधूपैस्तथाभ्यर्च्य वासोभिः सफलाक्षतैः ॥
ततः प्रदक्षिणीकृत्य मन्त्रानेतानुदीरयेत् ॥९

नमो नमः पापविनाशिनीभ्यो ब्रह्माण्डलोकेश्वरपालनीभ्यः ।
आशाशताधिक्यफलप्रदाभ्यो दिग्भ्यस्तथा कल्पलतावधूभ्यः ॥१०
या यस्य शक्तिः परमा प्रदिष्टा वेदे पुराणे सुरसत्तमस्य ।
तां पूजयामीह परेण साम्ना सा मे शुभं यच्छतु तां नतोऽस्मि ॥११

एवमुच्चार्य ताः सर्वा ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् । दशाशाः परया भक्त्या तास्ताः संकल्प्य चेतसि ॥१२
ततः क्षमापयेद्विप्रान्प्रणिपत्य सदक्षिणान् । अनेन विधिना यस्तु दानमेतत्प्रयच्छति ॥१३
तस्य पुण्यफलं[1] राजन्कथ्यमानं निबोध मे । इह लोके स विजयी धनवान्पुत्रवान्भवेत् ॥१४
मृतो लोकाधिपपुरे प्रतिमन्वन्तरं वसेत् । महाशक्तिवृत्तः पश्चादेत्य[2] राजन्रसातलम् ॥१५
जितसर्वमहीपालश्चक्रवर्ती भवेद्भुवि । या च नारी महाराज दानमेतत्प्रयच्छति ॥१६
सा चक्रवर्तिनं पुत्रं सूते शक्तिसमन्वितम् । यश्च पश्येद्दीयमानं दत्तं यश्चानुमोदते[3] ॥१७
शृणोति वाच्यमानं च सोऽपि प्रेत्ये विमुच्यते ॥१८

भाग। आधार की आहुति अर्पित करने के अनन्तर व्याहृतियों द्वारा ग्रहों को आहुति अर्पित करें । इस यज्ञ में दशसहस्र संख्या की आहुति प्रदान करना बताया गया है ।३-८। तदुपरान्त स्नान, शुक्लवस्त्र धारण, एवं पवित्रता पूर्ण पुष्प, धूप, अक्षत, वस्त्र, फल द्वारा अर्चा करके प्रदक्षिणा करते समय इन मंत्रों का उच्चारण करे—ब्रह्माण्ड लोकेश्वर को पालने वाली उस पाप विनाशिनी को बार-बार नमस्कार है, जो आशातीत सैकडों फल प्रदान करती हुई कल्पलता वधू दिशाओं के रूप में दृष्टि गोचर हो रही है। वेद एवं पुराण में जिस देवश्रेष्ठ की जो शक्ति बतायी गयी है, मैं अत्यन्त विनय विनम्र उसकी अर्चना कर रहा हूँ और उसे नमस्कार कर रहा हूँ, वह मुझे शुभ प्रदान करे। इस प्रकार उच्चारण करते हुए भक्तिपूर्वक वह दश दिशा मानसिक संकल्प द्वारा ब्राह्मणों को अर्पित कर दक्षिणासमेत नमस्कार पूर्वक क्षमा प्रार्थना करे। राजन् ! इस विधान द्वारा इसके दान करने पर जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, उसे मैं बता रहा हूँ। इस लोक में यह आजीवन विजयी, धनवान् और पुत्रवान रहता है ।९-१४। अन्त में निधन होने पर प्रत्येक मन्वन्तरों के समय में वह इन्द्र लोक का निवासी होता है । राजन् ! वह अपनी महान् शक्ति द्वारा रसातल एवं भूतल के समस्त राजाओं पर विजय प्राप्त करने के नाते चक्रवर्ती राजा होता है । महाराज इस दान को सुसम्पन्न करने वाली स्त्री शक्तिशाली एवं चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न करती है । दान देते समय इसका दर्शन, अनुमोदन या (इसके पारायण को) सुनने वाला भी अपने समस्त पापों से मुक्त होता है ।१५-१८। अतः यदि तुम्हें

---

१. मुख्यफलम् । २. सुरलोके वसत्यसौ । पश्चादेव महाराज चक्रवर्ती धराधिपः । ३. अनुमोदयेत् ।

याः शक्रवह्नियमनैर्ऋतपाशहस्ता वातेंदुराजशिवकेशवशम्भुशक्त्यः ।
तां वै प्रपूज्य दशकल्पलता द्विजेभ्यो देहि त्रिलोकविजये यदि तेऽस्ति बुद्धिः ॥१९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कल्पलतादानविधिवर्णनं नामैकोनाशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ।१७९

अथाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

गजरथाश्वरथदानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

भगवन्क्षत्रियैः शूरैः स्ववीर्योपात्तसंचयैः । कानि दानानि देयानि पवित्राणि शुभानि च ॥१
अन्यैर्वा पुरुषैः कृष्ण अधर्मभयभीरुभिः । ग्रहपीडाभिसन्तप्तैर्दुःस्वप्नाद्युपतापितैः ॥२
इह लोके परे चैव विहितं सर्वकामदम् । विशेषविहितं दानं कथयस्व महामते ॥३

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु भूपाल भद्रं ते दानधर्ममनुत्तमम् । विशेषेण महीपानां हिताय च न संशयः ॥४
दानानि बहुरूपाणि नानाशास्त्रोदितानि च । गोदानादीना राजेन्द्र प्रधानानि न संशयः ॥५
किं तु प्रधानमेकं[1] ते दानं वक्ष्यामि भारत । वैरोचनाय यत्सर्वं शुक्रः प्रोवाच भारत[2] ॥६

त्रिलोक विजयी होने की इच्छा हो तो इस दश कल्पलता का जो इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋत के हाथ का पाश, वायु, चन्द्र, शिव, केशव, शंभु की शक्ति रूप है, सविधान पूजन कर ब्राह्मणों को अर्पित करो ।१९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर के सम्वाद में
कल्पलता दान विधि वर्णन नामक एक सौ उन्नयासीवाँ अध्याय समाप्त ।१७९।

अध्याय १८०

हाथी और घोड़े के रथदानविधि का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! कृष्ण ! उन शूरवीर क्षत्रियों और धर्म भीरु अन्य पुरुषों को ग्रह पीडा से पीडित अथवा दुःस्वप्न दर्शन होने पर किस पवित्र एवं शुभ दान को सुसम्पन्न करना चाहिए, महामते ! इस लोक तथा परलोक में जो समस्त कामनाओं को सफल करे, ऐसा कोई विशेष विशिष्ट दान बताने की कृपा करें ।१-३

श्रीकृष्ण बोले—भूपाल ! मैं तुम्हें वह परमोत्तम एवं कल्याण कर दान बता रहा हूँ, जो राजाओं के लिए विशेष हितकर है । राजेन्द्र ! यद्यपि शास्त्रों में अनेक भाँति के गोदान आदि प्रधान दान बताये गये हैं इसमें संशय नहीं हैं किंतु मैं तुम्हें बता रहा हूँ वह प्रधान दान बता रहा हूँ, जो शुक्राचार्य ने वैरोचन बलि को बताया था ।४-६

---

१. च । भार्गवः ।

शुक्र उवाच

भृणु दैत्यपते दानं सर्वपापप्रणाशनम् । आधयो व्याधश्चैव ग्रहपीडा सुदारुणाः ।।७
येन दत्तेन नश्यन्ति पुण्यमाप्नोति चोत्तमम् । कार्तिक्यामयने चैव ग्रहणे शशिसूर्ययोः ।।८
दानमेतत्प्रदातव्यं विषुवे सूर्यसंक्रमे । पुण्यं दिनमथासाद्य जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।।९
संस्थाप्य दारुजं दिव्यं हेमपट्टैरलंकृतम् । रथं सुचक्रादाधारं युगयोक्रमसमन्वितम् ।।१०
सुवर्णध्वजसंयुक्तं सितासितपताकिनम् । पुष्पप्रकरसंकीर्णे प्रागुदक्प्रवणे शुभे ।।११
नद्यास्तीरेऽथ[1] वा गोष्ठे विचित्रे वा गृहाङ्गणे । रथस्य पूर्वभागे तु कृत्वा वेदीमनुत्तमाम् ।।१२
पुराणवेदविद्यावान्विनयाचारसंयुतः । तस्यां संस्थापयेद्देवान्ब्रह्मादीन्कथयानि ते ।।१३
मध्ये ब्रह्मा प्रतिष्ठाप्यः पूजयेत्प्रणवेन तम् । विष्णुरुत्तरतः स्थाप्यः पौरुषेण तमर्चयत् ।।१४
सूक्तेन रुद्रं रौद्रेण दक्षिणस्यां समर्चयेत् । ग्रहान्सूर्यमुखांश्चैव विधिवत्पूजयेत्तथा ।।
पुष्पगंधै फलैर्भक्ष्यैर्दीपमालाभिरेव च ।।१५
पूजयेद्गन्धकुसुमैः श्वेतवस्त्रै सचन्दनैः । शङ्खभेरीमृदङ्गानां शब्दै सर्वत्रगामिभिः ।।१६
ब्रह्मघोषविमिश्रैश्च कारयेत महोत्सवम् । कुण्डं कृत्वा विधानेन हस्तमात्रप्रमाणतः ।।१७
आग्नेय्यां दिशि राजेन्द्र ब्राह्मणान्स्तत्र पूजयेत् । चतुश्चारणिकान्विप्रान्पूजितान्ब्रह्मभूषणैः ।।१८
चतुरोष्टौ महाराज गुरुरेकोऽथवा भवेत् । होमोपकरणं सर्वं मेलयित्वा तिलान्घृतम् ।।१९

शुक्र बोले—दैत्यपते ! मैं तुम्हें वह दान बता रहा हूँ, जिससे समस्त पाप, आधि व्याधि, भयानक, ग्रहपीड़ा के विनाशपूर्वक परमोत्तम पुण्य की प्राप्ति होती है। कार्तिकपूर्णिमा, अयन, चन्द्र सूर्य ग्रहण, विषुव, सूर्य संक्रान्ति अथवा किसी पुण्य दिन क्रोध रहित इन्द्रिय संयम पूर्वक उक्त काष्ठ का बना हुआ रथ स्थापित करे, जो दिव्य, हेमपट्ट से भूषित, दृढ़ (मूढ़ी आरागज आदि) सर्वाङ्ग सम्पन्न चक्र (पहिया) और जूएँ रस्सी आदि से युक्त हो। सुवर्ण की ध्वजाओं श्वेत तथा अन्य रंग की पताकाओं से सुसज्जित हो। किसी पुरुष भूषित, पूर्वोत्तर की ओर निम्न शुभ नदीतट, गोशाला या विचित्र गृहाङ्गण में स्थापित रथ के पूर्व के भाग में उत्तम वेदी की रचना करके वह पुराण वेद देवता, एवं विनयविनम्र आचार शील यजमान उस वेदी पर ब्रह्मादि देवों को जहाँ प्रतिष्ठित करता है में बता रहा हूँ। वेदी के मध्य भाग में ब्रह्मा को प्रतिष्ठित कर प्रणव (ओंकार) पूर्वक उनकी अर्चना करे। उत्तर की ओर विष्णु को स्थापित कर पुरुष सूक्त द्वारा पूजित करे दक्षिण में रुद्र को स्थापित कर रुद्र सूक्त से अर्चना करे। उसी भाँति सूर्य प्रमुख ग्रहों की सविधि अर्चना करके पुष्प, गंध, भक्ष्य, फल, दीपमाला, गंध पूर्णपुष्प, श्वेत वस्त्र चन्दन आदि द्वारा शंख भेरी, मृदङ्ग आदि वाद्यों और उस महान् ब्रह्मघोष के कोलाहल में रथादि की पूजा सुसम्पन्न करें।७-१७। राजेन्द्र ! उसकी अग्नि दिशा में एक हाथ का कुण्ड बनाकर चार चारणिक ब्राह्मणों को जो वेदमर्मज्ञ हों, वस्त्राभूषण से पूजनोपरांत वहाँ नियत करे। महाराज ! चार अथवा आठ अन्य ब्राह्मणों के अतिरिक्त एक गुरु भी रहना चाहिए। हवन के समस्त साधन तिल घृत आदि एकत्र कर

---

१. सितसितपिनाकिनम्।

अग्निकार्यं ततः कुर्याद्यथावद्विधिपूर्वकम् । आधारावाज्यभागौ तु हुत्वा प्राग्वच्च तौ ततः ॥२०
विष्णवे शितिकण्ठाय मन्त्रैः पूर्वोदितैः शुभैः । ग्रहयज्ञोदितैश्चैव[1] ग्रहाणां होम इष्यते ॥२१
एवं यज्ञविधिं कृत्वा यजमानो द्विजैः सह । योजयेत रथे दान्तौ गजौ लक्षणसंयुतौ ॥२२
विचित्रतनुसम्वीतौ शुभकक्षौ सुघण्टिकौ । हेमपट्टैः सुतिलकै शोभितौ शङ्खचामरैः ॥२३
दिव्यमुक्तापरिच्छन्नौ दिव्यांकुशसमन्वितौ[2] । महामात्रान्वितौ चैव सर्वाभरणभूषितौ ॥२४
एवं विधिं ततः कृत्वा रथं तं सगजं नरः । आरोपयेत्ततस्तस्मिन्ब्राह्मणं शंसितव्रतम् ॥२५
भूषितं कण्टकटकैः कर्णवेष्टाङ्गुलीयकैः । आगुप्तचोलकच्छत्र वस्त्रायुधसमन्वितम् ॥२६
बद्धतूर्णं धनुष्पाणिं बहुचर्मविभूषितम् । खड्गधेनुकया नद्धं हारालंकृतविग्रहम् ॥२७
यजमानस्ततः प्राज्ञः शुक्लाम्बरधरः शुचिः । रथं प्रदक्षिणीकृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥२८
इममुच्चारयेन्मन्त्रं सर्वपापप्रणाशनम् । कुमुदैरावणौ पद्मः पुष्पदन्तोऽथ वामनः ॥
सुप्रतीकोंजनः सार्वभौमोऽष्टौ देवयोनयः ॥२९
तेषां वंशप्रसूतौ तु बलरूपसमन्वितौ । तद्युक्तरथदानेन मम स्यातां वरप्रदौ ॥३०
रथोऽयं यज्ञपुरुषो ब्राह्मणोत्र शिवः स्वयम् । ममेभरथदाने प्रीयेतां शिवकेशवौ ॥३१
इत्युच्चार्य महाभाग[3] पूजयित्वा पुनः पुनः । आरोपयेत्ततस्तस्मिन्ब्राह्मणं शंसितव्रतम् ॥३२
स्वदारनिरतं शान्तं वेदवेदाङ्गपारगम् । पञ्चाग्न्यभिमतं चैव अव्यङ्गं व्याधिवर्जितम् ॥३३
पुनः प्रदक्षिणीकृत्य रथस्थं द्विजसत्तमम् । आद्वारमनुगच्छेच्च प्रणिपत्य गृहं विशेत् ॥३४

सविधि अग्निकार्य (हवन) सम्पन्न करते हुए प्रथम आज्य भाग आधार की आहुति प्रदान करें । अनन्तर विष्णु, शितिकण्ठ शिव को पूर्वोक्त मंत्रो द्वारा और ग्रहों को ग्रहयज्ञ के मंत्रों से आहुति प्रदान करनी चाहिए । इस प्रकार यजमान ब्राह्मणों समेत यज्ञविधान सुसम्पन्न कर रथ में लक्षण सम्पन्न दो गजों को युक्त करे जो चित्र विचित्र वस्त्रों से आच्छन्न, शुभ कक्ष भाग, घंटाभूषित, हेमपट्ट, सुन्दर तिलक एवं शंख चामर से सुशोभित दिव्य मोतियों से सुसज्जित दिव्य अंकुश (गजवांक) से युक्त, महामात्य (पीलवान) समेत और सर्वाभरण भूषित हों । इस प्रकार उस सुसज्जित रथ पर वेदाध्यायी ब्राह्मण को बैठाये, जो सुवर्ण माला, अङ्गद (वाहुभूषण), कुण्डल, अंगूठी, चोलक, छत्र, वस्त्र, आयुध सम्पन्न तरकस बाँधे, हाथ में धनुष, अनेक चर्म (ढाल) खड्ग धेनुक से आबद्ध और हार सुशोभित हो । अनन्तर वह बुद्धिमान् यजमान शुक्लवस्त्र कर पवित्रता पूर्ण पुष्पाञ्जलि लिए रथ की प्रदक्षिणा करते हुए कहे—कुमुद, ऐरावण, पद्म, पुष्पदन्त, वामन, सुप्रतीक, अञ्जन और सार्वभौम, ये आठ देवयोनियाँ हैं, इन्हीं के वंश में आप दोनों उत्पन्न हुए हैं इसलिए आप समेत इस रथ के दान करने से आप दोनों मेरे लिए वरप्रद हों । यह यज्ञ पुरुष है, इसमें अधिष्ठित ब्राह्मण स्वयं शिव हैं, इसलिए मेरे इस गजरथ के दान से शिव केशव प्रसन्न हों ।१८-३१। महाभाग ! इस भाँति के मंत्रोच्चारण पूर्वक बार-बार पूजन करने के उपरान्त उस पर ब्राह्मण को स्थापित करे, जो वेदानुयायी, एकपत्नीव्रती शांत, वेद और वेदाङ्ग का मर्मज्ञ, पञ्चाग्नि सेवी, अव्यङ्ग, एवं व्याधि रहित हो । पश्चात् रथस्थित उस ब्राह्मण श्रेष्ठ की परिक्रमा करके द्वार तक उसका

---

१. सर्वैः । २. दिव्यांशुकसमन्वितौ । ३. महाभागे इति संदिग्धः संवादः ।

ततो यज्ञावसाने तु दीनांधादीञ्जडान्कृशान् । पूजयेद्विविधैर्दानैर्वस्त्रगोदानभोजनैः ।।३५
अनेनैव विधानेन संकल्प्य रथमुत्तमम् । कुण्डमण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ।।३६
तदेव होमद्रव्यं च होममन्त्रास्त एव हि । विशेषोऽश्वरथे राजन्कथ्यमानो निबोध्यताम् ।।३७
हयौ लक्षणसंयुक्तौ खलीनालंकृताननौ । विचित्रवस्तुसम्वीतौ[1] कण्ठाभरणभूषितौ ।।३८
सुप्रग्रहयुतौ योज्यौ दाता तस्मिन् रथोत्तमे । तं प्रदक्षिणमावृत्यमंत्रमेतमुदीरयेत् ।।३९

नमोस्तु ते वेदतुरङ्गमाय त्रयीमयाय त्रिगुणात्मकाय ।
सुदुर्गमार्गे सुखयानपात्रे नमोऽस्तु ते वाजिधराय नित्यम् ।।४०

रथोऽयं सविता साक्षाद्वेदाश्वानो तुरङ्गमाः । अरुणो ब्राह्मणाश्चायं प्रयच्छन्तु सुखं मम ।।४१
इत्युच्चार्य ततस्तस्मिन् रथे ब्राह्मणसत्तमम् । आरोपयेद्गृहाद्वारं यावदेततमनुव्रजेत् ।।४२
अनेन विधिना यस्तु दद्याद्वाजिरथं बुधः । तस्माद्वाहरथं राज्यं तस्य पुण्यफलं शृणु ।।४३
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वामयविवर्जितः । मन्वन्तरशतं यावत्सर्वं भोगसमन्वितः ।।४४
अप्सरोगणसंकीर्णे विमाने सूर्यवर्चसे । दिव्यभोगान्वितः श्रीमान्कामचारी[2] वसेद्दिवि ।।४५
पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य राजा[3] भवति धार्मिकः । पुत्रपौत्रान्वितश्चैव[4] चिरंजीवी प्रियातिथिः ।।४६
गजेनैकेन निर्दिष्टः कश्चिद्गजरथो नृप । एकेनाश्वेनाश्वरथः कथ्यते वेदवादिभिः ।।४७

अनुगमन कर, अनन्तर प्रणाम कर अपने घर आये। पुनः उस यज्ञ की समाप्ति होने पर दीन, अंधे, जड़ और दुर्बल (निर्धन) आदि प्राणियों को अनेक भाँति के वस्त्र, गोदान एवं भोजनादि द्वारा सम्मानित करे। इस प्रकार इसी विधान द्वारा उत्तम रथ की कल्पना करके कुण्ड, मण्डप, उसके संभार भूषण आच्छादन आदि, वही तिल आदि होम द्रव्य और वही हवन के मंत्र भी रहते हैं। राजन्! किन्तु इस, अश्वरथ में जो विशेषता है वह मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो! शुभ लक्षण वाले अश्वों को खलीन (लगाम) आदि वस्तुओं से सुसज्जित, चित्रविचित्र वस्त्र और कण्ठाभरण से भूषित एवं लगाम आदि की सुन्दर रस्सियों से युक्त करते हुए उन्हें उस उत्तम रथ मे युक्त करे। पुनः दाता उस रथ की प्रदक्षिणा करते हुए इस मंत्र का उच्चारण करे—वेदरूपी तुरङ्गम को नमस्कार है, जो (वेद) मयी एवं त्रिगुणात्मक हैं तथा सुदुर्गमार्ग में सुखयान कराने वाले बाजिधर को नित्य नमस्कार है।३२-४०। यह रथ साक्षात् सविता (सूर्य) तुरङ्गम वेद और यह ब्राह्मण अरुण है अतः मुझे सुख प्रदान करने की कृपा करें। ऐसा कहकर उस उत्तम रथ पर उस श्रेष्ठ ब्राह्मण को प्रतिष्ठित कर उनके द्वार तक अनुगमन करे। इस विधान द्वारा अश्वमेध रथ का, जो वाहरथ राज्य कहा जाता है, दान करने वाले विद्वान् को जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो! समस्त पापों से मुक्त होकर सर्व व्याधिहीन वह प्राणी सैकड़ों मन्वन्तरों के समय तक सम्पूर्ण भोगों के उपभोग करते हुए स्वर्ग में सूर्य के समान प्रकाश पूर्ण विमान पर अप्सराओं के साथ विहार करता है तथा स्वर्ग में वह श्रीमान् सदैव यथेच्छ भोग करता है। अनन्तर पुण्य क्षीण होने पर इस पृथ्वी पर धार्मिक राजा होता है, जो पुत्र-पौत्रों समेत चिरजीवी और अतिथि प्रिय रहता है।४१-४६। नृप! एक गज से भी गजरथ और एक ही अश्व से अश्वरथ होता है ऐसा वेद वादियों का

---

१. विचित्रवस्त्रसंवीती। २. कल्पचारी। ३. परः। ४. श्रीमान्।

दानमन्त्रास्त एवोक्ताः फलं तत्र निगद्यते ॥४८

यच्छन्ति ये रथवरं सुधुराक्षचक्रं विक्रान्तवारणयुतं तुरगान्वितं वा।
सोपस्करं कनकपट्टविचित्रिताङ्गं ते स्यन्दनेन सुरराजपुरं प्रयान्ति ॥४९

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
गजरथाश्वरथदानविधिवर्णनं नामाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः।१८०

अथैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

कालपुरुषदानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

दानान्यन्यानि मे कृष्ण कथयस्व यदूत्तमम्। माङ्गल्यानि पवित्राणि सर्वपापहराणि च ॥१
संसारसागरोत्तारहेतुभूतोऽसि माधव। धर्माधर्मपरिज्ञाने त्वदन्यो नेह कश्चन ॥२

श्रीकृष्ण उवाच

दानानि बहुरूपाणि कथितानि मया तव। पुनरेव प्रवक्ष्यामि यद्यस्ति तव कौतुकम् ॥३
कथितानि मया तुभ्यं कथयिष्यामि यानि च। महतार्थेन सिध्यन्ति प्रयच्छन्ति महत्फलम् ॥४
काम्यो दानविधिः पार्थ क्रियमाणः प्रयत्नतः[1]। फलाय मुनिभिः प्रोक्तो विपरीतो भयाय च ॥५

कथन है। दोनों के दानमंत्र एक ही हैं और फल बता रहा हूँ—परमोत्तम रथ का निर्माण कराकर, जो सुन्दर धुरा, चक्र मूड़ी आदि साधनों से सम्पन्न और कनक पट्टों द्वारा उसके अंग चित्रविचित्र बनाये रहते हैं, उसमें मदमत्त गज या अश्व जोत कर उसका दान करने वाला उत्तम स्यन्दन द्वारा सुरराज (इन्द्र) लोक की प्राप्ति करता है।४७-४९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
गजरथ अश्वरथ दान विधि वर्णन नामक एक सौ अस्सीवाँ अध्याय समाप्त।१८०।

अध्याय १८१

कालपुरुषदान का वर्णन

युधिष्ठिर बोले—यदूत्तम, कृष्ण! मुझे दान बताने की कृपा करें, जो अत्यन्त मांगलिक, पवित्र एवं समस्त पापों का विनाशक हो। माधव! इस संसार सागर के तारने में एक मात्र आप ही कारण हैं, क्योंकि इस लोक में धर्माधर्म का परिज्ञान आप से अन्य किसी को है ही नहीं।१-२

श्रीकृष्ण बोले—यदि तुम्हें इसके जानने के कौतुक है तो मैं यद्यपि अनेक भाँति का दान तुम्हें सुना चुका हूँ किन्तु फिर भी कह रहा हूँ सुनो! मैंने जितने प्रकार के दान तुम्हें बताये और बताऊँगा वे महान् अर्थ द्वारा सिद्ध होते हैं किन्तु वे महान् फल भी प्रदान करते हैं।३-४। पार्थ! काम्य दान विधान को सुसम्पन्न करने में सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए मुनियों ने तभी उन्हें फलदायक बताया है अन्यथा (अविधि होने

---

१. यथार्थतः।

ज्ञेयं निष्कशतं सर्वदानेषु विधिरुत्तमः । मध्यमस्तु तदर्द्धेन तदर्द्धेनावरः स्मृतः ॥६
एवं वृक्षरथेन्द्राणां धेनोः कृष्णाजिनस्य च । अशक्तस्यापि कृष्टोऽय[1] पंचसौवर्णिको विधिः ॥७
अतोऽप्यनेन यो दद्यान्महादानं नराधिप । प्रतिगृह्णाति वा तस्य दुःखशोकावहं भवेत् ॥८
आदौ तावत्प्रवक्ष्यामि कालाख्यं पुरुषं[2] तव । सप्तसागरदानं च महाभूतघटन्तथा ॥९
अर्घ्यप्रदानतोक्तमात्मप्रतिकृतिस्तथा । सुवर्णाश्वः स्मृतः जष्ठः सुवर्णाश्वरथोऽपरः ॥१०
सर्वदानोत्तमं राजन्कृष्णाजिनमथाष्टमम् । विश्वचक्रं च नवमं हैमोगजरथस्तथा ॥११
एतत्ते दानदशकं वेद्मि पार्थिवसत्तम् ! देहि दापय सद्बुद्धि दाने नृपनरोत्तम ॥१२
दानादृते नोपकारो विद्यते धनिनोऽपरः । दीयमानो हि नापैति भूय एवाभिवर्धते ॥१३
कूप उल्लिख्यमानोऽपि भवत्येव बहूदकः । पुण्यं दिनमथासाद्य भूमिभागे समे शुभे ॥१४
चतुर्थ्यां वा चतुर्दश्यां विष्टचां वा पाण्डुनन्दन । पुमान्कृष्णतिलैः कार्यो रौप्यदन्त सुवर्णदृक् ॥१५
खड्गोद्यतकरो दीर्णो जपाकुसुमकुण्डलः[3] । रक्ताम्बरधरः स्रग्वी शङ्खमालाविभूषितः ॥१६
तीक्ष्णासिपत्रधनुषा विस्तारितकटीतटः। उपानद्युगयुक्तो हि [4]कृष्णकम्बलपार्श्वगः ॥१७
गृहीतामांसपिण्डश्च वामे करतले तथा । एवं विधं नरं कृत्वा गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥१८
सम्पूज्य गन्धकुसुमैर्नैवेद्यं विनिवेद्य च । तिलाज्यं जुहुयात्तत्र त्र्यम्बकेति च मन्त्रतः ॥१९

पर) वे भय उत्पन्न करते हैं । समस्त दानों में सौ निष्क का दान विधान उत्तम बताया गया है, उसका आधा मध्यम और उसका भी आधा अवर (निम्न कोटि) का बताया गया है । इसी प्रकार वृक्ष, रथ, धेनु, कृष्णाजिन के दान विधान में भी जानना चाहिए । अशक्त प्राणी के लिए महान अत्यन्त कष्ट दायक है क्योंकि पाँच सुवर्ण (मुद्रा) से कम का दान विधान ही नहीं है । इसलिए इससे न्यून का दान करने वाला और उसका प्रतिग्राही (ग्रहण करने वाला) दोनों दुःख शोक से व्याकुल रहा करते हैं । सर्वप्रथम मैं तुम्हें काल पुरुष दान, अनन्तर सप्त सागर दान और इसके उपरान्त महाभूत घट का दान बताऊँगा ।५-९। राजन् ! (ये उपरोक्त तीन दान), अर्घ्य दान, आत्मप्रतिकृति (प्रतिमा), सुवर्ण के अश्व, सुवर्ण के अश्वरथ, कृष्णाजिन, विश्वचक्र और सुवर्ण के गजरथ, ये दश दान बताये गयें हैं । पार्थिवसत्तम ! इन्हीं दोनों को सुसम्पन्न करने कराने के लिए स्वयं बुद्धि रखनी चाहिए । बिनादान दिये ध्वनियों का दूसरा उपाय हो ही नहीं सकता है क्योंकि जिस वस्तु का दान किया जाता है, वह नष्ट न हो कर दिन प्रतिदिन समृद्ध होता है (अर्थात् बढ़ता है) जिस प्रकार कूप खोदने पर उसका जल बढ़ता ही है । पाण्डुनन्दन ! इसलिए किसी पुण्य दिन शुभ समतल भूमि पर चौथ, चतुर्दशी, विष्टि में कृष्ण तिल द्वारा पुरुष की रचना करे जिसके चाँदी के दाँत और सुवर्ण के नेत्र हों और हाथ में तलवार, दीर्ण, कान में जपा कुसुम का कुण्डल, रक्तवस्त्र धारण किये, मालाभूषित, शंख माला अलंकृत, तीक्ष्ण खड्ग धनुषबाण, लम्बी कटि, उपानहयुक्त पार्श्व में कृष्ण कम्बल और बायें हाथ में मास पिण्ड लिये हुए । इस भाँति के मनुष्य की रचना करके हाथ में पुष्पाञ्जलि गंध, कुसुम, नैवेद्य, आदि द्वारा पूजनोपरांत 'त्र्यम्बक मंत्र' द्वारा तिल घृत की आहुति प्रदान

---

१. कष्टोऽयम् । २. पुरुषोत्तमम् । ३. मण्डपः । ४. कृष्णम् ।

स्वगृह्योक्तविधानेन शतमष्टोत्तरं यजेत् । यजमानः प्रसन्नात्मा इमं[1] मन्त्रमुदीरयेत् ।।२०
सर्वं[2] कलयसे यस्मात्कालस्त्वं तेन भण्यसे । ब्रह्मविष्णुशिवादीनां त्वमसाध्योऽसि सुव्रत ।।२१
पूजितस्त्वं मया भक्त्या प्रार्थितश्च[3] तथा[4] सुखम् । यदुच्यते तद विभो तत्कुरुष्व नमोनमः ।।२२
एवं सम्पूजयित्वा[5] तं बाह्मणाय निवेदयेत् । ब्राह्मणं[6] प्रथमं पूज्य वासोभिर्भूषणैस्तथा ।।२३
दक्षिणां शक्तितो दद्यात् प्रणिपत्य[7] विसर्जयेत् । अनेन विधिना यस्तु दानमेतत्प्रयच्छति ।।२४
नापमृत्युभयं तस्य न च व्याधिकृतं भयम् । भवत्यव्याहतैश्वर्यः सर्वबाधाविवर्जितः ।।२५
देहान्तं सूर्यभवनं भित्त्वा याति परं पदम् । पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य राजा भवति धार्मिकः ।।
सन्तत्या च श्रिया युक्तः पुत्रपौत्रसमन्वितः ।।२६

सम्पूज्य कालपुरुषं विधिवद्द्विजाय दत्त्वा शुभाशुभफलोदयहेतुभूतः ।
रोगान्तरे सकलदोषमये च देही नो वध्यभावमुपगच्छति तत्प्रभावात् ।।२७

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कालपुरुषदानविधिवर्णनं नामैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८१

करे ।१०-१९। अपने गृह्यसूत्र के विधान द्वारा एक सौ आठ आहुति प्रदान करने के उपरांत यजमान प्रसन्नतापूर्ण इस मंत्र का उच्चारण करे—सुव्रत ! सभी को नष्ट कर देने के नाते ही तुम्हारा नाम काल हुआ है, इसीलिए तुम विष्णु, ब्रह्मा, एवं शिव के लिए भी असाध्य हो । विभो ! भक्तिपूर्वक मैने आप की पूजा और प्रार्थना की है अतः सुख प्रदान करने की कृपा करें आप को बार-बार नमस्कार है । इस प्रकार पूजनकर ब्राह्मण को अर्पित करे किन्तु वस्त्राभूषण द्वारा ब्राह्मण की पहले अर्चा कर लेनी चाहिए । यथाशक्ति दक्षिणा तथा नमस्कार करके विसर्जन करे । इस भाँति सविधान दान करने पर अपमृत्यु और व्याधिभय नहीं होता है अपितु वह अव्याहत ऐश्वर्य की प्राप्ति पूर्वक सम्पूर्ण बाधाओं से रहित रहता है । निधन होने पर सूर्य भवन की प्राप्ति होती है । पुण्य क्षीण होने पर यहाँ धार्मिक राजा होता है जो सतत श्री और पुत्र पौत्र से युक्त होता है । इस प्रकार काल पुरुष का सविधान अर्चा कर किसी ब्राह्मण को अर्पित करने पर शुभाशुभ फल का भोग करने वाला यह देही (जीव) सकल दोषमय और रोगपूर्ण इस शरीर से बन्धन मुक्त हो जाता है ।२०-२७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
कालपुरूषदानविधिवर्णन नामक एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ।१८१।

---

१. इदं वचनमब्रवीत् । २. सकालनियमे यस्मात्कालत्वं तेन गण्यते । ३. प्रापितश्च । ४. यथा । ५. तु । ६. ब्राह्मणम् । ७. दत्त्वा ।

अथ द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

सप्तसागरदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि पार्थदानमनुत्तमम्[1] । सप्तसागरकं नाम सर्वपापप्रणाशनम् ॥१
पुण्यं दिनमथासाद्य युगादिग्रहणादिकम् । कारयेत्सप्तकुण्डानि काञ्चनानि विचक्षणः ॥२
प्रादेशमात्राणि तथा रत्निमात्राणि वा पुनः । कुर्यात्सप्तशतादूर्ध्वमासहस्राच्च शक्तितः ॥३
संस्थाप्यानि च सर्वाणि कृष्णाजिनतिलोपरि । प्रथमं पूरयेत्कुण्डं लवणेन विचक्षणः ॥४
द्वितीयं पयसा तद्वत्तृतीयं सर्पिषा पुनः । चतुर्थं तु गुडेनैव दध्ना पञ्चमेव च ॥५
षष्ठं शर्करया तद्वत्सप्तमं तीर्थवारिणा । स्थापयेल्लवणस्यान्ते ब्राह्मणं[2] काञ्चनं शुभम् ॥६
केशवं क्षीरमध्ये तु घृतमध्ये महेश्वरम् । भास्करं गुडमध्ये तु दधिमध्ये सुराधिपम् ॥७
शर्करायां न्यसेल्लक्ष्मीं जलमध्ये तु पार्वतीम् । सर्वेषु सर्वरत्नानि धान्यानि[3] च समन्ततः ॥८
स्थापयेत्पुरुषश्रेष्ठ यथालाभं यथासुखम् । ततः पर्वसमीपे तु स्नातः शुक्लाम्बरो गृही ॥९
त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य मन्त्रानेतानुदीरयेत् । नमो वः सर्वसिन्धूनामाधारेभ्यः सनातनाः ॥१०
जन्तूनां प्राणदेभ्यश्च समुद्रेभ्यो नमोनमः । पूर्णाः सर्वे भवन्तो वै क्षारक्षीरघृतैक्षवैः ॥११
दध्ना शर्करया तद्वत्तीर्थवारिभिरेव च । तस्मादघौघविध्वंसं कुरुध्वं मम मानदाः ॥१२

अध्याय १८२

सप्तसागरदान विधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! मैं तुम्हें सप्तसागर का दान बता रहा हूँ, जो परमोत्तम और समस्त पापों को विनष्ट करने वाला है । युगादि तिथि या ग्रहण आदि के किसी शुभ अवसर पर सुवर्ण द्वारा सात कुण्ड की रचना करे, जो प्रादेश मात्र अथवा अरत्निमात्र विस्तृत हों । इसके निर्माण में सात सौ से लेकर सहस्र पल पर्यंत सुवर्ण होना चाहिए । सभी कुण्ड को कृष्णाजिन (कालेमृग चर्म) पर प्रतिष्ठित कर पहले कुण्ड को लवण, दूसरे को दूध तीसरे को घृत, चौथे को गुड़, पाँचवें को दही, छठें को शक्कर और सातवें की तीर्थ जल से पूर्ण कर क्रमशः लवण के अंत में ब्रह्मा की सुवर्ण प्रतिमा, क्षीर वाले में केशव, घृत मध्य महेश्वर, गुडमध्य में भास्कर दधि के मध्य में इन्द्र, शक्कर में लक्ष्मी और जल के मध्य पार्वती (की प्रतिमा) को स्थापित करे। पश्चात् सभी कुण्डों में चारों ओर समस्त रत्न और सप्त धान्य यथालाभ यथा सुख जितना मिल सके स्थापित करे।१-८। उस पर्व के समय स्नान, शुक्ल वस्त्र धारण कर उस गृहस्थ को तीन प्रदक्षिणा करते समय यह कहना चाहिए—समस्त सिंधु के आधार एवं सनातन को नमस्कार है, जन्तुओं को प्राण दान करने वाले समुद्र को नमस्कार है । लवण, क्षीर, घृत, गुड़, दीर्घ, शक्कर और तीर्थ जलों से आप सब परिपूर्ण है, अतः मेरे पाप समूह को नष्ट करते हुए मेरे घर में अलक्ष्मी का विनाश

---

१. सर्वदानम् । २. ब्राह्मण । ३. देयानि ।

अलक्ष्मीः प्रशमं यातु लक्ष्मीश्चास्तु गृहे मम । एवमुच्चार्य तान् दद्याद्ब्राह्मणेभ्यो युधिष्ठिर ।।१३
एकमेवयथाभ्यर्च्य पुष्पवस्त्रविलेपनैः । बहूनामेतदुद्दिष्टं[1] दानमेकस्य वा पुनः ।।१४
देयं वा सर्वसामान्यं क्रियाविप्रानुरूपतः । दानं सप्तसमुद्राख्यं यः प्रयच्छति पार्थिव ।।१५
तस्य गृहान्न चलति लक्ष्मीर्यावत्कुलाष्टकम् । पूज्यमानः सुरगणैः सिद्धविद्याधरोरगैः ।।१६
देवलोकान्न च्यवते सप्तमन्वन्तराण्यसौ । ततश्च वेदसंस्कारात्परं ब्रह्माधिगच्छति ।।१७

इति ददाति रसामरसंयुताञ्छुचिरविस्मयदानिह सागरान् ।
अनलकाञ्चनरत्नमयानसौ पदमुपैति हरे रमया[2] वृतम् ।।१८
दानप्रधानतरमेतदतीव विप्रे प्रोक्तं युधिष्ठिर समाधिधिया विचिन्त्य ।
हैमान्विधाय जलधीन्वितरस्व शक्त्या प्राप्नोषि येन सरसानि समीहितानि ।।१९

इतिश्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
सप्तसागरदानविधिवर्णनं नाम द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८२

अथ त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

महाभूतघटदानवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि दानमन्यत्तवोत्तमम्[3] । महाभूतघटं नाम महापातकनाशनम् ।।१

और लक्ष्मी को सदैव अचल बनाने की कृपा करें। युधिष्ठिर ! इस प्रकार अर्म्यचना करने के उपरांत उसे ब्राह्मणों को अर्पित करे। पुष्प, वस्त्र, अनुलेप द्वारा पूजनोपरांत एक अथवा अनेक ब्राह्मणों को सादर अर्पित करे। जहाँ तक हो सके क्रियानुरूप ब्राह्मणों को प्रदान करना चाहिए। पार्थिव ! इस प्रकार इस दान को सुसम्पन्न करने वाले प्राणी के घर से आठ पीढ़ी तक लक्ष्मी कभी जाती नहीं है, अन्त में सिद्ध, विद्याधर, नाग आदि देवों से सुसेवित होते हुए सात मन्वन्तरों के समय तक देवलोक में अपवित्र विश्वास प्राप्त करता है और वैदिक संस्कार के उपरांत उसे पर ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है। इस भाँति अग्नि शुद्ध काञ्चन द्वारा निर्मित सप्त सागर का दान करने वाला रमा (लक्ष्मी) युक्त हरि का पद प्राप्त करता है। यथा शक्ति सुवर्ण निर्मित सागरों के दान ब्राह्मणों को अवश्य समर्पित करो, जिससे तुम्हारे सरस अभीष्ट की सिद्धि हो।९-१९

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
सप्त सागर दान विधान वर्णन नामक एक सौ बयासीवाँ अध्याय समाप्त।१८२।

अध्याय १८३

महाभूतघटदान का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें महाभूत घट दान नामक एक अन्य उत्तम दान बता रहा हूँ, जो महान पातकों

---

१. एतदिष्टं वै दानमेतदुदीरयेत्। २. अमरावृतम्। ३. नरोत्तम।

पुण्यां तिथिं समासाद्य स्वनुलिप्ते गृहाङ्गणे । कारयेत्काञ्चनं कुंभं[1] महारत्नान्वितं पुनः ॥२
प्रादेशादङ्गुलशतं यावत्कुर्यात्प्रमाणतः । शक्त्या पञ्चमलादूर्ध्वमाशताच्च नरोत्तम ॥३
क्षीराज्यपूरितं कृत्वा कल्पवृक्षसमन्वितम् । पद्मासनगतास्तत्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥४
लोकपाला महेन्द्राश्च स्वाहानसमास्थिताः । ऋग्वेदः साक्षसूत्रश्च यजुर्वेदः सपङ्कजः ॥५
वीणाधारी सामवेदो ह्यथर्वा स्रदशुभान्वितः । पुराणवेदो वरदः साक्षसूत्रकमण्डलुः ॥६
सप्तधान्यानि पुरतः स्थापयेच्छक्तितो बुधः । पादुकोपानहच्छत्रं चामराग्र्यासनायुधान् ॥७
एवं प्रकल्प्य विधिवन्महाभूतघयं नरः । गुडसारोपरिगतं माल्यवस्त्रैरथार्चयेत् ॥८
अथ पर्वसमीपे तु स्नात्वा नियतमानसः । त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥९
यस्मान्न किंचिदप्यस्ति महाभूतैर्विना कृतम् । महाभूतमयश्चायं तस्माच्छान्तिं ददातु मे ॥१०
अत्र सन्निहिता देवाः स्थापिता विश्वकर्मणा । ते मे शान्तिं प्रयच्छन्तु भक्तिभावेन पूजिताः ॥११
इत्येवं पूजयित्वा तु महाभूतघटं नरः । ब्राह्मणं पूजयित्वा तु भूषणाच्छादनादिभिः ॥१२
महाभूतघटं दद्यात्पर्वकाले यतव्रतः[2] । पुनः प्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणं तं क्षमापयेत् ॥१३
अनेन विधिना यश्च दानमेतत्प्रयच्छति । एकविंशत्कुलोपेतः शिवलोके प्रयात्यसौ ॥१४
पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य राजा भवति धार्मिकः । अजेयः शत्रुसंघातैर्महाबल पराक्रमः ॥१५
क्षत्रधर्मरतो विद्वान्देवब्राह्मणपूजकः ॥१६

का विनाश करता है । किसी पुण्य तिथि में अपने लिये अपने गृहाङ्गण में सुवर्ण कलश का निर्माण कर महान् रत्नों समेत उसे स्थापित करे । नरोत्तम ! वह कलश सौ अंगुल प्रमाण और यथाशक्ति पाँच पल से ऊपर सौ पल तक सुवर्ण का होना चाहिए । क्षीरघृत से पूर्ण कर कल्प वृक्ष समेत उसकी प्रतिष्ठा करते हुए पद्मासन के उपर ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर की स्थापना करे और सभी लोक पाल तथा महेन्द्र आदि देव गण अपने अपने वाहनों पर स्थित रहकर ही स्थापित किये जाँय । अनन्तर अक्षसूत्र समेत ऋग्वेद, पंकज सहित यजुर्वेद, वीणाधारी सामवेद, शुभ माल समेत अथर्ववेद, अक्षसूत्र, कमण्डलु समेत वरप्रद पुराणवेद एवं सप्त धान्य की स्थापना बुध (विद्वान्) को करनी चाहिए । चरणपादुका, उपानह, छत्र, चामर, आसन तथा आयुध समेत उस महाभूत घट की सविधि स्थपना गुड़ सार के ऊपर सुसम्पन्न कर माला वस्त्र आदि से अर्चना करे ।१-८। तदुपरांत पर्व के समय स्नान करके संयमपूर्वक तीन प्रदक्षिणा करते हुए कहे—महाभूत के बिना इस संसार में कुछ भी नहीं रह सकता है अतः यह महाभूतमय मुझे शांति प्रदान करने की कृपा करे । इस (महाभूत) घर में विश्वकर्मा ने समस्त देवों को स्थापित किया है अतः मेरे द्वारा भक्तिभाव से पूजित होने पर वे देवगण मुझे शांति प्रदान करे । इसभाँति महाभूत घट की अर्चा के उपरान्त भूषण वस्त्र द्वारा ब्राह्मण की पूजा करके संयम पूर्वक उस पर्व के समय उसे ब्राह्मण को समर्पित करे । अनन्तर ब्राह्मण की प्रदक्षिणा और अभ्यर्चना करके विसर्जित करे । इस विधान द्वारा इस दान को सुसम्पन्न करने वाले अपनी इक्कीस पीढ़ी समेत शिवलोक की प्राप्ति करते हैं ।९-१४। कदाचित् पुण्य क्षीण होने पर इस लोक में धार्मिक राजा होता है, जो अजेय, महाबली और पराक्रमी होता है तथा अपने क्षत्रिय धर्म में अटल रहकर देव ब्राह्मण का पूजक होता है इस प्रकार आठ चरण वाले इस महाभूत घट का

---

१. दिव्यम् । २. प्रयत्नतः ।

अष्टापदोक्तमवटं विमलं विधाय ब्रह्मेशकेशवयुतं[1] सहलोकपालैः।
क्षीराज्यपूर्णविवरं प्रणिपत्य भक्त्या विप्राय देहि तव दानशतैः किमन्यैः ।।१७

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वाणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
महाभूतघटदानविधिवर्णनं नाम त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८३

अथ चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

शय्यादानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

शय्यादानं प्रवक्ष्यामि तव पाण्डुकुलोद्वह[2] । यद्दत्त्वा सुखभागी[3] स्यादिह लोके परत्र च ।।१
शय्यादानं प्रयच्छन्ति सर्वदैव द्विजोत्तमाः[4] । अनित्यं जीवितं यस्मात्कोन्यः[5] पश्चात्प्रदास्यति ।।२
तावत्सबन्धुः सपिता यावज्जीवति भारत । मृतो मृत इति ज्ञात्वा क्षणात्स्नेहो निवर्तते ।।३
तस्मात्स्वयं[6] प्रदातव्यं शय्याभोज्यजलादिकम् । आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरिति संचिंत्य चेतसि ।।४
आत्मैव यो हि नात्मानं दानभोगैः समर्चयेत् । कोऽन्यो हिततरस्तस्मात्कः पश्चात्पूजयिष्यति ।।५
तस्माच्छय्यां समासाद्य सारदारुमयं दृढाम् । दन्तपत्रचितां रम्यां हिमपट्टैरलंकृताम् ।।६

निमल निर्माण करके ब्रह्मा, विष्णु शिव, लोकपाल समेत वह घट जो क्षीर घृत से परिपूर्ण रहता है, नमस्कार एवं भक्तिपूर्वक ब्राह्मण को अर्पित करो क्योंकि इसके समक्ष अन्य सैकड़ों दान से क्या लाभ हो सकता है।१५-१७

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के सम्वाद में
महाभूतघटदानविधि वर्णन नामक एक सौ तिरासीवाँ अध्याय समाप्त।१८३।

अध्याय १८४

शय्यादान का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डुकुलोद्वह ! मैं तुम्हें शय्या दान का विधान बता रहा हूँ, जिसके प्रदान से प्राणी लोक परलोक में सुखी होता है इसलिए श्रेष्ठ ब्राह्मणगण सदैव शय्या दान सम्पन्न करते रहते हैं क्योंकि जीवन अनित्य होने के नाते पीछे (निधनोपरांत) कौन इसे पूरा कर सकेगा। भारत ! प्राणी जब तक जीवित रहता है तभी तक पर बन्धु पिता कहलाता है और उसके मरने पर वही स्नेह क्षण मात्र में निकल जाता है। इसलिए यह आत्मा ही आत्मा का बन्धु (सहायक) है ऐसा समझ कर शय्या, भोजन और जलादि का स्वयं दान करे। दान भोगादि यहि स्वयं इस आख्या की अर्चा नहीं की तो इससे बढ़ कर दूसरा हितैषी कौन होगा, जो निधनोपरांत उसकी पूजा करेगा।१-५। अतः काष्ठ के स्तर की भाग की दृढ़ शय्या, जो

---

१. ब्रह्मेन्द्रकेशवयुतम्। २. पाण्डुकुलोद्भव। ३. सर्वभागी, सुप्तभोगी। ४. नृपोत्तम। ५. दान कोन्यः प्रदास्यति। ६. यस्मात्तस्मात्प्रदातव्यं शय्याभोज्यतिठाकिम्।

हसन्तूलीप्रतिच्छन्नां सुभगान्सोपधानिकाम् । प्रच्छादनपटीयुक्तां गन्धधूपाधिवासताम् ॥७
तस्यां संस्थापयेद्धैमं हरिं लक्ष्मीसमन्वितम् । उच्छीर्षके धृतं चैव कलशं परिकल्पयेत् ॥८
विज्ञेयं पाण्डव सदा सनिद्राकल्पकं बुधैः । ताम्बूलं कुंकुमक्षोदकर्पूरागरुचन्दनम् ॥९
दीपकोपानहच्छत्रचामरासनभोजनम् । पार्श्वेषु स्थापयेच्छक्त्या सप्तधान्यानि चैव हि ॥१०
शयनस्थस्य भवति यदन्यदुपकारकम् । भृङ्गारकाद्यपुष्पाणि पञ्चवर्णवितानकम् ॥११
शय्यामेवंविधां कृत्वा ब्राह्मणायोपपादयेत् । सपत्नीकाय सम्पूज्य पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम् ॥१२
नमस्ते सर्वदेवेश शय्यादानं कृतं मया । देहि तस्माच्छान्तिफलं नमस्ते पुरुषोत्तम ॥१३
यथा न कृष्ण शयनं शून्यं सागरजातया । शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनिजन्मनि ॥१४
दत्त्वैवं तल्पमनलं प्रणिपत्य विसर्जयेत् । एकादशाहेऽपि तथा विधिरेष प्रकीर्तितः ॥१५
ददाति यदि धर्मार्थं मानवो बान्धवे मृते । विशेषं चात्र राजेन्द्र कथ्यमानं निबोध[1] मे ॥१६
तेनोपभुक्तं यद्वस्तु किंचित्पूर्वं गृहे मता । तद्गात्रलग्नं च तथा वस्त्रवाहनभाजनम् ॥१७
यदिष्टं[2] च तथास्यासीत्तत्सर्वं परिकल्पयेत् । स एव पुरुषो हैमस्तस्यान्तं स्थापयेत्तथा ॥१८
पूजयित्वा प्रदातव्यो मृतशय्या यथोदिता । स्वर्गे पुरन्दरगृहे सूर्यपुत्रालयेऽथ वा ॥१९
सुखं वसत्ययौ जन्तुः शय्यादानप्रभावतः । पीडयन्ति न तं याम्याः पुरुषा भीषणाननाः ॥२०
न धर्मेण न शीतेन बाध्यते स नरः क्वचित् । अपि पापसमायुक्तः स्वर्गलोके महीयते ॥२१

कुन्द पुष्प से सुरचित, रम्य, सुवर्ण से भूषित, हंस के समान श्वेत कोमल रूई वाले गद्दे से आच्छन्न, सुभग, सुन्दर तकिये से युक्त, ऊपर चद्दर से अलंकृत और गंध, धूप से अधिवासित हो, निर्माण कर उस पर विष्णु लक्ष्मी को सुवर्ण प्रतिमा को प्रतिष्ठित करते हुए ऊपर शिर होने के समीप कलश की स्थापना करे। पाण्डव ! भगवान् को उस पर निद्रित की कल्पना कर उसके पार्श्व भाग में ताम्बूल, कुंकुम (चूर्ण), कपूर, अगरु, चन्दन, दीपक, उपानह, छत्र, चामर, आसन, भोजन और यथाशक्ति सप्तधान्य की स्थापना करे। उस समय शयन के समय झारी (गेरुआ) पुष्पादि अन्य भी वस्तुएँ वहाँ उपस्थित करनी चाहिए। उपर पाँच रङ्ग की चाँदनी (चँदोबा) आदि से समलंकृत उस भाँति की शय्या किसी पुण्य दिन सपत्नीक ब्राह्मण की पूजा कर उसे अर्पित करे। सर्वदेवेश ! पुरुषोत्तम यथाशक्ति सुसज्जित यह शय्यादान आप को अर्पित किया है अतः मुझे शांति फल प्रदान करने की कृपा करें।६-१३। कृष्ण ! जिस प्रकार सागर (लक्ष्मी) से जय की शय्या कभी शून्य नहीं रहती है, उसी भाँति मेरी भी शय्या जन्मान्तर में कभी शून्य न रहे। इस प्रकार उस निर्मल शय्या का एकादशाह के दिन सविधि एवं नमस्कारपूर्वक दान करके विसर्जन करे। राजेन्द्र ! बन्धु आदि के निधन होने पर उसके निमित्त यदि धर्मार्थ शय्यादान आदि यदि कोई करता है तो मैं उसके लिए और विशेषता बता रहा हूँ, सुनो ! उस मृतक की उपभोग की हुई घर में हो या उसके अंगों में (सुवर्ण आदि) लगे हों, तथा वस्त्र, वाहन, भाजन (पात्र) जो कुछ उसे अभीष्ट हो, उन सब को वहाँ वाचन पुराण के समीप रखना चाहिए। पूजनोपरांत इस प्रकार की मृत शय्या दान करने से वह इन्द्र के गृह और सूर्य अन्न के भवन में सुखी निवास करता है। उसे भीषण मुख वाले यमदूत कभी पीड़ित नहीं करते हैं।१४-२०। और धूप, शीत की बाधा भी कभी नहीं होती है अपितु पाप युक्त

---

१. निशामय। २. यद्यदिष्टं च तयासीत्।

विमानवरमारूढः सेव्यमानोप्सरोगणः । आभूतसम्प्लवं यावत्तिष्ठेत्पातकवर्जितः ।।२२
शय्याप्रदानममलं तव पाण्डुपुत्र संकीर्तितं सकलसौख्यानिधानमेतत्[१] ।
सद्यो ददाति विधिवत्स्वयमेव नाके तल्पे विकल्परहितः स विभाति सत्यम् ।।२३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
शय्यादानविधिवर्णनं नाम चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८४

अथ पञ्चासीत्यधिकशततमोऽध्यायः

आत्मप्रतिदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

आत्मप्रतिकृतिर्नाम यथोक्तं कस्यचित्पुरा । तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि दानं मानविवर्धनम् ।।१
दानकालः सदा तस्य मुनिभिः परिकीर्तितः । पुण्यैःपुण्यादिभिः पार्थ प्राप्यते जीवितैर्न च ।।२
लोहजां प्रकृतिं भव्यां कारयित्वात्मनो नृप । अभीष्टवाहनगतामिष्टालंकारसंयुताम् ।।३
अभीष्टलोकसहितां सर्वोपस्करसंयुताम् । ततः पट्टपटीवस्त्रैश्छादितां रत्नभूषिताम् ।।४
कुंकुमेनानुलिप्तांगीं कर्पूरागुरुवासिताम् । स्त्री चेद्ददाति शयने शयितां कारयेत्स्वयम् ।।५

होने पर (उस शय्या दान के प्रभाव से) स्वर्ग लोक में पूजित होता है। उत्तम विमान पर महाप्रलय पर्यन्त अप्सरायें उसकी समुचित सेवा करती हैं। पाण्डुनन्दन ! इस प्रकार अमल शय्या को दान करने वाला पुरुष जो समस्त सौख्य का विधान कहा गया है, स्वर्गमें विकल्प बाधाओं से रहित सुखानुभव करता है।२१-२३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के सम्वाद में
शय्यादान विधि वर्णन नामक एक सौ चौरासीवाँ अध्याय समाप्त।१८४।

अध्याय १८५

आत्मप्रतिदान विधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें आत्मप्रतिकृति (अपनी प्रतिमा) का दान जो मान बढ़ाने वाला है, पहले किसी को बता भी चुका हूँ, इस समय बता रहा हूँ। पार्थ! मुनियों के सज्जनोंके निमित्त उस दान का काल भी बताया है क्योंकि पुण्य समय पुण्य द्वारा ही प्राप्त होता है न कि जीवित ही रहने पर। नृप! लोहद्वारा अपनी भव्य आहुति का निर्माण कराये, जो अभीष्ट वाहन युक्त अलंकारभूषित, इष्ट जनसमेत, समस्त साधन सम्पन्न, वह पटी वस्त्रसे आच्छन्न, रत्न भूषित, कुंकुम से अनुलिप्त, कपूर अगरु से सुवासित हो। स्त्री यदि दान करना चाहती है तो अपनेहाथो उसे शयन शय्या पर स्थापित कराकर और जो कुछ

---

१. सकलसौख्यनिधानभूतम्।

यद्यदिष्टतमं किंचित्तत्सर्वं पार्श्वतो न्यसेत् । उपकारकरं स्त्रीणां स्वशरीरे च यद्भवेत् ॥६
तत्सर्वंस्थापयेत्पार्श्वे स्वयं संचित्य चेतसि । एतत्सर्वं मेलयित्वा स्वे स्वे स्थाने निधाय च ॥७
पूजयित्वा लोकपालान्गृहान्देवीं विनायकम् । तत शुक्लांबरः स्नात्वा गृहीतकुसुमांजलिः ॥८
इममुच्चारयेन्मंत्र विप्रस्य पुरतो बुधः[१] । आत्मनः प्रतिमा चेयं सर्वोपस्करसंयुता ॥९
सर्वरत्न[२]समायुक्ता तव विप्र निवेदिता । आत्मा शंभुः शिवः शौरिः शक्रः सुरगणैर्वृतः ॥१०
तस्मादात्मप्रदानेन ममात्मा सुप्रसीदतु । इत्युच्चार्य ततो दद्याद्ब्राह्मणाय युधिष्ठिर ॥११
ब्राह्मणश्चापि गृह्णीयात्कोदादिति च कीर्तयन् । ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥१२
विधिनानेन राजेन्द्र दानमेतत्प्रयच्छति । यः पुमानथ वा नारी शृणुयत्फलमाप्नुयात् ॥१३
साग्रं वर्षशतं दिव्यं स्वर्गलोके सुरैर्वृतः । अभीष्टफलदानेन ह्यभीष्टफलभाग्भवेत् ॥१४
यत्रैवोत्पद्यते जंतुः प्राप्ते कर्मक्षये पुनः । तत्रैव सर्वकामानां फलभाग्भवते नृपः ॥१५
इष्टबंधुजनैः सार्द्धं न वियोगं कदाचन । प्राप्नोति पुरुषो राजन्स्वर्गे चानंत्यमश्नुते ॥१६

यश्चात्मनः प्रतिकृतिं वरवाहनस्थां हैमीं विधाय धनधान्यसमाकुलां च ।
सोपस्करं द्विजवराय ददाति भक्त्या चंद्रार्कवत्स दिवि भाति हि राजराजः ॥१७

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवाद
आत्मप्रतिकृतिदानविधिवर्णनं नाम पञ्चासीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८५

अन्य अभीष्ट वस्तु हो तथा स्त्रियों के शरीर के उपकरण जो वस्तु हो, उन सभी को उसके पार्श्व भाग में स्थापित करते हुए अन्य आवश्यक वस्तुओं का विशेष ध्यान रखे। सभी वस्तुओं को वहाँ अपने-अपने स्थान रख कर लोकपाल, गृह, देवी, विनायक देवों की अर्चना के अनन्तर शुक्र वस्त्रधारण किये हाथ में पुष्पाञ्जलि लिए ब्राह्मण के सम्मुख इन मन्त्रों का उच्चारण करे—विप्र! सर्वसाधन सम्पन्न और समस्त रत्नों से भूषित यह अपनी प्रतिमा तुम्हें अर्पित की गयी है, आत्मा ही शम्भु, शिव, देवों समेत इन्द्र और शौरि है अतः इस आत्मप्रदान से मेरी आत्मा प्रसन्न हो युधिष्ठिर! ऐसा कहकर वह प्रतिमा ब्राह्मण को अर्पित करे।१-११। ब्राह्मण भी 'कोदात' इति इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक उसका ग्रहण करे। अनन्तर प्रदक्षिणा और नमस्कार करके विसर्जन करे।१२। राजेन्द्र! इस विधान द्वारा दान करने पर उस स्त्री या पुरुष को जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, बता रहा हूँ, सुनो! स्वर्गलोक में दिव्य सौ वर्ष तक देवों समेत इस अभीष्ट फल दान करने के नाते अभीष्ट फल का भागी होता है। नृप! जन्तु (जीव) जहाँ उत्पन्न होता है, कर्मक्षीण होने पर पुनः वहाँ ही समस्त कामनाओं का सुखानुभव करता है। राजन्! इष्टजनों से उसका कभी वियोग ही नहीं होता है और स्वर्ग में अनन्त सुखानुभव करता है। इस प्रकार अपनी सुवर्ण मूर्ति बना कर जो उत्तम वाहन पर स्थित और धनधान्य समेत हो, साधन सम्पन्न उसे भक्तिपूर्वक ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करने या वह मनुष्य आकाश स्थित सूर्य चन्द्र की भाँति यहाँ राजराज (महाराज) होकर सुशोभित होता है।१३-१७।

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
आत्मप्रतिदानविधि वर्णन नामक एक सौ पचासीवाँ अध्याय समाप्त।१८५।

---

१. बुधैः। २ सर्वसंपत्समायुक्ता।

अथ षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः
हिरण्याश्वदानविधिवर्णनम्
श्रीकृष्ण उवाच

सांप्रतं संप्रवक्ष्यामि हिरण्याश्वविधिं परम् । यस्य प्रसादात्पुरुषः शाश्वतं फलमश्नुते ।।१
पुण्यं दिनमथासाद्य पात्रं वापि गुणाधिकम् । शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वमाशताच्च नरोत्तम ।।२
खलीनालंकृतमुखं कारयेद्धेमवाजिनम् । मुखरं सोन्नतस्कंधं दृढजानुं सवालधिम् ।।३
स्थापयेद्वेदिमध्ये तु कृष्णाजिनतिलोपरि । कौशेयवस्त्रसंवीतं कुङ्कुमेन विलेपितम् ।।४
सम्पूज्य कुसुमैः श्वेतैश्चणकान्विनिवेद्य च । ततः पर्वसमीपे तु गृहीतकुसुमाञ्जलिः ।।५
इममुच्चारयेन्मन्त्रं पुराणोक्तं यतव्रतः । [1]नमस्ते सर्वदेवेश वेदाहरणलम्पटः ।।६
वाजिरूपेण मामस्मात्पाहि संसारसागरात् । त्वमेव सप्तधा भूत्वा छन्दोरूपेण [2]भास्करम् ।।७
यस्माद्धारयसे[3] लोकानतः पाहि सनातन । एवमुच्चार्य तं राजन्विप्राय प्रतिपादयेत् ।।८
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा प्रणिपत्य विसर्जयेत् । अनेन विधिना राजन्हिरण्याश्वमलङ्कृतम् ।।९
दत्त्वा पापक्षयाद्भानोर्लोकमाप्नोति[4] शाश्वतम् । तस्मिन्नहनि भुंजीत तैलक्षारविवर्जितम् ।।१०
पुराणश्रवणं तद्वत्कारयेद्भोजनादनु[5] ।।११

अध्याय १८६
सुवर्णनिर्मित अश्वदान-विधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें इस समय सुवर्ण निर्मित अश्व की प्रतिमाका दान विधान बता रहा हूँ । नरोत्तम! किसी पुण्य दिवस में किसी गुणी सत्पात्र को यथाशक्ति तीन पल से लेकर सौ पल तक सुवर्ण की निर्मित वह प्रतिमा, जो उत्तम खजीन (लगाम) से भूषित, उन्नत स्कंध, दृढं जानु (घुटने) और वोलधि समेत हो, वेदी के मध्यभाग में कृष्णमृग और तिल के ऊपर रेशमी वस्त्र से आच्छन्न और कुंकुम से अनुलिप्त कर प्रतिष्ठित करे । श्वेत पुष्प से पूजित कर (अश्व के) भक्षणार्थ चना अर्पित करे। अनन्तर! उस पर्व के समय हाथ में पुष्पाञ्जलि लेकर संयम पूर्वक इस पुराण के मंत्र का उच्चारण करे—सर्वदेवेश तथा अश्वरूप से वेद के अपहरण करने वाले लम्पट! इस संसारसागर से मेरी रक्षा करो। सनातन! सातरूपों में विभक्त होकर छंदोरूप से भास्कर और लोकों को धारण करते हो, अतः मेरी रक्षा करो । राजन्! ऐसा कहकर उसे ब्राह्मण को अर्पित करते हुए प्रदक्षिणा तथा नमस्कार करके विसर्जन करे।१-८। राजन्! इस विधान द्वारा अलंकृत हिरण्याश्व का दान करने वाला पाप विनाश पूर्वक सूर्य का अक्षय लोक प्राप्त करता है। पुनः उस दिन तेल नमक रहित भोजन कर पश्चात् पुराण श्रवण करे। नरेन्द्र! किसी पुण्य

---

१. त्वया जितं जगत्सर्वे त्वत्खुराकांतिता मही ।। वाचिरूप नमस्तुभ्यं पाहि संसारसागरात् । २. वर्तसे । ३. भावयसे । ४. अभ्येति । ५. राजन्कारयेन्नियतात्मना । ६. अभिपूजितात्मा ।

इत्थं हिरण्याश्वविधिं करोति यः सुपुण्यमासाद्य दिनं नरेंद्र।
विमुक्तपापः स पुरं मुरारेः प्राप्नोति सिद्धैरभिपूजितं[1] यत् ॥१२
इति पठति य इत्थं हैमवाजिप्रदानं सकलकलुषमुक्तः सोऽश्वयुक्तेन भूपः।
कनकमयविमानेनार्कलोकं प्रयातस्त्रिदशपतिवधूभिः पूज्यते हर्म्यभोगैः ॥१३
यो वा शृणोति पुरुषोऽल्पमथ वा स्मरेद्वा हैमाश्वदानमभिनंदति दीयमानम्।
सोऽपि प्रयाति हतकल्मषशुद्धदेहः स्थानं पुरंदरमहेश्वरलोकजुष्टम् ॥१४

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
हिरण्याश्वदानविधिवर्णनं नाम षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८६

अथ सप्तासीत्यधिकशततमोऽध्यायः

हिरण्याश्वरथदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि तव पाण्डुकुलोद्वह । पुण्यं हेमरथं नाम महापातकनाशनम् ॥१
पुण्येऽह्नि विप्रकथिते स्वनुलिप्ते गृहाङ्गणे । कृष्णाजिनतिलान्कृत्वा काञ्चनं स्थापयेद्रथम् ॥२
चतुरस्रं महाभाग कारयेत् सकूबरम् । ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा गृहीतप्रग्रहं शुभम् ॥ ॥३
इन्द्रनीलेन कुम्भेन ध्वजरूपेण संयुतम् । लोकपालाष्टकोपेतं पद्मरागदलान्वितम् ॥४

अवसर पर इस हिरण्याश्व विधान सुसम्पन्न करने वाला मनुष्य पाप मुक्त होकर सिद्धों से पूजित कृष्ण लोक की प्राप्ति करता है। इस भाँति इस सुवर्णाश्व विधान को पढ़ने वाला भी पाप मुक्त होकर अश्व युक्त उस सुवर्ण मय विमान द्वारा स्वर्ग पहुँचकर देवाङ्गनाओं से सुसेवित होता है। उसी भाँति इस हिरण्याश्व आख्यान का श्रवण या स्मरण करने वाला पुरुष जो इस दान का सतत समर्थन करता है शुद्ध शरीरहोकर इन्द्र लोक की प्राप्ति करता है।९-१४

श्री भविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
हिरण्याश्वदानविधान वर्णन नामक एक सौ छियासीवाँ अध्याय समाप्त।१८६।

अथ अध्याय १८७

हिरण्याश्वरथदान विधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—पाण्डुकुलोद्वह! मैं तुम्हें उस पुण्य हेम का विधान बता रहा हूँ, जो महान् पातकों का नाश करता है। ब्राह्मण की अनुज्ञा द्वारा किसी पुण्य दिन गोबर से लिपे पुते गृहाङ्गण में काले चौकोर चार चक्र (चक्के) और धुरा, आदि समेत दृढ़ हो, तथा अग्र भाग में ब्रह्मा बैठकर (घोड़े की) शुभ रस्सी (लगाम) पकड़े हो। उसके सात इन्द्र नील मणि भूषित कलश, जो ध्वज रूप उसमें संयुक्त हो, पद्मराग दल के ऊपर स्थित आठों लोकपाल, चार पूर्ण कलश और अट्ठारह प्रकार के धान्य स्थापित

---

१. अभिपूजितात्मा।

चत्वारः पूर्णकलशा धान्यान्यष्टादशैव तु । कौशेयवस्त्रसंवीतमुपरिष्टाद्वितानकम् ॥५
मध्ये तु फलसंयुक्तं पुरुषेण समन्वितम् । योगयुक्तः पुमान्कार्यस्तं च तत्राधिवासयेत् ॥६
एवंविधं पूजयित्वा माल्यगन्धानुलेपनैः । चक्ररक्षावुभौ तस्य कार्यौ विश्वकुमारकौ ॥७
पुण्यं कालं ततः प्राप्य स्नातः सम्पूज्य देवताः । त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुसुमांजलिः ॥८
शुक्लमाल्याम्बरधर इमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥९

नमोनमःपापविनाशनाय विश्वात्मने [१]देवतुरङ्गमाय ।
धाम्नामधीशाय भवाभवाय रथस्य दानान्मम देहि शान्तिम् ॥१०
वस्वष्टकादित्यमरुद्गणानां त्वमेव धाता परमं निधानम् ।
यतस्ततो मे हृदयं प्रयातु धर्मैकतानत्वमघौघनाशात् ॥११
इति तुरगरथप्रदानमेतद्भवभयसूदनमत्र यः करोति ।
सकलुषपटलैर्विमुक्तदेहः परममुपैति पदं पिनाकपाणेः ॥१२
देदीप्यमानवपुषा च जितप्रभावमाक्रम्य मण्डलमखण्डलचण्डभानोः[२] ।
सिद्धांगनानयनयुग्मनिपीयमानवक्त्राम्बुजेभवेन चिरं सहास्ते ॥१३
इति पठति शृणोति वा य एतत्कनकतुरङ्गरथप्रदानमस्मिन् ।
न स नरकपुरं व्रजेत्कदाचिन्नरकरिपोर्भवनं प्रयाति भूयः ॥१४

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
हिरण्याश्वरथदानविधिवर्णनं नाम सप्तासीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८७

करना चाहिए और ऊपर रेशमी वस्त्र की चाँदनी (चँदोवा) से विभूषित भी ।१-५। उसके मध्य भाग में फल समेत पुरुष को प्रतिष्ठित करके, जिसका योग मुक्त निर्माण किया गया हो, उसका अधिवासन कराये । माला, गंध, अनुलेपन आदि से उसकी अर्चना करके चक्के की रक्षा के निमित्त दो विश्वकुमार की स्थापना करे । तदुपरांत पुण्यकाल के समय स्नान, देवपूजन और रथ की तीन प्रदक्षिणा करके शुक्ल वस्त्र धारण किये हाथ में पुष्पाञ्जलि लिए इस मंत्र का उच्चारण करे—पापविनाशी, विश्वात्मा देव (वेद) रूपी तुरङ्गम को नमस्कार है, जो अधीश्वर (विष्णु) का धाम तथा संसार से मुक्त करता है । इस रथ दान से मुझे शांति प्रदान करने की कृपा करे ! आठों वसु, आदित्य एवं मरुद्गणों के तुम धाता, परमनिधान हो अतः मेरे पाप समेत को नष्ट कर मेरे हृदय को धर्म मय करने की कृपा करो । इस भाँति संसारमुक्त होने के निमित्त अश्व रथ का प्रदान करने वाला मनुष्य समस्त पापों से रहित होकर पिनाकपाणि (शिव) का उत्तम लोक प्राप्त करता है । और देदीप्मान शरीर धारण कर इन्द्र और प्रचण्ड सूर्य के प्रभाव को आक्रान्त करते हुए सिद्धाङ्गनाओं के नेत्र (कटाक्ष) और मुखादि के रसास्वादन ब्रह्मा के साथ चिरकाल तक प्राप्त करता है । इस प्रकार सुवर्ण निर्मित अश्व रथ के आख्यान को पढ़ने या सुनने वाला मनुष्य कभी-भी नरक गामी नहीं होता है । अपितु नरक रिक्त (शिव) लोक की प्राप्ति करता है ।६-१४

श्री भविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
हिरण्याश्वरथदानविधि में वर्णन नामक एक सौ सतासीवाँ अध्याय समाप्त ।१८७।

---

१. वेदतुरङ्गमाय । २. अखण्डलदण्डभानो ।

अथाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

कृष्णाजिनदानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

कृष्णाजिनप्रदानस्य विधिकालं ममानघ । ब्राह्मणं च समाचक्ष्व तत्र मे संशयो महान् ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

युगादिषूपरागेषु सङ्क्रांतौ दिनसंक्षये । माध्यां वा ग्रहपीडासु [१]दुःस्वाप्नाद्भुतदर्शने ।।२
देयमेतन्महानंत द्रव्यमात्रागमे तथा । आहिताग्निर्द्विजो यश्च वेदवेदाङ्गपारगः ।।३
पुराणाभिरतो दक्षो देयं तस्मै च पार्थिव । यथा येन विधानेन तन्मे निगदतः शृणु ।।४
गोमयेनोपलिप्ते तु शुचौ देशे नराधिप । आदावेव समास्तीर्य शोभितं वस्त्रमाविकम् ।।५
कर्तव्यं रुक्मशृङ्गु तद्रौप्यदन्तं तथैव च । मुक्तादाम्ना तु लाङ्गूलं तिलच्छन्नं तथैव च ।।६
तिलैः कृत्वा शिरो[२] राजन्वाससाच्छादयेद्बुधः । सुवर्णेनाभितः कुर्यादलङ्कुर्याद्विशेषतः ।।७
पुष्पैश्चैव विधानेन नैवेद्येन च पूजयेत् । रत्नैरेवं यथा शक्त्या तस्य दिक्षु च विन्यसेत् ।।८
कांस्यपात्राणि चत्वारि तेषु दद्याद्यथाक्रमम् । घृतं क्षीरं दधि क्षौद्रमेवं दत्त्वा यथाविधि ।।९
ततः सर्वसमीपे तु मन्त्रमेतमुदरीयेत् । कृष्णः कृष्णमलो देव कृष्णाजिनवरस्तथा ।।१०

अध्याय १८८

कृष्णमृगचर्म दान-विधि-वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—अनघ! कृष्ण मृग चर्म का प्रदान काल और विधान तथा ब्राह्मण भी मुझे बताने की कृपा करें, क्योंकि इसमें मुझे महान् संशय उत्पन्न हो रहा है ! १

श्री कृष्ण बोले—युगारम्भ की तिथि, ग्रहणकाल, संक्रान्ति, दिनक्षय, माघपूर्णिमा, ग्रहपीडा के समय तथा दुःस्वप्न दर्शन होने पर या जिस समय विशेष धनागम हो, इस मह दान को सुसम्पन्न करे । पार्थिव! दान ग्रहण करने वाला ब्राह्मण भी चाहिए, जो अग्निहोत्री वेद-वेदाङ्ग पारगामी, पुराणवेत्ता तथा कर्मकुशल हो । विधान भी मैं बता रहा हूँ, सुनो! नराधिप! किसी पवित्र देश में गोवर से लिपी हुई भूमि पर सर्व प्रथम ऊनी वस्त्र विछाकर सुवर्ण की सींग, चाँदी, दाँत, मोतियों की रस्सी, तिलाच्छन्न पूंछ तथा तिल द्वारा शिर का निर्माण कर वस्त्र से ढ़ाँक दे । विशेषकर सुवर्ण से उसके चारों ओर अलंकृत कर पुष्प, गंध, फल, नैवेद्य, आदि से अर्चा करते हुए उसके चारों ओर यथाशक्ति रत्नों से भूषित करे ।२-८। चार काँसे के पात्रों में क्रमशः घृत, क्षीर, दधि , एवं मधु रख कर उसका सविधान दान करके इस मंत्र का उच्चारण करे—देव! आप काले रंग और कृष्ण मंत्र वाले उत्तम कृष्णजिन (काले चर्म) हैं,

---

१. दुःखदुःखस्वप्नदर्शने । २. सुशिखरम् ।

त्वद्दानापास्तपापस्य प्रीयतां मे नमोनमः । त्रयस्त्रिंशत्सुराणां च आधारे त्वं व्यवस्थितः ।।११
कृष्णोऽसि मूर्तिमान्साक्षात्कृष्णाजिन नमोऽस्तु ते । एवं प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य पुनः पुनः ।।१२
तत्प्रतिग्राहकं विप्रं वेदवेदाङ्गपारगम् । स्नातं वस्त्रयुगाच्छन्नं[1] स्वशक्त्या वाप्यलङ्कृतम् ।।१३
प्रतिग्रहस्व तस्योक्तः पुच्छ देशे स्वयंभुवा । प्रतिग्रहप्रदग्धस्य विप्रस्य च स भारत ।।१४
न पश्येद्वदन पश्चान्न चैनमभिभाषयेत् । अनेन विधिना दत्त्वा यथावत्कृष्णमार्गणम् ।।१५
समग्रं भूमिदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः । कृष्णाजिनतिलान्कृत्वा हिरण्यं मधुसर्पिषी ।।१६
ये प्रयच्छन्ति विप्राय न[2] ते शोच्या भवन्ति वै । सर्वान्ल्लोकांश्चरंत्येव कामचारा वियद्गताः ।।१७
आभूतसंप्लवं यावत्स्वर्गं प्राप्ता न संशयः । कृष्णाजिनसमं दानं न चास्ति भुवने त्रये ।।१८
प्रतिग्रहोऽपि पापीयानिति वेदविदो विदुः । अवस्थात्रितये यच्च त्रिधा यत्समुपार्जितम् ।।१९
तत्सर्वं नाशमायाति दत्त्वा कृष्णाजिनं क्षणात् ।।२०

कृष्णेक्षणं कृष्णमृगस्य चर्म दत्त्वा द्विजेन्द्राय समाहितात्मा ।
यथोक्तमेतन्मरणं न शोचेत्प्राप्नोत्यभीष्टं मनसः फलं यत् ।।२१

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कृष्णाजिनदानविधिव्रतवर्णनं नाम नामाष्टासीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८८

तुम्हारे दान से मेरा समस्त पाप नष्ट हो गया है अतः मैं वार-वार आपको नमस्कार कर रहा हूँ । तैंतीस (कोटि) देवों के तुम आधार बनाये गये हो, मूर्तिमान् साक्षात् कृष्ण हो अतः कृष्णाजिन को नमस्कार है । इस भाँति प्रदक्षिणा समेत वार-वार नमस्कार करके वेद-वेदाङ्ग का पारगामी उस प्रतिग्राही (दान लेने वाले) ब्राह्मण को भी स्नानोपरांत दो वस्त्र और यथाशक्ति भूषण भूषित करे । भारत! प्रतिग्राही को ग्रहण समय उसके पुच्छ प्रदेश का स्पर्श करना चाहिए ऐसा ब्रह्मा ने बताया है । प्रतिग्रह ग्रहण करने वाले उस ब्राह्मण का प्रतिग्रह ग्रहण करने पर उसके मुख का दर्शन न करे और न उससे सम्भाषण करे । इस विधान द्वारा कृष्णचर्म का दान करने वाला मनुष्य भूमिदान का समस्त फल प्राप्त करता है ।९-१५½। कृष्णाजिन, तिल के ऊपर सुवर्ण, मधु-घृत समेत ब्राह्मण को अर्पित करने या वह कभी शोक नहीं करता है अपितु समस्त लोकों में आकाश मार्गसे यथेच्छ विचरण करता है । उसे महाफल पर्यन्त स्वर्ग में निवास प्राप्त होता है क्योंकि कृष्णाजिन के समान न अन्य दान तीनों लोक में नहीं बताया गया है किन्तु वेद वादियों का कहना है कि उसका प्रतिग्राही पापी होता है । शिशु, युवा और वृद्धावस्था में किये हुए समस्त पाप कृष्णाजिन दान द्वारा उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं । इस प्रकार ध्यानमग्न रहकर काले नेत्र वाले मृगके चर्म किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करने पर मरण समय शोक रहित और अभीष्ट फल की प्राप्ति करता है ।१६-२१।

श्री भविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
कृष्णाजिनदानविधि वर्णन नाम एक सौ अट्ठासीवाँ अध्याय समाप्त ।१८८।

---

१. वस्त्रपरिच्छन्नम् । २. ते च स्वर्गमवाप्नुयुः ।

अथैकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः

हेमहस्तिदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

कथयिष्ये महाराज हेमहस्तिरथं तव ! यस्य [1]प्रदानाद्भवनं वैष्णवं याति मानवः ।।१
पर्वकालं समासाद्य संक्रांतौ ग्रहणेऽपि वा । कुर्याद्देवरथाकारं रथं मणिविभूषितम् ।।२
वलभीभिर्विचित्राभिश्चतुश्चक्रसमन्वितम् । चतुर्भिर्हेममातंगैर्युक्तं हेमविभूषितम् ।।३
ध्वजे च गरुडं कुर्यात्कूबराग्रे विनायकम् । लोकपालाष्टकोपेतं ब्रह्मार्कशिवसंयुतम् ।।४
मध्ये नारायणोपेतं लक्ष्मीपुष्टिसमन्वितम् । कृष्णाजिनतिलद्रोणं कृत्वा तं स्थापयेद्रथम् ।।५
नानाफलसमायुक्तमुपरिष्टाद्वितानकम् । कौशेयवस्त्रसंवीतमम्लानकुसुमार्चितम् ।।६
कुर्यात्पंचपलादूर्ध्वमाशताच्च नरोत्तम । ततः स्नात्वा समभ्यर्च्य पितृन्देवान्यथाविधि ।।७
त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य [2]गृहीतकुसुमाञ्जलिः । इममुच्चारयेन्मन्त्रं सर्वसौख्यप्रदायकम् ।।८
नमोनमः [3]शङ्करपद्मजार्कलोकेशविद्याधरवासुदेवैः ।
त्वं सेव्यसे वेदपुराणयज्ञैस्तेजो हि नः स्यंदन पाहि तस्मात् ।।९

अध्याय १८९

सुवर्णनिर्मितहाथी के रथ-दान का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—महाराज! मैं तुम्हें सुवर्ण निर्मित गजरथ का दान बता रह हूँ, जिसके प्रदान करने से मनुष्य को विष्णु लोक प्राप्त होता है। किसी पर्व, संक्रान्ति, या ग्रहण के समय देव रथ के समान उस रथ को बना कर मणिभूषित करे। विचित्र वलभी और चारों चक्र (चक्के) से युक्त उस रथ में सुवर्ण भूषित चार गजराजों को नियुक्त करे। उसकी ध्वजा में गरुड, कूवर (धुरा) में विना यक, आठों लोकपाल, ब्रह्मा, सूर्य, शिव का स्थापित करते हुए मध्यभाग में लक्ष्मी समेत नारायण की स्थापना करे। कृष्ण जिन (काले मृग चर्म) और द्रोण प्रमाण तिल के ऊपर उस रथ को प्रतिष्ठित करते हुए उसे अनेक भाँतिके फल और वितान (चँदोवा), नूतन रेशमी वस्त्र से भूषित कर पुष्पों से अर्पित करे।१-६। नरोत्तम! उसके निर्माण में पाँच पल से लेकर सौ पल तक सुवर्ण होना चाहिए। पश्चात् स्नान,देव-पितृ पूजन करके तीन प्रदक्षिणा समेत हाथ में पुष्पाञ्जलि इस मंत्र का उच्चारण करके जिससे समस्त सौख्य की प्राप्ति होती है।७-८। स्यन्दन! शंकर, ब्रह्मा, सूर्य, लोक पाल, विद्याधर, शिव, विष्णु आदि समस्त देवगण तुम्हारी सेवा करते हैं, उसी प्रकार वेद, पुराण और यज्ञ भी तुम्हारी शुश्रुषा में लगे रहते हैं अतः मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ, मेरे तेज की रक्षा करो! प्राचीन एवं अत्यन्त गुह्य जिस पद की प्राप्ति के लिए, जो

---

१. प्रसादात्। २. गृहीत्वा कुसुमांजलिम्। ३. शंकरलोकपाललोकेशविद्याधरवासुदेवैः।

यत्तत्पदं परमगुह्यतमं[1] पुराणमानंदहेतुगणरूपविमुक्तबन्धाः ।
योगैकमानसदृशो मुनयः समाधौ पश्यंति तत्त्वमसि नाथ रथेति रूढः[2] ।।१०
यस्मात्त्वमे भवसागरसंप्लुतानामानंदभांडचितमध्यगपानपात्रम् ।
तस्मादघौघशमनेन कुरु प्रसारं चामीकरेभरथ माधव संप्रदानात् ।।११
इत्थं प्रणम्य कनकेभरथप्रदानं यः कारयेत्समलपापविमुक्तदेहः ।
विद्याधरामरमुनींद्रगणाभिजुष्टं प्राप्नोत्यसौ पदमतीन्द्रियमिन्दुमौलेः ।।१२
कृतदुरितवितानातुष्टिसद्वह्निपालव्यतिकरकृतदेहोद्वेगभानोऽपि बन्धून् ।
नयति च पितृपौत्रान्रौरवादप्यशेषात्कृतगजरथदानः शाश्वतं सद्म विष्णोः ।।१३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
हेमहस्तिरथदानविधिवर्णनं नामैकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१८९

अथ नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

विश्वचक्रदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

पुनरेव प्रवक्ष्यामि दानमत्यद्भुतं तव । विश्वचक्रमिति ख्यातं सर्वपापविनाशनम् ।।१

परमानन्द रूप हैं, मुक्त बन्धन योगी गण, जो योग द्वारा सदैव ब्रह्म-ध्यान में मग्न रहते हैं, समाधि में तत्त्वमसि (जीव ही ब्रह्म है) रूप में तुम्हीं को देखते हैं। इस संसार सागर से पार होने वाले मनुष्यों के लिए तुम आनन्द विधान पात्र हो, जो मध्य में आवश्यकतानुसार प्राप्त होता रहे, सुवर्ण निर्मित गजरथ! तुम साक्षात् माधव रूप हो अतः मेरे ऊपर पापनाशपूर्वक प्रसन्न होने की कृपा करो। इस प्रकार प्रणाम पूर्वक वह कनक गजरथ का, जो विद्याधर, देवगण और मुनियों समेत स्थापित हो, दान करने वाला समस्त पापों से युक्त होकर चन्द्रमौलि (शिव) का पद प्राप्त करता है। इस (संसार) में पाप का चंदोवा (विस्तृत पाप का) करने वाले प्राणी भी, जो पाप की अधिकताओं के नाते अप्रसन्न अग्नि आदि देवों द्वारा विकृत देह (कुष्टी) हो गया हो, इस गजरथ दान द्वारा अपने बन्धुओं -पितृ-पौत्रों आदि को रौरवादि नरकों से बचा कर विष्णु का शाश्वत पद प्राप्त करता है।९-१३

श्री भविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
हेमहस्ति रथदान विधि वर्णन नामक एक सौ नवासीवाँ अध्याय समाप्त।१८९।

अध्याय १९०

विश्वचक्रदान-विधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें विश्वचक्र नामक अत्यन्त अद्भुत दान बता रहा हूँ, जो प्रख्यात और

---

१. पुण्यतमं मुरारेः । २. मूढः ।

तपनीयस्य शुद्धस्य विशुद्धात्माथ कारयेत् । श्रेष्ठं पलसहस्रेण तदर्द्धेन तु मध्यमम् ॥२
तस्याप्यर्द्धं कनिष्ठं स्याद्विश्वचक्रमुदाहृतम् । तथा विंशत्पलादूर्ध्वमशक्तोऽपि निवेदयेत् ॥३
षोडशारं ततश्चक्रं भ्रमन्नेम्यष्टकावृतम् । नाभिपद्मे स्थितं विष्णुं योगारूढं चतुर्भुजम् ॥४
शङ्खचक्रेऽस्य पार्श्वस्थे देव्यष्टकसमावृतम् । द्वितीयावरणे तद्वत्पूर्वतो जलशायिनम् ॥५
अत्रिर्भृगुर्वशिष्ठश्च ब्रह्मा कश्यप एव च । मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहोथ वामनः ॥६
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की च ते दश । तृतीयावरणेगौरी मनुभिर्वसुभिर्युता ॥७
चतुर्थे द्वादशादित्या वेदाश्चत्वार एव च। पञ्चमे पञ्च भूतानि रुद्राश्चैकादशैव तु ॥८
लोकपालाष्टकं षष्टे दिङ्मातंगास्तथैव च । सप्तमेऽस्त्राणि मङ्गलानि च कारयेत् ॥९
अन्तरांतरतो देवान्विन्यसेदष्टमे पुनः । दशहस्तं ततः कृत्वा पताकातोरणान्वितम् ॥१०
मण्डपं कुण्डमेकं च कारयेद्वस्त्रसंयुतम् । चतुर्हस्ता भवेद्वेदी मध्ये तस्यास्ततो न्यसेत् ॥११
कृष्णाजिनोपरिगतं विश्वचरं विधानतः । तथाष्टादशधान्यानि रसाश्च लवणादयः ॥१२
पूर्णकुम्भाष्टकं तद्वद्वस्त्रमाल्यविभूषितम् । फलानि दापयेत्पार्श्वे पञ्चवर्णं वितानकम् ॥१३
अधिवास्य ततश्चक्रं पश्चाद्धोमं समाचरेत् । चातुश्चरणिकांस्तत्र ब्राह्मणांश्चतुरोऽथ वा ॥१४
होमं कुर्युर्जितात्मानो वस्त्राभरणभूषिताः । होमद्रव्यसमोपेताः स्रुक्स्रुवैस्ताम्रभाजनैः ॥१५
चक्रप्रतिष्ठितानां तु सुराणां होम इष्यते । तल्लिङ्गैर्जुहुयान्मन्त्रैः सर्वोपद्रवशांतये ॥१६

समस्त पापों का नाश करता है। अग्नि संतृप्त एवं अत्यन्त विशुद्ध सुवर्ण का वह चक्र बनाना चाहिए। इसके निर्माण में सहस्र पल सुवर्ण की मूर्ति श्रेष्ठ, तदर्ध भाग की मध्यम और उसके भी आधे भाग का विश्व चक्र कनिष्क कहा जाता है तथा असमर्थ मनुष्य को भी उसके निर्माण में बीस पल से अधिक ही सुवर्ण लगाना चाहिए। इस प्रकार उस चक्र के, जिसमें सोलह आर आरामन आठ युद्धियों से आवृत नेमि (मूड़ी) हो, नाभि कमल पर योगारुढ़ चतुर्भुज विष्णु, पार्श्व भाग में शंख-चक्र, स्थित करना चाहिए, जो आठ देवियों से घिरा रहता है। दूसरे आवरण में उसी भाँति पूर्व की ओर जलशायी विष्णु, अत्रि, भृगु, वशिष्ठ, ब्रह्मा, कश्यप, मत्स्य, कूर्म (कच्छप) वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम राम, कृष्ण बुद्ध, और भगवान् का कल्कि रूप स्थित रहता है। तीसरे कक्षा में मनुष्यों और वसुओं समेत गौरी, चौथे कक्ष में द्वादशसूर्य एवं चारों वेद, पाँचवे में पाँचो महाभूत, एकादश रुद्र और आठों लोकपाल, छठें में दशो दिग्गज, सातवें में मंगलसमेत समस्त अरुणवृन्द और आठवें में बीच-बीच में देवगणों को स्थापित करना चाहिए। अनन्तर पताका और तोरणों से भूषित दश हाथ का वस्त्र सुसज्जित मण्डप बनाकर उसमें चार हाथ की वेदी की रचना करते हुए एक कुण्ड की रचना करें।१-११। तदुपरांत कृष्ण मृगचर्म के ऊपर सविधान विश्व चक्र की स्थापना करके अष्टादश प्रकार के धान्य, लवणादि रस, वस्त्र माला से भूषित आठ पूर्ण कलश तथा पार्श्व भाग में फल और ऊपर पंचाङ्ग के वितान (चँदोवा) से सुसज्जित करे। पुनः चक्र का अधिवासन करके हवन कार्य सुसम्पन्न करने के लिए चार चातुश्चरणिक ब्राह्मणों को वस्त्राभरण से भूषित कर वहाँ नियुक्त करें। जो होम की सामग्री और स्रुक, स्रुवा तथा ताम्रपात्रों से सुसज्जित हों। समस्त उपद्रवों के शान्त्यर्थ उन संयमी ब्राह्मणों द्वारा चक्र में प्रतिष्ठित देवों के निमित्त उनके लिंग मन्त्रों

ततो मंगलशब्देन स्नातः शुक्लांबरो गृही । होमाधिवासनांते तु गृहीतकुसुमांजलिः ॥१७
इममुच्चारयन्मंत्रं कृत्वा तत्रिः प्रदक्षिणम् । ननो विश्वंभरायेति विश्वचक्रात्मने नमः ॥
परमानंदरूपी त्वं पाहि नः पापकर्दमात् ॥१८
तेजोमयमिदं यस्मात्सदा पश्यंति सूरयः । हृदि तत्र गुणातीतं विश्वचक्रं नमाम्यहम् ॥१९
वासुदेव स्थितं चक्रं तस्य मध्ये तु माधवः । अन्योन्याधाररूपेण प्रणमामि स्थिताविह ॥२०
विश्वचक्रमिदं यस्मात्सर्वपापहरं हरेः । आयुधं चाधिवासश्च तस्माच्छान्तिं ददातु मे ॥२१
इत्यामंन्य च यो दद्याद्विश्वचक्रं विमत्सरः । विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके महीयते ॥२२
वैकुण्ठलोकमासाद्य चतुर्बाहुनरावृतम् । सेव्यतेऽप्सरसां सङ्घैस्तिष्ठेत्कल्पशतत्रयम् ॥२३
प्रणमेद्वाथ यः कृत्वा विश्वचक्रं दिनेदिने । तस्यायुर्वर्द्धते दीर्घं[1] लक्ष्मीस्तु विपुला भवेत् ॥२४
तस्माच्चक्रं सदा कार्यं दार्गं च स्वगृहे नरैः । कांचनं वाथ रौप्यं वा तदभावेऽथ ताम्रजम्[2] ॥२५

इति सकलजगत्सुराधिवासं वितरति यस्तपनीयषोडशारम् ।
हरिभुवनगतः स सिद्धसङ्घैश्चिरमधिगम्य नमस्तेऽप्सरोभिः ॥२६
अथ सुदर्शनतां प्रयाति शत्रोर्मदनसुदर्शनतां च कामिनीभ्यः ।
स सुदर्शनकेशवानुरूपः कनकसुदर्शनदानदग्धपापः ॥२७

के उच्चारण पूर्वक आहुति प्रदान कराये। पश्चात् मांगलिक शब्दों को कोलाहल में स्नान और शुक्लाम्वर धारण कर वह गृहस्थ हवन कार्य और अधिवासन होने के उपरांत हाथ में पुष्पाञ्जलि लिए तीन प्रदक्षिणा करते हुए इस मंत्र का उच्चारण करे—विश्वचक्रात्मक विश्वम्भर देव को नमस्कार है। देव! आप परमानन्द रूप हैं, अतः इस पाप कीचड़ से मेरी रक्षा करें। सूरिगण (विद्वद्गण) अपने हृदय में तेजोमय रूप में सदैव जिसका दर्शन करते हैं अतः उस गुणातीत विश्वचक्र को मैं नमस्कार करता हूँ। भगवान् वासुदेव में वह चक्र स्थित है और उस चक्र के मध्य में माधव की स्थिति है अतः यहाँ पर अन्योन्य (एक दूसरे) के आधार पर स्थित उन दोनों को मैं नमस्कार करता हूँ। समस्त पापों को अपहरण करने वाला यह विश्व चक्र भगवान् विष्णु का आयुध और अधिवास रूप है अतः मुझे शान्ति प्रदान करने की कृपा करे।१२-२१। इस भाँति आमन्त्रित कर विश्व चक्र का दान करने वाला पुरुष, समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णु लोक में पूजित होता है। वहाँ वैकुण्ठ लोक में चार भुजाओं वाले विष्णु के साथ रहते हुए अप्सराओं के साथ तीन सौ कल्प सुखोपभोग करता है। इस प्रकार विश्व चक्र का निर्माण करके प्रतिदिन नमस्कार करने वाले पुरुष के दीर्घायु पूर्वक विपुल लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को अपने घर सुवर्ण, चाँदी अथवा ताँबे का ही विश्व चक्र बनाकर स्थापित करना चाहिए। इस प्रकार शुद्ध काचन निर्मित उस सोलह आठ (आरागन) वाले विश्व चक्र का, जिसमें समस्त देवों का निवास रहता है, दान करने वाला पुरुष, विष्णुलोक पहुँचकर अप्सराओं से नमस्कार पूर्वक सुसेवित होता है। शत्रुओं के लिए सुदर्शन, कामिनियों के लिए मदन, सुदर्शन रूप होने वाला वह सुदर्शन चक्र विष्णुका स्वरूप है, ऐसे सुवर्ण निर्मित सुदर्शन चक्र के दानी का समस्त पाप दग्ध हो जाता है। इसलिए गुरुतर पाप करने वाले

---

१. नित्यम्। २. ताम्रकम्।

कृतगुरुदुरितोऽपि षोडशारप्रवितरणात्प्रवराकृतिर्मुरारेः ।
अभिभवति भवोद्भवानि भित्वा भवमभितो भवने भवानि भूयः ॥२८

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
विश्वचरदानविधिवर्णनं नाम नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९०

अथैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

भुवनप्रतिष्ठावर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

प्रतिष्ठा शाश्वती केन दानेन मधुसूदन । इह लोके परे चैव कीर्तिरत्यद्भुता तथा ॥१
सद् गतिं च तथा यांति सर्वे पितृपितामहाः । संततिश्चाक्षया लोके विभवश्चपि पुष्कलः ॥२
स्थापनात्सर्वदेवानां कथं स्याद्यदुनंदन । तदाचक्ष्व महाभाग दानेन नियमेन वा ॥३

श्रीकृष्ण उवाच

साधु पृष्टं त्वया राजँल्लोकानामुपकारकम् । शृणुष्वैकमना भूत्वा गुह्यं परममुत्तमम् ॥४
भुवनानां समासेन प्रतिष्ठां कथयामि ते । देवासुरास्तथा नागा गंधर्वा यक्षराक्षसाः ॥५
प्रेताः पिशाचा भूताश्च स्थापिताः स्युर्न संशयः । कारकस्यानुकूले तु मुहूर्ते विजये शुभे ॥६
पुण्ये तिथौ शिवक्षेत्रे दिने सौम्यग्रहान्विते । सप्त हस्तं पटं कृत्वा चतुरस्रं सुसंहतम् ॥७

प्राणी भी जो मुरारि विष्णु के उस रूपान्तर चक्र का, जो सोलह आरों से सज्जित रहता है, दान कराना है तो संसार दुःखों से मुक्त होकर शिवलोक में बार-बार निवास करता है ।२२-२८।

श्री भविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
विश्वचक्रदानविधि वर्णन नामक एक सौ नब्बेवाँ अध्याय समाप्त ।१९०।

अध्याय १९१

भुवनप्रतिष्ठा का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—मधुसूदन! किस दान द्वारा शाश्वती (नियमित) प्रतिष्ठा, लोक-परलोक में अद्भुतकीर्ति, पितृ-पितामह आदि की सद्गति, लोक में अक्षय सन्तान, अत्यन्त धन की प्राप्ति होती है। महाभाग, यदुनन्दन! वह देवों के स्थापन अथवा किसी दान या नियम द्वारा सफल होता है मुझे बताने की कृपा करें ।१-३

श्री कृष्ण बोले—राजन्! तुमने लोकोपकारार्थ यह अत्यन्त उत्तम प्रश्न किया है, इस परमोत्तम रहस्य को मैं बता रहा हूँ सावधान होकर सुनो! मैं तुम्हें भुवनों की प्रतिष्ठा भी विवेचन पूर्ण बताऊँगा, जिससे देव, असुर, नाग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, प्रेत, पिशाच, भूत का स्थापन ही होगा, इसमें संदेह नहीं। कर्ता अपने अनुकूल शुभ एवं विजय मूहूर्त में जो पुण्य तिथि एवं सौम्य ग्रहों से युक्त हो,

अभिन्नांगं दृढं शुद्धं[1] शुद्धस्फटिकवर्चसम् । तस्मिन्सर्वाणि राजेन्द्र भुवनानि च लेखयेत् ॥८
चातुर्वर्ण्यकमानीय विचित्रं चित्रकर्मणि । युवानं व्याधिरहितं भव्यं चित्रकरं शुभम् ॥९
संपूजयित्वा यत्नेन दिव्यवासोविभूषणैः। तस्मिन्कर्मणि युञ्जीत पठ्यमानैर्द्विजोत्तमैः ॥१०
शङ्खभेरीनिनादैश्चगीतमङ्गलनिस्वनैः । पुण्याहजयघोषैश्च ब्राह्मणान्पूजयेत्ततः[2] ॥११
आचार्यमपि संपूज्यवासोभिर्भूषणैस्तथा । प्रारम्भं कारयेद्राजन्पटे तस्मिन्यथोदितम् ॥१२
मध्ये च लेखयेद्राजञ्जंबूद्वीपं [3]सविस्तरम् । तस्य मध्ये स्थितो मेरुर्मेरोरुपरि देवताः ॥१३
दिशासु लोकपालानां पुरोऽष्टौ सुरसंयुताः । सप्तद्वीपवती पृथ्वी सप्त चैव कुलाचलाः ॥१४
सागराः सप्त चात्रैव नद्यो ह्रदाः सरांसि च । पातालाः सप्त चात्रैव सप्त स्वर्गविभूतयः ॥१५
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां भुवनानि यथाक्रमम् । ध्रुवमार्गस्तथादित्यो ग्रहतारागणैर्युतः ॥१६
देवदानवगन्धर्व यक्ष राक्षसपन्नगाः । ऋषयो मुनयो गावो देवमातर एव च ॥१७
सुपर्णाद्याश्च विहगा नागाश्चैरावतादयः । दिग्गजाष्टकमत्रैव लेखयेत्पदमण्डितम् ॥१८
एवंविधं पटं राजन्कारयित्वा सुशोभनम् । दशोत्तरेण पयसा एतत्सर्वसमावृतम् ॥१९
तत्तेजसा वृतं भूयो महतोग्रेण सर्वतः । तेजस्तद्वायुना वायुराकाशेन समावृतः ॥२०
भूतादिना तथाकाशं भूतादिर्महता तथा । अव्यक्तेन महांश्चैव व्याप्तो वै शुद्धिलक्षणः ॥२१
अव्यक्तं तमसा व्याप्तं तमश्च रजसा तथा । रजः सत्त्वेन संव्याप्तं त्रिधा प्रकृतिरुच्यते ॥२२

किसी मरुस्थान में सात हाथ का विस्तृत तथा चौकोर वस्त्र रखे, जो सुसंहत (घना), अभिनाङ्ग, दृढ़, शुद्ध और शुद्ध स्फटिक की भाँति स्वच्छ हो । उस चित्र को सुसम्पन्न करने के लिए चार प्रकार के रङ्ग एकत्र कर किसी युवा चित्रकार की, जो शुभ मूर्ति एवं भव्य हो, दिव्य वस्त्राभूषणों द्वारा सुपूजा करे । पुनः उसी कर्म में वेदपाठी ब्राह्मणों की नियुक्ति करके शंख, नगाड़े, का गम्भीर विवाद, गीत-मङ्गलों की ध्वनि और पुण्याहवाचन एवं जयघोष के कोलाहल में ब्राह्मणों की अर्चा करे ।४-११। राजन्! प्रथम वस्त्राभूषणों द्वारा आचार्य की पूजा करके उस वस्त्र में यथोचित का उल्लेख कराये । राजन्! उसके मध्यभाग में विस्तृत जम्बूद्वीप की रचना कर उसके मध्यमें मेरु पर्वत और उसके ऊपर देवों के निवास स्थान, दिशाओं में आठों लोक पाल, सातों द्वीप समेत पृथ्वी, सातों पर्वत, सातों सागरों तथा उसी स्थान नदियों, सरोवरों, अन्य जलाशयों की रचना पूर्वक, पाताल आदि सातों लोक, सातों स्वर्ग के विभूति समस्त लोक, क्रमशः ब्रह्म, विष्णु, एवं शिव का आवास स्थान, ध्रुव का मार्ग, ग्रहों और तारागणों समेत, सूर्य, देव, दानव, गन्धर्व, पक्ष, राक्षस, नाग, ऋषि, मुनि, गौएँ देवमाताएँ, सुवर्ण (गरुड़) आदि पक्षीगण, ऐरावत, आदि गजराजगण, तथा आठों पदमन्त्र दिग्गजों की सुस्पष्ट रचना करे ।१२-१८। राजन्! इस भाँति के उस सुशोमन पटको उत्तर की ओर दश जलाशयों से आच्छन्न (घेर) कर उसे महान् एवं उग्र तेज से आवृत कर तेज को वायुसे, वायु को आकाश से, भूतों (तन्मात्राओं) से आकाश, महान् से पञ्चमहाभूत, और अव्यक्त द्वारा वह महान्, आवृत है, जो शुद्धि लक्षण सम्पन्न होकर चारों ओर व्याप्त है ।१९-२१। वह अव्यक्त तम से आवृत है और वह तम रजसे सत्त्व से व्याप्त है, यही तीन रूप से प्रकृति कहा जाता

---

१. सूत्रं शङ्खस्फटिकवर्चसम् । २. पूज्य यत्नतः । ३. सुविस्तरम् ।

एवमावरणोपेतं ब्रह्मांडमखिलं नृप । पुरुषेणावृतं सर्वं सबाह्याभ्यन्तरं तथा ।।२३
एतत्सर्वं पटस्थं तु कृत्वा चित्रमयं सुधीः । कार्तिक्यामयने चैव विषुवे ग्रहणेऽपि वा ।।२४
पूजयेद्येन विधिना तत्समासेन मे शृणु । परतो मण्डपं तस्य विचित्रं कारयेद्बुधः ।।२५
तत्र काण्डानि चत्वारि चतुरस्राणि कारयेत् । द्वौ द्वौ नियोजयेत्तेषु ब्राह्मणौ वेदपारगौ ।।२६
यज्ञोपकरणोपेतौ वस्त्राभरणभूषितौ । होमं कुर्युर्जितात्मानो मौनिनः सर्व एव ते ।।२७
पटे स्थितानां देवानां [१]मन्त्रैरोङ्कारपूर्वकैः । यजमानस्ततः स्नातः सर्वालङ्कारभूषितः ।।२८
आचार्येणसमं कुर्यात्पूजामग्रे पटस्य तु । पुष्पैर्वस्त्रैः समभ्यर्च्य मन्त्रमेतमुदीरयेत् ।।२९
ब्रह्मांडोदरवर्तीनि भुवनानि चतुर्दश । तानि सन्निहितान्यत्र पूजितानि भवन्तु मे ।।३०
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो ह्यादित्या वसवस्तथा । पूजिताः सुप्रतिष्ठाश्च भवन्तु सततं मम[२] ।।३१
एवं पटन्तं संपूज्य कृत्वा चैव प्रदक्षिणम् । भक्ष्यान्नानाविधांश्चैव नैवेद्यं तत्र दापयेत् ।।३२
शङ्खतूर्यनिनादैश्च जागरं कारयेत्ततः । ब्रह्मघोषै विचित्रैश्च गीतमङ्गलनिस्वनैः ।।३३
पुनः प्रभाते विमले स्नात्वा शुचिरलङ्कृतः । पूर्वोक्तविधिनानेन पुनः संपूज्यं तं पटम् ।।३४
ऋत्विक्पूजां ततः कृत्वा गोशतेन विचक्षणः । अथवा गोयुगं[३] दद्यादेकैकस्यात्यलङ्कृतम् ।।३५
उपानहौ तथा छत्रं गृहोपकरणानि च । यद्यदिष्टतमं किंचित्सर्वं दद्याद्विचक्षणः ।।३६

है। नृप! इस प्रकार आवरणों से युक्त यह निखिल ब्रह्माण्ड बाहर-भीतर सभी स्थान पुरुष से उपवृत है। वह सुधी (विद्वान्), उस वस्त्र में इस प्रकार के चित्र का निर्माण कराकर कार्तिक पूर्णिमा, अयन, विषुव, ग्रहण के समय जिस विधान द्वारा अर्चा सुसम्पन्न करे मैं विवेचक पूर्ण बता रहा हूँ, सुनो! उसके समक्ष विचित्र मण्डप का निर्माण करके उसमें चौकोर चार कुण्डों को बना कर उस प्रत्येक कुण्ड पर दो-दो वेदपारगामी ब्राह्मणों को नियुक्त करे, जो यज्ञ के समस्त साधनों से सम्पन्न वस्त्राभूषणों से भूषित हों वे सभी संयमी ब्राह्मण मौन होकर हवन कार्य सुसम्पन्न करें। पद में प्रतिदिन देवों के निमित्त ओंकार पूर्वक आहुति प्रदान करने के अनन्तर सम्मान तथा समस्त अलंकारों से अलंकृत होकर यजमान आचार्य के साथ पुष्प-वस्त्रादि द्वारा उस पट की सर्व प्रथम पूजा करते हुए इस मंत्र का उच्चारण करें—'ब्रह्माण्ड के मध्य में प्रतिष्ठित चौदहो भुवन यहाँ स्थित रह मेरे इस पूजन द्वारा पूजित हों'। उसी भाँति ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, आहित्यगण, वस्त्र गण, आदि सभी देव मेरे इस पूजन द्वारा विस्तार पूजित और प्रतिष्ठा हों।२२-३१। इस प्रकार प्रदक्षिणासमेत उस पट की अर्चा करके अपने भाँति के भक्ष्य अन्न, नैवेद्य अर्पित करे। अनन्तर शंख, तुरुही, आदि के शकों गीत, मंगल और ब्रह्म घोष द्वारा उसका जागरण कराकर विमल प्रातःकाल में स्थान, पवित्रतापूर्ण और अलंकारों से अलंकृत होकर पूर्वोक्त विधान द्वारा उस पट की पूजा करे। पश्चात् उस यजमान् विद्वान् को सौ गौएँ द्वारा आखिजों की अर्चा या प्रत्येक को सर्वाभरण भूषित दो-दो गौएँ अर्पित करे। उसी प्रकार उपानह, छत्र, गृह के समस्त साधन और अपनी अभीष्ट सभी वस्तुएँ अर्पित करनी चाहिए। अनन्तर गजराज जुते हुए या उसके प्रभाव मेर घोड़े से सुसज्जित रथ पर

---

१. मेरोः। २. मम सर्वदा। ३. गोयुतम्।

ततः प्रकल्पयेद्यानं नागयुक्तमलङ्कृतम् । अलाभे वाजिसंयुक्तं पताकाध्वजशालिनम् ।।३७
सहस्रं दक्षिणां दत्त्वा ततस्तत्रारोपयेत्पटम्[1] । ब्राह्मणं वा रथेनाथ नयेद्देवालयं बुधः ।।३८
तत्रस्थं स्थानयेन्नीत्वा गन्धैः पुष्पैश्च धूपयेत् । तत्रापि दद्यान्नैवेद्यं कुर्याच्चापि महोत्सवम् ।।३९
यस्मिन्नायतने तस्य प्रतिष्ठा क्रियते नृप । पूजा तत्रापि महती कर्तव्या भूतिमिच्छता ।।४०
चन्द्रातपत्रं घण्टां च ध्वजाद्यं दापयेत्सुधीः । यथाशक्त्या च राजेन्द्र गुरुं गौरवयन्त्रितः ।।४१
अभ्यर्च्य दक्षिणाभिश्च ब्राह्मणांश्च विसर्जयेत् । दीनांधकृपणानां च भोजनं चाप्यवारितम् ।।४२
तस्मिन्नहनि दातव्यं मित्रस्वजनबंधुषु । अनेन विधिना यस्तु श्रद्दधानो जितेन्द्रियः ।।४३
कुर्यान्नरो वा नारी वा प्रतिष्ठां सार्वलौकिकीम् । स्थापितं तु भवेत्तेन त्रैलोक्यं सचराचरम् ।।४४
कुलं च तारितं तेन सत्पुत्रेण युधिष्ठिर । यावच्च देवतागारे पटस्तिष्ठति पूजितः ।।४५
[2]तावदस्याक्षया कीर्तिस्त्रैलोक्ये संप्रसर्पति[3] । दानेन कीर्तिर्यावंति[4] मर्त्यलोकेषु गीयते ।।४६
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते । गन्धर्वैर्गीयमानस्तु अप्सरोगणसेवितः ।।४७
वसेद्हृष्टमनाः स्वर्गे यावदिन्द्राश्चतुर्दश । पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य राजा भवति धार्मिकः ।।४८
पुत्रपौत्रान्वितः श्रीमान्दीर्घायुरतिधार्मिकः । दश जन्मानि राजेन्द्र जायमानः पुनः पुनः ।।४९
श्रूयते च पुरा राजा रजिर्नाम महाबलः । चक्रवर्ती दृढमतिर्जितारिर्विजितेन्द्रियः ।।५०

जो पताका-ध्वजाओं से भूपित हो, सहस्र की दक्षिणा पूर्वक वह पट आरोपित करे अथवा उस रथ द्वारा ब्राह्मण के देवालय लाकर स्थापन करते हुए गन्ध, पुष्पादि द्वारा उसकी पूजा करे । नैवेद्य अर्पित करते हुए वहाँ भी महोत्सव करना चाहिए । नृप ! जिस देवालय में उसकी प्रतिष्ठा न कर सके, वहाँ भी उस ऐश्वर्य इच्छुक यजमान को पूजा-सम्भार महान् ही करना चाहिए । राजेन्द्र! चाँदी का छत्र, घंटा और ध्वजा आदि यथाशक्ति गुरु को अर्पित करते हुए दक्षिणा द्वारा ब्राह्मणों को सुसम्मानित कर विसर्जन करके और उस दिन दीन, अंधे, कृपण व्यक्तियों को अनिवार्य भोजन देते हुए मित्र एवं स्वजन आदि बन्धुओं को भी भोजन कराये । इस भाँति इस विधान द्वारा श्रद्धा और संयमपूर्वक उस सार्वलौकिकी प्रतिष्ठा को सुसम्पन्न करने वाला पुरुष-स्त्री कोई हो, उसने सचराचर तीनों लोक की स्थापना की इसमें संशय नहीं । युधिष्ठिर! उस सत्पुत्रने अपने कुल का भी उद्धार किया है ऐसा जानना चाहिए । उस देवालय में वह पट जितने दिन वर्तमान रहता है, उतने समय तक उसकी अक्षय कीर्ति तीनों लोकों में विचरण करती है । दान द्वारा इस मर्त्यलोक में जितने दिन उसकी कीर्ति फूलती-फलती है, उतने सहस्र वर्ष वह स्वर्ग लोक में सुसम्मानित होता है और गन्धर्व गण उसके गुणगान करते हैं तथा अप्सरायें सुसेवा करती हैं ।३२-४७। चौदह इन्द्रों के समय तक सहर्ष स्वर्ग में सुखानुभव करने के उपरांत पुण्यक्षीण होने के नाते पुनः यहाँ धार्मिक राजा होता है, जो पुत्र-पौत्र समेत दीर्घायु, श्रीमान् और अति धार्मिक होता है । राजेन्द्र! दश जन्म तक वह इसी भाँति सपरिवार सुखी जीवन व्यतीत करता है । सुना जाता है कि प्राचीन काल में रजि नामक एक महाबलवान् राजा राज करता था, जो चक्रवर्ती, तीक्ष्ण बुद्धि, शत्रुजेता,

---

१. संस्थापयेत्पटम् । २. तस्य । ३. प्रतिसर्पति । ४. वर्षसहस्राणीत्यग्रिमेणाप्यत्राप्याहृतेम्नान्वयः ।

महीं येन पुरा दत्ता देवराजस्य संगरे । जित्वा दैत्यबलं सर्वं दत्तवांस्त्रिदिवं पुनः ॥५१
महेन्द्राय महाभाग सर्वं निहतकंटकम् । स कदाचित्सभामध्ये यावदास्ते महीपतिः ॥५२
तावत्तत्राजगामाथ पुलस्त्यो ब्रह्मणः सुतः । शिष्यैः परिवृतः श्रीमान्वेदवेदांगपारगैः ॥५३
दत्तार्घस्तु तदा तेन उपविष्टो वरासने । शुशुभे परया लक्ष्म्या पितामह इवापरः ॥५४
अथ तं पूजयित्वाग्रे मधुपर्केण पार्थिवः । पप्रच्छ विनयोपेतः कथामात्मोद्भवां नृपः ॥५५
भगवन्केन दानेन तपसा नियमेन वा । श्रीरियं मम धर्मज्ञ तेजश्चाव्याहतं भुवि ॥५६
बलं पुष्टिं धनं धान्यं पुत्रपौत्रं तथोत्तमम् । एतन्मे सर्वमाचक्ष्व सर्वज्ञोऽसि द्विजोत्तम ॥५७

पुलस्त्य उवाच

शृणु राजन्कथामेतामात्मीयां सुमनोहराम् । कथ्यमानां मया सम्यक्सप्तमे तव जन्मनि ॥५८
कथेयमभिनिर्वृत्ता शृणुष्वैश्वर्यवर्द्धिनीम् । आसीस्त्वं वैश्यजातीयो पुरा चैव नरोत्तम ॥५९
बहुभृत्यपरीवारो धनधान्यसमन्वितः । धार्मिकः सत्यनिरतो वणिग्धर्मरतः सदा ॥६०
तत्र त्वया श्रुता धर्माख्यानगतेन वै । दानाश्रया बहुविधा व्रतानि विविधानि च ॥६१
प्रसंगेन कदाचिच्च प्रतिष्ठा भौवनी त्वया । श्रुता राजेन्द्र विधिवत्कृता बहुपुण्यदा ॥६२
फलेन तेन जातोऽसि सप्त जन्मानि भूपतिः । कीर्तिस्ते प्रथिता लोके बलं च चापि महत्तव ॥६३
अपराण्यपि जन्मानि सप्त राजा भविष्यसि । पश्चाद्योगिकुले भूत्वा निर्वाणं समवाप्स्यसि ॥६४

एवं संयमी था । उसने प्राचीन काल में पृथ्वी दान किया था और देवराज के संग्राम में दैत्य सेनाओं को पराजित कर देवेन्द्र! को निष्कण्टक स्वर्ग भी अर्पित किया था । महाभाग! एक बार सभा मध्य सिंहासन पर बैठे हुए राजा से सम्मुख ब्रह्मपुत्र पुलस्त्य महर्षि का आगमन हुआ, जो वेद-वेदाङ्ग के पारगामी शिष्यों से, सदैव सुशोभित रहते थे । राजा द्वारा छिपे गये उस अर्घ्यादि को ग्रहण कर उस उत्तम आसन पर दूसरे पितामह की भाँति भी सम्पन्न मुनि के सुशोभित होने पर स्वयं राजा ने मधुपर्क से उनकी पूजा की और अन्त में विनीत-विनम्र होकर अपने वैभव के विषय में उनसे पूँछा—भगवन्! किस दान, नियम, अथवा तप द्वारा मुझे इस प्रकार की श्री, अव्याहत तेज, बल, पुष्टि, धन, धान्य, तथा उत्तम पुत्र-पौत्र की प्राप्ति हुई है । धर्मज्ञ, द्विजोत्तम! आप सर्वज्ञ हैं अतः इसे मुझे बताने की कृपा करें ।४८-५७

पुलस्त्य बोले—राजन्! मैं तुम्हें इस आत्मीय एवं सुमनोहर कथा का वर्णन सुना रहा हूँ, जो तुम्हारे इस सातवें जन्म में कथा के रूप में प्रकट और ऐश्वर्य बढ़ाने वाली है, सुनो! नरोत्तम! आज से पिछले सातवें जन्म में तुम काशी में उत्पन्न वैश्य कुल में महान् सेठ थे, अनेक सेवक परिवार से युक्त रहने पर भी तुम धार्मिक, सत्य प्रेमी रहते हुए अपने वैश्य (व्यापार) धर्म में सदैव लगे रहते थे । वहाँ तुमने अनेक धर्मस्थानों द्वारा धर्मो के अनेक रूप का श्रवण किया, जिसमें अनेक भाँति के दान बहु भाँति के विविध व्रत बताये गये थे । उसी प्रसङ्ग में तुमने भुवनों की प्रतिष्ठा (पट-दान) भी सुनकर उसे सविधि सुसम्पन्न किया था, जो बहुत पुण्य प्रदान करती है ।५८-६२। राजेन्द्र! उसी के फलस्वरूप तुम सात जन्म तक राजा हुए, तुम्हारी कीर्ति लोकों में प्रख्यात हुई और तुम्हें महान् फल की प्राप्ति हुई है । इसीलिए अन्य सात जन्मों में भी राजा होकर राजसुखों का अनुभव कर अन्त मे योगिकुल में उत्पन्न होने पर निर्वाण पद की प्राप्ति

एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि । नारी वा पुरुषो वापि प्रतिष्ठां भौवनीं तु यः ।।६५
प्रकरोति विधानेन कृतकृत्यो भवेद्बुधः[1] । इत्युक्त्वा स मुनिस्तत्र राजानं शंसितव्रतः ।।६६
ययावदर्शनं तत्र सूर्यं वैश्वानरोपमः ।।६७

धर्मं विवर्द्धयति कीर्तिशतानि धत्ते कामं प्रसाधयति पापमपाकरोति ।
ख्याता मयेयमधुना तव दाननिष्ठातन्नास्तियन्नकुरुतेभुवनप्रतिष्ठा ।।६८

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
भुवनप्रतिष्ठावर्णनं नामैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९१

अथ द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

नक्षत्रदानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

श्रुतो दानविधिः सर्वः प्रसादात्ते रमाधव । नक्षत्रदानस्येदानीं दानकल्पं प्रचक्ष्व मे ।।१

श्रीकृष्ण उवाच

अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् । देवक्याश्चैव संवादं देवर्षेर्नारदस्य च ।।२

करोगे । इस विषय का प्रश्न तुमने जो मुझसे पहले किया था, उसकी सविस्तार व्याख्या मैंने तुम्हें सुना दी है । इस भाँति भुवनप्रतिष्ठा (पट-दान) को सविधि सुसम्पन्न करने वाले पुरुष या स्त्री कृतकृत्य हो जाते हैं । राजा से ऐसा कहकर वेदानुगामी मुनि पुलस्त्य जो सूर्य, एवं अग्नि की भाँति तेजोमय दिखायी देते थे, उसी स्थान अन्तर्निहित हो गये । इस भाँति मैंने तुम्हें जो यह-दान प्रतिष्ठा (पट-दान) सुनाया है, सुसम्पन्न होने पर धर्म की वृद्धि करती है, सैकड़ों भाँति की कीर्ति फैलाती है, कामनाएँ सफल करती हैं, और पापों को नष्ट करती हैं और अन्य कोई ऐसा सुख नहीं है जिसे यह प्रदान नहीं कर सकती है ।६३-६८

श्रीभविष्य महापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
भुवनप्रतिष्ठा-वर्णन नामक एक सौ इक्यानवेवाँ अध्याय समाप्त ।१९१।

अध्याय १९२

नक्षत्रदान-विधि का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—रमाधव! आप की कृपा से मैंने समस्त दानों का विधान जान लिया है अतः इस समय मुझे नक्षत्र-दान का सविधान दान कल्प बतायें ।१

श्रीकृष्ण बोले—इस विषय का तुम्हें एक प्राचीन इतिहास बता रहा हूँ, जिसमें देवकी और देवर्षि

---

१. भुवि ।

द्वारकामनुसंप्राप्तं नारदं देवदर्शनम् । पप्रच्छेदं तथा प्रश्नं देवकी धर्मदर्शिनी ॥३
तस्याः संपृच्छ्यमानाया देवर्षिर्नारदस्ततः[१] । आचष्ट विधिवत्सर्वं यत्तच्छृणु विशांपते ॥४
नक्षत्रयोगं वक्ष्यामि सर्वपातकनाशनम् । कृत्तिकासु महाभाग पायसेन ससर्पिषा ॥५
सन्तर्प्य ब्राह्मणान्साधूँल्लोकान्प्राप्नोत्यनुत्तमान् । रोहिण्यां पाण्डवश्रेष्ठ मांसैरन्नेन सर्पिषा ॥६
संतर्प्य ब्राह्मणान्साधूँल्लोकान्प्राप्नोत्यनुत्तमान् । पयोऽन्नदानं दातव्यमानृण्यार्थं द्विजातये ॥७
दोग्ध्रीं सवत्सां तु नरो नक्षत्रे सोमदैवते[२] । दत्त्वा दिव्यविमानस्थः स्वर्गं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥८
आर्द्रायां कृशरां दत्त्वा तिलमिश्रां समाहितः । नरस्तरति दुर्गाणि सर्वाण्येव नरोत्तम ॥९
पूपान्पुनर्वसौ दत्त्वा घृतपूर्णान्सुपाचितान् । यशस्वी रूपसंपन्नः [३]सज्जनो जायते कुले ॥१०
पुष्ये तु काञ्चनं दत्त्वा कृतं वाकृतमेव वा । अनालोकेषु लोकेषु सोमवत्स विराजते ॥११
आश्लेषासु तथारौप्यं यः सुरूपं प्रयच्छति । सर्वभयविनिर्मुक्तः शास्त्रवानभिजायते ॥१२
मघासु तिलपूर्णानि वर्धमानानि मानवः । प्रदाय पशुमांश्चैव पुत्रवांश्च प्रजायते ॥१३
फाल्गुनीपूर्वसमये वडवां द्विजपुंगवे । दत्त्वा पुण्यकृतांल्लोकान्प्राप्नोति सुरसेवितान् ॥१४
उत्तराफाल्गुनीयोगे दत्त्वा सौवर्णपङ्कजम् । सूर्यलोकमवाप्नोति सर्वबाधाविवर्जितः ॥१५
हस्ते तु हस्तिनं दत्त्वा काञ्चनं शक्तितः कृतम् । यात्यसौ शक्रसदनं वरवारणधूर्गतः ॥१६

नारद का संवाद हुआ है । एक बार द्वारकापुरी में देवर्षि नारद के आगमन होने पर उन देवदर्शन को देख धर्ममूर्ति देवकी ने यही उनसे पूछा था । विशांम्पते! देवकी के पूँछने पर देवर्षि नारद ने उसके उत्तर में उन्हें जो कुछ बताया था उसे सविधि मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो! समस्त पातकों को विनष्ट करने वाला वह नक्षत्र योग कह रहा हूँ । महाभाग! कृत्तिका नक्षत्र में घृत पूर्ण पायस (खीर) से साधुओं और ब्राह्मणों को तृप्त करने पर उत्तम लोक की प्राप्ति होती है । पाण्डव श्रेष्ठ! उसी भाँति रोहिणी नक्षत्र में मांस और घृत समेत अन्न द्वारा साधुओं ब्राह्मण को तृप्त करने पर उत्तम लोक की प्राप्ति होती है । क्योंकि ऋणरहित होने के लिए ब्राह्मणों को खीर भोजन से तृप्त ही करना चाहिए ।२-७। मृगशिरा नक्षत्र में सवत्सा एवं दूध देने वाली गौ का दान करने से दिव्य विमान द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति होती है । नरोत्तम! आर्द्रा नक्षत्र में तिल मिश्रित कृशरान्न (खिचड़ी) दान करने से मनुष्यसमस्त कठिनाइयों को पार करता है । पुनर्वसु नक्षत्रमें घृत में भलीभाँति पकाये हुए पूआ के दान करने से अपने कुल में यशस्वी, रूपवान्, एवं सज्जन होता है । पुष्य नक्षत्र में केवल सुवर्ण दान से चाहे वह अन्य सुकृत किये हो, लोक-परलोक में चन्द्रमा की भाँति सुशोभित होता है । आश्लेषा नक्षत्र में चाँदी का दान करने पर सुरूप की प्राप्ति होती है और समस्त भय से मुक्त होकर वह शास्त्र मर्मज्ञ होता है । मघा नक्षत्र में तिल पूर्ण वर्धमान का दान करने पर मनुष्य पशु-पुत्र की प्राप्ति करता है । पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र में वडवा घोड़ी का दान ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करने पर देवों से सुसेवित पुण्य लोक की प्राप्ति होती है । उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में सुवर्ण-कमल का दान करने पर वह समस्त बाधारहित होकर सूर्यलोक की प्राप्ति करता है।८-१५। हस्त नक्षत्र में यथा शक्ति सुवर्ण निर्मित हाथी की प्रतिमा दान करने पर वह उत्तम कारण (गजराज) पर सुशोभित

---

१. तथा । २. मृगशीर्षे । ३. शर्कराम् ।

चित्रासु वृषभं दत्त्वा पुण्यानां पुण्यमुत्तमम् । चरत्यप्सरसां लोके मोदते नन्दने वने ॥१७
स्वातीषु च धनं दत्त्वा यदभीष्टमिहात्मनः । प्राप्नोति च शुभांल्लोकानिह लोके महद्यशः ॥१८
विशाखासु महाराज धुरंधरविभूषितम् । सोपस्करं च शकटं सधान्यं वस्त्रसंवृतम् ॥१९
दत्त्वा प्रीणाति स पितुः प्रेत्य चानन्त्यमश्नुते । न च दुर्गाण्यवाप्नोति रौरवादीनि मानवः ॥२०
दत्त्वा यथेष्टं विप्रेभ्यो गतिमिष्टां स [१]गच्छति । कम्बलान्यन्यनुराधर्क्षे दत्त्वा प्रावरणानि च ॥२१
स्वर्गे वर्षशतं साग्रमास्ते सुरगणैर्वृतः । कालशाकं च विप्रेभ्यो दत्त्वा मर्त्यः समूलकम् ॥२२
ज्येष्ठानुज्येष्ठतामेति गतिमिष्टां च गच्छति । मूले मूलफलं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यः समाहितः ॥२३
पितॄन्प्रीणयते सर्वान्गतिं प्राप्नोत्यनुत्तमाम् । अथ पूर्वास्वषाढासु दधिपात्राणि मानवः ॥२४
कुलवृत्तिरतोत्पन्ने ब्राह्मणे वेदपारगे । प्रदाय जायते प्रेत्य कुले च बहुभोगवान् ॥२५
पुत्रपौत्रैः परिवृतः पशुमान्धनवांस्तथा । उदमंथं ससर्पिष्कं प्रभूतमधुफाणितम् ॥२६
दत्त्वोत्तरास्वषाढासु सर्वान्कामानवाप्नुवात् । दुग्धंत्वभिहितो भागे दत्त्वा घृतमधुप्लुतम् ॥२७
धर्मनित्यो मनीषिभ्यः स्वर्गे वसति पुण्यभाक् । श्रवणे पुस्तकं श्रेष्ठं प्रददातीह यो नरः ॥२८
स्वेच्छया याति यानेन सर्वांल्लोकान्नसंशयः । गोयुगं च धनिष्ठासु दत्त्वा विप्राय मानवः ॥२९
सर्वत्र मानमाप्नोति यत्र यत्रेह जायते । तथा शतभिषायोगे दत्त्वा सागरुचन्दनम् ॥३०

होकर इन्द्र लोक का प्रस्थान करता है ।८-१६। चित्रा नक्षत्र में वृषभ (बैल) का दान करने वाला अप्सराओं के उस परमोत्तम एवं पुण्यप्रद नन्दन वन में यथेच्छ विचरण करता है । स्वामी मैं अपने अभीष्ट धन का दान करने वाला इस लोक में महान् यशकी प्राप्ति पूर्वक शुभ-परलोक की प्राप्ति होती है । महाराज! विशाखा नक्षत्र में शकट (गाड़ी या रथ) का, जो धुरंधर वैलों से भूषित, सामग्रीसमेत धान्य और वस्त्रों से वृत हो, दान करने वाला मनुष्य पितृलोक में अनन्त काल की सुख प्राप्ति करता है । तथा उसे रौरव आदि नरक दुर्ग की यात्रा नहीं करनी पड़ती है । पुनः ज्येष्टा नक्षत्र में ब्राह्मणों को उत्तम कम्बल अर्पित करने पर इष्ट गति को प्राप्ति होती है । ज्येष्ठा नक्षत्र में मूल समेत कालशाक का दान ब्राह्मणों को अर्पित करने पर स्वर्ग में सैकड़ों वर्षो तक देवों समेत सुखानुभव पूर्वक श्रेष्ठता और अभीष्ट गति की प्राप्ति होती है । मूल नक्षत्र में मूलफल ब्राह्मणों को अर्पित करने पर वह पितरों की तृप्ति पूर्वक उत्तम गति प्राप्त करता है ।१७-२३। पूर्वाषाढ़ नक्षत्र में दधिपूर्ण पात्र किसी कुलीन एवं उत्तम जीविका वाले के मर्मज्ञ ब्राह्मण को अर्पित करने पर वह मनुष्य उत्तम कुल में जन्म ग्रहण कर बहुभोगी होता है । और पुत्र-पौत्र समेत पशु एवं धन पूर्ण होता है । उत्तराषाढ नक्षत्र में घृत मिश्रित अन्न का दान करने वाला समस्त कामनाएँ सफल करता हूँ । अभिजित नक्षत्र में घृत-मधु समेत दुग्ध मनीषियों को अर्पित करने पर वह पुण्यात्मा स्वर्ग में निवास करता है । श्रवण नक्षत्र में श्रेष्ठ पुस्तक का दान करने वाला यथेच्छ मान द्वारा समस्त लोकों की प्राप्ति करता हैं इससे संशय नहीं । घनिष्ठा नक्षत्र में चार बैल, गौ ब्राह्मणों को अर्पित करने पर सभी स्थान वह सुसम्मानित होता है ।२४-२९½। शतभिषा नक्षत्र में अगरु समेत चन्दन का दान

---

१. ब्रह्मण्यः । २. विन्दति ।

प्राप्नोत्यप्सरसां लोके प्रेत्य गन्धाश्च शोभनान् । पूर्वभाद्रपदायोगे राजमाषान्प्रदापयेत् ॥३१
सर्वभक्षफलोपेतः स वै प्रेत्य सुखी भवेत्। रत्नमुत्तरयोगे तु सुवस्त्रं यः प्रयच्छति ॥३२
पितृन्प्रीणाति सकलान्प्रेत्य चानन्त्यमश्नुते । कांस्योपदोहनां धेनुं रेवत्यां यः प्रयच्छति ॥३३
स प्रेत्य कामानादाय दातारमुपगच्छति । रथमश्वसमायुक्तं दत्त्वाश्विन्यां नरोत्तम ॥३४
हस्त्यश्वरथसम्पूर्णे वर्चस्वी जायते कुले । भरणीषु द्विजातिभ्य तिलधेनुं प्रदाय वै ॥३५
गावः प्रभूताः प्राप्नोति नरः प्रेत्य यशस्तथा । इत्येष दक्षिणोद्देशः प्रोक्तो नक्षत्रयोगतः ॥३६
देवक्यै नारदेनैव मया च कथितस्तव । सर्वपापप्रशमनः सर्वोपद्रवनाशनः ॥३७
न चात्र कालनियमो नक्षत्रप्रक्रमस्तथा । वित्तं श्रद्धा च राजेन्द्र कारणं चात्र कथ्यते ॥३८

यद्यच्च ते भगवता कमलोद्भवस्य पुत्रेण दानमुदितं प्रसमीक्ष्य वेदान् ।
सद्यो[1] ददाति विभवे सति साधुवृत्ते किं तेन पार्थ न कृतं भवतीह लोके ॥३९

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
नक्षत्रदानविधिवर्णनं नाम द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९२

करने वाला अप्सराओं के लोक में उत्तम गंध की प्राप्ति करता है। पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र में राजमाष (उरद) का दान करने वाला समस्त भक्ष्य समेत स्वर्ग सुख प्राप्त करता है। उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में रत्न भूषित वस्त्र का दान करने वाला समस्त पितरों को तृप्त करते हुए स्वर्ग में अनन्त सुख की प्राप्ति करता है। रेवती नक्षत्र में कांसे की दोहनी युक्त धेनु का दान करने वाला मनुष्य अपनी समस्त कामनाओं को सफल करता है। नरोत्तम! अश्विनी नक्षत्र में घोड़े जुते हुए गाय। रथ का दान करने वाला हाथी घोड़े और रथ उस उत्तम कुल में उत्पन्न होकर तेजस्वी होता है। उसी प्रकार भरणी नक्षत्र में ब्राह्मणों को तिल धेनु प्रदान करने पर मनुष्य को प्रभूत गौओं की प्राप्तिपूर्वक यश की प्राप्ति होती है। इस दक्षिणादान के उद्देश्य से नक्षत्र योग की व्याख्या मैं तुम्हें सुना दिया, जो नारद ने देवकी से कहा था। वह समस्त पापों के शमन पूर्वक सम्पूर्ण उपद्रवों का विनाश करता है। राजेन्द्र! इस दान में काल नियम और नक्षत्रों का क्रम कारण नहीं है रिक्त वित्त और श्रद्धा कारण है। पार्थ! इस प्रकार उत्तम वृत्ति द्वारा उपार्जित धन के रहते इस दान को, जो वेदों को भलीभाँति देख कर ब्रह्म पुत्र भगवान् नारद ने बताया है, सुसम्पन्न करने वाला पुरुष इस लोक में कौन सुकृत नहीं सम्पन्न किया। अर्थात् उसने सभी सुकृत सम्पन्न कर लिया है।३०-३९।

श्री भविष्यमहापुराण के उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
नक्षत्रदानविधि वर्णन नामक एक सौ बानबेवाँ अध्याय समाप्त ।१९२।

---

१. सर्वः ।

अथ त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

तिथिदानवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

तिथिदानमिदानीं ते कथयामि युधिष्ठिर । सर्वपापप्रशमनं सर्वविघ्नविनाशनम् ॥१
मानसं वाचिकं चापि कर्मजं यदघं भवेत् । सर्वं प्रशममायाति दानेनानेन पाण्डव ॥२
श्रावणे कार्तिके चैत्रे[1] वैशाखे फाल्गुने तथा । सितपक्षात्प्रभृत्येव दातव्यं पुण्यवर्द्धनम् ॥३
वित्तं श्रद्धासुसम्पन्नं पात्रप्राप्तिस्तथैव च । दानकालः सदैवेह कथितस्तत्त्वदर्शिभिः ॥४
तीर्थे देवालये[2] गोष्ठे गृहे वानियतात्मवान्[3] । [4]यद्ददाति नरश्रेष्ठस्तदानंत्याय कल्पते ॥५
प्रतिपत्सु द्विजान्पूज्यान्पूजयित्वा प्रजापतिम् । सौवर्णमरविन्दं च कारयित्त्वाष्टपत्रकम् ॥६
कृत्वा चौदुम्बरे पात्रे सुगन्धघृतपूरिते । पुष्पैर्धूपैः पूजयित्वा विप्राय प्रतिपादयेत् ॥७
अनेन विधिना दत्त्वा कमलं कमलालयम् । ईप्सिताँल्लभते कामान्निष्कामो ब्रह्मसात्म्यताम्[5] ॥८
वह्निं पूज्य द्वितीयायां भूर्भुवःस्वरिति क्रमात् । तिलाज्येन शतं हुत्वा दत्त्वा पूर्णाहुतिं ततः ॥९
वैश्वानरं तु सौवर्णं स्थापयेत्ताम्रभाजने । गुडाज्यपूरिते राजंस्तोयपूर्णघटोपरि ॥१०

अध्याय १९३

तिथिदानवर्णन

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर! इस समय मैं तुम्हें तिथि दान का विधान बता रहा हूँ, जो समस्त पापों के शमन पूर्वक सम्पूर्ण विघ्नों का विनाश करता है। पाण्डव! इस दान द्वारा मानसिक, वाचिक और कायिक (शरीर जन्य) इन समस्त पापों का समूल नाश होता है। श्रावण, कार्तिक, चैत, वैशाख एवं फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष में पट पुण्य-वर्द्धन दान आरम्भ करना चाहिए। वित्त, श्रद्धा, सम्पन्न की प्राप्ति और दान-काल आदि सभी वस्तुएँ इस दान में तत्त्वदर्शियों ने सुस्पष्ट बता दिया है। किसी तीर्थ, देवालय, गोशाला, अथवा गृह में संयम पूर्वक दान करने वाला मनुष्य अनन्त सुख की प्राप्ति करता है।१-५। प्रतिपदा के दिन पूज्य ब्राह्मणों और प्रजापतियों के पूजनपूर्वक अष्ट दल वाला सुवर्ण निर्मित कमल सुगन्ध एवं घृतपूर्ण किसी गूलर के पात्र में स्थापित कर पुष्प-धूप आदि से पूजित कर किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करना चाहिए। क्योंकि इस विधान द्वारा कमला का निवास स्थान भूत कमल का दान करने पर उसे समस्त कामनाओं की सफलता पूर्वक निष्काम ब्रह्म का सायुज्यमोक्ष प्राप्त होता है। द्वितीया के दिन अग्नि पूजन पूर्वक भूर्भूवस्वः के क्रमानुसार तिल-घृत की सौ आहुति प्रदान कर पूर्णा-हुति प्रदान करे। अनन्तर सुवर्ण निर्मित वैश्वानर (अग्नि) की प्रतिमा गुड-घृत पूर्ण ताँबे के पात्र में

---

१. मासे। २. चायलने। ३. नियतात्मना। ४. यो ददाति नरश्रेष्ठ दानं च न्यायकल्पितम्। ५. ब्रह्म शाश्वतम्।

पूजयित्वा वस्त्रमाल्यैर्भक्ष्यभोज्यैरनेकधा । ततस्तं ब्राह्मणे दद्याद्वह्निर्मे प्रीयतामिति ।।११
यावज्जीवकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः । मृतो वह्निपुरं याति प्राहेदं नारदो मुनिः ।।१२
तृतीयायां महाराज राधां स्वर्णमयीं शुभाम् । स्थापयित्वा ताम्रपात्रे लवणोपरि विन्यसेत् ।।१३
जीरकं कटुकं चैव गुडं पार्श्वेषु दापयेत् । रक्तवस्त्रयुगच्छन्नां कुंकुमेन विभूषिताम् ।।१४
पुष्पधूपैः सनैवेद्यैः पूजयित्वा द्विजातये । दत्त्वा यत्फलमाप्नोति पार्थ तत्केन वर्ण्यते ।।१५
प्रसादा यत्र सौवर्णा नद्यः पायसकर्दमाः । गन्धर्वाप्सरसो यत्र तत्र ते यांति मानवाः ।।१६
स्वर्गादिहैत्य संसारे सरूपः सुभगो भवेत् । दाता भोक्ता बहुधनः पुत्रपौत्रसमन्वितः ।।१७
नारी वा [१]तद्गुणैर्युक्ता भवतीह न संशयः । चतुर्थ्यां वारणं हैमं पलादूर्ध्वं[२] सुशोभनम् ।।१८
कारयित्वांकुशयुतं तिलद्रोणोपरि न्यसेत् । वस्त्रैः पुष्पैः पूजयित्वा नैवेद्यं विनिवेद्य च ।।१९
ततस्तु ब्राह्मणे दद्याद्गणेशः प्रीयतामिति । कार्यारंभेषु सर्वेषु तस्य विघ्नं न जायते ।।२०
वारणाः सप्त जन्मानि भवंति मदविह्वलाः । वारणेन्द्रसमारूढस्त्रैलोक्यविजयी भवेत् ।।२१
पंचम्यां पन्नगं चैव स्वर्णेनैकेन कारयेत् । क्षीराज्यपत्रमध्यस्थं [३]पूजयित्वा प्रदापयेत् ।।२२
द्विजं संपूज्य वासोभिः प्रणिपत्य क्षमापयेत् । इह लोके परे चैव दानमेतत्सुखावहम् ।।२३

जलपूर्ण कलश के ऊपर प्रतिष्ठित कर वस्त्र, माला एवं अनेक भाँति के भक्ष्य भोज्य द्वारा उनकी सविधि अर्चा के उपरान्त अग्नि मुझ पर प्रसन्न हों, कहकर ब्राह्मण को अर्पित करे । उसके परिणाम स्वरूप वह मनुष्य आजीवन पाप मुक्त होता है इसमें संशय नहीं, तथा निधन होने पर अग्नि लोक में पहुँचता है ऐसा नारद मुनि का कथन है ।६-१२। महाराज! तृतीया के दिन राधा की स्वर्णमयी शुभ प्रतिमा ताँबे पात्र में लवण के ऊपर स्थापित करते हुए उसके पार्श्व भाग में जीरा, कटुक और गुड़ की टेरी रख कर दो रक्त वस्त्र से आच्छादन और कुंकुम से विभूषित वह प्रतिमा पुष्प, धूप तथा नैवेद्य, आदि द्वारा पूजन करके किसी ब्राह्मण को अर्पित करने पर जिस फल की प्राप्ति होती है उसका कौन वर्णन कर सकता है! पार्थ! जिस प्रदेश (लोक) में सुवर्णमय प्रसाद (कोष्ठ), पायस (खीर) कीचड़ वाली नदियाँ, और गन्धर्वों एवं अप्सराओं का सतत निवास रहता है वहाँ वह मनुष्य सदैव सुखानुभव करता है स्वर्ग में कदाचित् यहाँ (मर्त्यलोक) में आने पर सुरूप, सुभग, दाता, भोक्ता , बहुधन और पुत्र-पौत्र से युक्त रहता है तथा (दान करने वाली) स्त्री भी उसी प्रकार समस्त गुणों से युक्त होती है । चतुर्थी के दिन एक पल से अधिक सुवर्ण का सुशोभन गज अंकुश समेत निर्मित कर एक द्रोणि तिल के ऊपर स्थापित करते हुए वस्त्र, पुष्प द्वारा उसकी अर्चा करे । नैवेद्य अर्पित करने के अनन्तर 'गणेश देव प्रसन्न हों' कह कर सादर ब्राह्मण को अर्पित करने वाले के सभी कार्यों में कभी विघ्न नहीं होता है । उसे सात जन्मों तक मदमत्त गजराज (सवारी के लिए) मिलते रहते हैं, और उन्हीं मदविह्वल गजराजों पर आरुढ़ होकर वह त्रैलोक्य जेता होता है ।१३-२१। पञ्चमी के दिन एक तोले सुवर्ण द्वारा पन्नग (सूर्य) की प्रतिमा बना कर क्षीर और घृत पूर्ण पात्र के मध्य में स्थापित पूजित कर किसी ब्राह्मण को अर्पित करे । वस्त्रों से उस ब्राह्मण की अर्चा करके नमस्कार पूर्वक क्षमा याचना करे । क्योंकि यह दान लोक-परलोक सभी स्थान में सुख प्रदान करता है ।

---

१. बहुशो युक्ता । २. पलार्द्धार्द्धम् । ३. पूज्य विप्राय दापयेत् ।

नागोपद्रवविद्रावि सर्वदुष्टानिबर्हणम् । प्रायश्चित्तं तथा प्रोक्तं नागदष्टस्य शंभुना ॥२४
षष्ठ्यां शक्तिसमोपेतं कुमारं शिखिवाहनम् । कारयित्वा यथाशक्त्या हेममालाविभूषितम् ॥२५
तण्डुलेनाथ शिखरे वासोभिः पूज्य शक्तितः । षष्ठ्यां स्कन्दं यथाशक्ति कृत्वा स्कंदं हिरण्मयम् ॥२६
पूजयित्वा गन्धपुष्पधूपैर्नैवेद्यतस्तथा । नमस्कृत्य ततो दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥२७
इह भूतिं परां प्राप्य प्रेत्य स्वर्गे महीयते । शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणो ब्रह्मलोकताम् ॥२८
सप्तम्यां भास्करं पूज्य ब्राह्मणानश्वमुत्तमम् । दद्यादलङ्कृतग्रीवं सपर्याणं सदक्षिणम् ॥२९
सूर्यलोकमवाप्नोति सूर्येण सह मोदते । गन्धर्वास्तुष्टिमायान्ति दत्तेऽश्वे समलङ्कृते ॥३०
अष्टम्यां वृषभं श्वेतमव्यंगांगं धुरंधरम् । सितवस्त्रयुगच्छन्नं घण्टाभरणभूषितम् ॥३१
दद्यात्प्रणम्य विप्राय प्रीयतां वृषभध्वजः । प्रदक्षिणं ततः कृत्वा आद्वारान्तमनुव्रजेत् ॥३२
दानेनानेन नृपते शिवलोको न दुर्लभः । वृषस्कंधे प्रतिष्ठति भुवनानि चतुर्दश ॥३३
तस्माद्वृषभदानेन दत्ता भवति भारती । नवम्यां कांचनं सिंहं कारयित्वा स्वशक्तितः ॥३४
मुक्ताफलाष्टकयुतं नीलवस्त्रावगुण्ठितम् । दद्याद्देवीमनुस्मृत्य दुष्टदैत्यनिबर्हणीम् ॥३५
द्विजातिप्रवरायेत्थं सर्वान्कामान्समश्नुते । कान्तारवनदुर्गेषु चौरव्याला[1] कुले पथि ॥३६
हिंसकास्तं न हिंसंति दानस्यास्य प्रभावतः । मृतो देवीपुरं याति पूज्यमानः सुरासुरैः ॥३७

शंकरजी ने नाग के काटे पुरुष के लिए प्रायश्चित्त भी बताया है, जो नाग समस्त उपद्रवों का दमन करने वाला एवं समस्त दुष्टों का विनाश करता है। षष्ठी के दिन शक्ति एवं मयूर वाहन समेत कुमार (कार्तिकेय) की सुवर्ण प्रतिमा का निर्माण कर यथाशक्ति होम (सुवर्ण) माला से विभूषित करे।२२-२५। अनन्तर चावल के (पर्वत) शिखर पर स्थापित कर यथाशक्ति गंध, पुष्प वस्त्र जिसे पूजित कर सिकी कुटुम्बी ब्राह्मण को अर्पित करे। उससे उसे इस लोक में अत्यन्त ऐश्वर्य की प्राप्ति पूर्वक स्वर्ग सम्मान प्राप्त होता है और बाह्मण होने से ब्रह्म सालोक्य मोक्ष की प्राप्ति होती है। सप्तमी के दिन भास्कर, ब्राह्मण और सुवर्ण निर्मित अश्व के जिसकी ग्रीवा अलंकृत की गयी हो, पूजनोपरांत दक्षिणा, समेत उसे ब्राह्मण को अर्पित करने पर सूर्य लोक की प्राप्ति होती है और वह सूर्य के साथ सदैव आनन्दानुभव करता है। समलंकृत अश्व के दान करने से गन्धर्व गण भी सन्तुष्ट होते हैं।२६-३०। अष्टमी के दिन श्वेत वर्ण के अव्यंग, धुरंधर, चार श्वेत वस्त्रों से आच्छन्न, और घंटा भरण-भूषित वृषभ (बैल) का 'वृषभ ध्वज (शिव) प्रसन्न हों, कहते हुए नमस्कार पूर्वक ब्राह्मण को दान प्रदक्षिणा के उपरांत उसका द्वार तक अनुगमन भी करे। नृपते! इस दान द्वारा शिवलोक की प्राप्ति दुर्लभ नहीं होती है। क्योंकि वृषभों के कन्धे पर चौदहों भुवन प्रतिष्ठित रहते हैं। इसलिए वृषभ दान करने से उसका भारती (विद्या) दान भी सम्पन्न हो जाता है। नवमी के दिन यथा शक्ति सुवर्ण सिंह का, दान जो आठमोतिओं और नील वस्त्र से आच्छन्न रहता है, दुष्टों-दैत्यों को छलने वाली देवी जी के स्मरण पूर्वक किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करने पर सभी कामनाएँ सफल होती हैं। इस दान के प्रभाव से वनों के उस दुर्गम मार्ग में रहने वाले चोर एवं सर्प आदि हिंसक जीव उसके ऊपर प्रहार नहीं करते हैं। अन्त में निधन होने पर देवों असुरों से पूजित

---

१. घोरव्यालाकुले पथि ।

पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य राजा भवति धार्मिकः । दशम्यां नृपशार्दूल दशाशाः स्वर्णनिर्मिताः ॥३८
लवणे च गुडे क्षीरे निष्पावेषु तिलेषु च । गव्यत्रये तन्दुलेषु माषाणामुपरि स्थिताः ॥३९
सम्पूज्य वस्त्रपुष्पाद्यैर्द्विजाय प्रतिपादयेत् । अनेन विधिना यस्तु पुमान्स्त्री वाथ वा पुनः ॥४०
निर्वापयति राजेन्द्र तस्य पुण्यफलं शृणु । इह लोके भूपतिः स्यात्प्रेत्य स्वर्गे महीयते ॥४१
सकलास्त्य सर्वाशयाः काश्चिन्मनसेच्छिताः । ततः स्वर्गादिहाभ्येत्य कुले महति जायते ॥४२
एकादश्यां गरुत्मन्तं कारयित्वा हिरण्मयम् । यथाशक्त्या ताम्रपात्रे घृतस्योपरि पूजितम्[1] ॥४३
पञ्चाग्न्यभिरते विप्रे पुराणज्ञे विशेषतः । दत्त्वा किं बहुनोक्तेन विष्णुलोके महीयते ॥४४
गां वृषं महिषीं हेम सप्तधान्यान्यजाविकम् । वडवां गुडरसान्सर्वांस्तथा बहुफलद्रुमान् ॥४५
पुष्पाणि च विचित्राणि गन्धांश्चोच्चावचान्बहून् । यथाशक्त्या मेलयित्वा वस्त्रैराच्छादयेन्नवैः ॥४६
द्वादश्यां द्वादशैतानि ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् । एकस्य वा महाराज यत्फलं तन्निशामय ॥४७
इह कीर्तिं परां प्राप्य भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् । ततो विष्णुपुरं याति सेव्यमानोऽप्सरोगणैः ॥४८
कर्मक्षयादिहाभ्येत्य राजा भवति धार्मिकः । यज्ञयाजी दानपतिर्जीवेच्च शरदां शतम् ॥४९
स्नापयेद्ब्राह्मणांश्चात्र त्रयोदश्यां त्रयोदश । तानाच्छाद्य[2] नवैर्वस्त्रैर्गन्धपुष्पैरथार्चयेत् ॥५०

होकर वह देवी पुर जाता है पुनः कदाचित् पुण्य क्षीण होने पर इस लोक में धार्मिक राजा होता है । नृप शार्दूल! दशमी के दिन सुवर्ण निर्मित दशदिशाओं की प्रतिमा लवण, गुड़, क्षीर, निष्पाव, तिल, दूध, दही, घी समेत चावलों और उरदो की राशि पर स्थापित एवं वस्त्र पुष्पादि से पूजित कर ब्राह्मण को अर्पित करे । राजेन्द्र! सविधान द्वारा इस दान को सुसम्पन्न करने वाले पुरुष अथवा स्त्री को जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो! इस लोक में राजा होकर सुखानुभव के उपरांत अन्त में निधन होने पर स्वर्ग में सम्मानित होता है । और उसके अधीन समस्त दिशाएँ रहती हैं अतः मन इच्छित दिशा में स्वर्ग से आकर महान् कुल में जन्म ग्रहण करता है ।३१-४२। एकादशी के दिन गरुड़ की सुवर्ण-प्रतिमा ताँबे के पात्र में घृत के ऊपर स्थापित करके पूजनोपरांत पंचाग्नि तपस्वी एवं पुराण मर्मज्ञ किसी ब्राह्मण को अर्पित करने पर उसे विष्णु लोक में सुसम्मान प्राप्त होता है और अधिक क्या कहा जाय! । द्वादशी के दिन द्वादश ब्राह्मणों को गौ, वृष (वैल) महिर्षी (भैंस), सुवर्ण, सदाधान्य, भेंण, बकरी, वडवा, (घोड़ी), गुड, फले फूले वृक्ष, विचित्र भाँतिके पुष्प और गंध, सगी वस्तुओं एक में सम्मिलित कर यथाशक्ति वस्त्रों से आच्छादन करते हुए अर्पित करें अथवा एक ही ब्राह्मण को भी वह सब प्रदान कर सकता है । महाराज! उसके दान करने का जो फल प्राप्त होता है, उसे बता रहा हूँ, सुनो! इस लोक में परमोत्तम यश की प्राप्तिपूर्वक यथेच्छ भोगों के उपभोग करने के उपरांत विष्णुलोक में जाकर अप्सराओं से सुसेवित होता है । कदाचित् पुण्य क्षीण होने पर इस लोक में धार्मिक राजा होकर यज्ञों को सुसम्पन्न करता रहता है, दानपति कहलाता है एवं सैकड़ों वर्ष का जीवन प्राप्त करता है ।४३-४९। त्रयोदशी के दिन तेरह ब्राह्मणों को स्नान कराकर नवीन वस्त्रों से आच्छादन करते हुए गन्ध पुष्प

---

१. पूरितम् । २. आवाह्य ।

भोजयीत सुमिष्टान्नं दक्षिणां विनिवेदयेत् । यथाशक्त्या हेमखण्डान्धर्मात्मा प्रीयतामिति ।।५१
धर्मराजाय कालाय चित्रगुप्ताय दण्डिने । मृत्यवे क्षयरूपाय अन्तकाय यमाय च ।।५२
प्रेतनाथाय रौद्राय तथा वैवस्वताय च । महिषस्थाय देवाय नामानीह त्रयोदश ।।५३
उच्चार्य श्रद्धया युक्तः प्रणिपत्य विसर्जयेत् । यः करोति महाराज पूजामेतां मनोरमाम् ।।५४
यमाय स सुखं मर्त्ये स्थित्वा व्याधिविवर्जितः । यममार्गं गतः पश्चाद्दुःखं नाप्नोत्यसौ पुमान् ।।५५
न पश्यति प्रेतमुखं पितृलोकं स गच्छति । पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य ससुखी नीरुजी[1] भवेत् ।।५६
महिषं सुशुभं कुंभं चतुर्दश्यां पयोभृतम् । तं कर्षकेण संयुक्तं हेम्नः सद्वस्त्रसंयुतम् ।।५७
घण्टाभरणशोभाढ्यं वृषभेण समन्वितम् । यो दद्याच्छिवभक्ताय ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।।५८
वृषं दत्त्वा नरश्रेष्ठ शिवलोके महीयते । तत्र स्थित्वा चिरं कालं क्रमादेत्य महीतलम् ।।५९
आरोग्यधनसंयुक्ते कुले महति जायते । सर्वकामसमृद्धयर्थं यावज्जन्मशतत्रयम् ।।६०
पौर्णमास्यां वृषोत्सर्गं कारयित्वा विधानतः । चंद्रं रजतनिष्पन्नं फलेनैकेन शोभनम् ।।६१
पूजयेद् गन्धकुसुमैर्नैवेद्यं विनिवेद्य च । दद्याद्विप्राय [2]सङ्कल्प्य वासोलंकारभूषणैः ।।६२
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र तन्निबोध यथोदितम् । क्षीरोदार्णवसंभूतत्रैलोक्यांगणदीपक ।।६३
उमापतेः शिरोरत्नशिवं यच्छ नमोनमः । दानेनानेन नृपते भ्राजते चंद्रवद्दिवि ।।६४

द्वारा उनकी अर्चा करने के उपरांत उन्हें मिष्ठान्न भोजन कराये और यथाशक्ति सुवर्णखण्ड का दान करे। उस समय उसे 'धर्मात्मा प्रसन्न हों, कहकर दान, अर्पित करना चाहिए। धर्मराज, काल, चित्र गुप्त, दण्डी, मृत्यु, क्षयरूप, अंतक और यम, प्रेतनाथ, रुद्र, वैवस्वत, महिषस्थ और देव, इन तेरह नामों को उच्चारण करते हुए श्रद्धाभक्ति समेत नमस्कारपूर्वक विसर्जन करे। महाराज! यम के निमित्त इस मनोरम पूजा को सुसम्पन्न करने वाला मनुष्य इस मर्त्यलोक में व्याधिरहित सुखी जीवन व्यतीत करता है और यम के मार्ग से जाते हुए उसे कभी किसी दुःख का अनुभव नहीं करना पड़ता है।५०-५५। पितृलोक जाते हुए उसे कभी प्रेतमुख नहीं दिखायी देते हैं। कदाचित् पुण्यक्षीण होने पर वह यहाँ आकर सुखी और नीरोग जीवन व्यतीत करता है।५६। चतुर्दशी के दिन महिष, सुशोभन जलपूर्ण कलश, सुवर्ण कर्षक संयुक्त, उत्तम वस्त्र से आच्छन्न, घंटाभरण से भूषित और वृषभ (वैल) समेतउसे किसी शिवभक्त एवं कुटुम्बी ब्राह्मण को अर्पित करे। नरश्रेष्ठ! उस वृष (वैल) के दान करने से वह शिव-लोक में सुसम्मानित होता है और वहाँ चिरकाल तक सुखानुभव करने के अनन्तर यहाँ भूतल पर आरोग्य धनपूर्ण एवं महान् कुल में उत्पन्न होता है, इस भाँति वह तीन सौ जन्म तक अपनी समस्त कामनाओं की सफलता पूर्वक सुसमृद्ध सुख का अनुभव करता है। उसी प्रकार पूर्णिमा के दिन सविधान वृषोत्सर्ग समाप्त करते हुए जिसमें चन्द्रमा की चाँदी की प्रतिमा एक फल के समेत स्थापित किया गया हो, गंध पुष्प और नैवेद्य द्वारा उसकी अर्चा करे। अनन्तर वस्त्राभूषण से अलंकृत वह रजतचन्द्र ब्राह्मण को सादर समर्पित करे। राजेन्द्र! उस समय उसे इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए—क्षीरसागर से उत्पन्न एवं तीनों लोक के आङ्गण द्वीप! तुम उमापति शिव के शिरसुशोभित करने वाले रत्न हो, मुझे कल्याण प्रदान

१. मनुजः। २. संयुक्तम्।

अप्सरोभिः परिवृतो यावदाभूतसंप्लवम् ॥६५
दानान्यमूनि विधिवत्प्रयतिक्रमेण यच्छंति ये द्विजवराय विशुद्धसत्त्वाः ।
ते ब्रह्मविष्णुभुवनेषु सुखं विहृत्य यांत्येकतां सह शिवेन न संशयो मे ॥६६
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
तिथिदानवर्णनं नाम त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९३

अथ चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

वराहदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

आदिवाराहदानं ते कथयामि युधिष्ठिर । धरण्यै यत्पुरा प्रोक्तं वराहवपुषा मया ॥१
पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वदानोत्तमोत्तमम् । महापापादिदोषघ्नं पूजितं धर्मसत्तमैः ॥२
देयं संक्रमणे भानोर्ग्रहणे द्वादशीष्वथ । यज्ञोत्सवविवाहेषु दुःस्वप्नाद्भुतदर्शने ॥३
यदा च जायते वित्तं चित्तं श्रद्धासमन्वितम् । तदैवदानकालः स्यादध्रुवं जीवितं यतः ॥४
कुरुक्षेत्रादितीर्थेषु गंगाद्यासु नदीषु च । पुरेषु[1] च पवित्रेषु अरण्येषु वनेषु च ॥५
गोष्ठे देवालये वापि रथे वा स्वगृहांगणे । देयं पुराणविधिना ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥६

करो, मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ । नृपते! इस विधान द्वारा वह मनुष्य स्वर्ग में महाप्रलय पर्यन्त अप्सराओं से सुसेवित होते हुए चन्द्रमा की भाँति सुशोभित रहता है । इस प्रकार सविधान यह दान ब्राह्मण को अर्पित करने वाला सहृदय वह प्राणी ब्रह्मा और विष्णु के लोकों में सुखविहार करने के उपरांत शिव का सायुज्यमोक्ष प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं ।५७-६६

श्री भविष्यमहापुराण में उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
तिथिदानवर्णन नामक एक सौ तिरानबेवाँ अध्याय समाप्त ।१९३।

अध्याय १९४

वराहदान विधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—युधिष्ठिर! मैं तुम्हें आदिवराह दान का विधान बता रहा हूँ, जिसे मैंने पहले समय वराहावतार धारण कर पृथिवी को बताया था । यह दान पुण्य, पवित्र, आयु की वृद्धि करने वाला, समस्त दानों में उत्तम, एवं महापाप आदि महान् दोषों का शमन करता है और श्रेष्ठ धार्मिकों द्वारा पूजित है। सूर्य की संक्रान्ति, ग्रहण द्वादशी, यज्ञ, विवाहादि उत्सव, दुःख में अद्भुत दर्शन और जिस समय अधिक वित्त की प्राप्ति हो तथा चित्त श्रद्धालु हो वही इस नश्वर जीवन में दान काल समझना चाहिए। कुरुक्षेत्र आदि तीर्थ, गङ्गा आदि नदी, पवित्र नगर, असंख्य गोशालाएँ, देवालय, रथ या अपने गृह के प्राङ्गण में यह

---

१. कुशरेषु ।

कुशैरास्तीर्य तां पार्थ प्रणवाक्षरमन्त्रितैः । उपरिष्टात्तिलैस्तेषां वराहं परिकल्पयेत् ॥७
द्रौणैश्चतुर्भिः सम्पूर्णं तदर्धेनाथवा पुनः । आढकेनाथ कुर्वीत वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥८
सुवर्णेन मुखङ्कार्यं भुजौ चक्रगदान्वितौ । राजीं कारयेद्दंष्ट्रां पद्मरागविभूषिताम् ॥९
शङ्खं च स्थापयेत्पार्श्वे वनमालां हिरण्मयीम् । पुष्पैर्वा कारयेद्विद्वान्पादौ रूप्यमयौ तथा ॥१०
दंष्ट्राग्रलग्नवसुधां सौवर्णीं कारयेच्छुभाम् । सर्वधान्यरसोपेतां वस्त्रालङ्कृतविग्रहाम् ॥११
प्रच्छाद्य वस्त्रैर्देवेशं वराहं सर्वकामदम् । रोमराजिं कुशैः कृत्वा गंधपुष्पैरथार्चयेत् ॥१२
नवग्रहमुखः कार्यो होमश्चात्र तिलैः स्मृतः । एवं संस्थाप्य विधिवत्ततः स्तोत्रमुदीरयेत् ॥१३
वराहेश प्रदुष्टानि सर्वपापफलानि च । मर्दमर्द महादंष्ट्र भास्वत्कनककुण्डल ॥१४
शङ्खचक्रासिहस्ताय हिरण्याक्षांतकाय च । दंष्ट्रोद्धतधराभृते त्रयीमूर्तिमते नमः ॥१५
इत्युच्चार्य नमस्कृत्य प्रदक्षिणमनुव्रजेत् । ततस्तं ब्राह्मणे दद्याद्वस्त्रालङ्कारभूषितम् ॥१६
परिग्रहस्तु तस्योक्तः पादयोः परमर्षिभिः । अनेन विधिनादत्त्वा प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥१७
एवं दत्त्वा महीनाथ वराहं सर्वकामदम् । यत्फलं समवाप्नोति पार्थ तत्केन वर्ण्यते ॥१८
सर्वदानेषु यत्पुण्यं सर्वक्रतुषु यत्फलम् । तत्फलं समवाप्नोति दत्त्वा देवं जनार्दनम् ॥१९
यथा शक्त्या समुद्धता वराहेण वसुन्धरा । यथा कुलं समुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ॥२०

दान पुराणों के विधान द्वारा किसी कुटुम्बी ब्राह्मण को अर्पित करना चाहिए ।१-६। पार्थ! कुशास्तरण करके तिलराशि के ऊपर ओंकार समेत मंत्रोच्चारण करते हुए वराहमूर्ति की कल्पना करनी चाहिए, जो सम्पूर्ण चार द्रोण, तदर्ध, अथवा एक अढैया (सेर) का निर्मित रहता है। उस समय कृपणता करना अनुचित कहा गया है। इस भाँति उनकी रचना में सुवर्ण का मुख, चक्र गदाभूषित हाथ, चाँदी के पद्मरागमणि भूषित दाँत, तथा पार्श्व भाग में शंख, हिरण्यमयी वनमाला स्थापित करते हुए पुष्पों अथवा चाँदी के द्वारा चरण की रचना करनी चाहिए। दाँत में लगी हुई सुवर्ण की शुभ पृथिवी, और समस्त धान्यों के रस युक्त उनकी शरीर दो वस्त्र से अलंकृत करे। वस्त्रों से आवृत देवेश वराह की प्रतिमा की, जो समस्त कामनाओं को सफल करती है, कुशों द्वारा रोमराजि का निर्माण करते हुए गन्ध—पुष्पों से अर्चा सुसम्पन्न करे ।७-१२। इस यज्ञ में नव ग्रहों के पूजन तिलों की आहुति प्रदान करके इस स्तोत्र द्वारा अभ्यर्चना करे—देदीव्यमान कनक कुण्डलों से भूषित एवं महान् दाँत वाले वराहेश देव! समस्त पापों के फल चूर्ण कर दो! शंख, चक्र, खड्ग हाथों से धारण किये आप ने हिरण्याक्ष का वध किया है और अपने दाँतों से इस पृथिवी का उद्धार किया अतः त्रयी (वेद) मूर्ति आप को मैं नमस्कार पूर्वक प्रदक्षिणा करके वस्त्रालंकार भूषित वह प्रतिमा ब्राह्मण को अर्पित करे। परमर्षियों के कथनानुसार प्रतिग्राही (ब्राह्मण) को उस समय उनके चरण का परिग्रहण (स्पर्श) करना चाहिए। इस विधान द्वारा करने के अनन्तर प्रणाम पूर्वक क्षमा प्रार्थना करे। महीनाथ, पार्थ! समस्त कामनाओं को सफल करने वाली उस वराह-प्रतिमा के दान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उसका वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है।१३-१८। क्योंकि समस्त दान और सुवर्ण प्रतिमा के दान करने से प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार वराह भगवान् ने यथाशक्ति इस पृथिवी का उद्धार किया है, उसी भाँति इसका दान करने वाला मनुष्य अपने कुल का

ब्राह्मणक्षत्रियविशां स्त्रीणां शूद्रजनस्य च । एतत्साधारणं दानं शैववैष्णवयोगिनाम् ॥२१
विप्राय वेदविदुषे नृवराहरूपं दत्त्वा तिलामलसुवर्णमयं सवस्त्रम् ।
उद्धृत्य पूर्वपुरुषान्सकलत्रमित्रः प्राप्नोति सिद्धभुवनं सुरसिद्धजुष्टम् ॥२२
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
वराहदानविधिवर्णनं नाम चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९४

अथ पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

धान्यपर्वतदानविधिवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि दानमाहात्म्यमुत्तमम् । यदक्षयं परे लोके देवर्षिगणपूजितम् ॥१

श्रीकृष्ण उवाच

रुद्रेण यत्पुरा प्रोक्तं नारदाय महात्मने । मत्स्येन मनवे तद्वत्तच्छृणुष्व कुरूद्वह ॥२
मेरोः प्रदानं वक्ष्यामि दशधा पुनरेव ते । यत्प्रदानोत्तराँल्लोकान्प्राप्नोति सुरपूजितान् ॥३
पुराणेषु च वेदेषु यज्ञेष्वध्ययनेषु च । न तत्फलमधीतेषु कृतेष्विह यदश्नुते ॥४
तस्माद्विधानं वक्ष्यामि पर्वतानामनुक्रमात् । प्रथमो धान्यशैलः स्याद्द्वितीयो लवणाचलः ॥५

उद्धार कर विष्णु लोक में पूजित होता है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र और शैव, वैष्णव, योगी के लिए यह साधारण दान कहा गया है । इस प्रकार वस्त्रों से अलंकृत उस नृवराह रूप का दान, जो तिल और अमल सुवर्ण द्वारा निर्मित रहता है, किसी वेद मर्मज्ञ ब्राह्मण को अर्पित करने पर वह मनुष्य सभी पुत्र-मित्र समेत अपने पूर्व पुरुषों के उद्धार पूर्वक सुरसिद्ध सेवित सिद्धलोक की प्राप्ति करता है ।१९-२२
श्रीभविष्य महापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवाद में
वराहदान विधि वर्णन नामक एक सौ चौरानबेवाँ अध्याय समाप्त ।१९४।

अध्याय १९५

धान्यपर्वतदानविधि का वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्! मैं दान का उत्तम माहात्म्य सुनना चाहता हूँ, जो देवर्षिगण पूजित एवं परलोक में अक्षय फल प्रदान करता है ।१

श्रीकृष्ण बोले—कुरूद्वह! इसी विषय को शंकर ने नारद को और मत्स्य ने मनु को जिस प्रकार बताया था वही मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो! मैं तुम्हें दश प्रकार का मेरु पर्वत दान बता रहा हूँ, जिसके प्रदान करने से सुरपूजित देवलोकों की प्राप्ति होती है । क्योंकि पुराणों, वेदों के अध्ययन तथा यज्ञों के अनुष्ठान सुसम्पन्न करने से वे फल कदापि नहीं प्राप्त होते हैं, जो इस दान द्वारा सुलभ होते हैं । इसलिए सर्वप्रथम पर्वतों का क्रमशः विधान बता रहा हूँ, सुनो! प्रथम धान्य शैल, दूसरा लवणाचल ।२-५। तीसरा

गुडाचलस्तृतीयस्तु चतुर्थो हेमपर्वतः । पञ्चमस्तिलशैलः स्यात्षष्ठः कार्पासपर्वतः ॥६
सप्तमो घृतशैलश्च [1]रसशैलस्तथाष्टमः । राजतो नवमस्तद्वद्दशमः शर्कराचलः ॥७
वक्ष्ये विधानमेतेषां यथावदनुपूर्वशः । अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये ॥८
शुक्लपक्षे तृतीयायामुपरागे शशिक्षये । विवाहोत्सवयज्ञे वा द्वादश्यामथ वा पुनः ॥९
शुक्लायां पञ्चदश्यां वा पुण्यर्क्षे वा प्रधानतः[2] । धान्यशैलादयो देया यथाशास्त्रं विजानता ॥१०
तीर्थे वायतने वापि गोष्ठे वा संगमेऽपि वा । मंडपं कारयेद्भक्त्या चतुरस्रमुदङ्मुखम् ॥११
प्रागुदक्प्रवणं तत्र प्राङ्मुखं वा विधानतः । गोमयेनानुलिप्तायां भूमावास्तीर्य वा कुशान् ॥१२
तन्मये पर्वतं कुर्याद्विष्कम्भपर्वतान्वितम् । धान्यद्रोणसहस्रेण भवेद्गिरिरिहोत्तमः ॥१३
मध्यमः पंचशतिकः कनिष्ठः स्यात्त्रिभिः शतैः ॥१४

मेरुर्महाव्रीहिमयस्तु मध्यसुवर्णवृक्षत्रयसंयुतः स्यात् ।
संपूर्णमुक्ताफलवज्रयुक्तो याम्ये[3]नुगोमेदकपुष्परागैः ॥१५
यः स्याच्च[4] गारुत्मतनीलरत्नैः सौम्येन वैडूर्यसरोजरागैः ।
श्रीखंडखण्डैरभितः प्रवाललतान्वितः शुद्धशिलातलः स्यात् ॥१६
ब्रह्माथ विष्णुर्भगवान्पुरारिर्दिवाकरोऽप्यत्र हिरण्मयः स्यात् ।
तथैकदेशोद्धतकन्धरस्तु घृतोदकप्रस्रवणाश्च दिक्षु ॥१७

गुडाचल, चौथा हेमा (सुवर्णा) चल, पाँचवा तिल शैल, छठाँ कार्पास (रुई) का पर्वत, सातवाँ घृत शैल, आठवाँ रस शैल नवाँ रजत (चाँदी) का पर्वत और दशवाँ शक्कर का पर्वत दान किया जाता है । अयन, विषुव, पुण्य अवसर, व्यतीत, दिन क्षय, शुक्र तृतीया, चन्द्र-सूर्य ग्रहण, अमावस्या, विवाहोत्सव, यज्ञ, द्वादशी, शुक्र पञ्चमी अथवा किसी पुण्य नक्षत्र के दिन इन धान्य शैलादि का दान शास्त्रानुकूल करना चाहिए ।६-१०। किसी तीर्थ देवमन्दिर, गोशाला, या संगम के स्थल पर उत्तर मुख या पूर्व मुख वाले एक चौकार मण्डप का सविधान निर्माण, जिसकी भूमि उत्तर में कुश (ईशान) की ओर निम्न (नीची) हो, उसके भीतर गोवर से लिपी हुई भूमि में कुश विछाकर उसके मध्य भाग में विष्कम्भ पर्वत की भाँति उस पर्वत की रचना करे । सहस्र द्रोण धान्य का उत्तम पर्वत, पाँच सौ का मध्यम और तीन सौ द्रोणि का पर्वत कनिष्ठ (निकृष्ट) बताया गया है । उस धान्य राशि महामेरु के मध्य सुवर्ण के तीन वृक्ष स्थापित होने चाहिए । वह पर्वत पूर्व की ओर मोती एवं हीरे से विभूषित, दक्षिण की ओर गोमेदक और पुष्पराग (पीत) मणियों से अलंकृत, पश्चिम में मारुत्मत् (मरकत), तथा नीलममणि तथा उत्तर की ओर वैदूर्य और पद्मरागमणि से विभूषित रहता है । इसी प्रकार उसे चारों ओर से भी खंड (चन्दन) के खण्डों से भूषित प्रवाललताओं से आवेष्टित (घिरा) करते हुए उसकी भूमि शुद्ध शिलातल से सुसज्जित करनी चाहिए।११-१६। इस पर्वत में ब्रह्मा, भगवान् विष्णु, शिव, और सूर्य की सुवर्ण प्रतिमाएँ भी स्थापित होनी चाहिए। उसके एक ओर कन्दरा और चारो दिशाओं में घृत उदक के झरने बनाये। पर्वत के पूर्व भाग

---

१. रत्नशैलः । २. विधानतः। ३. तु । ४. पश्चाच्च ।

शुक्लाम्बरोऽन्यश्च सुराचलः स्यात्पूर्वेण कृष्णानि च दक्षिणेन।
वासांसि पश्चादथ[1] केसराणि रक्तानि चैवोत्तरतो दलानि॥१८
रौप्यामहेंद्रप्रमुखास्तथाष्टौ संस्थापयेल्लोकपतीन्क्रमेण।
नानाफलाली च समंततः स्यान्मनोरमामाल्यविलेपनाद्या॥१९
वितानकञ्चोपरि पञ्चवर्णमम्लानपुष्पाभरणं सितं वा।
इत्थं निवेश्यामरशैलमप्युन्मनास्तु विष्कम्भगणान्क्रमेण॥२०
तुरीयभागेन चतुर्दिशं च संस्थापयेत्पुष्पविलेपनाद्यान्।
पूर्वेण मन्दारफलोपयुक्तं यत्रोल्लसत्कनकभद्रकदम्बचिह्नम्॥२१
कामेन काञ्चनमयेन विराजमानमाकारयेत्कुसुमवस्त्रविलेपनाढचम्।
क्षीरारुणोदसरसाथ तथा वनेन रौप्येण शक्तिघटितेन विराजमानान्।२२
याम्येन गन्धमदनोऽत्र निवेशनीयो गोधूमसंचयमयः कलधौतजो वा।
हैमेन पक्षिपतिना धृतमानसेन तेनाद्यमेव सकलं किलसंयुतः स्यात्॥२३
पश्चात्तिलाचलमनेकसुगन्धपुष्पसौवर्णपिप्पलहिरण्मयंसयुक्तम्।
आकारयेद्रजतपुष्पवनेन तद्वद्वस्त्रान्वितं दधिशतोदसरस्तथाग्रे॥२४
संस्थाप्य तं विपुलशैलमथोत्तरेण शैलं सुपार्श्वमपि माषमयं सुवप्रम्[2]।
पुष्पैश्च हेमवटपादपशेषरत्नमाकारयेत्कनकधेनुविराजमानम्॥२५

श्वेत वस्त्र, दक्षिण काले वस्त्र, पश्चिम पीत वस्त्र और उत्तर की ओर रक्त वस्त्र से विभूषित कर महेन्द्र आदि आठों लोक पालो की क्रमशः चाँदी की प्रतिमाएँ स्थापित करे और पर्वत के चारों ओर मनोरम माला, विलेपन आदि से सुशोभित अनेक फलों की सजावट करे तथा ऊपर पाँच रंग का वितान (चँदोवा) और श्वेत रंग पुष्पों के आभरणों से सुसज्जित करे। इस प्रकार (प्रथम) अमरगिरि की रचना करके उसके चारों ओर उक्त मात्रा के चौथाई भाग में क्रमशः विष्काम्भ (नामक पर्वत) गणों की रचना करे, जो पुष्प-विलेपन आदि से विभूषित हों। (पर्वत) की दिशा में मन्दर गिरि की रचना करे, जो अनेक फलों से युक्त एवं कनक भद्र (देवदारु) और कदम्ब के वृक्षों से सुशोभित हो। तथा काञ्चन मूर्ति कामदेव समेत उसे पुष्प वस्त्र, और विलेपन से समृद्ध करे। इसी भाँति यथाशक्ति चाँदी निर्मित वन तथा अरुणोदक नामक क्षीर के सरोवर से सुशोभित करे। दक्षिण की ओर गेहूँ की राशि अथवा कलधौत (सुवर्ण) निर्मित गन्ध मादन पर्वत की रचना कर, जो सुवर्ण से यज्ञ पति और घृत के मानसरोवर से युक्त हो, उसे सुशोभित करे। (पर्वत के) पश्चिम ओर तिलाचल (तिल के पर्वत) की रचना कर उसे अनेक भाँति के सुगन्धित पुष्पों, सुवर्ण के पीपल वृक्ष, पक्षी, और हिरण्य मय हंस से विभूषित करे। इसे भी चाँदी के पुष्प वाले वन और वस्त्र से सुसमृद्ध करते हुए पर्वत के अगले भाग में शतोद नामक दधिसरोवर का निर्माण करे।१७-२४। विपुलतिल शैल उसकी स्थापना के उपरांत उत्तर की ओर उरद द्वारा सुपार्श्व नामक पर्वत की रचना करे, जो पुष्पों, सुवर्ण के वट वृक्ष, तथा अन्यान्य वृक्षों सुवर्ण निर्मित धेनु से

१. पार्श्वात्। २. सुवस्त्रम्, सुविप्रम्।

माक्षीकभद्रकरसावचयेन तद्वद्रौप्येण भास्वररसैश्च युतं विधाय।
होमश्चतुर्भिरथ वेदपुराणविद्भिर्दान्तैरनिंद्यवरिताकृतिभिर्द्विजेन्द्रैः ॥२६
पूर्वेण हस्तमुखमत्र विधाय कुण्डं कार्यस्तिलैरथ घृतेन समित्कुशैश्च।
रात्रौ च जागरमनुद्धतगीततूर्यैरावाहनं च कथयामि शिलोच्चयानाम् ॥२७
त्वं सर्वदेवगणधामनिधे च विघ्नमस्मद्गृहेष्वमरपर्वतनाशयाशु।
क्षेमं विधत्स्व कुरु शांतिमनुत्तमां नः संपूजितः परमभक्तिमतः प्रदेहि ॥२८
त्वमेव भगवानीशो ब्रह्मा विष्णुर्दिवाकरः। मूर्तामूर्तपरं बीजमतः पाहि सनातन ॥२९
यस्मात्त्वं [1]लोकपालानां विश्वमूर्तेस्वमंदिरम्। केशवार्कवसूनां च तस्माच्छांतिं प्रयच्छ मे ॥३०
यस्मादशून्यममरैर्गंधर्वैश्च शिरस्तव। तस्मान्मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात् ॥३१
एवमभ्यर्च्य तं मेरुं मन्दरं चापि पूजयेत्। यस्माच्चैत्ररथेनाथ भद्राश्ववरिषेण च ॥३२
शोभसे मन्दरक्षिप्रमतस्तुष्टिकरो भव। यस्माच्चूडामणिर्जंबूद्वीपे त्वं गन्धमादनः ॥३३
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च गीयमानं यशोऽस्तु मे। यस्मात्त्वं केतुमालेन वैभ्राजेन वनेन च ॥३४
हिरण्मयपाषाणस्तस्माच्छांतिं प्रयच्छ मे। उत्तरैः कुरुभिर्यस्मात्सावित्रेण वनेन च ॥३५
सुपार्श्वं राजसे नित्यमतः श्रीरक्षयास्तु मे। एवमामंत्र्य तान्सर्वान्प्रभाते विमले पुनः ॥३६

सुशोभित होते हैं। उसे भी मधु और भद्र रस के सरोवर और चाँदी के वने हुए देदीप्यमान वन आदि से विभूषित करके अन्त में वेद-पुराण के मर्मज्ञ, अनिन्द्य और सुरुपवान् चार ब्राह्मणों द्वारा हवन कार्य के सुसम्पन्न होने के निमित्त पूर्व की ओर एक हाथ से कुण्ड की रचना करके तिल, घृत, समिधा (लकड़ी) और कुशों द्वारा कुशकण्डिका करते हुए हवन कार्य सम्पन्न कराये। पश्चात् मधुर गीत और तुरुही की ध्वनि द्वारा रात्रि में जागरण करता रहे। अब तुम्हें पर्वतों का आवाहन भी बता रहा हूँ। अमरगिरि! तू समस्त देवगणों के धाम निधान हो, हमारे घर के विघ्नों को शीघ्र नष्ट करो, एवं कल्याण प्रदान करते हुए परमोत्तम शान्ति प्रदान करो। मैंने आप की सविधान अर्चा की है अतः मुझे-परमभक्ति प्रदान करने की कृपा करें। सनातन देव! तुम्हीं भगवान् शंकर, ब्रह्मा, विष्णु और दिवाकर देव हो, रस मूर्तामूत (संसार) के बीज हो, अतः मेरी रक्षा करो। अतः तुम लोकपाल, विश्व मूर्ति (ईश), केशव सूर्य और वसुगणों के मन्दिर हो, तुम मुझे शान्ति प्रदान करो। तुम्हारा शिरोभाग सदैव देवों और गन्धर्वों से अशून्य रहा करता है, इस लिए इस दुःख मय संसार सागर से उद्धार करने की कृपा करो। इस भाँति उस मेरु की अर्चा करके उस मन्दर की भी अर्चना करे। मन्दर (पर्वत)! तुम चैत्र रथ और भद्राश्व नामक वर्ष से सुशोभित हो, शीघ्रतया मुझे तुष्टि प्रदान करो। इस जम्बूद्वीप में चूड़ामणि की भाँति विभूषित हाने वाले गन्धमादन! गन्धर्व और अप्सराएँ मेरे यश की भी सदैव गान करें। यह वर प्रदान करो। तुम केतुमाल और वैभ्राज नामक वनों एवं हिरण्यमय पाषाण से सुशोभित हो, मुझे शांति प्रदान करने की कृपा करो।२५-३५। उत्तर कुरु एवं सवित्र वन से विभूषित सुपार्श्व नामक अचल! मुझे अक्षय भी प्रदान करने की कृपा करो। नृप! इस प्रकार उन सब को आमन्त्रित करने के अनन्तर प्रातः काल विमल जल में

---

१. ते।

स्नात्वा तु गुरवे दद्यान्मध्यं पर्वतोत्तमम् । शेषांश्च पञ्च तान्दद्याद्‌ऋत्विग्भ्यः क्रमशो नृप ।।३७
गावो देयाश्चतुस्त्रिंशदथवा दश भारत । शक्तितः सप्त वाष्टौवा एवं दद्यादशक्तिमान् ।।३८
एकापि गुरवे देया कपिला सुपयस्विनी । पर्वतानामशेषाणामेष एव विधिः समृतः ।।३९
[1]य एव पूजने मंत्रास्त एवोपस्करे तथा । ग्रहाणां लोकपालानां ब्रह्मादीनामगैः सह ।।४०
स्वमंत्रेणैव सर्वेषु होमः शैलेषु शस्यते : उपवासी भवेन्नित्यमशक्तौ नक्तमिष्यते ।।४१
विधानं सर्वशैलानां क्रमशः शृणु भारत । दानकालेषु ये मन्त्राः पर्वतेषु च यत्फलम् ।।४२
अन्नं ब्रह्म यतः प्रोक्तमन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः । अन्नाद्भवंति भूतानि जगदन्नेन वर्द्धते ।।४३
अन्नमेव यतो लक्ष्मीरन्नमेव जनार्दनः । धान्यपर्वतरूपेण पाहि तस्मान्नगोत्तम ।।४४
अनेन विधिना यस्तु दद्याद्धान्यमयं गिरिम् । मन्वन्तरशतं साग्रं देवलोके महीयते ।।४५
अप्सरोगणगंधर्वैराकीर्णेन विराजता । विमानेन दिवः पृष्ठे स याति ऋषिसेवितः ।।४६
पुण्यक्षये राजराज्यमाप्नोतीह न संशयः ।।४७

धान्याचलं करकवृक्षविराजमानं विष्कम्भपर्वतयुतं सुरसिद्धजुष्टम् ।
यच्छंति ये सुमतयः प्रणिपत्य विप्रांस्ते प्राप्नुवन्ति परमेष्ठिपदाब्जयुग्मम् ।।४८

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
धान्यपर्वतदानविधिवर्णनं नाम पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९५

स्नान आदि करके मध्यमे स्थित (मेरु) पर्वत गुरु को सादर समर्पित करे और शेष पाँच क्रमशः ऋत्विजों को ।३६-३७। भारत! शक्तिमान पुरुष को चौंतीस, दश अथवा यथाशक्ति सात आठ गौ का दान करते हुए एक कपिला गौ, जो अत्यन्त दूध देने वाली हों, अवश्य गुरुचरण में अर्पित करना चाहिए । सम्पूर्ण पर्वतों का यही दान विधान बताया गया है । इन पर्वतों के साथ सुशोभित होने वाले समस्त ग्रह, लोक पाल और ब्रह्मादि देव गणों के पूजन मंत्र उनके उपस्कर में भी उच्चारित होते हैं । पर्वतों के यज्ञ में सभी प्रतिष्ठित देवों की आहुति उनके मंत्रों द्वारा अर्पित करनी चाहिए । कर्ता को नित्य उपवास अथवा परमार्थ होने पर नक्त व्रत करना चाहिए । भारत! मैं समस्त पर्वतों का क्रमशः विधान बता रहा हूँ, सुनो! उसी प्रकार दान काल के मन्त्र और पर्वतों के दान करने का फल भी कह रहा हूँ । अन्न को ब्रह्म इसलिए कहा गया है कि अन्न में ही प्राणियों के प्राण प्रतिष्ठित हैं । क्योंकि अन्न द्वारा जीवों की सृष्टि होती है और यह सारा संसार मण्डल मन्त्र द्वारा ही उन्नति शील है । अन्न ही लक्ष्मी और अन्न ही जनार्दन देव हैं । नरोत्तम! इसलिए इस धान्य पर्वत के रूप से आप मेरी रक्षा करो । इस विधान द्वारा धान्य मय पर्वत का सविधान दान करने वाला मनुष्य देव लोक के अग्रभाग में सौ मन्वन्तरों के समय तक सुसम्मानित होता है । पश्चात् वह ऋषियों द्वारा सुसेवित होकर अप्सराओं और गन्धर्वों से आच्छन्न विमान पर सुशोभित होते हुए स्वर्ग लोक की यात्रा करता है । और कदाचित् पुण्य क्षीण होने पर महाराज-राज्य की प्राप्ति करता है इसमें संशय नहीं । इस प्रकार सुवर्ण वृक्ष से सुशोभित और निष्काम पर्वतों से युक्त उस धान्याचल का, जो सुरसिद्धों से सदैव सुशोभित रहता है, नमस्कार पूर्वक ब्राह्मणों को दान करने वाले वुद्धिमान् मनुष्य ब्रह्मलोक की प्राप्ति करते हैं ।३८-४८

श्रीभविष्यमहापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
धान्यपर्वतदान विधि वर्णन नामक एक सौ पञ्चानबेवाँ अध्याय समाप्त ।१९५।

---

१. ते ।

अथ षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः

लवणपर्वतदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि लवणाचलमुत्तमम् । यत्प्रदानान्नरो लोकनाप्नोति शिवसंयुतम् ॥१
उत्तमः षोडशद्रोणः कर्तव्यो लवणाचलः । मध्यमः स्यात्तदर्धेन तदर्द्धेनाधमः स्मृतः ॥२
वित्तहीनो यथाशक्त्या द्रोणादर्धं तु कारयेत् । चतुर्थांशेन विषयान्पर्वतान्कारयेत्पृथक् ॥३
विधानं पूर्ववत्कुर्याद्ब्रह्मादीनां च सर्वदा[1] । तद्वद्धेमतरून्सर्वांल्लोकपालान्निवेशनम् ॥४
शिरांसि कामदेवादींस्तद्वत्तत्र निवेशयेत् । कुर्याज्जागरमत्रापि दानमंत्रान्निबोध मे ॥५
सौभाग्यरससंभूतो यतोऽयं लवणोरसः । दानात्मकत्वेन च मां पाहि पापान्नगोत्तम ॥६
तस्मादन्नरसाः सर्वे नोत्कृष्टा लवणं विना । प्रियं च शिवयोर्नित्यं तस्माच्छान्तिप्रदोभव ॥७
विष्णुदेह समुद्‌भूतं यस्मादारोग्यवर्धनम् । यस्मात्पर्वतरूपेण पाहि संसारसागरात् ॥८
अनेन विधिना यस्तु दद्याल्लवणपर्वतम् । उमालोके वसेत्कल्पं ततो याति परां गतिम् ॥९
पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य राजा भवति धार्मिकः । पुत्रपौत्रैः परिवृतो जीवेच्च शरदां शतम् ॥१०

अध्याय १९६

लवणपर्वतदानविधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें इस समय लवणाचल का विधान बता रहा हूँ, जिसके प्रदान करने से मनुष्य शिवलोक की प्राप्ति करता है । इस पर्वत के निर्माण में दश द्रोण का उत्तम, उसके अर्धभाग का मध्यम और उसके भी आधेभाग का पर्वत अधम बताया गया है । किन्तु निर्धन मनुष्य भी यथा शक्ति एक द्रोण के आधेभाग से पर्वत की रचना और चौथाई-भाग से पृथक्-पृथक् उसके चारों ओर के पर्वतों की रचना करके पूर्व की भाँति सविधान ब्रह्मादि देवगण, सुवर्ण वृक्षों और लोकपालों की उस पर्वत में स्थापना करे । उसके शिरोभाग में कामदेव आदि को प्रतिष्ठित करते हुए रात्रि जागरण करे । उसका दान मंत्र मैं बता रहा हूँ, सुनो! नरोत्तम! सौभाग्य रस से उत्पन्न होने के नाते तुम्हारा लवणाचल नामकरण हुआ है अतः इस दान द्वारा पापों से मेरी रक्षा करने की कृपा करो । बिना लवण के सभी अन्नों के रस उत्कृष्ट (तीक्ष्ण) नहीं होते हैं, इसीलिए आप शिव और भवानी को नित्य अत्यन्त प्रिय है, मुझे शान्ति प्रदान करे । आप भगवान् विष्णु की देह से आविर्भूत होकर आरोग्य की वृद्धि करते हैं अतः इस पर्वत रूप द्वारा इस संसार सागर से मुझे बचायें। इस विधान द्वारा लवण पर्वत का दान करने वाला मनुष्य उमा के लोक में एक कल्प तक सुखानुभव करने के उपरांत उत्तम गति प्राप्त करता है। कदाचित् पुण्य क्षीण होने पर यहाँ धार्मिक राजा होता है और पुत्र-पौत्र समेत सौ शारदीय वर्षों का जीवन भी प्राप्त करता है ।१-१०। इस प्रकार लवण पर्वत का दान करने वाला प्राणी शोभन एवं महान् विमान पर, जिसमें सेवा करने के

---

१. सर्वशः ।

कुर्वंति ये लवणपर्वतसंप्रदानं संप्राप्नुवंति दिवि ते सुमहद्विमानम्।
तत्राप्सरोगणसुरासुरसेव्यमानास्तिष्ठंति हृष्टमनसो दिवि वृद्धमानाः ॥११

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
लवणपर्वतदानविधिवर्णनं नाम षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९६

अथ सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

गुडाचलदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि गुडपर्वतमुत्तमम् । यत्प्रदानान्नरः स्वर्गं प्राप्नोति सुरपूजितम् ॥१
उत्तमो दशभिर्भारैः[1] मध्यमः पंचभिस्तथा । त्रिभिर्भारैः कनिष्ठः स्यात्तदर्द्धेनाल्पको मतः ॥२
तद्वदामन्त्रणं पूजां हेमवृक्षसुरार्चनम् । विष्कंभपर्वतांस्तत्र सरांसि वनदेवताः ॥३
होमं जागरणं तद्वल्लोकपालाधिवासनम् । धान्यपर्वतवत्कुर्यादिमं मंत्रमुदीरयेत् ॥४
यथा देवेषु विश्वात्मा प्रवरो यं जनार्दनः[2] । सामवेदस्तु वेदानां महादेवस्तु योगिनाम् ॥५
प्रणवः सर्वमंत्राणां नारीणां पार्वती यथा । तथा रसानां प्रवरः सदा चेक्षुरसो मतः ॥६

लिए अप्सराएँ, सुर-असुर गण सदैव वर्तमान रहते हैं, सुशोभित होकर स्वर्ग पहुँचता है और सदैव प्रसन्न चित्त एवं वृद्धिशील रहता है ।११।

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
लवणपर्वतदानविधि वर्णन नामक एक सौ छानबेवाँ अध्याय समाप्त ।१९६।

अध्याय १९७

गुडाचलदानविधिवर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें अब गुडपर्वत का उत्तम विधान बता रहा हूँ, जिससे प्रदान करने पर मनुष्य देवपूजित स्वर्ग की प्राप्ति करता है । इसके निर्माण में दशभार गुड़ का उत्तम पर्वत, पाँच भार का मध्यम, तीन भार का कनिष्क और उसके आधेभाग का अल्प पर्वत कहा गया है । पूर्व की भाँति इसमें भी आमन्त्रण, पूजा, हेमवृक्ष, देवों की अर्चा, विष्कम्भ पर्वत गण, सरोवर वृन्द और वन देवताओं की प्रतिष्ठा-पूजा के अनन्तर होम, जागरण, लोकपालों के अधिवासन, आदि सभी कार्य धान्य पर्वत की भाँति ही सुसम्पन्न कर इन मंत्रों का उच्चारण करे—जिस प्रकार देवों में विश्वात्मा भगवान् जनार्दन श्रेष्ठतर हैं । वेदों में सामवेद, योगिओं में महादेव, समस्त मंत्रों में प्रणव (ओं) और स्त्रियों में पार्वती अत्यन्त श्रेष्ठ कही गयी हैं उसी भाँति समस्त रसों में ईख का रस सर्वश्रेष्ठ बताया गया है ।१-६। गुड पर्वत!

---

१. अष्टशतीभारैः । २. नरोत्तमः ।

मम तस्मात्परां लक्ष्मीं प्रयच्छ गुडपर्वत । सुरासुराणां सर्वेषां नागयक्षर्क्षयंत्रिणाम् ॥७
विनाशश्चापि पार्वत्यास्तस्मान्मां पाहि सर्वदा । अनेन विधिना यस्तु दद्याद्गुडमयं गिरिम् ॥८
संपूज्यमानो गन्धर्वैर्गौरीलोके महीयते । पुनः कल्पशतान्ते तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत् ॥९
आयुरारोग्यसम्पन्नः शत्रुभिश्चापराजितः । आसीद्राज्ञी महाभागा सुलभा नाम सुव्रता ॥१०
मरुत्तस्य प्रिया भार्या रूप यौवनशालिनी । तस्य भार्या शतान्यासन्सप्त राज्ञो महात्मनः ॥११
ता दास्य इव वाक्यानि कुर्युस्तस्याः सदैव हि । मुखावलोकनकरो राजा तस्य च सा प्रिया ॥१२
अथ कालेन महता दुर्वासा ऋषिसत्तमः । आजगाम तदभ्याशं भ्रममाणो यदृच्छया ॥१३
तस्याथ सत्क्रियां कृत्वा चार्घं दत्वा यथाविधि । पप्रच्छ सुलभा विप्रं दुर्वाससमकल्मषम् ॥१४

सुलभोवाच

केन पुण्येन भगवन्मम राजा प्रियंकरः । मुखावलोकनपरो वशे तिष्ठति सर्वदा ॥१५
सपत्न्यश्च मम ब्रह्मन्सदा प्रियहिते रताः । एतदाचक्ष्व भगवन्परं कौतूहलं मम ॥१५

दुर्वासा उवाच

शृणुष्वावहिता सुभ्रूरात्मवृत्तं पुरातनम् । जानामि सर्वं सुभगे तव वृत्तमशेषतः ॥१७
त्वमासीर्वैश्य महिषी गिरिव्रजपुरे पुरा । धार्मिका सत्यशीला च पतिव्रतपरायणा ॥१८

अतः मुझे उत्तम लक्ष्मी प्रदान करने की कृपा करें। पार्वती ही समस्त सुर-असुर, नाग यक्ष, अर्क्ष और नियंत्रित प्राणियों आदि सभी का विनाश होना कहा गया है अतः मेरी सदैव रक्षा करो। इस विधान द्वारा गुडाचल का दान करने वाला मनुष्य गन्धर्वों से पूजित होकर गौरी लोक में सुपूजित होता है। सौकल्प के अनन्तर यहाँ जन्म ग्रहण करने पर सातों दीपों का अधिनायक होता है। जो सदैव आरोग्य, दीर्घजीवी, एवं शत्रुओं से अजेय रहता है। राजा मरुत की सुलमा नाम की पतिपरायणा एवं महासौभाग्यवती प्रधान महिषी (रानी) थी, जो अत्यन्त रूप सौन्दर्य से सम्पन्न और युवती थी। उस महात्मा राजा की अन्य और सात रानियाँ थी, जो सदैव दासीकी भाँति उस सुलभा की आज्ञा पालन करती थीं। राजा सर्वदा अपनी उस प्रेयसी प्रधान रानी का मुख दर्शन किया करता था और रानी भी राजा के मुखावलोकन में सदैव निमग्न रहती थी। बहुत दिनों के पश्चात् इधर-उधर भ्रमण करते हुए ऋषि श्रेष्ठ दुर्वासा का राजा के यहाँ आगमन हुआ। अर्घ्य-पाद्य आदि सत्कार यथाविधान सुसम्पन्न कर रानी सुलमा ने उन पापरहित दुर्वासा ऋषि से प्रश्न किया।७-१४।

सुलभा ने कहा—भगवन् ब्रह्मन्! किस पुण्य द्वारा यह मेरा प्रियतम राजा मेरा प्रियंकर होकर सदैव मेरा मुख दर्शन ही किया करता है। मेरी सपत्नियाँ मेरे वशीभूत रहकर सदैव प्रिय कार्य करती रहती हैं। इसके जानने का मुझे परम कौतूहल हो रहा है अतः बताने की कृपा करें।१५-१६

दुर्वासा बोले—सुन्दर भौंहे वाली सुभगे! मैं तुम्हारे पूर्व जन्म का वृत्तान्त भली भाँति जानता हूँ, अतः मैं उसे बता रहा हूँ, तुम अपना आत्मवृत्तान्त सावधान होकर, सुनो! पूर्व काल में गिरिव्रज नगर के वैश्य की तू प्रधान रानी थी। उसी भाँति तूँ अत्यन्त धार्मिक, सत्य बोलने वाली और पतिपरायणा थी।१७-१८।

तत्र श्रुतस्त्वया वत्से ब्राह्मणानां समीपतः ! पुरा दानविधिः कृत्स्नः स्थितया पतिसंनिधौ ॥१९
विशेषतस्तत्र विप्रैः कथितो गुडपर्वतः । दत्तश्चापि त्वया पुत्रि संभृत्य विधिवत्तदा ॥२०
तस्य दानस्य माहात्म्यात्त्वया भुक्तं वरानने । राज्यं जन्मानि चत्वारि निःसपत्नमनाकुलम् ॥२१
अन्यानि सप्त जन्मानि तव राज्यं भविष्यति । सौभाग्यमतुलं चैव रूपमारोग्यमेव च ॥२२
भूतं चैवमवश्यं च गुडपर्वतदानजम् । कथा तद वरारोहे यास्ये त्वं भव पुत्रिणी ॥२३
तस्माद्देयमिदं दानं फलमुत्तममिच्छता । गतिं च शाश्वतीं लेभे सौभाग्यं रूपमेव च ॥२४
दानमेतत्प्रशंसंति स्त्रीणां राजन्विशेषतः । पूर्वोक्तं च फलं प्राप्य कृतकृत्योऽभिजायते ॥२५

कृष्णेष्टसुन्दरदरीस्रवणाकुलेन गंधर्वसिद्धवनिताशतसेवितेन ।
दत्तेन भारत विधानवता सदैव गौरी प्रसादमुपयाति गुडाचलेन ॥२६

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
गुडाचलदानविधिवर्णनं नाम सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९७

अथाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

हेमाचलदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथ पापहरं वक्ष्ये सुवर्णाचलमुत्तमम् । यस्य प्रसादाद्भवनं वैरिंच्यं याति मानवः ॥१

वत्से! पति के साथ ब्राह्मणों की सभा में तुमने समस्त दानों के विधान सुना था। पुत्रि! विशेषकर तुमने गुडपर्वत का विधान ब्राह्मणों द्वारा सुन कर उसका दान सविधान सुसम्पन्न भी किया था तुमने चार जन्मों तक शांतिपूर्वक निःसपत्न राज्य का सुखानुभव किया है। किन्तु अन्य सात जन्मों तक तुम्हें वैसा ही राज्य सुखोपभोग प्राप्त होते रहेंगे, जिसमें तुम्हारे अतुल सौभाग्य, रूप सौन्दर्य और आरोग्य की समृद्धि रहेगी। वरारोहे! गुडपर्वत दान करने के नाते सुख समृद्धि समेत तुम्हारी कथा (चर्चा) भी होती रहेगी। तुम पुत्रवती हो, यह आशीर्वाद देकर मैं अब यहाँ से जा रहा हूँ। इसलिए उत्तम फल की आकांक्षा वाले मनुष्य को यह दान अवश्य सुसम्पन्न करना चाहिए, जिससे शाश्वती गति और रूप सौभाग्य की प्राप्ति होती है। राजन्! अतः विशेषकर स्त्रियों लिए यह प्रशस्त है इसके प्रभाव से वे पूर्वोक्त फलों समेत कृत कृत्य हो जाती हैं। भारत! इस प्रकार इस गुडाचल जो भगवान् कृष्ण की अभीष्ट गुफाओं से युक्त और गन्धर्व सिद्धों की रमणियों से सुसेवित रहता है, सविधान दान करने वाला मनुष्य सदैव गौरी का कृपापात्र बना रहता है।१९-२६।

श्रीभविष्य महापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
गुडाचल दान विधान वर्णन नामक एक सौ सत्तानबेवाँ अध्याय समाप्त।१९७।

अध्याय १९८

हेमाचलदानविधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें उस पापहारी सुवर्णाचल का विधान बता रहा हूँ जिसे सुसम्पन्न करने

उत्तमः पलसाहस्रो मध्यम पञ्चभिः शतैः । तदर्द्धेनावरस्तद्वदल्पवित्तोऽपि शक्तितः ॥२
दद्यादेकपलादूर्ध्वं यथाशक्त्या विचक्षणः । धान्यपर्वतवत्सर्वं विदध्यान्नृपसत्तम ॥३
विष्कंभशैलांस्तद्वच्च कृत्वा मन्त्रमुदीरयेत् । नमस्ते ब्रह्मबीजाय ब्रह्मगर्भाय वै नमः ॥४
यस्मादनन्तफलदस्तस्मात्पाहि शिलोच्चय । यस्मादग्नेरपत्यं त्वं यस्मादुल्ब जगत्पतेः ॥५
हेमपर्वतरूपेण तस्मात्पाहि नगोत्तम । अनेन विधिना यस्तु दद्यात्कनकपर्वतम् ॥६
स याति परमं स्थानं यत्र देवो [1]महेश्वरः । तत्र वर्षशतं तिष्ठेत्ततो याति परां गतिम् ॥७
हेमाचलात्परं दानं न चान्यद्विद्यते क्वचित् ॥८

हैमं महींद्रमणिशृंगशतैरुपेतं लोकाधिपाष्टकयुतं सहितं मुनीन्द्रैः ।
यः शक्तिमान्वितरतीह गणेशलोके कल्पं कुमारवदसौ कुरुपुंगवाऽऽस्ते ॥९

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
हेमाचलदानविधिवर्णनं नामाऽष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१९८

पर मनुष्य बह्मा का लोक प्राप्त करता है । इसके निर्माण में सहस्र पल का उत्तम, पाँच सौ का मध्यम और उसके आधे पल सुवर्ण का पर्वत मध्यम बताया गया है । किन्तु बुद्धिमान् निर्धन प्राणी भी यथाशक्ति एक पल से कुछ अधिक सुवर्ण का पर्वत निर्माण कर दान कर सकता है । नृप सत्तम! इसमें भी धान्य पर्वत की भाँति सभी क्रियाओं को सम्पन्न करते हुए विष्कम्भ पर्वतों के स्थापन पूजनोपरांत इस मंत्र का उच्चारण करे—(सुवर्ण) शिलोच्चय! आप ब्रह्म बीज और ब्रह्म-गर्भ रूप हैं, आप अनन्तफल प्रदान करते हैं अतः मेरी रक्षा करें ।१-५। नगोत्तम! अग्नि के सन्तान और जगत्पति के उल्व होने के नाते आप इस हेमपर्वत रूप से मेरी रक्षा करें । इस विधान द्वारा सुवर्णाचल प्रदान करने वाला मनुष्य साक्षात् महेश्वर के परम स्थान को प्राप्त करता है । वहाँ सौ वर्ष तक सुखानुभूति करने के उपरांत पराकाष्ठा की गति (मोक्ष) प्राप्त करता है । इसलिए इस कनकपर्वत के तुल्य कोई अब दान नहीं बताया गया है । कुरुपुंगव! इस प्रकार इस कनक पर्वत का, जो इन्द्रमणि के सैकड़ों शिखरों से भूषित और लोकपालों समेत मुनीन्द्रों से सुसज्जित रहता है, दान सुसम्पन्न करने वाला वह शक्तिमान् पुरुष गणेशलोक में एक कल्प तक स्कन्द कुमार की भाँति सुखानुभव करता है ।६-९

श्रीभविष्यमहापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
हेमाचलदानविधान वर्णन नामक एक सौ अट्ठानबेवाँ अध्याय समाप्त ।१९८।

---

१. दिवत्पतिः ।

अथैकोनद्विशततमोऽध्यायः

तिलाचलदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अतः[1] परं प्रवक्ष्यामि तिलशैलं विधानतः । यत्प्रदानान्नरो याति विष्णुलोकमनुत्तमम् ॥१
तिलाः पवित्रमतुलं पवित्राणां च पावनम्[2] । विष्णुदेहसमुद्भूतास्तस्मादुत्तमतां गताः ॥२
मधुकैटभनामानावास्तां दितिसुतौ पुरा । मधुना सह तत्राभूद्युद्धं विष्णोरनारतम् ॥३
सहस्रं किल वर्षाणां न व्यजीवत दानवः । तत्र स्वेदो महानासीत्क्रुद्धरथस्याथ गदाभृतः ॥४
पतितश्च धरापृष्ठे कणशो लवशस्तथा । समुत्तस्थुस्तिला माषाः कुशाश्च कुरुनन्दन ॥५
हतश्च हरिणा युद्धे स मधुर्बलिनां वरः । मेदसा तस्य वसुधा रंजिता सकला तदा ॥६
मेदिनीति ततः संज्ञामवापाचल धारिणी । हतेऽथ दैत्यप्रवरे देवास्तोषं परं ययुः ॥७
स्तुतिभिश्च परं स्तुत्वा ऊचुस्त्रिदशपुंगवम्[3] ।

देवा ऊचुः

त्वया धृतं जगद्देव त्वया सृष्टं तथैव च ॥८

अध्याय १९९

तिलाचल दान-विधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें सविधान तिल शैल का वर्णन सुना रहा हूँ, जिसके दान करने से मनुष्य परमोत्तम विष्णुलोक की प्राप्ति करता है। तिल अत्यन्त पवित्र एवं पवित्रों में पावन है, भगवान् विष्णु की देह से उत्पन्न होने के नाते यह अति उत्तम हुआ है। प्राचीन समय में (कश्यप की दूसरी पत्नी) दिति के मधुकैटभ नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। जिसमें मधु के साथ विष्णु का अनवरत युद्ध हो रहा था। दिव्य सहस्र वर्ष तक घोर युद्ध होने पर भी उस दैत्य का वध न हो सका तो अत्यन्त क्रुद्ध होने के नाते गदाधारी भगवान् विष्णु की देह में महान् स्वेद (पसीना) हो आया और वह कण रूप में तथा खण्ड-खण्ड होकर पृथिवी पर गिरा, जिससे तिल, उरद और कुशाओं की उत्पत्ति हुई। कुरुनन्दन! उसी समय बलवान् मधु दैत्य भी युद्ध में हरि द्वारा निहत हुआ, जिसकी मेदा (चर्वी) से वह सम्पूर्ण पृथिवी अत्यन्त रञ्जित हो गयी है और उसी के नाते उस दिन से इस पृथिवी का 'मेदिनी' भी नाम प्रचलित हो गया। उस वली दैत्य के वध होने पर देवगण अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये।१-७। स्तुतियों द्वारा स्तुति करते हुए देवों ने कहा—

देवों ने कहा—देव! तुम्हीं इस जगत् का धारण किये हो और तुम्हारे ही द्वारा इसकी सृष्टि हुई है

---

१. अथापरम्। २. पावनाः। ३. त्रिदशपुंगवाः।

त्वयीश लीयते सर्वं त्वय्येव मधुसूदन । तस्मात्त्वदंगतो[1] जातास्तिलाः सन्तु जगद्धिताः ॥९
पालयन्तु च देवेश हव्यकव्यानि सर्वदा । दैवे पित्र्ये च सततं नियोज्यास्तत्परैर्नरैः ॥१०
नहि दैत्याः पिशाचा वा विघ्नं कुर्वन्ति भारत । तिला यत्रोपयुज्यन्ते एतच्छीघ्रं विधीयताम् ॥११
श्रुत्वा सुराणां तद्वाक्यं विष्णुस्तानिदमब्रवीत् । तिला भवन्तु रक्षार्थं त्रयाणां जगतामपि ॥१२
शुक्लपक्षे तु देवानां संप्रदद्यात्तिलोदकम् । कृष्णपक्षे पितॄणां च स्नात्वा श्रद्धासमन्वितः[2] ॥१३
तिलैः सप्ताष्टभिर्वापि समर्पितजलांजलिः । तस्य देवाः सपितरस्तृप्ता यच्छंति शोभनम् ॥१४
श्वकाकोपहृतं यच्च पतितादिभिरेव च । तिलैरभ्युक्षितं सर्वं पवित्रं स्यान्नसंशयः ॥१५
एतैर्भूतैस्तिलैर्यस्तु कृत्वा पर्वतमुत्तमम् । प्रदद्याद्द्विजमुख्याय दानं तस्याक्षयं भवेत् ॥१६
उत्तमो दशभिर्द्रोणैर्मध्यमः पञ्चभिर्मतः । त्रिभिः कनिष्ठो राजेन्द्र तिलशैलः प्रकीर्तितः ॥१७
पूर्ववच्चापरं सर्वं विष्कंभपर्वतादिकम् । दानमन्त्रं प्रवक्ष्यामि यथावन्नृपसत्तम[3] ॥१८
यस्मान्मधुवधे[4] विष्णुर्देहस्वेदसमुद्भवाः । तिलाः[5] कुशाश्च माषाश्च तस्माच्छं नो भवंत्विह ॥१९
हव्ये कव्ये च यस्माच्च तिलैरेवाभिमन्त्रणम्[6] । भवादुद्धर शैलेन्द्र तिलाचलनमोऽस्तु ते ॥२०
इत्यामन्त्र्य च यो दद्यात्तिलाचलमनुत्तमम् । स वैष्णवं पदं याति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥२१
दीर्घायुष्ट्वमवाप्नोति इह लोके परत्र च । पितृभिर्देवगन्धर्वैः पूज्यमानो दिवं व्रजेत् ॥२२

और तुम्हारे में इसका लय भी होता है । मधुसूदन, ईश! तुम्हारे अंगों से उत्पन्न हुआ यह तिल जगत् के लिए कल्याणकारी हो तथा देवपितृ कर्मों में मनुष्यों को संलग्न कर द्रव्य क्रव्य द्वारा देवों पितरों का पालन करें। देवेश, भारत! जिस कर्म में दैत्य या पिशाच कभी विघ्न नहीं करते हैं अतः इसे शीघ्र सम्पन्न करे। देवों की इन बातों को सुनकर कर भगवान् विष्णु ने कहा—तीनों लोकों के रक्षार्थ ही यह तिल उत्पन्न हुआ है अतः शुक्ल पक्ष में देवों के संतोषार्थ तिलोदक और कृष्ण पक्ष में स्नानोपरांत श्रद्धा समेत सात-आठ तिलों की तिलाञ्जलि अर्पित करनी चाहिए इससे देव और पितर दोनों अत्यन्त तृप्त होते हैं। श्वान् (कुत्ते) और कौओं एवं पतितों द्वारा नष्ट की हुई भी वस्तु तिल से अभ्युक्षित (सिंचित) करने पर पवित्र हो जाती हैं इसमें संशय नहीं। इस प्रकार पवित्र तिलों का पर्वत निर्माण कर किसी ब्राह्मणश्रेष्ठको उसका दान करने पर अक्षय फल प्राप्त होता है।८-१६। दश द्रोण तिल का उत्तम पर्वत, पाँच का मध्यम, और तीन द्रोण का पर्वत कनिष्ठ कहा जाता है। राजेन्द्र! पूर्व की भाँति समस्त उसकी क्रियाओं को सम्पन्न करते हुए विस्कम्भ पर्वत आदि से युक्त करे और इस दान मंत्र का उच्चारण करे—मधु दैत्य के वध होने के समय भगवान् विष्णु की देह से तिल, कुश और माष (उरद) की उत्पत्ति हुई है। द्रव्य और क्रव्य में तिल द्वारा ही मंत्रण होता है अतः इस संसार से मेरा उद्धार करें मैं आपको नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार आमन्त्रित कर उत्तम तिलाचल का दान करने वाला मनुष्य उस वैष्णव पद की प्राप्ति करता है, जहाँ से कभी पुनरावृत्ति (जन्म) होता ही नहीं। लोक परलोक में उसे दीर्घायु की प्राप्ति होती है और वह पितर, देव और गन्धर्वों से पूजित होते हुए स्वर्ग जाता है।१७-२२। कदाचित् पुण्य क्षीण होने पर इस भूतो पर पुनः धार्मिक राजा होता है और उसकी पत्नी रूप सौभाग्य

---

१. भगवतः। २. शुद्धिसमन्वितः। ३. च नरोत्तम। ४. काले विष्णुर्देहसमुद्भवाः। ५. मुद्गाश्च। ६. अभिरक्षणैः।

पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य[१] राजा भवति धार्मिकः । नारी वा तस्य पत्नी स्याद्रूपसौभाग्यसंयुता[२] ॥२३
दक्षा कुलोद्भवा चैव पुत्रपौत्रसमन्विता । विधानमिदमाकर्ण्य विधिना[३] श्रद्धयान्वितः ॥२४
कपिलादानपुण्यस्य समं फलमवाप्नुयात् ॥२५

दानं तिलाचलसमं यदि चान्यदस्ति तद्ब्रूत शास्त्रनिचयं प्रविचार्य बुद्धया ।
यैर्वर्जिता पितृक्रिया न च होमकर्म तेषां प्रदानमिह किं न करोति शर्म ॥२६

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
तिलचलदानविधिवर्णनं नामैकोनद्विशततमोऽध्यायः ।१९९

अथ द्विशततमोऽध्यायः

कार्पासाचलदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि कार्पासाचलमुत्तमम् । परमं सर्वदानानां प्रियं सर्वदिवौकसाम् ॥१
देशकालौ समासाद्य धनं श्रद्धां च यत्नतः । देयमेतन्महादानं कुलोद्धरणहेतवे[४] ॥२
पूर्वोक्तेन विधानेन कृत्वा सर्वमशेषतः । पर्वतं कल्पयेत्तत्र कार्पासेन विधानतः ॥३

सम्पन्न होती है । दान करने वाली स्त्री भी वही फल प्राप्त करती है तथा सभी कार्यों में दक्ष, कुलीना और पुत्र-पौत्र से सदैव युक्त रहती है । श्रद्धासमेत सविधान इस दान का श्रवण करने वाला पुरुष भी कपिलादान के तुल्य फल प्राप्त करता है । यदि इस तिलपर्वत के दान समान अन्य कोई दान हैं तो भली भाँति शास्त्र विचारकर मुझे बताने की कृपा करो । क्योंकि जिसने पितृक्रिया (श्राद्धतर्पणादि) और देवों के निमित्त हवन कर्म कभी सम्पन्न ही नहीं किया है क्या उस पुरुष के लिए यह दान कल्याणप्रद नहीं होता है! अर्थात् होता ही है ।२३-२६

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवाद में
तिलाचल दानविधि वर्णन नामक एक सौ निन्नयानबेवाँ अध्याय समाप्त ।१९९।

अध्याय २००

कपासपर्वतदानविधि का वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—अब मैं तुम्हें कपास (रुई) पर्वत के दान का विधान बता रहा हूँ, जो समस्त दानों में उत्तम एवं समस्त देवों को अत्यन्त प्रिय हैं । धनागम होने पर देश काल के अवसर पर श्रद्धा समेत अपने कुलोद्धार के निमित्त यह महादान सुसम्पन्न करना चाहिए । पूर्वोक्त विधान द्वारा सम्मत कर्मों कोसम्पन्न करते हुए विधान पूर्वक कपास पर्वत की रचना करे ।१-३। जो विद्वानों के कथनानुसार **बीस भार**

---

१. आगत्य । २. इह सौभाग्यसंयुता । ३. निर्धनः । ४. प्रियं सर्वदिवौकसाम् ।

विंशद्भारस्तु कर्तव्य उत्तमः पर्वतो बुधैः । दशभिर्मध्यमः प्रोक्तो जघन्यः पञ्चभिर्मतः ॥४
भारेणाल्पधनो दद्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः । धान्यपर्वतवत्सर्वमासाद्य नृपपुङ्गव ॥५
तद्वज्जागरणं कुर्यात्तद्वच्चैवाधिवासनम् । प्रभातायां तु शर्वर्यामिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥६
त्वमेवावरणंयस्माल्लोकानामिह सर्वदा । कार्पासाचलनस्तस्मादघौघध्वंसनो भव ॥७
इति कार्पासशैलेन्द्रं यो दद्यात्पर्वसंनिधौ । रुद्रलोके वसेत्कल्पं ततो राजा भवेदिह ॥८
रूपावान्सुभगो वाग्मी श्रीमानतुलविक्रमः । पञ्चजन्मानि नारी वा जायते नात्र संशयः ॥९
कार्पासपर्वतमयो जगदेकबन्धुर्यस्मान्नतेन रहिते वरवस्त्रयोगः ।
तस्मादघौघशमनाय सुखाय नित्यं देयो नरेण नरनाथदिमत्सरेण ॥१०
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
कार्पासाचलदानविधिवर्णनं नाम द्विशततमोऽध्यायः ।२००

अथैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः

घृताचलदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि घृताचलमनुत्तमम् । तेजोऽमृतमयं दिव्यं महापातकनाशनम् ॥१
पञ्चाशद्घृतकुम्भानामुत्तमःस्याद्घृताचलः । मध्यमस्तु तदर्धेन तदर्द्धेनावरः स्मृतः ॥२

का उत्तम, दश का मध्यम और पाँच भार का निकृष्ट बताया गया है। कृपणता रहित होकर निर्धन मनुष्य को भी एक भार कपास से इस पर्वत का निर्माण एवं दान करना चाहिए। नृपपुङ्गव! पर्वत की भाँति सम्पूर्ण कार्य करते हुए जागरण और अधिवासन भी सुसम्पन्न कर पुनः प्रातःकाल इस मंत्र द्वारा प्रार्थना करे—कार्पासाचल! तुम्हीं सदैव समस्त लोकों का आवरण रूप रहते हो, अतः हमारे पाप समूहों का विध्वंस करो। किसी पर्व काल में इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक कपास शैल का दान करने वाला मनुष्य रुद्रलोक में एक कल्प तक सुखानुभव करने के अनन्तर यहाँ आकर रूपवान् राजा होता है। इस के दान के अभाव से स्त्री भी पाँच जन्म तक वही सुखानुभव प्राप्त करती है। नरनाथ! कपास ही जगत् का एक मात्र बन्धु हैं क्योंकि उसके विना उत्तम वस्त्र का योग किसी को प्राप्त नहीं होता है अतः मनुष्यों को नित्य अपने सुखार्थ और पापसमूह को नष्ट करने के लिए कपास पर्वत का दान अवश्य करना चाहिए।४-१०
श्रीभविष्य महापुराण मे उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
कार्पासाचल दान विधि-वर्णन नामक दो सौ अध्याय समाप्त।२००।

अध्याय २०१

घृताचलदानविधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें घृताचल का विधान बता रहा हूँ, जो तेज तथा अमृतमय, दिव्य एवं महापातकों का नाश करता है। इसके निर्माण में पाँच सौ घृत पूर्ण कलश का उत्तम पर्वत, उसके आधे

अल्पवित्तस्तु कुर्वीत यथा शक्त्या विधानतः । विष्कंभपर्वतां स्तद्वच्चतुर्भागेन कल्पयेत् ॥३
शालेयतंदुलानां च कुभांश्च परिविन्यसेत् । कारयेत्संहतानुच्चान्यथा शोभं विधानतः ॥४
वेष्टयेच्छुक्लवासोभिरिक्षुदण्डफलादिकैः । धान्यपर्वतवच्छेषं विधानमिह पठ्यते ॥५
अधिवासनपूर्वं च तद्वद्धोमंसुरार्चनम् । प्रभातायां तु शर्वर्यां गुरवे विनिवेदयेत् ॥६
विष्कंभपर्वतांस्तद्वदृत्विग्भ्यः शांतमानसः । मन्त्रेणानेन कौंतेय [१]तच्छृणुष्व वदामि ते ॥७
संयोगाद्घृतमुत्पन्नं यस्मादमृततेजसे । तस्माद्घृताचलश्चास्मात्प्रीयतां मम शङ्करः ॥८
तस्मात्तेजोमयं ब्रह्म घृते नित्यं व्यवस्थितम् । घृतपर्वतरूपेण तस्मान्नः पाहि भूधर ॥९
अनेन विधिना दद्याद्घृताचलमनुत्तमम् । [२]महापातकयुक्तोऽपि लोकमायाति शांकरम् ॥१०
हंससारससंयुक्ते किंकिणीजालमालिते । विमाने अप्सरोभिश्च सिद्धविद्याधरैर्वृतः ॥११
विहरेत्पितृभिः सार्द्धं यावदाभूतसम्प्लवम् ॥१२

आज्याचलं प्रचलकुण्डलसुन्दरीभिः संसेव्यमानमिह ये वितरंति मर्त्याः ।
स्वर्गं सुरेंद्रभवनं भवसंनिधिं वा स्नेहानुबन्धमचलं भवतीति सर्वम् ॥१३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
घृताचलदानविधिवर्णनं नामैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०१

भाग का मध्यम और उसके भी आधे भाग का अधम कहा गया है । अल्प-वित्त वाले पुरुष को यथा शक्ति यह दान सविधान सुसम्पन्न करना चाहिए । उसके चौथाई भाग द्वारा विष्कम्भ पर्वतों की रचना करके साठी चावल राशि के ऊपर उन कलशों की ऊपर नीचे रखते हुए उत्तम रचना करनी चाहिए । वस्त्र, ऊखदण्ड, और फलादि द्वारा उसे आवेष्टित कर धान्य पर्वत की भाँति समस्त विधानों को सम्पन्न करते हुए अधिवासन और हवन, देव पूजन आदि सम्पन्न करे । कौंतेय! निर्मल प्रातः काल वह पर्वत गुरु को और निष्कम्भ पर्वत ऋत्विजों को अर्पित करे । उस समय शान्ति चित्त से जिस मंत्र का उच्चारण किया जाता है, उसे मैं बता रहा हूँ, सुनो! अघृत और तेज रूप यह घृत संयोग से ही उत्पन्न हुआ है अतः इस घृताचल के दान द्वारा शंकर प्रसन्न हों ।१-८। भूधर! घृत में तेजोमय ब्रह्म नित्य सुव्यवस्थित रहता है, अतः इस घृत पर्वत रूप से मेरी रक्षा करें । इस विधान द्वारा घृताचल का परमोत्तम दान करने वाला महापातकी भी प्राणी शङ्कर लोक की प्राप्ति करता है । उस विमान पर सुशोभित होकर, जो हंस-सारस पक्षियों से युक्त किंकिड़ी समूहों से आबद्ध और अप्सराओं तथा सिद्धविद्याधरों से आच्छन्न रहता है, पितरों के साथ महाप्रलय पर्यन्त बिहार करता है । इस प्रकार उज्ज्वल कुण्डलों से विभूषित सुन्दरियों से सुसेवित उस घृताचल का दान करने वाले मनुष्य सुरेन्द्र भवन स्वर्ग पर शिव संविधान प्राप्त कर उसके स्नेहमें सदैव के लिए बँध जाते हैं ।९-१३।

श्रीभविष्यमहापुराण मे उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
घृताचलदानविधि वर्णन नामक दो सौ एक अध्याय समाप्त ।२०१।

---

१. शृणुष्वाद्य वदाभिते । २. ब्रह्मपातकयुक्तोऽपि ।

अथ द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

रत्नाचलदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि रत्नाचलमनुत्तमम् । यत्प्रदानान्नरो याति लोकान्सप्तर्षिसेवितान् ॥१
मुक्ताफलसहस्रेण पर्वतः स्यादनुत्तमः । मध्यमः पञ्चशतिकस्त्रिशतेनावरः स्मृतः ॥२
अल्पवित्तस्तु कुर्वीत मुक्ताफलशतेन च । चतुर्थांशेन विष्कंभपर्वताः स्युः समंततः ॥३
पूर्वेणवज्रगोमेदैर्दक्षिणेनेन्द्रनीलकैः । पुष्परागयुतः कार्यो विद्वद्भिर्गंधमादनः ॥४
वैडूर्यविद्रुमैः पश्चात्सावित्रो विपुलाचयः । पद्मरागं ससौवर्णमुत्तरेणापि विन्यसेत् ॥५
धान्यपर्वतवच्छेषमत्रापि[1] परिकल्पयेत् । तद्वदावाहनं कृत्वा वृक्षान्देवांश्च काञ्चनाम् ॥६
पूजयेत्पुष्पनैवेद्यैः[2] प्रभाते तु विसर्जनम् । पूर्ववद्गुरुऋत्विग्भ्यां इमान्मंत्रानुदीरयेत् ॥७
यथा देवगणाः सर्वे सर्वरत्नेष्ववस्थिताः । त्वं च रत्नमयो नित्यमतः पाहि महाचल ॥८
यस्माद्रत्नप्रदानेन तुष्टिमेति[3] जनार्दनः । पूजारत्नप्रदानेन तस्मान्नः पाहि सर्वदा ॥९
अनेन विधिना यस्तु दद्याद्रत्नमयं गिरिम् । स याति वैष्णवं लोकममरेश्वरपूजितम् ॥१०
यावत्कल्पशतं साग्रमुषित्वेह नराधिप । रूपारोग्यगुणोपेतः[4] सप्तद्वीपाधिपो भवेत् ॥११

अध्याय २०२

रत्नाचलदानविधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले--मैं तुम्हें रत्नाचल का विधान बता रहा हूँ, जिसके दान करने से मनुष्य सप्तर्षि के लोकों की प्राप्ति करता है और जो सहस्रों मोतियों द्वारा निर्मित पर्वत उत्तम, पाँच सौ मध्यम, और तीन सौ मोती का पर्वत अधम बताया जाता है। अल्प धन वालों को सौ मोतियों द्वारा उसका निर्माण करना चाहिए और उसके चौथाई भाग से चारों ओर विष्कम्भ पर्वतों की रचना भी। हीरे और गोमेद द्वारा पूर्व की ओर, इन्द्रनील, द्वारा, सुरचित और पुष्परागयुत गन्धमादन पर्वत दक्षिण की ओर, वैदूर्य विद्रुम द्वारा उस विपुल सवित्राचल का पश्चिम की ओर और सुवर्ण समेत पद्मरागमणि का पर्वत उत्तर की ओर स्थापित करते हुए धान्यपर्वत की भाँति सुवर्ण निर्मित देवों और वृक्षों के आवाहन आदि शेष सभी कर्म विद्वानों को सुसम्पन्न करना चाहिए। पुष्प नैवेद्य आदि वस्तुओं से अर्चा करके प्रातः काल विसर्जन करे तथा गुरु और ऋत्विजों समेत इन मंत्र के उच्चारण भी—महाचल! सभी रत्नों में देव गणों की सदैव उपस्थिति रहतीहै और तुम सदैव रत्न रूप सुशोभित रहते हो अतः मेरी रक्षा करो! अतः इस पूजा में इस रत्न के प्रदान से आप मेरी सदैव रक्षा करें। १-१०। इस विधान द्वारा चलाचल प्रदान करने वाला मनुष्य देव पूजित वैष्णव लोक की प्राप्ति करता है। नराधिप! सौ कल्प तक वहाँ सुखानुभव करने के अनन्तर वह

---

१. अन्नादिः। २. पुष्पधूपाद्यैः। ३. तुष्टि पकुरुते हरिः। ४. रूपारोग्यकुलोपते।

ब्रह्महत्यादिकं किंचिदत्र चामुत्र वा कृतम् । तत्सर्वं नाशमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा ॥१२
मुक्तामयं कनकविद्रुमभक्तिचित्रं चञ्चन्महामणिमरीचिचयोपपन्नम् ।
रत्नाचलं द्विजवराय निवेदयित्वा भास्वत्प्रभामभिभवेत्सुरलोकलोके ॥१३
इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
रत्नाचलदानविधिवर्णनं नाम द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०२

अथ त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

रौप्याचलदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अतः परं प्रवक्षामि रौप्याचलमनुत्तम् । यत्प्रदानान्नरो याति सोमलोकं नरोत्तम ॥१
सहस्रेण पलानां तु उत्तमो रजताचलः । पञ्चभिर्मध्यमः प्रोक्तस्तदर्द्धेनावरः स्मृतः ॥२
अशक्तो विंशतेरूर्ध्वं कारयेद्भक्तितः सदा । विष्कंभपर्वतांस्तद्वत्तुरीयांशेन कल्पयेत् ॥३
पूर्ववद्राजतान्कुर्यान्मन्दरादीन्विधानतः । कलधौतमयांस्तद्वल्लोकेशान्कारयेन्नृप ॥४
ब्रह्मविष्णुशिवादींश्च नितम्बोऽत्र हिरण्मयः । राजतं स्याद्यन्येषां सर्वं तदिह कांचनम् ॥५
शेषं च पूर्ववत्कृत्वा होमजागरणादिकम् । दद्यात्तद्वत्प्रभाते तु गुरवे रौप्यपर्वतम् ॥६

यहाँ रूप, आरोग्य आदि गुणों से सम्पन्न होकर सप्तद्वीपा वसुमती का अधिनायक होता है। देव राज इन्द्र के वज्र से आहत पर्वत की भाँति लोक-परलोक जनित उसकी ब्रह्म हत्या इसके प्रभाव से सर्वथा विलीन हो जाती है। इस भाँति उस रत्नाचल का दान, जो मोती, सुवर्ण, विद्रुम आदि से चित्र-विचित्र एवं महामणियों की मरीचियों (किरणों) से विभूषित रहता है, किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ को अर्पित करने वाला मनुष्य देव लोक में पहुँच कर सूर्य तेज को भी अभिभूत कर देता है।११-१३

श्रीभविष्य महापुराण मे उत्तर पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में
रत्नचल दान विधि वर्णन नामक दो सौ दो अध्याय समाप्त।२०२।

अध्याय २०३

रौप्याचलदानविधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—नरोत्तम! मैं तुम्हें वह उत्तम रौप्याचल व्रत का विधान बता रहा हूँ जिसके द्वारा मनुष्य सोमलोक प्राप्त करता है। उसके निर्माण में सहस्र पल चाँदी का पर्वत उत्तम, पाँच सौ से मध्यम, और उसके आधेभाग से रचित पर्वत अधम बताया गया है। असमर्थ प्राणी के भी बीस पल से अधिक की चाँदी द्वारा उसका निर्माण एवं दान करना चाहिए तथा उसके चौथाई भाग द्वारा विष्कम्भ पर्वतों की। नृप! चाँदी द्वारा मन्दराद्रि पर्वत और लोकपालों की रचना करते हुए ब्रह्मा, विष्णु, और शिव आदि देवों की प्रतिमा भी चाँदी द्वारा निर्माण कराये। उसका नितम्ब (निम्न) भाग सुवर्णमय और अन्य को चाँदी मय होना चाहिए। इस भाँति पूर्वकी भाँति हवन, जागरण, आदि शेष कर्मों को सुसम्पन्न करते हुए प्रातःकाल वह चाँदी पर्वत गुरु को

विष्कंभशैलानृत्विग्भ्यः पूजयेच्च विभूषणैः । इमं मन्त्रं पठन्दद्याद्दर्भपाणिर्विमत्सरः ॥७
पितृणां वल्लभं यस्माच्छर्मदं शंकरस्य च । रजतं पाहि तस्मान्नो घोरात्संसारसागरात् ॥८
इत्थं निवेश्य यो दद्याद्रजताचलमुत्तमम् । गवामयुतदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥९
सोमलोके [1]सगंधर्वकिंनराप्सरसां गणैः । पूज्यमानो वसेद्विद्वान्यावदाभूतसंप्लवम् ॥१०

राजेश[2] राजतगिरिं कनकोपललीच्छन्नं प्रसन्नसलिलैः सहितं सरोभिः ।
यच्छंति ये सुकृतिनो विरजो विशोकं गच्छन्ति ते गतमला नृप सोमलोकम् ॥११

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
रौप्याचलदानविधिवर्णनं नाम त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०३

अथ चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः

शर्कराचलदानविधिवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि शर्कराचलमुत्तमम्[3] । यस्य प्रदानाद्विष्णवर्करुद्रास्तुष्यन्ति सर्वदा ॥१
अष्टाभिः शर्कराभारैरुत्तमः स्यान्महाचलः । चतुर्भिर्मध्यमः प्रोक्तो भाराभ्यामधमः स्मृतः ॥२

और विष्कम्भ पर्वतों को ऋत्विजों की सेवा में जो भूषण भूषित किये गये हों, अर्पित करे ।१-६। उस समय हाथमें कुश लिए मत्सर हीन चित्त से इस मंत्र का उच्चारण करे—पितरों के वल्लभ एक शिव के लिए कल्याणप्रद होने के नाते रजत! इस घोर संसारसागर से मेरी रक्षा करो! इस प्रकार सविधान देवों आदि की प्रतिष्ठा पूर्वक रजत शैल का दान करने वाला मनुष्य दश सहस्र गोदान का फल प्राप्त करता है । सोमलोक में गन्धर्व और अप्सराओं से सुसेवित होते हुए महाप्रलय पर्यन्त निवास करता है । नृप! इस प्रकार रजत पर्वत का जो सुवर्ण पलों से आच्छन्न और स्वच्छ सलिल सम्पन्न सरोवरों से युक्त रहता है, दान करने वाला वह सुकृती प्राणी पापनाश पूर्वक रुज-शोक रहित होकर सोमलोक की प्राप्ति करता है ।७-११।

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तर-पर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवाद में
रौप्याचल दान विधि वर्णन नामक दो सौ तीन अध्याय समाप्त ।२०३।

अध्याय २०४

शर्कराचलदानविधि-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं तुम्हें उत्तम शक्कर-पर्वत का विधान बता रहा हूँ, जिसके दान करने से विष्णु, सूर्य और रुद्र देव सर्वदा प्रसन्न रहते हैं । इसके निर्माण में आठ-भोर शक्कर का उत्तम पर्वत, चार भार का मध्यम, दो भार का अधम पर्वत बताया गया है ।१-२। तथा अल्पवित्त वाले मनुष्य को यथा शक्ति

---

१. तु । २. नागेश । ३. शर्कराशैलम् ।

**भारेणैवार्द्धभारेण कुर्याद्यश्चाल्पवित्तवान् । विष्कंभपर्वतान्कुर्यात्तुरीयांशेन मानवः ॥३
धान्यपर्वतवत्सर्वमासाद्य रससंयुतम् । मेरोरुपरितस्तद्वत्संस्थाप्य हैमतरुत्रयम् ॥४
मन्दारः पारिजाताश्च तृतीयः कल्पपादपः । एतद्वृक्षत्रयं मूर्ध्नि सर्वेष्वपि निधापयेत् ॥५
हरिचन्दनसन्तानौ पूर्वपश्चिमभागयोः । निवेश्यौ सर्वशैलेषु विशेषाच्छर्कराचले ॥६
मन्दरे कामदेवं तु कदम्बस्य तले न्यसेत् । जम्बूवृक्षतले कार्यो गरुत्मान्गन्धमादने ॥७
प्राङ्मुखो हेममूर्तिश्च हंसः स्याद्विपुलाचले । हैमी श्रेयोर्थिभिः कार्या सुरभिर्दक्षिणामुखी ॥८
धान्यपर्वतवत्सर्वमावाहनमखादिकम् । कृत्वाथ गुरवे दद्यान्मध्यमं [१]पर्वतोत्तमम् ॥९
ऋत्विग्भ्यश्चतुरः शैलानिमान्मंत्रानुदीरयेत् । सौभाग्यामृतसारोऽयं परमः शर्करायुतः ॥१०
यस्मादानंदकारी त्वं भव शैलेन्द्र सर्वदा । अमृतं पिबतां ये तु निष्पेतुर्भुवि शीकराः ॥११
देवानां तत्समुत्थोऽसि पाहि नः शर्कराचल । मनोभवधनुर्मध्यादुद्भूता शर्करा यतः ॥१२
तन्मयोऽसि महाशैल पाहि संसारसागरात् । यो दद्याच्छर्कराशैलमनेन विधिना नरः ॥१३
सर्वपापविनिर्मुक्तः स[२] याति शिवमन्दिरम् । चन्द्रादिसार्चिसंकाशमधिरुह्यानुजीविभिः ॥१४
सहैव यानमातिष्ठेत स तु विष्णुपदे दिवि । ततः कल्पशतान्ते तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत् ॥१५
आयुरारोग्यसंपन्नो यावज्जन्मायुतत्रयम् । भोजनं शक्तितो दद्यात्सर्वशैलेष्वमत्सरः ॥**

एक भार अथवा उसके आधे भाग से पर्वत-निर्माण करना चाहिए तथा उसके चौथाई भाग द्वारा विष्कम्भ पर्वतों का निर्माण करे। धान्यपर्वत की भाँति रसयुक्त समस्त कर्मों को सम्पन्न करते हुए मेरु (पर्वत) के ऊपर सुवर्ण निर्मित मदार, पारिजात और कल्पवृक्ष की स्थापना करे, क्योंकि सभी कर्मों में इन तीन वृक्षों की स्थापना बतायी गयी हैं। हरिचन्दन (श्रीखंड) और कल्प वृक्ष क्रमशः सभी पर्वतों में विशेषतया शक्कर पर्वत के पूर्व-पश्चिम भाग अवश्य स्थापित करना चाहिए। मन्दर पर्वत पर स्थित कदम्ब के नीचे कामदेव, गंधमादन पर्वत पर स्थित जम्बूवृक्ष के नीचे गरुड़, उस विशाल (सवित्र) पर्वत के नीचे पूर्वाभिमुख सुवर्ण मूर्ति हंस और हेममूर्ति सुरभी गौ दक्षिणाभिमुख स्थापित करे।३-८। धान्यपर्वत की **भाँति** समस्त क्रियाओं को सुसम्पन्न करके मध्य में स्थापित किया हुआ पर्वत गुरुचरण में और शेष चार **पर्वतों को** ऋत्विजों को सादर समर्पित करे। उस समय इन मंत्रों का उच्चारण करना चाहिए— **सौभाग्य और** अमृत के सारभूत शक्कर से संयुक्त शैलेन्द्र! तुम सदैव प्रदान करते रहो। क्योंकि देवों के **अमृतदान** करते समय अमृत की कुछ बूदें पृथिवी पर गिर पड़ी थी उसी से शक्कर का आविर्भाव हुआ अतः **मेरी रक्षा** करो। महाशैल! काम देव के धनुषमध्य से उत्पन्न होने वाली शक्कर से तुम संयुक्त हो अतः इस **संसार सागर** से मेरी रक्षा करो। इस विधान द्वारा शक्कर पर्वत का दान करने वाला मनुष्य पापरहित **होकर शिवभक्ति** की प्राप्ति करता है। पुनः अपने अनुचरों समेत सूर्य चन्द्र के समान प्रकाशित विमान द्वारा **विष्णु लोक जाकर** वहाँ सौ कल्प तक सुखानुभव करने के ऊपरांत सातो द्वीप का अधीश्वर होता है।९-१५। **और तीन** जन्म तक उसी भाँति दीर्घजीवी एवं आरोग्य रहता है। सभी पर्वतों के निर्माण-दान में

---

१. पुरुषोत्तम। २. प्रयाति।

स्वयं वा क्षारलवणमश्नीयात्तदनुज्ञया ॥१६
पर्वतोपस्करं सर्वं प्रापयेद्ब्राह्मणालयम् । आसीत्पुरा ब्रह्मकल्पे धर्ममूर्तिर्नराधिपः ॥१७
सुहृच्छक्रस्य निहता येन दैत्याः सहस्रशः।सोमसूर्यादयो यस्य तेजसा विगतप्रभाः ॥१८
भवंति शतशो येन राजानोऽपि पराजिताः । यथेच्छकरूपधारी च मनुष्योऽप्यपवारितः ॥१९
तस्य भानुमती नाम भार्या त्रैलोक्यसुंदरी । लक्ष्मीरिव च रूपेण निर्जितामरसुंदरी ॥२०
राज्ञस्तस्याग्रमहिषी प्राणेभ्योऽपि गरीयसी । दशनारीसहस्राणां मध्ये श्रीरिव राजते ॥२१
नृपकोटिसहस्रेण कदाचित्प्रमुच्यते । स कदाचित्स्थानगतं पप्रच्छ स्वं पुरोहितम्[1] ॥२२
विस्मयाविष्टहृदयो वसिष्ठिमृषिसत्तमम् । भगवन्केन धर्मेण मम लक्ष्मीरनुत्तमा ॥२३
कस्माच्च विपुलं तेजो मच्छरीरे सदोत्तमम् ॥२४

वशिष्ठ उवाच

पुरा लीलावती नाम वेश्या शिवपरायणा । तथा दत्तश्चतुर्दश्यां गुरवे लवणाचलः ॥२५
हेमवृक्षामरैः सार्द्धं यथावद्विधिपूर्वकः । शूद्रः सुवर्णकारस्तु नाम्ना शौण्डोभवत्तदा ॥२६
भृत्यो लीलावतीगेहे तेन हैमा विनिर्मिताः । तरवोऽमरमुख्याश्च श्रद्धायुक्तेन पार्थिव ॥२७
अतिरूपेण सम्पन्नान्घटयित्वा ततो हृदि । धर्मकार्यमतिं ज्ञात्वा नागृहीतं कथञ्चन ॥२८

यथाशक्ति भोजन से ब्राह्मणों को तृप्त करना चाहिए। तथा ब्राह्मणों की आज्ञा से स्वयं उस दिन लवण समेत भोजन करे। और पर्वतदान की सभी वह वस्तु ब्राह्मण के घर भेजवा देना चाहिए। प्राचीनकाल में ब्रह्म कल्प के समय धर्म मूर्ति नामक एक राजा था, जिसने इन्द्र की मित्रता स्वीकार करने के नाते युद्ध में सहस्रों दैत्यों का वध किया था, चन्द्र सूर्य आदि देवों को अपने तेज द्वारा हतप्रभ किया और सैकड़ों राजाओं को पराजित किया था। उसने यथेच्छ रूप धारण कर अनेक मनुष्यों को भी अपवारित किया था। उसकी भानुमती नामक त्रैलोक्य सुन्दरी भार्या थी, जो लक्ष्मी की भाँति अपने रूप सौन्दर्य से देवाङ्गनाओं को भी पराजित किये थी। राजा की वह प्रधान रानी उन्हें प्राणों से भी अधिक प्यारी थी, जो उनकी अन्य दश सहस्र रानियों मे श्री की भाँति सुशोभित होती थी। उस राजा की आज्ञा शिरोधार्य करने के लिए सहस्रों एवं करोड़ो राजगण सदैव उनके समीप रहा करते थे। एक बार दरबार में पुरोहित के आने पर राजा ने आश्चर्य चकित होकर उनसे कहा—भगवन्! किस धर्म का परिणाम यह अनुपम लक्ष्मी मुझे मिली है और मेरी देह में इस प्रकार के उत्तम एवं विपुल तेज के होने क्या हेतु है? बताने की कृपा करे।१६-२४

वशिष्ठ बोले—पूर्वकाल में लीलावती नामक वेश्या थी, जो सदैव शिव भक्ति में तन्मय रहा करती थी। उसने चतुर्दशी के दिन सुवर्ण निर्मित वृक्ष और देवों की कांचनी प्रतिमा समेत सविधान लवणाचल गुरुचरण में सादर अर्पित किया था। शौंड नामक शूद्र सुवर्णकार (सोनार) लीलावती के यहाँ नौकर था, जिसने श्रद्धालु होकर सुवर्ण द्वारा वृक्षों और देव प्रतिमाओं का निर्माण किया था। पार्थिव! उस

---

१. पुरोधसम्।

उज्ज्वालितास्तु तत्पत्न्या सौवर्णामरपादपाः । लीलावती गृहे पार्श्वे परिचर्या च पार्थिव ॥२९
कृतं ताभ्यां प्रहर्षेण द्विजशुश्रूषणादिकम् । सा तु लीलावती वेश्या कालेन महता नृप ॥३०
सर्वपापविनिर्मुक्ता जगाम शिवमन्दिरम् । योऽसौ सुवर्णकारश्च दरिद्रोऽप्यतिसत्तवान् ॥३१
न मूल्यमादाद्वेश्यातः स भवानिह सांप्रतम् । सप्तद्वीपपतिर्जातः सूर्यायुतसमप्रभः ॥३२
यया सुवर्णरचितास्तरवो हेमदेवताः । सम्यगुज्ज्वलिताः पत्नी सेयं भानुमती तव ॥३३

उज्ज्वालनादुज्ज्वलरूपमस्याः सुजातमस्मिन्भुवनाधिमपत्यम् ।
तस्मात्कृतं तत्परिकर्मरात्रावनुद्धताभ्यां लवणाचलस्य ॥३४
तस्माच्च लोकेष्वपराजितस्त्वमारोग्यसौभाग्ययुता च लक्ष्मीः ।
तस्मात्त्वमप्यत्र विधानपूर्वं धान्याचलादीन्दशधा कुरुष्व ॥३५
तथेति सम्पूज्य च धर्ममूर्ति वचो वशिष्ठस्य ददौ स सर्वान् ।
धान्याचलादीन्क्रमशः पुरारेर्लोकं जगामामरपूज्यमानः ॥३६
यश्चाधनः पश्यति दीयमानं मेरोः प्रदानमिह धर्मपरो मनुष्यः ।
शृणोति भक्त्या परयाऽप्रमादी विकल्मषः सोऽपि दिवं प्रयाति ॥३७

(सोनार) ने वृक्षों और देवों की अत्यन्त सुन्दर प्रतिमा बनाकर उसे धर्मकार्य समझ कर वेश्या से उसका पारिश्रमिक शुल्क (वेतन) नहीं लिया और उसकी पत्नी के उन देवों और वृक्षों की प्रतिमाओं को अत्यन्त देदीप्यमान किया था। पार्थिव! इस प्रकार लीलावती के घर रहकर वे दोनों उसकी परिचर्या (सेवा) कर रहे थे। उन दोनों ने अत्यन्त हर्षित होकर ब्राह्मणों की सेवा भी की थी। नृप! बहुत समय जीवन के पश्चात् निधन होने पर वह लीलावती वेश्या समस्त पापों से मुक्त होकर शिव मन्दिर चली गयी। वह सुवर्णकार (सोनार), जो दरिद्र होते हुए भी अत्यन्त साहसी था और उस वेश्या से उसका मूल्य नही लिये था, आप हैं, जो दश सहस्र सूर्यों की प्रभा से भूषित होकर सातों द्वीप के अधीश्वर हुए हैं और जिसने उस सुवर्ण के वृक्ष एवं देवों की प्रतिमाओं को भली भाँति समुज्जवल किया था, वह आप की यह भानुमती पत्नी है। उस (प्रतिमाओं) के उज्ज्वल करने के नाते इसे समुज्जवल रूप तथा तुम्हें भुवनों का अधिपत्य प्राप्त हुआ। इस प्रकार रात्रि में लवणाचल के निमित्त किये परिश्रम का परिणाम तुम्हें प्राप्त हुआ है, इसीलिए तुम लोक में अपराजित हो और आरोग्य सौभाग्य समेत लक्ष्मी की प्राप्ति हुई है। तुम इस समय भी धान्याचल आदि दश पर्वतों के दान अवश्य सुसम्पन्न करो। इस भाँति वशिष्ठ की बातें स्वीकार करके धर्ममूर्ति ने उन धान्याचल नाम के पर्वतों का दान क्रमशः सुसम्पन्न करके गुरु वशिष्ठ को अर्पित किया और अन्त में देवपूजित होकर शिव लोक की प्राप्ति की। भक्ति पूर्वक इस दान को देखने एवं सुनने वाला धार्मिक निर्धन मनुष्य भी पाप रहित होकर स्वर्ग की प्राप्ति करता है। नृपपुङ्गव! इस प्रकार इन पर्वतों के आख्यान पढ़ने-सुनने वाले मनुष्यों के दुःस्वप्न शांत होते हैं, उनका संसार-भय दूर होता है और वह

दुःस्वप्नं प्रशममुपैति पठ्यमाने शैलेन्द्रे भवभयभेदने नराणाम्।
यः कुर्यात्किमु नृपपुङ्गवोऽथ सम्यक्छांतात्मा हरिहरपुरमेति जन्तुः ॥३८

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
शर्कराचलदानविधिवर्णनं नाम चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०४

अथ पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सदाचारधर्मवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

प्रतिपत्क्रमयोगेन तिथीनां विस्तरः श्रुतः । सरहस्यः समन्त्रश्च प्रारम्भोद्यापनैः सह ॥१
नवग्रहमखात्सर्वं[1] होमकर्मावधारितम् । स्नानक्रमश्च विदितो विज्ञाताश्चोत्सवा मया ॥२
दानधर्मस्त्वशेषेण श्रुतः सर्वार्थदर्शितः । तडागोत्सर्जनविधिर्विदितः पादपोत्सवः ॥३
एवं गतं मम मनो मुह्यते मधुसूदन । व्रतं कथयता कृष्ण तास्ताः संश्रित्य देवताः ॥४
देवानां देवकीपुत्र नानात्वं संप्रदर्शितम् । तिथिक्रमान्कथयता[2] पूजामन्त्रोधिवासनम् ॥५
व्यासाद्यैर्मुनिभिः सर्वैर्ध्यानयोगपरायणैः । एक एवात्र निर्दिष्टो देवः[3] सर्वगतोऽव्ययः ॥६
वर्णाश्रमाचारधर्मः कस्मान्नात्र प्रदर्शितः । एते महर्षयस्तुष्टाः श्रोतुकामा भवद्वचः ॥७

शान्तात्मा विष्णु-शिव लोक की प्राप्ति करता है अतः जो इस दान को सम्पन्न करता है उसे क्या कहा जा सकता है ।२५-३८

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवाद में
शर्कराचलदानविधि वर्णन नामक दो सौ चार अध्याय समाप्त ।२०४।

अध्याय २०५

सदाचार धर्म-वर्णन

युधिष्ठिर ने कहा—मधुसूदन! मैं तो प्रतिपदा आदि तिथियों के क्रमशः विस्तृत वर्णन रहस्य मंत्र समेत प्रारम्भ उद्यापन विधान सुना । नवग्रह यज्ञ से होमकर्म, स्नान क्रम, समस्त उत्सव, निखिल दान धर्म, सरोवरों के उत्सर्जन विधान, वृक्षों के उत्सव आदि भी भलीभाँति जान लिया है । कृष्ण! इतना होते हुए भी मेरा मन (सुनने के लिए) मुग्ध ही हो रहा है । अतः व्रत की व्याख्या करते हुए आप उनके देवता भी बतायें । देवकी पुत्र! तिथियों के क्रमानुसार वर्णन करते हुए आपने अनेक भाँति के देवों, पूजामन्त्र और उनके अधिवासन भी बता दिया है किन्तु ध्यान योग के पारायण करने वाले व्यास आदि मुनियों द्वारा निर्दिष्ट वह एक देव, जो सर्वव्यापक और अनश्वर है, तथा वर्णाश्रम के आचार धर्म, आप के नहीं बताये! जिसे आप की वाणी द्वारा जानने के लिए ये महर्षि गण भी अत्यन्त लालायित हो रहे हैं।१-७

---

१. पूर्वम् । २. क्रमयता । ३. विष्णुः ।

श्रीकृष्ण उवाच

व्रतदानैकलेशोऽयं कथितस्तव पार्थिव ।विशेषतश्च शक्नोति वक्तुं यदि सरस्वती ॥८
सर्वस्तरति दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यति ! वर्णाश्रमाणां सामान्य इति [१]धर्मः प्रकीर्तितः ॥९
कथितोऽयं व्रतस्त्वत्र देवानुद्दिश्य यो मया । परमार्थः स एवोक्तो देवस्तमुपधारय ॥१०
यो ब्रह्मा स हरिः प्रोक्तो यो हरिः स महेश्वरः । महेश्वरः स्मृतः सूर्यः सूर्यः पावक उच्यते ॥११
पावकः कार्तिकेयोऽसौ कार्तिकेयो विनायकः। गौरी लक्ष्मीश्च सावित्री शक्तिभेदाः प्रकीर्तिताः॥१२
देवं देवीं समुद्दिश्य यः करोति व्रतं नरः । न भेदस्तत्र [२]मन्तव्यः शिवशक्तिमयं जगत् ॥१३
बहुप्रकारा वसुधा भेदाः साग्न्यनिलांभसाम् । परमार्थतश्चिंत्यमाने न भेदः प्रतिभासते ॥१४
कश्चिद्देवं समाश्रित्य करोति किमपि व्रतम् । त्रयीधर्मानुगं पार्थ एकं तत्रापि कारणम् ॥१५
यश्चैव ते मया ख्यातो व्रतदानविधिः परः । सफलः स तु विज्ञेयः सदाचारवतां सताम् ॥१६

आचारहीनं न पुनंति वेदा यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः ।
छंदांस्येनं मृत्युकाले त्यजंति नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाः ॥१७

कपालस्थं यथा तोयं श्वदृतौ वा यथा पयः । दुष्टं स्यात्स्थानदोषेण वृत्तहीने[३] तथा शुभम् ॥१८
वृत्तं यत्नेन संरक्षेद्वित्तमेति प्रयाति च । अहीनोवित्ततो हीनो वृत्तस्तु हतो हतः ॥१९

श्रीकृष्ण बोले—पार्थिव! मैंने तुम्हें व्रत और दान का एक लेश मात्र ही वर्णन सुनाया है, विशेषतः तो कभी हो सकता है यदि सरस्वती वर्णन कर सके । सभी इन कठिनाइयों को पार करते हुए कल्याण का दर्शन करें । यही श्रम का सामान्य धर्म बताया गया है । देवोंके उद्देश्य से मैंने जिस व्रत की व्याख्या सुनाई है, उसे परमार्थ समझो और देव को बता रहा हूँ, सुनो! जो ब्रह्मा है वही हरि है और हरि ही महेश्वर, महेश्वर सूर्य, सूर्य पावक, पावक कार्तिकेय तथा कार्तिकेय ही विनायक हैं । उसी भाँति गौरी, लक्ष्मी, और सावित्री, शक्तिके भेद रूप बतायी गयी है । देव अथवा देवी के उद्देश्य से जिस व्रत का विधान मनुष्य सुसम्पन्न करते हैं उसमें भेद नहीं मानना चाहिए यह सम्पूर्ण जगत् में शिवशक्तिमय रचित है । यद्यपि बहुत प्रकार की वसुधा और अग्नि, वायु एवं जल के भेद भली भाँति स्पष्ट हैं तथापि परमार्थ रूप से उन्हें देखने पर वे भेद नहीं दिखायी देते हैं । पार्थ! किसी भी देव के आश्रित रहकर मनुष्य जिस किसी व्रत को सुसम्पन्न करता है, उस वैदिक धर्म का वैदिक धर्म होना ही एक मुख्य कारण है । मैंने जो तुम्हें व्रत दान के विधान बताये हैं वे सदाचार शील एवं सज्जन प्राणी के लिए ही सफल होते हैं ।८-१६। क्योंकि आचार हीन पुरुष को, यद्यपि उसने षडङ्ग समेत वेदों का अध्ययन किया है, वेद पुनीत नहीं करता है । पंख निकलने पर नीड (घोंसले) को त्यागने वाले पक्षियों की भाँति वेद उसे मृत्यु के समय छोड़ देता है । जिस प्रकार कपाल में स्थित जल और कुत्ते के चमड़े वाले मशक के जल की भाँति दूषित होने के नाते आचार हीन प्राणी के सभी शुभ-कर्म दुष्ट (दूषित) हो जाते हैं । इसलिए आचार की संरक्षा प्रयत्न पूर्वक करनी चाहिए और वित्त (धन) तो आता-जाता रहता है । क्योंकि धनहीन प्राणी कभी धनवान् कहा जा सकता है किन्तु आचार से भ्रष्ट होने पर वह सदैव के लिए नष्ट हो जाता है । राजन्! इस प्रकार भ्रष्ट होने पर वह सदैव के लिए नष्ट हो जाता है । राजन्! इस प्रकार धर्म और कुल का मूल आचार ही

---

१. धर्माः सनातनाः । २. धतंव्यः । ३. वृत्तस्तु मनोहरः ।

एवमाचारधर्मस्य मूलं राजन्कुलस्य च । आचाराद्धि च्युतो जन्तुर्नकुलीनो न धार्मिकः ॥२०
किं कुलेनोपदिष्टेन विपुलेन दुरात्मनाम् । कृमयः किं न जायन्ते कुसुमेषु सुगन्धेषु ॥२१
हीनजातिप्रसूतोऽपि शौचाचारसमन्वितः । सर्वधर्मार्थकुशलः सकुलीनः [१]सतां वरः ॥२२
न कुलं कुलमित्याहुराचारः कुलमुच्यते । आचारकुशलो राजन्निह चामुत्र नन्दते ॥२३

युधिष्ठिर उवाच

सदाचारमहं कृष्ण श्रोतुमिच्छामि शाश्वतम् । सर्वधर्ममयः कोऽत्र सदाचारः प्रकीर्तितः ॥२४

श्रीकृष्ण उवाच

आचारप्रभवो धर्मः सन्तश्चाचारलक्षणाः । साधूनां च यथावृत्तं स सदाचार उच्यते ॥२५
तस्मात्कुर्यादिहाचारं य इच्छेद्गतिमात्मनः[२] । [३]अपि पापशरीरस्य आचारो हंत्यलक्षणम् ॥२६
अदृष्टमश्रुतं वेदं पुरुषं धर्मचारिणम् । स्वानि कर्माणि कुर्वाणं तं जनं कुरुते प्रियम् ॥२७
ये नास्तिका नैष्ठिकाश्च गुरुशास्त्रातिलङ्घिनः । अधर्मज्ञा दुराचारास्ते भवन्ति गतायुषः ॥२८
सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः । श्रद्दधानोनसूयश्च सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥२९

है । आचार से च्युत होने पर प्राणी न कुलीन कहा जा सकता है और न धार्मिक । इसलिए दुष्टों के विशाल कुल को उपदेश देने से क्या लाभ हो सकता है, क्योंकि सुगन्धित पुष्पों में क्या कीड़े नहीं होते! अर्थात् सुगन्धित पुष्पों के भीतर उत्पन्न कीड़ों पर जिस प्रकार सुगन्ध का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता है उसी भाँति दुष्टों के मन में सदुपदेश का प्रभाव व्यर्थ हो जाता है ।१७-२१। राजन्! हीन जाति में उत्पन्न होने पर भी वह मनुष्य यदि पवित्रता पूर्ण आचार से सम्पन्न रहता है तो वही समस्त धर्म अर्थ में कुशल (प्रवीण), कुलीन, और श्रेष्ठ कहा जाता है । क्योंकि कुल कोई नहीं अपितु आचार कुल कहा जाता है । इस आचार कुशल प्राणी लोक-परलोक सर्वत्र आनन्द प्राप्त करता है ।२२-२३

युधिष्ठिर ने कहा—कृष्ण! मैं उस शाश्वत सदाचार सो सुनना चाहता हूँ, सर्व धर्ममय कौन सदाचार बताया गया है ? बताने की कृपा करें ! २४

श्रीकृष्ण बोले—धर्म आचार से उत्पन्न होता है अतः आचार धर्म का कारण कहा जाता है । और आचार के लक्षण सन्तों (साधुओं) में पाये जाते हैं इसलिए साधुओं के व्यवहार सदाचार कहे जाते हैं । अतः उत्तम गति के इच्छुक प्राणियों को सदाचार का पालन अवश्य करना चाहिए क्योंकि पापी के शरीरमें स्थित कुलक्षण (अनाचार) को भी आचार विनष्ट करता है (तथा उसे पवित्र कर देता है) । अदृश्य और अद्भुत वेद भी धार्मिक पुरुष को, अपने कर्मों को सुसम्पन्न करने के नाते (लोक) प्रिय बना देता है । इसलिए नास्तिक, नैष्टिक, गुरु और शास्त्र की आज्ञाओंका उल्लंघन करने वाले, अधर्मी, दुराचारी क्षीणायु होते हैं । समस्त लक्षणों से रहित होने पर भी मनुष्य सदाचारी होनेके नाते श्रद्धालु और अनिन्दित होकर अपनी सभी कामनाएँ सफल करता है ।२५-२९। धर्म और अर्थ (अपनी आजीविका) का

---

१. शताद्वरः । २. श्रेय तात्मनः । ३. अशरीरस्य धर्मस्य आचारो हंत्यलक्षणम् ।

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थावनुचिन्तयेत् । ब्राह्मणानलगो सूर्यान्नमेहेत कदाचन ॥३०
उदङ्मुखो दिवारात्रावुत्सर्गं दक्षिणामुखः । उत्थाय च यस्तिष्ठेत पूर्वां सन्ध्यां समाहितः ॥३१
एवमेवोत्तरां सन्ध्यां समुपासीत वाग्यतः । नेक्षेतादित्यमुद्यन्तं नास्तं यान्तं कदाचन ॥३२
ऋषयो दीर्घतपसा दीर्घमायुरवाप्नुयुः । उपासते येन पूर्वां द्विजाः सन्ध्यां न पश्चिमाम् ॥३३
सर्वास्तान्धार्मिको राजा शूद्रकर्मणि योजयेत् । आबाधासु यथाकामं कुर्यान्मूत्रपुरीषयोः ॥३४
शिरसा प्रावृतेनैव समास्तीर्य तृणैर्महीम् । ग्रामावसथतीर्थानां क्षेत्राणां चैव वर्त्मनि ॥३५
न मूत्रमधितिष्ठेत न कृष्टे न च गोव्रजे । अन्तर्जलादावसथाद्वल्मीकान्मूषकस्थलात् ॥३६
कृतशौचावशिष्टाश्च वर्जयेत्पञ्च वै मृदः । देवार्चनादिकार्याणि तथा गुर्वभिवादनम् ॥३७
कुर्वीत सम्यगाचम्य तद्वदन्नभुजि क्रियाम् । अफेनशब्दगंधाभिरद्भिरच्छाभिरादरात् ॥३८
आचामेत्प्रयतः सम्यक्प्राङ्मुखोऽदङ्मुखोपि वा । त्रिवर्गसाधनं यच्च [1]सदा कार्यं विपश्चिता ॥३९
तत्सान्निध्ये गृहस्थस्य सिद्धिरत्र परत्र च । पादेन कार्यं पारत्र्यं पादं कुर्याच्च सञ्चये ॥४०
अर्धेनाहारचणनित्यनैमित्तिकान्तकम् । अर्थस्योपार्जने यत्नः सदा कार्यो विपश्चितैः ॥४१
तत्संसिद्धौ हि सिद्धयन्ति [2]धर्मकामादयो नृप । केशप्रसाधनादर्शदर्शनं दंतधावनम् ॥४२

चिन्तन करते मनुष्य को ब्रह्म मूहूर्त में (शय्या से) उठजाना चाहिए और ब्राह्मण अग्नि के समीप तथा सूर्योदय के समय मलत्याग कभी न करे अर्थात् सूर्योदय के पूर्व ही इस क्रिया से निवृत्त हो जाना चाहिए। दिन और रात्रि में क्रमशः उत्तराभिमुख और दक्षिणाभिमुख मलत्याग करके आचमन (कुल्ला), स्नान और प्रातः काल की संध्या उपासन करे और उसी भाँति पुनः मौन होकर सायं संध्या की उपासना करें। उदय अस्त होते समय सूर्य का कभी दर्शन न करे। क्योंकि इन्हीं क्रमों को सुसम्पन्न करने के नाते और दीर्घतप द्वारा ऋषिगण दीर्घायु प्राप्त करते हैं। प्रातः काल और सायं की संध्या न करने वाले द्विजों को राजा शूद्र कर्मों में लगाये। निर्बाध स्थानों में यथेच्छ मलमूत्रका त्याग करना चाहिए। उस समय शिर को ढ़के हुए मलत्याग करके की भूमि भी तृणों से आच्छादितकर, मलत्याग करे। गाँव, गृह तीर्थ स्थान, क्षेत्रों (खेतों) के मार्ग, जोती भूमि और गौओं के रहने के स्थान में मूत्र त्याग (पेशाब) न करना चाहिए। मलत्याग करने के अनन्तर) जल के भीतर, गृह वल्मीकि एवं चूहों की बिल और मलत्याग होने के समीप वाला भूमि, इन पाँच स्थानों से (अशुद्धि के कारण) मिट्टी नहीं लेनीं चाहिए। देवों की अर्चना करके गुरु की पूजा करना चाहिए तथा उसी प्रकार अन्न भोजन भी आचमन पूर्वक ही करे। फेन तथा शक और गंध रहित स्वच्छ जल से सादर आचमन पूर्वभिमुख या उत्तराभिमुख होकर सदैव मनुष्य को करना चाहिए क्योंकि वह त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) का साधन बताया गया है उसी द्वारा गृहस्थ के लोक-परलोक की सिद्धि भी होती है। अपनी आय का चौथाई (एक भाग) परलोक के कार्यो में, एक भाग का संचय तथा आधेभाग से भोजन और नित्य नैमित्तिक कार्यों को सम्पन्न करे। नृप! धनोपार्जन में विद्वानों को सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए, क्योंकि अर्थ सिद्धि द्वारा ही धर्म अर्थ एवं कामनाओं की सिद्धि होती है। ३०-४१। केश प्रसाधन (शिर के बालों को सँवारना), दर्पण देखना, दातून करना, और देवपूजन

---

१. कर्तव्यं गृहमेधिना। २. कर्मकर्मादयः।

पूर्वाह्ण एव कार्याणि देवतानां च पूजनम् । दूरादावसथान्मूत्रं दूरात्पादावसेचनम् ॥४३
उच्छिष्टोत्सर्जनं दूरात्सदा कार्यं हितैषिणा । लोष्टमर्दी तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः ॥४४
नित्योच्छिष्टः संकरकृन्नेहायुर्विंदते महत् । नग्नां परस्त्रियं नेक्षेन्नपश्येदात्मनः शकृत् ॥४५
उदक्यादर्शनस्पर्शौ कुर्यात्संभाषणं न च । नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा मैथुनं वा समाचरेत्[1] ॥४६
नाधितिष्ठेच्छकृन्मूत्रे केशभस्मकपालिकान् । तुषांगारास्थिशीर्णानि रज्जुवस्त्रादिकानि च ॥४७
धारिणो न नमेद्विद्वान्नासनं चापि दापयेत् । ब्राह्मणान्प्रणमेद्विद्वानासनं चापि दापयेत् ॥४८
कृतांजलिरुपासीत गच्छंतं पृष्ठतोन्वियात् । न चासीतासने भिन्ने भिन्नं कांस्यं च वर्जयेत् ॥४९
नामुक्तकेशैर्भोक्तव्यं न नग्नः स्नानमाचरेत् । स्वप्तव्यं नैव नग्नेन नोच्छिष्टस्तु संविशेत् ॥५०
उच्छिष्टो न स्पृशेच्छीर्षं सर्वे प्राणास्तदाश्रयाः । केशग्रहान्प्रहारांश्च शिरस्येतानि वर्जयेत् ॥५१
नान्यत्र पुत्रशिष्याभ्यां शिखया ताडनं स्मृतम् । [2] न पाणिभ्यां संहताभ्यां कण्डूयेदात्मनः शिरः ॥५२
न चाभीक्ष्णं शिरःस्नानं कार्यं निष्कारणं नरैः । अप्रशस्तं निशि स्नानं राहोरन्यत्र दर्शनात् ॥५३
न भुक्तोत्तरकालं च न गम्भीरजलाशये । शिरःस्नानं तु तैलेन नांगं किंचिदुपस्पृशेत् ॥५४
तिलापिष्टं च नाश्नीयात्तथास्यायुर्न हीयते । दुष्कृतं न गुरोर्ब्रूयात्क्रुद्धं चैनं प्रसादयेत् ॥५५

क्रियाएँ पूर्वाह्ण के समय ही करना चाहिए। घर से दूर मूत्रत्याग, पादप्रक्षालन, और (पाकालय के) जूठे अन्नादि फेंकना चाहिए। हाथ से मिट्टी मलते रहने, (नाखूनों से) तृणच्छेदन, नख से नख काटने, नित्य उच्छिष्ट (जूठा भोजन करने वाले), और जार पुरुष होकर संकर (वर्णसंकर) की उत्पत्ति करने वाले मनुष्य दीर्घजीवी नहीं होते हैं। दूसरे की नग्नस्त्री, और अपना मल नहीं देखना चाहिए। रजस्वला स्त्री का दर्शन, स्पर्श और उसके साथ संभाषण, तथा जल में मल-मूत्र का त्याग एवं मैथुन नहीं करना चाहिए। मूत्र में मलत्याग न करे। केश, भस्म, कपाल, तुषांगार (भूसी की अग्नि) और अस्थि (हड्डी) मिश्रित रस्सी या वस्त्रादि धारण करने वाले पुरुष को न नमस्कार करे और न आसन प्रदान करे। केवल ब्राह्मणों को ही नमस्कार और आसन प्रदान करे और सेवा करने के उपरांत जब वे जाने लगें तो उनके पीछे (कुछ दूर) सादर उनका अनुगमन भी करे। उनके पृथक् आसन और पृथक् कांस्यपात्र भी न होने चाहिए। केश बाँधे भोजन, नग्न स्नान, नग्न शयन और जूठामुख किये शयन न करे। उच्छिष्ट (जूठे मुख) शिर स्पर्श न करे क्योंकि समस्त प्राण आदि उसी के आश्रित रहते हैं। उसी भाँति (किसी के) शिर के बालों को न पकड़ना चाहिए और न शिर पर प्रहार ही करें। पुत्र तथा शिष्य की शिखा (चोटी) पकड़ कर कभी न मारे और दोनों हाथों को मिलाकर अपना शिर कभी न खुजलाये। मनुष्य को निष्प्रयोजन बार-बार शिर से स्नान न करना चाहिए। क्योंकि ग्रहण समय के अतिरिक्त बार-बार शिर से स्नान करना निन्दित बताया गया है। भोजनोपरांत किसी गम्भीर जलाशय में शिर से स्नान और अंग में तैलमर्दन न करे। तिल की पीठी का भोजन न करना चाहिए, क्योंकि गरिष्ठ होने ने नाते देरी से पचता है। गुरु को कभी कटुवाक्य न कहे अपितु क्रुद्ध देखकर उन्हें प्रसन्न करने का प्रयत्न

---

१. समारभेत। २. न संहताभ्यां हस्तभ्यां कंडूयादात्मानः शिरः।

परीवादं न शृणुयादन्येषामपि जल्पताम् । सदानुपहतास्तिष्ठेत्प्रशस्ताश्च तथौषधीः ।।५६
गारुडानि च रत्नानि बिभृयात्प्रयतो नरः । सुस्निग्धामलकेशश्च सुगन्धिश्चारुवेषधृक् ।।५७
सिताः सुमनसो हृद्यात् बिभृयाच्च नरः सदा । किञ्चित्परस्वं न हरेन्नाल्पमप्याप्रियं वदेत् ।।५८
प्रियं च नानृतं ब्रूयान्नान्यदोषानुदीरयेत् । नान्याश्रितं तथा वैरं रोचयेत्पुरुषेश्वरः ।।५९
न दुष्टयानमारोहेत्कूलच्छायां न संश्रयेत् । विद्विष्टपतितोन्मत्तबहुवैरादिसंकरैः ।।६०
बन्धकीबन्धकीभर्तृक्षुद्रानृतकथैः सह । तथातिव्ययशीलैश्च परिवादरतैः शठैः ।।६१
बुधो मैत्रीं न कुर्वीत नैकः पन्थानमाश्रयेत् । नावागाहेज्जलौघस्य वेगमग्रे नरेश्वर ।।६२
प्रदीप्तं वेश्म न विशेन्नारोहेच्छिखरं तरोः । न हुंकुर्याच्छवं चैव शवगन्धा हि सोमजः ।।६३
न कुर्याद्दन्तसङ्घर्षं न कुर्याच्चलनासिकाम् । नासंस्पृष्टमुखो ब्रूयाच्छ्वासकासौ च वर्जयेत् ।।६४
नोच्चैर्हसेत्सशब्दं[1] च न मुञ्चेत्पवनं बुधः । नखान्न वादयेच्छिद्यान्न नखैश्च महीं लिखेत् ।।६५
न श्मश्रु भक्षयेच्चैव न लोष्ठानि च मर्दयेत् । पादेन नाक्रमेत्पादं न पूज्याभिमुखं नयेत् ।।६६
नोच्चासने समासीत गुरोरग्रे कदाचन । तस्मात्सदाचारपरो भवेत्कामचरो न हि ।।६७
लोकद्वये शुभं प्रेप्सुः प्रेत्य स्वर्गे महीयते । चतुष्पथं चैत्यतरुं श्मशानोपवनानि च ।।६८

करे । दूसरे की भी निन्दा न सुने । सदैव प्रसन्नमुख मुद्रा में रहना चाहिए । मनुष्यों को प्रशस्त औषधी और गारुड रत्न प्रयत्नपूर्वक धारण करना चाहिए । स्निग्ध निर्मल केश एवं सुगन्ध लगाकर, श्वेत वर्ण के प्रिय पुष्पों की माला धारण किये मनुष्यों को सदैव अपना सुन्दर वेष बनाये रखना चाहिए । किसी पराये का अल्प धनापहरण न करे, कभी भी अप्रिय बात न कहे ।४२-५८। असत्य विप्र भाषण न करे, न अन्य के दोष का प्रचार करे । पुरुषों को दूसरे का वैर (झगड़ा) न अपनाना चाहिए । किसी दोष पूर्ण सवारी पर न बैठें, कभी नदी तट की छाया में विश्राम न करे । विद्वेषी, पतित, उन्मत्त, अनेक भाँति के वैर आदि करने का व्यसनी, कुलटा स्त्री और उसके पति, (विचार के) क्षुद्र व्यक्ति, झूठी कथाओं के कहने वाले, अति व्यय करने वाले, और दूसरे की सतत निन्दा करने वाले एवं शठ मनुष्यों के साथ विद्वानों को कभी मैत्री न करनी चाहिए । नरेश्वर! अकेले मार्ग न चले, किसी जल समूह के वेग के सामने स्नान न करे । जलते हुए घर में प्रवेश न करें, किसी वृक्ष के शिखर (ऊपरी) भाग पर आरोहण न करे । किसी शव को देख कर 'हुं' न कहे, क्योंकि शव का गन्ध सोम से उत्पन्न होना बताया जाता है । दाँतों के संघर्ष (दाँतों से दाँतों को काटना), और नासिका चञ्चल न करनी चाहिए । भलीभाँति विना मुख शुद्ध किये न बोले न दीर्घनिःश्वास (लम्बी सांस) न ले और न खांसे । बल पूर्वक शब्द समेत (ठट्ठामार के) न हंसे और शब्द (ध्वनि) समेत मुख से वायु न निकाले । न नख से बजाये, न कोई वस्तु (या नख ही) काटे और न नखों से भूमि में ऐसा करे । श्मश्रु (दाढ़ी) का मुख में स्पर्श न करे, हाथ से मिट्टी मलने का अभ्यास न करे । चरण के ऊपर चरण न रखे और न किसी पूज्य के सम्मुख करे । गुरुजनों के सम्मुख किसी ऊँचे आसन पर न बैठे । इसलिए सदैव सदाचारी बने रहने का प्रयत्न करे, स्वेच्छाचारी का नहीं । क्योंकि उससे दोनों लोक में शुभ की प्राप्ति पूर्वक अन्त में स्वर्ग सम्मान प्राप्त होता है ।५९-६७। रात्रि में सर्वदा

---

१. सनादं च ।

दुष्टस्त्रीसंनिकर्षं च वर्जयेन्निशि सर्वदा । ग्रीष्मवर्षासु चच्छत्री मौनी रात्रौ वनेषु च ।।६९
केशास्थिकण्टकामेध्यबलिभस्मतुषांस्तथा । स्नानार्द्रां धरणीं चैव दूरतः परिवर्जयेत् ।।७०
पन्था देयो ब्राह्मणेभ्यो राजभ्यः स्त्रीभ्य एव च । विद्याधिकस्य गुर्विण्या भारार्तस्य महीयसः ।।७१
मूकान्धबधिराणां च मत्तस्योन्मत्तकस्य च । उपानद्वस्त्रमाल्यं च धृतमन्यैर्न धारयेत् ।।७२
न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन विद्यते । यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ।।७३
न चेर्ष्या स्त्रीषु कर्तव्या दारा रक्ष्याः प्रयत्नतः । अनायुष्या भवेदीर्ष्या तस्मात्तां परिवर्जयेत् ।।७४
मूर्खोन्मत्तव्यसनिनो विरूपान्मानिनस्तथा । हीनांगानधिकाङ्गांश्च विद्याहीनांश्च नाक्षिपेत् ।।७५
पानीयस्य क्रिया नक्तं तथैव दधिसक्तव. । वर्जनीया महाराज निशीथे भोजनक्रियाः ।।७६
नोर्ध्वजानुश्चिरं तिष्ठेन्न रहस्यपरो भवेत् । तद्वन्नोपविशेत्प्राज्ञः पादेनाक्रम्य वासनम् ।।७७
न चातिरक्तवासाः स्याच्चित्रासितधरोऽपि वा । न च कुर्याद्विपर्यासं वाससो न विभूषणे ।।७८
स्त्रीं कृशां नावजानीयाद्दीर्घमायुर्जिजीविषुः । ब्राह्मणं क्षत्रियं सर्वं सर्वे ह्याशीविषोपमाः ।।७९
हन्यादाशीविषः क्रुद्धो यावत्स्पृशति दंष्ट्रया । क्षत्रियोऽपि दहेत्क्रुद्धो यावत्पश्यति तेजसा ।।८०
ब्राह्मणं सकुलं हन्याद्ध्याने नावेक्षितेन च । नातिकल्पं नातिसायं न च मध्यं दिने तथा ।।८१
नाज्ञातैः सह गंतव्यं नैकेन बहुभिः सह । नारुंतदुः स्यान्न परोक्षवादी न सही नतः ।।८२
रोहते चाग्निना दग्धं वनं परशुना हतम् । वचो दुरुक्तबीभत्सं न संरोहति चाशतम् ।।८३

चौराहे, चैत्य वृक्ष, श्मशान के उपवन और दुष्ट स्त्री से दूर रहना चाहिए। ग्रीष्म और वर्षा काल में छाता लगायें और रात्रि तथा वन में मौन रहने केश, अस्थि, कण्टक (काँटे), अपवित्र बलि, भस्म, भूसी, स्नान से गीली, भूमि दूर से त्याग करना चाहिए। ब्राह्मणों, राजाओं, स्त्रियों तथा विद्वान्, गर्भिणी और महान् भारवाही पुरुषों का मार्ग दूर से छोड़ देना चाहिए।६८-७०। उसी भाँति मूक (गूंगे) बधिर, अन्धे, मत्त और उन्मत्त का भी मार्ग छोड़ दे। दूसरे का उपानह, जूते, वस्त्र और माला न धारण करे। लोक में उस प्रकार का क्षीणायु बनाने वाला अन्य कोई कर्म नहीं हैं जितना कि परस्त्री का उपभोग। स्त्रियों से कभी भी ईर्ष्या न करके प्रयत्न पूर्वक सदैव उनकी रक्षा ही करनी चाहिए क्योंकि ईर्ष्या अल्पायु बनाती हैं अतः उसका त्याग ही करना चाहिए। मूर्ख, उन्मत्त, व्यसनी, कुरूप, मानी, हीनांग, अधिकाङ्ग और विद्याहीन प्राणियों की निन्दा न करे। महाराज! नक्त व्रत में पानीय क्रिया, दही, सत्तू और निशीथ (मध्यरात्रि) में भोजन करना वर्जित है। ऊपर घुटने पर चिर काल तक न ठहरे, रहस्यात्मक न बने, और चरण से विस्तरे को लपेटे न बैठे। उसी प्रकार अत्यन्त रक्त, चित्र-विचित्र और काले वस्त्र न धारण करे तथा भूषण-वस्त्र में उलट-फेर न करे। दीर्घजीवन के इच्छुक को कभी दुबली-पतली स्त्री का अपमान न करना चाहिए। ब्राह्मण, या क्षत्रिय, ये सभी सर्प की भाँति होते हैं, अतः इनसे सदैव सतर्क रहें। क्योंकि सर्प क्रुद्ध होने पर दाँत से काटता है, क्रुद्ध क्षत्रिय भी अपने तेज बल द्वारा (वादी) को समूल नष्ट करता है और ब्राह्मण तो ध्यान करने और देखने मात्र से उसे कुल समेत नष्ट कर देते हैं। अत्यन्त प्रातः काल दोपहर और संध्या समय, अपरिचित के साथ, अकेले तथा अनेकों के साथ यात्रा न करें।७१-८१। किसी के मर्मस्थल में पीड़ा न पहुँचाये, न परोक्ष होने और परशु (कुल्हाड़े) से काटने पर भी वन (के वृक्ष गण) अकुंरित हो जाते हैं किन्तु प्रतिवादी के वीभत्सवचन से मर्माहत होने पर प्राणी कदापि पल्लवित नहीं हो

नास्तिक्यं वेदनिंदां च देवतानां च कुत्सनम् । द्वेषस्तंभादिमानस्य क्लैब्यं च परिवर्जयेत् ।।८४
न ब्राह्मणं परिवेन्न नक्षत्राणि दर्शयेत् । तिथिं पक्षस्य न ब्रूयाद्ययास्यायुर्नरिष्यते ।।८५
तेजो निष्ठीव्य वासश्च परिधायाचनेद्बुधः । जितामित्रो नृपो यश्च बलवान्कर्मतत्परः ।।८६
तत्र नित्यं वसेत्प्राज्ञः कृतकृत्यः पतौ सुखम् । पौराः सुसंहता यत्र सततन्यायवर्तिनः ।।८७
यत्र स्त्रियोऽमत्सरिण्यस्तत्र वासः सुखोदयः । यस्मिन्कृषीवालः राष्ट्रे प्रायशो नातिभाषिणः ।।८८
यत्रौषधान्यशेषाणिवसेत्तत्र विचक्षणः । तत्र राजन्न वस्तव्यं यत्रैतत्त्रितयं सदा ।।८९
जिगीषुः पूर्ववैरं न जनश्च विरतोत्सवः । तत्र राजन्न वस्तव्यं यत्र नास्ति चतुष्टयम् ।।९०
ऋणप्रदाता वैद्यश्च श्रोत्रियः सजला नदी । विलोक्यो न चादर्शो मलिनो बुद्धिमत्तरैः ।।९१
न च रात्रौ महाराज दीर्घराज्यमभीप्सता । हेमकारगृहे चान्नंनाश्नीयान्न च विश्वसेत् ।।९२
न च मित्रं प्रकुर्वीत हेमकारं कदाचन। भिन्नाभांडं च खट्वां च कुक्कुरं कुक्कुटं तथा ।।९३
अप्रशस्तानि चत्वारि ये च वृक्षाः सकंटकाः । भिन्नभांडे बलिः प्रादः खट्वायां चेह निश्चयः ।।९४
नाश्नंति पितरस्तस्य यत्र कुक्कुरकुक्कुटौ । वृक्षमूले पिशाचानां सर्वेषामेव संस्थितिः ।।९५
अतस्तेषां तले भुंजन्नश्नुतेपूयशोणितम् । असंस्कृतान्नभुङ्मूत्रं बालादिप्रभवं स्वयम् ।।९६
सुवासिनीं गुर्विणीं च वृद्धांबालातुरांस्तथा । भोजयेत्संकृतान्नेन प्रथमं चरमं गृही ।।९७

सकता **है । नास्तिकता**, वेदनिन्दा, देवों की निन्दा और द्वेष स्तम्भादि मान की कृपणता से सदैव दूर रहना **चाहिए । ब्राह्मण** से कलह तथा नक्षत्र दर्शन न करना चाहिए एवं तिथियों आदि के बताने का कार्य भी न करे क्योंकि इससे आयु क्षीण होती है । गर्भाधान होने और वस्त्र धारण करने पर विद्वान् को आचमन करना चाहिए । शत्रुजेता राजा के निकट, जो बलवान् और अपने कर्मों में सदैव तत्पर रहता है, सुखदर्शन निवास कर बुद्धिमान् को कृतकृत्य हो जाना चाहिए । क्योंकि जिस स्थान के निवासी आपस में सुसंगठित रहते और न्याय प्रिय होते हैं तथा स्त्रियाँ आपस में ईर्ष्या द्वेष नहीं करती है वहाँ का जीवन सुखमय होता है । जिस राष्ट्र में प्रायः खेतिहर किसान (प्रजाएँ) अतिभाषी नहीं होते और समस्त **औषधियाँ** सुलभ रहती हैं वहाँ बुद्धिमान् को अवश्य निवास करना **चाहिए** । राजन्! जहाँ आपस के एक दूसरे की विजय के इच्छुक, पूर्व वैर के स्मरण करने वाले एवं उत्सवों आदि से उदासीन रहने वाली **जनता, ये** तीनों का साथ हो वहाँ कदापि निवास न करे । राजन्! उसी भाँति जहाँ ऋणदाता, वैद्य, **वेदपाठी विद्वान्**, सदैव जल पूर्ण नदी, ये चारों न हों, वहाँ कदापि निवास न करे । बुद्धिमान् मनुष्य को मलिन **दर्पण** में कभी भी मुख दर्शन न करना चाहिए । महाराज! दीर्घ काल तक राज्य सुखोपभोग के इच्छुक **राजाओं** को रात्रि में सुवर्णकार (सोनार) के यहाँ अन्न भोजन और उसका विश्वास कभी न करना चाहिए । सोनार को कभी मित्र भी **न बनाना** चाहिए । टूटा-फूटा पात्र, खट्टा (चारपाई), कुत्ते और मुर्गे, इन चारों समेत काँटेवाला **भी अप्रशस्त बताये गये हैं । क्योंकि** टूटे-फूटे पात्र में बलि प्रदान, खट्टा में शयन, तथा कुत्ते-**मुर्गे वालों के घर पितर कभी भी भोजन नहीं करते और** न तृप्त होते हैं । वृक्ष के मूल भाग में सभी पिशाचों **की** स्थिति होती है इसलिए उसके **नीचे भोजन** करना पूप (पीव) और शोणित का भोजन करना **है** । वहाँ कच्चे अन्न का भक्षण भी वालादि **जनित मूत्र** के समान होता है । सुवासिनी सभी गर्भिणी, वृद्धा, चपल बच्चे को घर में सबसे प्रथम भोजन कराना चाहिए ।८२-९७। गौ,

अघं स केवलं भुङ्क्ते बद्धगोवाहनादिकम् । यो भुंक्ते च बहिर्ज्येष्ठप्रेक्षतामप्रदाय च ॥९८
वैश्वदेवं ततः कुर्याद्यवादहुतयः क्रमात् । प्रथमां ब्रह्मणे दद्यात्प्रजानां पतये ततः ॥९९
तृतीयां चैव गुह्येभ्यः कश्यपाय तथा पराम् । तत श्चानुमते दद्याद्दत्वा गृहबलिं ततः ॥१००
पूर्वाख्यातं मया यत्ते नित्यकर्मक्रियाविधौ । दद्यादथ धरित्रीणां दद्यात्तु मणिकत्रयम् ॥१०१
प्राच्यादिक्रमयोगेन इंद्रादीनां बलिं क्षिपेत् । ब्रह्मणे चान्तरिक्षाय सूर्याय च यथाक्रमम् ॥१०२
विश्वेभ्यश्चैवदेवेभ्यो विश्वभूतेभ्य एव च । कृत्वापसव्यं वायव्यं यक्ष्मैतत्ते निवेदयेत् ॥१०३
ततश्चाग्रं समुद्धृत्य हंतकारोकपल्पितम् । यथाविधि यथान्यायं ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥१०४
दत्त्वा विधिभ्यो देवेभ्यो गुरुभ्यः सुश्रुताय च । पुण्यगंधांबरधरो माल्यधारी नरेश्वर ॥१०५
नैकवस्त्रधरोऽश्नीयान्नार्द्रपादो महीपते । विशुद्धवदनः प्रीतो भुञ्जीत न विदिङ्मुखः ॥१०६
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि न चैवान्यमना नरः । कुत्सितेन हतं चैव जुगुप्सावादसंस्कृतम् ॥१०७
दत्त्वा तु भुंक्ते शिष्टेभ्यःक्षुधितेभ्यस्तथा गृही । प्रशस्तशुद्धपात्रेषु भुञ्जीताकुपितो नृप ॥१०८
नासंदीसंस्थिते पात्रे नादेशे च नरेश्वर । ना काले नातिसंकीर्णे दत्त्वाग्रं च नरो गृही ॥१०९
अश्नीयात्तन्मयो भूत्वा पूर्वं तु मधुरं रसम् । लवणोग्रौततः पश्चात्कटुतीक्ष्णादिकं ततः ॥११०
मार्दवंपुरुषोऽश्नन्वै मध्ये च कठिनाशनम् । अंते पुनर्द्रवाशीच नरो रोगेण मुच्यते ॥१११

वाहन आदि को बाँधे हुए, वाहर भोजन करने वाले जो अपने बड़ों के देखते उन्हें न देकर भोजन कर लेते हैं, लोग केवल पापभोजन करते हैं अन्न नहीं। आहुतियों के क्रमानुसार वैश्वदेव करना चाहिए—प्रथम आहुति ब्रह्मा के लिए, दूसरी प्रजापति, तीसरी गुह्य, चौथी कश्यप और पाँचवीं आहुति अनुमति को देनी चाहिए। गृह बलि देने के उपरांत जिनको मैंने नित्य कर्म विधान में संकेत किया है उन्हें मिट्टी के तीन बड़े कलश प्रदान करना चाहिए। पूर्वादि दिशाओं में क्रमानुसार इन्द्र आदि को बलि प्रदान करे। उसी भाँति ब्रह्मा, अन्तरिक्ष, सूर्य को क्रमशः बलि देकर अपसव्य (दाँये कन्धे से दाहिने कन्धे पर यज्ञोपवीत करके) विश्वेदेव और विश्वभूत को वायव्य कोण में बलिप्रदान करे। सर्वप्रथम उसका अग्रभाग सहर्ष यथाविधान यथान्याय किसी ब्राह्मण को अर्पित करे। नरेश्वर! इस भाँति सविधान देवों, गुरुजनों और वेदपाठी ब्राह्मणों को तृप्त कर स्वयं पुष्प सुगन्धित वस्त्र और माला धारण कर एक ही वस्त्र लिए और आर्द्रपाद (तुरन्त चरण धोकर) भोजन करे किन्तु विदिशाओं (कोने) में मुख करके नहीं, अपितु पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख होकर। भोजन समय भोजन के अतिरिक्त और निन्दित एवं वद भोजन नष्ट हो जाता है। नृप! अन्यमनस्क होने से वह भोजन नष्ट हो जाता है। नृप! शिष्ट (शास्त्रानुगामी) तथा क्षुधापीडित ब्राह्मणों को प्रथम भोजन तृप्त करके किसी शुद्ध और प्रशस्त पात्र में गृहस्थ को प्रेम पूर्वक भोजन करना चाहिए।९८-१०८। नरेश्वर! खट्वा (चारपाई) स्थित पात्र में, अदेश, अकाल और अति संकीर्ण स्थान में बलि प्रदान न कर इससे भिन्न एवं प्रशस्त स्थान में देना चाहिए। पश्चात् तन्मय होकर भोजन करते समय सर्वप्रथम मधुर रस का भोजन करे, तदनन्तर लवण रस से बनाया हुआ उग्र और उसके पीछे कटु तथा तीक्ष्ण रस का आस्वादन करे। मृदु पदार्थ भक्षण करते हुए पुरुष को मध्य में कठिन (गुरु) पदार्थ और अन्त में द्रव (रसदार) पदार्थ का भक्षण करना चाहिए,

दिवाधानासु वसति रात्रौ च दधिसक्तुषु । अलक्ष्मीः कोविदारेषु सर्वदैव कृतालया ॥११२
अनिंद्यं भक्षयेन्नित्यं वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् । भुक्त्वा सम्यग्यथाचम्य प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा ॥११३
यथावत्पुनराचामेत्पाणी प्रक्षाल्य यत्नतः । अभीष्टदेवतानां च कुर्वीत स्मरणं नरः ॥११४
प्राणापानसमानानामुदानव्यानयोस्तथा । अन्नं पुष्टिकरं चास्तु ममाद्याव्याहतं सुखम् ॥११५
अगस्तिरग्निर्वडवानलश्च भुक्तं प्रयान्नं जरयत्वशेषम् ।
सुखं च मे तत्परिणामसंभवं यच्छत्वरोगं खलु वासुदेवः ॥११६
इत्युच्चार्यस्वहस्तेन परिमार्ज्य तथोदरम् । अनायासप्रदायीति कुर्यात्कर्माण्यतंद्रितः ॥११७
संध्यायां पथिकः कश्चित्समागच्छति भारत । पादशौचासनैः प्रह्वः स्वगतोक्त्या च पूजयेत् ॥११८
ततश्चान्नप्रदानेन शयनेन च पार्थिव । दिवा तिथौ च विमुखोयदेकं पातकं भवेत् ॥११९
तदेवाष्टगुणं पुंसां सूर्ये ह्यमुखे गते । गच्छेच्छय्यामस्फुटितामपि दारुमयीं नृप ॥१२०
नाविशालां न वा भग्नां नासमां मलिनां न च । न च जंतुमयीं शय्यां समातिष्ठेदनापदि ॥१२१
प्राच्यां दिशि शिरः शस्तं याम्यायामपि भूपते । सदैव स्वपतः पुंसां विपरीतं तु रोगदम् ॥१२२
ऋतावुपगमः शस्तः सपत्न्यां ह्यवनीपते। पुण्यर्क्षे च शुभे काले पुत्रा युग्मासु रात्रिषु ॥१२३
न चास्नातां स्त्रियं गच्छेद्गर्भिणीं न रजस्वलाम्। नानिष्टां वै न कुपितां नाशस्तां न च रोगिणीम्॥१२४

उससे वह रोग मुक्त होता है ।१०९-१११। दिन में भूने हुए जवा (बहुरी), रात्रि में दही और सत्तू तथा कचनार में अलदत्री (दुर्भाग्य) का सदैव निवास रहता है । अतः उस समय उनके सेवन न करे । नित्य पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख मौन रहकर अन्न की निन्दा न कर अनिन्दित अन्न का भक्षण करे और भोजनोपरांत आचमन (कुल्ला) से कर भली भाँति मुख शुद्ध करे । भले प्रकार से दोनों हाथ शुद्ध कर तथा आचमन (कुल्ला) करके अभीष्ट देवताओं का स्मरण करे—प्राण अपान, समान, उदान, और व्यान, ये समस्त वायुगण मेरे उदरस्थ अन्न की पुष्टि करने की कृपा करें। जिससे मुझे निर्वाध सुख की प्राप्ति हो । अगस्त्य, अग्नि तथा वड़वानल, ये तीनों मेरे उदरस्थ समस्त अन्न (जठराग्नि द्वारा) परिपक्व करें और भगवान् वासुदेव उसके परिणाम रूप सुख आरोग्य प्रदान करें। ऐसा कहते हुए अपने हाथ से समस्त उदर भाग का स्पर्श करके पुनः अल्प प्रयास वाले कर्मों को निरालस होकर करे। भारत! यदि संध्या समय पर किसी पथिक का आगमन हो जाये तो, 'आइये आप का स्वागत है' कहते हुए हाथ-पैर धोने आदि के जल और आसन, भोजन, शयन, आदि द्वारा उसे पूजित करे । पार्थिव! दिन में अभ्यागत के विमुख होकर लौट जाने पर एक ही घातक होता है किन्तु सायंकाल के समय उसके निराश लौटने पर उसका आठगुना अधिक घातक होता है । नृप! सुन्दर काष्ठ की शय्या पर भी शयन करे किन्तु छोटी, भग्न, असम (टेढ़ी) मलिन, और जीव वाली शय्या पर विपत्तियों के अतिरिक्त कभी न शयन करे।११२-१२१। भूपते! पुरुषों को शयन के समय सदैव पूर्व अथवा दक्षिण दिशा की ओर शिर रखना प्रशस्त कहा गया है तथा उससे विपरीत दिशा में रोग प्रद बताया है । अवनीपते! प्रथम स्त्री के अन्त काल उपस्थित होने पर सपत्नी (दूसरी स्त्री) में सम्भोग करना प्रशस्त कहा गया है, परन्तु, पुण्य नक्षत्र, शुभ काल और युग्म रात्रि में उसका भी उपयोग करे जिससे पुत्रों की उत्पत्ति हो । और विना स्नान की हुए स्त्री, गर्भिणी, रजस्वला, अनिष्ट,

नादक्षिणां नान्यकामां नाकामां नान्ययोषितम् । सुक्षामामत्यभुक्तां च स्वयं चैभिर्गुणैर्युतः ।।१२५
स्नातः सुगन्धधृग्धृष्टो न श्रांतः क्षुधितोऽपि वा । सकामः सानुरागश्च व्यवायं पुरुषो व्रजेत् ।।१२६
चतुर्दश्यां तथाष्टम्यां पञ्चदश्यां च पर्वसु । तैलाभ्यङ्गं तथा भोगान्योषितश्च विवर्जयेत् ।।१२७
क्षुरकर्मणि चांते च स्त्रीसंभोगे च भारत । स्नायीत चैलवान्प्रातः कटभूमिमुपेत्य च ।।१२८
गुरोः पतिव्रतानां च तथा यज्ञतपस्विनाम् । परीवादं न कुर्वीत परिहासेऽपि भारत ।।१२९
युगपज्जलमग्निं च बिभृयान्न विचक्षणः । गुरुं देवान्प्रति तथा न च पादौ प्रसारयेत् ।।१३०
नाचक्षीत धयंतीं गां जलं नांजलिना पिबेत्। वातातपौ न सेवेत अनुतापं च वर्जयेत् ।।१३१
दासं शपेन्न वै क्रुद्धः सर्वबन्धूनमत्सरी । भीता श्वासनकृत्साधुः स्वर्गस्तस्याव्ययं फलम्।।१३२
नोर्ध्वं तु पत्तनद्वारं निरीक्ष्य पर्यटेन्नरः । युगमात्रं महीपृष्ठे नरो गच्छेद्विलोकयन् ।।१३३
शेषाहेत्वपि शेषांश्च वश्यात्मा यो निरस्यति । तस्य धर्मार्थकामानां हानिर्नाल्पापि जायते ।।१३४
वृथा मांसं न खादेत पृष्ठमांसं तथैव च । आक्रोशं च विवादं च पैशुन्यं च विवर्जयेत् ।।१३५
संयावं कृशरं मांसं शष्कुलीपायसं तथा । आत्मार्थे न प्रकर्तव्यं देवतानां प्रकल्पयेत् ।।१३६
अजाश्वौ नावकर्षेत ता बहिर्धारयंति च । रक्तमाल्यं न धार्यं स्याच्छुक्लं धार्यं तु पंडितैः ।।१३७
वर्जयित्वात्र कर्म तथा कुवलयं विभो । रक्तं शिरसि धार्यं च तथा पानेयमित्यपि ।।१३८

क्रुद्ध, प्रशस्त, रोगी, मूर्ख अन्यमनस्कता, कामरहित, परस्त्री, क्षुधापीडित, और अति भोजन की हुई स्त्री के साथ सम्भोग न करे । पुरुष को स्वयं निम्नलिखित गुणों से युक्त होकर विहार करना चाहिए—स्नान कर सुगन्ध लगाये, धृष्ट हो, श्रान्त, क्षुधापीड़ित न रहे, और काम समेत एवं अनुराग पूर्ण पुरुष को मैथुन न करना चाहिए । चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा तथा पर्व की तिथियों में तैलाभ्यंग और स्त्री सभ्मोग न करना चाहिए । भारत! क्षौर कर्म, सम्भोग के उपरांत और कटे-भूमि के स्पर्श होने पर सवस्त्र स्नान करे । भारत! गुरुजन, पतिव्रता स्त्रियो, यज्ञानुष्ठान करने वाले तपस्वी का परिहास के समय भी निन्दा न करनी चाहिए । बुद्धिमान् को एक साथ जल और अग्नि न उठाना चाहिए, गुरुजन और देवों के सम्मुख पैर न फैलाये । जल पान करती हुई गौ की ओर मुख कर कुछ न कहे, अञ्जली से जलपान न करे । वायु और आतप (धूप) का सेवन न करे । अनुताप (पश्चात्ताप) करना त्याग दे । सेवक को डाँटना फटकारना अनुचित नहीं है किन्तु क्रुद्ध होकर नहीं । समस्त बन्धुवर्गों से मत्सर न करे । भयभीत को आश्वासन देने वाले पुरुष के लिए स्वर्ग साधु सुलभ कहा गया है, जिसका अव्यय फल प्राप्त होता है ।१२२-१३२। गृह द्वार के ऊपरी भाग को देखते हुए मनुष्य को न चलना चाहिए, क्योंकि मनुष्य को चार पग भी भूमि देख कर ही चलना चाहिए । जो संयमी पुरुष शेष नाग के सम्मुख भी शरीर के शेष षडंग शत्रु (क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष, ईर्ष्या, मार्त्सय) को न अपनाकर उनका निराकरण ही करता है, उसके धर्म, अर्थ और कामनाओं की कभी अल्प भी हानि नहीं होती है । मांस और पृष्ट मांस का भक्षण वृथा है उसी प्रकार निन्दा, विवाद, तथा चुगुली करने से दूर रहना चाहिए । लपसी, खिचड़ी, मांस, पूरी और खीर देवता के निमित्त ही बनाना चाहिए आत्मार्थ नहीं । पण्डितों को बकरी की रस्सी और वकरी का स्पर्श तथा रक्त वर्ण की माला न धारण कर श्वेत पुष्प की माला धारण करनी चाहिए । विभो! कमल कुवलय (कुमुद) के अतिरिक्त रक्त कमल और पानेय शिरोधार्य करना चाहिए ।१३३-१३८। काञ्चनी माला कभी भी दूषित नहीं होती

काञ्चनीयापि या माला सा न दुष्यति कर्हिचित् । अन्यदेव भवेद्वासः शयनीये नरोत्तम ।।१३९
अन्यदर्चासु देवानामन्यद्धार्यं सभासु च । पिप्पलं च वटं चैव शीर्णश्लेष्मांतकं तथा ।।१४०
उदुंबरं न खादेत भवार्थी पुरुषोत्तमः । पतितैश्च कथान्ते च च्छेदनं च विवर्जयेत् ।।१४१
पतितः स्यान्नरो राजन्पतितैस्तु सहाचरन् । वद्धो ज्ञातिस्तथा मित्रं दरिद्रो यो भवेदिह ।।१४२
गृहे वा संस्थापितास्ते गृहवृद्धिमभीप्सता । गृहे पारावता धन्याः शुकाश्च सहसारिकाः ।।१४३
भवंत्येते तथा पापास्तथा वै तिलपायिकाः । आजोक्षा चंदनं वीणा आदर्शो मधुसर्पिषी ।।१४४
जलाग्नी चैव बिभृयाद्गृहे नित्यमिति स्थितिः । धनुर्वेदे त्वसततं यत्नः कार्यो नराधिप ।।१४५
हस्तिपृष्ठेऽश्वपृष्ठे च रथचर्यासु चैव हि । यत्नवान्भव राजेन्द्र नयवान्सुखमेधते ।।१४६
प्रजापालन युक्तश्च न क्षांतिं लभते नृप । यज्ञशास्त्रं च विज्ञाय शब्दशास्त्रं च भारत ।।१४७
गांधर्वशास्त्रं विज्ञेयं कला ज्ञेयाश्च भारत । पुराणमितिहासं च तथाख्यानानि यानि च ।।१४८
एष ते लक्षणोद्देश आचारस्य प्रकीर्तितः । शेषाश्च वेद्या वृद्धेभ्यः प्रत्याहार्या नराधिप ।।१४९
आचारो भूतिजनन आचारः कीर्तिवर्धनः । आचाराद्वर्धते ह्यायुराचारो हंत्यलक्षणम् ।।१५०
आगमानां हि सर्वेषामाचारः श्रेष्ठ उच्यते । आचारः परमो धर्म आचाराद्वर्धते धनम् ।।१५१
पुण्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं महत् । सर्ववर्णानुकंपार्थं मयैतत्समुदाहृतम् ।।१५२

है । नरोत्तम! मनुष्य को शयन के समय अन्य वस्त्र, देवों की अर्चा में अन्य और सभाओं में अन्य वस्त्र धारण करना चाहिए । संसार सुखेच्छक पुरुष को पीपल, वरगद, फटे-चिथरे लसोड़ा और गूलर के फल न खाना चाहिए । कथाओं के अन्त में भी पतितों का सम्पर्क छेदन न करे । क्योंकि राजन्! पतितों का सहचारी भी पतित हो जाता है । गृहवृद्धि के इच्छुक को गृह में (भण्डारी के स्थान) किसी वृद्ध, जातीय, मित्र अथवा दरिद्र को नियुक्त करना चाहिए । गृह में रहने वाले कपोत, शुक और मैना धन्य कहे गये हैं यद्यपि ये पापी और तिलभोजी भी होते हैं । गृह में आजोक्षा चन्दन, वीणा, दर्पण, मधु, घृत, जल और अग्नि नित्य रहना चाहिए । नराधिप! धनुर्वेद के अध्ययन एवं अभ्यासार्थ निरन्तर प्रयत्न करना चाहिए ।१३९-१४६। राजेन्द्र! हाथी, घोड़े की पीठ पर और रथ में सदैव सावधान रहना चाहिए, क्योंकि नीतिज्ञ प्राणी ही सुखी रहता है । नृप! प्रजापालन करने वाला राजा क्षमाशील नहीं होता है । भारत! यज्ञशास्त्र (पूर्व मीमांसा), शब्दशास्त्र (व्याकरण) गान्धर्व शास्त्र (धनुर्विद्या), चौसठकला, पुराण, इतिहास, तथा समस्त आख्यान का मर्मवेत्ता अवश्य होना चाहिए । नराधिप! मैंने तुम्हें आचार का लक्षण और उसका उद्देश्य बता दिया शेष बाते वृद्धों से जाननी चाहिए । आचार द्वारा ऐश्वर्य की प्राप्ति और वृद्धि होती है तथा आयु वृद्धि समेत कुलक्षण (दोष) का विनाश होता है । सभी आगमों में आचार ही सर्वश्रेष्ठ बताया गया है क्योंकि आचार ही परम धर्म है और उसी से धन वृद्धि, स्वर्ग प्रद और महान् कल्याण कारी आचारोपदेश की व्याख्या तुम्हें समस्त वर्णों (के मनुष्यों) के सुखार्थ सुना दिया । नरपुङ्गव! राजन्! आचार पालन करने से मनुष्यों के धर्म, अर्थ और कामनाएँ सदैव सफल

आचार एव नरपुंगव सेव्यमानो धर्मार्थकामफलदो भवतीह पुंसाम्।
तस्मात्सदैव विदुषावहितेन राजञ्छास्त्रोदितो ह्यनुदिनं परिपालनीयः ॥१५३

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
सदाचारधर्मवर्णनं नाम पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०५

अथ षडधिकद्विशततमोऽध्यायः

रोहिणीचन्द्रशयनव्रतविधिवर्णनम्

नारद उवाच

दीर्घायुरारोग्यकुलादिवृद्धिर्युक्तः पुमान्येन गुणान्वितः स्यात्।
मुर्हुमुहुर्जन्मनि येन सम्यग्व्रतं मम ब्रूहि तदिंदुमौले ॥१

श्रीभगवानुवाच

त्वया पृष्टमिदं सम्यगपुत्राक्षयकारकम्। रहस्यं ते प्रवक्ष्यामि यत्पुराणविदो विदुः ॥२
रोहिणीचन्द्रशयनं नाम व्रतमिहोत्तमम्। तस्मिन्नारायणस्यार्च्यामर्च्चयेदिंदुनामभिः ॥३
यदा सोमादिनायुक्ता भवेत्पञ्चदशी क्वचित्। अथ वा ब्रह्मनक्षत्रं पौर्णमास्यां प्रजायते ॥४
तदा स्नानं नरः कुर्यात्पञ्चगव्यं च सर्षपैः। आप्यायस्वेति च जपेद्विद्वानष्टशतं पुनः ॥५
शूद्रोऽपि परया भक्त्या पाखण्डालापवर्जितः। सोमाय वरदायाथ विष्णवे च नमोनमः ॥६

होती रहती हैं अतः शास्त्रमर्मज्ञ विद्वानों को शास्त्रीय आचारों के पालन अनुहित सम्पन्न करना चाहिए।१४७-१५३

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
सदाचारधर्मवर्णन नामक दो सौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त।२०५।

अध्याय २०६

रोहिणीचन्द्रशयन विधि का वर्णन

नारद बोले—मुझे चन्द्रमौलिक (शिव) जी के उस व्रत की भलीभाँति व्याख्या बताने की कृपा करें, जिससे दीर्घायु, नीरोग और कुल आदि की वृद्धि समेत पुरुष प्रत्येक जन्म में गुणी होता रहे।१

श्रीभगवान् बोले—तुम्हारा यह प्रश्न बहुत उत्तम है, लोक-परलोक में अक्षय फल प्रदान करने वाले इस रहस्य को, जिसे पुराण वेत्ताओं सुस्पष्ट कहा है, मैं तुम्हें बता रहा हूँ! सुनो! रोहिणी चन्द्रशयन नामक यह परमोत्तम व्रत है, जिसमें चन्द्रमा के नामों द्वारा नारायण की अर्चना सम्पन्न होती है। सोमवार के दिन पूर्णिमा अथवा पूर्णिमा के दिन ब्रह्म नक्षत्र के समय राई समेत पंचगव्य से स्नान पूर्वक मनुष्य को 'आप्यायस्वेति' मंत्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिए। शूद्र को भी भक्तिश्रद्धा समेत पाखण्डादि दोषरहित होकर, 'वर प्रदान करने वाले सोम (चन्द्र) और विष्णु को बार-बार

कृतजप्यः स्वनमागत्य भगवन्तं मधुसूदनम् । पूजयेत्फलपुष्पैश्च सोमनामानि कीर्तयेत् ॥७
सोमाय नमोऽस्तु पादावनंतनाम्ने ह्यनुजानु जङ्घे । ऊरुद्वयं चापि वृकोदराय संपूजयेन्मेढ्रमनङ्गबाहवे ॥८

नमोनमः कामसुखप्रदाय कटिः शशांकस्य समर्चनीया ।
तथोदरं चाप्यमृतोदराय नाभिः सुपूज्या विधिलोचनाय ॥९
नमोऽस्तु चन्द्राय मुखं प्रपूज्य हनुर्द्विजानामधिपाय पूज्या ।
आस्यं नमश्चंद्रमसेभिपूज्यमोष्ठौ कुमुत्खंडवनप्रियाय ॥१०
नासा च नाथाय वनौषधीनां ह्यानन्ददायाथ पुनर्भ्रुवोश्च ।
नेत्रद्वयं नीलकुमुत्प्रियाय चेंदीवरश्यामकराय चोरः ॥११
नमः समस्ताध्वरवंदिताय कर्णद्वयं दैत्यनिषूदनाय ।
ललाटमिंदोरुदधिप्रियाय केशाः सुषुम्णाधिपतेः प्रपूज्याः ॥१२
शिरः शशाङ्काय नमोऽसुरारेर्विश्वेश्वरायेति नमः किरीटम् ।
पद्मप्रिये रोहिणि नाम लक्ष्मि सौभाग्यसौख्यामृततारकायै ॥१३
देवीं च सम्पूज्य सुगन्धधूपैर्नैवेद्यपुष्पादिभिरिंदुपत्नीम् ।
प्रपूज्य भूमौ पुनरुत्थितेन स्नात्वा च विप्राय हविष्ययुक्तः ॥१४
देयः प्रभाते स हिरण्यवारिकुंभो मनः पापविनाशनाय ।
संप्राश्य गोमूत्रममांससन्नक्षारमष्टावथ विंशतिं च ॥१५
ग्रासान्पयः सर्पियुतानुपोष्य भुक्त्वेतिहासं श्रृणुयान्मुहूर्तम् ।
कदंबनीलोत्पलकेतकानि जाती सरोजं शतपत्रिका च ॥१६

नमस्कार करता हूँ'।२-६। इसका कुछ समय जप करना चाहिए । तदनन्तर अपने घर फल पुष्पों आदि द्वारा चन्द्रमा के नामोच्चारण पूर्वक भगवान् मधुसूदन की सप्रेम अर्चा करे— 'शांत सोम को नमस्कार है' से चरण 'अनन्त को नमस्कार है, से घुटने और जाँघे, 'वृकोदर को नमस्कार है' से दोनो उरु, 'अनङ्गवाहु को नमस्कार है' से मेढ्र, 'काम सुख प्रदायक को नमस्कार है' से कटि, 'अमृतदर को नमस्कार है' से उदर, 'विधिलोचन को नमस्कार है' से नाभि, 'चन्द्र को नमस्कार है' से मुख, 'द्विजाधिप को नमस्कार है' से हनु (ठुड्डी), 'चन्द्रमा को नमस्कार है' से कपोल, 'कुमुद के खण्डवन प्रिय को नमस्कार है' से ओष्ठ, 'वनौषधि नाथ को नमस्कार है' से नासिका, 'आनन्दप्रद को नमस्कार है' से दोनो भौंह, 'नीलकुमुदप्रिय को नमस्कार है' से दोनों नेत्र, 'इन्द्रीवर श्याम करने वाले को नमस्कार है' से हृदय, 'समस्त यज्ञ वन्दित को नमस्कार है' से दोनों कान, 'दैत्यनिषूदन को नमस्कार है' से ललाट, 'समुद्रप्रिय इन्दु को नमस्कार है' से केश, 'सुषम्ना (नाडी) के अधिपति शशांक को नमस्कार है, से शिर, और 'असुरारि विश्वेश्वर को नमस्कार है, से किरीट का पूजन करते हुए 'पद्मप्रिय, रोहिणी, लक्ष्मी, और सौभाग्य, सौख्य प्रदान करने वाली अमृत तारकाको नमस्कार है ।७-१३। कह कर सुगन्ध, धूप, नैवेद्य और पुष्पादि द्वारा चन्द्रपत्नी देवी की भूमि में अर्चा करें । अनन्तर प्रातः काल स्नान करके हविष्य समेत हिरण्य भूषित जल पूर्ण कलश मानसिक पाप के विनाशार्थ किसी ब्राह्मण विद्वान् को अर्पित करे । पुनः गोमूत्रके आशन पूर्वक मांस तथा लवण रहित अन्न के दूध-घृत समेत अट्ठाईश ग्रास भक्षण करके अनन्तर इतिहास का श्रवण करे । इसी प्रकार

अम्लानकुब्जानथ सिन्दुवारपुष्पं पुनर्नारद मल्लिकायाः।
मुक्तं च विष्णोः करवीरपुष्पं श्रीचंपकं चंद्रमसश्च देयम् ॥१७
श्रावणादिषु मासेषु क्रमादेतानि सर्वदा। यस्मिन्मासे व्रतादिः स्यात्पुष्पैरभ्यर्चयेद्हरिम् ॥१८
एकसंवत्सरं यावदुपोष्य विधिवन्नरः। व्रतांते शयनं दद्याद्पर्णोपस्करान्वितम् ॥१९
रोहिणीचन्द्रमिथुनं कारयित्वा तु कांचनम्। चंद्रः षडङ्गुलः कार्यो रोहिणी चतुरंगुला ॥२०
मुक्ता फलाष्टकयुतं सितनेत्रपटावृतम्। क्षीरकुंभोपरि पुनः कांस्यपात्राक्षतान्वितम् ॥२१
दद्यान्मन्त्रेण पूर्वाह्णे शालीक्षुफलसंयुतम्। श्वेतामथ सुवर्णास्यां रौप्यखुरसमन्विताम् ॥२२
सवत्सभाजनां धेनुं तथा शंखं च शोभनम्। भूषणैर्द्विजदांपत्यमलंकृत्य गुणान्वितम् ॥२३
चंद्रोऽयं द्विजरूपेण सभार्य इति कल्पयेत्। यथा न रोहिणी कृष्ण शयनं त्यज्य गच्छति ॥२४
सोमरूपस्य ते तद्वन्ममाभेदोऽस्तु मूर्तिभिः। यथा त्वमेव सर्वेषां परमानंदमुक्तिदः ॥२५
भुक्तिर्मुक्तिस्तथा भक्तिस्त्वयि [1]यज्ञेऽस्तु मे दृढा। इति संसारभीतस्य मुक्तिकामस्य चानघ ॥२६
रूपारोग्यायुषामेताद्विधायकमनुत्तमम्। इदमेव पितृणां च सर्वदा वल्लभं मुने ॥२७
त्रैलोक्याधिपतिर्भूत्वा शतकल्पशतत्रयम्। चन्द्रलोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥२८
नारी वा रोहिणी चंद्रशयनं वा समाचरेत्। साऽपि तत्फलमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥२९

कदम्ब, नीलकमल, केतकी, जाती, कमल, शतपत्रिका, अम्लान कुब्ज, सिन्दुवार, मलिका विष्णु के लिए तथा करवीर, चम्पक चन्द्रमा को श्रावण आदि प्रति मासों के क्रमिक पूजन में अर्पित करना चाहिए। क्योंकि जिस मास में जो व्रत विधान बताया गया है उसमें कहे हुए पुष्पों से भगवान् का पूजन करे।१४-१९। इस भाँति एक वर्ष तक सविधान उपवास आदि साधन सम्पन्न सुशय्या, रोहिणी समेत चन्द्रमा की सुवर्ण प्रतिमा का जिसमें छः अंगुल की चन्द्रमा की प्रतिमा और चार अङ्गुल की रोहिणी की प्रतिमा होती है, तथा आठ मोती से श्वेत दर्ण के नेत्र का निर्माण कर वस्त्राच्छन्न करे और दुग्ध पूर्ण कलश के ऊपर, जो अक्षत पूर्ण कांसे के पात्र से सुसज्जित हो, पूर्वाह्न के समय मंत्रोच्चारण पूर्वक गुड चावल युक्त प्रतिष्ठित कर श्वेत वर्ण की धेनु, जिसके सुवर्ण के मुख, चाँदी की खुर बनी हो, वस्त्र, भाजन, शोभन शंख, समेत किसी गुणी ब्राह्मण दम्पती को अर्पित करे, जो भूषणों से भूपित हों। 'द्विज रूपसे यह चन्द्र देव स्थितहैं' उस ब्राह्मण दम्पति में ऐसी कल्पना कर उनकी प्रार्थना करे— कृष्ण! जिस प्रकार रोहिणी आप के शयन को त्याग कर कभी कहीं नहीं जाती है, उसी भाँति सोम रूप आप की सभी मूर्तियों द्वारा मेरा अभेद भाव बना रहे। जिस भाँति सभी प्राणियों 'को तुम्हीं परमानन्द रूपी मुक्ति, और मुक्ति प्रदान करते हो, उसी भाँति तुम्हारे यज्ञ रूप में मेरी दृढ़ भक्ति सदैव बनी रहे।२०-२५। अनघ! इस प्रकार संसार भीति एवं मुक्ति कामना वाले प्राणी को इसके द्वारा रूप, आरोग्य, और परमोत्तम आयु की प्राप्ति होती है। मुने! यह व्रत पितरों को भी अत्यन्त प्रिय है। इस व्रतानुष्ठान द्वारा मनुष्य को तीन सौ कल्प तक तीनों लोकों के अधिव्यापक की सुखानुभूति के उपरांत उस चन्द्रलोक की प्राप्ति होती है, जहाँ पहुँचने पर पुनर्जन्म दुर्लभ रहता है।२६-२८। यदि रोहिणी-चन्द्रशयन नामक व्रत को स्त्री भी सुसम्पन्न करती है तो उसे

---

१. बंधे।

इति पठतिश्रृणोति वा य इत्थं मधुमथनार्चनमिंदीकीर्तनेन।
पठितमपि च ददाति सोऽपि शौरेभलवनगतः परिपूज्यतेऽमरौघैः ॥३०

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
नारदमहेश्वरसम्वादे रोहिणीचन्द्रशयनव्रतविधिवर्णनं नाम षडधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०६

अथ सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णस्यद्वारकागमनवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच

व्रतं दानमथो राजंस्तव धर्माः प्रकाशिताः । [1]धर्ममूलं यतश्चेदं तस्माद्धर्मपरो भव ॥१
जानताऽपि मया पार्थ कामार्थौ न प्रकाशितौ । यतः स्वयं प्रवृत्तोऽत्र लोकः किमनुवर्ण्यते ॥२
कामिनो वर्णयन्कामाँल्लोभं लुब्धस्य वर्णयन् । नरः किं फलमाप्नोति कूपेंऽधमिव पातयन् ॥३
भविष्योत्तरमेतत्ते कथितं पाण्डुनन्दन । सदाचारवतां पुंसां व्रतदानसमुच्चयः ॥४
यदृष्टमितिहासेषु पुराणेषु च भारत । वेदवेदाङ्गसम्बद्धं[2] तत्सर्वमिह दर्शितम् ॥५
लोकवेदाविरुद्धं यत्कथ्यते मनुजोत्तम । न तत्रस्था प्रकर्तव्या विप्रलापो हि सस्मृतः ॥६

भी वही फल प्राप्त होते हैं । इस प्रकार व्रताख्यान को, जिसमें चन्द्रमा के नामों द्वारा मधुसूदन भगवान् की अर्चा होती है, पढ़ने, सुनने अथवा उसके निमित्त मति भी प्रदान करने वाले मनुष्य को देव पूजन विष्णु लोक प्राप्त होता है ।२९-३०

श्रीभविष्यमहापुराण मे उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में अन्तर्गत नारद महेश्वर सम्वाद में
रोहिणीचन्द्रशयन व्रतविधानवर्णन नामक दो दौ छठाँ अध्याय समाप्त ।२०६।

अध्याय २०७

श्रीकृष्ण का द्वारका-गमन-वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—राजन्! मैंने व्रत तथा दान द्वारा तुम्हें धर्मो का वर्णन सुनाया है, क्योंकि यही धर्म के मूल कारण हैं अतः तुम निरन्तर अपनी धार्मिक भावना दृढ़ करो । पार्थ! मैंने जान बूझ कर काम और अर्थ के ऊपर प्रकाश नहीं डाला है, क्योकि लोक जिस विषय में स्वयं प्रवृत्त है, उसका वर्णन करने से क्या लाभ हो सकता है! कूप में अंधे को गिराने की भाँति मनुष्य को कामी के लिए काम के वर्णन और लोभी के निर्मित अर्थलोभ के वर्णन करने से और क्या लाभ हो सकता है । पाण्डुनन्दन! इस प्रकार भविष्य पुराणका उत्तर भाग तुम्हें मैंने सुना दिया, जिसमें सदाचारशील पुरुषों के लिए दान व्रत का समुच्चय वर्णन किया गया है । भारत! इतिहासों और पुराणों में मैंने जो कुछ देखा है, उन वेद वेदाङ्ग सम्बन्धी सभी वातों को तुम्हारे सामने प्रकट किया ।१-५। मनुजोत्तम! इसमें जो कुछ कहीं लोक और वेद के विरुद्ध निरूपित है उसमें किसी प्रकार की आस्था न कर केवल उसे ब्राह्मणों का आलाप

---

१. मया विचार्य तत्रैव । २. वेदवेदांतसंबद्धम् ।

अतिस्नेहेन भवतो [1]ममैतत्समुदाहृतम् । ऋषीणां पुरतः कुंठा भवति भारती ।।७
नैतत्प्रकाशनीयं हि दाम्भिकाय शठाय वा । नास्तिकायान्यमनसे [2]कुतर्कोपहताय च ।।८
साधु वृत्ताय दांताय सत्यार्जवरताय च । एतदाख्यायमानं हि [3]शुभमुत्पादयेद्गतिम् ।।९

सामान्यमेतत्सुरसत्तमानां वर्णाश्रमाणां च नरेन्द्रचन्द्र ।
ख्यातं भविष्योत्तरनामधेयं मया पुराणं तव सौहृदेन ।।१०
धर्मः स्वयं पार्थ भवानिह त्वं धर्मार्थविद्दृष्टपरावरश्च ।
पृष्टोऽस्म्यतो धर्ममहं च वच्मि श्रद्धेयमेतत्सुतरां जनस्य ।।११
यास्याम्यहं द्वारवतां पुनश्च यज्ञं समेष्यामि महोत्सवे च ।
कालस्य सर्वं हि वशे विदित्वा नैवानुतापो भवतात्र कार्यः ।।१२
इत्युक्तवान्यातुकामः प्रहृष्टः संपूजितः पांडुसुतैर्महात्मा ।
पृष्ट्वा सुहृज्ज्ञातिजनं हि सर्वं जगाम विप्रान्प्रणिपत्य कृष्णः ।।१३
यद्याज्ञवल्क्यमुनिना भगवान्वशिष्ठः पृष्ठः किलोत्तरमुवाच बहुप्रकारम् ।
कृष्णेन पांडुतनयस्य च यत्प्रदिष्टं व्यासेन तत्कृतमहो मुनिपुंगवेन ।।१४
जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दतेव्यासः । यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मधुपुण्यं जगत्पिबति ।।१५

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे समाप्तिवर्णनं श्रीकृष्णस्य द्वारकां प्रति गमनवर्णनं नाम सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०७

मात्रजानो । पार्थ! मैंने आप के स्नेहसे अत्यन्त विवश होकर इन बातों को प्रकाशित किया है अन्यथा ऋषियों के समक्ष कोई बात कहने में वाणी कुण्ठित हो जाती है । दम्भी, शठ, नास्तिक, अन्यमनस्क, कुतर्क से हत बुद्धि होने वाले मनुष्यों के समक्ष इसे अप्रकाशित रख कर सदाचारी, शुद्ध, सत्यपरायण पुरुष, को अर्पित करना चाहिए । क्योंकि यह (भविष्यपुराण का) आख्यान शुभ गति प्रदान करता है । नरेन्द्र! मैंने तुम्हारे सौहार्द्रवश यह भविष्योत्तर नामक पुराण, जिसमें वर्णाश्रमों और देवश्रेष्ठों के आख्यान हैं, और प्रख्यात है, विवेचन पूर्ण सुना दिया ।६-१०। पार्थ! धर्मार्थवेत्ता और परावर (ऊँच-नीच) के सिद्धयर्थ करने के नाते तुम स्वयं धर्ममूर्ति हो, किन्तु पूछने के नाते मैंने भी धर्म का वर्णन किया है, अब मैं द्वारका पुरी जाऊँगा और उस महोत्सव में यज्ञानुष्ठान के अवसर पर पुनः आने की चेष्टा करूँगा अतः सभी कुछ काल के अधीन जानकर आप इसमें कुछ भी अनुताप न करेंगे । महात्मा कृष्ण के ऐसा कह कर गमन कामनया पाण्डुपुत्रों द्वारा पूजित एवं हर्षित होते हुए मित्रगण, और जातीय बन्धुओं आदि की सम्मति से विदा होकर ब्राह्मणों को सादर नमस्कार करके द्वारका का प्रस्थान किया । इस प्रकार याज्ञवल्क्य मुनि के सादर पूछने पर भगवान् वशिष्ठ ने अनेक भाँति जो कुछ निश्चित उत्तर दिया है, और पाण्डुपुत्र (युधिष्ठिर) के समक्ष उन्हें जो उपदेश किया है, उसी को मुनि श्रेष्ठ व्यास जी ने पुराण का रूप प्रदान किया है । पराशर पुत्र एवं संत्यवती के हृदय नन्दन भगवान् व्यास की जय हो, जिसके मुख- कमल से निकले हुए वाणीरूपपुण्यमधु (शहद) का पान सारा संसार करता है ।११-१५

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर सम्वाद में समाप्ति वर्णन समेत श्रीकृष्ण के द्वारका के प्रति गमन वर्णन नामक दो सौ सातवाँ अध्याय समाप्त ।२०७।

---

१. सम्प्रदर्शितम् । २. कुकर्मविहिताय च । ३. परामुत्पादयेद्गतिम् ।

अथाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अनुक्रमणिकाकथनम्

(अथ [1]वृत्तांताः)

व्यासानुगमनं पूर्वं ब्रह्माण्डस्य समुद्भवः । माया च वैष्णवी यस्मात्संसारे दोषकीर्तनम् ॥१
पापभेदस्ततस्तस्माच्छुभाशुभविनिर्णयः। [2]शकटव्रतमाहात्म्यं तिलकव्रतकीर्तनम् ॥२
अशोककरवीराख्यं व्रतं तस्माच्च कोकिलम् । बृहत्तपोव्रतं नाम रुद्रोपोषणमेव च ॥३
द्वितीयाव्रतमाहात्म्यमशून्य[3] शयनं तथा। कामाख्या तु तृतीया च मेघपालीव्रतं[4] तथा ॥४
पंचाग्निसाधना रम्या तृतीयाव्रतमुत्तमम्। त्रिरात्रं गोष्पदं नाम हरकाली व्रतं तथा ॥५
ललिताख्या तृतीया च योगाख्या च तथापरा । उमामहेश्वरं नाम तथा रम्भातृतीयकम् ॥६
सौभाग्याख्या तृतीया च आर्द्रानंदकरी तथा । चैत्रे भाद्रपदे माघे तृतीयाव्रतमुच्यते ॥७
अनंतरी तृतीया च गणशांतिव्रतं तथा । सारस्वतव्रतं नाम पञ्चमीव्रतमुच्यते ॥८
तथा श्रीपञ्चमी नाम षष्ठी शोकप्रणाशिनी । फलषष्ठी च मंदारषष्ठीव्रतमथोच्यते ॥९
ललिताव्रतषष्ठी च षष्ठी कार्तिकसंज्ञिता । महत्तपः सप्तमी च विभूषा[5] सप्तमी तथा ॥१०
आदित्यमण्डपविधिस्त्रयोदशीति सप्तमी । कुकवाकुलपवङ्गा च तथैवाभयसप्तमी ॥११
[6]कल्याणसप्तमी नाम शर्करासप्तमीव्रतम् । सप्तमी कमलाख्या[7] च तथान्या शुभसप्तमी ॥१२

अध्याय २०८

अनुक्रमणिका-कथन

(वृत्तान्त) इस पुराण में सर्वप्रथम व्यासानुमन, ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, तथा उस वैष्णवी माया का वर्णन है जिसके द्वारा संसार दोषमय कहा गया है । पुनः पापों के भेद उसके द्वारा होने वाले शुभाशुभ फलों के निर्णय, शकट व्रत का माहात्म्य, तिलकव्रत की व्याख्या, अशोक करवीर व्रत, कोकिलाव्रत, महान् तपोव्रत, रुद्रका उपोषण, द्वितीया व्रत का माहात्म्य, अशून्य शयन व्रत, कामाख्या तृतीया, मेघपाली व्रत, पञ्चाग्नि साधन समेत सुरम्य तृतीया व्रत, तीन रात्रि का होने वाला गोष्पद व्रत, हरकाली व्रत, ललिता तृतीया, योगाख्या तृतीया, उमामहेश्वर नामक रम्य तृतीया, सौभाग्य की तृतीया, आर्द्रानन्दकरी तृतीया, तथा चैत्र, भाद्रपद और माघ का तृतीया व्रत, अनन्तरी तृतीया, गण शान्ति व्रत, सारस्वत व्रत, पञ्चमी व्रत, श्रीपञ्चमी, शोकनाशिनी षष्ठी, फल षष्ठी, मन्दार षष्ठी व्रत, ललिता षष्ठी, कार्तिक की षष्ठी, महान्तप, सप्तमी, विभूषा सप्तमी, आदित्य मण्डप के विधान समेत इन तेरह सप्तमीका कुक, वाकु, और पल्वङ्ग नामक सप्तमी, अभय सप्तमी, कल्याण सप्तमी शर्करा सप्तमी, कमला सप्तमी, अन्य शुभ

---

१. अष्टमीवृत्तान्ताः इति —पुस्तकद्वये पाठः। २. ३. शयनं । ४. मेषपाली व्रतं ।
५. ६. कल्पनासप्तमी । ७. वामलाख्या च ।

स्नपनव्रतसप्तम्यौ तथैवाचलसप्तमी । बुधाष्टमीव्रतं नाम तथा जन्माष्टमीव्रतम् ॥१३
दूर्वाकृष्णाष्टमी प्रोक्ता अनयाव्रतमष्टमी । अष्टम्यर्काष्टमी चाथ श्रीवृक्षनवमीव्रतम् ॥१४
ध्वजाख्या नवमी चैव उल्काख्या नवमी तथा । दशावतारव्रतकं तथाशादशमीव्रतम् ॥१५
रोहिणीन्द्रहरिशंभुब्रह्मसूर्यावियोगकम् । गोवत्सद्वादशी नाम व्रतमुक्तं ततः परम् ॥१६
नीराजनद्वादशी च भीष्मपञ्चकमेव च । मल्लिकाख्या द्वादशी च भीमा द्वादशिकोतथा ॥१७
श्रवणद्वादशी नाम संप्राप्तिद्वादशीव्रतम् । गोविन्दद्वादशी नाम व्रतमुक्तं ततः परम् ॥१८
अखण्डद्वादशी नाम तिलद्वादश्यतः परम् । सुकृतद्वादशी नाम धरणीव्रतमेव च ॥१९
विशोकद्वादशी नाम विभूतिद्वादशीव्रतम् । पुष्यर्क्षद्वादशी चैव द्वादशी श्रवणर्क्षगा ॥२०
अनंगद्वादशी चैव अङ्कपादव्रतं तथा । निम्बार्ककरवीराथ यमा दर्शत्रयोदशी ॥
अनङ्गद्वादशी चापि पालिरम्भाव्रते तथा ॥२१
चतुर्दशीव्रतं प्रोक्तं ततोऽनन्तचतुर्दशी । [1]श्रावणीव्रतनक्तं च चतुर्दश्यष्टमीदिने ॥२२
व्रतं शिवचतुर्दश्यां फलत्यागचतुर्दशी । वैशाखी कार्तिकी माघीव्रतमेतदनन्तरम् ॥२३
कार्तिक्यां कृत्तिकायोगे कृत्तिकाव्रतमीरितम् । फाल्गुने पूर्णिमायां तु व्रतं पूर्णमनोरथम् ॥२४
अशोकपूर्णिमा नाम अनन्तव्रतमेव च । व्रतं हि सांभरायिण्यं नक्षत्रपुरुषव्रतम् ॥२५
शिवनक्षत्रपुरुषं सम्पूर्णं येन मुच्यते । कामदानव्रतं नाम वृन्ताकविधिरेव च ॥२६
आदित्यस्य दिने नक्तं संक्रात्युद्यापने फलम् । [2]भद्राव्रतमगस्त्यार्घो नवचन्द्रार्कमेव च ॥२७
अर्घः शुक्रबृहस्पत्योः पञ्चाशीति व्रतानि च । माघस्नानं नित्यस्नानं रुद्रस्नानविधिस्तथा ॥२८

सप्तमी, स्नान-व्रत की सप्तमी, अचला सप्तमी का वर्णन है ।१-१३½। उसी भाँति बुध की अष्टमी का, जन्माष्टमी व्रत, दूर्वाकृष्णाष्टमी, अनयाष्टमी व्रत, अर्काष्टमी व्रत, श्रीवृक्ष नवमी, ध्वज नवमी, उल्का नवमी, दशावतार व्रत, आशादशमीव्रत, रोहिणी, इन्द्र, हरि, शम्भु, ब्रह्मा, और सूर्य का अवियोग व्रत, गोवत्स-द्वादशी व्रत, नीराजन द्वादशी, भीष्मपञ्चक व्रत, मल्लिका द्वादशी, भीष्म द्वादशी, श्रवण द्वादशी, सम्प्राप्ति द्वादशी, गोविन्द द्वादशी, अखण्ड द्वादशी, तिल द्वादशी, सुकृत द्वादशी, धरणी व्रत, विशोक द्वादशी, विभूति द्वादशी, पुष्यनक्षत्र की द्वादशी, श्रवण नक्षत्र की द्वादशी, अनङ्ग द्वादशी, अङ्कपाद व्रत, निम्बार्क, करवीर और यम की दर्श त्रयोदशी, पालि रम्भाव्रत को अनङ्ग द्वादशी, चतुर्दशी व्रत, अनन्त चतुर्दशी, चतुर्दशी में श्रावणी और अष्टमी का नक्त व्रत, शिवचतुर्दशी, फलत्याग चतुर्दशी वैशाख, कार्तिक और माघ की पूर्णिमा व्रत, कार्तिक पूर्णिमा के दिन कृत्तिका का योग होने पर कृत्तिका व्रत, फाल्गुन की पूर्णिमा में पूर्ण मनोरथ नामक व्रत, अशोक पूर्णिमा, अनन्त व्रत, साम्भरायणी व्रत, नक्षत्र पुरुष व्रत, सम्पूर्ण नामक शिव नक्षत्र पुरुष व्रत, काम दान व्रत, वृन्ताकविधि, आदित्य के दिन नक्त व्रत, संक्रान्ति के उद्यापन का फल वर्णन, भद्राव्रत, अगस्य के अर्घ्य का वर्णन, नवीन-चन्द्रार्क व्रत, शुक्र-बृहस्पति के अर्घ्य

---

१. आवनीव्रतनक्तं च । २. भद्राशतम् ।

चंद्रार्कग्रहणे स्नानं विधिर्न्वान्नाशने तथा । वापीकूपतडागानामुत्सर्गो वृक्षयाजनम् ।।२९
देवपूजादिदीपदानवृषोत्सर्गविधिस्तथा । फालगुन्युत्सवकं नाम तथान्यः सदनोत्सवः ।।३०
भूतमाता च श्रावण्यां रक्षाबंधविधिस्तथा । विधिस्तथा नवम्यास्तु तथा चन्द्रमहोत्सवः ।।३१
दीपालिकायां नु होमो लक्षहोमविधिस्तथा । कोटिहोमो महाशीतिर्गणनाथस्य शांतिका ।।३२
तथा नक्षत्रहोमोऽथ गोदानविधिरेव च । गुडधेनुघृतधेनुतिलधेनुव्रतं तथा ।।३३
जलधेनुविधिः प्रोक्तो लवणस्य तथा परा । धेनुः कार्या समं ज्ञात्वा नवनीतस्य चापरा ।।
सुवर्णधेनुश्च तथा देवकार्यं चिकीर्षुभिः ।।३४

इति श्रीभविष्ये महापुराण उत्तरपर्वणि श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे
संक्षिप्तानुक्रमणिकाकथनं नामाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः ।२०८

आदि पचासी व्रत का वर्णन माघस्नान, नित्यस्नान, एवं रुद्रस्नान का विधान. चन्द्र सूर्य के ग्रहण में स्नान विधान का वर्णन है । अन्नआशन, वावली, कूप, सरोवर के उत्सर्ग, वृक्ष याजन, देवपूजा, दीपदान, और वृषोत्सर्ग का विधान, फाल्गुनी उत्सव, सदनोत्सव, भूतमाता का पूजन, श्रावणी में रक्षाबन्धन विधान, नवमी विधि, चन्द्रमहोत्सव, दीपालिका, हवन, लक्षहोम, कोटिहोम, महाशीति व्रत, गणनाथ की शांति, नक्षत्र होम, गोदानविधि, गुडधेनु, घृतधेनु, तिलधेनु, जलधेनु, लवणधेनु, नवनीत (मध्यवन) की धेनु, तथा देव कार्य को सुसम्पन्न करने वाले पुरुषों को सुवर्णधेनु का भी सविधान निर्माण एवं दान अवश्य करना चाहिए ।१४-३४

श्रीभविष्यमहापुराण के उत्तरपर्व में श्रीकृष्णयुधिष्ठिर के संवाद में
संक्षिप्त अनुक्रमणिका कथन नामक दो सौ आठवाँ अध्याय समाप्त ।२०८।

समाप्तोऽयं भविष्यपुराणग्रन्थः